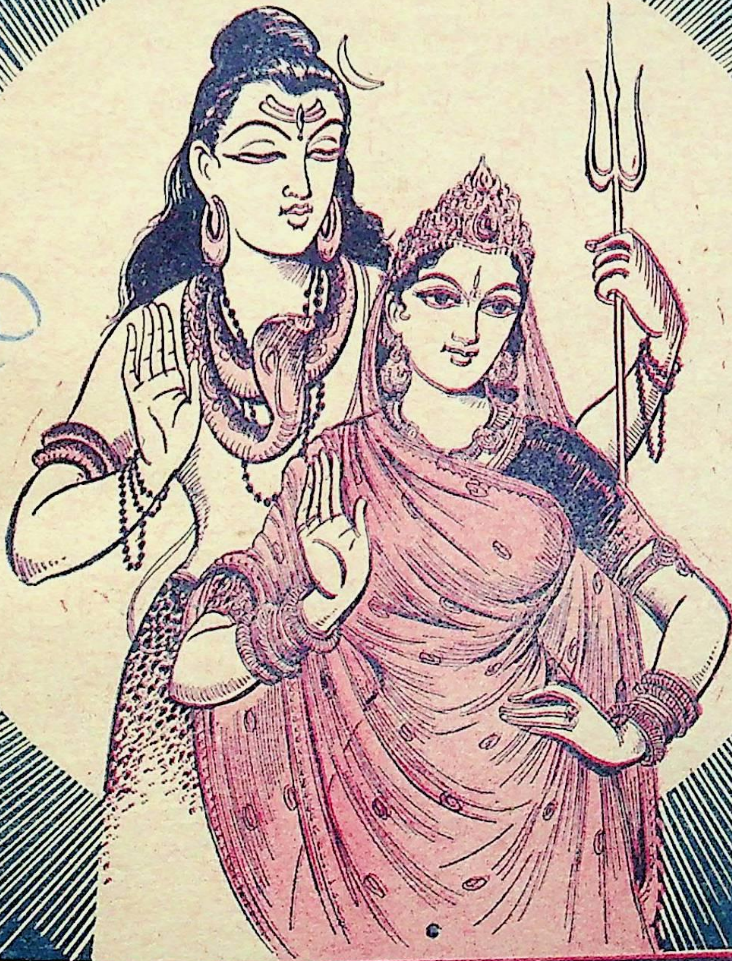


कल्याण

वर्ष ३६

संख्या १

संक्षिप्त-शिवपुराणाङ्क

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ।।
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ।।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश, जय शुभ-आगारा ।।
जयति शिवा-शिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ।।
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ।।
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ।।

प्रथम संस्करण १,३१,०००
द्वितीय संस्करण २०,०००

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें ।
'कल्याण'में बाहरके विज्ञापन नहीं छपते ।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें ।
'कल्याण'में समालोचनाका स्तम्भ नहीं है ।

वार्षिक मूल्य
भारतमें ७.५०
विदेशमें १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ।।
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ।।
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ।।

इस अङ्कका
मूल्य ७.५०
विदेशमें १०.००
(१५ शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण



संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क

वर्ष ३६ संख्या १

श्रीहरिः

'कल्याण'के प्रेमी पाठक और ग्राहक महानुभावोंसे नम्र निवेदन

१. 'सं० शिवपुराणाङ्क'का यह दूसरा संस्करण है। प्रथम संस्करणकी १,३१,००० प्रतियाँ बिक गयीं और सब पुराने ग्राहकोंकी वी० पी० न भेजी जा सकी। इसलिये कामकी भारी भीड़ होते हुए भी २०,००० प्रतियोंका यह दूसरा संस्करण छापा गया है। जिन्हें लेना हो, वे कृपया शीघ्र ७.५० मनीआर्डरद्वारा भेज दें।

२. 'कल्याण'का यह 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' प्रसिद्ध 'शिवपुराण'का संक्षिप्त सार-रूप है। 'शिवपुराण' शैव महानुभावोंकी तो परम प्रिय परम आदरणीय वस्तु है ही, यह सभीके लिये उपादेय है। इसमें भगवान्‌के शिवस्वरूप परात्पर परब्रह्म परतम प्रभुके तत्त्वका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्णन है। भगवान् शिवकी बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका, उनके अवतारोंका, समस्त जगत्‌की एकात्मताका, ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी नित्य अभिन्नताका, साधनोंका, योग-भक्तिके तत्त्वोंका बड़ा ही विशद तथा सर्वोपयोगी वर्णन है। इसकी सभी कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं। इसमें पुराने 'शिवाङ्क'में प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण लेख तथा कुछ गम्भीर एवं सुन्दर सरल नये लेख भी प्रकाशित हो रहे हैं। लगभग ७०४ पृष्ठोंकी सामग्री है। बहुरंगे १७, दोरंगा-रेखाचित्र १, सादे १२ और १३८ रेखाचित्र हैं। मूल्य केवल ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे डाकखर्च समेत) है। हिंदीमें शिवपुराणका सार-रूप इतना सस्ता केवल यही ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। अतः इसका अपने लिये तो संग्रह करना ही चाहिये। विशेष प्रयत्न करके कम-से-कम दो-दो नये ग्राहक और बना देनेका प्रयास करना चाहिये। यह हमारा प्रत्येक 'कल्याण'प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे विनम्र निवेदन है।

३. जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी०पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी०पी० भेजकर 'कल्याण' को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

४. मनीआर्डर-कूपनमें और वी०पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नये ग्राहक बनते हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर' कल्याण-के नाम भेजें, उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

५. ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी

क—

ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

६. आपके 'विशेषाङ्क' के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नंबर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये।

७. 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे, तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग दो-तीन सप्ताह तो लग ही सकता है; इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

८. 'कल्याण'—व्यवस्था-विभाग, 'कल्याण'—सम्पादन-विभाग, 'कल्याण-कल्पतरु' (अंगरेजी), 'साधक-सङ्घ' और 'गीता-रामायण-प्रचार-सङ्घ'के नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

९. किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही वर्षका चंदा समाप्त समझना चाहिये; क्योंकि केवल इस विशेषाङ्कका ही मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) है।

१०. कृपा करके कोई ग्राहक सजिल्दका मूल्य न भेजें। यदि किसीका आयगा तो अजिल्द विशेषाङ्क भेजकर जिल्द-चार्ज १.२५ मनीआर्डरकी फीस काटकर लौटा दिया जा सकेगा।



श्रीहरिः

'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'की विषय-सूची

रुद्रसंहिता प्रथम (सृष्टि) खण्ड

रुद्रसंहिता द्वितीय (सती) खण्ड

रुद्रसंहिता तृतीय (पार्वती) खण्ड

रुद्रसंहिता चतुर्थ (कुमार) खण्ड

रुद्रसंहिता, पञ्चम (युद्ध) खण्ड

शतरुद्रसंहिता

कैलाससंहिता

वायवीयसंहिता (पूर्वखण्ड)

वायवीयसंहिता (उत्तरखण्ड)

चित्र-सूची

बहुरंगे

रेखा चित्र दोरंगा

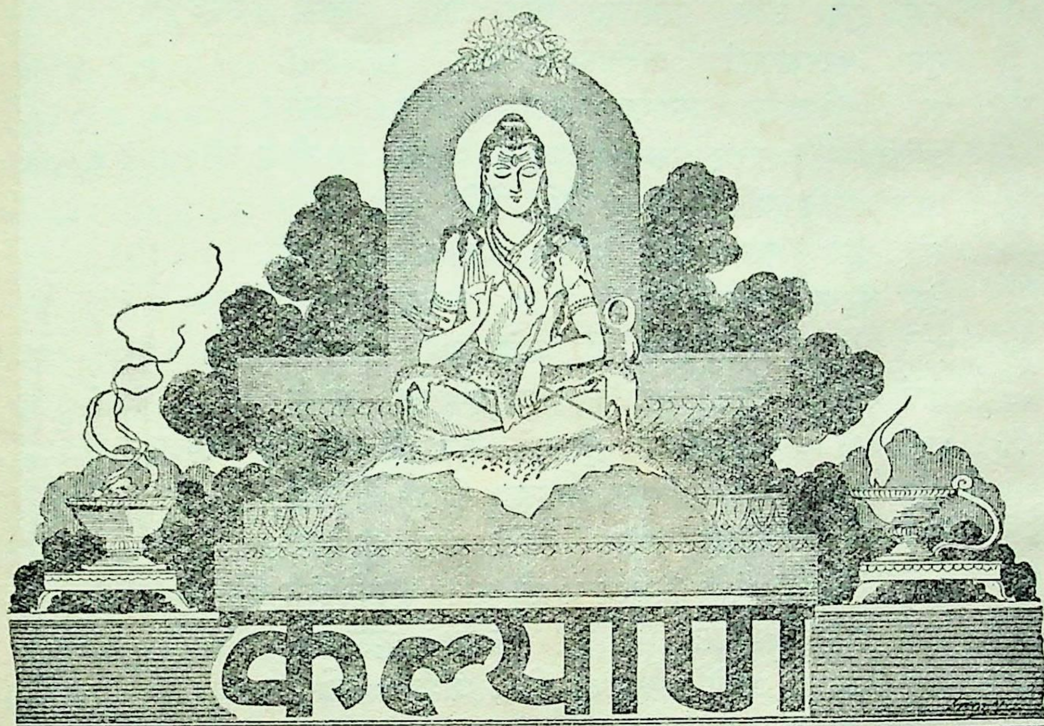
इकरंगे चित्र

रेखा-चित्र



भगवान् शिव ध्यानस्थ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ } गोरखपुर, सौर माघ २०१८, जनवरी १९६२ { संख्या १ पूर्ण संख्या ४२२

ध्यानस्थ शिव सच्चिदानन्द

अचल सरल उन्नत सुदिव्य वपु, कपिश केश चूड़ा नागेश ।
नीलकण्ठ, नासाग्र दृष्टि स्थिर, मुक्ता-नाग-हार गल-देश ॥
क्रोडस्थित कर-कमल, समुज्ज्वल ज्योति, प्राण-तन-मन निस्पन्द ।
व्याघ्रचर्म-आसन शुचि शोभित शिव योगेश सच्चिदानन्द ॥

शिवका स्तवन

जय हे औढरदानी !

जैसे तुम उदार परमेस्वर, तैसी सिवा भवानी ॥ जय० ॥

तुम घट-घटबासी अबिनासी व्यापक अंतरजामी,
सुद्ध सच्चिदानन्द अनामय अमल अकाम अनामी ।
अबिदितगति अनवद्य अगोचर अगुन अनीह अमानी ॥ जय० ॥ १ ॥

अगम प्रमानि तुमहि निगमागम 'नेति' 'नेति' कहि हारे,
सोई तुम भक्तन हित कारन रूप अनेकन धारे ।
किए अनुग्रह भाजन प्रभु ने सकल चराचर स्वामी ॥ जय० ॥ २ ॥

परखि प्रीति परबत-तनया कों आधे अंग बिठायो,
आधो पुरुष अरध नारी को अद्भुत रूप बनायो ।
दंपति की यह एकरूपता तुम ते जग ने जानी ॥ जय० ॥ ३ ॥

आक, धतूर, पात, श्रीफल पै तुम रीझत त्रिपुरारी,
चाउर चारि चढ़ाइ पदारथ चारि लहत नर-नारी ।
आसुतोष ! तुम बिन त्रिभुवन में को अति कृपानिधानी ॥ जय० ॥ ४ ॥

जाके पदरज के प्रसाद ते सुर सुरपति सुखभोगी,
सोइ सरबस्व अरपि औरन कों फिरै, अकिंचन जोगी ।
परहित जाचत कर कपाल लै, डारत भीख भवानी ॥ जय० ॥ ५ ॥

तुम बिन प्रेत पिसाचनहू कों को मानत निज प्यारे,
बैर बिहाइ मोर अहि मूषक निवसत सदन तिहारे ।
वृषभ सिंघ सँग सँग रह पीअत एक घाट पै पानी ॥ जय० ॥ ६ ॥

बिष बिषधर दोषाकर दूषन भूषन कौन बनावै,
कौन आप हालाहल पीकैं औरहि सुधा पियावै ।
तुम बिन काके कंठ कृपाकी लखियत नील निसानी ॥ जय० ॥ ७ ॥

कासी बीच मुक्ति-मुक्तामनि कौन लुटावत डोलै,
को पसुपति बिनु बंध पसुन को पास कृपा करि खोलै ।
स्रवन सुनाइ कौन तारक मनु तारत अगनित प्रानी ॥ जय० ॥ ८ ॥

जेहि मारत जग तेहि अहि गन कों प्यार करत तुम स्वामी,
लीजै सरन महेस ! कृपा करि, चरन नमामि नमामी ।
तुम बिन को अपनावत मो सम कुटिल अधम अभिमानी ॥ जय० ॥ ९ ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

शिवपुराणमें शिवका स्वरूप

एक ही परम तत्त्व

सत्-चित्-आनन्दरूप परतम परात्पर ब्रह्म एक है; वह सर्वदा सर्वथा पूर्ण, सर्वग, सर्वगत, अनन्त, विभु है; वह सर्वातीत है, सर्वरूप है। सम्पूर्ण देश-कालातीत है, सम्पूर्ण देश-कालमय है। वह नित्य निराकार, नित्य निर्गुण है; वह नित्य साकार, नित्य सगुण है। अवश्य ही उसकी आकृति पाञ्चभौतिक नहीं और उसके गुण त्रिगुणजनित नहीं हैं। वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए ही स्वरूपतः ही अनादिकालसे विविध-स्वरूप-सम्पन्न, विविध-शक्तिसम्पन्न एवं विविध-शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न है। नित्य एक होते हुए ही उसकी नित्य विभिन्न पृथक् सत्ता है। उन्हीं पृथक् रूपोंके नाम—शिव, विष्णु, शक्ति, राम, कृष्ण, गणेश आदि हैं। वह एक ही अनादिकालसे इन विविध रूपोंमें अभिव्यक्त है। ये सभी स्वरूप नित्य शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥

परात्पर ब्रह्मके वे सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्म-स्वरूप हैं। उनके देह जन्म-मरणसे रहित और स्वरूप-भूत हैं, कदापि प्रकृतिजनित नहीं हैं। वे परमानन्द-संदोह हैं, सर्वतोभावेन ज्ञानैकस्वरूप हैं, वे सभी समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं एवं सभी दोषोंसे (माया-प्रपञ्चसे) सर्वथा रहित हैं।'

शिवपुराणमें ये ही परात्पर ब्रह्म 'शिव' नामसे व्याख्यात हैं। इनके स्वरूपका शिवपुराणमें आदिसे अन्ततक जो वर्णन मिलता है, वह सब-का-सब पूर्णरूपसे परतम ब्रह्मका ही वर्णन है। वेद-उपनिषद्में परात्पर ब्रह्मके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, वही शिवपुराणमें भगवान् शिवके सम्बन्धमें कथित है। एक-एक अक्षर मानो औपनिषदब्रह्मका वाचक है। कुछ उदाहरण लीजिये। शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें भगवान् वायुदेवने महेश्वर श्रीशिवका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते संचुकोच यः॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम्।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् संस्थितं प्रभुम्॥
अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत्॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्॥
अचक्षुरपि यः पश्येदकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥
अणोरणीयान् महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः॥
तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम्।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति॥
वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम्।
निरोधं जन्मनो यस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥*

(शि० पु० वा० सं० पू० ख० ६। १४—२६)

* एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।

सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। स्वर्ग और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाले वे ही एक महेश्वर देव हैं। वे ही सब देवताओंको उत्पन्न तथा पालन करते हैं। वे ही सब देवताओंमें सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। वे ही सबसे अधिक श्रेष्ठ रुद्रदेव महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अङ्गकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं। इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह समस्त जगत् परिपूर्ण है। ये भगवान् सब ओर मुख, सिर और कण्ठवाले हैं। सब प्राणियोंके हृदयरूप गुफामें निवास करते हैं, सर्वव्यापी हैं; अतएव ये भगवान् शिव सर्वगत हैं। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। ये सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं। जो मनुष्य सबकी रचना करनेवाले परमेश्वरकी कृपासे इन यज्ञस्वरूप संकल्परहित अत्यन्त महिमासे युक्त परमेश्वरको देख लेता है, वह सब प्रकारके शोकसे रहित हो जाता है। ब्रह्मवादी पुरुष जिनके जन्मका अभाव बतलाते हैं, उन सर्वव्यापी, सर्वत्र विद्यमान, जरा-मृत्यु आदिसे रहित, पुराणपुरुष परमेश्वरको मैं जानता हूँ।

प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
(३।२)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥
(३।३)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
(३।४)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(३।८)

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
(३।९)

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥
(३।११)

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
(३।१६)

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥
(३।१७)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
(३।१९)

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
(३।२०)

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥
(३।२१)
[श्वेताश्वतरोपनिषद्]

वायुदेवता आगे फिर कहते हैं—

द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च ॥
मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥

× × ×

परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः ।
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः ॥
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम् ।
देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे ॥
कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते ।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च ॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ॥
न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ।
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ॥
परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता ।
ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ॥
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता ।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः ॥
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ।
न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ॥
स एकः सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः ।
सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते ॥
सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः ।
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ॥
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः ।
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति ॥
सांख्ययोगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम् ।
ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैः सर्वैरेव विमुच्यते ॥
विश्वकृद्विश्ववित् स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी ।
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ॥
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत् स्वयम् ।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः ॥
मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम् ॥
(शिवपु०वा० सं०पू० ख०४ । ६-७, ९-१०, ६ । ५५—६७)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं यस्य वै विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० ख० ३ । १)

यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः ।
यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥*
(शि० पु० वा० सं० पू० ख० ३ । १४)

---

* द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ४ । ६ ॥
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥४।९॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥४।१०॥

× × ×

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥६।५॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥६।६॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥६।७॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥६।८॥
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥६।११॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥६।१२॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥६।१३॥
स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः ।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥६।१६॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥६।१८॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति (तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मा० नवम अनुवाक)

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥६।१४॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

'एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर)-का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।

'छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है।'

'वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं। जो काल आदिसे परे हैं, जिनसे यह समस्त प्रपञ्च प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं। उनके शरीर-रूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं। उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है। उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण है एवं उनका भी अधीश्वर है। उसका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है। वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, सबका द्रष्टा, साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है। सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करने योग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों) से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (विकसित) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ।

'जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष कभी भी किसीसे नहीं डरता।'

'जिसके पास न तो यह बिजली प्रकाश करती है, न सूर्य और चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं। उन्हींके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। ऐसा सनातनी श्रुतिका कथन है।'

इस प्रकारके स्वरूप-व्याख्यानसे शिवपुराण भरा है। इससे सिद्ध है कि शिवपुराणके शिव परतम परात्पर वही ब्रह्म हैं, जो विष्णुपुराणके महाविष्णु, श्रीमद्भागवतके महाविष्णु या श्रीकृष्ण हैं, रामायणके श्रीराम हैं, देवी-भागवतकी दुर्गा हैं। वस्तुतः एक ही ब्रह्म अनादिकालसे ही विभिन्न नामों-रूपोंसे अभिव्यक्त है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' एक ही तत्त्वस्वरूप परात्पर सर्वलोक-

महेश्वर, सर्वगत, सर्वातीत प्रभुको ऋषियोंने विभिन्न रूपोंमें जाना, देखा और कहा है। शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेश एक ही परमात्माके पाँच सगुणरूप हैं। महाप्रलयके समय वे एकमात्र ब्रह्म ही रह जाते हैं। फिर कल्पके प्रारम्भमें उन्हीं एक ब्रह्मकी शक्तिके द्वारा उनके किसी रूपसे शक्तिका तथा ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—इन त्रिदेवोंका प्राकट्य होता है। यह कभी 'शिव' रूपसे होता है, कभी विष्णु, शक्ति या अन्य किसी रूपसे। वैसे तत्त्वतः या वस्तुतः इनमें कोई भी भेद नहीं है।

भगवान् शिव और विष्णुमें तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रमें अभिन्नता

भगवान् हरि-हर तो सर्वथा एक हैं ही। लीलामात्रके लिये कहीं भगवान् हर रूपसे उपास्य एवं हरिरूपसे उपासक होते हैं, तो कहीं हरिरूपसे उपास्य और हररूपसे उपासक होते हैं। उपासनाका तत्त्व बतलानेके लिये ही वे परस्पर उपास्य-उपासककी लीला करते हैं। वस्तुतः—

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्॥

'हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही रूपका भेद होता है। नाटकमें अभिनेता विभिन्न रूप धारण करता है; पर वस्तुतः वह जो है, वही रहता है।' बृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड अध्याय ९। १०) में एक बड़ी सुन्दर कथा है—

एक बार भगवान् नारायण अपने दिव्य वैकुण्ठलोकमें सोये हुए स्वप्न देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिसे युक्त, त्रिशूल-डमरूधारी, स्वर्णाभूषणोंसे विभूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादि सिद्धियोंके द्वारा सुसेवित, त्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम तथा आनन्दातिरेकसे उन्मत्त हो उनके सामने नृत्य कर रहे हैं। उन्हें इस प्रकार नृत्य-परायण देखकर भगवान् विष्णु हर्षोत्फुल्ल हो सहसा उठकर शय्यापर बैठ गये और ध्यान करने लगे। उन्हें यों विराजित देखकर भगवती लक्ष्मीजीने उनसे इस प्रकार उठ-बैठनेका कारण पूछा, पर वे बोले नहीं। कुछ समय पश्चात् बाह्यभावमें आकर उन्होंने कहा—'देवि! मैंने अभी स्वप्नमें अपूर्व आनन्द और मनोहर शोभासे संयुक्त श्रीमहेश्वरके दर्शन किये हैं। इससे ज्ञात होता है श्रीशंकरने मुझे स्मरण किया है, अतः चलो, हमलोग कैलास जाकर भगवान् महादेवके दर्शन करें।'

यों कहकर वे दोनों तुरंत कैलासकी ओर चल दिये। कुछ ही दूर गये होंगे कि उन्हें सामनेसे भगवती उमाके साथ स्वयं शिव आते दिखायी दिये। मानो घर बैठे ही निधि मिल गयी। समीप पहुँचते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले। प्रेम और प्रेमानन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। दोनों ही पुलकित-कलेवर हो परस्पर लिपट गये। दोनोंके ही सुन्दर नेत्रोंसे आनन्दाश्रुका प्रवाह बह चला। बात-चीत होनेपर पता लगा कि भगवान् शिवको भी रात्रिमें स्वप्न हुआ, जिसमें उन्होंने विष्णुभगवान्‌को इसी रूपमें देखा और फिर उनसे मिलने चल दिये।

अब दोनों ही परस्पर अपने यहाँ लिवा ले जानेके लिये आग्रह करने लगे। भगवान् शंकरसे नारायणने कहा—'वैकुण्ठ पधारिये' और भगवान् शम्भुने उन्हें कैलास प्रस्थान करनेके लिये कहा। दोनोंके ही आग्रह अलौकिक प्रेमसे परिपूर्ण थे, इसलिये यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय। इसी बीच वीणा बजाते हरि-गुण गाते देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। नारदजीको आये देखकर दोनोंने ही उनसे यह निर्णय कर देनेके लिये अनुरोध किया कि कहाँ जाना चाहिये। नारदजी तो प्रेमी हैं ही, वे श्रीहरि-हरके इस अलौकिक मिलन-प्रेमको देखकर मुग्ध हो गये और दोनोंका गुण-गान करने लगे। अब निर्णय कौन करे। अन्तमें इसका भार भगवती उमाको सौंपा गया—वे जो कह दें, वैसा ही किया जाय। कुछ देर तो भगवती उमा चुप रहीं। फिर दोनोंको लक्ष्य करके बोलीं—

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम्॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुर्मिथः॥
या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ् न वाम्॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः॥

'हे नाथ! हे केशव! आपलोगोंके इस प्रकारके विलक्षण अनन्य और अचल प्रेमको देखकर यही निश्चय होता है कि आपके निवासस्थान पृथक् नहीं हैं। जो कैलास है, वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है, वही कैलास है। केवल नाममें ही भेद है। मुझे तो यह लगता है कि आपका आत्मा भी एक है। केवल शरीरसे आप दो दिखायी देते हैं। मुझे तो यह दीख रहा है कि आपकी भार्याएँ भी एक ही हैं, दो नहीं। जो मैं हूँ, वही ये श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी हैं, वही मैं हूँ। अतः आप लोगोंमेंसे जो एकके प्रति द्वेष करता है, वह दूसरेके प्रति ही करता है और जो एककी पूजा करता है, वह स्वाभाविक ही दूसरेकी भी करता है एवं जो एकको अपूज्य मानता है, वह दूसरेको भी अपूज्य ही मानता है।'

'मेरा तो यह निश्चय है कि आप दोनोंमें जो भेद मानता है, उसका निश्चय ही घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आपलोग मुझे इस प्रसङ्गमें मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवञ्चना कर रहे हैं, मुझे भुलावा दे रहे हैं या विनोद कर रहे हैं। मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारें। श्रीविष्णु यह समझें हम शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलासको प्रस्थान कर रहे हैं।' भगवती उमाके इस निर्णयसे दोनों ही परम प्रसन्न होकर भगवतीकी प्रशंसा करते हुए परस्पर प्रणामालिङ्गन करके अपने-अपने लोकको पधार गये।

वैकुण्ठ पहुँचनेके बाद भगवान् नारायणने श्रीलक्ष्मीजीसे कहा—

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव॥

'वस्तुतः मैं ही जनार्दन विष्णु हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ोंमें रक्खे हुए जलकी भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामसे भगवान् श्रीशिवका सम्बन्ध निरूपण करते हुए बहुत ठीक कहा है—

सेवक स्वामि सखा सिय पी के।

भगवान् महादेव कभी श्रीरामके साथ सेवककी लीला करते हैं। कभी स्वामीकी और कभी सखाकी। कभी वे उन्हें पूजते हैं, कभी वे। तुलसीदासजीके भगवान् राम और सीता शिवपुराणके भगवान् शिव और शक्तिकी भाँति ही परात्पर परब्रह्म हैं। उन्हींसे—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

भगवान् शिव और भगवान् विष्णुकी अभिन्नताके प्रसङ्ग प्रायः सभी पुराणोंमें हैं और इनमें भेद माननेवालोंका नरकगामी होना बतलाया गया है। यहाँ केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं—

पद्मपुराणमें भगवान् परात्पर रामरूपसे भगवान् शिवके प्रति कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदाऽऽसंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः॥
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिकराः॥
(पद्म० पाताल० २८। २१-२३)

'आप शिव मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें हूँ। हम दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मूढ़ तथा दुर्बुद्धि लोग ही हममें भेद मानते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, हममें भेदभावना करनेवाले मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकादि नरकोंमें यन्त्रणा भोगते हैं। जो धार्मिक पुरुष आपके भक्त हैं, वे सदा ही मेरे भक्त हैं और जो मेरे भक्त हैं, वे महान् भक्तिसे आपको ही प्रणाम करते हैं।'

शिवपुराणमें परात्पर परतम भगवान् शिवरूपसे कहते हैं—

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम॥
(९। ५५-५६)

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन॥
(१०। ६)

रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति॥
(१०। ८)

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात् पुरुषोत्तम।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥
(१०। ९)

त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्॥
(१०। १४)
(शिव० रु० सृ०)

मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है। हे विष्णो! आप रुद्रके ध्येय हैं और रुद्र आपके ध्येय हैं। आपमें और रुद्रमें तनिक भी अन्तर नहीं है। जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तुरंत भस्म हो जायगा। पुरुषोत्तम विष्णो! आपसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा, यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो आपकी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और आपमें भेद जानता है, वह अवश्य ही नरकमें गिरता है।'

ये ही परतम परात्पर ब्रह्म कल्पके आदिमें (सदाशिव, महाविष्णु, राम-कृष्ण-शक्ति आदि) अपने किसी रूपसे अपने ही अंश त्रिदेवोंको (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रको) प्रकट करके अखिल विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारकी लीला करते हैं। इस सिद्धान्तका प्रायः सभी शैव और वैष्णव-पुराणोंमें प्रतिपादन किया गया है और सर्वत्र ही परतम परात्पर ब्रह्मसे प्रकट उन तीनों देवोंकी और उनसे परतम परात्पर ब्रह्मकी अभिन्नता बतलायी गयी है।

शिवपुराणमें इनका प्राकट्य परात्पर ब्रह्म भगवान् शिवसे बतलाया गया है। शिवके दक्षिण भागसे ब्रह्माका, वाम भागसे विष्णुका और हृदयसे रुद्रका प्राकट्य हुआ है। इन्हीं शिवके आदेशसे फिर ब्रह्माका भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे और रुद्रका ब्रह्माके मस्तकसे प्रकट होना बतलाया गया है। इन्हीं सदाशिवसे पराशक्तिका प्राकट्य और फिर उनसे समस्त दैवी शक्तियोंका उदय होना बतलाया है। देवीभागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण भागसे भगवान् विष्णुका, वामभागसे भगवान् महेश्वरका और नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रकट होना बतलाया है और उन्हींसे आदिशक्तिका प्राकट्य बतलाया गया है। यह सब लीलावैचित्र्य है। तत्त्व एक ही है। शिवपुराणमें परात्पर भगवान् शिवके परात्पर निर्गुण स्वरूपको 'सदाशिव', सगुण स्वरूपको 'महेश्वर', विश्वका सृजन करनेवाले स्वरूपको 'ब्रह्मा', पालन करनेवाले स्वरूपको 'विष्णु' और संहार करनेवाले स्वरूपको 'रुद्र' कहा गया है।

श्रीमद्भागवतमें दक्षसे स्वयं भगवान् विष्णु कहते हैं—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मना ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥
(४ । ७ । ५०—५४)

'जगत्का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ । मैं ही सबका आत्मा, ईश्वर, उपद्रष्टा, स्वयम्प्रकाश और भेदरहित हूँ । विप्रवर ! त्रिगुणमयी अपनी मायाके द्वारा जब मैं सृजन, पालन और संहारकी लीला करता हूँ, तब-तब मैं ही उस लीला-कार्यके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन नामोंको धारण करता हूँ । ऐसे मुझ केवल अद्वितीय विशुद्ध परमात्मासे अज्ञानी लोग ही ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखते हैं । जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ-पैर आदि भुजाओंमें ये मुझसे भिन्न हैं—ऐसी बुद्धि नहीं करता, वैसे ही मत्परायण मेरा भक्त किसी प्राणीको मुझसे भिन्न नहीं देखता । ब्रह्मन् ! हम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनों स्वरूपतः एक ही हैं । हम सर्वभूतरूप हैं । अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ।'

पद्मपुराणमें (पातालखण्ड अ० २८) भगवान् शिव परात्पर भगवान्के रामरूपसे कहते हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे ।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम् ।
एक एव त्रिधारूपं गृह्णासि कुहकान्वितः ॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः ।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः ॥

'आप प्रकृतिसे पर साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकला ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप होकर विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं । आप रूप-रहित होते हुए भी विश्वके परम कारण हैं । आप एक ही लीलासे त्रिविध रूप ग्रहण करते हैं—विश्वकी सृष्टिके समय ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय अपने प्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और जगत्के प्रलयके समय साक्षात् मुझ शिवका रूप ले लेते हैं ।'

शिवपुराणमें ही भगवान् शंकरके द्वारा सीतान्वेषणमें तत्पर दशरथ-पुत्रके रूपमें भगवान् श्रीरामको प्रणाम किये जानेकी कथा इस प्रकार आती है—

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीलाविशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ बैलपर आरूढ़ हो इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे । घूमते-घूमते वे दण्डकारण्यमें आये । वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा छलपूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे । वे 'हा सीते !' ऐसा उच्चस्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबार रोते थे । उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था । लक्ष्मणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी । उस समय उदारचेता पूर्ण-काम भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये । भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया । भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ । वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं ।

सतीने कहा—देवदेव सर्वेश ! परब्रह्म परमेश्वर ! आप ही सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं; क्योंकि वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जानने योग्य निर्विकार परम प्रभु आप ही हैं । नाथ ! ये दोनों पुरुष कौन हैं ? इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है । ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्लेशके भागी और दीन हो रहे हैं । इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अङ्ग-कान्ति नील कमलके समान श्याम है । उसे देखकर किस कारणसे आप आनन्दमग्न हो उठे थे ? आपका

चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ? स्वामिन् ! कल्याणकारी शिव ! आप मेरे संशयको दूर कीजिये।

इसपर भगवान् शिवने कहा—देवि ! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं। इनके नाम हैं—श्रीराम और लक्ष्मण। इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है। ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं। इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शेषके अंश हैं। उनका नाम लक्ष्मण है। इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है। इनके रूपमें उपद्रवरहित भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं—

ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः।
अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः॥

(श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें इसीके आधारपर सती-त्यागकी सुन्दर कथा लिखी है।)

महाभारतकी गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही अपनेको परात्पर ब्रह्म तथा सबका आदि प्रकटकर्ता बतलाया है।

किसी-किसी कल्पमें जीव भी ब्रह्माकी कोटिमें पहुँच जाते हैं, ऐसा माना जाता है। परंतु त्रिदेवगत ये ब्रह्मा भगवद्रूप हैं और इनके लिये भी वही बात कही गयी है। जो भगवान् शिव और भगवान् विष्णुके लिये कही गयी है।

देवीपुराणमें ब्रह्माजीका स्तवन करते हुए कहा गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।

(अध्याय ८३)

'देवाधिदेव ! ब्रह्मदेव ! आपकी जय हो। आप अव्यक्त-व्यक्त-स्वरूप, त्रिगुणमय, सर्वकारण, श्रेष्ठबुद्धि एवं विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-रूप तीनों भावोंसे भावित हैं। आप रजोगुणसे आविष्ट होकर ब्रह्मारूपसे इस चराचर जगत्का सृजन करते हैं, सत्त्वगुणका प्रयोग करके विष्णुरूपसे पालन करते हैं और तमरूप होकर अखिल विश्वका संहार करते हैं।'

विष्णुपुराणमें महर्षि पराशर परतम परात्पर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(१।२।१—५)

विकाररहित नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, सर्वव्यापी, सर्वविजयी, विष्णु, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), हरि, शंकर (रुद्र), वासुदेव, मायासे तारनेवाले, विश्वकी सृष्टि, स्थिति और अन्त करनेवाले, एक तथा अनेकरूप, स्थूल तथा सूक्ष्मरूप, अव्यक्त-व्यक्त-स्वरूप और मुक्तिप्रदाता भगवान् विष्णुके प्रति मेरा बारंबार नमस्कार है। इस जगत्का सृजन, पालन और विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके मूल कारण जगन्मय परमात्मा विष्णुभगवान्को मेरा नमस्कार है। विश्वके आधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, समस्त भूतोंके अंदर स्थित अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्को मेरा प्रणाम है।'

शिवपुराणमें स्थान-स्थानपर इसी सिद्धान्तका विविध प्रसङ्गोंमें विविध भाँतिसे उल्लेख है। कुछ उदाहरण देखिये। एक स्थानपर शिवके चतुर्व्यूहका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि गुणत्रयसे अतीत परात्पर भगवान् सदाशिव चारों व्यूहोंके रूपमें अभिव्यक्त हैं—ब्रह्मा, काल, रुद्र और विष्णु। वे स्वयं सबके आधार और शक्तिके भी मूल हैं। कहा गया है—

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः।
सकलः सकलाधारशक्तेरुत्पत्तिकारणम्॥

सोऽयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ॥
यः सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः ।
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ॥
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा ।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम्॥
(शिव० वा० सं० पू० खं० १०। ९—१२)

'चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट देवाधिदेव महेश्वर तीनों गुणोंसे अतीत हैं; वे सर्वमय हैं, सबकी आधाररूपा शक्तिकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे ही तीनों गुणोंको (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके) विग्रहरूपमें धारण करनेवाले उनके आत्मरूप हैं, प्रकृति और पुरुष भी उन्हींके शरीर हैं और वे उन दोनोंके भी आत्मा हैं। लीलासे ही—खेल-ही-खेलमें वे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना कर देते हैं। जगन्नियन्ता ईश्वररूपसे भी वे ही स्थित हैं। जो सबसे परे, नित्य, निष्कल—अखण्ड अथवा कलना—कल्पनामें न आनेयोग्य परमेश्वर हैं, वे ही सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चके आधार, उसके आत्मा तथा अधिष्ठान भी हैं। सुतरां भगवान् सदाशिव ही महेश्वर हैं, वे ही प्रकृति-पुरुष भी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी वे ही हैं। वस्तुतः सब कुछ भगवान् सदाशिव ही हैं।'

परात्पर भगवान् शिव भगवान् विष्णु और ब्रह्मासे कहते हैं—

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ताहं सगुणोऽगुणः ।
परब्रह्म निर्विकारः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥२७॥
त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे ॥२८॥
सुवर्णस्य यथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति ।
अलंकृतिकृते देव नामभेदो न वस्तुतः ॥३५॥
यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः ।
कारणस्यैव कार्ये च संनिधानं निदर्शनम् ॥३६॥
वस्तुवत् सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ।
अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति ॥३८॥
एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत् ।
तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम् ॥३९॥
मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम् ।
एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः॥४०॥
(शिव० रुद्र० सृष्टि० अ० ९)

'विष्णो! मैं ही सृष्टि, पालन और प्रलयका कर्ता हूँ। मैं ही सगुण-निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। हे हरे! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और हर (रुद्र) नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। वस्तुतः मैं सदा निष्कल हूँ। हे देव! जैसे एक ही सुवर्णके अनेक अलंकार बनते हैं, उनमें नाम तथा आकृतिका भेद है, वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जैसे मिट्टीके विभिन्न प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तवमें कोई भेद नहीं है, सब मिट्टी ही है। कार्यके रूपमें कारण ही रहता है। यही दृष्टान्त पर्याप्त है। अतः सबको वस्तुके समान शिवरूप ही मानना चाहिये, यह मेरा मत है। मैं, आप और जो रुद्र प्रकट होंगे—सब एकरूप ही हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरा परात्पर शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।'

विभिन्न कल्पोंमें साक्षात् परतम परात्पर महेश्वरके विभिन्न स्वरूपोंसे त्रिदेवोंका प्राकट्य होता है और विभिन्न प्रसङ्गोंपर परस्पर एक दूसरेका स्तवन किया जाता है। इससे न तो उनके मूल वास्तव रूपमें कोई भेद आता है और न कोई छोटा-बड़ा ही होता है। इस बातको भी शिवपुराणमें स्पष्टरूपसे स्वीकार किया गया है—

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात् ।
वरावरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ॥१३॥
परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः ।
तच्छक्त्याधिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः ॥१४॥
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा ॥१५॥
लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादं परमेष्ठिनः ।
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत् ॥१७॥
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः ।
विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः ॥१८॥

नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः ।
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥
परस्परेण जायन्ते परस्परहितैषिणः ।
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः ॥ २० ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० अ० १३)

'ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही कारणात्मा हैं । वे क्रमशः चराचर जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वर (परात्पर परतम भगवान्) से प्रकट हैं । उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है । वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो नित्य उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं । पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कार्योंमें नियुक्त किया था । ब्रह्माकी सृष्टिकार्यमें, विष्णुकी पालनकार्यमें और रुद्रकी संहारकार्यमें नियुक्ति हुई थी । कल्पान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने ब्रह्मा और नारायणको प्रकट किया था । इसी प्रकार दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको प्रकट किया, फिर कल्पान्तरमें भगवान् विष्णुने रुद्र तथा ब्रह्माको प्रकट किया । इसी प्रकार पुनः ब्रह्माने नारायणको और रुद्रदेवने ब्रह्माको प्रकट किया । इस तरह विभिन्न कल्पोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक दूसरेका हित चाहते हैं । उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको (किस रूपसे किसका प्राकट्य होता है, इस वर्णनको) लेकर महर्षिगण उनके (इसीके अनुसार उन-उन रूपोंके) प्रभावका वर्णन करते हैं ।'

इसी हेतुसे कहीं किसीको बड़ा बतलाया गया है, कहीं किसीको । इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये ।

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥
क्वचिद् ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद् रुद्रः प्रशस्यते ।
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः ।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचाश्च न संशयः ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० २० । ६-८)

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेसे बढ़ते रहते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं । कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, तो कहीं विष्णुकी और कहीं रुद्रकी । इससे उनके ऐश्वर्यमें कोई अधिकता या न्यूनता नहीं आती । जो लोग क्रोधवश ऐसा कहते हैं कि 'अमुक श्रेष्ठ हैं, अमुक श्रेष्ठ नहीं हैं'—वे अगले जन्ममें राक्षस या पिशाच होते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं ।'

शिव और शक्तिमें अभिन्नता

इस प्रकार तीनों महान् देवताओंकी अभिन्नता और उनसे परात्पर परतम ब्रह्मकी (सदाशिव, महाविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्णकी) अभिन्नता सर्वसम्मत है । ये परात्पर ब्रह्म नित्य ही स्वरूपभूता परा-शक्तिसे सम्पन्न हैं । कभी वह शक्ति शक्तिमान्‌में छिपी निष्क्रिय रहती है, कभी प्रकट होकर क्रियाशीला बन जाती है । भगवान्‌ने गीतामें प्रकृतिको 'महद्योनि' और अपनेको 'बीजप्रद पिता' कहा है । वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्‌का नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है । इसीसे शिवपुराणमें भी कहा गया है—

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता ।
न शिवेन विना शक्तिर्न च शक्त्या विना शिवः ॥
(शिव० वाय० सं० उत्तर० ४)

इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान्‌को सदा एक दूसरेकी अपेक्षा रहती है । न तो शिव (शक्तिमान्) के बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव ही रह सकते हैं ।' शक्तिमान् न हों तो शक्ति कहाँ रहे और शक्ति न हो तो शक्तिमान्‌का अस्तित्व ही न हो । इसीसे 'इ' कार (शक्ति) हीन शिवको 'शव' कहा जाता है !

शक्तिमान्‌के स्वरूपकी अभिव्यक्ति उनकी शक्तिसे ही होती है अतएव शक्तिका स्वरूप भी वही है, जो शक्तिमान्‌का है । शिवपुराणमें ही भगवती पराशक्ति उमादेवी इन्द्रादि देवोंसे स्वयं कहती हैं—

परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी ।
अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन ॥

निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ।
अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः ।
कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥
विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगद्धाताहमच्युतः ।
रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी ॥
कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः ।
मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः ॥
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः ।
तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥
यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः ।
तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी ॥
मद्भयाद् वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक् ।
लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम् ॥
कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम् ।
करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया ॥
अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम् ।
श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि ॥
सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम् ।
मायाशवलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम् ॥
एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च ।
भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम् ॥
(शि० पु० उ० सं० ४८ । २७—३९)

'मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणवरूपिणी तथायुगल-रूपधारिणी हूँ । मैं ही सब कुछ हूँ । मुझसे भिन्न कुछ भी पदार्थ नहीं है । मैं निराकार होकर भी साकार हूँ । सर्वतत्त्वस्वरूपा हूँ । मेरे गुण अतर्क्य हैं । मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ । मैं ही कभी प्राणवल्लभा नारीका आकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवल्लभ पुरुषका । कभी एक साथ स्त्री और पुरुष दोनों रूपोंमें (अर्धनारीश्वररूपमें) प्रकट होती हूँ । मैं सर्वरूपिणी ईश्वरी हूँ । मैं ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हूँ, मैं ही जगत्पालक अच्युत विष्णु हूँ और मैं ही संहारकर्ता रुद्र हूँ । सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली महामाया भी मैं ही हूँ । काली, लक्ष्मी और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सभी कलाएँ भी मेरे ही अंशसे प्रकट हुई हैं । मेरे ही प्रभावसे तुम देवताओंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय प्राप्त की है । मुझ सर्व-विजयिनीको न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश्वर मान रहे हो । जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूत्रधार कठपुतलीको नचाता है, वैसे ही मैं ईश्वरी ही समस्त प्राणियोंको नचाती हूँ । मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे भयसे अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर ही लोकपालगण निरन्तर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं । मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी देवसमुदायको विजयी बनाती हूँ, कभी दैत्यसमूहको । मायासे अतीत जिस अविनाशी परात्पर धामका श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है । सगुण और निर्गुण—मेरे ये दो रूप माने गये हैं । इनमें प्रथम मायायुक्त है, दूसरा मायारहित । देवताओ ! ऐसा जान-कर गर्वका त्याग करो और मुझ सनातनी प्रकृति (परात्परा शक्ति) की प्रेमपूर्वक आराधना करो ।'

परमात्मा शिवकी ये पराशक्ति सर्वेश्वर सदाशिवके अनुरूप ही समस्त अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न उनकी सधर्मिणी हैं । इन शिव-शक्तिकी ही सारी लीला है । यह अनन्त विश्व केवल शक्ति-शक्तिमान्‌का ही लीला-विस्तार है । जितने पुरुष हैं, सब शिव हैं और उनकी जो सह-धर्मिणी जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब शक्तिरूपा हैं । इसी तत्त्वको दिखलाते हुए शिवपुराणमें कहा गया है—"शक्ति और शक्तिमान्‌से प्रकट होनेके कारण यह जगत् 'शाक्त' और 'शैव' कहा गया है । जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती । स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुषरूप ही है; यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अतः स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है । इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो 'परमात्मा' कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी 'पराशक्ति' । शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी । शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं । परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति ।

महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्द्धाङ्गिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्ऋति हैं और पार्वती नैर्ऋती। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया शिवा। शिव यक्ष हैं और पार्वती ऋद्धि। चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा आर्या। नागराज अनन्तको वलयरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्ता। कालशत्रु शिव कालाग्नि रुद्र हैं और काली कालान्तकप्रिया हैं। जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकूति कहते हैं। महादेवजी भृगु हैं और पार्वती ख्याति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गङ्गाधर अङ्गिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया हैं। यज्ञविध्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कश्यप हैं और महेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

भगवान् शिव विषयी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। जो कुछ सुननेमें आता है, वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तुसमुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बाल-चन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है। भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले मङ्गलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले) हैं। भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जानने योग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशु-शशि-शेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं। सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वतीदेवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रज्ञरूपमें स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणि प्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकरप्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराजकन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। वृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं। भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँल्लिङ्गरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेवी मनोरमा देवी शिवा सारा स्त्रीलिङ्ग-रूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्द-जालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मङ्गलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महात्माओंने उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है।

'जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको

प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।'

(शिवपुराण, वायवीयसं० उ० ख० अध्याय ४)

कृष्णयजुर्वेदीय 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इसी सिद्धान्तको इन शब्दोंमें व्यक्त किया गया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रः पुष्पमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रोऽर्थ अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ।

इसी उपनिषद्‌में यह भी बतलाया गया है कि इन उमा-महेश्वरसे लक्ष्मी-विष्णुकी सर्वथा अभिन्नता है—'जो भगवती उमा हैं, वही विष्णुभगवान् हैं; जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्‌की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज शिवजीकी ही पूजा करते हैं। जितने पुँल्लिङ्ग प्राणी हैं, सब महेश्वर हैं; जितने स्त्रीलिङ्ग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। समस्त व्यक्त जगत् उमाका स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वरका स्वरूप है। उमा और शंकरका योग ही विष्णु कहलाता है—

'या उमा सा स्वयं विष्णुः'
'येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्।'
पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा ।'
'व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं महेश्वरः ।'
'उमाशंकरयोर्योगः स योगो विष्णुरुच्यते ।'

इसी सिद्धान्तका निरूपण समस्त शिवपुराणमें है। शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—ये पाँच सगुण देवता एक ही भगवान्‌के स्वरूप माने गये हैं। इन सबकी एकता शिवपुराणमें प्रतिपादित है। शिव, विष्णु, शक्तिकी बात संक्षेपमें ऊपर आ ही गयी है। गणेशका प्रसङ्ग शिवपुराणमें विस्तारसे है और सूर्यभगवान्‌को स्वयं भगवान् शिवने अपना रूप बतलाकर उन्हें अर्घ्यादि देकर पूजन करनेकी आज्ञा दी है (शिवपुराण, वायवीयसंहिता, उत्तरखण्ड अ० ८)। इस प्रकार एक ही परम परात्पर भगवत्तत्त्वका निरूपण तथा व्याख्यान शिवपुराणमें है। यही शिवपुराणके 'शिव'का स्वरूप है।

शिव सनातन ब्रह्म तथा लिङ्ग-पूजा भी सनातन

ये परात्पर परतम भगवान् शिव न तो आधुनिक देवता हैं, न ये अवैदिक हैं और न अनार्योंके ही देवता हैं। न लिङ्गपूजा ही दूषित, आधुनिक या अनार्यसेवित है। शिव अनादि परमात्मा परब्रह्म हैं। ये वैदिक देवता हैं। वेदोंमें शिव तथा रुद्रपरक प्रसङ्ग भरे हैं। रुद्राध्याय तो शिव भगवान्‌के नामोंसे ही पूर्ण है। कपर्दिन्, पशुपति, सहस्राक्ष, सद्योजात आदि नाम भी बहुत जगह आये हैं। शिवलिङ्गोपासनाका प्रमाण भी वेदोंमें मिलता है। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थोंमें भी शिवका विशद वर्णन है।

उपनिषदोंमें श्वेताश्वतरोपनिषद् आदि कई उपनिषद् तो केवल शिवपरक ही हैं। केन, कैवल्य, नारायण, रुद्रहृदय, जाबाल, बृहज्जाबाल, दक्षिणामूर्ति, नीलरुद्रोपनिषद् आदिमें भी उमा-शिव-विषयक प्रसङ्ग ही हैं। अतएव इस भ्रमको निकाल देना चाहिये कि शिव अनार्य या अवैदिक देवता हैं और उनकी उपासना आधुनिक है!

इतना अवश्य है कि द्वेषबुद्धिको छोड़कर ही अपने-अपने साध्य इष्टस्वरूप तथा उसके साधनमें लगे रहना चाहिये। किसीको छोटा-बड़ा न मानकर सभी भगवत्स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके विभिन्न नाम-रूपोंवाले वस्तुतः उन्हींके स्वरूप मानकर अपने इष्ट-स्वरूपकी उपासनामें संलग्न रहना चाहिये और अन्य किसी भी भगवत्स्वरूपकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। एकही भगवान्‌के अनेक नाम-रूप तथा तदनुरूप उपासनाके लिये विभिन्न नियम हैं।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीशिवपुराण-माहात्म्य

भवाब्धिमग्नं दीनं मां समुद्धर भवार्णवात्। कर्मग्राहगृहीताङ्गं दासोऽहं तव शंकर ॥

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना

श्रीशौनकजीने पूछा—महाज्ञानी सूतजी! आप सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं। प्रभो! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये। ज्ञान और वैराग्यसहित भक्तिसे प्राप्त होनेवाले विवेककी वृद्धि कैसे होती है? तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं? इस घोर कलिकालमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मङ्गलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो। तात! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय।



श्रीसूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनक! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारे हृदयमें पुराण-कथा सुननेका विशेष प्रेम एवं लालसा है। इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर तुमसे परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ। वत्स! वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला है। कानोंके लिये रसायन—अमृतस्वरूप तथा दिव्य है, तुम उसे श्रवण करो। मुने! वह परम उत्तम शास्त्र है—शिवपुराण, जिसका पूर्वकालमें भगवान् शिवने ही प्रवचन किया था। यह कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रासका विनाश करनेवाला उत्तम साधन है। गुरुदेव व्यासने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर बड़े आदरसे संक्षेपमें ही इस पुराणका प्रतिपादन किया है। इस पुराणके प्रणयनका उद्देश्य है—कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके परम हितका साधन।

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है। इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये। इसका पठन और श्रवण सर्वसाधनरूप है। इससे शिवभक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है। इसलिये सम्पूर्ण यत्न करके मनुष्योंने इस पुराणको पढ़नेकी इच्छा की है—अथवा इसके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है। इसी तरह इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इस जीवनमें बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

यह शिवपुराणनामक ग्रन्थ चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है। इसकी सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे। सात संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परमात्माके समान विराजमान है और सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है।

जो निरन्तर अनुसंधानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है, अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है—इसमें संशय नहीं है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद (धाम) प्रदान करते हैं। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है। जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो रेशमी वस्त्र आदिके वेष्टनसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है। यह शिवपुराण निर्मल तथा भगवान् शिवका सर्वस्व है; जो इहलोक और परलोकमें भी सुख चाहता हो, उसे आदरके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये। यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विशेष पाठ करना चाहिये।

(अध्याय १)

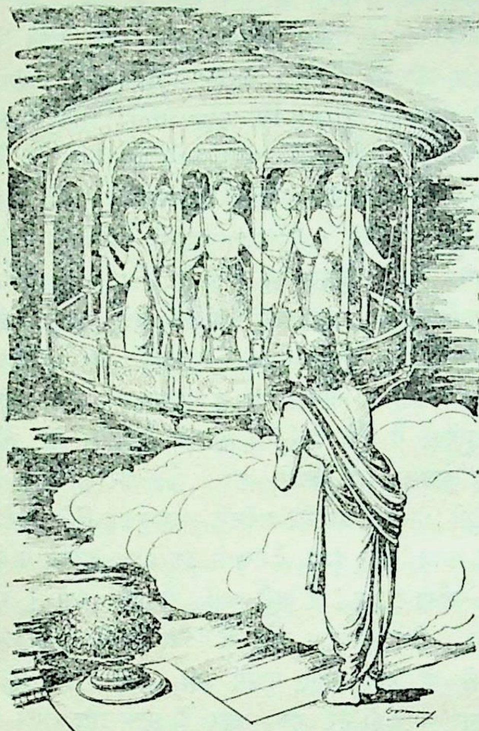
शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति तथा चञ्चुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

श्रीशौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है। भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। सूतजी! कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस जगत्‌को कृतार्थ कीजिये।

सूतजी बोले—मुने! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर डूबे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणके श्रवण-पठनसे अवश्य ही शुद्ध हो जाते हैं। इसी विषयमें जानकार मुनि इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है।

पहलेकी बात है, कहीं किरातोंके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो ज्ञानमें अत्यन्त दुर्बल, दरिद्र, रस बेचनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह स्नान-संध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक बहानोंसे मारकर उन-उनका धन हड़प लिया था। परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा था। वह वेश्यागामी तथा सब प्रकारसे आचारभ्रष्ट था।

एक दिन घूमता-घामता वह दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुर (झूसी—प्रयाग) में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक शिवालय देखा, जहाँ बहुत-से साधु-महात्मा एकत्र हुए थे। देवराज उस शिवालयमें ठहर गया, किंतु वहाँ उस ब्राह्मणको ज्वर आ गया। उस ज्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्वरमें पड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिव-कथाको निरन्तर सुनता रहा। एक मासके बाद वह ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके दूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर बलपूर्वक यमपुरीमें ले गये। इतनेमें ही शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके गौर अङ्ग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अङ्ग भस्मसे उद्भासित थे और रुद्राक्षकी मालाएँ उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रही थीं। वे सब-के-सब क्रोधपूर्वक यमपुरीमें गये और यमराजके दूतोंको मार-पीटकर, बारंबार धमकाकर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर बिठाकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको उद्यत हुए, उस समय यमपुरीमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उस कोलाहलको सुनकर धर्मराज अपने भवनसे बाहर आये। साक्षात् दूसरे रुद्रोंके समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मज्ञ धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और ज्ञानदृष्टिसे देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने भयके कारण भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं पूछी;



उलटे उन सबकी पूजा एवं प्रार्थना की। तत्पश्चात् वे शिवदूत कैलासको चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस ब्राह्मणको दयासागर साम्ब शिवके हाथोंमें दे दिया।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं। महामते! आपके कृपाप्रसादसे मैं बारंबार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम बढ़ानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये।

श्रीसूतजी बोले—शौनक! सुनो, मैं तुम्हारे सामने गोपनीय कथावस्तुका भी वर्णन करूँगा; क्योंकि तुम शिवभक्तोंमें अग्रगण्य तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक बाष्कल नामक ग्राम है, जहाँ वैदिक धर्मसे विमुख महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब बड़े दुष्ट हैं; उनका मन दूषित विषयभोगोंमें ही लगा रहता है। वे न देवताओंपर विश्वास करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल वृत्तिवाले हैं। किसानी करते और भाँति-भाँतिके घातक अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे व्यभिचारी और खल हैं। ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्मका सेवन ही मनुष्यके लिये परम पुरुषार्थ है—इस बातको वे बिल्कुल नहीं जानते हैं। वे सभी पशुबुद्धिवाले हैं। (जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय।) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्हींकी भाँति कुत्सित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुकर्ममें लगे रहते और नित्य विषयभोगोंमें ही डूबे रहते हैं। वहाँकी सब स्त्रियाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छाचारिणी, पापासक्त, कुत्सित विचारवाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सद्व्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ दुष्टोंका ही निवास है।

उस बाष्कल नामक ग्राममें किसी समय एक बिन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था। दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दरी थी, तो भी वह कुमार्गपर ही चलता था। उसकी पत्नीका नाम चञ्चुला था; वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह दुष्ट ब्राह्मण वेश्यागामी हो गया था। इस तरह कुकर्ममें लगे हुए उस बिन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चञ्चुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुराचारी पतिके आचरणसे प्रभावित हो आगे चलकर वह स्त्री दुराचारिणी भी हो गयी!

इस तरह दुराचारमें डूबे हुए उन मूढ़ चित्तवाले पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया। तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण बिन्दुग समयानुसार मृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढ़बुद्धि पापी विन्ध्यपर्वतपर भयंकर पिशाच हुआ। इधर, उस दुराचारी पति बिन्दुगके मर जानेपर वह मूढ़हृदया चञ्चुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही।

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-बन्धुओंके साथ गोकर्णक्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके सङ्गसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया (मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुजनोंके साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। घूमती-घामती किसी देवमन्दिरमें गयी और वहाँ उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवकी परम पवित्र एवं मङ्गलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी। कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि 'जो स्त्रियाँ परपुरुषोंके साथ व्यभिचार करती हैं, वे मरनेके बाद जब यमलोकमें जाती हैं, तब यमराजके दूत उनकी योनिमें तपे हुए लोहेका परिघ डालते हैं।' पौराणिक ब्राह्मणके

मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चञ्चुला भयसे व्याकुल हो वहाँ काँपने लगी। जब कथा समाप्त हुई और सुननेवाले सब लोग वहाँसे बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बाँचनेवाले उन ब्राह्मणदेवतासे बोली।



चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने धर्मको नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्! मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरा उद्धार कीजिये। आज आपके वैराग्य-रससे ओतप्रोत इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं काँप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ। हाय! न जाने किस-किस घोर कष्टदायक दुर्गतिमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमार्गमें मन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा। मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फंदे डालकर मुझे बाँधेंगे, तब मैं कैसे धीरज धारण कर सकूँगी। नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायँगे, उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको मैं वहाँ कैसे सहूँगी? हाय! मैं मारी गयी! मैं जल गयी! मेरा हृदय विदीर्ण हो गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर तरहसे पापमें ही डूबी रही हूँ। ब्रह्मन्! आप ही मेरे गुरु, आप ही माता और आप ही पिता हैं। आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन अबलाका आप ही उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! इस प्रकार खेद और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुला ब्राह्मणदेवताके दोनों चरणोंमें गिर पड़ी। तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाया और इस प्रकार कहा।　　(अध्याय २, ३)

चञ्चुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चञ्चुलाका पार्वतीजीकी सखी एवं सुखी होना

ब्राह्मण बोले—नारी! सौभाग्यकी बात है कि भगवान् शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है। ब्राह्मणपत्नी! तुम डरो मत। भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वस्तुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी। शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस तरह पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है। साथ ही तुम्हारे मनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शोधक बताया है, पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है; क्योंकि

सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है।* जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकृत्यपर हार्दिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है—इसमें संशय नहीं। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्धचित्तमें जगदम्बा पार्वती-सहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्ब सदाशिवके पदको प्राप्त होता है। इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्याणका बीज है। अतः यथोचित (शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह भव-बन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाली है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिये। इससे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चित्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्पश्चात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो मुक्तिसे वञ्चित है, उसे पशु समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त मायाके बन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता।

ब्राह्मणपत्नी! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो—परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होगी और इससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। जो निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करता है, उसकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ।

सूतजी कहते हैं—शौनक! इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण चुप हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये। तदनन्तर बिन्दुगकी पत्नी चञ्चुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्नी चञ्चुला हर्षभरे हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके दोनों चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—'मैं कृतार्थ हो गयी।' तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त उत्तम बुद्धिवाली वह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आतङ्कित थी, उन महान् शिव-भक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोली।

चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन्! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! स्वामिन्! आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं। इसलिये श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसाके योग्य हैं। साधो! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थ-तत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें सम्पूर्ण विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा हो रही है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चञ्चुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी। तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध बुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवने उसी स्थानपर उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी। इस प्रकार उस गोकर्ण नामक महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उसने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मण-पत्नी अत्यन्त कृतार्थ हो गयी। उसका चित्त शीघ्र ही शुद्ध हो गया। फिर भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके सगुणरूपका चिन्तन होने लगा। इस प्रकार उसने भगवान् शिवमें लगी रहनेवाली उत्तम बुद्धि पाकर शिवके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका बारंबार चिन्तन आरम्भ किया।

---

* पश्चात्तापः पापकृतां पापानां निष्कृतिः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्॥
पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्॥
(शिवपुराण माहात्म्य अ० ३ श्लोक ५-६)

तत्पश्चात् समयके पूरे होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुलाने अपने शरीरको बिना किसी कष्टके त्याग दिया। इतनेमें ही त्रिपुरशत्रु भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा साधनोंसे सम्पन्न था। चञ्चुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके श्रेष्ठ पार्षदोंने उसे तत्काल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूप-धारिणी दिव्याङ्गना हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौराङ्गी देवी शोभाशाली दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थी। शिवपुरीमें पहुँचकर उसने सनातन देवता त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। सभी मुख्य-मुख्य देवता उनकी सेवामें खड़े थे। गणेश, भृङ्गी, नन्दीश्वर तथा वीरभद्रेश्वर आदि उनकी सेवामें उत्तम भक्तिभावसे उपस्थित थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्द्धचन्द्राकार मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने वामाङ्ग भागमें गौरी देवीको बिठा रक्खा था, जो विद्युत्-पुञ्जके समान प्रकाशित थीं। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कपूरके समान गौर थी। उनका सारा शरीर श्वेत भस्मसे भासित था। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपत्नी चञ्चुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और संतोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी



हो गयी। उसके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अविरल धारा बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करुणाके साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो दिव्यरूपधारिणी बिन्दुगप्रिया चञ्चुलाको प्रेमपूर्वक अपनी सखी बना लिया। वह उस परमानन्दघन ज्योतिःस्वरूप सनातनधाममें अविचल निवास पाकर दिव्य सौख्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव करने लगी।

(अध्याय ४)

चञ्चुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतिका शिवधाममें सुखी होना

सूतजी बोले—शौनक! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चञ्चुलाने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी।

चञ्चुला बोली—गिरिराजनन्दिनी! स्कन्दमाता उमे! मनुष्योंने सदा आपका सेवन किया है। समस्त सुखोंको देनेवाली शम्भुप्रिये! आप ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं। आप ही सगुणा और निर्गुणा हैं तथा आप ही सूक्ष्मा सच्चिदानन्दस्वरूपिणी आद्या प्रकृति हैं। आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं। तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवासस्थान तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जिसे सद्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चञ्चुला इस प्रकार महेश्वरपत्नी उमाकी स्तुति करके सिर झुकाये चुप हो गयी। उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे। तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवीने चञ्चुलाको सम्बोधित करके बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहा—

पार्वती बोलीं—सखी चञ्चुले ! सुन्दरि ! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या वर माँगती हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।

चञ्चुला बोली—निष्पाप गिरिराजकुमारी ! मेरे पति बिन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती ! कल्याणमयी दीनवत्सले ! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, वैसा ही उपाय कीजिये। महेश्वरि ! महादेवि ! मेरे पति एक शूद्रजातीय वेश्याके प्रति आसक्त थे और पापमें ही डूबे रहते थे। उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी। न जाने वे किस गतिको प्राप्त हुए।

गिरिजा बोलीं—बेटी ! तुम्हारा बिन्दुग नामवाला पति बड़ा पापी था। उसका अन्तःकरण बड़ा ही दूषित था। वेश्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें पड़ा। अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर पिशाच हुआ है। इस समय वह पिशाच-अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है। वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता और सदा सब प्रकारके कष्ट सहता है।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! गौरी देवीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली चञ्चुला उस समय पतिके महान् दुःखसे दुखी हो गयी। फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके पुनः पूछा।

चञ्चुला बोली—महेश्वरि ! महादेवि ! मुझपर कृपा कीजिये और दूषित कर्म करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। देवि ! कुत्सित बुद्धिवाले मेरे उस पापात्मा पतिको किस उपायसे उत्तम गति प्राप्त हो सकती है, यह शीघ्र बताइये। आपको नमस्कार है।

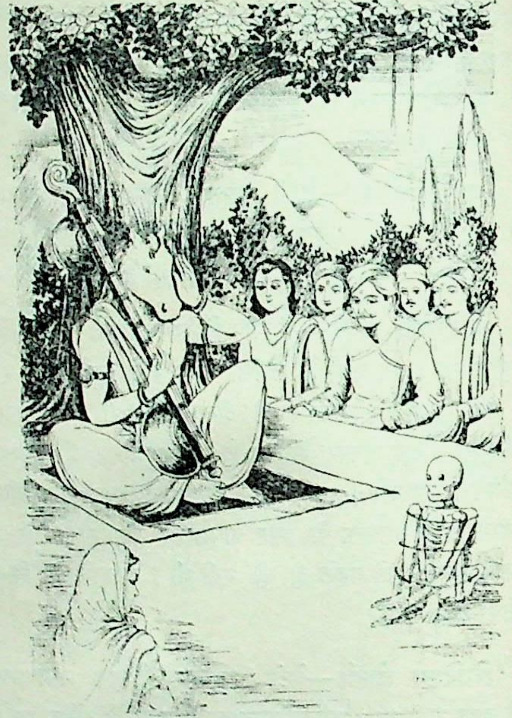
पार्वतीने कहा—तुम्हारा पति यदि शिवपुराणकी पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है।

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका यह वचन आदरपूर्वक सुनकर चञ्चुलाने हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी शुद्धि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि 'मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये' उस ब्राह्मणपत्नीके बारंबार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको बड़ी दया आयी। उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्बुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—'तुम्बुरो ! तुम्हारी भगवान् शिवमें प्रीति है। तुम मेरे मनकी बातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कार्योंको सिद्ध करनेवाले हो। इसलिये मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्ध्यपर्वतपर जाओ। वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ। पूर्व जन्ममें वह पिशाच बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। मेरी इस सखी चञ्चुलाका पति था। परंतु वह दुष्ट वेश्यागामी हो गया। स्नान-संध्या आदि नित्यकर्म छोड़कर अपवित्र रहने लगा। क्रोधके कारण उसकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी—वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं कर पाता था। अभक्ष्यभक्षण, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म बन गया था। वह अस्त्र-शस्त्र लेकर हिंसा करता, बायें हाथसे खाता, दीनोंको सताता और क्रूरतापूर्वक पराये घरोंमें आग लगा देता था। चाण्डालोंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेश्याके सम्पर्कमें रहता था। बड़ा दुष्ट था। वह पापी अपनी पत्नीका परित्याग करके दुष्टोंके सङ्गमें ही आनन्द मानता था। वह मृत्युपर्यन्त दुराचारमें ही फँसा रहा। फिर अन्तकाल आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापियोंके भोगस्थान घोर यमपुरमें गया और वहाँ बहुत-से नरकोंका उपभोग करके वह दुष्टात्मा जीव इस समय विन्ध्य पर्वतपर पिशाच बना हुआ है। वहीं वह दुष्ट पिशाच अपने पापोंका फल भोग रहा है। तुम उसके आगे यत्नपूर्वक शिवपुराणकी उस दिव्य कथाका प्रवचन करो, जो परम पुण्यमयी तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। शिवपुराणकी कथाका



श्रवण सबसे उत्कृष्ट पुण्यकर्म है। उससे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परित्याग कर देगा। उस दुर्गतिसे मुक्त होनेपर बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ले आओ।'

सूतजी कहते हैं—शौनक! महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्बुरु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने भाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पत्नी चञ्चुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्बुरु वेगपूर्वक विन्ध्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था। वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महाबली तुम्बुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको पाशोंद्वारा बाँध लिया। तदनन्तर तुम्बुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेका निश्चय करके महोत्सवयुक्त स्थान और मण्डप आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें बड़े वेगसे यह प्रचार हो गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञासे एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्बुरु विन्ध्य पर्वतपर गये हैं। फिर तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुत-से देवर्षि भी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया। फिर तुम्बुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आसनपर



बिठाया और हाथमें वीणा लेकर गौरीपतिकी कथाका गान आरम्भ किया। पहली अर्थात् विद्येश्वरसंहितासे लेकर सातवीं वायुसंहितातक माहात्म्यसहित शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया। सातों संहिताओंसहित शिवपुराणका आदरपूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस पिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको त्याग दिया। फिर तो शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। अङ्गकान्ति गौरवर्णकी हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा देने लगा। सब प्रकारके पुरुषोचित आभूषण उसके अङ्गोंको उद्भासित करने लगे। वह त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखररूप हो गया। इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी प्राणवल्लभा चञ्चुलाके साथ स्वयं भी पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवका गुणगान करने लगा। उसकी स्त्रीको इस प्रकार दिव्यरूपसे सुशोभित देख वे सभी देवर्षि बड़े विस्मित हुए। उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र सुनकर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीशिवका यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये। दिव्यरूपधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमाके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित हो बड़ी शोभा पाने लगा।

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गान करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्बुरुके साथ शीघ्र ही शिवधाममें जा पहुँचा । वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक बिन्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे अपना पार्षद बना लिया । उसकी पत्नी चञ्चुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी । उस घनीभूत ज्योतिःस्वरूप परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पति परम सुखी हो गये । (अध्याय ५)

शिवपुराणके श्रवणकी विधि तथा श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

शौनकजी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासशिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है । आप धन्य हैं, शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं । आपके महान् गुण वर्णन करने योग्य हैं । अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके ।

सूतजीने कहा—मुने शौनक ! अब मैं तुम्हें सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके श्रवणकी विधि बता रहा हूँ । पहले किसी ज्योतिषीको बुलाकर दान-मानसे संतुष्ट करके अपने सहयोगी लोगोंके साथ बैठकर बिना किसी विघ्न-बाधाके कथाकी समाप्ति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसंधान कराये और प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह संदेश भेजे कि 'हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है । अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको उसे सुननेके लिये अवश्य पधारना चाहिये ।' कुछ लोग भगवान् श्रीहरकी कथासे बहुत दूर पड़ गये हैं ।' कितने ही स्त्री, शूद्र आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे वञ्चित रहते हैं । उन सबको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये । देश-देशमें जो भगवान् शिवके भक्त हों तथा शिव-कथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबको आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये । शिवमन्दिरमें, तीर्थमें, वनप्रान्तमें अथवा घरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये । केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये । उसे सब ओर फल-पुष्प आदिसे तथा सुन्दर चँदोवेसे अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजा-पताका लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजाकर सुन्दर शोभासम्पन्न बना दे । भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये । वही सब तरहसे आनन्दका विधान करनेवाली है । परमात्मा भगवान् शंकरके लिये दिव्य आसनका निर्माण करना चाहिये तथा कथावाचकके लिये भी एक ऐसा दिव्य आसन बनाना चाहिये, जो उनके लिये सुखद हो सके । मुने ! नियमपूर्वक कथा सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य सुन्दर स्थानोंकी व्यवस्था करनी चाहिये । अन्य लोगोंके लिये साधारण स्थान ही रखने चाहिये । जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली होती है, उस पुराणवेत्ता विद्वान् वक्ताके प्रति तुच्छबुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये । संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु होते हैं । परंतु उन सबमें पुराणोंका ज्ञाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है । पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये । ऐसा प्रवचनकुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे । सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्यक् रीतिसे बाँचनी चाहिये । मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बंद रखनी चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोग मल-मूत्रका त्याग कर सकें ।

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये । जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नित्य-कर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये । वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये । वह भी सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो । कथामें आनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे । कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराणकी पुस्तककी भक्तिभावसे पूजा करे । तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्नचित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने । जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हों, काम आदि छः विकारोंसे युक्त हों, स्त्रीमें आसक्ति रखते हों और पाखण्डपूर्ण बातें कहते हों, वे पुण्यके भागी नहीं होते । जो लौकिक चिन्ता तथा धन, गृह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहते हैं, उन शुद्धबुद्धि पुरुषोंको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । जो श्रोता श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होते हैं, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगाते और मौन, पवित्र एवं उद्वेगशून्य होते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं ।

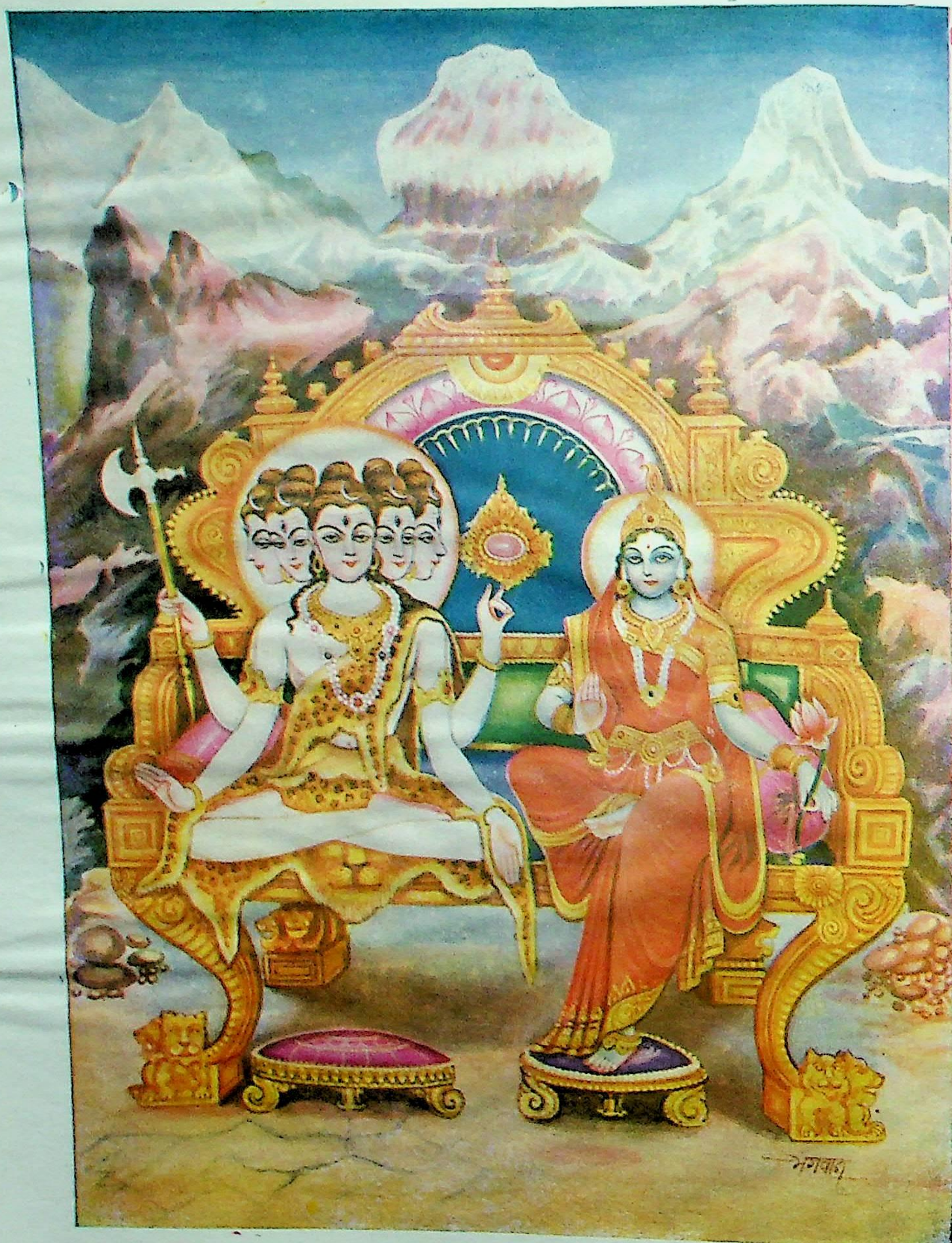
सूतजी बोले—शौनक ! अब शिवपुराण सुननेका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनो । नियमपूर्वक इस श्रेष्ठ कथाको सुननेसे बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । जो लोग दीक्षासे रहित हैं, उनका कथा-श्रवणमें अधिकार नहीं है । अतः मुने ! कथा सुननेकी इच्छावाले सब लोगोंको पहले वक्तासे दीक्षा ग्रहण करनी

चाहिये। जो लोग नियमसे कथा सुनें, उनको ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये । जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तितक उपवास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने । इस कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये । जिस प्रकारसे कथा-श्रवणका नियम सुखपूर्वक सध सके, वैसे ही करना चाहिये । गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा बासी अन्नको खाकर कथाव्रती पुरुष कभी कथाको न सुने । जिसने कथाका व्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे । कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष काम, क्रोध आदि छः विकारोंको, ब्राह्मणोंकी निन्दाको तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाको भी त्याग दे । कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा हार्दिक उदारता—इन सद्गुणोंको सदा अपनाये रहे । श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने । सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है । दरिद्र, क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा संतानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने । काक-वन्ध्या आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं, वे तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये । मुने ! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्नपूर्वक विधि-विधानसे शिवपुराणकी यह उत्तम कथा सुननी चाहिये ।

महर्षे ! इस तरह शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये । तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना आवश्यक है। पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुन्दर बस्ता बनावे और उसे बाँधनेके लिये दृढ़ एवं दिव्य डोरी लगावे । फिर उसका विधिवत् पूजन करे । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित हुए पण्डितका भी उसीके अनुसार धन आदिके द्वारा उससे कुछ ही कम सत्कार करे । वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे । साथ ही गीत, वाद्य और नृत्य आदिके द्वारा महान् उत्सव रचाये । मुने ! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथासमाप्तिके दिन विशेषरूपसे उस गीताका पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था। यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमान्को उस श्रवण-कर्मकी शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये । मुने ! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करना उचित है अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है । अथवा शिवपञ्चाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है । होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे । न्यूनातिरिक्ततारूप दोषकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक शिवसहस्र-नामका पाठ अथवा श्रवण करे । इससे सब कुछ सफल होता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है । कथाश्रवणसम्बन्धी व्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये ग्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे । मुने ! यदि शक्ति हो तो तीन तोले सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवाये और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी पोथी विधिपूर्वक स्थापित करे । तत्पश्चात् पुरुष उसकी आवाहन आदि विविध उपचारोंसे पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये । फिर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र, आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे । उत्तम बुद्धिवाला श्रोता इस प्रकार भगवान् शिवके संतोषके लिये पुस्तकका दान करे । शौनक ! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवका अनुग्रह पाकर पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है । इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है ।

मुने ! शिवपुराणका वह सारा माहात्म्य, जो सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है, मैंने तुम्हें कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? श्रीमान् शिवपुराण समस्त पुराणोंके भालका तिलक माना गया है । यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाला है । जो सदा भगवान् शिवका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्में उन्हींका जन्म लेना सफल है। वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं।* भिन्न-भिन्न प्रकारके समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्के बाहर और भीतर भासमान हैं तथा जो मनके बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिरूपमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त आनन्दघनरूप परम शिवकी मैं शरण लेता हूँ । (अध्याय ६-७)

* ते जन्मभाजः खलु जीवलोके ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम् ।
वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति ॥



श्रीशिव-पार्वती

श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीशिवमहापुराण

विद्येश्वरसंहिता

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका तुरंत पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम् ।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शंकरमम्बिकेशम् ॥

जो आदि और अन्तमें (तथा मध्यमें भी) नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं, और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ ।

व्यासजी कहते हैं—जो धर्मका महान् क्षेत्र है और जहाँ गङ्गा-यमुनाका संगम हुआ है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया । उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिकशिरोमणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये । सूतजीको आते देख वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया । तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—

'सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी ! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीके मुखसे अपनी प्रसन्नताके लिये ही सम्पूर्ण पुराणविद्या प्राप्त की । इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भंडार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है । तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्य तथा और भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है । आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ पधार गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता । हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है; किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बारंबार इच्छा होती है ।

उत्तम बुद्धिवाले सूतजी ! इस समय हमें एक ही बात सुननी है । यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें । घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायँगे और सब-के-सब सत्यभाषणसे मुँह फेर लेंगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे । पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे । उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे । अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे । मूढ़, नास्तिक और पशुबुद्धि रखनेवाले होंगे, माता-पितासे द्वेष रक्खेंगे । ब्राह्मण लोभरूपी ग्रहके ग्रास बन जायँगे । वेद बेचकर जीविका चलायेंगे । धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे और मदसे मोहित रहेंगे । अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे । प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी संध्योपासनासे दूर रहेंगे और ब्रह्मज्ञानसे शून्य होंगे । समस्त क्षत्रिय भी स्वधर्मका त्याग करनेवाले होंगे । कुसंगी, पापी और व्यभिचारी होंगे । उनमें शौर्यका अभाव होगा । वे कुत्सित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंका-सा बर्ताव करेंगे और उनका चित्त कामका किंकर बना रहेगा । वैश्य संस्कार-भ्रष्ट, स्वधर्मत्यागी, कुमार्गी, धनोपार्जन-परायण तथा नाप-तौलमें अपनी कुत्सित वृत्तिका परिचय देनेवाले होंगे । इसी तरह शूद्र ब्राह्मणोंके आचारमें तत्पर होंगे, उनकी आकृति उज्ज्वल होगी अर्थात् वे अपना कर्म-धर्म

छोड़कर उज्ज्वल वेश-भूषासे विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे। वे स्वभावतः ही अपने धर्मका त्याग करनेवाले होंगे। उनके विचार धर्मके प्रतिकूल होंगे। वे कुटिल और द्विज-निन्दक होंगे। यदि धनी हुए तो कुकर्ममें लग जायँगे। विद्वान् हुए तो वाद-विवाद करनेवाले होंगे। अपनेको कुलीन मानकर चारों वर्णोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे, समस्त वर्णोंको अपने सम्पर्कसे भ्रष्ट करेंगे। वे लोग अपनी अधिकार-सीमासे बाहर जाकर द्विजोचित सत्कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले होंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट और पतिका अपमान करनेवाली होंगी। सास-ससुरसे द्रोह करेंगी। किसीसे भय नहीं मानेंगी। मलिन भोजन करेंगी। कुत्सित हाव-भावमें तत्पर होंगी। उनका शील-स्वभाव बहुत बुरा होगा और वे अपने पतिकी सेवासे सदा ही विमुख रहेंगी। सूतजी! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है। परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। अतः जिस छोटे-से उपायसे इन सबके पापोंका तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं।

व्यासजी कहते हैं— उन भावितात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उनसे इस प्रकार बोले— (अध्याय १)

शिवपुराणका परिचय

सूतजी कहते हैं—साधु-महात्माओ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। आपका यह प्रश्न तीनों लोकोंका हित करनेवाला है। मैं गुरुदेव व्यासका स्मरण करके आपलोगोंके स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा। आप आदरपूर्वक सुनें। सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापराशियोंसे उद्धार करनेवाला है। इतना ही नहीं, वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है, कलिकी कल्मषराशिका विनाश करनेवाला है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावकी दृष्टिसे वृद्धि या विस्तारको प्राप्त हो रहा है। विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायँगे। कलियुगके महान् उत्पात तभीतक जगत्में निर्भय होकर विचरेंगे, जबतक यहाँ शिवपुराणका उदय नहीं होगा। इसे वेदके तुल्य माना गया है। इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था। विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादश-रुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद या खण्ड हैं। ये बारह संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं। ब्राह्मणो! अब मैं उनके श्लोकोंकी संख्या बता रहा हूँ। आपलोग वह सब आदर-पूर्वक सुनें। विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमेंसे प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं। ब्राह्मणो! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं। इस प्रकार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक लाख है। परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। पुराणोंकी क्रमसंख्याके विचारसे इस शिवपुराणका स्थान चौथा है। इसमें सात संहिताएँ हैं।

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे सौ करोड़ श्लोकोंका एक ही पुराणग्रन्थ ग्रथित किया था। सृष्टिके आदिमें निर्मित हुआ वह पुराण-साहित्य अत्यन्त विस्तृत था। फिर द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन (व्यास) आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया, उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकोंका रह गया। उस समय उन्होंने शिवपुराणका चौबीस हजार श्लोकोंमें प्रतिपादन किया। यही इसके श्लोकोंकी संख्या है। यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें बँटा हुआ है। इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है, दूसरी रुद्र-संहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता, चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं। इन सात संहिताओंसे युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट

गति प्रदान करनेवाला है। यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। इसे शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने संक्षेपसे संकलित किया है। यह समस्त जीवसमुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाश करनेवाला, तुलनारहित एवं सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाला है। इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट (निष्काम) धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरण-वाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है। इसमें श्रेष्ठ मन्त्र-समूहोंका संकलन है तथा धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी वर्णन है। यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेद्यरूपसे विलसित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गतिको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २)

साध्य-साधन आदिका विचार तथा श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

व्यासजी कहते हैं—सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोले—'अब आप हमें वेदान्तसार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणकी कथा सुनाइये।'

सूतजीने कहा—आप सब महर्षिगण रोग-शोकसे रहित कल्याणमय भगवान् शिवका स्मरण करके पुराणप्रवर शिवपुराणकी, जो वेदके सार-तत्त्वसे प्रकट हुआ है, कथा सुनिये। शिवपुराणमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद्य सद्वस्तुका विशेषरूपसे वर्णन है। इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्षि परस्पर वाद-विवाद करते हुए कहने लगे—'अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है।' उनके इस विवादने अत्यन्त महान् रूप धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी शङ्काके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और हाथ जोड़कर विनयभरी वाणीमें बोले—'प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्‌को धारण-पोषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वोंसे परे परात्पर पुराणपुरुष कौन है ?'

ब्रह्माजीने कहा—जहाँसे मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं। भक्तिसे ही इनका साक्षात्कार होता है। दूसरे किसी उपायसे कहीं इनका दर्शन नहीं होता। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका दर्शन करना चाहते हैं। भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताके कृपाप्रसादसे उनमें भक्ति होती है और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अङ्कुरसे बीज और बीजसे अङ्कुर पैदा होता है। इसलिये तुम सब ब्रह्मर्षि भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्रों वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करो। इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्याके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है।

शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है। उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्पृह होता है, वही साधक है। वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है। उन-उन पुरुषोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका साक्षात् महेश्वरने ही प्रतिपादन किया है। उनमेंसे सारभूत साधनको संक्षिप्त करके मैं बता रहा हूँ। कानसे भगवान्‌के नाम-गुण और लीलाओंका श्रवण, वाणीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है।*

* श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा।
मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते॥
(शि० पु० विद्ये० ३। २१-२२)

तात्पर्य यह कि महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। इसी साधनसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको आँखसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं। परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है। अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर श्रेष्ठ बुद्धिवाला विद्वान् पुरुष अन्य साधन-कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे। क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है। पहले सारे अङ्गोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर सब प्रकारका लौकिक आनन्द भी विलीन हो जाता है।

भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंके जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चित्तके द्वारा जो निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है; वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। उसे समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रधान या प्रमुख कहा गया है।

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसङ्गमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आप सुनें। पहलेकी बात है, पराशर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे। एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अकस्मात् वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने मेरे गुरुको वहाँ देखा। वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। देखकर वे बड़े वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओंके बैठने योग्य आसन भी अर्पित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीतभावसे खड़े हुए व्यासजीसे गम्भीर वाणीमें बोले—



'मुने! तुम सत्य वस्तुका चिन्तन करो। वह सत्य पदार्थ भगवान् शिव ही हैं, जो तुम्हारे साक्षात्कारके विषय होंगे। भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीन महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं। पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्भ्रममें पड़कर घूमता-घामता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा। तदनन्तर महेश्वर शिवकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये। उनकी मुझपर बड़ी दया थी। वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहपूर्वक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं, यह बात स्वयं भगवान् शिवने मुझसे कही है। अतः ब्रह्मन्! तुम श्रवणादि तीनों साधनोंका ही अनुष्ठान करो।' व्यासजीसे बारंबार ऐसा कहकर अनुगामियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये। इस प्रकार पूर्वकालके इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है।

ऋषि बोले—सूतजी! श्रवणादि तीन साधनोंको आपने मुक्तिका उपाय बताया है। किंतु जो श्रवण आदि तीनों साधनोंमें असमर्थ हो, वह मनुष्य किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है। किस साधनभूत कर्मके द्वारा बिना यत्नके ही मोक्ष मिल सकता है? (अध्याय ३, ४)

भगवान् शिवके लिङ्ग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिङ्ग एवं मूर्तिकी स्थापना करके नित्य उसकी पूजा करे तो संसार-सागरसे पार हो सकता है । वञ्चना अथवा छल न करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार धनराशि ले जाय और उसे शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अर्पित कर दे । साथ ही निरन्तर उस लिङ्ग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे । उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव रचाये । वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा पूआ और शाक आदि व्यञ्जनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोजन अन्न नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे । छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अङ्गोंसहित राजोपचारकी भाँति सब सामान भगवान् शिवके लिङ्ग एवं मूर्तिको चढ़ाये । प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे । आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कार्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे । इस प्रकार शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवणादि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रसन्नतासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है । पहलेके बहुतसे महात्मा पुरुष लिङ्ग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्त हो चुके हैं ।

ऋषियोंने पूछा—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है (लिङ्गमें नहीं), परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिङ्गमें भी क्यों की जाती है ?

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो ! तुम्हारा यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है । इस विषयमें महादेवजी ही वक्ता हो सकते हैं । दूसरा कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका प्रतिपादन नहीं कर सकता । इस प्रश्नके समाधानके लिये भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजीके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा । एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण 'निष्कल' (निराकार) कहे गये हैं । रूपवान् होनेके कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है । इसलिये वे सकल और निष्कल दोनों हैं । शिवके निष्कल—निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिङ्ग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है । अर्थात् शिवलिङ्ग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है । इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है । सकल और अकल (समस्त अङ्ग-आकारसहित साकार और अङ्ग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार) रूप होनेसे ही वे 'ब्रह्म' शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं । यही कारण है कि सब लोग लिङ्ग (निराकार) और मूर्ति (साकार) दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं । शिवसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं । इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिङ्ग नहीं उपलब्ध होता ।

पूर्वकालमें बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने मन्दराचलपर नन्दिकेश्वरसे इसी प्रकारका प्रश्न किया था ।

सनत्कुमार बोले—भगवन् ! शिवसे भिन्न जो देवता हैं, उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः बेर (मूर्ति) मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है । केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिङ्ग और बेर दोनोंका उपयोग देखनेमें आता है । अतः कल्याणमय नन्दिकेश्वर ! इस विषयमें जो तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय ।

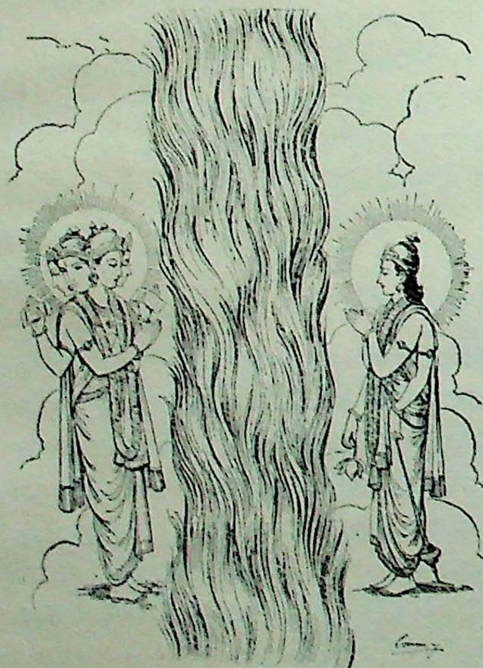
नन्दिकेश्वरने कहा—निष्पाप ब्रह्मकुमार ! आपके इस प्रश्नका हम-जैसे लोगोंके द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिङ्ग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है । तथापि आप शिवभक्त हैं । इसलिये इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे ही आपके समक्ष कहता हूँ । भगवान् शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं; इसलिये उन्हींकी पूजामें निष्कल लिङ्गका उपयोग होता है । सम्पूर्ण वेदोंका यही मत है ।

सनत्कुमार बोले—महाभाग योगीन्द्र ! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिङ्ग और बेरके प्रचारका जो रहस्य विभागपूर्वक बताया है, वह यथार्थ है । इसलिये लिङ्ग और बेरकी आदि उत्पत्तिका जो उत्तम वृत्तान्त है, उसीको मैं इस समय सुनना चाहता हूँ । लिङ्गके प्राकट्यका रहस्य सूचित करनेवाला प्रसङ्ग मुझे सुनाइये ।

इसके उत्तरमें नन्दिकेश्वरने भगवान् महादेवके निष्कल स्वरूप लिङ्गके आविर्भावका प्रसङ्ग सुनाना आरम्भ किया। उन्होंने ब्रह्मा तथा विष्णुके विवाद, देवताओंकी व्याकुलता एवं चिन्ता, देवताओंका दिव्य कैलास-शिखरपर गमन, उनके द्वारा चन्द्रशेखर महादेवका स्तवन, देवताओंसे प्रेरित हुए महादेवजीका ब्रह्मा और विष्णुके विवाद-स्थलमें आगमन तथा दोनोंके बीचमें निष्कल आदि-अन्तरहित भीषण अग्निस्तम्भके रूपमें उनका आविर्भाव आदि प्रसङ्गोंकी कथा कही। तदनन्तर श्रीब्रह्मा और विष्णु दोनोंके द्वारा उस ज्योतिर्मय स्तम्भकी ऊँचाई और गहराईका थाह लेनेकी चेष्टा एवं केतकी-पुष्पके शाप-वरदान आदिके प्रसङ्ग भी सुनाये। (अध्याय ५ से ८ तक)

महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिङ्गपूजनका महत्त्व बताना

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ उनके दायें-बायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये। फिर, उन्होंने वहाँ



साक्षात् प्रकट पूजनीय महादेवजीको श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके पवित्र पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया। दीर्घकाल-तक अविकृतभावसे सुस्थिर रहनेवाली वस्तुओंको 'पुरुष वस्तु' कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली क्षणभङ्गुर वस्तुएँ 'प्राकृत वस्तु' कहलाती हैं। इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये। (किन पुरुष-वस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शवका पूजन किया, यह बताया जाता है—) हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिमय कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्प-माला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका, पुष्प, ताम्बूल, कपूर, चन्दन एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा चँवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा, जिनका वैभव वाणी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति (परमात्मा) के ही योग्य थे और जिन्हें पशु (बद्ध जीव) कदापि नहीं पा सकते थे, उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया। सबसे पहले वहाँ ब्रह्मा और विष्णुने भगवान् शंकरकी पूजा की। इससे प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवने वहाँ नम्रभावसे खड़े हुए उन दोनों देवताओंसे मुस्कराकर कहा—

महेश्वर बोले—पुत्रो ! आजका दिन एक महान् दिन है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है, इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा। आजकी यह तिथि 'शिवरात्रि'के नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगी। इसके समयमें जो मेरे लिङ्ग (निष्कल—अङ्ग-आकृतिसे रहित निराकार स्वरूपके प्रतीक) वेर (सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह) की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्‌की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है। जो शिवरात्रिको दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निश्चलभावसे मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है। जैसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि तिथि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है। इस तिथिमें मेरी स्थापना आदि-का मङ्गलमय उत्सव होना चाहिये। पहले मैं जब 'ज्योतिर्मय

स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ था, वह समय मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णमासी या प्रतिपदा है। जो पुरुष मार्गशीर्ष मासमें आर्द्रा नक्षत्र होनेपर पार्वतीसहित मेरा दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिङ्गकी ही झाँकी करता है, वह मेरे लिये कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है। उस शुभ दिनको मेरे दर्शन-मात्रसे पूरा फल प्राप्त होता है। यदि दर्शनके साथ-साथ मेरा पूजन भी किया जाय तो इतना अधिक फल प्राप्त होता है कि उसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

वहाँपर मैं लिङ्गरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिङ्गके कारण यह भूतल 'लिङ्गस्थान'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जगत्‌के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त ज्योतिःस्तम्भ अथवा ज्योतिर्मय लिङ्ग अत्यन्त छोटा हो जायगा। यह लिङ्ग सब प्रकारके भोग सुलभ करानेवाला तथा भोग और मोक्षका एकमात्र साधन है। इसका दर्शन, स्पर्श और ध्यान किया जाय तो यह प्राणियोंको जन्म और मृत्युके कष्टसे छुड़ानेवाला है। अग्निके पहाड़-जैसा जो यह शिवलिङ्ग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान 'अरुणाचल' नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थानमें निवास करने या मरने-से जीवोंका मोक्षतक हो जायगा।

मेरे दो रूप हैं—'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ; फिर अपने साक्षात्‌रूपसे। 'ब्रह्मभाव' मेरा 'निष्कल' रूप है और 'महेश्वरभाव' 'सकल' रूप। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ। कलायुक्त और अकल मेरे ही स्वरूप हैं। ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंपर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। ब्रह्मा और केशव! मैं सबसे बृहत् और जगत्‌की वृद्धि करनेवाला होनेके कारण 'ब्रह्म' कहलाता हूँ। सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ। सर्गसे लेकर अनुग्रहतक (आत्मा या ईश्वरसे भिन्न) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका बोध करानेके लिये 'निष्कल' लिङ्ग प्रकट हुआ था। फिर अज्ञात ईश्वरत्वका साक्षात्कार करानेके निमित्त मैं साक्षात् जगदीश्वर ही 'सकल' रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईशत्व है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेवाला है। यह मेरा ही लिङ्ग (चिह्न) है। तुम दोनों प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करो। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिङ्ग और लिङ्गीमें नित्य अभेद होनेके कारण मेरे इस लिङ्गका महान् पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये। मेरे एक लिङ्गकी स्थापना करनेका यह फल बताया गया है कि उपासकको मेरी समानता-की प्राप्ति हो जाती है। यदि एकके बाद दूसरे शिवलिङ्गकी भी स्थापना कर दी गयी, तब तो उपासकको फलरूपसे मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष) रूप फल प्राप्त होता है। प्रधानतया शिवलिङ्गकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उसकी अपेक्षा गौण कर्म है। शिवलिङ्गके अभावमें सब ओरसे सबेर (मूर्तियुक्त) होनेपर भी वह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता।

(अध्याय ९)

पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पञ्चाक्षर मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान

ब्रह्मा और विष्णुने पूछा—प्रभो! सृष्टि आदि पाँच कृत्योंके लक्षण क्या हैं, यह हम दोनोंको बताइये।

भगवान् शिव बोले—मेरे कर्तव्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम्हें उनके विषयमें बता रहा हूँ। ब्रह्मा और अच्युत! 'सृष्टि', 'पालन', 'संहार', 'तिरोभाव' और 'अनुग्रह'—ये पाँच ही मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो आरम्भ है, उसीको सर्ग या 'सृष्टि' कहते हैं। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी 'स्थिति' है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणोंके उत्क्रमणको 'तिरोभाव' कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पाँचों भूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें,

तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है। जलसे सबकी वृद्धि एवं जीवन-रक्षा होती है। आग सबको जला देती है। वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। विद्वान् पुरुषोंको यह विषय इसी रूपमें जानना चाहिये। इन पाँच कृत्योंका भार वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। पुत्रो ! तुम दोनोंने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरी विभूतिस्वरूप 'रुद्र' और 'महेश्वर' ने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं। परंतु अनुग्रह नामक कृत्य दूसरा कोई नहीं पा सकता। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मको भूले नहीं हैं। इसलिये मैंने उनके लिये अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं। मैंने पूर्वकालमें अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामङ्गलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता है।

मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकारका, पश्चिम मुखसे उकारका, दक्षिण मुखसे मकारका, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दुका तथा मध्यवर्ती मुखसे नादका प्राकट्य हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव 'ॐ' नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद उत्पन्न स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है। इसीसे पञ्चाक्षर मन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और मकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है ('ॐ नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है)। इस पञ्चाक्षर मन्त्रसे मातृका वर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं*। उसीसे शिरोमन्त्रसहित त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ है। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंकी सिद्धि होती है; परंतु इस प्रणव एवं पञ्चाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मन्त्रसमुदायसे भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मन्त्रराज साक्षात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक (मोक्षप्रद) हैं।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर जगदम्बा पार्वतीके साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको पर्दा करनेवाले वस्त्रसे आच्छादित करके उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश किया। मन्त्र-तन्त्रमें बतायी हुई विधिके पालनपूर्वक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। फिर उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवेश्वर जगद्गुरुका स्तवन किया।

ब्रह्मा और विष्णु बोले—प्रभो ! आप निष्कलरूप हैं। आपको नमस्कार है ! आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकलस्वरूप आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं। आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिङ्गवाले हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं। आप परमेश्वरको नमस्कार है। पञ्चब्रह्मस्वरूप पाँच कृत्यवाले आपको नमस्कार है। आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं। आपके गुण और शक्तियाँ अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है।*

* अ इ उ ऋ ऌ—ये पाँच मूलभूत स्वर हैं तथा व्यञ्जन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं

* नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे।
नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने॥
नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥
पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः।
आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनन्तगुणशक्तये॥
सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः।
(शि० पु० वि० सं० १० । २८—३०½)

इन पद्योंद्वारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

महेश्वर बोले—'आर्द्रा' नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रणवका जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। सूर्यकी संक्रान्तिसे युक्त महाआर्द्रा नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणव-जप कोटिगुने जपका फल देता है। 'मृगशिरा' नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा 'पुनर्वसु'का आदिम भाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सदा आर्द्राके समान ही होता है—यह जानना चाहिये। मेरा या मेरे लिङ्गका दर्शन प्रभातकालमें ही—प्रातः और संगव (मध्याह्नके पूर्व) कालमें करना चाहिये। मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिङ्ग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिङ्गका स्थान ऊँचा है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे बेर (मूर्ति) से भी श्रेष्ठ समझकर लिङ्गका ही पूजन करें। लिङ्गका ॐकार मन्त्रसे और बेरका पञ्चाक्षर-मन्त्रसे पूजन करना चाहिये। शिवलिङ्गकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है।

इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। (अध्याय १०)

शिवलिङ्गकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! शिवलिङ्गकी स्थापना कैसे करनी चाहिये? उसका लक्षण क्या है? तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके द्वारा उसका निर्माण होना चाहिये?

सूतजीने कहा—महर्षियो! मैं तुमलोगोंके लिये इस विषयका वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो और समझो। अनुकूल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें नदी आदिके तटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा तैजस पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार कल्पोक्त लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गका निर्माण करके उसकी पूजा करनेसे उपासकको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी यदि पूजा की जाय तो वह तत्काल पूजाका फल देनेवाला होता है। यदि चलप्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा-सा शिवलिङ्ग अथवा विग्रह श्रेष्ठ माना जाता है और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिङ्ग अथवा विग्रह अच्छा माना गया है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी पीठसहित स्थापना करनी चाहिये। शिवलिङ्गका पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खाटके पायेकी भाँति ऊपर-नीचे मोटा और बीचमें पतला होना चाहिये। ऐसा लिङ्ग-पीठ महान् फल देनेवाला होता है। पहले मिट्टीसे, प्रस्तर आदिसे अथवा लोहे आदिसे शिवलिङ्गका निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्यसे शिवलिङ्गका निर्माण हो, उसीसे उसका पीठ भी बनाना चाहिये। यही स्थावर (अचलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गकी विशेष बात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गमें भी लिङ्ग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये। किंतु बाणलिङ्गके लिये यह नियम नहीं है। लिङ्गकी लंबाई निर्माणकर्ता या स्थापना करनेवाले यजमानके बारह अंगुलके बराबर होनी चाहिये। ऐसे ही शिवलिङ्गको उत्तम कहा गया है। इससे कम लंबाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोषकी बात नहीं है। चर लिङ्गमें भी वैसा ही नियम है। उसकी लंबाई कम-से-कम कर्ताके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये। उससे छोटा होनेपर अल्प फल मिलता है। किंतु उससे अधिक होना दोषकी बात नहीं है। यजमानको चाहिये कि वह पहले शिल्प-शास्त्रके अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गर्तमें नीलम, लाल, वैदूर्य, श्याम, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा—इन नौ रत्नोंको तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्रव्योंको वैदिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। सद्योजात आदि पाँच वैदिक मन्त्रों * द्वारा शिवलिङ्गका पाँच स्थानोंमें क्रमशः पूजन

* ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

करके अग्निमें हविष्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धनसे तथा भाई-बन्धुओंको मनचाही वस्तुओंसे संतुष्ट करे। याचकोंको जड (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) तथा चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करे।

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यत्नपूर्वक संतुष्ट करके एक गड्ढेमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रत्न भरकर सद्योजातादि वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोषसे युक्त महामन्त्र ओंकार (ॐ) का उच्चारण करके उक्त गड्ढेमें शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिङ्गकी स्थापना करके उसे नित्य-लेप (दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले) से जोड़कर स्थिर करे। इसी प्रकार वहाँ परम सुन्दर वेर (मूर्ति) की भी स्थापना करनी चाहिये। सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिङ्ग-प्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर (मूर्ति) प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिङ्गप्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परंतु वेरकी प्रतिष्ठा पञ्चाक्षर मन्त्रसे करनी चाहिये। जहाँ लिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये बाहर सवारी निकालने आदिके निमित्त वेर (मूर्ति) को रखना आवश्यक है। वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनोंसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेने योग्य है, जो साधु पुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिङ्गमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिङ्ग भी दो प्रकारका कहा गया है। वृक्ष, लता आदिको स्थावर लिङ्ग कहते हैं और कृमि-कीट आदिको जंगम लिङ्ग। स्थावर लिङ्गकी सींचने आदिके द्वारा सेवा करनी चाहिये और जंगमलिङ्गको आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवका पूजन है, ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। (यों चराचर जीवोंको ही भगवान् शंकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये।)

इस तरह महालिङ्गकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। शिवलिङ्ग साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाला है। अथवा चर लिङ्गमें षोडशोपचारोंद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे। यह पूजन भी शिवपद प्रदान करनेवाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्याङ्ग आचमन, अभ्यङ्गपूर्वक स्नान, वस्त्र एवं यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्घ्यसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करे। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिङ्गमें तथा अपनेद्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिङ्गमें भी उपचार-समर्पण-पूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिङ्ग शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिव-लिङ्गका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोबर, फूल, कनेर-पुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्नसे भी अपनी रुचिके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे अथवा प्रतिदिन दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों संध्याओंके समय एक-एक सहस्र प्रणवका जप किया करे। यह क्रम भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है ऐसा जानना चाहिये।

जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विधान है। तथा अन्य सब समय भी उपांशु[1] जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणको विद्वान् पुरुष 'समानप्रणव' कहते हैं। यदि प्रतिदिन

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

ॐ ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति-र्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥

१. मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरा कोई सुन न सके। ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

आदरपूर्वक दस हजार पञ्चाक्षर मन्त्रका जप किया जाय अथवा दोनों संध्याओंके समय एक-एक सहस्रका ही जप किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये । ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पञ्चाक्षर मन्त्र अच्छा बताया गया है । कलशसे किया हुआ स्नान, मन्त्रकी दीक्षा, मातृकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तः-करणवाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है । द्विजोंके लिये 'नमः शिवाय' के उच्चारणका विधान है । द्विजेतरोंके लिये अन्तमें नमःपदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे 'शिवाय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करें । स्त्रियोंके लिये भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक नमोऽन्त उच्चारणका ही विधान है अर्थात् वे भी 'शिवाय नमः' का ही जप करें । कोई-कोई ऋषि ब्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमःपूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे 'नमः शिवाय' का जप करें । पञ्चाक्षर मन्त्रका पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है । एक, दो, तीन अथवा चार करोड़का जप करनेसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है । अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक साथ ही जितने अक्षर हों उतने लाख जप करे । इस तरहके जपको शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये । यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पञ्चाक्षर मन्त्रका दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होने लगती है ।

ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्रीका जप करे । ऐसा होनेपर गायत्री क्रमशः शिवका पद प्रदान करनेवाली होती है । वेदमन्त्रों और वैदिक सूक्तोंका भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये । वेदोंका पारायण भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है, ऐसा जानना चाहिये । अन्यान्य जो बहुत-से मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करें । इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह क्रमशः शिवपद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है । अपनी रुचिके अनुसार किसी एक मन्त्रको अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिये अथवा 'ओम् (ॐ)' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिये । ऐसा करनेपर भगवान् शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है ।

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें झाड़ने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्य-कर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है । भगवान् शिवके जो काशी आदि क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे । वह जड, चेतन सभीको भोग और मोक्ष देनेवाला होता है । अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें आमरण निवास करना चाहिये । पुण्यक्षेत्रमें स्थित बावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवगङ्गा समझना चाहिये । भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है । वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है । अतः मृत्युपर्यन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये । जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको पिण्ड देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता और अन्तमें शिवपद पाता है । अथवा शिवके क्षेत्रमें सात, पाँच, तीन या एक ही रात निवास कर ले । ऐसा करनेसे भी क्रमशः शिवपदकी प्राप्ति होती है ।

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है । वर्णा-नुकूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामनापूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको शीघ्र ही पा लेता है । निष्कामभावसे किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है ।

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न । इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है । प्रातःकालको शास्त्रविहित नित्यकर्मके अनुष्ठानका समय जानना चाहिये । मध्याह्नकाल सकाम-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायंकाल शान्ति-कर्मके उपयुक्त है, ऐसा जानना चाहिये । इसी प्रकार रात्रिमें भी समयका विभाजन किया गया है । रातके चार प्रहरोंमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है । विशेषतः उसी कालमें की हुई भगवान् शिवकी पूजा अभीष्ट फलकी देनेवाली होती है—ऐसा जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है । विशेषतः कलियुगमें कर्मसे ही फलकी सिद्धि होती है । अपने-अपने अधिकार-के अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा

शिवाराधन करनेवाला पुरुष यदि सदाचारी है और पापसे डरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है।

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! पुण्यक्षेत्र कौन-कौन-से हैं, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद प्राप्त कर लें यह हमें संक्षेपसे बताइये। (अध्याय ११)

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूतजी बोले—विद्वान् एवं बुद्धिमान् महर्षियो ! मोक्षदायक शिवक्षेत्रोंका वर्णन सुनो। तत्पश्चात् मैं लोकरक्षाके लिये शिवसम्बन्धी आगमोंका वर्णन करूँगा। पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को धारण करके स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर विभिन्न स्थानोंमें वहाँ-वहाँके निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुत-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकोंकी रक्षाके लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होता है, वह अपने पुण्यके फलसे ब्रह्मलोकमें वास करके पुण्यक्षयके पश्चात् पुनः मनुष्य-योनिमें ही जन्म लेता है। (पापी मनुष्य पाप करके दुर्गति ही पड़ता है।) ब्राह्मणो ! पुण्यक्षेत्रमें पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्रमें निवास करते समय सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अथवा थोड़ा-सा भी पाप न करे।*

सिन्धु और शतद्रू (सतलज) नदीके तटपर बहुत-से पुण्यक्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली कही गयी है अर्थात् उसकी साठ धाराएँ हैं। विद्वान् पुरुष सरस्वतीके उन-उन धाराओंके तटपर निवास करे तो वह क्रमशः ब्रह्मपदको पा लेता है। हिमालय पर्वतसे निकली हुई पुण्यसलिला गङ्गा सौ मुखवाली नदी है, उसके तटपर काशी-प्रयाग आदि अनेक पुण्यक्षेत्र हैं। वहाँ मकर राशिके सूर्य होनेपर गङ्गाकी तटभूमि पहलेसे भी अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। शोणभद्र नदकी दस धाराएँ हैं, वह बृहस्पतिके मकरराशिमें आनेपर अत्यन्त पवित्र तथा अभीष्ट फल देनेवाला हो जाता है। उस समय वहाँ स्नान और उपवास करनेसे विनायक-पदकी प्राप्ति होती है। पुण्यसलिला महानदी नर्मदाके चौबीस मुख (स्रोत) हैं। उसमें स्नान तथा उसके तटपर निवास करनेसे मनुष्यको वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। तमसाके बारह तथा रेवाके दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरीके इक्कीस मुख बताये गये हैं। वह ब्रह्महत्या तथा गोवधके पापका भी नाश करनेवाली एवं रुद्रलोक देनेवाली है। कृष्णवेणी नदीका जल बड़ा पवित्र है। वह नदी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उसके अठारह मुख बताये गये हैं तथा वह विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। तुङ्गभद्राके दस मुख हैं। वह ब्रह्मलोक देनेवाली है। पुण्यसलिला सुवर्णमुखरीके नौ मुख कहे गये हैं। ब्रह्मलोकसे लौटे हुए जीव उसीके तटपर जन्म लेते हैं। सरस्वती नदी, पम्पासरोवर, कन्याकुमारी अन्तरीप तथा शुभकारक श्वेत नदी—ये सभी पुण्यक्षेत्र हैं। इनके तटपर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सह्य पर्वतसे निकली हुई महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। उसके सत्ताईस मुख बताये गये हैं। वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। उसके तट स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले तथा ब्रह्मा और विष्णुका पद देनेवाले हैं। कावेरीके जो तट शैवक्षेत्रके अन्तर्गत हैं, वे अभीष्ट फल देनेके साथ ही शिवलोक प्रदान करनेवाले भी हैं।

नैमिषारण्य तथा बदरिकाश्रममें सूर्य और बृहस्पतिके मेष राशिमें आनेपर यदि स्नान करे तो उस समय वहाँ किये हुए स्नान-पूजन आदिको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। सिंह और कर्क राशिमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर सिन्धु नदीमें किया हुआ स्नान तथा केदार तीर्थके जलका पान एवं स्नान ज्ञानदायक माना गया है। जब बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित हों, उस समय सिंहकी संक्रान्तिसे युक्त भाद्रपद

* क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः।
पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत्॥
(शि० पु० वि० १२।७)

मासमें यदि गोदावरीके जलमें स्नान किया जाय तो वह शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है, ऐसा पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शिवने कहा था। जब सूर्य और बृहस्पति कन्याराशिमें स्थित हों, तब यमुना और शोणभद्रमें स्नान करे। वह स्नान धर्मराज तथा गणेशजीके लोकमें महान् भोग प्रदान करानेवाला होता है, यह महर्षियोंकी मान्यता है। जब सूर्य और बृहस्पति तुलाराशिमें स्थित हों, उस समय कावेरी नदीमें स्नान करे। वह स्नान भगवान् विष्णुके वचनकी महिमासे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला माना गया है। जब सूर्य और बृहस्पति वृश्चिक राशिपर आ जायँ, तब मार्गशीर्ष (अगहन) के महीनेमें नर्मदामें स्नान करनेसे श्रीविष्णुलोककी प्राप्ति हो सकती है। सूर्य और बृहस्पतिके धनराशिमें स्थित होनेपर सुवर्णमुखरी नदीमें किया हुआ स्नान शिवलोक प्रदान करानेवाला होता है, जैसा कि ब्रह्माजीका वचन है। जब सूर्य और बृहस्पति मकर राशिमें स्थित हों, उस समय माघमासमें गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ब्रह्माजीका कथन है कि वह स्नान शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। शिवलोकके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णुके स्थानोंमें सुख भोगनेपर अन्तमें मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। माघमासमें तथा सूर्यके कुम्भराशिमें स्थित होनेपर फाल्गुन मासमें गङ्गाजीके तटपर किया हुआ श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदक-दान पिता और नाना दोनों कुलोंके पितरोंकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला माना गया है। सूर्य और बृहस्पति जब मीन राशिमें स्थित हों, तब कृष्णवेणी नदीमें किये गये स्नानकी ऋषियोंने प्रशंसा की है। उन-उन महीनोंमें पूर्वोक्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। विद्वान् पुरुष गङ्गा अथवा कावेरी नदीका आश्रय लेकर तीर्थवास करे। ऐसा करनेसे तत्काल किये हुए पापका निश्चय ही नाश हो जाता है।

रुद्रलोक प्रदान करनेवाले बहुत-से क्षेत्र हैं। ताम्रपर्णी और वेगवती—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल देनेवाली हैं। इन दोनोंके तटपर कितने ही स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। इन दोनोंके मध्यमें बहुत-से पुण्यप्रद क्षेत्र हैं। वहाँ निवास करनेवाला विद्वान् पुरुष वैसे फलका भागी होता है। सदा सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्भावनाके साथ मनमें दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुषको तीर्थमें निवास करना चाहिये। अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है। तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है। यदि पुण्यक्षेत्रमें रहकर ही जीवन बितानेका निश्चय हो तो उस पुण्यसंकल्पसे उसका पहलेका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा; क्योंकि पुण्यको ऐश्वर्यदायक कहा गया है। ब्राह्मणो! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापोंका नाश कर देता है। तीर्थमें किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है।* वैसा पाप केवल ध्यानसे ही नष्ट होता है, अन्यथा नहीं। वाचिक पाप जपसे तथा कायिक पाप शरीरको सुखाने-जैसे कठोर तपसे नष्ट होता है; अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको देवताओंकी पूजा करते और ब्राह्मणोंको दान देते हुए पापसे बचकर ही तीर्थमें निवास करना चाहिये। (अध्याय १२)

सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, संध्यावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं महिमाका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी! अब आप शीघ्र ही हमें वह सदाचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुरुष पुण्यलोकोंपर विजय पाता है। स्वर्ग प्रदान करनेवाले धर्ममय आचार तथा नरकका कष्ट देनेवाले अधर्ममय आचारोंका भी वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—सदाचारका पालन करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही वास्तवमें 'ब्राह्मण' नाम धारण करनेका अधिकारी है। जो केवल वेदोक्त आचारका पालन करनेवाला एवं वेदका अभ्यासी है, उस ब्राह्मणकी 'विप्र' संज्ञा होती है। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या—इनमेंसे एक-एक गुणसे

* पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति। पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते॥
तत्कालं जीवनार्थश्चेत् पुण्येन क्षयमेष्यति। पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा॥
मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः। मानसं वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा॥
(शिवपुराण विद्येश्वर, सं० १२। ३९—३८)

ही युक्त होनेपर उसे 'द्विज' कहते हैं। जिसमें स्वल्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक (पुरोहित, मन्त्री आदि) है, उसे 'क्षत्रिय-ब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोचित आचारका भी पालन करता है, वह 'वैश्य-ब्राह्मण' है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता (हल चलाता) है, उसे 'शूद्र-ब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परद्रोही है, उसे 'चाण्डाल-द्विज' कहते हैं। इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह 'राजा' है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह 'वैश्य' कहलाता है! दूसरोंको 'वणिक्' कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वही वास्तवमें 'शूद्र' कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे 'वृषल' समझना चाहिये। सेवा, शिल्प और कर्षणसे भिन्न वृत्तिका आश्रय लेनेवाले शूद्र 'दस्यु' कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सबसे पहले देवताओंका, फिर धर्मका, अर्थका, उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्ययका भी चिन्तन करें।

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम पहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे संधि कहते हैं। उस संधिकालमें उठकर द्विजको मल-मूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। मल त्याग करके उठनेपर फिर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके तीर्थोंमें उतरे बिना ही प्राप्त हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्टी लगाकर उसे धोकर शुद्ध करे। लिङ्गमें ककोड़ेके फलके बराबर मिट्टी लेकर लगाये और उसे धो दे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्टीकी आवश्यकता होती है। लिङ्ग और गुदाकी शुद्धिके पश्चात् उठकर अन्यत्र जाय और हाथ पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करे। जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके पतले काष्ठसे जलके बाहर दतुअन करना चाहिये। उस समय तर्जनी अंगुलिका उपयोग न करे। यह दन्त-शुद्धिका विधान बताया गया है। तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रपाठ करते हुए जलाशयमें स्नान करे। यदि कण्ठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो घुटनेतक जलमें खड़ा हो अपने ऊपर जल छिड़ककर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान-कार्य सम्पन्न करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानाङ्ग-तर्पण भी करे।

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कच्छ करके उसे धारण करे। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि संध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतारे हुए वस्त्रको वहाँ न धोये। स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष भीगे हुए उस वस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा घर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्थलमें अच्छी तरह धोकर उस वस्त्रको निचोड़े। द्विजो! वस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह एक श्रेणीके पितरोंकी तृप्तिके लिये होता है। इसके बाद जाबालि-उपनिषद्में बताये गये 'अग्निरिति' मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये*।

---

* जाबालि-उपनिषद्में भस्मधारणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे'॥

इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मले, तत्पश्चात्—

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

इत्यादि मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल और कंधोंपर त्रिपुण्ड्र करे।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

तथा—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'

—इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खींचे।

इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो गिरानेवाला नरकमें जाता है। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्रसे पाप-शान्तिके लिये सिरपर जल छिड़के तथा 'यस्य क्षयाय' इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के। इसे संधिप्रोक्षण कहते हैं। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्रमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के। दूसरी ऋचाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे। इसे विद्वान् पुरुष 'मन्त्रस्नान' मानते हैं। किसी अपवित्र वस्तुसे किंचित् स्पर्श हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर, राजा और राष्ट्रपर भय उपस्थित होनेपर तथा यात्राकालमें जलकी उपलब्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर 'मन्त्र-स्नान' करना चाहिये। प्रातःकाल 'सूर्यश्च मा मन्युश्च' इत्यादि सूर्यानुवाकसे तथा सायंकाल 'अग्निश्च मा मन्युश्च' इत्यादि अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आचमन करके पुनः जलसे अपने अङ्गोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी 'आपः पुनन्तु' इस मन्त्रसे आचमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण या मार्जन करना चाहिये।

प्रातःकालकी संध्योपासनामें गायत्री मन्त्रका जप करके तीन बार ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्घ्य देने चाहिये। ब्राह्मणो! मध्याह्नकालमें गायत्री मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्घ्य देना चाहिये। फिर सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ जाय और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्घ्य दे (ऊपरकी ओर नहीं)। प्रातःकाल और मध्याह्नके समय अञ्जलिमें अर्घ्यजल लेकर अंगुलियोंकी ओरसे सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। फिर अंगुलियोंके छिद्रसे ढलते हुए सूर्यको देखे। तथा उनके लिये स्वतः प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे। सायंकालमें सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले की हुई संध्या निष्फल होती है; क्योंकि वह सायं संध्याका समय नहीं है। ठीक समयपर संध्या करनी चाहिये, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि संध्योपासना किये बिना दिन बीत जाय तो प्रत्येक समयके लिये क्रमशः प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि एक दिन बीते तो प्रत्येक बीते हुए संध्याकालके लिये नित्य नियमके अतिरिक्त सौ गायत्री मन्त्रका अधिक जप करे। यदि नित्यकर्मके लुप्त हुए दस दिनसे अधिक बीत जाय तो उसके प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख गायत्रीका जप करना चाहिये। यदि एक मासतक नित्यकर्म छूट जाय तो पुनः अपना उपनयन-संस्कार कराये।

अर्थसिद्धिके लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे। फिर तर्पण कर्मको ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे। तीर्थके दक्षिण प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, घरमें अथवा अन्य किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठकर विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको स्थिर करे और सम्पूर्ण देवताओंको नमस्कार करके पहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री मन्त्रकी आवृत्ति करे। प्रणवके 'अ', 'उ' और 'म्' इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन होता है—इस बातको जानकर प्रणव (ॐ) का जप करना चाहिये। जपकालमें यह भावना करनी चाहिये कि 'हम तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले रुद्रकी—जो स्वयं-प्रकाश चिन्मय हैं—उपासना करते हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको, मनकी वृत्तियोंको तथा बुद्धि-वृत्तियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओर प्रेरित करे।' प्रणवके इस अर्थका बुद्धिके द्वारा चिन्तन करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथवा अर्थानुसंधानके बिना भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये। इससे 'ब्राह्मणत्वकी पूर्ति' होती है। ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। मध्याह्नकालमें सौ बार और सायंकालमें अट्ठाईस बार जपकी विधि है। अन्य वर्णके लोगोंको अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यको तीनों संध्याओंके समय यथासाध्य गायत्री-जप करना चाहिये।

शरीरके भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार—ये छः चक्र हैं। इनमें मूलाधारसे लेकर सहस्रारतक छहों स्थानोंमें क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं। इन सबमें ब्रह्मबुद्धि करके इनकी एकताका निश्चय करे और 'वह ब्रह्म मैं हूँ' ऐसी भावना-पूर्वक प्रत्येक श्वासके साथ 'सोऽहं' का जप करे। उन्हीं विद्येश्वर आदिकी ब्रह्मरन्ध्र आदिमें तथा इस शरीरसे बाहर भी भावना करे। प्रकृतिके विकारभूत महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूत-

पर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिक्रमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे। यह जपका तत्त्व बताया गया है। सौ अथवा अट्ठाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिक्रमण होता है। इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये। सहस्र बार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है, ऐसा जानना चाहिये। सौ बार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है। प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे जप-का अनुष्ठान करना चाहिये। बारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे 'ब्राह्मण' कहा गया है। जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न लगाये। सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियम-पालनपूर्वक कार्य करे। इसके बाद गृह त्यागकर संन्यास ले ले। परिव्राजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल बारह हजार प्रणवका जप करे यदि एक दिन इस नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये और सदा इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि क्रमशः एक मास आदिका उल्लङ्घन हो गया तो डेढ़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे अधिक समयतक नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो पुनः नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दोषोंकी शान्ति होती है, अन्यथा वह रौरव नरकमें जाता है। जो सकाम भावनासे युक्त गृहस्थ ब्राह्मण है, उसीको धर्म तथा अर्थके लिये यत्न करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणको तो सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है। फिर उस भोगसे वैराग्यकी सम्भावना होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित हुए धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य धर्मसे धन पाता है; तपस्यासे उसे दिव्यरूपकी प्राप्ति होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है, इसमें संशय नहीं है।

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशस्त कहा गया है; किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म (दान आदि) अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है; परंतु कलियुगमें प्रतिमा (भगवद्विग्रह) की पूजासे ज्ञानलाभ होता है। अधर्म हिंसा (दुःख) रूप है और धर्म सुखरूप है। अधर्मसे मनुष्य दुःख पाता है और धर्मसे वह सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये। जिसके घरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं, ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका (जीवन-निर्वाहकी सामग्री) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। एक सहस्र चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एक सहस्र कुटुम्बको जीविका और आवास देता है, उसका वह कर्म इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। दस हजार कुटुम्बोंको दिया हुआ आश्रय-दान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दाता पुरुष जिस देवताको सामने रखकर दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीका लोक उसे प्राप्त होता है—यह बात वेदवेत्ता पुरुष अच्छी तरह जानते हैं। धन-हीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन करे; क्योंकि तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है।

अब मैं न्यायतः धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह (दान-ग्रहण) तथा याजन (यज्ञ कराने) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त क्लेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय बाहुबलसे धनका उपार्जन करे और वैश्य कृषि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुकृपा—मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि (ब्रह्मरूपसे स्थिति) प्राप्त होती है, जिससे मुक्त पुरुष परमानन्दका अनुभव करता है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह धन-धान्यादि सब वस्तुओंका दान करे। वह तृषा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोगकी शान्तिके लिये सदा अन्नका दान करे। खेत, धान्य, कच्चा अन्न तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको खाकर मनुष्य

जबतक कथा-श्रवण आदि सद्धर्मका पालन करता है, उतने समयतक उसके किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है—इसमें संशय नहीं है। दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके अपने प्रतिग्रहजनित पापकी शुद्धि कर ले। अन्यथा उसे रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपभोगके लिये। नित्य नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म धर्मार्थ रक्खे हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह वृद्धिके लिये रक्खे हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे उस धनकी वृद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे हितकारक, परिमित एवं पवित्र भोग भोगे। खेतीसे पैदा किये हुए धनका दसवाँ अंश दान कर दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। शेष धनसे धर्म, वृद्धि एवं उपभोग करे; अन्यथा वह रौरव नरकमें पड़ता है अथवा उसकी बुद्धि पापपूर्ण हो जाती है या खेती ही चौपट हो जाती है। वृद्धिके लिये किये गये व्यापारमें प्राप्त हुए धनका छठा भाग दान कर देने योग्य है। बुद्धिमान् पुरुष अवश्य उसका दान कर दे।

विद्वान्को चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका बखान न करे। ब्राह्मणो! दोषवश दूसरोंके सुने या देखे हुए छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी बात न कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली हो। ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों संध्याओंके समय अग्निहोत्रकर्म अवश्य करे। जो दोनों समय अग्निहोत्र करनेमें असमर्थ हो, वह एक ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई आहुतिसे संतुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कंद तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे। यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे। सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्रकी संज्ञा देते हैं। अथवा संध्याकालमें जपमात्र या सूर्यकी वन्दनामात्र कर ले। आत्मज्ञानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये। जो सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर होते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गलोकके भागी होते हैं। (अध्याय १३)

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

ऋषियोंने कहा—प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्तिका हमारे समक्ष क्रमशः वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो! गृहस्थ पुरुष अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति देता है, उसीको अग्नियज्ञ कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित हैं, उन ब्रह्मचारियोंके लिये समिधाका आधान ही अग्नियज्ञ है। वे समिधाका ही अग्निमें हवन करें। ब्राह्मणो! ब्रह्मचर्य आश्रममें निवास करनेवाले द्विजोंका जबतक विवाह न हो जाय और वे औपासनाग्निकी प्रतिष्ठा न कर लें, तबतक उनके लिये अग्निमें समिधाकी आहुति, व्रत आदिका पालन तथा विशेष यजन आदि ही कर्तव्य है (यही उनके लिये अग्नियज्ञ है)। द्विजो! जिन्होंने बाह्य अग्निको विसर्जित करके अपने आत्मामें ही अग्निका आरोप कर लिया है, ऐसे वानप्रस्थियों और संन्यासियोंके लिये यही हवन या अग्नियज्ञ है कि वे विहित समयपर हितकर, परिमित और पवित्र अन्नका भोजन कर लें। ब्राह्मणो! सायंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति सम्पत्ति प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुकी वृद्धि करनेवाली होती है, यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव सूर्यमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञके ही अन्तर्गत है। इस प्रकार यह अग्नियज्ञका वर्णन किया गया।

इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवयज्ञ समझना चाहिये। स्थालीपाक आदि यज्ञोंको देवयज्ञ ही मानना चाहिये। लौकिक अग्निमें प्रतिष्ठित जो चूडाकरण आदि संस्कारनिमित्तक हवन-कर्म हैं, उन्हें भी देवयज्ञके ही अन्तर्गत जानना चाहिये। अब ब्रह्मयज्ञका वर्णन सुनो। द्विजको चाहिये कि वह देवताओंकी तृप्तिके लिये निरन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। वेदोंका जो नित्य अध्ययन या स्वाध्याय होता है, उसीको ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। प्रातः

नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है।

अग्निके बिना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे तुमलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनो। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संसाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान्ने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गतिग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात् सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुःकर्ता त्रिलोकस्रष्टा परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे सम्पूर्ण जगत्‌के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्य-पापकी रचना हो जानेपर उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं। इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं, भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सब-के-सब ग्रह-नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं। शिवके वार या दिनके स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमार-सम्बन्धी दिनके अधिपति मङ्गल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी सूर्य और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं। अपने-अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है।

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मङ्गल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं। बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं। शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारकी ही पद्धति बनायी गयी। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंका जप यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किसी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवताकी भावना करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा या आराधना करना पाँचवाँ प्रकार है।

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूर्व-पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोगमें और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षतक लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे यदि प्रबल प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदि रोगोंका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साधन वार आदिके अनुसार फल देते हैं। रविवारको सूर्यदेवके लिये, अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट वस्तु अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है। सोमवारको विद्वान् पुरुष सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूजा करे तथा सपत्नीक ब्राह्मणोंको घृतपक्व अन्नका भोजन कराये। मङ्गलवारको रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड़द, मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराये। बुधवारको विद्वान् पुरुष दधियुक्त अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे। ऐसा करनेसे सदा पुत्र, मित्र और कलत्र आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होनेकी इच्छा रखता हो, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके लिये वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घृतमिश्रित खीरसे यजन-पूजन करे। भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रचित्त होकर देवताओंका पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये षड्रस युक्त अन्न दे। इसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये सुन्दर वस्त्र आदिका विधान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। तिलके होमसे, दानसे देवताओंको संतुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिलमिश्रित अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा।

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष पूजन, स्नान, दान, जप,

होम तथा ब्राह्मण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष तिथि और नक्षत्रोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके रूपमें पूजित हो सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं। शुभ (माङ्गलिक कर्म) के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्टि आदि कर्म) के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर गृहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे। इससे सिद्ध है कि देवताओंका यजन सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। ब्राह्मणोंका देवयजन-कर्म वैदिक मन्त्रके साथ होना चाहिये। (यहाँ ब्राह्मण-शब्द क्षत्रिय और वैश्यका भी उपलक्षण है।) शूद्र आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधिसे होना चाहिये। शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये। निर्धन मनुष्य तपस्या (व्रत आदिके कष्ट-सहन) द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करें। वह बार-बार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और बारंबार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है। धनवान् पुरुष सदा भोग-सिद्धिके लिये मार्गमें वृक्षादि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे। जलाशय (कुँआ, बावली और पोखरे) बनवाये। वेद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संग्रह करता रहे। धनीको यह सब कार्य सदा ही करते रहना चाहिये। समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। द्विजो! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता अथवा सुननेकी व्यवस्था करता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है। (अध्याय १४)

देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

ऋषियोंने कहा—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! अब आप क्रमशः देश-काल आदिका वर्णन करें।

सूतजी बोले—महर्षियो! देवयज्ञ आदि कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि शास्त्रोक्त फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं। गोशालाका स्थान घरकी अपेक्षा दसगुना फल देता है। जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है तथा जहाँ बेल, तुलसी एवं पीपलवृक्षका मूल निकट हो, वह स्थान जलाशयके तटसे भी दसगुना फल देनेवाला होता है। देवालयको उससे भी दसगुने महत्त्वका स्थान जानना चाहिये। देवालयसे भी दसगुना महत्त्व रखता है तीर्थभूमिका तट। उससे दसगुना श्रेष्ठ है नदीका किनारा। उससे दसगुना उत्कृष्ट है तीर्थनदीका तट और उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है सप्तगङ्गा नामक नदियोंका तीर्थ। गङ्गा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू और नर्मदा—इन सात नदियोंको सप्तगङ्गा कहा गया है। समुद्रके तटका स्थान इनसे भी दसगुना पवित्र माना गया है और पर्वतके शिखरका प्रदेश समुद्रतटसे भी दसगुना पावन है। सबसे अधिक महत्त्वका वह स्थान जानना चाहिये, जहाँ मन लग जाय।

यहाँतक देशका वर्णन हुआ, अब कालका तारतम्य बताया जाता है—सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल देनेवाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। त्रेतायुगमें उसका तीन चौथाई फल मिलता है। द्वापरमें सदा आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है। कलियुगमें एक चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा कलियुग बीतनेपर उस चौथाई फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम हो जाता है। शुद्ध अन्तः-करणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है।

विद्वान् ब्राह्मणो! सूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सत्कर्म पूर्वोक्त शुद्ध दिनकी अपेक्षा दसगुना फल देनेवाला होता है, यह जानना चाहिये। उससे भी दसगुना महत्त्व उस कर्मका है, जो विषुव[1] नामक योगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् कर्ककी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्त्व विषुवसे भी दसगुना माना गया है। उससे भी दसगुना मकर-संक्रान्तिमें और उससे भी दसगुना चन्द्र-

१. ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। वर्षमें दो बार आता है—एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथि या अंग्रेजी २१ मार्चको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथि या अंग्रेजी २२ सितम्बरको।

ग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्त्व है । सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है । उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्ण मात्रामें होता है, इस बातको विज्ञ पुरुष जानते हैं । जगद्रूपी सूर्यका राहुरूपी विषसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है । अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय स्नान, दान और जप करे । वह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है । जन्म-नक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है । परंतु महापुरुषोंके सङ्गका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है, ऐसा ज्ञानी पुरुष जानते-मानते हैं ।

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं । जिसने चौबीस लाख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका उत्तम पात्र है । वह सम्पूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है । जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये इसी गुणके कारण शास्त्रमें 'पात्र' शब्दका प्रयोग होता है । वह दाताका पातकसे त्राण करनेके कारण 'पात्र'* कहलाता है। गायत्री अपने गायकका पतनसे त्राण करती है; इसीलिये वह 'गायत्री' कहलाती है । जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं देता—जो यहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका त्राण या उद्धार कर सकता है । जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहलाता है । इसलिये दान, जप, होम और पूजा सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है । ऐसा ब्राह्मण ही दान तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है ।

स्त्री हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है । जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय तो दाताको उस दानका पूरा पूरा फल प्राप्त होता है, ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है । जो सवाल या याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है । अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला होता है । विप्रवरो ! जो जाति-मात्रमें ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन बिताता है, उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है । वही दान यदि वेदवेत्ता ब्राह्मणको दिया जाय तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके वर्षसे दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है । शिल और उञ्छ वृत्तिसे* लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है । उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है । क्षत्रियोंका शौर्यसे कमाया हुआ, वैश्योंका व्यापारसे आया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है । धर्मकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ हो, उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है ।

गौ आदि बारह वस्तुओंका चैत्र आदि बारह महीनोंमें क्रमशः दान करना चाहिये । गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक, कोंहड़ा और कन्या—ये ही वे बारह वस्तुएँ हैं । इनमें गोदानसे कायिक, वाचिक और मानसिक पापोंका निवारण तथा कायिक आदि पुण्यकर्मोंकी पुष्टि होती है । ब्राह्मणो ! भूमिका दान इहलोक और परलोकमें प्रतिष्ठा (आश्रय) की प्राप्ति करानेवाला है । तिलका दान बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक होता है । सुवर्णका दान जठराग्निको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है । घीका दान पुष्टिकारक होता है । वस्त्रका दान आयुकी वृद्धि करानेवाला है, ऐसा जानना चाहिये । धान्यका दान अन्न-धनकी समृद्धिमें कारण होता है । गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करानेवाला होता है । चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है । लवणका दान षड्रस भोजनकी प्राप्ति कराता है । सब प्रकारका दान सारी समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है । विज्ञ पुरुष कूष्माण्डके दानको पुष्टिदायक मानते हैं । कन्याका दान आजीवन भोग देनेवाला कहा गया है । ब्राह्मणो ! वह लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाला है ।

---

*पतनात्त्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते ।
दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते ॥
(शि० पु० विद्ये० १५ । १५)

* कोशकार कहते हैं—
'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम् ।'
अर्थात् खेत कट जाने या बाजार उठ जानेपर वहाँ बिखरे हुए अन्नके एक-एक कणको चुनना और उससे जीविका चलाना 'उञ्छ'वृत्ति है तथा खेतकी फसल कट जानेपर वहाँ पड़ी गेहूँ आदिकी बालें बीनना 'शिल' कहा है, और उससे जीविका चलाना 'शिल'वृत्ति है ।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे श्रवण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं, उनका दान किया जाय तो वे भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रियदेवताओंको[1] संतुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुरुमुखसे ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही बोध प्राप्त करनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'कर्मोंका फल अवश्य मिलता है', इसीको उच्चकोटिकी 'आस्तिकता' कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजाके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है। जो सर्वथा दरिद्र है, इसलिये जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह वाणी अथवा कर्म (शरीर) द्वारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको वाणीद्वारा किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और व्रत आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है। तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे गृहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण (चमक-दमक या सफाई) और गुण (सुख-सुविधा) से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ-दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्षफलका भागी होता है। (अध्याय १५)

पृथ्वी आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिङ्गके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने कहा—साधुशिरोमणे ! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजाका विधान बताइये, जिससे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

सूतजी बोले—महर्षियो ! तुमलोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है तथा दुःखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुमलोग उसको ध्यान देकर सुनो। पृथ्वी आदिकी बनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मानी गयी है, निश्चय ही इसमें पुरुषोंका और स्त्रियोंका भी अधिकार है। नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आये। फिर गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका संशोधन करे और शुद्ध मण्डपमें रखकर उसे महीन पीसे और साने। इसके बाद हाथसे प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका सुन्दर संस्कार करे। उस प्रतिमामें अङ्ग-प्रत्यङ्ग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न बनायी गयी हो। तदनन्तर उसे पद्मासनपर स्थापित करके आदरपूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिवकी प्रतिमाका, शिवका एवं शिवलिङ्गका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। षोडशोपचारपूजनजनित फलकी सिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। पुष्पसे प्रोक्षण और मन्त्र-पाठपूर्वक अभिषेक करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव (लगभग पावभर) होना चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किसी मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके पूजनके लिये एक प्रस्थ (सेरभर) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है, ऐसा जानना चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और स्वयं प्रकट हुए स्वयम्भू-लिङ्गके लिये पाँच सेर। ऐसा करनेपर पूर्ण फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये। इस प्रकार सहस्र बार पूजा करनेसे द्विज सत्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

बारह अंगुल चौड़ा, इससे दूना और एक अंगुल अधिक अर्थात् पचीस अंगुल लंबा तथा पंद्रह अंगुल

[1] श्रवणेन्द्रियके देवता दिशाएँ, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, रसनेन्द्रियके वरुण, त्वगिन्द्रियके वायु, वागिन्द्रियके अग्नि, लिङ्गके प्रजापति, गुदाके मित्र, हाथोंके इन्द्र और पैरोंके देवता विष्णु हैं।

चौड़ा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष 'शिव' कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार कुडवके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिङ्गके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तेल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रक्खी जाय तो यह उन शिवलिङ्गोंकी महापूजा बतायी जाती है।

देवताका अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि होती है, गन्धसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। नैवेद्य लगानेसे आयु बढ़ती और तृप्ति होती है। धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यत्नपूर्वक अर्पित करे। नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करने चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।

अब मैं देवपूजासे प्राप्त होनेवाले विशेष लोकोंका वर्णन करता हूँ। द्विजो! तुमलोग श्रद्धापूर्वक सुनो। विघ्नराज गणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिषा नक्षत्रके आनेपर विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुत्र एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शमन तथा भिन्न-भिन्न दुष्कर्मोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता। इसलिये उसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप मानना चाहिये। सूर्योदयकालसे लेकर सूर्योदयकाल आनेतक एक वारकी स्थिति मानी गयी है, जो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके कर्मोंका आधार है। विहित तिथिके पूर्व भागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है।

यदि मध्याह्नके बाद तिथिका आरम्भ होता है तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्धादि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिनसे युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। यदि मध्याह्नकालतक तिथि रहे तो उदयव्यापिनी तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि ही देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। वार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और जप आदि करने चाहिये। वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना की गयी है—पूर्जायते अनेन इति पूजा। यह पूजा-शब्दकी व्युत्पत्ति है। 'पूः' का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है, उसका नाम पूजा है। मनोवाञ्छित वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अभीष्ट वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान। ये दोनों ही पूजा-शब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनेसे ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदमें पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कर्म कालान्तरमें फल देते हैं; किन्तु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलद होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजन करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उनसे वैसे ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको की हुई महागणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमासमें चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय भाद्रपद मासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी पूजा एक वर्षतक मनोवाञ्छित भोग प्रदान करती है—ऐसा जानना चाहिये। श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको तथा माघशुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपद मासोंके बुधवारको, श्रवण

नक्षत्रसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। श्रावणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अङ्गों एवं उपकरणोंसहित पूर्वोक्त गौ आदि बारह वस्तुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके बारह नामों-द्वारा बारह ब्राह्मणोंका षोडशोपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओं-के विभिन्न बारह नामोंद्वारा किया हुआ, बारह ब्राह्मणोंका पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है।

कर्ककी संक्रान्तिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रके योगमें अम्बिकाका पूजन करे। वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगों और फलोंको देनेवाली हैं। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन अवश्य उनकी पूजा करनी चाहिये। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको यदि रविवार पड़ा हो तो उस दिनका महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। उसके साथ ही यदि आर्द्रा और महार्द्रा (सूर्यसंक्रान्तिसे युक्त आर्द्रा) का योग हो तो उक्त अवसरोंपर की हुई शिवपूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको की हुई शिवजीकी पूजा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंकी आयु बढ़ाती, मृत्यु-कष्ट-को दूर हटाती और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति कराती है। ज्येष्ठ मासमें चतुर्दशीको यदि महार्द्राका योग हो अथवा मार्ग-शीर्ष मासमें किसी भी तिथिको यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो उस अवसरपर विभिन्न वस्तुओंकी बनी हुई मूर्तिके रूपमें शिवकी जो सोलह उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यात्माके चरणोंका दर्शन करना चाहिये। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाली है, ऐसा जानना चाहिये। कार्तिक मासमें प्रत्येक वार और तिथि आदिमें महादेवजीकी पूजाका विशेष महत्त्व है। कार्तिक मास आनेपर विद्वान् पुरुष दान, तप, होम, जप और नियम आदिके द्वारा समस्त देवताओंका षोडशोपचारोंसे पूजन करे। उस पूजनमें देव-प्रतिमा, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका उपयोग आवश्यक है। ब्राह्मणोंको भोजन कराने-से भी वह पूजन-कर्म सम्पन्न होता है। पूजकको चाहिये कि वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ारहित (शान्त) हो देवाराधन-में तत्पर रहे।

कार्तिक मासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भोगोंको देनेवाला, व्याधियोंको हर लेनेवाला तथा भूतों और ग्रहोंका विनाश करनेवाला है। कार्तिक मासके रविवारोंको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा सूती वस्त्र देनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हर्रे, काली मिर्च, वस्त्र और खीरा आदिका दान और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षयके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है। कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त सोम-वारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्रय-को मिटानेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। घरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ गृह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त मङ्गल-वारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं घण्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शीघ्र ही वाक्‌सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उनके मुँहसे निकली हुई हर एक बात सत्य होती है। कृत्तिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुका यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंको उत्तम संतानकी प्राप्ति करानेवाला होता है। कृत्तिकायुक्त गुरुवारोंको धनसे ब्रह्माजीका पूजन तथा मधु, सोना और घीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-वैभवकी वृद्धि होती है। कृत्तिकायुक्त शुक्रवारोंको गजानन[1] गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गन्ध, पुष्प एवं अन्नका दान देनेसे मानवोंके भोग्य पदार्थोंकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चाँदी आदिका दान करनेसे वन्ध्याको भी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त शनिवारोंको दिक्पालोंकी वन्दना, दिग्गजों, नागों और सेतुपालोंका पूजन, त्रिनेत्रधारी रुद्र, पाप-हारी विष्णु तथा ज्ञानदाता ब्रह्माका आराधन और धन्वन्तरि एवं दोनों अश्विनीकुमारोंका पूजन करनेसे रोग, दुर्मृत्यु एवं अकालमृत्युका निवारण होता है तथा तात्कालिक व्याधियोंकी शान्ति हो जाती है। नमक, लोहा, तेल और उड़द आदिका त्रिकटु (सोंठ, पीपल और गोल मिर्च), फल, गन्ध और जल आदिका तथा घृत आदि द्रव-पदार्थोंका और सुवर्ण, मोती आदि कठोर वस्तुओंका भी दान देनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति

१. यहाँ मूलमें 'गजकोमेड' शब्द आया है जिसका पूर्व-वर्ती व्याख्याकारोंने 'गणेश' अर्थ किया है। सम्भवतः 'कोमेड' शब्दका प्रयोग यहाँ मस्तक या मुखके अर्थमें आया है।

होती है। इनमेंसे नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रस्थ (सेर) होना चाहिये और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल।

धनकी संक्रान्तिसे युक्त पौष मासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओंका पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनीके चावलसे तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौष मासमें नाना प्रकारके अन्नका नैवेद्य विशेष महत्त्व रखता है। मार्गशीर्ष मासमें केवल अन्नका दान करनेवाले मनुष्योंको ही सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्षमासमें अन्नका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्यक् ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानका फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग, अन्तमें सनातन योग (मोक्ष) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह मनुष्य मार्गशीर्ष मास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओंका पूजन करे और पौषमासको पूजनसे खाली न जाने दे। उषःकालसे लेकर संगवकालतक ही पौष मासमें पूजनका विशेष महत्त्व बताया गया है। पौष मासमें पूरे महीनेभर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकालसे मध्याह्न कालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पञ्चाक्षर आदि मन्त्रोंका जप करे। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्विजेतर नर-नारियोंको त्रिकाल स्नान और पञ्चाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इष्टमन्त्रोंका सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पापोंका भी नाश हो जाता है।

सारा चराचर जगत् बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद बिन्दुका और बिन्दु इस जगत्का आधार है, ये बिन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत्के आधाररूपसे स्थित हैं। बिन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत्का प्रादुर्भाव होता है, इसमें संशय नहीं है। शिवलिङ्ग बिन्दु-नादस्वरूप है। अतः उसे जगत्का कारण बताया जाता है। बिन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्त रूप ही शिवलिङ्ग कहलाता है। अतः जन्मके संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्दकी ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिङ्गका विशेष रूपसे पूजन करे। देवी उमा जगत्की माता हैं और भगवान् शिव जगत्के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है*। वह पूजकपर कृपा करके उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः मुनीश्वरो! आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये, शिवलिङ्गको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भर्ग (शिव) पुरुषरूप है और भर्गा (शिवा अथवा शक्ति) प्रकृति कहलाती है। अव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रकृति। पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवान् है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है। प्रकृतिमें जो पुरुषका संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है। अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्वादिके क्रमसे जो जगत्का व्यक्त होना है, यही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है। जीव पुरुषसे ही बारंबार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है। मायाद्वारा अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है, जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण (छः भावविकारोंसे युक्त) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' संज्ञा दी गयी है। जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा तनाव (बन्धन) में पड़ता है, उसका नाम जीव है; जन्म और बन्धन जीव-शब्दका अर्थ ही है। अतः जन्म मृत्युरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत मातृ-पितृस्वरूप शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये।

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनोंको पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक्-पृथक् भी रक्खे और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पञ्चामृत भी तैयार कर ले। (इनके द्वारा शिवलिङ्गका अभिषेक एवं स्नान

* माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता ॥
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानन्द एव हि।
परमानन्दलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥
सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता।
पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते ॥
(शिवपु० वि० १६। ९१—९३)

कराये), फिर गायके दूध और अन्नके मेलसे नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणपूर्वक उसे भगवान् शिवको अर्पित करे। सम्पूर्ण प्रणवको ध्वनिलिङ्ग कहते हैं। स्वयम्भूलिङ्ग नाद-स्वरूप होनेके कारण नादलिङ्ग कहा गया है। यन्त्र या अर्चा बिन्दुस्वरूप होनेके कारण बिन्दुलिङ्गके रूपमें विख्यात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिङ्ग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिङ्ग कहलाता है। सवारी निकालने आदिके लिये जो चर लिङ्ग होता है, वह उकार-स्वरूप होनेसे उकारलिङ्ग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिङ्ग माना गया है। इस प्रकार अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिङ्गके छः भेद हैं। इन छहों लिङ्गोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय १६)

षड्लिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (ॐकार) और स्थूल रूप (पञ्चाक्षर मन्त्र) का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पञ्चावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

ऋषि बोले---प्रभो ! महामुने ! आप हमारे लिये क्रमशः षड्लिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनका प्रकार बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! आप लोग तपस्याके धनी हैं, आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न उपस्थित किया है। किंतु इसका ठीक-ठीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा। वे भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षाका भारी भार बारंबार स्वयं ही ग्रहण करें। 'प्र' नाम है प्रकृतिसे उत्पन्न संसाररूपी महासागरका। प्रणव इससे पार करनेके लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये इस ओंकारको 'प्रणव'की संज्ञा देते हैं। ॐकार अपने जप करनेवाले साधकोंसे कहता है—'प्र—प्रपञ्च, न—नहीं है, वः—तुम लोगोंके लिये।' अतः इस भावको लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नामसे जानते हैं। इसका दूसरा भाव यों है—'प्र—प्रकर्षेण, न—नयेत्, वः—युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः। अर्थात् यह तुम सब उपासकोंको बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा।' इस अभिप्रायसे भी इसे ऋषि-मुनि 'प्रणव' कहते हैं। अपना जप करनेवाले योगियोंके तथा अपने मन्त्रकी पूजा करनेवाले उपासकके समस्त कर्मोंका नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव[1] है। उन मायारहित महेश्वरको ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूपसे नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधकको नव अर्थात् नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे प्रणवके नामसे जानते हैं। अथवा प्रकृष्टरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव है।

प्रणवके दो भेद बताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ओम्' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और 'नमः शिवाय' इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको स्थूल प्रणव समझना चाहिये। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्ट-रूपसे व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म प्रणवके जपका विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनोंका सार है। (यद्यपि जीवन्मुक्तके लिये किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वह सिद्धरूप है, तथापि दूसरोंकी दृष्टिमें जबतक उसका शरीर रहता है, तबतक उसके द्वारा प्रणव-जपकी सहज साधना स्वतः होती रहती है।) वह अपनी देहका विलय होने-तक सूक्ष्म प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थभूत परमात्म-तत्त्वका अनुसंधान करता रहता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्णब्रह्मस्वरूप शिवको प्राप्त कर लेता है—यह सुनिश्चित बात है। जो अर्थका अनुसंधान न करके केवल मन्त्रका जप करता है, उसे निश्चय ही योगकी प्राप्ति होती है। जिसने छत्तीस करोड़ मन्त्रका जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणवके भी ह्रस्व और दीर्घके भेदसे दो रूप जानने चाहिये। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियोंके ही हृदयमें

[1] प्र (कर्मक्षयपूर्वक) नव (नूतन ज्ञान देनेवाला)।

स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्— इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है। वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर ह्रस्व प्रणवका जप करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस ह्रस्व प्रणवका जप अत्यन्त आवश्यक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आशा मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त (अथवा प्रवृत्तिमार्गी) कहलाते हैं तथा जो निष्काम भावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त (अथवा निवृत्तिमार्गी) कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको ह्रस्व प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संध्याओंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये।

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे अग्नितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायुतत्त्वपर विजयी होता है। फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है। इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट बोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योगका लाभ करता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका ध्यान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋषि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ करना चाहिये। अकारादि मातृका वर्णोंसे युक्त प्रणवका अपने अङ्गोंमें न्यास करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मन्त्रोंके दशविध संस्कार[1], मातृकान्यास तथा

---

१. मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दीपन, बोधन, ताड़न, अभिषेचन, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यायन। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुङ्कुम, चन्दनादिसे आत्माभिमुख त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोणसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्रका एक-एक वर्ण उद्धार करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संस्कार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपद्वारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहम्।

हूँ-बीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूँ रामाय नमः हूँ।

फट्-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताड़न' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रों हंसः ओं' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जलसे अश्वत्थ-पत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओं त्रौं वषट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है। यथा—ओं त्रौं वषट् रामाय नमः वषट् त्रौं ओं।

स्वधा-वषट्-सम्पुटित मूलमन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा।

दुग्ध, जल एवं घृतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना ही 'तर्पण' संस्कार है।

ह्रीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नामक नवम संस्कार होता है। यथा—ह्रीं रामाय नमः ह्रीं।

ह्रौं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यायन' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—ह्रौं रामाय नमः ह्रौं १०००।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

षडध्वशोधन आदिके साथ सम्पूर्ण न्यासफल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुरुषोंके लिये स्थूल प्रणवका जप ही अभीष्ट साधक होता है।

क्रिया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—जो क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी कहलाते हैं। जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-सामग्रीका संचय करके हाथ आदि अङ्गोंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी' कहलाता है। पूजामें संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता, बाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता और मनको भी वशमें करके परद्रोह आदिसे दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्गुणोंसे युक्त होकर जो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समस्त काम आदि दोषोंसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकारके उपचारोंसे शिवयोगी महात्माओंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिको प्राप्त कर लेता है।

द्विजो! अब मैं जपयोगका वर्णन करता हूँ। तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो। तपस्या करनेवालेके लिये जपका उपदेश किया गया है; क्योंकि वह जप करते-करते अपने आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्तिमें 'शिव' शब्द हो तो पञ्चतत्त्वात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है। इसे 'शिव-पञ्चाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पञ्चाक्षरके जपसे ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। पञ्चाक्षरमन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिये। द्विजो! गुरुके मुखसे पञ्चाक्षर-मन्त्रका उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमिपर महीनेके पूर्वपक्ष (शुक्ल) में (प्रतिपदासे) आरम्भ करके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। माघ और भादोंके महीने अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह समय सब समयोंसे उत्तमोत्तम माना गया है। साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रक्खे; अपने स्वामी एवं माता-पिताकी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जप करनेवाला पुरुष एक सहस्र जपसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पञ्चाक्षर मन्त्रका पाँच लाख जप करे। जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे। कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक श्रीगङ्गाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है। उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं। वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिवकी शोभा बढ़ा रहे हैं। महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टङ्क तथा वर एवं अभयकी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् सदाशिवका बारंबार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्याका जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे (और दुष्कर्मसे बचा रहे)। जपकी समाप्तिके दिन कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें शौच-संतोषादि नियमोंसे युक्त हो शुद्ध हृदयसे पञ्चाक्षर मन्त्रका बारह सहस्र जप करे। तत्पश्चात् पाँच सपत्नीक ब्राह्मणोंका, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्यप्रवरका भी वरण करे और उसे साम्ब सदाशिवका स्वरूप समझे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँचोंके प्रतीक-स्वरूप पाँच ही श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीको एकत्र करके भगवान् शिवका पूजन आरम्भ करे। विधिपूर्वक शिवकी पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करे।

अपने गृह्यसूत्रके अनुसार मुखान्त कर्म करके अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पञ्च भू-संस्कारोंके पश्चात् वेदीपर स्वाभिमुख अग्निको स्थापित करके कुशकण्डिकाके अनन्तर प्रज्वलित अग्निमें आज्यभागान्त आहुति देकर प्रस्तुत होमका कार्य आरम्भ करे। कपिला गायके घीसे ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं ही दे अथवा विद्वान् पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणोंसे एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये।

१. षडध्व-शोधनका कार्य शैवी दीक्षाके अन्तर्गत है। उसमें पहले कुण्डमें या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका शोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। विस्तार-भयसे अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है।

होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये । ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका स्वरूप ही समझे तथा आचार्यको साम्ब सदाशिवका स्वरूप माने । इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदकसे अपने मस्तकको सींचे । ऐसा करनेसे वह साधक अगणित तीर्थोंमें तत्काल स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है । उन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दशाङ्ग अन्न देना चाहिये । गुरुपत्नीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे । ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अन्नसे पूजन करके अपने वैभव-विस्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे । तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये । इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे । इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है । फिर पाँच लाख जप करनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है । तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर अतलसे लेकर सत्यलोकतक चौदहों भुवनोंपर क्रमशः अधिकार प्राप्त हो जाता है ।

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले बीचमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है । समस्त लोकोंका ऐश्वर्य पानेके पश्चात् वह मन्त्रको सिद्ध करनेवाला पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है । पुनः पाँच लाख जप करनेसे सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है । सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है । इस तरह कार्यब्रह्म (हिरण्यगर्भ) का सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है । फिर दूसरे कल्पका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है । उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो वह क्रमशः मुक्त हो जाता है । पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोंद्वारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं । सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं । क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अट्ठाईस भुवन स्थित हैं । शुचिलोकके अन्तर्गत कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं । शुचिलोकसे ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छप्पन भुवनोंकी स्थिति है । अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो ज्ञानकैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं । अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है । यहाँतक महेश्वरके विराट्स्वरूपका वर्णन किया गया । वहींतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है । उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग । उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया ।

(अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य बता रहा हूँ—) 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी । उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है । इसलिये वह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है । इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है । इसलिये उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है । उपर्युक्त सीमासे नीचे नश्वर भोग हैं और ऊपर नित्य भोग । उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर नहीं । वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोंद्वारा बन्धन होता है । ऊपर बन्धनका सदा अभाव है । उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्कर काटते हैं । उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग बताया गया है । बिन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें घूमते हैं । उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिङ्गकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं । जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं । वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि । नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त पुरुष । नीचे कर्मलोक है और ऊपर ज्ञानलोक । ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नम्रता है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है । उसका निवारण किये बिना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है । इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञान-शब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है । आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उससे नीचेके लोकोंमें ही चक्कर काटते हैं । जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं ।

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त हो भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे कालचक्रको पार कर जाते हैं । कालचक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट् महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकी स्थिति है । वह ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् रूप है । उसके सत्य, शौच, अहिंसा

और दया—ये चार पाद हैं । वह साक्षात् शिवलोकके द्वारपर खड़ा है । क्षमा उसके सींग हैं, शम कान है, वह वेदध्वनि-रूपी शब्दसे विभूषित है । आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, विश्वास ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है । क्रिया आदि धर्म-रूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदिमें स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये । उस क्रियारूप वृषभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ होते हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं । जहाँ धर्मरूपी वृषभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है न रात्रि । वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं हैं । वहाँ फिरसे कारणस्वरूप ब्रह्माके कारण सत्यलोक-पर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पाञ्चभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं । उनकी सनातन स्थिति है । सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है । उनसे ऊपर फिर कारणरूप विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं । उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्रके अट्ठाईस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है । फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिवके छप्पन लोक विद्यमान हैं । तदनन्तर शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पाँच आवरणोंसे युक्त ज्ञानमय कैलास है, जहाँ पाँच मण्डलों, पाँच ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त आदि-लिङ्ग प्रतिष्ठित है । उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है । वहीं पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं । वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं । उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है । वे सदा ध्यानरूपी धर्ममें ही स्थित रहते हैं और सदा सबपर अनुग्रह किया करते हैं । वे स्वात्माराम हैं और समाधिरूपी आसनपर आसीन हो नित्य विराजमान होते हैं । कर्म एवं ध्यान आदिका अनुष्ठान करनेसे क्रमशः साधनपथमें आगे बढ़नेपर उनका दर्शन साध्य होता है । नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मोंद्वारा देवताओंका यजन करनेसे भगवान् शिवके समाराधन-कर्ममें मन लगता है । क्रिया आदि जो शिवसम्बन्धी कर्म हैं, उनके द्वारा शिवज्ञान सिद्ध करे । जिन्होंने शिवतत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिनपर शिवकी कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं—इसमें संशय नहीं है । आत्मस्वरूपसे जो स्थिति है, वही मुक्ति है । एकमात्र अपने आत्मामें रमण या आनन्दका अनुभव करना ही मुक्तिका स्वरूप है । जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्मोंमें भलीभाँति स्थित है, वह शिवका साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वरूप मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है । जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे अशुद्धिको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करनेमें कुशल भगवान् शिव अपने भक्तके अज्ञानको मिटा देते हैं । अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है । शिवज्ञानसे अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मा-रामत्वकी सम्यक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ।

इस तरह यहाँ जो कुछ बताया गया है, वह पहले मुझे गुरु-परम्परासे प्राप्त हुआ था । तत्पश्चात् मैंने पुनः नन्दीश्वरके मुखसे इस विषयको सुना था । नन्दिस्थानसे परे जो स्वसंवेद्य शिव-वैभव है, उसका अनुभव केवल भगवान् शिवको ही है । साक्षात् शिवलोकके उस वैभवका ज्ञान सबको शिवकी कृपासे ही हो सकता है, अन्यथा नहीं—ऐसा आस्तिक पुरुषोंका कथन है ।

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जप करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे । भक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं । शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है । वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है । शिवस्वरूप मन्त्रको धारण करके वह शिव ही हो गया रहता है। शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है । अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये । जो शिवके भक्त हैं, वे लोक और वेदकी सारी क्रियाओंको जानते हैं । जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्त्रका जप कर लेता है, उसके शरीरको उतना-ही-उतना शिवका सामीप्य प्राप्त होता जाता है, इसमें संशय नहीं है । शिवभक्त स्त्रीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है । वह जितना मन्त्र जपती है, उसे उतना ही देवीका सांनिध्य प्राप्त होता जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्तिका पूजन करे । शक्ति, वेर तथा लिङ्गका चित्र बनवाकर अथवा मिट्टी आदिसे इनकी आकृतिका निर्माण करके प्राणप्रतिष्ठापूर्वक निष्कपट भावसे इनका पूजन करे । शिवलिङ्गको शिव मानकर, अपनेको शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिङ्गको देवी मानकर और अपनेको शिवरूप समझकर, शिवलिङ्गको नादरूप तथा शक्तिको बिन्दुरूप मानकर परस्पर सटे हुए शक्तिलिङ्ग और शिवलिङ्गके प्रति उपप्रधान और प्रधानकी भावना रखते हुए जो शिव और शक्तिका पूजन करता है, वह मूलरूपकी भावना करनेके कारण शिवरूप ही है । शिवभक्त शिवमन्त्ररूप होनेके कारण शिवके ही स्वरूप हैं । जो सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है । जो शिवलिङ्गोपासक

शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान्पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं। पाँच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तोंको बुलाकर भोजन आदिके द्वारा पत्नीसहित उनका सदैव समादर करे। धनमें, देहमें और मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव और शक्तिका स्वरूप जानकर निष्कपट भावसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष इस भूतलपर फिर जन्म नहीं लेता।

(अध्याय १७)

बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिङ्ग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा शिवके भस्मधारणका रहस्य

ऋषि बोले—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ सूतजी! बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है? यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। तुमलोग आदर-पूर्वक सुनो। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वतः-सिद्ध है। बद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है तब उसे मुक्तजीव कहते हैं। प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व) त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बारंबार जन्म और कर्म होते रहते हैं। शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर (जाग्रत् अवस्थामें) व्यापार करानेवाला, सूक्ष्म शरीर (जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारण-शरीर (सुषुप्तावस्थामें) आत्मानन्दकी अनुभूति करानेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सुख और पापकर्मोंके फलस्वरूप दुःखका उपभोग करता है। अतः कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे होनेवाले शुभा-शुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्रकी भाँति बारंबार घुमाया जाता है। इस चक्रवत् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्तवन एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाश बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे है, वह परमात्मा शिव है। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जैसे बकायन नामक वृक्षका थाला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निःस्पृह हैं। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्तिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छः प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अतः भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्हींका पूजन करना चाहिये।

यदि कहें—शिव तो परिपूर्ण हैं, निःस्पृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है? तो इसका उत्तर यह है कि भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ सत्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिवलिङ्गमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे महेश्वर शिव, जो प्रकृतिसे परे हैं, पूजकपर विशेष कृपा करते हैं और उनका वह कृपा-प्रसाद सत्य होता है। शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामरूपसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवासका सौभाग्य प्राप्त होता है। इसीको सालोक्य-मुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगदम्बा-सहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्य मुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान्का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती

है। बुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वशमें होना सार्ष्टिमुक्ति कहा गया है। पुनः भगवान्‌का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर प्रकृति वशमें हो जायगी। उस समय भगवान् शिवका मानसिक ऐश्वर्य बिना यत्नके ही प्राप्त हो जायगा। सर्वज्ञता और तृप्ति आदि जो शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपने आत्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखनेवाले विद्वान् पुरुष इसीको सायुज्य मुक्ति कहते हैं। इस प्रकार लिङ्ग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमशः मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये तत्सम्बन्धी क्रिया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना चाहिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और शिवध्यानके लिये सदा उत्तरोत्तर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकालसे रातको सोते समयतक और जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सारा समय भगवान् शिवके चिन्तनमें ही बिताना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा।

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! लिङ्ग आदिमें शिवजीकी पूजाका क्या विधान है, यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—द्विजो! मैं लिङ्गोंके क्रमका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ। तुम सब लोग सुनो। वह प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिङ्ग है। उसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझो। सूक्ष्म लिङ्ग निष्कल होता है और स्थूल लिङ्ग सकल। पञ्चाक्षर मन्त्रको ही स्थूल लिङ्ग कहते हैं। उन दोनों प्रकारके लिङ्गोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिङ्ग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। पौरुष लिङ्ग और प्रकृति-लिङ्गके रूपमें बहुतसे लिङ्ग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं। दूसरा कोई नहीं जानता। पृथ्वीके विकारभूत जो-जो लिङ्ग ज्ञात हैं, उन-उनको मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उनमें स्वयम्भू लिङ्ग प्रथम है। दूसरा बिन्दुलिङ्ग, तीसरा प्रतिष्ठित-लिङ्ग, चौथा चरलिङ्ग और पाँचवाँ गुरुलिङ्ग है। देवर्षियोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उनके समीप प्रकट होनेके लिये पृथ्वीके अन्तर्गत बीजरूपसे व्याप्त हुए भगवान् शिव वृक्षोंके अङ्कुरकी भाँति भूमिको भेदकर नादलिङ्गके रूपमें व्यक्त हो जाते हैं। वे स्वतः व्यक्त हुए शिव ही स्वयं प्रकट होनेके कारण स्वयम्भू नाम धारण करते हैं। ज्ञानीजन उन्हें स्वयम्भूलिङ्गके रूपमें जानते हैं। उस स्वयम्भूलिङ्गकी पूजासे उपासकका ज्ञान स्वयं ही बढ़ने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव मन्त्ररूप लिङ्ग है, उसमें तथा मन्त्रलिङ्गका आलेखन करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा बिन्दुनाद-मय लिङ्ग स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है, ऐसा निस्संदेह कहा जा सकता है। जिसको जहाँ भगवान् शंकरके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अकृत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक स्वयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अभ्याससे उसको ज्ञान भी होता है। देवताओं और ऋषियोंने आत्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्धमण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिङ्गकी स्थापना की है, उसे पौरुष लिङ्ग कहते हैं। तथा वही प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। उस लिङ्गकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। महान् ब्राह्मण और महाधनी राजा किसी कारीगरसे शिवलिङ्गका निर्माण कराकर जो मन्त्रपूर्वक उसकी स्थापना करते हैं, उनके द्वारा स्थापित हुआ वह लिङ्ग भी प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। किंतु वह प्राकृत लिङ्ग है। इसलिये प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको ही देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुष कहते हैं तथा जो दुर्बल और अनित्य होता है, वह प्राकृत कहलाता है।

लिङ्ग, नाभि, जिह्वा, नासाग्रभाग और शिखाके क्रमसे कटि, हृदय और मस्तक तीनों स्थानोंमें जो लिङ्गकी भावना की गयी है, उस आध्यात्मिक लिङ्गको ही चरलिङ्ग कहते हैं। पर्वतको पौरुषलिङ्ग बताया गया है और भूतलको विद्वान् पुरुष प्राकृतलिङ्ग मानते हैं। वृक्ष आदिको पौरुषलिङ्ग जानना चाहिये और गुल्म आदिको प्राकृतलिङ्ग। साठी नामक धान्यको प्राकृतलिङ्ग समझना चाहिये और शालि (अगहनी) एवं गेहूँको पौरुषलिङ्ग। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको देनेवाला जो ऐश्वर्य है, उसे पौरुष ऐश्वर्य जानना चाहिये। सुन्दर स्त्री तथा धन आदि विषयोंको आस्तिक पुरुष प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं। चरलिङ्गोंमें सबसे प्रथम रस-लिङ्गका वर्णन किया जाता है। रसलिङ्ग ब्राह्मणोंको उनकी सारी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। शुभकारक बाणलिङ्ग क्षत्रियोंको महान् राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। सुवर्णलिङ्ग

वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करनेवाला है तथा सुन्दर शिवलिङ्ग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकमय लिङ्ग तथा बाणलिङ्ग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या बाणलिङ्ग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये पार्थिव लिङ्गकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिङ्गकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिङ्गकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो! बचपनमें, जवानीमें और बुढ़ापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिङ्गका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। गृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली है।

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए खीर आदि पक्वान्नोंद्वारा नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको सम्पुटमें पधारकर घरके भीतर पृथक् रख दे। जो निवृत्तिमार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिङ्ग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तकपर धारण करें।

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रक्खे। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी भस्मसे शुद्धि होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी भस्मसे ही शुद्धि मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये यथायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये। वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अघोर[1]-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर बेलकी लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निको शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठका जो भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोबर अथवा गायमात्रके गोबरको तथा शमी, पीपल, पलाश, बड़, अमलतास और बेर—इनकी लकड़ियोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है। अथवा कुशकी अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी वृद्धिके लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूजित होता है। पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म-शब्दका ऐसा ही अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत करको ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आदिको जलाकर (राँधकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जठरानल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रामें ग्रहण करके जलाता, जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता और उस सारतर वस्तुसे स्वदेहका पोषण करता है, उसी प्रकार प्रपञ्चकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेयरूपसे विद्यमान प्रपञ्चको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण किया है। प्रपञ्चको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरीरमें लगाया है। राख, भभूत, पोतनेके बहाने जगत्‌के सारको ही ग्रहण किया है। अपने शरीरमें अपने लिये रत्नस्वरूप भस्मको इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे केश, वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, जलके सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे घुटनेको धारण किया है। इसी तरह उनके सारे अङ्ग विभिन्न वस्तुओंके साररूप हैं। महेश्वरने अपने ललाटमें तिलकरूपसे जो त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व है। वे इन सब वस्तुओंको जगत्‌के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। इन भगवान् शिवने ही प्रपञ्चके सार-सर्वस्वको अपने वशमें किया है। अतः इन्हें अपने वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृगसिंह कहलाता है और उसकी हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे सिंह कहा गया है।

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द, इकारका अर्थ है पुरुष और वकारका अर्थ है अमृतस्वरूपा शक्ति। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस रूपमें

१. अघोर-मन्त्रको पृष्ठ ३६ की टिप्पणीमें देखिये।

भगवान् शिवको अपना आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये; अतः पहले अपने अङ्गोंमें भस्म मले। फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्मका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्मका। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके फिर उन्हें शिवतत्त्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं। गुरुकी पूजा परमात्मा शिवकी ही पूजा है। गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है। गुरुकी आज्ञाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय तो उसे भी यत्नपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये। अज्ञानरूपी बन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस बन्धनसे छुड़ा सकता है।

जन्म और मरणरूप द्वन्द्वको भगवान् शिवकी मायाने ही अर्पित किया है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके बन्धनमें नहीं पड़ता। जबतक शरीर रहता है, तबतक जो क्रियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें कर लेनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्हींको समर्पित कर देना चाहिये। जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमेंसे एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ—ये क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिवभक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे। न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीवहिंसा आदिसे रहित और अत्यन्त क्लेशशून्य जीवन बिताते हुए पञ्चाक्षरमन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलको सुखस्वरूप माना गया है। अथवा कहते हैं कि दरिद्र पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है। शिवभक्तको भिक्षान्न प्राप्त हो तो वह शिवभक्तिको बढ़ाता है। शिवयोगी पुरुष भिक्षान्नको शम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलपर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समक्ष शिवके माहात्म्यको ही प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा नहीं।

(अध्याय १८)

पार्थिवलिङ्गके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोंद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

तदनन्तर पार्थिव लिङ्गकी श्रेष्ठता तथा महिमाका वर्णन करके सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं वैदिक कर्मके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे ही पार्थिव-पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आह्निकसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान और संध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। अपनी रुचिके अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्मको पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलकी सिद्धिके लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिवलिङ्गकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे। नदी या तालाबके किनारे, पर्वतपर, वनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विधान है। ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको यत्नपूर्वक लाकर बड़ी सावधानीके साथ शिवलिङ्गका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिङ्ग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिङ्ग बनाये।

शिवलिङ्ग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके

उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्डी बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिवलिङ्गकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूपी फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। उस पार्थिवलिङ्गके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूँ; तुम सब लोग सुनो। 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे—उसपर जल छिड़के। इसके बाद 'भूरसि०'[1] इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे, फिर 'आपोऽस्मान्०'[2] इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे। इसके बाद 'नमस्ते रुद्र०'[3] इस मन्त्रसे स्फाटिकाबन्ध (स्फटिक शिलाका घेरा) बनानेकी बात कही गयी है। 'नमः शम्भवाय०'[4] इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पञ्चामृतका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष 'नमः' पूर्वक 'नीलग्रीवाय०'[5] मन्त्रसे शिवलिङ्गकी उत्तम प्रतिष्ठा करे। इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक 'एतत्ते रुद्रावसं०'[6] इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे। 'मा नो महान्तम्०'[7] इस मन्त्रसे आवाहन करे, 'या ते रुद्र०'[1] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको आसनपर समासीन करे। 'यामिषुं०'[2] इस मन्त्रसे शिवके अङ्गोंमें न्यास करे। 'अध्यवोचत्०'[3] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करे। 'असौ यस्ताम्रो०'[4] इस मन्त्रसे शिवलिङ्गमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। 'असौ योऽवसर्पति०'[5] इस मन्त्रसे उपसर्पण (देवताके समीप गमन) करे। इसके बाद 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'[6] इस मन्त्रसे इष्टदेवको पाद्य समर्पित करे। 'रुद्रगायत्री०'[7] से अर्घ्य दे। 'त्र्यम्बकं०'[8] मन्त्रसे आचमन कराये। 'पयः पृथिव्यां०'[9] इस मन्त्रसे दुग्धस्नान कराये। 'दधिक्राव्णो०'[10] इस मन्त्रसे दधिस्नान कराये। 'घृतं घृत पावा०'[11] इस मन्त्रसे घृतस्नान कराये। 'मधु वाता'[12], 'मधु[13]

---

१. पूरा मन्त्र इस प्रकार है—भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री, पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः। (यजु० १३। १८)

२. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वꣳ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳशग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन्। (यजु० ४। २)

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६। १)

४. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु० १६। ४१)

५. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। (यजु० १६। ८)

६. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि। (यजु० ३। ६१)

७. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः। (यजु० १६। १५)

१. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। या नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। (यजु० १६। २)

२. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्। (यजु० १६। ३)

३. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीꣳश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव। (यजु० १६। ५)

४. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳरुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳहेड ईमहे। (यजु० १६। ६)

५. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः। (यजु० १६। ७)

६. यह मन्त्र पहले दिया जा चुका है।

७. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

८. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः। (यजु० ३। ६०)

९. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरीक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। (यजु० १८। ३६)

१०. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत्। (यजु० २३। ३२)

११. घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा। (यजु० ६। १९)

१२. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। (यजु० १३। २७)

१३. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳरजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। (यजु० १३। २८)

नक्तं' 'मधुमान्नो' इन तीन ऋचाओंसे मधुस्नान और शर्करा-[2] स्नान कराये । इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पञ्चामृत कहते हैं ।

अथवा पाद्य-समर्पणके लिये कहे गये 'नमोऽस्तु नील-ग्रीवाय०' इत्यादि मन्त्रद्वारा पञ्चामृतसे स्नान कराये । तदनन्तर 'मा नस्तोके०'[3] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे । 'नमो धृष्णवे०'[4] इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उत्तरीय धारण कराये । 'या ते हेतिः०'[5] इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र (एवं यज्ञोपवीत) समर्पित करे । इसके बाद 'नमः श्वभ्यः०'[6] इत्यादि मन्त्रको पढ़कर शुद्ध बुद्धि-वाला भक्त पुरुष भगवान्‌को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाये । 'नमस्तक्षभ्यो०'[7] इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे । 'नमः पार्याय०'[8] इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये । 'नमः पर्णाय०'[9] इस मन्त्रसे बिल्वपत्र समर्पण करे । 'नमः[10] कपर्दिने च०' इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे । 'नमः आशवे०'[11] इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदन करे । तत्पश्चात् (हाथ धोकर) 'नमो ज्येष्ठाय०'[12] इस मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य अर्पित करे । फिर पूर्वोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे आचमन कराये । 'इमा रुद्राय०'[13] इस ऋचासे फल समर्पण करे । फिर 'नमो व्रज्याय०'[14] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे । तदनन्तर 'मा नो महान्तम्०' तथा 'मा नस्तोके' इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका

---

१. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । (यजु० १३ । २९)

२. बहुत-से विद्वान् 'मधु वाता' आदि तीन ऋचाओंका उपयोग केवल मधुस्नानमें ही करते हैं और शर्करा-स्नान कराते समय निम्नाङ्कित मन्त्र बोलते हैं—

अपाꣳरसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । (यजु० ९ । ३)

३. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे । (यजु० १६ । १६)

४. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च । (यजु० १६ । ३६)

५. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वत-स्त्वमयक्ष्मया परि भुज । (११) परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्नि धेहि तम् (१२) । अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो न सुमना भव (१३) । नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (१४) । (यजु० १६) ।

६. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च । (यजु० १६ । २८)

७. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः । (यजु० १६ । २७)

८. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च । (यजु० १६ । ४२)

९. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳहृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो नम आनिर्हतेभ्यः । (यजु० १६ । ४६)

१०. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च । (यजु० १६ । २९)

११. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च । (यजु० १६ । ३१)

१२. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च । (यजु० १६ । ३२)

१३. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् । (यजु० १६ । ४८)

१४. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च । (यजु० १६ । ४४)

पूजन करे । फिर 'हिरण्यगर्भः०'[1] इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये* । 'देवस्य[2] त्वा०' इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे । दीपके लिये बताये हुए 'नम आशवे०' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीराजना (आरती) करे । तत्पश्चात् 'इमा रुद्राय०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पाञ्जलि अर्पित करे । 'मा नो महान्तम्०' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे । फिर उत्तम बुद्धिवाला उपासक 'मा नस्तोके०' इस मन्त्रसे भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम करे । 'एष[3] ते०' इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे । 'यतो[4] यतः०' इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, 'त्र्यम्बकं०' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा 'नमः[5] सेना०' इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे । 'नमो[6] गोभ्यः०' इस ऋचाद्वारा धेनुमुद्रा दिखाये । इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष 'शत[7]रुद्रिय' मन्त्रकी आवृत्ति करे । तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग पाठ करे । तदनन्तर 'देवा[8] गातु०' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे । इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधिका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया ।

महर्षियो ! अब संक्षेपसे भी पार्थिवपूजनकी वैदिक विधिका वर्णन सुनो । 'सद्यो[9] जातं०' इस ऋचासे पार्थिव लिङ्ग बनानेके लिये मिट्टी ले आये । 'वामदेवा[10]य०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसमें जल डाले । (जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय तब) 'अघोर[11]' मन्त्रसे लिङ्ग निर्माण करे । फिर 'तत्पुरुषाय[12]' इस मन्त्रसे विधिवत् उसमें भगवान् शिवका आवाहन करे । तदनन्तर '[13]ईशान०' मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे । इनके सिवा अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे । इसके बाद विद्वान् पुरुष पञ्चाक्षर मन्त्रसे अथवा गुरुके दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि ।
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥
(२० । ४३)

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी पूजा करे । वह भ्रम छोड़कर उत्तम भावभक्तिसे शिवकी आराधना करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही मनोवाञ्छित फल देते हैं ।

---

१. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

* यह मन्त्र यजुर्वेदके अन्तर्गत तीन स्थानोंमें पठित और तीन मन्त्रोंके रूपमें परिगणित है । यथा—यजु० १३ । ४; २३ । १ तथा २५ । १० में ।

२. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि । (यजु० २० । ३)

३. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः । (यजु० ३ । ५७)

४. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ (यजु० ३६ । २२)

५. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ (यजु० १६ । २६)

६. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥
(गोमतीविद्या)

७. यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है । (देखिये यजु० अध्याय १६)

८. देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ (यजु० ८ । २१)

९. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

१०. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः ।

११. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

१२. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

१३. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम् ॥

ब्राह्मणो ! यहाँ जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक दूसरी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके साथ ही सर्व-साधारणके लिये उपयोगी है। मुनिवरो ! पार्थिवलिङ्गकी पूजा भगवान् शिवके नामोंसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली है। मैं उसे बताता हूँ, सुनो ! हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और महादेव—ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं। इनमेंसे प्रथम नामके द्वारा अर्थात् 'ॐहराय नमः' का उच्चारण करके पार्थिवलिङ्ग बनानेके लिये मिट्टी लाये। दूसरे नाम अर्थात् 'ॐमहेश्वराय नमः' का उच्चारण करके लिङ्ग-निर्माण करे। फिर 'ॐशम्भवे नमः' बोलकर उस पार्थिव-लिङ्गकी प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् 'ॐशूलपाणये नमः' कहकर उस पार्थिवलिङ्गमें भगवान् शिवका आवाहन करे। 'ॐपिनाकधृषे नमः' कहकर उस शिवलिङ्गको नहलाये। 'ॐशिवाय नमः' बोलकर उसकी पूजा करे। फिर 'ॐपशुपतये नमः' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें 'ॐमहादेवाय नमः' कहकर आराध्यदेवका विसर्जन कर दे। प्रत्येक नामके आदिमें ॐकार और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'नमः'पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभावसे पूजनसम्बन्धी सारे कार्य करने चाहिये*।

षडक्षर मन्त्रसे अङ्गन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति सम्पन्न करके फिर नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे। जो कैलास पर्वतपर एक सुन्दर सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान हैं, जिनके वामभागमें भगवती उमा उनसे सटकर बैठी हुई हैं, सनक-सनन्दन आदि भक्तजन जिनकी पूजा कर रहे हैं तथा जो भक्तोंके दुःखरूपी दावानलको नष्ट कर देनेवाले अप्रमेयशक्तिशाली ईश्वर हैं, उन विश्वविभूषण भगवान् शिवका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे— उनकी अङ्गकान्ति चाँदीके पर्वतकी भाँति गौर है। वे अपने मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं। रत्नोंके आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअङ्ग और भी उद्भासित हो उठा है। उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हैं और देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन्होंने वस्त्रकी जगह व्याघ्रचर्म धारण कर रक्खा है। वे इस विश्वके आदि हैं, बीज (कारण) रूप हैं तथा सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं।*

इस प्रकार ध्यान तथा उत्तम पार्थिवलिङ्गका पूजन करके गुरुके दिये हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। विप्रवरो ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय (यजु० १६ वें अध्यायके मन्त्रों) का पाठ

---

* हरो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात्॥
मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च।
स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम्॥
ॐकारादिचतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैर्नामभिः क्रमात्।
कर्तव्याश्च क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा॥
(शि० पु० वि० २०। ४१-४३)

* अङ्गन्यास और करन्यासका प्रयोग इस प्रकार समझना चाहिये। ॐ ॐअङ्गुष्ठाभ्यां नमः १। ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः २। ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः ३। ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः ४। ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः ५। ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ६। इति करन्यासः। ॐ ॐहृदयाय नमः १। ॐ नं शिरसे स्वाहा २। ॐ मं शिखायै वषट् ३। ॐ शिं कवचाय हुम् ४। ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ५। ॐ यं अस्त्राय फट् ६। इति हृदयादिषडङ्गन्यासः। यहाँ करन्यास और हृदयादिषडङ्गन्यासके छः-छः वाक्य दिये गये हैं। इनमें करन्यासके प्रथम वाक्यको पढ़कर दोनों तर्जनी अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठोंका स्पर्श करना चाहिये। शेष वाक्योंको पढ़कर अङ्गुष्ठोंसे तर्जनी आदि अंगुलियोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार अङ्गन्यासमें भी दाहिने हाथसे हृदयादि अङ्गोंका स्पर्श करनेकी विधि है। केवल कवचन्यासमें दाहिने हाथसे बायीं भुजा और बायें हाथसे दायीं भुजाका स्पर्श करना चाहिये। 'अस्त्राय फट्' इस अन्तिम वाक्यको पढ़ते हुए दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे ले आकर बायीं हथेलीपर ताली बजानी चाहिये। ध्यानसम्बन्धी श्लोक, जिनके भाव ऊपर दिये गये हैं, इस प्रकार हैं—

कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैः सनन्दादिभिरर्च्यमानम्।
भक्तार्तिदावानलहाप्रमेयं ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वभूषणम्॥
ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥
(शि० पु० वि० २०। ५१-५२)

करे। तत्पश्चात् अञ्जलिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्ति-भावसे निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

सबको सुख देनेवाले कृपानिधान भूतनाथ शिव! मैं आपका हूँ। आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं। मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है। यह जानकर मुझपर प्रसन्न होइये। कृपा कीजिये। शंकर! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय। गौरीनाथ! मैं आधुनिक युगका महान् पापी हूँ, पतित हूँ और आप सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं। इस बातका विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें। महादेव! सदाशिव! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अबतक आपको पूर्णरूपसे नहीं जाना है। फिर मैं कैसे जान सकता हूँ? महेश्वर! मैं जैसा हूँ, वैसा ही, उसी रूपमें सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ। आपके आश्रित हूँ, इसलिये आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ। परमेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये।'*

मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके हाथमें लिये हुए अक्षत और पुष्पको भगवान् शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेवको भक्तिभावसे विधिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तदनन्तर शुद्ध बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी परिक्रमा करे। फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियोंद्वारा देवेश्वर शिवकी स्तुति करे। इसके बाद गला बजाकर (गलेसे अव्यक्त शब्दका उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत चित्तवाला साधक भगवान्‌को प्रणाम करे। फिर आदरपूर्वक विज्ञप्ति करे और उसके बाद विसर्जन। मुनिवरो! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा बतायी गयी। वह भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान् शिवके प्रति भक्तिभावको बढ़ानेवाली है। (अध्याय १९-२०)

पार्थिवपूजाकी महिमा, शिवनैवेद्यभक्षणके विषयमें निर्णय तथा बिल्वका माहात्म्य

(तदनन्तर ऋषियोंके पूछनेपर किस कामनाकी पूर्तिके लिये कितने पार्थिवलिङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये, इस विषय-का वर्णन करके) **सूतजी बोले**—महर्षियो! पार्थिवलिङ्गोंकी पूजा कोटि-कोटि यज्ञोंका फल देनेवाली है। कलियुगमें लोगोंके लिये शिवलिङ्ग-पूजन जैसा श्रेष्ठ दिखायी देता है, वैसा दूसरा कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है। शिवलिङ्ग भोग और मोक्ष देनेवाला है। लिङ्ग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो चार अंगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा वेदीसे युक्त हो, उस शिवलिङ्गको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने 'उत्तम' कहा है। उससे आधा 'मध्यम' और उससे आधा 'अधम' माना गया है। इस तरह तीन प्रकारके शिवलिङ्ग कहे गये हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिङ्गकी पूजा करे। ब्राह्मणो! महर्षियो! अधिक कहनेसे क्या लाभ? शिवलिङ्गका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है†। द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही शिवलिङ्ग-

---

* तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड। कृपानिधे इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया। कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥
अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान्। इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु॥
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि। न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वां सदाशिव॥
यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर। रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर॥

(शि० पु० वि० २०। ५६—६०)

† ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः। पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम्॥
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः। अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः॥

(शि० पु० वि० २१। ३९—४०)

की पूजा करना श्रेष्ठ है; परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्मति नहीं है। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है। दधीचि और गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दग्ध हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता।*

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यान्त पूजन करके उनकी त्रिभुवनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके क्रमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृङ्गी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, जो क्रमशः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् भगवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे। इसके बाद पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करके शतरुद्रिय स्तोत्रका, नाना प्रकार-की स्तुतियोंका तथा शिवपञ्चाङ्गका पाठ करे। तत्पश्चात् परि-क्रमा और नमस्कार करके शिवलिङ्गका विसर्जन करे। इस प्रकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तरा-भिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिङ्ग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर नहीं बैठना या खड़ा होना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या सामने पड़ती है (इष्टदेवका सामना रोकना ठीक नहीं)। शिवलिङ्गसे उत्तर दिशामें भी न बैठे; क्योंकि उधर भगवान् शंकरका वामाङ्ग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी उमा विराज-मान हैं। पूजकको शिवलिङ्गसे पश्चिम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेवका पृष्ठभाग है (पीछेकी ओरसे पूजा करना उचित नहीं है)। अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है। उसीका आश्रय लेना चाहिये। तात्पर्य यह कि शिवलिङ्गसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूजा करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाकर, रुद्राक्षकी माला लेकर तथा बिल्वपत्रका संग्रह करके ही भगवान् शंकरकी पूजा करे, इनके बिना नहीं। मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले तो मिट्टीसे भी ललाटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये।

ऋषि बोले—मुने! हमने पहलेसे यह बात सुन रक्खी है कि भगवान् शिवका नैवेद्य नहीं ग्रहण करना चाहिये। इस विषयमें शास्त्रका निर्णय क्या है, यह बताइये। साथ ही बिल्वका माहात्म्य भी प्रकट कीजिये।

सूतजीने कहा—मुनियो! आप शिवसम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाले हैं। अतः आप सबको शतशः धन्यवाद है। मैं प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताता हूँ, आप सावधान होकर सुनें। जो भगवान् शिवका भक्त है, बाहर-भीतरसे पवित्र और शुद्ध है, उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा दृढ़ निश्चयसे युक्त है, वह शिव-नैवेद्यका अवश्य भक्षण करे। भगवान् शिवका नैवेद्य अग्राह्य है, इस भावनाको मनसे निकाल दे। शिवके नैवेद्यको देख लेनेमात्रसे भी सारे पाप दूर भाग जाते हैं, उसको खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्यको सिर झुकाकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण करे और प्रयत्न करके शिव-स्मरणपूर्वक उसका भक्षण करे। आये हुए शिव-नैवेद्यको जो यह कहकर कि मैं इसे दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा, लेनेमें विलम्ब कर देता है, वह मनुष्य निश्चय ही पापसे बँध जाता है। जिसने शिवकी दीक्षा ली हो, उस शिवभक्तके लिये यह शिव-नैवेद्य अवश्य भक्षणीय है—ऐसा कहा जाता है। शिवकी दीक्षासे युक्त शिव-भक्त पुरुषके लिये सभी शिवलिङ्गोंका नैवेद्य शुभ एवं 'महा-प्रसाद' है; अतः वह उसका अवश्य भक्षण करे। परंतु जो अन्य देवताओंकी दीक्षासे युक्त हैं और शिवभक्तिमें भी मनको लगाये हुए हैं, उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणके विषयमें क्या निर्णय है—इसे आपलोग प्रेमपूर्वक सुनें। ब्राह्मणो! जहाँसे शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, रस-लिङ्ग (पारदलिङ्ग) में, पाषाण, रजत तथा सुवर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केसर-निर्मित लिङ्गमें, स्फटिकलिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें तथा समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें विराजमान भगवान् शिवके नैवेद्यका भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करने-वाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्यका भक्षण करके उसे (सिरपर) धारण करे तो उसका सारा पाप शीघ्र ही नष्ट

* यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा।
अन्यत् समाचरेन्मर्त्यो न संकल्पफलं लभेत्॥
(शि० पु० वि० २१।५४)

हो जाता है । पर जहाँ चण्डका अधिकार है, वहाँ जो शिवनिर्माल्य हो, उसे साधारण मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये । जहाँ चण्डका अधिकार नहीं है, वहाँके शिव-निर्माल्यका सभीको भक्तिपूर्वक भोजन करना चाहिये । बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लोहनिर्मित (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है अथवा जो सिद्धोंद्वारा स्थापित हैं वे लिङ्ग), स्वयम्भूलिङ्ग—इन सब लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं (मूर्तियों) में चण्डका अधिकार नहीं है। जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करता है, उसके कायिक, वाचिक और मानसिक—तीनों प्रकारके पाप यहाँ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जो शिव-नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल और जल अग्राह्य है, वह सब भी शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य हो जाता है । मुनीश्वरो ! शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ा हुआ जो द्रव्य है, वह अग्राह्य है । जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर शिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर चढ़ाया नहीं जाता, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये । मुनिवरो ! इस प्रकार नैवेद्यके विषयमें शास्त्रका निर्णय बताया गया।

अब तुमलोग सावधान हो आदरपूर्वक बिल्वका माहात्म्य सुनो । यह बिल्व वृक्ष महादेवका ही रूप है । देवताओंने भी इसकी स्तुति की है । फिर जिस किसी तरहसे इसकी महिमा कैसे जानी जा सकती है । तीनों लोकोंमें जितने पुण्य-तीर्थ प्रसिद्ध हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थ बिल्वके मूलभागमें निवास करते हैं । जो पुण्यात्मा मनुष्य बिल्वके मूलमें लिङ्गस्वरूप अविनाशी महादेवजीका पूजन करता है, वह निश्चय ही शिवपदको प्राप्त होता है । जो बिल्वकी जड़के पास जलसे अपने मस्तकको सींचता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल पा लेता है और वही इस भूतलपर पावन माना जाता है । इस बिल्वकी जड़के परम उत्तम थालेको जलसे भरा हुआ देखकर महादेवजी पूर्णतया संतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिसे बिल्वके मूलभागका पूजन करता है, वह शिवलोकको पाता है और इस लोकमें भी उसकी सुख-संतति बढ़ती है । जो बिल्वकी जड़के समीप आदरपूर्वक दीपावली जलाकर रखता है, वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न हो भगवान् महेश्वरमें मिल जाता है । जो बिल्वकी शाखा थामकर हाथसे उसके नये-नये पल्लव उतारता और उनसे उस बिल्वकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो बिल्वकी जड़के समीप भगवान् शिवमें अनुराग रखनेवाले एक भक्तको भी भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है । जो बिल्वकी जड़के पास शिवभक्तको खीर और घृतसे युक्त अन्न देता है, वह कभी दरिद्र नहीं होता । ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने साङ्गोपाङ्ग शिवलिङ्गपूजनका वर्णन किया । यह प्रवृत्तिमार्गी तथा निवृत्तिमार्गी पूजकोंके भेदसे दो प्रकारका होता है । प्रवृत्तिमार्गी लोगोंके लिये पीठ-पूजा इस भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली होती है । प्रवृत्त पुरुष सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे और अभिषेकके अन्तमें अगहनीके चावलसे बना हुआ नैवेद्य निवेदन करे । पूजाके अन्तमें शिवलिंगको शुद्ध सम्पुटमें विराजमान करके घरके भीतर कहीं अलग रख दे । निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर ही शिवपूजनका विधान है । उन्हें भिक्षा आदिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित कर देना चाहिये । निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिसे पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा—अपने मस्तकपर धारण करें ।

(अध्याय २१-२२)

शिवनाम-जप तथा भस्मधारणकी महिमा, त्रिपुण्ड्के देवता और स्थान आदिका प्रतिपादन

ऋषि बोले—महाभाग व्यासशिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है। अब आप उस परम उत्तम भस्म-माहात्म्यका ही वर्णन कीजिये । भस्म-माहात्म्य, रुद्राक्ष-माहात्म्य तथा उत्तम नाम-माहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्द दीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है । जो लोग भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं; उनका देहधारण सफल है तथा उनके समस्त कुलका उद्धार हो गया। जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदाशिव और शिव इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर

वृक्षके अङ्गारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकते। 'हे श्रीशिव ! आपको नमस्कार है' (श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्) ऐसी बात जब मुँहसे निकलती है, तब वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणो ! शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यमय माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणी-स्नानका फल पा लेता है। भगवान् शिवका नाम 'गङ्गा' है, विभूति 'यमुना' मानी गयी है तथा रुद्राक्षको 'सरस्वती' कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके बिना दूसरा कौन भलीभाँति जानता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं।

विप्रगण ! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामोंकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। तुम सब लोग प्रेमपूर्वक सुनो। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है। 'शिव' इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। शौनक ! पापमूलक जो नाना प्रकारके दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम (भगवन्नाम) से ही नष्ट होनेवाले हैं। दूसरे साधनोंसे सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं। जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है। मुने ! जिनका शिवनाम-जपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं। महर्षे ! भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर नहीं सकते।* जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ हो संसाररूपी समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने ! संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपोंका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिव-नामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको उस शिव-नामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टि-जनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते। जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।* मुनीश्वर ! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है।

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है। जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है—इसमें संशय नहीं है। जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। शौनक ! जिसके अङ्ग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनाम-जपका आदर करने लगा है, वह घोर संसार-सागरको भी पार कर ही लेता है। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसार-सागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है। मुनिवरो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-नामके सर्वपापापहारी माहात्म्यका एक ही श्लोकमें वर्णन करता हूँ। भगवान् शंकरके एक नाममें भी पाप हरण-की जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं

* भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः।
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने॥
पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः।
भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने॥

(शि० पु० वि० २३। २६-२७)

* शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि॥
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा॥

(शि० पु० वि० २३। २९-३३)

सकता।* मुने! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिव-नामके प्रभावसे ही उत्तम सद्गति प्राप्त की थी। इसी तरह कोई ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है। अब तुम भस्मका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पावन वस्तुओंको भी पावन करनेवाला है।

महर्षियो! भस्म सम्पूर्ण मङ्गलोंको देनेवाला तथा उत्तम है; उसके दो भेद बताये गये हैं, उन भेदोंका मैं वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो। एकको 'महाभस्म' जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म'। महाभस्मके भी अनेक भेद हैं। वह तीन प्रकारका कहा गया है— श्रौत, स्मार्त और लौकिक। स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका वर्णन किया गया है। श्रौत और स्मार्त भस्मको केवल द्विजोंके ही उपयोगमें आनेके योग्य कहा गया है। तीसरा जो लौकिक भस्म है, वह अन्य सब लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है। श्रेष्ठ महर्षियोंने यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म धारण करना चाहिये। दूसरे लोगोंके लिये बिना मन्त्रके ही केवल धारण करनेका विधान है। जले हुए गोबरसे प्रकट होनेवाला भस्म आग्नेय कहलाता है। महामुने! वह भी त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है, ऐसा कहा गया है। अग्निहोत्रसे उत्पन्न हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये। अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्र धारणके काममें आ सकता है। जाबालोपनिषद्‌में आये हुए 'अग्निः' इत्यादि सात मन्त्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन (विभिन्न अंगोंमें मर्दन या लेपन) करना चाहिये। महर्षि जाबालिने सभी वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या बिना मन्त्रके भी आदरपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता बतायी है। समस्त अङ्गोंमें सजल भस्मको मलना अथवा विभिन्न अङ्गोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी पुरुष प्रमादसे भी न छोड़े, ऐसा श्रुतिका आदेश है। भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया है। अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और लक्ष्मीदेवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड्रके रूपमें भस्म धारण किया है।

इसके पश्चात् भस्म-धारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा एवं विधि बताकर सूतजीने फिर कहा—महर्षियो! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। अतः तुम्हें भी इसे गुप्त ही रखना चाहिये। मुनिवरो! ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है। भौंहोंके मध्य भागसे लेकर जहाँतक भौंहोंका अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाटमें धारण करना चाहिये। मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अङ्गुष्ठद्वारा प्रतिलोमभावसे की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है। अथवा बीचकी तीन अंगुलियोंसे भस्म लेकर यत्नपूर्वक भक्तिभावसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भोग और मोक्षको देनेवाला है। त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अङ्गोंमें स्थित हैं; मैं उनका परिचय देता हूँ। सावधान होकर सुनो। मुनिवरो! प्रणवका प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिव-दीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण यजुर्वेद, मध्यंदिनसवन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं। प्रणवका तीसरा अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीयसवन तथा शिव—ये तीसरी रेखाके नौ देवता हैं। इस प्रकार स्थान-देवताओंको उत्तम भक्तिभावसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुआ पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। मुनीश्वर! ये सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थान-देवता बताये गये हैं; अब उनके सम्बन्धी स्थान बताता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनो। बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानोंमें त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिंडली और दोनों पैर—ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं, इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी,

---

* पापानां हरणे शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि यावती।
शक्नोति पातकं तावत् कर्तुं नापि नरः क्वचित्॥
(शि० पु० वि० २३।४२)

वायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इन सबका नाममात्र लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे।

अथवा एकाग्रचित्त हो सोलह स्थानमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे। मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कंधों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयोंमें, हृदयमें, नाभिमें दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अश्विनी कुमारोंका शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे। ये सब मिलकर सोलह देवता हैं। अश्विनीकुमार दो कहे गये हैं–नासत्य और दस्र। अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग—इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तकमें शिव, केशमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विघ्नराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊरुओंमें नाग और नागकन्याएँ, दोनों घुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सम्पूर्ण तीर्थ देवतारूपसे विराजमान हैं। इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया। अब आठ स्थान बताये जाते हैं। गुह्य स्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कंधे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं। मुनीश्वरो! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है। अथवा मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके योग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्धूलन (भस्मको अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलनमें भी असमर्थ हो तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये। त्रिनेत्रधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए 'नमः शिवाय' कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। 'ईशाभ्यां नमः' ऐसा कहकर दोनों पार्श्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। 'बीजाभ्यां नमः' यह बोलकर दोनों कलाइयोंमें भस्म लगावे। 'पितृभ्यां नमः' कहकर नीचेके अङ्गमें, 'उमेशाभ्यां नमः' कहकर ऊपरके अङ्गमें तथा 'भीमाय नमः' कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये।

(अध्याय २३, २४)

रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महाप्राज्ञ! महामते! शिवरूप शौनक! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो। रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्शनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है। मुने! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके सामने रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन किया था।

भगवान् शिव बोले—महेश्वरि शिवे! मैं तुम्हारे प्रेमवश भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनो। महेशानि! पूर्वकालकी बात है, मैं मनको संयममें रखकर हजारों दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा। एक दिन सहसा मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। परमेश्वरि! मैं सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। अतः उस समय मैंने लीलावश ही अपने दोनों नेत्र खोले, खोलते ही मेरे मनोहर नेत्रपुटोंसे कुछ जलकी बूँदें गिरीं। आँसूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गया। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अश्रुबिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैंने विष्णुभक्तको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये। भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैंने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लङ्का, मलयाचल, सह्यगिरि, काशी तथा अन्य देशोंमें भी उनके अङ्कुर उगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष असह्य पापसमूहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं। मेरी आज्ञासे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाक्ष भी हैं। उन ब्राह्मणादि जातिवाले रुद्राक्षोंके वर्ण, श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें। भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और विशेषतः शिवभक्तोंको शिव-पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको अवश्य धारण करना चाहिये। आँवलेके फलके बराबर जो

रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है और जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्नकोटिमें की गयी है। अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी उत्तम प्रक्रिया बतायी जाती है। इसे बतानेका उद्देश्य है भक्तोंकी हितकामना। पार्वती! तुम भली भाँति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनो।

महेश्वरि! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुञ्जाफलके समान बहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला है। रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-ही-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक-एक बड़े रुद्राक्षसे एक एक छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने दसगुना अधिक फल देनेवाला बताया है। पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्ष-धारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है। अतः अवश्य ही उसे धारण करना चाहिये। परमेश्वरि! लोकमें मङ्गलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती। देवि! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, मजबूत, स्थूल, कण्टक-युक्त (उभरे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलषित पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो टूटा-फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो व्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन पाँच प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये। जिस रुद्राक्षमें अपने-आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणीका होता है। रुद्राक्ष-धारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। इस जगत्‌में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। भक्तिमान् पुरुष साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बना ले और उसे सिरपर धारण करे। तीन सौ साठ दानोंको लंबे सूत्रमें पिरोकर एक हार बना ले। वैसे-वैसे तीन हार बनाकर भक्तिपरायण पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे और उसे यथास्थान धारण किये रहे।

इसके बाद किस अङ्गमें कितने रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, यह बताकर सूतजी बोले—महर्षियो! सिरपर ईशान-मन्त्रसे, कानमें तत्पुरुष-मन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अघोरमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अघोर-बीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे। उदरपर वामदेव-मन्त्रसे पंद्रह रुद्राक्षोंद्वारा गुँथी हुई माला धारण करे। अथवा अङ्गोंसहित प्रणवका पाँच बार जप करके रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे। अथवा मूलमन्त्र ('नमः शिवाय') से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा आदिको त्याग दे। गिरिराजनन्दिनी उमे! श्वेत रुद्राक्ष केवल ब्राह्मणोंको ही धारण करना चाहिये। गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष क्षत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है। वैश्योंके लिये प्रतिदिन बारंबार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासी—सबको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है। इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। उमे! पहले आँवलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे। जो रोगी हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग्य छेद न हों, ऐसे रुद्राक्ष मङ्गलाकाङ्क्षी पुरुषोंको नहीं धारण करने चाहिये। रुद्राक्ष मेरा मङ्गलमय लिङ्ग-विग्रह है। वह अन्ततोगत्वा चनेके बराबर लघुतर होता है। सूक्ष्म रुद्राक्षको ही सदा प्रशस्त माना गया है। सभी आश्रमों, समस्त वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।* यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष-धारणका विधान है। जिसके ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगा हो और सभी अङ्ग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो मृत्युञ्जयमन्त्रका जप कर रहा हो, उसका दर्शन करनेसे साक्षात् रुद्रके दर्शनका फल प्राप्त होता है।

पार्वती! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिभावसे उनका परिचय सुनो। एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और

* सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा × × × ×॥
(शि० पु० वि० २५। ४७)

मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँसे लक्ष्मी दूर नहीं जातीं। उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेश्वर कहा गया है। वह सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित होती हैं। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है। वह दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्र-रूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ है। सबको मुक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है पञ्चमुख रुद्राक्ष समस्त पापोंको दूर कर देता है। छः मुखोंवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनङ्गस्वरूप और अनङ्ग नामसे ही प्रसिद्ध है। देवेशि! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णायु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधारी शंकर हो जाता है। नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिलमुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ रूप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं। जो मनुष्य भक्ति-परायण हो अपने बायें हाथमें नवमुख रुद्राक्षको धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। देवेशि! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं! परमेश्वरि! ग्यारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। बारह मुखवाले रुद्राक्षको केशप्रदेशमें धारण करे। उसके धारण करनेसे मानो मस्तकपर बारहों आदित्य विराजमान हो जाते हैं। तेरह मुखवाला रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टोंको पाता तथा सौभाग्य और मङ्गल लाभ करता है। चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परम शिवरूप है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे। इससे समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके चौदह भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। १. ॐ ह्रीं नमः। २. ॐ नमः। ३. क्लीं नमः। ४. ॐ ह्रीं नमः। ५. ॐ ह्रीं नमः। ६. ॐ ह्रीं हुं नमः। ७. ॐ हुं नमः। ८. ॐ हुं नमः। ९. ॐ ह्रीं हुं नमः। १०. ॐ ह्रीं नमः। ११. ॐ ह्रीं हुं नमः। १२. ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः। १३. ॐ ह्रीं नमः। १४. ॐ नमः। इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षको धारण करनेका विधान है। साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धा-भक्तिसे सम्पन्न हो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सब-के-सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर सशङ्क हो दूर खिसक जाते हैं। पार्वती! रुद्राक्षमालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी वृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये।

मुनीश्वर! भगवान् शिवने देवी पार्वतीके सामने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने कह सुनाया। मुनीश्वरो! मैंने तुम्हारे समक्ष इस विद्येश्वर-संहिताका वर्णन किया है। यह संहिता सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली तथा भगवान् शिवकी आज्ञासे नित्य मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

(अध्याय २५)

॥ विद्येश्वरसंहिता सम्पूर्ण ॥

रुद्रसंहिता (प्रथम सृष्टिखण्ड)

ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीका उन्हें नारदमोह-का प्रसङ्ग सुनाना; कामविजयके गर्वसे युक्त हुए नारदका शिव, ब्रह्मा तथा विष्णुके पास जाकर अपने तपका प्रभाव बताना

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि ॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोधस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ।

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि ।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, एकमात्र, पुरुषोत्तम शिवकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं ।

वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं
शिवं स्वतस्स्रष्टुमिदं विचष्टे ।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति
यत्संनिधौ चुम्बकलोहवत्तम् ॥

जैसे लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आसपास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपञ्चको रचनेकी विधि बतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर वन्दना करता हूँ ।

व्यासजी कहते हैं—जगत्‌के पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नमस्कार करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं । एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि सभी मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा—

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी ! विद्येश्वर-संहिताकी जो साध्य-साधन-खण्ड नामवाली शुभ एवं उत्तम कथा है, उसे हमलोगोंने सुन लिया । उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिव-भक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रकट करनेवाली है । विद्वन् ! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये । साथ ही शिव और पार्वतीके दिव्य चरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये । हम पूछते हैं, निर्गुण महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं ? हम सब लोग विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते । सृष्टिके पहले भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे स्थित होते हैं ? फिर सृष्टिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीडा करते हुए सम्यक् व्यवहार-बर्ताव करते हैं और सृष्टिकल्पका अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं ? लोक-कल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं ? और प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं ? यह सब हमसे कहिये । हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं । वे महान् दयालु हैं, इसलिये अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते । ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीन देवता शिवके ही अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं । उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये । प्रभो ! आप उमाके आविर्भाव और विवाहकी भी कथा कहिये । विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अन्य लीलाओंका भी वर्णन कीजिये । निष्पाप सूतजी ! (हमारे प्रश्नके उत्तरमें) आपको ये सब तथा दूसरी बातें भी अवश्य कहनी चाहिये ।

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो ! आपलोगोंने बड़ी उत्तम बात पूछी है । भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंकी जो आन्तरिक निष्ठा हुई है, इसके लिये आप धन्यवादके पात्र हैं । ब्राह्मणो ! भगवान् शंकरका गुणानुवाद सात्त्विक, राजस और

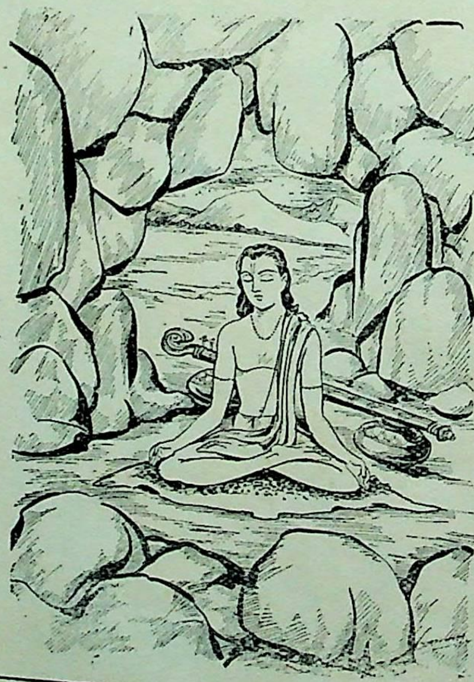


श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रकट होना

[पृष्ठ ८४

तामस तीनों ही प्रकृतिके मनुष्योंको सदा आनन्द प्रदान करनेवाला है। पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कसाईके सिवा दूसरा कौन पुरुष उस गुणानुवादको सुननेसे ऊब सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि वह गुणावली संसाररूपी रोगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगनेवाली और सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाली है *। ब्राह्मणो! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि प्रयत्नपूर्वक शिवलीलाका वर्णन करता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनें। जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार देवर्षि नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पितासे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुनकर शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया और वे उन मुनिशिरोमणिको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके यशका गान करने लगे।

एक समयकी बात है, मुनिशिरोमणि विप्रवर नारदजीने, जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं, विनीतचित्त हो तपस्यामें मन लगाया। हिमालय पर्वतमें कोई एक गुफा थी, जो बड़ी शोभासे सम्पन्न



दिखायी देती थी। उसके निकट देवनदी गङ्गा निरन्तर वेगपूर्वक बहती थीं। वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था। दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये उसी आश्रममें गये। उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे। उनका अन्तःकरण शुद्ध था। वे दृढ़तापूर्वक आसन बाँधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये। ब्राह्मणो! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाला 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ)—यह विज्ञान प्रकट होता है। मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, उस समय यह समाचार पाकर देवराज इन्द्र काँप उठे। वे मानसिक संतापसे विह्वल हो गये। 'ये नारद मुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की। उस समय देवराजने अपने मनसे कामदेवका स्मरण किया। स्मरण करते ही कामदेव आ गये। महेन्द्रने उन्हें नारदजीकी तपस्यामें विघ्न डालनेका आदेश दिया। यह आज्ञा पाकर कामदेव वसन्तको साथ ले बड़े गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे। उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अपना प्रभाव अनेक प्रकारसे प्रकट किया। मुनिवरो! कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी नारद मुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया।

शौनक आदि महर्षियो! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनो। महादेवजीकी कृपासे ही नारदमुनिपर कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहीं उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्म कर डाला था। उस समय रतिने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। उनके याचना करनेपर वे बोले—'देवताओ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायँगे, परंतु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा। अमरगण! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतककी भूमिको नेत्रोंसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है।' भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उस समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका निजी

* शम्भोर्गुणानुवादात् को विरज्येत पुमान् द्विजाः। विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात् सदा॥
गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि। मनःश्रोत्रादिरामश्च यतः सर्वार्थदः स वै॥
(शि० पु० रुद्र० स० १। २३-२४)

प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ। वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये। वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह सुनाया, तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे वसन्तके साथ अपने स्थानको लौट गये। उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तको स्मरण न कर सके। वास्तवमें इस संसारके भीतर सभी प्राणियोंके लिये शम्भुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है। जिसने भगवान् शिवके चरणोंमें अपने आपको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सारा जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है*। नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिरकालतक तपस्यामें लगे रहे। जब उन्होंने अपनी तपस्याको पूर्ण हुई समझा, तब वे मुनि उससे विरत हो गये। 'कामदेवपर मेरी विजय हुई' ऐसा मानकर उन मुनीश्वरके मनमें व्यर्थ ही गर्व हो गया। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा। (वे यह नहीं समझ सके कि कामदेवके पराजित होनेमें भगवान् शंकरका प्रभाव ही कारण है।) उस मायासे अत्यन्त मोहित हो मुनिशिरोमणि नारद अपना काम-विजय-सम्बन्धी वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये। उस समय वे विजयके मदसे उन्मत्त हो रहे थे। वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने आपको महात्मा मानकर तथा अपने ही प्रभावसे कामदेवपर अपनी विजय हुई समझकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

वह सब सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने नारदजीसे, जो अपनी (शिवकी) ही मायासे मोहित होनेके कारण काम-विजयके यथार्थ कारणको नहीं जानते थे और अपने विवेकको भी खो बैठे थे, कहा —

रुद्र बोले—तात नारद! तुम बड़े विद्वान् हो, धन्यवादके पात्र हो। परंतु मेरी यह बात ध्यान देकर सुनो। अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना। विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने इसकी चर्चा कदापि न करना। तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना। यह सिद्धि-सम्बन्धी वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखने योग्य है, इसे कभी किसीपर प्रकट नहीं करना चाहिये। तुम मुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये अधिक जोर देकर मैं तुम्हें यह शिक्षा देता हूँ और इसे न कहनेकी आज्ञा देता हूँ; क्योंकि तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए ही मेरे अत्यन्त अनुगामी हो।

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी—अपने वृत्तान्तको गुप्त रखनेके लिये उन्हें समझाया-बुझाया। परंतु वे तो शिवकी मायासे मोहित थे। इसलिये उन्होंने उनकी दी हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। तदनन्तर मुनिशिरोमणि नारद ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने कहा—'पिताजी! मैंने अपने तपोबलसे कामदेवको जीत लिया है।' उनकी वह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन किया और सारा कारण जानकर अपने पुत्रको यह सब कहनेसे मना किया। परंतु नारदजी शिवकी मायासे मोहित थे। अतएव उनके चित्तमें मदका अङ्कुर जम गया था। उनकी बुद्धि मारी गयी थी। इसलिये नारदजी अपना सारा वृत्तान्त भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये वहाँसे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये। नारद मुनिको आते देख भगवान् विष्णु बड़े आदरसे उठे और शीघ्र ही आगे बढ़कर उन्होंने



मुनिको हृदयसे लगा लिया। मुनिके आगमनका क्या हेतु है इसका उन्हें पहलेसे ही पता था। नारदजीको अपने आसनपर बिठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके श्रीहरिने उनसे पूछा—

भगवान् विष्णु बोले—तात! कहाँसे आते हो? यहाँ

---

* दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह।
भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत्॥
(शि० पु० रु० स० २। २५)

किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है? मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो। तुम्हारे शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारदमुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तान्त बड़े अभिमानके साथ कह सुनाया। नारद मुनिका वह अहंकारयुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन भगवान् विष्णुने उनकी कामविजयके यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया।

तत्पश्चात् श्रीविष्णु बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, तपस्याके तो भंडार ही हो। तुम्हारा हृदय भी बड़ा उदार है। मुने ! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं। तुम तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हो; फिर तुममें कामविकार कैसे आ सकता है। तुम तो जन्मसे ही निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो।

श्रीहरिकी कही हुई ऐसी बहुत-सी बातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारद जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार बोले—

नारदजीने कहा—स्वामिन् ! जब मुझपर आपकी कृपा है, तब बेचारा कामदेव अपना क्या प्रभाव दिखा सकता है।

ऐसा कहकर भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारद मुनि वहाँसे चले गये।

(अध्याय १-२)

मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ उन्हें वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्‌को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! जब नारदमुनि इच्छानुसार वहाँसे चले गये, तब भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की। उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल नगरकी रचना की, जिसका विस्तार सौ योजन था। वह अद्भुत नगर बड़ा ही मनोहर था। भगवान्‌ने उसे अपने वैकुण्ठ लोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था। नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये बहुत-से विहार-स्थल थे। वह श्रेष्ठ नगर चारों वर्णोंके लोगोंसे भरा था। वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे। वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्यत थे। अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था। उनकी कन्याका वरण करनेके लिये उत्सुक हो चारों दिशाओंसे बहुत-से राजकुमार पधारे थे, जो नाना प्रकारकी वेशभूषा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे। उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिखायी देता था। ऐसे सुन्दर राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये। वे राजा शीलनिधिके द्वारपर गये। मुनिशिरोमणि नारदको आया देख महाराज शीलनिधिने श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बिठाकर उनका पूजन किया। तत्पश्चात् अपनी सुन्दरी कन्याको, जिसका नाम श्रीमती था, बुलवाया और उससे नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया। उस कन्याको देखकर नारदमुनि चकित हो गये और बोले—'राजन् ! यह देवकन्याके समान सुन्दरी महाभागा कन्या कौन है ?' उनकी यह बात सुनकर राजाने हाथ जोड़कर कहा—'मुने ! यह मेरी पुत्री है। इसका नाम श्रीमती है। अब इसके विवाहका समय आ गया है। यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं। महर्षे ! आप इसका भाग्य बताइये।'



राजाके इस प्रकार पूछनेपर कामसे विह्वल हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको सम्बोधित करके इस प्रकार बोले—'भूपाल! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, परम सौभाग्यवती है। अपने महान् भाग्यके कारण यह धन्य है और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है। इसका भावी पति निश्चय ही भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा।'

ऐसा कहकर राजासे विदा ले इच्छानुसार विचरनेवाले नारद मुनि वहाँसे चल दिये। वे कामके वशीभूत हो गये थे। शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था। वे मुनि मन-ही-मन सोचने लगे कि 'मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ? स्वयंवरमें आये हुए नरेशोंमेंसे सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण करे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है। सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है।'

ऐसा विचारकर कामसे विह्वल हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे। वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे इस प्रकार बोले—'भगवन्! मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—'मुने! अब आप अपनी बात कहिये।'

तब नारदजीने कहा—भगवन्! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्म-पालनमें तत्पर रहते हैं। उनकी एक विशाललोचना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है। उसका नाम श्रीमती है। वह विश्वमोहिनीके रूपमें विख्यात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है। प्रभो! आज मैं शीघ्र ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ। राजा शीलनिधिने अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है। इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ सहस्रों राजकुमार पधारे हैं। नाथ! मैं आपका प्रिय सेवक हूँ। अतः आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिये, जिससे राजकुमारी श्रीमती निश्चय ही मुझे वर ले।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! नारद मुनिकी ऐसी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और भगवान् शंकरके प्रभावका अनुभव करके उन दयालु प्रभुने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—

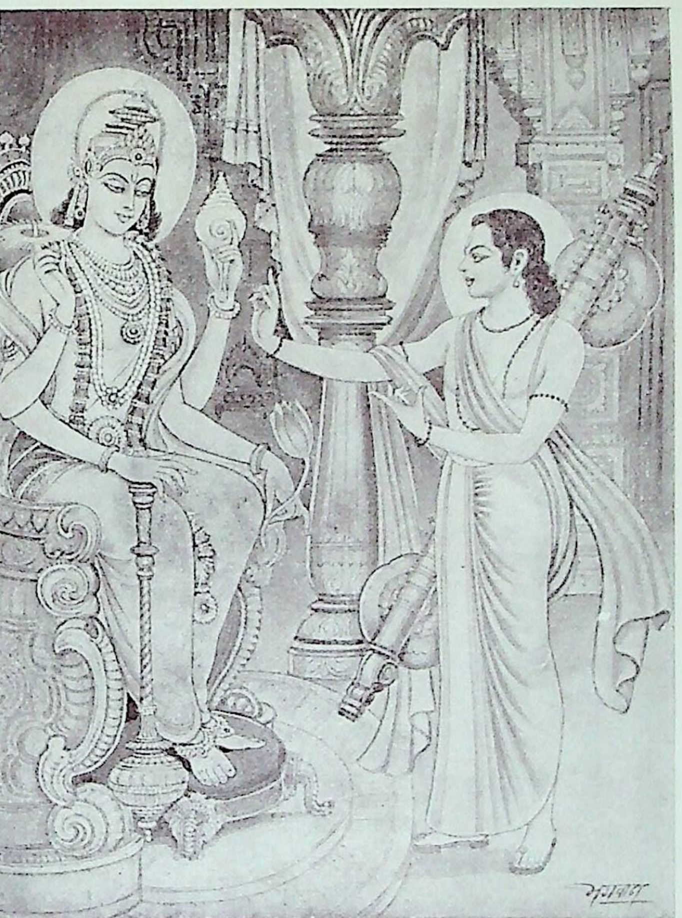
भगवान् विष्णु बोले—मुने! तुम अपने अभीष्ट स्थानको जाओ। मैं उसी तरह तुम्हारा हित-साधन करूँगा, जैसे श्रेष्ठ वैद्य अत्यन्त पीड़ित रोगीका करता है; क्योंकि तुम मुझे विशेष प्रिय हो।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख तो वानरका दे दिया और शेष अङ्गोंमें अपने-जैसा स्वरूप देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। भगवान्की पूर्वोक्त बात सुनकर और उनका मनोहर रूप प्राप्त हो गया समझकर नारदमुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। भगवान्ने क्या प्रयत्न किया है, इसको वे समझ न सके। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ राजा शीलनिधिने राजकुमारोंसे भरी हुई स्वयंवर-सभाका आयोजन किया था। विप्रवरो! राजपुत्रोंसे घिरी हुई वह दिव्य स्वयंवर-सभा दूसरी इन्द्रसभाके समान अत्यन्त शोभा पा रही थी। नारदजी उस राजसभामें जा बैठे और वहाँ बैठकर प्रसन्न मनसे बार-बार यही सोचने लगे कि 'मैं भगवान् विष्णुके समान रूप धारण किये हुए हूँ। अतः वह राजकुमारी अवश्य मेरा ही वरण करेगी, दूसरेका नहीं।' मुनिश्रेष्ठ नारदको यह ज्ञात नहीं था कि मेरा मुँह कितना कुरूप है। उस सभामें बैठे हुए सब मनुष्योंने मुनिको उनके पूर्वरूपमें ही देखा। राजकुमार आदि कोई भी उनके रूप-परिवर्तनके रहस्यको न जान सके। वहाँ नारदजीकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्रके दो पार्षद आये थे, जो ब्राह्मणका रूप धारण करके गूढ़भावसे वहाँ बैठे थे। वे ही नारदजीके रूप-परिवर्तनके उत्तम भेदको जानते थे। मुनिको कामावेशसे मूढ हुआ जान वे दोनों



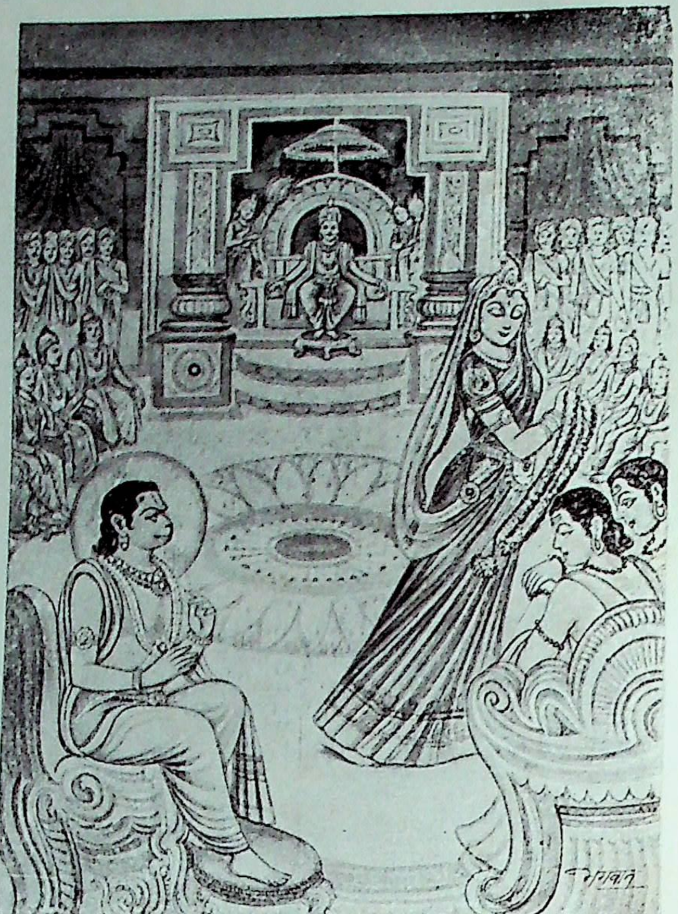
नारदजीकी काम-विजय

[पृष्ठ ७३



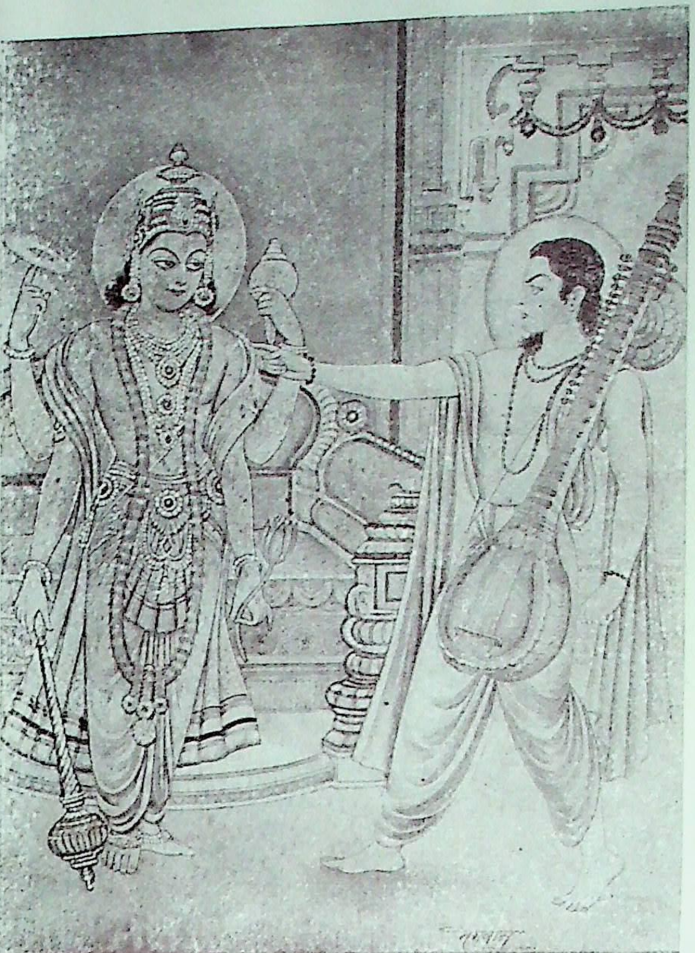
नारदजीके द्वारा सुन्दर रूपकी माँग

[पृष्ठ ७६



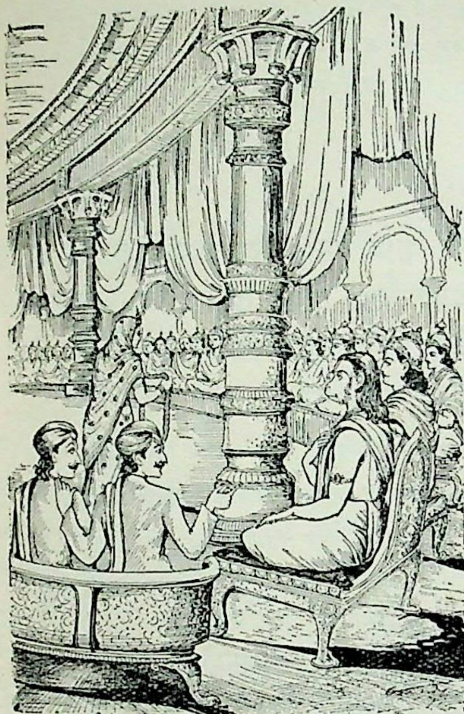
स्वयंवरमें वानर-मुख नारद

[पृष्ठ ७७



नारदजीके द्वारा भगवान् विष्णुको शाप

[पृष्ठ ७८

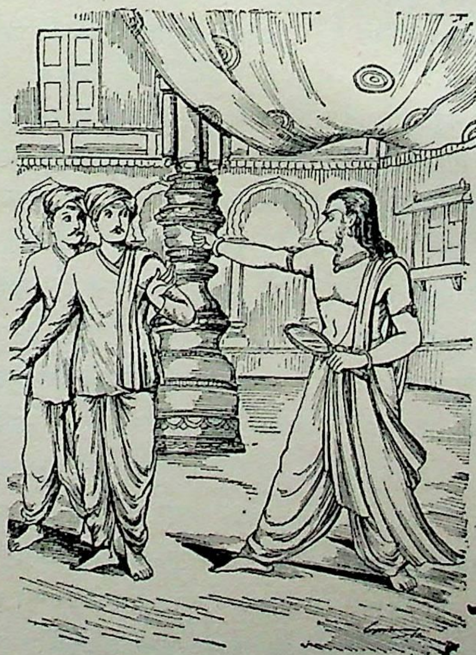


पार्षद उनके निकट गये और आपसमें बातचीत करते हुए उनकी हँसी उड़ाने लगे। परंतु मुनि तो कामसे विह्वल हो रहे थे। अतः उन्होंने उनकी यथार्थ बात भी अनसुनी कर दी। वे मोहित हो श्रीमतीको प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें वह सुन्दरी राजकन्या स्त्रियोंसे घिरी हुई अन्तःपुरसे वहाँ आयी। उसने अपने हाथमें सोनेकी एक सुन्दर माला ले रक्खी थी। वह शुभलक्षणा राजकुमारी स्वयंवरके मध्यभागमें लक्ष्मीके समान खड़ी हुई अपूर्व शोभा पा रही थी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह भूपकन्या माला हाथमें लेकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण करती हुई सारी सभामें भ्रमण करने लगी। नारद मुनिका भगवान् विष्णुके समान शरीर और वानर-जैसा मुँह देखकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर प्रसन्न मनसे दूसरी ओर चली गयी। स्वयंवर-सभामें अपने मनोवाञ्छित वरको न देखकर वह भयभीत हो गयी। राजकुमारी उस सभाके भीतर चुपचाप खड़ी रह गयी। उसने किसीके गलेमें जयमाला नहीं डाली। इतनेमें ही राजाके समान वेशभूषा धारण किये भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। किन्हीं दूसरे लोगोंने उनको वहाँ नहीं देखा। केवल उस कन्याकी ही दृष्टि उनपर पड़ी। भगवान्‌को देखते ही उस परमसुन्दरी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तत्काल ही उनके कण्ठमें वह माला पहना दी। राजाका रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु उस राजकुमारीको साथ लेकर तुरंत अदृश्य हो गये और अपने धाममें जा पहुँचे। इधर सब राजकुमार श्रीमतीकी ओरसे निराश हो गये। नारद मुनि तो कामवेदनासे आतुर हो रहे थे। इसलिये वे अत्यन्त विह्वल हो उठे। तब वे दोनों विप्ररूपधारी ज्ञानविशारद रुद्रगण कामविह्वल नारदजीसे उसी क्षण बोले—

रुद्रगणोंने कहा— हे नारद! हे मुने! तुम व्यर्थ ही कामसे मोहित हो रहे हो और सौन्दर्यके बलसे राजकुमारीको पाना चाहते हो। अपना वानरके समान घृणित मुँह तो देख लो।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! उन रुद्रगणोंका यह वचन सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे शिवकी मायासे मोहित थे। उन्होंने दर्पणमें अपना मुँह देखा। वानरके समान अपना मुँह देख वे तुरंत ही क्रोधसे जल उठे और मायासे मोहित होनेके कारण उन दोनों शिवगणोंको वहाँ शाप देते हुए बोले—'अरे! तुम दोनोंने मुझ ब्राह्मणका



उपहास किया है । अतः तुम ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न राक्षस हो जाओ । ब्राह्मणकी संतान होनेपर भी तुम्हारे आकार राक्षसके समान ही होंगे ।' इस प्रकार अपने लिये शाप सुनकर वे दोनों ज्ञानिशिरोमणि शिवगण मुनिको मोहित जानकर कुछ नहीं बोले । ब्राह्मणो ! वे सदा सब घटनाओंमें भगवान् शिवकी ही इच्छा मानते थे । अतः उदासीन भावसे अपने स्थानको चले गये और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ।

(अध्याय ३)

नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना; फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! मायामोहित नारद मुनि उन दोनों शिवगणोंको यथोचित शाप देकर भी भगवान् शिवके इच्छावश मोहनिद्रासे जाग न सके । वे भगवान् विष्णुके किये हुए कपटको याद करके मनमें दुस्सह क्रोध लिये विष्णुलोकको गये और समिधा पाकर प्रज्वलित हुए अग्निदेवकी भाँति क्रोधसे जलते हुए बोले—उनका ज्ञान नष्ट हो गया था । इसलिये वे दुर्वचनपूर्ण व्यङ्ग सुनाने लगे ।

नारदजीने कहा—हरे ! तुम बड़े दुष्ट हो, कपटी हो और समस्त विश्वको मोहमें डाले रहते हो । दूसरोंका उत्साह या उत्कर्ष तुमसे सहा नहीं जाता । तुम मायावी हो, तुम्हारा अन्तःकरण मलिन है । पूर्वकालमें तुम्हींने मोहिनीरूप धारण करके कपट किया, असुरोंको वारुणी मदिरा पिलायी, उन्हें अमृत नहीं पीने दिया । छल-कपटमें ही अनुराग रखनेवाले हरे ! यदि महेश्वर रुद्र दया करके विष न पी लेते तो तुम्हारी सारी माया उसी दिन समाप्त हो जाती । विष्णुदेव ! कपटपूर्ण चाल तुम्हें अधिक प्रिय है । तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, तो भी भगवान् शंकरने तुम्हें स्वतन्त्र बना दिया है । तुम्हारी इस चाल-ढालको समझकर अब वे (भगवान् शिव) भी पश्चात्ताप करते होंगे । अपनी वाणीरूप वेदकी प्रामाणिकता स्थापित करनेवाले महादेवजीने ब्राह्मणको सर्वोपरि बताया है । हरे ! इस बातको जानकर आज मैं बलपूर्वक तुम्हें ऐसी सीख दूँगा, जिससे तुम फिर कभी कहीं भी ऐसा कर्म नहीं कर सकोगे । अबतक तुम्हें किसी शक्तिशाली या तेजस्वी पुरुषसे पाला नहीं पड़ा था । इसीलिये आजतक तुम निडर बने हुए हो । परंतु विष्णो ! अब तुम्हें अपनी करनीका पूरा-पूरा फल मिलेगा !

भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर मायामोहित नारद मुनि अपने ब्रह्मतेजका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे खिन्न हो उठे और शाप देते हुए बोले—'विष्णो ! तुमने स्त्रीके लिये मुझे व्याकुल किया है । तुम इसी तरह सबको मोहमें डालते रहते हो । यह कपटपूर्ण कार्य करते हुए तुमने जिस स्वरूपसे मुझे संयुक्त किया था, उसी स्वरूपसे तुम मनुष्य हो जाओ और स्त्रीके वियोगका दुःख भोगो । तुमने जिन वानरोंके समान मेरा मुँह बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक हों । तुम दूसरोंको (स्त्री-विरहका) दुःख देनेवाले हो, अतः स्वयं भी तुम्हें स्त्रीके वियोगका दुःख प्राप्त हो । अज्ञानसे मोहित मनुष्योंके समान तुम्हारी स्थिति हो ।'

अज्ञानसे मोहित हुए नारदजीने मोहवश श्रीहरिको जब इस तरह शाप दिया, तब उन्होंने शम्भुकी मायाकी प्रशंसा करते हुए उस शापको स्वीकार कर लिया । तदनन्तर महालीला करनेवाले शम्भुने अपनी उस विश्वमोहिनी मायाको, जिसके कारण ज्ञानी नारद मुनि भी मोहित हो गये थे, खींच लिया । उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी पूर्ववत् शुद्धबुद्धिसे युक्त हो गये । उन्हें पूर्ववत् ज्ञान प्राप्त हो गया और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही । इससे उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ । वे अधिकाधिक पश्चात्ताप करते हुए बारंबार अपनी निन्दा करने लगे । उस समय उन्होंने ज्ञानीको भी मोहमें डालनेवाली भगवान् शम्भुकी मायाकी सराहना की । तदनन्तर यह जानकर कि मायाके कारण ही मैं भ्रममें पड़ गया था—यह सब कुछ मेरा माया-जनित भ्रम ही था, वैष्णवशिरोमणि नारदजी भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े । भगवान् श्रीहरिने उन्हें उठाकर खड़ा



कर दिया। उस समय अपनी दुर्बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे यों बोले—'नाथ ! मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी। इसलिये मैंने आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहे हैं, आपको शापतक दे डाला है। प्रभो! उस शापको आप मिथ्या कर दीजिये। हाय ! मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। अब मैं निश्चय ही नरकमें पड़ूँगा। हरे ! मैं आपका दास हूँ। बताइये, मैं क्या उपाय—कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ, जिससे मेरा पाप-समूह नष्ट हो जाय और मुझे नरकमें न गिरना पड़े।' ऐसा कहकर शुद्ध बुद्धिवाले मुनिशिरोमणि नारदजी पुनः भक्तिभावसे भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। तब श्रीविष्णुने उन्हें उठाकर मधुर वाणीमें कहा—

भगवान् विष्णु बोले—तात ! खेद न करो। तुम मेरे श्रेष्ठ भक्त हो, इसमें संशय नहीं है। मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ, सुनो। उससे निश्चय ही तुम्हारा परम हित होगा, तुम्हें नरकमें नहीं जाना पड़ेगा। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुमने मदसे मोहित होकर जो भगवान् शिवकी बात नहीं मानी थी—उसकी अवहेलना कर दी थी, उसी अपराधका भगवान् शिवने तुम्हें ऐसा फल दिया है; क्योंकि वे ही कर्मफलके दाता हैं। तुम अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लो कि भगवान् शिवकी इच्छासे ही यह सब कुछ हुआ है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही गर्वको दूर करनेवाले हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्हींका सच्चिदानन्दरूपसे बोध होता है। वे निर्गुण और निर्विकार हैं। सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे परे हैं। वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं। निर्गुण अवस्थामें उन्हींका नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामोंसे कहे जाते हैं। उन्हींकी सेवासे ब्रह्माजी जगत्के स्रष्टा हुए हैं और मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ। वे स्वयं ही रुद्ररूपसे सदा सबका संहार करते हैं। वे शिवस्वरूपसे सबके साक्षी हैं, मायासे भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतन्त्र होनेके कारण वे अपनी इच्छाके अनुसार चलते हैं। उनका विहार—आचार-व्यवहार उत्तम है और वे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। नारदमुने ! मैं तुम्हें एक सुन्दर उपाय बताता हूँ, जो सुखद, समस्त पापोंका नाशक और सदा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। तुम उसे सुनो। अपने सारे संशयोंको त्यागकर तुम भगवान् शंकरके सुयशका गान करो और सदा अनन्य-भावसे शिवके शतनाम स्तोत्रका पाठ करो। मुने ! तुम निरन्तर उन्हींकी उपासना और उन्हींका भजन करो। उन्हींके यशको सुनो और गाओ तथा प्रतिदिन उन्हींकी पूजा-अर्चा करते रहो। नारद ! जो शरीर, मन और वाणीद्वारा भगवान् शंकरकी उपासना करता है, उसे पण्डित या ज्ञानी जानना चाहिये। वह जीवन्मुक्त कहलाता है। 'शिव' इस नामरूपी दावानलसे बड़े-बड़े पातकोंके असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।* जो भगवान् शिवके नामरूपी नौकाका आश्रय लेते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जाते हैं। संसारके मूलभूत उनके सारे पाप निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं। महामुने ! संसारके मूलभूत जो पातकरूपी वृक्ष हैं, उनका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है।†

---

* शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः ।
भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥
(शि० पु० रु० सृ० ४ । ४५)

† शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते।
संसारमूलपापानि तेषां नश्यन्त्यसंशयम् ॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ॥
(शि० पु० रु० सृ० ४ । ५१-५२)

जो लोग पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापदावाग्निसे दग्ध होनेवाले प्राणियोंको उस (शिवनामामृत) के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानोंने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिवकी पूजा ही उत्कृष्ट साधन तथा जन्म-मरणकी संसारबन्धनके नाशका उपाय है। आजसे यत्नपूर्वक सावधान रहकर विधि-विधानके साथ भक्तिभावसे नित्य-निरन्तर जगदम्बा पार्वती-सहित महेश्वर सदाशिवका भजन करो, नित्य शिवकी ही कथा सुनो और कहो तथा अत्यन्त यत्न करके बारंबार शिव-भक्तोंका पूजन किया करो। मुनिश्रेष्ठ ! अपने हृदयमें भगवान् शिवके उज्ज्वल चरणारविन्दोंकी स्थापना करके पहले शिवके तीर्थोंमें विचरो। मुने ! इस प्रकार परमात्मा शंकरके अनुपम माहात्म्यका दर्शन करते हुए अन्तमें आनन्दवन (काशी) को जाओ, वह स्थान भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। वहाँ भक्तिपूर्वक विश्वनाथजीका दर्शन-पूजन करो। विशेषतः उनकी स्तुति-वन्दना करके तुम निर्विकल्प (संशयरहित) हो जाओगे, नारदजी ! इसके बाद तुम्हें मेरी आज्ञासे भक्तिपूर्वक अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये निश्चय ही ब्रह्मलोकमें जाना चाहिये। वहाँ अपने पिता ब्रह्माजीकी विशेषरूपसे स्तुति-वन्दना करके तुम्हें प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे बारंबार शिव-महिमाके विषयमें प्रश्न करना चाहिये। ब्रह्माजी शिव-भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। वे तुम्हें बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरका माहात्म्य और शतनाम-स्तोत्र सुनायेंगे। मुने ! आजसे तुम शिवाराधनमें तत्पर रहनेवाले शिवभक्त हो जाओ और विशेषरूपसे मोक्षके भागी बनो। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए भगवान् विष्णु नारदमुनिको प्रेमपूर्वक उपदेश देकर श्रीशिवका स्मरण, वन्दन और स्तवन करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये। (अध्याय ४)

नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोद्धारकी बात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! भगवान् श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारद शिवलिङ्गोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे। ब्राह्मणो ! भूमण्डल-पर घूम-फिरकर उन्होंने भोग और मोक्ष देनेवाले बहुत-से शिवलिङ्गोंका प्रेमपूर्वक दर्शन किया। दिव्यदर्शी नारदजी भूतलके तीर्थोंमें विचर रहे हैं और इस समय उनका चित्त शुद्ध है—यह जानकर वे दोनों शिवगण उनके पास गये। वे उनके दिये हुए शापसे उद्धारकी इच्छा रखकर वहाँ गये थे। उन्होंने आदरपूर्वक मुनिके दोनों पैर पकड़ लिये और मस्तक झुकाकर भलीभाँति प्रणाम करके शीघ्र ही इस प्रकार कहा—

शिवगण बोले—ब्रह्मन् ! हम दोनों शिवके गण हैं। मुने ! हमने ही आपका अपराध किया है। राजकुमारी श्रीमतीके स्वयंवरमें आपका चित्त मायासे मोहित हो रहा था। उस समय परमेश्वरकी प्रेरणासे आपने हम दोनोंको शाप दे दिया। वहाँ कुसमय जानकर हमने चुप रह जाना ही अपनी जीवन-रक्षाका उपाय समझा। इसमें किसीका दोष नहीं है। हमें अपने कर्मका ही फल प्राप्त हुआ है। प्रभो ! अब आप प्रसन्न होइये और हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये।

नारदजीने कहा—आप दोनों महादेवजीके गण हैं और सत्पुरुषोंके लिये परम सम्माननीय हैं। अतः मेरे मोह-रहित एवं सुखदायक यथार्थ वचनको सुनिये। पहले निश्चय ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गया थी, बिगड़ गयी थी और मैं सर्वथा मोहके वशीभूत हो गया था। इसीलिये आप दोनोंको मैंने शाप दे दिया। शिवगणो ! मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही होगा, तथापि मेरी बात सुनिये। मैं आपके लिये शापोद्धारकी बात बता रहा हूँ। आपलोग आज मेरे अपराधको क्षमा कर दें। मुनिवर विश्रवाके वीर्यसे जन्म ग्रहण करके आप सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध (कुम्भकर्ण-रावण) राक्षसराजका पद प्राप्त करेंगे और बलवान्, वैभवसे युक्त तथा परम प्रतापी होंगे। समस्त ब्रह्माण्डके राजा होकर शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय होंगे और शिवके ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णुके हाथों मृत्यु पाकर फिर अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जायँगे।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! महात्मा नारदमुनिकी यह बात सुनकर वे दोनों शिवगण प्रसन्न हो सानन्द अपने स्थानको लौट गये। श्रीनारदजी भी अत्यन्त आनन्दित हो अनन्यभावसे भगवान् शिवका ध्यान तथा शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए बारंबार भूमण्डलमें विचरने लगे। अन्तमें वे सबके ऊपर विराजमान शिवप्रिया काशीपुरीमें गये, जो शिवस्वरूपिणी एवं शिवको सुख देनेवाली है। काशीपुरीका दर्शन करके नारदजी कृतार्थ हो गये। उन्होंने भगवान् काशीनाथका दर्शन किया और परम प्रेम एवं परमानन्दसे युक्त हो उनकी पूजा की। काशीका सानन्द सेवन करके वे मुनिश्रेष्ठ कृतार्थताका अनुभव करने लगे और प्रेमसे विह्वल हो उसका नमन, वर्णन तथा स्मरण करते हुए ब्रह्मलोकको गये। निरन्तर शिवका स्मरण करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी। वहाँ पहुँचकर शिवतत्त्वका विशेषरूपसे ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा

नारदजीने ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके उनसे शिवतत्त्वके विषयमें पूछा। उस समय नारदजीका हृदय भगवान् शंकरके प्रति भक्तिभावनासे परिपूर्ण था।



नारदजी बोले—ब्रह्मन्! परब्रह्म परमात्माके स्वरूपको जाननेवाले पितामह! जगत्प्रभो! आपके कृपाप्रसादसे मैंने भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थमार्गका भी वर्णन सुना है। परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभी-तक नहीं हुआ है। मैं भगवान् शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं जानता। अतः प्रभो! आप क्रमशः इन विषयोंको तथा भगवान् शिवके विविध चरित्रोंको तथा उनके स्वरूप-तत्त्व, प्राकट्य, विवाह, गार्हस्थ्य धर्म—सब मुझे बताइये। निष्पाप पितामह! ये सब बातें तथा और भी जो आवश्यक बातें हों, उन सबका आपको वर्णन करना चाहिये। प्रजानाथ! शिव और शिवाके आविर्भाव एवं विवाहका प्रसङ्ग विशेषरूपसे कहिये—तथा कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनाइये। प्रभो! पहले बहुत लोगोंसे मैंने ये बातें सुनी हैं, किंतु तृप्त नहीं हो सका हूँ। इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर कृपा कीजिये।

अपने पुत्र नारदकी यह बात सुनकर लोक-पितामह ब्रह्मा वहाँ इस प्रकार बोले—— (अध्याय ५)

महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव)-का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूता शक्ति (अम्बिका) का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन) का प्रादुर्भाव, शिवके वामाङ्गसे परम पुरुष (विष्णु) का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मन्! देवशिरोमणे! तुम सदा समस्त जगत्के उपकारमें ही लगे रहते हो। तुमने लोगोंके हितकी कामनासे यह बहुत उत्तम बात पूछी है। जिसके सुननेसे सम्पूर्ण लोकोंके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, उस अनामय शिव-तत्त्वका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। शिवतत्त्वका स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्भुत है। जिस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया था, सर्वत्र केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था। न सूर्य दिखायी देते थे न चन्द्रमा। अन्यान्य ग्रहों और नक्षत्रोंका भी पता नहीं था। न दिन होता था न रात; अग्नि, पृथ्वी, वायु और जलकी भी सत्ता नहीं थी। प्रधान तत्त्व (अव्याकृत प्रकृति) से रहित सूना आकाशमात्र शेष था, दूसरे किसी तेजकी उपलब्धि नहीं होती थी। अदृष्ट आदिका भी अस्तित्व नहीं था। शब्द और स्पर्श भी साथ छोड़ चुके थे। गन्ध और रूपकी भी अभिव्यक्ति नहीं होती थी।

रसका भी अभाव हो गया था। दिशाओंका भी भान नहीं होता था। इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय 'तत्सद्ब्रह्म' इस श्रुतिमें जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो' इत्यादि रूपसे निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके भीतर निरन्तर देखते हैं। वह सत्तत्त्व मनका विषय नहीं है। वाणीकी भी वहाँतक कभी पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंगसे भी शून्य है। वह न स्थूल है न कृश, न ह्रस्व है न दीर्घ तथा न लघु है न गुरु। उसमें न कभी वृद्धि होती है न ह्रास। श्रुति भी उसके विषयमें चकितभावसे 'है' इतना ही कहती है, अर्थात् उसकी सत्तामात्रका ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देनेमें असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिःस्वरूप, अप्रमेय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य, उपद्रवरहित, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, संकोच-विकाससे शून्य तथा चिन्मय है।

जिस परब्रह्मके विषयमें ज्ञान और अज्ञानसे पूर्ण उक्तियों-द्वारा इस प्रकार (ऊपर बताये अनुसार) विकल्प किये जाते हैं, उसने कुछ कालके बाद (सृष्टिका समय आनेपर) द्वितीय-की इच्छा प्रकट की—उसके भीतर एकसे अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति (आकार) की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देनेवाली और सम्पूर्ण संस्कृतियों-का केन्द्र थी। उस शुद्धरूपिणी ईश्वर-मूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हींको ईश्वर कहते हैं। उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअङ्गसे कभी अलग



होनेवाली नहीं थी। उस पराशक्तिको प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी तथा विकाररहित बताया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकृति, सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं। सदाशिव-द्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिके आठ भुजाएँ हैं। उस शुभ-लक्षणा देवीके मुखकी शोभा विचित्र है। वह अकेली ही अपने मुखमण्डलमें सदा एक सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती है। नाना प्रकारके आभूषण उसके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकारकी गतियोंसे सम्पन्न है और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करती है। उसके खुले हुए नेत्र खिले हुए कमलके समान जान पड़ते हैं। वह अचिन्त्य तेजसे जगमगाती है। वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया संयोग-वशात् अनेक हो जाती है।

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तकपर आकाश-गङ्गाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वे दस भुजाओंसे युक्त और त्रिशूलधारी हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कर्पूरके समान श्वेत-गौर है। वे अपने सारे अङ्गोंमें भस्म रमाये रहते हैं। उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्षका स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है। वे प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। काशीपुरी परमानन्दरूपिणी है। मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सांनिध्यसे मुक्त नहीं किया है। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्त क्षेत्र' के नामसे भी जानते हैं। वह क्षेत्र आनन्दका हेतु है। इसलिये पिनाकधारी शिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रक्खा था। उसके बाद वह 'अविमुक्त'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।



देवर्षे! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये, जिसपर यह सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरें और निर्वाण धारण करें। वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, पालन करे और वही अन्तमें सबका संहार भी करे। यह चित्त एक समुद्रके समान है। इसमें चिन्ताकी उत्ताल तरङ्गें उठ-उठकर इसे चञ्चल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरूपी रत्न, तमोगुणरूपी ग्राह और रजोगुणरूपी मूँगे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्त-समुद्रको संकुचित करके हम दोनों उस पुरुषके प्रसादसे आनन्द-कानन (काशी) में सुखपूर्वक निवास करें। यह आनन्दवन वह स्थान है, जहाँ हमारी मनोवृत्ति सब ओरसे सिमिटकर इसीमें लगी हुई है तथा जिसके बाहरका जगत् चिन्तासे आतुर प्रतीत होता है। ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभागके दसवें अङ्गपर अमृत मल दिया। फिर तो वहाँसे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर था। वह शान्त था। उसमें सत्त्वगुणकी अधिकता थी तथा वह गम्भीरताका अथाह सागर था। मुने! क्षमा नामक गुणसे युक्त उस पुरुषके लिये ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई उपमा नहीं मिलती थी। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान श्याम थी। उसके अङ्ग-अङ्गसे दिव्य शोभा छिटक रही थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पा रहे थे। श्रीअङ्गोंपर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले दो सुन्दर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। किसीसे भी पराजित न होनेवाला वह वीर पुरुष अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे सुशोभित हो रहा था। तदनन्तर उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा—'स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये। उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे बोले—

शिवने कहा—वत्स! व्यापक होनेके कारण तुम्हारा विष्णु-नाम विख्यात हुआ। इसके सिवा और भी बहुत-से नाम होंगे, जो भक्तोंको सुख देनेवाले होंगे। तुम सुस्थिर उत्तम तप करो; क्योंकि वही समस्त कार्योंका साधन है।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने श्वासमार्गसे श्रीविष्णुको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर अपनी महिमासे कभी

च्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बड़ी भारी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगणोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये। भगवान् विष्णुने सुदीर्घ कालतक बड़ी कठोर तपस्या की। तपस्याके परिश्रमसे युक्त भगवान् विष्णुके अङ्गोंसे नाना प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं। यह सब भगवान् शिवकी मायासे ही सम्भव हुआ। महामुने! उस जलसे सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ। उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णुने स्वयं उस जलमें शयन किया। वे दीर्घकालतक बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें रहे। नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका 'नारायण' यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ। उस समय उन परम पुरुष नारायणके सिवा दूसरी कोई प्राकृत वस्तु नहीं थी। उसके बाद ही उन महात्मा नारायणदेवसे यथासमय सभी तत्त्व प्रकट हुए। महामते! विद्वन्! मैं उन तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बता रहा हूँ। सुनो, प्रकृतिसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ और महत्तत्त्वसे तीनों गुण। इन गुणोंके भेदसे ही त्रिविध अहंकारकी उत्पत्ति हुई। अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ हुईं और उन तन्मात्राओंसे पाँच भूत प्रकट हुए। उसी समय ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें तत्त्वोंकी संख्या बतायी है। इनमेंसे पुरुषको छोड़कर शेष सारे तत्त्व प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं, इसलिये सब-के-सब जड हैं। तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है। उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वोंको ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण भगवान् शिवकी इच्छासे ब्रह्मरूप जलमें सो गये। (अध्याय ६)

भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छावश ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमलनालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्नि-स्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना

ब्रह्माजी कहते हैं – देवर्षे! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरके इच्छावश सहसा एक उत्तम कमल प्रकट हुआ, जो बहुत बड़ा था। उसमें असंख्य नालदण्ड थे। उसकी कान्ति कनेरके फूलके समान पीले रंगकी थी तथा उसकी लंबाई और ऊँचाई भी अनन्त योजन थी। वह कमल करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा था, सुन्दर होनेके साथ ही सम्पूर्ण तत्त्वोंसे युक्त था और अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनके योग्य तथा सबसे उत्तम था। तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्ब सदाशिवने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अङ्गसे उत्पन्न किया। मुने! उन महेश्वरने मुझे तुरंत ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया। इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई। मेरे मस्तक त्रिपुण्ड्रकी रेखासे अङ्कित थे। तात! भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो रही थी कि मैंने उस कमलके सिवा दूसरे किसीको अपने शरीरका जनक या पिता नहीं जाना। मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ, और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है—इस प्रकार संशयमें पड़े हुए मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'मैं किसलिये मोहमें पड़ा हुआ हूँ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है। इस कमलपुष्पका जो पत्रयुक्त नाल है, उसका उद्गमस्थान इस जलके भीतर नीचेकी ओर है। जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा—इसमें संशय नहीं है।'

ऐसा निश्चय करके मैंने अपनेको कमलसे नीचे उतारा। मुने! मैं उस कमलकी एक-एक नालमें गया और सैकड़ों वर्षोंतक वहाँ भ्रमण करता रहा, किंतु कहीं भी उस कमलके उद्गमका उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशयमें पड़कर मैं उस कमलपुष्पपर जानेको उत्सुक हुआ और नालके मार्गसे उस कमलपर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जानेपर भी मैं उस कमलके कोशको न पा सका। उस दशामें मैं और भी मोहित हो उठा। मुने! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मङ्गलमयी उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विध्वंस करनेवाली थी। उस वाणीने कहा—'तप' (तपस्या करो)। उस आकाशवाणीको सुनकर

मैंने अपने जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षोंतक घोर तपस्या की। तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये। उन परम पुरुषने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे थे। उनके सारे अङ्ग सजल जलधरके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित थे। उन परम प्रभुने सुन्दर पीताम्बर पहन रक्खा था। उनके मस्तक आदि अङ्गोंमें मुकुट आदि महामूल्यवान् आभूषण शोभा पाते थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। मैं उनकी छविपर मोहित हो रहा था। वे मुझे करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर दिखायी दिये। उनका वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे साँवली और सुनहरी आभासे उद्भासित हो रहे थे। उस समय उन सदसत्स्वरूप, सर्वात्मा, चार भुजा धारण करनेवाले, महाबाहु नारायणदेवको वहाँ उस रूपमें अपने साथ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

तदनन्तर उन नारायणदेवके साथ मेरी बातचीत आरम्भ हुई। भगवान् शिवकी लीलासे वहाँ हम दोनोंमें कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय हमलोगोंके बीचमें एक महान् अग्निस्तम्भ (ज्योतिर्मय लिङ्ग) प्रकट हुआ। मैंने और श्रीविष्णुने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि-अन्तका पता लगानेके लिये बड़ा प्रयत्न किया, परंतु हमें कहीं भी उसका ओर-छोर नहीं मिला। मैं थककर ऊपरसे नीचे लौट आया और भगवान् विष्णु भी उसी तरह नीचेसे ऊपर आकर मुझसे मिले। हम दोनों शिवकी मायासे मोहित थे। श्रीहरिने मेरे साथ आगे-पीछे और अगल-बगलसे परमेश्वर शिवको प्रणाम किया। फिर वे सोचने लगे—'यह क्या वस्तु है? इसके स्वरूपका निर्देश नहीं किया जा सकता; क्योंकि न तो इसका कोई नाम है और न कर्म ही है। लिङ्गरहित तत्त्व ही यहाँ लिङ्गभावको प्राप्त हो गया है। ध्यानमार्गमें भी इसके स्वरूप-का कुछ पता नहीं चलता। इसके बाद मैं और श्रीहरि दोनोंने अपने चित्तको स्वस्थ करके उस अग्निस्तम्भको प्रणाम करना आरम्भ किया।

हम दोनों बोले—महाप्रभो! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते। आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है। महेशान! आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थ रूपका दर्शन कराइये।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अहंकारसे आविष्ट हुए हम दोनों ही वहाँ नमस्कार करने लगे। ऐसा करते हुए हमारे सौ वर्ष बीत गये। (अध्याय ७)

ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोनों देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनों-के मनमें एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें। भगवान् शंकर दीनोंके प्रतिपालक, अहंकारियोंका गर्व चूर्ण करनेवाले तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे हम दोनोंपर दयालु हो गये। उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे 'ओ३म्, ओ३म्' ऐसा शब्द-रूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे सुनायी देता था। वह नाद प्लुत स्वरमें अभिव्यक्त हुआ था। जोरसे प्रकट होने-वाले उस शब्दके विषयमें 'यह क्या है' ऐसा सोचते हुए समस्त देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णु मेरे साथ संतुष्ट-चित्तसे खड़े रहे। वे सर्वथा वैरभावसे रहित थे। उन्होंने लिङ्गके दक्षिण भागमें सनातन आदिवर्ण अकारका दर्शन किया। उत्तर भागमें उकारका, मध्यभागमें मकारका और अन्तमें 'ओ३म्' इस नादका साक्षात् दर्शन एवं अनुभव किया। दक्षिण भागमें प्रकट हुए आदिवर्ण अकारको सूर्य-मण्डलके समान तेजोमय देखकर जब उन्होंने उत्तर भागमें दृष्टिपात किया, तब वहाँ उकार वर्ण अग्निके समान दीप्तिशाली दिखायी दिया। मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह उन्होंने मध्यभागमें मकारको चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशमान देखा। तदनन्तर जब उसके ऊपर दृष्टि डाली, तब शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल प्रभासे युक्त, तुरीयातीत, अमल, निष्कल, निरुपद्रव, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यमय, बाह्य और आभ्यन्तर-के भेदसे रहित, बाह्याभ्यन्तर-भेदसे युक्त, जगत्के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, आनन्दके आदि कारण तथा सबके परम आश्रय, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार किया।

उस समय श्रीहरि यह सोचने लगे कि 'यह अग्निस्तम्भ यहाँ कहाँसे प्रकट हुआ है? हम दोनों फिर इसकी परीक्षा करें। मैं इस अनुपम अनलस्तम्भके नीचे जाऊँगा।' ऐसा

विचार करते हुए श्रीहरिने वेद और शब्द दोनोंके आवेशसे युक्त विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया। तब वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषि-समूहके परम साररूप माने जाते हैं। उन्हीं ऋषिके द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णुने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीरवाले परम लिङ्गके रूपमें साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं। ये चिन्तारहित (अथवा अचिन्त्य) रुद्र हैं। जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर (प्रणव) ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं। वह परम कारण, ऋत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षरका वाच्य है। प्रणवके एक अक्षर अकारसे जगत्‌के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान् ब्रह्माका बोध होता है। उसके दूसरे एक अक्षर उकारसे परम कारणरूप श्रीहरिका बोध होता है और तीसरे एक अक्षर मकारसे भगवान् नीललोहित शिवका ज्ञान होता है। अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोहमें डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध्य सर्वव्यापी शिव बीजी (बीजमात्रके स्वामी) हैं और 'अकार' संज्ञक मुझ ब्रह्माको 'बीज' कहते हैं। 'उकार' नामधारी श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हींको 'नाद' कहा गया है। (उनके भीतर सबका समावेश है।) बीजी अपनी इच्छासे ही अपने बीजको अनेक रूपोंमें विभक्त करके स्थित हैं। इन बीजी भगवान् महेश्वरके लिङ्गसे अकाररूप बीज प्रकट हुआ, जो उकाररूप योनिमें स्थापित होकर सब ओर बढ़ने लगा। वह सुवर्णमय अण्डके रूपमें ही बताने योग्य था। उसका और कोई विशेष लक्षण नहीं लक्षित होता था। वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षोंतक जलमें ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्षके बाद उस अण्डके दो टुकड़े हो गये। जलमें स्थित हुआ वह अण्ड अजन्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका स्थान था और साक्षात् महेश्वरके आघातसे ही फूटकर दो भागोंमें बँट गया था। उस अवस्थामें उसका ऊपर स्थित हुआ सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा। वही द्युलोकके रूपमें प्रकट हुआ। तथा जो उसका दूसरा नीचेवाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणोंसे युक्त पृथिवी है। उस अण्डसे चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनकी 'क' संज्ञा है। वे समस्त लोकोंके स्रष्टा हैं। इस प्रकार वे भगवान् महेश्वर ही 'अ, 'उ' और 'म' इन त्रिविध रूपोंमें वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्रायसे उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप सदाशिवने 'ओ३म्, 'ओ३म्' ऐसा कहा—यह बात यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्र कहते हैं। यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्रोंका यह कथन सुनकर ऋचाओं और साममन्त्रोंने भी हमसे आदरपूर्वक कहा—'हे हरे! हे ब्रह्मन्! यह बात ऐसी ही है।' इस तरह देवेश्वर शिवको जानकर श्रीहरिने शक्तिसम्भूत मन्त्रोंद्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदयसे शोभित होनेवाले उन महेश्वरदेवका स्तवन किया। इसी बीचमें मेरे साथ विश्वपालक भगवान् विष्णुने एक और भी अद्भुत एवं सुन्दर रूप देखा। मुने! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे अलंकृत था। उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। वह नाना प्रकारकी छटाओंसे छविमान् और भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित था। उस परम उदार महापराक्रमी और महापुरुषके लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये।

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश प्रसन्न हो अपने दिव्य शब्दमय रूपको प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये। अकार उनका मस्तक और आकार ललाट है। इकार दाहिना और ईकार बायाँ नेत्र है। उकारको उनका दाहिना और ऊकारको बायाँ कान बताया जाता है। ऋकार उन परमेश्वरका दायाँ कपोल है और ॠकार बायाँ। ऌ और ॡ—ये उनकी नासिकाके दोनों छिद्र हैं। एकार उन सर्वव्यापी प्रभुका ऊपरी ओष्ठ है और ऐकार अधर। ओकार तथा औकार—ये दोनों क्रमशः उनकी ऊपर और नीचेकी दो दन्तपंक्तियाँ हैं। 'अं' और 'अः' उन देवाधिदेव शूलधारी शिवके दोनों तालु हैं। क आदि पाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ हैं और च आदि पाँच अक्षर बायें पाँच हाथ; ट आदि और त आदि पाँच-पाँच अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है। फकारको दाहिना पार्श्व बताया जाता है और बकारको बायाँ पार्श्व। भकारको कंधा कहते हैं। मकार उन योगी महादेव शम्भुका हृदय है। 'य' से लेकर 'स' तक सात अक्षर सर्वव्यापी शिवके शब्दमय शरीरकी सात धातुएँ हैं। हकार उनकी नाभि है और क्षकारको मेढ्र (मूत्रेन्द्रिय) कहा गया है। इस प्रकार निर्गुण एवं गुणस्वरूप परमात्माके शब्दमय रूपको भगवती उमाके साथ देखकर मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये। इस तरह शब्दब्रह्ममय-शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे साथ श्रीहरिने उन्हें प्रणाम किया और पुनः ऊपरकी ओर देखा। उस समय उन्हें पाँच कलाओंसे युक्त ॐकारजनित मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् महादेवजीका 'ॐ तत्त्वमसि' यह महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ, जो परम उत्तम मन्त्ररूप है तथा शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। फिर सम्पूर्ण धर्म और अर्थ

का साधक तथा बुद्धिस्वरूप गायत्री नामक दूसरा महान् मन्त्र लक्षित हुआ, जिसमें चौबीस अक्षर हैं तथा जो चारों पुरुषार्थ-रूपी फल देनेवाला है। तत्पश्चात् मृत्युंजय मन्त्र फिर पञ्चाक्षर मन्त्र तथा दक्षिणामूर्तिसंज्ञक चिन्तामणि मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार पाँच मन्त्रोंकी उपलब्धि करके भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे।

तदनन्तर ऋक्, यजुः और साम—ये जिनके रूप हैं, जो ईशोंके मुकुटमणि ईशान हैं, जो पुरातन पुरुष हैं, जिनका हृदय अघोर अर्थात् सौम्य है, जो हृदयको प्रिय लगनेवाले सर्वगुह्य सदाशिव हैं, जिनके चरण वाम—परम सुन्दर हैं, जो महान् देवता हैं और महान् सर्पराजको आभूषणके रूपमें धारण करते हैं, जिनके सभी ओर पैर और सभी ओर नेत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके भी अधिपति, कल्याणकारी तथा सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं, उन वरदायक साम्ब-शिवका मेरे साथ भगवान् विष्णुने प्रिय वचनोंद्वारा संतुष्टचित्तसे स्तवन किया। (अध्याय ८)

उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उस समय उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। भालदेशमें चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। सिरपर जटा धारण किये गौरवर्ण, विशालनेत्र शिवने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूति लगा रक्खी थी। उनके दस भुजाएँ थीं। कण्ठमें नील चिह्न था। उनके श्रीअङ्ग समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन सर्वाङ्गसुन्दर शिवके मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड्रसे अङ्कित थे। ऐसे विशेषणोंसे युक्त परमेश्वर महादेवजीको भगवती उमाके साथ उपस्थित देख मैंने और भगवान् विष्णुने पुनः प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की। तब पापहारी करुणाकर भगवान् महेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेवको श्वासरूपसे वेदका उपदेश दिया। मुने! उनके बाद शिवने परमात्मा श्रीहरिको गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्माने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेदका ज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हुए भगवान् विष्णुने मेरे साथ हाथ जोड़ महेश्वरको नमस्कार करके पुनः उनसे पूजनकी विधि बताने तथा सदुपदेश देनेके लिये प्रार्थना की।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कृपानिधान भगवान् शिवने प्रीतिपूर्वक यह बात कही।

श्रीशिव बोले—सुरश्रेष्ठगण! मैं तुम दोनोंकी भक्तिसे निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। तुमलोग मुझ महादेवकी ओर देखो। इस समय तुम्हें मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही रूपका प्रयत्नपूर्वक पूजन-चिन्तन करना चाहिये। तुम दोनों महाबली हो और मेरी स्वरूपभूता प्रकृतिसे प्रकट हुए हो। मुझ सर्वेश्वरके दायें-बायें अङ्गोंसे तुम्हारा आविर्भाव हुआ है। ये लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने पार्श्वसे उत्पन्न हुए हैं और तुम विष्णु मुझ परमात्माके वाम पार्श्वसे प्रकट हुए हो। मैं तुम दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और तुम्हें मनोवाञ्छित वर देता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम दोनोंकी मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन्! तुम मेरी आज्ञाका पालन करते हुए जगत्की सृष्टि करो और वत्स विष्णो! तुम इस चराचर जगत्का पालन करते रहो।

हम दोनोंसे ऐसा कहकर भगवान् शंकरने हमें पूजाकी उत्तम विधि प्रदान की, जिसके अनुसार पूजित होनेपर वे पूजकको अनेक प्रकारके फल देते हैं। शम्भुकी उपर्युक्त बात सुनकर मेरे सहित श्रीहरिने महेश्वरको हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा।

भगवान् विष्णु बोले—प्रभो! यदि हमारे प्रति आपके हृदयमें प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना आवश्यक समझते हैं तो हम यही वर माँगते हैं कि आपमें हम दोनोंकी सदा अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिकी यह बात सुनकर भगवान् हरने पुनः मस्तक झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े हुए उन नारायणदेवसे स्वयं कहा।

श्रीमहेश्वर बोले—मैं सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों

अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हरे! वास्तवमें मैं सदा निष्कल हूँ। विष्णो! तुमने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सच्ची करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा। मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। पूजाकी विधि-विधानकी दृष्टिसे भी मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योतिका जल आदिके साथ सम्पर्क होनेपर भी उसमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे, तब वे भी शिवके ही तुल्य होंगे। महामुने! उनमें और शिवमें परायेपनका भेद नहीं करना चाहिये। वास्तवमें एक ही रूप सब जगत्में व्यवहारनिर्वाहके लिये दो रूपोंमें विभक्त हो गया है। अतः शिव और रुद्रमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें सारा दृश्य ही मेरे विचारसे शिवरूप है।

मैं, तुम, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।* ऐसा जानकर सदा मनसे मेरे यथार्थस्वरूपका दर्शन करना चाहिये। ब्रह्मन्! सुनो, मैं तुम्हें एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। मैं स्वयं ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे प्रकट होऊँगा। गुणोंमें भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। जैसा कि लोगोंने कहा है 'हर तामस प्रकृतिके हैं।' वास्तवमें उस रूपमें अहंकारका वर्णन हुआ है। उस अहंकारको केवल तामस ही नहीं, वैकारिक (सात्त्विक) भी समझना चाहिये (क्योंकि सात्त्विक देवगण वैकारिक अहंकारकी ही सृष्टि हैं)। यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्रका है, वस्तुतः नहीं है। वास्तवमें 'हर'को तामस नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मन्! इस कारणसे तुम्हें ऐसा करना चाहिये। तुम तो इस सृष्टिके निर्माता बनो और श्रीहरि इसका पालन करें तथा मेरे अंशसे प्रकट होनेवाले जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करनेवाले होंगे। ये जो 'उमा' नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हींकी शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजीका सेवन करेंगी। फिर इन प्रकृति देवीसे वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होगी वे लक्ष्मीरूपसे भगवान् विष्णुका आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नामसे जो तीसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेवको प्राप्त होंगी। वे कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ज्योतिरूपसे प्रकट होंगी। इस प्रकार मैंने देवीकी शुभस्वरूपा पराशक्तियोंका परिचय दिया। उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारका सम्पादन ही है। सुरश्रेष्ठ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया प्रकृतिदेवीकी अंशभूता हैं। हरे! तुम लक्ष्मीका सहारा लेकर कार्य करो। ब्रह्मन्! तुम्हें प्रकृतिकी अंशभूता वाग्देवीको पाकर मेरी आज्ञाके अनुसार मनसे सृष्टिकार्यका संचालन करना चाहिये और मैं अपनी प्रियाकी अंशभूता परात्पर कालीका आश्रय ले रुद्ररूपसे प्रलयसम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। तुम सब लोग अवश्य ही सम्पूर्ण आश्रमों तथा उनसे भिन्न अन्यान्य विविध कार्योंद्वारा चारों वर्णोंसे भरे हुए लोककी सृष्टि एवं रक्षा आदि करके सुख पाओगे। हरे! तुम ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी हो। अतः अब मेरी आज्ञा पाकर जगत्में सब लोगोंके लिये मुक्तिदाता बनो। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही तुम्हारा दर्शन होनेपर भी होगा। मेरी यह बात सत्य है, सत्य है, इसमें संशयके लिये स्थान नहीं है। मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है।* श्रीहरि मेरे बायें अङ्गसे प्रकट हुए हैं। ब्रह्माका दाहिने अङ्गसे प्राकट्य हुआ है और महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे प्रादुर्भूत होंगे। विष्णो! मैं ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रज आदि त्रिविध गुणोंद्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रनामसे प्रसिद्ध हो तीन रूपोंमें पृथक्-पृथक् प्रकट होता हूँ। साक्षात् शिव गुणोंसे भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं—अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरञ्जन परब्रह्म परमात्मा हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमोगुण और

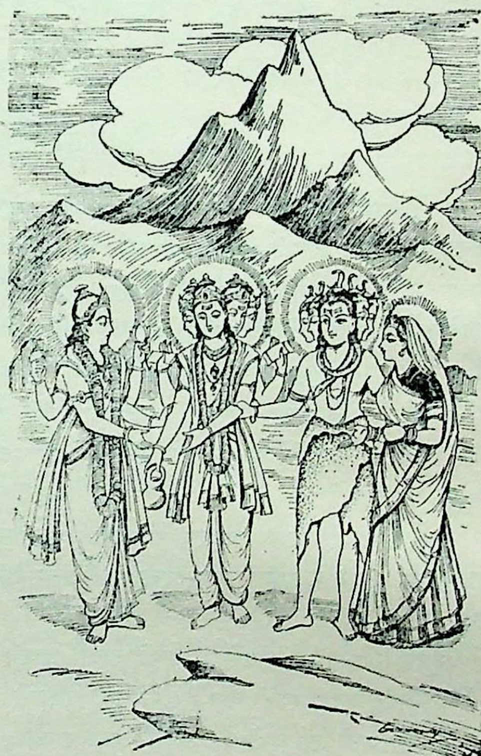
* मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।
(शि० पु० रु० सृ० ९। ४०)

* ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।
(शि० पु० रु० सृ० ९। ५५-५६)

बाहर सत्त्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवनकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी बाहर और भीतरसे भी रजोगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा रुद्र—इन तीन देवताओंमें गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं। विष्णो! तुम मेरी आज्ञासे इन सृष्टिकर्ता पितामहका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो; ऐसा करनेसे तीनों लोकोंमें पूजनीय होओगे। (अध्याय ९)

श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार दे भगवान् शिवका अन्तर्धान होना

परमेश्वर शिव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हरे! विष्णो! अब तुम मेरी दूसरी आज्ञा सुनो। उसका पालन करनेसे तुम सदा समस्त लोकोंमें माननीय और पूजनीय बने रहोगे। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये लोकमें जब कोई दुःख या संकट उत्पन्न हो, तब तुम उन सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेके लिये सदा तत्पर रहना। तुम्हारे सम्पूर्ण दुस्सह कार्योंमें मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम्हारे जो दुर्जेय और अत्यन्त उत्कट शत्रु होंगे, उन सबको मैं मार गिराऊँगा। हरे! तुम नाना प्रकारके अवतार धारण करके लोकमें अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार करो और सबके उद्धारके लिये तत्पर रहो। तुम रुद्रके ध्येय हो और रुद्र तुम्हारे ध्येय हैं। तुममें और रुद्रमें कुछ भी अन्तर नहीं है।* जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर तुम्हारी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तत्काल भस्म हो जायगा। पुरुषोत्तम विष्णो! तुमसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा। यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।† तुम इस लोकमें मनुष्योंके लिये विशेषतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके ध्येय तथा पूज्य होकर प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह करो।



ऐसा कहकर भगवान् शिवने मेरा हाथ पकड़ लिया और श्रीविष्णुको सौंपकर उनसे कहा—'तुम संकटके समय सदा इनकी सहायता करते रहना। सबके अध्यक्ष होकर सभीको भोग और मोक्ष प्रदान करना तथा सर्वदा समस्त कामनाओंका साधक एवं सर्वश्रेष्ठ बने रहना। जो तुम्हारी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और तुममें अन्तर समझता है, वह अवश्य नरकमें गिरता है*।'

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे! भगवान् शिवका यह वचन सुनकर मेरे साथ भगवान् विष्णुने सबको वशमें करने-

---

* रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन॥
(शि० पु० रु० स० खं० १०।६)

† रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति॥
नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥
(शि० पु० रु० स० खं० १०।८-९)

* त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्॥
(शि० पु० रु० स० खं० १०।१४)

वाले विश्वनाथको प्रणाम करके मन्दस्वरमें कहा—

श्रीविष्णु बोले—करुणासिन्धो ! जगन्नाथ शंकर ! मेरी यह बात सुनिये । मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा । स्वामिन् ! जो मेरा भक्त होकर आपकी निन्दा करे, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करें । नाथ ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है । जो ऐसा जानता है, उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है ।*

श्रीहरिका यह कथन सुनकर दुःखहारी हरने उनकी बातका अनुमोदन किया और नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश देकर हम दोनोंके हितकी इच्छासे हमें अनेक प्रकारके वर दिये । इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृपापूर्वक हमारी ओर देखकर हम दोनोंके देखते-देखते सहसा वहीं अन्तर्धान हो गये । तभीसे इस लोकमें लिङ्गपूजाका विधान चालू हुआ है । लिङ्गमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं । शिवलिङ्गकी जो वेदी या अर्घा है, वह महादेवीका स्वरूप है और लिङ्ग साक्षात् महेश्वरका । लयका अधिष्ठान होनेके कारण भगवान् शिवको लिङ्ग कहा गया है; क्योंकि उन्हींमें निखिल जगत्का लय होता है । महामुने ! जो शिवलिङ्गके समीप कोई कार्य करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । (अध्याय १०)

शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

ऋषि बोले—व्यासशिष्य महाभाग सूतजी ! आपको नमस्कार है । आज आपने भगवान् शिवकी बड़ी अद्भुत एवं परम पावन कथा सुनायी है । दयानिधे ! ब्रह्मा और नारदजीके संवादके अनुसार आप हमें शिवपूजनकी वह विधि बताइये, जिससे यहाँ भगवान् शिव संतुष्ट होते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी शिवकी पूजा करते हैं । वह पूजन कैसे करना चाहिये ? आपने व्यासजीके मुखसे इस विषयको जिस प्रकार सुना हो, वह बताइये ।

महर्षियोंका वह कल्याणप्रद एवं श्रुतिसम्मत वचन सुनकर सूतजीने उन मुनियोंके प्रश्नके अनुसार सब बातें प्रसन्नतापूर्वक बतायीं ।

सूतजी बोले—मुनीश्वरो ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है । परंतु वह रहस्यकी बात है । मैंने इस विषयको जैसा सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार आज कुछ कह रहा हूँ । जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी तरह पूर्वकालमें व्यासजीने सनत्कुमारजीसे पूछा था । फिर उसे उपमन्युजीने भी सुना था । व्यासजीने शिवपूजन आदि जो भी विषय सुना था, उसे सुनकर उन्होंने लोकहितकी कामनासे मुझे पढ़ा दिया था । इसी विषयको भगवान् श्रीकृष्णने महात्मा उपमन्युसे सुना था । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, वही इस समय मैं कहूँगा ।

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! मैं संक्षेपसे लिङ्गपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुनो । जैसा पहले कहा गया है, वैसा जो भगवान् शंकरका सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है, उसका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे, इससे समस्त मनोवाञ्छित फलोंकी प्राप्ति होगी । दरिद्रता, रोग, दुःख तथा शत्रुजनित पीड़ा—ये चार प्रकारके पाप (कष्ट) तभीतक रहते हैं, जबतक मनुष्य भगवान् शिवका पूजन नहीं करता है । भगवान् शिवकी पूजा होते ही सारे दुःख विलीन हो जाते और समस्त सुखोंकी प्राप्ति हो जाती है । तत्पश्चात् समय आनेपर उपासककी मुक्ति भी होती है । जो मानव-शरीरका आश्रय लेकर मुख्यतया संतान-सुखकी कामना करता है उसे चाहिये कि वह सम्पूर्ण कार्यों और मनोरथोंके साधक महादेवजीकी पूजा करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओं तथा प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये क्रमसे विधिके अनुसार भगवान् शंकरकी पूजा करें । प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर गुरु तथा शिवका स्मरण करके तीर्थोंका चिन्तन एवं भगवान् विष्णुका ध्यान करे ! फिर मेरा, देवताओंका और मुनि आदिका भी स्मरण-चिन्तन करके स्तोत्र पाठपूर्वक शंकरजीका विधिपूर्वक नाम ले । उसके बाद शय्यासे उठकर निवास-स्थानसे दक्षिण दिशामें जाकर मलत्याग करे । मुने ! एकान्तमें मलोत्सर्ग करना चाहिये । उससे शुद्ध होनेके लिये जो विधि मैंने सुन रखी है, उसीको आज कहता हूँ; मनको एकाग्र करके सुनो ।

---

* मम भक्तश्च यः स्वामिंस्तव निन्दां करिष्यति । तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम् ॥
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः । एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा ॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १० । ३०-३१)

ब्राह्मण गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें पाँच बार शुद्ध मिट्टी-का लेप करे और धोये। क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार विधिपूर्वक गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें मिट्टी लगाये। लिङ्गमें भी एक बार प्रयत्नपूर्वक मिट्टी लगानी चाहिये। तत्पश्चात् बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाकर धोये। तात! प्रत्येक पैरमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। फिर दोनों हाथोंमें भी मिट्टी लगाकर धोये। स्त्रियोंको शूद्रकी ही भाँति अच्छी तरह मिट्टी लगानी चाहिये। हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् शुद्ध मिट्टी ले और उसे लगाकर दाँत साफ करे। फिर अपने वर्णके अनुसार मनुष्य दतुअन करे। ब्राह्मण-को बारह अंगुलकी दतुअन करनी चाहिये। क्षत्रिय ग्यारह अंगुल, वैश्य दस अंगुल और शूद्र नौ अंगुलकी दतुअन करे। यह दतुअनका मान बताया गया। मनुस्मृतिके अनुसार कालदोषका विचार करके ही दतुअन करे या त्याग दे। तात! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, व्रतका दिन, सूर्यास्तका समय, रविवार तथा श्राद्ध-दिवस—ये दन्तधावनके लिये वर्जित हैं—इनमें दतुअन नहीं करनी चाहिये। दतुअनके पश्चात् तीर्थ (जलाशय) आदिमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष देश-काल आनेपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना उचित है। स्नानके पश्चात् पहले आचमन करके वह धुला हुआ वस्त्र धारण करे। फिर सुन्दर एकान्त स्थलमें बैठकर संध्याविधिका अनुष्ठान करे। यथायोग्य संध्याविधिका पालन करके पूजाका कार्य आरम्भ करे।

मनको सुस्थिर करके पूजागृहमें प्रवेश करे। वहाँ पूजन-सामग्री लेकर सुन्दर आसनपर बैठे। पहले न्यास आदि करके क्रमशः महादेवजीकी पूजा करे। शिवकी पूजासे पहले गणेशजीकी, द्वारपालोंकी और दिक्पालोंकी भी भलीभाँति पूजा करके पीछे देवताके लिये पीठस्थानकी कल्पना करे। अथवा अष्टदलकमल बनाकर पूजाद्रव्यके समीप बैठे और उस कमल-पर ही भगवान् शिवको समासीन करे। तत्पश्चात् तीन आचमन करके पुनः दोनों हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्यम प्राणायाम अर्थात् कुम्भक करते समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवका इस प्रकार ध्यान करे—उनके पाँच मुख हैं, दस भुजाएँ हैं, शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल कान्ति है, सब प्रकारके आभूषण उनके श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं तथा वे व्याघ्रचर्मकी चादर ओढ़े हुए हैं। इस तरह ध्यान करके यह भावना करे कि मुझे भी इनके समान ही रूप प्राप्त हो जाय। ऐसी भावना करके मनुष्य सदाके लिये अपने पापको भस्म कर डाले। इस प्रकार भावनाद्वारा शिवका ही शरीर धारण करके उन परमेश्वरकी पूजा करे। शरीरशुद्धि करके मूलमन्त्रका क्रमशः न्यास करे अथवा सर्वत्र प्रणवसे ही षडङ्ग न्यास करे। 'ॐ अद्येत्यादि०' रूपसे संकल्प-वाक्यका प्रयोग करके फिर पूजा आरम्भ करे। पाद्य, अर्घ्य और आचमनके लिये पात्रोंको तैयार करके रक्खे। बुद्धिमान् पुरुष विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकारके नौ कलश स्थापित करे। उन्हें कुशाओंसे ढककर रक्खे और कुशाओंसे ही जल लेकर उन सबका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् उन-उन सभी पात्रोंमें शीतल जल डाले। फिर बुद्धिमान् पुरुष देख-भालकर प्रणवमन्त्रके द्वारा उनमें निम्नाङ्कित द्रव्योंको डाले। खस और चन्दनको पाद्यपात्रमें रक्खे। चमेलीके फूल, शीतलचीनी, कपूर, बड़की जड़ तथा तमाल—इन सबको यथोचितरूपसे कूट-पीसकर चूर्ण बना ले और आचमनीयके पात्रमें डाले। इलायची और चन्दनको तो सभी पात्रोंमें डालना चाहिये। देवाधिदेव महादेवजीके पार्श्वभागमें नन्दीश्वरका पूजन करे। गन्ध, धूप तथा भाँति-भाँतिके दीपोंद्वारा शिवकी पूजा करे। फिर लिङ्गशुद्धि करके मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रसमूहोंके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उनके द्वारा इष्टदेवके लिये यथोचित आसनकी कल्पना करे। फिर प्रणवसे पद्मासनकी कल्पना करके यह भावना करे कि इस कमलका पूर्वदल साक्षात् अणिमा नामक ऐश्वर्यरूप तथा अविनाशी है। दक्षिणदल लघिमा है। पश्चिमदल महिमा है। उत्तरदल प्राप्ति है। अग्निकोणका दल प्राकाम्य है। नैर्ऋत्यकोणका दल ईशित्व है। वायव्यकोणका दल वशित्व है। ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्व है और उस कमलकी कर्णिकाको सोम कहा जाता है। सोमके नीचे सूर्य हैं, सूर्यके नीचे अग्नि हैं और अग्निके भी नीचे धर्म आदिके स्थान हैं। क्रमशः ऐसी कल्पना करनेके पश्चात् चारों दिशाओंमें अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार तथा उनके विकारोंकी कल्पना करे। सोमके अन्तमें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी कल्पना करे। इसके बाद 'सद्योजातं प्रपद्यामि' इत्यादि मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके 'ॐ वामदेवाय नमः' इत्यादि वामदेव-मन्त्रसे उन्हें आसनपर विराजमान करे। फिर 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि रुद्र-गायत्रीद्वारा इष्टदेवका सांनिध्य प्राप्त करके उन्हें 'अघोरेभ्योऽथ' इत्यादि अघोरमन्त्रसे वहाँ निरुद्ध करे। फिर 'ईशानः सर्व-विद्यानाम्' इत्यादि मन्त्रसे आराध्यदेवका पूजन करे।

पाद्य और आचमनीय अर्पित करके अर्घ्य दे। तत्पश्चात्

गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे विधिपूर्वक रुद्रदेवको स्नान कराये। फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी विधिसे पाँचों द्रव्योंको एक पात्रमें लेकर प्रणवसे ही अभिमन्त्रित करके उन मिश्रित गव्य-पदार्थोंद्वारा भगवान्‌को नहलाये। तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् दूध, दही, मधु, गन्नेके रस तथा घीसे नहलाकर समस्त अभीष्टोंके दाता और हितकारी पूजनीय महादेवजीका प्रणवके उच्चारण-पूर्वक पवित्र द्रव्योंद्वारा अभिषेक करे। पवित्र जलपात्रोंमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल डाले। डालनेसे पहले साधक श्वेत वस्त्रसे उस जलको यथोचित रीतिसे छान ले। उस जलको तबतक दूर न करे, जबतक इष्टदेवको चन्दन न चढ़ा ले। तब सुन्दर अक्षतोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीकी पूजा करे। उनके ऊपर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चम्पा, गुलाब, श्वेत कनेर, बेला, कमल और उत्पल आदि भाँति-भाँतिके अपूर्व पुष्प एवं चन्दन आदि चढ़ाकर पूजा करे। परमेश्वर शिवके ऊपर जलकी धारा गिरती रहे, इसकी भी व्यवस्था करे। जलसे भरे भाँति-भाँतिके पात्रोंद्वारा महेश्वरको नहलाये। मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वह समस्त फलोंको देनेवाली होती है।

तात! अब मैं तुम्हें समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके लिये उन पूजासम्बन्धी मन्त्रोंको भी संक्षेपसे बता रहा हूँ, सावधानीके साथ सुनो। पावमानमन्त्रसे, 'वाङ्मे०' इत्यादि मन्त्रसे, रुद्रमन्त्र तथा नीलरुद्रमन्त्रसे, सुन्दर एवं शुभ पुरुष-सूक्तसे, श्रीसूक्तसे, सुन्दर अथर्वशीर्षके मन्त्रसे, 'आ नो भद्रा०' इत्यादि शान्तिमन्त्रसे, शान्तिसम्बन्धी दूसरे मन्त्रोंसे, भारुण्डमन्त्र और अरुणमन्त्रोंसे, अर्थाभीष्टसाम तथा देवव्रतसामसे, 'अभि त्वा०' इत्यादि रथन्तरसामसे, पुरुषसूक्तसे, मृत्युंजयमन्त्रसे तथा पञ्चाक्षरमन्त्रसे पूजा करे। एक सहस्र अथवा एक सौ एक जलधाराएँ गिरानेकी व्यवस्था करे। यह सब वेदमार्गसे अथवा नाममन्त्रोंसे करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् शंकरके ऊपर चन्दन और फूल आदि चढ़ाये। प्रणवसे ही मुखवास (ताम्बूल) आदि अर्पित करे। इसके बाद जो स्फटिकमणिके समान निर्मल, निष्कल, अविनाशी, सर्वलोककारण, सर्वलोकमय परमदेव हैं; जो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते; वेदवेत्ता विद्वानोंने जिन्हें वेदान्तमें मन-वाणीके अगोचर बताया है; जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा समस्त रोगियोंके लिये औषधरूप हैं; जिनकी शिवतत्त्वके नामसे ख्याति है तथा जो शिवलिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान् शिवका शिवलिङ्गके मस्तकपर प्रणवमन्त्रसे ही पूजन करे। धूप, दीप, नैवेद्य, सुन्दर ताम्बूल एवं सुरम्य आरतीद्वारा यथोक्त विधिसे पूजा करके स्तोत्रों तथा अन्य नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा उन्हें नमस्कार करे। फिर अर्घ्य देकर भगवान्‌के चरणोंमें फूल बिखेरे और साष्टाङ्ग प्रणाम करके देवेश्वर शिवकी आराधना करे। फिर हाथमें फूल लेकर खड़ा हो जाय और दोनों हाथ जोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्रसे सर्वेश्वर शंकरकी पुनः प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥

'कल्याणकारी शिव! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर जो जप-पूजा आदि सत्कर्म किये हों, वे आपकी कृपासे सफल हों।'

इस प्रकार पढ़कर भगवान् शिवके ऊपर प्रसन्नतापूर्वक फूल चढ़ाये। स्वस्तिवाचन[1] करके नाना प्रकारकी आशीः[2] प्रार्थना करे। फिर शिवके ऊपर मार्जन[3] करना चाहिये। मार्जनके बाद नमस्कार करके अपराधके लिये क्षमा[4]-प्रार्थना करते हुए पुनरागमनके लिये विसर्जन[5] करना चाहिये। इसके बाद 'अघा[6]' से आरम्भ होनेवाले मन्त्रका उच्चारण करके नमस्कार करे। फिर सम्पूर्ण भावसे विभोर हो इस प्रकार प्रार्थना करे—

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥

---

१. 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥' इत्यादि स्वस्तिवाचनसम्बन्धी मन्त्र हैं। २. 'काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी। देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥ सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥' इत्यादि आशीः-प्रार्थनाएँ हैं। ३. ॐ आपो हि ष्ठामयोभुवः' (यजु० ११। ५०—५२) इत्यादि तीन मार्जन-मन्त्र कहे गये हैं। इन्हें पढ़ते हुए इष्टदेवपर जल छिड़कना 'मार्जन' कहलाता है। ४. 'अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व परमेश्वर॥' इत्यादि क्षमा-प्रार्थनासम्बन्धी श्लोक हैं। ५. 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामिकाम्। अभीष्टफलदानाय पुनरागमनाय च॥' इत्यादि विसर्जन-सम्बन्धी श्लोक हैं। ६. 'ॐ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरᳬहस पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।' (यजु० ३३। ४२)

'प्रत्येक जन्ममें मेरी शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। शिवके सिवा दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं। महादेव! आप ही मेरे लिये शरणदाता हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करके सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका पराभक्तिके द्वारा पूजन करे। विशेषतः गलेकी आवाजसे भगवान्को संतुष्ट करे। फिर सपरिवार नमस्कार करके अनुपम प्रसन्नताका अनुभव करते हुए समस्त लौकिक कार्य सुखपूर्वक करता रहे।

जो इस प्रकार शिवभक्तिपरायण हो प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही पग-पगपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है। वह उत्तम वक्ता होता है तथा उसे मनोवाञ्छित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। रोग, दुःख, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला उद्वेग, कुटिलता तथा विष आदिके रूपमें जो-जो कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं। उस उपासकका कल्याण होता है। भगवान् शंकरकी पूजासे उसमें अवश्य सद्गुणोंकी वृद्धि होती है—ठीक उसी तरह, जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान बताया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो? कौन-सा प्रश्न पूछनेवाले हो?

(अध्याय ११)

भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! प्रजापते! आप धन्य हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। विधे! आप पुनः इसी विषयका सम्यक् प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—तात! एक समयकी बात है, मैं सब ओरसे ऋषियों तथा देवताओंको बुलाकर उन सबको क्षीरसागरके तटपर ले गया, जहाँ सबका हित-साधन



करनेवाले भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ देवताओंके पूछनेपर भगवान् विष्णुने सबके लिये शिवपूजनकी ही श्रेष्ठता बतलाकर यह कहा कि 'एक मुहूर्त या एक क्षण भी जो शिवका पूजन नहीं किया जाता, वही हानि है, वही महान् छिद्र है, वही अंधापन है और वही मूर्खता है। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर हैं, जो मनसे उन्हींको प्रणाम और उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते*। जो महान् सौभाग्यशाली पुरुष मनोहर भवन, सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, जितनेसे मनको संतोष हो उतना धन, पुत्र-पौत्र आदि संतति, आरोग्य, सुन्दर शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गीय सुख, अन्तमें मोक्षरूपी फल अथवा परमेश्वर शिवकी भक्ति चाहते हैं, वे पूर्वजन्मोंके महान् पुण्यसे भगवान् सदाशिवकी पूजा-अर्चामें प्रवृत्त होते हैं। जो पुरुष नित्य-भक्तिपरायण हो शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसको सफल सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह पापोंके चक्करमें नहीं पड़ता।

भगवान्के इस प्रकार उपदेश देनेपर देवताओंने उन श्रीहरिको प्रणाम किया और मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये उनसे शिवलिङ्ग देनेके लिये प्रार्थना की। मुनिश्रेष्ठ! उस प्रार्थनाको सुनकर जीवोंके उद्धारमें तत्पर रहनेवाले भगवान् विष्णुने विश्वकर्माको बुलाकर कहा—'विश्वकर्मन्! तुम मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण देवताओंको सुन्दर शिवलिङ्गका निर्माण करके दो।' तब विश्वकर्माने मेरी और श्रीहरिकी आज्ञाके

* भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥

(शि० पु० रु० स० खं०)

अनुसार उन देवताओंको उनके अधिकारके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर दिये ।

मुनिश्रेष्ठ नारद ! किस देवताको कौन-सा शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ, इसका वर्णन आज मैं कर रहा हूँ; उसे सुनो। इन्द्र पद्मराग मणिके बने हुए शिवलिङ्गकी और कुबेर सुवर्णमय लिङ्गकी पूजा करते हैं। धर्म पीतमणिमय (पुखराजके बने हुए) लिङ्गकी तथा वरुण श्यामवर्णके शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। भगवान् विष्णु इन्द्रनीलमय तथा ब्रह्मा हेममय लिङ्गकी पूजा करते हैं । मुने ! विश्वेदेवगण चाँदीके शिवलिङ्गकी, वसुगण पीतलके बने हुए लिङ्गकी तथा दोनों अश्विनीकुमार पार्थिव लिङ्गकी पूजा करते हैं। लक्ष्मीदेवी स्फटिकमय लिङ्गकी, आदित्यगण ताम्रमय लिङ्गकी, राजा सोम मोतीके बने हुए लिङ्गकी तथा अग्निदेव वज्र (हीरे) के लिङ्गकी उपासना करते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ मिट्टीके बने हुए शिवलिङ्गका, मयासुर चन्दननिर्मित लिङ्गका और नागगण मूँगेके बने हुए शिवलिङ्गका आदरपूर्वक पूजन करते हैं। देवी मक्खनके बने हुए लिङ्गकी, योगीजन भस्ममय लिङ्गकी, यक्षगण दधिनिर्मित लिङ्गकी, छायादेवी आटेसे बनाये हुए लिङ्गकी और ब्रह्मपत्नी रत्नमय शिवलिङ्गकी निश्चितरूपसे पूजा करती हैं । बाणासुर पारद या पार्थिव लिङ्गकी पूजा करता है। दूसरे लोग भी ऐसा ही करते हैं। ऐसे-ऐसे शिवलिङ्ग बनाकर विश्वकर्माने विभिन्न लोगोंको दिये तथा वे सब देवता और ऋषि उन लिङ्गोंकी पूजा करते हैं । भगवान् विष्णुने इस तरह देवताओंको उनके हितकी कामनासे शिवलिङ्ग देकर उनसे तथा मुझ ब्रह्मासे पिनाकपाणि महादेवके पूजनकी विधि भी बतायी। पूजन-विधिसम्बन्धी उनके वचनोंको सुनकर देव-शिरोमणियोंसहित मैं ब्रह्मा हृदयमें हर्ष लिये अपने धाममें आ गया । मुने ! वहाँ आकर मैंने समस्त देवताओं और ऋषियोंको शिवपूजाकी उत्तम विधि बतायी, जो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है ।

उस समय मुझ ब्रह्माने कहा—देवताओंसहित समस्त ऋषियो ! तुम प्रेमपरायण होकर सुनो; मैं प्रसन्नतापूर्वक तुमसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है । देवताओ और मुनीश्वरो ! समस्त जन्तुओंमें मनुष्य-जन्म प्राप्त करना प्रायः दुर्लभ है। उनमें भी उत्तम कुलमें जन्म तो और भी दुर्लभ है । उत्तम कुलमें भी आचारवान् ब्राह्मणोंके यहाँ उत्पन्न होना उत्तम पुण्यसे ही सम्भव है । यदि वैसा जन्म सुलभ हो जाय तो भगवान् शिवके संतोषके लिये उस उत्तम कर्मका अनुष्ठान करे, जो अपने वर्ण और आश्रमके लिये शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित है । जिस जातिके लिये जो कर्म बताया गया है, उसका उल्लङ्घन न करे । जितनी सम्पत्ति हो, उसके अनुसार ही दान करे । कर्ममय सहस्रों यज्ञोंसे तपोयज्ञ बढ़कर है । सहस्रों तपोयज्ञोंसे जपयज्ञका महत्त्व अधिक है। ध्यानयज्ञसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। ध्यान ज्ञानका साधन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इष्टदेव समरस शिवका साक्षात्कार करता है ।* ध्यानयज्ञमें तत्पर रहनेवाले उपासकके लिये भगवान् शिव सदा ही संनिहित हैं। जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन पुरुषोंकी शुद्धिके लिये किसी प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है ।

मनुष्यको जबतक ज्ञानकी प्राप्ति न हो, तबतक वह विश्वास दिलानेके लिये कर्मसे ही भगवान् शिवकी आराधना करे । जगत्के लोगोंको एक ही परमात्मा अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है। एकमात्र भगवान् सूर्य एक स्थानमें रहकर भी जलाशय आदि विभिन्न वस्तुओंमें अनेक-से दीखते हैं । देवताओ ! संसारमें जो-जो सत् या असत् वस्तु देखी या सुनी जाती है, वह सब परब्रह्म शिवरूप ही है—ऐसा समझो । जबतक तत्त्वज्ञान न हो जाय, तबतक प्रतिमाकी पूजा आवश्यक है। ज्ञानके अभावमें भी जो प्रतिमा-पूजाकी अवहेलना करता है, उसका पतन निश्चित है ! इसलिये ब्राह्मणो ! यह यथार्थ बात सुनो । अपनी जातिके लिये जो कर्म बताया गया है, उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये । जहाँ-जहाँ यथावत् भक्ति हो, उस-उस आराध्यदेवका पूजन आदि अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पूजन और दान आदिके बिना पातक दूर नहीं होते ।† जैसे मैले कपड़ेमें रंग बहुत अच्छा नहीं चढ़ता है किंतु जब उसको धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है, तब उसपर सब रंग अच्छी तरह चढ़ते हैं, उसी प्रकार देवताओंकी भलीभाँति पूजासे जब त्रिविध शरीर पूर्णतया निर्मल हो जाता है, तभी उसपर ज्ञानका रंग चढ़ता है और तभी विज्ञानका प्राकट्य होता है । जब विज्ञान हो जाता है, तब

---

* ध्यानयज्ञात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्।
यतः समरसं स्वेष्टं योगी ध्यानेन पश्यति ॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १२ । ४६)

† यत्र यत्र यथाभक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम्।
विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः ॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १२ । ६९)

भेदभावकी निवृत्ति हो जाती है। भेदकी सम्पूर्णतया निवृत्ति हो जानेपर द्वन्द्व-दुःख दूर हो जाते हैं और द्वन्द्व-दुःखसे रहित पुरुष शिवरूप हो जाता है।

मनुष्य जबतक गृहस्थ-आश्रममें रहे, तबतक पाँचों देवताओंकी तथा उनमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरकी प्रतिमाका उत्तम प्रेमके साथ पूजन करे। अथवा जो सबके एकमात्र मूल हैं, उन भगवान् शिवकी ही पूजा सबसे बढ़कर है; क्योंकि मूलके सींचे जानेपर शाखास्थानीय सम्पूर्ण देवता स्वतः तृप्त हो जाते हैं। अतः जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको पाना चाहता है, वह अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहकर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पूजन करे।

(अध्याय १२)

शिव-पूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि बता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट तथा सुखोंको सुलभ करानेवाली है। देवताओ तथा ऋषियो! तुम ध्यान देकर सुनो। उपासकको चाहिये कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें शयनसे उठकर जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिवका स्मरण करे तथा हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे प्रार्थना करे—'देवेश्वर! उठिये, उठिये! मेरे हृदय-मन्दिरमें शयन करनेवाले देवता! उठिये। उमाकान्त! उठिये और ब्रह्माण्डमें सबका मङ्गल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अधर्मको जानता हूँ, परंतु मैं उससे दूर नहीं हो पाता। महादेव! आप मेरे हृदयमें स्थित होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक कहकर और गुरुदेवकी चरणपादुकाओंका स्मरण करके गाँवसे बाहर दक्षिण दिशामें मलमूत्रका त्याग करनेके लिये जाय। मलत्याग करनेके बाद मिट्टी और जलसे धोनेके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दतुअन करे, सूर्योदय होनेसे पहले ही दतुअन करके मुँहको सोलह बार जलकी अञ्जलियोंसे धोये। देवताओ तथा ऋषियो! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावस्या और नवमी तिथियों तथा रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दतुअनको त्याग देना चाहिये। अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अथवा घरमें ही भली-भाँति स्नान करे। मनुष्यको देश और कालके विरुद्ध स्नान नहीं करना चाहिये। रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, महादान, तीर्थ, उपवास-दिवस अथवा आशौच प्राप्त होनेपर मनुष्य गरम जलसे स्नान न करे। शिवभक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रवाहके सम्मुख होकर स्नान करे। जो नहानेके पहले तेल लगाना चाहे, उसे विहित एवं निषिद्ध दिनोंका विचार करके ही तैलाभ्यङ्ग करना चाहिये। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तेल लगाता हो, उसके लिये किसी दिन भी तैलाभ्यङ्ग दूषित नहीं है अथवा जो तेल इत्र आदिसे वासित हो, उसका लगाना किसी दिन भी दूषित नहीं है। सरसोंका तेल ग्रहणको छोड़कर दूसरे किसी दिन भी दूषित नहीं होता। इस तरह देश-कालका विचार करके ही विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये।

उच्छिष्ट वस्त्रका उपयोग कभी न करे। शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके स्मरणपूर्वक स्नान करे। जिस वस्त्रको दूसरेने धारण किया हो अथवा जो दूसरोंके पहननेकी वस्तु हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, वह वस्त्र उच्छिष्ट कहलाता है। उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो। स्नानके पश्चात् देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको तृप्ति देनेवाला स्नानाङ्ग तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आचमन करे। द्विजोत्तमो! तदनन्तर गोबर आदिसे लीप-पोतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ सुन्दर आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा फैला हुआ तथा विचित्र होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट तथा फलोंको देनेवाला है। उसके ऊपर बिछानेके लिये यथायोग्य मृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध-बुद्धिवाला पुरुष उस आसनपर बैठकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगाये। त्रिपुण्ड्रसे जप-तप तथा दान सफल होता है। भस्मके अभावमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि बताया गया है। इस तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राक्ष धारण करे और अपने नित्यकर्मका सम्पादन करके फिर शिवकी आराधना करे। तत्पश्चात् तीन बार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आचमन करे। फिर वहाँ शिवकी पूजाके लिये अन्न और जल लाकर रक्खे। दूसरी कोई भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथाशक्ति जुटाकर अपने पास रक्खे। इस प्रकार पूजन-सामग्रीका संग्रह करके वहाँ धैर्यपूर्वक स्थिर भावसे बैठे। फिर जल, गन्ध और अक्षतसे युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर उसे दाहिने भागमें रक्खे। उससे उपचारकी सिद्धि

होती है। फिर गुरुका स्मरण करके उनकी आज्ञा लेकर विधिवत् संकल्प करके अपनी कामनाको अलग न रखते हुए पराभक्तिसे सपरिवार शिवका पूजन करे। एक मुद्रा दिखाकर सिन्दूर आदि उपचारोंद्वारा सिद्धि-बुद्धिसहित विघ्नहारी गणेशका पूजन करे। लक्ष और लाभसे युक्त गणेशजीका पूजन करके उनके नामके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः जोड़कर नामकेसाथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए नमस्कार करे। (यथा—ॐ गणपते नमः अथवा ॐ लक्षलाभयुताय सिद्धि-बुद्धिसहिताय गणपतये नमः) तदनन्तर उनसे क्षमा-प्रार्थना करके पुनः भाई कार्तिकेयसहित गणेशजीका पराभक्तिसे पूजन करके उन्हें बारंबार नमस्कार करे। तत्पश्चात् सदा द्वारपर खड़े रहनेवाले द्वारपाल महोदयका पूजन करके सती-साध्वी गिरिराजनन्दिनी उमाकी पूजा करे। चन्दन, कुङ्कुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों तथा नाना प्रकारके नैवेद्योंसे शिवाका पूजन करके नमस्कार करनेके पश्चात् साधक शिवजीके समीप जाय। यथासम्भव अपने घरमें मिट्टी, सोना, चाँदी, धातु या अन्य पारे आदिकी शिव-प्रतिमा बनाये और उसे नमस्कार करके भक्तिपरायण हो उसकी पूजा करे। उसकी पूजा हो जानेपर सभी देवता पूजित हो जाते हैं।

मिट्टीका शिवलिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। अपने घरमें रहनेवाले लोगोंको स्थापनासम्बन्धी सभी नियमोंका सर्वथा पालन करना चाहिये। भूतशुद्धि एवं मातृकान्यास करके प्राणप्रतिष्ठा करे। शिवालयमें दिक्पालोंकी भी स्थापना करके उनकी पूजा करे। घरमें सदा मूलमन्त्रका प्रयोग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये। वहाँ द्वारपालोंके पूजनका सर्वथा नियम नहीं है। भगवान् शिवके समीप ही अपने लिये आसनकी व्यवस्था करे। उस समय उत्तराभिमुख बैठकर फिर आचमन करे; उसके बाद दोनों हाथ जोड़कर तब प्राणायाम करे। प्राणायामकालमें मनुष्यको मूलमन्त्रकी दस आवृत्तियाँ करनी चाहिये। हाथोंसे पाँच मुद्राएँ दिखाये। यह पूजाका आवश्यक अङ्ग है। इन मुद्राओंका प्रदर्शन करके ही मनुष्य पूजा-विधिका अनुसरण करे। तदनन्तर वहाँ दीप निवेदन करके गुरुको नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन बाँधकर बैठे अथवा उत्तानासन या पर्यङ्कासनका आश्रय लेकर सुखपूर्वक बैठे और पुनः पूजनका प्रयोग करे। फिर अर्घ्यपात्रसे उत्तम शिवलिङ्गका प्रक्षालन करे। मनको भगवान् शिवसे अन्यत्र न ले जाकर पूजा-सामग्रीको अपने पास रखकर निम्नाङ्कित मन्त्रसमूहसे महादेवजीका आवाहन करे।

आवाहन

कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
यथोक्तरूपिणं शम्भुं निर्गुणं गुणरूपिणम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥ ४८ ॥
कर्पूरगौरं दिव्याङ्गं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम्।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम् ॥ ४९ ॥
वासुक्यादिपरीताङ्गं पिनाकाद्यायुधान्वितम्।
सिद्धयोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यन्तीह निरन्तरम् ॥ ५० ॥
जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुञ्जकैः।
तेजसा दुस्सहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ॥ ५१ ॥
शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपङ्कजम्।
वेदैः शास्त्रैर्यथागीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा ॥ ५२ ॥
भक्तवत्सलमानन्दं शिवमावाहयाम्यहम्।

(अध्याय १३)

'जो कैलासके शिखरपर निवास करते हैं, पार्वतीदेवीके पति हैं, समस्त देवताओंसे उत्तम हैं, जिनके स्वरूपका शास्त्रोंमें यथावत् वर्णन किया गया है, जो निर्गुण होते हुए भी गुणरूप हैं, जिनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न अङ्कित है, अङ्गकान्ति कर्पूरके समान गौर है, जो दिव्यरूपधारी, चन्द्रमारूपी मुकुटसे सुशोभित तथा सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले हैं, जो हाथीकी खाल पहनते और व्याघ्रचर्म ओढ़ते हैं, जिनका स्वरूप शुभ है, जिनके अङ्गोंमें वासुकि आदि नाग लिपटे रहते हैं, जो पिनाक आदि आयुध धारण करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं, भक्तसमुदाय जय-जयकार करते हुए जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, दुस्सह तेजके कारण जिनकी ओर देखना भी कठिन है, जो देवताओंसे सेवित तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, जिनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है, वेदों और शास्त्रोंने जिनकी महिमाका यथावत् गान किया है, विष्णु और ब्रह्मा भी सदा जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो परमानन्दस्वरूप हैं, उन भक्तवत्सल शम्भु शिवका मैं आवाहन करता हूँ।'



इस प्रकार साम्ब शिवका ध्यान करके उनके लिये आसन दे। चतुर्थ्यन्त पदसे ही क्रमशः सब कुछ अर्पित करे (यथा—साम्बाय सदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि—इत्यादि)। आसनके पश्चात् भगवान् शंकरको पाद्य और अर्घ्य दे। फिर परमात्मा शम्भुको आचमन कराकर पञ्चामृतसम्बन्धी द्रव्यों-द्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरको स्नान कराये। वेदमन्त्रों अथवा समन्त्रक चतुर्थ्यन्त नामपदोंका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक यथायोग्य समस्त द्रव्य भगवान्को अर्पित करे। अभीष्ट द्रव्यको शंकरके ऊपर चढ़ाये। फिर भगवान् शिवको वारुण-स्नान कराये। स्नानके पश्चात् उनके श्रीअङ्गोंमें सुगन्धित चन्दन तथा अन्य द्रव्योंका यत्नपूर्वक लेप करे। फिर सुगन्धित जलसे ही उनके ऊपर जलधारा गिराकर अभिषेक करे। वेदमन्त्रों, षडङ्गों अथवा शिवके ग्यारह नामोंद्वारा यथावकाश जलधारा चढ़ाकर वस्त्रसे शिवलिङ्गको अच्छी तरह पोंछे। फिर आचमनार्थ जल दे और वस्त्र समर्पित करे। नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा भगवान् शिवको तिल, जौ, गेहूँ, मूँग और उड़द अर्पित करे। फिर पाँच मुखवाले परमात्मा शिवको पुष्प चढ़ाये। प्रत्येक मुखपर ध्यानके अनुसार यथोचित अभि-लाषा करके कमल, शतपत्र, शङ्खपुष्प, कुशपुष्प, धत्तूर, मन्दार, द्रोणपुष्प (गूमा), तुलसीदल तथा बिल्वपत्र चढ़ाकर पराभक्तिके साथ भक्तवत्सल भगवान् शंकरकी विशेष पूजा करे। अन्य सब वस्तुओंका अभाव होनेपर शिवको केवल बिल्वपत्र ही अर्पित करे। बिल्वपत्र समर्पित होनेसे ही शिवकी पूजा सफल होती है। तत्पश्चात् सुगन्धित चूर्ण तथा सुवासित उत्तम तैल (इत्र आदि) विविध वस्तुएँ बड़े हर्षके साथ भगवान् शिवको अर्पित करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक गुग्गुल और अगुरु आदिकी धूप निवेदन करे। तदनन्तर शंकरजीको घीसे भरा हुआ दीपक दे। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्ति-पूर्वक पुनः अर्घ्य दे और भावभक्तिसे वस्त्रद्वारा उनके मुखका मार्जन करे।

अर्घ्यमन्त्र

रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर।
भुक्तिमुक्तिफलं देहि गृहीत्वार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'प्रभो! शंकर! आपको नमस्कार है। आप इस अर्घ्यको स्वीकार करके मुझे रूप दीजिये, यश दीजिये, भोग दीजिये तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान कीजिये।'

इसके बाद भगवान् शिवको भाँति-भाँतिके उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यके पश्चात् प्रेमपूर्वक आचमन कराये। तदनन्तर साङ्गोपाङ्ग ताम्बूल बनाकर शिवको समर्पित करे। फिर पाँच बत्तीकी आरती बनाकर भगवान्को दिखाये। उसकी संख्या इस प्रकार है—पैरोंमें चार बार, नाभिमण्डलके सामने दो बार, मुखके समक्ष एक बार तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें सात बार आरती दिखाये। तत्पश्चात् नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा प्रेमपूर्वक भगवान् वृषभध्वजकी स्तुति करे। तदनन्तर धीरे-धीरे शिवकी परिक्रमा करे। परिक्रमाके बाद भक्त पुरुष साष्टाङ्ग प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि दे—

पुष्पाञ्जलिमन्त्र

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥
तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसीद मे॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥

(अध्याय १३)

'शंकर! मैंने अज्ञानसे या जान-बूझकर जो पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो। मृड! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण सदा आपमें लगे हुए हैं, मेरा चित्त सदा आप-का ही चिन्तन करता है—ऐसा जानकर हे गौरीनाथ! भूत-नाथ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। प्रभो! धरतीपर जिनके

पैर लड़खड़ा जाते हैं, उनके लिये भूमि ही सहारा है; उसी प्रकार जिन्होंने आपके प्रति अपराध किये हैं उनके लिये भी आप ही शरणदाता हैं।'

—इत्यादि रूपसे बहुत-बहुत प्रार्थना करके उत्तम विधिसे पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्‌को नमस्कार करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे विसर्जन करना चाहिये।

विसर्जन

स्वस्थानं गच्छ देवेश परिवारयुतः प्रभो।
पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयाऽऽगन्तव्यमादरात्॥

'देवेश्वर प्रभो! अब आप परिवारसहित अपने स्थानको पधारें। नाथ! जब पूजाका समय हो, तब पुनः आप यहाँ सादर पदार्पण करें।'

इस प्रकार भक्तवत्सल शंकरकी बारंबार प्रार्थना करके उनका विसर्जन करे और उस जलको अपने हृदयमें लगाये तथा मस्तकपर चढ़ाये।

ऋषियो! इस तरह मैंने शिवपूजनकी सारी विधि बता दी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १३)

विभिन्न पुष्पों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—नारद! जो लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छा करता हो, वह कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र और शङ्खपुष्पसे भगवान् शिवकी पूजा करे। ब्रह्मन्! यदि एक लाखकी संख्यामें इन पुष्पोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा सम्पन्न हो जाय तो सारे पापोंका नाश होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन पुरुषोंने बीस कमलोंका एक प्रस्थ बताया है। एक सहस्र बिल्वपत्रोंको भी एक प्रस्थ कहा गया है। एक सहस्र शतपत्रसे आधे प्रस्थकी परिभाषा की गयी है। सोलह पलोंका एक प्रस्थ होता है और दस टङ्कोंका एक पल। इस मानसे पत्र, पुष्प आदिको तौलना चाहिये। जब पूर्वोक्त संख्यावाले पुष्पोंसे शिवकी पूजा हो जाती है, तब सकाम पुरुष अपने सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। यदि उपासकके मनमें कोई कामना न हो तो वह पूर्वोक्त पूजनसे शिवस्वरूप हो जाता है।

मृत्युञ्जय मन्त्रका जप पाँच लाख जप पूरा हो जाता है, तब भगवान् शिव प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। एक लाखके जपसे शरीरकी शुद्धि होती है, दूसरे लाखके जपसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होता है, तीसरा लाख पूर्ण होनेपर सम्पूर्ण काम्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। चौथे लाखका जप होनेपर स्वप्नमें भगवान् शिवका दर्शन होता है और पाँचवें लाखका जप ज्यों ही पूरा होता है, भगवान् शिव उपासकके सम्मुख तत्काल प्रकट हो जाते हैं। इसी मन्त्रका दस लाख जप हो जाय तो सम्पूर्ण फलकी सिद्धि होती है। जो मोक्षकी अभिलाषा रखता है, वह (एक लाख) दर्भोंद्वारा शिवका पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र लाखकी ही संख्या समझनी चाहिये। आयुकी इच्छावाला पुरुष एक लाख दूर्वाओंद्वारा पूजन करे। जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह धतूरेके एक लाख फूलोंसे पूजा करे। लाल डंठलवाला धतूरा पूजनमें शुभदायक माना गया है। अगस्त्यके एक लाख फूलोंसे पूजा करनेवाले पुरुषको महान् यशकी प्राप्ति होती है। यदि तुलसीदलसे शिवकी पूजा करे तो उपासकको भोग और मोक्ष दोनों सुलभ होते हैं। लाल और सफेद आक, अपामार्ग और श्वेत कमलके एक लाख फूलोंद्वारा पूजा करनेसे भी उसी फल (भोग और मोक्ष) की प्राप्ति होती है। जपा (अँड़हुल) के एक लाख फूलोंसे की हुई पूजा शत्रुओंको मृत्यु देनेवाली होती है। करवीरके एक लाख फूल यदि शिवपूजनके उपयोगमें लाये जायँ तो वे यहाँ रोगोंका उच्चाटन करनेवाले होते हैं। बन्धूक (दुपहरिया) के फूलोंद्वारा पूजन करनेसे आभूषणकी प्राप्ति होती है। चमेलीसे शिवकी पूजा करके मनुष्य वाहनोंको उपलब्ध करता है, इसमें संशय नहीं है। अलसीके फूलोंसे महादेवजीका पूजन करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुको प्रिय होता है। शमीपत्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। बेलाके फूल चढ़ानेपर भगवान् शिव अत्यन्त शुभलक्षणा पत्नी प्रदान करते हैं। जूहीके फूलोंसे पूजा की जाय तो घरमें कभी अन्नकी कमी नहीं होती। कनेरके फूलोंसे पूजा करनेपर मनुष्योंको वस्त्रकी प्राप्ति होती है। सेदुआरि या शेफालिकाके फूलोंसे शिवका पूजन किया जाय तो मन निर्मल होता है। एक लाख बिल्वपत्र चढ़ानेपर मनुष्य अपनी सारी काम्य वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है। शृङ्गारहार (हरसिंगार)के फूलोंसे पूजा करनेपर सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती

है। वर्तमान ऋतुमें पैदा होनेवाले फूल यदि शिवकी सेवामें समर्पित किये जायँ तो वे मोक्ष देनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है। राईके फूल शत्रुओंको मृत्यु प्रदान करनेवाले होते हैं। इन फूलोंको एक-एक लाखकी संख्यामें शिवके ऊपर चढ़ाया जाय तो भगवान् शिव प्रचुर फल प्रदान करते हैं। चम्पा और केवड़ेको छोड़कर शेष सभी फूल भगवान् शिवको चढ़ाये जा सकते हैं।

विप्रवर! महादेवजीके ऊपर चावल चढ़ानेसे मनुष्योंकी लक्ष्मी बढ़ती है। ये चावल अखण्डित होने चाहिये और इन्हें उत्तम भक्तिभावसे शिवके ऊपर चढ़ाना चाहिये। रुद्र-प्रधान मन्त्रसे पूजा करके भगवान् शिवके ऊपर बहुत सुन्दर वस्त्र चढ़ाये और उसीपर चावल रखकर समर्पित करे तो उत्तम है। भगवान् शिवके ऊपर गन्ध, पुष्प आदिके साथ एक श्रीफल चढ़ाकर धूप आदि निवेदन करे तो पूजाका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। वहाँ शिवके समीप बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इससे मन्त्रपूर्वक साङ्गोपाङ्ग लक्ष पूजा सम्पन्न होती है। जहाँ सौ मन्त्र जपनेकी विधि हो, वहाँ एक सौ आठ मन्त्र जपनेका विधान किया गया है। तिलोंद्वारा शिवजीको एक लाख आहुतियाँ दी जायँ अथवा एक लाख तिलोंसे शिवकी पूजा की जाय तो वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली होती है। जौद्वारा की हुई शिवकी पूजा स्वर्गीय सुखकी वृद्धि करनेवाली है, ऐसा ऋषियोंका कथन है। गेहूँके बने हुए पकवानसे की हुई शंकरजीकी पूजा निश्चय ही बहुत उत्तम मानी गयी है। यदि उससे लाख बार पूजा हो तो उससे संतानकी वृद्धि होती है। यदि मूँगसे पूजा की जाय तो भगवान् शिव सुख प्रदान करते हैं। प्रियंगु (कँगनी) द्वारा सर्वाध्यक्ष परमात्मा शिवका पूजन करनेमात्रसे उपासकके धर्म, अर्थ और काम-भोगकी वृद्धि होती है तथा वह पूजा समस्त सुखोंको देनेवाली होती है। अरहरके पत्तोंसे शृङ्गार करके भगवान् शिवकी पूजा करे। यह पूजा नाना प्रकारके सुखों और सम्पूर्ण फलोंको देनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अब फूलोंकी लक्ष संख्याका तौल बताया जा रहा है। प्रसन्नतापूर्वक सुनो। सूक्ष्म मानका प्रदर्शन करनेवाले व्यासजीने एक प्रस्थ शङ्खपुष्पको एक लाख बताया है। ग्यारह प्रस्थ चमेलीके फूल हों तो वही एक लाख फूलोंका मान कहा गया है। जूहीके एक लाख फूलोंका भी वही मान है। राईके एक लाख फूलोंका मान साढ़े पाँच प्रस्थ है। उपासकको चाहिये कि वह निष्काम होकर मोक्षके लिये भगवान् शिवकी पूजा करे।

भक्तिभावसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके भक्तोंको पीछे जलधारा समर्पित करनी चाहिये। ज्वरमें मनुष्य जो प्रलाप करने लगता है, उसकी शान्तिके लिये जलधारा शुभकारक बतायी गयी है। शतरुद्रियमन्त्रसे, रुद्रीके ग्यारह पाठोंसे, रुद्रमन्त्रोंके जपसे, पुरुषसूक्तसे, छः ऋचावाले रुद्रसूक्तसे, महामृत्युञ्जयमन्त्रसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा शिवके शास्त्रोक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर बने हुए मन्त्रोंद्वारा जलधारा आदि अर्पित करनी चाहिये। सुख और संतानकी वृद्धिके लिये जलधाराद्वारा पूजन उत्तम बताया गया है। उत्तम भस्म धारण करके उपासकको प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके शुभ एवं दिव्य द्रव्योंद्वारा शिवकी पूजा करनी चाहिये और शिवपर उनके सहस्रनाम मन्त्रोंसे घीकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर वंशका विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार यदि दस हजार मन्त्रोंद्वारा शिवजीकी पूजा की जाय तो प्रमेह रोगकी शान्ति होती है और उपासकको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह घीसे शिवजीकी भलीभाँति पूजा करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने प्राजापत्य व्रतका भी विधान किया है। यदि बुद्धि जड हो जाय तो उस अवस्थामें पूजकको केवल शर्करामिश्रित दुग्धकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसे बृहस्पतिके समान उत्तम बुद्धि प्राप्त हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्रोंका जप पूरा न हो जाय, तबतक पूर्वोक्त दुग्धधाराद्वारा भगवान् शिवका उत्कृष्ट पूजन चालू रखना चाहिये। जब तन-मनमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे—जी उचट जाय, कहीं भी प्रेम न रहे, दुःख बढ़ जाय और अपने घरमें सदा कलह रहने लगे, तब पूर्वोक्तरूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है। सुवासित तेलसे पूजा करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुसे शिवकी पूजा की जाय तो राजयक्ष्माका रोग दूर हो जाता है। यदि शिवपर ईखके रसकी धारा चढ़ायी जाय तो वह भी सम्पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली होती है। गङ्गाजलकी धारा तो भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाली है। ये सब जो-जो धाराएँ बतायी गयी हैं, इन सबको मृत्युञ्जयमन्त्रसे चढ़ाना चाहिये, उसमें भी उक्त मन्त्रका विधानतः दस हजार जप करना चाहिये और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। (अध्याय १४)

सृष्टिका वर्णन

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी बोले— मुने ! हमें पूर्वोक्त आदेश देकर जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ध्यानमग्न हो कर्तव्यका विचार करने लगा । उस समय भगवान् शंकरको नमस्कार करके श्रीहरिसे ज्ञान पाकर परमानन्दको प्राप्त हो मैंने सृष्टि करनेका ही निश्चय किया । तात ! भगवान् विष्णु भी वहाँ सदाशिवको प्रणाम करके मुझे आवश्यक उपदेश दे तत्काल अदृश्य हो गये । वे ब्रह्माण्डसे बाहर जाकर भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करके वैकुण्ठ-धाममें जा पहुँचे और सदा वहीं रहने लगे । मैंने सृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिव और विष्णुका स्मरण करके पहलेके रचे हुए जलमें अपनी अञ्जलि डालकर जलको ऊपरकी ओर उछाला । इससे वहाँ एक अण्ड प्रकट हुआ, जो चौबीस तत्त्वोंका समूह कहा जाता है । विप्रवर ! वह विराट् आकारवाला अण्ड जडरूप ही था । उसमें चेतनता न देखकर मुझे बड़ा संशय हुआ और मैं अत्यन्त कठोर तप करने लगा । बारह वर्षोंतक भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहा । तात ! वह समय पूर्ण होनेपर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेमसे मेरे अङ्गोंका स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

श्रीविष्णुने कहा—ब्रह्मन् ! तुम वर माँगो । मैं प्रसन्न हूँ । मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है । भगवान् शिवकी कृपासे मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ ।

ब्रह्मा बोले—(अर्थात् मैंने कहा—) महाभाग ! आपने जो मुझपर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ही है; क्योंकि भगवान् शंकरने मुझे आपके हाथोंमें सौंप दिया है । विष्णो ! आपको नमस्कार है । आज मैं आपसे जो कुछ माँगता हूँ, उसे दीजिये । प्रभो ! यह विराट्‌रूप चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ अण्ड किसी तरह चेतन नहीं हो रहा है, जडीभूत दिखायी देता है । हरे ! इस समय भगवान् शिवकी कृपासे आप यहाँ प्रकट हुए हैं । अतः शंकरकी सृष्टि-शक्ति या विभूतिसे प्राप्त हुए इस अण्डमें चेतनता लाइये ।

मेरे ऐसा कहनेपर शिवकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले महाविष्णुने अनन्तरूपका आश्रय ले उस अण्डमें प्रवेश किया । उस समय उन परम पुरुषके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर थे । उन्होंने भूमिको सब ओरसे घेरकर उस अण्डको व्याप्त कर लिया । मेरे द्वारा भलीभाँति स्तुति की जानेपर जब श्रीविष्णुने उस अण्डमें प्रवेश किया, तब वह चौबीस तत्त्वोंका विकाररूप अण्ड सचेतन हो गया । पातालसे लेकर सत्यलोकतककी अवधिवाले उस अण्डके रूपमें वहाँ साक्षात् श्रीहरि ही विराजने लगे । उस विराट् अण्डमें व्यापक होनेसे ही वे प्रभु 'वैराज पुरुष' कहलाये । पञ्चमुख महादेवने केवल अपने रहनेके लिये सुरम्य कैलास-नगरका निर्माण किया, जो सब लोकोंसे ऊपर सुशोभित होता है । देवर्षे ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नाश हो जानेपर भी वैकुण्ठ और कैलास—इन दो धामोंका यहाँ कभी नाश नहीं होता । मुनिश्रेष्ठ ! मैं सत्यलोकका आश्रय लेकर रहता हूँ । तात ! महादेवजीकी आज्ञासे ही मुझमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है । बेटा ! जब मैं सृष्टिकी इच्छासे चिन्तन करने लगा, उस समय पहले मुझसे अनजानमें ही पापपूर्ण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अविद्या-पञ्चक (अथवा पञ्चपर्वा अविद्या) कहते हैं । तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर शम्भुकी आज्ञासे मैं पुनः अनासक्त भावसे सृष्टिका चिन्तन करने लगा । उस समय मेरे द्वारा स्थावर-संज्ञक वृक्ष आदिकी सृष्टि हुई, जिसे मुख्य-सर्ग कहते हैं । (यह पहला सर्ग है ।) उसे देखकर तथा वह अपने लिये पुरुषार्थका साधक नहीं है, यह जानकर सृष्टिकी इच्छावाले मुझ ब्रह्मासे दूसरा सर्ग प्रकट हुआ, जो दुःखसे भरा हुआ है; उसका नाम है—तिर्यक्स्रोता[१] । वह सर्ग भी पुरुषार्थका साधक नहीं था । उसे भी पुरुषार्थ-साधनकी शक्तिसे रहित जान जब मैं पुनः सृष्टिका चिन्तन करने लगा, तब मुझसे शीघ्र ही तीसरे सात्त्विक सर्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'ऊर्ध्वस्रोता' कहते हैं । यह देवसर्गके नामसे विख्यात हुआ । देवसर्ग सत्यवादी तथा अत्यन्त सुखदायक है । उसे भी पुरुषार्थसाधनकी रुचि एवं अधिकारसे रहित मानकर मैंने अन्य सर्गके लिये अपने स्वामी श्रीशिवका चिन्तन आरम्भ किया । तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे एक रजोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अर्वाक्स्रोता कहा गया है । इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थ-साधनके उच्च अधिकारी हैं । तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे भूत आदिकी सृष्टि हुई । इस तरह मैंने पाँच तरहकी वैकृत सृष्टिका वर्णन किया है । इनके सिवा तीन प्राकृत सर्ग भी कहे गये हैं, जो मुझ ब्रह्माके सांनिध्यसे प्रकृतिसे ही प्रकट हुए हैं । इनमें पहला महत्तत्त्वका सर्ग है, दूसरा सूक्ष्म भूतों अर्थात् तन्मात्राओंका सर्ग है और तीसरा वैकारिकसर्ग कहलाता है । इस तरह ये तीन प्राकृत सर्ग हैं । प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकारके सर्गोंको मिलानेसे आठ सर्ग होते हैं । इनके सिवा नवाँ कौमारसर्ग है, जो प्राकृत और वैकृत भी है । इन सबके अवान्तर भेदका मैं वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि उसका उपयोग बहुत थोड़ा है ।

१. पशु, पक्षी आदि तिर्यक्स्रोता कहलाते हैं । वायुकी भाँति तिरछा चलनेके कारण ये तिर्यक् अथवा 'तिर्यक्स्रोता' कहे गये हैं ।

अब द्विजात्मक सर्गका प्रतिपादन करता हूँ। इसीका दूसरा नाम कौमारसर्ग है, जिसमें सनक-सनन्दन आदि कुमारोंकी महत्त्वपूर्ण सृष्टि हुई है। सनक आदि मेरे चार मानस पुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके ही समान हैं। वे महान् वैराग्यसे सम्पन्न तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हुए। उनका मन सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें ही लगा रहता है। वे संसारसे विमुख एवं ज्ञानी हैं। उन्होंने मेरे आदेश देनेपर भी सृष्टिके कार्यमें मन नहीं लगाया। मुनिश्रेष्ठ नारद! सनकादि कुमारोंके दिये हुए नकारात्मक उत्तरको सुनकर मैंने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया। उस समय मुझपर मोह छा गया। उस अवसरपर मैंने मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण किया। वे शीघ्र ही आ गये और उन्होंने समझाते हुए मुझसे कहा—'तुम भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करो।' मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिने जब मुझे ऐसी शिक्षा दी, तब मैं महाघोर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा। सृष्टिके लिये तपस्या करते हुए मेरी दोनों भौंहों और नासिकाके मध्यभागसे, जो उनका अपना ही अविमुक्त नामक स्थान है, महेश्वरकी तीन मूर्तियोंमेंसे अन्यतम पूर्णांश, सर्वेश्वर एवं दयासागर भगवान् शिव अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट हुए।



जो जन्मसे रहित, तेजकी राशि, सर्वज्ञ तथा सर्वस्रष्टा हैं उन नीललोहित-नामधारी साक्षात् उमावल्लभ शंकरको सामने देख बड़ी भक्तिसे मस्तक झुका उनकी स्तुति करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उन देवदेवेश्वरसे बोला—'प्रभो! आप भाँति-भाँतिके जीवोंकी सृष्टि कीजिये।' मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रुद्रने अपने ही समान बहुत-से रुद्रगणोंकी सृष्टि की। तब मैंने अपने स्वामी महेश्वर महा-



रुद्रसे फिर कहा—'देव! आप ऐसे जीवोंकी सृष्टि कीजिये, जो जन्म और मृत्युके भयसे युक्त हों।' मुनिश्रेष्ठ! मेरी ऐसी बात सुनकर करुणासागर महादेवजी हँस पड़े और तत्काल इस प्रकार बोले।

महादेवजीने कहा—विधातः! मैं जन्म और मृत्युके भयसे युक्त अशोभन जीवोंकी सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वे कर्मोंके अधीन हो दुःखके समुद्रमें डूबे रहेंगे। मैं तो दुःखके सागरमें डूबे हुए उन जीवोंका उद्धारमात्र करूँगा, गुरुका स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदानकर

उन सबको संसार-सागरसे पार करूँगा। प्रजापते ! दुःखमें डूबे हुए सारे जीवकी सृष्टि तो तुम्हीं करो। मेरी आज्ञासे इस कार्यमें प्रवृत्त होनेके कारण तुम्हें माया नहीं बाँध सकेगी।

मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीललोहित महादेव मेरे देखते-देखते अपने पार्षदोंके साथ वहाँसे तत्काल तिरोहित हो गये। (अध्याय १५)

स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी, ऋषियोंकी तथा दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्ताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मैंने शब्द-तन्मात्रा आदि सूक्ष्मभूतोंको स्वयं ही पञ्चीकृत करके अर्थात् उन पाँचोंका परस्पर सम्मिश्रण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीकी सृष्टि की। पर्वतों, समुद्रों और वृक्षों आदिको उत्पन्न किया। कलासे लेकर युगपर्यन्त जो काल-विभाग हैं, उनकी रचना की। मुने ! उत्पत्ति और विनाश-वाले और भी बहुत-से पदार्थोंका मैंने निर्माण किया। परंतु इससे मुझे संतोष नहीं हुआ। तब साम्ब शिवका ध्यान करके मैंने साधनपरायण पुरुषोंकी सृष्टि की। अपने दोनों नेत्रोंसे मरीचिको, हृदयसे भृगुको, सिरसे अङ्गिराको, व्यानवायुसे मुनिश्रेष्ठ पुलहको, उदानवायुसे पुलस्त्यको, समानवायुसे वसिष्ठको, अपानसे क्रतुको, दोनों कानोंसे अत्रिको, प्राणोंसे दक्षको, गोदसे तुमको, छायासे कर्दम मुनिको तथा संकल्पसे समस्त साधनोंके साधन धर्मको उत्पन्न किया। मुनिश्रेष्ठ ! इस तरह इन उत्तम साधकोंकी सृष्टि करके महादेवजीकी कृपासे मैंने अपने आपको कृतार्थ माना। तात ! तत्पश्चात् संकल्पसे उत्पन्न हुए धर्म मेरी आज्ञासे मानवरूप धारण करके साधकोंकी प्रेरणासे साधनमें लग गये। इसके बाद मैंने अपने विभिन्न अङ्गोंसे देवता, असुर आदिके रूपमें असंख्य पुत्रोंकी सृष्टि करके उन्हें भिन्न-भिन्न शरीर प्रदान किये। मुने ! तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके मैं दो रूपवाला हो गया। नारद ! आधे शरीरसे मैं स्त्री हो गया और आधेसे पुरुष।



उस पुरुषने उस स्त्रीके गर्भसे सर्वसाधनसमर्थ उत्तम जोड़ेको उत्पन्न किया। उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वही स्वायम्भुव मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साधक हुए तथा जो स्त्री हुई, वह शतरूपा कहलायी। वह योगिनी एवं तपस्विनी हुई। तात ! मनुने वैवाहिक विधिसे अत्यन्त सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजनित सृष्टि उत्पन्न करने लगे। उन्होंने शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं। कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति। मनुने आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिके साथ किया। मझली पुत्री

देवहूति कर्दमको ब्याह दी और उत्तानपादकी सबसे छोटी बहिन प्रसूति प्रजापति दक्षको दे दी । उनकी संतान-परम्पराओंसे समस्त चराचर जगत् व्याप्त है ।

रुचिसे आकूतिके गर्भसे यज्ञ और दक्षिणा नामक स्त्री-पुरुषका जोड़ा उत्पन्न हुआ । यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र हुए । मुने ! कर्दमद्वारा देवहूतिके गर्भसे बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं । दक्षके प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ हुईं । उनमेंसे श्रद्धा आदि तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने धर्मके साथ कर दिया । मुनीश्वर ! धर्मकी उन पत्नियोंके नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति—ये सब तेरह हैं । इनसे छोटी जो शेष ग्यारह सुलोचना कन्याएँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा । भृगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, मुनिश्रेष्ठ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितरोंने क्रमशः इन ख्याति आदि कन्याओंका पाणिग्रहण किया । भृगु आदि मुनिश्रेष्ठ साधक हैं । इनकी संतानोंसे चराचर प्राणियोंसहित सारी त्रिलोकी भरी हुई है ।

इस प्रकार अम्बिकापति महादेवजीकी आज्ञासे अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार बहुत-से प्राणी असंख्य श्रेष्ठ द्विजोंके रूपमें उत्पन्न हुए । कल्पभेदसे दक्षके साठ कन्याएँ बतायी गयी हैं । उनमेंसे दस कन्याओंका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया । सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं और विधिपूर्वक तेरह कन्याओंके हाथ दक्षने कश्यपके हाथमें दे दिये । नारद ! उन्होंने चार कन्याएँ श्रेष्ठ रूपवाले तार्क्ष्य (अरिष्टनेमि) को ब्याह दीं तथा भृगु, अङ्गिरा और कृशाश्वको दो-दो कन्याएँ अर्पित कीं । उन स्त्रियोंसे उनके पतियोंद्वारा बहुसंख्यक चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई । मुनिश्रेष्ठ ! दक्षने महात्मा कश्यपको जिन तेरह कन्याओंका विधिपूर्वक दान दिया था, उनकी संतानोंसे सारी त्रिलोकी व्याप्त है । स्थावर और जंगम कोई भी सृष्टि ऐसी नहीं है, जो कश्यपकी संतानोंसे शून्य हो । देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी कश्यपपत्नियोंसे पैदा हुए हैं । इस प्रकार दक्ष-कन्याओंकी संतानोंसे सारा चराचर जगत् व्याप्त है । पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही उसकी संतानोंसे सदा भरा रहता है, कभी खाली नहीं होता ।

इस तरह भगवान् शंकरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने भलीभाँति सृष्टि की । पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने जिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था तथा रुद्रदेवने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सतीदेवी लोकहितका कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुई थीं । उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं । इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे ब्याही गयीं; किंतु पिताके यज्ञमें पतिका अपमान देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया और फिर उसे ग्रहण नहीं किया । वे अपने परमपदको प्राप्त हो गयीं । फिर देवताओंकी प्रार्थनासे वे ही शिवा पार्वतीरूपमें प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके पुनः भगवान् शिवको उन्होंने प्राप्त कर लिया । मुनीश्वर ! इस जगत्में उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हुए । उनके कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी और सर्वमङ्गला आदि अनेक नाम हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं । ये सभी नाम उनके गुण और कर्मोंके अनुसार हैं ।

मुनिश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार मैंने सृष्टिक्रमका तुमसे वर्णन किया है । ब्रह्माण्डका यह सारा भाग भगवान् शिवकी आज्ञासे मेरेद्वारा रचा गया है । भगवान् शिवको परब्रह्म परमात्मा कहा गया है । मैं, विष्णु तथा रुद्र—ये तीन देवता गुणभेदसे उन्हींके रूप बतलाये गये हैं । वे मनोरम शिव-लोकमें शिवाके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं । भगवान् शिव स्वतन्त्र परमात्मा हैं । निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं ।

(अध्याय १६)

यज्ञदत्त-कुमारको भगवान् शिवकी कृपासे कुबेरपदकी प्राप्ति तथा उनकी भगवान् शिवके साथ मैत्री

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और पुनः पूछा—'भगवन् ! भक्तवत्सल भगवान् शंकर कैलास पर्वतपर कब गये और महात्मा कुबेरके साथ उनकी मैत्री कब हुई ? परिपूर्ण मङ्गलविग्रह महादेवजीने वहाँ क्या किया ? यह सब मुझे बताइये । इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ।'

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! सुनो, चन्द्रमौलि भगवान्

शंकरके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वे कैसे कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ किस प्रकार मैत्री हुई, यह सब सुनाता हूँ। काम्पिल्य नगरमें यज्ञदत्त नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो बड़े सदाचारी थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गुणनिधि था। वह बड़ा ही दुराचारी और जुआरी हो गया था। पिताने अपने उस पुत्रको त्याग दिया। वह घरसे निकल गया और कई दिनोंतक भूखा भटकता रहा। एक दिन वह नैवेद्य चुराने-की इच्छासे एक शिवमन्दिरमें गया। वहाँ उसने अपने वस्त्रको जलाकर उजाला किया। यह मानो उसके द्वारा



भगवान् शिवके लिये दीपदान किया गया। तत्पश्चात् वह चोरीमें पकड़ा गया और उसे प्राणदण्ड मिला। अपने कुकर्मोंके कारण वह यमदूतोंद्वारा बाँधा गया। इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उसे उनके बन्धनसे छुड़ा दिया। शिवगणोंके सङ्गसे उसका हृदय शुद्ध हो गया था। अतः वह उन्हींके साथ तत्काल शिवलोकमें चला गया। वहाँ सारे दिव्य भोगोंका उपभोग तथा उमा-महेश्वरका सेवन करके कालान्तरमें वह कलिङ्गराज अरिंदम-का पुत्र हुआ। वहाँ उसका नाम था दम। वह निरन्तर भगवान् शिवकी सेवामें लगा रहता था। बालक होनेपर भी वह दूसरे बालकोंके साथ शिवका भजन किया करता था। वह क्रमशः युवावस्थाको प्राप्त हुआ और पिताके परलोक-गमनके पश्चात् राजसिंहासनपर बैठा।

राजा दम बड़ी प्रसन्नताके साथ सब ओर शिवधर्मोंका प्रचार करने लगे। भूपाल दमका दमन करना दूसरोंके लिये सर्वथा कठिन था। ब्रह्मन्! समस्त शिवालयोंमें दीपदान करनेके अतिरिक्त वे दूसरे किसी धर्मको नहीं जानते थे। उन्होंने अपने राज्यमें रहनेवाले समस्त ग्रामाध्यक्षोंको बुलाकर यह आज्ञा दे दी कि



'शिवमन्दिरमें दीपदान करना सबके लिये अनिवार्य होगा। जिस-जिस ग्रामाध्यक्षके गाँवके पास जितने शिवालय हों, वहाँ-वहाँ बिना कोई विचार किये सदा दीप जलाना चाहिये।' आजीवन इसी धर्मका पालन करनेके कारण राजा दमने बहुत बड़ी धर्मसम्पत्तिका संचय कर लिया। फिर वे काल-धर्मके अधीन हो गये। दीपदानकी वासनासे युक्त होने-के कारण उन्होंने शिवालयोंमें बहुत-से दीप जलवाये और उसके फलस्वरूप जन्मान्तरमें वे रत्नमय दीपोंकी प्रभाके आश्रय हो अलकापुरीके स्वामी हुए। इस प्रकार भगवान् शिवके लिये किया हुआ थोड़ा-सा भी पूजन या आराधन

समयानुसार महान् फल देता है, ऐसा जानकर उत्तम सुखकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिवका भजन अवश्य करना चाहिये । वह दीक्षितका पुत्र, जो सदा सब प्रकारके अधर्मोंमें ही रचा-पचा रहता था, दैवयोगसे शिवालयमें धन चुरानेके लिये गया और उसने स्वार्थवश अपने कपड़ेको दीपककी बत्ती बनाकर उसके प्रकाशसे शिवलिङ्गके ऊपरका अँधेरा दूर कर दिया; इस सत्कर्मके फलस्वरूप वह कलिङ्गदेशका राजा हुआ और धर्ममें उसका अनुराग हो गया। फिर दीपकी वासनाका उदय होनेसे शिवालयोंमें दीप जलवाकर उसने यह दिक्पालका पद पा लिया। मुनीश्वर ! देखो तो सही, कहाँ उसका वह कर्म और कहाँ यह दिक्पालकी पदवी, जिसका यह मानवधर्मा प्राणी इस समय यहाँ उपभोग कर रहा है। तात ! यह तो उसके ऊपर शिवके संतुष्ट होनेकी बात बतायी गयी। अब एकचित्त होकर यह सुनो कि किस प्रकार सदाके लिये उसकी भगवान् शिवके साथ मित्रता हो गयी। मैं इस प्रसङ्गका तुमसे वर्णन करता हूँ।

नारद ! पहलेके पाद्मकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके मानस पुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके पुत्र वैश्रवण (कुबेर) हुए। उन्होंने पूर्वकालमें अत्यन्त उग्र तपस्याके द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेवकी आराधना करके विश्वकर्माकी बनायी हुई इस अलकापुरीका उपभोग किया। जब वह कल्प व्यतीत हो गया और मेघवाहनकल्प आरम्भ हुआ, उस समय वह यज्ञदत्तका पुत्र, जो प्रकाशका दान करनेवाला था, कुबेरके रूपमें अत्यन्त दुस्सह तपस्या करने लगा। दीपदानमात्रसे मिलनेवाली शिवभक्तिके प्रभावको जानकर वह शिवकी चित्प्रकाशिका काशिकापुरीमें गया और अपने चित्तरूपी रत्नमय प्रदीपोंसे ग्यारह रुद्रोंको उद्बोधित करके अनन्यभक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह तन्मयतापूर्वक शिवके ध्यानमें मग्न हो निश्चलभावसे बैठ गया। जो शिवकी एकताका महान् पात्र है, तपरूपी अग्निसे बढ़ा हुआ है, काम-क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतङ्गोंके आघातसे शून्य है, प्राणनिरोधरूपी वायुशून्य स्थानमें निश्चलभावसे प्रकाशित है, निर्मल दृष्टिके कारण स्वरूपसे भी निर्मल है तथा सद्भावरूपी पुष्पोंसे जिसकी पूजा की गयी है, ऐसे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करके वह तबतक तपस्यामें लगा रहा, जबतक उसके शरीरमें केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये। इस प्रकार उसने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की।

तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ कुबेरके पास आये। उन्होंने प्रसन्नचित्तसे अलकापतिकी ओर देखा। वे शिवलिङ्गमें मनको एकाग्र करके ठूँठे काठकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे। भगवान् शिवने उनसे कहा—'अलकापते ! मैं वर देनेके लिये उद्यत हूँ। तुम अपना मनोरथ बताओ।'

यह वाणी सुनकर तपस्याके धनी कुबेरने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उमावल्लभ भगवान् श्रीकण्ठ सामने खड़े दिखायी दिये। वे उदयकालके सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी थे और उनके मस्तकपर चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेर रहे थे। भगवान् शंकरके तेजसे उनकी आँखें चौंधिया गयीं। उनका तेज प्रतिहत हो गया और वे नेत्र बंद करके मनोरथसे भी परे विराजमान देवदेवेश्वर शिवसे बोले—'नाथ ! मेरे नेत्रोंको वह दृष्टिशक्ति दीजिये, जिससे आपके चरणारविन्दोंका दर्शन हो सके। स्वामिन्! आपका प्रत्यक्ष दर्शन हो, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है। ईश ! दूसरे किसी वरसे मेरा क्या प्रयोजन है। चन्द्रशेखर ! आपको नमस्कार है।'

कुबेरकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमापतिने अपनी हथेलीसे उनका स्पर्श करके उन्हें देखनेकी शक्ति प्रदान की। दृष्टिशक्ति मिल जानेपर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आँखें फाड़-फाड़कर पहले उमाकी ओर ही देखना आरम्भ किया। वह मन-ही-मन सोचने लगा, 'भगवान् शंकरके समीप यह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है ? इसने कौन-सा ऐसा तप किया है, जो मेरी भी तपस्यासे बढ़ गया है। यह रूप, यह प्रेम, यह सौभाग्य और यह असीम शोभा—सभी अद्भुत हैं।' वह ब्राह्मणकुमार बार-बार यही कहने लगा। जब बार-बार यही कहता हुआ वह क्रूर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा, तब वामाके अवलोकनसे उसकी बायीं आँख फूट गयी। तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—'प्रभो ! यह दुष्ट तपस्वी बार-बार मेरी ओर देखकर क्या बक रहा है ? आप मेरी तपस्याके तेजको प्रकट कीजिये।' देवीकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए उनसे कहा—'उमे ! यह तुम्हारा पुत्र है। यह तुम्हें क्रूर दृष्टिसे नहीं देखता, अपितु तुम्हारी तपःसम्पत्तिका वर्णन कर रहा है।' देवीसे ऐसा कहकर भगवान् शिव पुनः उस ब्राह्मणकुमारसे बोले—'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्यासे



संतुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियोंके स्वामी और गुह्यकोंके राजा हो जाओ। सुव्रत! यक्षों, किन्नरों और राजाओंके भी राजा होकर पुण्यजनोंके पालक और सबके लिये धनके दाता बनो। मेरे साथ तुम्हारी सदा मैत्री बनी रहेगी और मैं नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। मित्र! तुम्हारी प्रीति बढ़ानेके लिये मैं अलकाके पास ही रहूँगा। आओ, इन उमादेवीके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करो; क्योंकि ये तुम्हारी माता हैं। महाभक्त यज्ञदत्त-कुमार! तुम अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे इनके चरणोंमें गिर जाओ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार वर देकर भगवान् शिवने पार्वती देवीसे फिर कहा—'देवेश्वरी! इसपर कृपा करो। तपस्विनि! यह तुम्हारा पुत्र है।' भगवान् शंकरका यह कथन सुनकर जगदम्बा पार्वतीने प्रसन्नचित्त हो यज्ञदत्त-कुमारसे कहा—'वत्स! भगवान् शिवमें तुम्हारी सदा निर्मल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बायीं आँख तो फूट ही गयी। इसलिये एक ही पिङ्गलनेत्रसे युक्त रहो। महादेवजीने जो वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। बेटा! मेरे रूपके प्रति ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुबेर नामसे प्रसिद्ध होओगे।' इस प्रकार कुबेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वती देवीके साथ अपने विश्वेश्वर-धाममें चले गये। इस तरह कुबेरने भगवान् शंकरकी मैत्री प्राप्त की और अलकापुरीके पास जो कैलास पार्वत है, वह भगवान् शंकरका निवास हो गया। (अध्याय १७—१९)

भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिखण्डका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुने! कुबेरके तपोबलसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर शुभागमन हुआ, वह प्रसङ्ग सुनो। कुबेरको वर देनेवाले विश्वेश्वर शिव जब उन्हें निधिपति होनेका वर देकर अपने उत्तम स्थानको चले गये, तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'ब्रह्माजीके ललाटसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य सँभालते हैं, वे रुद्र मेरे पूर्ण स्वरूप हैं। अतः उन्हींके रूपमें मैं गुह्यकोंके निवासस्थान कैलास पर्वतको जाऊँगा। उन्हींके रूपमें मैं कुबेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर विलासपूर्वक रहूँगा और बड़ा भारी तप करूँगा।'

शिवकी इस इच्छाका चिन्तन करके उन रुद्रदेवने कैलास जानेके लिये उत्सुक हो अपनी उत्तम गति देनेवाले नादस्वरूप डमरूको बजाया। डमरूकी वह ध्वनि, जो उत्साह बढ़ानेवाली थी, तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उसका विचित्र एवं गम्भीर शब्द आह्वानकी गतिसे युक्त था, अर्थात् सुननेवालोंके अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था। उस ध्वनिको सुनकर मैं तथा श्रीविष्णु आदि सभी देवता, ऋषि, मूर्तिमान् आगम, निगम और सिद्ध वहाँ आ पहुँचे। देवता और असुर आदि सब लोग बड़े उत्साहमें भरकर वहाँ आये। भगवान् शिवके समस्त पार्षद तथा सर्वलोकवन्दित

महाभाग गणपाल जहाँ कहीं भी थे, वहाँसे आ गये ।

इतना कहकर ब्रह्माजीने वहाँ आये हुए गणपालोंका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत परिचय दिया, फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया । वे बोले—वहाँ असंख्य महाबली गणपाल पधारे । वे सब-के-सब सहस्रों भुजाओंसे युक्त थे और मस्तकपर जटाका ही मुकुट धारण किये हुए थे। सभी चन्द्रचूड़, नीलकण्ठ और त्रिलोचन थे । हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे । वे मेरे, श्रीविष्णुके तथा इन्द्रके समान तेजस्वी जान पड़ते थे । अणिमा आदि आठों सिद्धियोंसे घिरे थे तथा करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहे थे । उस समय भगवान् शिवने विश्वकर्माको उस पर्वतपर निवासस्थान बनानेकी आज्ञा दी । अनेक भक्तोंके साथ अपने और दूसरोंके रहनेके लिये यथायोग्य आवास तैयार करनेका आदेश दिया ।

मुने ! तब विश्वकर्माने भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उस पर्वतपर जाकर शीघ्र ही नाना प्रकारके गृहोंकी रचना की । फिर श्रीहरिकी प्रार्थनासे कुबेरपर अनुग्रह करके भगवान् शिव सानन्द कैलास पर्वतपर गये । उत्तम मुहूर्तमें अपने स्थानमें प्रवेश करके भक्तवत्सल परमेश्वर शिवने सबको प्रेमदान दे सनाथ किया, इसके बाद आनन्दसे भरे हुए श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने शिवका प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक किया । हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंटें लेकर सबने क्रमशः उनका पूजन किया और बड़े उत्सवके साथ उनकी आरती उतारी । मुने ! उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई, जो मङ्गलसूचक थी । सब ओर जय-जयकार और नमस्कारके शब्द गूँजने लगे । महान् उत्साह फैला हुआ था, जो सबके सुखको बढ़ा रहा था । उस समय सिंहासनपर बैठकर श्रीविष्णु आदि सभी देवताओं-द्वारा की हुई यथोचित सेवाको बारंबार ग्रहण करते हुए भगवान् शिव बड़ी शोभा पा रहे थे । देवता आदि सब लोगोंने सार्थक एवं प्रिय वचनोंद्वारा लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पृथक्-पृथक् स्तवन किया । सर्वेश्वर प्रभुने प्रसन्नचित्तसे वह स्तवन सुनकर उन सबको प्रसन्नतापूर्वक मनोवाञ्छित वर एवं अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान कीं । मुने ! तदनन्तर श्रीविष्णुके साथ मैं तथा अन्य सब देवता और मुनि मनोवाञ्छित वस्तु पाकर आनन्दित हो भगवान् शिवकी आज्ञासे अपने-अपने धामको चले गये । कुबेर भी शिवकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको गये । फिर वे भगवान् शम्भु, जो सर्वथा स्वतन्त्र हैं, योगपरायण एवं ध्यानतत्पर हो पर्वतप्रवर कैलासपर रहने लगे । कुछ काल बिना पत्नीके ही बिताकर परमेश्वर शिवने दक्षकन्या सतीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया । देवर्षे ! फिर वे महेश्वर दक्षकुमारी सतीके साथ विहार करने लगे और लोकाचारपरायण हो सुखका अनुभव करने लगे । मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने तुमसे यह रुद्रके अवतारका वर्णन किया है, साथ ही उनके कैलासपर आगमन और कुबेरके साथ मैत्रीका भी प्रसङ्ग सुनाया है । कैलासके अन्तर्गत होनेवाली उनकी ज्ञानवर्द्धिनी लीलाका भी वर्णन किया, जो इहलोक और परलोकमें सदा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है । जो एकाग्रचित्त हो इस कथाको सुनता या पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग पाकर परलोकमें मोक्ष लाभ करता है । (अध्याय २०)

॥ रुद्रसंहिताका सृष्टिखण्ड सम्पूर्ण ॥

रुद्रसंहिता, द्वितीय (सती) खण्ड

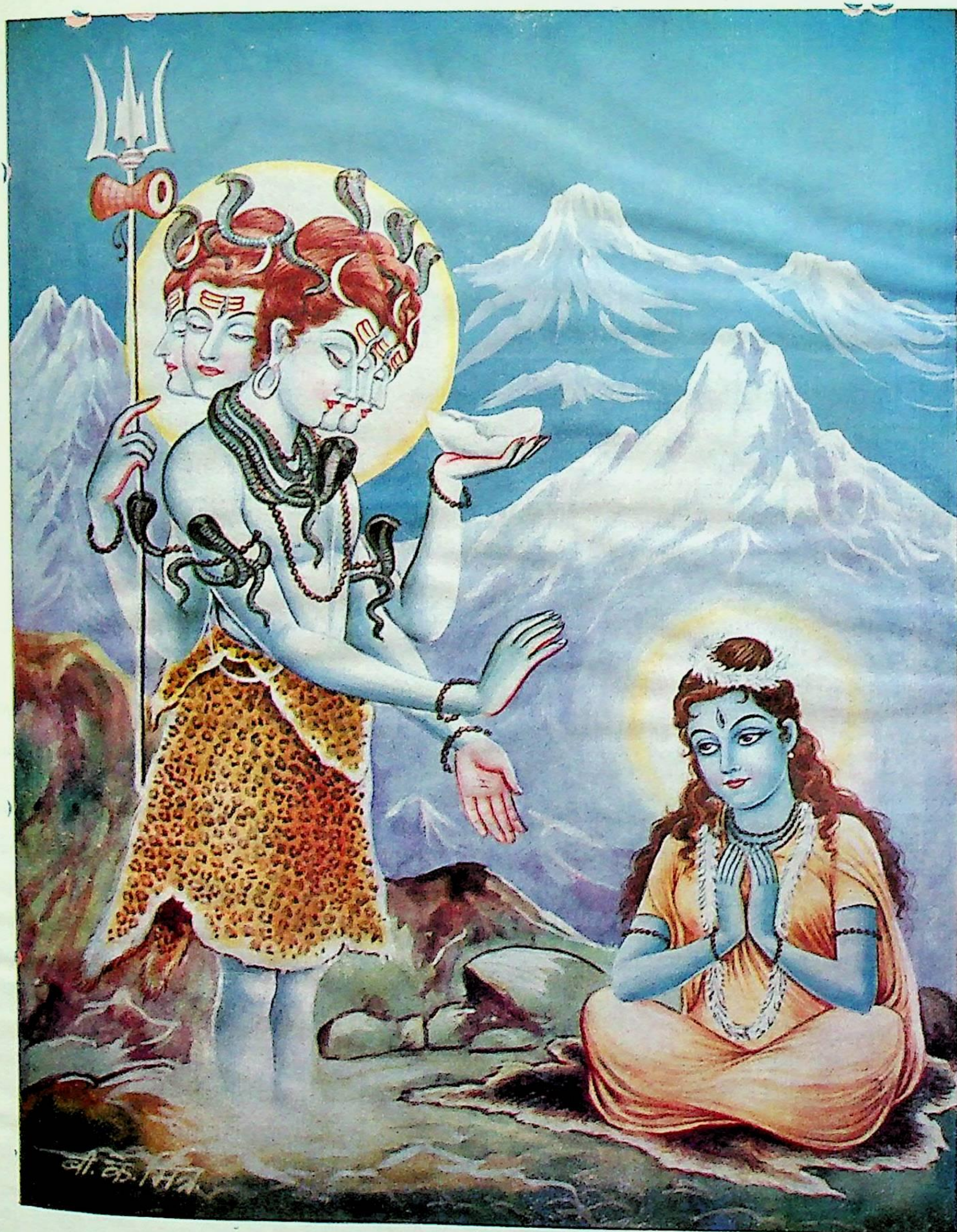
नारदजीके प्रश्न और ब्रह्माजीके द्वारा उनका उत्तर, सदाशिवसे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति तथा ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पश्चात् एक नारी और एक पुरुषका प्राकट्य

नारदजी बोले—महाभाग ! महाप्रभो ! विधातः ! आपके मुखारविन्दसे मङ्गलकारिणी शम्भुकथा सुनते-सुनते मेरा जी नहीं भर रहा है । अतः भगवान् शिवका सारा शुभ चरित्र मुझसे कहिये । सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव ! मैं सतीकी कीर्तिसे युक्त शिवका दिव्यचरित्र सुनना चाहता हूँ । शोभाशालिनी सती किस प्रकार दक्षपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुईं ? महादेवजीने विवाहका विचार कैसे किया ? पूर्वकालमें दक्षके प्रति रोष होनेके कारण सतीने अपने शरीरका त्याग कैसे किया ? चेतनाकाशको प्राप्त होकर वे फिर हिमालयकी कन्या कैसे हुईं ?



पार्वतीने किस प्रकार उग्र तपस्या की और कैसे उनका विवाह हुआ ? कामदेवका नाश करनेवाले भगवान् शंकरके आधे शरीरमें वे किस प्रकार स्थान पा सकीं ? महामते ! इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक कहिये । आपके समान दूसरा कोई संशयका निवारण करनेवाला न है, न होगा ।

ब्रह्माजीने कहा—मुने ! देवी सती और भगवान् शिवका शुभ यश परमपावन, दिव्य तथा गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है । तुम वह सब मुझसे सुनो । पूर्वकालमें भगवान् शिव निर्गुण, निर्विकल्प, निराकार, शक्तिरहित, चिन्मय तथा सत् और असत्से विलक्षण स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे । फिर वे ही प्रभु सगुण और शक्तिमान् होकर विशिष्ट रूप धारण करके स्थित हुए । उनके साथ भगवती उमा विराजमान थीं । विप्रवर ! वे भगवान् शिव दिव्य आकृतिसे सुशोभित हो रहे थे । उनके मनमें कोई विकार नहीं था । वे अपने परात्पर स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे । मुनिश्रेष्ठ ! उनके बायें अङ्गसे भगवान् विष्णु, दायें अङ्गसे मैं ब्रह्मा और मध्य अङ्ग अर्थात् हृदयसे रुद्रदेव प्रकट हुए । मैं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हुआ, भगवान् विष्णु जगत्का पालन करने लगे और स्वयं रुद्रने संहारका कार्य सँभाला । इस प्रकार भगवान् सदाशिव स्वयं ही तीन रूप धारण करके स्थित हुए । उन्हींकी आराधना करके मुझ लोकपितामह ब्रह्माने देवता, असुर और मनुष्य आदि सम्पूर्ण जीवोंकी सृष्टि की । दक्ष आदि प्रजापतियों और देवशिरोमणियोंकी सृष्टि करके मैं बहुत प्रसन्न हुआ तथा अपनेको सबसे अधिक ऊँचा मानने लगा । मुने ! जब मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष और भृगु—इन महान् प्रभावशाली मानसपुत्रोंको मैंने उत्पन्न किया, तब मेरे हृदयसे अत्यन्त मनोहर रूपवाली एक सुन्दरी नारी उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'संध्या' था । वह दिनमें क्षीण हो



तपस्विनी सतीके सामने शिवका प्राकट्य

[पृष्ठ १२८



जाती, परंतु सायंकालमें उसका रूप-सौन्दर्य खिल उठता था। वह मूर्तिमती सायं-संध्या ही थी और निरन्तर किसी मन्त्रका जप करती रहती थी। सुन्दर भौंहोंवाली वह नारी सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँची हुई थी और मुनियोंके भी मनको मोहे लेती थी।

इसी तरह मेरे मनसे एक मनोहर पुरुष भी प्रकट हुआ, जो अत्यन्त अद्भुत था। उसके शरीरका मध्यभाग (कटिप्रदेश) पतला था। दाँतोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुन्दर थीं। उसके अङ्गोंसे मतवाले हाथीकी-सी गन्ध प्रकट होती थी। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे। अङ्गोंमें केसर लगा था, जिसकी सुगन्ध नासिकाको तृप्त कर रही थी। उस पुरुषको देखकर दक्ष आदि मेरे सभी पुत्र अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उनके मनमें विस्मय भर गया था। जगत्की सृष्टि करनेवाले मुझ जगदीश्वर ब्रह्माकी ओर देखकर उस पुरुषने विनयसे गर्दन झुका दी और मुझे प्रणाम करके कहा।

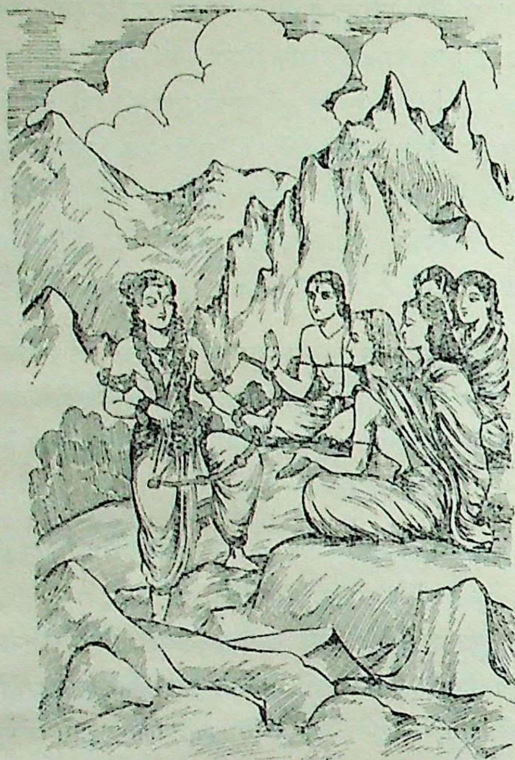
वह पुरुष बोला—ब्रह्मन्! मैं कौन-सा कार्य करूँगा? मेरे योग्य जो काम हो, उसमें मुझे लगाइये; क्योंकि विधाता! आज आप ही सबसे अधिक माननीय और योग्य पुरुष हैं। यह लोक आपसे ही शोभित हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—भद्रपुरुष! तुम अपने इसी स्वरूपसे तथा फूलके बने हुए पाँच बाणोंसे स्त्रियों और पुरुषोंको मोहित करते हुए सृष्टिके सनातन कार्यको चलाओ। इस चराचर त्रिभुवनमें ये देवता आदि कोई भी जीव तुम्हारा तिरस्कार करनेमें समर्थ नहीं होंगे। तुम छिपे रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके सदा स्वयं उनके सुखका हेतु बनकर सृष्टिका सनातन कार्य चालू रक्खो। समस्त प्राणियोंका जो मन है, वह तुम्हारे पुष्पमय बाणका सदा अनायास ही अद्भुत लक्ष्य बन जायगा और तुम निरन्तर उन्हें मदमत्त किये रहोगे। यह मैंने तुम्हारा कर्म बताया है, जो सृष्टिका प्रवर्तक होगा और तुम्हारे ठीक-ठीक नाम क्या होंगे, इस बातको मेरे ये पुत्र बतायेंगे।

सुरश्रेष्ठ! ऐसा कहकर अपने पुत्रोंके मुखकी ओर दृष्टिपात करके मैं क्षणभरके लिये अपने कमलमय आसनपर चुपचाप बैठ गया। (अध्याय १-२)

कामदेवके नामोंका निर्देश, उसका रतिके साथ विवाह तथा कुमारी संध्याका चरित्र—वसिष्ठ मुनिका चन्द्रभाग पर्वतपर उसको तपस्याकी विधि बताना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर मेरे अभिप्रायको जाननेवाले मरीचि आदि मेरे पुत्र सभी मुनियोंने उस पुरुषका उचित नाम रक्खा। दक्ष आदि प्रजापतियोंने उसका मुँह देखते ही परोक्षके भी सारे वृत्तान्त जानकर उसे रहनेके लिये स्थान और पत्नी प्रदान की। मेरे पुत्र मरीचि आदि द्विजोंने उस पुरुषके नाम निश्चित करके उससे यह युक्ति-युक्त बात कही।



ऋषि बोले—तुम जन्म लेते ही हमारे मनको भी मथने लगे हो। इसलिये लोकमें 'मन्मथ' नामसे विख्यात होओगे। मनोभव! तीनों लोकोंमें तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हो, तुम्हारे समान सुन्दर दूसरा कोई नहीं है; अतः कामरूप होनेके कारण तुम 'काम' नामसे भी विख्यात होओ। लोगोंको मदमत्त बना देनेके कारण तुम्हारा एक नाम 'मदन' होगा। तुम बड़े दर्पसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये 'दर्पक' कहलाओगे और सदर्प होनेके कारण ही जगत्‌में 'कंदर्प' नामसे भी तुम्हारी ख्याति होगी। समस्त देवताओंका सम्मिलित बल-पराक्रम भी तुम्हारे समान नहीं होगा। अतः सभी स्थानोंपर तुम्हारा अधिकार होगा और तुम सर्वव्यापी होओगे। जो आदि प्रजापति हैं, वे ही ये पुरुषोंमें श्रेष्ठ दक्ष तुम्हारी इच्छाके अनुरूप पत्नी स्वयं देंगे। वह तुम्हारी कामिनी (तुमसे अनुराग रखनेवाली) होगी।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! तदनन्तर मैं वहाँसे अदृश्य हो गया। इसके बाद दक्ष मेरी बातका स्मरण करके कंदर्पसे बोले—'कामदेव! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई मेरी यह कन्या सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे सुशोभित है। इसे तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो। यह गुणोंकी दृष्टिसे सर्वथा तुम्हारे योग्य है। महातेजस्वी मनोभव! यह सदा तुम्हारे साथ रहनेवाली और तुम्हारी रुचिके अनुसार चलनेवाली होगी। धर्मतः यह सदा तुम्हारे अधीन रहेगी।

ऐसा कहकर दक्षने अपने शरीरके पसीनेसे प्रकट हुई उस कन्याका नाम 'रति' रखकर उसे अपने आगे बैठाया और कंदर्पको संकल्पपूर्वक सौंप दिया। नारद! दक्षकी वह पुत्री रति



बड़ी रमणीय और मुनियोंके मनको भी मोह लेनेवाली थी। उसके साथ विवाह करके कामदेवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी रति नामक सुन्दरी स्त्रीको देखकर उसके हाव-भाव आदिसे अनुरञ्जित हो कामदेव मोहित हो गया। तात! उस समय बड़ा भारी उत्सव होने लगा, जो सबके सुखको बढ़ानेवाला था। प्रजापति दक्ष इस बातको सोचकर बड़े प्रसन्न थे कि मेरी पुत्री इस विवाहसे सुखी है। कामदेवको भी बड़ा सुख मिला। उसके सारे दुःख दूर हो गये। दक्षकन्या रति भी कामदेवको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। जैसे संध्याकालमें मनोहारिणी विद्युन्मालाके साथ मेघ शोभा पाता है, उसी प्रकार रतिके साथ प्रिय वचन बोलनेवाला कामदेव बड़ी शोभा पा रहा था। इस प्रकार रतिके प्रति भारी मोहसे युक्त रतिपति कामदेवने उसे उसी तरह अपने हृदयके सिंहासनपर बिठाया,

जैसे योगी पुरुष योगविद्याको हृदयमें धारण करता है। इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रमुखी रति भी उस श्रेष्ठ पतिको पाकर उसी तरह सुशोभित हुई जैसे श्रीहरिको पाकर पूर्णचन्द्रानना लक्ष्मी शोभा पाती हैं।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् शंकरका स्मरण करके हर्षपूर्वक बोले—'महाभाग! विष्णुशिष्य! महामते! विधातः! आपने चन्द्रमौलि शिवकी यह अद्भुत लीला कही है, अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि विवाहके पश्चात् जब कामदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चला गया, दक्ष भी अपने घरको पधारे तथा आप और आपके मानस-पुत्र भी अपने-अपने धामको चले गये तब पितरोंको उत्पन्न करनेवाली ब्रह्मकुमारी संध्या कहाँ गयी? उसने क्या किया और किस पुरुषके साथ उसका विवाह हुआ? संध्याका यह सब चरित्र विशेषरूपसे बताइये।

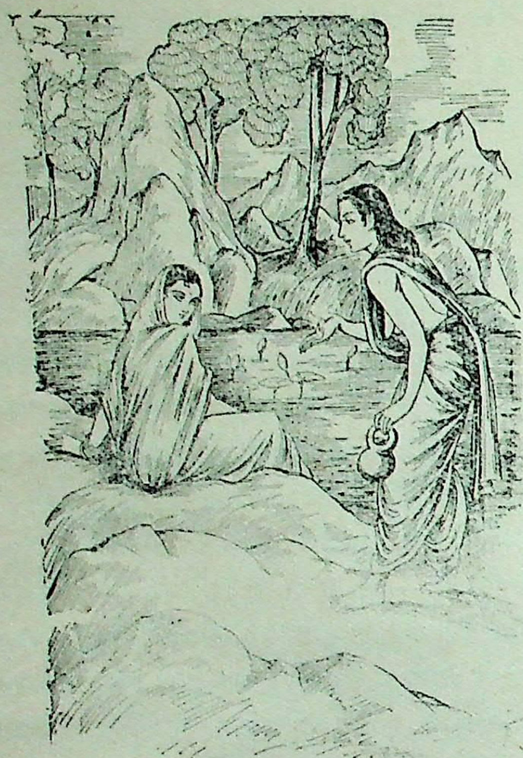
ब्रह्माजीने कहा—मुने! संध्याका वह सारा शुभ चरित्र सुनो, जिसे सुनकर समस्त कामिनियाँ सदाके लिये सती-साध्वी हो सकती हैं। वह संध्या, जो पहले मेरी मानस-पुत्री थी, तपस्या करके शरीरको त्यागकर मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी बुद्धिमती पुत्री होकर अरुन्धतीके नामसे विख्यात हुई। उत्तम व्रतका पालन करके उस देवीने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके कहनेसे श्रेष्ठ व्रतधारी महात्मा वसिष्ठको अपना पति चुना। वह सौम्य स्वरूप-वाली देवी सबकी वन्दनीया और पूजनीया श्रेष्ठ पतिव्रताके रूपमें विख्यात हुई।

नारदजीने पूछा—भगवन्! संध्याने कैसे किसलिये और कहाँ तप किया? किस प्रकार शरीर त्यागकर वह मेधातिथिकी पुत्री हुई? ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंके बताये हुए श्रेष्ठ व्रतधारी महात्मा वसिष्ठको उसने किस तरह अपना पति बनाया? पितामह! यह सब मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। अरुन्धतीके इस कौतूहलपूर्ण चरित्रका आप यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! संध्याके मनमें एक बार सकाम भाव आ गया था, इसलिये उस साध्वीने यह निश्चय किया कि 'वैदिकमार्गके अनुसार मैं अग्निमें अपने इस शरीरकी आहुति दे दूँगी। आजसे इस भूतलपर कोई भी देहधारी उत्पन्न होते ही कामभावसे युक्त न हों, इसके लिये मैं कठोर तपस्या करके मर्यादा स्थापित करूँगी (तरुणावस्थासे पूर्व किसीपर भी कामका प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसी सीमा निर्धारित करूँगी)। इसके बाद इस जीवनको त्याग दूँगी।'

मन-ही-मन ऐसा विचार करके संध्या चन्द्रभाग नामक उस श्रेष्ठ पर्वतपर चली गयी, जहाँसे चन्द्रभागा नदीका प्रादुर्भाव हुआ है। मनमें तपस्याका दृढ़ निश्चय ले संध्याको श्रेष्ठ पर्वतपर गयी हुई जान मैंने अपने समीप बैठे हुए वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, सर्वज्ञ, जितात्मा एवं ज्ञानयोगी पुत्र वसिष्ठसे कहा—'बेटा वसिष्ठ! मनस्विनी संध्या तपस्याकी अभिलाषासे चन्द्रभाग नामक पर्वतपर गयी है। तुम जाओ और उसे विधिपूर्वक दीक्षा दो। तात! वह तपस्याके भावको नहीं जानती है। इसलिये जिस तरह तुम्हारे यथोचित उपदेशसे उसे अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके, वैसा प्रयत्न करो।'

नारद! मैंने दयापूर्वक जब वसिष्ठको इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे 'जो आज्ञा' कहकर एक तेजस्वी ब्रह्मचारीके रूपमें संध्याके पास गये। चन्द्रभाग पर्वतपर एक देवसरोवर है, जो जलाशयोचित गुणोंसे परिपूर्ण हो मानसरोवरके समान शोभा पाता है। वसिष्ठने उस सरोवरको देखा और उसके तटपर बैठी हुई संध्यापर भी दृष्टिपात किया। कमलोंसे प्रकाशित होनेवाला वह सरोवर-तटपर बैठी हुई संध्यासे उपलक्षित हो उसी तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे प्रदोषकालमें उदित हुए चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे युक्त आकाश शोभा पाता है। सुन्दर भाववाली संध्याको वहाँ बैठी देख मुनिने कौतूहलपूर्वक उस बृहल्लोहित नामवाले सरोवरको अच्छी तरह देखा। उसी प्राकारभूत पर्वतके शिखरसे दक्षिण समुद्रकी ओर जाती हुई चन्द्रभागा नदीका भी उन्होंने दर्शन किया। जैसे गङ्गा हिमालयसे निकलकर समुद्रकी ओर जाती है, उसी प्रकार चन्द्रभागके पश्चिम शिखरका भेदन करके वह नदी समुद्रकी ओर जा रही थी। उस चन्द्रभाग पर्वतपर बृहल्लोहित सरोवरके किनारे बैठी हुई संध्याको देखकर वसिष्ठजीने आदरपूर्वक पूछा।



वसिष्ठजी बोले—भद्रे ! तुम इस निर्जन पर्वतपर किसलिये आयी हो ? किसकी पुत्री हो और तुमने यहाँ क्या करनेका विचार किया है ? मैं यह सब सुनना चाहता हूँ । यदि छिपाने योग्य बात न हो तो बताओ ।

महात्मा वसिष्ठकी यह बात सुनकर संध्याने उन महात्माकी ओर देखा । वे अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो ब्रह्मचर्य देह धारण करके आ गया हो । वे मस्तकपर जटा धारण किये बड़ी शोभा पा रहे थे । संध्याने उन तपोधनको आदरपूर्वक प्रणाम करके कहा ।

संध्या बोली—ब्रह्मन् ! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ । मेरा नाम संध्या है और मैं तपस्या करनेके लिये इस निर्जन पर्वतपर आयी हूँ । यदि मुझे उपदेश देना आपको उचित जान पड़े तो आप मुझे तपस्याकी विधि बताइये । मैं यही करना चाहती हूँ । दूसरी कोई भी गोपनीय बात नहीं है । मैं तपस्याके भावको—उसके करनेके नियमको बिना जाने ही तपोवनमें आ गयी हूँ । इसलिये चिन्तासे सूखी जा रही हूँ और मेरा हृदय काँपता है ।

संध्याकी बात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने, जो स्वयं सारे कार्योंके ज्ञाता थे, उससे दूसरी कोई बात नहीं पूछी । वह मन-ही-मन तपस्याका निश्चय कर चुकी थी और उसके लिये अत्यन्त उद्यमशील थी । उस समय वसिष्ठने मनसे भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्मरण करके इस प्रकार कहा ।

वसिष्ठजी बोले—शुभानने ! जो सबसे महान् और उत्कृष्ट तेज हैं, जो उत्तम और महान् तप हैं तथा जो सबके परमाराध्य परमात्मा हैं, उन भगवान् शम्भुको तुम हृदयमें धारण करो । जो अकेले ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके आदिकारण हैं, उन त्रिलोकीके आदिस्रष्टा, अद्वितीय पुरुषोत्तम शिवका भजन करो । आगे बताये जानेवाले मन्त्रसे देवेश्वर शम्भुकी आराधना करो । उससे तुम्हें सब कुछ मिल जायगा, इसमें संशय नहीं है । 'ॐ नमः शंकराय ॐ' इस मन्त्रका निरन्तर जप करते हुए मौन तपस्या आरम्भ करो और जो मैं नियम बताता हूँ, उन्हें सुनो । तुम्हें मौन रहकर ही स्नान करना होगा, मौनालम्बनपूर्वक ही महादेवजीकी पूजा करनी होगी । प्रथम दो बार छठे समयमें तुम केवल जलका पूर्ण आहार कर सकती हो । जब तीसरी बार छठा समय आये, तब केवल उपवास किया करो । इस तरह तपस्याकी समाप्तितक छठे कालमें जलाहार एवं उपवासकी क्रिया होती रहेगी । देवि ! इस प्रकार की जानेवाली मौन तपस्या ब्रह्मचर्यका फल देनेवाली तथा सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होती है । यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है । अपने चित्तमें ऐसा शुभ उद्देश्य लेकर इच्छानुसार शंकरजीका चिन्तन करो, वे प्रसन्न होनेपर तुम्हें अवश्य ही अभीष्ट फल प्रदान करेंगे ।

इस तरह संध्याको तपस्या करनेकी विधिका उपदेश दे मुनिवर वसिष्ठ यथोचितरूपसे उससे बिदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये । (अध्याय ३—५)

संध्याकी तपस्या, उसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उससे संतुष्ट हुए शिवका उसे अभीष्ट वर दे मेधातिथिके यज्ञमें भेजना

ब्रह्माजी कहते हैं—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ महाप्राज्ञ नारद ! तपस्याके नियमका उपदेश दे जब वसिष्ठजी अपने घर चले गये, तब तपके उस विधानको समझकर संध्या मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई । फिर तो वह सानन्द मनसे तपस्विनीके योग्य वेष बनाकर बृहल्लोहित सरोवरके तटपर ही तपस्या करने लगी । वसिष्ठजीने तपस्याके जिस मन्त्रको साधन बताया था, उसीसे उत्तम भक्तिभावके साथ वह भगवान् शंकरकी आराधना करने लगी । उसने भगवान् शिवमें अपने चित्तको लगा दिया और एका

मनसे वह बड़ी भारी तपस्या करने लगी। उस तपस्यामें लगे हुए उसके चार युग व्यतीत हो गये। तब भगवान् शिव उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो बड़े प्रसन्न हुए तथा बाहर-भीतर और आकाशमें अपने स्वरूपका दर्शन कराकर जिस रूपका वह चिन्तन करती थी, उसी रूपसे उसकी आँखोंके सामने प्रकट हो गये। उसने मनसे जिनका चिन्तन किया था, उन्हीं प्रभु शंकरको अपने सामने खड़ा देख वह अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गयी। भगवान्‌का मुखारविन्द बड़ा प्रसन्न दिखायी देता था। उनके स्वरूपसे शान्ति बरस रही थी। वह सहसा भयभीत हो सोचने लगी कि 'मैं भगवान् हरसे क्या कहूँ ? किस तरह इनकी स्तुति करूँ ?' इसी चिन्तामें पड़कर उसने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये। नेत्र बंद कर लेनेपर भगवान् शिवने उसके हृदयमें प्रवेश करके उसे दिव्य ज्ञान दिया, दिव्य वाणी और दिव्य दृष्टि प्रदान की। जब उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी, तब वह कठिनाईसे ज्ञात होनेवाले जगदीश्वर शिवको प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति करने लगी।



संध्या बोली—जो निराकार और परम ज्ञानगम्य हैं, जो न तो स्थूल हैं, न सूक्ष्म हैं और न उच्च ही हैं तथा जिनके स्वरूपका योगीजन अपने हृदयके भीतर चिन्तन करते हैं, उन्हीं लोकस्रष्टा आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिन्हें शर्व कहते हैं, जो शान्तस्वरूप, निर्मल, निर्विकार और ज्ञानगम्य हैं, जो अपने ही प्रकाशमें स्थित हो प्रकाशित होते हैं, जिनमें विकारका अत्यन्त अभाव है, जो आकाशमार्गकी भाँति निर्गुण, निराकार बताये गये हैं तथा जिनका रूप अज्ञानान्धकार-मार्गसे सर्वथा परे है, उन नित्यप्रसन्न आप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका रूप एक (अद्वितीय), शुद्ध, बिना मायाके प्रकाशमान, सच्चिदानन्दमय, सहज निर्विकार, नित्यानन्दमय, सत्य, ऐश्वर्यसे युक्त, प्रसन्न तथा लक्ष्मीको देनेवाला है, उन आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके स्वरूपकी ज्ञानरूपसे ही उद्भावना की जा सकती है, जो इस जगत्‌से सर्वथा भिन्न है एवं सत्त्वप्रधान, ध्यानके योग्य, आत्मस्वरूप, सारभूत, सबको पार लगानेवाला तथा पवित्र वस्तुओंमें भी परम पवित्र है, उन आप महेश्वरको मेरा नमस्कार है। आपका जो स्वरूप शुद्ध, मनोहर, रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा स्वच्छ कर्पूरके समान गौरवर्ण है, जिसने अपने हाथोंमें वर, अभय, शूल और मुण्ड धारण कर रक्खा है, उस दिव्य, चिन्मय, सगुण, साकार विग्रहसे सुशोभित आप योगयुक्त भगवान् शिवको नमस्कार है। आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, तेज तथा काल—ये जिनके रूप हैं, उन आप परमेश्वरको नमस्कार है।*

---

* संध्योवाच—

निराकारं ज्ञानगम्यं परं यन्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चम्।
अन्तश्चिन्त्यं योगिभिस्तस्य रूपं तस्मै तुभ्यं लोककर्त्रे नमोऽस्तु॥
शर्वं शान्तं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानगम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम्।
खाध्वप्रख्यं ध्वान्तमार्गात्परस्ताद् रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम्॥
एकं शुद्धं दीप्यमानं विनाजां चिदानन्दं सहजं चाविकारि।
नित्यानन्दं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमस्ते॥
विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं सत्त्वच्छन्दं ध्येयमात्मस्वरूपम्।
सारं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते॥
यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं रत्नाकल्पं स्वच्छकर्पूरगौरम्।
इष्टाभीती शूलमुण्डे दधानं हस्तैर्नमो योगयुक्ताय तुभ्यम्॥
गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च।
पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ६। १२-१७)

प्रधान (प्रकृति) और पुरुष जिनके शरीररूपसे प्रकट हुए हैं अर्थात् वे दोनों जिनके शरीर हैं, इसीलिये जिनका यथार्थ रूप अव्यक्त (बुद्धि आदिसे परे) है, उन भगवान् शंकरको बारंबार नमस्कार है। जो ब्रह्मा होकर जगत्की सृष्टि करते हैं, जो विष्णु होकर संसारका पालन करते हैं तथा जो रुद्र होकर अन्तमें इस सृष्टिका संहार करेंगे, उन्हीं आप भगवान् सदाशिवको बारंबार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण हैं, दिव्य अमृतरूप ज्ञान तथा अणिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, समस्त लोकान्तरोंका वैभव देनेवाले हैं, स्वयं प्रकाशरूप हैं तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन परमेश्वर शिवको नमस्कार है, नमस्कार है। यह जगत् जिनसे भिन्न नहीं कहा जाता, जिनके चरणोंसे पृथ्वी तथा अन्यान्य अङ्गोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव एवं अन्य देवता प्रकट हुए हैं और जिनकी नाभिसे अन्तरिक्षका आविर्भाव हुआ है, उन्हीं आप भगवान् शम्भुको मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप ही सबसे उत्कृष्ट परमात्मा हैं, आप ही नाना प्रकारकी विद्याएँ हैं, आप ही हर (संहारकर्ता) हैं, आप ही सद्ब्रह्म तथा परब्रह्म हैं, आप सदा विचारमें तत्पर रहते हैं। जिनका न आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जो मन और वाणीके विषय नहीं हैं, उन महादेवजीकी स्तुति मैं कैसे कर सकूँगी? *

ब्रह्मा आदि देवता तथा तपस्याके धनी मुनि भी जिनके रूपोंका वर्णन नहीं कर सकते, उन्हीं परमेश्वरका वर्णन अथवा स्तवन मैं कैसे कर सकती हूँ? प्रभो! आप निर्गुण हैं, मैं मूढ़ स्त्री आपके गुणोंको कैसे जान सकती हूँ? आपका रूप तो ऐसा है, जिसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जानते हैं। महेश्वर! आपको नमस्कार है। तपोमय! आपको नमस्कार है। देवेश्वर शम्भो! मुझपर प्रसन्न होइये। आपको बारंबार मेरा नमस्कार है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! संध्याका यह स्तुतिपूर्ण वचन सुनकर उसके द्वारा भलीभाँति प्रशंसित हुए भक्तवत्सल परमेश्वर शंकर बहुत प्रसन्न हुए। उसका शरीर वल्कल और मृगचर्मसे ढका हुआ था। मस्तकपर पवित्र जटाजूट शोभा पा रहा था। उस समय पालेके मारे हुए कमलके समान उसके कुम्हलाये हुए मुँहको देखकर भगवान् हर दयासे द्रवित हो उससे इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—भद्रे! मैं तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। शुद्ध बुद्धिवाली देवि! तुम्हारे इस स्तवनसे भी मुझे बड़ा संतोष प्राप्त हुआ है। अतः इस समय अपनी इच्छाके अनुसार कोई वर माँगो। जिस वरसे तुम्हें प्रयोजन हो तथा जो तुम्हारे मनमें हो, उसे मैं यहाँ अवश्य पूर्ण करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे व्रत-नियमसे बहुत प्रसन्न हूँ।

प्रसन्नचित्त महेश्वरका यह वचन सुनकर अत्यन्त हर्षसे भरी हुई संध्या उन्हें बारंबार प्रणाम करके बोली—महेश्वर! यदि आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक वर देना चाहते हैं, यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, यदि पापसे शुद्ध हो गयी हूँ तथा देव! यदि इस समय आप मेरी तपस्यासे प्रसन्न हैं तो मेरा माँगा हुआ यह पहला वर सफल करें। देवेश्वर! इस आकाशमें पृथ्वी आदि किसी भी स्थानमें जो प्राणी हैं, वे सब-के-सब जन्म लेते ही कामभावसे युक्त न हो जायँ। नाथ! मेरी सकाम दृष्टि कहीं न पड़े। मेरे जो पति हों, वे भी मेरे अत्यन्त सुहृद् हों। पतिके अतिरिक्त जो भी पुरुष मुझे सकामभावसे देखे, उसके पुरुषत्वका नाश हो जाय—वह तत्काल नपुंसक हो जाय।

---

* प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ।
तस्मादव्यक्तरूपाय शंकराय नमो नमः॥
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम्।
संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः॥
नमो नमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय।
समस्तलोकान्तरभूतिदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय॥
यस्यापरं नो जगदुच्यते पदात् क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजः।
बहिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मै तुभ्यं शम्भवे मे नमोऽस्तु॥
त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः।
सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः॥
यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः।
कथं स्तोष्यामि तं देवमवाङ्मनसगोचरम्॥
(शि० पु० रु० सं० खं० ६। १८—२३)

* यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः।
न विप्रृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे॥
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो।
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥
नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तपोमय।
प्रसीद शम्भो देवेश भूयो भूयो नमोऽस्तु ते॥
(शि० पु० रु० सं स० खं० ६। २४—२६)

निष्पाप संध्याका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल भगवान् शंकरने कहा—देवि संध्ये ! सुनो ! भद्रे ! तुमने जो-जो वर माँगा है, वह सब तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने दे दिया । प्राणियोंके जीवनमें मुख्यतः चार अवस्थाएँ होती हैं—पहली शैशवावस्था, दूसरी कौमारावस्था, तीसरी यौवनावस्था और चौथी वृद्धावस्था । तीसरी अवस्था प्राप्त होनेपर देहधारी जीव कामभावसे युक्त होंगे । कहीं-कहीं दूसरी अवस्थाके अन्तिम भागमें ही प्राणी सकाम हो जायँगे। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे मैंने जगत्में सकामभावके उदयकी यह मर्यादा स्थापित कर दी है, जिससे देहधारी जीव जन्म लेते ही कामासक्त न हो जायँ । तुम भी इस लोकमें वैसे दिव्य सतीभावको प्राप्त करो, जैसा तीनों लोकोंमें दूसरी किसी स्त्रीके लिये सम्भव नहीं होगा । पाणिग्रहण करनेवाले पतिके सिवा जो कोई भी पुरुष सकाम होकर तुम्हारी ओर देखेगा, वह तत्काल नपुंसक होकर दुर्बलताको प्राप्त हो जायगा । तुम्हारे पति महान् तपस्वी तथा दिव्यरूपसे सम्पन्न एक महाभाग महर्षि होंगे, जो तुम्हारे साथ सात कल्पोंतक जीवित रहेंगे । तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे थे, वे सब मैंने पूर्ण कर दिये । अब मैं तुमसे दूसरी बात कहूँगा, जो पूर्वजन्मसे सम्बन्ध रखती है । तुमने पहलेसे ही यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि मैं अग्निमें अपने शरीरको त्याग दूँगी । उस प्रतिज्ञाको सफल करनेके लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ । उसे निःसंदेह करो । मुनिवर मेधातिथिका एक यज्ञ चल रहा है, जो बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाला है । उसमें अग्नि पूर्णतया प्रज्वलित है । तुम बिना विलम्ब किये उसी अग्निमें अपने शरीरका उत्सर्ग कर दो ! इसी पर्वतकी उपत्यकामें चन्द्रभागा नदीके तटपर तापसाश्रममें मुनिवर मेधातिथि महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं । तुम स्वच्छन्दतापूर्वक वहाँ जाओ । मुनि तुम्हें वहाँ देख नहीं सकेंगे । मेरी कृपासे तुम मुनिकी अग्निसे प्रकट हुई पुत्री होओगी । तुम्हारे मनमें जिस किसी स्वामीको प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उसे हृदयमें धारणकर, उसीका चिन्तन करते हुए तुम अपने शरीरको उस यज्ञकी अग्निमें होम दो । संध्ये ! जब तुम इस पर्वतपर चार युगोंतकके लिये कठोर तपस्या कर रही थी, उन्हीं दिनों उस चतुर्युगीका सत्ययुग बीत जानेपर त्रेताके प्रथम भागमें प्रजापति दक्षके बहुत-सी कन्याएँ हुईं । उन्होंने अपनी उन सुशीला कन्याओंका यथायोग्य वरोंके साथ विवाह कर दिया । उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका विवाह उन्होंने चन्द्रमाके साथ किया । चन्द्रमा अन्य सब पत्नियोंको छोड़कर केवल रोहिणीसे प्रेम करने लगे । इसके कारण क्रोधसे भरे हुए दक्षने जब चन्द्रमाको शाप दे दिया, तब समस्त देवता तुम्हारे पास आये । परंतु संध्ये ! तुम्हारा मन तो मुझमें लगा हुआ था, अतः तुमने ब्रह्माजीके साथ आये हुए उन देवताओंपर दृष्टिपात ही नहीं किया । तब ब्रह्माजीने आकाशकी ओर देखकर और चन्द्रमा पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त करें, यह उद्देश्य मनमें रखकर उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये एक नदीकी सृष्टि की, जो चन्द्र या चन्द्रभागा नदीके नामसे विख्यात हुई । चन्द्रभागाके प्रादुर्भावकालमें ही महर्षि मेधातिथि यहाँ उपस्थित हुए थे । तपस्याके द्वारा उनकी समानता करनेवाला न तो कोई हुआ है, न है और न होगा ही । उन महर्षिने महान् विधि-विधानके साथ दीर्घकालतक चलनेवाले ज्योतिष्टोम-नामक यज्ञका आरम्भ किया है । उसमें अग्निदेव पूर्णरूपसे प्रज्वलित हो रहे हैं । उसी आगमें तुम अपने शरीरको डाल दो और परम पवित्र हो जाओ । ऐसा करनेसे इस समय तुम्हारी वह प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी ।

इस प्रकार संध्याको उसके हितका उपदेश देकर देवेश्वर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। (अध्याय ६)

संध्याकी आत्माहुति, उसका अरुन्धतीके रूपमें अवतीर्ण होकर मुनिवर वसिष्ठके साथ विवाह करना, ब्रह्माजीका रुद्रके विवाहके लिये प्रयत्न और चिन्ता तथा भगवान् विष्णुका उन्हें 'शिवा' की आराधनाके लिये उपदेश देकर चिन्तामुक्त करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब वर देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये, तब संध्या भी उसी स्थानपर गयी, जहाँ मुनि मेधातिथि यज्ञ कर रहे थे । भगवान् शंकरकी कृपासे उसे किसीने वहाँ नहीं देखा । उसने उस तेजस्वी ब्रह्मचारीका स्मरण किया, जिसने उसके लिये तपस्याकी विधिका उपदेश दिया था । महामुने ! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने मुझ परमेष्ठीकी आज्ञासे एक तेजस्वी ब्रह्मचारीका वेष धारण करके उसे तपस्या करनेके लिये उपयोगी नियमोंका उपदेश दिया था । संध्या अपनेको तपस्याका उपदेश देनेवाले उन्हीं ब्रह्मचारी ब्राह्मण वसिष्ठको पतिरूपसे मनमें रखकर उस महायज्ञमें प्रज्वलित अग्निके समीप गयी । उस समय भगवान् शंकरकी कृपासे मुनियोंने उसे नहीं देखा । ब्रह्माजीकी वह पुत्री बड़े हर्षके

साथ उस अग्निमें प्रविष्ट हो गयी । उसका पुरोडाशमय शरीर तत्काल दग्ध हो गया । उस पुरोडाशकी अलक्षित गन्ध सब ओर फैल गयी । अग्निने भगवान् शंकरकी आज्ञासे उसके सुवर्ण-जैसे शरीरको जलाकर शुद्ध करके पुनः सूर्यमण्डलमें पहुँचा दिया । तब सूर्यने पितरों और देवताओंकी तृप्तिके लिये उसे दो भागोंमें विभक्त करके अपने रथमें स्थापित कर दिया ।

मुनीश्वर ! उसके शरीरका ऊपरी भाग प्रातःसंध्या हुआ, जो दिन और रातके बीचमें पड़नेवाली आदिसंध्या है तथा उसके शरीरका शेष भाग सायंसंध्या हुआ, जो दिन और रातके मध्यमें होनेवाली अन्तिम संध्या है ! सायंसंध्या सदा ही पितरोंको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली होती है । सूर्योदयसे पहले जब अरुणोदय हो—प्राचीके क्षितिजमें लाली छा जाय, तब प्रातःसंध्या प्रकट होती है, जो देवताओंको प्रसन्न करनेवाली है । जब लाल कमलके समान सूर्य अस्त हो जाते हैं, उसी समय सदा सायंसंध्याका उदय होता है, जो पितरोंको आनन्द प्रदान करनेवाली है । परम दयालु भगवान् शिवने उसके मनसहित प्राणोंको दिव्य शरीरसे युक्त देहधारी बना दिया । जब मुनिके यज्ञकी समाप्तिका अवसर आया, तब वह अग्निकी ज्वालामें महर्षि मेधातिथिको तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली पुत्रीके रूपमें प्राप्त हुई । मुनिने बड़े आमोदके साथ उस समय उस पुत्रीको ग्रहण किया । मुने ! उन्होंने यज्ञके लिये उसे नहलाकर अपनी गोदमें बिठा लिया । शिष्योंसे घिरे हुए महामुनि मेधातिथिको वहाँ बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । उन्होंने उसका नाम 'अरुन्धती' रक्खा । वह किसी भी कारणसे धर्मका अवरोध नहीं करती थी; अतः उसी गुणके कारण उसने स्वयं यह त्रिभुवनविख्यात नाम प्राप्त किया । देवर्षे ! यज्ञको समाप्त करके कृतकृत्य हो वे मुनि पुत्रीकी प्राप्ति होनेसे बहुत प्रसन्न थे और अपने शिष्योंके साथ आश्रममें रहकर सदा उसीका लालन-पालन करते थे । देवी अरुन्धती चन्द्रभागा नदीके तटपर तापसारण्यके भीतर मुनिवर मेधातिथिके उस आश्रममें धीरे-धीरे बड़ी होने लगी । जब वह विवाहके योग्य हो गयी, तब मैंने, विष्णु तथा महेश्वरने मिलकर मुझ ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठके साथ उसका विवाह करा दिया । ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशके हाथोंसे निकले हुए जलसे शिप्रा आदि सात परम पवित्र नदियाँ उत्पन्न हुईं ।



१. यज्ञभाग ।

मुने ! मेधातिथिकी पुत्री महासाध्वी अरुन्धती समस्त पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ थी, वह महर्षि वसिष्ठको पतिरूपमें पाकर उनके साथ बड़ी शोभा पाने लगी । उससे शक्ति आदि शुभ एवं श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए । मुनिश्रेष्ठ ! वह प्रियतम पति वसिष्ठको पाकर विशेष शोभा पाने लगी । मुनिशिरोमणे ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष संध्याके पवित्र चरित्रका वर्णन किया है, जो समस्त कामनाओंके फलोंको देनेवाला, परम पावन और दिव्य है । जो स्त्री या शुभ व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष इस प्रसङ्गको सुनता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

प्रजापति ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले ।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने अरुन्धतीकी तथा पूर्वजन्ममें उसकी स्वरूपभूता संध्याकी बड़ी उत्तम दिव्य कथा सुनायी है, जो शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाली है । धर्मज्ञ ! अब आप भगवान् शिवके उस परम पवित्र चरित्रका वर्णन कीजिये, जो दूसरोंके पापोंका विनाश करनेवाला, उत्तम एवं मङ्गलदायक है । जब कामदेव रतिसे विवाह करके हर्षपूर्वक चला गया, दक्ष आदि अन्य मुनि भी जब अपने-अपने स्थानको पधारे और जब संध्या तपस्या करनेके लिये चली गयी, उसके बाद वहाँ क्या हुआ ?

ब्रह्माजीने कहा—विप्रवर नारद ! तुम धन्य हो, भगवान् शिवके सेवक हो; अतः शिवकी लीलासे युक्त जो उनका शुभ चरित्र है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। तात ! पूर्वकालमें मैं एक बार जब मोहमें पड़ गया और भगवान् शंकरने मेरा उपहास किया, तब मुझे बड़ा क्षोभ हुआ था। वस्तुतः शिवकी मायाने मुझे मोह लिया था, इसलिये मैं भगवान् शिवके प्रति ईर्ष्या करने लगा। किस प्रकार, सो बताता हूँ; सुनो। मैं उस स्थानपर गया; जहाँ दक्षराज मुनि उपस्थित थे। वहीं रतिके साथ कामदेव भी था। नारद ! उस समय मैंने बड़ी प्रसन्नताके साथ दक्ष तथा दूसरे पुत्रोंको सम्बोधित करके वार्तालाप आरम्भ किया। उस वार्तालापके समय मैं शिवकी मायासे पूर्णतया मोहित था; अतः मैंने कहा—'पुत्रो ! तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे महादेवजी किसी कमनीय कान्तिवाली स्त्रीका पाणिग्रहण करें।' इसके बाद मैंने भगवान् शिवको मोहित करनेका भार रतिसहित कामदेवको सौंपा। कामदेवने मेरी आज्ञा मानकर कहा—'प्रभो ! सुन्दरी स्त्री ही मेरा अस्त्र है, अतः शिवजीको मोहित करनेके लिये किसी नारीकी सृष्टि कीजिये।' यह सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लंबी साँस खींचने लगा। मेरे उस निःश्वाससे राशि-राशि पुष्पोंसे विभूषित वसन्तका प्रादुर्भाव हुआ। वसन्त और मलयानिल—ये दोनों मदनके सहायक हुए। इनके साथ जाकर कामदेवने वामदेवको मोहनेकी बारंबार चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न मिली। जब वह निराश होकर लौट आया, तब उसकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे मुखसे जो निःश्वासवायु चली, उससे मारगणोंकी उत्पत्ति हुई। उन्हें मदनकी सहायताके लिये आदेश देकर मैंने पुनः उन सबको शिवजीके पास भेजा, परंतु महान् प्रयत्न करनेपर भी वे भगवान् शिवको मोहमें न डाल सके। काम सपरिवार लौट आया और मुझे प्रणाम करके अपने स्थानको चला गया।

उसके चले जानेपर मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि निर्विकार तथा मनको वशमें रखनेवाले योगपरायण भगवान् शंकर किसी स्त्रीको अपनी सहधर्मिणी बनाना कैसे स्वीकार करेंगे। यही सोचते-सोचते मैंने भक्तिभावसे उन भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया, जो साक्षात् शिवस्वरूप तथा मेरे शरीरके जन्मदाता हैं। मैंने दीन वचनोंसे युक्त शुभ स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। उस स्तुतिको सुनकर भगवान् शीघ्र ही मेरे सामने प्रकट हो गये। उनके चार भुजाएँ शोभा पाती थीं। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर थे। उन्होंने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म ले रखे थे। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बरकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे भगवान् श्रीहरि भक्तप्रिय हैं—अपने भक्त उन्हें बहुत प्यारे हैं। सबके उत्तम शरणदाता उन श्रीहरिको उस रूपमें देखकर मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली और मैं गद्गद कण्ठसे बारंबार उनकी स्तुति करने लगा। मेरे उस स्तोत्रको सुनकर अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और शरणमें आये हुए मुझ ब्रह्मासे बोले—'महाप्राज्ञ विधातः ! लोकस्रष्टा ब्रह्मन् ! तुम धन्य हो। बताओ, तुमने किसलिये आज मेरा स्मरण किया है और किस निमित्तसे यह स्तुति की जा रही है ? तुमपर कौन-सा महान् दुःख आ पड़ा है ? उसे मेरे सामने इस समय कहो। मैं वह सारा दुःख मिटा दूँगा। इस विषयमें कोई संदेह या अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।'

तब ब्रह्माजीने सारा प्रसङ्ग सुनाकर कहा—केशव ! भगवान् शिव किसी तरह पत्नीको ग्रहण कर लें तो मैं सुखी हो जाऊँगा, मेरे अन्तःकरणका सारा दुःख दूर हो जायगा। इसीके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

मेरी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्माका हर्ष बढ़ाते हुए मुझसे शीघ्र ही यों बोले—'विधातः ! तुम मेरा वचन सुनो। यह तुम्हारे भ्रमका निवारण करनेवाला है। मेरा वचन ही वेद-शास्त्र आदिका वास्तविक सिद्धान्त है। शिव ही सबके कर्ता-भर्ता (पालक) और हर्ता (संहारक) हैं। वे ही परात्पर हैं। परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, अद्वितीय, अच्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी और सर्वव्यापी परमात्मा एवं परमेश्वर हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता, तीनों गुणोंको आश्रय देनेवाले, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामसे प्रसिद्ध, रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे परे, मायासे ही भेदयुक्त प्रतीत होनेवाले, निरीह, मायारहित, मायाके स्वामी या प्रेरक, चतुर, सगुण, स्वतन्त्र, आत्मानन्दस्वरूप, निर्विकल्प, आत्माराम, निर्द्वन्द्व, भक्तपरवश, सुन्दर विग्रहसे सुशोभित योगी, नित्य योगपरायण, योगमार्गदर्शक, गर्वहारी, लोकेश्वर और सदा दीनवत्सल हैं। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। सर्वात्मना शम्भुका भजन करो। इससे संतुष्ट होकर वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। ब्रह्मन् ! यदि तुम्हारे मनमें यह विचार हो कि शंकर पत्नीका पाणिग्रहण करें तो शिवाको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे शिवका स्मरण करते हुए उत्तम तपस्या करो। अपने उस मनोरथको हृदयमें रखते हुए देवी शिवाका ध्यान करो।

वे देवेश्वरी यदि प्रसन्न हो जायँ तो सारा कार्य सिद्ध कर देंगी। यदि शिवा सगुणरूपसे अवतार ग्रहण करके लोकमें किसीकी पुत्री हो मानव-शरीर ग्रहण करें तो वे निश्चय ही महादेवजीकी पत्नी हो सकती हैं। ब्रह्मन्! तुम दक्षको आज्ञा दो, वे भगवान् शिवके लिये पत्नीका उत्पादन करनेके निमित्त स्वतः भक्तिभावसे प्रयत्नपूर्वक तपस्या करें। तात! शिवा और शिव दोनोंको भक्तके अधीन जानना चाहिये। वे निर्गुण परब्रह्मस्वरूप होते हुए भी स्वेच्छासे सगुण हो जाते हैं।

'विधे! भगवान् शिवकी इच्छासे प्रकट हुए हम दोनोंने जब उनसे प्रार्थना की थी, तब पूर्वकालमें भगवान् शंकरने जो बात कही थी, उसे याद करो। ब्रह्मन्! अपनी शक्तिसे सुन्दर लीला-विहार करनेवाले निर्गुण शिवने स्वेच्छासे सगुण होकर मुझको और तुमको प्रकट करनेके पश्चात् तुम्हें तो सृष्टि-कार्य करनेका आदेश दिया और उमासहित उन अविनाशी सृष्टिकर्ता प्रभुने मुझे उस सृष्टिके पालनका कार्य सौंपा। फिर नाना-लीला-विशारद उन दयालु स्वामीने हँसकर आकाशकी ओर देखते हुए बड़े प्रेमसे कहा—विष्णो! मेरा उत्कृष्ट रूप इन विधाताके अङ्गसे इस लोकमें प्रकट होगा। जिसका नाम रुद्र होगा। रुद्रका रूप ऐसा ही होगा, जैसा मेरा है। वह मेरा पूर्णरूप होगा, तुम दोनोंको सदा उसकी पूजा करनी चाहिये। वह तुम दोनोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला होगा। वही जगत्का प्रलय करनेवाला होगा। वह समस्त गुणोंका द्रष्टा, निर्विशेष एवं उत्तम योगका पालक होगा। यद्यपि तीनों देवता मेरे ही रूप हैं, तथापि विशेषतः रुद्र मेरा पूर्ण रूप होगा। पुत्रो! देवी उमाके भी तीन रूप होंगे। एक रूपका नाम लक्ष्मी होगा, जो इन श्रीहरिकी पत्नी होंगी। दूसरा रूप ब्रह्मपत्नी सरस्वती है। तीसरा रूप सती नामसे प्रसिद्ध होगा। सती उमाका पूर्णरूप होंगी। वे ही भावी रुद्रकी पत्नी होंगी।'

"ऐसा कहकर भगवान् महेश्वर हमपर कृपा करनेके पश्चात् वहाँसे अन्तर्धान हो गये और हम दोनों सुखपूर्वक अपने-अपने कार्यमें लग गये। ब्रह्मन्! समय पाकर मैं और तुम दोनों सपत्नीक हो गये और साक्षात् भगवान् शंकर रुद्रनामसे अवतीर्ण हुए। वे इस समय कैलास पर्वतपर निवास करते हैं। प्रजेश्वर! अब शिवा भी सती नामसे अवतीर्ण होनेवाली हैं। अतः तुम्हें उनके उत्पादनके लिये ही यत्न करना चाहिये।"

ऐसा कहकर मुझपर बड़ी भारी दया करके भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और मुझे उनकी बातें सुनकर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। (अध्याय ७—१०)

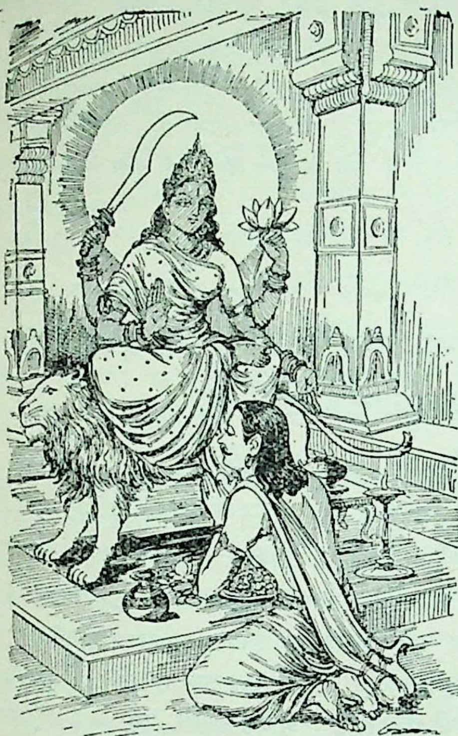


दक्षकी तपस्या और देवी शिवाका उन्हें वरदान देना

नारदजीने पूछा—पूज्य पिताजी! दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दक्षने तपस्या करके देवीसे कौन-सा वर प्राप्त किया तथा वे देवी किस प्रकार दक्षकी कन्या हुईं?

ब्रह्माजीने कहा—नारद! तुम धन्य हो! इन सभी मुनियोंके साथ भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनो। मेरी आज्ञा पाकर उत्तम बुद्धिवाले महाप्रजापति दक्षने क्षीरसागरके उत्तर तटपर स्थित हो देवी जगदम्बिकाको पुत्रीके रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा तथा उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी कामना लिये उन्हें हृदय-मन्दिरमें विराजमान करके तपस्या प्रारम्भ की। दक्षने मनको संयममें रखकर दृढ़तापूर्वक कठोर व्रतका पालन करते हुए शौच-संतोषादि नियमोंसे युक्त हो तीन हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया। वे कभी जल पीकर रहते, कभी हवा पीते और कभी सर्वथा उपवास करते थे। भोजनके नामपर कभी सूखे पत्ते चबा लेते थे।

मुनिश्रेष्ठ नारद! तदनन्तर यम-नियमादिसे युक्त हो जगदम्बाकी पूजामें लगे हुए दक्षको देवी शिवाने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जगन्मयी जगदम्बाका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रजापति दक्षने अपने आपको कृतकृत्य माना। वे कालिका देवी सिंहपर आरूढ़ थीं। उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। मुख बड़ा ही मनोहर था। वे चार भुजाओंसे युक्त थीं और हाथोंमें वरद, अभय, नील कमल और खड्ग धारण किये हुए थीं। उनकी मूर्ति बड़ी मनोहारिणी थी। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे। खुले हुए केश बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। उत्तम प्रभासे प्रकाशित होनेवाली उन जगदम्बाको भलीभाँति प्रणाम करके दक्ष विचित्र वचनावलियोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।



दक्षने कहा—जगदम्ब ! महामाये ! जगदीशे ! महेश्वरि ! आपको नमस्कार है । आपने कृपा करके मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराया है । भगवति ! आद्ये ! मुझपर प्रसन्न होइये । शिवरूपिणि ! प्रसन्न होइये । भक्तवरदायिनि ! प्रसन्न होइये । जगन्माये ! आपको मेरा नमस्कार है ।*

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! संयत चित्तवाले दक्षके इस प्रकार स्तुति करनेपर महेश्वरी शिवाने स्वयं ही उनके अभिप्रायको जान लिया तो भी दक्षसे इस प्रकार कहा—'दक्ष ! तुम्हारी इस उत्तम भक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ । तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँगो । तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ।'

जगदम्बाकी यह बात सुनकर प्रजापति दक्ष बहुत प्रसन्न हुए और उन शिवाको बारंबार प्रणाम करते हुए बोले ।

दक्षने कहा—जगदम्ब ! महामाये ! यदि आप मुझे वर देनेके लिये उद्यत हैं तो मेरी बात सुनिये और प्रसन्नतापूर्वक मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये । मेरे स्वामी जो भगवान् शिव हैं, वे रुद्र-नाम धारण करके ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं । वे परमात्मा शिवके पूर्णावतार हैं । परंतु आपका कोई अवतार नहीं हुआ । फिर उनकी पत्नी कौन होगी ? अतः शिवे ! आप भूतलपर अवतीर्ण होकर उन महेश्वरको अपने रूप-लावण्यसे मोहित कीजिये । देवि ! आपके सिवा दूसरी कोई स्त्री रुद्रदेवको कभी मोहित नहीं कर सकती । इसलिये आप मेरी पुत्री होकर इस समय महादेवजीकी पत्नी होइये । इस प्रकार सुन्दर लीला करके आप हरमोहिनी (भगवान् शिवको मोहित करनेवाली) बनिये । देवि ! यही मेरे लिये वर है । यह केवल मेरे ही स्वार्थकी बात हो, ऐसा नहीं सोचना चाहिये । इसमें मेरे ही साथ सम्पूर्ण जगत्‌का भी हित है । ब्रह्मा, विष्णु और शिवमेंसे ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मैं यहाँ आया हूँ ।

प्रजापति दक्षका यह वचन सुनकर जगदम्बिका शिवा हँस पड़ीं और मन-ही-मन भगवान् शिवका स्मरण करके यों बोलीं ।

देवीने कहा—तात ! प्रजापते ! दक्ष ! मेरी उत्तम बात सुनो । मैं सत्य कहती हूँ, तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो तुम्हें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तु देनेके लिये उद्यत हूँ । दक्ष ! यद्यपि मैं महेश्वरी हूँ, तथापि तुम्हारी भक्तिके अधीन हो तुम्हारी पत्नीके गर्भसे तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी—इसमें संशय नहीं है । अनघ ! मैं अत्यन्त दुस्सह तपस्या करके ऐसा प्रयत्न करूँगी जिससे महादेवजीका वर पाकर उनकी पत्नी हो जाऊँ । इसके सिवा और किसी उपायसे कार्य सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि वे भगवान् सदाशिव सर्वथा निर्विकार हैं, ब्रह्मा और विष्णुके भी सेव्य हैं तथा नित्य परिपूर्णरूप ही हैं । मैं सदा उनकी दासी और प्रिया हूँ । प्रत्येक जन्ममें वे नानारूपधारी शम्भु ही मेरे स्वामी होते हैं । भगवान् सदाशिव अपने दिये हुए वरके प्रभावसे ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे रुद्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं । मैं भी उनके वरसे उनकी आज्ञाके अनुसार यहाँ अवतार लूँगी । तात ! अब तुम अपने घरको जाओ । इस कार्यमें जो मेरी दूती अथवा सहायिका होगी, उसे मैंने जान लिया है । अब शीघ्र ही मैं तुम्हारी पुत्री होकर महादेवजीकी पत्नी बनूँगी ।

दक्षसे यह उत्तम वचन कहकर मन-ही-मन शिवकी आज्ञा प्राप्त करके देवी शिवाने शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए फिर कहा—'प्रजापते ! परंतु मेरा एक प्रण है, उसे

* प्रसीद भगवत्याद्ये प्रसीद शिवरूपिणि ।
प्रसीद भक्तवरदे जगन्माये नमोऽस्तु ते ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० १२ । १४)

तुम्हें सदा मनमें रखना चाहिये । मैं उस प्रणको सुना देती हूँ । तुम उसे सत्य समझो, मिथ्या न मानो । यदि कभी मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब उसी समय मैं अपने शरीरको त्याग दूँगी, अपने स्वरूपमें लीन हो जाऊँगी अथवा दूसरा शरीर धारण कर लूँगी । मेरा यह कथन सत्य है । प्रजापते ! प्रत्येक सर्ग या कल्पके लिये तुम्हें यह वर दे दिया गया—मैं तुम्हारी पुत्री होकर भगवान् शिवकी पत्नी होऊँगी ।'

मुख्य प्रजापति दक्षसे ऐसा कहकर महेश्वरी शिवा उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं । दुर्गाजीके अन्तर्धान होनेपर दक्ष भी अपने आश्रमको लौट गये और यह सोचकर प्रसन्न रहने लगे कि देवी शिवा मेरी पुत्री होनेवाली हैं ।

(अध्याय ११-१२)

ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों और शबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! प्रजापति दक्ष अपने आश्रमपर जाकर मेरी आज्ञा पा हर्षभरे मनसे नाना प्रकारकी मानसिक सृष्टि करने लगे । उस प्रजासृष्टिको बढ़ती हुई न देख प्रजापति दक्षने अपने पिता मुझ ब्रह्मासे कहा ।

दक्ष बोले—ब्रह्मन् ! तात ! प्रजानाथ ! प्रजा बढ़ नहीं रही है । प्रभो ! मैंने जितने जीवोंकी सृष्टि की थी, वे सब उतने ही रह गये हैं । प्रजानाथ ! मैं क्या करूँ ? जिस उपायसे ये जीव अपने-आप बढ़ने लगें, वह मुझे बताइये । तदनुसार मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा, इसमें संशय नहीं है ।

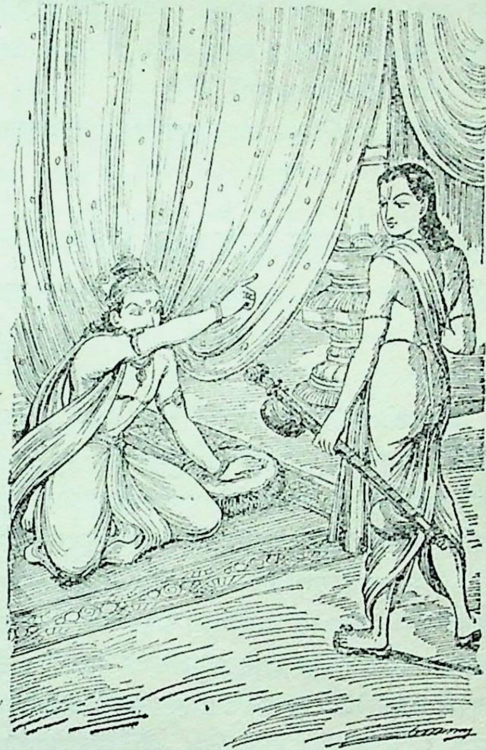
ब्रह्माजीने (मैंने) कहा—तात ! प्रजापते दक्ष ! मेरी उत्तम बात सुनो और उसके अनुसार कार्य करो । सुरश्रेष्ठ भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे । प्रजेश ! प्रजापति पञ्चजन (वीरण) की जो परम सुन्दरी पुत्री असिक्नी है, उसे तुम पत्नीरूपसे ग्रहण करो । स्त्रीके साथ मैथुन-धर्मका आश्रय ले तुम पुनः इस प्रजासर्गको बढ़ाओ । असिक्नी-जैसी कामिनीके गर्भसे तुम बहुत-सी संतानें उत्पन्न कर सकोगे ।

तदनन्तर मैथुन-धर्मसे प्रजाकी उत्पत्ति करनेके उद्देश्यसे प्रजापति दक्षने मेरी आज्ञाके अनुसार वीरण प्रजापतिकी पुत्रीके साथ विवाह किया । अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे प्रजापति दक्षने दस हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो हर्यश्व कहलाये । मुने ! वे सब-के-सब पुत्र समान धर्मका आचरण करनेवाले हुए । पिताकी भक्तिमें तत्पर रहकर वे सदा वैदिक मार्गपर ही चलते थे । एक समय पिताने उन्हें प्रजाकी सृष्टि करनेका आदेश दिया । तात ! तब वे सभी दाक्षायण नामधारी पुत्र सृष्टिके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये । वहाँ नारायण-सर नामक परम पावन तीर्थ है, जहाँ दिव्य सिन्धु नद और समुद्रका संगम हुआ है । उस तीर्थ-जलका ही निकटसे स्पर्श करते उनका अन्तःकरण शुद्ध एवं ज्ञानसे सम्पन्न हो गया । उनकी आन्तरिक मलराशि धुल गयी और वे परमहंस-धर्ममें स्थित हो गये । दक्षके वे सभी पुत्र पिताके आदेशमें बँधे हुए थे । अतः मनको सुस्थिर करके प्रजाकी वृद्धिके लिये वहाँ तप करने लगे । वे सभी सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे ।

नारद ! जब तुम्हें पता लगा कि हर्यश्वगण सृष्टिके लिये तपस्या कर रहे हैं, तब भगवान् लक्ष्मीपतिके हार्दिक अभिप्रायको जानकर तुम स्वयं उनके पास गये और आदरपूर्वक यों बोले—'दक्षपुत्र हर्यश्वगण ! तुमलोग पृथ्वीका अन्त देखे बिना सृष्टि-रचना करनेके लिये कैसे उद्यत हो गये ?'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हर्यश्व आलस्यसे दूर रहनेवाले थे और जन्मकालसे ही बड़े बुद्धिमान् थे । वे सब-के-सब तुम्हारा उपर्युक्त कथन सुनकर स्वयं उसपर विचार करने लगे । उन्होंने यह विचार किया कि 'जो उत्तम शास्त्ररूपी पिताके निवृत्तिपरक आदेशको नहीं समझता, वह केवल रज आदि गुणोंपर विश्वास करनेवाला पुरुष सृष्टि-निर्माणका कार्य कैसे आरम्भ कर सकता है ।' ऐसा निश्चय करके वे उत्तम बुद्धि और एकचित्तवाले दक्षकुमार नारदको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके ऐसे पथपर चले गये,

जहाँ जाकर कोई वापस नहीं लौटता। नारद! तुम भगवान् शंकरके मन हो और मुने! तुम समस्त लोकोंमें अकेले विचरा करते हो। तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं है; क्योंकि तुम सदा महेश्वरकी मनोवृत्तिके अनुसार ही कार्य करते हो। जब बहुत समय बीत गया, तब मेरे पुत्र प्रजापति दक्षको यह पता लगा कि मेरे सभी पुत्र नारदसे शिक्षा पाकर नष्ट हो गये (मेरे हाथसे निकल गये)। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बार-बार कहने लगे—उत्तम संतानोंका पिता होना शोकका ही स्थान है (क्योंकि श्रेष्ठ पुत्रोंके बिछुड़ जानेसे पिताको बड़ा कष्ट होता है)। शिवकी मायासे मोहित होनेसे दक्षको पुत्र-वियोगके कारण बहुत शोक होने लगा। तब मैंने आकर अपने बेटे दक्षको बड़े प्रेमसे समझाया और सान्त्वना दी। दैवका विधान प्रबल होता है—इत्यादि बातें बताकर उनके मनको शान्त किया। मेरे सान्त्वना देनेपर दक्ष पुनः पञ्चजन-कन्या असिक्नीके गर्भसे शबलाश्व नामके एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। पिताका आदेश पाकर वे पुत्र भी प्रजासृष्टिके लिये दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञापालनका नियम ले उसी स्थानपर गये जहाँ उनके सिद्धिको प्राप्त हुए बड़े भाई गये थे। नारायण-सरोवरके जलका स्पर्श होनेमात्रसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये, अन्तःकरणमें शुद्धता आ गयी और वे उत्तम व्रतके पालक शबलाश्व ब्रह्म (प्रणव) का जप करते हुए वहाँ बड़ी भारी तपस्या करने लगे। उन्हें प्रजासृष्टिके लिये उद्यत जान तुम पुनः पहलेकी ही भाँति ईश्वरीय गतिका स्मरण करते हुए उनके पास गये और वही बात कहने लगे, जो उनके भाइयोंसे पहले कह चुके थे। मुने! तुम्हारा दर्शन अमोघ है, इसलिये तुमने उनको भी भाइयोंका ही मार्ग दिखाया। अतएव वे भाइयोंके ही पथपर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त हुए। उसी समय प्रजा-पति दक्षको बहुत-से उत्पात दिखायी दिये। इससे मेरे पुत्र दक्षको बड़ा विस्मय हुआ और वे मन-ही-मन दुखी हुए। फिर उन्होंने पूर्ववत् तुम्हारी ही करतूतसे अपने पुत्रोंका नाश हुआ सुना, इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो अत्यन्त कष्टका अनुभव करने लगे। फिर दक्षने तुमपर बड़ा क्रोध किया और कहा—'यह नारद बड़ा दुष्ट है।' दैववश उसी समय तुम दक्षपर अनुग्रह करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। तुम्हें देखते ही शोकावेशसे युक्त हुए दक्षके ओठ रोषसे फड़कने लगे। तुम्हें सामने पाकर वे धिक्कारने और निन्दा करने लगे।



दक्षने कहा—ओ नीच! तुमने यह क्या किया? तुमने झूठ-मूठ साधुओंका बाना पहन रक्खा है। इसीके द्वारा ठगकर हमारे भोले-भाले बालकोंको जो तुमने भिक्षुओंका मार्ग दिखाया है, यह अच्छा नहीं किया। तुम निर्दय और सठ हो। इसीलिये तुमने हमारे इन बालकोंके, जो अभी ऋषि[1]-ऋण, देव[2]-ऋण और पितृ[3]-ऋणसे मुक्त नहीं हो पाये थे, लोक और परलोक दोनोंके श्रेयका नाश कर डाला। जो पुरुष इन तीनों ऋणोंको उतारे बिना ही मोक्षकी इच्छा मनमें लिये माता-पिताको त्यागकर घरसे निकल जाता है—संन्यासी हो जाता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है। तुम निर्दय और बड़े निर्लज्ज हो। बच्चोंकी बुद्धिमें भेद पैदा

१—३. ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायसे ऋषि-ऋण, यज्ञ और पूजा आदिसे देव-ऋण तथा पुत्रके उत्पादनसे पितृ-ऋणका निवारण होता है।

करनेवाले हो और अपने सुयशको स्वयं ही नष्ट कर रहे हो। मूढ़मते! तुम भगवान् विष्णुके पार्षदोंमें व्यर्थ ही घूमते-फिरते हो। अधमाधम! तुमने बारंबार मेरा अमङ्गल किया है। अतः आजसे तीनों लोकोंमें विचरते हुए तुम्हारा पैर कहीं स्थिर नहीं रहेगा। अथवा कहीं भी तुम्हें ठहरनेके लिये सुस्थिर ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा।'

नारद! यद्यपि तुम साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित हो, तथापि उस समय दक्षने शोकवश तुम्हें वैसा शाप दे दिया। वे ईश्वरकी इच्छाको नहीं समझ सके। शिवकी मायाने उन्हें अत्यन्त मोहित कर दिया था। मुने! तुमने उस शापको चुपचाप ग्रहण कर लिया और अपने चित्तमें विकार नहीं आने दिया। यही ब्रह्मभाव है। ईश्वरकोटिके महात्मा पुरुष स्वयं शापको मिटा देनेमें समर्थ होनेपर भी उसे सह लेते हैं।

(अध्याय १३)

दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्ष और वीरिणीके यहाँ देवी शिवाका अवतार, दक्षद्वारा उनकी स्तुति तथा सतीके सद्गुणों एवं चेष्टाओंसे माता-पिताकी प्रसन्नता

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे! इसी समय दक्षके इस बर्तावको जानकर मैं भी वहाँ आ पहुँचा और पूर्ववत् उन्हें शान्त करनेके लिये सान्त्वना देने लगा। तुम्हारी प्रसन्नताको बढ़ाते हुए मैंने दक्षके साथ तुम्हारा सुन्दर स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया। तुम मेरे पुत्र हो, मुनियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण देवताओंके प्रिय हो। अतः बड़े प्रेमसे तुम्हें आश्वासन देकर मैं फिर अपने स्थानपर आ गया। तदनन्तर प्रजापति दक्षने मेरी अनुनयके अनुसार अपनी पत्नीके गर्भसे साठ सुन्दरी कन्याओंको जन्म दिया और आलस्यरहित हो धर्म आदिके साथ उन सबका विवाह कर दिया। मुनीश्वर! मैं उसी प्रसङ्गको बड़े प्रेमसे कह रहा हूँ; तुम सुनो। मुने! दक्षने अपनी दस कन्याएँ विधिपूर्वक धर्मको ब्याह दीं, तेरह कन्याएँ कश्यप मुनिको दे दीं और सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ कर दिया। भूत (या बहुपुत्र), अङ्गिरा तथा कृशाश्वको उन्होंने दो-दो कन्याएँ दीं और शेष चार कन्याओंका विवाह तार्क्ष्य (या अरिष्टनेमि) के साथ कर दिया। इन सबकी संतान-परम्पराओंसे तीनों लोक भरे पड़े हैं। अतः विस्तार-भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता। कुछ लोग शिवा या सतीको दक्षकी ज्येष्ठ पुत्री बताते हैं। दूसरे लोग उन्हें मझली पुत्री कहते हैं तथा कुछ अन्य लोग सबसे छोटी पुत्री मानते हैं। कल्प-भेदसे ये तीनों मत ठीक हैं। पुत्र और पुत्रियोंकी उत्पत्तिके पश्चात् पत्नी-सहित प्रजापति दक्षने बड़े प्रेमसे मन-ही-मन जगदम्बिकाका ध्यान किया। साथ ही गद्गदवाणीसे प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति भी की। बारंबार अञ्जलि बाँध, नमस्कार करके वे विनीत-



भावसे देवीको मस्तक झुकाते थे। इससे देवी शिवा संतुष्ट हुईं और उन्होंने अपने प्रणकी पूर्तिके लिये मन-ही-मन यह विचार किया कि अब मैं वीरिणीके गर्भसे अवतार लूँ। ऐसा विचारकर वे जगदम्बा दक्षके हृदयमें निवास करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! उस समय दक्षकी बड़ी शोभा होने लगी। फिर उत्तम मुहूर्त देखकर दक्षने अपनी पत्नीमें प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान किया।

तब दयालु शिवा दक्ष-पत्नीके चित्तमें निवास करने लगीं। उनमें गर्भधारणके सभी चिह्न प्रकट हो गये। तात! उस अवस्थामें वीरिणीकी शोभा बढ़ गयी और उसके चित्तमें अधिक हर्ष छा गया। भगवती शिवाके निवासके प्रभावसे वीरिणी महामङ्गलरूपिणी हो गयी। दक्षने अपने कुल-सम्प्रदाय, वेदज्ञान और हार्दिक उत्साहके अनुसार प्रसन्नता-पूर्वक पुंसवन आदि संस्कारसम्बन्धी श्रेष्ठ क्रियाएँ सम्पन्न कीं। उन कर्मोंके अनुष्ठानके समय महान् उत्सव हुआ। प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दिया।

उस अवसरपर वीरिणीके गर्भमें देवीका निवास हुआ जानकर श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सबने वहाँ आकर जगदम्बाका स्तवन किया और समस्त लोकोंका उपकार करनेवाली देवी शिवाको बारंबार प्रणाम किया। वे सब देवता प्रसन्नचित्त हो दक्ष प्रजापति तथा वीरिणीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपने-अपने स्थानको लौट गये। नारद! जब नौ महीने बीत गये, तब लौकिक गतिका निर्वाह कराकर दसवें महीनेके पूर्ण होनेपर चन्द्रमा आदि ग्रहों तथा ताराओंकी अनुकूलतासे युक्त सुखद मुहूर्तमें देवी शिवा शीघ्र ही अपनी माताके सामने प्रकट हुईं। उनके अवतार लेते ही प्रजापति दक्ष बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें महान् तेजसे देदीप्यमान देख उनके मनमें यह विश्वास हो गया कि साक्षात् वे शिवादेवी ही मेरी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई हैं। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और मेघ जल बरसाने लगे। मुनीश्वर! सतीके जन्म लेते ही सम्पूर्ण दिशाओंमें तत्काल शान्ति छा गयी। देवता आकाशमें खड़े हो माङ्गलिक बाजे बजाने लगे। अग्निशालाओंकी बुझी हुई अग्नियाँ सहसा प्रज्वलित हो उठीं और सब कुछ परम मङ्गलमय हो गया। वीरिणीके गर्भसे साक्षात् जगदम्बा-को प्रकट हुई देख दक्षने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बड़े भक्ति-भावसे उनकी बड़ी स्तुति की।

बुद्धिमान् दक्षके स्तुति करनेपर जगन्माता शिवा उस समय दक्षसे इस प्रकार बोलीं, जिसमें माता वीरिणी न सुन सके।

देवी बोलीं—प्रजापते! तुमने पहले पुत्रीरूपमें मुझे प्राप्त करनेके लिये मेरी आराधना की थी, तुम्हारा वह मनोरथ आज सिद्ध हो गया। अब तुम उस तपस्याके फलको ग्रहण करो।

उस समय दक्षसे ऐसा कहकर देवीने अपनी मायासे शिशुरूप धारण कर लिया और शैशवभाव प्रकट करती हुई वे वहाँ रोने लगीं। उस बालिकाका रोदन सुनकर सभी स्त्रियाँ और दासियाँ बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। असिक्नीकी पुत्रीका अलौकिक रूप देखकर उन सभी स्त्रियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नगरके सब लोग उस समय जय-जयकार करने लगे। गीत और वाद्य के साथ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। पुत्रीका मनोहर मुख देखकर सबको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। दक्षने वैदिक और कुलोचित आचारका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंको दान दिया और दूसरोंको भी धन बाँटा। सब ओर यथोचित गान और नृत्य होने लगे। भाँति-भाँतिके मङ्गल-कृत्योंके साथ बहुत-से बाजे बजने लगे। उस समय दक्षने समस्त सद्गुणोंकी सत्तासे प्रशंसित होनेवाली अपनी उस पुत्रीका नाम प्रसन्नतापूर्वक 'उमा' रक्खा। तदनन्तर संसारमें लोगोंकी ओरसे उसके और भी नाम प्रचलित किये गये, जो सब-के-सब महान् मङ्गलदायक तथा विशेषतः समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले हैं। वीरिणी और महात्मा दक्ष अपनी पुत्रीका पालन करने लगे तथा वह शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाके समान दिनों-दिन बढ़ने लगी। द्विजश्रेष्ठ! बाल्यावस्थामें भी समस्त उत्तमोत्तम गुण उसमें उसी तरह प्रवेश करने लगे, जैसे शुक्लपक्षके बाल चन्द्रमामें भी समस्त मनोहारिणी कलाएँ प्रविष्ट हो जाती हैं। दक्षकन्या सती सखियोंके बीच बैठी-बैठी जब अपने भावमें निमग्न होती थी, तब बारंबार भगवान् शिवकी मूर्तिको चित्रित करने लगती थी। मङ्गलमयी सती जब बाल्योचित सुन्दर गीत गाती, तब स्थाणु, हर एवं रुद्र नाम लेकर स्मरशत्रु शिवका स्मरण किया करती थी। (अध्याय १४)

सतीकी तपस्यासे संतुष्ट देवताओंका कैलासमें जाकर भगवान् शिवका स्तवन करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! एक दिन मैंने तुम्हारे साथ जाकर पिताके पास खड़ी हुई सतीको देखा। वह तीनों लोकोंकी सारभूता सुन्दरी थी। उसके पिताने मुझे नमस्कार करके तुम्हारा भी सत्कार किया। यह देख लोक-लीलाका अनुसरण करनेवाली सतीने भक्ति और प्रसन्नताके साथ मुझको और तुमको भी प्रणाम किया। नारद! तदनन्तर सतीकी

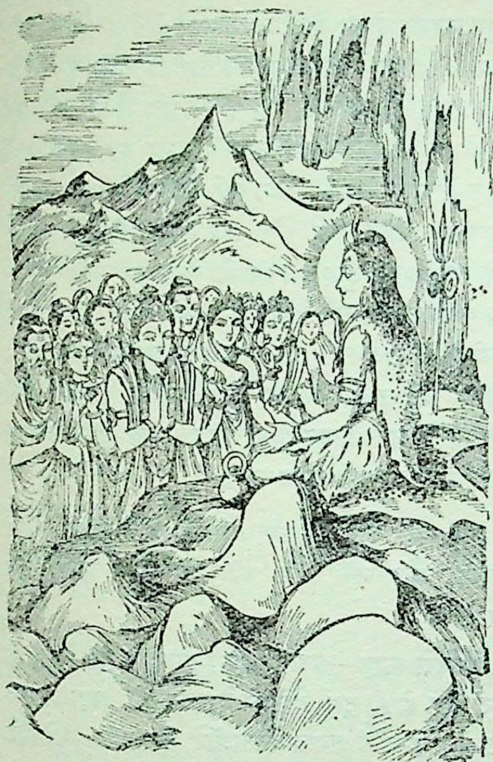
और देखते हुए हम और तुम दक्षके दिये हुए शुभ आसनपर बैठ गये। तत्पश्चात् मैंने उस विनयशीला बालिकासे कहा—'सती ! जो केवल तुम्हें ही चाहते हैं और तुम्हारे मनमें भी एकमात्र जिनकी ही कामना है, उन्हीं सर्वज्ञ जगदीश्वर महादेवजीको तुम पतिरूपमें प्राप्त करो। शुभे ! जो तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें न तो ग्रहण कर सके हैं, न करते हैं और न भविष्यमें ही ग्रहण करेंगे, वे ही भगवान् शिव तुम्हारे पति हों। वे तुम्हारे ही योग्य हैं, दूसरेके नहीं।'

नारद ! सतीसे ऐसा कहकर मैं दक्षके घरमें देरतक ठहरा रहा। फिर उनसे बिदा ले मैं और तुम दोनों अपने-अपने स्थानको चले आये। मेरी बातको सुनकर दक्षको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी सारी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी और उन्होंने अपनी पुत्रीको परमेश्वरी समझकर गोदमें उठा लिया। इस प्रकार कुमारोचित सुन्दर लीला-विहारोंसे सुशोभित होती हुई भक्तवत्सला सती, जो स्वेच्छासे मानवरूप धारण करके प्रकट हुई थीं, कौमारावस्था पार कर गयीं। बाल्यावस्था बिताकर किंचित् युवावस्थाको प्राप्त हुई सती अत्यन्त तेज एवं शोभासे सम्पन्न हो सम्पूर्ण अङ्गोंसे मनोहर दिखायी देने लगीं। लोकेश दक्षने देखा कि सतीके शरीरमें युवावस्थाके लक्षण प्रकट होने लगे हैं। तब उनके मनमें यह चिन्ता हुई कि मैं महादेवजीके साथ इनका विवाह कैसे करूँ ? सती स्वयं भी महादेवजीको पानेकी प्रतिदिन अभिलाषा रखती थीं। अतः पिताके मनोभावको समझकर वे माताके निकट गयीं। विशाल बुद्धिवाली सतीरूपिणी परमेश्वरी शिवाने अपनी माता वीरिणीसे भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके निमित्त तपस्या करनेके लिये आज्ञा माँगी। माताकी आज्ञा मिल गयी। अतः दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाली सतीने महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये अपने घरपर ही उनकी आराधना आरम्भ की।

आश्विन मासमें नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियोंमें उन्होंने भक्तिपूर्वक गुड़, भात और नमक चढ़ाकर भगवान् शिवका पूजन किया और उन्हें नमस्कार करके उसी नियमके साथ उस मासको व्यतीत किया। कार्तिक मासकी चतुर्दशीको सजाकर रखे हुए मालपूओं और खीरसे परमेश्वर शिवकी आराधना करके वे निरन्तर उनका चिन्तन करने लगीं। मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको तिल, जौ और चावलसे हरकी पूजा करके ज्योतिर्मय दीप दिखाकर अथवा आरती करके सती दिन बिताती थीं। पौष मासके शुक्लपक्षकी सप्तमीको रातभर जागरण करके प्रातःकाल खिचड़ीका नैवेद्य लगा वे शिवकी पूजा करती थीं। माघकी पूर्णिमाको रातमें जागरण करके सबेरे नदीमें नहातीं और गीले वस्त्रसे ही तटपर बैठकर भगवान् शंकरकी पूजा करती थीं। फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रातमें जागरण करके उस रात्रिके चारों पहरोंमें शिवजीकी विशेष पूजा करतीं और नटोंद्वारा नाटक भी कराती थीं। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको वे दिन-रात शिवका स्मरण करती हुई समय बितातीं और ढाकके फूलों तथा दवनोंसे भगवान् शिवकी पूजा करती थीं। वैशाख शुक्ला तृतीयाको सती तिलका आहार करके रहतीं और नये जौके भातसे रुद्रदेवकी पूजा करके उस महीनेको बिताती थीं। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको रातमें सुन्दर वस्त्रों तथा भटकटैयाके फूलोंसे शंकरजीकी पूजा करके वे निराहार रहकर ही वह मास व्यतीत करती थीं। आषाढ़के शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको काले वस्त्र और भटकटैयाके फूलोंसे वे रुद्रदेवका पूजन करती थीं। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी एवं चतुर्दशीको वे यज्ञोपवीतों, वस्त्रों तथा कुशके पवित्रोंसे शिवकी पूजा किया करती थीं। भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिको नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे शिवका पूजन करके सती चतुर्दशी तिथिको केवल जलका आहार किया करतीं। भाँति-भाँतिके फलों, फूलों और उस समय उत्पन्न होनेवाले अन्नोंद्वारा वे शिवकी पूजा करतीं और महीनेभर अत्यन्त नियमित आहार करके केवल जपमें लगी रहती थीं। सभी महीनोंमें सारे दिन सती शिवकी आराधनामें ही संलग्न रहती थीं। अपनी इच्छासे मानवरूप धारण करनेवाली वे देवी दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करती थीं। इस प्रकार नन्दाव्रतको पूर्णरूपसे समाप्त करके भगवान् शिवमें अनन्यभाव रखनेवाली सती एकाग्रचित्त हो बड़े प्रेमसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं तथा उस ध्यानमें ही निश्चलभावसे स्थित हो गयीं।

मुने ! इसी समय सब देवता और ऋषि भगवान् विष्णु और मुझको आगे करके सतीकी तपस्या देखनेके लिये गये। वहाँ आकर देवताओंने देखा, सती मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान जान पड़ती हैं। वे भगवान् शिवके ध्यानमें निमग्न हो उस समय सिद्धावस्थाको पहुँच गयी थीं। समस्त देवताओंने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दोनों हाथ जोड़कर सतीको नमस्कार किया, मुनियोंने भी मस्तक झुकाये तथा श्रीहरि आदिके मनमें प्रीति उमड़ आयी। श्रीविष्णु आदि सब देवता और मुनि

आश्चर्यचकित हो सती देवीकी तपस्याकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने



लगे। फिर देवीको प्रणाम करके वे देवता और मुनि तुरंत ही गिरिश्रेष्ठ कैलासको गये, जो भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। सावित्रीके साथ मैं और लक्ष्मीके साथ भगवान् वासुदेव भी प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके निकट गये। वहाँ जाकर भगवान् शिवको देखते ही बड़े वेगसे प्रणाम करके सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ विनीत भावसे नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके अन्तमें कहा—

प्रभो! आपकी सत्त्व, रज और तम नामक जो तीन शक्तियाँ हैं, उनके राग आदि वेग असह्य हैं। वेदत्रयी अथवा लोकत्रयी आपका स्वरूप है। आप शरणागतोंके पालक हैं तथा आपकी शक्ति बहुत बड़ी है——उसकी कहीं कोई सीमा नहीं है; आपको नमस्कार है। दुर्गापते! जिनकी इन्द्रियाँ दुष्ट हैं—वशमें नहीं हो पातीं; उनके लिये आपकी प्राप्तिका कोई मार्ग सुलभ नहीं है। आप सदा भक्तोंके उद्धारमें तत्पर रहते हैं, आपका तेज छिपा हुआ है; आपको नमस्कार है। आपकी मायाशक्तिरूपा जो अहंबुद्धि है, उससे आत्माका स्वरूप ढक गया है; अतएव यह मूढ़बुद्धि जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन (ही नहीं, सर्वथा असम्भव) है। हम आप महाप्रभुको मस्तक झुकाते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके श्रीविष्णु आदि सब देवता उत्तम भक्तिसे मस्तक झुकाये प्रभु शिवजीके आगे चुपचाप खड़े हो गये।

(अध्याय १५)

ब्रह्माजीका रुद्रदेवसे सतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, श्रीविष्णुद्वारा अनुमोदन और श्रीरुद्रकी इसके लिये स्वीकृति

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंद्वारा की हुई उस स्तुतिको सुनकर सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे हँसने लगे। मुझ ब्रह्मा और विष्णुको अपनी-अपनी पत्नीके साथ आया हुआ देख महादेवजीने हमलोगोंसे यथोचित वार्तालाप किया और हमारे आगमनका कारण पूछा।

रुद्र बोले—हे हरे! हे विधे! तथा हे देवताओ और महर्षियो! आज निर्भय होकर यहाँ अपने आनेका ठीक-ठीक कारण बताओ। तुमलोग किस लिये यहाँ आये हो और कौन-सा कार्य आ पड़ा है? वह सब मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिसे मेरा मन बहुत प्रसन्न है।

मुने! महादेवजीके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मैंने वार्तालाप आरम्भ किया।

मुझ ब्रह्माने कहा—देवदेव! महादेव! करुणासागर! प्रभो! हम दोनों इन देवताओं और ऋषियोंके साथ जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसे सुनिये। वृषभध्वज! विशेषतः आपके ही लिये हमारा यहाँ आगमन हुआ है; क्योंकि हम तीनों सहार्थी हैं—सृष्टिचक्रके संचालनरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक-दूसरेके सहायक हैं। सहार्थीको सदा परस्पर यथायोग्य सहयोग करना चाहिये। अन्यथा यह जगत् टिक नहीं सकता। महेश्वर! कुछ ऐसे असुर उत्पन्न होंगे, जो मेरे हाथसे मारे जायँगे। कुछ भगवान् विष्णुके [और कुछ] आपके हाथों नष्ट होंगे। महाप्रभो! कुछ

असुर ऐसे होंगे, जो आपके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रके हाथसे ही मारे जा सकेंगे। प्रभो! कभी कोई विरले ही असुर ऐसे होंगे, जो मायाके हाथोंद्वारा वधको प्राप्त होंगे। आप भगवान् शंकरकी कृपासे ही देवताओंको सदा उत्तम सुख प्राप्त होगा। घोर असुरोंका विनाश करके आप जगत्‌को सदा स्वास्थ्य एवं अभय प्रदान करेंगे। अथवा यह भी सम्भव है कि आपके हाथसे कोई भी असुर न मारे जायँ; क्योंकि आप सदा योगयुक्त रहते हुए राग-द्वेषसे रहित हैं तथा एकमात्र दया करनेमें ही लगे रहते हैं। ईश! यदि वे असुर भी आराधित हों—आपकी दयासे अनुगृहीत होते रहें तो सृष्टि और पालनका कार्य कैसे चल सकता है। अतः वृषध्वज! आपको प्रतिदिन सृष्टि आदिके उपयुक्त कार्य करनेके लिये उद्यत रहना चाहिये। यदि सृष्टि, पालन और संहाररूप कर्म न करने हों तब तो हमने मायासे जो भिन्न-भिन्न शरीर धारण किये हैं, उनकी कोई उपयोगिता अथवा औचित्य ही नहीं है। वास्तवमें हम तीनों एक ही हैं, कार्यके भेदसे भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं। यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेदका कोई प्रयोजन ही नहीं है। देव! एक ही परमात्मा महेश्वर तीन स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं। इस रूपभेदमें उनकी अपनी माया ही कारण है। वास्तवमें प्रभु स्वतन्त्र हैं। वे लीलाके उद्देश्यसे ही ये सृष्टि आदि कार्य करते हैं। भगवान् श्रीहरि उनके बायें अङ्गसे प्रकट हुए हैं, मैं ब्रह्मा उनके दायें अङ्गसे प्रकट हुआ हूँ और आप रुद्रदेव उन सदाशिवके हृदयसे आविर्भूत हुए हैं; अतः आप ही शिवके पूर्ण रूप हैं। प्रभो! इस प्रकार अभिन्नरूप होते हुए भी हम तीन रूपोंमें प्रकट हैं। सनातनदेव! हम तीनों उन्हीं भगवान् सदाशिव और शिवाके पुत्र हैं, इस यथार्थ तत्त्वका आप हृदयसे अनुभव कीजिये। प्रभो! मैं और श्रीविष्णु आपके आदेशसे प्रसन्नतापूर्वक लोककी सृष्टि और पालनके कार्य कर रहे हैं तथा कार्य-कारणवश सपत्नीक भी हो गये हैं; अतः आप भी विश्वहितके लिये तथा देवताओंको सुख पहुँचानेके लिये एक परम सुन्दरी रमणीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें। महेश्वर! एक बात और है, उसे सुनिये; मुझे पहलेके वृत्तान्तका स्मरण हो आया है। पूर्वकालमें आपने ही शिवरूपसे जो बात हमारे सामने कही थी, वही इस समय सुना रहा हूँ। आपने कहा था, 'ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही उत्तम रूप तुम्हारे अङ्गविशेष—ललाटसे प्रकट होगा, जिसकी लोकमें 'रुद्र' नामसे प्रसिद्धि होगी। तुम ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हो गये, श्रीहरि जगत्‌का पालन करनेवाले हुए और मैं सगुण रुद्ररूप होकर संहार करनेवाला होऊँगा। एक स्त्रीके साथ विवाह करके लोकके उत्तम कार्यकी सिद्धि करूँगा।' अपनी कही हुई इस बातको याद करके आप अपनी ही पूर्व प्रतिज्ञाको पूर्ण कीजिये। स्वामिन्! आपका यह आदेश है कि मैं सृष्टि करूँ, श्रीहरि पालन करें और आप स्वयं संहारके हेतु बनकर प्रकट हों; सो आप साक्षात् शिव ही संहारकर्ताके रूपमें प्रकट हुए हैं। आपके बिना हम दोनों अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं; अतः आप एक ऐसी कामिनीको स्वीकार करें, जो लोकहितके कार्यमें तत्पर रहे। शम्भो! जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी और सावित्री मेरी सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप इस समय अपनी जीवन-सहचरी प्राणवल्लभाको ग्रहण करें।

मेरी यह बात सुनकर लोकेश्वर महादेवजीके मुखपर मुसकराहट दौड़ गयी। वे श्रीहरिके सामने मुझसे इस प्रकार बोले।

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! हरे! तुम दोनों मुझे सदा ही अत्यन्त प्रिय हो। तुम दोनोंको देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। तुमलोग समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ तथा त्रिलोकीके स्वामी हो। लोकहितके कार्यमें मन लगाये रहनेवाले तुम दोनोंका वचन मेरी दृष्टिमें अत्यन्त गौरवपूर्ण है। किंतु सुरश्रेष्ठगण! मेरे लिये विवाह करना उचित नहीं होगा; क्योंकि मैं तपस्यामें संलग्न रहकर सदा संसारसे विरक्त ही रहता हूँ और योगीके रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। जो निवृत्तिके सुन्दर मार्गपर स्थित है, अपने आत्मामें ही रमण करता—आनन्द मानता है, निरञ्जन (मायासे निर्लिप्त) है, जिसका शरीर अवधूत (दिगम्बर) है, जो ज्ञानी, आत्मदर्शी और कामनासे शून्य है, जिसके मनमें कोई विकार नहीं है, जो भोगोंसे दूर रहता है तथा जो सदा अपवित्र और अमङ्गलवेशधारी है, उसे संसारमें कामिनीसे क्या प्रयोजन है—यह इस समय मुझे बताओ तो सही!* मुझे तो सदा केवल योगमें लगे रहनेपर ही आनन्द आता है। ज्ञानहीन पुरुष ही योगको

---

* यो निवृत्तिसुमार्गस्थः स्वात्मारामो निरञ्जनः।
अवधूततनुर्ज्ञानी स्वद्रष्टा कामवर्जितः॥
अविकारी ह्यभोगी च सदा शुचिरमङ्गलः।
तस्य प्रयोजनं लोके कामिन्या किं वदाधुना॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० १५। ३१-३२)

छोड़कर भोगको अधिक महत्त्व देता है। संसारमें विवाह करना पराये बन्धनमें बँधना है। इसे बहुत बड़ा बन्धन समझना चाहिये। इसलिये मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, विवाहके लिये मेरे मनमें थोड़ी-सी भी अभिरुचि नहीं है। आत्मा ही अपना उत्तम अर्थ या स्वार्थ है। उसका भलीभाँति चिन्तन करनेके कारण मेरी लौकिक स्वार्थमें प्रवृत्ति नहीं होती। तथापि जगत्‌के हितके लिये तुमने जो कुछ कहा है, उसे करूँगा। तुम्हारे वचनको गरिष्ठ मानकर अथवा अपनी कही हुई बातको पूर्ण करनेके लिये मैं अवश्य विवाह करूँगा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें रहता हूँ। परंतु मैं जैसी नारीको प्रिय पत्नीके रूपमें ग्रहण करूँगा और जैसी शर्तके साथ करूँगा, उसे सुनो। हरे! ब्रह्मन्! मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सर्वथा उचित ही है। जो नारी मेरे तेजको विभागपूर्वक ग्रहण कर सके, जो योगिनी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली हो, उसीको तुम पत्नी बनानेके लिये मुझे बताओ। जब मैं योगमें तत्पर रहूँ, तब उसे भी योगिनी बनकर रहना होगा। और जब मैं कामासक्त होऊँ, तब उसे भी कामिनीके रूपमें ही मेरे पास रहना होगा। वेदवेत्ता विद्वान् जिन्हें अविनाशी बतलाते हैं, उन ज्योतिःस्वरूप सनातन शिवका मैं सदा चिन्तन करता हूँ और करता रहूँगा। ब्रह्मन्! उन सदाशिवके चिन्तनमें जब मैं न लगा होऊँ, तभी उस भामिनीके साथ मैं समागम कर सकता हूँ। जो मेरे शिवचिन्तनमें विघ्न डालनेवाली होगी, वह जीवित नहीं रह सकती, उसे अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा। तुम, विष्णु और मैं तीनों ही ब्रह्मस्वरूप शिवके अंशभूत हैं। अतः महाभागगण! हमारे लिये उनका निरन्तर चिन्तन करना ही उचित है। कमलासन! उनके चिन्तनके लिये मैं बिना विवाहके भी रह लूँगा। (किंतु उनका चिन्तन छोड़कर विवाह नहीं करूँगा।) अतः तुम मुझे ऐसी पत्नी प्रदान करो, जो सदा मेरे कर्मके अनुकूल चल सके। ब्रह्मन्! उसमें भी मेरी एक और शर्त है, उसे तुम सुनो; यदि उस स्त्रीका मुझपर और मेरे वचनपर अविश्वास होगा तो मैं उसे त्याग दूँगा।

उनकी यह बात सुनकर मैंने और श्रीहरिने मन्द मुसकानके साथ मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव किया; फिर मैं विनम्र होकर बोला—'नाथ! महेश्वर! प्रभो! आपने जैसी नारीकी खोज आरम्भ की है, वैसी ही स्त्रीके विषयमें मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। साक्षात् सदाशिवकी धर्मपत्नी जो उमा हैं, वे ही जगत्‌का कार्य सिद्ध करनेके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट हुई हैं। प्रभो! सरस्वती और लक्ष्मी—ये दो रूप धारण करके वे पहले ही यहाँ आ चुकी हैं। इनमें लक्ष्मी तो श्रीविष्णुकी प्राणवल्लभा हो गयीं और सरस्वती मेरी। अब हमारे लिये वे तीसरा रूप धारण करके प्रकट हुई हैं। प्रभो! लोकहितका कार्य करनेकी इच्छावाली देवी शिवा दक्षपुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। उनका नाम सती है। सती ही ऐसी भार्या हो सकती हैं, जो सदा आपके लिये हितकारिणी हो। देवेश! महातेजस्विनी सती आपके लिये, आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये दृढ़तापूर्वक कठोर व्रतका पालन करती हुई तपस्या कर रही हैं। महेश्वर! आप उन्हें वर देनेके लिये जाइये, कृपा कीजिये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें उनकी तपस्याके अनुरूप वर देकर उनके साथ विवाह कीजिये। शंकर! भगवान् विष्णुकी, मेरी तथा इन सम्पूर्ण देवताओंकी यही इच्छा है। आप अपनी शुभ दृष्टिसे हमारी इस इच्छाको पूर्ण कीजिये, जिससे हम आदरपूर्वक इस उत्सवको देख सकें। ऐसा होनेसे तीनों लोकोंमें सुख देनेवाला परम मङ्गल होगा और सबकी सारी चिन्ता मिट जायगी, इसमें संशय नहीं है।'

तदनन्तर मेरी बात समाप्त होनेपर लीलाविग्रह धारण करनेवाले भक्तवत्सल महेश्वरसे मधुसूदन अच्युतने इसीका समर्थन किया।

तब भक्तवत्सल भगवान् शिवने हँसकर कहा, 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।' उनके ऐसा कहनेपर हम दोनों उनसे आज्ञा ले अपनी पत्नी तथा देवताओं और मुनियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्न हो अपने अभीष्ट स्थानको चले आये।

(अध्याय १६)

सतीको शिवसे वरकी प्राप्ति तथा भगवान् शिवका ब्रह्माजीको दक्षके पास भेजकर सतीका वरण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! उधर सतीने आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवास करके भक्तिभावसे सर्वेश्वर शिवका पूजन किया। इस प्रकार नन्दाव्रत पूर्ण होनेपर नवमी तिथिको दिनमें ध्यानमग्न हुई सतीको भगवान् शिवने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनका श्रीविग्रह सर्वाङ्गसुन्दर एवं गौरवर्णका था। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। भालदेशमें चन्द्रमा शोभा दे रहा था। उनका चित्त प्रसन्न था और कण्ठमें नील चिह्न दृष्टिगोचर होता था। उनके चार

भुजाएँ थीं। उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल, ब्रह्मकपाल, वर तथा अभय धारण कर रक्खे थे। भस्ममय अङ्गरागसे उनका सारा शरीर उद्भासित हो रहा था। गङ्गाजी उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रही थीं। उनके सभी अङ्ग बड़े मनोहर थे। वे महान् लावण्यके धाम जान पड़ते थे। उनके मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान एवं आह्लादजनक थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत कर रही थी तथा उनकी आकृति स्त्रियोंके लिये सर्वथा ही प्रिय थी। सतीने ऐसे सौन्दर्य-माधुर्यसे युक्त प्रभु महादेवजीको प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणोंकी वन्दना की। उस समय उनका मुख लज्जासे झुका हुआ था। तपस्याके पुञ्जका फल प्रदान करनेवाले महादेवजी उन्हींके लिये कठोर व्रत धारण करनेवाली सतीको पत्नी बनानेके लिये प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी उनसे इस प्रकार बोले।

महादेवजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली दक्षनन्दिनि! मैं तुम्हारे इस व्रतसे बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिये कोई वर माँगो। तुम्हारे मनको जो अभीष्ट होगा, वही वर मैं तुम्हें दूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जगदीश्वर महादेवजी यद्यपि सतीके मनोभावको जानते थे, तो भी उनकी बात सुननेके लिये बोले—'कोई वर माँगो।' परंतु सती लज्जाके अधीन हो गयी थीं; इसलिये उनके हृदयमें जो बात थी, उसे वे स्पष्ट शब्दोंमें कह न सकीं। उनका जो अभीष्ट मनोरथ था, वह लज्जासे आच्छादित हो गया। प्राणवल्लभ शिवका प्रिय वचन सुनकर सती अत्यन्त प्रेममें मग्न हो गयीं। इस बातको जानकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और शीघ्रतापूर्वक बारंबार कहने लगे—'वर माँगो, वर माँगो।' सत्पुरुषोंके आश्रयभूत अन्तर्यामी शम्भु सतीकी भक्तिके वशीभूत हो गये थे। तब सतीने अपनी लज्जाको रोककर महादेवजीसे कहा—'वर देनेवाले प्रभो! मुझे मेरी इच्छाके अनुसार ऐसा वर दीजिये जो टल न सके।' भक्तवत्सल भगवान् शंकरने देखा सती अपनी बात पूरी नहीं कह पा रही है, तब वे स्वयं ही उनसे बोले—'देवि! तुम मेरी भार्या हो जाओ।' अपने अभीष्ट फलको प्रकट करनेवाले उनके इस वचनको सुनकर आनन्दमग्न हुई सती चुपचाप खड़ी रह गयीं; क्योंकि वे मनोवाञ्छित वर पा चुकी थीं। फिर दक्षकन्या प्रसन्न हो दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका भक्तवत्सल शिवसे बारंबार कहने लगीं।

सती बोलीं—देवाधिदेव महादेव! प्रभो! जगत्पते! आप मेरे पिताको कहकर वैवाहिक विधिसे मेरा पाणिग्रहण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सतीकी यह बात सुनकर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रेमसे उनकी ओर देखकर कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।' तब दक्षकन्या सती भी भगवान् शिवको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक विदा माँग—जानेकी आज्ञा प्राप्त करके मोह और आनन्दसे युक्त हो माताके पास लौट गयीं। इधर भगवान् शिव भी हिमालयपर अपने आश्रममें प्रवेश करके दक्षकन्या सतीके वियोगसे कुछ कष्टका अनुभव करते हुए उन्हींका चिन्तन करने लगे। देवर्षे! फिर मनको एकाग्र करके लौकिक गतिका आश्रय ले भगवान् शंकरने मन-ही-मन मेरा स्मरण किया। त्रिशूलधारी महेश्वरके स्मरण करनेपर उनकी सिद्धिसे प्रेरित हो मैं तुरंत ही उनके सामने जा खड़ा हुआ। तात! हिमालयके शिखरपर जहाँ सतीके वियोगका अनुभव करनेवाले महादेवजी विद्यमान थे, वहीं मैं सरस्वतीके साथ उपस्थित हो गया। देवर्षे! सरस्वतीसहित मुझे आया देख सतीके प्रेमपाशमें बँधे हुए शिव उत्सुकतापूर्वक बोले।

शम्भुने कहा—ब्रह्मन्! मैं जबसे विवाहके कार्यमें स्वार्थबुद्धि कर बैठा हूँ, तबसे अब मुझे इस स्वार्थमें ही स्वत्व-सा प्रतीत होता है। दक्षकन्या सतीने बड़ी भक्तिसे मेरी आराधना की है। उसके नन्दाव्रतके प्रभावसे मैंने उसे अभीष्ट वर देनेकी घोषणा की। ब्रह्मन्! तब उसने मुझसे यह वर माँगा कि आप मेरे पति हो जाइये। यह सुनकर सर्वथा संतुष्ट हो मैंने भी कह दिया कि 'तुम मेरी पत्नी हो जाओ।' तब दाक्षायणी सती मुझसे बोलीं—'जगत्पते! आप मेरे पिताको सूचित करके वैवाहिक विधिसे मुझे ग्रहण करें।' ब्रह्मन्! उसकी भक्तिसे संतोष होनेके कारण मैंने उसका वह अनुरोध भी स्वीकार कर लिया। विधातः! तब सती अपनी माताके घर चली गयी और मैं यहाँ चला आया। इसलिये अब तुम मेरी आज्ञासे दक्षके घर जाओ और ऐसा यत्न करो, जिससे प्रजापति दक्ष शीघ्र ही मुझे अपनी कन्याका दान कर दें।

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैं कृतकृत्य और प्रसन्न हो गया तथा उन भक्तवत्सल विश्वनाथसे इस प्रकार बोला।

मुझ ब्रह्माने कहा—भगवन्! शम्भो! आपने जो कुछ कहा है, उसपर भलीभाँति विचार करके हमलोगोंने पहले ही उसे सुनिश्चित कर दिया है। वृषभध्वज! इसमें मुख्यतः देवताओंका और मेरा भी स्वार्थ है। दक्ष स्वयं ही

आपको अपनी पुत्री प्रदान करेंगे, किंतु आपकी आज्ञासे मैं भी उनके सामने आपका संदेश कह दूँगा ।

सर्वेश्वर महाप्रभु महादेवजीसे ऐसा कहकर मैं अत्यन्त वेगशाली रथके द्वारा दक्षके घर जा पहुँचा ।

नारदजीने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग ! विधातः ! बताइये—जब सती घरपर लौटकर आयीं, तब दक्षने उनके लिये क्या किया ?

ब्रह्माजीने कहा—तपस्या करके मनोवाञ्छित वर पाकर सती जब घरको लौट गयीं, तब वहाँ उन्होंने पिता-माताको प्रणाम किया । सतीने अपनी सखीके द्वारा माता-पिताको



तपस्या-सम्बन्धी सब समाचार कहलवाया । सखीने यह भी सूचित किया कि 'सतीको महेश्वरसे वरकी प्राप्ति हुई है, वे सतीकी भक्तिसे बहुत संतुष्ट हुए हैं ।' सखीके मुँहसे सारा वृत्तान्त सुनकर माता-पिताको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने महान् उत्सव किया । उदारचेता दक्ष और महामनस्विनी वीरिणीने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार द्रव्य दिया तथा अन्यान्य अंधों और दीनोंको भी धन बाँटा । प्रसन्नता बढ़ानेवाली अपनी पुत्रीको हृदयसे लगाकर माता वीरिणीने उसका मस्तक सूँघा और आनन्दमग्न होकर उसकी बारंबार प्रशंसा की । तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ दक्ष इस चिन्तामें पड़े कि 'मैं अपनी इस पुत्रीका विवाह भगवान् शंकरके साथ किस तरह करूँ ? महादेवजी प्रसन्न होकर आये थे, पर वे तो चले गये । अब मेरी पुत्रीके लिये वे फिर कैसे यहाँ आयेंगे ? यदि किसीको शीघ्र ही भगवान् शिवके निकट भेजा जाय तो यह भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि यदि वे इस तरह अनुरोध करनेपर भी मेरी पुत्रीको ग्रहण न करें तो मेरी याचना निष्फल हो जायगी ।'

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए प्रजापति दक्षके सामने मैं सरस्वतीके साथ सहसा उपस्थित हुआ । मुझ पिताको आया देख दक्ष प्रणाम करके विनीतभावसे खड़े हो गये । उन्होंने मुझ स्वयम्भूको यथायोग्य आसन दिया । तदनन्तर दक्षने जब मेरे आनेका कारण पूछा, तब मैंने सब बातें बताकर उनसे कहा—'प्रजापते ! भगवान् शंकरने तुम्हारी पुत्रीको प्राप्त करनेके लिये निश्चय ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है; इस विषयमें जो श्रेष्ठ कृत्य हो, उसका निश्चय करो । जैसे सतीने नाना प्रकारके भावोंसे तथा सात्त्विक व्रतके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की है, उसी तरह वे भी सतीकी आराधना करते हैं । इसलिये दक्ष ! भगवान् शिवके लिये ही संकल्पित एवं प्रकट हुई अपनी इस पुत्रीको तुम अविलम्ब उनकी सेवामें सौंप दो, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे । मैं नारदके साथ जाकर उन्हें तुम्हारे घर ले आऊँगा । फिर तुम उन्हींके लिये उत्पन्न हुई अपनी यह पुत्री उनके हाथमें दे दो ।'

ब्रह्माजी कहते हैं— नारद ! मेरी यह बात सुनकर मेरे पुत्र दक्षको बड़ा हर्ष हुआ । वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'पिताजी ! ऐसा ही होगा ।' मुने ! तब मैं अत्यन्त हर्षित हो वहाँसे उस स्थानको लौटा, जहाँ लोककल्याणमें तत्पर रहनेवाले भगवान् शिव बड़ी उत्सुकतासे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे । नारद ! मेरे लौट आनेपर स्त्री और पुत्रीसहित प्रजापति दक्ष भी पूर्णकाम हो गये । वे इतने संतुष्ट हुए; मानो अमृत पीकर अघा गये हों । (अध्याय १७)

ब्रह्माजीसे दक्षकी अनुमति पाकर देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार तथा सती और शिवका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मैं हिमालयके कैलास-शिखरपर रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवको लानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गया और उनसे इस प्रकार बोला—"वृषध्वज ! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको वे अपने लिये असाध्य मानते थे, उसे सिद्ध हुआ ही समझिये। दक्षने कहा है कि 'मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके ही हाथमें दूँगा; क्योंकि उन्हींके लिये यह उत्पन्न हुई है। शिवके साथ सतीका विवाह हो यह कार्य तो मुझे स्वतः ही अभीष्ट है; फिर आपके भी कहनेसे इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया। मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी आराधना की है और इस समय शिवजी भी मुझसे इसीके विषयमें अन्वेषण (पूछताछ) कर रहे हैं; इसलिये मुझे अपनी कन्या अवश्य ही भगवान् शिवके हाथमें देनी है। विधातः ! वे भगवान् शंकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें यहाँ पधारें। उस समय मैं उन्हें शिक्षाके तौरपर अपनी यह पुत्री दे दूँगा।' वृषभध्वज ! मुझसे दक्षने ऐसी बात कही है। अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर चलिये और सतीको ले आइये।"



मुने ! मेरी यह बात सुनकर भक्तवत्सल रुद्र लौकिक गतिका आश्रय ले हँसते हुए मुझसे बोले—"संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी ! मैं तुम्हारे और नारदके साथ ही दक्षके घर चलूँगा ! अतः नारदका स्मरण करो। अपने मरीचि आदि मानस पुत्रोंको भी बुला लो। विधे ! मैं उन सबके साथ दक्षके निवासस्थानपर चलूँगा। मेरे पार्षद भी मेरे साथ रहेंगे।"

नारद ! लोकाचारके निर्वाहमें लगे हुए भगवान् शिवके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने तुम्हारा और मरीचि आदि पुत्रोंका भी स्मरण किया। मेरे याद करते ही तुम्हारे साथ मेरे सभी मानस पुत्र मनमें आदरकी भावना लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय तुम सब लोग हर्षसे उत्फुल्ल हो रहे थे। फिर रुद्रके स्मरण करनेपर शिवभक्तोंके सम्राट् भगवान् विष्णु भी अपने सैनिकों तथा कमलादेवीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो तुरंत वहाँ आ गये। तदनन्तर चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें रविवारको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें मुझ ब्रह्मा और विष्णु आदि समस्त देवताओंके साथ महेश्वरने विवाहके लिये यात्रा की। मार्गमें उन देवताओं और ऋषियोंके साथ यात्रा करते हुए भगवान् शंकर बड़ी शोभा पा रहे थे। वहाँ जाते हुए देवताओं, मुनियों तथा आनन्दमग्न मनवाले प्रमथगणोंका रास्तेमें बड़ा उत्सव हो रहा था। भगवान् शिवकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्प, जटा और चन्द्रकला आदि सब-के-सब उनके लिये यथायोग्य आभूषण बन गये। तदनन्तर वेगसे चलनेवाले बलवान् बलीवर्द नन्दिकेश्वरपर आरूढ़ हुए महादेवजी श्रीविष्णु आदि देवताओंको साथ लिये क्षणभरमें प्रसन्नतापूर्वक दक्षके घर जा पहुँचे।

वहाँ विनीतचित्तवाले प्रजापति दक्ष समस्त आत्मीय जनोंके साथ भगवान् शिवकी अगवानीके लिये उनके सामने आये। उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया था। स्वयं दक्षने अपने द्वारपर आये हुए समस्त देवताओंका सत्कार किया। वे सब लोग सुरश्रेष्ठ शिवको बिठाकर उनके पार्श्वभागमें स्वयं भी मुनियोंके साथ क्रमशः बैठ गये। इसके बाद दक्षने मुनियोंसहित समस्त देवताओंकी परिक्रमा की और उन सबके साथ भगवान् शिवको घरके भीतर ले आये। उस समय दक्षके मनमें

बड़ी प्रसन्नता थी। उन्होंने सर्वेश्वर शिवको उत्तम आसन देकर स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया। तत्पश्चात् श्रीविष्णुका, मेरा, ब्राह्मणोंका, देवताओंका और समस्त शिवगणोंका भी यथोचित विधिसे उत्तम भक्तिभावके साथ पूजन किया। इस तरह पूजनीय पुरुषों तथा अन्य लोगोंसहित उन सबका यथोचित आदर-सत्कार करके दक्षने मेरे मानस पुत्र मरीचि आदि मुनियोंके साथ आवश्यक सलाह की। इसके बाद मेरे पुत्र दक्षने मुझ पितासे मेरे चरणोंमें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'प्रभो! आप ही वैवाहिक कार्य करायें।'

तब मैं भी हर्षभरे हृदयसे 'बहुत अच्छा' कहकर उठा और वह सारा कार्य कराने लगा। तदनन्तर ग्रहोंके बलसे युक्त शुभ लग्न और मुहूर्तमें दक्षने हर्षपूर्वक अपनी पुत्री सतीका हाथ भगवान् शंकरके हाथमें दे दिया। उस समय हर्षसे भरे हुए भगवान् वृषभध्वजने भी वैवाहिक विधिसे सुन्दरी दक्षकन्याका पाणिग्रहण किया। फिर मैंने, श्रीहरिने, तुम तथा अन्य मुनियोंने, देवताओं और प्रमथगणोंने भगवान् शिवको प्रणाम किया और सबने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। उस समय नाच-गानके साथ महान् उत्सव मनाया गया। समस्त देवताओं और मुनियोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान् शिवके लिये कन्यादान करके मेरे पुत्र दक्ष कृतार्थ हो गये। शिवा और शिव प्रसन्न हुए तथा सारा संसार मङ्गलका निकेतन बन गया।

(अध्याय १८)

सती और शिवके द्वारा अग्निकी परिक्रमा, श्रीहरिद्वारा शिवतत्त्वका वर्णन, शिवका ब्रह्माजीको दिये हुए वरके अनुसार वेदीपर सदाके लिये अवस्थान तथा शिव और सतीका विदा हो कैलासपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! कन्यादान करके दक्षने भगवान् शंकरको नाना प्रकारकी वस्तुएँ दहेजमें दीं। यह सब करके वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने ब्राह्मणोंको भी नाना प्रकारके धन बाँटे। तत्पश्चात् लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु शम्भुके पास आ हाथ जोड़कर खड़े हुए और यों बोले—'देवदेव महादेव! दयासागर! प्रभो! तात! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं और सती देवी सबकी माता हैं। आप दोनों सत्पुरुषोंके कल्याण तथा दुष्टोंके दमनके लिये सदा लीलापूर्वक अवतार ग्रहण करते हैं—यह सनातन श्रुतिका कथन है। आप चिकने नील अञ्जनके समान शोभावाली सतीके साथ जिस प्रकार शोभा पा रहे हैं, मैं उससे उलटे लक्ष्मीके साथ शोभा पा रहा हूँ—अर्थात् सती नीलवर्णा तथा आप गौरवर्ण हैं, उससे उलटे मैं नीलवर्ण तथा लक्ष्मी गौरवर्णा हैं।'

नारद! मैं देवी सतीके पास आकर गृह्यसूत्रोक्त विधिसे विस्तारपूर्वक सारा अग्निकार्य कराने लगा। मुझ आचार्य तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवा और शिवने बड़े हर्षके साथ विधिपूर्वक अग्निकी परिक्रमा की। उस समय वहाँ बड़ा अद्भुत उत्सव मनाया गया। गाजे, बाजे और नृत्यके साथ होनेवाला वह उत्सव सबको बड़ा सुखद जान पड़ा।

तदनन्तर भगवान् विष्णु बोले—सदाशिव! मैं आपकी आज्ञासे यहाँ शिवतत्त्वका वर्णन करता हूँ। समस्त देवता तथा दूसरे-दूसरे मुनि अपने मनको एकाग्र करके इस विषयको सुनें। भगवन्! आप प्रधान और अप्रधान (प्रकृति और उससे अतीत) हैं। आपके अनेक भाग हैं। फिर भी आप भागरहित हैं। ज्योतिर्मय स्वरूपवाले आप परमेश्वरके ही हम तीनों देवता अंश हैं। आप कौन, मैं कौन और ब्रह्मा कौन हैं? आप परमात्माके ही ये तीन अंश हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण एक दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं। आप अपने स्वरूपका चिन्तन कीजिये। आपने स्वयं ही लीलापूर्वक शरीर धारण किया है। आप निर्गुण ब्रह्मरूपसे एक हैं। आप ही सगुण ब्रह्म हैं और हम ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—तीनों आपके अंश हैं। जैसे एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अवयव मस्तक, ग्रीवा आदि नाम धारण करते हैं तथापि उस शरीरसे वे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार हम तीनों अंश आप परमेश्वरके ही अङ्ग हैं। जो ज्योतिर्मय, आकाशके समान सर्वव्यापी एवं निर्लेप, स्वयं ही अपना धाम, पुराण, कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्त, नित्य तथा दीर्घ आदि विशेषणोंसे रहित निर्विशेष ब्रह्म है, वही आप शिव हैं अतः आप ही सब कुछ हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! भगवान् विष्णुकी

यह बात सुनकर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर उस विवाह-यज्ञके स्वामी (यजमान) परमेश्वर शिव प्रसन्न हो लौकिकी गतिका आश्रय ले हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझ ब्रह्मासे प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—ब्रह्मन्! आपने सारा वैवाहिक कार्य अच्छी तरह सम्पन्न करा दिया। अब मैं प्रसन्न हूँ। आप मेरे आचार्य हैं। बताइये, आपको क्या दक्षिणा दूँ? सुरज्येष्ठ! आप उस दक्षिणाको माँगिये। महाभाग! यदि वह अत्यन्त दुर्लभ हो तो भी उसे शीघ्र कहिये। मुझे आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

मुने! भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर मैं हाथ जोड़ विनीत चित्तसे उन्हें बारंबार प्रणाम करके बोला—'देवेश! यदि आप प्रसन्न हों और महेश्वर! यदि मैं वर पानेके योग्य होऊँ तो प्रसन्नतापूर्वक जो बात कहता हूँ, उसे आप पूर्ण कीजिये। महादेव! आप इसी रूपमें इसी वेदीपर सदा विराजमान रहें, जिससे आपके दर्शनसे मनुष्योंके पाप धुल जायँ। चन्द्रशेखर! आपका सांनिध्य होनेसे मैं इस वेदीके समीप आश्रम बनाकर तपस्या करूँ—यह मेरी अभिलाषा है। चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें रविवारके दिन इस भूतलपर जो मनुष्य भक्तिभावसे आपका दर्शन करे, उसके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जायँ, विपुल पुण्यकी वृद्धि हो और समस्त रोगोंका सर्वथा नाश हो जाय। जो नारी दुर्भगा, वन्ध्या, कानी अथवा रूपहीना हो, वह भी आपके दर्शनमात्रसे ही अवश्य निर्दोष हो जाय।'

मेरी यह बात उनकी आत्माको सुख देनेवाली थी। इसे सुनकर भगवान् शिवने प्रसन्नचित्तसे कहा—'विधातः! ऐसा ही होगा। मैं तुम्हारे कहनेसे सम्पूर्ण जगत्के हितके लिये अपनी पत्नी सतीके साथ इस वेदीपर सुस्थिरभावसे स्थित रहूँगा।'

ऐसा कहकर पत्नीसहित भगवान् शिव अपनी अंशरूपिणी मूर्तिको प्रकट करके वेदीके मध्यभागमें विराजमान हो गये। तत्पश्चात् स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाले परमेश्वर शंकर दक्षसे विदा ले अपनी पत्नी सतीके साथ कैलास जानेको उद्यत हुए। उस समय उत्तम बुद्धिवाले दक्षने विनयसे मस्तक झुका हाथ जोड़ भगवान् वृषभध्वजकी प्रेमपूर्वक स्तुति की। फिर श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और शिवगणोंने नमस्कारपूर्वक नाना प्रकारकी स्तुति करके बड़े आनन्दसे जय-जयकार किया। तदनन्तर दक्षकी आज्ञासे भगवान् शिवने प्रसन्नतापूर्वक सतीको वृषभकी पीठपर बिठाया और स्वयं भी उसपर आरूढ़ हो वे प्रभु हिमालय पर्वतकी ओर चले।



भगवान् शंकरके समीप वृषभपर बैठी हुई सुन्दर दाँत और मनोहर हासवाली सती अपने नीलश्याम वर्णके कारण चन्द्रमामें नीली रेखाके समान शोभा पा रही थीं। उस समय उन नव-दम्पतिकी शोभा देख श्रीविष्णु आदि समस्त देवता, मरीचि आदि महर्षि तथा दूसरे लोग ठगे-से रह गये। हिल-डुल भी न सके तथा दक्ष भी मोहित हो गये। तत्पश्चात् कोई बाजे बजाने लगे और दूसरे लोग मधुर स्वरसे गीत गाने लगे। कितने ही लोग प्रसन्नतापूर्वक शिवके कल्याणमय उज्ज्वल यशका गान करते हुए उनके पीछे-पीछे चले। भगवान् शंकरने बीच रास्तेसे दक्षको प्रसन्नतापूर्वक लौटा दिया और स्वयं प्रेमाकुल हो प्रमथगणोंके साथ अपने धामको जा पहुँचे। यद्यपि भगवान् शिवने विष्णु आदि देवताओंको भी विदा कर दिया था; तो भी वे बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके साथ पुनः उनके साथ हो लिये। उन सब देवताओं, प्रमथगणों तथा अपनी पत्नी सतीके साथ हर्षभरे शम्भु हिमालय पर्वतसे सुशोभित अपने कैलासधाममें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देवताओं, मुनियों तथा दूसरे लोगोंका बहुत आदर-सम्मान करके उन्हें प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। शम्भुकी आज्ञा ले वे

विष्णु आदि सब देवता तथा मुनि नमस्कार और स्तुति करके मुखपर प्रसन्नताकी छाप लिये अपने-अपने धामको चले गये। सदाशिवका चिन्तन करनेवाले भगवान् शिव भी अत्यन्त आनन्दित हो हिमालयके शिखरपर रहकर अपनी पत्नी दक्षकन्या सतीके साथ विहार करने लगे।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् शंकर और सतीका जिस प्रकार विवाह हुआ; वह सारा प्रसङ्ग मैंने तुमसे कह दिया। जो विवाहकालमें, यज्ञमें अथवा किसी भी शुभ कार्यके आरम्भमें भगवान् शंकरकी पूजा करके शान्तचित्तसे इस कथाको सुनता है, उसका सारा कर्म तथा वैवाहिक आयोजन बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण होता है और दूसरे शुभ कर्म भी सदा निर्विघ्न पूर्ण होते हैं। इस शुभ उपाख्यानको प्रेमपूर्वक सुनकर विवाहित होनेवाली कन्या भी सुख, सौभाग्य, सुशीलता और सदाचार आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न साध्वी स्त्री तथा पुत्रवती होती है। (अध्याय १९-२०)

सतीका प्रश्न तथा उसके उत्तरमें भगवान् शिवद्वारा ज्ञान एवं नवधाभक्तिके स्वरूपका विवेचन

कैलास तथा हिमालय पर्वतपर श्रीशिव और सतीके विविध विहारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—मुने! एक दिनकी बात है, देवी सती एकान्तमें भगवान् शंकरसे मिलीं और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ खड़ी हो गयीं। प्रभु शंकरको पूर्ण प्रसन्न जान नमस्कार करके विनीत भावसे खड़ी हुई दक्षकुमारी सती भक्तिभावसे अञ्जलि बाँधे बोलीं।

सतीने कहा—देवदेव महादेव! करुणासागर! प्रभो! दीनोद्धारपरायण! महायोगिन्! मुझपर कृपा कीजिये। आप परम पुरुष हैं। सबके स्वामी हैं। रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणसे परे हैं। निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं। सबके साक्षी, निर्विकार और महाप्रभु हैं। हर! मैं धन्य हूँ, जो आपकी कामिनी और आपके साथ सुन्दर विहार करनेवाली आपकी प्रिया हुई। स्वामिन्! आप अपनी भक्तवत्सलतासे ही प्रेरित होकर मेरे पति हुए हैं। नाथ! मैंने बहुत वर्षोंतक आपके साथ विहार किया है। महेशान! इससे मैं बहुत संतुष्ट हुई हूँ और अब मेरा मन उधरसे हट गया है। देवेश्वर हर! अब तो मैं उस परम तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, जो निरतिशय सुख प्रदान करनेवाला है तथा जिसके द्वारा जीव संसार-दुःखसे अनायास ही उद्धार पा सकता है। नाथ! जिस कर्मका अनुष्ठान करके विषयी जीव भी परम पदको प्राप्त कर ले और संसारबन्धनमें न बँधे, उसे आप बताइये, मुझपर कृपा कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार आदिशक्ति महेश्वरी सतीने केवल जीवोंके उद्धारके लिये जब उत्तम भक्तिभावके साथ भगवान् शंकरसे प्रश्न किया, तब उनके उस प्रश्नको सुनकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा योगके द्वारा भोगसे विरक्त चित्तवाले स्वामी शिवने अत्यन्त प्रसन्न होकर सतीसे इस प्रकार कहा।

शिव बोले—देवि! दक्षनन्दिनि! महेश्वरि! सुनो; मैं उसी परमतत्त्वका वर्णन करता हूँ, जिससे वासनाबद्ध जीव तत्काल मुक्त हो सकता है। परमेश्वरि! तुम विज्ञानको परमतत्त्व जानो। विज्ञान वह है, जिसके उदय होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है, ब्रह्मके सिवा दूसरी किसी वस्तुका स्मरण नहीं रहता तथा उस विज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध हो जाती है। प्रिये! वह विज्ञान दुर्लभ है। इस त्रिलोकीमें उसका ज्ञाता कोई विरला ही होता है। वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है, साक्षात्परात्पर ब्रह्म है। उस विज्ञानकी माता है मेरी भक्ति, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली है। वह मेरी कृपासे सुलभ होती है। भक्ति नौ प्रकारकी बतायी गयी है। सती! भक्ति और ज्ञानमें कोई भेद नहीं है। भक्त और ज्ञानी दोनोंको ही सदा सुख प्राप्त होता है। जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं ही होती। देवि! मैं सदा भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्तिके प्रभावसे जातिहीन नीच मनुष्योंके घरोंमें भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं है।* सती! वह भक्ति दो प्रकारकी है—सगुणा और निर्गुणा। जो वैधी (शास्त्रविधिसे प्रेरित) और स्वाभाविकी (हृदयके सहज अनुरागसे प्रेरित) भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है तथा इससे भिन्न जो कामनामूलक

* भक्तौ ज्ञाने न भेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम्।
विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः॥
भक्ताधीनः सदाहं वै तत्प्रभावाद् गृहेष्वपि।
नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। १६-१७)

भक्ति होती है, वह निम्नकोटिकी मानी गयी है। पूर्वोक्त सगुणा और निर्गुणा—ये दोनों प्रकारकी भक्तियाँ नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो भेदवाली हो जाती हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी कही गयी है। विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेदसे उसे अनेक प्रकारकी मानते हैं। इन द्विविध भक्तियोंके बहुत-से भेद-प्रभेद होनेके कारण इनके तत्त्वका अन्यत्र वर्णन किया गया है। प्रिये! मुनियोंने सगुणा और निर्गुणा दोनों भक्तियोंके नौ अङ्ग बताये हैं। दक्षनन्दिनि! मैं उन नवों अङ्गोंका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमसे सुनो। देवि! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा वन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—ये विद्वानोंने भक्तिके नौ अङ्ग माने हैं*। शिवे! भक्तिके उपाङ्ग भी बहुत-से बताये गये हैं।

देवि! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके पूर्वोक्त नवों अङ्गोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो; वे लक्षण भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर आसनसे बैठकर तन-मन आदिसे मेरी कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक अपने श्रवणपुटोंसे उसके अमृतोपम रसका पान करता है, उसके इस साधनको 'श्रवण' कहते हैं। जो हृदयाकाशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म-कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्चस्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजन-साधनको 'कीर्तन' कहते हैं। देवि! मुझ नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर जो संसारमें निरन्तर निर्भय रहता है, उसीको 'स्मरण' कहा गया है। अरुणोदयसे लेकर हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही 'सेवन' नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयामृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय सम्पादन करना 'दास्य' कहा गया है। अपने धन-वैभवके अनुसार शास्त्रीय विधिसे मुझ परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे 'अर्चन' कहते हैं। मनसे ध्यान और वाणीसे वन्दनात्मक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक आठों अङ्गोंसे भूतलका स्पर्श करते हुए जो इष्टदेवको नमस्कार किया जाता है, उसे 'वन्दन' कहते हैं। ईश्वर मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मङ्गलके लिये ही है। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना 'सख्य' भक्तिका लक्षण है।* देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये भी कुछ बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहित हो जाना 'आत्मसमर्पण' कहलाता है। ये मेरी भक्तिके नौ अङ्ग हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञानका प्राकट्य होता है तथा ये सब साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी भक्तिके बहुत-से उपाङ्ग भी कहे गये हैं, जैसे बिल्व आदिका सेवन आदि। इनको विचारसे समझ लेना चाहिये।

प्रिये! इस प्रकार मेरी साङ्गोपाङ्ग भक्ति सबसे उत्तम है। यह ज्ञान-वैराग्यकी जननी है और मुक्ति इसकी दासी है। यह सदा सब साधनोंसे ऊपर विराजमान है। इसके द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति मुझे सदा तुम्हारे समान ही प्रिय है। जिसके चित्तमें नित्य-निरन्तर यह भक्ति निवास करती है, वह साधक मुझे अत्यन्त प्यारा है। देवेश्वरि! तीनों लोकों और चारों युगोंमें भक्तिके समान दूसरा कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुगमें तो यह विशेष सुखद एवं सुविधाजनक है।† देवि! कलियुगमें प्रायः ज्ञान और वैराग्यके कोई ग्राहक नहीं हैं। इसलिये वे दोनों वृद्ध, उत्साहशून्य और जर्जर हो गये हैं। परंतु भक्ति कलियुगमें तथा अन्य सब युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्तिके प्रभाववसे मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ, इसमें संशय नहीं है। संसारमें जो भक्तिमान् पुरुष है, उसकी मैं सदा सहायता करता हूँ, उसके सारे विघ्नोंको दूर हटाता हूँ। उस भक्तका जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है—इसमें संशय नहीं है।‡ देवि! मैं अपने भक्तोंका रक्षक हूँ। भक्तकी रक्षाके

* श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा।
दास्यं तथार्चनं देवि वन्दनं मम सर्वदा॥
सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः।
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। २२-२३)

* मङ्गलामङ्गलं यद् यत् करोतीतीश्वरो हि मे।
सर्वं तन्मङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम्॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। ३२)

† त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पन्था नास्ति सुखावहः।
चतुर्युगेषु देवेशि कलौ तु सुविशेषतः॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। ३८)

‡ यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत्।
विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयः॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। ४१)

लिये ही मैंने कुपित हो अपने नेत्रजनित अग्निसे कालको भी दग्ध कर डाला था। प्रिये ! भक्तके लिये मैं पूर्वकालमें सूर्यपर भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा था और शूल लेकर मैंने उन्हें मार भगाया था। देवि ! भक्तके लिये मैंने सैन्यसहित रावणको भी क्रोधपूर्वक त्याग दिया और उसके प्रति कोई पक्षपात नहीं किया। सती ! देवेश्वरि ! बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं सदा ही भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्ति करनेवाले पुरुषके अत्यन्त वशमें हो जाता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार भक्तका महत्त्व सुनकर दक्षकन्या सतीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको मन-ही-मन प्रणाम किया। मुने ! सती देवीने पुनः भक्तिकाण्डविषयक शास्त्रके विषयमें भक्तिपूर्वक पूछा। उन्होंने जिज्ञासा की कि जो लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारके साधनोंका प्रतिपादक है, वह शास्त्र कौन-सा है। उन्होंने यन्त्र-मन्त्र, शास्त्र, उसके माहात्म्य तथा अन्य जीवोद्धारक धर्ममय साधनोंके विषयमें विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा प्रकट की। सतीके इस प्रश्नको सुनकर शंकरजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये सब शास्त्रोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया। महेश्वरने पाँचों अङ्गोंसहित तन्त्रशास्त्र, यन्त्रशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न देवेश्वरोंकी महिमाका वर्णन किया। मुनीश्वर ! इतिहास-कथासहित उन देवताओंके भक्तोंकी महिमाका, वर्णाश्रम धर्मोंका तथा राजधर्मोंका भी निरूपण किया। पुत्र और स्त्रीके धर्मकी महिमाका, कभी नष्ट न होनेवाले वर्णाश्रमधर्मका और जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिष्शास्त्रका भी वर्णन किया। महेश्वरने कृपा करके उत्तम सामुद्रिक शास्त्रका तथा और भी बहुत-से शास्त्रोंका तत्त्वतः वर्णन किया। इस प्रकार लोकोपकार करनेके लिये सद्गुणसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, त्रिलोकसुखदायक और सर्वज्ञ सती-शिव हिमालयके कैलासशिखरपर तथा अन्यान्य स्थानोंमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। वे दोनों दम्पति साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं।

(अध्याय २१–२२)

दण्डकारण्यमें शिवको श्रीरामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा

नारदजी बोले—ब्रह्मन् ! विधे ! प्रजानाथ ! महाप्राज्ञ ! दयानिधे ! आपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके मङ्गलकारी सुयशका श्रवण कराया है। अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक उनके उत्तम यशका वर्णन कीजिये। उन शिव-दम्पतिने वहाँ रहकर कौन-सा चरित्र किया था ?

ब्रह्माजीने कहा—मुने ! तुम मुझसे सती और शिवके चरित्रका प्रेमसे श्रवण करो। वे दोनों दम्पति वहाँ लौकिकी गतिका आश्रय ले नित्य-निरन्तर क्रीडा किया करते थे। तदनन्तर महादेवी सतीको अपने पति शंकरका वियोग प्राप्त हुआ, ऐसा कुछ श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानोंका कथन है। परंतु मुने ! वास्तवमें उन दोनोंका परस्पर वियोग कैसे हो सकता है ? क्योंकि वे दोनों वाणी और अर्थके समान एक दूसरेसे सदा मिले-जुले हैं, शक्ति और शक्तिमान् हैं तथा चित्स्वरूप हैं ! फिर भी उनमें लीला-विषयक रुचि होनेके कारण वह सब कुछ संघटित हो सकता है। सती और शिव यद्यपि ईश्वर हैं, तो भी लौकिक रीतिका अनुसरण करके वे जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सब सम्भव हैं। दक्षकन्या सतीने जब देखा कि मेरे पतिने मुझे त्याग दिया है, तब वे अपने पिता दक्षके यज्ञमें गयीं और वहाँ भगवान् शंकरका अनादर देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। वे ही सती पुनः हिमालयके घर पार्वतीके नामसे प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विधातासे शिवा और शिवके महान् यशके विषयमें इस प्रकार पूछा।

नारदजी बोले—महाभाग विष्णुशिष्य ! विधातः ! आप मुझे शिवा और शिवके भाव तथा आचारसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके चरित्रको विस्तारपूर्वक सुनाइये। तात ! भगवान् शंकरने अपने प्राणोंसे भी प्यारी धर्मपत्नी सतीका किसलिये त्याग किया ? यह घटना तो मुझे बड़ी विचित्र जान पड़ती है। अतः इसे आप अवश्य कहें। अज ! आपके पुत्र दक्षके यज्ञमें भगवान् शिवका अनादर कैसे हुआ ? और वहाँ पिताके यज्ञमें जाकर सतीने अपने शरीरका त्याग किस प्रकार किया ? उसके बाद वहाँ क्या हुआ ? भगवान् महेश्वरने क्या किया ? ये सब बातें मुझसे कहिये। इन्हें सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा है।

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ ! महाप्राज्ञ ! तात नारद ! तुम महर्षियोंके साथ बड़े प्रेमसे भगवान् चन्द्रमौलिका यह चरित्र सुनो । श्रीविष्णु आदि देवताओंसे सेवित परब्रह्म महेश्वरको नमस्कार करके मैं उनके महान् अद्भुत चरित्रका वर्णन आरम्भ करता हूँ । मुने ! यह सब भगवान् शिवकी लीला ही है। वे प्रभु अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले, स्वतन्त्र और निर्विकार हैं । देवी सती भी वैसी ही हैं । अन्यथा वैसा कर्म करनेमें कौन समर्थ हो सकता है । परमेश्वर शिव ही परब्रह्म परमात्मा हैं ।

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीला-विशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ बैलपर आरूढ़ हो इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे । घूमते-घूमते वे दण्डकारण्यमें आये । वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा छलपूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे । वे 'हा सीते !' ऐसा उच्चस्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबार रोते थे । उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था । सूर्यवंशमें उत्पन्न, वीर भूपाल, दशरथ-नन्दन, भरताग्रज श्रीराम आनन्दरहित हो लक्ष्मणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी । उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये । भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया । भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ । वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं ।

सतीने कहा—देवदेव सर्वेश ! परब्रह्म परमेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सदा सेवा करते हैं । आप ही सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं । सबको आपका ही सर्वदा सेवन और ध्यान करना चाहिये । वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जाननेयोग्य निर्विकार परमप्रभु आप ही हैं । नाथ ! ये दोनों पुरुष कौन हैं; इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है । ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्लेशके भागी और दीन हो रहे हैं । इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अङ्गकान्ति नीलकमलके समान श्याम है । उसे देखकर किस कारणसे आप आनन्दविभोर हो उठे थे ? आपका चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ? आप इस समय भक्तके समान विनम्र क्यों हो गये थे ? स्वामिन् ! कल्याणकारी शिव ! आप मेरे संशयको सुनें । प्रभो ! सेव्य स्वामी अपने सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं जान पड़ता ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! कल्याणमयी परमेश्वरी आदिशक्ति सती देवीने शिवकी मायाके वशीभूत होकर जब भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब सतीकी वह बात सुनकर लीलाविशारद परमेश्वर शंकर हँसकर उनसे इस प्रकार बोले ।

परमेश्वरने कहा—देवि ! सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक यथार्थ बात कहता हूँ । इसमें छल नहीं है । वरदानके प्रभावसे ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है । प्रिये ! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं । इनके नाम हैं—श्रीराम और लक्ष्मण । इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है । ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं । इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शेषके अंश हैं । उनका नाम लक्ष्मण है । इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है । इनके रूपमें भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं । उपद्रव इनसे दूर ही रहते हैं । ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं ।

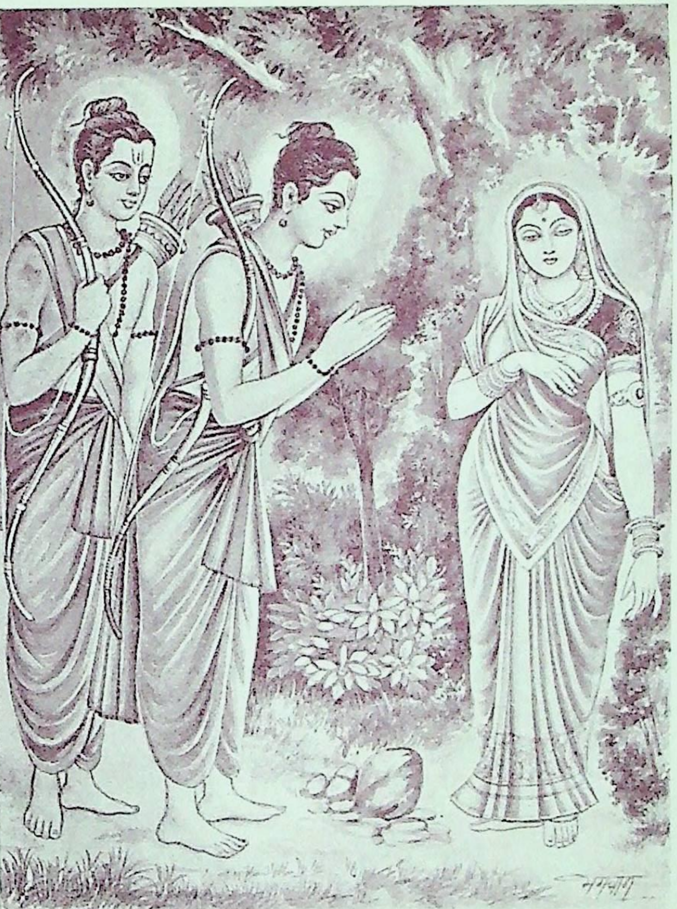
ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता भगवान् शम्भु चुप हो गये । भगवान् शिवकी ऐसी बात सुनकर भी सतीके मनको इसपर विश्वास नहीं हुआ । क्यों न हो, भगवान् शिवकी माया बड़ी प्रबल है, वह सम्पूर्ण त्रिलोकीको मोहमें डाल देनेवाली है । सतीके मनमें मेरी बातपर विश्वास नहीं है, यह जानकर लीला-विशारद प्रभु सनातन शम्भु यों बोले ।

शिवने कहा—देवि ! मेरी बात सुनो । यदि तुम्हारे मनमें मेरे कथनपर विश्वास नहीं है तो तुम वहाँ जाकर अपनी ही बुद्धिसे श्रीरामकी परीक्षा कर लो । प्यारी सती ! जिस प्रकार तुम्हारा मोह या भ्रम नष्ट हो जाय, वह करो । तुम वहाँ जाकर परीक्षा करो । तबतक मैं इस बरगदके नीचे खड़ा हूँ ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शिवकी आज्ञासे ईश्वरी सती वहाँ गयीं और मन-ही-मन यह सोचने लगीं कि 'मैं वनचारी रामकी कैसे परीक्षा करूँ ? अच्छा, मैं सीताका रूप धारण करके रामके पास चलूँ । यदि राम साक्षात् विष्णु हैं, तब तो सब कुछ जान लेंगे; अन्यथा वे मुझे नहीं पहचानेंगे ।' ऐसा विचार सती सीता बनकर श्रीरामके समीप उनकी परीक्षा लेनेके लिये गयीं । वास्तवमें वे मोहमें पड़ गयी थीं । सतीको सीताके रूपमें सामने आयी देख शिव-शिवका जप करते हुए



भगवान् रामको शिवजीके द्वारा नमस्कार [पृष्ठ १३६



राम-परीक्षाके लिये सतीका सीतारूप-धारण [पृष्ठ १३७

रघुकुलनन्दन श्रीराम सब कुछ जान गये और हँसते हुए उन्हें नमस्कार करके बोले।

श्रीरामने पूछा—सतीजी ! आपको नमस्कार है। आप प्रेमपूर्वक बतायें, भगवान् शम्भु कहाँ गये हैं ? आप पतिके बिना अकेली ही इस वनमें क्योंकर आयीं ? देवि ! आपने अपना रूप त्यागकर किसलिये यह नूतन रूप धारण किया है ? मुझपर कृपा करके इसका कारण बताइये।

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आश्चर्यचकित हो गयीं। वे शिवजीकी कही हुई बातका स्मरण करके और उसे यथार्थ समझकर बहुत लज्जित हुईं। श्रीरामको साक्षात् विष्णु जान अपने रूपको प्रकट करके मन-ही-मन भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन कर प्रसन्नचित्त हुई सती उनसे इस तरह बोलीं—'रघुनन्दन ! स्वतन्त्र परमेश्वर भगवान् शिव मेरे तथा अपने पार्षदोंके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए इस वनमें आ गये थे। यहाँ उन्होंने सीताकी खोजमें लगे हुए लक्ष्मणसहित तुमको देखा। उस समय सीताके लिये तुम्हारे मनमें बड़ा क्लेश था और तुम विरहशोकसे पीड़ित दिखायी देते थे। उस अवस्थामें तुम्हें प्रणाम करके वे चले गये और उस वटवृक्षके नीचे अभी खड़े ही हैं। भगवान् शिव बड़े आनन्दके साथ तुम्हारे वैष्णव रूपकी उत्कृष्ट महिमाका गान कर रहे थे। यद्यपि उन्होंने तुम्हें चतुर्भुज विष्णुके रूपमें नहीं देखा, तो भी तुम्हारा दर्शन करते ही वे आनन्दविभोर हो गये। इस निर्मल रूपकी ओर देखते हुए उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। इस विषयमें मेरे पूछनेपर भगवान् शम्भुने जो बात कही, उसे सुनकर मेरे मनमें भ्रम उत्पन्न हो गया। अतः राघवेन्द्र ! मैंने उनकी आज्ञा लेकर तुम्हारी परीक्षा की है। श्रीराम ! अब मुझे ज्ञात हो गया कि तुम साक्षात् विष्णु हो। तुम्हारी सारी प्रभुता मैंने अपनी आँखों देख ली। अब मेरा संशय दूर हो गया। तो भी महामते ! तुम मेरी बात सुनो। मेरे सामने यह सच-सच बताओ कि तुम भगवान् शिवके भी वन्दनीय कैसे हो गये ? मेरे मनमें यही एक संदेह है। इसे निकाल दो और शीघ्र ही मुझे पूर्ण शान्ति प्रदान करो।'

सतीका यह वचन सुनकर श्रीरामके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान खिल उठे। उन्होंने मन-ही-मन अपने प्रभु भगवान् शिवका स्मरण किया। इससे उनके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी। मुने ! आज्ञा न होनेके कारण वे सतीके साथ भगवान् शिवके निकट नहीं गये तथा मन-ही-मन उनकी महिमाका वर्णन करके श्रीरघुनाथजीने सतीसे कहना प्रारम्भ किया। (अध्याय २४)

श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक तथा उनके प्रति प्रणामका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीरामका सतीके मनका संदेह दूर करना, सतीका शिवके द्वारा मानसिक त्याग

श्रीराम बोले—देवि ! प्राचीन कालमें एक समय परम स्रष्टा भगवान् शम्भुने अपने परात्पर धाममें विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा अपनी गोशालामें एक रमणीय भवन बनवाया, जो बहुत ही विस्तृत था। उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण कराया। उस सिंहासनपर भगवान् शंकरने विश्वकर्माद्वारा एक छत्र बनवाया, जो बहुत ही दिव्य, सदाके लिये अद्भुत और परम उत्तम था। तत्पश्चात् उन्होंने सब ओरसे इन्द्र आदि देवगणों, सिद्धों, गन्धर्वों, नागादिकों तथा सम्पूर्ण उपदेवोंको भी शीघ्र वहाँ बुलवाया। समस्त वेदों और आगमोंको, पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, मुनियोंको तथा अप्सराओंसहित समस्त देवियोंको, जो नाना प्रकारकी वस्तुओंसे सम्पन्न थीं, आमन्त्रित किया। इनके सिवा देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और नागोंकी सोलह-सोलह कन्याओंको भी बुलवाया, जिनके हाथोंमें माङ्गलिक वस्तुएँ थीं। मुने ! वीणा, मृदङ्ग आदि नाना प्रकारके वाद्योंको बजवाकर सुन्दर गीतोंद्वारा महान् उत्सव रचाया। सम्पूर्ण ओषधियोंके साथ राज्याभिषेकके योग्य द्रव्य एकत्र किये गये। प्रत्यक्ष तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए पाँच कलश भी मँगवाये गये। इनके सिवा और भी बहुत-सी दिव्य सामग्रियोंको भगवान् शंकरने अपने पार्षदोंद्वारा मँगवाया और वहाँ उच्चस्वरसे वेदमन्त्रोंका घोष करवाया।

देवि ! भगवान् विष्णुकी पूर्ण भक्तिसे महेश्वर देव सदा प्रसन्न रहते थे। इसलिये उन्होंने प्रीतियुक्त हृदयसे श्रीहरिको वैकुण्ठसे बुलवाया और शुभ मुहूर्तमें श्रीहरिको उस श्रेष्ठ सिंहासनपर बिठाकर महादेवजीने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया। उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट बाँधा गया और उनसे मङ्गल-कौतुक कराये गये। यह सब हो जानेके बाद महेश्वरने स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें श्रीहरिका अभिषेक किया और उन्हें अपना वह सारा ऐश्वर्य प्रदान

किया, जो दूसरोंके पास नहीं था। तदनन्तर स्वतन्त्र ईश्वर भक्तवत्सल शम्भुने श्रीहरिका स्तवन किया और अपनी पराधीनता (भक्तपरवशता)को सर्वत्र प्रसिद्ध करते हुए वे लोककर्ता ब्रह्मासे इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—लोकेश ! आजसे मेरी आज्ञाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये। इस बातको सभी सुन रहे हैं। तात ! तुम सम्पूर्ण देवता आदिके साथ इन श्रीहरिको प्रणाम करो और ये वेद मेरी आज्ञासे मेरी ही तरह इन श्रीहरिका वर्णन करें।

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि ! भगवान् विष्णुकी शिवभक्ति देखकर प्रसन्नचित्त हुए वरदायक भक्तवत्सल रुद्रदेवने उपर्युक्त बात कहकर स्वयं ही श्रीगरुडध्वजको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनियों और सिद्ध आदिने भी उस समय श्रीहरिकी वन्दना की। इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने देवताओंके समक्ष श्रीहरिको बड़े-बड़े वर प्रदान किये।

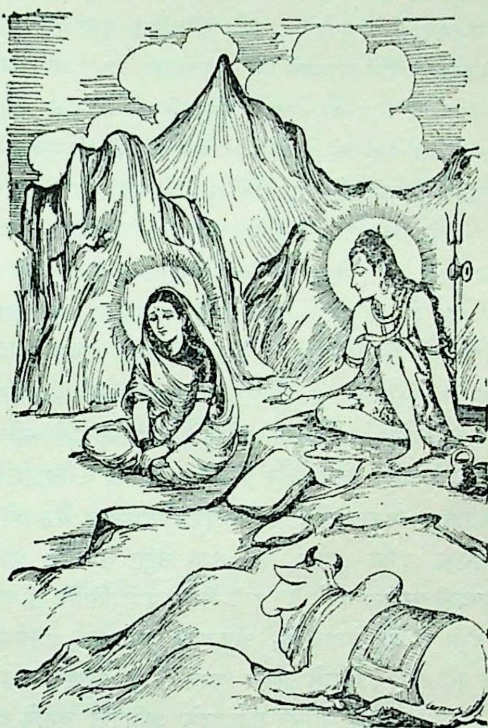
महेश बोले—हरे ! तुम मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, पालक और संहारक होओ। धर्म, अर्थ और कामके दाता तथा दुर्नीति अथवा अन्याय करनेवाले दुष्टोंको दण्ड देनेवाले होओ; महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, जगत्पूज्य जगदीश्वर बने रहो। समराङ्गणमें तुम कहीं भी जीते नहीं जा सकोगे। मुझसे भी तुम कभी पराजित नहीं होओगे। तुम मुझसे मेरी दी हुई तीन प्रकारकी शक्तियाँ ग्रहण करो। एक तो इच्छा आदिकी सिद्धि, दूसरी नाना प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करनेकी शक्ति और तीसरी तीनों लोकोंमें नित्य स्वतन्त्रता। हरे ! जो तुमसे द्वेष करनेवाले हैं, वे निश्चय ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक दण्डनीय होंगे। विष्णो ! मैं तुम्हारे भक्तोंको उत्तम मोक्ष प्रदान करूँगा। तुम इस मायाको भी ग्रहण करो, जिसका निवारण करना देवता आदिके लिये भी कठिन है तथा जिससे मोहित होनेपर यह विश्व जडरूप हो जायगा। हरे ! तुम मेरी बायीं भुजा हो और विधाता दाहिनी भुजा हैं। तुम इन विधाताके भी उत्पादक और पालक होओगे। मेरा हृदयरूप जो रुद्र है, वही मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है। वह रुद्र तुम्हारा और ब्रह्मा आदि देवताओंका भी निश्चय ही पूज्य है। तुम यहाँ रहकर विशेषरूपसे सम्पूर्ण जगत्का पालन करो। नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले विभिन्न अवतारोंद्वारा सदा सबकी रक्षा करते रहो। मेरे चिन्मय धाममें तुम्हारा जो यह परम वैभवशाली और अत्यन्त उज्ज्वल स्थान है, वह गोलोक नामसे विख्यात होगा। हरे ! भूतलपर जो तुम्हारे अवतार होंगे, वे सबके रक्षक और मेरे भक्त होंगे। मैं उनका अवश्य दर्शन करूँगा। वे मेरे वरसे सदा प्रसन्न रहेंगे।

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि ! इस प्रकार श्रीहरिको अपना अखण्ड ऐश्वर्य सौंपकर उमावल्लभ भगवान् हर स्वयं कैलास पर्वतपर रहते हुए अपने पार्षदोंके साथ स्वच्छन्द क्रीडा करते हैं। तभीसे भगवान् लक्ष्मीपति वहाँ गोपवेष धारण करके आये और गोप-गोपी तथा गौओंके अधिपति होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ रहने लगे। वे श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त हो समस्त जगत्की रक्षा करने लगे। वे शिवकी आज्ञासे नाना प्रकारके अवतार ग्रहण करके जगत्का पालन करते हैं। इस समय वे ही श्रीहरि भगवान् शंकरकी आज्ञासे चार भाइयोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। उन चार भाइयोंमें सबसे बड़ा मैं राम हूँ, दूसरे भरत हैं, तीसरे लक्ष्मण हैं और चौथे भाई शत्रुघ्न हैं। देवि ! मैं पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें आया था। यहाँ किसी निशाचरने मेरी पत्नी सीताको हर लिया है और मैं विरही होकर भाईके साथ इस वनमें अपनी प्रियाका अन्वेषण करता हूँ। जब आपका दर्शन प्राप्त हो गया, तब सर्वथा मेरा कुशल-मङ्गल ही होगा। मा सती ! आपकी कृपासे ऐसा होनेमें कोई संदेह नहीं है। देवि ! निश्चय ही आपकी ओरसे मुझे सीताकी प्राप्तिविषयक वर प्राप्त होगा। आपके अनुग्रहसे उस दुःख देनेवाले पापी राक्षसको मारकर मैं सीताको अवश्य प्राप्त करूँगा। आज मेरा महान् सौभाग्य है जो आप दोनोंने मुझपर कृपा की। जिसपर आप दोनों दयालु हो जायँ, वह पुरुष धन्य और श्रेष्ठ है।

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर कल्याणमयी सती देवीको प्रणाम करके रघुकुलशिरोमणि श्रीराम उनकी आज्ञासे उस वनमें विचरने लगे। पवित्र हृदयवाले श्रीरामकी यह बात सुनकर सती मन-ही-मन शिवभक्तिपरायण रघुनाथजीकी प्रशंसा करती हुई बहुत प्रसन्न हुईं। पर अपने कर्मको याद करके उनके मनमें बड़ा शोक हुआ। उनकी अङ्गकान्ति फीकी पड़ गयी। वे उदास होकर शिवजीके पास लौटीं। मार्गमें जाती हुई देवी सती बारंबार चिन्ता करने लगीं कि मैंने भगवान् शिवकी बात नहीं मानी और श्रीरामके प्रति कुत्सित बुद्धि कर ली। अब शंकरजीके पास जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगी। इस प्रकार बारंबार विचार करके उन्हें उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

शिवके समीप जाकर सतीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। उनके मुखपर विषाद छा रहा था। वे शोकसे व्याकुल और निस्तेज हो गयी थीं। सतीको दुखी देख भगवान् हरने उनका कुशल-समाचार पूछा और प्रेमपूर्वक कहा—'तुमने किस प्रकार परीक्षा ली?' उनकी यह बात सुनकर सती मस्तक झुकाये उनके पास खड़ी हो गयीं। उनका मन शोक और विषादमें डूबा हुआ था। भगवान् महेश्वरने ध्यान लगाकर सतीका सारा चरित्र जान लिया और उन्हें मनसे त्याग दिया। वेदधर्मका प्रतिपालन करनेवाले परमेश्वर शिवने अपनी पहलेकी की हुई प्रतिज्ञाको नष्ट नहीं होने दिया। सतीका मनसे त्याग करके वे अपने निवासभूत कैलास पर्वतपर चले गये। मार्गमें महेश्वर और सतीको सुनाते हुए आकाशवाणी बोली—'परमेश्वर! तुम धन्य हो और तुम्हारी यह प्रतिज्ञा भी धन्य है। तीनों लोकोंमें तुम्हारे-जैसा महायोगी और महाप्रभु दूसरा कोई नहीं है।'

वह आकाशवाणी सुनकर देवी सतीकी कान्ति फीकी पड़ गयी। उन्होंने भगवान् शिवसे पूछा—'नाथ! मेरे परमेश्वर! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? बताइये।' सतीके इस प्रकार पूछनेपर भी उनका हित चाहनेवाले प्रभुने पहले अपने विवाहके विषयमें भगवान् विष्णुके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे नहीं बताया। मुने! उस समय सतीने अपने प्राणवल्लभ पति भगवान् शिवका ध्यान करके उस समस्त कारणको जान लिया, जिससे उनके प्रियतमने उन्हें त्याग दिया था। 'शम्भुने मेरा त्याग कर दिया' इस बातको जानकर दक्षकन्या सती शीघ्र ही अत्यन्त शोकमें डूब गयीं और बारंबार सिसकने लगीं। सतीके मनोभावको जानकर शिवने उनके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे गुप्त ही रक्खा और वे दूसरी-दूसरी बहुत-सी कथाएँ कहने लगे। नाना प्रकारकी कथाएँ कहते हुए वे सतीके साथ कैलासपर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसनपर स्थित हो चित्तवृत्तियोंके निरोधपूर्वक समाधि लगा अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे। सती मनमें अत्यन्त विषाद ले अपने उस धाममें रहने लगीं। मुने! शिवा और शिवके उस चरित्रको कोई नहीं जानता था। महामुने! स्वेच्छासे शरीर धारण करके लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले उन दोनों प्रभुओंका इस प्रकार वहाँ रहते हुए दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् उत्तम लीला करनेवाले महादेवजीने ध्यान तोड़ा। यह जानकर जगदम्बा सती वहाँ आयीं और उन्होंने व्यथित हृदयसे शिवके चरणोंमें प्रणाम किया। उदारचेता शम्भुने उन्हें अपने सामने बैठनेके लिये आसन



दिया और बड़े प्रेमसे बहुत-सी मनोरम कथाएँ कहीं। उन्होंने वैसी ही लीला करके सतीके शोकको तत्काल दूर कर दिया। वे पूर्ववत् सुखी हो गयीं। फिर भी शिवने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ा। तात! परमेश्वर शिवके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। मुने! मुनिलोग शिवा और शिवकी ऐसी ही कथा कहते हैं। कुछ मनुष्य उन दोनोंमें वियोग मानते हैं। परंतु उनमें वियोग कैसे सम्भव है। शिवा और शिवके चरित्रको वास्तविकरूपसे कौन जानता है। वे दोनों सदा अपनी इच्छासे खेलते और भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हैं। सती और शिव वाणी और अर्थकी भाँति एक दूसरेसे नित्य संयुक्त हैं। उन दोनोंमें वियोग होना असम्भव है। उनकी इच्छासे ही उनमें लीला-वियोग हो सकता है*।

(अध्याय २५)

* वागर्थाविव सम्पृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ। तयोर्वियोगोऽसम्भाव्यः सम्भवेदिच्छया तयोः॥

(शि० पु० रु० सं० स० ख० २५। ६९)

प्रयागमें समस्त महात्मा मुनियोंद्वारा किये गये यज्ञमें दक्षका भगवान् शिवको तिरस्कारपूर्वक शाप देना तथा नन्दीद्वारा ब्राह्मणकुलको शाप-प्रदान, भगवान् शिवका नन्दीको शान्त करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पूर्वकालमें समस्त महात्मा मुनि प्रयागमें एकत्र हुए थे। वहाँ सम्मिलित हुए उन सब महात्माओंका विधि-विधानसे एक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। उस यज्ञमें सनकादि सिद्धगण, देवर्षि, प्रजापति, देवता तथा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी भी पधारे थे। मैं भी मूर्तिमान् महातेजस्वी निगमों और आगमोंसे युक्त हो सपरिवार वहाँ गया था। अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ वहाँ उनका विचित्र समाज जुटा था। नाना शास्त्रोंके सम्बन्धमें ज्ञानचर्चा एवं वाद-विवाद हो रहे थे। मुने ! उसी अवसरपर सती तथा पार्षदोंके साथ त्रिलोकहितकारी, सृष्टिकर्ता एवं सबके स्वामी भगवान् रुद्र भी वहाँ आ पहुँचे। भगवान् शिवको आया देख सम्पूर्ण देवताओं, सिद्धों तथा मुनियोंने और मैंने भी भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। फिर शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक यथास्थान बैठ गये। भगवान्का दर्शन पाकर सब लोग संतुष्ट थे और अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। इसी बीचमें प्रजापतियोंके भी पति प्रभु दक्ष, जो बड़े तेजस्वी थे, अकस्मात् घूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। वे मुझे प्रणाम करके मेरी आज्ञा ले वहाँ बैठे। दक्ष उन दिनों समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति बनाये गये थे, अतएव सबके द्वारा सम्माननीय थे। परंतु अपने इस गौरवपूर्ण पदको लेकर उनके मनमें बड़ा अहंकार था; क्योंकि वे तत्त्वज्ञानसे शून्य थे। उस समय समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामके द्वारा दोनों हाथ जोड़कर उत्तम तेजस्वी दक्षका आदर-सत्कार किया। परंतु जो नाना प्रकारके लीला-विहार करनेवाले, सबके स्वामी और उत्कृष्ट लीलाकारी स्वतन्त्र परमेश्वर हैं, उन महेश्वरने उस समय दक्षको मस्तक नहीं झुकाया। वे अपने आसनपर बैठे ही रह गये (खड़े होकर दक्षका स्वागत नहीं किया)। महादेवजीको वहाँ मस्तक झुकाते न देख मेरे पुत्र प्रजापति दक्ष मन-ही-मन अप्रसन्न हो गये। उन्हें रुद्रपर सहसा क्रोध हो आया, वे ज्ञानशून्य तथा महान् अहंकारी होनेके कारण महाप्रभु रुद्रको क्रूर दृष्टिसे देखकर सबको सुनाते हुए उच्चस्वरसे कहने लगे।

दक्षने कहा—ये सब देवता, असुर, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा ऋषि मुझे विशेषरूपसे मस्तक झुकाते हैं। परंतु वह जो प्रेतों और पिशाचोंसे घिरा हुआ महामनस्वी बनकर बैठा है, वह दुष्ट मनुष्यके समान क्यों मुझे प्रणाम नहीं करता ? श्मशानमें निवास करनेवाला यह निर्लज्ज जो मुझे इस समय प्रणाम नहीं करता, इसका क्या कारण है ? इसके वेदोक्त कर्म लुप्त हो गये हैं। यह भूतों और पिशाचोंसे सेवित हो मतवाला बना फिरता है और शास्त्रीय विधिकी अवहेलना करके नीतिमार्गको सदा कलङ्कित किया करता है। इसके साथ रहनेवाले या इसका अनुसरण करनेवाले लोग पाखण्डी, दुष्ट, पापाचारी तथा ब्राह्मणको देखकर उद्दण्डतापूर्वक उसकी निन्दा करनेवाले होते हैं। यह स्वयं ही स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला तथा रतिकर्ममें ही दक्ष है। अतः मैं इसे शाप देनेको उद्यत हुआ हूँ। यह रुद्र चारों वर्णोंसे पृथक् और कुरूप है। इसे यज्ञसे बहिष्कृत कर दिया जाय। यह श्मशानमें निवास करनेवाला तथा उत्तम कुल और जन्मसे हीन है । इसलिये देवताओंके साथ यह यज्ञमें भाग न पाये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! दक्षकी कही हुई यह बात सुनकर भृगु आदि बहुत-से महर्षि रुद्रदेवको दुष्ट मानकर देवताओंके साथ उनकी निन्दा करने लगे।

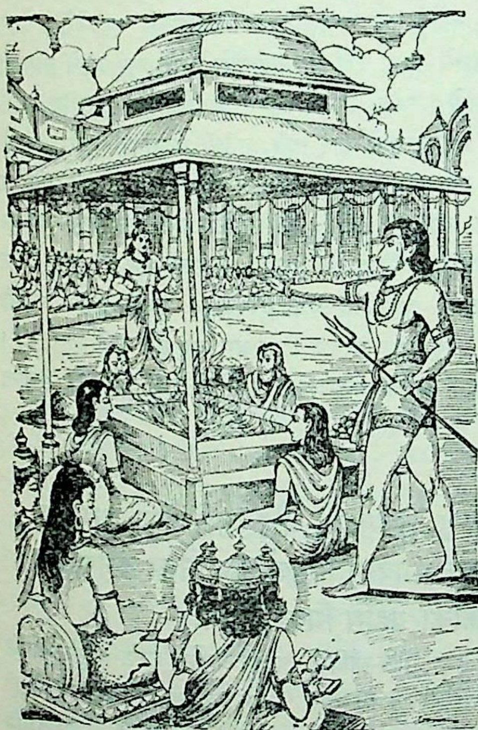
दक्षकी बात सुनकर नन्दीको बड़ा रोष हुआ। उनके नेत्र चञ्चल हो उठे और वे दक्षको शाप देनेके विचारसे तुरंत इस प्रकार बोले।

नन्दीश्वरने कहा—अरे रे महामूढ़ ! दुष्टबुद्धि शठ दक्ष ! तूने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बहिष्कृत क्यों कर दिया ? जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, उन्हीं महादेवजीको तूने शाप कैसे दे दिया ? दुर्बुद्धि दक्ष ! तूने ब्राह्मणजातिकी चपलतासे प्रेरित हो इन रुद्रदेवको व्यर्थ ही शाप दे डाला है। महाप्रभु रुद्र सर्वथा निर्दोष हैं, तथापि तूने व्यर्थ ही इनका उपहास किया है। ब्राह्मणाधम ! जिन्होंने इस जगत्की सृष्टि की, जो इसका पालन करते हैं और अन्तमें जिनके द्वारा इसका संहार होगा, उन्हीं इन महेश्वर-रूपको तूने शाप कैसे दे दिया ?

नन्दीके इस प्रकार फटकारनेपर प्रजापति दक्ष रोषसे आग-बबूला हो गये और उन्हें शाप देते हुए बोले—'अरे रुद्रगणो! तुम सब लोग वेदसे बहिष्कृत हो जाओ। वैदिक मार्गसे

भ्रष्ट तथा महर्षियोंद्वारा परित्यक्त हो पाखण्डवादमें लग जाओ और शिष्टाचारसे दूर रहो। सिरपर जटा और शरीरमें भस्म एवं हड्डियोंके आभूषण धारण करके मद्यपानमें आसक्त रहो।'

जब दक्षने शिवके पार्षदोंको इस प्रकार शाप दे दिया, तब उस शापको सुनकर शिवके प्रियभक्त नन्दी अत्यन्त रोषके वशीभूत हो गये। शिलादपुत्र नन्दी भगवान् शिवके प्रिय पार्षद और तेजस्वी हैं। वे गर्वसे भरे हुए महादुष्ट दक्षको तत्काल इस प्रकार उत्तर देने लगे।

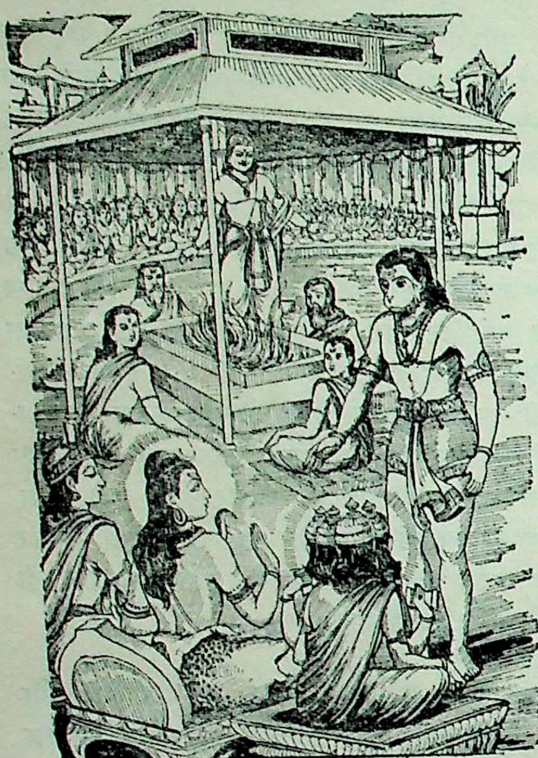


नन्दीश्वर बोले—अरे शठ! दुर्बुद्धि दक्ष! तुझे शिवके तत्त्वका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। अतः तूने शिवके पार्षदोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। अहंकारी दक्ष! जिनके चित्तमें दुष्टता भरी है, उन भृगु आदिने भी ब्राह्मणत्वके अभिमानमें आकर महाप्रभु महेश्वरका उपहास किया है। अतः यहाँ जो भगवान् रुद्रसे विमुख तुझ-जैसे दुष्ट ब्राह्मण विद्यमान हैं, उनको मैं रुद्रतेजके प्रभावसे ही शाप दे रहा हूँ। तुझ-जैसे ब्राह्मण कर्मफलके प्रशंसक वेदवादमें फँसकर वेदके तत्त्वज्ञानसे शून्य हो जायँ। वे ब्राह्मण सदा भोगोंमें तन्मय रहकर स्वर्गको ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ मानते हुए 'स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है' ऐसा कहते रहें तथा क्रोध, लोभ और मदसे युक्त हो निर्लज्ज भिक्षुक बने रहें। कितने ही ब्राह्मण वेदमार्गको सामने रखकर शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले और दरिद्र होंगे। सदा दान लेनेमें ही लगे रहेंगे, दूषित दान ग्रहण करनेके कारण वे सब-के-सब नरकगामी होंगे। दक्ष! उनमेंसे कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस भी होंगे। जो परमेश्वर शिवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह करता है, वह दुष्ट बुद्धिवाला प्रजापति दक्ष तत्त्वज्ञानसे विमुख हो जाय। यह विषय-सुखकी इच्छासे कामनारूपी कपटसे युक्त धर्मवाले गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डका तथा कर्मफलकी प्रशंसा करनेवाले सनातन वेदवादका ही विस्तार करता रहे। इसका आनन्ददायी मुख नष्ट हो जाय। यह आत्मज्ञानको भूलकर पशुके समान हो जाय तथा यह दक्ष कर्मभ्रष्ट हो शीघ्र ही बकरेके मुखसे युक्त हो जाय।

इस प्रकार कुपित हुए नन्दीने जब ब्राह्मणोंको और दक्षने महादेवजीको शाप दिया, तब वहाँ महान् हाहाकार मच गया। नारद! मैं वेदोंका प्रतिपादक होनेके कारण शिवतत्त्वको जानता हूँ। इसलिये दक्षका वह शाप सुनकर मैंने बारंबार उसकी तथा भृगु आदि ब्राह्मणोंकी भी निन्दा की। सदाशिव महादेवजी भी नन्दीकी वह बात सुनकर हँसते हुए-से मधुर वाणीमें बोले—वे नन्दीको समझाने लगे।

सदाशिवने कहा—नन्दिन्! मेरी बात सुनो। तुम तो परम ज्ञानी हो। तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुमने भ्रमसे यह समझकर कि मुझे शाप दिया गया, व्यर्थ ही ब्राह्मणकुलको शाप दे डाला। वास्तवमें मुझे किसीका शाप छू ही नहीं सकता; अतः तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिये। वेद मन्त्राक्षरमय और सूक्तमय है। उसके प्रत्येक सूक्तमें समस्त देहधारियोंके आत्मा (परमात्मा) प्रतिष्ठित हैं। अतः उन मन्त्रोंके ज्ञाता नित्य आत्मवेत्ता हैं। इसलिये तुम रोषवश उन्हें शाप न दो। किसीकी बुद्धि कितनी ही दूषित क्यों न हो, वह कभी वेदोंको शाप नहीं दे सकता। इस समय मुझे शाप नहीं मिला है, इस बातको तुम्हें ठीक-ठीक समझना चाहिये। महामते! तुम सनकादि सिद्धोंकी

भी तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेवाले हो। अतः शान्त हो जाओ।



मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञकर्म हूँ, यज्ञोंके अङ्गभूत समस्त उपकरण भी मैं ही हूँ। यज्ञकी आत्मा मैं हूँ। यज्ञपरायण यजमान भी मैं हूँ और यज्ञसे बहिष्कृत भी मैं ही हूँ। यह कौन, तुम कौन और ये कौन? वास्तवमें सब मैं ही हूँ। तुम अपनी बुद्धिसे इस बातका विचार करो। तुमने ब्राह्मणोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। महामते नन्दिन्! तुम तत्त्वज्ञानके द्वारा प्रपञ्च-रचनाका बाध करके आत्मनिष्ठ ज्ञानी एवं क्रोध आदिसे शून्य हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् शम्भुके इस प्रकार समझानेपर नन्दिकेश्वर विवेकपरायण हो क्रोधरहित एवं शान्त हो गये। भगवान् शिव भी अपने प्राणप्रिय पार्षद नन्दीको शीघ्र ही तत्त्वका बोध कराकर प्रमथगणोंके साथ वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चल दिये। इधर रोषावेशसे युक्त दक्ष भी ब्राह्मणोंसे घिरे हुए अपने स्थानको लौट गये। परंतु उनका चित्त शिवद्रोहमें ही तत्पर था। उस समय रुद्रको शाप दिये जानेकी घटनाका स्मरण करके दक्ष सदा महान् रोषसे भरे रहते थे। उनकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी। वे शिवके प्रति श्रद्धाको त्यागकर शिवपूजकोंकी निन्दा करने लगे। तात नारद! इस प्रकार परमात्मा शम्भुके साथ दुर्व्यवहार करके दक्षने अपनी जिस दुष्टबुद्धिका परिचय दिया था, वह मैंने तुम्हें बता दी। अब तुम उनकी पराकाष्ठाको पहुँची हुई दुर्बुद्धिका वृत्तान्त सुनो, मैं बता रहा हूँ। (अध्याय २६)

दक्षके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन, उसमें ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं और ऋषियोंका आगमन, दक्षद्वारा सबका सत्कार, यज्ञका आरम्भ, दधीचद्वारा भगवान् शिवको बुलानेका अनुरोध और दक्षके विरोध करनेपर शिव-भक्तोंका वहाँसे निकल जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! एक समय दक्षने एक बहुत बड़े यज्ञका आरम्भ किया। उस यज्ञकी दीक्षा लेकर उन्होंने उस समय समस्त देवर्षियों, महर्षियों तथा देवताओंको बुलाया। वे सभी उस यज्ञमें पधारे। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भारद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुप, सित, सुमन्तु, त्रिक, कङ्क और वैशम्पायन—ये तथा दूसरे बहुसंख्यक मुनि अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ ले मेरे पुत्र दक्षके यज्ञमें हर्षपूर्वक सम्मिलित हुए थे। इनके सिवा समस्त देवगण, महान् अभ्युदयशाली लोकपालगण और सभी उपदेवता अपनी उपकारक सैन्य-शक्तिके साथ वहाँ पधारे थे। दक्षने प्रार्थना करके सदल-बल मुझ विश्वस्रष्टा ब्रह्माको भी सत्यलोकसे बुलवाया था। इसी तरह भाँति-भाँतिसे सादर प्रार्थना करके वैकुण्ठलोकसे भगवान् विष्णु भी उस यज्ञमें बुलाये गये थे। शिवद्रोही दुरात्मा दक्षने उन सबका बड़ा सत्कार किया। विश्वकर्माने अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल और बहुमूल्य दिव्य भवन बनाये थे। दक्षने वे ही भवन समागत अतिथियोंको ठहरनेके लिये दिये। सभी लोग सम्मानित हो उन सम्पूर्ण भवनोंमें यथायोग्य स्थान पाकर ठहरे हुए थे। दक्षका वह महायज्ञ उस समय कनखल नामक तीर्थमें हो रहा था। उसमें दक्षने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज बनाया। सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु उसके अधिष्ठाता थे। मैं वेदत्रयीकी विधिको दिखाने या बतानेवाला ब्रह्मा बना था। इसी तरह सम्पूर्ण दिक्पाल अपने आयुधों और परिवारोंके

साथ द्वारपाल एवं रक्षक बने थे और सदा कौतूहल पैदा करते थे। स्वयं यज्ञ सुन्दर रूप धारण करके दक्षके उस यज्ञ-मण्डपमें उपस्थित था। महामुनियोंमें श्रेष्ठ सभी महर्षि स्वयं वेदोंके धारण करनेवाले हुए थे। अग्निने भी उस यज्ञ-महोत्सवमें शीघ्र ही हविष्य ग्रहण करनेके लिये अपने सहस्रों रूप प्रकट किये थे। वहाँ अट्ठासी हजार ऋत्विज एक साथ हवन करते थे। चौंसठ हजार देवर्षि उद्गाता थे। अध्वर्यु एवं होता भी उतने ही थे। नारद आदि देवर्षि और सप्तर्षि पृथक्-पृथक् गाथा-गान कर रहे थे। दक्षने अपने उस महायज्ञमें गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, बारह आदित्यों, उनके गणों, यक्षों तथा नागलोकमें विचरनेवाले समस्त नागोंका भी बहुत बड़ी संख्यामें वरण किया था। ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवर्षियोंके समुदाय तथा बहुसंख्यक नरेश भी उसमें आमन्त्रित थे, जो अपने मित्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंके साथ आये थे। यजमान दक्षने उस यज्ञमें वसु आदि समस्त गणदेवताओंका भी वरण किया था। कौतुक और मङ्गलाचार करके जब दक्षने यज्ञकी दीक्षा ली तथा जब उनके लिये बारंबार स्वस्तिवाचन किया जाने लगा, तब वे अपनी पत्नीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे।

इतना सब करनेपर भी दुरात्मा दक्षने उस यज्ञमें भगवान् शम्भुको नहीं आमन्त्रित किया। उनकी दृष्टिमें कपालधारी होनेके कारण वे निश्चय ही यज्ञमें भाग पानेके योग्य नहीं थे। सती प्रजापति दक्षकी प्रिय पुत्री थीं, तो भी कपालीकी पत्नी होनेके कारण दोषदर्शी दक्षने उन्हें अपने यज्ञमें नहीं बुलाया। इस प्रकार जब दक्षका वह यज्ञ-महोत्सव आरम्भ हुआ और यज्ञ-मण्डपमें आये हुए सब ऋत्विज अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो गये, उस समय वहाँ भगवान् शंकरको उपस्थित न देख शिवभक्त दधीचका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और वे यों बोले।

दधीचने कहा—मुख्य-मुख्य देवताओ तथा महर्षियो! आप सब लोग प्रशंसापूर्वक मेरी बात सुनें। इस यज्ञ-महोत्सवमें भगवान् शंकर नहीं आये हैं, इसका क्या कारण है? यद्यपि ये देवेश्वर, बड़े-बड़े मुनि और लोकपाल यहाँ पधारे हैं, तथापि उन महात्मा पिनाकपाणि शंकरके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् कहते हैं कि मङ्गलमय भगवान् शिवकी कृपादृष्टिसे ही समस्त मङ्गल-कार्य सम्पन्न होते हैं। जिनका ऐसा प्रभाव है, वे पुराण-पुरुष, वृषभध्वज, परमेश्वर श्रीनीलकण्ठ यहाँ क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं? दक्ष! जिनके सम्पर्कमें आनेपर अथवा जिनके स्वीकार कर लेनेपर अमङ्गल भी मङ्गल हो जाते हैं तथा जिनके पंद्रह नेत्रोंसे देखे जानेपर बड़े-बड़े नगर तत्काल मङ्गलमय हो जाते हैं, उनका इस यज्ञमें पदार्पण होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये तुम्हें स्वयं ही परमेश्वर शिवको यहाँ शीघ्र बुलाना चाहिये। अथवा ब्रह्मा, प्रभावशाली भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, लोकपालगणों, ब्राह्मणों और सिद्धोंकी सहायतासे सर्वथा प्रयत्न करके इस समय यज्ञकी पूर्तिके लिये तुम्हें भगवान् शंकरको यहाँ ले आना चाहिये। आप सब लोग उस स्थानपर जायँ, जहाँ महेश्वर देव विराजमान हैं। वहाँसे दक्षनन्दिनी सतीके साथ भगवान् शम्भुको यहाँ तुरंत ले आयें। देवेश्वरो! जगदम्बासहित वे परमात्मा शिव यदि यहाँ आ गये तो उनसे सब कुछ पवित्र हो जायगा; उनके स्मरणसे, उनके नाम लेनेसे सारा कार्य पुण्यमय बन जाता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके भगवान् वृषभध्वजको यहाँ ले आना चाहिये। भगवान् शंकरके यहाँ पदार्पण करते ही यह यज्ञ पवित्र हो जायगा; अन्यथा यह पूरा नहीं हो सकेगा—यह मैं सत्य कहता हूँ।

दधीचका यह वचन सुनकर दुष्ट बुद्धिवाले मूढ़ दक्षने हँसते हुए-से रोषपूर्वक कहा—'भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं, जिनमें सनातन धर्म प्रतिष्ठित है। जब इनको मैंने सादर बुला लिया है तब इस यज्ञकर्ममें क्या कमी हो सकती है? जिनमें वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके समस्त कर्म प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ आ ही गये हैं। इनके सिवा सत्यलोकसे लोकपितामह ब्रह्मा वेदों, उपनिषदों और विविध आगमोंके साथ यहाँ पधारे हैं। देवगणोंके साथ स्वयं देवराज इन्द्रका भी शुभागमन हुआ है तथा आप-जैसे निष्पाप महर्षि भी यहाँ आ गये हैं। जो-जो महर्षि यज्ञमें सम्मिलित होनेके योग्य, शान्त और सुपात्र हैं, वेद और वेदार्थके तत्त्वको जाननेवाले हैं और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हैं, वे सब और स्वयं आप भी जब यहाँ पदार्पण कर चुके हैं, तब हमें यहाँ रुद्रसे क्या प्रयोजन है? विप्रवर! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे ही अपनी कन्या रुद्रको ब्याह दी थी। वैसे मैं जानता हूँ, हर कुलीन नहीं हैं। उनके न माता हैं न पिता। वे भूतों, प्रेतों और पिशाचोंके स्वामी हैं। अकेले रहते हैं। उनका अतिक्रमण करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वे आत्मप्रशंसक, मूढ़, जड, मौनी और ईर्ष्यालु हैं। इस यज्ञकर्ममें बुलाये जानेयोग्य नहीं हैं। इसलिये मैंने उनको

यहाँ नहीं बुलाया है। अतः दधीचजी ! आपको फिर कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि आप सब लोग मिलकर मेरे इस महान् यज्ञको सफल बनायें।'

दक्षकी यह बात सुनकर दधीचने समस्त देवताओं और मुनियोंके सुनते हुए यह सारगर्भित बात कही।

दधीच बोले—दक्ष ! उन भगवान् शिवके बिना यह महान् यज्ञ अयज्ञ हो गया—अब यह यज्ञ कहलानेयोग्य ही नहीं रह गया। विशेषतः इस यज्ञमें तुम्हारा विनाश हो जायगा।

ऐसा कहकर दधीच दक्षकी यज्ञशालासे अकेले ही निकल पड़े और तुरंत अपने आश्रमको चल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त तथा शिवके मतका अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षको वैसा ही शाप देकर तुरंत वहाँसे निकले और अपने आश्रमोंको चले गये। मुनिवर दधीच तथा दूसरे ऋषियोंके उस यज्ञमण्डपसे निकल जानेपर दुष्टबुद्धि शिवद्रोही दक्षने उन मुनियोंका उपहास करते हुए कहा।

दक्ष बोले—जिन्हें शिव ही प्रिय हैं, वे नाममात्रके ब्राह्मण दधीच चले गये। उन्हींके समान जो दूसरे थे, वे भी मेरी यज्ञशालासे निकल गये। यह बड़ी शुभ बात हुई। मुझे सदा यही अभीष्ट है। देवेश ! देवताओ और मुनियो ! मैं सत्य कहता हूँ—जिनके चित्तकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी है, जो मन्दबुद्धि हैं और मिथ्यावादमें लगे हुए हैं, ऐसे वेद-बहिष्कृत दुराचारी लोगोंको यज्ञकर्ममें त्याग ही देना चाहिये। विष्णु आदि आप सब देवता और ब्राह्मण वेदवादी हैं। अतः मेरे इस यज्ञको शीघ्र ही सफल बनावें।

ब्रह्माजी कहते हैं—दक्षकी यह बात सुनकर शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त देवर्षि उस यज्ञमें देवताओंका पूजन और हवन करने लगे। मुनीश्वर नारद ! इस प्रकार उस यज्ञको जो शाप मिला, उसका वर्णन किया गया। अब यज्ञके विध्वंसकी घटनाको बताया जाता है, आदरपूर्वक सुनो।

(अध्याय २७)

दक्ष-यज्ञका समाचार पा सतीका शिवसे वहाँ चलनेके लिये अनुरोध, दक्षके शिवद्रोहको जानकर भगवान् शिवकी आज्ञासे देवी सतीका पिताके यज्ञमण्डपकी ओर शिवगणोंके साथ प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब देवर्षिगण बड़े उत्साह और हर्षके साथ दक्षके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्ष-कन्या देवी सती गन्धमादन पर्वतपर चँदोवेसे युक्त धारागृहमें सखियोंसे घिरी हुई भाँति-भाँतिकी उत्तम क्रीडाएँ कर रही थीं। प्रसन्नतापूर्वक क्रीडामें लगी हुई देवी सतीने उस समय रोहिणीके साथ दक्षयज्ञमें जाते हुए चन्द्रमाको देखा। देखकर वे अपनी हितकारिणी प्राणप्यारी श्रेष्ठ सखी विजयासे बोलीं—'मेरी सखियोंमें श्रेष्ठ प्राणप्रिये विजये ! जल्दी जाकर पूछ तो आ, ये चन्द्रदेव रोहिणीके साथ कहाँ जा रहे हैं ?'

सतीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर विजया तुरंत उनके पास गयी और उसने यथोचित शिष्टाचारके साथ पूछा—'चन्द्रदेव ! आप कहाँ जा रहे हैं ? विजयाका यह प्रश्न सुनकर चन्द्रदेवने अपनी यात्राका उद्देश्य आदरपूर्वक बताया। दक्षके यहाँ होनेवाले यज्ञोत्सव आदिका सारा वृत्तान्त कहा। वह सब सुनकर विजया बड़ी उतावलीके साथ देवीके पास आयी और चन्द्रमाने जो कुछ कहा था, वह सब उसने कह सुनाया। उसे सुनकर कालिका सती देवीको बड़ा विस्मय हुआ। अपने यहाँ सूचना न मिलनेका क्या कारण है, यह बहुत सोचने-विचारनेपर भी उनकी समझमें नहीं आया। तब उन्होंने पार्षदोंसे घिरे अपने स्वामी भगवान् शिवके पास आकर भगवान् शंकरसे पूछा।

सती बोलीं—प्रभो ! मैंने सुना है कि मेरे पिताजीके यहाँ कोई बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। उसमें बहुत बड़ा उत्सव होगा। उसमें सब देवर्षि एकत्र हो रहे हैं। देवदेवेश्वर ! पिताजीके उस महान् यज्ञमें चलनेकी रुचि आपको क्यों नहीं हो रही है ? इस विषयमें जो बात हो, वह सब बताइये। महादेव ! सुहृदोंका यह धर्म है कि वे सुहृदोंके साथ मिलें-जुलें। यह मिलन उनके महान् प्रेमको बढ़ानेवाला होता है। अतः प्रभो ! मेरे स्वामी ! आप मेरी प्रार्थना मानकर सर्वथा प्रयत्न करके मेरे साथ पिताजीकी यज्ञशालामें आज ही चलिये !

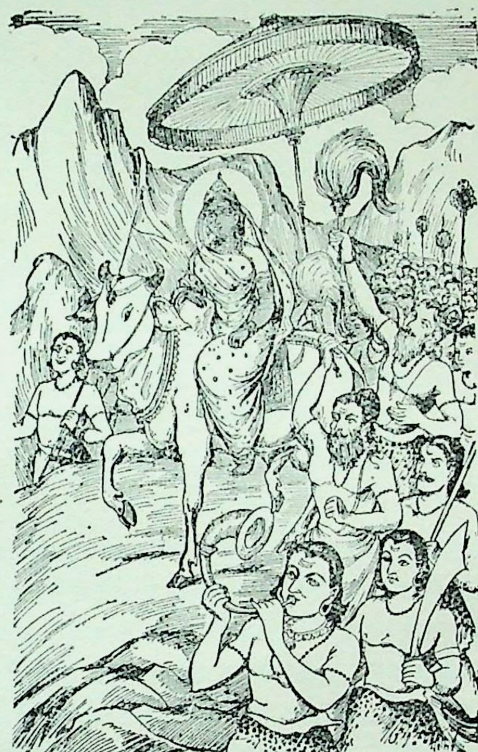
सतीकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वरदेव, जिनका हृदय दक्षके वाग्बाणोंसे घायल हो चुका था, मधुर वाणीमें बोले—'देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं। जो प्रमुख देवता और ऋषि अभिमानी, मूढ़ और ज्ञानशून्य हैं, वे ही सब तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हैं। जो लोग बिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टदायक है। अतः प्रिये ! तुमको और मुझको तो विशेषरूपसे दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये (क्योंकि वहाँ हमें बुलाया नहीं गया है)। यह मैंने सच्ची बात कही है।'

महात्मा महेश्वरके ऐसा कहनेपर सती रोषपूर्वक बोलीं—शम्भो ! आप सबके ईश्वर हैं। जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे दुष्ट पिताने इस समय आमन्त्रित नहीं किया है। प्रभो ! उस दुरात्माका अभिप्राय क्या है, वह सब मैं जानना चाहती हूँ। साथ ही वहाँ आये हुए सम्पूर्ण दुरात्मा देवर्षियोंके मनोभावका भी मैं पता लगाना चाहती हूँ। अतः प्रभो ! मैं आज ही पिताके यज्ञमें जाती हूँ। नाथ ! महेश्वर ! आप मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दें।

देवी सतीके ऐसा कहनेपर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सृष्टिकर्ता एवं कल्याणस्वरूप साक्षात् भगवान् रुद्र उनसे इस प्रकार बोले।

शिवने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि ! यदि इस प्रकार तुम्हारी रुचि वहाँ अवश्य जानेके लिये हो गयी है तो मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र अपने पिताके यज्ञमें जाओ। यह नन्दी वृषभ सुसज्जित है, तुम एक महारानीके अनुरूप राजोपचार साथ ले सादर इसपर सवार हो बहुसंख्यक प्रमथगणोंके साथ यात्रा करो। प्रिये ! इस विभूषित वृषभपर आरूढ होओ।

रुद्रके इस प्रकार आदेश देनेपर सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत सती देवी सब साधनोंसे युक्त हो पिताके घरकी ओर चलीं। परमात्मा शिवने उन्हें सुन्दर वस्त्र,



आभूषण तथा परम उज्ज्वल छत्र, चामर आदि महाराजोचित उपचार दिये। भगवान् शिवकी आज्ञासे साठ हजार रुद्रगण बड़ी प्रसन्नता और महान् उत्साहके साथ कौतूहलपूर्वक सतीके साथ गये। उस समय वहाँ यज्ञके लिये यात्रा करते समय सब ओर महान् उत्सव होने लगा। महादेवजीके गणोंने शिवप्रिया सतीके लिये बड़ा भारी उत्सव रचाया। वे सभी गण कौतूहलपूर्ण कार्य करने तथा सती और शिवके यशको गाने लगे। शिवके प्रिय और महान् वीर प्रमथगण प्रसन्नतापूर्वक उछलते-कूदते चल रहे थे। जगदम्बाके यात्राकालमें सब प्रकारसे बड़ी भारी शोभा हो रही थी। उस समय जो सुखद जय-जयकार आदिका शब्द प्रकट हुआ, उससे तीनों लोक गूँज उठे।

(अध्याय २८)

यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर सतीके रोषपूर्ण वचन, दक्षद्वारा शिवकी निन्दा सुन दक्ष तथा देवताओंको धिक्कार-फटकारकर सतीद्वारा अपने प्राण-त्यागका निश्चय

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! दक्षकन्या सती उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह महान् प्रकाशसे युक्त यज्ञ हो रहा था। वहाँ देवता, असुर और मुनीन्द्र आदिके द्वारा कौतूहलपूर्ण कार्य हो रहे थे। सतीने वहाँ अपने पिताके भवनको नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक वस्तुओंसे सम्पन्न, उत्तम प्रभासे परिपूर्ण, मनोहर तथा देवताओं और ऋषियोंके समुदायसे भरा हुआ देखा। देवी सती भवनके

द्वारपर जाकर खड़ी हुईं और अपने वाहन नन्दीसे उतरकर अकेली ही शीघ्रतापूर्वक यज्ञशालाके भीतर चली गयीं। सतीको आयी देख उनकी यशस्विनी माता असिक्नी (वीरिणी) ने और बहिनोंने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। परंतु दक्षने उन्हें देखकर भी कुछ आदर नहीं किया तथा उन्हींके भयसे शिवकी मायासे मोहित हुए दूसरे लोग भी उनके प्रति आदरका भाव न दिखा सके। मुने! सब लोगोंके द्वारा तिरस्कार प्राप्त होनेसे सती देवीको बड़ा विस्मय हुआ, तो भी उन्होंने अपने माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया। उस यज्ञमें सतीने विष्णु आदि देवताओंके भाग देखे। परंतु शम्भुका भाग उन्हें कहीं नहीं दिखायी दिया। तब सतीने दुस्सह क्रोध प्रकट किया। वे अपमानित होनेपर भी रोषसे भरकर सब लोगोंकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखती और दक्षको जलाती हुई-सी बोलीं।

सतीने कहा—प्रजापते! आपने परम मङ्गलकारी भगवान् शिवको इस यज्ञमें क्यों नहीं बुलाया? जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है, जो स्वयं ही यज्ञ, यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, यज्ञके अङ्ग, यज्ञकी दक्षिणा और यज्ञकर्ता यजमान हैं, उन भगवान् शिवके बिना यज्ञकी सिद्धि कैसे हो सकती है? अहो! जिनके स्मरण करनेमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है, उन्हींके बिना किया हुआ यह सारा यज्ञ अपवित्र हो जायगा। द्रव्य, मन्त्र आदि, हव्य और कव्य—ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् शिवके बिना इस यज्ञका आरम्भ कैसे किया गया? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझकर उनका अनादर किया है? आज आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। इसलिये आप पिता होकर भी मुझे अधम जँच रहे हैं। अरे! ये विष्णु और ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनि अपने प्रभु भगवान् शिवके आये बिना इस यज्ञमें कैसे चले आये?

ऐसा कहनेके बाद शिवस्वरूपा परमेश्वरी सतीने भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवताओंको तथा समस्त ऋषियोंको बड़े कड़े शब्दोंमें फटकारा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार क्रोधसे भरी हुई जगदम्बा सतीने वहाँ व्यथित हृदयसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं। श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, सतीकी बात सुनकर चुप रह गये। अपनी पुत्रीके वैसे वचन सुनकर कुपित हुए दक्षने सतीकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखा और इस प्रकार कहा।

दक्ष बोले—भद्रे! तुम्हारे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम जाओ या ठहरो, यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। तुम यहाँ आयी ही क्यों? समस्त विद्वान् जानते हैं कि तुम्हारे पति शिव अमङ्गलरूप हैं। वे कुलीन भी नहीं हैं। वेदसे बहिष्कृत हैं और भूतों, प्रेतों तथा पिशाचोंके स्वामी हैं। वे बहुत ही कुवेष धारण किये रहते हैं। इसीलिये रुद्रको इस यज्ञके लिये नहीं बुलाया गया है। बेटी! मैं रुद्रको अच्छी तरह जानता हूँ। अतः जान-बूझकर ही मैंने देवर्षियोंकी सभामें उनको आमन्त्रित नहीं किया है। रुद्रको शास्त्रके अर्थका ज्ञान नहीं है। वे उद्दण्ड और दुरात्मा हैं। मुझ मूढ़ पापीने ब्रह्माजीके कहनेसे उनके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया था। अतः शुचिस्मिते! तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ (शान्त) हो जाओ। इस यज्ञमें तुम आ ही गयी तो स्वयं अपना भाग (या दहेज) ग्रहण करो।

दक्षके ऐसा कहनेपर उनकी त्रिभुवनपूजिता पुत्री सतीने शिवकी निन्दा करनेवाले अपने पिताकी ओर जब दृष्टिपात किया, तब उनका रोष और भी बढ़ गया। वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'अब मैं शंकरजीके पास कैसे जाऊँगी? यदि शंकरजीके दर्शनकी इच्छासे वहाँ गयी और उन्होंने यहाँका समाचार पूछा तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी?' तदनन्तर तीनों लोकोंकी जननी सती रोषावेशसे युक्त हो लंबी साँस खींचती हुई अपने दुष्टहृदय पिता दक्षसे बोलीं।

सतीने कहा—जो महादेवजीकी निन्दा करता है अथवा जो उनकी होती हुई निन्दाको सुनता है, वे दोनों तबतक नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं*। अतः तात! मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगी, जलती आगमें प्रवेश कर जाऊँगी। अपने स्वामीका अनादर सुनकर अब मुझे अपने इस जीवनकी रक्षासे क्या प्रयोजन। यदि कोई समर्थ हो तो वह स्वयं विशेष यत्न करके शम्भुकी निन्दा करनेवाले पुरुषकी जीभको बलपूर्वक काट डाले। तभी वह शिव-निन्दा-श्रवणके पापसे शुद्ध हो सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि कुछ कर सकनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दोनों कान बंद करके वहाँसे निकल जाय। इससे वह शुद्ध रहता है—दोषका भागी नहीं होता। ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं।

* यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा।
तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २९। ३८)

इस प्रकार धर्मनीति बतानेपर सतीको अपने आनेके कारण बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने व्यथित चित्तसे भगवान् शंकरके वचनका स्मरण किया। फिर सती अत्यन्त कुपित हो दक्षसे, उन विष्णु आदि समस्त देवताओंसे तथा मुनियोंसे भी निडर होकर बोलीं।

सतीने कहा—तात! तुम भगवान् शंकरके निन्दक हो। इसके लिये तुम्हें पश्चात्ताप होगा। यहाँ महान् दुःख भोगकर अन्तमें तुम्हें यातना भोगनी पड़ेगी। इस लोकमें जिनके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय, उन निर्वैर परमात्मा शिवके प्रतिकूल तुम्हारे सिवा दूसरा कौन चल सकता है। जो दुष्ट लोग हैं, वे सदा ईर्ष्यापूर्वक यदि महापुरुषोंकी निन्दा करें तो उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परंतु जो महात्माओंके चरणोंकी रजसे अपने अज्ञानान्धकारको दूर कर चुके हैं, उन्हें महापुरुषोंकी निन्दा शोभा नहीं देती। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम कभी बातचीतके प्रसङ्गसे मनुष्योंकी वाणीद्वारा एक बार भी उच्चारित हो जाय तो वह सम्पूर्ण पापराशिको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, उन्हीं पवित्र कीर्तिवाले निर्मल शिवसे तुम द्वेष करते हो? आश्चर्य है। वास्तवमें तुम अशिव (अमङ्गल)-रूप हो। महापुरुषोंके मनरूपी मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके सर्वार्थदायक चरणकमलोंका निरन्तर सेवन किया करते हैं, उन्हींसे तुम मूर्खतावश द्रोह करते हो? जिन्हें तुम नामसे शिव और कामसे अशिव बताते हो, उन्हें क्या तुम्हारे सिवा दूसरे विद्वान् नहीं जानते? ब्रह्मा आदि देवता, सनक आदि मुनि तथा अन्य ज्ञानी क्या उनके स्वरूपको नहीं समझते? उदार-बुद्धि भगवान् शिव जटा फैलाये, कपाल धारण किये श्मशानमें भूतोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते तथा भस्म एवं नरमुण्डोंकी माला धारण करते हैं—इस बातको जानकर भी जो मुनि और देवता उनके चरणोंसे गिरे हुए निर्माल्यको बड़े आदरके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं, इसका क्या कारण है? यही कि वे भगवान् शिव ही साक्षात् परमेश्वर हैं। प्रवृत्ति (यज्ञ-यागादि) और निवृत्ति—(शम-दम आदि)—दो प्रकारके कर्म बताये गये हैं। मनीषी पुरुषोंको उनका विचार करना चाहिये। वेदमें विवेचनपूर्वक उनके रागी और विरागी—दो प्रकारके अलग-अलग अधिकारी बताये गये हैं। परस्परविरोधी होनेके कारण उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही कर्ताके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता। भगवान् शंकर तो परब्रह्म परमात्मा हैं, उनमें इन दोनों ही प्रकारके कर्मोंका प्रवेश नहीं है। उन्हें कोई कर्म प्राप्त नहीं होता, उन्हें किसी भी प्रकारके कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है। पिताजी! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है। उसका कोई लक्षण व्यक्त नहीं है, सदा आत्मज्ञानी महापुरुष ही उसका सेवन करते हैं। तुम्हारे पास वह ऐश्वर्य नहीं है। यज्ञशालाओंमें रहकर वहाँके अन्नसे तृप्त होनेवाले कर्मठ लोगोंको जो भोग प्राप्त होता है, उससे वह ऐश्वर्य बहुत दूर है। जो महापुरुषोंकी निन्दा करनेवाला और दुष्ट है, उसके जन्मको धिक्कार है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि उसके सम्बन्धको विशेषरूपसे प्रयत्न करके त्याग दे! जिस समय भगवान् शिव तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे दाक्षायणी कहकर पुकारेंगे, उस समय मेरा मन सहसा अत्यन्त दुखी हो जायगा। इसलिये तुम्हारे अङ्गसे उत्पन्न हुए सदा शवके तुल्य घृणित इस शरीरको इस समय मैं निश्चय ही त्याग दूँगी और ऐसा करके सुखी हो जाऊँगी। हे देवताओ और मुनियो! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। तुम्हारे हृदयमें दुष्टता आ गयी है। तुमलोगोंका यह कर्म सर्वथा अनुचित है। तुम सब लोग मूढ़ हो; क्योंकि शिवकी निन्दा और कलह तुम्हें प्रिय है। अतः भगवान् हरसे तुम्हें इस कुकर्मका निश्चय ही पूरा-पूरा दण्ड मिलेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उस यज्ञमें दक्ष तथा देवताओंसे ऐसा कहकर सती देवी चुप हो गयीं और मन-ही-मन अपने प्राण-वल्लभ शम्भुका स्मरण करने लगीं।

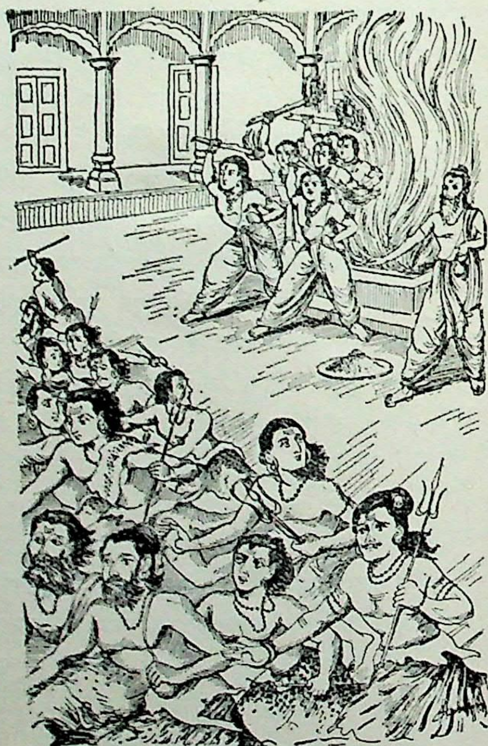
(अध्याय २९)

सतीका योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देना, दर्शकोंका हाहाकार, शिवपार्षदोंका प्राणत्याग तथा दक्षपर आक्रमण, ऋभुओंद्वारा उनका भगाया जाना तथा देवताओंकी चिन्ता

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मौन हुई सतीदेवी अपने पतिका सादर स्मरण करके शान्तचित्त हो सहसा उत्तर दिशामें भूमिपर बैठ गयीं। उन्होंने विधिपूर्वक जलका आचमन करके वस्त्र ओढ़ लिया और पवित्रभावसे आँखें मूँदकर पतिका चिन्तन करती हुई वे योगमार्गमें स्थित हो गयीं। उन्होंने आसनको स्थिरकर प्राणायामद्वारा प्राण और

अपानको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थित किया । फिर उदान वायुको बलपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया । तत्पश्चात् शंकरकी प्राणवल्लभा अनिन्दिता सती उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं । इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें योगमार्गके अनुसार वायु और अग्निकी धारणा की । तदनन्तर अपने पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान भुला दिया । उनका चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया था । इसलिये वहाँ उन्हें पतिके चरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया । मुनिश्रेष्ठ ! सतीका निष्पाप शरीर तत्काल गिरा और उनकी इच्छाके अनुसार योगाग्निसे जलकर उसी क्षण भस्म हो गया । उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब यह घटना देखी, तब वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे । उनका वह महान्, अद्भुत, विचित्र एवं भयंकर हाहाकार आकाशमें और पृथ्वीतलपर सब ओर फैल गया । लोग कह रहे थे— 'हाय ! महान् देवता भगवान् शंकरकी परम प्रेयसी सती देवीने किस दुष्टके दुर्व्यवहारसे कुपित हो अपने प्राण त्याग दिये । अहो ! ब्रह्माजीके पुत्र इस दक्षकी बड़ी भारी दुष्टता तो देखो । सारा चराचर जगत् जिसकी संतान है, उसीकी पुत्री मनस्विनी सती देवी, जो सदा ही मान पानेके योग्य थीं, उसके द्वारा ऐसी निरादृत हुईं कि प्राणोंसे ही हाथ धो बैठीं । भगवान् वृषभध्वजकी प्रिया सती सदा सभी सत्पुरुषोंके द्वारा निरन्तर सम्मान पानेकी अधिकारिणी थीं । वास्तवमें उसका हृदय बड़ा ही असहिष्णु है । वह प्रजापति दक्ष ब्राह्मणद्रोही है । इसलिये सारे संसारमें उसे महान् अपयश प्राप्त होगा । उसकी अपनी ही पुत्री उसीके अपराधसे जब प्राणत्याग करनेको उद्यत हो गयी, तब भी उस महा-नरकभोगी शंकरद्रोहीने उसे रोकातक नहीं !'

जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख तुरंत ही क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र ले दक्षको मारनेके लिये उठ खड़े हुए । यज्ञमण्डपके द्वारपर खड़े हुए वे भगवान् शंकरके समस्त साठ हजार पार्षद, जो बड़े भारी बलवान् थे, अत्यन्त रोषसे भर गये और 'हमें धिक्कार है, धिक्कार है', ऐसा कहते हुए भगवान् शंकरके गणोंके वे सभी वीर यूथपति बारंबार उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे । देवर्षे ! कितने ही पार्षद तो वहाँ शोकसे ऐसे व्याकुल हो गये कि वे अत्यन्त तीखे प्राणनाशक शस्त्रोंद्वारा अपने ही मस्तक और मुख आदि अङ्गोंपर आघात करने लगे । इस प्रकार बीस हजार पार्षद उस समय दक्षकन्या सतीके साथ ही नष्ट हो गये । वह एक अद्भुत-सी बात हुई । नष्ट होनेसे बचे हुए महात्मा शंकरके वे प्रमथगण क्रोधयुक्त दक्षको मारनेके लिये हथियार लिये उठ खड़े हुए । मुने ! उन आक्रमणकारी पार्षदोंका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेके लिये नियत 'अपहता असुराः रक्षांऽसि वेदिषदः' इस यजुर्मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी । भृगुके आहुति देते ही यज्ञकुण्डसे ऋभु नामक सहस्रों महान् देवता, जो बड़े प्रबल वीर थे, वहाँ प्रकट हो गये । मुनीश्वर ! उन सबके हाथमें जलती हुई लकड़ियाँ थीं । उनके साथ प्रमथगणोंका



अत्यन्त विकट युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंके भी रोंगटे खड़े कर देनेवाला था । उन ब्रह्मतेजसे सम्पन्न महावीर ऋभुओंकी सब ओरसे ऐसी मार पड़ी, जिससे प्रमथगण बिना अधिक प्रयासके ही भाग खड़े हुए । इस प्रकार उन देवताओंने उन शिवगणोंको तुरंत मार भगाया । यह अद्भुत-सी घटना भगवान् शिवकी महाशक्तिमती इच्छासे ही हुई । वह सब



दक्षपर सतीका क्रोध [पृष्ठ १४६



सतीका योगाग्निसे शरीर-त्याग [पृष्ठ १४८

देखकर ऋषि, इन्द्रादि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, अश्विनी-कुमार और लोकपाल चुप ही रहे। कोई सब ओरसे आ-आकर वहाँ भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करते थे कि किसी तरह विघ्न टल जाय। वे उद्विग्न हो बारंबार विघ्न-निवारणके लिये आपसमें सलाह करने लगे। प्रमथगणोंके नाश होने और भगाये जानेसे जो भावी परिणाम होनेवाला था, उसका भलीभाँति विचार करके उत्तम बुद्धिवाले श्रीविष्णु आदि देवता अत्यन्त उद्विग हो उठे थे। मुने! इस प्रकार दुरात्मा शंकर-द्रोही ब्रह्मबन्धु दक्षके यज्ञमें उस समय बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हो गया। (अध्याय ३०)

आकाशवाणीद्वारा दक्षकी भर्त्सना, उनके विनाशकी सूचना तथा समस्त देवताओंको यज्ञमण्डपसे निकल जानेकी प्रेरणा

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! इसी बीचमें वहाँ दक्ष तथा देवता आदिके सुनते हुए आकाशवाणीने यह यथार्थ बात कही—"रे-रे दुराचारी दक्ष! ओ दम्भाचारपरायण महामूढ़! यह तूने कैसा अनर्थकारी कर्म कर डाला? ओ मूर्ख! शिवभक्तराज दधीचके कथनको भी तूने प्रामाणिक नहीं माना, जो तेरे लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और मङ्गलकारी था। वे ब्राह्मण देवता मुझे दुस्सह शाप देकर तेरी यज्ञशालासे निकल गये, तो भी तुझ मूढ़ने अपने मनमें कुछ भी नहीं समझा। उसके बाद तेरे घरमें मङ्गलमयी सती देवी स्वतः पधारीं, जो तेरी अपनी ही पुत्री थीं; किंतु तूने उनका भी परम आदर नहीं किया! ऐसा क्यों हुआ? ज्ञान-दुर्बल दक्ष! तूने सती और महादेवजीकी पूजा नहीं की, यह क्या किया? 'मैं ब्रह्माजीका बेटा हूँ' ऐसा समझकर तू व्यर्थ ही घमंडमें भरा रहता है और इसीलिये तुझपर मोह छा गया है। वे सती देवी ही सत्पुरुषोंकी आराध्या देवी हैं अथवा सदा आराधना करनेके योग्य हैं, वे समस्त पुण्योंका फल देनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, कल्याणस्वरूपा और भगवान् शंकरके आधे अङ्गमें निवास करनेवाली हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली हैं। वे ही महेश्वरकी शक्ति हैं और अपने भक्तोंको सब प्रकारके मङ्गल देती हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा संसारका भय दूर करती हैं, मनोवाञ्छित फल देती हैं तथा वे ही समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली देवी हैं। वे सती ही सदा पूजित होनेपर कीर्ति और सम्पत्ति प्रदान करती हैं। वे ही पराशक्ति तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली परमेश्वरी हैं। वे सती ही जगत्को जन्म देनेवाली माता, जगत्की रक्षा करनेवाली अनादि शक्ति और प्रलयकालमें जगत्का संहार करनेवाली हैं। वे जगन्माता सती ही भगवान् विष्णुकी मातारूपसे सुशोभित होनेवाली तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि एवं सूर्यदेव आदिकी जननी मानी गयी हैं। वे सती ही तप, धर्म और दान आदिका फल देनेवाली हैं। वे ही शम्भु-शक्ति महादेवी हैं तथा दुष्टोंका हनन करनेवाली परात्पर शक्ति हैं। ऐसी महिमावाली सती देवी जिनकी सदा प्रिय धर्मपत्नी हैं, उन भगवान् महादेवको तूने यज्ञमें भाग नहीं दिया! अरे! तू कैसा मूढ़ और कुविचारी है।

"भगवान् शिव ही सबके स्वामी तथा परात्पर परमेश्वर हैं। वे समस्त देवताओंके सम्यक् सेव्य हैं और सबका कल्याण करनेवाले हैं। इन्हींके दर्शनकी इच्छासे सिद्ध पुरुष तपस्या करते हैं और इन्हींके साक्षात्कारकी अभिलाषा मनमें लेकर योगीलोग योग-साधनामें प्रवृत्त होते हैं। अनन्त धन-धान्य और यज्ञ-याग आदिका सबसे महान् फल यही बताया गया है कि भगवान् शंकरका दर्शन सुलभ हो। शिव ही जगत्का धारण-पोषण करनेवाले हैं। वे ही समस्त विद्याओंके पति एवं सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। आदिविद्याके श्रेष्ठ स्वामी और समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल वे ही हैं। दुष्ट दक्ष! तूने उनकी शक्तिका आज सत्कार नहीं किया है। इसीलिये इस यज्ञका विनाश हो जायगा। पूजनीय व्यक्तियोंकी पूजा न करनेसे अमङ्गल होता ही है। तूने परम पूज्य शिवस्वरूपा सतीका पूजन नहीं किया है। शेषनाग अपने सहस्र मस्तकोंसे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक जिनके चरणोंकी रज धारण करते हैं, उन्हीं भगवान् शिवकी शक्ति सती देवी थीं। जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर ध्यान और सादर पूजन करके ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए हैं, उन्हीं भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी सती देवी थीं। जिनके चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान और सादर पूजन करके इन्द्र आदि लोकपाल अपने-अपने उत्तम पदको प्राप्त हुए हैं, वे भगवान् शिव सम्पूर्ण जगत्के पिता

हैं और शक्तिस्वरूपा सती देवी जगत्‌की माता कही गयी हैं। मूढ़ दक्ष ! तूने उन माता-पिताका सत्कार नहीं किया, फिर तेरा कल्याण कैसे होगा।

''तुझपर दुर्भाग्यका आक्रमण हो गया और विपत्तियाँ टूट पड़ीं; क्योंकि तूने उन भवानी सती और भगवान् शंकरकी भक्तिभावसे आराधना नहीं की। 'कल्याणकारी शम्भुका पूजन न करके भी मैं कल्याणका भागी हो सकता हूँ' यह तेरा कैसा गर्व है ? वह दुर्वार गर्व आज नष्ट हो जायगा। इन देवताओंमेंसे कौन ऐसा है, जो सर्वेश्वर शिवसे विमुख होकर तेरी सहायता करेगा ? मुझे तो ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता। यदि देवता इस समय तेरी सहायता करेंगे तो जलती आगसे खेलनेवाले पतङ्गोंके समान नष्ट हो जायँगे। आज तेरा मुँह जल जाय, तेरे यज्ञका नाश हो जाय और जितने तेरे सहायक हैं, वे भी आज शीघ्र ही जल मरें। इस दुरात्मा दक्षकी जो सहायता करनेवाले हैं, उन समस्त देवताओंके लिये आज शपथ है। वे तेरे अमङ्गलके लिये ही तेरी सहायतासे विरत हो जायँ। समस्त देवता आज इस यज्ञ-मण्डपसे निकलकर अपने-अपने स्थानको चले जायँ, अन्यथा सब लोगोंका सब प्रकारसे नाश हो जायगा। अन्य सब मुनि और नाग आदि भी इस यज्ञसे निकल जायँ, अन्यथा आज सब लोगोंका सर्वथा नाश हो जायगा। श्रीहरे! और विधातः! आपलोग भी इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जाइये।''

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! सम्पूर्ण यज्ञशालामें बैठे हुए लोगोंसे ऐसा कहकर सबका कल्याण करनेवाली वह आकाशवाणी मौन हो गयी। (अध्याय ३१)

गणोंके मुखसे और नारदसे भी सतीके दग्ध होनेकी बात सुनकर दक्षपर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करने और विरोधियोंको जला डालनेकी आज्ञा देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! वह आकाशवाणी सुनकर सब देवता आदि भयभीत तथा विस्मित हो गये। उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली। वे इस तरह खड़े या बैठे रह गये, मानो उनपर विशेष मोह छा गया हो। भृगुके मन्त्रबलसे भाग जानेके कारण जो वीर शिवगण नष्ट होनेसे बच गये थे, वे भगवान् शिवकी शरणमें गये। उन सबने अमिततेजस्वी भगवान् रुद्रको भलीभाँति सादर प्रणाम करके वहाँ यज्ञमें जो कुछ हुआ था, वह सारी घटना उनसे कह सुनायी।

गण बोले—महेश्वर ! दक्ष बड़ा दुरात्मा और घमंडी है। उसने वहाँ जानेपर सतीदेवीका अपमान किया और देवताओंने भी उनका आदर नहीं किया। अत्यन्त गर्वसे भरे हुए उस दुष्ट दक्षने आपके लिये यज्ञमें भाग नहीं दिया। दूसरे देवताओंके लिये दिया और आपके विषयमें उच्चस्वरसे दुर्वचन कहे। प्रभो ! यज्ञमें आपका भाग न देखकर सतीदेवी कुपित हो उठीं और पिताकी बारंबार निन्दा करके उन्होंने तत्काल अपने शरीरको योगाग्निद्वारा जलाकर भस्म कर दिया। यह देख दस हजारसे अधिक पार्षद लज्जावश शस्त्रोंद्वारा अपने ही अङ्गोंको काट-काटकर वहाँ मर गये। शेष हमलोग दक्षपर कुपित हो उठे और सबको भय पहुँचाते हुए वेगपूर्वक उस यज्ञका विध्वंस करनेको उद्यत हो गये; परंतु विरोधी भृगुने अपने प्रभावसे हमें तिरस्कृत कर दिया। हम उनके मन्त्रबलका सामना न कर सके। प्रभो ! विश्वम्भर ! वे ही हमलोग आज आपकी शरणमें आये हैं। दयालो ! वहाँ प्राप्त हुए भयसे आप हमें बचाइये, निर्भय कीजिये। महाप्रभो ! उस यज्ञमें दक्ष आदि सभी दुष्टोंने घमंडमें आकर आपका विशेषरूपसे अपमान किया है। कल्याणकारी शिव ! इस प्रकार हमने अपना, सतीदेवीका और मूढ़ बुद्धिवाले दक्ष आदिका भी सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! अपने पार्षदोंकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने वहाँकी सारी घटना जाननेके लिये शीघ्र ही तुम्हारा स्मरण किया। देवर्षे ! तुम दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न हो। अतः भगवान्‌के स्मरण करनेपर तुम तुरंत वहाँ आ पहुँचे और शंकरजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके खड़े हो गये। स्वामी शिवने तुम्हारी प्रशंसा करके तुमसे दक्ष-यज्ञमें गयी हुई सतीका समाचार तथा दूसरी घटनाओंको पूछा। तात ! शम्भुके पूछनेपर शिवमें मन लगाये रखनेवाले तुमने शीघ्र ही वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जो दक्षयज्ञमें घटित

हुआ था। मुने! तुम्हारे मुखसे निकली हुई बात सुनकर उस समय महान् रौद्र पराक्रमसे सम्पन्न सर्वेश्वर रुद्रने तुरंत ही बड़ा भारी क्रोध प्रकट किया। लोकसंहारकारी रुद्रने अपने सिरसे एक जटा उखाड़ी और उसे रोषपूर्वक उस पर्वतके ऊपर दे मारा। मुने! भगवान् शंकरके पटकनेसे उस जटाके दो टुकड़े हो गये और महाप्रलयके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। देवर्षे! उस जटाके पूर्वभागसे महाभयंकर महाबली वीरभद्र प्रकट हुए, जो समस्त शिवगणोंके अगुआ हैं। वे भूमण्डलको सब ओरसे व्याप्त करके उससे भी दस अंगुल अधिक होकर खड़े हुए। वे देखनेमें प्रलयाग्निके समान जान पड़ते थे। उनका शरीर बहुत ऊँचा था। वे एक हजार



भुजाओंसे युक्त थे। उन सर्वसमर्थ महारुद्रके क्रोधपूर्वक प्रकट हुए निःश्वाससे सौ प्रकारके ज्वर और तेरह प्रकारके संनिपात रोग पैदा हो गये। तात! उस जटाके दूसरे भागसे महाकाली उत्पन्न हुईं, जो बड़ी भयंकर दिखायी देती थीं। वे करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई थीं। जो ज्वर पैदा हुए, वे सब-के-सब शरीरधारी, क्रूर और समस्त लोकोंके लिये भयंकर थे। वे अपने तेजसे प्रज्वलित हो सब ओरसे दाह उत्पन्न करते हुए-से प्रतीत होते थे। वीरभद्र बातचीत करनेमें बड़े कुशल थे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा।

वीरभद्र बोले—महारुद्र! सोम, सूर्य और अग्निको तीन नेत्रोंके रूपमें धारण करनेवाले प्रभो! शीघ्र आज्ञा दीजिये। मुझे इस समय कौन-सा कार्य करना होगा? ईशान! क्या मुझे आधे ही क्षणमें सारे समुद्रोंको सुखा देना है? या इतने ही समयमें सम्पूर्ण पर्वतोंको पीस डालना है? हर! मैं एक ही क्षणमें ब्रह्माण्डको भस्म कर डालूँ या समस्त देवताओं और मुनीश्वरोंको जलाकर राख कर दूँ? शंकर! ईशान! क्या मैं समस्त लोकोंको उलट-पलट दूँ या सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश कर डालूँ। महेश्वर! आपकी कृपासे कहीं कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं न कर सकूँ। पराक्रमके द्वारा मेरी समानता करनेवाला वीर न पहले कभी हुआ है और न आगे होगा। शंकर! आप किसी तिनकेको भेज दें तो वह भी बिना किसी यत्नके क्षणभरमें बड़े-से-बड़ा कार्य सिद्ध कर सकता है, इसमें संशय नहीं है। शम्भो! यद्यपि आपकी लीलामात्रसे सारा कार्य सिद्ध हो जाता है, तथापि जो मुझे भेजा जा रहा है, यह मुझपर आपका अनुग्रह ही है। शम्भो! मुझमें भी जो ऐसी शक्ति है, वह आपकी कृपासे ही प्राप्त हुई है। शंकर! आपकी कृपाके बिना किसीमें भी कोई शक्ति नहीं हो सकती। वास्तवमें आपकी आज्ञाके बिना कोई तिनके आदिको भी हिलानेमें समर्थ नहीं है; यह निस्संदेह कहा जा सकता है। महादेव! मैं आपके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करता हूँ। हर! आप अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये आज मुझे शीघ्र भेजिये। शम्भो! मेरे दाहिने अङ्ग बारंबार फड़क रहे हैं। इससे सूचित होता है कि मेरी विजय अवश्य होगी। अतः प्रभो! मुझे भेजिये। शंकर! आज मुझे कोई अभूतपूर्व एवं विशेष हर्ष तथा उत्साहका अनुभव हो रहा है और मेरा चित्त आपके चरण-कमलमें लगा हुआ है। अतः पग-पगपर मेरे लिये शुभ परिणामका विस्तार होगा। शम्भो! आप शुभके आधार हैं। जिसकी आपमें सुदृढ़ भक्ति है, उसीकी सदा विजय प्राप्त होती है और उसीका दिनोंदिन शुभ होता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उसकी यह बात सुनकर सर्वमङ्गलाके पति भगवान् शिव बहुत संतुष्ट हुए और 'वीरभद्र! तुम्हारी जय हो' ऐसा आशीर्वाद देकर वे फिर बोले।

महेश्वरने कहा—मेरे पार्षदोंमें श्रेष्ठ वीरभद्र! ब्रह्माजीका पुत्र दक्ष बड़ा दुष्ट है। उस मूर्खको बड़ा घमंड

हो गया है। अतः इन दिनों वह विशेषरूपसे मेरा विरोध करने लगा है। दक्ष इस समय एक यज्ञ करनेके लिये उद्यत है। तुम याग-परिवारसहित उस यज्ञको भस्म करके फिर शीघ्र मेरे स्थानपर लौट आओ। यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई तुम्हारा सामना करनेके लिये उद्यत हों तो उन्हें भी आज ही शीघ्र और सहसा भस्म कर डालना। दधीचकी दिलायी हुई मेरी शपथका उल्लङ्घन करके जो देवता आदि वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें तुम निश्चय ही प्रयत्नपूर्वक जलाकर भस्म कर देना। जो मेरी शपथका उल्लङ्घन करके गर्वयुक्त हो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे सब-के-सब मेरे द्रोही हैं। अतः उन्हें अग्निमयी मायासे जला डालो। दक्षकी यज्ञशालामें जो अपनी पत्नियों और सारभूत उपकरणोंके साथ बैठे हों, उन सबको जलाकर भस्म कर देनेके पश्चात् फिर शीघ्र लौट आना। तुम्हारे वहाँ जानेपर विश्वेदेव आदि देवगण भी यदि सामने आ तुम्हारी सादर स्तुति करें, तो भी तुम उन्हें शीघ्र आगकी ज्वालासे जलाकर ही छोड़ना। वीर! वहाँ दक्ष आदि सब लोगोंको पत्नी और बन्धु-बान्धवोंसहित जलाकर (कलशोंमें रखे हुए) जलको लीलापूर्वक पी जाना।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जो वैदिक मर्यादाके पालक, कालके भी शत्रु तथा सबके ईश्वर हैं, वे भगवान् रुद्र रोषसे लाल आँखें किये महावीर वीरभद्रसे ऐसा कहकर चुप हो गये। (अध्याय ३२)

प्रमथगणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विध्वंसके लिये प्रस्थान, दक्ष तथा देवताओंको अपशकुन एवं उत्पातसूचक लक्षणोंका दर्शन एवं भय होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! महेश्वरके इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने महेश्वर-को प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन देवाधिदेव शूलीकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके वीरभद्र वहाँसे शीघ्र ही दक्षके यज्ञ-मण्डपकी ओर चले। भगवान् शिवने केवल शोभाके लिये उनके साथ करोड़ों महावीर गणोंको भेज दिया, जो प्रलयाग्निके समान तेजस्वी थे। वे कौतूहलकारी प्रबल वीर प्रमथगण वीर-भद्रके आगे और पीछे भी चल रहे थे। कालके भी काल भगवान् रुद्रके वीरभद्रसहित जो लाखों पार्षदगण थे, उन सबका स्वरूप रुद्रके ही समान था। उन गणोंके साथ महात्मा वीरभद्र भगवान् शिवके समान ही वेश-भूषा धारण किये रथपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। उनके एक सहस्र भुजाएँ थीं। शरीरमें नागराज लिपटे हुए थे। वीरभद्र बड़े प्रबल और भयंकर दिखायी देते थे। उनका रथ बहुत ही विशाल था। उसमें दस हजार सिंह जोते जाते थे, जो प्रयत्नपूर्वक उस रथको खींचते थे। उसी प्रकार बहुत-से प्रबल सिंह, शार्दूल, मगर, मत्स्य और सहस्रों हाथी उस रथके पार्श्वभागकी रक्षा करते थे। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—इन नवदुर्गाओंके साथ तथा समस्त भूतगणोंके साथ महाकाली दक्षका विनाश करनेके लिये चलीं। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि—ये सभी वीर भगवान् शिवकी आज्ञाका पालन एवं दक्षके यज्ञका विनाश करनेके लिये तुरंत चल दिये। इनके सिवा चौसठ गणोंके साथ योगिनियोंका मण्डल भी सहसा कुपित हो दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये वहाँसे प्रस्थित हुआ। इस प्रकार कोटि-कोटि गण एवं विभिन्न प्रकारके गणाधीश वीरभद्रके साथ चले। उस समय भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। नाना प्रकारके शब्द करनेवाले शङ्ख बज उठे। भिन्न-भिन्न प्रकारकी सींगें बजने लगीं। महामुने! सेनासहित वीरभद्रकी यात्राके समय वहाँ बहुत-से सुखद स्वप्न होने लगे।

इस प्रकार जब प्रमथगणोंसहित वीरभद्रने प्रस्थान किया, तब उधर दक्ष तथा देवताओंको बहुत-से अशुभ लक्षण दिखायी देने लगे। देवर्षे! यज्ञविध्वंसकी सूचना देनेवाले त्रिविध उत्पात प्रकट होने लगे। दक्षकी बायीं आँख, बायीं भुजा और बायीं जाँघ फड़कने लगी। तात! वाम अङ्गोंका वह फड़कना सर्वथा अशुभसूचक था और नाना प्रकारके कष्ट मिलनेकी सूचना दे रहा था। उस समय दक्षकी यज्ञशालामें धरती डोलने लगी। दक्षको दोपहरके समय दिनमें ही अद्भुत तारे दीखने लगे। दिशाएँ मलिन हो गयीं। सूर्यमण्डल चितकबरा दीखने लगा। उसपर हजारों घेरे पड़ गये, जिससे वह भयंकर जान पड़ता था। बिजली और अग्निके समान दीप्तिमान् तारे टूट-टूटकर गिरने लगे तथा और भी बहुत-से भयानक अपशकुन होने लगे।

इसी बीचमें वहाँ आकाशवाणी प्रकट हुई जो सम्पूर्ण देवताओं और विशेषतः दक्षको अपनी बात सुनाने लगी।

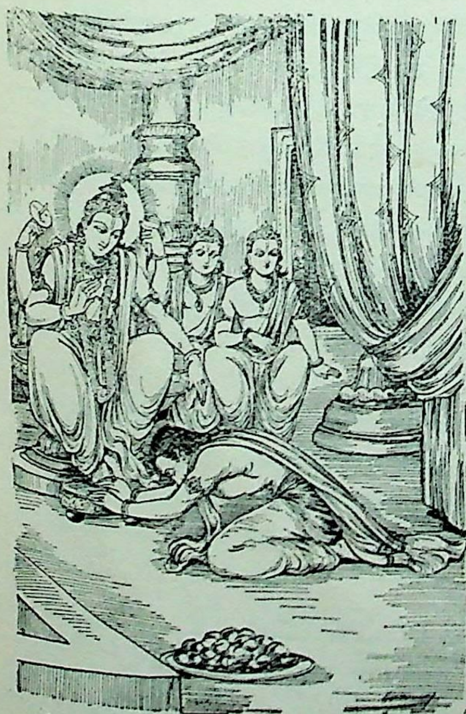
आकाशवाणी बोली—ओ दक्ष ! आज तेरे जन्मको धिक्कार है ! तू महामूढ़ और पापात्मा है । भगवान् हरकी ओरसे आज तुझे महान् दुःख प्राप्त होगा, जो किसी तरह टल नहीं सकता । अब यहाँ तेरा हाहाकार भी नहीं सुनायी देगा । जो मूढ़ देवता आदि तेरे यज्ञमें स्थित हैं, उनको भी महान् दुःख होगा—इसमें संशय नहीं है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! आकाशवाणीकी यह बात सुनकर और पूर्वोक्त अशुभसूचक लक्षणोंको देखकर दक्ष तथा दूसरे देवता आदिको भी अत्यन्त भय प्राप्त हुआ । उस समय दक्ष मन-ही-मन अत्यन्त व्याकुल हो काँपने लगे और अपने प्रभु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये । वे भयसे अधीर हो बेसुध हो रहे थे । उन्होंने स्वजनवत्सल देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके कहा । (अध्याय ३३-३४)

दक्षकी यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवानका शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन

दक्ष बोले—देवदेव ! हरे ! विष्णो ! दीनबन्धो ! कृपानिधे ! आपको मेरी और मेरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। प्रभो ! आप ही यज्ञके रक्षक हैं, यज्ञ ही आपका कर्म है और आप यज्ञस्वरूप हैं । आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये, जिससे यज्ञका विनाश न हो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर ! इस तरह अनेक प्रकार-से सादर प्रार्थना करके दक्ष भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़े । उनका चित्त भयसे व्याकुल हो रहा था । तब जिनके



मनमें घबराहट आ गयी थी, उन प्रजापति दक्षको उठाकर और उनकी पूर्वोक्त बात सुनकर भगवान् विष्णुने देवाधिदेव शिवका स्मरण किया । अपने प्रभु एवं महान् ऐश्वर्यसे युक्त परमेश्वर शिवका स्मरण करके शिवतत्त्वके ज्ञाता श्रीहरि दक्षको समझाते हुए बोले ।

श्रीहरिने कहा—दक्ष ! मैं तुमसे तत्त्वकी बात बता रहा हूँ । तुम मेरी बात ध्यान देकर सुनो । मेरा यह वचन तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर तथा महामन्त्रके समान सुखदायक होगा । दक्ष तुम्हें तत्त्वका ज्ञान नहीं है । इसलिये तुमने सबके अधिपति परमात्मा शंकरकी अवहेलना की है । ईश्वर-की अवहेलनासे सारा कार्य सर्वथा निष्फल हो जाता है । केवल इतना ही नहीं, पग-पगपर विपत्ति भी आती है । जहाँ अपूज्य पुरुषोंकी पूजा होती है और पूजनीय पुरुषकी पूजा नहीं की जाती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु तथा भय—ये तीन संकट अवश्य प्राप्त होंगे* । इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे तुम्हें भगवान् वृषभध्वजका सम्मान करना चाहिये । महेश्वरका अपमान करनेसे ही तुम्हारे ऊपर महान् भय उपस्थित हुआ है । हम सब लोग प्रभु होते हुए भी आज तुम्हारी दुर्नीतिके कारण जो संकट आया है, उसे टालनेमें समर्थ नहीं हैं । यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् विष्णुका यह

* ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा ।
विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे ॥
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम् ॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ३५ । ८-९)

वचन सुनकर दक्ष चिन्तामें डूब गये । उनके चेहरेका रंग उड़ गया और वे चुपचाप पृथ्वीपर खड़े रह गये। इसी समय भगवान् रुद्रके भेजे हुए गणनायक वीरभद्र अपनी सेनाके साथ यज्ञस्थलमें जा पहुँचे । वे सब-के-सब बड़े शूरवीर, निर्भय तथा रुद्रके समान ही पराक्रमी थे । भगवान् शंकरकी आज्ञासे आये हुए उन गणोंकी गणना असम्भव थी । वे वीर-शिरोमणि रुद्रसैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे । उनके उस महानादसे तीनों लोक गूँज उठे । आकाश धूलसे ढक गया और दिशाएँ अन्धकारसे आवृत हो गयीं । सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी अत्यन्त भयसे व्याकुल हो पर्वत, वन और काननोंसहित काँपने लगी तथा सम्पूर्ण समुद्रोंमें ज्वार आ गया । इस प्रकार समस्त लोकोंका विनाश करनेमें समर्थ उस विशाल सेनाको देखकर समस्त देवता आदि चकित हो गये । सेनाके उद्योगको देख दक्षके मुँहसे खून निकल आया । वे अपनी स्त्रीको साथ ले भगवान् विष्णुके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और इस प्रकार बोले ।

दक्षने कहा—विष्णो ! महाप्रभो ! आपके बलसे ही मैंने इस महान् यज्ञका आरम्भ किया है । सत्कर्मकी सिद्धिके लिये आप ही प्रमाण माने गये हैं । विष्णो ! आप कर्मोंके साक्षी तथा यज्ञोंके प्रतिपालक हैं । महाप्रभो ! आप वेदोक्त धर्म तथा ब्रह्माजीके रक्षक हैं । अतः प्रभो आपको मेरे इस यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि आप सबके प्रभु हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—दक्षकी अत्यन्त दीनतापूर्ण बात सुनकर भगवान् विष्णु उस समय शिवतत्त्वसे विमुख हुए दक्षको समझानेके लिये इस प्रकार बोले ।

श्रीविष्णुने कहा—दक्ष ! इसमें संदेह नहीं कि मुझे तुम्हारे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि धर्म-परिपालनविषयक जो मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, वह सर्वत्र विख्यात है । परंतु दक्ष ! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे तुम सुनो । इस समय अपनी क्रूरतापूर्ण बुद्धिको त्याग दो । देवताओंके क्षेत्र नैमिषारण्यमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, उसका तुम्हें स्मरण नहीं हो रहा है । क्या तुम अपनी कुबुद्धिके कारण उसे भूल गये ? यहाँ कौन भगवान् रुद्रके कोपसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ है । दक्ष ! तुम्हारी रक्षा किसको अभिमत नहीं है ? परंतु जो तुम्हारी रक्षा करनेको उद्यत होता है, वह अपनी दुर्बुद्धिका ही परिचय देता है । दुर्मते ! क्या कर्म है और क्या अकर्म, इसे तुम नहीं समझ पा रहे हो । केवल कर्म ही कभी कुछ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । जिसके सहयोगसे कर्ममें कुछ करनेकी सामर्थ्य आती है, उसीको तुम स्वकर्म समझो । भगवान् शिवके बिना दूसरा कोई कर्ममें कल्याण करनेकी शक्ति देनेवाला नहीं है । जो शान्त हो ईश्वरमें मन लगाकर उनकी भक्तिपूर्वक कार्य करता है, उसीको भगवान् शिव तत्काल उस कर्मका फल देते हैं । जो मनुष्य केवल ज्ञानका सहारा ले अनीश्वरवादी हो जाते या ईश्वरको नहीं मानते हैं, वे शतकोटि कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहते हैं ।* फिर वे कर्मपाशमें बँधे हुए जीव प्रत्येक जन्ममें नरकोंकी यातना भोगते हैं; क्योंकि वे केवल सकाम कर्मके ही स्वरूपका आश्रय लेनेवाले होते हैं ।

ये शत्रुमर्दन वीरभद्र, जो यज्ञशालाके आँगनमें आ पहुँचे हैं, भगवान् रुद्रकी क्रोधाग्निसे प्रकट हुए हैं । इस समय समस्त रुद्रगणोंके नायक ये ही हैं । ये हमलोगोंके विनाशके लिये आये हैं, इसमें संशय नहीं है । कोई भी कार्य क्यों न हो, वस्तुतः इनके लिये कुछ भी अशक्य है ही नहीं । ये महान् सामर्थ्यशाली वीरभद्र सब देवताओंको अवश्य जलाकर ही शान्त होंगे—इसमें संशय नहीं जान पड़ता । मैं भ्रमसे महादेवजीकी शपथका उल्लङ्घन करके जो यहाँ ठहरा रहा, उसके कारण तुम्हारे साथ मुझे भी इस कष्टका सामना करना ही पड़ेगा ।

भगवान् विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि वीरभद्रके साथ शिवगणोंकी सेनाका समुद्र उमड़ आया । समस्त देवता आदिने उसे देखा ।

(अध्याय ३५)

---

* केवलं ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः । निरयं ते च गच्छन्ति कल्पकोटिशतानि च ॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ३५ । ३१)

देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत तथा विष्णु आदिका अपने लोकमें जाना एवं दक्ष और यज्ञका विनाश करके वीरभद्रका कैलाशको लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उस समय देवताओंके साथ शिवगणोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया । उसमें सारे देवता पराजित हुए और भागने लगे । वे एक दूसरेका साथ छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये । उस समय केवल महाबली इन्द्र आदि लोकपाल ही उस दारुण संग्राममें धैर्य धारण करके उत्सुकतापूर्वक खड़े रहे । तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता मिलकर उस समराङ्गणमें बृहस्पतिजीको विनीतभावसे नमस्कार करके पूछने लगे ।

लोकपाल बोले—गुरुदेव बृहस्पते ! तात ! महाप्राज्ञ ! दयानिधे ! शीघ्र बताइये, हम जानना चाहते हैं कि हमारी विजय कैसे होगी ?

उनकी यह बात सुनकर बृहस्पतिने प्रयत्नपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया और ज्ञानदुर्बल महेन्द्रसे कहा ।

बृहस्पति बोले—इन्द्र ! भगवान् विष्णुने पहले जो कुछ कहा था, वह सब इस समय घटित हो गया । मैं उसीको स्पष्ट कर रहा हूँ । सावधान होकर सुनो । समस्त कर्मोंका फल देनेवाला जो कोई ईश्वर है, वह कर्ताका ही आश्रय लेता है—कर्म करनेवालेको ही उस कर्मका फल देता है । जो कर्म करता ही नहीं, उसको फल देनेमें वह भी समर्थ नहीं है (अतः जो ईश्वरको जानकर उसका आश्रय लेकर सत्कर्म करता है, उसीको उस कर्मका फल मिलता है, ईश्वरद्रोहीको नहीं) । न मन्त्र, न ओषधियाँ, न समस्त आभिचारिक कर्म, न लौकिक पुरुष, न कर्म, न वेद, न पूर्व और उत्तरमीमांसा तथा न नाना वेदोंसे युक्त अन्यान्य शास्त्र ही ईश्वरको जाननेमें समर्थ होते हैं—ऐसा प्राचीन विद्वानोंका कथन है । अनन्यशरण भक्तोंको छोड़कर दूसरे लोग सम्पूर्ण वेदोंका दस हजार बार स्वाध्याय करके भी महेश्वरको भलीभाँति नहीं जान सकते—यह महाश्रुतिका कथन है । अवश्य भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही सर्वथा शान्त, निर्विकार एवं उत्तम दृष्टिसे सदाशिवके तत्त्वका साक्षात्कार (ज्ञान) हो सकता है । सुरेश्वर ! क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य, इसका विवेचन करना अभीष्ट होनेपर मैं जो इसमें सिद्धिका उत्तम अंश है, उसीका प्रतिपादन करूँगा । तुम अपने हितके लिये उसे ध्यान देकर सुनो । इन्द्र ! तुम लोकपालोंके साथ आज नादान बनकर दक्ष-यज्ञमें आ गये । बताओ तो, यहाँ क्या पराक्रम करोगे ? भगवान् रुद्र जिनके सहायक हैं, ऐसे ये परम क्रोधी रुद्रगण इस यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आये हैं और अपना काम पूरा करेंगे—इसमें संशय नहीं है । मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि इस यज्ञके विघ्नका निवारण करनेके लिये वस्तुतः तुममेंसे किसीके पास भी सर्वथा कोई उपाय नहीं है ।

बृहस्पतिकी यह बात सुनकर वे इन्द्रसहित समस्त लोकपाल बड़ी चिन्तामें पड़ गये । तब महावीर रुद्रगणोंसे घिरे हुए वीरभद्रने मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके इन्द्र आदि लोकपालोंको डाँटा और इसके पश्चात् रुद्रगणोंके नायक वीरभद्रने रोषसे भरकर तुरंत ही सम्पूर्ण देवताओंको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया । उन बाणोंकी चोट खाकर इन्द्र आदि समस्त सुरेश्वर भागते हुए दसों दिशाओंमें चले गये । जब लोकपाल चले गये और देवता भाग खड़े हुए, तब वीरभद्र अपने गणोंके साथ यज्ञशालाके समीप गये । उस समय वहाँ विद्यमान समस्त ऋषि अत्यन्त भयभीत हो परमेश्वर श्रीहरिसे रक्षाकी प्रार्थना करनेके लिये सहसा नतमस्तक हो शीघ्र बोले—'देवदेव ! रमानाथ ! सर्वेश्वर ! महाप्रभो ! आप दक्षके यज्ञकी रक्षा कीजिये । आप ही यज्ञ हैं, इसमें संशय नहीं है । यज्ञ आपका कर्म, रूप और अङ्ग है । आप यज्ञके रक्षक हैं । अतः दक्ष-यज्ञकी रक्षा कीजिये । आपके सिवा दूसरा कोई इसका रक्षक नहीं है ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऋषियोंका यह वचन सुनकर मेरे सहित भगवान् विष्णु वीरभद्रके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे चले । श्रीहरिको युद्धके लिये उद्यत देख शत्रुमर्दन वीरभद्र, जो वीर प्रमथगणोंसे घिरे हुए थे, कड़े शब्दोंमें भगवान् विष्णुको डाँटने लगे ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! वीरभद्रकी यह बात सुनकर बुद्धिमान् देवेश्वर विष्णु वहाँ प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बोले ।

श्रीविष्णुने कहा—वीरभद्र ! आज तुम्हारे सामने मैं

जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो—मैं भगवान् शंकरका सेवक हूँ, तुम मुझे रुद्रदेवसे विमुख न कहो । दक्ष अज्ञानी है । कर्मकाण्डमें ही इसकी निष्ठा है । इसने मूढ़तावश पहले मुझसे बारंबार अपने यज्ञमें चलनेके लिये प्रार्थना की थी । मैं भक्तके अधीन ठहरा, इसलिये चला आया । भगवान् महेश्वर भी भक्तके अधीन रहते हैं । तात ! दक्ष मेरा भक्त है । इसीलिये मुझे यहाँ आना पड़ा है । रुद्रके क्रोधसे उत्पन्न हुए वीर ! तुम रुद्र-तेजःस्वरूप हो, उत्तम प्रतापके आश्रय हो, मेरी प्रतिज्ञा सुनो । मैं तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकता हूँ और तुम मुझे रोको । परिणाम वही होगा, जो होनेवाला होगा । मैं पराक्रम करूँगा ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर महाबाहु वीरभद्र हँसकर बोला—'आप मेरे प्रभुके प्रिय भक्त हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ।' इतना कहकर गणनायक वीरभद्र हँस पड़ा और विनयसे नतमस्तक हो बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीविष्णुदेवसे कहने लगा ।

वीरभद्रने कहा—महाप्रभो ! मैंने आपके भावकी परीक्षाके लिये कड़ी बातें कही थीं । इस समय यथार्थ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो । हरे ! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं । जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं । ऐसा वेद कहते हैं और वेदोंका यह कथन शिवकी आज्ञाके अनुसार ही है ।* रमानाथ ! भगवान् शिवकी आज्ञासे हम सब लोग उनके सेवक ही हैं; तथापि मैंने जो बात कही है, वह इस वाद-विवादके अवसरके अनुरूप ही है । आप मेरी हर बातको आपके प्रति आदरके भावसे ही कही गयी समझिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—वीरभद्रका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पड़े और उसके लिये हितकर वचन बोले ।

श्रीविष्णुने कहा—महावीर ! तुम मेरे साथ निःशङ्क होकर युद्ध करो । तुम्हारे अस्त्रोंसे शरीरके भर जानेपर ही मैं अपने आश्रमको जाऊँगा ।

ब्रह्माजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और युद्धके लिये कमर कसकर डट गये । महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके साथ युद्धके लिये तैयार हो गये ।

नारद ! तदनन्तर भगवान् विष्णु और वीरभद्रमें घोर युद्ध हुआ । अन्तमें वीरभद्रने भगवान् विष्णुके चक्रको स्तम्भित कर दिया तथा शार्ङ्गधनुषके तीन टुकड़े कर डाले । तब मेरे द्वारा एवं सरस्वतीद्वारा बोधित हुए श्रीविष्णुने उन महान् गणनायक वीरभद्रको असह्य तेजसे सम्पन्न जानकर वहाँसे अन्तर्धान होनेका विचार किया । दूसरे देवता भी यह जान गये कि सतीके प्रति जो अन्याय हुआ है, उसीका यह सब भावी परिणाम है । दूसरोंके लिये इस संकटका सामना करना अत्यन्त कठिन है । यह जानकर वे सब देवता अपने सेवकोंके साथ स्वतन्त्र सर्वेश्वर शिवका स्मरण करके अपने-अपने लोकको चले गये । मैं भी पुत्रके दुःखसे पीड़ित हो सत्यलोकमें चला आया और अत्यन्त दुःखसे आतुर हो सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये । मेरे तथा श्रीविष्णुके चले जानेपर मुनियोंसहित समस्त यज्ञके आधार रहनेवाले देवता शिवगणोंद्वारा पराजित हो भाग गये । उस उपद्रवको देखकर और उस महामखका विध्वंस निकट जानकर वह यज्ञ भी अत्यन्त भयभीत हो मृगका रूप धारण करके वहाँसे भागा । मृगके रूपमें आकाशकी ओर भागते देख वीरभद्रने उसे पकड़ लिया और उसका मस्तक काट डाला । फिर उन्होंने मुनियों तथा देवताओंके अङ्ग भङ्ग कर दिये और बहुतोंको मार डाला । प्रतापी मणिभद्रने भृगुको उठाकर पटक दिया और उनकी छातीको पैरसे दबाकर तत्काल उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच ली । चण्डने बड़े वेगसे पूषाके दाँत उखाड़ लिये; क्योंकि पूर्वकालमें जिस समय महादेवजीको दक्षके द्वारा गालियाँ दी जा रही थीं, उस समय वे दाँत दिखा-दिखाकर हँसे थे । नन्दीने भगको रोषपूर्वक पृथ्वीपर दे मारा और उनकी दोनों आँखें निकाल लीं; क्योंकि जब दक्ष शिवजीको शाप दे रहे थे, उस समय वे आँखोंके संकेतसे अपना अनुमोदन सूचित कर रहे थे । वहाँ रुद्र-गणनायकोंने स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा देवियोंकी बड़ी विडम्बना (दुर्दशा) की । वहाँ जो मन्त्र-तन्त्र तथा दूसरे लोग थे, उनका भी बहुत तिरस्कार किया । ब्रह्मपुत्र दक्ष भयके मारे अन्तर्वेदीके भीतर छिप गये । वीरभद्र उनका पता लगाकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ लाये । फिर उनके दोनों गाल पकड़कर उन्होंने उनके मस्तकपर तलवारसे आघात किया । परंतु योगके प्रभावसे दक्षका सिर अभेद्य हो गया था, इसलिये कट नहीं सका । जब वीरभद्र

---

* यथा शिवस्तथा त्वं हि तथा त्वं च तथा शिवः ।
इति वेदा वर्णयन्ति शिवशासनतो हरे ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ३६ । ६६)

को ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे इनके मस्तकका भेदन नहीं हो सकता, तब उन्होंने दक्षकी छातीपर पैर रखकर दबाया और दोनों हाथोंसे गर्दन मरोड़कर तोड़ डाली। फिर शिवद्रोही दुष्ट दक्षके उस सिरको गणनायक वीरभद्रने अग्निकुण्डमें डाल दिया। तदनन्तर जैसे सूर्य घोर अन्धकार-राशिका नाश करके उदयाचलपर आरूढ़ होते हैं, उसी प्रकार वीर वीरभद्र दक्ष और उनके यज्ञका विध्वंस करके कृतकार्य हो तुरंत ही वहाँसे उत्तम कैलास पर्वतको चले गये। वीरभद्रको काम पूरा करके आया देख परमेश्वर शिव मन-ही-मन बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने उन्हें वीर प्रमथगणोंका अध्यक्ष बना दिया।

(अध्याय ३६-३७)

श्रीविष्णुकी पराजयमें दधीच मुनिके शापको कारण बताते हुए दधीच और क्षुवके विवादका इतिहास, मृत्युंजय-मन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचकी अवध्यता तथा श्रीहरिका क्षुवको दधीचकी पराजयके लिये यत्न करनेका आश्वासन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अमितबुद्धिमान् ब्रह्माजीकी कही हुई यह कथा सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारद विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रश्न किया।

नारदजीने पूछा—पिताजी! भगवान् विष्णु शिवजीको छोड़कर अन्य देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें क्यों चले गये, जिसके कारण वहाँ उनका तिरस्कार हुआ? क्या वे प्रलयकारी पराक्रमवाले भगवान् शंकरको नहीं जानते थे? फिर उन्होंने अज्ञानी पुरुषकी भाँति रुद्रगणोंके साथ युद्ध क्यों किया? करुणानिधे! मेरे मनमें यह बहुत बड़ा संदेह है। आप कृपा करके मेरे इस संशयको नष्ट कर दीजिये और प्रभो! मनमें उत्साह पैदा करनेवाले शिव-चरितको कहिये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! पूर्वकालमें राजा क्षुवकी सहायता करनेवाले श्रीहरिको दधीच मुनिने शाप दे दिया था, जिससे उस समय वे इस बातको भूल गये और वे दूसरे देवताओंको साथ ले दक्षके यज्ञमें चले गये। दधीचने क्यों शाप दिया, यह सुनो। प्राचीन कालमें क्षुव नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी राजा हो गये हैं। वे महाप्रभावशाली मुनीश्वर दधीचके मित्र थे। दीर्घकालकी तपस्याके प्रसङ्गसे क्षुव और दधीचमें विवाद आरम्भ हो गया, जो तीनों लोकोंमें महान् अनर्थकारीके रूपमें विख्यात हुआ। उस विवादमें वेदके विद्वान् शिवभक्त दधीच कहते थे कि शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय—इन तीनों वर्णोंसे ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है, इसमें संशय नहीं है। महामुनि दधीचकी वह बात सुनकर धन-वैभवके मदसे मोहित हुए राजा क्षुवने उसका इस प्रकार प्रतिवाद किया।

क्षुव बोले—राजा इन्द्र आदि आठ लोकपालोंके स्वरूपको धारण करता है। वह समस्त वर्णों और आश्रमोंका पालक एवं प्रभु है। इसलिये राजा ही सबसे श्रेष्ठ है। राजाकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेवाली श्रुति भी कहती है कि राजा सर्वदेवमय है। मुने! इस श्रुतिके कथनानुसार जो सबसे बड़ा देवता है, वह मैं ही हूँ। इस विवेचनसे ब्राह्मणकी अपेक्षा राजा ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है। च्यवननन्दन! आप इस विषयमें विचार करें और मेरा अनादर न करें; क्योंकि मैं सर्वथा आपके लिये पूजनीय हूँ।

राजा क्षुवका यह मत श्रुतियों और स्मृतियोंके विरुद्ध था। इसे सुनकर भृगुकुलभूषण मुनिश्रेष्ठ दधीचको बड़ा क्रोध हुआ। मुने! अपने गौरवका विचार करके कुपित हुए महातेजस्वी दधीचने क्षुवके मस्तकपर बायें मुक्केसे प्रहार किया। उनके मुक्केकी मार खाकर ब्रह्माण्डके अधिपति कुत्सित बुद्धिवाले क्षुव अत्यन्त कुपित हो गरज उठे और उन्होंने वज्रसे दधीचको काट डाला। उस वज्रसे आहत हो भृगुवंशी दधीच पृथ्वीपर गिर पड़े। भार्गव-वंशधर दधीचने गिरते समय शुक्राचार्यका स्मरण किया। योगी शुक्राचार्यने आकर दधीचके शरीरको, जिसे क्षुवने काट डाला था, तुरंत जोड़ दिया। दधीचके अंगोंको पूर्ववत् जोड़कर शिवभक्तशिरोमणि तथा मृत्युंजयविद्याके प्रवर्तक शुक्राचार्यने उनसे कहा।

शुक्र बोले—तात दधीच! मैं सर्वेश्वर भगवान् शिवका पूजन करके तुम्हें श्रुतिप्रतिपादित महामृत्युंजय नामक श्रेष्ठ मन्त्रका उपदेश देता हूँ।

'त्र्यम्बकं यजामहे'—हम भगवान् त्र्यम्बकका यजन

(आराधन) करते हैं। त्र्यम्बकका अर्थ है—तीनों लोकोंके पिता प्रभावशाली शिव। वे भगवान् सूर्य, सोम और अग्नि—तीनों मण्डलोंके पिता हैं। सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके महेश्वर हैं। आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीन तत्त्वोंके; आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—इन तीनों अग्नियोंके; सर्वत्र उपलब्ध होनेवाले पृथ्वी, जल एवं तेज—इन तीन मूर्त भूतोंके (अथवा सात्त्विक आदि भेदसे त्रिविध भूतोंके), त्रिदिव (स्वर्ग) के, त्रिभुजके, त्रिधाभूत सबके ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवताओंके महान् ईश्वर महादेवजी ही हैं। (यहाँतक मन्त्रके प्रथम चरणकी व्याख्या हुई।) मन्त्रका द्वितीय चरण है—'**सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्**'—जैसे फूलोंमें उत्तम गन्ध होती है, उसी प्रकार वे भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंमें, तीनों गुणोंमें, समस्त कृत्योंमें, इन्द्रियोंमें, अन्यान्य देवोंमें और गणोंमें उनके प्रकाशक सारभूत आत्माके रूपमें व्याप्त हैं, अतएव सुगन्धयुक्त एवं सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं। (यहाँतक 'सुगन्धिम्' पदकी व्याख्या हुई। अब 'पुष्टिवर्धनम्' की व्याख्या करते हैं—) उत्तम व्रतका पालन करनेवाले द्विजश्रेष्ठ ! महामुने नारद ! उन अन्तर्यामी पुरुष शिवसे प्रकृतिका पोषण होता है—महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकल्पोंकी पुष्टि होती है तथा मुझ ब्रह्माका, विष्णुका, मुनियोंका और इन्द्रियोंसहित देवताओंका भी पोषण होता है, इसलिये वे ही 'पुष्टिवर्धन' हैं। (अब मन्त्रके तीसरे और चौथे चरणकी व्याख्या करते हैं।) उन दोनों चरणोंका स्वरूप यों है—**उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्**—अर्थात् 'प्रभो ! जैसे खरबूजा पक जानेपर लताबन्धनसे छूट जाता है, उसी तरह मैं मृत्युरूप बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ, अमृतपद (मोक्ष) से पृथक् न होऊँ।' वे रुद्रदेव अमृतस्वरूप हैं; जो पुण्यकर्मसे, तपस्यासे, स्वाध्यायसे, योगसे अथवा ध्यानसे उनकी आराधना करता है, उसे नूतन जीवन प्राप्त होता है। इस सत्यके प्रभावसे भगवान् शिव स्वयं ही अपने भक्तको मृत्युके सूक्ष्म बन्धनसे मुक्त कर देते हैं; क्योंकि वे भगवान् ही बन्धन और मोक्ष देनेवाले हैं—ठीक उसी तरह, जैसे उर्वारुक अर्थात् ककड़ीका पौधा अपने फलको स्वयं ही लताके बन्धनमें बाँधे रखता है और पक जानेपर स्वयं ही उसे बन्धनसे मुक्त कर देता है।'

यह मृतसंजीवनी मन्त्र है, जो मेरे मतसे सर्वोत्तम है। तुम प्रेमपूर्वक नियमसे भगवान् शिवका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। जप और हवनके पश्चात् इसीसे अभिमन्त्रित किये हुए जलको दिन और रातमें पीओ तथा शिवविग्रहके समीप बैठकर उन्हींका ध्यान करते रहो। इससे कहीं भी मृत्युका भय नहीं रहता। न्यास आदि सब कार्य करके विधिवत् भगवान् शिवकी पूजा करो। यह सब करके शान्तभावसे बैठकर भक्तवत्सल शंकरका ध्यान करना चाहिये। मैं भगवान् शिवका ध्यान बता रहा हूँ, जिसके अनुसार उनका चिन्तन करके मन्त्र-जप करना चाहिये। इस तरह निरन्तर जप करनेसे बुद्धिमान् पुरुष भगवान् शिवके प्रभावसे उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है।

मृत्युंजयका ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रव-
त्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम्॥

जो अपने दो करकमलोंमें रक्खे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भींगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ।

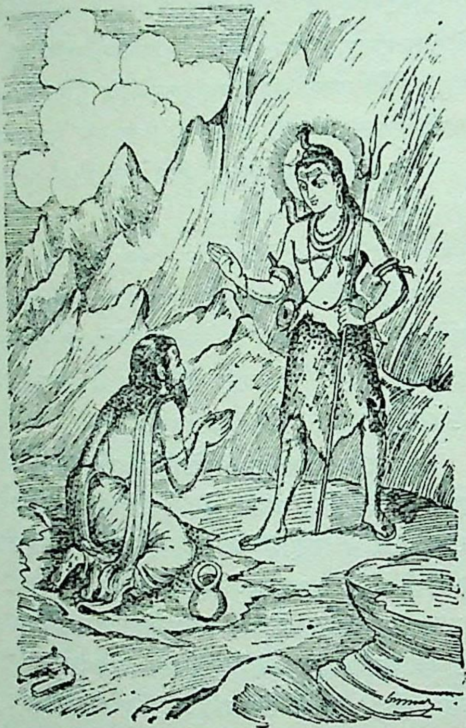
ब्रह्माजी कहते हैं—तात ! मुनिश्रेष्ठ दधीचको इस प्रकार उपदेश देकर शुक्राचार्य भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए अपने स्थानको लौट गये। उनकी वह बात सुनकर महामुनि दधीच बड़े प्रेमसे शिवजीका स्मरण करते हुए तपस्याके लिये वनमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने विधिपूर्वक महामृत्युंजय मन्त्रका जप और प्रेमपूर्वक भगवान् शिवका चिन्तन करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। दीर्घकालतक उस मन्त्रका जप और तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करके दधीचने महामृत्युंजय शिवको संतुष्ट किया। महामुने ! उस जपसे प्रसन्नचित्त हुए भक्तवत्सल भगवान् शिव दधीचके प्रेमवश उनके सामने प्रकट हो गये। अपने प्रभु शम्भुका साक्षात् दर्शन करके मुनीश्वर दधीचको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे



उमासहित भगवान् मृत्युञ्जय

[पृष्ठ १५८

शंकरका स्तवन किया। तात ! मुने ! तदनन्तर मुनिके प्रेमसे प्रसन्न हुए शिवने च्यवनकुमार दधीचसे कहा—'तुम वर माँगो।' भगवान् शिवका यह वचन सुनकर भक्तशिरोमणि दधीच दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो भक्तवत्सल शंकरसे बोले।



दधीचने कहा—देवदेव महादेव ! मुझे तीन वर दीजिये। मेरी हड्डी वज्र हो जाय। कोई भी मेरा वध न कर सके और मैं सर्वत्र अदीन रहूँ—कभी मुझमें दीनता न आये।

दधीचका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए परमेश्वर शिवने 'तथास्तु' कहकर उन्हें वे तीनों वर दे दिये। शिवजीसे तीन वर पाकर वेदमार्गमें प्रतिष्ठित महामुनि दधीच आनन्दमग्न हो गये और शीघ्र ही राजा क्षुवके स्थानमें गये। महादेवजीसे अवध्यता, वज्रमय अस्थि और अदीनता पाकर दधीचने राजेन्द्र क्षुवके मस्तकपर लात मारी। फिर तो राजा क्षुवने भी क्रोध करके दधीचपर वज्रसे प्रहार किया। वे भगवान् विष्णुके गौरवसे अधिक गर्वमें भरे हुए थे। परंतु क्षुवका चलाया हुआ वह वज्र परमेश्वर शिवके प्रभावसे महात्मा दधीचका नाश न कर सका। इससे ब्रह्मकुमार क्षुवको बड़ा विस्मय हुआ। मुनीश्वर दधीचकी अवध्यता, अदीनता तथा वज्रसे भी बढ़-चढ़कर प्रभाव देखकर ब्रह्मकुमार क्षुवके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शीघ्र ही वनमें जाकर इन्द्रके छोटे भाई मुकुन्दकी आराधना आरम्भ की। वे शरणागतपालक नरेश मृत्युंजयसेवक दधीचसे पराजित हो गये थे। क्षुवकी पूजासे गरुडध्वज भगवान् मधुसूदन् बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने राजाको दिव्यदृष्टि प्रदान की। उस दिव्यदृष्टिसे ही जनार्दन देवका दर्शन करके उन गरुडध्वजको क्षुवने प्रणाम किया और प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की। इस प्रकार देवेश्वर आदिसे प्रशंसित उन अजेय ईश्वर श्रीनारायणदेवका पूजन और स्तवन करके राजाने भक्तिभावसे उनकी ओर देखा तथा उन जनार्दनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करनेके पश्चात् उन्हें अपना अभिप्राय सूचित किया।

राजा बोले—भगवन् ! दधीच नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण हैं, जो धर्मके ज्ञाता हैं। उनके हृदयमें विनयका भाव है। वे पहले मेरे मित्र थे। इन दिनों रोग-शोकसे रहित मृत्युंजय महादेवजीकी आराधना करके वे उन्हीं कल्याणकारी शिवके प्रभावसे समस्त अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सदाके लिये अवध्य हो गये हैं। एक दिन उन महातपस्वी दधीचने भरी सभामें आकर अपने बायें पैरसे मेरे मस्तकपर बड़े वेगसे अवहेलनापूर्वक प्रहार किया और बड़े गर्वसे कहा—'मैं किसीसे नहीं डरता।' हरे ! वे मृत्युंजयसे उत्तम वर पाकर अनुपम गर्वसे भर गये हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! महात्मा दधीचकी अवध्यताका समाचार जानकर श्रीहरिने महादेवजीके अतुलित प्रभावका स्मरण किया। फिर वे ब्रह्मपुत्र राजा क्षुवसे बोले—'राजेन्द्र ! ब्राह्मणोंको कहीं थोड़ा-सा भी भय नहीं है। भूपते ! विशेषतः रुद्रभक्तोंके लिये तो भय नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। यदि मैं तुम्हारी ओरसे कुछ करूँ तो ब्राह्मण दधीचको दुःख होगा और वह मुझ-जैसे देवताके लिये भी शापका कारण बन जायगा। राजेन्द्र ! दधीचके शापसे दक्षके यज्ञमें सुरेश्वर शिवसे मेरी पराजय होगी और फिर मेरा उत्थान भी होगा। महाराज ! इसलिये मैं तुम्हारे साथ रहकर कुछ करना नहीं चाहता, मैं अकेला ही तुम्हारे लिये दधीचको जीतनेका प्रयत्न करूँगा।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर क्षुव बोले—'बहुत अच्छा, ऐसा ही हो।' ऐसा कहकर वे उस कार्यके लिये मन-ही-मन उत्सुक हो प्रसन्नतापूर्वक वहीं ठहर गये। (अध्याय ३८)

श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचका उनके लिये शाप और क्षुवपर अनुग्रह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुवका हित-साधन करनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण-कर दधीचके आश्रमपर गये। वहाँ उन जगद्गुरु श्रीहरिने शिवभक्तशिरोमणि ब्रह्मर्षि दधीचको प्रणाम करके क्षुवके कार्यकी सिद्धिके लिये उद्यत हो उनसे यह बात कही।

श्रीविष्णु बोले—भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले अविनाशी ब्रह्मर्षि दधीच ! मैं तुमसे एक वर माँगता हूँ। उसे तुम मुझे दे दो।

क्षुवके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले देवाधिदेव श्रीहरिके इस प्रकार याचना करनेपर शैवशिरोमणि दधीचने शीघ्र ही भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा।

दधीच बोले—ब्रह्मन् ! आप क्या चाहते हैं, यह मुझे ज्ञात हो गया। आप क्षुवका काम बनानेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आये हैं। इसमें संदेह नहीं कि आप पूरे मायावी हैं। किंतु देवेश ! जनार्दन ! मुझे भगवान् रुद्रकी कृपासे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञान सदा ही बना रहता है। सुव्रत ! मैं आपको जानता हूँ। आप पापहारी श्रीहरि एवं विष्णु हैं। यह ब्राह्मणका वेश छोड़िये। दुष्टबुद्धिवाले राजा क्षुवने आपकी आराधना की है। (इसीलिये आप पधारे हैं।) भगवन् ! हरे ! आपकी भक्तवत्सलताको भी मैं जानता हूँ। यह छल छोड़िये। अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरके स्मरणमें मन लगाइये। मैं भगवान् शंकरकी आराधनामें लगा रहता हूँ। ऐसी दशामें भी यदि मुझसे किसीको भय हो तो आप उसे यत्नपूर्वक सत्यकी शपथके साथ कहिये। मेरा मन शिवके स्मरणमें ही लगा रहता है। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। इस संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी मुझे भय नहीं होता।

श्रीविष्णु बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दधीच ! तुम्हारा भय सर्वत्र नष्ट ही है; क्योंकि तुम शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हो। इसलिये सर्वज्ञ हो। परंतु मेरे कहनेसे तुम एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुवसे जाकर कह दो कि 'राजेन्द्र ! मैं तुमसे डरता हूँ।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी शैवशिरोमणि महामुनि दधीच निर्भय ही रहे और हँसकर बोले।

दधीचने कहा—मैं देवाधिदेव पिनाकपाणि भगवान् शम्भुके प्रसादसे कहीं, कभी, किसीसे और किंचिन्मात्र भी नहीं डरता—सदा ही निर्भय रहता हूँ।

इसपर श्रीहरिने मुनिको दबानेकी चेष्टा की। देवताओंने भी उनका साथ दिया; किंतु सबके सभी अस्त्र कुण्ठित हो गये। तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने अगणित गणोंकी सृष्टि की। परंतु महर्षिने उनको भी भस्म कर दिया। तब भगवान्ने अपनी अनन्त विष्णुमूर्ति प्रकट की। यह सब देखकर च्यवन-कुमारने वहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुसे कहा।

दधीच बोले—महाबाहो ! मायाको त्याग दीजिये। विचार करनेसे यह प्रतिभासमात्र प्रतीत होती है। माधव ! मैंने सहस्रों दुर्विज्ञेय वस्तुओंको जान लिया है। आप मुझमें अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को देखिये। निरालस्य होकर मुझमें ब्रह्मा एवं रुद्रका भी दर्शन कीजिये। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ।

ऐसा कहकर भगवान् शिवके तेजसे पूर्ण शरीरवाले च्यवन कुमार दधीच मुनिने अपनी देहमें समस्त ब्रह्माण्डका दर्शन कराया। तब भगवान् विष्णुने उनपर पुनः कोप करना चाहा। इतनेमें ही मेरे साथ राजा क्षुव वहाँ आ पहुँचे। मैंने निश्चेष्ट खड़े हुए भगवान् पद्मनाभको तथा देवताओंको क्रोध करनेसे रोका। मेरी बात सुनकर इन लोगोंने ब्राह्मण दधीचको परास्त नहीं किया। श्रीहरि उनके पास गये और उन्होंने मुनिको प्रणाम किया। तदनन्तर क्षुव अत्यन्त दीन हो उन मुनीश्वर दधीचके निकट गये और उन्हें प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे।

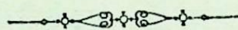
क्षुव बोले—मुनिश्रेष्ठ ! शिवभक्तशिरोमणे ! मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर ! आप दुर्जनोंकी दृष्टिसे दूर रहनेवाले हैं। मुझपर कृपा कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! राजा क्षुवकी यह बात सुनकर तपस्याकी निधि ब्राह्मण दधीचने उनपर अनुग्रह किया। तत्पश्चात् श्रीविष्णु आदिको देखकर वे मुनि क्रोधसे व्याकुल हो गये और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विष्णु तथा देवताओंको शाप देने लगे।

दधीचने कहा—देवराज इन्द्रसहित देवताओ और मुनीश्वरो ! तुमलोग रुद्रकी क्रोधाग्निसे श्रीविष्णु तथा अपने गणोंसहित पराजित और ध्वस्त हो जाओ।

देवताओंको इस तरह शाप दे क्षुवकी ओर देखकर

देवताओं और राजाओंके पूजनीय द्विजश्रेष्ठ दधीचने कहा—'राजेन्द्र ! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं ।' ऐसा स्पष्टरूपसे कहकर ब्राह्मण दधीच अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये । फिर दधीचको नमस्कारमात्र करके क्षुव अपने घर चले गये । तत्पश्चात् भगवान् विष्णु देवताओंके साथ जैसे आये थे, उसी तरह अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये । इस प्रकार वह स्थान स्थानेश्वर नामक तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया । स्थानेश्वरकी यात्रा करके मनुष्य शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है । तात ! मैंने तुम्हें संक्षेपसे क्षुव और दधीचके विवादकी कथा सुनायी और भगवान् शंकरको छोड़कर केवल ब्रह्मा और विष्णुको ही जो शाप प्राप्त हुआ, उसका भी वर्णन किया । जो क्षुव और दधीचके विवादसम्बन्धी इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, वह अपमृत्युको जीतकर देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाता है । जो इसका पाठ करके रणभूमिमें प्रवेश करता है, उसे कभी मृत्युका भय नहीं होता तथा वह निश्चय ही विजयी होता है । (अध्याय ३९)



देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, श्रीविष्णुका उन्हें शिवसे क्षमा माँगनेकी अनुमति दे उनको साथ ले कैलासपर जाना तथा भगवान् शिवसे मिलना

नारदजीने कहा—विधातः ! महाप्राज्ञ ! आप शिव-तत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले हैं । आपने यह बड़ी अद्भुत एवं रमणीय शिवलीला सुनायी है । तात ! वीर वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वतपर चले गये, तब क्या हुआ ? यह हमें बताइये ।

ब्रह्माजी बोले—नारद ! रुद्रदेवके सैनिकोंने जिनके अङ्गभङ्ग कर दिये थे, वे समस्त पराजित देवता और मुनि उस समय मेरे लोकमें आये । वहाँ मुझ स्वयम्भूको नमस्कार करके सबने बारंबार मेरा स्तवन किया । फिर अपने विशेष क्लेश-को पूर्णरूपसे सुनाया । उसे सुनकर मैं पुत्रशोकसे पीड़ित हो गया और अत्यन्त व्यग्र हो व्यथित चित्तसे बड़ी चिन्ता करने लगा । फिर मैंने भक्तिभावसे भगवान् विष्णुका स्मरण किया । इससे मुझे समयोचित ज्ञान प्राप्त हुआ । तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और वहाँ भगवान् विष्णुको नमस्कार एवं नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके उनसे अपना दुःख निवेदन किया । मैंने कहा—'देव ! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यजमान जीवित हो और समस्त देवता तथा मुनि सुखी हो जायँ, वैसा उपाय कीजिये । देवदेव ! रमानाथ ! देवसुखदायक विष्णो ! हम देवता और मुनि निश्चय ही आपकी शरणमें आये हैं ।'

मुझ ब्रह्माकी यह बात सुनकर भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु, जिनका मन सदा शिवमें लगा रहता है और जिनके हृदयमें कभी दीनता नहीं आती, शिवका स्मरण करके इस प्रकार बोले ।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओ ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई अपराध बन जाय तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये वह अपराध मङ्गलकारी नहीं हो सकता । विधातः ! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी हैं; क्योंकि इन्होंने भगवान् शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया । अब तुम सब लोग शुद्ध हृदयसे शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले उन भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो । उनसे क्षमा माँगो । जिन भगवान्के कुपित होनेपर यह सारा जगत् नष्ट हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालोंसहित यज्ञका जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, वे भगवान् महादेव इस समय अपनी प्राणवल्लभा सतीसे बिछुड़ गये हैं तथा अत्यन्त दुरात्मा दक्षने अपने दुर्वचनरूपी बाणोंसे उनके हृदयको पहलेसे ही घायल कर दिया है; अतः तुमलोग शीघ्र ही जाकर उनसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो । विधे ! उन्हें शान्त करनेका केवल यही सबसे बड़ा उपाय है । मैं समझता हूँ ऐसा करनेसे भगवान् शंकरको संतोष होगा । यह मैंने सच्ची बात कही है । ब्रह्मन् ! मैं भी तुम सब लोगोंके साथ शिवके निवास-स्थानपर चलूँगा और उनसे क्षमा माँगूँगा ।

देवता आदि सहित मुझ ब्रह्माको इस प्रकार आदेश देकर श्रीहरिने देवगणोंके साथ कैलास पर्वतपर जानेका विचार किया । तदनन्तर देवता, मुनि और प्रजापति आदि जिनके स्वरूप ही हैं, वे श्रीहरि उन सबको साथ ले अपने वैकुण्ठधाम-से भगवान् शिवके शुभ निवास गिरिश्रेष्ठ कैलासको गये । कैलास भगवान् शिवको सदा ही अत्यन्त प्रिय है । मनुष्योंसे भिन्न किंनर, अप्सराएँ और योगसिद्ध महात्मा पुरुष उसका भलीभाँति सेवन करते हैं तथा वह पर्वत बहुत ही ऊँचा है । उसके निकट रुद्रदेवके मित्र कुबेरकी अलका नामक महादिव्य एवं रमणीय पुरी है, जिसे सब देवताओंने देखा ।

उस पुरीके पास ही सौगन्धिक वन भी देवताओंकी दृष्टिमें आया, जो सब प्रकारके वृक्षोंसे हरा-भरा एवं दिव्य था। उसके भीतर सर्वत्र सुगन्ध फैलानेवाले सौगन्धिक नामक कमल खिले हुए थे। उसके बाहरी भागमें नन्दा और अलकनन्दा—ये दो अत्यन्त पावन दिव्य सरिताएँ बहती हैं, जो दर्शनमात्रसे प्राणियोंके पाप हर लेती हैं। यक्षराज कुबेरकी अलकापुरी और सौगन्धिक वनको पीछे छोड़कर आगे बढ़ते हुए देवताओंने थोड़ी ही दूरपर शंकरजीके वटवृक्षको देखा। उसने चारों ओर अपनी अविचल छाया फैला रक्खी थी। वह वृक्ष सौ योजन ऊँचा था और उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक फैली हुई थीं। उसपर कोई घोंसला नहीं था और ग्रीष्मका ताप तो उससे सदा दूर ही रहता था। बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंको ही उसका दर्शन हो सकता है। वह परम रमणीय और अत्यन्त पावन है। वह दिव्य वृक्ष भगवान् शम्भुका योगस्थल है। योगियोंके द्वारा सेव्य और परम उत्तम है। मुमुक्षुओंके आश्रयभूत उस महायोगमय वटवृक्षके नीचे विष्णु आदि सब देवताओंने भगवान् शंकरको विराजमान देखा। मेरे पुत्र महासिद्ध सनकादि, जो सदा शिव-भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और शान्त हैं, बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी सेवामें बैठे थे। भगवान् शिवका श्रीविग्रह परम शान्त दिखायी देता था। उनके सखा कुबेर, जो गुह्यकों और राक्षसोंके स्वामी हैं, अपने सेवकगणों तथा कुटुम्बीजनोंके साथ सदा विशेषरूपसे उनकी सेवा किया करते हैं। वे परमेश्वर शिव उस समय तपस्वीजनोंको परम प्रिय लगनेवाला सुन्दर रूप धारण किये बैठे थे। भस्म आदिसे उनके अङ्गोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। भगवान् शिव अपने वत्सल स्वभावके कारण सारे संसारके सुहृद् हैं। नारद! उस दिन वे एक कुशासनपर बैठे थे और सब संतोंके सुनते हुए तुम्हारे प्रश्न करनेपर तुम्हें उत्तम ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वे बायाँ चरण अपनी दायीं जाँघपर और बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रक्खे, कलाईमें रुद्राक्षकी माला डाले सुन्दर तर्क-मुद्रा[1]से विराजमान थे।

इस रूपमें भगवान् शिवका दर्शन करके उस समय विष्णु आदि सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर तुरंत उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मेरे साथ भगवान् विष्णुको आया देख सत्पुरुषोंके आश्रयदाता भगवान् रुद्र उठकर खड़े हो गये और उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम भी किया। फिर विष्णु आदि सब देवताओंने जब भगवान् शिवको प्रणाम कर लिया, तब उन्होंने मुझे नमस्कार किया—ठीक उसी तरह, जैसे लोकोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु प्रजापति कश्यपको प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् देवताओं, सिद्धों, गणाधीशों और महर्षियोंसे नमस्कृत तथा स्वयं भी (श्रीविष्णु-को एवं मुझको) नमस्कार करनेवाले भगवान् शिवसे श्रीहरिने आदरपूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया। (अध्याय ४०)

देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, भगवान् शिवका देवता आदिके अङ्गोंके ठीक होने और दक्षके जीवित होनेका वरदान देना, श्रीहरि आदिके साथ यज्ञमण्डपमें पधारकर शिवका दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिके द्वारा उनकी स्तुति

देवताओंने भगवान् शिवजीकी अत्यन्त विनयके साथ स्तुति करते हुए अन्तमें कहा—आप पर (उत्कृष्ट), परमेश्वर, परात्पर तथा परात्परतर हैं। आप सर्वव्यापी विश्वमूर्ति महेश्वरको नमस्कार है। आप विष्णुकलत्र, विष्णुक्षेत्र, भानु, भैरव, शरणागतवत्सल, त्र्यम्बक तथा विहरणशील हैं। आप मृत्युंजय हैं। शोक भी आपका ही रूप है, आप त्रिगुण एवं गुणात्मा हैं। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। आप सबके कारण तथा धर्ममर्यादास्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपने अपने ही तेजसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। आप निर्विकार, प्रकाशपूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, परब्रह्म परमात्मा हैं। महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और चन्द्र आदि समस्त देवता तथा मुनि आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। चूँकि आप अपने शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके समस्त संसारका पोषण करते हैं, इसलिये अष्टमूर्ति कहलाते हैं। आप ही सबके आदि-कारण करुणामय ईश्वर हैं। आपके भयसे यह वायु चलती है। आपके भयसे अग्नि जलानेका काम करती है, आपके भयसे सूर्य तपता है और आपके ही भयसे मृत्यु सब ओर दौड़ती फिरती है। दयासिन्धो! महेशान! परमेश्वर! प्रसन्न होइये।

[1] तर्जनीको अँगूठेसे जोड़कर और अन्य अँगुलियोंको आपसमें मिलाकर फैला देनेसे जो बन्ध सिद्ध होता है, उसे 'तर्कमुद्रा' कहते हैं। इसीका नाम 'ज्ञानमुद्रा' भी है।

हम नष्ट और अचेत हो रहे हैं। अतः सदा ही हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। नाथ! करुणानिधे! शम्भो! आपने अबतक नाना प्रकारकी आपत्तियोंसे जिस तरह हमें सदा सुरक्षित रक्खा है, उसी तरह आज भी आप हमारी रक्षा कीजिये। नाथ! दुर्गेश! आप शीघ्र कृपा करके इस अपूर्ण यज्ञका और प्रजापति दक्षका भी उद्धार कीजिये। भगको अपनी आँखें मिल जायँ, यजमान दक्ष जीवित हो जायँ, पूषाके दाँत जम जायँ और भृगुकी दाढ़ी-मूँछ पहले-जैसी हो जाय। शंकर! आयुधों और पत्थरोंकी वर्षासे जिनके अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं, उन देवता आदिपर आप सर्वथा अनुग्रह करें, जिससे उन्हें पूर्णतः आरोग्य लाभ हो। नाथ! यज्ञकर्म पूर्ण होनेपर जो कुछ शेष रहे, वह सब आपका पूरा-पूरा भाग हो (उसमें और कोई हस्तक्षेप न करे)। रुद्रदेव! आपके भागसे ही यज्ञ पूर्ण हो, अन्यथा नहीं।

ऐसा कहकर मुझ ब्रह्माके साथ सभी देवता अपराध क्षमा करानेके लिये उद्यत हो हाथ जोड़ भूमिपर दण्डके समान पड़ गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुझ ब्रह्मा, लोकपाल, प्रजापति तथा मुनियोंसहित श्रीपति विष्णुके अनुनय-विनय करनेपर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये। देवताओंको आश्वासन दे हँसकर उनपर परम अनुग्रह करते हुए करुणानिधान परमेश्वर शिवने कहा।

श्रीमहादेवजी बोले—सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा और विष्णुदेव! आप दोनों सावधान होकर मेरी बात सुनें, मैं सच्ची बात कहता हूँ! तात! आप दोनोंकी सभी बातोंको मैंने सदा माना है। दक्षके यज्ञका यह विध्वंस मैंने नहीं किया है। दक्ष स्वयं ही दूसरोंसे द्वेष करते हैं। दूसरोंके प्रति जैसा बर्ताव किया जायगा, वह अपने लिये ही फलित होगा। अतः ऐसा कर्म कभी नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला हो*। दक्षका मस्तक जल गया है, इसलिये इनके सिरके स्थानमें बकरेका सिर जोड़ दिया जाय; भग देवता मित्रकी आँखसे अपने यज्ञभागको देखें। तात! पूषा नामक देवता, जिनके दाँत टूट गये हैं, यजमानके दाँतोंसे भलीभाँति पिसे गये यज्ञान्नका भक्षण करें। यह मैंने सच्ची बात बतायी है। मेरा विरोध करनेवाले भृगुकी दाढ़ीके स्थानमें बकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय। शेष सभी देवताओंके, जिन्होंने मुझे यज्ञभागके रूपमें यज्ञकी अवशिष्ट वस्तुएँ दी हैं, सारे अङ्ग पहलेकी भाँति ठीक हो जायँ। अध्वर्यु आदि याज्ञिकोंमेंसे, जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनीकुमारोंकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे अपने काम चलायें। यह मैंने आपलोगोंके प्रेमवश कहा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वेदका अनुसरण करनेवाले सुरसम्राट् चराचर दयालु परमेश्वर महादेवजी चुप हो गये। भगवान् शंकरका वह भाषण सुनकर श्रीविष्णु और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो उन्हें तत्काल साधुवाद देने लगे। तदनन्तर भगवान् शम्भुको आमन्त्रित करके मुझ ब्रह्मा और देवर्षियोंके साथ श्रीविष्णु अत्यन्त हर्षपूर्वक पुनः दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चले। इस प्रकार उनकी प्रार्थनासे भगवान् शम्भु विष्णु आदि देवताओंके साथ कनखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें पधारे। उस समय रुद्रदेवने वहाँ यज्ञका और विशेषतः देवताओं तथा ऋषियोंका जो वीरभद्रके द्वारा विध्वंस किया गया था, उसे देखा। स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती, अन्य समस्त ऋषि, पितर, अग्नि तथा अन्यान्य बहुत-से यक्ष, गन्धर्व और राक्षस वहाँ पड़े थे। उनमेंसे कुछ लोगोंके अङ्ग तोड़ डाले गये थे,



* परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥
परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत्कदाचन।
(शि० पु० रु० सं० स० ख० ४२। ५-६)

कुछ लोगोंके बाल नोच लिये गये थे और कितने ही उस समराङ्गणमें अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे थे। उस यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने अपने गणनायक महापराक्रमी वीरभद्रको बुलाकर हँसते हुए कहा—'महाबाहु वीरभद्र! यह तुमने कैसा काम किया? तात! तुमने थोड़ी ही देरमें देवता तथा ऋषि आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया। वत्स! जिसने ऐसा द्रोहपूर्ण कार्य किया, इस विलक्षण यज्ञका आयोजन किया और जिसे ऐसा फल मिला, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ।'

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वीरभद्रने बड़ी उतावलीके साथ दक्षका धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया। दक्षके उस शवको सिरसे रहित देख लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरने आगे खड़े हुए वीरभद्रसे हँसकर पूछा—'दक्षका सिर कहाँ है?' तब प्रभावशाली वीरभद्रने कहा—'प्रभो शंकर! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको आगमें होम दिया था।' वीरभद्रकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवताओंको प्रसन्नतापूर्वक वैसी ही आज्ञा दी, जो पहले दे रक्खी थी। भगवान् भवने उस समय जो कुछ कहा, उसकी मेरेद्वारा पूर्ति कराकर श्रीहरि आदि सब देवताओंने भृगु आदि सबको शीघ्र ही ठीक कर दिया। तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापतिके धड़के साथ यज्ञपशु बकरेका सिर जोड़ दिया गया। उस सिरके जोड़े जाते ही शम्भुकी शुभ दृष्टि पड़नेसे प्रजापतिके शरीरमें प्राण आ गये और वे तत्काल सोकर जगे हुए पुरुषकी भाँति उठ कर खड़े हो गये। उठते ही उन्होंने अपने सामने करुणानिधि भगवान् शंकरको देखा। देखते ही दक्षके हृदयमें प्रेम उमड़ आया। उस प्रेमने उनके अन्तःकरणको निर्मल एवं प्रसन्न कर दिया। पहले महादेवजीसे द्वेष करनेके कारण उनका अन्तःकरण मलिन हो गया था। परंतु उस समय शिवके दर्शनसे वे तत्काल शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति निर्मल हो गये। उनके मनमें भगवान् शिवकी स्तुति करनेका विचार उत्पन्न हुआ। परंतु वे अनुरागाधिक्यके कारण तथा अपनी मरी हुई पुत्रीका स्मरण करके व्याकुल हो जानेके कारण तत्काल उनका स्तवन न कर सके। थोड़ी देर बाद मन स्थिर होनेपर दक्षने लज्जित हो लोकशंकर शिवशंकरको प्रणाम किया और उनकी स्तुति आरम्भ की। उन्होंने भगवान् शंकरकी महिमा गाते हुए बारंबार उन्हें प्रणाम किया। फिर अन्तमें कहा—

'परमेश्वर! आपने ब्रह्मा होकर सबसे पहले आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अपने मुखसे विद्या, तप और व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था। जैसे ग्वाला लाठी लेकर गौओंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार मर्यादाका पालन करनेवाले आप परमेश्वर दण्ड धारण किये उन साधु ब्राह्मणोंकी सभी विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं। मैंने दुर्वचनरूपी बाणोंसे आप परमेश्वरको बींध डाला था। फिर भी आप मुझपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आ गये। अब मेरी ही तरह अत्यन्त दैन्यपूर्ण आशावाले इन देवताओंपर भी कृपा कीजिये। भक्तवत्सल! दीनबन्धो! शम्भो! मुझमें आपको प्रसन्न करनेके लिये कोई गुण नहीं है। आप षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न परात्पर परमात्मा हैं। अतः अपने ही बहुमूल्य उदारतापूर्ण बर्तावसे मुझपर संतुष्ट हों।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार लोककल्याणकारी महाप्रभु महेश्वर शंकरकी स्तुति करके विनीतचित्त प्रजापति दक्ष चुप हो गये। तदनन्तर श्रीविष्णुने हाथ जोड़ भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्ण हृदय और वाष्पगद्गद वाणीद्वारा उनकी स्तुति प्रारम्भ की।

तदनन्तर मैंने कहा—देवदेव! महादेव! करुणासागर! प्रभो! आप स्वतन्त्र परमात्मा हैं, अद्वितीय एवं अविनाशी परमेश्वर हैं। देव! ईश्वर! आपने मेरे पुत्रपर अनुग्रह किया। अपने अपमानकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर दक्षके यज्ञका उद्धार कीजिये। देवेश्वर! आप प्रसन्न होइये और समस्त शापोंको दूर कर दीजिये। आप सज्ञान हैं। अतः आप ही मुझे कर्तव्यकी ओर प्रेरित करनेवाले हैं और आप ही अकर्तव्यसे रोकनेवाले हैं।

महामुने! इस प्रकार परम महेश्वरकी स्तुति करके मैं दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। तब सुन्दर विचार रखनेवाले इन्द्र आदि देवता और लोकपाल शंकरदेवकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवान् शिवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा था। इसके बाद प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवताओं, दूसरे-दूसरे सिद्धों, ऋषियों और प्रजापतियोंने भी शंकरजीका सहर्ष स्तवन किया। इसके अतिरिक्त उपदेवों, नागों, सदस्यों तथा ब्राह्मणोंने पृथक्-पृथक् प्रणामपूर्वक बड़े भक्तिभावसे उनकी स्तुति की। (अध्याय ४१-४२)



शिवजीके द्वारा दक्षके बकरेका सिर लगाना

[पृष्ठ १६४

भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवताओंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, सब देवता आदिका अपने-अपने स्थानको जाना, सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार श्रीविष्णुके, मेरे, देवताओं और ऋषियोंके तथा अन्य लोगोंके स्तुति करनेपर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए । फिर उन शम्भुने समस्त ऋषियों, देवता आदिको कृपादृष्टिसे देखकर तथा मुझ ब्रह्मा और विष्णुका समाधान करके दक्षसे इस प्रकार कहा ।

महादेवजी बोले—प्रजापति दक्ष ! मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनो । मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । यद्यपि मैं सबका ईश्वर और स्वतन्त्र हूँ, तो भी सदा ही अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ । चार प्रकारके पुण्यात्मा पुरुष मेरा भजन करते हैं । दक्ष प्रजापते ! उन चारों भक्तोंमें पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं । उनमें पहला आर्त, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है । पहलेके तीन तो सामान्य श्रेणीके भक्त हैं । किंतु चौथाका अपना विशेष महत्त्व है । उन सब भक्तोंमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है । वह मेरा रूप माना गया है । उससे बढ़कर दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ।* मैं आत्मज्ञ हूँ । वेद-वेदान्तके पारगामी विद्वान् ज्ञानके द्वारा मुझे जान सकते हैं । जिनकी बुद्धि मन्द है, वे ही ज्ञानके बिना मुझे पानेका प्रयत्न करते हैं । कर्मके अधीन हुए मूढ़ मानव मुझे वेद, यज्ञ, दान और तपस्या-द्वारा भी कभी नहीं पा सकते ।

अतः दक्ष ! आजसे तुम बुद्धिके द्वारा मुझ परमेश्वरको जानकर ज्ञानका आश्रय ले समाहित-चित्त होकर कर्म करो । प्रजापते ! तुम उत्तम बुद्धिके द्वारा मेरी दूसरी बात भी सुनो । मैं अपने सगुण स्वरूपके विषयमें भी इस गोपनीय रहस्यको धर्मकी दृष्टिसे तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ । जगत्का परम कारणरूप मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ । मैं सबका आत्मा ईश्वर और साक्षी हूँ । स्वयम्प्रकाश तथा निर्विशेष हूँ ! मुने ! अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करता हुआ उन क्रियाओंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करता हूँ । उस अद्वितीय (भेदरहित) केवल (विशुद्ध) मुझ परब्रह्म परमात्मामें ही अज्ञानी पुरुष ब्रह्म, ईश्वर तथा अन्य समस्त जीवोंको भिन्नरूपसे देखता है । जैसे मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी परकीय बुद्धि कभी नहीं करता, उसी तरह मेरा भक्त प्राणिमात्रमें मुझसे भिन्नता नहीं देखता । दक्ष ! मैं, ब्रह्मा और विष्णु तीनों स्वरूपतः एक ही हैं तथा हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं—ऐसा समझकर जो हम तीनों देवताओंमें भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है । जो नराधम हम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि रखता है; वह निश्चय ही जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तबतक नरकमें निवास करता है ।* दक्ष ! यदि कोई विष्णुभक्त होकर मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त होकर विष्णुकी निन्दा करेगा तो तुम्हें दिये हुए पूर्वोक्त सारे शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती† ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! भगवान् महेश्वरके इस

---

* चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा ।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठास्तेषां दक्ष प्रजापते ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैव चतुर्थकः ।
पूर्वे त्रयश्च सामान्याश्चतुर्थो हि विशिष्यते ॥
तत्र ज्ञानी प्रियतरो मम रूपं च स स्मृतः ।
तस्मात्प्रियतरो नान्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३ । ४—६)

* सर्वभूतात्मनामेकभावानां यो न पश्यति ।
त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शान्तिमधिगच्छति ॥
यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः ।
नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम् ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३ । १६-१७)

† हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवो भवेद्यदि ।
तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्नहि ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३ । २१)

सुखदायक वचनको सुनकर सब देवता, मुनि आदिको उस अवसरपर बड़ा हर्ष हुआ । कुटुम्बसहित दक्ष बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवभक्तिमें तत्पर हो गया । वे देवता आदि भी शिवको ही सर्वेश्वर जानकर भगवान् शिवके भजनमें लग गये । जिसने जिस प्रकार परमात्मा शम्भुकी स्तुति की थी, उसे उसी प्रकार संतुष्टचित्त हुए शम्भुने वर दिया । मुने ! तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त हुए शिवभक्त दक्षने शिवके ही अनुग्रहसे अपना यज्ञ पूरा किया । उन्होंने देवताओंको तो यज्ञभाग दिये ही, शिवको भी पूर्ण भाग दिया । साथ ही ब्राह्मणोंको दान दिया ! इस तरह उन्हें शम्भुका अनुग्रह प्राप्त हुआ । इस प्रकार महादेवजीके उस महान् कर्मका विधिपूर्वक वर्णन किया गया । प्रजापतिने ऋत्विजोंके सहयोगसे उस यज्ञकर्मको विधिवत् समाप्त किया । मुनीश्वर ! इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप शंकरके प्रसादसे वह दक्षका यज्ञ पूरा हुआ । तदनन्तर सब देवता और ऋषि संतुष्ट हो भगवान् शिवके यशका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये । दूसरे लोग भी उस समय वहाँसे सुखपूर्वक बिदा हो गये । मैं और श्रीविष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् शिवके सर्वमङ्गलदायक सुयशका निरन्तर गान करते हुए अपने-अपने स्थानको सानन्द चले आये । सत्पुरुषोंके आश्रयभूत महादेवजी भी दक्षसे सम्मानित हो प्रीति और प्रसन्नताके साथ गणोंसहित अपने निवासस्थान कैलास पर्वतको चले गये । अपने पर्वतपर आकर शम्भुने अपनी प्रिया सतीका स्मरण किया और प्रधान-प्रधान गणोंसे उनकी कथा कही ।

इस प्रकार दक्षकन्या सती यज्ञमें अपने शरीरको त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुईं, यह बात प्रसिद्ध है । फिर वहाँ तपस्या करके गौरी शिवाने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया । वे उनके वामाङ्गमें स्थान पाकर अद्भुत लीलाएँ करने लगीं । नारद ! इस तरह मैंने तुमसे सतीके परम अद्भुत दिव्य चरित्रका वर्णन किया है, जो भोग और मोक्षको देनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । यह उपाख्यान पापको दूर करनेवाला, पवित्र एवं परम पावन है । स्वर्ग, यश तथा आयुको देनेवाला तथा पुत्र-पौत्र-रूप फल प्रदान करनेवाला है । तात ! जो भक्तिमान् पुरुष भक्तिभावसे लोगोंको यह कथा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर परलोकमें परमगतिको प्राप्त कर लेता है ।

(अध्याय ४३)

॥ रुद्रसंहिताका सतीखण्ड सम्पूर्ण ॥





वर-वेषमें भगवान् शिव

[पृष्ठ २२५

रुद्रसंहिता, तृतीय (पार्वती) खण्ड

हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! पिताके यज्ञमें अपने शरीर-का परित्याग करके दक्षकन्या जगदम्बा सती देवी किस प्रकार गिरिराज हिमालयकी पुत्री हुईं? किस तरह अत्यन्त उग्र तपस्या करके उन्होंने पुनः शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त किया? यह मेरा प्रश्न है, आप इसपर भलीभाँति और विशेषरूपसे प्रकाश डालिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! नारद! तुम पहले पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह और अन्य भक्तिवर्द्धक पावन चरित्र सुनो। मुनिश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमवान् नामक महान् पर्वत है, जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है। उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं—एक स्थावर और दूसरा जंगम। मैं संक्षेपसे उसके सूक्ष्म (स्थावर) स्वरूपका वर्णन करता हूँ। वह रमणीय पर्वत नाना प्रकारके रत्नोंका आकर (खान) है और पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके इस तरह खड़ा है, मानो भूमण्डल-को नापनेके लिये कोई मानदण्ड हो। वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है और अनेक शिखरोंके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता है। सिंह, व्याघ्र आदि पशु सदा सुख-पूर्वक उसका सेवन करते हैं। हिमका तो वह भंडारी ही है, इसलिये अत्यन्त उग्र जान पड़ता है। भाँति-भाँतिके आश्चर्य-जनक दृश्योंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। देवता, ऋषि, सिद्ध और मुनि उस पर्वतका आश्रय लेकर रहते हैं। भगवान् शिवको वह बहुत ही प्रिय है, तपस्या करनेका स्थान है। स्वरूपसे ही वह अत्यन्त पवित्र और महात्माओंको भी पावन करनेवाला है। तपस्यामें वह अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है। अनेक प्रकारके धातुओंकी खान और शुभ है। वही दिव्य शरीर धारण करके सर्वाङ्गसुन्दर रमणीय देवताके रूपमें भी स्थित है। भगवान् विष्णुका अविकृत अंश है, इसीलिये वह शैलराज साधु-संतोंको अधिक प्रिय है।

एक समय गिरिवर हिमवान्ने अपनी कुल-परम्पराकी स्थिति और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताओं तथा पितरोंका हित करनेकी अभिलाषासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की। मुनीश्वर! उस अवसरपर सम्पूर्ण देवता अपने स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

देवताओंने कहा—पितरो! आप सब लोग प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि देवताओंका कार्य सिद्ध करना आपको भी अभीष्ट हो तो शीघ्र वैसा ही करें। आपकी ज्येष्ठ पुत्री जो मेना नामसे प्रसिद्ध है, वह मङ्गलरूपिणी है। उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमवान् पर्वतसे कर दें। ऐसा करनेपर आप सब लोगोंको सर्वथा महान् लाभ होगा और देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा।

देवताओंकी यह बात सुनकर पितरोंने परस्पर विचार करके स्वीकृति दे दी और अपनी पुत्री मेनाको विधिपूर्वक हिमालयके हाथमें दे दिया। उस परम मङ्गलमय विवाहमें बड़ा उत्सव मनाया गया। मुनीश्वर नारद! मेनाके साथ हिमालयके शुभ विवाहका यह सुखद प्रसङ्ग मैंने तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहा है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—विधे! विद्वन्! अब आदरपूर्वक मेरे सामने मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये। उसे किस प्रकार शाप प्राप्त हुआ था, यह कहिये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—मुने! मैंने अपने दक्ष नामक जिस पुत्रकी पहले चर्चा की है, उनके साठ कन्याएँ हुई थीं, जो सृष्टिकी उत्पत्तिमें कारण बनीं। नारद! दक्षने कश्यप आदि श्रेष्ठ मुनियोंके साथ उनका विवाह किया था, यह सब वृत्तान्त तो तुम्हें विदित ही है। अब प्रस्तुत विषयको सुनो। उन कन्याओंमें एक स्वधा नामकी कन्या थी, जिसका विवाह उन्होंने पितरोंके साथ किया। स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो सौभाग्यशालिनी तथा धर्मकी मूर्ति थीं। उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रीका नाम 'मेना' था। मँझली 'धन्या'के नामसे प्रसिद्ध थी और सबसे छोटी कन्याका नाम 'कलावती' था। ये सारी कन्याएँ पितरोंकी मानसी पुत्रियाँ थीं—उनके मनसे प्रकट हुई थीं। इनका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ था, अतएव ये अयोनिजा थीं; केवल लोकव्यवहारसे स्वधाकी पुत्री मानी जाती थीं। इनके सुन्दर नामोंका कीर्तन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। ये सदा सम्पूर्ण जगत्की वन्दनीया लोकमाताएँ हैं और उत्तम अभ्युदयसे सुशोभित

रहती हैं। सब-की-सब परम योगिनी, ज्ञाननिधि तथा तीनों लोकोंमें सर्वत्र जा सकनेवाली हैं। मुनीश्वर! एक समय वे तीनों बहिनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनका दर्शन करनेके लिये गयीं। भगवान् विष्णुको प्रणाम और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करके वे उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गयीं। उस समय वहाँ संतोंका बड़ा भारी समाज एकत्र हुआ था।

मुने! उसी अवसरपर मेरे पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिकी स्तुति-वन्दना करके उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गये। सनकादि मुनि देवताओंके आदिपुरुष और सम्पूर्ण लोकोंमें वन्दित हैं। वे जब वहाँ आकर खड़े हुए, उस समय श्वेतद्वीपके सब लोग उन्हें देख प्रणाम करते हुए उठकर खड़े हो गये। परंतु ये तीनों बहिनें उन्हें देखकर भी वहाँ नहीं उठीं। इससे सनत्कुमारने उनको (मर्यादा-रक्षार्थ) उन्हें स्वर्गसे दूर होकर नर-स्त्री बननेका शाप दे दिया। फिर उनके प्रार्थना करनेपर वे प्रसन्न हो गये और बोले।

सनत्कुमारने कहा—पितरोंकी तीनों कन्याओ! तुम प्रसन्नचित्त होकर मेरी बात सुनो। यह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख देनेवाली है। तुममेंसे जो ज्येष्ठ है, वह भगवान् विष्णुके अंशभूत हिमालय गिरिकी पत्नी हो। उससे जो कन्या होगी, वह 'पार्वती'के नामसे विख्यात होगी। पितरोंकी दूसरी प्रिय कन्या, योगिनी धन्या राजा जनककी पत्नी होगी। उसकी कन्याके रूपमें महालक्ष्मी अवतीर्ण होगी, जिनका नाम 'सीता' होगा। इसी प्रकार पितरोंकी छोटी पुत्री कलावती द्वापरके अन्तिम भागमें वृषभानु वैश्यकी पत्नी होगी और उसकी प्रिय पुत्री 'राधा' के नामसे विख्यात होगी। योगिनी मेनका (मेना) पार्वतीजीके वरदानसे अपने पतिके साथ उसी शरीरसे कैलास नामक परमपदको प्राप्त हो जायगी। धन्या तथा उनके पति, जनककुलमें उत्पन्न हुए जीवन्मुक्त महायोगी राजा सीरध्वज, लक्ष्मीस्वरूपा सीताके प्रभावसे वैकुण्ठ धाममें जायँगे। वृषभानुके साथ वैवाहिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न होनेके कारण जीवन्मुक्त योगिनी कलावती भी अपनी कन्या राधाके साथ गोलोक धाममें जायगी—इसमें संशय नहीं है। विपत्तिमें पड़े बिना कहाँ किनकी महिमा प्रकट होती है। उत्तम कर्म करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंका संकट जब टल जाता है, तब उन्हें दुर्लभ सुखकी प्राप्ति होती है। अब तुमलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो सदा सुख देनेवाली है। मेनाकी पुत्री जगदम्बा पार्वती देवी अत्यन्त दुस्सह तप करके भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी बनेगी। धन्याकी पुत्री सीता भगवान् श्रीरामजीकी पत्नी होंगी और लोकाचारका आश्रय ले श्रीरामके साथ विहार करेंगी। साक्षात् गोलोकधाममें निवास करनेवाली राधा ही कलावतीकी पुत्री होंगी। वे गुप्त स्नेहमें बँधकर श्रीकृष्णकी प्रियतमा बनेंगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार शापके ब्याजसे दुर्लभ वरदान देकर सबके द्वारा प्रशंसित भगवान् सनत्कुमार मुनि भाइयोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तात! पितरोंकी मानसी पुत्री वे तीनों बहिनें इस प्रकार शापमुक्त हो सुख पाकर तुरंत अपने घरको चली गयीं। (अध्याय १-२)

देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी एक सुन्दर स्थानमें जाकर उनकी स्तुति करना

नारदजी बोले—महामते! आपने मेनाके पूर्वजन्मकी यह शुभ एवं अद्भुत कथा कही है। उनके विवाहका प्रसङ्ग भी मैंने सुन लिया। अब आगेके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् अपने घरको गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न हो मेनाके साथ अपने सुखदायक सदनमें निवास करने लगे। मुने! उस समय श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि गिरिराजके पास गये। उन सब देवताओंको आया देख महान् हिमगिरिने प्रशंसापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उन सबका आदर-सत्कार किया। हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर वे बड़े प्रेमसे स्तुति करनेको उद्यत हुए। शैलराजके शरीरमें महान् रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। मुने! हिमशैलने प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और विनीतभावसे खड़े हो श्रीविष्णु आदि देवताओंसे कहा।

हिमाचल बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी बड़ी भारी तपस्या सफल हुई। आज मेरा ज्ञान सफल हुआ और आज मेरी सारी क्रियाएँ सफल हो गयीं। आज मैं धन्य

हुआ। मेरी सारी भूमि धन्य हुई। मेरा कुल धन्य हुआ। मेरी स्त्री तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया; इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सब महान् देवता एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें।

हिमगिरिका यह वचन सुनकर वे सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने कार्यकी सिद्धि मानते हुए बोले।

देवताओंने कहा—महाप्राज्ञ हिमाचल! हमारा हितकारक वचन सुनो। हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं। गिरिराज! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर सुदीर्घकालतक इस भूतलपर क्रीडा करती रहीं, वे ही अम्बिका सती अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके यज्ञमें शरीर त्याग अपने परम धामको पधार गयीं। हिमगिरे! वह कथा लोकमें विख्यात है और तुम्हें भी विदित है। यदि वे सती पुनः तुम्हारे घरमें प्रकट हो जायँ तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालय मन-ही-मन प्रसन्न हो आदरसे झुक गये और बोले—'प्रभो! ऐसा हो तो बड़े सौभाग्यकी बात है।' तदनन्तर वे देवता उन्हें बड़े आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी विधि बताकर स्वयं सदाशिव-पत्नी उमाकी शरणमें गये। एक सुन्दर स्थानमें स्थित हो समस्त देवताओंने जगदम्बाका स्मरण किया और बारंबार प्रणाम करके वे वहाँ श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

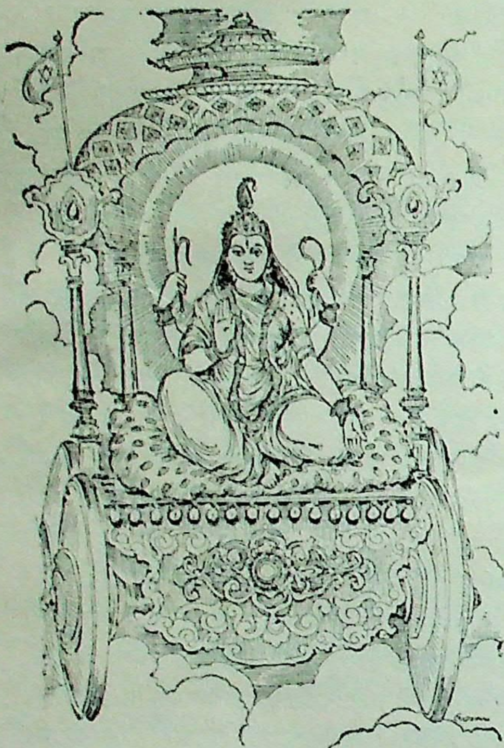
देवता बोले—शिवलोकमें निवास करनेवाली देवि! उमे! जगदम्बे! सदाशिवप्रिये! दुर्गे! महेश्वरि! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप पावन शान्तस्वरूप श्रीशक्ति हैं, परमपावन पुष्टि हैं। अव्यक्त प्रकृति और महत्तत्त्व—ये आपके ही रूप हैं। हम भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करते हैं। आप कल्याणमयी शिवा हैं। आपके हाथ भी कल्याणकारी हैं। आप शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म और सबका परम आश्रय हैं। अन्तर्विद्या और सुविद्यासे अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली आप देवीको हम प्रणाम करते हैं। आप श्रद्धा हैं। आप धृति हैं। आप श्री हैं और आप ही सबमें व्याप्त रहनेवाली देवी हैं। आप ही सूर्यकी किरणें हैं और आप ही अपने प्रपञ्चको प्रकाशित करनेवाली हैं। ब्रह्माण्डरूप शरीरमें और जगत्के जीवोंमें रहकर जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्की पुष्टि करती हैं, उन आदिदेवीको हम नमस्कार करते हैं। आप ही वेदमाता गायत्री हैं, आप ही सावित्री और सरस्वती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के लिये वार्ता नामक वृत्ति हैं और आप ही धर्मस्वरूपा वेदत्रयी हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंमें निद्रा बनकर रहती हैं। उनकी क्षुधा और तृप्ति भी आप ही हैं। आप ही तृष्णा, कान्ति, छवि, तुष्टि और सदा सम्पूर्ण आनन्दको देनेवाली हैं। आप ही पुण्यकर्ताओंके यहाँ लक्ष्मी बनकर रहती हैं और आप ही पापियोंके घर सदा ज्येष्ठा (लक्ष्मीकी बड़ी बहिन दरिद्रता) के रूपमें वास करती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्की शान्ति हैं। आप ही धारण करनेवाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली शक्ति हैं। आप ही पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं। आप ही नीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं। आप ही सामवेदकी गीति हैं। आप ही ग्रन्थि हैं। आप ही यजुर्मन्त्रोंकी आहुति हैं। ऋग्वेदकी मात्रा तथा अथर्ववेदकी परम गति भी आप ही हैं। जो प्राणियोंके नाक, कान, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल और हृदयमें धृतिरूपसे स्थित हो सदा ही उनके लिये सुखका विस्तार करती हैं, जो निद्राके रूपमें संसारके लोगोंको अत्यन्त सुभग प्रतीत होती हैं, वे देवी उमा जगत्की स्थिति एवं पालनके लिये हम सबपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार जगज्जननी सती-साध्वी महेश्वरी उमाकी स्तुति करके अपने हृदयमें विशुद्ध प्रेम लिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े हो गये। (अध्याय ३)

उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी बात स्वीकार करके देवताओंको आश्वासन देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली जगज्जननी देवी दुर्गा उनके सामने प्रकट हुईं। वे परम अद्भुत दिव्य रत्नमय रथपर बैठी हुई थीं। उस श्रेष्ठ रथमें घुँघुरू लगे हुए थे और मुलायम बिस्तर बिछे थे। उनके श्रीविग्रहका एक-एक अङ्ग करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान और रमणीय था। ऐसे

अवयवोंसे वे अत्यन्त उद्भासित हो रही थीं। सब ओर फैली हुई अपनी तेजोराशिके मध्यभागमें वे विराजमान थीं। उनका



रूप बहुत ही सुन्दर था और उनकी छविकी कहीं तुलना नहीं थी। सदाशिवके साथ विलास करनेवाली उन महामायाकी किसीके साथ समानता नहीं थी। शिवलोकमें निवास करनेवाली वे देवी त्रिविध चिन्मय गुणोंसे युक्त थीं। प्राकृत गुणोंका अभाव होनेसे उन्हें निर्गुणा कहा जाता है। वे नित्यरूपा हैं। वे दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण चण्डी कहलाती हैं, परंतु स्वरूपसे शिवा (कल्याणमयी) हैं। सबकी सम्पूर्ण पीडाओंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्की माता हैं। वे ही प्रलयकालमें महानिद्रा होकर सबको अपने अङ्कमें सुला लेती हैं तथा वे समस्त स्वजनों (भक्तों) का संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं। शिवा देवीकी तेजोराशिके प्रभावसे देवता उन्हें अच्छी तरह देख न सके। तब उनके दर्शनकी अभिलाषासे देवताओंने फिर उनका स्तवन किया। तदनन्तर दर्शनकी इच्छा रखनेवाले विष्णु आदि सब देवता उन जगदम्बाकी कृपा पाकर वहाँ उनका सुस्पष्ट दर्शन कर सके।

इसके बाद देवता बोले—अम्बिके ! महादेवि ! हम सदा आपके दास हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक हमारा निवेदन सुनें। पहले आप दक्षकी पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हो लोकमें रुद्रदेवकी वल्लभा हुई थीं। उस समय आपने ब्रह्माजीके तथा दूसरे देवताओंके महान् दुःखका निवारण किया था। तदनन्तर पितासे अनादर पाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार आपने शरीरको त्याग दिया और स्वधाममें पधार आयीं। इससे भगवान् हरको भी बड़ा दुःख हुआ। महेश्वरि ! आपके चले आनेसे देवताओंका कार्य पूरा नहीं हुआ। अतः हम देवता और मुनि व्याकुल होकर आपकी शरणमें आये हैं। महेशानि ! शिवे ! आप देवताओंका मनोरथ पूर्ण करें, जिससे सनत्कुमारका वचन सफल हो। देवि ! आप भूतलपर अवतीर्ण हो पुनः रुद्रदेवकी पत्नी होइये और यथायोग्य ऐसी लीला कीजिये, जिससे देवताओंको सुख प्राप्त हो। देवि ! इससे कैलास पर्वतपर निवास करनेवाले रुद्रदेव भी सुखी होंगे। आप ऐसी कृपा करें, जिससे सब सुखी हों और सबका सारा दुःख नष्ट हो जाय।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर विष्णु आदि सब देवता प्रेममें मग्न हो गये और भक्तिसे विनम्र होकर चुपचाप खड़े रहे। देवताओंकी यह स्तुति सुनकर शिवादेवीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके हेतुका विचार करके अपने प्रभु शिवका स्मरण करती हुई भक्तवत्सला दयामयी उमादेवी उस समय विष्णु आदि देवताओंको सम्बोधित करके हँसकर बोलीं।

उमाने कहा—हे हरे ! हे विधे ! और हे देवताओ तथा मुनियो ! तुम सब लोग अपने मनसे व्यथाको निकाल दो और मेरी बात सुनो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं है। सब लोग अपने-अपने स्थानको जाओ और चिरकालतक सुखी रहो। मैं अवतार ले मेनाकी पुत्री होकर उन्हें सुख दूँगी और रुद्रदेवकी पत्नी हो जाऊँगी। यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है। वह ज्ञानियोंको भी मोहमें डालनेवाली है। देवताओ ! उस यज्ञमें जाकर पिताके द्वारा अपने स्वामीका अनादर देख जबसे मैंने दक्षजनित शरीरको त्याग दिया है, तभीसे वे मेरे स्वामी कालाग्नि रुद्रदेव तत्काल दिगम्बर हो गये। वे मेरी ही चिन्तामें डूबे रहते हैं। उनके मनमें यह विचार उठा करता है कि धर्मको जाननेवाली सती मेरा रोष देखकर पिताके यज्ञमें गयी और वहाँ मेरा अनादर देख मुझमें प्रेम होनेके कारण उसने अपना शरीर त्याग दिया। यही सोचकर वे घर-बार छोड़ अलौकिक वेष धारण करके योगी हो गये। मेरी स्वरूपभूता सतीके वियोगको वे महेश्वर सहन न कर

सकें। देवताओ ! भगवान् रुद्रकी भी यह अत्यन्त इच्छा है कि भूतलपर मेना और हिमाचलके घरमें मेरा अवतार हो; क्योंकि वे पुनः मेरा पाणिग्रहण करनेकी अधिक अभिलाषा रखते हैं। अतः मैं रुद्रदेवके संतोषके लिये अवतार लूँगी और लौकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालय-पत्नी मेनाकी पुत्री होऊँगी।

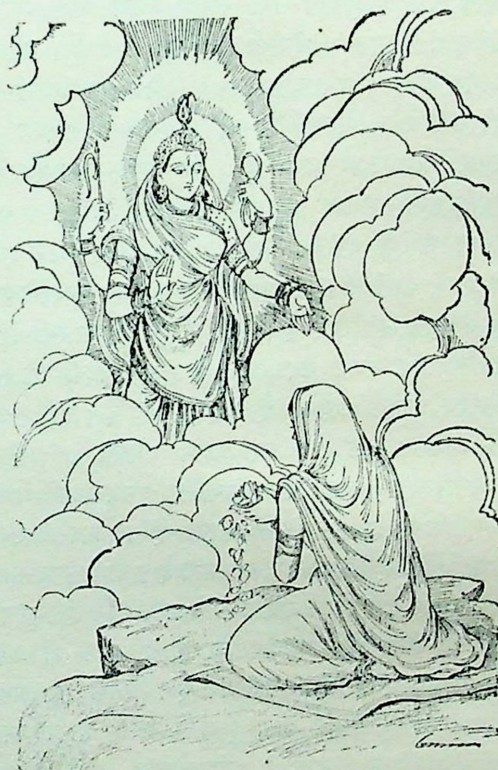
ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर जगदम्बा शिवा उस समय समस्त देवताओंके देखते-देखते ही अदृश्य हो गयीं और तुरंत अपने लोकमें चली गयीं। तदनन्तर हर्षसे भरे हुए विष्णु आदि समस्त देवता और मुनि• उस दिशाको प्रणाम करके अपने-अपने धाममें चले गये।

(अध्याय ४)

मेनाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर शिवा देवीका उन्हें अभीष्ट वरदानसे संतुष्ट करना तथा मेनासे मैनाकका जन्म

नारदजीने पूछा—पिताजी ! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और देवगण अपने-अपने धामको चले गये, उसके बाद क्या हुआ ?

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ विप्रवर नारद ! जब विष्णु आदि देवसमुदाय हिमालय और मेनाको देवीकी आराधनाका उपदेश दे चले गये, तब गिरिराज हिमाचल और मेना दोनों दम्पतिने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। वे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए भक्तियुक्त चित्तसे नित्य उनकी सम्यक् रीतिसे आराधना करने लगे। हिमवान्की पत्नी मेना बड़ी प्रसन्नतासे शिवसहित शिवा देवीकी पूजा करने लगीं। वे उन्हींके संतोषके लिये सदा ब्राह्मणोंको दान देती रहती थीं। मनमें संतानकी कामना ले मेना चैत्रमासके आरम्भसे लेकर सत्ताईस वर्षोंतक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवा देवीकी पूजा और आराधनामें लगी रहीं ! वे अष्टमीको उपवास करके नवमीको लड्डू, बलि-सामग्री, पीठी, खीर और गन्ध-पुष्प आदि देवीको भेंट करती थीं। गङ्गाके किनारे ओषधिप्रस्थमें उमाकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ समर्पित करके उसकी पूजा करती थीं। मेना देवी कभी निराहार रहतीं, कभी व्रतके नियमोंका पालन करतीं, कभी जल पीकर रहतीं और कभी हवा पीकर ही रह जाती थीं। विशुद्ध तेजसे दमकती हुई दीप्तिमती मेनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाये सत्ताईस वर्ष व्यतीत कर दिये। सत्ताईस वर्ष पूरे होनेपर जगन्मयी शंकरकामिनी जगदम्बा उमा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। मेनाकी उत्तम भक्तिसे संतुष्ट हो वे परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुईं। तेजोमण्डलके बीचमें विराजमान तथा दिव्य अवयवोंसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष दर्शन दे मेनासे हँसती हुई बोलीं।



देवीने कहा—गिरिराज हिमालयकी रानी महासाध्वी मेना ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो। मेना ! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जिस-जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें दूँगी। तब मेनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिका देवीको देखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

मेना बोली—देवि ! इस समय मुझे आपके रूपका

प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है । अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ । कालिके ! इसके लिये आप प्रसन्न हों ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिका देवीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी दोनों बाँहोंसे खींचकर मेनाको हृदयसे लगा लिया । इससे उन्हें तत्काल महाज्ञानकी प्राप्ति हो गयी । फिर तो मेना देवी प्रिय वचनोंद्वारा भक्तिभावसे अपने सामने खड़ी हुई कालिकाकी स्तुति करने लगीं ।

मेना बोलीं—जो महामाया जगत्‌को धारण करनेवाली चण्डिका, लोकधारिणी तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको देनेवाली हैं, उन महादेवीको मैं प्रणाम करती हूँ । जो नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली माया, योगनिद्रा, जगज्जननी तथा सुन्दर कमलोंकी मालासे अलंकृत हैं, उन नित्यसिद्धा उमा देवीको मैं नमस्कार करती हूँ । जो सबकी मातामही, नित्य आनन्दमयी, भक्तोंके शोकका नाश करनेवाली तथा कल्प-पर्यन्त नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी हैं, उन देवीको मैं प्रणाम करती हूँ । आप यतियोंके अज्ञानमय बन्धनके नाश-की हेतुभूता ब्रह्मविद्या हैं । फिर मुझ-जैसी नारियाँ आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं । अथर्ववेदकी जो हिंसा (मारण आदिका प्रयोग) है, वह आप ही हैं । देवि ! आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये । भावहीन (आकाररहित) तथा अदृश्य नित्यानित्य तन्मात्राओंसे आप ही पञ्चभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं । आप ही उनकी शाश्वत शक्ति हैं । आपका स्वरूप नित्य है । आप समय-समय-पर योगयुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं । आप ही जगत्‌की योनि और आधारशक्ति हैं । आप ही प्राकृत तत्त्वोंसे परे नित्या प्रकृति कही गयी हैं । जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता (जाना जाता) है, वह नित्या विद्या आप ही हैं । मातः ! आज मुझपर प्रसन्न होइये । आप ही अग्निके भीतर व्याप्त उग्र दाहिका शक्ति हैं । आप ही सूर्य-किरणोंमें स्थित प्रकाशिका शक्ति हैं । चन्द्रमामें जो आह्लादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं । ऐसी आप चण्डी देवीका मैं स्तवन और वन्दन करती हूँ । आप स्त्रियोंको बहुत प्रिय हैं । ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियोंकी ध्येयभूता नित्या ब्रह्मशक्ति भी आप ही हैं । सम्पूर्ण जगत्‌की वाञ्छा तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं । जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, पालन और संहारमयी हो उन कार्योंका सम्पादन करती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुभूता हैं, वे आप ही हैं । देवि ! आज आप मुझपर प्रसन्न हों । आपको पुनः मेरा नमस्कार है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः उन मेना देवीसे कहा—'तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो । हिमाचलप्रिये ! तुम मुझे प्राणोंके समान प्यारी हो । तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँगो । उसे मैं निश्चय ही दे दूँगी । तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ।'

महेश्वरी उमाका यह अमृतके समान मधुर वचन सुनकर हिमगिरिकामिनी मेना बहुत संतुष्ट हुईं और इस प्रकार बोलीं—'शिवे ! आपकी जय हो, जय हो । उत्कृष्ट ज्ञानवाली महेश्वरि ! जगदम्बिके ! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ तो फिर आपसे श्रेष्ठ वर माँगती हूँ । जगदम्बे ! पहले तो मुझे सौ पुत्र हों । उन सबकी बड़ी आयु हो । वे बल-पराक्रम-से युक्त तथा ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों । उन पुत्रोंके पश्चात् मेरे एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे सुशोभित होनेवाली हो; वह दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनों लोकोंमें पूजित हो । जगदम्बिके ! शिवे ! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेवकी पत्नी होइये और तदनुसार लीला कीजिये ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनकाकी बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवी उमाने उनके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये मुस्कराकर कहा ।

देवी बोलीं—पहले तुम्हें सौ बलवान् पुत्र प्राप्त होंगे । उनमें भी एक सबसे अधिक बलवान् और प्रधान होगा, जो सबसे पहले उत्पन्न होगा । तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और समस्त देवताओंसे सेवित हो उनका कार्य सिद्ध करूँगी ।

ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका शिवा मेनकाके देखते-देखते वहीं अदृश्य हो गयीं । तात ! महेश्वरी-से अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ । उनका तपस्याजनित सारा क्लेश नष्ट हो गया । मुने ! फिर काल-क्रमसे मेनाके गर्भ रहा और वह प्रतिदिन बढ़ने लगा । समयानुसार उसने एक उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया, जिसका नाम मैनाक था । उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री बाँधी । वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके उपभोगका स्थल बना हुआ

है। उसके समस्त अङ्ग श्रेष्ठ हैं। हिमालयके सौ पुत्रोंमें वह सबसे श्रेष्ठ और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है। अपने-से या अपने बाद प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक ही पर्वतराजके पदपर प्रतिष्ठित है। (अध्याय ५)

देवी उमाका हिमवान्‌के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, उनका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे बातचीत तथा नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मेना और हिमालय आदरपूर्वक देव-कार्यकी सिद्धिके लिये कन्याप्राप्तिके हेतु वहाँ जगज्जननी भगवती उमाका चिन्तन करने लगे। जो प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं, वे महेश्वरी उमा अपने पूर्ण अंशसे गिरिराज हिमवान्‌के चित्तमें प्रविष्ट हुईं। इससे उनके शरीरमें अपूर्व एवं सुन्दर प्रभा उतर आयी। वे आनन्दमग्न हो अत्यन्त प्रकाशित होने लगे। उस अद्भुत तेजोराशिसे सम्पन्न महामना हिमालय अग्निके समान अधृष्य हो गये थे। तत्पश्चात् सुन्दर कल्याणकारी समयमें गिरिराज हिमालयने अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका आधान किया। इस तरह गिरिराजकी पत्नी मेनाने हिमवान्‌के हृदयमें विराजमान करुणानिधान देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्‌की निवासभूता देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके बीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगीं। अपनी प्रिया शुभाङ्गी मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। गर्भमें जगदम्बाके आ जानेसे वे महान् तेजसे सम्पन्न हो गयी थीं। मुने! उस अवसरमें विष्णु आदि देवता और मुनियोंने वहाँ आकर गर्भमें निवास करनेवाली शिवादेवीकी स्तुति की और तदनन्तर महेश्वरीकी नाना प्रकारसे स्तुति करके प्रसन्नचित्त हुए वे सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। जब नवाँ महीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब जगदम्बा कालिकाने समय पूर्ण होनेपर गर्भस्थ शिशुकी जो गति होती है, उसीको धारण किया अर्थात् जन्म ले लिया। उस अवसरपर आद्याशक्ति सती-साध्वी शिवा पहले मेनाके सामने अपने ही रूपसे प्रकट हुईं। वसन्त ऋतुमें चैत्र मासकी नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे आकाशगङ्गाकी भाँति मेनकाके उदरसे देवी शिवाका अपने ही स्वरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। उस समय सम्पूर्ण संसारमें प्रसन्नता छा गयी। अनुकूल हवा चलने लगी, जो सुन्दर, सुगन्धित एवं गम्भीर थी। उस समय जलकी वर्षाके साथ फूलोंकी वृष्टि हुई। विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये। सबने सुखी होकर प्रसन्नताके साथ जगदम्बाके दर्शन किये और शिवलोकमें निवास करनेवाली दिव्यरूपा महामाया शिवकामिनी मङ्गलमयी कालिका माताका स्तवन किया।

नारद! जब देवतालोग स्तुति करके चले गये, तब मेनका उस समय प्रकट हुई नील कमल-दलके समान कान्तिवाली श्यामवर्णा देवीको देखकर अतिशय आनन्दका अनुभव करने लगीं। देवीके उस दिव्य रूपका दर्शन करके गिरिप्रिया मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी समझकर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उठीं और संतोषपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—जगदम्बे! महेश्वरि! आपने बड़ी कृपा की, जो मेरे सामने प्रकट हुईं। अम्बिके! आपकी बड़ी शोभा हो रही है। शिवे! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। देवी! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे प्रशंसित पराशक्ति हैं। महेश्वरि! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुरूप प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पर्वत-पत्नी मेनाकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई शिवादेवीने उन गिरिप्रियाको इस प्रकार उत्तर दिया।

देवी बोलीं—मेना! तुमने पहले तत्परतापूर्वक मेरी बड़ी सेवा की थी। उस समय तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हो मैं वर देनेके लिये तुम्हारे निकट आयी। 'वर माँगो' मेरी इस वाणीको सुनकर तुमने जो वर माँगा, वह इस प्रकार है—'महादेवि! आप मेरी पुत्री हो जायँ और देवताओंका हित साधन करें।' तब मैंने 'तथास्तु' कहकर तुम्हें सादर यह वर दे दिया और मैं अपने धामको चली गयी। गिरिकामिनि! उस वरके अनुसार समय पाकर आज मैं तुम्हारी पुत्री हुई हूँ। आज मैंने जो दिव्यरूपका दर्शन कराया है, इसका उद्देश्य इतना ही है कि तुम्हें मेरे स्वरूपका स्मरण हो जाय; अन्यथा मनुष्यरूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें तुम अनजान ही

बनी रहतीं । अब तुम दोनों दम्पति पुत्रीभावसे अथवा दिव्य-भावसे मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझमें स्नेह रक्खो । इससे तुम्हें मेरी उत्तम गति प्राप्त होगी । मैं पृथ्वीपर अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी । भगवान् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और सज्जनोंका संकटसे उद्धार करूँगी।

ऐसा कहकर जगन्माता शिवा चुप हो गयीं और उसी क्षण माताके देखते-देखते प्रसन्नतापूर्वक नवजात पुत्रीके रूपमें परिवर्तित हो गयीं । (अध्याय ६)

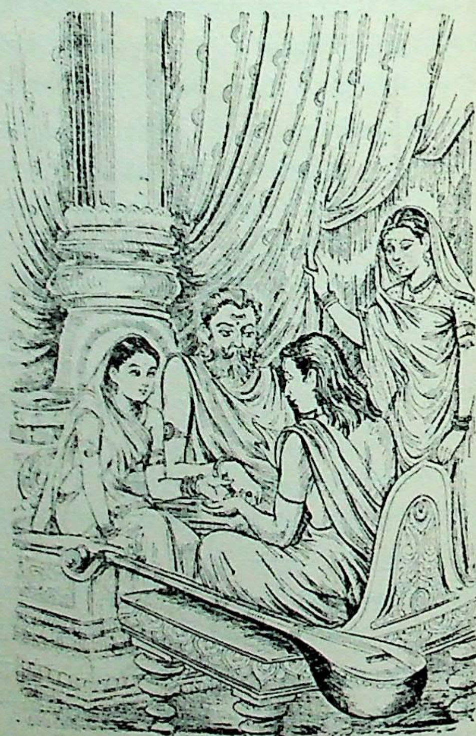
पार्वतीका नामकरण और विद्याध्ययन, नारदका हिमवान्‌के यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखकर भावी फल बताना, चिन्तित हुए हिमवान्‌को आश्वासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करनेको कहना और उनके संदेहका निवारण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके सामने महातेजस्विनी कन्या होकर लौकिक गतिका आश्रय ले वह रोने लगी । उसका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ हर्षसे खिल उठीं और बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं । नील कमल-दलके समान श्याम कान्तिवाली उस परम तेजस्विनी और मनोरम कन्याको देखकर गिरिराज हिमालय अतिशय आनन्दमें निमग्न हो गये । तदनन्तर सुन्दर मुहूर्तमें मुनियोंके साथ हिमवान्‌ने अपनी पुत्रीके काली आदि सुखदायक नाम रक्खे । देवी शिवा गिरिराजके भवनमें दिनोंदिन बढ़ने लगीं—ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाके समयमें गङ्गाजीकी जलराशि और शरद्-ऋतुके शुक्लपक्षमें चाँदनी बढ़ती है। सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्यारी उस कन्याको कुटुम्बके लोग अपने कुलके अनुरूप पार्वती नामसे पुकारने लगे । माताने कालिकाको 'उ मा' (अरी ! तपस्या मत कर) कहकर तप करनेसे रोका था । मुने ! इसलिये वह सुन्दर मुखवाली गिरिराजनन्दिनी आगे चलकर लोकमें उमाके नामसे विख्यात हो गयी । नारद ! तदनन्तर जब विद्याके उपदेशका समय आया, तब शिवा देवी अपने चित्तको एकाग्र करके बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रेष्ठ गुरुसे विद्या पढ़ने लगीं । पूर्वजन्मकी सारी विद्याएँ उन्हें उसी तरह प्राप्त हो गयीं, जैसे शरत्कालमें हंसोंकी पाँत अपने-आप स्वर्गङ्गाके तटपर पहुँच जाती है और रात्रिमें अपना प्रकाश स्वतः महौषधियोंको प्राप्त हो जाता है । मुने ! इस प्रकार मैंने शिवाकी किसी एक लीलाका ही वर्णन किया है । अब अन्य लीलाका वर्णन करूँगा, सुनो ।

एक समयकी बात है तुम भगवान् शिवकी प्रेरणासे प्रसन्नतापूर्वक हिमाचलके घर गये । मुने ! तुम शिवतत्त्वके ज्ञाता और उनकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हो । नारद ! गिरिराज हिमालयने तुम्हें घरपर आया देख प्रणाम करके तुम्हारी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उससे तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करवाया । मुनीश्वर ! फिर स्वयं भी तुम्हें नमस्कार करके हिमाचलने अपने सौभाग्यकी सराहना की और अत्यन्त मस्तक झुका हाथ जोड़कर तुमसे कहा ।

हिमालय बोले—हे मुने नारद ! हे ब्रह्मपुत्रोंमें श्रेष्ठ ज्ञानवान् प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं और कृपापूर्वक दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं । मेरी पुत्रीकी जन्मकुण्डलीमें जो गुण-दोष हो, उसे बताइये । मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती प्रिय पत्नी होगी ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! तुम बातचीतमें कुशल और कौतुकी तो हो ही, गिरिराज हिमालयके ऐसा कहनेपर तुमने कालिकाका हाथ देखा और उसके सम्पूर्ण अङ्गोंपर



विशेषरूपसे दृष्टिपात करके हिमालयसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारद बोले—शैलराज और मेना! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदि कलाके समान बढ़ी है। समस्त शुभ लक्षण इसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। यह अपने पतिके लिये अत्यन्त सुखदायिनी होगी और माता-पिताकी भी कीर्ति बढ़ायेगी। संसारकी समस्त नारियोंमें यह परम साध्वी और स्वजनोंको सदा महान् आनन्द देनेवाली होगी। गिरिराज! तुम्हारी पुत्रीके हाथमें सब उत्तम लक्षण ही विद्यमान हैं। केवल एक रेखा विलक्षण है, उसका यथार्थ फल सुनो। इसे ऐसा पति प्राप्त होगा; जो योगी, नंग-धड़ङ्ग रहनेवाला, निर्गुण और निष्काम होगा। उसके न माँ होगी न बाप। उसे मान-सम्मानका भी कोई ख्याल नहीं रहेगा और वह सदा अमङ्गल वेष धारण करेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम्हारी इस बातको सुन और सत्य मानकर मेना तथा हिमाचल दोनों पति-पत्नी बहुत दुःखित हुए, परंतु जगदम्बा शिवा तुम्हारे ऐसे वचनको सुनकर और लक्षणोंद्वारा उस भावी पतिको शिव मानकर मन-ही-मन हर्षसे खिल उठीं। 'नारदजीकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती' यह सोचकर शिवा भगवान् शिवके युगलचरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे अत्यन्त स्नेह करने लगीं। नारद! उस समय मन-ही-मन दुःखी हो हिमवान्‌ने तुमसे कहा—'मुने! उस रेखाका फल सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मैं अपनी पुत्रीको उससे बचानेके लिये क्या उपाय करूँ?'

'मुने! तुम महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालाप-विशारद हो। हिमवान्‌की बात सुनकर अपने मङ्गलकारी वचनोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए तुमने इस प्रकार कहा।

नारद बोले—गिरिराज! तुम स्नेहपूर्वक सुनो, मेरी बात सच्ची है। वह झूठ नहीं होगी। हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है। निश्चय ही वह मिथ्या नहीं हो सकती। अतः शैल-प्रवर! इस कन्याको वैसा ही पति मिलेगा, इसमें संशय नहीं। परंतु इस रेखाके कुफलसे बचनेके लिये एक उपाय भी है, उसे प्रेमपूर्वक सुनो। उसे करनेसे तुम्हें सुख मिलेगा। मैंने जैसे वरका निरूपण किया है, वैसे ही भगवान् शंकर हैं। वे सर्वसमर्थ हैं और लीलाके लिये अनेक रूप धारण करते रहते हैं। उनमें समस्त कुलक्षण सद्गुणोंके समान हो जायँगे। समर्थ पुरुषमें कोई दोष भी हो तो वह उसे दुःख नहीं देता। असमर्थके लिये ही वह दुःखदायक होता है। इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गङ्गाका दृष्टान्त सामने रखना चाहिये। इसलिये तुम विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको भगवान् शिवके हाथमें सौंप दो। भगवान् शिव सबके ईश्वर, सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं। वे जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः शिवाको ग्रहण कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं। यदि शिवा तप करे तो सब काम ठीक हो जायगा। सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ हैं। वे इन्द्रके वज्रका भी विनाश कर सकते हैं। ब्रह्मा-जी उनके अधीन हैं तथा वे सबको सुख देनेवाले हैं। पार्वती भगवान् शंकरकी प्यारी पत्नी होगी। वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि यह महासाध्वी और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है। यह तपस्या करके भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भगवान् भी इसके सिवा किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं करेंगे। इन दोनोंका प्रेम एक दूसरेके अनुरूप है। वैसा उच्चकोटिका प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा। गिरिश्रेष्ठ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं। उनके जो-जो काम नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उज्जीवन या उद्धार होगा। अद्रिराज! आपकी कन्याको पाकर ही भगवान् हर अर्द्धनारीश्वर होंगे। इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा। आपकी यह पुत्री अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको संतुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी, उनका अर्धाङ्ग बन जायगी। गिरिश्रेष्ठ! तुम्हें अपनी यह कन्या भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किसीको नहीं देनी चाहिये। यह देवताओंका गुप्त रहस्य है, इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

हिमालयने कहा—ज्ञानी मुने नारद! मैं आपको एक बात बता रहा हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये। सुना जाता है, महादेवजी सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं। देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते। देवर्षे! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे भगवान् शम्भु परब्रह्ममें लगाये हुए अपने मनको कैसे हटायेंगे? ध्यान छोड़कर विवाह करनेको कैसे उद्यत होंगे? इस विषयमें मुझे महान् संदेह है। दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रकृतिसे परे, निर्विकार, निर्गुण, सगुण, निर्विशेष और निरीह जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाशिव नामक स्वरूप है। अतः वे उसीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं, किसी बाह्य—अनात्मवस्तुपर दृष्टि नहीं डालते। मुने! यहाँ आये हुए

किंनरोंके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसी ही बात सुनी जाती है। क्या वह बात मिथ्या ही है। विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि भगवान् हरने पूर्वकालमें सतीके समक्ष एक प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कहा था—'दक्षकुमारी प्यारी सती! मैं तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीका अपनी पत्नी बनानेके लिये न वरण करूँगा न ग्रहण। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।' इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे दूसरी किसी स्त्रीको कैसे ग्रहण करेंगे?

यह सुनकर तुम (नारद) ने कहा—महामते! गिरिराज! इस विषयमें तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारी यह पुत्री काली ही पूर्वकालमें दक्षकन्या सती हुई थी। उस समय इसीका सदा सर्वमङ्गलदायी सती नाम था। वे सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्यारी पत्नी हुई थीं। उन्होंने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देख क्रोधपूर्वक अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही सती फिर तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुई हैं। तुम्हारी पुत्री साक्षात् जगदम्बा शिवा है। यह पार्वती भगवान् हरकी पत्नी होगी, इसमें संशय नहीं है।

नारद! ये सब बातें तुमने हिमवानको विस्तारपूर्वक बतायीं। पार्वतीका वह पूर्वरूप और चरित्र प्रीतिको बढ़ानेवाला है। कालीके उस सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्तको तुम्हारे मुखसे सुनकर हिमवान् अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तत्काल संदेहरहित होगये। इसी तरह तुम्हारे मुखसे अपनी उस पूर्वकथाको सुनकर कालीने लज्जाके मारे मस्तक झुका लिया और उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल गयी। गिरिराज हिमालय पार्वतीके उस चरित्रको सुनकर उसके माथेपर हाथ फेरने लगे और मस्तक सूँघकर उसे अपने आसनके पास ही बिठा लिया।

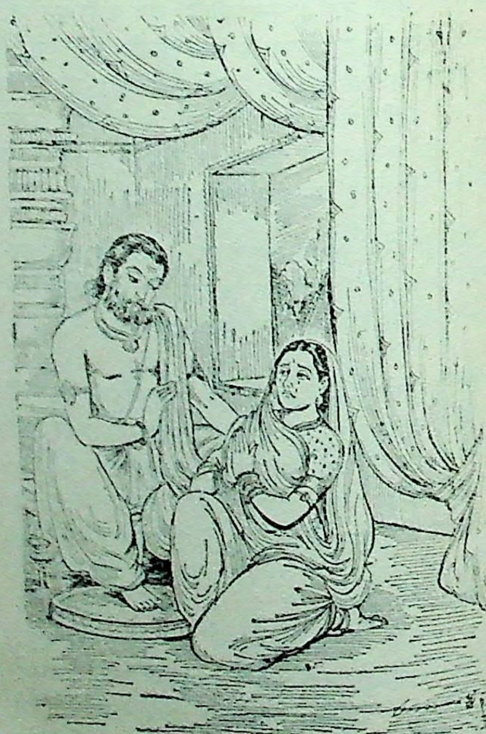
नारद! इसके पश्चात् तुम उसी क्षण प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चले गये और गिरिराज हिमवान् भी मन-ही-मन मनोहर आनन्दसे युक्त हो अपने सर्वसम्पत्तिशाली भवनमें प्रविष्ट हो गये। (अध्याय ७-८)

मेना और हिमालयकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्के स्वप्न तथा भगवान् शिवसे 'मङ्गल' ग्रहकी उत्पत्तिका प्रसंग

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब तुम स्वर्गलोकको चले गये, तबसे कुछ काल और व्यतीत हो जानेपर एक दिन मेनाने हिमवान्के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर खड़ी हो वे गिरिकामिनी मेना अपने पतिसे विनयपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—प्राणनाथ! उस दिन नारद मुनिने जो बात कही थी, उसको स्त्री-स्वभावके कारण मैंने अच्छी तरह नहीं समझा; मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। वह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होगा। गिरिजाका वर शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी बेटी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है।

ऐसा कहकर मेना अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। प्राज्ञ-शिरोमणि हिमवान्ने उन्हें उठाया और यथावत् समझाना आरम्भ किया।



हिमालय बोले—देवि मेनके! मैं यथार्थ और तत्त्वकी

बात बताता हूँ। सुनो। भ्रम छोड़ो। मुनिकी बात कभी झूठी नहीं हो सकती। यदि बेटीपर तुम्हें स्नेह है तो उसे सादर शिक्षा दो कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे भगवान् शंकरके लिये तप करे। मेनके! यदि भगवान् शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं तो सब शुभ ही होगा। नारदजीका बताया हुआ अमङ्गल या अशुभ नष्ट हो जायगा। शिवके समीप सारे अमङ्गल सदा मङ्गलरूप हो जाते हैं। इसलिये तुम पुत्रीको शिवकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा दो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! हिमवान्‌की यह बात सुनकर मेनाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे तपस्यामें रुचि उत्पन्न करनेके लिये पुत्रीको उपदेश देनेके निमित्त उसके पास गयीं। परंतु बेटीके सुकुमार अङ्गपर दृष्टिपात करके मेनाके मनमें बड़ी व्यथा हुई। उनके दोनों नेत्रोंमें तुरंत आँसू भर आये। फिर तो गिरिप्रिया मेनामें अपनी पुत्रीको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रह गयी। अपनी माताकी उस चेष्टाको पार्वतीजी शीघ्र ही ताड़ गयीं। तब वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको बारंबार आश्वासन दे तुरंत बोलीं।

पार्वतीने कहा—मा! तुम बड़ी समझदार हो। मेरी यह बात सुनो। आज पिछली रात्रिके समय ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ। माताजी! स्वप्नमें एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवकी प्रसन्नताके लिये उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है।

नारद! यह सुनकर मेनकाने शीघ्र अपने पतिको बुलाया और पुत्रीके देखे हुए स्वप्नको पूर्णतः कह सुनाया। मेनकाके मुखसे पुत्रीके स्वप्नको सुनकर गिरिराज हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रिय पत्नीको समझाते हुए बोले।

गिरिराजने कहा—प्रिये! पिछली रातमें मैंने भी एक स्वप्न देखा है। मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ। तुम प्रेमपूर्वक उसे सुनो। एक बड़े उत्तम तपस्वी थे। नारदजीने वरके जैसे लक्षण बताये थे, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त शरीरको उन्होंने धारण कर रखा था। वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मेरे नगरके निकट तपस्या करनेके लिये आये। उन्हें देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनके पास गया। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि नारदजीके बताये हुए वर भगवान् शम्भु ये ही हैं। तब मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि वे इसकी सेवा स्वीकार करें। परंतु उस समय उन्होंने मेरी बात नहीं मानी, इतनेमें ही वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया। तदनन्तर उनकी आज्ञासे मेरी बेटी वहीं रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। सुमुखि! यही मेरा देखा हुआ स्वप्न है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया। अतः प्रिये मेने! कुछ कालतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा या प्रतीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है। तुम निश्चित समझो, यही मेरा विचार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर नारद! ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान् और मेनका शुद्ध हृदयसे उस स्वप्नके फलकी परीक्षा एवं प्रतीक्षा करने लगे।

देवर्षे! शिवभक्तशिरोमणे! भगवान् शंकरका यश परम पावन, मङ्गलकारी, भक्तिवर्धक और उत्तम है। तुम इसे आदरपूर्वक सुनो। दक्ष-यज्ञसे अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर आकर भगवान् शम्भु प्रियाविरहसे कातर हो गये और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सती देवीका हृदयसे चिन्तन करने लगे। अपने पार्षदोंको बुलाकर सतीके लिये शोक करते हुए उनके प्रेमवर्द्धक गुणोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वर्णन करने लगे। यह सब उन्होंने सांसारिक गतिको दिखानेके लिये किया। फिर, गृहस्थ-आश्रमकी सुन्दर स्थिति तथा नीति-रीतिका परित्याग करके वे दिगम्बर हो गये और सब लोकोंमें उन्मत्तकी भाँति भ्रमण करने लगे। लीलाकुशल होनेके कारण विरहीकी अवस्थाका प्रदर्शन करने लगे। सतीके विरहसे दुःखित हो कहीं भी उनका दर्शन न पाकर भक्तकल्याणकारी भगवान् शंकर पुनः कैलासगिरिपर लौट आये और मनको यत्नपूर्वक एकाग्र करके उन्होंने समाधि लगा ली, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली है। समाधिमें वे अविनाशी स्वरूपका दर्शन करने लगे। इस तरह तीनों गुणोंसे रहित हो वे भगवान् शिव चिरकालतक सुस्थिर भावसे समाधि लगाये बैठे रहे। वे प्रभु स्वयं ही मायाके अधिपति निर्विकार परब्रह्म हैं। तदनन्तर जब असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन्होंने समाधि छोड़ी। उसके बाद तुरंत ही जो चरित्र हुआ, उसे मैं तुम्हें बताता हूँ।

भगवान् शिवके ललाटसे उस समय श्रमजनित पसीनेकी एक बूँद पृथ्वीपर गिरी और तत्काल एक शिशुके रूपमें परिणत हो गयी। मुने ! उस बालकके चार भुजाएँ थीं, शरीरकी कान्ति लाल थी और आकार मनोहर था। दिव्य द्युतिसे दीप्तिमान् वह शोभाशाली बालक अत्यन्त दुस्सह तेजसे सम्पन्न था, तथापि उस समय लोकाचारपरायण परमेश्वर शिवके आगे वह साधारण शिशुकी भाँति रोने लगा। यह देख पृथ्वी भगवान् शंकरसे भय मान उत्तम बुद्धिसे विचार करनेके पश्चात् सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके वहाँ प्रकट हो गयी। उन्होंने उस सुन्दर बालकको तुरंत उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और अपने ऊपर प्रकट होनेवाले दूधको ही स्तन्यके रूपमें उसे पिलाने लगीं। उन्होंने स्नेहसे उसका मुँह चूमा और अपना ही बालक मान हँस-हँसकर उसे खेलाने लगीं। परमेश्वर शिवका हित-साधन करनेवाली पृथ्वी देवी सच्चे भावसे स्वयं उसकी माता बन गयीं।

संसारकी सृष्टि करनेवाले, परम कौतुकी एवं विद्वान् अन्तर्यामी शम्भु वह चरित्र देखकर हँस पड़े और पृथ्वीको पहचानकर उनसे बोले—'धरणि ! तुम धन्य हो। मेरे इस पुत्रका प्रेमपूर्वक पालन करो। यह श्रेष्ठ शिशु मुझ महातेजस्वी शम्भुके श्रमजल (पसीने) से तुम्हारे ही ऊपर उत्पन्न हुआ है। वसुधे ! यह प्रियकारी बालक यद्यपि मेरे श्रमजलसे प्रकट हुआ है, तथापि तुम्हारे नामसे तुम्हारे ही पुत्रके रूपमें इसकी ख्याति होगी। यह सदा त्रिविध तापोंसे रहित होगा। अत्यन्त गुणवान् और भूमि देनेवाला होगा। यह मुझे भी सुख प्रदान करेगा। तुम इसे अपनी रुचिके अनुसार ग्रहण करो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर भगवान् शिव चुप हो गये। उनके हृदयसे विरहका प्रभाव कुछ कम हो गया। उनमें विरह क्या था, वे लोकाचारका पालन कर रहे थे। वास्तवमें सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरुद्रदेव निर्विकार परमात्मा ही हैं। शिवकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके पुत्रसहित पृथ्वीदेवी शीघ्र ही अपने स्थानको चली गयीं। उन्हें आत्यन्तिक सुख मिला। वह बालक 'भौम' नामसे प्रसिद्ध हो युवा होनेपर तुरंत काशी चला गया और वहाँ उसने दीर्घकालतक भगवान् शंकरकी सेवा की। विश्वनाथजीकी कृपासे ग्रहकी पदवी पाकर वे भूमिकुमार शीघ्र ही श्रेष्ठ एवं दिव्य लोकमें चले गये, जो शुक्रलोकसे परे है। (अध्याय ९-१०)

भगवान् शिवका गङ्गावतरण तीर्थमें तपस्याके लिये आना, हिमवान्द्वारा उनका स्वागत, पूजन और स्तवन तथा भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उनका उस स्थानपर दूसरोंको न जाने देनेकी व्यवस्था करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्की पुत्री लोक-पूजित शक्तिस्वरूपा पार्वती हिमालयके घरमें रहकर बढ़ने लगीं। जब उनकी अवस्था आठ वर्षकी हो गयी, तब सतीके विरहसे कातर हुए शम्भुको उनके जन्मका समाचार मिला। नारद ! उस अद्भुत बालिका पार्वतीको हृदयमें रखकर वे मन-ही-मन बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे। इसी बीचमें लौकिक गतिका आश्रय ले शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया। नन्दी आदि कुछ शान्त पार्षदोंको साथ ले वे हिमालयके उत्तम शिखरपर गङ्गावतार[1] नामक तीर्थमें चले आये, जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्मधामसे च्युत होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये चली हुई परम पावनी गङ्गा पहले-पहल भूतलपर अवतीर्ण हुई थीं। जितेन्द्रिय हरने वहीं रहकर तपस्या आरम्भ की। वे आलस्यरहित हो चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जगन्मय, चिदानन्दस्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आत्मभूत परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे। भगवान् हरके ध्यानपरायण होनेपर नन्दी-भृङ्गी आदि कुछ अन्य पार्षदगण भी ध्यानमें तत्पर हो गये। उस समय कुछ ही प्रमथगण परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे। वे सब-के-सब मौन रहते और एक शब्द भी नहीं बोलते थे। कुछ द्वारपाल हो गये थे।

इसी समय गिरिराज हिमवान् उस ओषधिबहुल शिखरपर भगवान् शंकरका शुभागमन सुनकर उनके प्रति आदरकी भावना से वहाँ आये। आकर सेवकोंसहित गिरिराजने भगवान् रुद्रको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़ उनकी सुन्दर स्तवन किया। फिर हिमालयने कहा—'प्रभो ! मैं

१. गङ्गोत्तरी।



सौभाग्यका उदय हुआ है, जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने मुझे सनाथ कर दिया। क्यों न हो, महात्माओंने यह ठीक ही वर्णन किया है कि आप दीनवत्सल हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा जीवन सफल हुआ और आज मेरा सब कुछ सफल हो गया; क्योंकि आपने यहाँ पदार्पण करनेका कष्ट उठाया है। महेश्वर! आप मुझे अपना दास समझकर शान्तभावसे मुझे सेवाके लिये आज्ञा दीजिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे अनन्य-चित्त होकर आपकी सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! गिरिराजका यह वचन सुनकर महेश्वरने किंचित् आँखें खोलीं और सेवकोंसहित हिमवान्‌को देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको उपस्थित देख ध्यानयोगमें स्थित हुए जगदीश्वर वृषभध्वजने मुसकराते हुए-से कहा।

महेश्वर बोले—शैलराज! मैं तुम्हारे शिखरपर एकान्तमें तपस्या करनेके लिये आया हूँ। तुम ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके। तुम महात्मा हो, तपस्याके धाम हो तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों और अन्य महात्माओंको भी सदा आश्रय देनेवाले हो। द्विज आदिका तुम्हारे ऊपर सदा ही निवास रहता है। तुम गङ्गासे अभिषिक्त होकर सदाके लिये पवित्र हो गये हो। दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हो। गिरिराज! मैं यहाँ गङ्गावतरण-स्थलमें तुम्हारे आश्रित होकर आत्मसंयमपूर्वक बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा। शैलराज! गिरिश्रेष्ठ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या बिना किसी विघ्न-बाधाके चालू रह सके, उसे इस समय प्रयत्नपूर्वक करो। पर्वत-प्रवर! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है। तुम अपने घर जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उसका उत्तम प्रीतिसे यत्नपूर्वक प्रबन्ध करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता जगदीश्वर भगवान् शम्भु चुप हो गये। उस समय गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—'जगन्नाथ! परमेश्वर! आज मैंने अपने प्रदेशमें स्थित हुए आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है। अब आपसे और क्या प्रार्थना करूँ। महेश्वर! कितने ही देवता बड़े-बड़े यत्नका आश्रय ले महान् तप करके भी आपको नहीं पाते। वे ही आप यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं। परमेश्वर! आज मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी अधिक भाग्यवान् मानता हूँ; क्योंकि सेवकोंसहित आपने यहाँ आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया। देवेश! आप स्वतन्त्र हैं। यहाँ बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम तपस्या कीजिये। प्रभो! मैं आपका दास हूँ। अतः सदा आपकी आज्ञाके अनुसार सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय तुरंत अपने घरको लौट आये। उन्होंने अपनी प्रिया मेनाको बड़े आदरसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् शैलराजने साथ जानेवाले परिजनों तथा समस्त सेवकगणोंको बुलाकर उन्हें ठीक-ठीक समझाया।

हिमालय बोले—आजसे कोई भी गङ्गावतरण नामक स्थानमें, जो मेरे पृष्ठभागमें ही है, मेरी आज्ञा मानकर न जाय। यह मैं सच्ची बात कहता हूँ। यदि कोई वहाँ जायगा तो उस महादुष्टको मैं विशेष दण्ड दूँगा। मुने! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमवान्‌ने विघ्न-निवारणके लिये जो सुन्दर प्रयत्न किया, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो। (अध्याय ११)

हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर शैलराज हिमालय उत्तम फल-फूल लेकर अपनी पुत्रीके साथ हर्षपूर्वक भगवान् हरके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने ध्यानपरायण त्रिलोकीनाथ शिवको प्रणाम किया और अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उनकी सेवामें अर्पित कर दिया। फल-फूल आदि सारी सामग्री उनके सामने रखकर पुत्रीको आगे करके शैलराजने शम्भुसे कहा—'भगवन्! मेरी पुत्री आप भगवान् चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये उत्सुक है। अतः आपके आराधनकी इच्छासे मैं इसको साथ लाया हूँ। यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवामें रहे। नाथ ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो इस कन्याको सेवाके लिये आज्ञा दीजिये।'

तब भगवान् शंकरने उस परम मनोहर कामरूपिणी कन्याको देखकर आँखें मूँद लीं और अपने त्रिगुणातीत, अविनाशी परमतत्त्वमय उत्तम रूपका ध्यान आरम्भ किया। उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापी जटाजूटधारी वेदान्तवेद्य चन्द्रकला-विभूषण शम्भु उत्तम आसनपर बैठकर नेत्र बंद किये तप (ध्यान) में ही लग गये। यह देख हिमाचलने मस्तक झुकाकर पुनः उनके चरणोंमें प्रणाम किया। यद्यपि उनके हृदयमें दीनता नहीं थी, तो भी वे उस समय इस संशयमें पड़ गये कि न जाने भगवान् मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ गिरिराज हिमवान्‌ने जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—देवदेव ! महादेव ! करुणाकर ! शंकर ! विभो ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये। शिव ! शर्व ! महेशान ! जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो ! महादेव ! आप सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। स्वामिन् ! प्रभो ! मैं अपनी इस पुत्रीके साथ प्रतिदिन आपका दर्शन करनेके लिये आऊँगा। इसके लिये आदेश दीजिये।

उनकी यह बात सुनकर देवदेव महेश्वरने आँखें खोलकर ध्यान छोड़ दिया और कुछ सोच-विचारकर कहा।

महेश्वर बोले—गिरिराज ! तुम अपनी इस कुमारी कन्याको घरमें रखकर ही नित्य मेरे दर्शनको आ सकते हो, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं हो सकता।

महेश्वरकी ऐसी बात सुनकर शिवाके पिता हिमवान् मस्तक झुकाकर उन भगवान् शिवसे बोले—'प्रभो ! यह तो बताइये, किस कारणसे मैं इस कन्याके साथ आपके दर्शनके लिये नहीं आ सकता। क्या यह आपकी सेवाके योग्य नहीं है। फिर इसे नहीं लानेका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता।'

यह सुनकर भगवान् वृषभध्वज शम्भु हँसने लगे और विशेषतः दुष्ट योगियोंको लोकाचारका दर्शन कराते हुए वे हिमालयसे बोले—'शैलराज ! यह कुमारी सुन्दर कटिप्रदेशसे सुशोभित, तन्वङ्गी, चन्द्रमुखी और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। इसलिये इसे मेरे समीप तुम्हें नहीं लाना चाहिये। इसके लिये मैं तुम्हें बारंबार रोकता हूँ। वेदके पारंगत विद्वानोंने नारीको मायारूपिणी कहा है। विशेषतः युवती स्त्री तो तपस्वीजनोंके तपमें विघ्न डालनेवाली ही होती है। गिरिश्रेष्ठ ! मैं तपस्वी, योगी और सदा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ। मुझे युवती स्त्रीसे क्या प्रयोजन है। तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय हिमालय ! इसलिये फिर तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि तुम वेदोक्त धर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विद्वान् हो। अचलराज ! स्त्रीके सङ्गसे मनमें शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है। उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न होनेसे पुरुष उत्तम तपस्यासे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये शैल ! तपस्वीको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्त्री



महाविषय-वासनाकी जड़ एवं ज्ञान-वैराग्यका विनाश करनेवाली होती है ।'*

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस तरहकी बहुत-सी बातें कहकर महायोगिशिरोमणि भगवान् महेश्वर चुप हो गये । देवर्षे ! शम्भुका यह निरामय, निःस्पृह और निष्ठुर वचन सुनकर कालीके पिता हिमवान् चकित, कुछ-कुछ व्याकुल और चुप हो गये । तपस्वी शिवकी कही हुई बात सुनकर और गिरिराज हिमवान्‌को चकित हुआ जानकर भवानी पार्वती उस समय भगवान् शिवको प्रणाम करके विशद वचन बोलीं ।

(अध्याय १२)

पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्‌की प्रतिदिन सेवा

भवानीने कहा—योगिन् ! आपने तपस्वी होकर गिरिराजसे यह क्या बात कह डाली ? प्रभो ! आप ज्ञानविशारद हैं, तो भी अपनी बातका उत्तर मुझसे सुनिये । शम्भो ! आप तपःशक्तिसे सम्पन्न होकर ही बड़ा भारी तप करते हैं । उस शक्तिके कारण ही आप महात्माको तपस्या करनेका विचार हुआ है । सभी कर्मोंको करनेकी जो वह शक्ति है, उसे ही प्रकृति जानना चाहिये । प्रकृतिसे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं । भगवन् ! आप कौन हैं ? और सूक्ष्म प्रकृति क्या है ? इसका विचार कीजिये । प्रकृतिके बिना लिङ्गरूपी महेश्वर कैसे हो सकते हैं ? आप सदा प्राणियोंके लिये जो अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं, वह प्रकृतिके ही कारण है । इस बातको हृदयसे विचारकर ही आपको जो कहना हो, वह सब कहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीजीके इस वचनको सुनकर महती लीला करनेमें लगे हुए प्रसन्नचित्त महेश्वर हँसते हुए बोले ।

महेश्वरने कहा—मैं उत्कृष्ट तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और तत्त्वतः प्रकृतिरहित शम्भुके रूपमें स्थित होता हूँ । अतः सत्पुरुषोंको कभी या कहीं प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये । लोकाचारसे दूर एवं निर्विकार रहना चाहिये ।

नारद ! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह बात कही, तब काली मन-ही-मन हँसकर मधुर वाणीमें बोली ।

कालीने कहा—कल्याणकारी प्रभो ! योगिन् ! आपने जो बात कही है, क्या वह वाणी प्रकृति नहीं है ? फिर आप उससे परे क्यों नहीं हो गये ? (क्यों प्रकृतिका सहारा लेकर बोलने लगे ? इन सब बातोंको विचार करके तात्त्विक दृष्टिसे जो यथार्थ बात हो, उसीको कहना चाहिये । यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है । इसलिये आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना—सब व्यवहार प्राकृत ही है । आप अपनी बुद्धिसे इसको समझिये । आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है । झूठे वाद-विवाद करना व्यर्थ है । प्रभो ! शम्भो ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किसलिये करते हैं ? हर ! प्रकृतिने आपको निगल लिया है । अतः आप अपने स्वरूपको नहीं जानते । ईश ! आप यदि अपने स्वरूपको जानते हैं तो किस लिये तप करते हैं ? योगिन् ! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है ? प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर विद्वान् पुरुष अनुमान प्रमाणको नहीं मानते । जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये । योगीश्वर ! बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरी उत्तम बात सुनिये । मैं प्रकृति हूँ । आप पुरुष हैं । यह सत्य है, सत्य है । इसमें संशय नहीं है । मेरे अनुग्रहसे ही आप सगुण और साकार माने गये हैं । मेरे बिना तो आप निरीह हैं । कुछ भी नहीं कर सकते हैं । आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो सदा नाना प्रकारके कर्म करते रहते हैं । फिर निर्विकार कैसे हैं ? और मुझसे लिप्त कैसे नहीं ? शंकर ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका यह कथन सत्य है तो आपको मेरे समीप रहनेपर भी डरना नहीं चाहिये ।

* भवत्यचल तत्सङ्गाद् विषयोत्पत्तिराशु वै । विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः ॥
अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु संगतिः । महाविषयमूलं सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी ॥

(शि० पु० रु० सं० पा० खं० १२ । ३१-३२)

ब्रह्माजी कहते हैं—पार्वतीका यह सांख्यशास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो उनसे यों बोले।

श्रीशिवने कहा—सुन्दर भाषण करनेवाली गिरिजे! यदि तुम सांख्य मतको धारण करके ऐसी बात कहती हो तो प्रतिदिन मेरी सेवा करो; परंतु वह सेवा शास्त्रनिषिद्ध नहीं होनी चाहिये।

गिरिजासे ऐसा कहकर भक्तोंपर अनुग्रह और उनका मनोरञ्जन करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्‌से बोले।

शिवने कहा—गिरिराज! मैं यहीं तुम्हारे अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्या तथा अपने आनन्दमय परमार्थस्वरूपका विचार करता हुआ विचरूँगा। पर्वतराज! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें। आपकी अनुज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता।

देवाधिदेव शूलधारी भगवान् शिवका यह कथन सुनकर हिमवान्‌ने उन्हें प्रणाम करके कहा—'महादेव! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है। मैं तुच्छ होकर आपसे क्या कहूँ?'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! गिरिराज हिमवान्‌के ऐसा कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकर हँस पड़े और आदरपूर्वक उनसे बोले—'अब तुम जाओ।' शंकरकी आज्ञा पाकर हिमवान् अपने घर लौट गये। वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनके दर्शनके लिये आते थे। काली अपने पिताके बिना भी दोनों सखियोंके साथ नित्य शंकरजीके पास जातीं और भक्तिपूर्वक उनकी सेवामें लगी रहतीं। नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकता नहीं था। तात! महेश्वरके आदेशसे ही ऐसा होता था। प्रत्येक गण पवित्रतापूर्वक रहकर उनकी आज्ञाका पालन करता था। जो विचार करनेसे परस्पर अभिन्न सिद्ध होते हैं, उन्हीं शिवा और शिवने सांख्य और वेदान्त-मतमें स्थित हो जो कल्याणदायक संवाद किया, वह सर्वदा सुख देनेवाला है। वह संवाद मैंने यहाँ कह सुनाया। इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया।

काली अपनी दो सखियोंके साथ चन्द्रशेखर महादेवजीकी सेवाके लिये प्रतिदिन आती-जाती रहती थीं। वे भगवान् शंकरके चरण धोकर उस चरणामृतका पान करती थीं। आगसे तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्रसे (अथवा गरम जलसे धोये हुए वस्त्रके द्वारा) उनके शरीरका मार्जन करती, उसे मलती-पोंछती थीं। फिर सोलह उपचारोंसे विधिवत् हरकी पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके पश्चात् प्रतिदिन पिताके घर लौट जाती रहीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार ध्यानपरायण शंकरकी सेवामें लगी हुई शिवाका महान् समय व्यतीत हो गया, तो भी वे अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर पूर्ववत् उनकी सेवा करती रहीं। महादेवजीने जब फिर उन्हें अपनी सेवामें नित्य तत्पर देखा, तब वे दयासे द्रवित हो उठे और इस प्रकार विचार करने लगे—'यह काली जब तपश्चर्या-व्रत करेगी और इसमें गर्वका बीज नहीं रह जायगा, तभी मैं इसका पाणिग्रहण करूँगा।'

ऐसा विचार करके महालीला करनेवाले महायोगीश्वर भगवान् भूतनाथ तत्काल ध्यानमें स्थित हो गये। मुने! परमात्मा शिव जब ध्यानमें लग गये, तब उनके हृदयमें दूसरी कोई चिन्ता नहीं रह गयी। काली प्रतिदिन महात्मा शिवके रूपका निरन्तर चिन्तन करती हुई उत्तम भक्तिभावसे उनकी सेवामें लगी रही। ध्यानपरायण भगवान् हर शुद्ध भावसे वहाँ रहती हुई कालीको नित्य देखते थे। फिर भी पूर्व चिन्ताको भुलाकर उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे।

इसी बीचमें इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको वहाँ आदरपूर्वक भेजा। वे कामकी प्रेरणासे कालीका रुद्रके साथ संयोग कराना चाहते थे। उनके ऐसा करनेमें कारण यह था कि महापराक्रमी तारकासुरसे वे बहुत पीड़ित थे (और शंकरजीसे किसी महान् बलवान् पुत्रकी उत्पत्ति चाहते थे)। कामदेवने वहाँ पहुँचकर अपने सब उपायोंका प्रयोग किया। परंतु महादेवजीके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। उलटे उन्होंने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। मुने! तब सती पार्वतीने भी गर्वरहित हो उनकी आज्ञासे बहुत बड़ी तपस्या करके शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया। फिर वे पार्वती और परमेश्वर परस्पर अत्यन्त प्रेमसे और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। उन दोनोंने परोपकारमें तत्पर रहकर देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया। (अध्याय १३)

तारकासुरसे सताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कष्टकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यसिद्धिके लिये यत्नशील होना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर पार्वतीके विवाहके विस्तृत प्रसङ्गको उपस्थित करते हुए ब्रह्माजीने तारकासुरकी उत्पत्ति, उसके उग्र तप, मनोवाञ्छित वर-प्राप्ति तथा देवता और असुर—सबको जीतकर स्वयं इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हो जानेकी कथा सुनायी।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—तारकासुर तीनों लोकोंको अपने वशमें करके जब स्वयं इन्द्र हो गया, तब उसके समान दूसरा कोई शासक नहीं रह गया। वह जितेन्द्रिय असुर, त्रिभुवनका एकमात्र स्वामी होकर अद्भुत ढंगसे राज्यका संचालन करने लगा। उसने समस्त देवताओंको निकालकर उनकी जगह दैत्योंको स्थापित कर दिया और विद्याधर आदि देवयोनियोंको स्वयं अपने कर्ममें लगाया। मुने! तदनन्तर तारकासुरके सताये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्याकुल और अनाथ होकर मेरी शरणमें आये। उन सबने मुझ प्रजापतिको प्रणाम करके बड़ी भक्तिसे मेरा स्तवन किया और अपने दारुण दुःखकी बातें बताकर कहा—'प्रभो! आप ही हमारी गति हैं। आप ही हमें कर्तव्यका उपदेश देनेवाले हैं और आप ही हमारे धाता एवं उद्धारक हैं। हम सब देवता तारकासुर नामक अग्निमें जलकर अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। जैसे संनिपात रोगमें प्रबल औषधें भी निर्बल हो जाती हैं, उसी प्रकार उस असुरने हमारे सभी क्रूर उपायोंको बलहीन बना दिया है। भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रपर ही हमारी विजयकी आशा अवलम्बित रहती है। परंतु वह भी उसके कण्ठपर कुण्ठित हो गया। उसके गलेमें पड़कर वह ऐसा प्रतीत होने लगा था, मानो उस असुरको फूलकी माला पहनायी गयी हो।

मुने! देवताओंका यह कथन सुनकर मैंने उन सबसे समयोचित बात कही—'देवताओ! मेरे ही वरदानसे दैत्य तारकासुर इतना बढ़ गया है। अतः मेरे हाथों ही उसका वध होना उचित नहीं। जो जिससे पलकर बढ़ा हो, उसका उसीके द्वारा वध होना योग्य कार्य नहीं है। विषके वृक्षको भी यदि स्वयं सींचकर बड़ा किया गया हो तो उसे स्वयं काटना अनुचित माना गया है। तुमलोगोंका सारा कार्य करनेके योग्य भगवान् शंकर हैं। किंतु वे तुम्हारे कहनेपर भी स्वयं उस असुरका सामना नहीं कर सकते। तारक दैत्य स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, तुम वैसा कार्य करो। मेरे वरके प्रभावसे न मैं तारकासुरका वध कर सकता हूँ, न भगवान् विष्णु कर सकते हैं और न भगवान् शंकर ही उसका वध कर सकते हैं। दूसरा कोई वीर पुरुष अथवा सारे देवता मिलकर भी उसे नहीं मार सकते, यह मैं सत्य कहता हूँ। देवताओ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं। सुरश्रेष्ठगण! इसके लिये जो उपाय मैं बताता हूँ, उसे करो। महादेवजीकी कृपासे वह उपाय अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिस दक्षकन्या सतीने दक्षके यज्ञमें अपने शरीरको त्याग दिया था, वही इस समय हिमालयपत्नी मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई है। यह बात तुम्हें भी विदित ही है। महादेवजी उस कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि देवताओ! तुम स्वयं भी इसके लिये प्रयत्न करो। तुम अपने यत्नसे ऐसा उद्योग करो, जिससे मेनकाकुमारी पार्वतीमें भगवान् शंकर अपने वीर्यका आधान कर सकें। भगवान् शंकर ऊर्ध्वरेता हैं (उनका वीर्य ऊपरकी ओर उठा हुआ है) उनके वीर्यको प्रस्खलित करनेमें केवल पार्वती ही समर्थ हैं। दूसरी कोई अबला अपनी शक्तिसे ऐसा नहीं कर सकती। गिरिराजकी पुत्री वे पार्वती इस समय युवावस्थामें प्रवेश कर चुकी हैं और हिमालयपर तपस्यामें लगे हुए महादेवजीकी प्रतिदिन सेवा करती हैं। अपने पिता हिमवान्‌के कहनेसे काली शिवा अपनी दो सखियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी साग्रह सेवा करती हैं। तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी पार्वती शिवके सामने रहकर प्रतिदिन उनकी पूजा करती हैं, तथापि वे ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी ध्यानहीन स्थितिमें नहीं आते। अर्थात् ध्यान भङ्ग करके पार्वतीकी ओर देखनेका विचार भी मनमें नहीं लाते। देवताओ! चन्द्रशेखर शिव जिस प्रकार कालीको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा करें, वैसी चेष्टा तुमलोग शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करो। मैं उस दैत्यके स्थानपर जाकर तारकासुरको बुरे हठसे हटानेकी चेष्टा करूँगा। अतः अब तुमलोग अपने स्थानको जाओ।'

नारद! देवताओंसे ऐसा कहकर मैं शीघ्र ही तारकासुरसे मिला और बड़े प्रेमसे बुलाकर मैंने उससे इस प्रकार कहा—

'तारक ! यह स्वर्ग हमारे तेजका सारतत्त्व है। परंतु तुम यहाँके राज्यका पालन कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे अधिक चाहने लगे हो। मैंने तुम्हें इससे छोटा ही वर दिया था। स्वर्गका राज्य कदापि नहीं दिया था। इसलिये तुम स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर राज्य करो। असुरश्रेष्ठ! देवताओंके योग्य जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हें वहीं सुलभ होंगे। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर उस असुरको समझानेके बाद मैं शिवा और शिवका स्मरण करके वहाँसे अदृश्य हो गया। तारकासुर भी स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर आ गया और शोणितपुरमें रहकर वह राज्य करने लगा। फिर सब देवता भी मेरी बात सुनकर मुझे प्रणाम करके इन्द्रके साथ प्रसन्नतापूर्वक बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रलोकमें गये। वहाँ जाकर परस्पर मिलकर आपसमें सलाह करके वे सब देवता इन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले—'भगवन्! शिवकी शिवामें जैसे भी काममूलक रुचि हो, वैसा ब्रह्माजीका बताया हुआ सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये।'

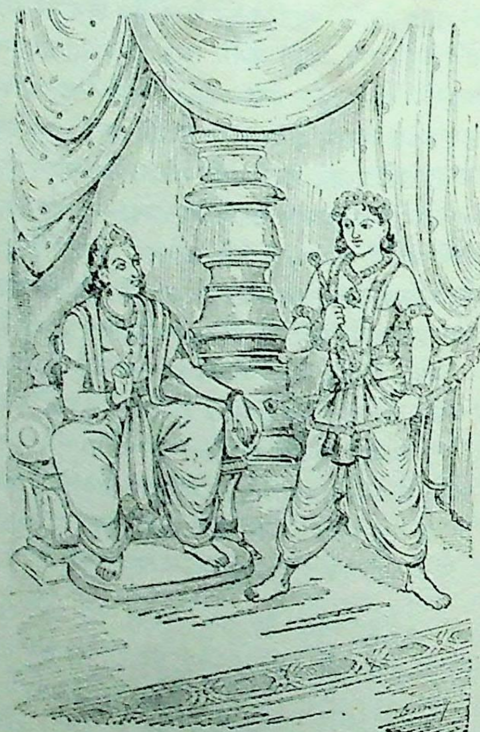
इस प्रकार देवराज इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके वे देवता प्रसन्नतापूर्वक सब ओर अपने-अपने स्थानपर चले गये।

(अध्याय १४—१६)

इन्द्रद्वारा कामका स्मरण, उसके साथ उनकी बातचीत तथा उनके कहनेसे कामका शिवको मोहनेके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! देवताओंके चले जानेपर दुरात्मा तारक दैत्यसे पीड़ित हुए इन्द्रने कामदेवका स्मरण किया। कामदेव तत्काल वहाँ आ पहुँचा। तब इन्द्रने मित्रता-का धर्म बतलाते हुए कामसे कहा—'मित्र! कालवशात् मुझपर असाध्य दुःख आ पड़ा है। उसे तुम्हारे बिना कोई भी दूर नहीं कर सकता। दाताकी परीक्षा दुर्भिक्षमें, शूरवीरकी परीक्षा रणभूमिमें, मित्रकी परीक्षा आपत्तिकालमें तथा स्त्रियोंके कुलकी परीक्षा पतिके असमर्थ हो जानेपर होती है। तात! संकट पड़नेपर विनयकी परीक्षा होती है और परोक्षमें सत्य एवं उत्तम स्नेहकी, अन्यथा नहीं। यह मैंने सच्ची बात कही है*। मित्रवर! इस समय मुझपर जो विपत्ति आयी है, उसका निवारण दूसरे किसीसे नहीं हो सकता। अतः आज तुम्हारी परीक्षा हो जायगी। यह कार्य केवल मेरा ही है और मुझे ही सुख देनेवाला है, ऐसी बात नहीं। अपितु यह समस्त देवता आदिका कार्य है, इसमें संशय नहीं है।'

इन्द्रकी यह बात सुनकर कामदेव मुस्कराया और प्रेमपूर्ण गम्भीर वाणीमें बोला।



कामने कहा—देवराज! आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? मैं आपको उत्तर नहीं दे रहा हूँ (आवश्यक निवेदन-मात्र कर रहा हूँ)। लोकमें कौन उपकारी मित्र है और कौन बनावटी—यह स्वयं देखनेकी वस्तु है, कहनेकी नहीं। जो संकटके समय बहुत बातें करता है, वह काम क्या करेगा?

* दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते।
आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥
विनतेः संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः।
सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० १७। १२-१३)

तथापि महाराज! प्रभो! मैं कुछ कहता हूँ, उसे सुनिये। मित्र! जो आपके इन्द्रपदको छीननेके लिये दारुण तपस्या कर रहा है, आपके उस शत्रुको मैं सर्वथा तपस्यासे भ्रष्ट कर दूँगा। जो काम जिससे पूरा हो सके, बुद्धिमान् पुरुष उसे उसी काममें लगाये। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह सब आप मेरे जिम्मे कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—कामदेवका यह कथन सुनकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। वे कामिनियोंको सुख देनेवाले कामको प्रणाम करके उससे इस प्रकार बोले।

इन्द्रने कहा—तात! मनोभव! मैंने अपने मनमें जिस कार्यको पूर्ण करनेका उद्देश्य रक्खा है, उसे सिद्ध करनेमें केवल तुम्हीं समर्थ हो। दूसरे किसीसे उस कार्यका होना सम्भव नहीं है। मित्रवर! मनोभव काम! जिसके लिये आज तुम्हारे सहयोगकी अपेक्षा हुई है, उसे ठीक-ठीक बता रहा हूँ; सुनो। तारक नामसे प्रसिद्ध जो महान् दैत्य है, वह ब्रह्माजीका अद्भुत वर पाकर अजेय हो गया है और सभीको दुःख दे रहा है। वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है। उसके द्वारा बारंबार धर्मका नाश हुआ है। उससे सब देवता और समस्त ऋषि दुखी हुए हैं। सम्पूर्ण देवताओंने पहले उसके साथ अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया था; परंतु उसके ऊपर सबके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये। जलके स्वामी वरुणका पाश टूट गया। श्रीहरिका सुदर्शनचक्र भी वहाँ सफल नहीं हुआ। श्रीविष्णुने उसके कण्ठपर चक्र चलाया, किंतु वह वहाँ कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजीने महायोगीश्वर भगवान् शम्भुके वीर्यसे उत्पन्न हुए बालकके हाथसे इस दुरात्मा दैत्यकी मृत्यु बतायी है। यह कार्य तुम्हें अच्छी तरह और प्रयत्नपूर्वक करना है। मित्रवर! उसके हो जानेसे हम देवताओंको बड़ा सुख मिलेगा। भगवान् शम्भु गिरिराज हिमालयपर उत्तम तपस्यामें लगे हैं। वे हमारे भी प्रभु हैं, कामनाके वशमें नहीं हैं, स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैंने सुना है कि गिरिराजनन्दिनी पार्वती पिताकी आज्ञा पाकर अपनी दो सखियोंके साथ उनके समीप रहकर उनकी सेवामें रहती हैं। उनका यह प्रयत्न महादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही है। परंतु भगवान् शिव अपने मनको संयम-नियमसे वशमें रखते हैं। मार! जिस तरह भी उनकी पार्वतीमें अत्यन्त रुचि हो जाय, तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये। यही कार्य करके तुम कृतार्थ हो जाओगे और हमारा सारा दुःख नष्ट हो जायगा। इतना ही नहीं, लोकमें तुम्हारा स्थायी प्रताप फैल जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने देवराजसे प्रेमपूर्वक कहा—'मैं इस कार्यको करूँगा। इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर शिवकी मायासे मोहित हुए कामने उस कार्यके लिये स्वीकृति दे दी और शीघ्र ही उसका भार ले लिया। वह अपनी पत्नी रति और वसन्तको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ उस स्थानपर गया, जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे। (अध्याय १७)

रुद्रकी नेत्राग्निसे कामका भस्म होना, रतिका विलाप, देवताओंकी प्रार्थनासे शिवका कामको द्वापरमें प्रद्युम्नरूपसे नूतन शरीरकी प्राप्तिके लिये वर देना और रतिका शम्बर-नगरमें जाना

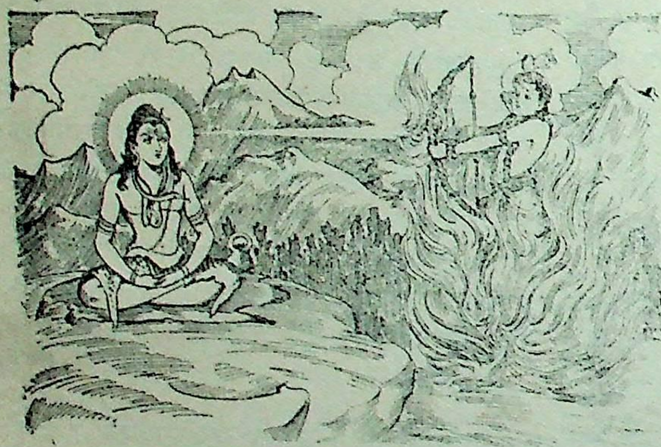
ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! काम अपने साथी वसन्त आदिको लेकर वहाँ पहुँचा। उसने भगवान् शिवपर अपने बाण चलाये। तब शंकरजीके मनमें पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा और उनका धैर्य छूटने लगा। अपने धैर्यका ह्रास होता देख महायोगी महेश्वर अत्यन्त विस्मित हो मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन करने लगे।

शिव बोले—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गये? किस कुकर्मीने यहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा कर दिया?

इस तरह विचार करके सत्पुरुषोंके आश्रयदाता महायोगी परमेश्वर शिव शङ्कायुक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढचित्त मदन अपनी शक्तिके घमंडमें आकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाहता था। नारद! इस अवस्थामें कामपर दृष्टि पड़ते ही परमात्मा गिरीशको तत्काल रोष चढ़ आया। मुने! उधर आकाशमें बाणसहित धनुष लिये खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना अमोघ अस्त्र छोड़ दिया, जिसका निवारण करना बहुत कठिन था। परंतु परमात्मा शिवपर वह अमोघ अस्त्र भी मोघ (व्यर्थ) हो गया, कुपित हुए परमेश्वरके पास जाते ही शान्त हो गया। भगवान् शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथ (काम) को बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युंजयको सामने देखकर वह

काँप उठा और इन्द्र आदि समस्त देवताओंका स्मरण करने लगा। मुनिश्रेष्ठ! अपना प्रयास निष्फल हो जानेपर काम भयसे व्याकुल हो उठा था। मुनीश्वर! कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि सब देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भुको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् हरके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आग तत्काल प्रकट होकर निकली। उसकी ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी प्रभा प्रलयाग्निके समान जान पड़ती थी। वह आग तुरंत ही आकाशमें उछली और पृथ्वीपर गिर पड़ी। फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई धराशायिनी हो गयी। साधो! 'भगवन्! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये' यह बात जबतक



देवताओंके मुखसे निकले, तबतक ही उस आगने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। उस वीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल हो 'हाय! यह क्या हुआ?' ऐसा कह-कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे।

उस समय विकृतचित्त हुई पार्वतीका सारा शरीर सफेद पड़ गया—काटो तो खून नहीं। वे सखियोंको साथ ले अपने भवनको चली गयीं। कामदेवके जल जानेपर रति वहाँ एक क्षणतक अचेत पड़ी रही। पतिकी मृत्युके दुःखसे वह इस तरह पड़ी थी, मानो मर गयी हो। थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त व्याकुल हो रति उस समय तरह-तरहकी बातें कह-कर विलाप करने लगी।

रति बोली—हाय! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओंने यह क्या किया? मेरे उद्दण्ड स्वामीको बुलाकर नष्ट करा दिया। हाय! हाय! नाथ! स्मर! स्वामिन्! प्राणप्रिय! हा मुझे सुख देनेवाले प्रियतम! हा प्राणनाथ! यह यहाँ क्या हो गया?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार रोती, बिलखती और अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई रति हाथ-पैर पटकने और अपने सिरके बालोंको नोचने लगी। उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त वनवासी जीव तथा वृक्ष आदि स्थावर प्राणी भी बहुत दुखी हो गये। इसी बीचमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महादेवजीका स्मरण करते हुए रतिको आश्वासन दे इस प्रकार बोले।

देवताओंने कहा—तुम कामके शरीरका थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रक्खो और भय छोड़ो। हम सबके स्वामी महादेवजी कामदेवको पुनः जीवित कर देंगे और तुम फिर अपने प्रियतमको प्राप्त कर लोगी। कोई किसीको न तो सुख देनेवाला है और न कोई दुःख ही देनेवाला है। सब लोग अपनी-अपनी करनीका फल भोगते हैं। तुम देवताओंको दोष देकर व्यर्थ ही शोक करती हो।

इस प्रकार रतिको आश्वासन दे सब देवता भगवान् शिवके पास आये और उन्हें भक्तिभावसे प्रसन्न करके यों बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! शरणागतवत्सल महेश्वर! आप कृपा करके हमारे इस शुभ वचनोंको सुनिये। शंकर! आप कामदेवकी करतूतपर भलीभाँति प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। महेश्वर! कामने जो यह कार्य किया है, इसमें इसका कोई स्वार्थ नहीं था। दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए हम सब देवताओंने मिलकर उससे यह काम कराया है। नाथ! शंकर! इसे आप अन्यथा न समझें। सब कुछ देनेवाले देव! गिरीश! सती-साध्वी रति अकेली अति दुखी होकर विलाप कर रही है। आप उसे सान्त्वना प्रदान करें। शंकर! यदि इस क्रोधके द्वारा आपने कामदेवको मार डाला तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियोंका अभी संहार कर डालना चाहते हैं। रतिका दुःख देखकर

देवता नष्टप्राय हो रहे हैं; इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! सम्पूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उनसे इस प्रकार बोले ।

शिवने कहा—देवताओ और ऋषियो ! तुम सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनो । मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्तिशाली पति कामदेव तभीतक अनङ्ग (शरीररहित) रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता । जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे, तब वे रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे । उस कामका ही नाम उस समय 'प्रद्युम्न' होगा—इसमें संशय नहीं है । उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर लेगा । हरणके पश्चात् दानवशिरोमणि शम्बर उस शिशुको समुद्रमें डाल देगा । फिर वह मूढ़ उसे मरा हुआ समझकर अपने नगरको लौट जायगा । रते ! उस समयतक तुम्हें शम्बरासुरके नगरमें सुखपूर्वक निवास करना चाहिये । वहीं तुम्हें अपने पति प्रद्युम्नकी प्राप्ति होगी । वहाँ तुमसे मिलकर काम युद्धमें शम्बरासुरका वध करेगा और सुखी होगा । देवताओ ! प्रद्युम्न-नामधारी काम अपनी कामिनी रतिको तथा शम्बरासुरके धनको लेकर उसके साथ पुनः नगरमें जायगा । मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शिवकी यह बात सुनकर देवताओंके चित्तमें कुछ उल्लास हुआ और वे उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ विनीतभावसे बोले ।

देवताओंने कहा—देवदेव ! महादेव ! करुणासागर ! प्रभो ! आप कामदेवको शीघ्र जीवन-दान दें तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा करें ।

देवताओंकी यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव पुनः प्रसन्न होकर बोले—'देवताओ ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मैं कामको सबके हृदयमें जीवित कर दूँगा । वह सदा मेरा गण होकर विहार करेगा । अब अपने स्थानको जाओ । मैं तुम्हारे दुःखका सर्वथा नाश करूँगा ।'

ऐसा कहकर रुद्रदेव उस समय स्तुति करनेवाले देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । देवताओंका विस्मय दूर हो गया और वे सब-के-सब प्रसन्न हो गये । मुने ! तदनन्तर रुद्रकी बातपर भरोसा करके स्थिर रहनेवाले देवता रतिको उनका कथन सुनाकर आश्वासन दे अपने-अपने स्थानको चले गये । मुनीश्वर ! कामपत्नी रति शिवके बताये हुए शम्बरनगरको चली गयी तथा रुद्रदेवने जो समय बताया था, उसकी प्रतीक्षा करने लगी ।

(अध्याय १८-१९)

ब्रह्माजीका शिवकी क्रोधाग्निको वडवानलकी संज्ञा दे समुद्रमें स्थापित करके संसारके भयको दूर करना, शिवके विरहसे पार्वतीका शोक तथा नारदजीके द्वारा उन्हें तपस्याके लिये उपदेशपूर्वक पञ्चाक्षर मन्त्रकी प्राप्ति

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र जलाकर भस्म कर दिया, तब वह बिना किसी प्रयोजनके ही प्रज्वलित हो सब ओर फैलने लगी । इससे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया । तात ! सम्पूर्ण देवता और ऋषि तुरंत मेरी शरणमें आये । उन सबने अत्यन्त व्याकुल होकर मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़ मुझे प्रणाम किया और मेरी स्तुति करके वह दुःख निवेदन किया । वह सुनकर मैं भगवान् शिवका स्मरण करके उसके हेतुका भलीभाँति विचार-कर तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये विनीतभावसे वहाँ पहुँचा । वह अग्नि ज्वालामालाओंसे अत्यन्त उद्दीप्त हो जगत्को जला देनेके लिये उद्यत थी । परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया । मुने ! त्रिलोकीको दग्ध करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको मैंने एक ऐसे घोड़ेके रूपमें परिणत कर दिया, जिसके मुखसे सौम्य ज्वाला प्रकट हो रही थी । भगवान् शिवकी इच्छासे उस वाडवशरीर (घोड़े) वाली अग्निको लेकर मैं लोकहितके लिये समुद्रतटपर गया । मुने ! मुझे आया देख समुद्र एक दिव्य पुरुषका रूप धारण करके हाथ जोड़े हुए मेरे पास आया । मुझ सम्पूर्ण लोकोंके पितामहकी भलीभाँति विधिवत् स्तुति-वन्दना करके सिन्धुने मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

सागर बोला—सर्वेश्वर ब्रह्मन्! आप यहाँ किसलिये पधारे हैं? मुझे अपना सेवक समझकर इस बातको प्रीतिपूर्वक कहिये।



सागरकी बात सुनकर भगवान् शंकरका स्मरण करके लोकहितका ध्यान रखते हुए मैंने उससे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'तात समुद्र! तुम बड़े बुद्धिमान् और सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी हो। मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हार्दिक प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ। यह भगवान् महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है। यह कामदेवको दग्ध करके तुरंत ही सम्पूर्ण जगत्‌को भस्म करनेके लिये उद्यत हो गया था। यह देख पीड़ित हुए देवताओंकी प्रार्थनासे मैं शंकरेच्छावश वहाँ गया और इस अग्निको स्तम्भित किया। फिर इसने घोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया। जलाधार! मैं जगत्‌पर दया करके तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ—इस महेश्वरके क्रोधको, जो वाड़वका रूप धारण करके मुखसे ज्वाला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलयकालपर्यन्त धारण किये रहो। सरित्पते! जब मैं यहाँ आकर वास करूँगा, तब तुम भगवान् शंकरके इस अद्भुत क्रोधको छोड़ देना। तुम्हारा जल ही प्रतिदिन इसका भोजन होगा। तुम यत्नपूर्वक इसे ऊपर ही धारण किये रहना, जिससे यह तुम्हारी अनन्त जलराशिके भीतर न चला जाय।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेरे ऐसा कहनेपर समुद्रने रुद्रकी क्रोधाग्निरूप वड़वानलको धारण करना स्वीकार कर लिया, जो दूसरेके लिये असम्भव था। तदनन्तर वह बड़वाग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्वालामालाओंसे प्रदीप्त हो सागरकी जलराशिका दहन करने लगी। मुने! इससे संतुष्टचित्त होकर मैं अपने लोकको चला आया और वह दिव्यरूपधारी समुद्र मुझे प्रणाम करके अदृश्य हो गया। महामुने! रुद्रकी उस क्रोधाग्निके भयसे छूटकर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मुनि सुखी हो गये।

नारदजी बोले—दयानिधे! मदनदहनके पश्चात् गिरिराजनन्दिनी पार्वती देवीने क्या किया? वे अपनी दोनों सखियोंके साथ कहाँ गयीं? यह सब मुझे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुई आगने जब कामदेवको दग्ध किया, तब वहाँ महान् अद्भुत शब्द प्रकट हुआ, जिससे सारा आकाश गूँज उठा। उस महान् शब्दके साथ ही कामदेवको दग्ध हुआ देख भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती दोनों सखियोंके साथ अपने घर चली गयीं। उस शब्दसे परिवारसहित हिमवान् भी बड़े विस्मयमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका स्मरण करके उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। इतनेमें ही पार्वती दूरसे आती हुई दिखायी दीं। वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं। अपनी पुत्रीको अत्यन्त विह्वल हुई देख शैलराज हिमवान्‌को बड़ा शोक हुआ और वे शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचे। वे फिर हाथसे उसकी दोनों आँखें पोंछकर बोले—'शिवे! डरो मत, रोओ मत।' ऐसा कहकर अचलेश्वर हिमवान्‌ने अत्यन्त विह्वल हुई पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और उसे सान्त्वना देते हुए वे अपने घर ले आये।

कामदेवका दाह करके महादेवजी अदृश्य हो गये थे। अतः उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो उठी थीं। उन्हें कहीं भी सुख या शान्ति नहीं मिलती थी। पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वती शिवाने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और बोलीं—'हाय! मैं मारी गयी!' सखियोंके समझानेपर भी वे गिरिराज-

कुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं। वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें खड़े होते समय भी कभी किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं। 'मेरे स्वरूपको तथा जन्म-कर्मको भी धिक्कार है' ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती थीं। इस प्रकार पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-ही-मन अत्यन्त क्लेशका अनुभव करती और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं। वे सदा 'शिव, शिव' का जप किया करती थीं। शरीरसे पिताके घरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं। तात! शिवा शोकमग्न हो बारंबार मूर्च्छित हो जाती थीं। शैलराज हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो बड़े उदारचेता थे, उन्हें सदा सान्त्वना देते रहते थे। तथापि वे भगवान् शंकरको भूल न सकीं।

बुद्धिमान् देवर्षे! तदनन्तर एक दिन इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए तुम हिमालय पर्वतपर आये। उस समय महात्मा हिमवान्‌ने तुम्हारा स्वागत-सत्कार किया और कुशल-मङ्गल पूछा। फिर तुम उनके दिये हुए उत्तम आसनपर बैठे। तदनन्तर शैलराजने अपनी कन्याके चरित्रका आरम्भसे ही वर्णन किया। किस तरह उसने महादेवजीकी सेवा आरम्भ की और किस तरह उनके द्वारा कामदेवका दहन हुआ—यह सब कुछ बताया। मुने! यह सब सुनकर तुमने गिरिराजसे कहा—'शैलेश्वर! भगवान् शिवका भजन करो।' फिर उनसे विदा लेकर तुम उठे और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके शैलराजको छोड़ शीघ्र ही एकान्तमें कालीके पास आ गये। मुने! तुम लोकोपकारी, ज्ञानी तथा शिवके प्रिय भक्त हो; समस्त ज्ञानवानोंके शिरोमणि हो, अतः कालीके पास आ उसे सम्बोधित करके उसीके हितमें स्थित हो उससे सादर यह सत्य वचन बोले।

नारदजीने (तुमने) कहा—कालिके! तुम मेरी बात सुनो। मैं दयावश सच्ची बात कह रहा हूँ। मेरा वचन तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर, निर्दोष तथा उत्तम काम्य वस्तुओंको देनेवाला होगा। तुमने यहाँ महादेवजीकी सेवा अवश्य की थी, परंतु वह बिना तपस्याके गर्वयुक्त होकर की थी। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवने तुम्हारे उसी गर्वको नष्ट किया है। शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं। उन्होंने केवल कामदेवको जलाकर जो तुम्हें सकुशल छोड़ दिया है, उसमें यही कारण है कि वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः तुम उत्तम तपस्यामें संलग्न हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्यासे तुम्हारा संस्कार हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी। देवि! तुम हठपूर्वक शिवको अपनानेका यत्न करो। शिवके सिवा दूसरे किसीको अपना पति स्वीकार न करना।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराजकुमारी काली कुछ उल्लसित हो तुमसे हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक बोलीं।

शिवाने कहा—प्रभो! आप सर्वज्ञ तथा जगत्का उपकार करनेवाले हैं। मुने! मुझे रुद्रदेवकी आराधनाके लिये कोई मन्त्र दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पार्वतीका यह वचन सुनकर तुमने पञ्चाक्षर शिवमन्त्र (नमः शिवाय) का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश किया। साथ ही उस मन्त्रराजमें श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये तुमने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया।

नारद (तुम) बोले—देवि! इस मन्त्रका परम अद्भुत प्रभाव सुनो। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका राजा और मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। भगवान् शंकरको बहुत ही प्रिय है तथा साधकको भोग और मोक्ष दोनों देनेमें समर्थ है। सौभाग्यशालिनि! इस मन्त्रका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र तुम्हारी आँखोंके सामने प्रकट हो जायँगे। शिवे! शौच-संतोषादि नियमोंमें तत्पर रहकर भगवान् शिवके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पञ्चाक्षरमन्त्रका जप करो। इससे आराध्यदेव शिव शीघ्र ही संतुष्ट होंगे। साध्वी! इस तरह तपस्या करो। तपस्यासे महेश्वर वशमें हो सकते हैं। तपस्यासे ही सबको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम भगवान् शिवके प्रिय भक्त और इच्छानुसार विचरनेवाले हो। तुमने कालीसे उपर्युक्त बात कहकर देवताओंके हितमें तत्पर हो स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। तुम्हारी बात सुनकर उस समय पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें परम उत्तम पञ्चाक्षरमन्त्र प्राप्त हो गया था। (अध्याय २०-२१)

श्रीशिवकी आराधनाके लिये पार्वतीकी दुष्कर तपस्या

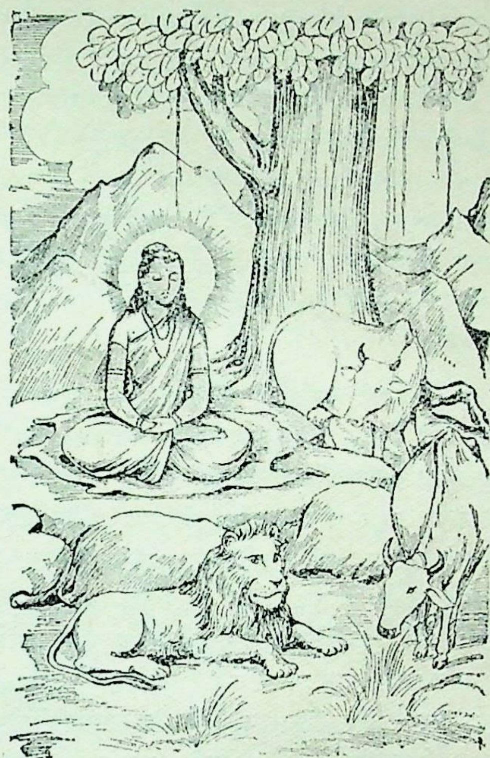
ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! तुम्हारे चले जानेपर प्रफुल्लचित्त हुई पार्वतीने महादेवजीको तपस्यासे ही साध्य माना और तपस्याके लिये ही मनमें निश्चय किया । तब उन्होंने अपनी सखी जया और विजयाके द्वारा पिता हिमाचल और माता मेनासे आज्ञा माँगी । पिताने तो स्वीकार कर लिया; परंतु माता मेनाने स्नेहवश अनेक प्रकारसे समझाया और घरसे दूर वनमें जाकर तप करनेसे पुत्रीको रोका । मेनाने तपस्याके लिये वनमें जानेसे रोकते हुए 'उ' 'मा' (बाहर न जाओ) ऐसा कहा; इसलिये उस समय शिवाका नाम उमा हो गया । मुने ! शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने रोकनेसे शिवाको दुखी हुई जान अपना विचार बदल दिया और पार्वतीको तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दी । मुनिश्रेष्ठ ! माताकी वह आज्ञा पाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पार्वतीने भगवान् शंकरका स्मरण करके अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया । माता-पिताको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करके शिवके स्मरणपूर्वक दोनों सखियोंके साथ वे तपस्या करनेके लिये चली गयीं । अनेक प्रकारके प्रिय वस्त्रोंका परित्याग करके पार्वतीने कटि-प्रदेशमें सुन्दर मूँजकी मेखला बाँध शीघ्र ही वल्कल धारण कर लिये । हारका परिहार करके उत्तम मृगचर्मको हृदयसे लगाया । तत्पश्चात् वे तपस्याके लिये गङ्गावतरण (गङ्गोत्तरी) तीर्थकी ओर चलीं ।

जहाँ ध्यान लगाते हुए भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध किया था, हिमालयका वह शिखर गङ्गावतरणके नामसे प्रसिद्ध है । वहीं परम उत्तम शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने तपस्या प्रारम्भ की । गौरीके तप करनेसे ही उसका 'गौरी-शिखर' नाम हो गया । मुने ! शिवाने अपने तपकी परीक्षाके लिये वहाँ बहुत-से सुन्दर एवं पवित्र वृक्ष लगाये, जो फल देनेवाले थे । सुन्दरी पार्वतीने पहले भूमि-शुद्धि करके वहाँ एक वेदीका निर्माण किया । तदनन्तर ऐसी तपस्या आरम्भ की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी । वे मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शीघ्र ही काबूमें करके उस वेदीपर उच्चकोटिकी तपस्या करने लगीं । ग्रीष्म ऋतुमें अपने चारों ओर दिन-रात आग जलाये रखकर वे बीचमें बैठतीं और निरन्तर पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करती रहती थीं । वर्षा ऋतुमें वेदीपर सुस्थिर आसनसे बैठकर अथवा किसी पत्थरकी चट्टानपर ही आसन लगाकर वे निरन्तर वर्षाकी जलधारासे भीगती रहती थीं । शीतकालमें निराहार रहकर भगवान् शंकरके भजनमें तत्पर हो वे सदा शीतल जलके भीतर खड़ी रहती तथा रातभर बरफकी चट्टानोंपर बैठा करती थीं । इस प्रकार तप करती हुई पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें संलग्न हो शिवा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता शिवका ध्यान करती थीं । प्रतिदिन अवकाश मिलनेपर वे सखियोंके साथ अपने लगाये हुए वृक्षोंको प्रसन्नतापूर्वक सींचतीं और वहाँ पधारे हुए अतिथिका आतिथ्य-सत्कार भी करती थीं ।

शुद्ध चित्तवाली पार्वतीने प्रचण्ड आँधी, कड़ाकेकी सर्दी, अनेक प्रकारकी वर्षा तथा दुस्सह धूपका भी सेवन किया । उनके ऊपर वहाँ नाना प्रकारके दुःख आये, परंतु उन्होंने उन सबको कुछ नहीं गिना । मुने ! वे केवल शिवमें मन लगाकर वहाँ सुस्थिरभावसे खड़ी या बैठी रहती थीं । उनका पहला वर्ष फलाहारमें बीता और दूसरा वर्ष उन्होंने केवल पत्ते चबाकर बिताया ! इस तरह तपस्या करती हुई देवी पार्वतीने क्रमशः असंख्य वर्ष व्यतीत कर दिये । तदनन्तर हिमवान्की पुत्री शिवा देवी पत्ते खाना भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहने लगीं, तो भी तपश्चर्यामें उनका अनुराग बढ़ता ही गया । हिमाचलपुत्री शिवाने भोजनके लिये पर्णका भी परित्याग कर दिया । इसलिये देवताओंने उनका नाम 'अपर्णा' रख दिया । इसके बाद पार्वती भगवान् शिवके स्मरणपूर्वक एक पैरसे खड़ी हो पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करती हुई बड़ी भारी तपस्या करने लगीं । उनके अङ्ग चीर और वल्कलसे ढके थे । वे मस्तकपर जटाओंका समूह धारण किये रहती थीं । इस प्रकार शिवके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने अपनी तपस्याके द्वारा मुनियोंको जीत लिया । उस तपोवनमें महेश्वरके चिन्तनपूर्वक तपस्या करती हुई कालीके तीन हजार वर्ष बीत गये ।

तदनन्तर जहाँ महादेवजीने साठ हजार वर्षोंतक तप किया था, उस स्थानपर क्षणभर ठहरकर शिवा देवी इस

प्रकार चिन्ता करने लगीं—'क्या महादेवजी इस समय यह नहीं जानते कि मैं उनके लिये नियमोंके पालनमें तत्पर हो तपस्या कर रही हूँ ? फिर क्या कारण है कि सुदीर्घकालसे तपस्यामें लगी हुई मुझ सेविकाके पास वे नहीं आये ? लोकमें, वेदमें और मुनियोंद्वारा सदा गिरीशकी महिमाका गान किया जाता है। सब यही कहते हैं कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा, सर्वदर्शी, समस्त ऐश्वर्योंके दाता, दिव्य शक्ति-सम्पन्न, सबके मनोभावोंको समझ लेनेवाले, भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तु देनेवाले और सदा समस्त क्लेशोंका निवारण करनेवाले हैं। यदि मैं समस्त कामनाओंका परित्याग करके भगवान् वृषभध्वजमें अनुरक्त हुई हूँ तो वे कल्याणकारी भगवान् शिव यहाँ मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने नारदतन्त्रोक्त शिवपञ्चाक्षर मन्त्रका सदा उत्तम भक्तिभावसे विधिपूर्वक जप किया हो तो भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैं सर्वेश्वर शिवकी भक्तिसे युक्त एवं निर्विकार होऊँ तो भगवान् शंकर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हों।'



इस तरह नित्य चिन्तन करती हुई जटा-वल्कलधारिणी निर्विकारा पार्वती मुँह नीचे किये सुदीर्घकालतक तपस्यामें लगी रहीं। उन्होंने ऐसी तपस्या की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। वहाँ उस तपस्याका स्मरण करके पुरुषोंको बड़ा विस्मय हुआ। महर्षे ! पार्वतीकी तपस्याका जो दूसरा प्रभाव पड़ा था, उसे भी इस समय सुनो। जगदम्बा पार्वतीका वह महान् तप परम आश्चर्यजनक था। जो स्वभावतः एक दूसरेके विरोधी थे, ऐसे प्राणी भी उस आश्रमके पास जाकर उनकी तपस्याके प्रभावसे विरोधरहित हो जाते थे। सिंह और गौ आदि सदा रागादि दोषोंसे संयुक्त रहनेवाले पशु भी पार्वतीके तपकी महिमासे वहाँ परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते थे। मुनिश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त जो स्वभावतः एक दूसरेके वैरी हैं, वे चूहे-बिल्ली आदि दूसरे-दूसरे जीव भी उस आश्रमपर कभी रोष आदि विकारोंसे युक्त नहीं होते थे। वहाँके सभी वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते थे। भाँति-भाँतिके तृण और विचित्र पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँका सारा वन-प्रान्त कैलासके समान हो गया। पार्वतीके तपकी सिद्धिका साकार रूप बन गया। (अध्याय २२)

पार्वतीकी तपस्याविषयक दृढ़ता, उनका पहलेसे भी उग्र तप, उससे त्रिलोकीका संतप्त होना तथा समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा और विष्णुका भगवान् शिवके स्थानपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं— मुनीश्वर ! शिवकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीके बहुत वर्ष बीत गये, तो भी भगवान् शंकर प्रकट नहीं हुए। तब हिमाचल, मेना, मेरु और मन्दराचल आदिने आकर पार्वतीको समझाया और शिवकी प्राप्तिको अत्यन्त दुष्कर बताकर उनसे यह अनुरोध किया कि तुम तपस्या छोड़कर घरको लौट चलो।

तब उन सबकी बात सुनकर पार्वतीने कहा— पिताजी ! माताजी ! तथा मेरे सभी बान्धव ! मैंने पहले जो बात कही थी, उसे क्या आपलोगोंने भुला दिया है ? अस्तु, इस समय भी मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे आपलोग सुन लें। जिन्होंने रोषसे कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया है, वे महादेवजी यद्यपि विरक्त हैं, तो भी मैं अपनी तपस्यासे उन

भक्तवत्सल भगवान् शंकरको अवश्य संतुष्ट करूँगी। आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरको जायँ; महादेवजी संतुष्ट होंगे ही, इसमें अन्यथा विचारकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने कामदेवको जलाया है, जिन्होंने इस पर्वतके वनको भी जलाकर भस्म कर दिया है, उन भगवान् शंकरको मैं केवल तपस्यासे यहीं बुलाऊँगी। महाभागगण! आप यह जान लें कि महान् तपोबलसे ही भगवान् सदाशिवकी सेवा सुलभ हो सकती है। यह मैं आपलोगोंसे सत्य, सत्य कहती हूँ।

सुमधुर भाषण करनेवाली पर्वतराजकुमारी शिवा माता मेनका, भाई मैनाक, पिता हिमालय और मन्दराचल आदिसे उपर्युक्त बात कहकर शीघ्र ही चुप हो गयीं। शिवाके ऐसा कहनेपर वे चतुर-चालाक पर्वत, गिरिराज सुमेरु आदि गिरिजाकी बारंबार प्रशंसा करते हुए अत्यन्त विस्मित हो जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। उन सबके चले जानेपर सखियोंसे घिरी हुई पार्वती मनमें यथार्थ निश्चय करके पहलेसे भी अधिक उग्र तपस्या करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! देवताओं, असुरों, मनुष्यों और चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी उस महती तपस्यासे संतप्त हो उठी। उस समय समस्त देवता, असुर, यक्ष, किंनर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, प्रजापति, गुह्यक तथा अन्य लोग महान्-से-महान् कष्टमें पड़ गये। परंतु इसका कोई कारण उनकी समझमें नहीं आया। तब इन्द्र आदि सब देवता मिलकर गुरु बृहस्पतिसे सलाह ले बड़ी विह्वलताके साथ सुमेरु पर्वतपर मुझ विधाताकी शरणमें आये। उस समय उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे थे। वहाँ आ मुझे प्रणामकर उन सभी व्याकुल और कान्तिहीन देवताओंने मेरी स्तुति करके एक साथ ही मुझसे पूछा—'प्रभो! जगत्‌के संतप्त होनेका क्या कारण है?'

उनका यह प्रश्न सुनकर मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विचारपूर्वक मैंने सब कुछ जान लिया। इस समय विश्वमें जो दाह उत्पन्न हो गया है, वह गिरिजाकी तपस्याका फल है—यह जानकर मैं उन सबके साथ शीघ्र ही क्षीरसागरको गया। वहाँ जानेका उद्देश्य भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताना था। वहाँ पहुँचकर देखा भगवान् श्रीहरि सुखद आसनपर विराजमान हैं। देवताओंके साथ मैंने हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक उनकी स्तुति की और कहा—'महाविष्णो! तपस्यामें लगी हुई पार्वतीके परम उग्र तपसे संतप्त हो हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें बचाइये, बचाइये।' हम सब देवताओंकी यह बात सुनकर शेषशय्यापर बैठे हुए भगवान् लक्ष्मीपति हमसे बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओ! मैंने आज पार्वतीजीकी तपस्याका सारा कारण जान लिया है। अतः तुमलोगोंके साथ अब परमेश्वर शिवके समीप चलता हूँ। हम सब लोग मिलकर यह प्रार्थना करेंगे कि वे गिरिजाको ब्याहकर अपने यहाँ ले आवें। अमरो! इस समय समस्त संसारके कल्याणके लिये भगवान्‌से शिवाके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध करना है। देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिव शिवाको वर देनेके लिये जैसे भी वहीं उनके आश्रमपर जायँ, इस समय हम वैसा ही प्रयत्न करेंगे। अतः परम मङ्गलमय महाप्रभु रुद्र जहाँ उग्र तपस्यामें लगे हुए हैं, वहीं हम सब लोग चलें।

भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर समस्त देवता आदि हठी, क्रोधी और जलानेके लिये उद्यत रहनेवाले प्रलयंकर रुद्रसे अत्यन्त भयभीत हो बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! जो महाभयंकर, कालाग्निके समान दीप्तिमान् और भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं, उन रोषभरे महाप्रभु रुद्रके पास हमलोग नहीं जा सकेंगे; क्योंकि जैसे पहले उन्होंने कुपित हो दुर्जय कामको भी जला दिया था, उसी प्रकार वे हमें भी दग्ध कर डालेंगे—इसमें संशय नहीं है।

मुने! इन्द्रादि देवताओंकी बात सुनकर लक्ष्मीपति श्रीहरिने उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीहरि बोले—हे देवताओ! तुम सब लोग प्रेम और आदरके साथ मेरी बात सुनो। भगवान् शिव देवताओंके स्वामी तथा उनके भयका नाश करनेवाले हैं। वे तुम्हें नहीं दग्ध करेंगे। तुम सब लोग बड़े चतुर हो। अतः तुम्हें शम्भुको कल्याणकारी मानकर हमारे साथ सबके उत्तम प्रभु उन महादेवजीकी शरणमें चलना चाहिये। भगवान् शिव पुराणपुरुष, सर्वेश्वर, वरणीय, परात्पर, तपस्वी और परमात्मस्वरूप हैं; अतः हमें उनकी शरणमें अवश्य चलना चाहिये।

प्रभावशाली विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता उनके साथ पिनाकपाणि शिवका दर्शन करनेके लिये गये। मार्गमें पार्वतीका आश्रम पहले पड़ता था। अतः उन गिरिराजनन्दिनीकी तपस्या देखनेके लिये विष्णु आदि सब देवता

कौतूहलपूर्वक उनके आश्रमपर गये । पार्वतीके श्रेष्ठ तपको देखकर सब देवता उनके उत्तम तेजसे व्याप्त हो गये । उन्होंने तपस्यामें लगी हुई उन तेजोमयी जगदम्बाको नमस्कार किया और साक्षात् सिद्धिस्वरूपा शिवा देवीके तपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् वृषभध्वज विराजमान थे । मुने ! वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने पहले तुम्हें उनके पास भेजा और स्वयं वे मदन-दहनकारी भगवान् हरसे दूर ही खड़े रहे । वे वहींसे यह देखते रहे कि भगवान् शिव कुपित हैं या प्रसन्न । नारद ! तुम तो सदा निर्भय रहनेवाले और विशेषतः शिवके भक्त हो । अतः तुमने भगवान् शिवके स्थानपर जाकर उन्हें सर्वथा प्रसन्न देखा । फिर वहाँसे लौटकर तुम श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको भगवान् शिवके स्थानपर ले गये । वहाँ पहुँचकर विष्णु आदि सब देवताओंने देखा भक्तवत्सल भगवान् शिव सुखपूर्वक प्रसन्न मुद्रामें बैठे हैं । अपने गणोंसे घिरे हुए शम्भु तपस्वीका रूप धारण किये योगपट्टपर आसीन थे । उन परमेश्वररूपी शंकरका दर्शन करके मेरे सहित श्रीविष्णु तथा अन्य देवताओं, सिद्धों और मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम करके वेदों और उपनिषदोंके सूक्तोंद्वारा उनका स्तवन किया ।

(अध्याय २३)

देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्‌का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंने वहाँ पहुँचकर भगवान् रुद्रको प्रणाम करके उनकी स्तुति की । तब नन्दिकेश्वरने भगवान् शिवसे उनकी दीनबन्धुता एवं भक्त-वत्सलताकी प्रशंसा करते हुए कहा—'प्रभो ! देवता और मुनि संकटमें पड़कर आपकी शरणमें आये हैं । सर्वेश्वर ! आप उनका उद्धार करें ।'

दयालु नन्दीके इस प्रकार सूचित करनेपर भगवान् शम्भु धीरे-धीरे आँखें खोलकर ध्यानसे उपरत हुए । समाधिसे विरत हो परम ज्ञानी परमात्मा एवं ईश्वर शम्भुने समस्त देवताओंसे इस प्रकार कहा ।

शम्भु बोले—श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वरो ! तुम सब लोग मेरे समीप कैसे आये ? तुम अपने आनेका जो भी कारण हो, वह शीघ्र बताओ ।

भगवान् शंकरका यह बचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो कारण बतानेके लिये भगवान् विष्णुके मुँहकी ओर देखने लगे । तब शिवके महान् भक्त और देवताओंके हितकारी श्रीविष्णु मेरे बताये हुए देवताओंके महत्तर कार्यको सूचित करने लगे । उन्होंने कहा—'शम्भो ! तारकासुरने देवताओंको अत्यन्त अद्भुत एवं महान् कष्ट प्रदान किया है । यही बतानेके लिये सब देवता यहाँ आये हैं । भगवन् ! आपके औरस पुत्रसे ही तारक दैत्य मारा जा सकेगा, और किसी प्रकारसे नहीं । मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है । महादेव ! इस प्रकार विचार करके आप कृपा करें । आपको नमस्कार है । स्वामिन् ! तारकासुरके द्वारा उपस्थित किये गये इस कष्टसे आप देवताओंका उद्धार कीजिये । देव ! शम्भो ! आप दाहिने हाथसे गिरिजाका पाणिग्रहण करें । गिरिराज हिमवान्‌के द्वारा दी हुई महानुभावा पार्वतीको पाणिग्रहणके द्वारा ही अनुगृहीत कीजिये ।'

श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर योगपरायण भगवान् शिवने उन सबको उत्तम गतिका दर्शन कराते हुए इस प्रकार कहा—'देवताओ ! ज्यों ही मैंने सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिजा देवीको स्वीकार किया, त्यों ही समस्त सुरेश्वर तथा ऋषि-मुनि सकाम हो जायँगे । फिर तो वे परमार्थपथपर चलनेमें समर्थ न हो सकेंगे । दुर्गा अपने पाणिग्रहणमात्रसे ही कामदेवको जीवित कर देंगी । विष्णो ! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है । आजसे सब लोग मेरे साथ सुनिश्चितरूपसे निष्काम होकर रहें । देवताओ ! जैसे मैं हूँ, उसी तरह तुम सब लोग पृथक्-पृथक् रहकर कोई विशेष प्रयत्न किये बिना ही अत्यन्त दुष्कर एवं उत्तम तपस्या कर सकोगे । अब उस मदनके न होनेसे तुम सब देवता समाधिके द्वारा परमानन्दका अनुभव करते हुए निर्विकार हो जाओ; क्योंकि काम नरककी ही प्राप्ति करानेवाला है । कामसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तपस्या नष्ट होती है । अतः तुम सभी श्रेष्ठ देवताओंको काम और क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये, मेरे इस कथनको कभी अन्यथा नहीं मानना चाहिये* ।

---

* कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! वृषभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् महादेवने इस प्रकारकी बातें सुनाकर ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं तथा मुनियोंको निष्काम धर्मका उपदेश दिया। तदनन्तर भगवान् शम्भु पुनः ध्यान लगाकर चुप हो गये और पहलेकी ही भाँति पार्षदोंसे घिरे हुए सुस्थिरभावसे बैठ गये। वे अपने मनमें ही स्वयं आत्मस्वरूप, निरञ्जन, निराभास, निर्विकार, निरामय, परात्पर, नित्य ममतारहित, निरवग्रह, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य एवं प्रकृतिसे पर परमात्माका चिन्तन करने लगे। इस प्रकार परम स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे ध्यानमें स्थित हो गये। बहुत-से प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले भगवान् शिव ध्यान करते-करते ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। श्रीहरि एवं इन्द्र आदि देवताओंने जब परमेश्वर शिवको ध्यानमग्न देखा, तब उन्होंने नन्दीकी सम्मति ली। नन्दीने पुनः दीनभावसे स्तुति करनेके लिये कहा। उनकी इस सत्सम्मतिके अनुसार देवता स्तुति करने लगे। वे बोले—'देवदेव ! महादेव ! करुणासागर प्रभो ! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप महान् क्लेशसे हमारा उद्धार कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार बहुत दीनतापूर्ण उक्तिसे देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की। इसके बाद वे सब देवता प्रेमसे व्याकुलचित्त हो उच्च स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे। मेरे साथ भगवान् श्रीहरि उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो मन-ही-मन भगवान् शम्भुका स्मरण करते हुए अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणीद्वारा उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करने लगे।

देवताओंके, मेरे तथा श्रीहरिके इस प्रकार बहुत स्तुति करनेपर भगवान् महेश्वर अपनी भक्तवत्सलताके कारण ध्यानसे विरत हो गये। उनका मन अत्यन्त प्रसन्न था। वे भक्तवत्सल शंकर श्रीहरि आदिको करुणादृष्टिसे देखकर उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले—'विष्णो ! ब्रह्मन् ! तथा इन्द्र आदि देवताओ ! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस अभिप्रायसे आये हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

श्रीहरिने कहा—महेश्वर ! आप सर्वज्ञ हैं, सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं। क्या आप हमारे मनकी बात नहीं जानते ? अवश्य जानते हैं, तथापि आपकी आज्ञासे मैं स्वयं भी कहता हूँ। सुखदायक शंकर ! हम सब देवताओंको तारकासुरसे अनेक प्रकारका दुःख प्राप्त हुआ है। इसीलिये देवताओंने आपको प्रसन्न किया है। आपके लिये ही उन्होंने गिरिराज हिमालयसे शिवाकी उत्पत्ति करायी है। शिवाके गर्भसे आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे तारकासुरकी मृत्यु होगी, दूसरे किसी उपायसे नहीं। ब्रह्माजीने उस दैत्यको यही वर दिया है। इस कारण दूसरेसे उसकी मृत्यु नहीं हो पा रही है। अतएव वह निडर होकर सारे संसारको कष्ट दे रहा है। इधर नारदजीकी आज्ञासे पार्वती कठोर तपस्या कर रही हैं। उनके तेजसे समस्त चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकी आच्छादित हो गयी है। इसलिये परमेश्वर ! आप शिवाको वर देनेके लिये जाइये। स्वामिन् ! देवताओंका दुःख मिटाइये और हमें सुख दीजिये। शंकर ! मेरे तथा देवताओंके हृदयमें आपके विवाहका उत्सव देखनेके लिये बड़ा भारी उत्साह है। अतः आप यथोचित रीतिसे विवाह कीजिये। परात्पर परमेश्वर ! आपने रतिको जो वर दिया था, उसकी पूर्तिका अवसर आ गया है। अतः अपनी प्रतिज्ञाको शीघ्र सफल कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह उन्हें प्रणाम करके श्रीविष्णु आदि देवताओं और महर्षियोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा पुनः उनकी स्तुति की। फिर वे सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये। भक्तोंके अधीन रहनेवाले भगवान् शंकर भी, जो वेदमर्यादाके रक्षक हैं, देवताओंकी बात सुन हँसकर बोले—'हे हरे ! हे विधे ! और हे देवताओ ! तुम सब लोग आदरपूर्वक सुनो। मैं यथोचित, विशेषतः विवेकपूर्ण बात कह रहा हूँ। विवाह करना मनुष्योंके लिये उचित कार्य नहीं है; क्योंकि विवाह दृढ़तापूर्वक बाँध रखनेवाली एक बहुत बड़ी बेड़ी है। जगत्में बहुत-से कुसङ्ग हैं; परंतु स्त्रीका सङ्ग उनमें सबसे बढ़कर है। मनुष्य सारे बन्धनोंसे छुटकारा पा सकता है, परंतु स्त्रीप्रसङ्गरूपी बन्धनसे वह मुक्त नहीं हो पाता। लोहे और काठकी बनी हुई बेड़ियोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष भी एक दिन उस कैदसे छुटकारा पा जाता है, परंतु स्त्री-पुत्र आदिके बन्धनमें बँधा हुआ मनुष्य कभी छूट नहीं पाता। महान् बन्धनमें डालनेवाले विषय सदा बढ़ते रहते हैं। जिसका मन विषयोंके वशीभूत हो गया है, उसके लिये मोक्ष स्वप्नमें भी दुर्लभ है।

कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः।
सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २४। २७-२८)

विद्वान् पुरुष यदि सुख चाहता है तो वह विषयोंको विधिपूर्वक त्याग दे। विषयोंको विषके समान बताया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य मारा जाता है। विषयीके साथ वार्ता करनेमात्रसे मनुष्य क्षणभरमें पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयको मिश्री मिलायी हुई वारुणी (मदिरा) कहा है*। यद्यपि मैं इस बातको जानता हूँ और यद्यपि विषयोंके इन सारे दोषोंका मुझे विशेष ज्ञान है, तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थनाको सफल करूँगा; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन रहता हूँ और भक्तवत्सलतावश उचित-अनुचित सारे कार्य करता हूँ। इसलिये तीनों लोकोंमें 'अयथोचितकर्ता' के रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। भक्तोंके लिये मैंने अनेक बार बहुतसे प्रयत्न करके कष्ट सहन किये हैं, गृहपति होकर विश्वानर मुनिका दुःख दूर किया है। हरे! विधे! अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे तुम सब लोग अच्छी तरह जानते हो। मैं यह सत्य कहता हूँ कि जब-जब भक्तोंपर कहीं विपत्ति आती है, तब-तब मैं तत्काल उनके सारे कष्ट हर लेता हूँ। तारकासुरसे तुम सब लोगोंको जो दुःख प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ और उसका हरण करूँगा, यह भी सत्य-सत्य बता रहा हूँ। यद्यपि मेरे मनमें विवाह करनेकी कोई रुचि नहीं है तथापि मैं पुत्रोत्पादनके लिये गिरिजाके साथ विवाह करूँगा। तुम सब देवता अब निर्भय होकर अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा। इस विषयमें अब कोई विचार नहीं करना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हो समाधिमें स्थित हो गये और विष्णु आदि सभी देवता अपने-अपने धामको चले गये।

(अध्याय २४)

भगवान् शिवकी आज्ञासे सप्तर्षियोंका पार्वतीके आश्रमपर जा उनके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और भगवान्‌को सब वृत्तान्त बताकर स्वर्गको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओंके अपने आश्रममें चले जानेपर पार्वतीके तपकी परीक्षाके लिये भगवान् शंकर समाधिस्थ हो गये। वे स्वयं अपने आपमें, अपने ही परात्पर, स्वस्थ, मायारहित तथा उपद्रवशून्य स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उस ध्येय वस्तुके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर ही विराजमान हैं। उनकी गतिका किसीको ज्ञान नहीं होता। वे भगवान् वृषभध्वज ही सबके स्रष्टा—परमेश्वर हैं।

तात! उन दिनों पार्वतीदेवी बड़ी भारी तपस्या कर रही थीं। उस तपस्यासे रुद्रदेव भी बड़े विस्मयमें पड़ गये। भक्ताधीन होनेके कारण ही वे समाधिसे विचलित हो गये, और किसी कारणसे नहीं। तदनन्तर सृष्टिकर्ता हरने वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे सातों ऋषि शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी तथा वे सब-के-सब अपने सौभाग्यकी अधिक सराहना करते थे। उन्हें आया देख भगवान् शिवके नेत्र प्रसन्नतासे प्रफुल्ल कमलके समान खिल उठे और वे हँसते हुए बोले—'तात सप्तर्षियो! तुम सब लोग मेरे हितकारी तथा सम्पूर्ण वस्तुओंके ज्ञानमें निपुण हो। अतः शीघ्र मेरी बात सुनो। गिरिराजकुमारी देवेश्वरी पार्वती इस समय सुस्थिर-चित्त हो गौरी-शिखर नामक पर्वतपर तपस्या कर रही हैं। मुझे पतिरूपमें प्राप्त करना ही उनकी तपस्याका उद्देश्य है। द्विजो! इस समय केवल सखियाँ उनकी सेवामें हैं। मेरे सिवा दूसरी समस्त कामनाओंका परित्याग करके वे एक उत्तम निश्चयपर पहुँच चुकी हैं। मुनिवरो! तुम सब लोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाओ और

* कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः। उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात् प्रमुच्यते ॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते। स्त्र्यादिपाशसुसम्बद्धो मुच्यते न कदाचन ॥
वर्द्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः। विषयाक्रान्तमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः ॥
सुखमिच्छति चेत् प्राज्ञो विधिवद् विषयांस्त्यजेत्। विषवद् विषयानाहुर्विषयैर्यैर्निहन्यते ॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्। विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम् ॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २४। ६१–६५)

प्रेमपूर्ण हृदयसे उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करो । वहाँ तुम्हें सर्वथा छलयुक्त बातें कहनी चाहिये । उत्तम व्रतधारी महर्षियो ! मेरी आज्ञासे ऐसा करना है । इसलिये तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये ।'

भगवान् शंकरकी यह आज्ञा पाकर वे सातों ऋषि तुरंत ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ दीप्तिमती जगन्माता पार्वती विराजमान थीं । सप्तर्षियोंने वहाँ शिवाको तपस्याकी मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान देखा । उनका तेज महान् था । वे अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित हो रही थीं । उन उत्तम व्रतधारी सप्तर्षियोंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनके द्वारा विशेषतः पूजित हो वे मस्तक झुकाये इस प्रकार बोले ।

ऋषियोंने कहा—देवि ! गिरिराजनन्दिनि ! हमारी यह बात सुनो । हम जानना चाहते हैं कि तुम किस लिये तपस्या करती हो ? तथा इसके द्वारा किस देवताको और किस फलको पाना चाहती हो ?

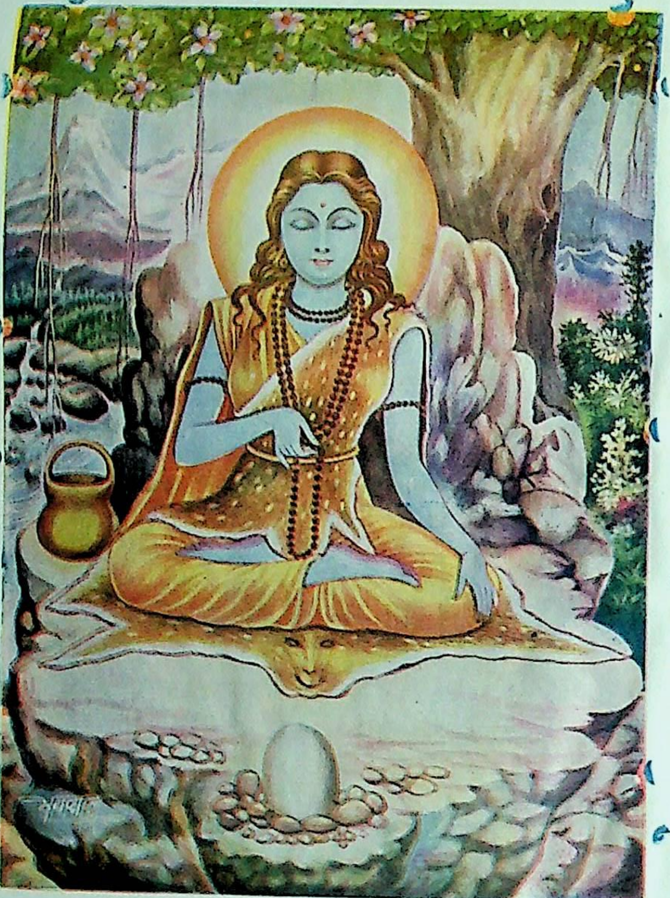
उन द्विजोंके इस प्रकार पूछनेपर गिरिराजकुमारी देवी शिवाने उनके सामने अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी सच्ची बात बतायी ।

पार्वती बोलीं—मुनीश्वरो ! आपलोग प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे मेरी बात सुनें । मैंने अपनी बुद्धिसे जिसका चिन्तन किया है, अपना वह विचार मैं आपके सामने रखती हूँ । आपलोग मेरी असम्भव बातें सुनकर मेरा उपहास करेंगे, इसलिये उन्हें कहनेमें संकोच ही होता है; तथापि कहती हूँ । क्या करूँ ? मेरा यह मन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक एक उत्कृष्ट कर्मके अनुष्ठानमें लगा है और ऐसा करनेके लिये विवश हो गया । यह पानीके ऊपर बहुत बड़ी और ऊँची दीवार खड़ी करना चाहता है । देवर्षिका उपदेश पाकर मैं 'भगवान् रुद्र मेरे पति हों' इस मनोरथको मनमें लिये अत्यन्त कठोर तप कर रही हूँ । मेरा मनरूपी पक्षी बिना पाँखके ही हठपूर्वक आकाशमें उड़ रहा है । मेरे स्वामी करुणानिधान भगवान् शंकर ही उसके इस आशाकी पूर्ति कर सकते हैं ।

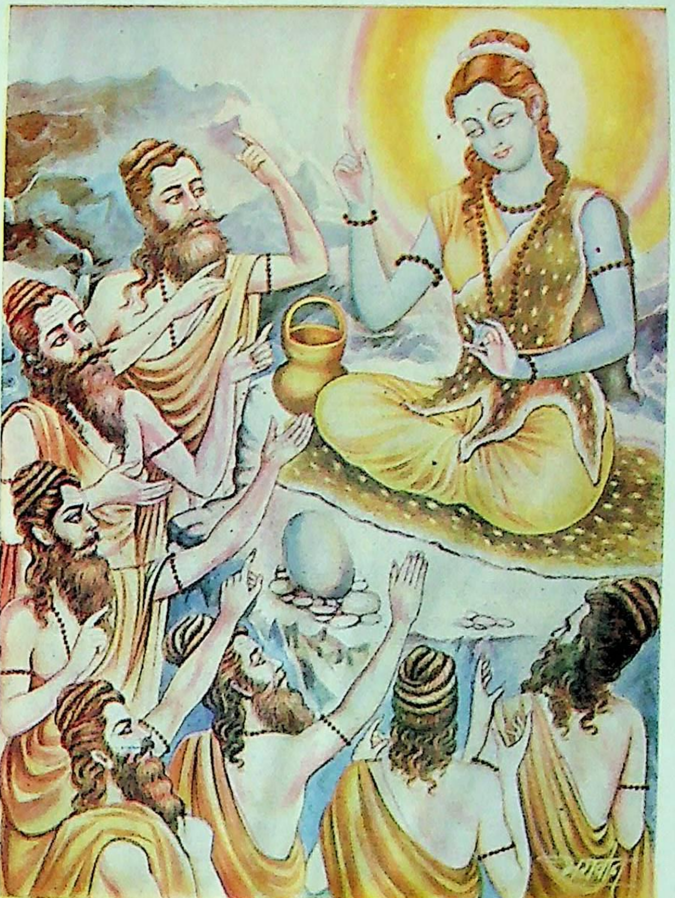
पार्वतीका यह वचन सुनकर वे मुनि हँस पड़े और गिरिजाका सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक छलयुक्त मिथ्या वचन बोले ।

ऋषियोंने कहा—गिरिराजनन्दिनि ! देवर्षि नारद व्यर्थ ही अपनेको पण्डित मानते हैं । उनके मनमें क्रूरता भरी रहती है । आप समझदार होकर भी क्या उनके चरित्रको नहीं जानतीं । नारद छल-कपटकी बातें करते हैं और दूसरोंके चित्तको मोहमें डालकर मथ डालते हैं । उनकी बातें सुननेसे सर्वथा हानि ही होती है । ब्रह्मपुत्र दक्षके पुत्रोंको नारदने जो छलपूर्ण उपदेश दिया, उसका फल यह हुआ कि वे सब-के-सब अपने पिताके घर लौटकर न आ सके । यही हाल उन्होंने दक्षके दूसरे पुत्रोंका भी किया । वे भी उनके चक्करमें आकर भिखारी बन गये । विद्याधर चित्रकेतुको इन्होंने ऐसा उपदेश दिया कि उसका घर ही उजड़ गया । प्रह्लादको अपना चेला बनाकर इन्होंने हिरण्यकशिपुसे बड़े-बड़े दुःख दिलवाये । ये सदा दूसरोंकी बुद्धिमें भेद पैदा किया करते हैं । नारदमुनि कानोंको पसंद आनेवाली अपनी विद्या जिस-जिसको सुना देते हैं, वही अपना घर छोड़कर तत्काल भीख माँगने लगता है । उनका मन मलिन है । केवल शरीर ही सदा उज्ज्वल दिखायी देता है । हम उन्हें विशेष रूपसे जानते हैं; क्योंकि उनके साथ रहते हैं । उनका उपदेश पाकर बड़े-बड़े विद्वानोंद्वारा सम्मानित होनेवाली तुम भी व्यर्थ ही भुलावेमें आ गयीं और मूर्ख बनकर दुष्कर तपस्या करने लगीं ।

बाले ! तुम जिनके लिये यह भारी तपस्या करती हो, वे रुद्र सदा उदासीन, निर्विकार तथा कामके शत्रु हैं—इसमें संशय नहीं है । वे अमाङ्गलिक वस्तुओंसे युक्त शरीर धारण करते हैं, लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुके हैं, उनका न कहीं घर है न द्वार । वे किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं, इसका भी किसीको पता नहीं है । कुत्सित वेष धारण किये भूतों तथा प्रेत आदिके साथ रहते हैं और नंग-धड़ंग हो शूल धारण किये घूमते हैं । धूर्त नारदने अपनी मायासे तुम्हारे सारे विज्ञानको नष्ट कर दिया, युक्तिसे तुम्हें मोह लिया और तुमसे तप करवाया । देवेश्वरि ! गिरिराजनन्दिनि ! तुम्हीं विचार करो कि ऐसे वरको पाकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा । पहले रुद्रने बुद्धिसे खूब सोच-विचारकर साध्वी सतीसे विवाह किया । परंतु वे ऐसे मूढ़ हैं कि कुछ दिन भी उनके साथ निबाह न सके । उस बेचारीको वैसे ही दोष देकर उन्होंने त्याग दिया और स्वयं स्वतन्त्र हो अपने निष्कल और शोकरहित स्वरूपका ध्यान करते हुए उसीमें सुखपूर्वक रम गये । देवि ! जो सदा अकेले रहनेवाले, शान्त, सङ्गरहित और अद्वितीय हैं, उनके साथ किसी स्त्रीका निर्वाह कैसे होगा ? आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है । तुम हमारी आज्ञा मानकर घर लौट चलो और इस दुर्बुद्धिको त्याग दो । महाभागे ! इससे तुम्हारा भला होगा । तुम्हारे योग्य वर हैं भगवान् विष्णु, जो समस्त सद्गुणोंसे युक्त हैं । वे वैकुण्ठमें रहते हैं, लक्ष्मीके स्वामी



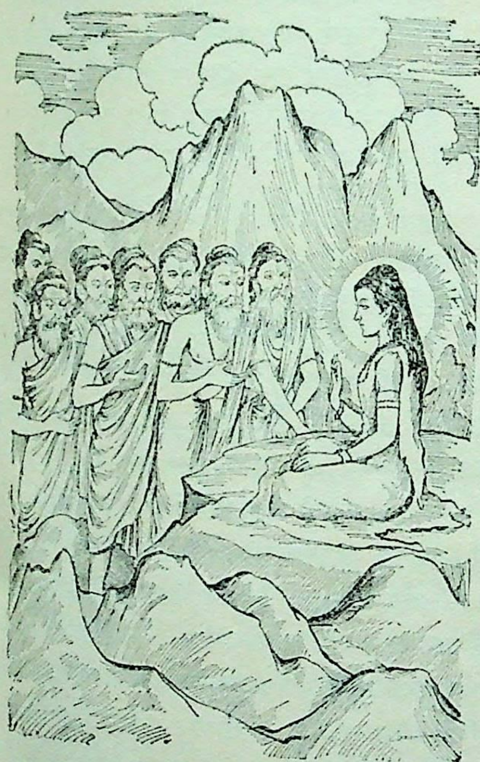
तपस्यामयी पार्वती



पार्वती और सप्तर्षि

हैं और नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करनेमें कुशल हैं। उनके साथ हम तुम्हारा विवाह करा देंगे और वह विवाह तुम्हारे लिये समस्त सुखोंको देनेवाला होगा। पार्वती! तुम्हारा जो रुद्रके साथ विवाह करनेका हठ है, ऐसे हठको छोड़ दो और सुखी हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उनकी ऐसी बात सुनकर जगदम्बिका पार्वती हँस पड़ीं और पुनः उन ज्ञानविशारद मुनियोंसे बोलीं।



पार्वतीने कहा—मुनीश्वरो! आपने अपनी समझसे ठीक ही कहा है। परंतु द्विजो! मेरा हठ भी छूटनेवाला नहीं है। मेरा शरीर पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण मुझमें स्वाभाविक कठोरता विद्यमान है। अपनी बुद्धिसे ऐसा विचारकर आप-लोग मुझे तपस्यासे रोकनेका कष्ट न करें। देवर्षिका उपदेश-वाक्य मेरे लिये परम हितकारक है। इसलिये मैं उसे कभी नहीं छोड़ूँगी। वेदवेत्ता भी यह मानते हैं कि गुरुजनोंका वचन हितकारक होता है। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है' ऐसा जिनका दृढ़ विचार है, उन्हें इहलोक और परलोकमें परम सुखकी प्राप्ति होती है और दुःख कभी नहीं होता। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है' यह विचार जिनके हृदयमें नहीं है, उन्हें इहलोक और परलोकमें भी दुःख ही प्राप्त होता है, सुख कभी नहीं मिलता। अतः द्विजो! गुरुओंके वचनका कभी किसी तरह भी त्याग नहीं करना चाहिये। मेरा घर बसे या उजड़ जाय, मुझे तो यह हठ ही सदा सुख देनेवाला है। मुनिवरो! आपने जो बातें कही हैं, मैं उनका आपके कहे हुए तात्पर्यसे भिन्न अर्थ समझती हूँ और उनका यहाँ संक्षेपसे विवेचन प्रस्तुत करती हूँ। आपने यह ठीक कहा कि भगवान् विष्णु सद्गुणोंके धाम तथा लीलाविहारी हैं। साथ ही आपने सदाशिवको निर्गुण कहा है। इसमें जो कारण है; वह बताया जाता है। भगवान् शिव साक्षात् परब्रह्म हैं, अतएव निर्विकार हैं। वे केवल भक्तोंके लिये शरीर धारण करते हैं, फिर भी लौकिकी प्रभुताको दिखाना नहीं चाहते। अतः परमहंसोंकी जो प्रिय गति है, उसीको वे धारण करते हैं; क्योंकि वे भगवान् शम्भु परमानन्दमय हैं, इसलिये अवधूतरूपसे रहते हैं। मायालिप्त जीवोंको ही भूषण आदिकी रुचि होती है, ब्रह्मको नहीं। वे प्रभु गुणातीत, अजन्मा, मायारहित, अलक्ष्यगति और विराट् हैं। द्विजो! भगवान् शम्भु किसी विशेष धर्म या जाति आदिके कारण किसीपर अनुग्रह नहीं करते। मैं गुरुकी कृपासे ही शिवको यथार्थरूपसे जानती हूँ। ब्रह्मर्षियो! यदि शिव मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं सदा कुमारी ही रह जाऊँगी; परंतु दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। यदि सूर्य पश्चिम दिशामें उगने लगें, मेरु-पर्वत अपने स्थानसे विचलित हो जाय, अग्नि शीतलताको अपना ले तथा कमल पर्वतशिखरकी शिलाके ऊपर खिलने लगे, तो भी मेरा हठ छूट नहीं सकता। यह मैं सच्ची बात कहती हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कह उन मुनियोंको प्रणाम करके गिरिराजकुमारी पार्वती निर्विकार चित्तसे शिवका स्मरण करती हुई चुप हो गयीं। इस प्रकार गिरिजाके उस उत्तम निश्चयको जानकर वे सप्तर्षि भी उनकी जय-जयकार करने लगे और उन्होंने पार्वतीको उत्तम आशीर्वाद दिया। मुने! गिरिजादेवीकी परीक्षा करनेवाले वे सातों ऋषि उनको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो शीघ्र ही भगवान् शिवके स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर शिवको मस्तक नवा, उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन करके, उनकी आज्ञा ले वे पुनः सादर स्वर्गलोकको चले गये।

(अध्याय २५)

भगवान् शंकरका जटिल तपस्वी ब्राह्मणके रूपमें पार्वतीके आश्रमपर जाना, उनसे सत्कृत हो उनकी तपस्याका कारण पूछना तथा पार्वतीजीका अपनी सखी विजयासे सब कुछ कहलाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन सप्तर्षियोंके अपने लोकमें चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले साक्षात् भगवान् शंकरने देवीके तपकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे मन-ही-मन पार्वतीसे बहुत संतुष्ट थे। परीक्षाके ही बहाने पार्वतीजीको देखनेके लिये जटाधारी तपस्वीका रूप धारण करके भगवान् शम्भु उनके वनमें गये। अपने तेजसे प्रकाशमान अत्यन्त बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके प्रसन्नचित्त हो वे दण्ड और छत्र लिये वहाँसे प्रस्थित हुए। आश्रममें पहुँचकर उन्होंने देखा देवी शिवा सखियोंसे घिरी हुई वेदीपर बैठी हैं और चन्द्रमाकी विशुद्ध कला-सी प्रतीत होती हैं। ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये भक्तवत्सल शम्भु पार्वती देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक उनके पास गये। उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मणदेवताको आया देख उस समय देवी शिवाने समस्त पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा की। जब उनका भलीभाँति सत्कार हो गया, सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न कर ली गयी, तब पार्वतीने बड़ी प्रसन्नता और प्रेमके साथ उन ब्राह्मणदेवसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा।

पार्वती बोलीं—ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करके आये हुए आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं ? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर ! आप अपने तेजसे इस वनको प्रकाशित कर रहे हैं। मैंने जो कुछ पूछा है, उसे बतलाइये।

ब्राह्मणने कहा—मैं इच्छानुसार विचरनेवाला वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पवित्रबुद्धि, तपस्वी, दूसरोंको सुख देनेवाला और परोपकारी हूँ—इसमें संशय नहीं है। तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो और इस निर्जन वनमें किसलिये ऐसी तपस्या कर रही हो, जो पंजेके बलपर खड़े हो तप करनेवाले मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम न बालिका हो न वृद्धा ही हो, सुन्दरी तरुणी जान पड़ती हो। फिर किस लिये पतिके बिना इस वनमें आकर कठोर तपस्या करती हो ? भद्रे ! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी तपस्विनी हो ? देवि ! क्या वह तपस्वी तुम्हारा पालन-पोषण नहीं करता, जो तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है ? बोलो, तुम किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारा नाम क्या है ? तुम महासौभाग्यरूपा जान पड़ती हो। तुम्हारा तपस्यामें अनुराग व्यर्थ है। क्या तुम वेदमाता गायत्री हो, लक्ष्मी हो अथवा क्या सुन्दर रूपवाली सरस्वती हो ? इन तीनोंमें तुम कौन हो—यह मैं अनुमानसे निश्चय नहीं कर पाता।

पार्वती बोलीं—विप्रवर ! न तो मैं वेदमाता गायत्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न सरस्वती ही हूँ। इस समय मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ और मेरा नाम पार्वती है। पूर्वकालमें इससे पहलेके जन्ममें मैं प्रजापति दक्षकी पुत्री थी। उस समय मेरा नाम सती था। एक दिन पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी, जिससे कुपित हो मैंने योगके द्वारा शरीरको त्याग दिया था। इस जन्ममें भी भगवान् शिव मुझे मिल गये थे, परंतु भाग्यवश कामको भस्म करके वे मुझे भी छोड़कर चले गये। ब्रह्मन् ! शंकरजीके चले जानेपर मैं विरहतापसे उद्विग्न हो उठी और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके पिताके घरसे यहाँ गङ्गाजीके तटपर चली आयी। यहाँ दीर्घकालतक कठोर तपस्या करके भी मैं अपने प्राणवल्लभको न पा सकी। इसलिये अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहती थी। इतनेमें ही आपको आया देख मैं क्षणभरके लिये ठहर गयी। अब आप जाइये। मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी; क्योंकि भगवान् शिवने मुझे स्वीकार नहीं किया। किंतु जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँगी, वहाँ-वहाँ शिवका ही पतिरूपमें वरण करूँगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर पार्वती उन ब्राह्मण देवताके सामने ही अग्निमें समा गयीं, यद्यपि ब्राह्मणदेव सामनेसे उन्हें बारंबार ऐसा करनेसे रोक रहे थे। अग्निमें प्रवेश करती हुई पर्वतराजकुमारी पार्वतीकी तपस्याके प्रभावसे वह आग उसी क्षण चन्दन-पङ्कके समान शीतल हो गयी। क्षणभर उस आगके भीतर रहकर जब पार्वती आकाशमें ऊपर-



की ओर उठने लगीं, तब ब्राह्मणरूपधारी शिवने सहसा हँसते हुए उनसे पुनः पूछा—'अहो भद्रे ! तुम्हारा तप क्या है, यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया । इधर अग्निसे तुम्हारा शरीर नहीं जला, यह तो तपस्याकी सफलताका सूचक है; परंतु अबतक तुम्हें अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ, इससे उसकी विफलता प्रकट होती है । अतः देवि ! सबको आनन्द देनेवाले मुझ श्रेष्ठ ब्राह्मणके सामने तुम अपने अभीष्ट मनोरथको सच-सच बताओ ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्राह्मणके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अम्बिकाने अपनी सखीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया । पार्वतीसे प्रेरित हो उनकी विजयानामक प्राणप्यारी सखीने, जो उत्तम व्रतको जाननेवाली थी, जटाधारी तपस्वीसे कहा ।

सखी बोली—साधो ! तुमसे पार्वतीके उत्तम चरित्रका और इनकी तपस्याके समस्त कारणोंका वर्णन करती हूँ । आप सुनना चाहते हों तो सुनिये । मेरी सखी गिरिराज हिमाचलकी पुत्री हैं । ये पार्वती और काली नामसे विख्यात हैं तथा माता मेनकाकी कन्या हैं । अबतक किसीने इनके साथ विवाह नहीं किया है । ये भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसीको चाहती भी नहीं । उन्हींके लिये तीन हजार वर्षोंसे तपस्या कर रही हैं । भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये ही मेरी इन सखीने ऐसा तप प्रारम्भ किया है । विप्रवर ! इसमें जो कारण है, उसे बताती हूँ; सुनिये । ये पर्वतराजकुमारी ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं और नारदजीके आदेशसे यह कठोर तपस्या कर रही हैं । द्विजश्रेष्ठ ! आपने जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सखीका मनोरथ बता दिया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! विजयाका यह यथार्थ वचन सुनकर जटाधारी तपस्वी रुद्र हँसते हुए बोले—'सखीने यह जो कुछ कहा है, उसमें मुझे परिहासका अनुमान होता है । यदि यह सब ठीक हो तो पार्वती देवी अपने मुँहसे कहें ।'

जटिल ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर पार्वती देवी अपने मुँहसे ही यों कहने लगीं । (अध्याय २६)

पार्वतीकी बात सुनकर जटाधारी ब्राह्मणका शिवकी निन्दा करते हुए पार्वतीको उनकी ओरसे मनको हटा लेनेका आदेश देना

पार्वती बोलीं—जटाधारी विप्रवर ! मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये । मेरी सखीने जो कुछ कहा है, वह ज्यों-का-त्यों सत्य है; उसमें असत्य कुछ भी नहीं है । मैं मन, वाणी और क्रिया-द्वारा सत्य ही कहती हूँ, असत्य नहीं । मैंने साक्षात् पतिभावसे भगवान् शंकरका ही वरण किया है । यद्यपि जानती हूँ, वह दुर्लभ वस्तु भला मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है; तथापि मनकी उत्कण्ठासे विवश हो मैं तपस्या कर रही हूँ ।

ब्राह्मणसे ऐसी बात कहकर पार्वती देवी उस समय चुप हो रहीं । तब उनकी वह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा ।

ब्राह्मण बोले—इस समयतक मेरे मनमें यह जाननेकी प्रबल इच्छा थी कि ये देवी किस दुर्लभ वस्तुको चाहती हैं ? जिसके लिये ऐसा महान् तप कर रही हैं । किंतु देवि ! तुम्हारे मुखारविन्दसे सब कुछ सुनकर उस अभीष्ट वस्तुको जान लेनेके बाद अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ । तुम्हारी जैसी इच्छा हो,

वैसा करो। यदि तुम मुझसे न कहतीं तो मित्रता निष्फल होती। अब जैसा तुम्हारा कार्य है, वैसा ही उसका परिणाम होगा। जब तुम्हें इसीमें सुख है, तब मुझे कुछ नहीं कहना है।

वहाँ ऐसी बात कहकर ब्राह्मणने ज्यों ही जानेका विचार किया, त्यों ही पार्वती देवीने प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा।

पार्वती बोलीं--विप्रवर! आप क्यों जायँगे? ठहरिये और मेरे हितकी बात बताइये।

पार्वतीके ऐसा कहनेपर दण्डधारी ब्राह्मणदेवता रुक गये और इस प्रकार बोले--'देवि! यदि मेरी बात सुननेका मन है और मुझे भक्तिभावसे ठहरा रही हो तो मैं वह सब तत्त्व बता रहा हूँ, जिससे तुम्हें हिताहितका ज्ञान हो जायगा। महादेवजीके प्रति मेरे मनमें गौरव-बुद्धि है, अतः मैं उनको सब प्रकारसे जानता हूँ; तो भी यथार्थ बात कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। वृषभके चिह्नसे अङ्कित ध्वजा धारण करनेवाले महादेवजी सारे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, सिरपर जटा धारण करते हैं; धोतीकी जगह बाघका चाम पहनते और चादरकी जगह हाथीकी खाल ओढ़ते हैं। हाथमें भीख माँगनेके लिये एक खोपड़ी लिये रहते हैं। झुंड-के-झुंड साँप उनके सारे अङ्गोंमें लिपटे देखे जाते हैं। वे विष खाकर ही पुष्ट होते हैं, अभक्ष्यभक्षी हैं, उनके नेत्र बड़े भद्दे हैं और देखनेमें डरावने लगते हैं। उनका जन्म कब कहाँ और किससे हुआ, यह आजतक प्रकट नहीं हुआ। घर-गृहस्थीके भोगसे वे सदा दूर ही रहते हैं, नंग-धड़ंग घूमते हैं और भूत-प्रेतोंको सदा साथ रखते हैं। उनके एक-दो नहीं, दस भुजाएँ हैं। देवि! मैं समझ नहीं पाता कि किस कारणसे तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो। तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया, इस बातको आज सोच-विचारकर मुझे बताओ। दक्षने अपने यज्ञमें अपनी ही पुत्री सतीको केवल यही सोचकर नहीं बुलाया कि वह कपालधारी भिक्षुककी भार्या है। इतना ही नहीं, उन्होंने यज्ञमें भाग देनेके लिये सब देवताओंको बुलाया, किंतु शम्भुको छोड़ दिया। सती उसी अपमानके कारण अत्यन्त क्रोधसे व्याकुल हो उठीं। उसने अपने प्यारे प्राणोंको तो छोड़ा ही, शंकरजीको भी त्याग दिया।

'तुम तो स्त्रियोंमें रत्न हो; तुम्हारे पिता समस्त पर्वतोंके राजा हैं फिर तुम क्यों इस उग्र तपस्याके द्वारा वैसे पतिको पानेकी अभिलाषा करती हो? सोनेकी मुद्रा (अशर्फी) देकर बदलेमें उतना ही बड़ा काच लेना चाहती हो? उज्ज्वल चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़ लपेटना चाहती हो? सूर्यके तेजका परित्याग करके जुगुनूकी चमक पाना चाहती हो? महीन वस्त्र त्यागकर अपने शरीरको चमड़ेसे ढकनेकी इच्छा करती हो? घरमें रहना छोड़कर वनमें धूनी रमाना चाहती हो? तथा देवेश्वरि! यदि तुम इन्द्र आदि लोकपालोंको त्यागकर शिवके प्रति अनुरक्त हो तो अवश्य ही रत्नोंके उत्तम भंडारको त्यागकर लोहा पानेकी इच्छा करती हो। लोकमें इस बातको अच्छा नहीं कहा गया है। शिवके साथ तुम्हारा सम्बन्ध मुझे इस समय परस्परविरुद्ध दिखायी देता है। कहाँ तुम, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं और कहाँ वे रुद्र, जो तीन भद्दी आँखें धारण करते हैं। तुम तो चन्द्रमुखी[1] हो और शिव पञ्चमुख कहे गये हैं। तुम्हारे सिरपर दिव्य वेणी सर्पिणी-सी शोभा पा रही है; परंतु शिवके मस्तकपर जो जटाजूट बताया जाता है, वह प्रसिद्ध ही है। तुम्हारे अङ्गमें चन्दनका अङ्गराग होगा और शिवके शरीरमें चिताका भस्म! कहाँ तुम्हारी सुन्दर मृदुल साड़ी और कहाँ शंकरजीके उपयोगमें आनेवाली हाथीकी खाल? कहाँ तुम्हारे अङ्गोंमें दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्वाङ्गमें लिपटे हुए सर्प? कहाँ तुम्हारी सेवाके लिये उद्यत रहनेवाले सम्पूर्ण देवता और कहाँ भूतोंकी दी हुई बलिको पसंद करनेवाले शिव? कहाँ तो मृदङ्गकी मधुर ध्वनि और कहाँ डमरूकी डिमडिम? कहाँ भेरियोंके समूहकी गड़गड़ाहट और कहाँ अशुभ शृङ्गीनाद? कहाँ ढक्काका शब्द और कहाँ अशुभ गलनाद? तुम्हारा यह उत्तम रूप शिवके योग्य कदापि नहीं है। यदि उनके पास धन होता तो वे दिगम्बर (नंगे) क्यों रहते? सवारीके नामपर उनके पास एक बूढ़ा बैल है और दूसरी कोई भी सामग्री उनके पास नहीं है। कन्याके लिये ढूँढ़े जानेवाले वरोंमें जो नारियोंको सुख देनेवाले गुण बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुण भद्दी आँखवाले रुद्रमें नहीं है। तुम्हारे परम प्रिय कामको भी उन हर देवताने दग्ध कर दिया और तुम्हारे प्रति उनका अनादर तो तभी देख लिया

१. अङ्कोंकी संज्ञाओंमें चन्द्रमाको एक संख्याका बोधक माना गया है। एक मुखवाले पुरुष और स्त्रियाँ ही सुन्दर माने जाते हैं, एकसे अधिक मुखवाले नहीं। इस प्रकार एकमुख और पञ्चमुखकी भी तुलना की गयी है। 'चन्द्रमुखी' पदका दूसरा भाव है--तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान मनोहर है और वे पञ्चानन सिंहके समान भयंकर हैं।



तपस्यामयी पार्वतीके साथ वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें शिवकी बातचीत

[पृष्ठ २००

गया, जब वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये। उनकी कोई जाति नहीं देखी जाती। उनमें विद्या तथा ज्ञानका भी पता नहीं चलता। पिशाच ही उनके सहायक हैं और विष तो उनके कण्ठमें ही दिखायी देता है। वे सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरक्त हैं। इसलिये तुम्हें हरके साथ अपने मनको नहीं जोड़ना चाहिये। कहाँ तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कहाँ उनके गलेमें नरमुण्डोंकी माला? देवि! तुम्हारे और हरके रूप आदि सब एक दूसरेके विरुद्ध हैं। अतः मुझे तो यह सम्बन्ध नहीं रुचता। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। संसारमें जो कुछ भी असद्वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाहने लगी हो। अतः मैं कहता हूँ कि तुम उस असत्‌की ओरसे अपने मनको हटा लो। अन्यथा जो चाहो, वह करो; मुझे कुछ नहीं कहना है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह बात सुनकर पार्वती शिवकी निन्दा करनेवाले उस ब्राह्मणपर मन ही-मन कुपित हो उठीं और उससे इस प्रकार बोलीं। (अध्याय २७)

पार्वतीजीका परमेश्वर शिवकी महत्ताका प्रतिपादन करना, रोषपूर्वक जटिल ब्राह्मणको फटकारना, सखीद्वारा उन्हें फिर बोलनेसे रोकना तथा भगवान् शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दे अपने साथ चलनेके लिये कहना

पार्वती बोलीं—बाबाजी! अबतक तो मैंने यह समझा था कि कोई दूसरे ज्ञानी महात्मा आ गये हैं। परंतु अब सब ज्ञात हो गया—आपकी कलई खुल गयी। आपसे क्या कहूँ—विशेषतः उस दशामें, जब आप अवध्य ब्राह्मण हैं? ब्राह्मण देवता! आपने जो कुछ कहा है, वह सब मुझे ज्ञात है। परंतु वह सब झूठा ही है, सत्य कुछ नहीं है। आपने कहा था कि मैं शिवको जानता हूँ। यदि आपकी यह बात ठीक होती तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं बोलते। यह ठीक है कि कभी-कभी महेश्वर अपनी लीलाशक्तिसे प्रेरित हो तथाकथित अद्भुत वेष धारण कर लिया करते हैं। परंतु वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्होंने स्वेच्छासे ही शरीर धारण किया है। आप ब्रह्मचारीका स्वरूप धारणकर मुझे ठगनेके लिये उद्यत हो यहाँ आये हैं और अनुचित एवं असंगत युक्तियोंका सहारा ले छल-कपटसे युक्त बातें बोल रहे हैं! मैं भगवान् शंकरके स्वरूपको भलीभाँति जानती हूँ। इसलिये यथायोग्य विचार करके उनके तत्त्वका वर्णन करती हूँ। वास्तवमें शिव निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण हो गये हैं। जो निर्गुण हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूप-भूत हैं, उनकी जाति कैसे हो सकती है? वे भगवान् सदाशिव समस्त विद्याओंके आधार हैं। फिर उन पूर्ण परमात्माको किसी विद्यासे क्या काम? पूर्वकालमें कल्पके आरम्भमें भगवान् शम्भुने श्रीविष्णुको उच्छ्वासरूपसे सम्पूर्ण वेद प्रदान किये थे। अतः उनके समान उत्तम प्रभु दूसरा कौन है? जो सबके आदि कारण हैं, उनकी अवस्था अथवा आयुका माप-तौल कैसे हो सकता है? प्रकृति उन्हींसे उत्पन्न हुई है। फिर उनकी शक्तिका दूसरा क्या कारण हो सकता है? जो लोग सदा प्रेमपूर्वक शक्तिके स्वामी भगवान् शंकरका भजन करते हैं, उन्हें भगवान् शम्भु प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीनों अक्षय शक्तियाँ प्रदान करते हैं। भगवान् शिवके भजनसे ही जीव मृत्युको जीत लेता और निर्भय हो जाता है। इसलिये तीनों लोकोंमें उनका 'मृत्युंजय' नाम प्रसिद्ध है। उन्हींके अनुग्रहसे विष्णु विष्णुत्वको, ब्रह्मा ब्रह्मत्वको और देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं। शिवजीका पक्ष लेकर बहुत बोलनेसे क्या लाभ? वे भगवान् स्वयं ही महाप्रभु हैं। कल्याणरूपी शिवकी सेवासे यहाँ कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता? उन महादेवजीके पास किस बातकी कमी है, जो वे भगवान् सदाशिव स्वयं मुझे पानेकी इच्छा करें? यदि शंकरकी सेवा न करे तो मनुष्य सात जन्मोंतक दरिद्र होता है और उन्हींकी सेवासे सेवकको लोकमें कभी नष्ट न होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है। जिनके सामने आठों सिद्धियाँ नित्य आकर सिर नीचा किये इस इच्छासे नृत्य करती हैं कि वे भगवान् हमपर संतुष्ट हो जायँ, उनके लिये कोई भी हितकर वस्तु दुर्लभ कैसे हो सकती है? यद्यपि यहाँ माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुएँ शंकरका सेवन नहीं करतीं, तथापि उनके स्मरणमात्रसे ही सबका मङ्गल होता है। जिनकी पूजाके प्रभावसे उपासककी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, सदा निर्विकार रहनेवाले उन परमात्मा शिवमें विकार कहाँसे आ सकता है? जिस पुरुषके मुखमें निरन्तर 'शिव' यह मङ्गलमय नाम निवास करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही अन्य सब सदा पवित्र होते हैं। जैसा कि आपने कहा है, वे

चिताका भस्म लगाते हैं। परंतु यदि उनका लगाया हुआ भस्म अपवित्र होता तो उनके शरीरसे झड़कर गिरे हुए उस भस्मको देवतालोग सदा अपने सिरपर कैसे धारण करते ? (अतः शिवके अङ्गोंके स्पर्शसे अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है।) जो महादेव सगुण होकर तीनों लोकोंके कर्ता-भर्ता और हर्ता होते हैं तथा निर्गुणरूपमें शिव कहलाते हैं, वे बुद्धिके द्वारा पूर्णरूपसे कैसे जाने जा सकते हैं ? परब्रह्म परमात्मा शिवका जो निर्गुण रूप है, उसे आप-जैसे बहिर्मुख लोग कैसे जान सकते हैं ? जो दुराचारी और पापी हैं, वे देवताओंसे बहिष्कृत हो जाते हैं। ऐसे लोग निर्गुण शिवके तत्त्वको नहीं जानते। जो पुरुष तत्त्वको न जाननेके कारण यहाँ शिवकी निन्दा करता है, उसके जन्मभरका सारा संचित पुण्य भस्म हो जाता है। आपने जो यहाँ अमित तेजस्वी महादेवजीकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, उससे मुझे पापकी भागिनी होना पड़ा है। शिवद्रोहीको देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, शिवद्रोहीका दर्शन हो जानेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इतना कहकर पार्वतीजी उस ब्राह्मणपर अधिक रुष्ट होकर बोलीं—अरे रे दुष्ट ! तूने कहा था कि मैं शंकरको जानता हूँ, परंतु निश्चय ही तूने उन सनातन शिवको नहीं जाना है। भगवान् रुद्रको तू जैसा कहता है, वे वैसे ही क्यों न हों, उनके-जैसे भी बहुसंख्यक रूप क्यों न हों, सत्पुरुषोंके प्रियतम नित्य-निर्विकार वे भगवान् शिव ही मेरे अभीष्टतम देव हैं। ब्रह्मा और विष्णु भी कभी उन महात्मा हरके समान नहीं हो सकते; फिर दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या है ? क्योंकि वे सदैव कालके अधीन हैं। इस प्रकार अपनी शुद्ध बुद्धिसे तत्त्वतः विचारकर मैं शिवके लिये वनमें आकर बड़ी भारी तपस्या कर रही हूँ। वे भक्तवत्सल सर्वेश्वर शिव ही हम सबके परमेश्वर हैं। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन महादेवको ही प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिराजनन्दिनी गिरिजा चुप हो गयीं और निर्विकार चित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं। देवीकी बात सुनकर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण ज्यों ही कुछ फिर कहनेके लिये उद्यत हुआ, त्यों ही शिवमें आसक्तचित्त होनेके कारण उनकी निन्दा सुननेसे विमुख हुई पार्वती अपनी सखी विजयासे शीघ्र बोलीं।

पार्वतीने कहा—सखी ! इस अधम ब्राह्मणको यत्नपूर्वक रोको, यह फिर कुछ कहना चाहता है। यह केवल शिवकी निन्दा ही करेगा। जो शिवकी निन्दा करता है, केवल उसीको पाप नहीं लगता, जो उस निन्दाको सुनता है, वह भी यहाँ पापका भागी होता है।* भगवान् शिवके उपासकोंको चाहिये कि वे शिवकी निन्दा करनेवालेका सर्वथा वध करें। यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे अवश्य ही त्याग दें और स्वयं उस निन्दाके स्थानसे शीघ्र दूर चले जायँ। यह दुष्ट ब्राह्मण फिर शिवकी निन्दा करेगा। ब्राह्मण होनेके कारण यह वध्य तो है नहीं; अतः त्याग देने योग्य है। किसी तरह भी इसका मुँह नहीं देखना चाहिये। इस स्थानको छोड़कर हमलोग आज ही किसी दूसरे स्थानमें शीघ्र चली चलें, जिससे फिर इस अज्ञानीके साथ बात करनेका अवसर न मिले।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर उमाने ज्यों ही अन्यत्र जानेके लिये पैर उठाया, त्यों ही भगवान् शिवने अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो प्रिया पार्वतीका हाथ पकड़ लिया। शिवा जैसे स्वरूपका ध्यान करती थीं, वैसा ही सुन्दर रूप धारण करके शिवने उन्हें दर्शन दिया। पार्वतीने लज्जावश अपना मुँह नीचेकी ओर कर लिया।

तब भगवान् शिव उनसे बोले—प्रिये ! मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी ? अब मैं फिर कभी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। देवि ! आजसे मैं तपस्याके मोल खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारे सौन्दर्यने भी मुझे मोह लिया है। अब तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी युगके समान जान पड़ता है। लज्जा छोड़ो। तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। गिरिराजनन्दिनि ! महेश्वरि ! मैंने जो कुछ कहा है, उसपर श्रेष्ठ बुद्धिसे विचार करो। सुस्थिर चित्तवाली पार्वती ! मैंने नाना प्रकारसे तुम्हारी बारंबार परीक्षा ली है। लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ स्वजनके अपराधको क्षमा कर दो। शिवे ! तीनों लोकोंमें तुम्हारी-जैसी अनुरागिणी मुझे दूसरी कोई नहीं दिखायी देती। मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। प्रिये ! मेरे पास आओ। तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा वर हूँ। तुम्हारे साथ मैं शीघ्र ही अपने निवासस्थान उत्तम पर्वत कैलासको चलूँगा।

---

* न केवलं भवेत् पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह ॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २८ । ३७)

ब्रह्माजी कहते हैं—देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी आनन्दमग्न हो उठीं। उनका तपस्या-जनित पहलेका सारा कष्ट मिट गया। मुनिश्रेष्ठ! सती-साध्वी पार्वतीकी सारी थकावट दूर हो गयी; क्योंकि परिश्रमका फल प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पहलेवाला सारा श्रम नष्ट हो जाता है।

(अध्याय २८)

शिव और पार्वतीकी बातचीत, शिवका पार्वतीके अनुरोधको स्वीकार करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! परमात्मा हरकी यह बात सुनकर और उनके आनन्ददायी रूपका दर्शन पाकर पार्वतीको बड़ा हर्ष हुआ। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बहुत सुखका अनुभव करने लगीं। फिर उन महासाध्वी शिवाने अपने पास ही खड़े हुए भगवान् शिवसे कहा।

पार्वती बोलीं—देवेश्वर! आप मेरे स्वामी हैं। प्रभो! पूर्वकालमें आपने जिसके लिये हर्षपूर्वक दक्षके यज्ञका विनाश किया था, उसे क्यों भुला दिया था? वे ही आप हैं और वही मैं हूँ। देवदेवेश्वर! इस समय मैं तारकासुरसे दुःख पानेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये रानी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ। देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझपर कृपा करते हैं तो मेरे पति हो जाइये। ईशान! प्रभो! मेरी यह बात मान लीजिये, आपकी आज्ञा लेकर मैं पिताके घर जाती हूँ। अब आप अपने विवाहरूप परम उत्तम विशुद्ध यशको सर्वत्र विख्यात कीजिये। नाथ! प्रभो! आप तो लीला करनेमें कुशल हैं। अतः मेरे पिता हिमवान्‌के पास चलिये और याचक बनकर उनसे मेरी याचना कीजिये। लोकमें मेरे पिताके यशको फैलाते हुए आपको ऐसा ही करना चाहिये। इस तरह आप मेरे सम्पूर्ण गृहस्थाश्रमको सफल बनाइये। जब आप प्रसन्नतापूर्वक ऋषियोंसे मेरे पिताको सब बातोंकी जानकारी करायेंगे, तब मेरे पिता अपने भाई-बन्धुओंके साथ आपकी आज्ञाका पालन करेंगे—इसमें संदेह नहीं है। जब मैं पहले प्रजापति दक्षकी कन्या थी और मेरे पिताने आपके हाथमें मेरा हाथ दिया, उस समय आपने शास्त्रोक्त विधिसे विवाहका कार्य पूरा नहीं किया। मेरे पिता दक्षने ग्रहोंकी पूजा नहीं की। अतः उस विवाहमें ग्रहपूजनविषयक बड़ी भारी त्रुटि रह गयी। इसलिये प्रभो! महादेव! अबकी बार देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये आप शास्त्रोक्त विधिसे विवाहकार्यका सम्पादन करें। विवाहकी जैसी रीति है, उसका पालन आपको अवश्य करना चाहिये। मेरे पिता हिमवान्‌को यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिये कि मेरी पुत्रीने शुभकारक तपस्या की है।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर भगवान् सदाशिव बड़े प्रसन्न हुए और उनसे हँसते हुए-से प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—देवि! महेश्वरि! मेरी यह उत्तम बात सुनो, यह उचित, मङ्गलकारक और निर्दोष है। इसे सुनकर वैसा ही करो। वरानने! ब्रह्मा आदि जितने भी प्राणी हैं, वे सब अनित्य हैं। भामिनि! यह सब जो कुछ दिखायी देता है, इसे नश्वर समझो। मैं निर्गुण परमात्मा ही गुणोंसे युक्त हो एकसे अनेक हो गया हूँ। जो अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है, वही परमात्मा मैं दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला हो गया। देवि! मैं स्वतन्त्र हूँ, परंतु तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया। समस्त कर्मोंको करनेवाली प्रकृति एवं महामाया तुम्हीं हो। यह सम्पूर्ण जगत् मायामय ही रचा गया है। मुझ सर्वात्मा परमात्माने अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा इसे धारणमात्र कर रक्खा है। सर्वत्र परमात्मभाव रखनेवाले सर्वात्मा पुण्यवानोंने इसे अपने भीतर सींचा है तथा यह तीनों गुणोंसे आवेष्टित है। देवि! वरवर्णिनि! कौन मुख्य ग्रह हैं? कौन-से ऋतु-समूह हैं? अथवा कौन दूसरे-दूसरे उपग्रह हैं? इस समय तुमने शिवके लिये क्या कहा है—किस कर्तव्यका विधान किया है? गुण और कार्यके भेदसे हम दोनोंने इस जगत्‌में भक्तवत्सलताके कारण भक्तोंको सुख देनेके हेतु अवतार ग्रहण किया है। तुम्हीं रजः-सत्त्व-तमोमयी (त्रिगुणात्मिका) सूक्ष्म प्रकृति हो, सदा व्यापारकुशल सगुणा और निर्गुणा भी हो। सुमध्यमे! मैं यहाँ सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा, निर्विकार एवं निरीह हूँ। भक्तकी इच्छासे मैंने शरीर धारण किया है। शैलजे! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जा सकता तथा भिक्षुक होकर किसी तरह तुम्हारी उनसे याचना भी नहीं कर सकता। गिरिराज-नन्दिनि! महान् गुणोंसे अत्यन्त गौरवशाली महात्मा पुरुष भी अपने मुँहसे 'देहि' (दो) यह बात निकालनेपर तत्काल लघुताको प्राप्त हो जाता है। कल्याणि! ऐसा जानकर

हमारे लिये क्या कहती हो ? भद्रे ! तुम्हारी आज्ञासे मुझे सब कुछ करना है । अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो ।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर भी सती-साध्वी कमललोचना महादेवी शिवाने उन भगवान् शंकरको बारंबार भक्तिभावसे प्रणाम करके कहा ।

पार्वती बोलीं—नाथ ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति । इस विषयमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है । हम दोनों स्वतन्त्र और निर्गुण होते हुए भी भक्तोंके अधीन होनेके कारण सगुण हो जाते हैं । शम्भो ! प्रभो ! आपको प्रयत्नपूर्वक मेरी प्रार्थनाके अनुसार कार्य करना चाहिये । शंकर ! आप मेरे लिये याचना करें और हिमवान्‌को दाता बननेका सौभाग्य प्रदान करें । महेश्वर ! मैं सदा आपकी भक्ता हूँ, अतः मुझपर कृपा कीजिये । नाथ ! सदा जन्म-जन्ममें मैं ही आपकी पत्नी होती रही हूँ । आप परब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं, निर्विकार, निरीह एवं स्वतन्त्र परमेश्वर हैं; तथापि भक्तोंके उद्धारमें संलग्न होकर यहाँ सगुण भी हो जाते हैं; स्वात्माराम होकर भी लीलाविहारी बन जाते हैं; क्योंकि आप नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें कुशल हैं । महादेव ! महेश्वर ! मैं सब प्रकारसे आपको जानती हूँ । सर्वज्ञ ! अब बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मुझपर दया कीजिये । नाथ ! महान् अद्भुत लीला करके लोकमें अपने सुयशका विस्तार कीजिये, जिसे गा-गाकर लोग अनायास ही भवसागरसे पार हो जायँ ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिजाने महेश्वरको बारंबार प्रणाम किया और मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ वे चुप हो गयीं । उनके ऐसा कहनेपर महात्मा महेश्वरने लोकलीलाका अनुसरण करनेके लिये वैसा करना स्वीकार कर लिया । पार्वतीने जो कुछ कहा था, उसीको प्रसन्नतापूर्वक करनेके लिये उद्यत होकर वे हँसने लगे । तदनन्तर हर्षसे भरे हुए शम्भु अन्तर्धान हो कैलाशको चले गये । उस समय कालीके विरहसे उनका चित्त उन्हींकी ओर खिंच गया था । कैलासपर जाकर परमानन्दमें निमग्न हुए महेश्वरने अपने नन्दी आदि गणोंसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया । ये भैरव आदि सभी गण भी वह सब समाचार सुनकर अत्यन्त सुखी हो गये और महान् उत्सव करने लगे । नारद ! उस समय वहाँ महान् मङ्गल होने लगा । सबके दुःख नष्ट हो गये तथा रुद्रदेवको भी पूर्ण आनन्द प्राप्त हुआ । (अध्याय २९)

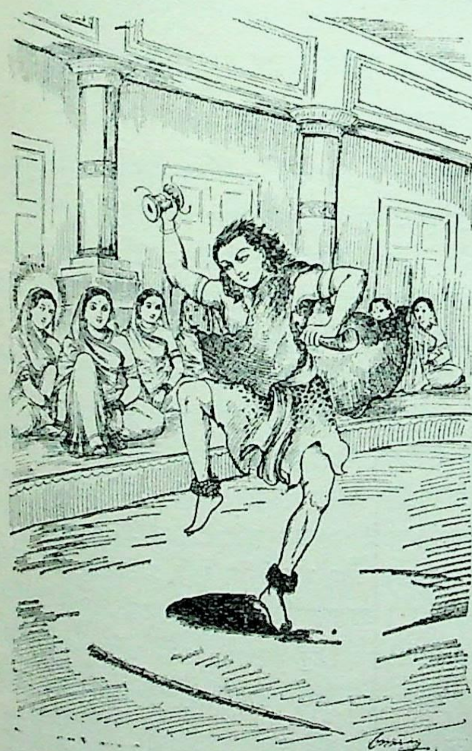
पार्वतीका पिताके घरमें सत्कार, महादेवजीकी नटलीलाका चमत्कार, उनका मेना आदिसे पार्वतीको माँगना और माता-पिताके इनकार करनेपर अन्तर्धान हो जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शंकरके अपने स्थानको चले जानेपर सखियोंसहित पार्वती भी अपने रूपको सफल करके महादेवजीका नाम लेती हुई पिताजीके घर चली गयीं । पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमाचल दिव्य रथपर आरूढ़ हो हर्षसे विह्वल होकर उनकी अगवानीके लिये चले । पुरोहित, पुरवासी, अनेकानेक सखियाँ तथा अन्य सब सम्बन्धी भी आ पहुँचे । पार्वतीके सारे भाई मैनाक आदि बड़े हर्षके साथ जय-जयकार करते हुए उन्हें घर ले आनेके लिये गये ।

इसी बीचमें पार्वती अपने नगरके निकट आ गयीं । नगरमें प्रवेश करते समय शिवा देवीने माता-पिताको देखा, जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्षसे विह्वलचित्त होकर दौड़े चले आ रहे थे । उन्हें देखकर हर्षसे भरी हुई कालीने सखियों-सहित प्रणाम किया । माता-पिताने पूर्णरूपसे आशीर्वाद दे पुत्रीको छातीसे लगा लिया और 'ओ, मेरी बच्ची !' ऐसा कहकर प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे । तत्पश्चात् अपने घरकी दूसरी-दूसरी स्त्रियों तथा भाभियोंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें भुजाओंमें भरकर भेंटा । 'देवि ! तुमने अपने कुलका उद्धार करनेवाले उत्तम कार्यको अच्छी तरह सिद्ध किया है । तुम्हारे सदाचरणसे हम सब लोग पवित्र हो गये' ऐसा कहकर सब लोग हर्षके साथ पार्वतीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे । लोगोंने चन्दन और सुन्दर फूलोंसे शिवादेवीका सानन्द पूजन किया । उस अवसरपर विमानपर बैठे हुए देवताओंने पार्वतीको नमस्कार करके उनपर फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति की । नारद ! उस समय तुम्हें भी एक सुन्दर रथपर बिठाकर ब्राह्मण आदि सब लोग नगरमें ले गये । फिर ब्राह्मणों, सखियों तथा दूसरी स्त्रियोंने बड़े आदरके साथ शिवाका घरके भीतर प्रवेश कराया । स्त्रियोंने उनके ऊपर बहुत-सी वस्तुएँ निछावर कीं । ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये । मुनीश्वर ! पिता हिमवान् और

माता मेनकाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने गृहस्थ-आश्रमको सफल माना और यह अनुभव किया कि कुपुत्रकी अपेक्षा सुपुत्री ही श्रेष्ठ है। गिरिराजने ब्राह्मणों और बन्दीजनोंको धन दिया और ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ करवाया। मुने! इस प्रकार पार्वतीके साथ हर्षभरे माता-पिता, भाई तथा भौजाइयाँ भी घरके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठीं।

तदनन्तर हिमवान् प्रसन्नचित्तसे सबका आदर-सत्कार करके गङ्गा-स्नानके लिये गये। इसी बीचमें सुन्दर लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शम्भु एक अच्छा नाचनेवाला नट बनकर मेनकाके पास गये। उन्होंने बायें हाथमें सींग और दाहिने हाथमें डमरू ले रक्खा था। पीठपर कथरी रख छोड़ी थी। लाल वस्त्र पहने वे भगवान् रुद्र नाच और गानमें अपनी निपुणताका परिचय दे रहे थे। सुन्दर नटका



रूप धारण किये हुए भगवान् शिवने मेनकाके पास बैठी हुई स्त्रियोंकी टोलीके समीप सुन्दर नृत्य किया और अत्यन्त मनोहर नाना प्रकारके गीत गाये। उन्होंने वहाँ सुन्दर ध्वनि करनेवाले शृङ्ग और डमरूको भी बजाया तथा नाना प्रकारकी बड़ी मनोहारिणी लीला की। नटराजकी उस लीलाको देखनेके लिये नगरके सभी स्त्री-पुरुष एवं बालक और बृद्ध भी सहसा वहाँ आ पहुँचे। मुने! उस सुमधुर गीतको सुनकर और उस मनोहर उत्तम नृत्यको देखकर वहाँ आये हुए सब लोग तत्काल मोहित हो गये। मेना भी मोही गयीं। उधर पार्वतीने अपने हृदयमें भगवान् शंकरका साक्षात् दर्शन किया। वे त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देते थे। उनका सारा अङ्ग विभूतिसे विभूषित था। वे हड्डियोंकी मालासे अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप तीन नेत्रोंसे उद्भासित था। उन्होंने नागका यज्ञोपवीत धारण किया था। उनके उस सुरम्य रूपको देखकर दुर्गा प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गयीं। गौरवर्णविभूषित दीनबन्धु दयासिन्धु और सर्वथा मनोहर महेश्वर पार्वतीसे कह रहे थे कि 'वर माँगो।' अपने हृदयमें विराजमान महादेवजीको इस रूपमें देखकर पार्वती देवीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' प्रीतियुक्त हृदयसे शिवाको वैसा कल्याणकारी वर देकर वे पुनः अन्तर्धान हो गये और वहाँ पूर्ववत् भिक्षा माँगनेवाला नट बनकर उत्तम नृत्य करने लगे।

उस समय मेना सोनेकी थालीमें रक्खे हुए बहुत-से सुन्दर रत्न ले उन्हें प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिये गयीं। उनका वह ऐश्वर्य देखकर भगवान् शंकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। परंतु उन्होंने उन रत्नोंको स्वीकार नहीं किया। वे भिक्षामें उनकी पुत्री शिवाको ही माँगने लगे और पुनः कौतुकवश सुन्दर नृत्य एवं गान करनेको उद्यत हुए। मेना उस भिक्षुक नटकी बात सुनकर अत्यन्त कुपित हो उठीं और उसे डाँटने-फटकारने लगीं। उनके मनमें उसे बाहर निकाल देनेकी इच्छा हुई। इसी बीचमें गिरिराज हिमवान् गङ्गाजीसे नहाकर लौट आये। उन्होंने अपने सामने उस नराकार भिक्षुकको आँगनमें खड़ा देखा। मेनाके मुखसे सारी बातें सुनकर उनको भी बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस नटको बाहर निकाल दो। मुनिश्रेष्ठ! वे नटराज विशालकाय अग्निकी भाँति अपने उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें छूना भी कठिन था। इसलिये कोई भी उन्हें बाहर न निकाल सका। तात! फिर तो नाना प्रकारकी लीलाओंमें विशारद उन भिक्षु-शिरोमणिने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। हिमवान्‌ने देखा, भिक्षुने वहाँ तत्काल ही भगवान् विष्णुका रूप धारण कर लिया है। उनके मस्तकपर किरीट,

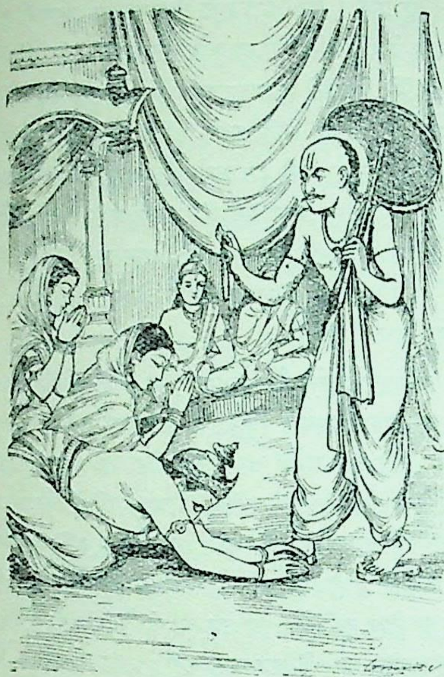
कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पाते हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। हिमवान्‌ने पूजाके समय गदाधारी श्रीहरिको जो-जो पुष्प आदि चढ़ाये थे, वे सब उन्होंने भिक्षुके शरीर और मस्तकपर देखे। तत्पश्चात् गिरिराजने उन भिक्षु-शिरोमणिको जगत्स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें देखा। उनके शरीरका वर्ण लाल था और वे वैदिक सूक्तका पाठ कर रहे थे। तदनन्तर शैलराजने उन कौतुककारी नटराजको एक क्षणमें जगत्‌के नेत्ररूप सूर्यके आकारमें देखा। तात! इसके बाद वे महान् अद्भुत रुद्रके रूपमें दिखायी दिये। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे उत्तम तेजसे सम्पन्न रमणीय रुद्र धीरे-धीरे हँस रहे थे। फिर वे केवल तेजोमय रूपमें दृष्टिगोचर हुए। उनका वह स्वरूप निराकार, निरञ्जन, उपाधिशून्य, निरीह एवं अत्यन्त अद्भुत था। इस प्रकार हिमवान्‌ने उनके बहुत-से रूप देखे। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ और वे तुरंत ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले उन भिक्षु-शिरोमणिने हिमवान् और मेनासे दुर्गाको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। दूसरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण शैलराजने उनकी उस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। फिर भिक्षुने कोई वस्तु नहीं ली और वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब मेना और शैलराजको उत्तम ज्ञान हुआ और वे सोचने लगे—'भगवान् शिव हमें अपनी मायासे छलकर अपने स्थानको चले गये।' यह विचारकर उन दोनोंकी भगवान् शिवमें पराभक्ति हुई, जो महान् मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, दिव्य तथा सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करनेवाली है। (अध्याय ३०)

देवताओंके अनुरोधसे वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें शिवजीका हिमवान्‌के घर जाना और शिवकी निन्दा करके पार्वतीका विवाह उनके साथ न करनेको कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेना और हिमवान्‌की भगवान् शिवके प्रति उच्चकोटिकी अनन्य भक्ति देख इन्द्र आदि सब देवता परस्पर विचार करने लगे। तदनन्तर गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीकी सम्मतिके अनुसार सभी मुख्य देवताओंने शिवजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव! महादेव! करुणाकर! शंकर! हम आपकी शरणमें आये हैं; कृपा कीजिये। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! आप भक्तवत्सल होनेके कारण सदा भक्तोंके कार्य सिद्ध करते हैं। दीनोंका उद्धार करनेवाले और दयाके सिन्धु हैं तथा भक्तोंको विपत्तियोंसे छुड़ानेवाले हैं।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने मेना और हिमवान्‌की अनन्य शिवभक्तिके विषयमें सारी बातें आदरपूर्वक बतायीं। देवताओंकी वह बात सुनकर महेश्वरने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हँसते हुए उन्हें आश्वासन देकर विदा किया। तब सब देवता अपना कार्य सिद्ध हुआ मानकर भगवान् सदाशिवकी प्रशंसा करते हुए शीघ्र अपने घरको लौटकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वर भगवान् शम्भु, जो मायाके स्वामी हैं, निर्विकार चित्तसे शैलराजके यहाँ गये। उस समय गिरिराज हिमवान् सभाभवनमें बन्धुवर्गसे घिरे हुए पार्वतीसहित प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। इसी अवसरपर वहाँ सदाशिवने पदार्पण किया। वे हाथमें दण्ड, छत्र, शरीरपर दिव्य वस्त्र, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, एक हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालग्राम धारण किये भक्तिपूर्वक हरिनामका जप कर रहे थे और देखनेमें साधुवेषधारी ब्राह्मण जान पड़ते थे। उन्हें आया देख सपरिवार हिमवान् उठकर खड़े हो गये। उन्होंने उन अपूर्व अतिथिदेवताको भूतलपर दण्डके समान पड़कर भक्तिभावसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। देवी पार्वती ब्राह्मणरूपधारी प्राणेश्वर शिवको पहचान गयी थीं। अतः उन्होंने भी उनको मस्तक झुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी स्तुति की। ब्राह्मणरूपधारी शिवने उन सबको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। किंतु शिवाको सबसे अधिक मनोवाञ्छित शुभाशीर्वाद प्रदान किया। शैलधिराज हिमवान्‌ने बड़े आदरसे उन्हें मधुपर्क आदि पूजन-सामग्री भेंट की और ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सब ग्रहण किया। तत्पश्चात् गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उनका कुशल-समाचार पूछा। मुने! अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उन द्विजराजकी विधिवत् पूजा करके शैलराजने पूछा—'आप कौन हैं?' तब उन ब्राह्मणशिरोमणिने गिरिराजसे शीघ्र ही आदरपूर्वक कहा।



वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बोले--गिरिश्रेष्ठ ! मैं उत्तम विद्वान् वैष्णव ब्राह्मण हूँ और ज्योतिषीकी वृत्तिका आश्रय लेकर भूतलपर भ्रमण करता रहता हूँ । मनके समान मेरी गति है । मैं सर्वत्र जानेमें समर्थ और गुरुकी दी हुई शक्तिसे सर्वज्ञ हूँ । परोपकारी, शुद्धात्मा, दयासिन्धु और विकारनाशक हूँ । मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम महादेवजीको अपनी पुत्री देना चाहते हो । इस लक्ष्मी-सरीखी सुन्दर रूपवाली दिव्य एवं सुलक्षणा कन्याको एक आश्रयरहित, असङ्ग, कुरूप और गुणहीन वरके हाथमें देना चाहते हो । वे रुद्र देवता मरघटमें वास करते, शरीरमें साँप लपेटे रहते और योग साधते फिरते हैं । उनके पास पहननेके लिये एक वस्त्र भी नहीं है । वैसे ही नंग-धड़ंग घूमते हैं । आभूषणकी जगह सर्प धारण करते हैं । उनके कुलका नाम आजतक किसीको ज्ञात नहीं हुआ । वे कुपात्र और कुशील हैं । स्वभावतः विहारसे दूर रहते हैं । सारे शरीरमें भस्म रमाते हैं । क्रोधी और अविवेकी हैं । उनकी अवस्था कितनी है, यह किसीको ज्ञात नहीं । वे अत्यन्त कुत्सित जटाका बोझ सदा सिरपर धारण किये रहते हैं । वे भले-बुरे सबको आश्रय देनेवाले, भ्रमणशील, नागहारधारी, भिक्षुक, कुमार्गपरायण तथा हठपूर्वक वैदिकमार्गका त्याग करनेवाले हैं । ऐसे अयोग्य वरको आप अपनी बेटी ब्याहना चाहते हैं ? अचलराज ! अवश्य ही आपका यह विचार मङ्गलदायक नहीं है । नारायणकुलमें उत्पन्न ! ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गिरिराज ! मेरे कथनका मर्म समझो । तुमने जिस पात्रको ढूँढ़ रक्खा है, वह इस योग्य नहीं है कि उसके हाथमें पार्वतीका हाथ दिया जाय । शैलराज ! तुम्हीं देखो, उनके एक भी भाई-बन्धु नहीं हैं । तुम तो बड़े-बड़े रत्नोंकी खान हो । किंतु उनके घरमें भूजी भाँग भी नहीं है—वे सर्वथा निर्धन हैं । गिरिराज ! तुम शीघ्र ही अपने भाई-बन्धुओंसे, मेनादेवीसे, सभी बेटोंसे और पण्डितोंसे भी प्रयत्नपूर्वक पूछ लो । किंतु पार्वतीसे न पूछना; क्योंकि उन्हें शिवके गुण-दोषकी परख नहीं है ।

ब्रह्माजी कहते हैं--नारद ! ऐसा कहकर वे ब्राह्मण-देवता, जो नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शान्तस्वरूप शिव ही थे, शीघ्र खा-पीकर आनन्दपूर्वक वहाँसे अपने घरको चल दिये ।

(अध्याय ३१)

मेनाका कोपभवनमें प्रवेश, भगवान् शिवका हिमवान्के पास सप्तर्षियोंको भेजना तथा हिमवान्द्वारा उनका सत्कार, सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीका और महर्षि वसिष्ठका मेना और हिमवान्को समझाकर पार्वतीका विवाह भगवान् शिवके साथ करनेके लिये कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्राह्मणरूपधारी शिवजीके वचनोंका मेनाके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने दुखी होकर पतिसे कहा—गिरिराज ! इन वैष्णव ब्राह्मणने शिवजीकी जो निन्दा की है, उसे सुनकर मेरा मन उनकी ओरसे बहुत खिन्न एवं विरक्त हो गया है । शैलेश्वर ! रुद्रके रूप, शील और नाम सभी कुत्सित हैं । मैं उन्हें अपनी सुलक्षणा पुत्री कदापि नहीं दूँगी । यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं निस्संदेह मर जाऊँगी, अभी इस घरको छोड़ दूँगी अथवा विष खा लूँगी, पार्वतीके गलेमें फाँसी लगाकर गहन वनमें चली जाऊँगी अथवा उसे महासागरमें डुबो दूँगी; परंतु अपनी बेटीको रुद्रके गले नहीं मढ़ूँगी ।' ऐसा कहकर मेना तुरंत कोपभवनमें चली गयीं और अपने हारको फेंककर रोती हुई धरतीपर लोट गयीं ।

इधर भगवान् शिवको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने

अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंको बुलाया तथा मेनाके पास जाकर उन्हें समझानेकी आज्ञा दी।

शिवजीका आदेश प्राप्तकर भगवान् शिवको नमस्कार करके वे दिव्य ऋषि आकाशमार्गसे उस स्थानको चल दिये, जहाँ हिमवान्‌की नगरी थी। उस दिव्य पुरीको देखकर उन सप्तर्षियों-को बड़ा विस्मय हुआ। वे हिमाचलपुरीकी परस्पर प्रशंसा करते हुए सब ऐश्वर्योंसे भरे-पूरे हिमवान्‌के घर जा पहुँचे। उन सूर्य-तुल्य तेजस्वी सातों ऋषियोंको दूरसे आकाशके रास्ते आते देख हिमवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'ये सात सूर्यतुल्य तेजस्वी मुनि मेरे पास आ रहे हैं। मुझे प्रयत्नपूर्वक इस समय इनकी पूजा करनी चाहिये। सबको सुख देनेवाले हम गृहस्थ लोग धन्य हैं, जिनके घरपर ऐसे महात्मा पदार्पण किया करते हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—इसी समय वे मुनि आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर खड़े हो गये। उन्हें सामने देख हिमवान् बड़े आदरके साथ आगे बढ़े और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उन सप्तर्षियोंको प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने बड़े सम्मानके साथ उन सबकी पूजा की तथा उन्हें आगे करके कहा—'मेरा गृहाश्रम आज धन्य हो गया।' यों कहकर उन्हें बैठनेके लिये भक्तिपूर्वक आसन लाकर दिया। जब वे आसनोंपर बैठ गये, तब उनकी आज्ञा लेकर हिमवान् भी बैठे और वहाँ उन ज्योतिर्मय महर्षियोंसे इस प्रकार बोले।

हिमवान्‌ने कहा—आज मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। मैं लोकमें बहुत-से तीर्थोंकी भाँति दर्शनीय बन गया; क्योंकि आप-जैसे विष्णुरूपी महात्मा मेरे घर पधारे हैं। आपलोग पूर्णकाम हैं। हम दीनोंके घरोंमें आपका क्या काम हो सकता है? तथापि मुझ सेवकके योग्य यदि कोई कार्य है तो कृपापूर्वक उसे अवश्य कहें। उसे पूर्ण करनेसे मेरा जीवन सफल हो जायगा।

ऋषि बोले—शैलराज! भगवान् शिवको जगत्‌का पिता कहा गया है और शिवा जगन्माता मानी गयी हैं। अतः तुम्हें महात्मा शंकरको अपनी कन्या देनी चाहिये। हिमालय! ऐसा करके तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा तथा तुम जगद्गुरुके भी गुरु हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है।

मुनीश्वर! सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर हिमवान्‌ने दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो! आपलोगोंने जो बात कही है, उसे शिवकी इच्छासे मैंने पहलेसे ही मान रक्खा था; किंतु प्रभो! इन दिनों एक वैष्णवधर्मी ब्राह्मणने आकर भगवान् शिवके प्रति प्रसन्नतापूर्वक बहुत-सी उल्टी बातें बतायी हैं। तभीसे शिवाकी माताका ज्ञान भ्रष्ट हो गया है। वे अपनी बेटीका विवाह उस योगी रुद्रके साथ नहीं करना चाहतीं। ब्राह्मणो! वे बड़ा भारी हठ करके मैले कपड़े पहन कोपभवनमें चली गयी हैं और समझानेपर भी समझ नहीं रही हैं। मैं भी उस वैष्णव ब्राह्मणकी बात सुनकर ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ। आपसे सच कहता हूँ, भिक्षुकरूपधारी महेश्वरको बेटी देनेकी मेरी भी अब इच्छा नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुनियोंके बीचमें बैठे हुए शैलराज शिवकी मायासे मोहित हो उपर्युक्त बात कहकर चुप हो रहे। तब उन सभी सप्तर्षियोंने शिवकी मायाकी प्रशंसा करके मेनकाके पास अरुन्धतीको भेजा। पतिकी आज्ञा पाकर ज्ञानदायिनी अरुन्धती देवी तुरंत उस घरमें गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं। जाकर उन्होंने देखा, मेना शोकसे आकुल होकर पृथ्वीपर पड़ी हैं। तब उन साध्वी देवीने बड़ी सावधानी-के साथ मधुर एवं हितकर बात कही।

अरुन्धती बोलीं—साध्वी रानी मेनके! उठो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घरमें आयी हूँ तथा दयालु सप्तर्षि भी पधारे हैं।



अरुन्धतीका स्वर सुनकर मेनका शीघ्र उठ गयीं और

लक्ष्मी-जैसी तेजस्विनी उन पतिव्रता देवीके चरणोंमें मस्तक रखकर बोलीं ।

मेनाने कहा—अहो ! हम पुण्यजन्मा जीवोंको आज यह किस पुण्यका फल प्राप्त हुआ है कि हमारे इस घरमें जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीकी पुत्रवधू और महर्षि वसिष्ठकी पत्नी पधारी हैं । देवि ! आप किसलिये आयी हैं ? यह मुझे बताइये । मैं और मेरी पुत्री आपकी दासीके समान हैं । आप हमपर कृपा कीजिये ।

मेनकाके ऐसा कहनेपर साध्वी अरुन्धतीने उनको बहुत अच्छी तरह समझाया-बुझाया और उन्हें साथ ले वे प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर आयीं, जहाँ वे सप्तर्षि विद्यमान थे । सप्तर्षिगण बात-चीतमें बड़े निपुण थे । उन सबने भगवान् शिवके युगल चरणारविन्दोंका स्मरण करके शैलराजको समझाना आरम्भ किया ।

ऋषि बोले—शैलेन्द्र ! हमारा शुभकारक वचन सुनो । तुम पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दो और संहारकर्ता रुद्रके श्वशुर हो जाओ । शम्भु सर्वेश्वर हैं । वे किसीसे याचना नहीं करते । स्वयं ब्रह्माजीने तारकासुरके विनाशके लिये एक वीर पुत्र उत्पन्न करनेके उद्देश्यको लेकर भगवान् शिवसे यह प्रार्थना की है कि वे विवाह कर लें । भगवान् शंकर तो योगियोंके शिरोमणि हैं । वे विवाहके लिये उत्सुक नहीं हैं । केवल ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे महादेव तुम्हारी कन्याका पाणिग्रहण करेंगे । तुम्हारी पुत्रीने जब तपस्या की थी, उस समय उसके सामने उन्होंने उससे विवाहकी प्रतिज्ञा कर ली थी । इन्हीं दो कारणोंसे वे योगिराज शिव विवाह करेंगे ।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमालय हँस पड़े और कुछ भयभीत हो विनयपूर्वक बोले ।

हिमालयने कहा—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देखता हूँ । उनका न कोई घर है, न ऐश्वर्य है और न कोई स्वजन या बन्धु-बान्धव ही है । मैं अत्यन्त निर्लिप्त योगीको अपनी बेटी देना नहीं चाहता । आपलोग वेदविधाता ब्रह्माजीके पुत्र हैं; अतः अपना निश्चित विचार कहिये । जो पिता कामसे, मोहसे, भयसे अथवा लोभसे किसी अयोग्य वरके हाथमें अपनी कन्या दे देता है, वह मरनेके बाद नरकमें जाता है* । अतः मैं स्वेच्छासे भगवान् शूलपाणिको अपनी कन्या नहीं दूँगा । इसलिये महर्षियो ! जो उचित विधान हो, उसे आपलोग कीजिये ।

मुनीश्वर नारद ! हिमाचलके इस वचनको सुनकर बात-चीत करनेमें निपुण महर्षि वसिष्ठने उनसे यों कहा ।

वसिष्ठ बोले—शैलेश्वर ! मेरी बात सुनो । यह सर्वथा तुम्हारे लिये हितकारक, धर्मके अनुकूल, सत्य तथा इहलोक और परलोकमें सुखदायक है । शैलराज ! लोक तथा वेदमें तीन प्रकारके वचन उपलब्ध होते हैं । शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिसे उन सब प्रकारके वचनोंको जानता है । एक तो वह वचन है, जो तत्काल सुननेमें बड़ा सुन्दर (प्रिय) लगता है, परंतु पीछे वह असत्य एवं अहितकारक सिद्ध होता है । ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु ही कहता है, उससे कभी हित नहीं होता । दूसरा वह है, जो आरम्भमें अच्छा नहीं लगता; उसे सुनकर अप्रसन्नता ही होती है । परंतु परिणाममें वह सुख देनेवाला होता है । इस तरहका वचन कहकर दयालु धर्मशील बान्धवजन ही कर्तव्यका बोध कराता है । तीसरी श्रेणीका वचन वह है जो सुनते ही अमृतके समान मीठा लगता है और सब कालमें सुख देनेवाला होता है । सत्य ही उसका सार होता है । इसलिये वह हितकारक हुआ करता है । ऐसा वचन सबसे श्रेष्ठ और सबके लिये अभीष्ट है । शैलराज ! इस तरह नीतिशास्त्रमें तीन प्रकारके वचन कहे गये हैं । इन तीनोंमेंसे तुम्हें कौन-सा वचन अभीष्ट है ? बताओ, मैं तुम्हारे लिये वैसा ही वचन कहूँगा । भगवान् शंकर सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं । उनके पास बाह्य सम्पत्ति नहीं है, इसका कारण यह है कि उनका चित्त एकमात्र ज्ञानके महासागरमें मग्न रहता है । जो ज्ञानानन्दस्वरूप और सबके ईश्वर हैं, उन्हें लौकिक—बाह्य वस्तुओंकी क्या इच्छा होगी ? गृहस्थ पुरुष राज्य और सम्पत्तिसे सुशोभित होनेवाले वरको अपनी पुत्री देता है; क्योंकि किसी दीन-दुखीको कन्या देनेसे पिता कन्याघाती होता है—उसे कन्याके वधका पाप लगता है* । कौन जानता है कि भगवान शंकर दुखी हैं ? कुबेर जिनके किंकर हैं, जो अपनी भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे संसारकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं, जिन्हें गुणातीत, परमात्मा और प्रकृतिसे परे परमेश्वर कहा गया है, सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली जिनकी त्रिविध मूर्ति ही

* वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत् ।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात् स नष्टो नरकं व्रजेत् ॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ३३ । २६)

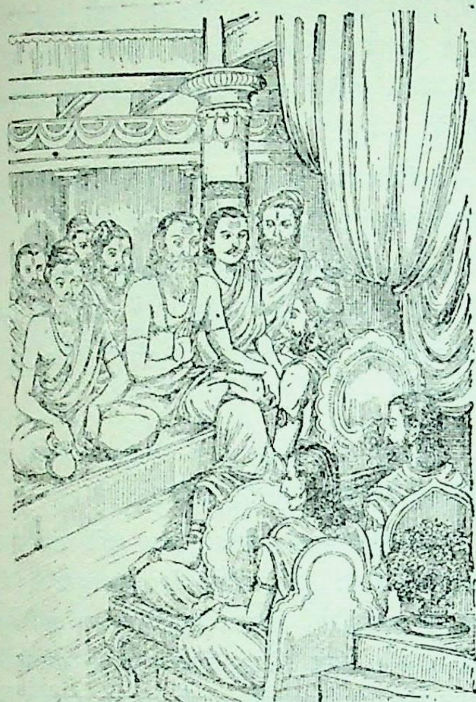
* गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने ।
कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता ॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ३३ । ३६½)

ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम धारण करती है, उन्हें कौन निर्धन अथवा दुखी कह सकता है ? ब्रह्मलोकमें निवास करनेवाले ब्रह्मा, क्षीरसागरमें रहनेवाले विष्णु तथा कैलासवासी हर—ये सब शिवकी ही विभूतियाँ हैं। शिवसे प्रकट हुई प्रकृति भी अपने अंशसे तीन प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करती है। जगत्‌में लीलाशक्तिसे प्रेरित हो वह अपनी कलासे बहुत-सा रूप धारण करती है। समस्त वाङ्मयकी अधिष्ठात्री देवी वाणी उनके मुखसे प्रकट हुई हैं और सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी वक्षःस्थलसे आविर्भूत हुई हैं तथा शिवाने देवताओंके एकत्र हुए तेजसे अपनेको प्रकट किया था और सम्पूर्ण दानवोंका वध करके देवताओंको स्वर्गकी लक्ष्मी प्रदान की थी।

देवी शिवा कल्पान्तरमें दक्षपत्नीके उदरसे जन्म ले सती नामसे प्रसिद्ध हुई और हरको उन्होंने पतिके रूपमें प्राप्त किया। दक्षने स्वयं ही भगवान् शिवको अपनी पुत्री दी थी। सतीने पतिकी निन्दा सुनकर योगबलसे अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही कल्याणमयी सती अब तुम्हारे वीर्य और मेनाके गर्भसे प्रकट हुई हैं। शैलराज ! ये शिवा जन्म-जन्ममें शिवकी ही पत्नी होती हैं। प्रत्येक कल्पमें बुद्धिरूपा दुर्गा ज्ञानियोंकी श्रेष्ठ माता होती हैं। ये सदा सिद्ध, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी हैं। भगवान् हर चिताभस्मके रूपमें सतीके अस्थिचूर्णको ही स्वयं प्रेमपूर्वक अपने अङ्गोंमें धारण करते हैं। अतः गिरिराज ! तुम स्वेच्छासे ही अपनी मङ्गलमयी कन्याको भगवान् हरके हाथमें दे दो। तुम यदि नहीं दोगे तो वह स्वयं प्रियतमके स्थानमें चली जायगी। देवेश्वर शिव तुम्हारी पुत्रीका अनन्त क्लेश देखकर ब्राह्मणके रूपमें इसकी तपस्याके स्थानपर आये थे और इसके साथ विवाहकी प्रतिज्ञा करके इसे आश्वासन एवं वर देकर अपने आवास-स्थानको लौट गये थे। गिरे ! पार्वतीकी प्रार्थनासे ही शम्भुने तुम्हारे पास आकर इसके लिये याचना की और तुम दोनोंने शिवभक्तिमें मन लगाकर उनकी उस याचनाको स्वीकार कर लिया था। गिरीश्वर ! बताओ, फिर किस कारणसे तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी ? भगवान् शिवने देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर हम सब ऋषियोंको और अरुन्धती देवीको भी तुम्हारे पास भेजा है। हम तुम्हें यही शिक्षा देते हैं कि तुम पार्वतीको रुद्रके हाथमें दे दो। गिरे ! ऐसा करनेपर तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा। शैलेन्द्र ! यदि तुम स्वेच्छासे अपनी बेटी शिवाको शिवके हाथमें नहीं दोगे तो भावीके बलसे ही इन दोनोंका विवाह हो जायगा। तात ! भगवान् शंकरने तपस्यामें लगी हुई पार्वतीको ऐसा ही वर दिया है। ईश्वरकी की हुई प्रतिज्ञा कभी पलट नहीं सकती। गिरिराज ! ईश्वरके वशमें रहनेवाले समस्त साधु पुरुषोंकी भी प्रतिज्ञाका संसारमें किसीके द्वारा उल्लङ्घन होना कठिन है। फिर साक्षात् ईश्वरकी प्रतिज्ञाके लिये तो कहना ही क्या है ? (अध्याय ३२-३३)

सप्तर्षियोंके समझाने तथा मेरु आदिके कहनेसे पत्नीसहित हिमवान्‌का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना तथा सप्तर्षियोंका शिवके पास जा उन्हें सब बात बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर वसिष्ठने प्राचीन कालमें राजा अनरण्यके द्वारा अपनी कन्या पद्माका पिप्पलादके साथ विवाह करनेकी तथा धर्मके वरदानसे पिप्पलादके तरुण अवस्था, रूप, गुण, सदा स्थिर रहनेवाले यौवन, कुबेर और इन्द्रसे भी बढ़कर धन-ऐश्वर्य, भक्ति, सिद्धि एवं समता प्राप्त करनेकी तथा पद्माके स्थिर यौवन, सौभाग्य, सम्पत्ति एवं भर्ताके द्वारा परम गुणवान् दस पुत्रोंके प्राप्त करनेकी कथा सुनाकर कहा—'शैलेन्द्र ! तुम मेरे कथनके सारतत्त्वको समझकर अपनी पुत्री पार्वतीका हाथ महादेवजीके हाथमें दे दो और मेनासहित तुम्हारे मनमें जो कुरोष है, उसे त्याग दो। आजसे एक सप्ताह



व्यतीत होनेपर अत्यन्त शुभ और दुर्लभ मुहूर्त आनेवाला है। उस समय चन्द्रमा लग्नके स्वामी होकर अपने पुत्र बुधके साथ लग्नमें ही स्थित होंगे । उनका रोहिणीनक्षत्रके साथ योग होगा। चन्द्रमा और तारे शुद्ध होंगे । मार्गशीर्षमासके अन्तर्गत सम्पूर्ण दोषोंसे रहित सोमवारको, जब कि लग्नपर सम्पूर्ण शुभ-ग्रहोंकी दृष्टि होगी, पापग्रहोंकी दृष्टि नहीं होगी तथा बृहस्पति ऐसे स्थानपर स्थित होंगे, जहाँसे वे उत्तम संतान और पतिका सौभाग्य देनेमें समर्थ होंगे । ऐसे मुहूर्तमें तुम अपनी कन्या मूलप्रकृति ईश्वरी जगदम्बा पार्वतीको जगत्-पिता भगवान् शिवके हाथमें देकर कृतार्थ हो जाओ।'

ऐसा कहकर ज्ञानिशिरोमणि मुनिवर वसिष्ठ नाना प्रकारकी लीला करनेवाले भगवान् शिवका स्मरण करके चुप हो गये। वसिष्ठजीकी बात सुनकर सेवकों और पत्नीसहित गिरिराज हिमालय बड़े विस्मित हुए और दूसरे-दूसरे पर्वतोंसे बोले ।

हिमालयने कहा—गिरिराज मेरु, सह्य, गन्धमादन, मन्दराचल, मैनाक और विन्ध्याचल आदि पर्वतेश्वरो ! आप सब लोग मेरी बात सुनें । वसिष्ठजी ऐसी बात कह रहे हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये, इस बातका विचार करना है। आपलोग अपने मनसे सब बातोंका निर्णय करके जैसा ठीक समझें, वैसा करें ।

हिमाचलकी यह बात सुनकर सुमेरु आदि पर्वत भली-भाँति निर्णय करके उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

पर्वतोंने कहा—महाभाग ! इस समय विचार करनेसे क्या लाभ ? जैसा ऋषिलोग कहते हैं, उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिये । वास्तवमें यह कन्या देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुई है । इसने शिवके लिये ही अवतार लिया है, इसलिये यह शिवको ही दी जानी चाहिये । यदि इसने रुद्रदेवकी आराधना की है और रुद्रने आकर इसके साथ वार्तालाप किया है तो इसका विवाह उन्हींके साथ होना चाहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन मेरु आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर हिमाचल बड़े प्रसन्न हुए और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगीं। अरुन्धतीने भी अनेक कारण बताकर, नाना प्रकारकी बातें सुनाकर और विविध प्रकारके इतिहासोंका वर्णन करके मेनादेवीको समझाया । तब शैलपत्नी मेनका सब कुछ समझ गयीं । और प्रसन्नचित्त हो उन्होंने मुनियोंको, अरुन्धतीजीको और हिमाचलको भी भोजन कराकर स्वयं भोजन किया । तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उन मुनियोंकी भलीभाँति सेवा की । उनका मन प्रसन्न और सारा भ्रम दूर हो गया था । उन्होंने हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उन महर्षियोंसे कहा ।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो ! आपलोग मेरी बात सुनें । मेरा सारा संदेह दूर हो गया । मैंने शिव-पार्वतीके चरित्र सुन लिये; अब मेरा शरीर, मेरी पत्नी मेना, मेरे पुत्र-पुत्री, ऋद्धि-सिद्धि तथा अन्य सारी वस्तुएँ भगवान् शिवकी ही हैं, दूसरे किसीकी नहीं !

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर हिमाचलने अपनी पुत्रीकी ओर आदरपूर्वक देखा और उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके ऋषियोंकी गोदमें बिठा दिया । तत्पश्चात् वे शैलराज पुनः प्रसन्न हो उन ऋषियोंसे बोले—'यह भगवान् रुद्रका भाग है । इसे मैं उन्हींको दूँगा, ऐसा निश्चय कर लिया है ।'

ऋषि बोले—गिरिराज ! भगवान् शंकर तुम्हारे याचक हैं, तुम स्वयं उनके दाता हो और पार्वतीदेवी भिक्षा हैं । इससे उत्तम और क्या हो सकता है ? हिमाचल ! तुम समस्त पर्वतोंके राजा, सबसे श्रेष्ठ और धन्य हो । अतः तुम्हारे

शिखरोंकी सामान्य गति है—तुम्हारे सभी शिखर सामान्यरूपसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर निर्मल अन्तःकरणवाले उन मुनियोंने गिरिराजकुमारी पार्वतीको हाथसे छूकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'शिवे ! तुम भगवान् शिवके लिये सुखदायिनी होओ । तुम्हारा कल्याण होगा । जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो ।' ऐसा कहकर सब मुनियोंने गिरिराजको प्रसन्नतापूर्वक फल-फूल दे विवाहके पक्के होनेका दृढ़ विश्वास कर लिया । उस समय परम सती सुमुखी अरुन्धतीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके गुणोंका बखान करके मेनाको लुभा लिया । तदनन्तर गिरिराज हिमवान्ने परम उत्तम माङ्गलिक लोकाचारका आश्रय ले हल्दी और कुङ्कुमसे अपनी दाढ़ी-मूँछका मार्जन किया । तत्पश्चात् चौथे दिन उत्तम लग्नका निश्चय करके परस्पर संतोष दे, वे सप्तर्षि भगवान् शिवके पास चले गये । वहाँ जाकर शिवको नमस्कार और विविध सूक्तियोंसे उनका स्तवन करके वे वसिष्ठ आदि सब मुनि परमेश्वर शिवसे बोले ।

ऋषियोंने कहा—देवदेव ! महादेव ! परमेश्वर ! महाप्रभो ! आप प्रेमपूर्वक हमारी बात सुनें । आपके इन सेवकोंने जो कार्य किया है, उसे जान लें । महेश्वर ! हमने नाना प्रकारके सुन्दर वचन और इतिहास सुनाकर गिरिराज और मेनाको समझा दिया है । गिरिराजने आपके लिये पार्वतीका वाग्दान कर दिया है । अब इसमें कोई ननु-नच नहीं है । अब आप अपने पार्षदों तथा देवताओंके साथ उनके यहाँ विवाहके लिये जाइये । महादेव ! प्रभो ! अब शीघ्र हिमाचलके घर पधारिये और वेदोक्त रीतिके अनुसार पार्वतीका अपने लिये पाणिग्रहण कीजिये ।

सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर लोकाचारपरायण महेश्वर प्रसन्नचित्त हो हँसते हुए इस प्रकार बोले ।

महेश्वरने कहा—महाभाग सप्तर्षियो ! विवाहको तो मैंने न कभी देखा है और न सुना ही है । तुमलोगोंने पहले जैसा देखा हो, उसके अनुसार विवाहकी विशेष विधिका वर्णन करो ।

महेश्वरके उस लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे ऋषि हँसते हुए देवाधिदेव भगवान् सदाशिवसे बोले ।

ऋषियोंने कहा—प्रभो ! आप पहले तो भगवान् विष्णुको, विशेषतः उनके पार्षदोंसहित शीघ्र बुला लें । फिर पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, देवराज इन्द्रको, समस्त ऋषियोंको, यक्ष, गन्धर्व, किंनर, सिद्ध, विद्याधर और अप्सराओंको प्रसन्नतापूर्वक आमन्त्रित करें । इनको तथा अन्य सब लोगोंको यहाँ सादर बुलवा लें । वे सब मिलकर आपके कार्यका साधन कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वे सातों ऋषि उनकी आज्ञा ले भगवान् शंकरकी स्थितिका वर्णन करते हुए वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये ।

(अध्याय ३४–३६)

हिमवान्का भगवान् शिवके पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाहके लिये आवश्यक सामान जुटाना, मङ्गलाचारका आरम्भ करना, उनका निमन्त्रण पाकर पर्वतों और नदियोंका दिव्यरूपमें आना, पुरीकी सजावट तथा विश्वकर्माद्वारा दिव्यमण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करवाना

नारदजीने पूछा—तात ! महाप्राज्ञ ! प्रभो ! आप कृपापूर्वक यह बताइये कि सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमाचलने क्या किया ।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वर ! अरुन्धतीसहित उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमवान्ने जो कार्य किया, वह तुम्हें बता रहा हूँ । सप्तर्षियोंके जानेके बाद अपने मेरु आदि भाई-बन्धुओंको आमन्त्रित करके पुत्र और पत्नीसहित महामनस्वी गिरिराज हिमवान् बड़े हर्षका अनुभव करने लगे । तदनन्तर ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार हिमवान्ने अपने पुरोहित गर्गजीसे बड़ी प्रसन्नताके साथ लग्न-पत्रिका लिखवायी । उस पत्रिकाको उन्होंने भगवान् शिवके पास भेजा । पर्वतराजके बहुत-से आत्मीयजन प्रसन्नमनसे नाना प्रकारकी सामग्रियाँ लेकर वहाँ गये । कैलासपर भगवान् शिवके समीप पहुँचकर उन लोगोंने शिवको तिलक लगाया और वह लग्नपत्र उनके

हाथमें दिया। वहाँ भगवान् शिवने उन सबका यथायोग्य विशेष सत्कार किया । फिर वे सब लोग प्रसन्नचित्त हो शैलराजके पास लौट आये । महेश्वरके द्वारा विशेष सम्मानित होकर बड़े हर्षके साथ लौटे हुए उन लोगोंको देखकर हिमवान्‌के हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् आनन्दित हो शैलराजने नाना देशोंमें रहनेवाले अपने बन्धुओंको लिखित निमन्त्रण भेजा, जो उन सबको सुख देनेवाला था। इसके बाद वे बड़े आदर और उत्साहके साथ उत्तम अन्न एवं नाना प्रकारकी विवाहोचित सामग्रियोंका संग्रह करने लगे। उन्होंने चावल, गुड़, शक्कर, आटा, दूध, दही, घी, मिठाई, नमकीन पदार्थ, मक्खन, पकवान, महान् स्वादिष्ट रस और नाना प्रकारके व्यञ्जन इतने अधिक एकत्र किये कि सूखे पदार्थोंके पहाड़ खड़े हो गये और द्रव पदार्थोंकी बावड़ियाँ बन गयीं। शिवके पार्षदों और देवताओंके लिये हितकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ, भाँति-भाँतिके बहुमूल्य वस्त्र, आगमें तपाकर शुद्ध किये हुए सुवर्ण, रजत और विभिन्न प्रकारके मणिरत्न—इनका तथा अन्य उपयोगी द्रव्योंका विधिपूर्वक संग्रह करके गिरिराजने मङ्गलकारी दिनमें माङ्गलिक कृत्य करना आरम्भ किया। पर्वतराजके घरकी स्त्रियोंने पार्वतीका संस्कार करवाया। भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित हुई राजभवनकी उन सुन्दरी स्त्रियोंने सानन्द मङ्गलकार्यका सम्पादन किया। नगरके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने स्वयं बड़े हर्षके साथ लोकाचारका अनुष्ठान किया। उसमें मङ्गलपूर्वक भाँति-भाँतिके उत्सव मनाये गये । हर्षभरे हृदयसे उत्तम मङ्गलाचारका सम्पादन करके हिमालय भी सर्वतोभावेन बड़े प्रसन्न हुए और अपने निमन्त्रित बन्धुओंके आगमनकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें उनके निमन्त्रित बन्धु-बान्धव आने लगे। देवताओंके निवासभूत गिरिराज सुमेरु दिव्य रूप धारण करके नाना प्रकारके मणियों तथा महारत्नोंको यत्नपूर्वक साथ ले अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ हिमालयके घर आये। मन्दराचल, अस्ताचल, उदयाचल, मलय, दर्दुर, निषद, गन्धमादन, करवीर, महेन्द्र, पारियात्र, क्रौञ्च, पुरुषोत्तमशैल, नील, त्रिकूट, चित्रकूट, वेङ्कट, श्रीशैल, गोकामुख, नारद, विन्ध्य, कालञ्जर, कैलास तथा अन्य पर्वत दिव्य रूप धारणकर अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ बहुत-सी भेंट-सामग्री ले वहाँ उपस्थित हुए। दूसरे द्वीपोंमें तथा यहाँ भी जो-जो पर्वत हैं, वे सब हिमालयके घर पधारे। शिवा और शिवका विवाह है, यह जानकर सबने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ पदार्पण किया। शोणभद्र आदि नद और सम्पूर्ण नदियाँ दिव्य नर-नारियोंके रूप धारणकर नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हो शिव-पार्वतीका विवाह देखनेके लिये आये। गोदावरी, यमुना, सरस्वती, वेणी, गङ्गा, नर्मदा तथा अन्य श्रेष्ठ सरिताएँ भी बड़ी प्रसन्नताके साथ हिमवान्‌के यहाँ आयीं। उन सबके आनेसे हिमालयकी दिव्य पुरी सब ओरसे भर गयी। वह सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न थी। वहाँ बड़े-बड़े उत्सव हो रहे थे। ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। वंदनवारोंसे उसकी अधिक शोभा होती थी। चारों ओर चँदोवे तने होनेसे वहाँ सूर्यका दर्शन नहीं होता था। भाँति-भाँतिकी नीली, पीली आदि प्रभा उस पुरीकी शोभा बढ़ाती थी। हिमालयने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने यहाँ पधारे हुए सभी स्त्री-पुरुषोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और सबको अलग-अलग सुन्दर स्थानोंमें ठहराया । अनेकानेक उपयुक्त सामग्री देकर सबको पूर्ण संतुष्ट किया।

मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर शैलराज हिमवान्‌ने प्रसन्न हो महान् उत्सवसे परिपूर्ण अपने नगरको विचित्र रीतिसे सजाना आरम्भ किया। सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर छिड़काव कराया । उन्हें बहुमूल्य साधनोंसे सुसज्जित एवं शोभित किया। प्रत्येक घरके दरवाजेपर केले आदि माङ्गलिक वृक्ष लगवाये और उन्हें माङ्गलिक द्रव्योंसे संयुक्त किया। आँगनको केलेके खंभोंसे सजाया । रेशमकी डोरीमें आमके पल्लव बाँधकर वंदनवारें बनवायीं और उन्हें उन खंभोंके चारों ओर लगवा दिया। मालतीके फूलोंकी मालाएँ उस (आँगन) के सब ओर लटका दी गयीं। सुन्दर तोरणोंसे वह आँगनका भाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ता था। चारों दिशाओंमें मङ्गलसूचक शुभ द्रव्य रक्खे गये थे, जो इस प्राङ्गणकी शोभा बढ़ा रहे थे। इसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्नतासे भरे हुए गिरिराज हिमवान्‌ने महान् प्रभावशाली गर्गमुनिको आगे करके अपनी पुत्रीके लिये प्रस्तुत करनेयोग्य सारा उत्तम मङ्गलकार्य सम्पन्न किया। उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर आदरपूर्वक एक मण्डप बनवाया, जिसका विस्तार बहुत अधिक था। वेदी आदिके कारण वह मण्डप बहुत मनोहर जान पड़ता था। देवर्षे! वह मण्डप कई योजन विस्तृत था। अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। वहाँ स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ कृत्रिम बनी थीं; परंतु असली वस्तुओंके समान प्रतीत होती थीं। उनसे उस मण्डपकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वहाँ सब ओर ऐसी अद्भुत वस्तुएँ थीं

जो उस मण्डपका सर्वस्व जान पड़ती थीं। नाना प्रकारकी निराली वस्तुओंका चमत्कार वहाँ छा रहा था। वहाँकी स्थावर वस्तुओंसे जंगम और जंगम वस्तुओंसे स्थावर पराजित हो रहे थे अर्थात् वे एक दूसरेसे बढ़कर शोभाशाली और चमत्कारपूर्ण दिखायी देते थे। उस मण्डपकी स्थलभूमि जलसे पराजित हो रही थी अर्थात् चतुर-से-चतुर मनुष्य भी यह नहीं जान पाते थे कि इसमें कहाँ जल है और कहाँ स्थल। कहीं कृत्रिम सिंह बने थे और कहीं सारसोंकी पंक्तियाँ। कहीं बनावटी मोर थे, जो अपनी सुन्दरतासे मनको मोहे लेते थे। कहीं कृत्रिम स्त्रियाँ थीं, जो पुरुषोंके साथ नृत्य करती हुई देखी जाती थीं। वे कृत्रिम होनेपर भी सब लोगोंकी ओर देखतीं और उनके मनको मोहमें डाल देती थीं। उसी विधिसे मनोहर द्वारपाल बने थे, जो स्थावर होनेपर भी जंगमोंके समान जान पड़ते थे। वे अपने हाथोंसे धनुष उठाकर उन्हें खींचते देखे जाते थे।

द्वारपर कृत्रिम महालक्ष्मी खड़ी थीं, जिनकी रचना अद्भुत थी। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त दिखायी देती थीं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षीरसागरसे साक्षात् लक्ष्मी ही आ गयी हों। उस मण्डपमें स्थान-स्थानपर सजे-सजाये कृत्रिम हाथी खड़े किये गये थे, जो असली हाथियोंके समान ही प्रतीत होते थे। घुड़सवारोंसहित घोड़े और हाथीसवारोंसहित हाथी बनाये गये थे। जहाँ-तहाँ रथियोंसहित रथ बने थे, जो कृत्रिम अश्वोंसे ही खींचे जाते थे। उन्हें देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था। इनके सिवा दूसरे-दूसरे कृत्रिम वाहन भी वहाँ खड़े थे। पैदल सिपाहियोंकी कृत्रिम सेना भी वहाँ मौजूद थी। मुने! प्रसन्न चित्तवाले विश्वकर्माने देवताओं और मुनियोंको भी मोह (आश्चर्य) में डालनेके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचनाएँ की थीं। मण्डपके सबसे बड़े फाटकपर कृत्रिम नन्दी खड़ा था, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होता था। भगवान् शिवके वाहन नन्दीकी जैसी आकृति है, ठीक वैसा ही वह भी था। उस कृत्रिम नन्दीके ऊपर रत्नभूषित महादिव्य पुष्पक शोभा पाता था, जो पल्लवों तथा श्वेत चामरोंसे सजाया गया था। उसके वाम पार्श्वमें दो कृत्रिम हाथी खड़े थे, जिनका रंग विशुद्ध केसरके समान था। वे चार दाँतवाले बनाये गये थे और साठ वर्षके पाठोंके समान दीखते थे। वे परस्पर स्नेह करते-से प्रतीत होते थे। उनमें बड़ी चमक थी। इसी प्रकार सूर्यके समान [illegible]

बनाये थे, जो चवँरसे अलंकृत और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणोंसे सम्पन्न, कवचधारी लोकपाल तथा सम्पूर्ण देवता भी वहाँ विश्वकर्माद्वारा रचे गये थे, जो ठीक उन्हीं लोकपालों और देवताओंसे मिलते-जुलते थे। इसी तरह भृगु आदि समस्त तपोधन ऋषि, अन्यान्य उपदेवता और सिद्ध भी उनके द्वारा वहाँ निर्मित हुए थे।

गरुड़ आदि समस्त पार्षदोंसे युक्त भगवान् विष्णुका कृत्रिम विग्रह भी विश्वकर्माने बनाया था, जिसका स्वरूप साक्षात् श्रीहरिके समान ही आश्चर्यजनक था। नारद! उसी प्रकार पुत्रों, वेदों और सिद्धोंसे घिरे हुए मुझ ब्रह्माकी भी प्रतिमा वहाँ बनायी गयी थी, जो मेरे समान ही वैदिक सूक्तोंका पाठ कर रही थी। ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र भी वहाँ दल-बलके साथ खड़े थे, वे भी कृत्रिम ही बनाये गये थे और परिपूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होते थे। देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ? हिमाचलसे प्रेरित हुए विश्वकर्माने वहाँ शीघ्र ही सम्पूर्ण देवसमाजके कृत्रिम विग्रहोंका निर्माण कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने दिव्य मण्डपकी रचना की थी। वह मण्डप अनेक आश्चर्योंसे युक्त, महान् तथा देवताओंको भी मोह लेनेवाला था।

तदनन्तर गिरिराज हिमवान्‌की आज्ञासे परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने देवता आदिके निवासके लिये उन-उनके कृत्रिम लोकोंका भी यत्नपूर्वक निर्माण किया। उन्हीं लोकोंमें उन्होंने उन देवताओंके लिये अत्यन्त तेजस्वी, परम अद्भुत और सुखदायक बड़े-बड़े दिव्य मञ्चों (सिंहासनों) की रचना की। इसी तरह उन्होंने मुझ स्वयम्भू ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें अद्भुत सत्यलोककी रचना कर डाली, जो उत्तम दीप्तिसे उद्दीप्त हो रहा था। साथ ही भगवान् विष्णुके लिये भी क्षणभरमें दूसरे दिव्य वैकुण्ठधामका निर्माण कर दिया, जो परम उज्ज्वल तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। इसी तरह विश्वकर्माने देवराज इन्द्रके लिये भी दिव्य, अद्भुत, उत्तम एवं समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न गृहकी रचना की। अन्य लोकपालोंके लिये भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बड़े सुन्दर, दिव्य, अद्भुत एवं बड़े-बड़े भवन बनाये। फिर क्रमशः समस्त देवताओंके लिये भी उन्होंने क्रमशः विचित्र गृहोंका निर्माण किया। परम बुद्धिमान् विश्वकर्माको भगवान् शंकरका महान् वर प्राप्त था; इसीलिये उन्होंने शिवके संतोषके लिये क्षणभरमें [illegible] तदनन्तर उसी प्रकार

भगवान् शंकरके लिये भी उन्होंने एक शोभाशाली गृहका निर्माण किया, जो शिवके चिह्नसे युक्त तथा शिवलोकवर्ती दिव्य भवनके समान ही अनुपम था । श्रेष्ठ देवताओंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी । वह परम उज्ज्वल, महान् प्रभापुञ्जसे उद्भासित, उत्तम और अद्भुत था । विश्वकर्माने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचना की थी, जो परम उज्ज्वल होनेके साथ ही साक्षात् महादेवजीको भी आश्चर्यमें डालनेवाली थी । इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके हिमाचल बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शम्भुके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगे । देवर्षे ! हिमालयका यह सारा आनन्ददायक वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय ३७-३८)

भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारदजी बोले—विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ तात विधातः ! आपको नमस्कार है । कृपानिधे ! आपके मुँहसे यह अद्भुत कथा मुझे सुननेको मिली है । अब मैं भगवान् चन्द्रमौलिके परम मङ्गलमय तथा समस्त पापराशिके विनाशक वैवाहिक चरित्रको सुनना चाहता हूँ । मङ्गलपत्रिका पाकर महादेवजीने क्या किया ? परमात्मा शंकरकी वह दिव्य कथा सुनाइये ।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो । भगवान् शंकरके उत्तम यशको सुनो । मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने जो कुछ किया, वह बताता हूँ । भगवान् शिव उस मङ्गलपत्रिकाको प्रसन्नतापूर्वक हाथमें लेकर हृदयमें बड़े हर्षका अनुभव करते हुए हँसने लगे । फिर उन भगवान्ने उसे लानेवालोंका सम्मान किया । तत्पश्चात् उसे बाँचकर विधिपूर्वक स्वीकार किया । इसके बाद हिमाचलके यहाँसे आये हुए लोगोंको बड़े आदर-सम्मानके साथ विदा किया । तदनन्तर उन मुनियोंसे कहा—'आपलोगोंने मेरे शुभकार्यका भलीभाँति सम्पादन किया, अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है । अतः आपलोगोंको मेरे विवाहमें आना चाहिये ।'

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर वे ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम एवं उनकी परिक्रमा करके अपने परम सौभाग्यकी सराहना करते हुए अपने धामको चले गये । मुने ! तदनन्तर महालीला करनेवाले देवेश्वर भगवान् शम्भुने लोकाचारका सहारा ले तत्काल ही तुम्हारा स्मरण किया । तुम अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और मस्तक झुका, प्रणामकर हाथ जोड़ विनीतभावसे खड़े हो गये ।

तब भगवान् शिवने कहा—नारद ! तुम्हारे उपदेशसे देवी पार्वतीने बड़ी भारी तपस्या की और उससे संतुष्ट होकर मैंने उन्हें यह वर दिया कि मैं पतिरूपसे तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा । पार्वतीकी भक्ति देखकर मैं उनके वशमें हो गया हूँ । इसलिये उनके साथ विवाह करूँगा । सप्तर्षियोंने लग्नका साधन और शोधन कर दिया है । अतः आजसे सातवें दिन मेरा विवाह होगा । उस अवसरपर लौकिक रीतिका आश्रय ले मैं महान् उत्सव करूँगा । मुने ! तुम विष्णु आदि सब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंको तथा अन्य लोगोंको भी मेरी ओरसे निमन्त्रित करो । सब लोग मेरे शासनकी गुरुताको समझकर प्रसन्नता और उत्साहके साथ सब प्रकारसे सज-धजकर स्त्री-पुत्रोंको साथ लिये यहाँ आयें ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! भगवान् शंकरकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके तुमने शीघ्र ही सर्वत्र जाकर उन सबको निमन्त्रण दे दिया । तत्पश्चात् शम्भुके पास आकर उनकी आज्ञाके अनुसार तुम वहीं ठहर गये । भगवान् शिव भी उन सब देवताओंके आगमनकी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अपने गणोंके साथ वहीं रहे । उनके सभी गण सम्पूर्ण दिशाओंमें नाचते हुए वहाँ बड़ा भारी उत्सव मना रहे थे । इसी बीचमें भगवान् विष्णु सुन्दर वेष धारण किये अपनी पत्नी और दलबलके साथ शीघ्र ही कैलासपर्वतपर आये और भक्तिभावसे भगवान् शिवको प्रणाम करके उनकी आज्ञा पाकर प्रसन्नतापूर्वक उत्तम स्थानमें ठहर गये । इसी प्रकार मैं अपने गणोंके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक शीघ्र ही कैलास गया और भगवान् शम्भुको प्रणाम करके अपने सेवकोंसहित सानन्द वहाँ ठहरा । तदनन्तर इन्द्र आदि लोकपाल और उनकी स्त्रियाँ आवश्यक सामानके साथ खूब सज-धजकर वहाँ आयीं । वे सब-के-सब उत्सव मना रहे थे । तत्पश्चात् मुनि, नाग, सिद्ध, उपदेवता तथा अन्य लोग भी निमन्त्रित हो उत्सव

मनाते हुए वहाँ आये। उस समय महेश्वरने वहाँ आये हुए सब देवता आदिका पृथक्-पृथक् सहर्ष स्वागत-सत्कार किया। फिर तो कैलास पर्वतपर बड़ा अद्भुत और महान् उत्सव होने लगा। देवाङ्गनाओंने उस अवसरपर यथायोग्य नृत्य आदि किया। विष्णु आदि जो देवता भगवान् शम्भुकी वैवाहिक यात्रा सम्पन्न करानेके लिये इस समय वहाँ आये थे, वे सब यथास्थान ठहर गये। भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग उनके प्रत्येक कार्यको अपना ही कार्य समझकर नियन्त्रित रूपसे करने लगे और इसे शिवकी सेवा मानने लगे। उस समय सातों मातृकाएँ वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवको यथायोग्य आभूषण पहिनाने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! परमेश्वर भगवान् शिवका जो स्वाभाविक वेष था, वही उनकी इच्छासे उनके लिये आभूषणकी सामग्री बन गया। उस समय चन्द्रमा स्वयं उनके मुकुटके स्थानपर जा विराजे। उनका जो सुन्दर ललाटवर्ती तीसरा नेत्र था, वही शुभ तिलक बन गया। मुने! कानोंके आभूषणोंके रूपमें जो दो सर्प बताये गये हैं, वे नाना प्रकारके रत्नोंसे युक्त दो कुण्डल बन गये। अन्यान्य अङ्गोंमें स्थित सर्प उन-उन अङ्गोंके अति रमणीय नाना रत्नमय आभूषण हो गये। उनके शरीरमें जो भस्म लगा हुआ था, वही चन्दन आदिका अङ्गराग बन गया और उनके जो गजचर्म आदि परिधान थे, वे सुन्दर दिव्य दुकूल बन गये।

इस प्रकार उनका रूप इतना सुन्दर हो गया कि उसका वर्णन करना कठिन है। वे साक्षात् ईश्वर तो थे ही, उन्होंने पूरा-पूरा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर समस्त देवता, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षिगण मिलकर भगवान् शिवके समीप गये और महान् उत्सव मनाते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोले—'महादेव! महेश्वर! अब आप महादेवी गिरिजाको ब्याह लानेके लिये हमलोगोंके साथ चलिये, चलिये। हमपर कृपा कीजिये।' तत्पश्चात् विज्ञानसे प्रसन्न हृदयवाले भगवान् विष्णुने भगवान् शंकरको भक्तिभावसे प्रणाम करके उपर्युक्त प्रस्तावके अनुरूप ही बात कही।

भगवान् विष्णु बोले—शरणागतवत्सल देवदेव! महादेव! प्रभो! आप अपने भक्तजनोंका कार्य सिद्ध करनेवाले हैं; अतः मेरा एक निवेदन सुनिये। कल्याणकारी शम्भो! आप गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार गिरिराजकुमारी पार्वती देवीके साथ अपने विवाहका कार्य कराइये। हर! आपके द्वारा विवाहकी विधिका सम्पादन होनेपर वही लोकमें सर्वत्र विख्यात हो जायगी, अतः नाथ! आप कुलधर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक मण्डपस्थापन और नान्दीमुख श्राद्ध कराइये तथा लोकमें अपने यशका विस्तार कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर लोकाचारपरायण परमेश्वर शम्भुने विधिपूर्वक सब कार्य किया। उन्होंने सारा आभ्युदयिक कार्य करानेके लिये मुझको ही अधिकार दे दिया था। अतः वहाँ मुनियोंको साथ ले मैंने आदर और प्रसन्नताके साथ वह सब कार्य सम्पन्न किया। महामुने! उस समय कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स तथा शिष्योंसहित व्यास—ये और दूसरे बहुत-से ऋषि जो भगवान् शिवके समीप आये थे, मेरी प्रेरणासे विधिपूर्वक वहाँ आभ्युदयिक कर्म कराने लगे। वे सब-के-सब वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। अतः वेदोक्त विधिसे वैवाहिक मङ्गलाचार करके ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके विविध उत्तम सूक्तोंद्वारा महेश्वरकी रक्षा करने लगे। उन सब ऋषियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-से मङ्गलकार्य कराये। मेरी और शम्भुकी प्रेरणासे उन्होंने विघ्नोंकी शान्तिके लिये प्रीतिपूर्वक ग्रहोंका और समस्त मण्डलवर्ती देवताओंका पूजन किया। वह सब लौकिक, वैदिक कर्म यथोचित रीतिसे करके भगवान् शिव बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। तदनन्तर वे सर्वेश्वर महादेव देवताओं और ब्राह्मणोंको आगे करके उस गिरिश्रेष्ठ कैलाससे हर्षपूर्वक निकले। कैलाससे बाहर जाकर देवताओं और ब्राह्मणोंके साथ भगवान् शम्भु, जो नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, सानन्द खड़े हो गये। उस समय वहाँ महेश्वरके संतोषके लिये देवता आदिने मिलकर बहुत बड़ा उत्सव मनाया। बाजे बजे तथा गान और नृत्य हुए।

(अध्याय ३९)

भगवान् शिवका बारात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर भगवान् शम्भुने नन्दी आदि सब गणोंको अपने साथ हिमाचलपुरीको चलनेकी प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हुए कहा—'तुमलोग थोड़े-से गणोंको यहाँ रखकर शेष सभी लोग मेरे साथ बड़े उत्साह और आनन्द-से युक्त हो गिरिराज हिमवान्‌के नगरको चलो।' फिर तो भगवान्‌की आज्ञा पाकर गणेश्वर शङ्खकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, विकृतानन, दुन्दुभ, कपाल, संदारक, कन्दुक, कुण्डक, विष्टम्भ, पिप्पल, सनादक, आवेशन, कुण्ड, पर्वतक, चन्द्रतापन, काल, कालक, महाकाल, अग्निक, अग्निमुख, आदित्यमूर्द्धा, घनावह, संनाह, कुमुद, अमोघ, कोकिल, सुमन्त्र, काकपादोदर, संतानक, मधुपिङ्ग, कोकिल, पूर्णभद्र, नील, चतुर्वक्त्र, करण, अहिरोमक, यज्वाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु, काष्ठागूढ़, विरूपाक्ष, सुकेश, वृषभ, सनातन, तालकेतु, षण्मुख, चैत्र, स्वयम्प्रभु, लकुलीश, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, भृङ्गिरिटि, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक, प्रमथ तथा वीरभद्र अपने असंख्य कोटि-कोटि गणों तथा भूतोंको साथ लेकर चले। नन्दी आदि गणराज असंख्य गणोंसे घिरे चले तथा क्षेत्रपाल और भैरव भी कोटि-कोटि गणोंको लेकर उत्सव मनाते हुए प्रेम और उत्साहके साथ चल पड़े। वे सब सहस्र हाथोंसे युक्त थे। सिरपर जटाका मुकुट धारण किये हुए थे। उन सबके मस्तकपर चन्द्रमा और गलेमें नील चिह्न थे तथा वे सब-के-सब त्रिनेत्रधारी थे। उन सबने रुद्राक्षके आभूषण पहन रक्खे थे। सभी उत्तम भस्म धारण किये थे और हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। इस प्रकार देवताओं तथा दूसरे-दूसरे गणोंको साथ ले भगवान् शंकर अपने विवाहके लिये हिमवान्‌के नगर-की ओर चले। चण्डीदेवी रुद्रदेवकी बहिन बनकर खूब उत्सव मनाती हुई बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आ पहुँचीं। वे शत्रुओं-को अत्यन्त भय देनेवाली थीं। उन्होंने साँपोंके आभूषणसे अपनेको विभूषित कर रक्खा था। उनका वाहन प्रेत था। वे उसीपर आरूढ़ हो अपने माथेपर एक सोनेका भरा हुआ कलश लिये चल रही थीं। वह कलश महान् प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था।

मुने ! वहाँ करोड़ों दिव्य भूतगण शोभा पाते थे, जिनका रूप विकराल था। उनके रूप-रंग भी अनेक प्रकारके थे। उस समय डमरुओंके डिम-डिम घोषसे, भेरियोंकी गड़गड़ाहट-से और शङ्खोंके गम्भीर नादसे तीनों लोक गूँज उठे थे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे महान् कोलाहल हो रहा था। वह जगत्-का मङ्गल करता हुआ अमङ्गलका नाश करता था। देवता लोग शिवगणोंके पीछे होकर बड़ी उत्सुकताके साथ बारातका अनुसरण करते थे। सम्पूर्ण सिद्ध और लोकपाल आदि भी देवताओंके साथ थे। देवमण्डलीके मध्यभागमें गरुड़के आसनपर बैठकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चल रहे थे। मुने ! उनके ऊपर महान् छत्र तना हुआ था, जो उनकी शोभा बढ़ाता था। उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे और वे अपने गणोंसे घिरे हुए थे। उनके शोभाशाली पार्षदोंने उन्हें अपने ढंगसे आभूषण आदिके द्वारा विभूषित किया था। इसी प्रकार मैं भी मूर्तिमान् वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों, सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यान्य परिजनोंके साथ मार्गमें चलता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था और शिवकी सेवामें तत्पर था। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर अपनी सेनाके बीचसे चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय बारातके साथ यात्रा करते हुए बहुत-से ऋषि भी अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। वे शिवजीका विवाह देखनेके लिये बहुत उत्कण्ठित थे। शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ आदि गण; तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व तथा किंनर भी बड़े हर्षसे भरकर बाजा बजाते हुए चले। सम्पूर्ण जगन्माताएँ, सारी देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी और अन्य देवाङ्गनाएँ—ये तथा दूसरी देवपत्नियाँ जो सम्पूर्ण जगत्‌की माताएँ हैं, शंकरजीका विवाह है, यह सोचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सम्मिलित होनेके लिये गयीं। वेदों, शास्त्रों, सिद्धों और महर्षियोंद्वारा जो साक्षात् धर्मका स्वरूप कहा गया है तथा जिसकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है, वह सर्वाङ्गसुन्दर वृषभ भगवान् शिवका वाहन है। धर्मवत्सल महादेवजी उस वृषभपर आरूढ़ हो सबके साथ यात्रा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। देवर्षियोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे। इन सब देवताओं और महर्षियोंके एकत्र हुए समुदायसे महेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी। उनका बहुत शृङ्गार किया गया था। वे शिवाका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमालयके भवनको जा रहे थे। नारद ! इस प्रकार बारातकी यात्रासम्बन्धी उत्तम उत्सव-से युक्त शम्भुका चरित्र कहा गया। अब हिमालयनगरमें जो सुन्दर वृत्तान्त घटित हुआ, उसे सुनो। (अध्याय ४०)

हिमवान्‌द्वारा शिवकी बारातकी अगवानी तथा सबका अभिनन्दन एवं वन्दन, मेनाका नारदजीको बुलाकर उनसे बरातियोंका परिचय पाना तथा शिव और उनके गणोंको देखकर भयसे मूर्च्छित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् शिवने नारदजी-को हिमाचलके घर भेजा। वे वहाँकी विलक्षण सजावट देखकर दंग रह गये। विश्वकर्माने जो विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं तथा नारद आदि ऋषियोंकी चेतन-सी प्रतीत होने-वाली मूर्तियाँ बनायी थीं, उन्हें देखकर देवर्षि नारद चकित हो उठे। तत्पश्चात् हिमाचलने देवर्षिको बारात बुला लानेके लिये भेजा। साथ ही उस बारातकी अगवानीके लिये मैनाक आदि पर्वत भी गये। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं तथा आनन्दित हुए अपने गणोंके साथ भगवान् शिव हिमालय-नगरके समीप सानन्द आ पहुँचे।

गिरिराज हिमवान्‌ने जब यह सुना कि सर्वव्यापी शंकर मेरे नगरके निकट आ पहुँचे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उन्होंने बहुत-सा सामान एकत्र करके पर्वतों और ब्राह्मणोंको महादेवजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये भेजा। स्वयं भी बड़ी भक्तिके साथ वे प्राणप्यारे महेश्वरका दर्शन करनेके लिये गये। उस समय उनका हृदय अधिक प्रेमके कारण द्रवित हो रहा था और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। उस समय समस्त देवताओंकी सेनाको उपस्थित देख हिमवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और वे अपनेको धन्य मानते हुए उनके सामने गये। देवता और पर्वत एक दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने आपको कृतकृत्य मानने लगे। महादेवजीको सामने देखकर हिमालयने उन्हें प्रणाम किया। साथ ही समस्त पर्वतों और ब्राह्मणोंने भी सदाशिवकी वन्दना की। वे वृषभपर आरूढ़ थे। उनके मुख-पर प्रसन्नता छा रही थी। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे और अपने दिव्य अङ्गोंके लावण्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनका श्रीअङ्ग अत्यन्त महीन, नूतन और सुन्दर रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका मुकुट उत्तम रत्नोंसे जटित होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वे अपनी पावन प्रभाका प्रसार करते हुए हँस रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग भूषण बने हुए सर्पोंसे युक्त था तथा उनकी अङ्गकान्ति बड़ी अद्भुत दिखायी देती थी। दिव्य कान्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरकी सुरेश्वरगण हाथमें चवँर लिये सेवा कर रहे थे। उनके बायें भागमें भगवान् विष्णु थे और दाहिने भागमें मैं था। पीछे देवराज इन्द्र थे और अन्य देवता आदि भी पीछे तथा अगल-बगलमें विद्यमान थे। नाना प्रकार-के देवता आदि उन लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करते जाते थे। उन्होंने स्वेच्छासे ही दिव्य शरीर धारण कर रक्खा था। वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा, सबके ईश्वर, उपासकोंको मनोवाञ्छित वर देनेवाले, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, प्राकृत गुणोंसे रहित, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, सबपर कृपा करनेवाले, प्रकृति और पुरुषसे भी विलक्षण तथा सच्चिदा-नन्दस्वरूप हैं। उनके दर्शनके पश्चात् हिमवान्‌ने भगवान् शिवके वामभागमें अच्युत श्रीहरिका दर्शन किया, जो नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो विनतानन्दन गरुड़की पीठपर विराजमान थे। मुने! भगवान्‌के दाहिने भागमें उन्होंने चार मुखोंसे युक्त, महाशोभाशाली तथा अपने परिवारसे संयुक्त मुझ ब्रह्माको देखा। भगवान् शिवके सदा ही अत्यन्त प्रिय इन दोनों देवेश्वरोंका दर्शन करके परिवारसहित गिरिराजने आदरपूर्वक प्रणाम किया।

इसी प्रकार भगवान् शिवके पीछे तथा अगल-बगलमें खड़े हुए दीप्तिमान् देवता आदिको भी देखकर गिरिराजने उन सबके सामने मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् शिवकी आज्ञासे आगे होकर हिमवान् अपने नगरको गये। उनके साथ महादेवजी, भगवान् विष्णु तथा स्वयम्भू ब्रह्मा भी मुनियों और देवताओंसहित शीघ्रतापूर्वक चलने लगे। मुने! उस अवसरपर मेनाके मनमें भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छा हुई। इसलिये उन्होंने तुमको बुलवाया। उस समय भगवान् शिवसे प्रेरित होकर उनका हार्दिक अभिप्राय पूर्ण करनेकी इच्छासे तुम वहाँ गये।

मेना तुम्हें प्रणाम करके बोलीं—मुने! गिरिजाके होनेवाले पतिको पहले मैं देखूँगी। शिवका कैसा रूप है, जिनके लिये मेरी बेटीने ऐसी उत्कृष्ट तपस्या की है।

तात! उस समय भगवान् शिव भी मेनाके भीतरके अहंकारको जानकर श्रीविष्णु और मुझसे अद्भुत लीला करते हुए बोले।

शिवने कहा—तात! आप दोनों मेरी आज्ञासे देवताओं-

सहित अलग-अलग होकर गिरिराजके द्वारपर चलिये। हम पीछेसे आयेंगे।

यह सुनकर भगवान् श्रीहरिने सब देवताओंको बुलाकर वैसा करनेके लिये कहा। शिवके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले समस्त देवताओंने शीघ्र वैसी ही व्यवस्था करके उत्सुकतापूर्वक वहाँसे पृथक्-पृथक् यात्रा की। मुने! मेना अपने मकानके सबसे ऊपरी भवनमें तुम्हारे साथ खड़ी थीं। उस समय भगवान् विश्वेश्वरने अपनेको ऐसी वेष-भूषामें दिखाया, जिससे मेनाके हृदयको ठेस पहुँचे। सबसे पहले बारातके जुलूसमें विविध वाहनोंपर विराजित खूब सजे-धजे बाजे-गाजेके साथ पताकाएँ फहराते हुए वसु आदि गन्धर्व आये; फिर मणिग्रीवादि यक्ष, तदनन्तर क्रमसे यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, भृगु आदि मुनीश्वर तथा ब्रह्मा आये। ये सब उत्तरोत्तर एक-से-एक विशेष सुन्दर शोभामय रूप-गुणसे सम्पन्न थे। इनमेंसे प्रत्येक दलके स्वामीको देखकर मेना पूछती थी कि 'क्या ये ही शिव हैं?' नारदजी कहते—'यह तो शिवके सेवक हैं।' मेना यह सुनकर बड़ी प्रसन्न होतीं और हर्षमें भरकर मन-ही-मन कहतीं—ये उनके सेवक ही जब इतने सुन्दर हैं, तब वे सबके स्वामी शिव तो पता नहीं कितने सुन्दर होंगे।

इसी बीचमें वहाँ भगवान् विष्णु पधारे। वे सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न, श्रीमान्, नूतन जलधरके समान श्याम तथा चार भुजाओंसे संयुक्त थे। उनका लावण्य करोड़ों कंदर्पोंको लज्जित कर रहा था। वे पीताम्बर धारण करके अपनी सहज प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। उनके सुन्दर नेत्र प्रफुल्ल कमलकी शोभाको छीने लेते थे। उनकी आकृतिसे शान्ति बरस रही थी। पक्षिराज गरुड़ उनके वाहन थे। शङ्ख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त, मुकुट आदिसे विभूषित, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण किये वे लक्ष्मीपति विष्णु अपने अप्रमेय प्रभापुञ्जसे प्रकाशमान थे। उन्हें देखते ही मेनाके नेत्र चकित हो गये। वे बड़े हर्षसे बोलीं—'अवश्य ये ही मेरी शिवाके पति साक्षात् भगवान् शिव हैं इसमें संशय नहीं है।'

मुने! तुम भी लीला करनेवाले ही ठहरे। अतः मेनाकी यह बात सुनकर उससे बोले—'देवि! ये शिवाके पति नहीं हैं, अपितु भगवान् केशव हरि हैं। भगवान् शंकरके सम्पूर्ण कार्योंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं। पार्वतीके पति जो दूलह शिव हैं, उन्हें इनसे भी बढ़कर समझना चाहिये। उनकी शोभाका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अधिपति, सर्वेश्वर तथा स्वयम्प्रकाश परमात्मा हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम्हारी इस बातको सुनकर मेनाने उन शुभलक्षणा उमाको महान् धन-वैभवसे सम्पन्न, सौभाग्यवती तथा तीनों कुलोंके लिये सुखदायिनी माना। वे मुखपर प्रसन्नता लाकर प्रीतियुक्त हृदयसे अपने सर्वाधिक सौभाग्यका बारंबार वर्णन करती हुई बोलीं।

मेनाने कहा—इस समय मैं पार्वतीको जन्म देनेके कारण सर्वथा धन्य हो गयी। ये गिरीश्वर भी धन्य हैं तथा मेरा सब कुछ परम धन्य हो गया। जिन-जिन अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और देवेश्वरोंका मैंने दर्शन किया है, इन सबके जो पति हैं, वे मेरी पुत्रीके पति होंगे। उसके सौभाग्यका क्या वर्णन किया जाय? भगवान् शिवको पतिरूपमें पानेके कारण पार्वतीके सौभाग्यका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेनाने प्रेमपूर्ण हृदयसे ज्यों ही उपर्युक्त बात कही, त्यों ही अद्भुत लीला करनेवाले भगवान् रुद्र सामने आ गये। तात! उनके सभी गण अद्भुत तथा मेनाके अहंकारको चूर्ण करनेवाले थे। भगवान् शिव अपने-आपको मायासे निर्लिप्त एवं निर्विकार दिखाते हुए वहाँ आये। मुने! उन्हें आया जान तुमने मेनाको शिवाके पतिका दर्शन कराते हुए उनसे इस प्रकार कहा—'सुन्दरि! देखो, ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये शिवाने वनमें बड़ी भारी तपस्या की थी।'

तुम्हारे ऐसा कहनेपर मेनाने बड़ी प्रसन्नताके साथ अद्भुत आकारवाले भगवान् महेश्वरकी ओर देखा। वे स्वयं तो अद्भुत थे ही, उनके अनुचर भी बड़े अद्भुत थे। इतनेमें ही रुद्रदेवकी परम अद्भुत सेना भी आ पहुँची, जो भूत-प्रेत आदिसे संयुक्त तथा नाना गणोंसे सम्पन्न थी। उनमेंसे कितने ही बवंडरका रूप धारण करके आये थे। कितने ही पताकाकी मर्मरध्वनिके समान शब्द करते थे। किन्हींके मुँह टेढ़े थे तो कोई अत्यन्त कुरूप दिखायी देते थे। कुछ बड़े विकराल थे। किन्हींका मुँह दाढ़ी-मूँछसे भरा हुआ था। कोई लँगड़े थे तो कोई अंधे। कोई दण्ड

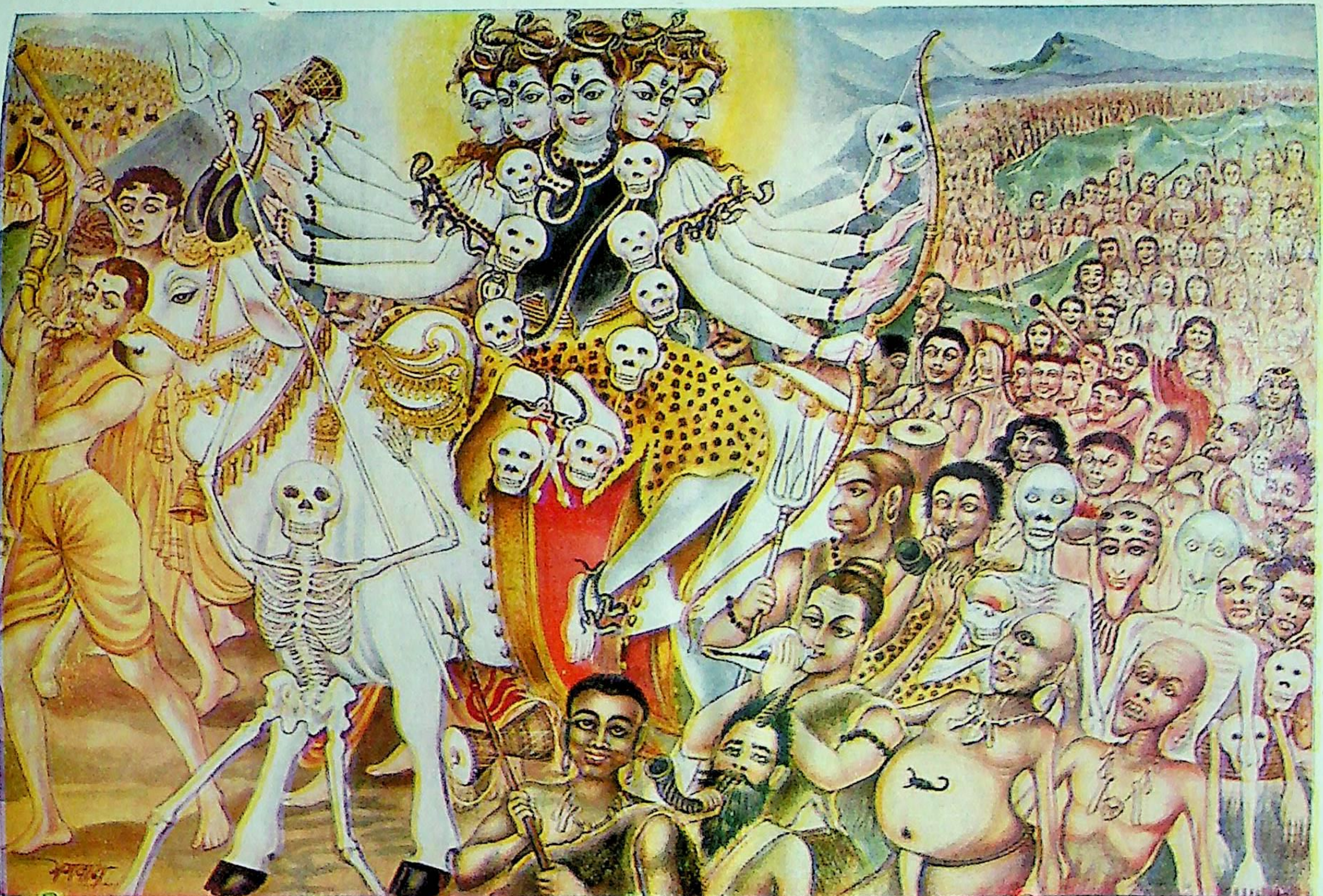
और पाश धारण किये हुए थे तो किन्हींके हाथोंमें मुद्गर थे। कितने ही अपने वाहनोंको उलटे चला रहे थे। कोई सींग, कोई डमरू और कोई गोमुख बजाते थे, गणोंमेंसे कितनेके तो मुँह ही नहीं थे। कितनोंके मुख पीठकी ओर लगे थे और बहुतोंके बहुतेरे मुख थे। इसी तरह कोई बिना हाथके थे। किन्हींके हाथ उल्टे लग रहे थे और कितनोंके बहुत-से हाथ थे। कितने ही नेत्रहीन थे, किन्हींके बहुत-से नेत्र थे। किन्हींके सिर ही नहीं थे और किन्हींके बहुत खराब सिर थे, किन्हींके कान ही नहीं थे और किन्हींके बहुत-से कान थे। इस तरह सभी गण नाना प्रकारकी वेश-भूषा धारण किये हुए थे। तात! वे विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण बड़े वीर और भयंकर थे। उनकी कोई संख्या नहीं थी। मुने! तुमने अँगुलीद्वारा रुद्रगणोंको दिखाते हुए मेनासे कहा—'वरानने! तुम पहले भगवान् हरके सेवकोंको देखो, फिर उनका भी दर्शन करना।' उन असंख्य भूत-प्रेत आदि गणोंको देखकर मेना तत्काल भयसे व्याकुल हो गयीं। उन्हींके बीचमें भगवान् शंकर भी थे, जो निर्गुण होते हुए भी परम गुणवान् थे। वे वृषभपर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र। उनके सारे अङ्गोंमें विभूति लगी हुई थी, जो उनके लिये भूषणका काम देती थी। मस्तकपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट, दस हाथ और उनमेंसे एकमें कपाल लिये, शरीरपर बाघंबरका दुपट्टा और हाथमें पिनाक एवं त्रिशूल, आँखें भयानक, आकृति विकराल और हाथीकी खालका वस्त्र! यह सब देखकर शिवाकी माता बहुत डर गयीं, चकित हो गयीं, व्याकुल होकर काँपने लगीं और उनकी बुद्धि चकरा गयी। उस अवस्थामें तुमने अँगुलीसे दिखाते हुए उनसे कहा—'ये ही हैं भगवान् शिव।' तुम्हारी यह बात सुनकर सती मेना दुःखसे भर गयीं और हवाके झोंके खाकर गिरी हुई लताके समान तुरंत भूमिपर गिर पड़ीं। 'यह कैसा विकृत दृश्य है? मैं दुराग्रहमें पड़कर ठगी गयी।' यों कहकर मेना उसी क्षण मूर्च्छित हो गयीं। तदनन्तर सखियोंने जब नाना प्रकारके उपाय करके उनकी समुचित सेवा की, तब गिरिराज-प्रिया मेना धीरे-धीरे होशमें आयीं। (अध्याय ४१—४३)

मेनाका विलाप, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, देवताओं तथा श्रीविष्णुका उन्हें समझाना तथा उनका सुन्दर रूप धारण करनेपर ही शिवको कन्या देनेका विचार प्रकट करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब हिमाचलप्रिया सती मेनाको चेत हुआ, तब वे अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं। पहले तो उन्होंने अपने पुत्रोंकी निन्दा की, इसके बाद वे तुम्हें और अपनी पुत्रीको दुर्वचन सुनाने लगीं।

मेना बोलीं—मुने! पहले तो तुमने यह कहा कि 'शिवा शिवका वरण करेगी,' पीछे मेरे पति हिमवान्‌का कर्तव्य बताकर उन्हें आराधना-पूजामें लगाया। परंतु इसका यथार्थ फल क्या देखा गया? विपरीत एवं अनर्थकारी! दुर्बुद्धि देवर्षे! तुमने मुझ अधम नारीको सब तरहसे ठग लिया। फिर मेरी बेटीने ऐसा तप किया, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर है; उसकी उस तपस्याका यह फल मिला, जो देखनेवालोंको भी दुःखमें डालता है। हाय! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरे दुःखको दूर करेगा? मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरे जीवनका भी नाश हो गया। कहाँ गये वे दिव्य ऋषि? पाऊँ तो मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच लूँ। वसिष्ठकी वह तपस्विनी पत्नी भी बड़ी धूर्ता है, वह स्वयं इस विवाहके लिये अगुआ बनकर आयी थी। न जानें किन-किनके अपराधसे इस समय मेरा सब कुछ लुट गया।

ऐसा कहकर मेना अपनी पुत्री शिवाकी ओर देखकर उन्हें कटुवचन सुनाने लगीं—'अरी दुष्ट लड़की! तूने यह कौन-सा कर्म किया, जो मेरे लिये दुःखदायक सिद्ध हुआ? तुझ दुष्टाने स्वयं ही सोना देकर काँच खरीदा है, चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़का ढेर पोत लिया! हाय! हाय! हंसको उड़ाकर तूने पिंजड़ेमें कौआ पाल लिया। गङ्गाजलको दूर फेंककर कुएँका जल पीया। प्रकाश पानेकी इच्छासे सूर्यको छोड़कर यत्नपूर्वक जुगनूको पकड़ा। चावल छोड़कर भूसी खा ली। घी फेंककर मोमके तेलका आदरपूर्वक भोग लगाया। सिंहका आश्रय छोड़कर सियारका सेवन किया। ब्रह्मविद्या छोड़कर कुत्सित गाथाका श्रवण किया। बेटी! तूने



शिवकी विकट बरात

[पृष्ठ २२०

घरमें रक्खी हुई यज्ञकी मङ्गलमयी विभूतिको दूर हटाकर चिताकी अमङ्गलमयी राख अपने पल्ले बाँध ली; क्योंकि समस्त श्रेष्ठ देवताओं और विष्णु आदि परमेश्वरोंको छोड़कर अपनी कुबुद्धिके कारण शिवको पानेके लिये ऐसा तप किया ? तुझको, तेरी बुद्धिको, तेरे रूपको और तेरे चरित्रको भी बारंबार धिक्कार है। तुझे तपस्याका उपदेश देनेवाले नारदको तथा तेरी सहायता करनेवाली दोनों सखियोंको भी धिक्कार है। बेटी ! हम दोनों माता-पिताको भी धिक्कार है, जिन्होंने तुझे जन्म दिया। नारद ! तुम्हारी बुद्धिको भी धिक्कार है। सुबुद्धि देनेवाले उन सप्तर्षियोंको भी धिक्कार है। तुम्हारे कुलको धिक्कार है। तुम्हारी क्रिया-दक्षताको भी धिक्कार है तथा तुमने जो कुछ किया, उस सबको धिक्कार है। तुमने तो मेरा घर ही जला दिया। यह तो मेरा मरण ही है। ये पर्वतोंके राजा आज मेरे निकट न आवें। सप्तर्षि लोग स्वयं मुझे अपना मुँह न दिखायें। इन सबने मिलकर क्या साधा ? मेरे कुलका नाश करा दिया। हाय ! मैं बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? मेरा गर्भ क्यों नहीं गल गया ? मैं अथवा मेरी पुत्री ही क्यों नहीं मर गयी ? अथवा राक्षस आदिने ही आकाशमें ले जाकर इसे क्यों नहीं खा डाला ? पार्वती ! आज मैं तेरा सिर काट डालूँगी, परंतु ये शरीरके टुकड़े लेकर क्या करूँगी ? हाय ! हाय ! तुझे छोड़कर कहाँ चली जाऊँ ? मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया !'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यह कहकर मेना मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। शोक-रोष आदिसे व्याकुल होनेके कारण वे पतिके समीप नहीं गयीं। देवर्षे ! उस समय सब देवता क्रमशः उनके निकट गये। सबसे पहले मैं पहुँचा। मुनिश्रेष्ठ ! मुझे देखकर तुम स्वयं मेनासे बोले।

नारदने कहा—पतिव्रते ! तुम्हें पता नहीं है, वास्तवमें भगवान् शिवका रूप बड़ा सुन्दर है। उन्होंने लीलासे ऐसा रूप धारण कर लिया है, यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाओ। हठ छोड़कर विवाहका कार्य करो और अपनी शिवाका हाथ शिवके हाथोंमें दे दो।

तुम्हारी यह बात सुनकर मेना तुमसे बोलीं—'उठो, यहाँसे दूर चले जाओ। तुम दुष्टों और अधमोंके शिरोमणि हो।' मेनाके ऐसा कहनेपर मेरे साथ इन्द्र आदि सब देवता एवं दिक्पाल क्रमशः आकर यों बोले—'पितरोंकी कन्या मेने ! तुम हमारे वचनोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। 'ये शिव निश्चय ही सबसे उत्कृष्ट देवता हैं और सबको उत्तम सुख देनेवाले हैं। आपकी पुत्रीके अत्यन्त दुस्सह तपको देखकर इन भक्तवत्सल प्रभुने कृपापूर्वक उन्हें दर्शन और श्रेष्ठ वर दिया था।'

यह सुनकर मेनाने देवताओंसे बारंबार अत्यन्त विलाप करके कहा—'शिवका रूप बड़ा भयंकर है, मैं उन्हें अपनी पुत्री नहीं दूँगी। आप सब देवता प्रपञ्च करके क्यों मेरी इस कन्याके उत्कृष्ट रूपको व्यर्थ करनेके लिये उद्यत हैं ?'

मुनीश्वर ! उनके ऐसा कहनेपर वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंने वहाँ आकर यह बात कही—'पितरोंकी कन्या तथा गिरिराजकी रानी मेने ! हमलोग तुम्हारा कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं। जो कार्य सर्वथा उचित और उपयोगी है, उसे तुम्हारे हठके कारण हम विपरीत कैसे मान लें ? भगवान् शंकरका दर्शन सबसे बड़ा लाभ है। वे दानपात्र होकर स्वयं तुम्हारे घर पधारे हैं।'

उनके ऐसा कहनेपर भी ज्ञानदुर्बला मेनाने उनकी बात मिथ्या कर दी और रुष्ट होकर उनसे कहा—'मैं शस्त्र आदिसे अपनी बेटीके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी, परंतु उसे शंकरके

हाथमें नहीं दूँगी; तुम सब लोग दूर हट जाओ, किसीको मेरे पास नहीं आना चाहिये ।'

ऐसा कह अत्यन्त विह्वल हो विलाप करके मेना चुप हो गयीं । मुने ! वहाँ उनके इस बर्तावसे हाहाकार मच गया । तब हिमालय अत्यन्त व्याकुल हो वहाँ आये और मेनाको समझानेके लिये प्रेमपूर्वक तत्त्व दर्शाते हुए बोले ।



हिमालयने कहा—प्रिये मेने ! मेरी बात सुनो, तुम इतनी व्याकुल क्यों हो गयीं ? देखो तो, कौन-कौनसे महात्मा तुम्हारे घर पधारे हैं । तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो ? भगवान् शंकरको तुम भी जानती हो, किंतु नाना नाम-रूपवाले शम्भुके विकट रूपको देखकर घबरा गयी हो । मैं शंकरजीको भलीभाँति जानता हूँ । वे ही सबके प्रतिपालक हैं, पूजनीयोंके भी पूजनीय हैं तथा अनुग्रह एवं निग्रह करनेवाले हैं । निष्पाप प्राणप्रिये ! हठ न करो, मानसिक दुःख छोड़ो । सुव्रते ! शीघ्र उठो और सब कार्य करो । पहली बार विकटरूपधारी शम्भुने मेरे द्वारपर आकर जो नाना प्रकारकी लीलाएँ की थीं, मैं उनका आज तुम्हें स्मरण दिला रहा हूँ । उनके उस परम माहात्म्यको देख और समझकर उस समय मैंने और तुमने उन्हें कन्या देना स्वीकार किया था । प्रिये ! अपनी उस बातको प्रमाण मानकर सार्थक करो ।

इस बातको सुनकर शिवाकी माता मेना हिमालयसे बोलीं—नाथ ! मेरी बात सुनिये और सुनकर आपको वैसा ही करना चाहिये । आप अपनी पुत्री पार्वतीके गलेमें रस्सी बाँधकर इसे बेखटके पर्वतसे नीचे गिरा दीजिये, परंतु मैं इसे हरके हाथमें नहीं दूँगी । अथवा नाथ ! अपनी इस बेटीको ले जाकर निर्दयतापूर्वक समुद्रमें डुबा दीजिये । गिरिराज ! ऐसा करके आप पूर्ण सुखी हो जाइये । स्वामिन् ! यदि विकट-रूपधारी रुद्रको आप पुत्री दे देंगे तो मैं निश्चय ही अपना शरीर त्याग दूँगी ।

मेनाने जब हठपूर्वक ऐसी बात कही, तब पार्वती स्वयं आकर यह रमणीय वचन बोलीं—'माँ ! तुम्हारी बुद्धि तो बड़ी शुभकारक है । इस समय विपरीत कैसे हो गयी ? धर्मका अवलम्बन करनेवाली होकर भी तुम धर्मको कैसे छोड़ रही हो ? ये रुद्रदेव सबकी उत्पत्तिके कारणभूत साक्षात् ईश्वर हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । समस्त श्रुतियोंमें यह वर्णन है कि भगवान् शम्भु सुन्दर रूपवाले तथा सुखद हैं । कल्याणकारी महेश्वर समस्त देवताओंके स्वामी तथा स्वयं-प्रकाश हैं । इनके नाम और रूप अनेक हैं । माताजी ! श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि भी इनकी सेवा करते हैं । ये सबके अधिष्ठान हैं, कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं । विकारोंकी इनतक पहुँच नहीं है । ये तीनों देवताओंके स्वामी, अविनाशी एवं सनातन हैं । इनके लिये ही सब देवता किंकर होकर तुम्हारे द्वारपर पधारे हैं और उत्सव मना रहे हैं । इससे बढ़कर सुखकी बात और क्या हो सकती है ? अतः यत्नपूर्वक उठो और जीवन सफल करो । मुझे शिवके हाथमें सौंप दो और अपने गृहस्थाश्रमको सार्थक करो । माँ ! मुझे परमेश्वर शंकरकी सेवामें दे दो । मैं स्वयं तुमसे यह बात कहती हूँ । तुम मेरी इतनी-सी ही विनती मान लो । यदि तुम इनके हाथमें मुझे नहीं दोगी तो मैं दूसरे किसी वरका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि जो सिंहका भाग है, उसे दूसरोंको ठगनेवाला सियार कैसे पा सकता है ? माँ ! मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्वयं हरका वरण किया है, हरका ही वरण किया है । अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करो ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीकी यह बात सुनकर शैलेश्वरप्रिया मेना बहुत ही उत्तेजित हो गयीं और पार्वतीको

डाँटती हुई दुर्वचन कहकर रोने तथा विलाप करने लगीं। तदनन्तर स्वयं मैंने तथा सनकादि सिद्धोंने भी मेनाको बहुत समझाया। परंतु वे किसीकी बात न मानकर सबको डाँटती रहीं। इसी बीचमें उनके सुदृढ़ एवं महान् हठकी बात सुनकर शिवप्रिय भगवान् विष्णु भी तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवि! तुम पितरोंकी मानसी पुत्री एवं उन्हें बहुत ही प्यारी हो; साथ ही गिरिराज हिमालयकी गुणवती पत्नी हो। इस प्रकार तुम्हारा सम्बन्ध साक्षात् ब्रह्माजीके उत्तम कुलसे है। संसारमें तुम्हारे सहायक भी ऐसे ही हैं। तुम धन्य हो। मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम तो धर्मकी आधारभूता हो, फिर धर्मका त्याग कैसे करती हो? तुम्हीं अच्छी तरह सोचो तो सही। सम्पूर्ण देवता, ऋषि, ब्रह्माजी और मैं—सभी लोग विपरीत बात ही क्यों कहेंगे? तुम शिवको नहीं जानती। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं। कुरूप भी हैं और सुरूप भी। सबके सेव्य तथा सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। उन्हींने मूल-प्रकृतिरूपा देवी ईश्वरीका निर्माण किया और उसके बगलमें पुरुषोत्तमका निर्माण करके बिठाया। उन्हीं दोनोंसे सगुण-रूपमें मेरी तथा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। फिर लोकोंका हित करनेके लिये वे स्वयं भी रुद्र रूपसे प्रकट हुए। तदनन्तर वेद, देवता तथा स्थावर-जंगमरूपसे जो कुछ दिखायी देता है, वह सारा जगत् भी भगवान् शंकरसे ही उत्पन्न हुआ। उनके रूपका ठीक-ठीक वर्णन अबतक कौन कर सका है? अथवा कौन उनके रूपको जानता है? मैंने और ब्रह्माजीने भी जिसका अन्त नहीं पाया, उनका पार दूसरा कौन पा सकता है? ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवका ही रूप है—ऐसा जानो। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। वे ही अपनी लीलासे ऐसे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं और शिवाके तपके प्रभावसे तुम्हारे द्वारपर आये हैं। अतः हिमाचलकी पत्नी! तुम दुःख छोड़ो और शिवका भजन करो। इससे तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा और तुम्हारा सारा क्लेश मिट जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! श्रीविष्णुके द्वारा इस प्रकार समझायी जानेपर मेनाका मन कुछ कोमल हुआ। परंतु शिवको कन्या न देनेका हठ उन्होंने तब भी नहीं छोड़ा। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण ही उन्होंने ऐसा दुराग्रह किया था। उस समय मेनाने शिवके महत्त्वको स्वीकार कर लिया। कुछ ज्ञान हो जानेपर उन्होंने श्रीहरिसे कहा—'यदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें, तब मैं उन्हें अपनी पुत्री दे सकती हूँ; अन्यथा कोटि उपाय करनेपर भी नहीं दूँगी। यह बात मैं सचाई और दृढ़ताके साथ कह रही हूँ।'

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेना शिवकी इच्छासे प्रेरित हो चुप हो गयीं। धन्य है शिवकी माया, जो सबको मोहमें डाल देती है! (अध्याय ४४)

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इसी समय भगवान् विष्णुसे प्रेरित हो तुम शीघ्र ही भगवान् शंकरको अनुकूल बनानेके लिये उनके निकट गये। वहाँ जाकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा तुमने रुद्र-देवको संतुष्ट किया। तुम्हारी बात सुनकर शम्भुने प्रसन्नता-पूर्वक अद्भुत, उत्तम एवं दिव्य रूप धारण कर लिया। ऐसा करके उन्होंने अपने दयालु स्वभावका परिचय दिया। मुने! भगवान् शम्भुका वह स्वरूप कामदेवसे भी अधिक सुन्दर तथा लावण्यका परम आश्रय था; उसका दर्शन करके तुम बड़े प्रसन्न हुए और उस स्थानपर गये, जहाँ सबके साथ मेना विद्यमान थी।

वहाँ पहुँचकर तुमने कहा—विशाल नेत्रोंवाली मेने! भगवान् शिवके उस सर्वोत्तम रूपका दर्शन करो। यह रूप प्रकट करके उन करुणामय शिवने तुमपर बड़ी ही कृपा की है।

तुम्हारी यह बात सुनकर शैलराजकी पत्नी मेना आश्चर्य-चकित हो गयीं। उन्होंने शिवके उस परमानन्ददायक रूपका दर्शन किया, जो करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, सर्वाङ्गसुन्दर, विचित्र वस्त्रधारी तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। वह अत्यन्त प्रसन्न, सुन्दर हास्यसे सुशोभित, ललित लावण्यसे लसित, मनोहर, गौरवर्ण, द्युतिमान् तथा चन्द्रलेखासे अलंकृत था। विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता बड़े प्रेमसे भगवान् शिवकी सेवा कर रहे थे। सूर्यदेवने छत्र लगा रखा था।

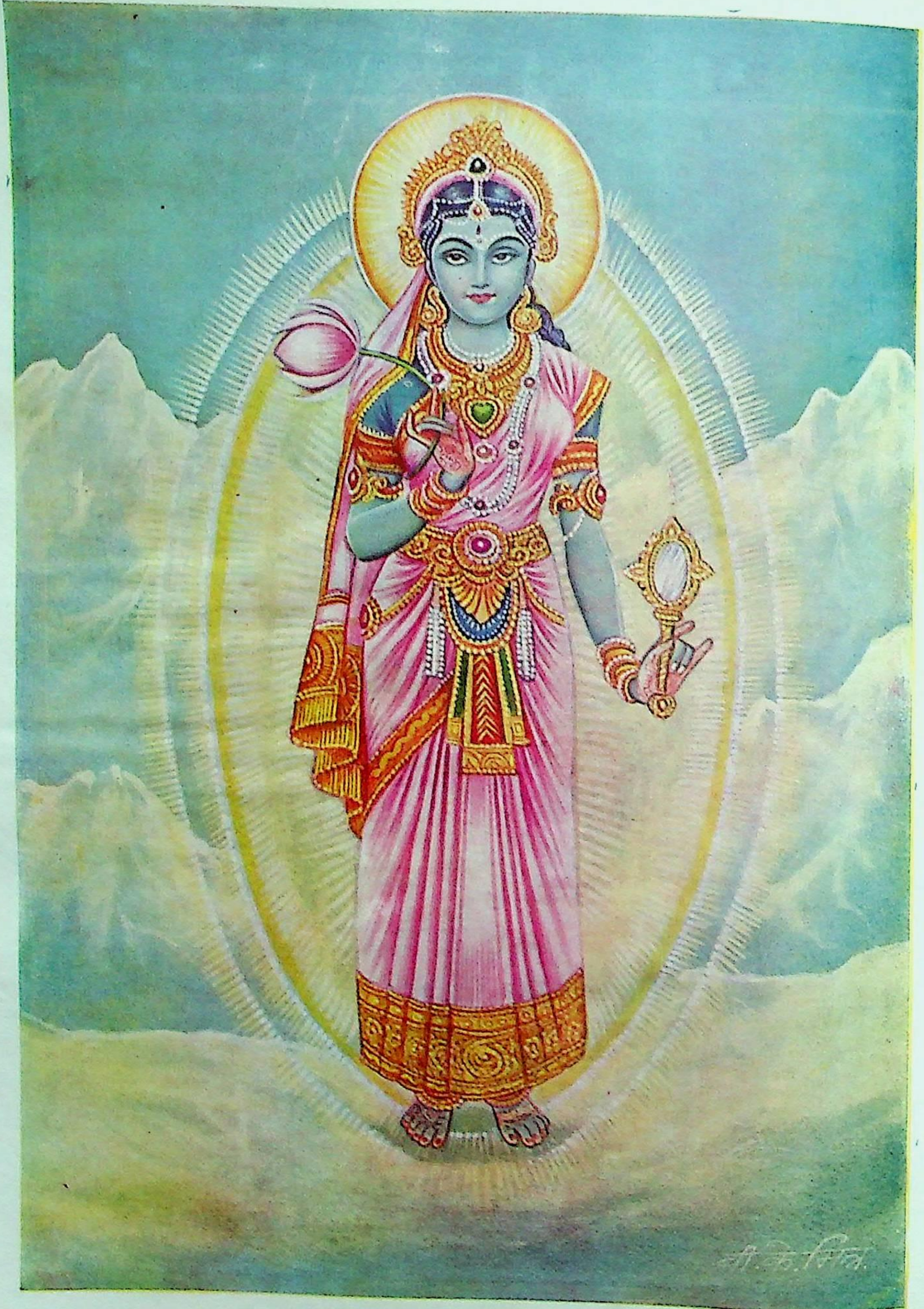


चन्द्रदेव मस्तकका मुकुट बनकर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन सब साधनोंसे भगवान् शंकर सर्वथा रमणीय जान पड़ते थे। उनका वाहन भी अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। उसकी महाशोभाका वर्णन नहीं हो सकता था। गङ्गा और यमुना भगवान् शिवको सुन्दर चवँर डुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे नाच रही थीं। उस समय मैं, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वेषको भलीभाँति विभूषित करके पर्वतवासी भगवान् शिवके साथ चल रहे थे। नानारूपधारी शिवके गण खूब सज-धजकर अत्यन्त आनन्दित हो शिवके आगे-आगे चल रहे थे। सिद्ध, उपदेवता, समस्त मुनि तथा अन्य सब लोग भी महान् सुखका अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शिवके साथ यात्रा कर रहे थे। इस प्रकार देवता आदि सब लोग विवाह देखनेके लिये उत्कण्ठित हो खूब सज-धजकर अपनी पत्नियोंके साथ परब्रह्म शिवका यशोगान करते हुए जा रहे थे। विश्वावसु आदि गन्धर्व अप्सराओंके साथ हो शंकरजीके उत्तम यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे। मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरके शैलराजके द्वारपर पधारते समय इस प्रकार वहाँ नाना प्रकारका महान् उत्सव हो रहा था। मुनीश्वर! उस समय वहाँ परमात्मा शिवकी जैसी शोभा हो रही थी, उसका विशेषरूपसे वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? उन्हें वैसे विलक्षण रूपमें देखकर मेना क्षणभरके लिये चित्र-लिखी-सी रह गयीं। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ बोलीं—'महेश्वर! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने बड़ा भारी तप किया और उस तपके प्रभावसे आप मेरे इस घरमें पधारे। पहले जो मैंने आप शिवकी अक्षम्य निन्दा की है, उसे मेरी शिवाके स्वामी शिव! आप क्षमा करें और इस समय पूर्णतः प्रसन्न हो जायँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार बात करके चन्द्रमौलि शिवकी स्तुति करती हुई शैलप्रिया मेनाने उन्हें हाथ जोड़ प्रणाम किया, फिर वे लज्जित हो गयीं। इतनेमें ही बहुत-सी पुरवासिनी स्त्रियाँ भगवान् शिवके दर्शनकी लालसासे अनेक प्रकारके काम छोड़कर वहाँ आ पहुँचीं। जो जैसे थीं, वैसे ही अस्त-व्यस्तरूपमें दौड़ आयीं। भगवान् शंकरका वह मनोहर रूप देखकर वे सब मोहित हो गयीं। शिवके दर्शनसे हर्षको प्राप्त हो प्रेमपूर्ण हृदयवाली वे नारियाँ महेश्वरकी उस मूर्तिको अपने मनोमन्दिरमें बिठाकर इस प्रकार बोलीं।

पुरवासिनियोंने कहा—अहो! हिमवान्‌के नगरमें निवास करनेवाले लोगोंके नेत्र आज सफल हो गये। जिस-जिस व्यक्तिने इस दिव्य रूपका दर्शन किया है, निश्चय ही उसका जन्म सार्थक हो गया है। उसीका जन्म सफल है और उसीकी सारी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया है। पार्वतीने शिवके लिये जो तप किया है, उसके द्वारा उन्होंने अपना सारा मनोरथ सिद्ध कर लिया। शिवको पतिके रूपमें पाकर ये शिवा धन्य और कृतकृत्य हो गयीं। यदि विधाता शिवा और शिवकी इस युगल जोड़ीको सानन्द एक-दूसरेसे मिला न देते तो उनका सारा परिश्रम निष्फल हो जाता। इस उत्तम जोड़ीको मिलाकर ब्रह्माजीने बहुत अच्छा कार्य किया है। इससे सबके सभी कार्य सार्थक हो गये। तपस्याके बिना मनुष्योंके लिये शम्भुका दर्शन दुर्लभ है। भगवान् शंकरके दर्शनमात्रसे ही सब लोग कृतार्थ हो गये। जो-जो सर्वेश्वर गिरिजापति शंकरका दर्शन करते हैं, वे सारे पुरुष श्रेष्ठ हैं और हम सारी स्त्रियाँ भी धन्य हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसी बात कहकर उन स्त्रियोंने चन्दन और अक्षतसे शिवका पूजन किया और बड़े आदरसे उनके ऊपर खीलोंकी वर्षा की। वे सब स्त्रियाँ मेनाके साथ



भगवती पार्वती-विवाह-शृंगार

उत्सुक होकर खड़ी रहीं और मेना तथा गिरिराजके भूरि-भाग्यकी सराहना करती रहीं। मुने ! स्त्रियोंके मुखसे वैसी शुभ बातें सुनकर विष्णु आदि सब देवताओंके साथ भगवान शिवको बड़ा हर्ष हुआ। (अध्याय ४५)

मेनाद्वारा द्वारपर भगवान् शिवका परिछन, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्यान्य युवतियों-द्वारा वरकी प्रशंसा, पार्वतीका अम्बिकापूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और भगवान् शिवका उनके सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर भगवान् शिव प्रसन्नचित्त हो अपने गणों, समस्त देवताओं तथा अन्य लोगोंके साथ कौतूहलपूर्वक गिरिराज हिमवान्‌के धाममें गये। हिमाचलकी श्रेष्ठ पत्नी मेना भी उन स्त्रियोंके साथ घरके भीतर गयीं और शम्भुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें दीपकोंसे सजी हुई थाली लेकर सभी ऋषिपत्नियों तथा अन्य स्त्रियोंके साथ आदरपूर्वक द्वारपर आयीं। वहाँ आकर मेनाने सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित गिरिजापति महेश्वर शंकरको, जो द्वारपर उपस्थित थे, बड़े प्यारसे देखा। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान थी। उनके एक मुख और तीन नेत्र थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। वे रत्न और सुवर्ण आदिसे विभूषित थे। गलेमें मालतीकी माला पहने हुए थे। सुन्दर रत्नमय मुकुट धारण करनेसे उनका मुखमण्डल उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहा था। कण्ठमें हार आदि सुन्दर आभरण शोभा दे रहे थे। सुन्दर कड़े और बाजूबंद उनकी भुजाओंको विभूषित कर रहे थे। अग्निके समान निर्मल एवं अनुपम अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, विचित्र एवं बहुमूल्य युगल वस्त्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगर, कस्तूरी तथा मनोहर कुङ्कुमके अङ्गरागसे उनके अङ्ग विभूषित थे। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रक्खा था और उनके दोनों नेत्र कज्जलसे सुशोभित थे। उन्होंने अपनी प्रभासे सबको आच्छादित कर लिया था तथा वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। अत्यन्त तरुण, परम सुन्दर और आभरण-भूषित अङ्गोंसे सुशोभित थे। कामिनियोंको अत्यन्त कमनीय प्रतीत होते थे। उनमें व्यग्रताका अभाव था। उनका मुखार-विन्द कोटि चन्द्रमाओंसे भी अधिक आह्लाददायक था। उनके श्रीअङ्गोंकी छवि कोटि कामदेवोंसे भी अधिक मनोहारिणी थी। वे अपने सभी अङ्गोंसे परम सुन्दर थे। ऐसे सुन्दर रूपवाले उत्कृष्ट देवता भगवान् शिवको जामाताके रूपमें अपने सामने खड़ा देख मेनाकी सारी शोक-चिन्ता दूर हो गयी। वे परमानन्दसिन्धुमें निमग्न हो गयीं और अपने भाग्यकी, गिरिजाकी, गिरिराज हिमवान्‌की और उनके समस्त कुलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना और वे बारंबार हर्षका अनुभव करने लगीं। सती मेनाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे अपने दामादकी शोभाका सानन्द अवलोकन करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं। गिरिजाकी कही हुई बातको बारंबार याद करके मेनाको बड़ा विस्मय हो रहा था। वे हर्षोत्फुल्ल मुखारविन्दसे युक्त हो मन-ही-मन यों कहने लगीं—'पार्वतीने मुझसे पहले जैसा बताया था, उससे भी अधिक सौन्दर्य मैं इन परमेश्वर शिवके अङ्गोंमें देख रही हूँ। महेश्वरका मनोहर लावण्य इस समय अवर्णनीय है।' ऐसा सोचकर आश्चर्यचकित हुई मेना अपने घरके भीतर आयीं।

वहाँ आयी हुई युवतियोंने भी वरके मनोहर रूपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे बोलीं—'गिरिराजनन्दिनी शिवा धन्य हैं, धन्य हैं।' कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'दुर्गा तो साक्षात् भगवती हैं।' कुछ दूसरी कन्याएँ महारानी मेनासे बोलीं—'हमने तो कभी ऐसा वर नहीं देखा है और न कभी ध्यानमें ही ऐसे वरका अवलोकन किया है। इन्हें पाकर गिरिजा धन्य हो गयी।' भगवान् शंकरका वह रूप देखकर समस्त देवता हर्षसे खिल उठे। श्रेष्ठ गन्धर्व उनका यश गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। बाजा बजानेवाले लोग मधुर ध्वनिमें अनेक प्रकारकी कला दिखाते हुए आदरपूर्वक भाँति-भाँतिके बाजे बजा रहे थे। हिमाचलने भी आनन्दित होकर द्वारोचित मङ्गलाचार किया। समस्त नारियोंके साथ मेनाने भी महान् उत्सव मनाते हुए वरका परिछन किया। फिर वे प्रसन्नतापूर्वक घरमें चली गयीं। इसके बाद भगवान् शिव अपने गणों और देवताओंके साथ अपनेको दिये गये स्थान (जनवासे) में चले गये।

इसी बीचमें गिरिराजके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ दुर्गाको साथ ले कुलदेवीकी पूजाके लिये बाहर निकलीं। वहाँ देवताओंने, जिनकी पलकें कभी नहीं गिरती थीं, प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीको

देखा। उनकी अङ्ग-कान्ति नील अञ्जनके समान थी। वे अपने मनोहर अङ्गोंसे ही विभूषित थीं। उनका कटाक्ष केवल भगवान् त्रिलोचनपर ही आदरपूर्वक पड़ता था। दूसरे किसी पुरुषकी ओर उनके नेत्र नहीं जाते थे। उनका प्रसन्न मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित था। वे कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती थीं और बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती थीं। उनके केशोंकी चोटी बड़ी ही सुन्दर थी। कपोलोंपर बनी हुई मनोहर पत्रभङ्गी उनकी शोभा बढ़ाती थी। ललाटमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ ही सिन्दूरकी बिंदी भी शोभा दे रही थी। वक्षःस्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके सारभूत हारसे दिव्य दीप्ति छिटक रही थी। रत्नोंके बने हुए केयूर, वलय और कङ्कणसे उनकी भुजाएँ अलंकृत थीं। उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे उनके मनोहर कपोल जगमगा रहे थे। उनकी दन्तपङ्क्ति मणियों तथा रत्नोंकी प्रभाको छीने लेती थी और मुखकी शोभा बढ़ाती थी। मधुसे पूरित अधर और ओष्ठ बिम्बफलके समान लाल थे। दोनों पैरोंमें रत्नोंकी आभासे युक्त महावर शोभा देता था। उन्होंने अपने एक हाथमें रत्न-जटित दर्पण ले रक्खा था और उनका दूसरा हाथ क्रीडा-कमलसे सुशोभित था। उनके अङ्गोंमें चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुङ्कुमका अङ्गराग लगा हुआ था। पैरोंमें पायजेब बज रहे थे और वे अपने लाल-लाल तलुओंके कारण बड़ी शोभा पा रही थीं। समस्त देवता आदिने जगत्की आदिकारणभूता जगज्जननी पार्वतीदेवीको देखकर भक्तिभावसे मस्तक झुका मेनासहित उन्हें प्रणाम किया। त्रिलोचन शिवने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ कनखियोंसे उन्हें देखा और उनमें सतीकी आकृति देखकर अपनी विरह-वेदनाको त्याग दिया। शिवापर आँखें गड़ाकर भगवान् शिव उस समय सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे हर्षका अनुभव करते हुए गौरीकी ओर देखने लगे। गौरी उनकी आँखोंमें समा गयी थीं।

इधर काली पुरीसे बाहर जाकर अम्बिकादेवीकी पूजा करनेके पश्चात् ब्राह्मणपत्नियोंके साथ पुनः अपने पिताके रमणीय भवनमें लौट आयीं। भगवान् शंकर भी मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंके साथ हिमाचलके बताये हुए अपने नियत स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक गये। वहाँ गिरिराजके द्वारा नाना प्रकारकी सुन्दर समृद्धिसे सम्मानित हुए वे सब लोग सुखपूर्वक ठहर गये और भगवान् शिवकी सेवा करने लगे। (अध्याय ४६)

वरपक्षके आभूषणोंसे विभूषित शिवाकी नीराजना, कन्यादानके समय वरके साथ सब देवताओंका हिमाचलके घरके आँगनमें विराजना तथा वरवधूके द्वारा एक-दूसरेका पूजन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर गिरिश्रेष्ठ हिमवान्‌ने प्रसन्नता और उत्साहके साथ वेदमन्त्रोंद्वारा दुर्गा और शिवका उपस्नान करवाया। तत्पश्चात् गिरिराजकी प्रार्थनासे श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि कौतूहलपूर्वक उनके घरके भीतर गये। वहाँ उन्होंने वैदिक और लौकिक आचारका यथार्थ रीतिसे पालन करके भगवान् शिवके दिये हुए आभूषणोंसे देवी शिवाको अलंकृत किया। सखियों और ब्राह्मणकी पत्नियोंने पहले पार्वतीको स्नान करवाया, फिर सब प्रकारसे वस्त्राभूषणोंद्वारा विभूषित करके उनकी आरती उतारी। तीनों लोकोंकी जननी महाशैलपुत्री सुन्दरी शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान करती हुई वहीं बैठीं। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस अवसरपर दोनों पक्षोंमें महान् आनन्ददायक उत्सव होने लगा। ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे नाना प्रकारका दान दिया गया। अन्य लोगोंको भी वहाँ भाँति-भाँतिके बहुत-से द्रव्य बाँटे गये। विशेष उत्सवके साथ गीत और वाद्य आदिके द्वारा लोगोंका मनोरञ्जन किया गया। तदनन्तर मैं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनि—ये सब-के-सब बड़ी प्रसन्नताके साथ सानन्द उत्सव मनाते हुए भक्तिभावसे शिवाको प्रणामकर शिवके चरणारविन्दोंके चिन्तनपूर्वक हिमाचलकी आज्ञा ले अपने-अपने स्थानपर चले गये।

इसके बाद गर्गने कन्यादानका समय जान हिमाचलसे श्रीशंकर तथा बरातियोंको बुलानेके लिये कहा। फिर तो बाजे बजने लगे। हिमाचलके मन्त्रियोंने जाकर वर और बरातियोंसे शीघ्र पधारनेके लिये प्रार्थना की। वे बोले—'कन्यादानके लिये उचित समय आ गया है। अतः आप लोग शीघ्र मण्डपमें पधारें।' तदनन्तर भगवान् शिवको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके वृषभकी पीठपर बिठाया गया और जय बोलते हुए सब लोग चले। भगवान् शंकरको आगे करके बाजे बजाते और कौतुक करते हुए सब बराती हिमालयके घरको गये। हिमाचलके भेजे हुए ब्राह्मण तथा

श्रेष्ठ पर्वत कौतूहलपूर्वक शम्भुके आगे-आगे चलते थे। भगवान्‌के मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था। सब ओरसे उन्हें चँवर डुलाया जाता था तथा वे महेश्वर चँदोवेके नीचे होकर चलते थे। मैं, विष्णु, इन्द्र और लोकपाल आगे रहकर उत्तम शोभासे सुशोभित हो रहे थे। उस महान् उत्सवके समय शङ्ख, भेरी, पटह, आनक और गोमुख आदि बाजे बारंबार बज रहे थे। इन सबके साथ जगत्‌के एकमात्र जीवन-बन्धु भगवान् शिव परमेश्वरोचित तेजसे सम्पन्न हो यात्रा कर रहे थे। उस समय समस्त देवेश्वर उनकी सेवामें उपस्थित हो बड़े हर्षोल्लासके साथ उनपर फूलोंकी वर्षा करते थे। इस प्रकार पूजित और बहुत-सी स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित हो परमेश्वर शिवने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ पर्वतोंने शिवको वृषभसे उतारा और महान् उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें घरके भीतर ले गये। हिमालयने भी घरमें आये हुए देवताओंसहित महेश्वरको विधिपूर्वक भक्ति-भावसे प्रणाम करके उनकी आरती उतारी। फिर महान् उत्सवपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अन्य समस्त देवताओं और मुनियोंको प्रणाम करके उन सबका समादर किया। श्रीविष्णुसहित महेश्वरको तथा मुख्य-मुख्य देवताओंको पाद्य-अर्घ्य देकर हिमालय उन्हें अपने भवनके भीतर ले गये और आँगनमें रत्नमय सिंहासनोंके ऊपर मुझको, विष्णुको, शंकरजीको तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियोंको बिठाया। उस समय मेनाने अपनी सखियों, ब्राह्मणपत्नियों तथा अन्य पुरन्ध्रियोंके साथ आकर सानन्द आरती उतारी। कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहित महात्मा शंकरके लिये मधुपर्क-पूजन आदि जो-जो आवश्यक कृत्य थे, उन सबको सहर्ष सम्पन्न किया। फिर मेरे कहनेसे पुरोहितने प्रस्तावके अनुरूप उत्तम मङ्गलमय कार्य आरम्भ किया।

इसके बाद हिमालयने अन्तर्वेदीमें जहाँ समस्त आभूषणोंसे विभूषित उनकी कृशाङ्गी कन्या वेदीके ऊपर विराजमान थी, वहाँ मेरे और श्रीविष्णुके साथ महादेवजीको ले गये। तदनन्तर बृहस्पति आदि विद्वान् बड़े उत्साहसे सम्पन्न हो कन्यादानोचित लग्नकी प्रतीक्षा करने लगे। गर्गने पुण्याह-वाचन करते हुए पार्वतीजीकी अञ्जलिमें चावल भरे और शिवजीके ऊपर अक्षत छोड़ा। परम उदार सुमुखी पार्वतीने दही, अक्षत, कुश और जलसे वहाँ रुद्रदेवका पूजन किया। जिनके लिये शिवाने बड़ी भारी तपस्या की थी, उन भगवान् शिवको बड़े प्रेमसे देखती हुई वे वहाँ अत्यन्त शोभा पा रही थीं। फिर मेरे और गर्गादि मुनियोंका कहनेसे शम्भुने लोकाचारवश शिवाका पूजन किया। इस प्रकार परस्पर पूजन करते हुए वे दोनों जगन्मय पार्वती-परमेश्वर वहाँ सुशोभित हो रहे थे। त्रिभुवनकी शोभासे सम्पन्न हो परस्पर देखते हुए उन दोनों दम्पतिकी लक्ष्मी आदि देवियोंने विशेषरूपसे आरती उतारी। (अध्याय ४७)

शिव-पार्वतीके विवाहका आरम्भ, हिमालयके द्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तर, हिमालयका कन्यादान करके शिवको दहेज देना तथा शिवाका अभिषेक

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इसी समय वहाँ गर्गाचार्यसे प्रेरित हो मेनासहित हिमवान्‌ने कन्यादानका कार्य आरम्भ किया। उस समय वस्त्राभूषणोंसे विभूषित महाभागा मेना सोनेका कलश लिये पति हिमवान्‌के दाहिने भागमें बैठीं। तत्पश्चात् पुरोहितसहित हर्षसे भरे हुए शैलराजने पाद्य आदिके द्वारा वरका पूजन करके, वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरण किया। इसके बाद हिमाचलने ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोग तिथि आदिके कीर्तनपूर्वक कन्यादानके संकल्प-वाक्यका प्रयोग बोलें। उसके लिये अवसर आ गया है।' वे सब द्विजश्रेष्ठ कालके ज्ञाता थे। अतः 'तथास्तु' कहकर वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ तिथि आदिका कीर्तन करने लगे। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले परमेश्वर शम्भुके द्वारा मन-ही-मन प्रेरित हो हिमाचलने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'शम्भो! आप अपने गोत्रका परिचय दें। प्रवर, कुल, नाम, वेद और शाखाका प्रतिपादन करें। अब अधिक समय न बितायें।'

हिमाचलकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर सुमुख होकर भी विमुख हो गये। अशोचनीय होकर भी तत्काल शोचनीय अवस्थामें पड़ गये। उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों, यक्षों और सिद्धोंने देखा कि भगवान् शिवके मुखसे कोई उत्तर नहीं निकल रहा है। नारद! यह देखकर तुम हँसने लगे और महेश्वरका मन-ही-मन स्मरण करके गिरिराजसे यों बोले।

नारदने कहा—पर्वतराज! तुम मूढ़ताके वशीभूत होकर कुछ भी नहीं जानते! महेश्वरसे क्या कहना चाहिये और

क्या नहीं, इसका तुम्हें पता नहीं है। वास्तवमें तुम बड़े बहिर्मुख हो। तुमने इस समय साक्षात् हरसे उनका गोत्र पूछा है और उसे बतानेके लिये उन्हें प्रेरित किया है। तुम्हारी यह बात अत्यन्त उपहासजनक है। पर्वतराज! इनके गोत्र, कुल और नामको तो विष्णु और ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी क्या चर्चा है? शैलराज! जिनके एक दिनमें करोड़ों ब्रह्माओंका लय होता है, उन्हीं भगवान् शंकरको तुमने आज कालीके तपोबलसे प्रत्यक्ष देखा है। इनका कोई रूप नहीं है, ये प्रकृतिसे परे निर्गुण, परब्रह्म परमात्मा हैं। निराकार, निर्विकार, मायाधीश एवं परात्पर हैं। गोत्र, कुल और नामसे रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। साथ ही अपने भक्तोंके प्रति बड़े दयालु हैं। भक्तोंकी इच्छासे ही ये निर्गुणसे सगुण हो जाते हैं, निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनामा होकर भी बहुत-से नामवाले हो जाते हैं। ये गोत्रहीन होकर भी उत्तम गोत्रवाले हैं, कुलहीन होकर भी कुलीन हैं, पार्वतीकी तपस्यासे ही ये आज तुम्हारे जामाता बन गये हैं, इसमें संशय नहीं है। गिरिश्रेष्ठ! इन लीलाविहारी परमेश्वरने चराचर जगत्‌को मोहमें डाल रक्खा है। कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह भगवान् शिवको अच्छी तरह नहीं जानता।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! ऐसा कहकर शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले तुझ ज्ञानी देवर्षिने शैलराजको अपनी वाणीसे हर्ष प्रदान करते हुए फिर इस प्रकार उत्तर दिया।

नारद बोले—शिवाको जन्म देनेवाले तात महाशैल! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर अपनी पुत्री शंकरजीके हाथमें दे दो। लीलापूर्वक रूप धारण करनेवाले सगुण महेश्वरका गोत्र और कुल केवल नाद ही है, इस बातको अच्छी तरह समझ लो। शिव नादमय हैं और नाद शिवमय है—यह सर्वथा सच्ची बात है। नाद और शिव—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। शैलेन्द्र! सृष्टिके समय सबसे पहले लीलाके लिये सगुण रूप धारण करनेवाले शिवसे नाद ही प्रकट हुआ था। अतः वह सबसे उत्कृष्ट है। हिमालय! इसीलिये मन-ही-मन सर्वेश्वर शंकरके द्वारा प्रेरित हो मैंने आज अभी वीणा बजाना आरम्भ कर दिया था।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालयको संतोष प्राप्त हुआ और उनके मनका सारा विस्मय जाता रहा। तदनन्तर श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि सब-के-सब विस्मयरहित हो नारदको साधुवाद देने लगे। महेश्वरकी गम्भीरता जानकर सभी विद्वान् आश्चर्यचकित हो बड़ी प्रसन्नताके साथ परस्पर बोले—'अहो! जिनकी आज्ञासे इस विशाल जगत्‌का प्राकट्य हुआ है, जो परात्परतर, आत्म-बोधस्वरूप, स्वतन्त्र लीला करनेवाले तथा उत्तम भावसे ही जाननेयोग्य हैं, उन त्रिलोकनाथ भगवान् शम्भुका आज हम लोगोंने भलीभाँति दर्शन किया है।'

तदनन्तर हिमालयने विधिके द्वारा प्रेरित हो भगवान् शिवको अपनी कन्याका दान कर दिया। कन्यादान करते समय वे बोले—

> **इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर।**
> **भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर॥**

'परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपको देता हूँ। आप इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें। सर्वेश्वर! इस कन्यादानसे आप संतुष्ट हों।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके हिमाचलने अपनी पुत्री त्रिलोकजननी पार्वतीको उन महान् देवता रुद्रके हाथमें दे दिया। इस प्रकार शिवाका हाथ शिवके हाथमें रखकर शैलराज मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे अपने मनोरथके महासागरको पार कर गये थे। परमेश्वर महादेवजीने प्रसन्न हो वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक गिरिजाके करकमलको शीघ्र अपने हाथमें ले लिया। मुने! लोकाचारके पालनकी आवश्यकताको दिखाते हुए उन भगवान् शंकरने पृथ्वीका स्पर्श करके 'कोऽदात्'* इत्यादि रूपसे कामसम्बन्धी मन्त्रका पाठ किया। उस समय वहाँ सब ओर महान् आनन्ददायक महोत्सव होने लगा। पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें तथा स्वर्गमें भी जय-जयकारका शब्द गूँजने लगा। सब लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर साधुवाद देने और नमस्कार करने लगे। गन्धर्वगण प्रेमपूर्वक गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। हिमाचलके नगरके लोग भी अपने मनमें परम आनन्दका अनुभव करने लगे। उस समय महान् उत्सवके साथ परम मङ्गल मनाया जाने लगा। मैं, विष्णु, इन्द्र, देवगण तथा सम्पूर्ण मुनि हर्षसे भर गये। हम सबके मुखार-

* विवाहमें कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर इस कामस्तुतिका पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते। (शु० यजुर्वेद-संहिता ७। ४८)

विन्द प्रसन्नतासे खिल उठे। तदनन्तर शैलराज हिमाचलने अत्यन्त प्रसन्न हो शिवके लिये कन्यादानकी यथोचित साङ्गता प्रदान की। तत्पश्चात् उनके बन्धुजनोंने भक्तिपूर्वक शिवाका पूजन करके नाना विधि-विधानसे भगवान् शिवको उत्तम द्रव्य समर्पित किया। हिमालयने दहेजमें अनेक प्रकारके द्रव्य, रत्न, पात्र, एक लाख सुसज्जित गौएँ, एक लाख सजे-सजाये घोड़े, करोड़ हाथी और उतने ही सुवर्णजटित रथ आदि वस्तुएँ दीं; इस प्रकार परमात्मा शिवको विधिपूर्वक अपनी पुत्री कल्याणमयी पार्वतीका दान करके हिमालय कृतार्थ हो गये। इसके बाद शैलराजने यजुर्वेदकी माध्यंदिनी शाखामें वर्णित स्तोत्रके द्वारा दोनों हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उत्तम वाणीमें परमेश्वर शिवकी स्तुति की। तत्पश्चात् वेदवेत्ता हिमाचलके आज्ञा देनेपर मुनियोंने बड़े उत्साहके साथ शिवाके सिरपर अभिषेक किया और महादेवजीका नाम लेकर उस अभिषेककी विधि पूरी की। मुने! उस समय बड़ा आनन्ददायक महोत्सव हो रहा था।

(अध्याय ४८)

शिवके विवाहका उपसंहार, उनके द्वारा दक्षिणा-वितरण, वर-वधूका कोहबर और वासभवनमें जाना, वहाँ स्त्रियोंका उनसे लोकाचारका पालन कराना, रतिकी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं वर-प्रदान, वर-वधूका एक-दूसरेको मिष्टान्न भोजन कराना और शिवका जनवासेमें लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मेरी आज्ञा पाकर महेश्वरने ब्राह्मणोंद्वारा अग्निकी स्थापना करवायी और पार्वतीको अपने आगे बिठाकर वहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुतियाँ दीं। तात! उस समय कालीके भाई मैनाकने लावाकी अञ्जलि दी और काली तथा शिव दोनोंने आहुति देकर लोकाचारका आश्रय ले प्रसन्नतापूर्वक अग्निदेवकी परिक्रमा की।

नारद! तदनन्तर शिवकी आज्ञासे मुनियोंसहित मैंने शिवा-शिव-विवाहका शेष कार्य प्रसन्नतापूर्वक पूरा किया। फिर उन दोनों दम्पतिके मस्तकका अभिषेक हुआ। ब्राह्मणोंने उन्हें आदरपूर्वक ध्रुवका दर्शन कराया। तत्पश्चात् हृदयालम्भनका कार्य हुआ। फिर बड़े उत्साहके साथ स्वस्तिवाचन किया गया। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवने शिवाके सिरमें सिन्दूर-दान किया। उस समय गिरिराजनन्दिनी उमाकी शोभा अद्भुत और अवर्णनीय हो गयी। फिर ब्राह्मणोंके आदेशसे वे शिव-दम्पति एक आसनपर विराजमान हो भक्तोंके चित्तको आनन्द देनेवाली उत्तम शोभा पाने लगे। मुने! तदनन्तर अद्भुत लीला करनेवाले उन नवदम्पतिने मेरी आज्ञा पाकर अपने स्थानपर आ संस्रवप्राशन[1] किया। इस प्रकार विधिपूर्वक उस वैवाहिक यज्ञके पूर्ण हो जानेपर भगवान् शिवने मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्माको पूर्णपात्र दान किया। फिर शम्भुने आचार्यको गोदान किया। मङ्गलदायक जो बड़े-बड़े दान बताये गये हैं, वे भी सहर्ष सम्पन्न किये। तत्पश्चात् उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् सौ-सौ सुवर्ण मुद्राएँ दीं। करोड़ों रत्न दान किये और अनेक प्रकारके द्रव्य बाँटे। उस समय सब देवता तथा दूसरे-दूसरे चराचर जीव मनमें बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। सब ओर माङ्गलिक शब्द और गीत होने लगे। वाद्योंकी मनोहर ध्वनि सबके आनन्दको बढ़ाने लगी। इसके बाद श्रीविष्णु, मैं, देवता, ऋषि तथा अन्य सब लोग गिरिराजसे आज्ञा ले बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने-अपने डेरेमें चले आये। उस समय हिमालयनगरकी स्त्रियाँ आनन्दमग्न हो शिव और पार्वतीको लेकर कोहबरमें गयीं।

---

१. अग्निमें घीकी आहुति देकर स्रुवामें अवशिष्ट घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डालनेकी विधि है। प्रत्येक आहुतिमें ऐसा किया जाता है। प्रोक्षणीपात्रमें डाले हुए घीको ही 'संस्रव' कहते हैं। अन्तमें यजमान उसे पीता है। इसीको 'संस्रवप्राशन' कहा गया है।

वहाँ उन सबने आदरपूर्वक वर-वधूसे लोकाचारका सम्पादन कराया। उस समय सब ओर परमानन्ददायक महान् उत्साह छा रहा था। तदनन्तर वे स्त्रियाँ उन लोककल्याणकारी दम्पतिको साथ ले परम दिव्य वासभवन (कौतुकागार) में गयीं और वहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक लोकाचारका सम्पादन किया। इसके बाद गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने समीप आकर मङ्गल-कृत्य करके उन नवदम्पतीको केलिगृहमें पहुँचाया और जय-ध्वनि करती हुई उनके गँठबन्धनकी गाँठ खोलने आदिका कार्य सम्पन्न किया।

उस समय उन नूतन दम्पतिको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ शीघ्रतापूर्वक वहाँ आयीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, पृथिवी, शतरूपा, संज्ञा तथा रति। ये देवाङ्गनाएँ तथा मनोहारिणी देवकन्या, नागकन्या और मुनि-कन्याएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। वहाँ जितनी स्त्रियाँ उपस्थित थीं, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन्होंने शिवसे नाना प्रकारकी विनोदपूर्ण बातें कहीं। तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए महेश्वरने अपनी पत्नीके साथ मिष्टान्न भोजन और आचमन करके कपूर डाला हुआ पान खाया।

इसी अवसरपर अनुकूल समय जान प्रसन्न हुई रतिने दीनवत्सल भगवान् शंकरसे कहा—'भगवन्! पार्वतीका पाणिग्रहण करके आपने अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है। बताइये, मेरे प्राणनाथको, जो सर्वथा स्वार्थरहित थे, आपने क्यों भस्म कर डाला? अब यहाँ मेरे पतिको जीवित कीजिये और अपने अन्तःकरणमें कामसम्बन्धी व्यापारको जगाइये। आपको और मुझको जो समानरूपसे वियोगजनित संताप प्राप्त हुआ है, उसे दूर कीजिये। महेश्वर! आपके इस विवाहोत्सवमें सब लोग सुखी हुए हैं। केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुःखमें डूबी हुई हूँ। देव! शंकर! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये। दीनबन्धो! परम प्रभो! अपनी कही हुई बातको सत्य कीजिये। चराचर प्राणियों-सहित तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कौन है, जो मेरे दुःखका नाश करनेमें समर्थ हो? ऐसा जानकर आप मुझपर दया कीजिये। दीनोंपर दया करनेवाले नाथ! सबको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने इस विवाहोत्सवमें मुझे भी उत्सव-सम्पन्न बनाइये। मेरे प्राणनाथके जीवित होनेपर ही अपनी प्रिया पार्वतीके साथ आपका सुन्दर विहार परिपूर्ण होगा। इसमें संशय नहीं है। सर्वेश्वर! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; क्योंकि आप ही परमेश्वर हैं। यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ? सर्वेश्वर! आप शीघ्र मेरे पतिको जीवित कीजिये।'



ऐसा कहकर रतिने गाँठमें बँधा हुआ कामदेवके शरीरका भस्म शम्भुको दे दिया और उनके सामने 'हा नाथ! हा नाथ!' कहकर रोने लगी। रतिका रोदन सुनकर सरस्वती आदि सभी देवियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वाणीमें बोलीं—'प्रभो! आपका नाम भक्तवत्सल है। आप दीनबन्धु और दयाके सागर हैं। अतः कामको जीवन-दान दीजिये और रतिको उत्साहित कीजिये। आपको नमस्कार है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उन सबकी यह बात सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणासागर प्रभुने तत्काल ही रतिपर कृपा की। भगवान् शूलपाणिकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही पहले-जैसे रूप, वेष और चिह्नसे युक्त अद्भुत मूर्तिधारी सुन्दर कामदेव उस भस्मसे प्रकट हो गया। अपने पतिको वैसे ही रूप, आकृति, मन्द मुस्कान और धनुष-बाणसे

युक्त देख रतिने महेश्वरको प्रणाम किया। वह कृतार्थ हो गयी। उसने प्राणनाथकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिवका अपने जीवित पतिके साथ हाथ जोड़कर बारंबार स्तवन किया। पत्नीसहित कामकी की हुई स्तुतिको सुनकर दयार्द्र-हृदय भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले।

शंकरने कहा--मनोभव! पत्नीसहित तुमने जो स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। स्वयं प्रकट होनेवाले काम! तुम वर माँगो। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु दूँगा।

शम्भुका यह वचन सुनकर कामदेव महान् आनन्दमें निमग्न हो गया और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर गद्गद वाणीमें बोला।

कामदेवने कहा--देवदेव महादेव! करुणासागर प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे लिये आनन्ददायक होइये। प्रभो! पूर्वकालमें मैंने जो अपराध किया था, उसे क्षमा कीजिये। स्वजनोंके प्रति परम प्रेम और अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये।

कामदेवका यह कथन सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो बोले--'बहुत अच्छा।' इसके बाद उन करुणानिधिने हँसकर कहा--'महामते कामदेव! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अपने मनसे भयको निकाल दो। भगवान् विष्णुके पास जाओ और इस घरसे बाहर ही रहो।'

तदनन्तर काम शिवजीको प्रणाम करके बाहर आ गया। विष्णु आदि देवताओंने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद भगवान् शंकरने उस वासभवनमें पार्वतीको बायें बिठाकर मिष्टान्न भोजन कराया और पार्वतीने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका मुँह मीठा किया। तदनन्तर वहाँ लोकाचारका पालन करते हुए आवश्यक कृत्य करके मेना और हिमवान्‌की आज्ञा ले भगवान् शिव जनवासेमें चले गये। मुने! उस समय महान् उत्सव हुआ और वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी। लोग चारों प्रकारके[1] बाजे बजाने लगे। जनवासेमें अपने स्थानपर पहुँचकर शिवने लोकाचारवश मुनियोंको प्रणाम किया। श्रीहरिको और मुझे भी मस्तक झुकाया। फिर सब देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय वहाँ जय-जयकार, नमस्कार तथा समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाली शुभदायिनी वेदध्वनि भी होने लगी। इसके बाद मैंने, भगवान् विष्णुने तथा इन्द्र, ऋषि और सिद्ध आदिने भी शंकरजीकी स्तुति की। गिरिजानायक महेश्वरकी स्तुति करके वे विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी यथोचित सेवामें लग गये। तत्पश्चात् लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाले महेश्वर शम्भुने उन सबको सम्मान दिया। फिर उन परमेश्वरकी आज्ञा पाकर वे विष्णु आदि देवता अत्यन्त प्रसन्न हो अपने-अपने विश्राम-स्थानको गये।

(अध्याय ४९-५१)

रातको परम सुन्दर सजे हुए वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासेमें आगमन

ब्रह्माजी कहते हैं—तात! तदनन्तर भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ और चतुर गिरिराज हिमवान्‌ने बारातियोंको भोजन करानेके लिये अपने आँगनको सुन्दर ढंगसे सजाया तथा अपने पुत्रों एवं अन्यान्य पर्वतोंको भेजकर शिवसहित सब देवताओंको भोजनके लिये बुलाया। जब सब लोग आ गये, तब उनको बड़े आदरके साथ उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंका भोजन कराया। भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धो, कुल्ला करके विष्णु आदि सब देवता विश्रामके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने डेरेमें गये। मेनाकी आज्ञासे साध्वी स्त्रियोंने भगवान् शिवसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना करके उन्हें महान् उत्सवसे परिपूर्ण सुन्दर वासभवनमें ठहराया। मेनाके दिये हुए मनोहर रत्नसिंहासनपर बैठकर आनन्दित हुए शम्भुने उस

१. अमरकोशमें जो चार प्रकारके बाजे बताये गये हैं, संसारके सभी प्राचीन अथवा अर्वाचीन वाद्य उन्हींके अन्तर्गत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन। तत वह बाजा है, जिसमें तारका विस्तार हो—जैसे वीणा, सितार आदि। जिसे चमड़ेसे मढ़कर कसा गया हो, वह 'आनद्ध' कहलाता है—जैसे ढोल, मृदंग, नगारा आदि। जिसमें छेद हो और उसमें हवा भरकर स्वर निकाला जाता हो, उसे 'सुषिर' कहते हैं—जैसे वंशी, शङ्ख, बिगुल, हारमोनियम आदि। काँसेके झाँझ आदिको 'घन' कहते हैं।

वासमन्दिरका निरीक्षण किया। वह भवन प्रज्वलित हुए सैकड़ों रत्नमय प्रदीपोंके कारण अद्भुत प्रभासे उद्भासित हो रहा था। वहाँ रत्नमय पात्र तथा रत्नोंके ही कलश रक्खे गये थे। मोती और मणियोंसे सारा भवन जगमगा रहा था। रत्नमय दर्पणकी शोभासे सम्पन्न तथा श्वेत चवँरोंसे अलंकृत था। मुक्तामणियोंकी सुन्दर मालाओं (बंदनवारों) से आवेष्टित हुआ वह वासभवन बड़ा समृद्धिशाली दिखायी देता था। उसकी कहीं उपमा नहीं थी। वह महादिव्य, अतिविचित्र, परम मनोहर तथा मनको आह्लाद प्रदान करनेवाला था। उसके फर्शपर नाना प्रकारकी रचनाएँ की गयी थीं—बेल-बूटे निकाले गये थे। शिवजीके दिये हुए वरका ही महान् एवं अनुपम प्रभाव दिखाता हुआ वह शोभाशाली भवन शिवलोकके नामसे प्रसिद्ध किया गया था। नाना प्रकारके सुगन्धित श्रेष्ठ द्रव्योंसे सुवासित तथा सुन्दर प्रकाशसे परिपूर्ण था। वहाँ चन्दन और अगरकी सम्मिलित गन्ध फैल रही थी। उस भवनमें फूलोंकी सेज बिछी हुई थी। विश्वकर्माका बनाया हुआ वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे सुसज्जित था। श्रेष्ठ रत्नोंकी सारभूत मणियोंसे निर्मित सुन्दर हारोंद्वारा उस वासगृहको अलंकृत किया गया था। उसमें विश्वकर्माद्वारा निर्मित कृत्रिम वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, कैलास, इन्द्रभवन तथा शिवलोक आदि दीख रहे थे। ऐसे आश्चर्यजनक शोभासे सम्पन्न उस वासभवनको देखकर गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए भगवान् महेश्वर बहुत संतुष्ट हुए। वहाँ अति रमणीय रत्नजटित उत्तम पलंगपर परमेश्वर शिव बड़ी प्रसन्नतासे लीलापूर्वक सोये। इधर हिमालयने बड़ी प्रसन्नतासे अपने समस्त भाई-बन्धुओं एवं दूसरे लोगोंको भी भोजन कराया तथा जो कार्य शेष रह गये थे, उन्हें भी पूर्ण किया।

शैलराज हिमालय इस प्रकार आवश्यक कार्यमें लगे हुए थे और प्रियतम परमेश्वर शिव शयन कर रहे थे। इतनेमें ही सारी रात बीत गयी और प्रातःकाल हो गया। प्रभातकाल होनेपर धैर्यवान् और उत्साही पुरुष नाना प्रकारके बाजे बजाने लगे। उस समय श्रीविष्णु आदि सब देवता सानन्द उठे और अपने इष्टदेव देवेश्वर शिवका स्मरण करके वहाँसे कैलासको चलनेके लिये जल्दी-जल्दी तैयार हो गये। उन्होंने अपने वाहन भी सुसज्जित कर लिये। तत्पश्चात् धर्मको शिवके समीप भेजा। योगशक्तिसे सम्पन्न धर्म नारायणकी आज्ञासे वासगृहमें पहुँचकर योगीश्वर शंकरसे समयोचित बात बोले—'प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर! उठिये, उठिये; आपका कल्याण हो। आप हमारे लिये भी कल्याणकारी होइये; जनवासेमें चलिये और वहाँ सब देवताओंको कृतार्थ कीजिये।'

धर्मकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वर हँसे। उन्होंने धर्मको कृपादृष्टिसे देखा और शय्या त्याग दी। इसके बाद धर्मसे हँसते हुए कहा—'तुम आगे चलो। मैं भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें संशय नहीं है।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर धर्म जनवासेमें गये। तत्पश्चात् शम्भु भी स्वयं वहाँ जानेको उद्यत हुए। यह जानकर महान् उत्सव मनाती हुई स्त्रियाँ वहाँ आयीं और भगवान् शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करती हुई मङ्गलगान करने लगीं। तदनन्तर लोकाचारका पालन करते हुए शम्भु प्रातःकालिक कृत्य करके मेना और हिमालयकी आज्ञा ले जनवासेको गये। मुने! उस समय बड़ा भारी उत्सव हुआ। वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी और लोग चारों प्रकारके बाजे बजाने लगे। अपने स्थानपर आकर शम्भुने लोकाचारवश मुनियोंको, विष्णुको और मुझको प्रणाम किया। फिर देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय जय-जयकार, नमस्कार तथा वेदमन्त्रोच्चारणकी मङ्गलदायिनी ध्वनि होने लगी। इससे सब ओर कोलाहल छा गया।

(अध्याय ५२)

चतुर्थीकर्म, बारातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बारातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बारातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर विष्णु आदि देवता तथा ऋषि कैलास लौटनेका विचार करने लगे। तब हिमालयने जनवासेमें आकर सबको भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवको आमन्त्रित करके हिमाचल अपने घरको गये और नाना प्रकारके विधानसे भोजनोत्सवकी तैयारी करने लगे। उन्होंने प्रसन्नता और उत्कण्ठाके

साथ भोजनके लिये परिवारसहित भगवान् शिवको यथोचित रीतिसे अपने घर बुलवाया। शम्भुके, विष्णुके, मेरे, अन्य सब देवताओंके, मुनियोंके तथा वहाँ आये हुए अन्य सब लोगोंके भी चरणोंको बड़े आदरके साथ धोकर उन सबको गिरिराजने मण्डपके भीतर सुन्दर आसनोंपर बिठाया। फिर अपने भाई-बन्धुओंको साथ लेकर उनके सहयोगसे उन सब अतिथियोंको नाना प्रकारके सरस पदार्थोंद्वारा पूर्णतया तृप्त किया। मेरे, विष्णुके तथा शम्भुके साथ सब लोगोंने अच्छी तरह भोजन किया। नारद! विधिवत् भोजन और आचमन करके तृप्त और प्रसन्न हुए सब लोग हिमालयसे आज्ञा ले अपने-अपने डेरेपर गये। मुने! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजने विधिवत् दान, मान और आदर आदिके द्वारा उन सबका सत्कार किया। चौथा दिन आनेपर शुद्धतापूर्वक सविधि चतुर्थी कर्म हुआ, जिसके बिना विवाह-यज्ञ अधूरा ही रह जाता है। उस समय नाना प्रकारका उत्सव हुआ। साधुवाद और जय-जयकारकी ध्वनि हुई। बहुत-से सुन्दर दान दिये गये। भाँति-भाँतिके सुन्दर गान और नृत्य हुए। पाँचवें दिन सब देवताओंने बड़े हर्ष और अत्यन्त प्रेमके साथ शैलराजको सूचित किया कि 'अब हमलोग यहाँसे जाना चाहते हैं। आप आज्ञा प्रदान करें।' उनकी यह बात सुन गिरिराज हिमवान् हाथ जोड़कर बोले—'देवगण! आपलोग कुछ दिन और ठहरें तथा मुझपर कृपा करें।' यों कहकर उन्होंने स्नेहके साथ उन देवताओंको, भगवान् शिवको, विष्णुको, मुझको तथा अन्य लोगोंको बहुत दिनोंतक ठहराया और प्रतिदिन विशेष आदर-सत्कार किया।

इस प्रकार देवताओंके वहाँ रहते हुए बहुत दिन बीत गये, तब उन सबने गिरिराजके पास सप्तर्षियोंको भेजा। सप्तर्षियोंने हिमवान् और मेनासे समयोचित बात कहकर उन्हें समझाया, परम शिवतत्त्वका वर्णन किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना की। मुने! उनके समझानेसे गिरिराजने बारातको विदा करना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् शम्भु यात्राके लिये उद्यत हो देवता आदिके साथ शैलराजके पास आये। देवेश्वर शिव देवताओंसहित कैलासकी यात्राके लिये जब उद्यत हुए, उस समय मेना उच्चस्वरसे रोने लगीं और उन कृपानिधानसे बोलीं।

मेनाने कहा—कृपानिधे! कृपा करके मेरी शिवाका भलीभाँति लालन-पालन कीजियेगा। आप आशुतोष हैं। पार्वतीके सहस्रों अपराधोंको भी क्षमा कीजियेगा। मेरी बच्ची जन्म-जन्ममें आपके चरणारविन्दोंकी भक्त रही है और रहेगी। उसे सोते और जागते समय भी अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी सुध नहीं रहती। मृत्युंजय! आपके प्रति भक्तिभावकी बातें सुनते ही यह हर्षके आँसू बहाती हुई पुलकित हो उठती है और आपकी निन्दा सुनकर ऐसा मौन साध लेती है, मानो मर ही गयी हो!

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर मेनकाने अपनी बेटी शिवको सौंप दी और उन दोनोंके सामने ही उच्चस्वरसे रोती हुई वह मूर्च्छित हो गयी। तब महादेवजीने मेनाको समझाकर सचेत किया और उनसे विदा ले देवताओंके साथ महान् उत्सवपूर्वक यात्रा की। वे सब देवता अपने स्वामी शिव तथा सेवकगणोंके साथ चुपचाप कैलास पर्वतकी ओर प्रस्थित हुए। वे मन-ही-मन शिवका चिन्तन कर रहे थे। हिमाचलपुरीके बाहरी बगीचेमें आकर शिवसहित सब देवता हर्ष और उत्साहके साथ ठहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। मुनीश्वर! इस प्रकार देवताओंसहित शिवकी श्रेष्ठ यात्राका वर्णन किया गया। अब शिवाकी यात्राका वर्णन सुनो, जो विरह-व्यथा और आनन्द दोनोंसे संयुक्त है। (अध्याय ५३)

मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पत्नीका पार्वतीको पतिव्रतधर्मका उपदेश देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर सप्तर्षियोंने हिमालयसे कहा—'गिरिराज! अब आप अपनी पुत्री पार्वती देवीकी यात्राका उचित प्रबन्ध करें।' मुनीश्वर! यह सुनकर पार्वतीके भावी विरहका अनुभव करके गिरिराज कुछ कालतक अधिक प्रेमके कारण विषादमें डूबे रह गये। कुछ देर बाद सचेत हो शैलराजने 'तथास्तु' कहकर मेनाको संदेश दिया। मुने! हिमवान्‌का संदेश पाकर हर्ष और शोकके वशीभूत हुई मेना पार्वतीको बिदा करनेके लिये उद्यत हुई। शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने विधिपूर्वक वैदिक एवं लौकिक कुलाचारका पालन किया और उस समय नाना प्रकारके

उत्सव मनाये। फिर उन्होंने नाना प्रकारके रत्नजटित सुन्दर वस्त्रों और बारह आभूषणोंद्वारा राजोचित श्रृङ्गार करके पार्वतीको विभूषित किया। तत्पश्चात् मेनाके मनोभावको जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रत्यकी शिक्षा दी।

ब्राह्मणपत्नी बोली—गिरिराजकिशोरी! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। यह धर्मको बढ़ानेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा श्रोताओंको भी सुखकी प्राप्ति करानेवाला है। संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं। वही विशेषरूपसे पूजनीय है। पतिव्रता सब लोगोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है। शिवे! जो पतिको परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उसकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें कल्याणमयी गतिको पाती है।* सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिली, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा—ये तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ साध्वी कही गयी हैं। यहाँ विस्तारभयसे उनका नाम नहीं लिया गया। वे अपने पातिव्रत्यके बलसे ही सब लोगोंकी पूजनीया तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं मुनीश्वरोंकी भी माननीया हो गयी हैं। इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये। वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। श्रुतियों और स्मृतियोंमें पतिव्रता-धर्मको महान् बताया गया है। इसको जैसा श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्री अपने प्रिय पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करे। शिवे! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ी ही रहना चाहिये। शुद्धबुद्धिवाली साध्वी स्त्री प्रतिदिन अपने पतिके सो जानेपर सोये और उसके जागनेसे पहले ही जग जाय। वह छल-कपट छोड़कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे। शिवे! साध्वी स्त्रीको चाहिये कि जबतक वस्त्राभूषणोंसे विभूषित न हो ले तबतक वह अपनेको पतिकी दृष्टिके सम्मुख न लाये। यदि पति किसी कार्यसे परदेशमें गया हो तो उन दिनों उसे कदापि श्रृङ्गार नहीं करना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी पतिका नाम न ले। पतिके कटुवचन कहनेपर भी वह बदलेमें कड़ी बात न कहे। पतिके बुलानेपर वह घरके सारे कार्य छोड़कर तुरंत उसके पास चली जाय और हाथ जोड़ प्रेमसे मस्तक झुकाकर पूछे—'नाथ! किसलिये इस दासीको बुलाया है? मुझे सेवाके लिये आदेश देकर अपनी कृपासे अनुगृहीत कीजिये।' फिर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रसन्न हृदयसे पालन करे। वह घरके दरवाजेपर देरतक खड़ी न रहे। दूसरेके घर न जाय। कोई गोपनीय बात जानकर हर एकके सामने उसे प्रकाशित न करे। पतिके बिना कहे ही उसके लिये पूजन-सामग्री स्वयं जुटा दे तथा उनके हित-साधनके यथोचित अवसरकी प्रतीक्षा करती रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना कहीं तीर्थ-यात्राके लिये भी न जाय। लोगोंकी भीड़से भरी हुई सभा या मेले आदिके उत्सवोंका देखना वह दूरसे ही त्याग दे। जिस नारीको तीर्थयात्राका फल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पतिका चरणोदक पीना चाहिये। उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र हैं, इसमें संशय नहीं है*।

पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको परम प्रिय भोजन मानकर ग्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे महाप्रसाद मानकर शिरोधार्य करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवकवर्ग, गौ तथा भिक्षुसमुदायके लिये अन्नका भाग दिये बिना कदापि भोजन न करे। पातिव्रत-धर्ममें तत्पर रहनेवाली गृहदेवीको चाहिये कि वह घरकी सामग्रीको संयत एवं सुरक्षित रक्खे। गृहकार्यमें कुशल हो, सदा प्रसन्न रहे और खर्चकी ओरसे हाथ खींचे रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना उपवास-व्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उसका कोई फल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकगामिनी होती है। पति सुखपूर्वक बैठा हो या इच्छानुसार क्रीडाविनोद अथवा मनोरञ्जनमें लगा हो, उस अवस्थामें कोई आन्तरिक कार्य आ पड़े तो भी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको कदापि न उठाये। पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गतिमें पड़ा हो, रोगी हो, बूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुखी हो, किसी भी

---

* धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी॥
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ९-१०)

* तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत्।
तस्मिन् सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। २५)

दशामें नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लङ्घन न करे। रजस्वला होनेपर वह तीन रात्रितक पतिको अपना मुँह न दिखाये अर्थात् उससे अलग रहे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी कोई बात भी वह पतिके कानोंमें न पड़ने दे। अच्छी तरह स्नान करनेके पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका मुँह कदापि न देखे अथवा मन-ही-मन पतिका चिन्तन करके सूर्यका दर्शन करे। पतिकी आयु बढ़नेकी अभिलाषा रखनेवाली पतिव्रता नारी हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, माङ्गलिक आभूषण आदि; केशोंका सँवारना, चोटी गूँथना तथा हाथ-कानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे। धोबिन, छिनाल या कुलटा, संन्यासिनी और भाग्यहीना स्त्रियोंको वह कभी अपनी सखी न बनाये। पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीका वह कभी आदर न करे। कहीं अकेली न खड़ी हो। कभी नंगी होकर न नहाये। सती स्त्री ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँत और द्वारके चौखटके नीचेवाली लकड़ीपर कभी न बैठे। मैथुनकालके सिवा और किसी समयमें वह पतिके सामने धृष्टता न करे। जिस-जिस वस्तुमें पतिकी रुचि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम करे। पतिव्रता देवी सदा पतिका हित चाहनेवाली होती है। वह पतिके हर्षमें हर्ष माने। पतिके मुखपर विषादकी छाया देख स्वयं भी विषादमें डूब जाय तथा वह प्रियतम पतिके प्रति ऐसा बर्ताव करे, जिससे वह उन्हें प्यारी लगे। पुण्यात्मा पतिव्रता स्त्री सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके लिये एक-सी रहे। अपने मनमें कभी विकार न आने दे और सदा धैर्य धारण किये रहे। घी, नमक, तेल आदिके समाप्त हो जानेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे सहसा यह न कहे कि अमुक वस्तु नहीं है। वह पतिको कष्ट या चिन्तामें न डाले। देवेश्वरि! पतिव्रता नारीके लिये एकमात्र पति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे भी अधिक माना गया है। उसके लिये अपना पति शिवरूप ही है*। जो पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिके नियमका पालन करती है, वह पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है। जो स्त्री पतिके कुछ कहनेपर क्रोधपूर्वक कठोर उत्तर देती है, वह गाँवमें कुतिया और निर्जन वनमें सियारिन होती है। नारी पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे, दुष्ट पुरुषके निकट न जाय और पतिसे कभी कातर वचन न बोले। किसीकी निन्दा न करे। कलहको दूरसे ही त्याग दे। गुरुजनोंके निकट न तो उच्च स्वरसे बोले और न हँसे। जो बाहरसे पतिको आते देख तुरंत अन्न, जल, भोज्य वस्तु, पान और वस्त्र आदिसे उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती है, उनसे मीठे वचन बोलती है तथा प्रियतमके खेदको दूर करनेवाले अन्यान्य उपायोंसे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उसने मानो तीनों लोकोंको तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया। पिता, भाई और पुत्र परिमित सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है। अतः नारीको सदा अपने पतिका पूजन—आदर-सत्कार करना चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है; इसलिये सबको छोड़कर एकमात्र पतिकी ही आराधना करनी चाहिये*।

जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको त्यागकर एकान्तमें विचरती है (या व्यभिचार करती है), वह वृक्षके खोखलेमें शयन करनेवाली क्रूर उलूकी होती है। जो पराये पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती है, वह ऐंचातानी देखनेवाली होती है। जो पतिको छोड़कर अकेले मिठाई खाती है, वह गाँवमें सूअरी होती है अथवा बकरी होकर अपनी ही विष्ठा खाती है। जो पतिको तू कहकर बोलती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ईर्ष्या रखती है, वह दुर्भाग्यवती होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषपर दृष्टि डालती है, वह कानी, टेढ़े मुँहवाली तथा कुरूपा होती है। जैसे निर्जीव शरीर तत्काल अपवित्र हो जाता है, उसी तरह पतिहीना नारी भलीभाँति स्नान करनेपर भी सदा अपवित्र ही रहती है। लोकमें वह माता धन्य है, वह जन्मदाता पिता धन्य है तथा वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता देवी वास करती है। पतिव्रताके पुण्यसे पिता, माता और पतिके कुलोंकी

* विधेर्विष्णोर्हराच्चापि पतिरेकोऽधिको मतः।
पतिव्रताया देवेशि स्वपतिः शिव एव च॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ३३)

* भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ५१)

तीन-तीन पीढ़ियोंके लोग स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं*। जो दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भङ्ग कर देती हैं, वे अपने माता-पिता और पति तीनोंके कुलोंको नीचे गिराती हैं तथा इसलोक और परलोकमें भी दुःख भोगती हैं। पतिव्रताका पैर जहाँ-जहाँ पृथ्वीका स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँकी भूमि पापहारिणी तथा परम पावन बन जाती है।† भगवान् सूर्य, चन्द्रमा तथा वायुदेव भी अपने-आपको पवित्र करनेके लिये ही पतिव्रताका स्पर्श करते हैं और किसी दृष्टिसे नहीं। जल भी सदा पतिव्रताका स्पर्श करना चाहता है और उसका स्पर्श करके वह अनुभव करता है कि आज मेरी जडताका नाश हो गया तथा आज मैं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया। भार्या ही गृहस्थ-आश्रमकी जड़ है, भार्या ही सुखका मूल है, भार्यासे ही धर्मके फलकी प्राप्ति होती है तथा भार्या ही संतानकी वृद्धिमें कारण है।‡

क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली स्त्रियाँ नहीं हैं? परंतु पतिव्रता स्त्री तो विश्वनाथ शिवके प्रति भक्ति होनेसे ही प्राप्त होती है। भार्यासे इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पायी जा सकती है। भार्याहीन पुरुष देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ करनेका अधिकारी नहीं होता। वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। दूसरी स्त्री तो पुरुषको उसी तरह अपना ग्रास (भोग्य) बनाती है, जैसे जरावस्था एवं राक्षसी। जैसे गङ्गास्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर सब कुछ पावन हो जाता है§। पतिको ही इष्टदेव माननेवाली सती नारी और गङ्गामें कोई भेद नहीं है। पतिव्रता और उसके पतिदेव उमा और महेश्वरके समान हैं, अतः विद्वान् मनुष्य उन दोनोंका पूजन करे। पति प्रणव है और नारी वेदकी ऋचा; पति तप है और स्त्री क्षमा; नारी सत्कर्म है और पति उसका फल। शिवे! सती नारी और उसके पति—दोनों दम्पती धन्य हैं*।



गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मैंने तुमसे पतिव्रताधर्मका वर्णन किया है। अब तुम सावधान हो आज मुझसे प्रसन्नतापूर्वक पतिव्रताके भेदोंका वर्णन सुनो। देवि! पतिव्रता नारियाँ उत्तमा आदि भेदसे चार प्रकारकी बतायी गयी हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंका सारा पाप हर लेती हैं। उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और अतिनिकृष्टा—ये पतिव्रताके चार भेद हैं। अब मैं इनके लक्षण बताता हूँ। ध्यान देकर सुनो। भद्रे! जिसका मन सदा स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है, दूसरे किसी परपुरुषको नहीं, वह स्त्री उत्तमा या उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता कही गयी है। शैलजे!

---

* सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता॥
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुञ्जते॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ५८-५९)

† पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्।
तत्र तत्र भवेत् सा हि पापहन्त्री सुपावनी॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६१)

‡ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च।
भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या संतानवृद्धये॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६४)

§ यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ६८)

* तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः।
फलं पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ७०)

जो दूसरे पुरुषको उत्तम बुद्धिसे पिता, भाई एवं पुत्रके समान देखती है, उसे मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। पार्वती ! जो मनसे अपने धर्मका विचार करके व्यभिचार नहीं करती, सदाचारमें ही स्थित रहती है, उसे निकृष्ट अथवा निम्नश्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। जो पतिके भयसे तथा कुलमें कलङ्क लगनेके डरसे व्यभिचारसे बचनेका प्रयत्न करती है, उसे पूर्वकालके विद्वानोंने अति-निकृष्ट अथवा निम्नतम कोटिकी पतिव्रता बताया है। शिवे ! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ समस्त लोकोंका पाप नाश करने-वाली और उन्हें पवित्र बनानेवाली हैं। अत्रिकी स्त्री अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंकी प्रार्थनासे पातिव्रत्यके प्रभावका उपभोग करके वाराहके शापसे मरे हुए एक ब्राह्मणको जीवित कर दिया था। शैलकुमारी शिवे ! ऐसा जानकर तुम्हें नित्य प्रसन्नतापूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिसेवन सदा समस्त अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। तुम साक्षात् जगदम्बा महेश्वरी हो और तुम्हारे पति साक्षात् भगवान् शिव हैं। तुम्हारा तो चिन्तनमात्र करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँगी। देवि ! यद्यपि तुम्हारे आगे यह सब कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि आज लोकाचारका आश्रय ले मैंने तुम्हें सती-धर्मका उपदेश दिया है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण-पत्नी शिवादेवीको मस्तक झुका चुप हो गयी। इस उपदेशको सुनकर शंकरप्रिया पार्वती देवीको बड़ा हर्ष हुआ।

(अध्याय ५४)

शिव-पार्वती तथा उनकी बारातकी बिदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और पार्वतीखण्डके श्रवणकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको पतिव्रतधर्मकी शिक्षा देनेके पश्चात् मेनाको बुलाकर कहा—'महारानीजी ! अब अपनी पुत्रीकी यात्रा कराइये—इसे विदा कीजिये।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे प्रेमके वशीभूत हो गयीं। फिर धैर्य धारण करके उन्होंने कालीको बुलाया और उसके वियोगके भयसे व्याकुल हो वे बेटीको बारंबार गलेसे लगाकर अत्यन्त उच्चस्वरसे रोने लगीं। फिर पार्वती भी करुणाजनक बात कहती हुई जोर-जोरसे रो पड़ीं। मेना और शिवा दोनों ही विरह-शोकसे पीड़ित हो मूर्च्छित हो गयीं। पार्वतीके रोनेसे देवपत्नियाँ भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। सारी स्त्रियाँ वहाँ रोने लगीं। वे सब-की-सब अचेत-सी हो गयीं। उस यात्राके समय परम प्रभु साक्षात् योगीश्वर शिव भी रो पड़े; फिर दूसरा कौन चुप रह सकता था ? इसी समय अपने समस्त पुत्रों, मन्त्रियों और उत्तम ब्राह्मणोंके साथ हिमालय शीघ्र वहाँ आ पहुँचे और मोहवश अपनी बच्चीको हृदयसे लगाकर रोने लगे। 'बेटी ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली जा रही हो ?' ऐसा कहकर सारे जगत्को सूना मानते हुए वे बारंबार विलाप करने लगे। तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरोहितने अन्य ब्राह्मणोंके सहयोगसे कृपापूर्वक अध्यात्मविद्याका उपदेश देते हुए सबको सुखद रीतिसे समझाया। पार्वतीने भक्तिभावसे माता-पिता तथा गुरुको प्रणाम किया। वे महामाया होकर भी लोकाचारवश बार-बार रो उठती थीं। पार्वतीके रोनेसे ही सब स्त्रियाँ रोने लगती थीं। माता मेना तो बहुत रोयीं। भौजाइयाँ भी रोने लगीं। यही दशा भाइयोंकी थी। शिवाकी माँ, भाभियाँ तथा अन्य युवतियाँ बार-बार रोदन करने लगीं। भाई और पिता भी प्रेम और सौहार्दवश रोये बिना न रह सके। उस समय ब्राह्मणोंने मिलकर सबको आदरपूर्वक समझाया और यह सूचित किया कि यात्राके लिये यही सबसे उत्तम तथा सुखद लग्न है।

तब हिमालय और मेनाने विवेकपूर्वक धैर्य धारण करके शिवाके बैठनेके लिये पालकी मँगवायी; ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने शिवाको उसपर चढ़ाया और सबने मिलकर आशीर्वाद दिया। पिता-माता और ब्राह्मणोंने भी अपनी शुभ कामना प्रकट की। मेना और हिमालयने पार्वतीको ऐसे-ऐसे सामान दिये, जो महारानीके योग्य थे। नाना प्रकारके द्रव्योंकी शुभ राशि भेंट की, जो दूसरोंके लिये परम दुर्लभ थी। शिवाने समस्त गुरुजनोंको, माता-पिताको, पुरोहित और ब्राह्मणोंको तथा भौजाइयों और दूसरी स्त्रियोंको प्रणाम करके यात्रा की। पुत्रोंसहित बुद्धिमान् हिमाचल भी स्नेहके वशीभूत हो पीछे-पीछे गये और उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ देवताओंसहित

भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ सब लोग बड़े प्रेम और आनन्दसे परस्पर मिले। उन सबने भगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए वे पुरीको लौट गये।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा—'देवेश्वरि! तुम सदासे ही मेरी प्राणप्रिया हो। तुम्हें लीलापूर्वक इस बातकी याद दिला रहा हूँ। तुम्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है। अतः मेरे और अपने नित्य सम्बन्धका यदि तुम्हें स्मरण हो तो बताओ।' अपने प्राणनाथ महेश्वरकी यह बात सुनकर शंकरकी नित्य प्रिया पार्वती मुस्कराती हुई बोलीं—'प्राणेश्वर! मुझे सब बातोंका स्मरण है, किंतु इस समय आप चुप रहिये और इस अवसरके अनुरूप जो कार्य हो, उसीको शीघ्र पूर्ण कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधा-धाराओंके समान मधुर वचनको सुनकर लोकाचार-परायण भगवान् विश्वनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको भाँति-भाँतिकी मनोहर भोज्य वस्तुएँ खिलायीं। इसी तरह अपने विवाहमें पधारे हुए दूसरे लोगोंको भी भगवान् शंकरने प्रेम-पूर्वक सुमधुर रससे युक्त नाना प्रकारका अन्न भोजन कराया। भोजन करनेके पश्चात् उन सब देवताओंने नाना रत्नोंसे विभूषित हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंके साथ आकर प्रभु चन्द्रशेखरको प्रणाम किया। फिर प्रिय वचनोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति एवं परिक्रमा करके शिव-विवाहकी प्रशंसा करते हुए वे सब लोग अपने-अपने धामको चले गये। मुने! साक्षात् भगवान् शिवने लोकाचारवश भगवान् विष्णुको और मुझको भी प्रणाम किया—ठीक उसी तरह, जैसे वामनरूपधारी श्रीहरिने महर्षि कश्यपको नमस्कार किया था। तब मैंने और श्रीविष्णुने शिवको हृदयसे लगाकर उनको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्रीहरिने उन्हें परब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी उत्तम स्तुति की। इसके बाद मेरे-सहित भगवान् विष्णु शिवसे विदा ले शिवा और शिवको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़ उनके विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने उत्तम धामको गये। भगवान् शिव भी पार्वतीके साथ सानन्द विहार करते हुए अपने निवासभूत कैलासपर्वतपर रहने लगे। समस्त शिवगणोंको इस विवाहसे बड़ा सुख मिला। वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवा और शिवकी आराधना करने लगे।

तात! इस प्रकार मैंने परम मङ्गलमय शिव-विवाहका वर्णन किया। यह शोकनाशक, आनन्ददायक तथा धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। जो पुरुष भगवान् शिव और शिवामें मन लगाकर पवित्र हो प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता अथवा नियमपूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह शिवलोक प्राप्त कर लेता है। यह अद्भुत आख्यान कहा गया, जो मङ्गलका आवासस्थान है। यह सम्पूर्ण विघ्नोंको शान्त करके समस्त रोगोंका नाश करनेवाला है। इसके द्वारा स्वर्ग, यश, आयु तथा पुत्र और पौत्रोंकी प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण कामनाओं-को पूर्ण करता, इस लोकमें भोग देता और परलोकमें मोक्ष प्रदान करता है। इस शुभ प्रसङ्गको सुननेसे अपमृत्युका शमन होता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। यह समस्त दुःस्वप्नोंका नाशक तथा बुद्धि एवं विवेक आदिका साधक है। अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिवसम्बन्धी सभी उत्सवोंमें प्रसन्नताके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये। यह भगवान् शिवको संतोष प्रदान करनेवाला है। विशेषतः देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय तथा शिवसम्बन्धी सभी कार्योंके प्रसङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ करना चाहिये अथवा पवित्र हो शिव-पार्वतीके इस कल्याणकारी चरित्रका श्रवण करना चाहिये। ऐसा करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ५५)

॥ रुद्रसंहिताका पार्वतीखण्ड सम्पूर्ण ॥

रुद्रसंहिता, चतुर्थ (कुमार) खण्ड

देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड़-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षतामें देवसेनाका प्रस्थान, मही-सागर-संगमपर तारकासुरका आना और दोनों सेनाओंमें मुठभेड़, वीरभद्रका तारकके साथ घोर संग्राम, पुनः श्रीहरि और तारकमें भयानक युद्ध

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

श्रीनारदजीने पूछा—देवताओंका मङ्गल करनेवाले देव! परमात्मा शिव तो सर्वसमर्थ हैं। आत्माराम होकर भी उन्होंने जिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पार्वतीके साथ विवाह किया था, उनके वह पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ? तथा तारकासुरका वध कैसे हुआ? ब्रह्मन्! मुझपर कृपा करके यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कथाप्रसङ्ग सुनाकर कुमारके गङ्गासे उत्पन्न होने तथा कृत्तिका आदि छः स्त्रियोंके द्वारा उनके पाले जाने, उन छहोंकी संतुष्टिके लिये उनके छः मुख धारण करने और कृत्तिकाओंके द्वारा पाले जानेके कारण उनका 'कार्तिकेय' नाम होनेकी बात कही। तदनन्तर उनके शंकर-गिरिजाकी सेवामें लाये जानेकी कथा सुनायी। फिर ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरने कुमारको गोदमें बैठाकर अत्यन्त स्नेह किया। देवताओंने उन्हें नाना प्रकारके पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति और अस्त्र-शस्त्रादि प्रदान किये। पार्वतीके हृदयमें प्रेम समाता नहीं था, उन्होंने हर्षपूर्वक मुसकराकर कुमारको परमोत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया, साथ ही चिरंजीवी भी बना दिया। लक्ष्मीने दिव्य सम्पत् तथा एक विशाल एवं मनोहर हार अर्पित किया। सावित्रीने प्रसन्न होकर सारी सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहाँ महोत्सव मनाया गया। सभीके मन प्रसन्न थे। विशेषतः शिव और पार्वतीके आनन्दका पार नहीं था। इसी बीच देवताओंने भगवान् शंकरसे कहा—प्रभो! यह तारकासुर कुमारके हाथों ही मारा जानेवाला है, इसीलिये ही यह (पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि) उत्तम चरित घटित हुआ है। अतः हमलोगोंके सुखार्थ उसका काम तमाम करनेके हेतु कुमारको आज्ञा दीजिये। हमलोग आज ही अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर तारकको मारनेके लिये रण-यात्रा करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर भगवान् शंकरका हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारकका वध करनेके लिये अपने पुत्र कुमारको देवताओंको सौंप दिया। फिर तो शिवजीकी आज्ञा मिल जानेपर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर गुहको आगे करके तुरंत ही उस पर्वतसे चल दिये। उस समय श्रीहरि आदि देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास था (कि ये अवश्य तारकका वध कर डालेंगे); वे भगवान् शंकरके तेजसे भावित हो कुमारके सेनापतित्वमें तारकका संहार करनेके लिये (रणक्षेत्रमें) आये। उधर महाबली तारकने जब देवताओंके इस युद्धोद्योगको सुना, तब वह भी एक विशाल सेनाके साथ देवोंसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही चल पड़ा। उसकी उस विशाल वाहिनीको आती देख देवताओंको परम विस्मय हुआ। फिर तो वे बलपूर्वक बारंबार सिंहनाद करने लगे। उसी समय तुरंत ही भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंके प्रति आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—देवगण! तुमलोग जो कुमारके अधिनायकत्वमें युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हो, इससे तुम संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होओगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! उस आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंका उत्साह बढ़ गया। उनका भय जाता रहा

और वे वीरोचित गर्जना करने लगे । उनकी युद्ध-कामना बलवती हो उठी और वे सब-के-सब कुमारको अग्रणी बनाकर बड़ी उतावलीके साथ मही-सागर-संगमको गये । उधर बहु-संख्यक असुरोंसे घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे । उस असुरके आगमन-कालमें प्रलयकालीन मेघोंके समान गर्जना करनेवाली रणभेरियाँ तथा अन्यान्य कर्कश शब्द करनेवाले रणवाद्य बज रहे थे । उस समय तारकासुरके साथ आनेवाले दैत्य ताल ठोंकते हुए गर्जना कर रहे थे । उनके पदाघातसे पृथ्वी काँप उठती थी । उस अत्यन्त भयंकर कोलाहलको सुन-कर भी सभी देवता निर्भय ही बने रहे । वे एक साथ मिलकर तारकासुरसे लोहा लेनेके लिये डटकर खड़े हो गये । उस समय देवराज इन्द्र कुमारको गजराजपर बैठाकर सबसे आगे खड़े हुए । वे लोकपालोंसे घिरे हुए थे और उनके साथ देवताओंकी महती सेना थी । तत्पश्चात् कुमारने उस गजराजको तो महेन्द्र-को ही दे दिया और वे स्वयं एक ऐसे विमानपर आरूढ़ हुए; जो परमाश्चर्यजनक तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित था । उस समय उस विमानपर सवार होनेसे सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकर-पुत्र कुमार उत्कृष्ट शोभासे संयुक्त होकर सुशोभित हो रहे थे । उनपर परम प्रकाशमान चँवर डुलाये जा रहे थे । इसी बीच बलाभिमानी एवं महावीर देवता और दैत्य क्रोधसे विह्वल होकर परस्पर युद्ध करने लगे । उस समय देवताओं और दैत्योंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ । क्षणभरमें ही सारी रणभूमि रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप्त हो गयी ।

तब महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़ा । उस रणदुर्मद तारक-को युद्धकी कामनासे आगे बढ़ते देखकर इन्द्र आदि देवता तुरंत ही उसके सामने आये । फिर तो दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल होने लगा । तत्पश्चात् देवों तथा असुरोंका विनाश करनेवाला ऐसा द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसे देखकर वीरलोग हर्षोत्फुल्ल हो गये और कायरोंके मनमें भय समा गया । इसी समय वीरभद्र कुपित होकर महाबली प्रमथगणोंके साथ वीरा-भिमानी तारकके समीप आ पहुँचे । वे बलवान् गणनायक भगवान् शिवके कोपसे उत्पन्न हुए थे, अतः समस्त देवताओं-को पीछे करके युद्धकी अभिलाषासे तारकके सम्मुख डट गये । उस समय प्रमथगणों तथा सारे असुरोंके मनमें परमोल्लास था, अतः वे उस महासमरमें परस्पर गुत्थमगुत्थ होकर जूझने लगे । तदनन्तर वीरभद्रसे तारकका भयानक युद्ध हुआ । इसी बीच असुरोंकी सेना रणसे विमुख हो भाग चली । इस प्रकार अपनी सेनाको तितर-बितर हुई देख उसका नायक तारकासुर क्रोधसे भर गया और दस हजार भुजाएँ धारण करके सिंहपर सवार हो देवगणोंको मार डालनेके लिये वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा । वह युद्धके मुहानेपर देवों तथा प्रमथगणोंको मार-मारकर गिराने लगा । तब प्रमथगणोंके नेता महाबली वीरभद्र उसके उस कर्मको देखकर उसका वध करनेके लिये अत्यन्त कुपित हो उठे । फिर तो उन्होंने भगवान् शिवके चरण-कमल-का ध्यान करके एक ऐसा श्रेष्ठ त्रिशूल हाथमें लिया, जिसके तेजसे सारी दिशाएँ और आकाश प्रकाशित हो उठे । इसी अवसरपर महान् कौतुक प्रदर्शन करनेवाले स्वामिकार्तिकने तुरंत ही वीरबाहुद्वारा कहलाकर उस युद्धको रोक दिया । तब स्वामीकी आज्ञासे वीरभद्र उस युद्धसे हट गये । वह देखकर असुर-सेनापति महावीर तारक कुपित हो उठा । वह युद्धकुशल तथा नाना प्रकारके अस्त्रोंका जानकार था, अतः देवताओंको ललकार-ललकारकर उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा । उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ असुरराज तारकने ऐसा महान् कर्म किया कि सारे देवता मिलकर भी उसका सामना न कर सके । उन भयभीत देवताओंको यों पिटते हुए देखकर भगवान् अच्युतको क्रोध हो आया और वे शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये । उन भगवान् श्रीहरिने अपने आयुध सुदर्शनचक्र और शार्ङ्गधनुषको लेकर युद्धस्थलमें महादैत्य तारकपर आक्रमण किया । मुने ! तदनन्तर सबके देखते-देखते श्रीहरि और तारकासुरमें अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी महायुद्ध छिड़ गया । इसी बीच अच्युतने कुपित होकर महान् सिंहनाद किया और धधकती हुई ज्वालाओंके-से प्रकाशवाले अपने चक्रको उठाया । फिर तो श्रीहरिने उसी चक्रसे दैत्यराज तारकपर प्रहार किया । उसकी चोटसे अत्यन्त व्यथित होकर वह असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा । परंतु वह असुरनायक तारक अत्यन्त बलवान् था, अतः तुरत ही उठकर उस दैत्यराजने अपनी शक्तिसे चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये । मुने ! भगवान् विष्णु और तारकासुर दोनों बलवान् थे और दोनोंमें अगाध बल था, अतः युद्धस्थलमें वे परस्पर जूझने लगे ।

(अध्याय १–८)

ब्रह्माजीकी आज्ञासे कुमारका युद्धके लिये जाना, तारकके साथ उनका भीषण संग्राम और उनके द्वारा तारकका वध, तत्पश्चात् देवोंद्वारा कुमारका अभिनन्दन और स्तवन, कुमारका उन्हें वरदान देकर कैलाशपर जा शिव-पार्वतीके पास निवास करना

तब ब्रह्माजीने कहा—शंकर-सुवन स्वामी कार्तिक ! तुम तो देवाधिदेव हो । पार्वती-सुत ! विष्णु और तारकासुरका यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है, क्योंकि विष्णुके हाथों इस तारककी मृत्यु नहीं होगी । यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त बलवान् हो गया है । यह मैं बिल्कुल सत्य बात कह रहा हूँ । पार्वती-नन्दन ! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापीको मारनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये महाप्रभो ! तुम्हें मेरे कथनानुसार ही करना चाहिये । परंतप ! तुम शीघ्र ही उस दैत्यका वध करनेके लिये तैयार हो जाओ; क्योंकि पार्वती-पुत्र ! तारकका संहार करनेके निमित्त ही तुम शंकरसे उत्पन्न हुए हो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों मेरा कथन सुनकर शंकरनन्दन कुमार कार्तिकेय ठठाकर हँस पड़े और प्रसन्नता-पूर्वक बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा ।' तब महान् ऐश्वर्यशाली शंकरसुवन कुमार तारकासुरके वधका निश्चय करके विमानसे उतर पड़े और पैदल हो गये । जिस समय महाबली शिव-पुत्र कुमार अपनी अत्यन्त चमकीली शक्तिको,



जो लपटोंसे दमकती हुई एक बड़ी उल्का-सी जान पड़ती थी, हाथमें लेकर पैदल ही दौड़ रहे थे, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उनके मनमें तनिक भी व्याकुलता नहीं थी । वे परम प्रचण्ड और अप्रमेय बलशाली थे । उन षण्मुखको अपनी ओर आते देखकर तारक सुरश्रेष्ठोंसे बोला—'क्या शत्रुओंका संहार करनेवाला कुमार यही है ? मैं अकेला वीर इसके साथ युद्ध करूँगा और मैं ही समस्त वीरों, प्रमथगणों, लोकपालों तथा श्रीहरि जिनके नायक हैं, उन देवोंको भी मार डालूँगा ।'

तदनन्तर देवताओंको दुर्वचन कहकर वह असुर तारक भीषण युद्ध करने लगा । उस समय बड़ा विकट संग्राम हुआ । तब शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले कुमारने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके तारकके वधका विचार किया । फिर तो महातेजस्वी एवं महाबली कुमार रोषावेशमें आकर गर्जना करने लगे और बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये । उस समय समस्त देवताओंने जय-जयकारका शब्द किया और देवर्षियोंने इष्ट वाणीद्वारा उनकी स्तुति की । तब तारक और कुमारका संग्राम प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त दुस्सह, महान् भयंकर और सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था । कुमार और तारक दोनों ही शक्ति-युद्धमें परम प्रवीण थे, अतः अत्यन्त रोषावेषमें वे परस्पर एक दूसरेपर प्रहार करने लगे । परम पराक्रमी वे दोनों नाना प्रकारके पैंतरे बदलते हुए गर्जना कर रहे थे और अनेक प्रकारके दाव-पेंचसे एक दूसरेपर आघात कर रहे थे । उस समय देवता, गन्धर्व और किंनर—सभी चुपचाप खड़े होकर वह दृश्य देखते रहे ! उन्हें परम विस्मय हुआ—यहाँतक कि वायुका चलना बंद हो गया, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी । इसी अवसरपर हिमालय आदि पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमारकी रक्षाके लिये वहाँ आये । तब उन सभी पर्वतोंको भयभीत देखकर शंकर एवं गिरिजाके पुत्र कुमार उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले ।

कुमारने कहा—'महाभाग पर्वतो ! तुमलोग खेद मत

करो। तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं आज तुम सब लोगोंकी आँखोंके सामने ही इस पापीका काम तमाम कर दूँगा।' यों उन पर्वतों तथा देवगणोंको ढाढ़स बँधाकर कुमारने गिरिजा और शम्भुको प्रणाम किया तथा अपनी कान्तिमती शक्तिको हाथमें लिया। शम्भुपुत्र कुमार महाबली तथा महान् ऐश्वर्यशाली तो थे ही। जब उन्होंने तारकका वध करनेकी इच्छासे शक्ति हाथमें ली, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हुई। तदनन्तर शंकरजीके तेजसे सम्पन्न कुमारने उस शक्तिसे तारकासुरपर, जो समस्त लोकोंको कष्ट देनेवाला था, प्रहार किया। उस शक्तिके आघातसे तारकासुरके सभी अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और सम्पूर्ण असुरगणोंका अधिपति वह महावीर सहसा धराशायी हो गया। मुने! सबके देखते-देखते वहीं कुमारद्वारा मारे गये तारकके प्राणपखेरू उड़ गये। उस उत्कृष्ट वीर तारकको महासमरमें प्राणरहित होकर गिरा हुआ देखकर वीरवर कुमारने पुनः उसपर वार नहीं किया। उस महाबली दैत्यराज तारकके मारे जानेपर देवताओंने बहुत-से असुरोंको मौतके घाट उतार दिया। उस युद्धमें कुछ असुरोंने भयभीत होकर हाथ जोड़ लिये, कुछके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और हजारों दैत्य मृत्युके अतिथि बन गये। कुछ शरणार्थी दैत्य अञ्जलि बाँधकर 'पाहि-पाहि—रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों पुकारते हुए कुमारके शरणापन्न हो गये। कुछ मार डाले गये और कुछ मैदान छोड़कर भाग गये। सहस्रों दैत्य जीवनकी आशासे भागकर पातालमें घुस गये। उन सबकी आशाएँ भग्न हो गयी थीं और मुखपर दीनता छायी हुई थी।

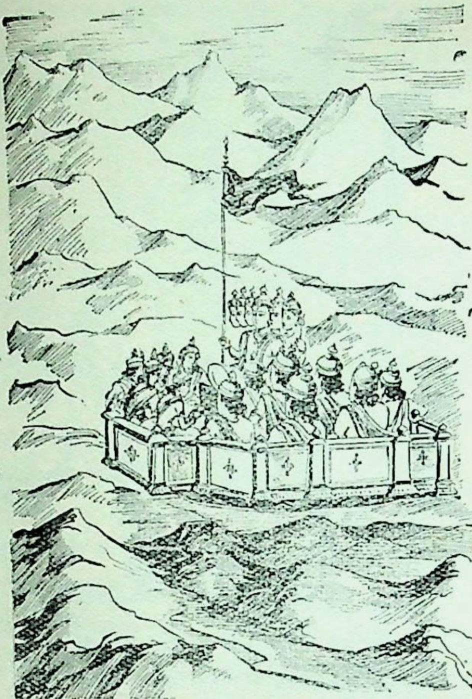
मुनीश्वर! इस प्रकार वह सारी दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। देवगणोंके भयसे कोई भी वहाँ ठहर न सका। उस दुरात्मा तारकके मारे जानेपर सभी लोक निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि सभी देवता आनन्दमग्न हो गये। यों कुमारको विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकीके समस्त प्राणियोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार पाकर प्रसन्नतासे भर गये और पार्वतीजीके साथ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पधारे। तब जिनके हृदयमें स्नेह समाता नहीं था, वे पार्वतीजी परम प्रेमपूर्वक सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदमें लेकर लाड़-प्यार करने लगीं। उसी अवसरपर अपने पुत्रोंसे घिरे हुए हिमालयने बन्धु-बान्धवों तथा अनुयायियोंके साथ आकर शम्भु, पार्वती और गुहका स्तवन किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवगण, मुनि, सिद्ध और चारणोंने शिवनन्दन कुमार, शम्भु और परम प्रसन्न हुई पार्वतीकी स्तुति की। उस समय उपदेवोंने बहुत बड़ी पुष्प-वर्षा की। सभी प्रकारके बाजे बजने लगे। विशेषरूपसे जयकार और नमस्कारके शब्द बारंबार उच्चस्वरसे गूँजने लगे। उस समय वहाँ एक महान् विजयोत्सव मनाया गया, जिसमें कीर्तनकी विशेषता थी और वह स्थान गाने-बजानेके शब्द तथा अधिकाधिक ब्रह्मघोषसे व्याप्त था। मुने! समस्त देवगणोंने प्रसन्नतापूर्वक गा-बजाकर तथा हाथ जोड़कर भगवान् जगन्नाथकी स्तुति की। तत्पश्चात् सबसे प्रशंसित तथा अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने निवासस्थान कैलास पर्वतको चले गये।

इधर तारकको मारा गया देखकर सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियोंके चेहरेपर हँसी खेलने लगी। वे भक्तिपूर्वक शंकर-सुवन कुमारकी स्तुति करने लगे—देव! तुम दानवश्रेष्ठ तारकका हनन करनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है! शंकर-नन्दन! तुम बाणासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरके विनाशक हो। तुम्हारा स्वरूप परम पवित्र है, तुम्हें हमारा अभिवादन है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब विष्णु आदि देवताओंने इस प्रकार कुमारका स्तवन किया, तब उन प्रभुने सभी देवोंको क्रमशः नया-नया वर प्रदान किया। तत्पश्चात् पर्वतोंको स्तुति करते देखकर वे शंकर-तनय परम प्रसन्न हुए और उन्हें वर देते हुए बोले।

स्कन्दने कहा—भूधरो! तुम सभी पर्वत तपस्वियोंद्वारा पूजनीय तथा कर्मठ और ज्ञानियोंके लिये सेवनीय होओगे! ये जो मेरे मातामह (नाना) पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, ये महाभाग आजसे तपस्वियोंके लिये फलदाता होंगे।

तब देवता बोले—कुमार! यों असुरराज तारकको मारकर तथा देवोंको वर प्रदान करके तुमने हम सबको तथा चराचर जगत्‌को सुखी कर दिया। अब तुम्हें परम प्रसन्नतापूर्वक अपने माता-पिता पार्वती और शंकरका दर्शन करनेके लिये शिवके निवासभूत कैलासपर चलना चाहिये।



ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर सब देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर कुमार स्कन्द शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये। उस समय शिव-शिवाने बड़ा आनन्द मनाया। देवताओंने शिवजीकी स्तुति की। शिवजीने उन्हें वरदान तथा अभयदान देकर विदा किया। मुने ! उस अवसरपर देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे शिव, पार्वती तथा शंकरनन्दन कुमारके रमणीय यशका बखान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इधर परमेश्वर शिव भी शिवा, कुमार तथा गणोंके साथ आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर निवास करने लगे। मुने ! इस प्रकार जो शिव-भक्तिसे ओतप्रोत, सुखदायक एवं दिव्य है, कुमारका वह सारा चरित्र मैंने तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय ९—१२)

शिवाका अपनी मैलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजी-के रोके जानेपर उनका शिवगणोंके साथ भयंकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरश्छेदन, कुपित हुई शिवाका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, उनके द्वारा पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

सूतजी कहते हैं—तारकारि कुमारके उत्तम एवं अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुनः प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीसे पूछा।

नारदजी बोले--देवदेव ! आप तो शिवसम्बन्धी ज्ञानके अथाह सागर हैं। प्रजानाथ ! मैंने स्वामी कार्तिकके सद्वृत्तान्त-को, जो अमृतसे भी उत्तम है, सुन लिया। अब गणेशका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। आप उनका जन्म-वृत्तान्त तथा दिव्य चरित, जो सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलस्वरूप है, वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—महामुनि नारदका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीका मन हर्षसे गद्गद हो गया। वे शिवजीका स्मरण करके बोले।

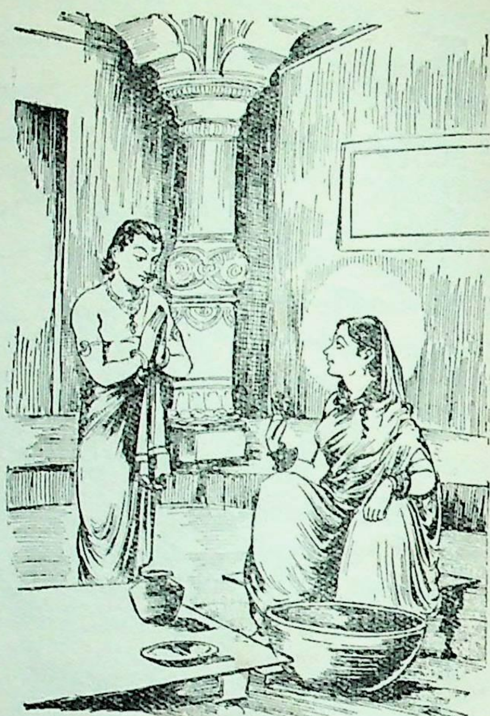
ब्रह्माजीने कहा—नारद ! पहले जो मैंने विधिपूर्वक गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन किया था कि शनिकी दृष्टि पड़नेसे गणेशका मस्तक कट गया था, तब उसपर हाथीका मुख लगा दिया गया था, वह कल्पान्तरकी कथा है ! अब श्वेतकल्पमें घटित हुई गणेशकी जन्म-कथाका वर्णन करता हूँ, जिसमें कृपालु शंकरने ही उनका मस्तक काट लिया था। मुने ! इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् शम्भु कल्याणकारी, सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी हैं। वे ही

सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है। मुनिश्रेष्ठ ! अब प्रस्तुत विषयको आदरपूर्वक श्रवण करो।

एक समय पार्वतीजीकी जया-विजया नामवाली सखियाँ उनके पास आकर विचार करने लगीं—'सखी ! सभी गण रुद्रके ही हैं। नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी शिवके ही आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं। जो असंख्य प्रमथगण हैं, उनमें भी हमारा कोई नहीं है। वे सभी शिवाज्ञापरायण होकर द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि उनसे हमारा मन नहीं मिलता; अतः पापरहिते ! आपको भी हमारे लिये एक गणकी रचना करनी चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब सखियोंने पार्वतीजीसे ऐसा सुन्दर वचन कहा, तब उन्होंने उसे हितकारक माना और वैसा करनेका विचार भी किया। तदनन्तर किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तब सदाशिव नन्दीको डरा-धमकाकर घरके भीतर चले आये। शंकरजीको आते देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी पार्वती उठकर खड़ी हो गयीं। उस समय उनको बड़ी लज्जा आयी। वे आश्चर्यचकित हो गयीं। उस अवसरपर उन्होंने सखियोंके वचनको हितकारक तथा सुखप्रद माना। उस समय ऐसी घटना घटित होनेपर परमाया परमेश्वरी शिवपत्नी पार्वतीने मनमें ऐसा विचार किया कि मेरा कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाला हो, उससे तनिक भी विचलित होनेवाला न हो। यों विचारकर पार्वती देवीने अपने शरीरकी मैलसे एक ऐसे चेतन पुरुषका निर्माण किया, जो सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग सुन्दर एवं दोषरहित थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-सा उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।' पार्वतीके ऐसा कहनेपर वह पुरुष उन्हें नमस्कार करके बोला।

गणेशने कहा—'माँ ! आज आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है ? मैं आपके कथनानुसार उसे पूर्ण करूँगा।' गणेशके यों पूछनेपर पार्वतीजी अपने पुत्रको उत्तर देते हुए बोलीं।



शिवाने कहा—तात ! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो। अतः तुम मेरी बात सुनो। आजसे तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। सत्पुत्र ! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी हठपूर्वक मेरे महलके भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वह कहींसे भी आये, कोई भी हो। बेटा ! यह मैंने तुमसे बिल्कुल सत्य बात कही है।

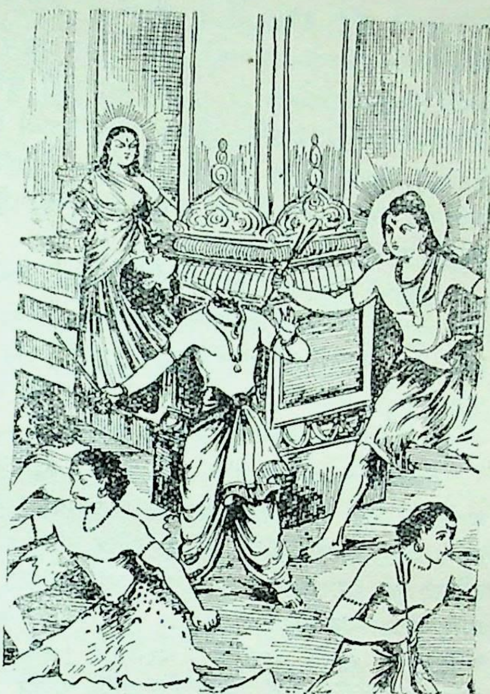
ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर पार्वतीने गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे दी। उस समय उनके सुन्दर रूपको निहारकर पार्वती हर्षमग्न हो गयीं। उन्होंने परम प्रेमपूर्वक अपने पुत्रका मुख चूमा और कृपापरवश हो छातीसे लगा लिया। फिर दण्डधारी गणराजको अपने द्वारपर स्थापित कर दिया। बेटा नारद ! तदनन्तर पार्वतीनन्दन महावीर गणेश पार्वतीकी हितकामनासे हाथमें छड़ी लेकर गृह-द्वारपर पहरा देने लगे। उधर शिवा अपने पुत्र गणेशको अपने दरवाजेपर नियुक्त करके स्वयं सखियोंके साथ स्नान करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ ! इसी समय भगवान् शिव, जो परम कौतुकी तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ रचनेमें निपुण हैं, द्वारपर आ पहुँचे। गणेश उन पार्वतीपतिको पहचानते तो थे नहीं, अतः बोल उठे—'देव ! माताकी आज्ञाके बिना तुम अभी भीतर न जाओ। माता स्नान करने बैठ गयी हैं। तुम कहाँ जाना

चाहते हो ? इस समय यहाँसे हट जाओ।' यों कहकर गणेशने उन्हें रोकनेके लिये छड़ी हाथमें ले ली। उन्हें ऐसा करते देख शिवजी बोले—'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है? दुर्बुद्धे! क्या तू मुझे नहीं जानता ? मैं शिवके अतिरिक्त और कोई नहीं हूँ।'

फिर महेश्वरके गण उसे समझाकर हटानेके लिये वहाँ आये और गणेशसे बोले—सुनो, हम मुख्य शिवगण ही द्वारपाल हैं और सर्वव्यापी भगवान् शंकरकी आज्ञासे तुम्हें हटानेके लिये यहाँ आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हमलोगोंने मारा नहीं है, अन्यथा तुम कबके मारे गये होते। अब कुशल इसीमें है कि तुम स्वतः ही दूर हट जाओ। क्यों व्यर्थ अपनी मृत्यु बुला रहे हो ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यों कहे जानेपर भी गिरिजानन्दन गणेश निर्भय ही बने रहे। उन्होंने शिवगणोंको फटकारा और दरवाजेको नहीं छोड़ा। तब उन सभी शिवगणोंने शिवजीके पास जाकर सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। मुने! उनसे सब बातें सुनकर संसारके गतिस्वरूप अद्भुत लीलाविहारी महेश्वर अपने उन गणोंको डाँटकर कहने लगे।

महेश्वरने कहा—'गणो! यह कौन है, जो इतना उच्छृङ्खल होकर शत्रुकी भाँति बक रहा है ? इस नवीन द्वारपालको दूर भगा दो। तुमलोग नपुंसककी तरह खड़े होकर उसका वृत्तान्त मुझे क्यों सुना रहे हो।' विचित्र लीला रचनेवाले अपने स्वामी शंकरके यों कहनेपर वे गण पुनः वहीं लौट आये। तदनन्तर गणेशद्वारा पुनः रोके जानेपर शिवजीने गणोंको आज्ञा दी कि 'तुम पता लगाओ, यह कौन है और क्यों ऐसा कर रहा है ?' गणोंने पता लगाकर बताया कि 'वे श्रीगिरिजाके पुत्र हैं तथा द्वारपालके रूपमें बैठे हैं।' तब लीलारूप शंकरने विचित्र लीला करनी चाही तथा अपने गणोंका गर्व भी गलित करना चाहा। इसलिये गणोंको तथा देवताओंको बुलाकर गणेशजीसे भीषण युद्ध करवाया। पर वे कोई भी गणेशको पराजित न कर सके। तब स्वयं शूलपाणि महेश्वर आये। गणेशजीने माताके चरणोंका स्मरण किया, तब शक्तिने उन्हें बल प्रदान कर दिया। सभी देवता शिवजीके पक्षमें आ गये, घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा स्वयं शूलपाणि महेश्वरने आकर त्रिशूल-



से गणेशजीका सिर काट दिया। जब यह समाचार पार्वतीजीको मिला, तब वे क्रुद्ध हो गयीं और बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न करके उन्होंने बिना विचारे उन्हें प्रलय करनेकी आज्ञा दे दी। फिर तो शक्तियोंके द्वारा प्रलय मचायी जाने लगी। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा किये डालता था। उसे देखकर वे सभी शिवगण भयभीत हो गये और भागकर दूर जा खड़े हुए।

मुने! इसी समय तुम दिव्यदर्शन नारद वहाँ पहुँचे। तुम्हारा वहाँ आनेका अभिप्राय देवगणोंको सुख पहुँचाना था। तब तुमने मुझ देवताओंसहित शंकरको प्रणाम करके कहा कि इस विषयमें सबको मिलकर विचार करना चाहिये। तब वे सभी देवता तुझ महात्माके साथ सलाह करने लगे कि इस दुःखका शमन कैसे हो सकता है। फिर उन्होंने यही निश्चय किया कि जबतक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी तबतक सुख नहीं प्राप्त हो सकेगा, अब इस विषयमें और विचार करना व्यर्थ है। ऐसी धारणा करके तुम्हारे सहित सभी देवता और ऋषि भगवती शिवाके निकट गये और क्रोधकी शान्तिके लिये उन्हें प्रसन्न करने लगे। उन्होंने प्रेमपूर्वक उन्हें प्रसन्न करते हुए अनेकों स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके बारंबार उनके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर देवगणकी आज्ञासे ऋषि बोले।

देवर्षियोंने कहा—जगदम्बे! तुम्हें नमस्कार है।

शिवपत्नि ! तुम्हें प्रणाम है । चण्डिके ! तुम्हें हमारा अभिवादन प्राप्त हो । कल्याणि तुम्हें बारंबार प्रणाम है । अम्बे ! तुम्हीं आदिशक्ति हो । तुम्हीं सदा सारी सृष्टिकी निर्माणकर्त्री, पालिकाशक्ति और संहार करनेवाली हो । देवेशि ! तुम्हारे कोपसे सारी त्रिलोकी विकल हो रही है, अतः अब प्रसन्न हो जाओ और क्रोधको शान्त करो । देवि ! हमलोग तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यों नारद आदि ऋषियों-द्वारा स्तुति किये जानेपर भी परादेवी पार्वतीने उनकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे ही देखा, किंतु कुछ कहा नहीं । तब उन ऋषियोंने पुनः उनके चरणकमलोंमें सिर झुकाया और भक्ति-पूर्वक हाथ जोड़कर पार्वतीजीसे निवेदन किया ।

ऋषियोंने कहा—देवि ! अभी संहार होना चाहता है; अतः क्षमा करो, क्षमा करो । अम्बिके ! तुम्हारे स्वामी शिव भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात करो । हमलोग, ये ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब तुम्हारे ही हैं और व्याकुल होकर अञ्जलि बाँधे तुम्हारे सामने खड़े हैं । परमेश्वरि ! इन सबका अपराध क्षमा करो । शिवे ! अब इन्हें शान्ति प्रदान करो ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! सभी देवर्षि यों कहकर अत्यन्त दीनभावसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर चण्डिकाके सम्मुख खड़े हो गये । उनका ऐसा कथन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं । उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया । तब वे ऋषियोंसे बोलीं ।

देवीने कहा—ऋषियो ! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह तुमलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा । जब तुमलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर दोगे तभी लोकमें शान्त हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! पार्वतीके यों कहनेपर तुम सभी ऋषियोंने उन देवताओंके पास आकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उसे सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंके चेहरे-पर उदासी छा गयी । वे शंकरजीके पास गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके सारा समाचार निवेदन कर दिया । देवताओंका कथन सुनकर शिवजीने कहा—'ठीक है, जिस प्रकार सारी त्रिलोकीको सुख मिल सके वही करना चाहिये । अतः अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञा-का पालन करनेवाले उन देवताओंने वह सारा कार्य सम्पन्न किया । उन्होंने उस शिशु-शरीरको धो-पोंछकर विधिवत् उसकी पूजा की । फिर वे उत्तर दिशाकी ओर गये । वहाँ उन्हें पहले-पहल एक दाँतवाला एक हाथी मिला । उन्होंने उसका सिर लाकर उस शरीरपर जोड़ दिया । हाथीके उस सिरको संयुक्त कर देनेके पश्चात् सभी देवताओंने भगवान् शिव आदिको प्रणाम करके कहा कि हमलोगोंने अपना काम पूरा कर दिया । अब जो करना शेष है, उसे आपलोग पूर्ण करें ।

ब्रह्माजी कहते हैं—तब शिवाज्ञा-पालनसम्बन्धिनी देवताओंकी बात सुनकर सभी देवों और पार्षदोंको महान् आनन्द हुआ । तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता अपने स्वामी निर्गुणस्वरूप भगवान् शंकरको प्रणाम करके बोले—'स्वामिन् ! आप महात्माके जिस तेजसे हम सभी उत्पन्न हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रके अभियोगसे इस बालकमें प्रवेश करे ।' इस प्रकार सभी देवताओंने मिलकर वेदमन्त्रद्वारा जलको अभिमन्त्रित किया, फिर शिवजी-का स्मरण करके उस उत्तम जलको बालकके शरीरपर छिड़क दिया । उस जलका स्पर्श होते ही वह बालक शिवेच्छासे शीघ्र ही चेतनायुक्त होकर जीवित हो गया और सोये हुएकी तरह उठ बैठा । वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर



था। उसका मुख हाथीका-सा था। शरीरका रंग हरा लाल था। चेहरेपर प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी आकृति कमनीय थी और उसकी सुन्दर प्रभा फैल रही थी। मुनीश्वर ! पार्वतीनन्दन उस बालकको जीवित देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आनन्दमग्न हो गये और सारा दुःख विलीन हो गया। तब हर्ष-विभोर होकर सभी लोगोंने उस बालकको पार्वतीजीको दिखाया। अपने पुत्रको जीवित देखकर पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं। (अध्याय १३—१८)

पार्वतीद्वारा गणेशजीको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्ष-पद प्रदान और गणेश-चतुर्थीव्रतका वर्णन, तत्पश्चात् सभी देवताओंका उनकी स्तुति करके हर्षपूर्वक अपने अपने स्थानको लौट जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब विकृत स्वरूपवाले गिरिजा-पुत्र गजानन व्यग्रतारहित होकर जीवित हो उठे, तब गणनायक देवोंने उनका अभिषेक किया। अपने पुत्रको देखकर पार्वतीदेवी आनन्दमग्न हो गयीं और उन्होंने हर्षातिरेकसे उस बालकको दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया। फिर अम्बिकाने प्रसन्न होकर अपने पुत्र गणेशको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। तदनन्तर सिद्धियोंने अनेकों विधि-विधानसे उनका पूजन किया और माताने अपने सर्वदुःखहारी हाथसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। इस प्रकार शिव-पत्नी पार्वतीदेवीने अपने पुत्रका सत्कार करके उसका मुख चूमा और प्रेमपूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—'बेटा ! इस समय तुझे बड़ा कष्ट झेलना पड़ा है। किंतु अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा। चूँकि इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! महेश्वरी देवीने अपने पुत्र गणेशसे यों कहकर उसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ प्रदान करके पुनः उसका अभिनन्दन किया। विप्र ! तब गिरिजाकी कृपासे उसी क्षण देवताओं और शिवगणोंका मन विशेषरूपसे शान्त हो गया। तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओंने हर्षातिरेकसे शिवाकी स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके वे भक्तिभावसहित चित्तसे गणेशदेवको लेकर शिवजीके समीप चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिलोकीकी कल्याण-कामनासे भवानीके उस बालकको शिवजीकी गोदमें बैठा दिया। तब शिवजी भी उस बालकके मस्तकपर अपना कर-कमल फेरते हुए देवताओंसे बोले—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।' तत्पश्चात् गणेशने भी उठकर शिवजीके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर पार्वतीको, मुझको, विष्णुको और नारद आदि सभी ऋषियोंको प्रणाम करके आगे खड़े होकर उन्होंने कहा—'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब मैं, शंकर और विष्णु—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही प्रेमपूर्वक उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—'सुरवरो ! जैसे त्रिलोकीमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा करके तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हमलोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो ! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—उसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवताओंने मिलकर पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। उसी समय शिवजी परम प्रसन्न चित्तसे पुनः गणेशको लोकमें सर्वदा सुख देनेवाले अनेकों वर प्रदान करते हुए बोले—



शिवजीने कहा—गिरिजानन्दन ! निस्संदेह मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ । मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्‌को ही प्रसन्न हुआ समझ । अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता । तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है । बालक होनेपर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है, इसलिये तू सदा सुखी रहेगा । विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा । तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा ।

इतना कहनेके पश्चात् महात्मा शंकर अत्यन्त प्रसन्नताके कारण गणेशको पुनः वरदान देते हुए बोले—'गणेश्वर ! तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है । जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था । इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये । यह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता है । वर्षके अन्तमें जब पुनः वही चतुर्थी आ जाय तबतक मेरे कथनानुसार तेरे व्रतका पालन करना चाहिये । जिन्हें संसारमें अनेकों प्रकारके अनुपम सुखोंकी कामना हो उन्हें चतुर्थीके दिन भक्तिपूर्वक विधिसहित तेरा पूजन करना चाहिये । जब मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी आये, तब उस दिन प्रातःकाल स्नान करके व्रतके लिये ब्राह्मणोंसे निवेदन करे । पूर्वोक्त विधिसे उपवास करे । फिर धातुकी, मूँगेकी, श्वेत मदारकी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे और भक्तिभावसे नाना प्रकारके दिव्य गन्धों, चन्दनों और पुष्पोंसे उसकी पूजा करे । पुनः रात्रिका प्रथम प्रहर बीत जानेपर स्नान करके दूर्वादलोंसे पूजन करना चाहिये । यह दूर्वा जड़रहित, बारह अंगुल लम्बी और तीन गाँठोंवाली होनी चाहिये । ऐसी एक सौ एक अथवा इक्कीस दूर्वासे उस स्थापित प्रतिमाकी पूजा करे । तत्पश्चात् धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य और उत्तम-उत्तम पदार्थोंद्वारा गणेशकी पूजा करे और स्तवन करके उसके आगे प्रणिपात करे । यों गणेशकी पूजा करनेके पश्चात् बालचन्द्रमाका पूजन करे । तत्पश्चात् हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मिष्टान्नका भोजन कराये । उनके भोजन कर लेनेके बाद स्वयं भी नमकरहित मिष्टान्नका ही प्रसाद पाये । फिर गणेशका स्मरण करके अपने सभी नियमोंका विसर्जन कर दे । इस प्रकार करनेसे यह शुभव्रत पूर्ण होता है ।

'बेटा ! यों व्रत करते-करते जब वर्ष पूरा हो जाय, तब व्रती मनुष्यको चाहिये कि वह व्रतकी पूर्तिके लिये व्रतोद्यापनका कार्य भी सम्पन्न करे । इसमें मेरे आज्ञानुसार बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । व्रतीको चाहिये कि वह एक कलश स्थापित करके उसपर तेरी मूर्तिकी पूजा करे । तत्पश्चात् वेदविधिके अनुसार वेदीका निर्माण करके उसपर अष्टदल कमल बनाये, फिर उसीपर धनकी कंजूसी छोड़कर हवन करे । पुनः मूर्तिके सामने दो स्त्रियों और दो बालकोंको बिठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और सादर उन्हें भोजन कराये । रातमें जागरण करे । प्रातःकाल पुनः पूजन करके पुनरागमनके लिये विसर्जन कर दे । बालकोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे, स्वस्तिवाचन कराये और व्रतकी पूर्तिके लिये पुष्पाञ्जलि निवेदित करे । फिर नमस्कार करके नाना प्रकारके कार्योंकी कल्पना करे । इस प्रकार जो इस व्रतको पूर्ण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । गणेश ! जो श्रद्धासहित अपनी शक्तिके अनुसार नित्य तेरी पूजा करेगा, उसके सभी मनोरथ सफल हो जायँगे । मनुष्योंको सिन्दूर, चन्दन, चावल, केतकी-पुष्प आदि अनेकों उपचारोंद्वारा गणेश्वरका पूजन करना चाहिये । यों

जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब शिवजीने महात्मा गणेशको इस प्रकार वर प्रदान किया, तब सम्पूर्ण देवताओं, श्रेष्ठ ऋषियों और शिवके प्यारे समस्त गणोंने 'तथास्तु' कहकर उसका समर्थन किया और अत्यन्त विधिपूर्वक गणाधीशका पूजन किया। तत्पश्चात् शिवगणोंने आदरपूर्वक नाना प्रकारकी पूजनसामग्रीसे गणेश्वरकी विशेषरूपसे अर्चना की और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनीश्वर ! उस समय गिरिजा देवीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन मेरे चारों मुखोंसे भी नहीं हो सकता; तब फिर मैं उसे कैसे बताऊँ। उस अवसरपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार गणेशके गणाधीश-पदपर प्रतिष्ठित होनेपर वहाँ महान् उत्सव मनाया गया। सारे जगत्में शान्ति स्थापित हो गयी और सारा दुःख जाता रहा। नारद ! शिव और पार्वतीको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ और सर्वत्र अनेक प्रकारके सुखदायक मङ्गल होने लगे। तदनन्तर सम्पूर्ण देवगण और ऋषिगण जो वहाँ पधारे हुए थे, वे सब शिवकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको चले। उस समय वे शिवजीकी स्तुति करके गणेश और पार्वतीकी बारंबार प्रशंसा कर रहे थे और 'कैसा अद्भुत युद्ध हुआ' यों परस्पर वार्तालाप करते हुए चले जा रहे थे। इधर जब गिरिजादेवीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी, जो स्वात्माराम होते हुए भी सदा भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत रहते हैं, गिरिजाके संनिकट गये और लोकोंकी हितकामनासे पूर्ववत् नाना प्रकारके सुखदायक कार्य करने लगे। तब मैं ब्रह्मा और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक शिव-शिवाकी सेवा करके शिवकी आज्ञा ले अपने-अपने धामको लौट आये। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम माङ्गलिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंका भागी होकर मङ्गल-भवन हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्रकी, निर्धनको धनकी, भार्यार्थीको भार्याकी, प्रजार्थीको प्रजाकी, रोगीको आरोग्यकी और अभागेको सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। जिस स्त्रीका पुत्र और धन नष्ट हो गया हो और पति परदेश चला गया हो, उसे उसका पति मिल जाता है। जो शोकसागरमें डूब रहा हो, वह इसके श्रवणसे निस्संदेह शोकरहित हो जाता है। यह गणेश-चरितसम्बन्धी ग्रन्थ जिसके घरमें सदा वर्तमान रहता है, वह मङ्गलसम्पन्न होता है—इसमें तनिक भी संशयकी गुंजाइश नहीं है। जो यात्राके अवसरपर अथवा किसी भी पुण्यपर्वपर इसे मन लगाकर सुनता है, वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १९)

स्वामिकार्तिक और गणेशकी बाल-लीला, दोनोंका परस्पर विवाहके विषयमें विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, गणेशका माता-पिताकी परिक्रमा करके उनसे पृथ्वी-परिक्रमा स्वीकृत कराना, विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओंके साथ गणेशका विवाह और उनसे क्षेम तथा लाभ नामक पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमारका पृथ्वी-परिक्रमा करके लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौञ्च पर्वतपर चला जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा

नारदजीने पूछा—तात ! मैंने गणेशके जन्मसम्बन्धी अनुपम वृत्तान्त तथा परम पराक्रमसे विभूषित उनका दिव्य चरित भी सुन लिया। सुरेश्वर ! उसके बाद कौन-सी घटना घटी, उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि पिताजी ! शिव और पार्वतीका उज्ज्वल यश महान् आनन्द प्रदान करनेवाला है।

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! तुम तो बड़े कारुणिक हो। तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। ऋषिसत्तम ! अच्छा, अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम ध्यान लगाकर सुनो। विप्रेन्द्र ! शिव और पार्वती अपने दोनों पुत्रोंकी बाललीला देख-देखकर महान् प्रेममें मग्न रहने लगे। पुत्रोंका लाड़-

प्यार करनेके कारण माता-पिताका सुख दिनोंदिन बढ़ता जाता था और वे दोनों कुमार प्रीतिपूर्वक आनन्दके साथ तरह-तरहकी लीलाएँ करते थे। मुनीश्वर ! वे दोनों बालक स्वामि-कार्तिक और गणेश भक्तिपूरित चित्तसे सदा माता-पिताकी परिचर्या किया करते थे। इससे माता-पिताका महान् स्नेह षण्मुख और गणेशपर शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शिव और शिवा दोनों प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठकर यों विचार करने लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाहके योग्य हो गये, अब इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे सम्पन्न हो। हमें तो जैसे षडानन प्यारा है, वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्तामें पड़कर वे दोनों लीलावश आनन्दमग्न हो गये। मुने ! माता-पिताके विचारको जानकर उन दोनों पुत्रोंके मनमें भी विवाहकी इच्छा जाग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विवाह करूँगा, पहले मैं विवाह करूँगा'—यों बारंबार कहते हुए परस्पर विवाद करने लगे। तब जगत्के अधीश्वर वे दोनों दम्पति पुत्रोंकी बात सुनकर लौकिक आचारका आश्रय ले परम विस्मयको प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा।

शिव-पार्वती बोले—सुपुत्रो ! हमलोगोंने पहलेसे ही एक ऐसा नियम बना रखा है, जो तुम दोनोंके लिये सुखदायक होगा। अब हम यथार्थरूपसे उसका वर्णन करते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुनो। प्यारे बच्चो ! हमें तो तुम दोनों पुत्र समान ही प्यारे हो; किसीपर विशेष प्रेम हो—ऐसी बात नहीं है; अतः हमने तुमलोगोंके विवाहके विषयमें एक ऐसी शर्त बनायी है, जो दोनोंके लिये कल्याणकारिणी है, (वह शर्त यह है कि) जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका शुभ विवाह पहले किया जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! माता-पिताकी यह बात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरंत ही अपने स्थानसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये चल दिये। परंतु अगाध-बुद्धि-सम्पन्न गणेश वहीं खड़े रह गये। वे अपनी उत्तम बुद्धिका आश्रय ले बारंबार मनमें विचार करने लगे कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी; क्योंकि कोसभर चलनेके बाद आगे मुझसे चला जायगा नहीं। फिर सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा ?' ऐसा विचारकर गणेशने जो कुछ किया, उसे सुनो। उन्होंने अपने घर लौटकर विधिपूर्वक स्नान किया और माता-पितासे इस प्रकार कहा।

गणेशजी बोले—पिताजी एवं माताजी ! मैंने आपलोगोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ दो आसन स्थापित किये हैं। आप दोनों इसपर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! गणेशकी बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा ग्रहण करनेके लिये आसनपर विराजमान हो गये। तब गणेशने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और बारंबार प्रणाम करते हुए उनकी सात बार प्रदक्षिणा की। बेटा नारद ! गणेश तो बुद्धिसागर थे ही, वे हाथ जोड़कर प्रेममग्न माता-पिताकी बहुत प्रकारसे स्तुति करके बोले।

गणेशजीने कहा—हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आपलोग मेरी उत्तम बात सुनिये और शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! महात्मा गणेशका ऐसा वचन सुनकर वे दोनों माता-पिता महाबुद्धिमान् गणेशसे बोले।



शिवा-शिवने कहा—बेटा ! तू पहले काननोंसहित इस सारी पृथ्वीकी परिक्रमा तो कर आ । कुमार गया हुआ है, तू भी जा और उससे पहले लौट आ (तब तेरा विवाह पहले कर दिया जायगा) ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! नियमपरायण गणेश माता-पिताकी ऐसी बात सुनकर कुपित हो तुरंत बोल उठे ।

गणेशजीने कहा—हे माताजी ! तथा हे पिताजी ! आप दोनों सर्वश्रेष्ठ, धर्मरूप और महाबुद्धिमान् हैं, अतः धर्मानुसार मेरी बात सुनिये । मैंने सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, फिर आपलोग ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! शिव-पार्वती तो बड़े लीलानन्दी ही ठहरे, वे गणेशका कथन सुन लौकिक गतिका आश्रय लेकर बोले ।

शिव-पार्वतीने कहा—पुत्र ! तूने समुद्रपर्यन्त विस्तारवाली, बड़े-बड़े काननोंसे युक्त इस सप्तद्वीपवती विशाल पृथ्वीकी परिक्रमा कब कर ली ?

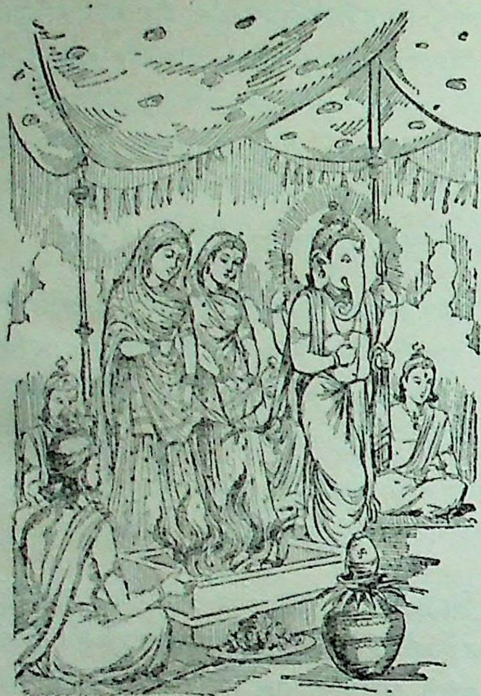
ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! जब शिव-पार्वतीने ऐसा कहा, तब उसे सुनकर महान् बुद्धिसम्पन्न गणेश बोले ।

गणेशजीने कहा—माताजी एवं पिताजी ! मैंने अपनी बुद्धिसे आप दोनों शिव-पार्वतीकी पूजा करके प्रदक्षिणा कर ली है, अतः मेरी समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी हो गयी । धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंमें जो ऐसे वचन मिलते हैं, वे सत्य हैं अथवा असत्य ? (वे वचन हैं कि) जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है । जो माता-पिता-को घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लिये जाता है, वह माता-पिता-की हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताका चरणसरोज ही महान् तीर्थ है । अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है । पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) ये दोनों सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं । ऐसा जो वेद-शास्त्र निरन्तर उद्घोषित करते रहते हैं, उसे फिर आपलोग असत्य कर दीजिये । (और यदि वह असत्य हो जायगा तो) निस्संदेह वेद भी असत्य हो जायगा और वेदद्वारा वर्णित आपका यह स्वरूप भी झूठा समझा जायगा । इसलिये या तो शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये अथवा यों कह दीजिये कि वेद-शास्त्र झूठे हैं । आप दोनों धर्मरूप हैं, अतः भलीभाँति विचार करके इन दोनोंमें जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तब जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, उत्तम बुद्धिसम्पन्न तथा महान् ज्ञानी हैं, वे पार्वतीनन्दन गणेश इतना कहकर चुप हो गये । उधर वे दोनों पति-पत्नी जगदीश्वर शिव-पार्वती गणेशके वचन सुनकर परम विस्मित हुए । तदनन्तर वे यथार्थभाषी एवं अद्भुत बुद्धिवाले अपने पुत्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए बोले ।

शिवा-शिवने कहा—बेटा ! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है । तूने जो बात कही है, वह बिल्कुल सत्य है, अन्यथा नहीं है । दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकार । जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है; बुद्धिहीन-के पास बल कहाँ । पुत्र ! वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्म-पालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली । तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है । हमने तेरी वह बात मान ली, अब इसके विपरीत नहीं करेंगे ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यों कहकर उन दोनोंने बुद्धिसागर गणेशको सान्त्वना दी और फिर वे उनके विवाहके सम्बन्धमें उत्तम विचार करने लगे । इसी समय जब प्रसन्न बुद्धिवाले प्रजापति विश्वरूपको शिवजीके उद्योगका पता चला तब उसपर विचार करके उन्हें परम सुख प्राप्त हुआ । उन प्रजापति विश्वरूपके दिव्यरूपसम्पन्न एवं सर्वाङ्गशोभना दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जिनका नाम 'सिद्धि' और 'बुद्धि' था । भगवान् शंकर और गिरिजाने उन दोनोंके साथ हर्षपूर्वक गणेशका विवाह-संस्कार सम्पन्न कराया । उस विवाहके अवसर-पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पधारे । उस समय शिव और



पार्वतीका जैसा मनोरथ था, उसीके अनुसार विश्वकर्माने वह विवाह किया। उसे देखकर ऋषियों तथा देवताओंको परम हर्ष प्राप्त हुआ। मुने! गणेशको भी उन दोनों पत्नियोंके मिलनेसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ कालके पश्चात् महात्मा गणेशके उन दोनों-पत्नियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धि-के गर्भसे 'क्षेम' नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धिके गर्भसे जिस परम सुन्दर पुत्रने जन्म लिया, उसका नाम 'लाभ' हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुखका भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिक पृथ्वी-की परिक्रमा करके लौटे। उस समय नारदजीने आकर कुमार स्कन्दको सब समाचार सुनाये। उन्हें सुनकर कुमारके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिवा-शिवके द्वारा रोके जानेपर भी न रुककर क्रौञ्चपर्वतकी ओर चले गये।

देवर्षे! उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुआँरपना) प्रसिद्ध हो गया। उनका नाम त्रिलोकीमें विख्यात हो गया। वह शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है। कार्तिककी पूर्णिमाको सभी देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर सदा कुमारका दर्शन करनेके लिये (क्रौञ्चपर्वतपर) जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमाके दिन कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर स्वामि कार्तिकका दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। इधर स्कन्दका बिछोह हो जानेपर उमाको महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीनभावसे अपने स्वामी शिवजीसे कहा—'प्रभो! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये।' तब प्रियाको सुख देनेके निमित्त स्वयं भगवान् शंकर अपने एक अंशसे उस पर्वतपर गये और सुखदायक मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे सत्पुरुषोंकी गति तथा अपने सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। वे आज भी शिवाके सहित उस पर्वतपर विराजमान हैं।

बेटा नारद! वे दोनों शिवा-शिव भी पुत्र-स्नेहसे विह्वल होकर प्रत्येक पर्वपर कुमारको देखनेके लिये जाते हैं। अमावास्याके दिन वहाँ स्वयं शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वतीजी जाती हैं। मुनीश्वर! तुमने स्वामिकार्तिक और गणेशका जो-जो वृत्तान्त मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं। यह अनुपम आख्यान पापनाशक, कीर्तिप्रद, सुखवर्धक, आयु बढ़ानेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला, मोक्षप्रद, शिवजीके उत्तम ज्ञानका प्रदाता, शिव-पार्वतीमें प्रेम उत्पन्न करनेवाला और शिवभक्तिवर्धक है। यह कल्याणकारक, शिवजीके अद्वैत ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है; अतः मोक्षकामी एवं निष्काम भक्तोंको सदा इसका श्रवण करना चाहिये। (अध्याय २०)

॥ रुद्रसंहिताका कुमारखण्ड सम्पूर्ण ॥



भगवान् श्रीगणेश

रुद्रसंहिता, पञ्चम (युद्ध) खण्ड

तारकपुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्षकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उन्हें वर-प्रदान, मयद्वारा उनके लिये तीन पुरोंका निर्माण और उनकी सजावट-शोभाका वर्णन

नारदजीने कहा—पिताजी ! जो गणेश और स्वामि-कार्तिककी उत्तम कथाओंसे ओतप्रोत तथा आनन्द प्रदान करनेवाला है, भगवान् शंकरके गृहस्थ-सम्बन्धी उस उत्तम चरित्रको हमने सुन लिया । अब आप कृपा करके उस परमोत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिसमें रुद्रदेवने खेल-ही-खेलमें दुष्टोंका वध किया था । महान् वीर्यशाली भगवान् शंकरने देव-द्रोहियों-के तीनों नगरोंको एक ही साथ एक ही बाणसे किस कारण एवं कैसे भस्म कर डाला था ? भगवन् ! जिनके भालमें बालचन्द्रमा सुशोभित है तथा जो सदा मायाके साथ विहार करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरका चरित तो देवर्षियोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है । आप वह सारा चरित विस्तार-पूर्वक वर्णन कीजिये ।



ब्रह्माजी बोले—ऋषिश्रेष्ठ ! पहले किसी समय व्यास-ने सनत्कुमारसे ऐसा ही प्रश्न किया था । उस समय सनत्कुमार-ने जो कुछ उत्तर दिया था, वही मैं वर्णन करता हूँ ।

उस समय सनत्कुमारने कहा था—महाबुद्धिमान् व्यासजी ! विश्वका संहार करनेवाले चन्द्रमौलि शिवने जिस प्रकार एक ही बाणसे त्रिपुरको भस्म किया था, वह चरित्र कहता हूँ; सुनो । मुनीश्वर ! जब शिवकुमार स्कन्दने तारकासुरको मार डाला, तब उसके तीनों पुत्रोंको महान् संताप हुआ । उनमें तारकाक्ष सबसे ज्येष्ठ था, विद्युन्माली मझला था और छोटेका नाम कमलाक्ष था । उन तीनोंमें समान बल था । वे जितेन्द्रिय, सदा कार्यके लिये उद्यत, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महान् वीर और देवोंसे द्रोह करनेवाले थे । उन तीनोंने सभी उत्तमोत्तम एवं मनोहर भोगोंका परित्याग करके मेरुपर्वतकी एक कन्दरामें जाकर परम अद्भुत तपस्या आरम्भ की । वहाँ उन्होंने हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त उग्र तप किया । तब सुर और असुरोंके गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्हें वर देनेके लिये प्रकट हुए ।

ब्रह्माजीने कहा—महादैत्यो ! मैं तुमलोगोंके तपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः तुम्हारी कामनाके अनुसार तुम्हें सभी वर प्रदान करूँगा । देवद्रोहियो ! मैं सबकी तपस्याके फलदाता और सर्वदा सब कुछ करनेमें समर्थ हूँ; अतः बताओ, तुमलोगोंने इतना घोर तप किस लिये किया है ?

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्माजीकी वह बात सुनकर उन सबने अञ्जलि बाँधकर पितामहके चरणोंमें प्रणिपात किया और फिर धीरे-धीरे अपने मनकी बात कहना आरम्भ किया।

दैत्य बोले—देवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि समस्त प्राणियों-में हम सबके लिये अवध्य हो जायँ । जगन्नाथ ! आप हमें स्थिर कर दें और हमारे जरा, रोग आदि सभी शत्रु नष्ट हो जायँ तथा कभी भी मृत्यु हमारे समीप न फटके । हम-लोगोंका ऐसा विचार है कि हमलोग अजर-अमर हो जायँ और त्रिलोकीमें अन्य सभी प्राणियोंको मौतके घाट उतारते रहें; क्योंकि ब्रह्मन् ! यदि पाँच ही दिनोंमें कालके गालमें चला जाना निश्चित ही है तो अतुल लक्ष्मी, उत्तमोत्तम नगर, अन्यान्य भोग-सामग्री, उत्कृष्ट पद और ऐश्वर्यसे क्या प्रयोजन है । मेरे विचारसे तो उस प्राणीके लिये ये सभी व्यर्थ हैं ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! उन तपस्वी दैत्योंकी यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने स्वामी गिरिशायी भगवान् शंकर-का ध्यान करके बोले।

ब्रह्माजीने कहा—असुरो ! अमरत्व सभीको नहीं मिल सकता, अतः तुमलोग अपना यह विचार छोड़ दो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर जो तुम्हें रुचता हो, माँग लो। क्योंकि दैत्यो ! इस भूतलपर जहाँ कहीं भी जो प्राणी जन्मा है अथवा जन्म लेगा, वह जगत्में अजर-अमर नहीं हो सकता। इसलिये पापरहित असुरो ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार-कर मृत्युकी वञ्चना करते हुए कोई ऐसा दुर्लभ एवं दुस्साध्य वर माँग लो, जो देवता और असुरोंके लिये अशक्य हो। उस प्रसङ्गमें तुमलोग अपने बलका आश्रय लेकर पृथक्-पृथक् अपने मरणमें किसी हेतुको माँग लो, जिससे तुम्हारी रक्षा हो जाय और मृत्यु तुम्हें वरण न कर सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर वे दो घड़ीतक ध्यानस्थ हो गये, फिर कुछ सोच-विचारकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीसे बोले।

दैत्योंने कहा—भगवन् ! यद्यपि हमलोग प्रबल पराक्रमी हैं, तथापि हमारे पास कोई ऐसा घर नहीं है, जहाँ हम शत्रुओं-से सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें; अतः आप हमारे लिये ऐसे तीन नगरोंका निर्माण करा दीजिये, जो अत्यन्त अद्भुत और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हों तथा देवता जिनका प्रधर्षण न कर सकें। लोकेश ! आप तो जगद्गुरु हैं। हम-लोग आपकी कृपासे ऐसे तीनों पुरोंमें अधिष्ठित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे। इसी बीच तारकाक्षने कहा कि विश्वकर्मा मेरे लिये जिस नगरका निर्माण करें, वह स्वर्णमय हो और देवता भी उसका भेदन न कर सकें। तत्पश्चात् कमलाक्षने चाँदीके बने हुए अत्यन्त विशाल नगरकी याचना की और विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान कठोर लोहे-का बना हुआ बड़ा नगर माँगा। ब्रह्मन् ! ये तीनों पुर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें चन्द्रमाके पुष्य नक्षत्रपर स्थित होनेपर एक स्थानपर मिला करें और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रहें। फिर पुष्करावर्त नामक कालमेघों-के वर्षा करते समय एक सहस्र वर्षके बाद ये तीनों नगर परस्पर मिलें और एकीभावको प्राप्त हों, अन्यथा नहीं। उस समय कृत्तिवासा भगवान् शंकर, जो वैरभावसे रहित, सर्वदेव-मय और सबके देव हैं, लीलापूर्वक सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त एक असम्भव रथपर बैठकर एक अनोखे बाणसे हमारे पुरोंका भेदन करें। किंतु भगवान् शंकर सदा हमलोगोंके बन्दनीय, पूज्य और अभिवादनके पात्र हैं; अतः वे हमलोगों-को कैसे भस्म करेंगे—मनमें ऐसी धारणा करके हम ऐसे दुर्लभ वरको माँग रहे हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! उन दैत्योंका कथन सुनकर सृष्टिकर्ता लोकपितामह ब्रह्माने शिवजीका स्मरण करके उनसे कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर मयको भी आज्ञा देते हुए उन्होंने कहा—'हे मय ! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर बना दो।' यों मयको आदेश देकर ब्रह्माजी उन तारक-पुत्रोंके देखते-देखते अपने धाम स्वर्गको चले गये। तदनन्तर धैर्यशाली मयने अपने तपोबलसे नगरोंका निर्माण करना आरम्भ किया। उसने तारकाक्षके लिये स्वर्णमय, कमलाक्षके लिये रजतमय और विद्युन्मालीके लिये लौहमय—यों तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग तैयार किये। वे पुर क्रमशः स्वर्ग, अन्तरिक्ष और भूतलपर निर्मित हुए थे। असुरों-के हितमें तत्पर रहनेवाला मय उन तीनों पुरोंको तारकाक्ष आदि असुरोंके हवाले करके स्वयं भी उसीमें प्रवेश कर गया। इस प्रकार उन तीनों पुरोंको पाकर महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वे तारकासुरके लड़के उनमें प्रविष्ट हुए और समस्त भोगोंका उपभोग करने लगे। वे नगर कल्पवृक्षोंसे व्याप्त तथा हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे। उनमें मणिनिर्मित जालियोंसे आच्छादित बहुतेरे महल बने हुए थे। वे पद्मरागके बने हुए एवं सूर्य-मण्डलके समान चमकीले विमानोंसे, जिनमें चारों ओर दरवाजे लगे थे, शोभायमान थे। कैलास-शिखरके समान ऊँचे तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल दिव्य प्रासादों तथा गोपुरोंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वे अप्सराओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे खचाखच भरे थे। प्रत्येक महलमें शिवालय तथा अग्निहोत्रशालाकी प्रतिष्ठा हुई थी। उनमें शिवभक्ति-परायण शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सदा निवास करते थे। वे बावली, कूप, तालाब और बड़ी-बड़ी तलैयोंसे तथा समूह-के-समूह स्वर्गसे च्युत हुए वृक्षोंसे युक्त उद्यानों और वनोंसे सुशोभित थे। बड़ी-बड़ी नदियों, नदों और छोटी-छोटी सरिताओंसे, जिनमें कमल खिले हुए थे, उनकी शोभा और बढ़ गयी थी। उनमें सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अनेकों फलोंके भारसे लदे हुए वृक्ष लगे थे, जिनसे वे नगर विशेष मनोहर लगते थे।

वे झुंड-के-झुंड मदमत्त गजराजोंसे, सुन्दर-सुन्दर घोड़ोंसे, नाना प्रकारके आकार-प्रकारवाले रथों एवं शिबिकाओंसे अलंकृत थे। उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् क्रीडास्थल बने थे और वेदाध्ययनकी पाठशालाएँ भी भिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं। वे पापी पुरुषोंके लिये मन-वाणीसे भी अगोचर थे। उन्हें सदाचारी पुण्यशील महात्मा ही देख सकते थे। पति-सेवापरायण तथा कुधर्मसे विमुख रहनेवाली पतिव्रता नारियोंने उन नगरोंके उत्तम स्थलोंको सर्वत्र पवित्र कर रक्खा था। उनमें महाभाग शूरवीर दैत्य और श्रुति-स्मृतिके अर्थके तत्त्वज्ञ एवं स्वधर्मपरायण ब्राह्मण अपनी स्त्रियों तथा पुत्रोंके साथ निवास करते थे। उनमें मयद्वारा सुरक्षित ऐसे सुदृढ़ पराक्रमी वीर भरे हुए थे, जिनके केश नील कमलके समान नीले और घुँघराले थे। वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्धकी लालसा भरी रहती थी। वे बड़े-बड़े समरोंसे प्रेम करनेवाले थे, ब्रह्मा और शिवका पूजन करनेसे उनके पराक्रम विशुद्ध थे; वे सूर्य, मरुद्गण और महेन्द्रके समान बली थे और देवताओं-के मथन करनेवाले थे। वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिवके प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। उन नगरोंमें प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवभक्तिनिरत होकर सारी त्रिलोकीको बाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे। मुने! इस प्रकार वहाँ निवास करनेवाले उन पुण्यात्माओंके सुख एवं प्रीतिपूर्वक उत्तम राज्यका पालन करते हुए बहुत लंबा काल व्यतीत हो गया। (अध्याय १)

तारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करुण पुकार, ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका उन दैत्योंको मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! तदनन्तर तारक-पुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुखी हो परस्पर सलाह करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक पितामहको प्रणाम किया और अवसर देखकर उनसे अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहा।

देवता बोले—धातः! त्रिपुरोंके स्वामी तारक-पुत्रोंने तथा मयासुरने समस्त स्वर्गवासियोंको संतप्त कर दिया है। ब्रह्मन्! इसीलिये हमलोग दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप उनके वधका कोई उपाय कीजिये, जिससे हमलोग सुखसे रह सकें।

ब्रह्माजीने कहा—देवगणो! तुम्हें उन दानवोंसे विशेष भय नहीं करना चाहिये। मैं उनके वधका उपाय बतलाता हूँ। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैंने ही इन दैत्योंको बढ़ाया है, अतः मेरे हाथों इनका वध होना उचित नहीं। साथ ही त्रिपुरमें इनका पुण्य भी वृद्धिंगत होता रहेगा। अतः इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें! वे सर्वाधीश यदि प्रसन्न हो जायँगे तो वे ही तुमलोगोंका कार्य पूर्ण करेंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुखी हो उस स्थान-पर गये, जहाँ वृषभध्वज शिव आसीन थे। तब उन सबने अञ्जलि बाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कंधा झुकाकर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकरका स्तवन किया। मुने! इस प्रकार नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा त्रिशूलधारी परमेश्वरकी स्तुति करके स्वार्थ-साधनमें निपुण इन्द्र आदि देवताओंने दीनभावसे कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर प्रस्तुत स्वार्थको निवेदन करना आरम्भ किया।

देवताओंने कहा—महादेव! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रसहित समस्त देवताओंको परास्त कर दिया है। भगवन्! उन्होंने त्रिलोकीको तथा मुनीश्वरोंको अपने अधीन कर लिया है और सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करके सारे जगत्को उत्पीड़ित कर रक्खा है। वे दारुण दैत्य समस्त यज्ञभागोंको स्वयं ग्रहण करते हैं। उन्होंने ऋषि-धर्मका निवारण करके अधर्मका विस्तार कर रक्खा है। शंकर! निश्चय ही वे तारक-पुत्र समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य हैं, इसीलिये वे स्वेच्छानुसार सभी कार्य करते रहते हैं। प्रभो! ये त्रिपुरनिवासी दारुण दैत्य जबतक जगत्का विनाश न कर डालें, उसके पहले ही आप किसी ऐसी नीतिका विधान करें, जिससे इसकी रक्षा हो सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों भाषण करते

हुए उन स्वर्गवासी इन्द्रादि देवोंकी बात सुनकर शिवजी उत्तर देते हुए बोले ।

शिवजीने कहा—देवगण ! इस समय वे त्रिपुराधीश महान् पुण्य-कार्योंमें लगे हुए हैं; और ऐसा नियम है कि जो पुण्यात्मा हो, उसपर विद्वानोंको किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये । मैं देवताओंके सारे महान् कष्टोंको जानता हूँ; फिर भी वे दैत्य बड़े प्रबल हैं, अतः देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते । वे तारक-पुत्र सब-के-सब पुण्यसम्पन्न हैं, इसलिये उन सभी त्रिपुरवासियोंका वध दुस्साध्य है । यद्यपि मैं रणकर्कश हूँ, तथापि जान-बूझकर मैं मित्र-द्रोह कैसे कर सकता हूँ; क्योंकि पहले किसी समय ब्रह्माजीने कहा था कि मित्रद्रोहसे बढ़कर दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है । सत्पुरुषोंने ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रत-भङ्ग करनेवालेके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया है; परंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है ।* देवताओ ! तुमलोग भी तो धर्मज्ञ हो, अतः धर्मदृष्टिसे विचार-कर तुम्हीं बताओ कि जब वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ । इसलिये अमरो ! जबतक वे दैत्य मेरी भक्तिमें तत्पर हैं, तबतक उनका वध असम्भव है । तथापि तुमलोग विष्णुके पास जाकर उनसे यह कारण निवेदन करो ।

तदनन्तर देवगण भगवान् विष्णुके समीप गये और उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिससे वे असुर शैव—सनातन धर्मसे विमुख होकर सर्वथा अनाचारपरायण हो गये । वैदिक धर्मका नाश होनेसे वहाँ स्त्रियोंने पातिव्रत-धर्म छोड़ दिया, पुरुष इन्द्रियोंके वश हो गये । यों स्त्री-पुरुष सभी दुराचारी हो गये । देवाराधन, श्राद्ध, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, शिव-विष्णु-सूर्य-गणेश आदिका पूजन, स्नान, दान आदि सभी शुभ आचरण नष्ट हो गये । तब माया तथा अलक्ष्मी उन पुरोंमें जा पहुँची । तपसे प्राप्त लक्ष्मी वहाँसे चली गयीं । इस प्रकार वहाँ अधर्मका विस्तार हो गया । मुने ! तब शिवेच्छासे भाइयोंसहित उस दैत्यराजकी तथा मयकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी ।

(अध्याय २—५)

देवोंका शिवजीके पास जाकर उनका स्तवन करना, शिवजीके त्रिपुर-वधके लिये उद्यत न होनेपर ब्रह्मा और विष्णुका उन्हें समझाना, विष्णुके बतलाये हुए शिव-मन्त्रका देवोंद्वारा तथा विष्णुद्वारा जप, शिवजीकी प्रसन्नता और उनके लिये विश्वकर्माद्वारा सर्वदेवमय रथका निर्माण

व्यासजीने पूछा—सनत्कुमारजी ! जब भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजकी बुद्धि विशेषरूपसे मोहाच्छन्न हो गयी, तब उसके बाद कौन-सी घटना घटी ? विभो ! वह सारा वृत्तान्त वर्णन कीजिये ।

सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे ! जब तीनों पुरोंकी पूर्वोक्त दशा हो गयी, दैत्योंने शिवार्चनका परित्याग कर दिया, सम्पूर्ण स्त्री-धर्म नष्ट हो गया और चारों ओर दुराचार फैल गया, तब भगवान् विष्णु और ब्रह्माके साथ सब देवता कैलास पर्वतपर गये और सुन्दर शब्दोंमें शिवकी स्तुति करने लगे—'महेश्वर देव ! आप परमोत्कृष्ट आत्मबलसे सम्पन्न हैं; आप ही सृष्टिके कर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहर्ता रुद्र हैं; परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है ।' यों महादेवजीका स्तवन करके देवोंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया । फिर भगवान् विष्णुने जलमें खड़े होकर अपने स्वामी परमेश्वर शिवका मन-ही-मन स्मरण करके तन्मय हो दक्षिणामूर्तिके द्वारा प्रकटित रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़की संख्यातक जप किया । तबतक सभी देवता उन महेश्वरमें मन लगाकर यों उनकी स्तुति करते रहे ।

देवोंने कहा—प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप, कल्याणकर्ता और भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं । आपके गलेमें नीला चिह्न है, जिससे आप नीलकण्ठ कहलाते हैं । आप चिद्रूप एवं प्रचेता हैं, आप रुद्रको हमारा प्रणाम है । असुरनिकन्दन ! आप ही हमारी सारी आपत्तियोंके निवारण करनेवाले हैं, अतः सदासे आप ही हमारी गति हैं और आप ही सर्वदा हमलोगोंके वन्दनीय हैं । आप सबके आदि हैं और आप ही अनादि भी हैं । आप ही आनन्दस्वरूप, अव्यय, प्रभु, प्रकृति-पुरुषके भी साक्षात् स्रष्टा और जगदीश्वर हैं । आप ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रयसे

* ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेने भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥
(शि० पु० रु० सं० युद्ध० खं० ३ । ५)

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र होकर जगत्के कर्ता, भर्ता और संहारक बनते हैं। आप ही इस भवसागरसे तारनेवाले हैं। आप समस्त प्राणियोंके स्वामी, अविनाशी, वरदाता, वाङ्मयस्वरूप, वेद-प्रतिपाद्य और वाच्य-वाचकतासे रहित हैं। योगवेत्ता योगी आप ईशानसे मुक्तिकी याचना करते हैं। आप योगियोंके हृदय-कमलकी कर्णिकापर विराजमान रहते हैं। वेद और संतजन कहते हैं कि आप परब्रह्मस्वरूप, तत्त्वरूप, तेजोराशि और परात्पर हैं। शर्व ! आप सर्वव्यापी, सर्वात्मा और त्रिलोकीके अधिपति हैं। भव ! इस जगत्में जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह आप ही हैं। जगद्गुरो ! इस जगत्में जिसे देखने, सुनने, स्तवन करने तथा जानने योग्य बताया जाता है और जो अणुसे भी सूक्ष्म तथा महान्से भी महान् है, वह आप ही हैं। आप चारों ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मुख, कान और नाकवाले हैं; अतः आपको चारों ओरसे नमस्कार है। सर्वव्यापिन् ! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत और विश्वरूप हैं; आप विरूपाक्षको सब ओरसे अभिवादन है। आप सर्वेश्वर, भवाध्यक्ष, सत्यमय, कल्याणकर्ता, अनुपमेय और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली हैं; आपको हम चारों ओरसे दण्डवत् प्रणाम करते हैं। विश्वाराध्य, आदि-अन्तशून्य, छब्बीसवें तत्त्व, नियामकरहित तथा समस्त प्राणियोंको अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त करनेवाले आपको हमारा सब ओरसे प्रणाम है। आप प्रकृतिके भी प्रवर्तक, सबके प्रपितामह और समस्त शरीरोंमें व्याप्त हैं; आप परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। श्रुतियाँ तथा श्रुति-तत्त्वके ज्ञाता विज्ञजन आपको वरदायक, समस्त भूतोंमें निवास करनेवाला, स्वयम्भू और श्रुति-तत्त्वज्ञ बतलाते हैं। नाथ ! आपने जगत्में अनेकों ऐसे कार्य किये हैं, जो हमारी समझसे परे हैं; इसीलिये देवता, असुर, ब्राह्मण और अन्यान्य स्थावर-जङ्गम भी आपकी ही स्तुति करते हैं। शम्भो ! त्रिपुरवासी दैत्योंने हमें प्रायः नष्ट-सा कर डाला है, अतः आप शीघ्र ही उन असुरोंका विनाश करके हमारी रक्षा कीजिये; क्योंकि देववल्लभ ! हम देवोंके एकमात्र आप ही गति हैं। परमेश्वर ! इस समय वे आपकी मायासे मोहित हो गये हैं, अतः प्रभो ! वे भगवान् विष्णु-द्वारा बतायी हुई युक्तिके चक्रमें फँसकर सारा धर्म-कर्म छोड़ बैठे हैं। भक्तवत्सल ! हमारे सौभाग्यवश इस समय उन दैत्योंने सम्पूर्ण धर्मोंका परित्याग कर दिया है और नास्तिक शास्त्रका आश्रय ले रक्खा है। शरणदाता ! आप सदासे देवताओंका कार्य करते आये हैं, इसीलिये आज भी हमलोग आपके शरणापन्न हुए हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये !

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! इस प्रकार महेश्वरका स्तवन करके देवगण दीनभावसे अञ्जलि बाँधकर सामने खड़े हो गये। उस समय उनके मस्तक झुके हुए थे।



इस प्रकार जब सुरेन्द्र आदि देवोंने महेश्वरकी स्तुति की और विष्णुने ईशान-सम्बन्धी मन्त्रका जप किया, तब सर्वेश्वर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और वृषपर सवार हो वहीं प्रकट हो गये। उस समय पार्वतीपति शिवका मन प्रसन्न था। उन्होंने नन्दीश्वरकी पीठसे उतरकर विष्णुका आलिङ्गन किया और फिर वे नन्दीपर हाथ टेककर खड़े हो गये और सम्पूर्ण देवताओंकी ओर कृपाभरी दृष्टिसे देखकर गम्भीर वाणीमें श्रीहरिसे बोले।

शिवजीने कहा—देवश्रेष्ठ ! उन अधर्मनिष्ठ दैत्योंके तीनों पुरोंको मैं नष्ट कर डालूँगा—इसमें संशय नहीं है; परंतु वे महादैत्य मेरे भक्त थे और उनका मन सुदृढ़ रूपसे मुझमें लगा रहता था; अतः यद्यपि इस समय उन्होंने व्याजवश उत्तम धर्मका परित्याग कर दिया है, तथापि क्या वे मेरे ही द्वारा मारने योग्य हैं ? इसलिये जिन्होंने त्रिपुरवासी सारे दैत्योंको धर्मभ्रष्ट करके मेरी भक्तिसे विमुख कर दिया है,

वे विष्णु अथवा अन्य कोई ही उन्हें क्यों नहीं मारते ? मुनीश्वर ! शम्भुके ये वचन सुनकर उन समस्त देवताओंका तथा श्रीहरिका भी मन उदास हो गया । जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माने देखा कि देवताओं और विष्णुके मुखपर उदासी छा गयी है, तब उन्होंने हाथ जोड़कर शम्भुसे कहना आरम्भ किया ।

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर ! आप योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परब्रह्म तथा सदासे देवों और ऋषियोंकी रक्षामें तत्पर हैं; अतः पाप आपका स्पर्श नहीं कर सकता । साथ ही आपके आदेशसे ही तो उन्हें मोहमें डाला गया है । इसके प्रेरक तो आप ही हैं । इस समय अवश्य ही उन्होंने अपने धर्मका परित्याग कर दिया है और वे आपकी भक्तिसे विमुख हो गये हैं; तथापि आपके सिवा दूसरा कोई उनका वध नहीं कर सकता । देवों और ऋषियों-के प्राणरक्षक महादेव ! साधुओंकी रक्षाके लिये आपके द्वारा उन म्लेच्छोंका वध उचित है । आप तो राजा हैं, अतः राजाको धर्मानुसार पापियोंका वध करनेसे पाप नहीं लगता; इसलिये इस काँटेको उखाड़कर साधु-ब्राह्मणोंकी रक्षा कीजिये । राजा यदि अपने राज्य तथा सर्वलोकाधिपत्यको स्थिर रखना चाहता हो तो उसे अपने राज्यमें एवं अन्यत्र भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये । इसलिये आप देवगणोंकी रक्षाके लिये उद्यत हो जाइये, विलम्ब मत कीजिये । देवदेवेश ! बड़े-बड़े मुनीश्वर, यज्ञ, सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, मैं और विष्णु भी निश्चय ही आपकी प्रजा हैं । प्रभो ! आप देवताओंके सार्वभौम सम्राट् हैं । ये श्रीहरि आदि देवगण तथा सारा जगत् आपका ही कुटुम्ब है । अजन्मा देव ! श्रीहरि आपके युवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले शक्र राजकार्य सँभालनेवाले मन्त्री हैं । सर्वेश ! अन्य देवता भी आपके शासनके नियन्त्रणमें रहकर सदा अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं । यह बिल्कुल सत्य है ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! ब्रह्माकी यह बात सुनकर सुरपालक परमेश्वर शिवका मन प्रसन्न हो गया । तब उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा ।

शिवजी बोले—ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे देवताओंका सम्राट् बतला रहे हैं तो मेरे पास उस पदके योग्य कोई ऐसी सामग्री तो है नहीं, जिससे मैं उस पदको ग्रहण कर सकूँ; क्योंकि न तो मेरे पास कोई महान् दिव्य रथ है, न उसके उपयुक्त सारथि है और न संग्राममें विजय दिलानेवाले वैसे धनुष-बाण ही हैं कि जिन्हें लेकर मैं मनोयोगपूर्वक संग्राममें उन प्रबल दैत्योंका वध कर सकूँ । यों कहकर वे चुप हो गये । परंतु शिवजीको शीघ्र प्रस्तुत होते न देखकर समस्त देवता, कश्यप आदि ऋषि अत्यन्त व्याकुल तथा दुखी हो गये । तब भगवान् हरिने उनसे कहा ।

भगवान् विष्णु बोले—"देवो तथा मुनियो ! तुमलोग क्यों दुखी हो रहे हो ? तुम्हें अपने सारे दुःखका परित्याग कर देना चाहिये । अब तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो । देवगण ! तुम्हीं लोग विचार करो कि महान् पुरुषोंकी आराधना सुखसाध्य नहीं होती । मैंने ऐसा सुना है कि महदाराधनमें पहले महान कष्ट झेलना पड़ता है । पीछे भक्तकी दृढ़ता देखकर इष्टदेव अवश्य प्रसन्न होते हैं । परंतु शिव तो समस्त गणोंके अध्यक्ष तथा परमेश्वर हैं । ये तो आशुतोष ही ठहरे । अतः पहले 'ॐ'का उच्चारण करके फिर 'नमः' का प्रयोग करे । फिर 'शिवाय' कहकर दो बार 'शुभं'का उच्चारण करे । उसके बाद दो बार 'कुरु'का प्रयोग करके फिर 'शिवाय नमः' 'ॐ' जोड़ दे । (ऐसा करनेसे 'ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ' यह मन्त्र बनता है ।) बुद्धिविशारदो ! यदि तुमलोग शिवकी प्रसन्नताके लिये इस मन्त्रका पुनः एक करोड़ जप करोगे तो शिवजी अवश्य तुम्हारा कार्य पूर्ण करेंगे ।" मुने ! प्रभावशाली श्रीहरिने जब यों कहा, तब सभी देवता पुनः शिवाराधनमें लग गये । तत्पश्चात् श्रीहरि भी देवों तथा मुनियोंके कार्यकी सिद्धिके हेतु शिवमें मन लगाकर विशेषरूपसे विधिपूर्वक जपमें तत्पर हो गये । मुनिश्रेष्ठ ! इधर देवगण धैर्यसम्पन्न हो बारंबार 'शिव' 'शिव' यों उच्चारण करते हुए एक करोड़ जप करके सामने खड़े हो गये । इसी समय स्वयं साक्षात् शिव पूर्वोक्त स्वरूप धारण करके प्रकट हो गये और यों कहने लगे ।

श्रीशिवजी बोले—हरे ! ब्रह्मन् ! देवगण तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियो ! मैं तुमलोगोंके इस जपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः अब तुमलोग अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो ।

देवताओंने कहा—देवाधिदेव ! कल्याणकर्ता जगदीश्वर ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो देवोंकी विकलताका विचार करके शीघ्र ही त्रिपुरका संहार कर दीजिये । परमेश्वर ! आप दीनबन्धु तथा कृपाकी खान हैं । आपने ही सदासे

हम देवताओंकी बारंबार विपत्तियोंसे रक्षा की है, अतः इस समय भी आप हमारी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तब ब्रह्मा और विष्णुसहित देवोंकी वह बात सुनकर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और पुनः इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—हरे! ब्रह्मन्! देवगण! तथा मुनियो! अब त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझो। तुमलोग आदर-पूर्वक मेरी बात सुनो (और उसके अनुसार कार्य करो)। मैंने पहले जिस दिव्य रथ, सारथि, धनुष और उत्तम बाणको अङ्गीकार किया है, वह सब शीघ्र ही तैयार करो। विष्णो तथा विधे! निश्चय ही तुम दोनों त्रिलोकीके अधिपति हो; इसलिये तुम्हें चाहिये कि मेरे लिये प्रयत्नपूर्वक सम्राट्के योग्य सारा उपकरण प्रस्तुत कर दो। तुम दोनों सृष्टिके सृजन और पालन-कार्यमें नियुक्त हो, अतः त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर देवताओंकी सहायताके लिये यह कार्य अवश्य करो। यह शुभ मन्त्र (जिसका तुमलोगोंने जप किया है) महान् पुण्यमय, तथा मुझे प्रसन्न करनेवाला है। यह भुक्ति-मुक्तिका दाता, सम्पूर्ण कामनाओंका पूरक और शिव-भक्तोंके लिये आनन्द-प्रद है। यह स्वर्गकामी पुरुषोंके लिये धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। यह निष्कामके लिये मोक्ष तथा साधन करनेवाले पुरुषोंके लिये भुक्ति-मुक्तिका साधक है। जो मनुष्य पवित्र होकर सदा इस मन्त्रका कीर्तन करता है, सुनता है, अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! परमात्मा शिवकी यह बात सुनकर सभी देवता परम प्रसन्न हुए और ब्रह्मा तथा विष्णुको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय विश्वकर्माने शिवके आज्ञानुसार विश्वके हितके लिये एक सर्वदेवमय तथा परम शोभन दिव्य रथका निर्माण किया।

(अध्याय ६–८)

सर्वदेवमय रथका वर्णन, शिवजीका उस रथपर चढ़कर युद्धके लिये प्रस्थान, उनका पशुपति नाम पड़नेका कारण, शिवजीद्वारा गणेशका पूजन और त्रिपुर-दाह, मयदानवका त्रिपुरसे जीवित बच निकलना

व्यासजीने कहा—शैवप्रवर सनत्कुमारजी! आपकी बुद्धि बड़ी उत्तम है, आप सर्वज्ञ हैं। तात! आपने परमेश्वर शिवकी जो कथा सुनायी है, वह अत्यन्त अद्भुत है। अब बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके लिये जिस देवमय एवं परमोत्कृष्ट दिव्य रथका निर्माण किया था, उसका वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने! व्यासजीकी यह बात सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् मुनिवर व्यासजी! मैं शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके अपनी बुद्धिके अनुसार रथकी निर्माण-कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो! तदनन्तर विश्वकर्माने रुद्रदेवके लिये बड़े यत्नसे आदर-पूर्वक सर्वलोकमय दिव्य रथकी रचना की। वह सर्वसम्मत तथा सर्वभूतमय रथ सुवर्णका बना हुआ था। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य और वामचक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। दाहिने चक्रमें बारह अरे लगे हुए थे, जिनमें बारहों सूर्य प्रतिष्ठित थे और बायाँ पहिया सोलह अरोंसे युक्त था, जिनमें चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ विराजमान थीं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विप्रेन्द्र! सत्ताईसों नक्षत्र भी उस वामचक्रकी ही शोभा बढ़ा रही थीं। विप्रश्रेष्ठ! छहों ऋतुएँ उन दोनों पहियोंकी नेमि बनीं। अन्तरिक्ष रथका अग्रभाग हुआ और मन्दराचलने रथकी बैठकका स्थान ग्रहण किया। उदयाचल और अस्ताचल—ये दोनों उस रथके कूबर हुए। महामेरु अधिष्ठान हुआ और शाखापर्वत उसके आश्रयस्थान हुए। संवत्सर उस रथका वेग, उत्तरायण और दक्षिणायन—दोनों लोहधारक, मुहूर्त बन्धुर (रस्सा), कलाएँ उसकी कीलें हुईं। काष्ठाएँ उसका घोणा (नासिका-रूप अग्रभाग), क्षण अक्षदण्ड, निमेष अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) और लव ईषादण्ड हुए। द्युलोक इस रथका वरूथ (ऊपरी पर्दा) तथा स्वर्ग और मोक्ष ध्वजाएँ हुईं। अभ्रमु (ऐरावतकी पत्नी) और कामधेनु जुएके अन्तिम छोरपर स्थित हुए। अव्यक्त (प्रकृति) उसका ईषादण्ड, बुद्धि नड्वल, अहंकार कोना और पञ्च महाभूत उसका बल थे। मुनिश्रेष्ठ! इन्द्रियाँ उसे चारों ओरसे विभूषित कर रही थीं और श्रद्धा उस रथकी चाल थी। उस समय वेदोंके छहों अङ्ग ही उसके भूषण और पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उपभूषण हुए। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त बलसम्पन्न श्रेष्ठ मन्त्र घण्टाके स्थानापन्न हुए और वर्ण तथा

आश्रम उसके पाद बने। सहस्र फणोंसे सुशोभित शेषनाग बन्धनरज्जु हुए और दिशाएँ तथा उपदिशाएँ उसके पाद बनीं। पुष्कर आदि तीर्थोंने रत्नजटित स्वर्णमय पताकाओंका स्थान ग्रहण किया और चारों समुद्र उस रथके आच्छादन-वस्त्र बने। गङ्गा आदि सभी श्रेष्ठ सरिताओंने सुन्दरी स्त्रियोंका रूप धारण किया और समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें चँवर ले यत्र-तत्र स्थित होकर वे रथकी शोभा बढ़ाने लगीं। आवह आदि सातों वायुओंने स्वर्णमय उत्तम सोपानका काम सँभाला। लोकालोक पर्वत उसके चारों ओरका उपसोपान और मानस आदि सरोवर उसके सुन्दर बाहरी विषमस्थान हुए। सारे वर्षाचल उसके चारों ओरके पाश बने और नीचेके लोकोंके निवासी उस रथका तल भाग हुए। देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा लगाम पकड़नेवाले सारथि हुए और ब्रह्मदैवत ॐकार उन ब्रह्मदेवका चाबुक हुआ। अकारने विशाल छत्रका रूप धारण किया। मन्दराचल पार्श्व भागका दण्ड हुआ। शैलराज हिमालय धनुष और स्वयं नागराज शेष उसकी प्रत्यञ्चा बने। श्रुतिरूपिणी सरस्वती देवी उस धनुषकी घण्टा हुईं और महातेजस्वी विष्णु बाण तथा अग्नि उस बाणके नोक बने। मुने! चारों वेद उस रथमें जुतनेवाले चार घोड़े कहे गये हैं। इसके बाद शेष बची हुई ज्योतियाँ उन अश्वोंकी आभूषण हुईं। विषसे उत्पन्न हुई वस्तुओंने सेनाका रूप धारण किया, वायु बाजा बजानेवाले और व्यास आदि मुख्य-मुख्य ऋषि वाहवाहक हुए। मुनीश्वर! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बतलाता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ वस्तु थी, वह सब उस रथमें विद्यमान थी। इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे उस शुभ रथका तथा रथसामग्रीका निर्माण किया था।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! इस प्रकारके महान् दिव्य रथमें, जो अनेकविध आश्चर्योंसे युक्त था, वेदरूपी अश्वोंको जोतकर ब्रह्माने उसे शिवको समर्पित कर दिया। शम्भुको निवेदित करनेके पश्चात् जो विष्णु आदि देवोंके सम्माननीय एवं त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन देवेश्वरकी प्रार्थना करके ब्रह्माजी उन्हें उस रथपर चढ़ाने लगे। तब महान् ऐश्वर्यशाली सर्वदेवमय शम्भु रथ-सामग्रीसे युक्त उस दिव्य रथपर आरूढ़ हुए। उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, लोकपाल और ब्रह्मा-विष्णु भी उनकी स्तुति कर रहे थे। गानविद्याविशारद अप्सराओंके गण उन्हें घेरे हुए थे। सारथि-के स्थानपर ब्रह्माको देखकर उन वरदायक शम्भुकी विशेष शोभा हुई। लोककी सारी वस्तुओंसे कल्पित उस रथपर शिवजी चढ़ ही रहे थे कि वेदसम्भूत वे घोड़े सिरके बल भूमिपर गिर पड़े। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया। सारे पर्वत डगमगाने लगे। सहसा शेषनाग शिवजीका भार न सह सकनेके कारण आतुर हो काँप उठे। तब उसी क्षण भगवान् धरणीधरने उठकर नन्दीश्वरका रूप धारण किया और रथके नीचे जाकर उसे ऊपरको उठाया; परंतु नन्दीश्वर भी रथारूढ महेशके उस उत्तम तेजको सहन न कर सके, अतः उन्होंने तत्काल ही पृथ्वीपर घुटने टेक दिये। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी आज्ञासे हाथमें चाबुक ले घोड़ोंको उठाकर उस श्रेष्ठ रथको खड़ा किया। तदनन्तर महेशद्वारा अधिष्ठित उस उत्तम रथमें बैठे हुए ब्रह्माजीने रथमें जुते हुए मन और वायुके समान वेगशाली वेदमय अश्वोंको उन तपस्वी दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको लक्ष्य करके आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् लोकोंके कल्याणकर्ता भगवान् रुद्र देवोंकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगे—'सुर-श्रेष्ठो! यदि तुमलोग देवों तथा अन्य प्राणियोंके विषयमें पृथक्-पृथक् पशुत्वकी कल्पना करके उन पशुओंका आधिपत्य मुझे प्रदान करोगे, तभी मैं उन असुरोंका संहार करूँगा; क्योंकि वे दैत्यश्रेष्ठ तभी मारे जा सकते हैं, अन्यथा उनका वध असम्भव है।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अगाध बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सभी देवता पशुत्वके प्रति सशङ्कित हो उठे, जिससे उनका मन खिन्न हो गया। तब उनके भावको समझकर देवदेव अम्बिकापति शम्भु करुणार्द्र हो गये। फिर वे हँसकर उन देवताओंसे इस प्रकार बोले।

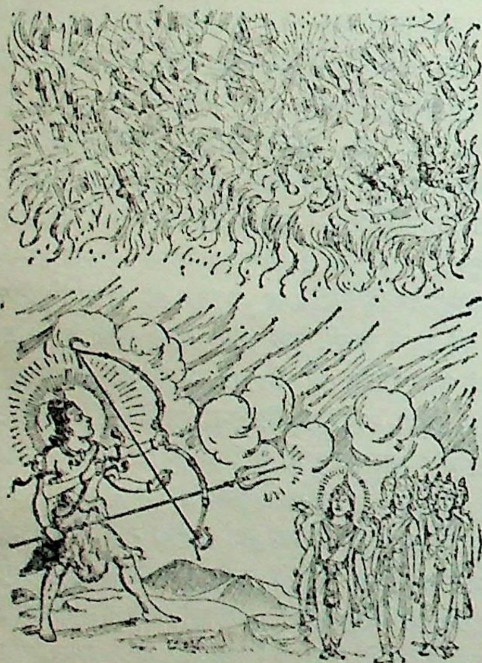
शम्भुने कहा—देवश्रेष्ठो! पशुभाव प्राप्त होनेपर भी तुमलोगोंका पतन नहीं होगा। मैं उस पशुभावसे विमुक्त होनेका उपाय बतलाता हूँ, सुनो और वैसा ही करो। समाहित मनवाले देवताओ! मैं तुमलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो इस दिव्य पाशुपत-व्रतका पालन करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा। सुरश्रेष्ठो! तुम्हारे अतिरिक्त जो अन्य प्राणी भी मेरे पाशुपत-व्रतको करेंगे, वे भी निस्संदेह पशुत्वसे छूट जायँगे। जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बारह वर्षतक, छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक मेरी सेवा करेगा अथवा करायेगा, वह पशुत्वसे विमुक्त हो जायगा। इसलिये श्रेष्ठ देवताओ! तुमलोग भी जब इस परमोत्कृष्ट दिव्य व्रतका पालन करोगे तो उसी समय पशुत्वसे मुक्त हो जाओगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! परमात्मा महेश्वरका वचन सुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—'तथेति'—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। इसीलिये बड़े-बड़े देवता तथा असुर भगवान् शंकरके पशु बने और पशुत्वरूपी पाशसे विमुक्त करनेवाले रुद्र पशुपति हुए। तभीसे महेश्वरका 'पशुपति' यह नाम विश्वमें विख्यात हो गया। यह नाम समस्त लोकोंमें कल्याण प्रदान करनेवाला है। उस समय सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि हर्षमग्न होकर जय-जयकार करने लगे और देवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य प्राणी भी परमानन्दमग्न हो गये। उस अवसरपर महात्मा शिवका जैसा रूप प्रकट हुआ था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। तदनन्तर जो शिवा तथा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और समस्त प्राणियोंके सुख प्रदान करनेवाले हैं, वे महेश्वर यों सुसज्जित होकर त्रिपुरका संहार करनेके लिये प्रस्थित हुए। जिस समय देवदेव महादेव त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले, उस अवसरपर देवराज आदि सभी प्रधान-प्रधान देवता भी उनके साथ प्रस्थित हुए। पर्वतके समान विशालकाय उन सुरेश्वरोंका मन प्रसन्न था, वे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। वे सभी हाथोंमें हल, शाल, मुसल, भुशुण्डि और नाना प्रकारके पर्वत-जैसे विशाल आयुधोंको धारण करके हाथी, घोड़े, सिंह, रथ और बैलोंपर सवार हो चल रहे थे। उस समय जिनके शरीर परम प्रकाशमान थे और मन महान् उत्साहसे सम्पन्न थे तथा जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे, वे इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु आदि देव शम्भुकी जय-जयकार बोलते हुए महेश्वरके आगे-आगे चले। सभी दण्डी एवं जटाधारी मुनि हर्ष मनाने लगे और आकाशचारी सिद्ध तथा चारण पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। विप्रेन्द्र ! त्रिपुरकी यात्रा करते समय जितने गणेश्वर शिवजीके साथ थे, उनकी गणना करके कौन पार पा सकता है; तथापि मैं कुछका वर्णन करता हूँ। योगिन् ! समस्त गणराजोंमें श्रेष्ठ भृङ्गी गणेश्वरों तथा देवगणोंसे घिरकर विमानपर आरूढ़ हो महेन्द्रकी भाँति त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले। उनके साथ-साथ केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली-सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेक्षणक, सूर्याक्ष, सूरिनामा, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजय, यन्ता, हिमकर, शताक्ष, पञ्चाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजहु, शतास्य, रङ्क, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्धवक्त्र आदि बहुतसे अप्रमेय बलशाली वीर गणाध्यक्ष लक्ष्य-लक्षणकी परवाह न करते हुए महेश्वरको घेरकर चल रहे थे।

व्यासजी ! तदनन्तर महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियों-सहित उस रथपर स्थित हो उन सुरद्रोहियोंके तीनों पुरोंको पूर्णतया दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। उन्होंने रथके शीर्ष-स्थानपर स्थित हो उस महान् अद्भुत धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उसपर उत्तम बाणका संधान करके वे रोषावेशसे होठको चाटने लगे। फिर धनुषकी मूठको दृढ़तापूर्वक पकड़-कर और दृष्टिमें दृष्टि मिलाकर वे वहाँ अचलभावसे खड़े हो गये। परंतु उनके अँगूठेके अग्रभागमें स्थित होकर गणेश निरन्तर पीड़ा ही पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर त्रिशूलधारी शंकरका लक्ष्य नहीं बन सके। तब धनुष-बाणधारी मुञ्जकेश विरूपाक्ष शंकरने परम शोभन आकाशवाणी सुनी। (उस व्योमवाणीने कहा—) 'ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर! जबतक आप इन गणेशकी अर्चना नहीं कर लेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंका संहार नहीं कर सकेंगे।' तब ऐसी बात सुनकर अन्धकासुरके निहन्ता भगवान् शिवने भद्रकालीको बुलाकर गजाननका पूजन किया। जब हर्षपूर्वक विधि-विधान-सहित अग्रभागमें स्थित उन विनायककी पूजा की गयी, तब वे प्रसन्न हो गये। फिर तो भगवान् शंकरको उन तारक-पुत्र महामनस्वी दैत्योंके तीनों नगर यथोक्तरूपसे आकाशमें स्थित दीख पड़े। इस विषयमें कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जब शिवजी स्वयं स्वतन्त्र, परब्रह्म, सगुण, निर्गुण, सबके द्वारा अलक्ष्य, स्वामी, परमात्मा, निरञ्जन, पञ्चदेवमय, पञ्चदेवोंके उपास्य और परात्पर प्रभु हैं, वे ही सबके उपास्य हैं, उनका उपास्य कोई नहीं है, तब सबके वन्दनीय परब्रह्मस्वरूप उन देवेश्वर महेश्वरके विषयमें यह बात उचित नहीं जान पड़ती कि उनकी कार्यसिद्धि अन्यकी कृपापर अवलम्बित हो। परंतु मुने ! उन देवाधिदेव वरदानी महेश्वरके चरित्रमें लीलावश सब कुछ घटित हो सकता है। अस्तु ! इस प्रकार जब गणाधिपका पूजन करके महादेवजी स्थित हुए, तब वे तीनों पुर कालवश शीघ्र ही एकताको प्राप्त हो गये। मुने ! उन त्रिपुरोंके परस्पर मिलकर एक हो जानेपर महान् आत्मबलसे सम्पन्न देवताओंको महान् हर्ष हुआ। तब सम्पूर्ण देवगण, सिद्ध और परमर्षि अष्टमूर्तिधारी शिवकी स्तुति करके उच्चस्वरसे जय-जयकार करने लगे। उस समय ब्रह्मा और जगदीश्वर विष्णुने कहा—'महेश्वर ! तारकके पुत्र उन

त्रिपुरनिवासी दैत्योंके वधका समय भी आ गया है। विभो! इसीलिये ये पुर एकताको प्राप्त हो गये हैं। अतः देवेश! जबतक ये त्रिपुर पुनः विलग हों उसके पहले ही आप बाण छोड़कर इन्हें भस्म कर डालिये और देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये।'

मुने! तदनन्तर शिवजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर पूज्य पाशुपतास्त्र नामक बाणका संधान किया और उसे वे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करने लगे। शंकरजीने जिस समय अपने अद्भुत धनुषको खींचा था, उस समय अभिजित् मुहूर्त चल रहा था। उन्होंने धनुषकी टंकार तथा दुस्सह सिंहनाद करके अपना नाम घोषित किया और उन महासुरोंको ललकारकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उस भीषण बाणको उनपर छोड़ दिया। तब जिसके नोकपर अग्निदेव प्रतिष्ठित थे और जो विशेषरूपसे पापका विनाशक तथा विष्णुमय था; उस महान् जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाणने उन त्रिपुरनिवासी दैत्योंको दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों



पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही चारों समुद्रोंरूपी मेखलावाली भूमिपर गिर पड़े। उस समय शिवजीकी पूजाका अतिक्रमण कर देनेके कारण सैकड़ों दैत्य उस बाणस्थित अग्निसे जलकर हाहाकार मचा रहे थे। जब भाइयोंसहित तारकाक्ष जलने लगा, तब उसने अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्मरण किया और मन-ही-मन महादेवको देखकर परम भक्तिपूर्वक नाना प्रकारसे विलाप करता हुआ वह उनसे कहने लगा।

तारकाक्ष बोला—'भव! आप हमपर प्रसन्न हैं, यह हमें ज्ञात हो गया है। इस सत्यके प्रभावसे आप फिर कब भाइयोंसहित हमको दग्ध करेंगे! भगवन्! जो देवता और असुरोंके लिये अप्राप्य है, वह (आपके हाथसे मरणरूप) दुर्लभ लाभ हमें प्राप्त हो गया। अब जिस-जिस योनिमें हम जन्म धारण करें, वहाँ हमारी बुद्धि आपकी भक्तिसे भावित रहे।' मुने! यों वे दैत्य विलाप कर ही रहे थे कि शिवजीकी आज्ञासे उस अग्निने उन्हें अद्भुत रीतिसे जलाकर राखकी ढेरी बना दिया। व्यासजी! और भी जो बालक और वृद्ध दानव थे, वे शिवाज्ञानुसार उस अग्निद्वारा शीघ्र ही जलकर भस्म हो गये। यहाँतक कि उन त्रिपुरोंमें जितनी स्त्रियाँ और पुरुष थे, वे सब-के-सब उस अग्निसे उसी प्रकार दग्ध हो गये जैसे कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है। उस समय उस भीषण अग्निसे कोई भी स्थावर-जंगम बिना जले नहीं बचा, किंतु असुरोंका विश्वकर्मा अविनाशी मय बच गया; क्योंकि वह देवोंका अविरोधी, शम्भुके तेजसे सुरक्षित और सद्भक्त था। विपत्तिके अवसरपर भी वह महेश्वरका शरणागत बना रहता था। जिन दैत्यों तथा अन्य प्राणियोंका भाव-अभाव अथवा कृत-अकृतके प्राप्त होनेपर नाशकारक पतन नहीं होता, वे विनाशसे बचे रहते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंको अत्यन्त सम्भावित—उत्तम कर्मके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि निन्दित कर्म करनेसे प्राणीका विनाश हो जाता है। अतः गर्हित कर्मका आचरण भूलकर भी न करे*। उस समय भी जो दैत्य बन्धु-बान्धवोंसहित शिवजीकी पूजामें तत्पर थे, वे सब-के-सब शिव-पूजाके प्रभावसे (दूसरे जन्ममें) गणोंके अधिपति हो गये। (अध्याय ९-१०)

* तस्माद् यत्नः सुसम्भाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि। गर्हणात् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत्॥

(शि० पु० रु० सं० युद्ध० खं० १०। ४२)

देवोंके स्तवनसे शिवजीका कोप शान्त होना और शिवजीका उन्हें वर देना, मय दानवका शिवजीके समीप आना और उनसे वर-याचना करना, शिवजीसे वर पाकर मयका वितललोकमें जाना

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! आप तो ब्रह्माके पुत्र और शिवभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः आप धन्य हैं। अब यह बतलाइये कि त्रिपुरके दग्ध हो जानेपर सम्पूर्ण देवताओंने क्या किया ? मय कहाँ गया और उन त्रिपुराध्यक्षों-की क्या गति हुई ? यदि यह वृत्तान्त शम्भुकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाला हो तो वह सब विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने ! व्यासजीका प्रश्न सुनकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवजीके युगल चरणोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् व्यासजी ! जब महेश्वरने दैत्योंसे खचाखच भरे हुए सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म कर दिया, तब सभी देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उस समय शंकरजीके महान् भयंकर रौद्र रूपको, जो करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और प्रलयकालीन अग्निकी भाँति तेजस्वी था तथा जिसके तेजसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित-सी दीख रही थीं, देखकर साथ ही हिमाचलपुत्री पार्वतीदेवीकी ओर दृष्टिपात करके सम्पूर्ण देवता भयभीत हो गये। तब मुख्य-मुख्य देवता विनम्र होकर सामने खड़े हो गये। उस अवसरपर बड़े-बड़े ऋषि भी देवताओंकी वाहिनीको भयभीत देखकर खड़े ही रह गये, कुछ बोल न सके। वे चारो ओरसे शम्भुको प्रणाम करने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्मा भी शिवजीके उस रूपको देखकर भयग्रस्त हो गये। तब उन्होंने डरे हुए विष्णु तथा देवगणोंके साथ प्रसन्न मनमें सावधानीपूर्वक उन गिरिजासहित महेश्वरका, जो देवोंके भी देव, भव तथा हरनामसे प्रसिद्ध, भक्तोंके अधीन रहनेवाले और त्रिपुरहन्ता हैं, स्तवन किया। तदनन्तर सभी प्रमुख देवताओंने भगवान् शिवकी स्तुति की। यों स्तुति किये जानेपर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकर प्रसन्न होकर बोले।

शंकरजीने कहा—ब्रह्मा, विष्णु तथा देवगण ! मैं तुमलोगोंपर विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम सभी विचार करके अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! शिवद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर तो वे बोल उठे।

देवताओंने कहा—भगवन् ! देवदेवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हम देवगणोंको अपना दास समझकर वर देना चाहते हैं तो देवसत्तम ! जब-जब देवताओंपर दुःखकी सम्भावना हो, तब-तब आप प्रकट होकर सदा उनके दुःखोंका विनाश करते रहें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब ब्रह्मा, विष्णु और देवताओंने भगवान् रुद्रसे ऐसी प्रार्थना की, तब वे शान्त तथा प्रसन्न होकर एक साथ ही सबसे बोले—'अच्छा, सदा ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर शंकरजीने, जो सदा देवोंका दुःख हरण करनेवाले हैं, प्रसन्नतापूर्वक देवोंको जो कुछ अभीष्ट था, वह सारा-का-सारा उन्हें प्रदान कर दिया। इसी समय मय दानव, जो शिवजीकी कृपाके बलसे जलनेसे बच गया था, शम्भुको प्रसन्न देखकर हर्षित मनसे वहाँ आया। उसने विनीत भावसे हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक हर तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम किया। फिर वह शिवजीके चरणोंमें लोट गया। तत्पश्चात् दानवश्रेष्ठ मयने उठकर शिवजीकी ओर देखा। उस समय प्रेमके कारण उसका गला भर आया और वह भक्तिपूर्ण चित्तसे उनकी स्तुति करने लगा। द्विजश्रेष्ठ ! मयद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और आदरपूर्वक उससे बोले।

शिवजीने कहा—दानवश्रेष्ठ मय ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, अतः तू वर माँग ले। इस समय जो कुछ भी तेरे मनकी अभिलाषा होगी, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके इस मङ्गल-मय वचनको सुनकर दानवश्रेष्ठ मयने अञ्जलि बाँधकर विनम्र हो उन प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करके कहा।

मय बोला—देवाधिदेव महादेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर पानेका अधिकारी समझते हैं तो अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये। परमेश्वर ! मैं सदा अपने भक्तोंसे मित्रता रक्खूँ, दीनोंपर सदा मेरा दया-भाव बना रहे और अन्यान्य दुष्ट प्राणियोंकी मैं उपेक्षा करता रहूँ। महेश्वर ! कभी भी मुझमें आसुर भावका उदय

न हो। नाथ! निरन्तर आपके शुभ भजनमें तल्लीन रहकर निर्भय बना रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! शंकर तो सबके स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं। मयने जब इस प्रकार उन परमेश्वरकी प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न होकर मयसे बोले।

महेश्वरने कहा—दानवसत्तम! तू मेरा भक्त है, तुझमें कोई भी विकार नहीं है; अतः तू धन्य है। अब मैं तेरा जो कुछ भी अभीष्ट वर है, वह सारा-का-सारा तुझे प्रदान करता हूँ। अब तू मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित वितल लोकको चला जा। वह स्वर्गसे भी रमणीय है। तू वहाँ प्रसन्नचित्तसे मेरा भजन करते हुए निर्भय होकर निवास कर। मेरी आज्ञासे कभी भी तुझमें आसुर भावका प्राकट्य नहीं होगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! मयने महात्मा शंकरकी उस आज्ञाको सिर झुकाकर स्वीकार किया और उन्हें तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम करके वह वितललोकको चला गया। तदनन्तर महादेवजी देवताओंके उस महान् कार्यको पूर्ण करके देवी पार्वती, अपने पुत्र और सम्पूर्ण गणोंसहित अन्तर्धान हो गये। जब परिवारसमेत भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये, तब वह धनुष, बाण, रथ आदि सारा उपकरण भी अदृश्य हो गया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य देव,मुनि, गन्धर्व, किंनर, नाग, सर्प, अप्सरा और मनुष्योंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। वे सभी शंकरजीके उत्तम यशका बखान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्हें परम सुखकी प्राप्ति हुई। महर्षे! इस प्रकार मैंने शशिमौलि शंकरजीका विशाल चरित, जो त्रिपुर-विनाशको सूचित करनेवाला तथा परमोत्कृष्ट लीलासे युक्त है, सारा-का-सारा तुम्हें सुना दिया। (अध्याय ११-१२)

दम्भकी तपस्या और विष्णुद्वारा उसे पुत्र-प्राप्तिका वरदान, शङ्खचूडका जन्म, तप और उसे वरप्राप्ति, ब्रह्माजीकी आज्ञासे उसका पुष्करमें तुलसीके पास आना और उसके साथ वार्तालाप, ब्रह्माजीका पुनः वहाँ प्रकट होकर दोनोंको आशीर्वाद देना और शङ्खचूडका गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण करना

तदनन्तर जलन्धरकी उत्पत्तिसे लेकर उसके वधतकका प्रसङ्ग सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—मुने! अब शम्भुका दूसरा चरित्र प्रेमपूर्वक श्रवण करो। उसके सुनने मात्रसे शिवभक्ति सुदृढ़ हो जाती है व्यासजी! शङ्खचूड नामक एक महावीर दानव था, जो देवोंके लिये कण्टकस्वरूप था। उसे शिवजीने रणके मुहानेपर त्रिशूलसे मार डाला था। शिवजीका वह दिव्य चरित्र परम पावन तथा पापनाशक है। तुमपर अधिक स्नेह होनेके कारण मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमपूर्वक उसे श्रवण करो। ब्रह्माके पुत्र जो महर्षि मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। ये मननशील, धर्मिष्ठ, सृष्टिकर्ता, विद्यासम्पन्न तथा प्रजापति थे। दक्षने प्रसन्न होकर अपनी तेरह कन्याओंका विवाह इनके साथ कर दिया। उनकी संतानोंका इतना अधिक विस्तार हुआ कि उसका वर्णन करना कठिन है। उन कश्यप-पत्नियोंमें एकका नाम दनु था। वह श्रेष्ठ सुन्दरी तथा महारूपवती थी। उस साध्वीका सौभाग्य बढ़ा हुआ था। मुने! उस दनुके बहुत-से महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। विस्तार-भयसे उनके नाम नहीं गिनाये जा रहे हैं। उनमें एकका नाम विप्रचित्ति था, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। उसका पुत्र दम्भ हुआ, जो जितेन्द्रिय, धार्मिक तथा विष्णुभक्त था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब उस वीरको चिन्ता व्याप्त हो गयी। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्र प्राप्त किया और पुष्करमें जाकर घोर तप करना आरम्भ किया। वहाँ सुदृढ़ आसन लगाकर कृष्ण-मन्त्रका जप करते हुए उसके एक लाख वर्ष बीत गये। तब उस तपस्वीके मस्तकसे एक जाज्वल्यमान तेज निकलकर सर्वत्र व्याप्त हो गया। वह तेज इतना दुस्सह था कि उससे सम्पूर्ण देवता, मुनि तथा मनु संतप्त हो उठे। तब वे इन्द्रको अगुआ बनाकर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता विधाताको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और फिर विशेषरूपसे व्याकुल होकर अपना सारा वृतान्त उनसे कह सुनाया। उनकी बात सुनकर ब्रह्मा भी उन्हें साथ लेकर वह सारा वृत्तान्त विष्णुको सुनानेके लिये वैकुण्ठको चले। वहाँ पहुँचकर सब लोगोंने त्रिलोकीके अधीश्वर तथा रक्षक परमात्मा विष्णुको

विनीतभावसे प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव ! हमें पता नहीं कि यहाँ कौन-सा कारण उत्पन्न हो गया है। हम किसके तेजसे संतप्त हो उठे हैं, यह आप ही बतलाइये। दीनबन्धो ! अपने दुखी सेवकोंके रक्षक तो आप ही हैं; अतः शरणदाता ! रमानाथ ! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्मा आदि देवताओंके वचनको सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णु मुस्कराये और प्रेमपूर्वक बोले।

विष्णुने कहा—अमरो ! शान्त रहो, घबराओ मत, भयभीत न होओ। कोई उलट-पलट नहीं होगा; क्योंकि अभी प्रलयका समय नहीं आया है। (यह तेज तो) दम्भ नामक दानवका है, जो मेरा भक्त है और पुत्रकी कामनासे तप कर रहा है। मैं उसे वरदान देकर शान्त कर दूँगा।

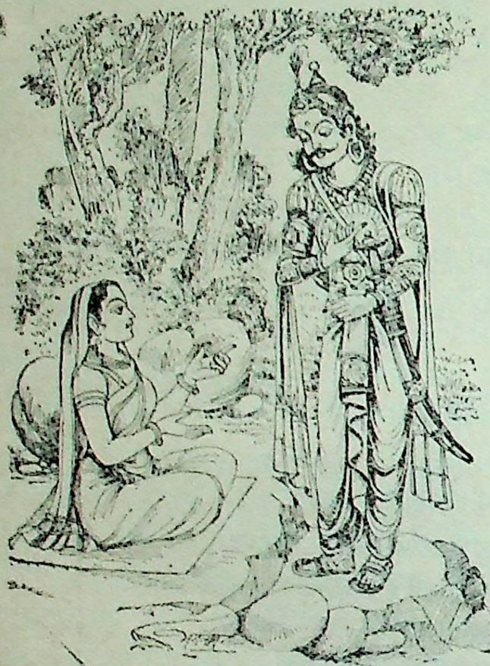
सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! भगवान् विष्णुके यों कहनेपर ब्रह्मा आदि देवताओंकी व्यग्रता जाती रही, वे सभी धैर्य धारण करके अपने-अपने धामको लौट गये। इधर भगवान् अच्युत भी वर प्रदान करनेके लिये पुष्करको चल पड़े, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था। वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने अपने मन्त्रका जप करनेवाले भक्त दम्भको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—'वर माँग !' तब विष्णुका उपर्युक्त वचन सुनकर और उन्हें आगे उपस्थित देखकर दम्भ बड़ी भक्तिके साथ उनके चरणोंमें लोट-पोट हो गया और बारंबार स्तुति करते हुए बोला।

दम्भने कहा—देवाधिदेव ! कमलनयन ! आपको नमस्कार है। रमानाथ ! मुझपर कृपा कीजिये। त्रिलोकेश ! मुझे एक ऐसा वीर पुत्र दीजिये, जो आपका भक्त तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो। वह त्रिलोकीको जीत ले, परंतु देवता उसे पराजित न कर सकें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! दानवराज दम्भके यों कहनेपर श्रीहरिने उसे वह वर दे दिया और उस घोर तपसे उसे निवृत्त करके स्वयं अन्तर्धान हो गये। दानवेन्द्र दम्भकी तपस्या सिद्ध हो चुकी थी, जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हो गया था; अतः वह भी श्रीहरिके चले जानेपर उस दिशाको नमस्कार करके अपने घरको लौट गया। थोड़े ही समयके उपरान्त उसकी भाग्यवती पत्नी गर्भवती हो गयी। वह अपने तेजसे घरके भीतरी भागको प्रकाशित करती हुई शोभा पाने लगी। मुने ! श्रीकृष्णके पार्षदोंका अग्रणी जो सुदामा नामक गोप था, जिसे राधाजीने शाप दे दिया था, वही उसके गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। तदनन्तर समय आनेपर साध्वी दम्भपत्नीने एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया। तब पिताने बहुत-से मुनीश्वरोंको बुलाकर उसका विधिपूर्वक जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया। द्विजोत्तम ! उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। फिर शुभ दिन आनेपर पिताने उस बालकका 'शङ्खचूड' ऐसा नामकरण किया। वह अपने पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा। वह अत्यन्त तेजस्वी था, अतः उसने बचपनमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं। वह नित्य बालक्रीडा करके अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगा और अपने समस्त कुटुम्बियोंका तो वह विशेषरूपसे प्रेम-भाजन हो गया।

तदनन्तर जब शङ्खचूड बड़ा हुआ, तब वह जैगीषव्य मुनिके उपदेशसे पुष्करमें जाकर ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगा। उस समय वह एकाग्रमन हो अपनी इन्द्रियोंको काबूमें करके गुरूपदिष्ट ब्रह्मविद्याका जप करता रहा। यों पुष्करमें तपस्या करते हुए दानवराज शङ्खचूडको वर देनेके लिये लोकगुरु एवं ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा शीघ्र ही वहाँ पधारे और उस दानवेन्द्रसे बोले—'वर माँग !' ब्रह्माजीको देखकर उसने अत्यन्त नम्रतासे उन्हें अभिवादन किया और फिर उत्तम वाणीसे उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उसने ब्रह्मासे वर माँगते हुए कहा—'भगवन् ! मैं देवताओंके लिये अजेय हो जाऊँ।' तब ब्रह्माजी परम प्रसन्न होकर बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने शङ्खचूडको वह दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया, जो जगत्के सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल और सर्वत्र विजय प्रदान करनेवाला है। तदनन्तर ब्रह्माजीने उसे आज्ञा दी कि तुम बदरीवनको जाओ। वहीं धर्मध्वजकी कन्या तुलसी सकामभावसे तपस्या कर रही है। तुम उसके साथ विवाह कर लो।' यों कहकर ब्रह्माजी उसी क्षण उसके सामने ही तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब तपःसिद्ध शङ्खचूडने भी, जिसके सारे मनोरथ तपोबलसे पूर्ण हो चुके थे और मुखपर प्रसन्नता खेल रही थी, पुष्करमें ही उस जगत्के मङ्गलोंके भी मङ्गलस्वरूप कवचको गलेमें बाँध लिया और ब्रह्माके आज्ञानुसार वह तत्काल ही बदरिकाश्रमको चल पड़ा। वहाँ दानव शङ्खचूड सहसा उस स्थानपर जा

पहुँचा जहाँ धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी। सुन्दरी तुलसीका रूप अत्यन्त कमनीय और मनोहर था। वह उत्तम शीलसे सम्पन्न थी। उस सतीको देखकर शङ्खचूड उसके समीप ही ठहर गया और मधुर वाणीमें उससे बोला।



शङ्खचूडने कहा—सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? तुम यहाँ चुपचाप बैठकर क्या कर रही हो? यह सारा रहस्य मुझे बतलाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शङ्खचूडके ये सकाम वचन सुनकर तुलसीने उससे कहा।

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी तपस्विनी कन्या हूँ और यहाँ तपोवनमें तप कर रही हूँ। आप कौन हैं? सुखपूर्वक अपने अभीष्ट स्थानको चले जाइये; क्योंकि नारीजाति ब्रह्मा आदिको भी मोहमें डाल देनेवाली होती है। यह विषतुल्य, निन्दनीय, दोष उत्पन्न करनेवाली, मायारूपिणी तथा विचारशीलोंको भी शृङ्खलाके समान जकड़ लेनेवाली होती है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! तुलसी जब इस प्रकार रसभरी बातें कहकर चुप हो गयी, तब उसे मुसकराती देखकर शङ्खचूडने भी कहना आरम्भ किया।

शङ्खचूड बोला—देवि! तुमने जो बात कही है, वह सारी-की-सारी मिथ्या हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें कुछ सत्य है और कुछ असत्य भी। इसका विवरण मुझसे सुनो। शोभने! जगत्‌में जितनी पतिव्रता नारियाँ हैं, उनमें तुम अग्रणी हो। मेरा तो ऐसा विचार है कि जैसे मैं पापबुद्धि कामी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी काम-पराधीना नहीं हो। फिर भी इस समय मैं ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम्हारे समीप आया हूँ और गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुम्हें ग्रहण करूँगा। भद्रे! क्या तुम मुझे नहीं जानती हो अथवा तुमने कभी मेरा नाम भी नहीं सुना है? अरे! देवताओंमें भगदड़ डालनेवाला शङ्खचूड मैं ही हूँ। मैं दनुका वंशज तथा दम्भ नामक दानवका पुत्र हूँ। पूर्वकालमें मैं श्रीहरिका पार्षद था। मेरा नाम सुदामा गोप था। इस समय मैं राधिकाजीके शापसे दानवराज शङ्खचूड होकर उत्पन्न हुआ हूँ। ये सारी बातें मुझे ज्ञात हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! तुलसीके समक्ष यों कहकर शङ्खचूड चुप हो गया। जब दानवराजने आदरपूर्वक तुलसीसे ऐसा सत्य वचन कहा, तब वह परम प्रसन्न हुई और मुसकराकर कहने लगी।

तुलसी बोली—भद्र पुरुष! आज आपने अपने सात्त्विक विचारसे मुझे पराजित कर दिया है। जो पुरुष स्त्रीद्वारा परास्त न हो सके, वह संसारमें धन्यवादका पात्र है; क्योंकि जिसे स्त्री जीत लेती है, वह पुरुष सदाचारी होते हुए भी सदा अपावन बना रहता है। देवता, पितर और समस्त मानव उसकी निन्दा करते हैं। जननाशौच तथा मरणाशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें और वैश्य पंद्रह दिनोंमें शुद्ध हो जाता है तथा शूद्रकी शुद्धि एक मासमें हो जाती है—ऐसा वेदका अनुशासन है; परंतु स्त्रीसे पराजित हुए पुरुषकी शुद्धि चितादाहके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे सम्भव ही नहीं है। इसी कारण उसके पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्ड-तर्पण आदिको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवता भी उसके द्वारा अर्पित किये गये पुष्प-फल आदिको स्वीकार नहीं करते। जिसका मन स्त्रियोंद्वारा आहत हो जाता है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, जप, होम, पूजन, विद्या और दानसे क्या लाभ? अर्थात् उसके ये सभी निष्फल हो जाते हैं। मैंने आपके विद्या, प्रभाव और ज्ञानकी जानकारीके लिये ही आपकी परीक्षा ली है;

क्योंकि कामिनीको चाहिये कि वह अपने मनोनीत कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपसे वरण करे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जिस समय तुलसी यों वार्तालाप कर रही थी, उसी समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—शङ्खचूड ! तुम इसके साथ क्या व्यर्थमें वाद-विवाद कर रहे हो ? तुम गान्धर्व-विवाहकी विधिसे इसका पाणिग्रहण करो; क्योंकि निश्चय ही तुम पुरुषरत्न हो और यह सती-साध्वी नारियोंमें रत्नस्वरूपा है। ऐसी दशामें निपुणाका निपुणके साथ समागम गुणकारी ही होगा। (फिर तुलसीकी ओर लक्ष्य करके बोले—) सती-साध्वी तुलसी ! तू ऐसे गुणवान् कान्तकी क्या परीक्षा ले रही है ? यह तो देवताओं, असुरों तथा दानवोंका मान मर्दन करनेवाला है। सुन्दरी ! तू इसके साथ सम्पूर्ण लोकोंमें सर्वदा उत्तम-उत्तम स्थानोंपर चिरकालतक यथेष्ट विहार कर। शरीरान्त होनेपर यह पुनः गोलोकमें श्रीकृष्णको ही प्राप्त होगा और इसकी मृत्यु हो जानेपर तू भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान्‌को प्राप्त करेगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने धामको चले गये। तब दानव शङ्खचूडने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण किया। यों तुलसीके साथ विवाह करके वह अपने पिताके स्थानको चला गया और मनोरम भवनमें उस रमणीके साथ विहार करने लगा। (अध्याय १३—२९)

शङ्खचूडका असुरराज्यपर अभिषेक और उसके द्वारा देवोंका अधिकार छीना जाना, देवोंका ब्रह्माकी शरणमें जाना, ब्रह्माका उन्हें साथ लेकर विष्णुके पास जाना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके जन्मका रहस्योद्घाटन और फिर सबका शिवके पास जाना और शिवसभामें उनकी झाँकी करना तथा अपना अभिप्राय प्रकट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब शङ्खचूडने तप करके वर प्राप्त कर लिया और वह विवाहित होकर अपने घर लौट आया, तब दानवों और दैत्योंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी असुर तुरंत ही अपने लोकसे निकलकर अपने गुरु शुक्राचार्यको साथ ले दल बनाकर उसके निकट आये और विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके अनेकों प्रकारसे आदर प्रदर्शित करते हुए उसका स्तवन करने लगे। फिर उसे अपना तेजस्वी स्वामी मानकर अत्यन्त प्रेमभावसे उसके पास ही खड़े हो गये। उधर दम्भकुमार शङ्खचूडने भी अपने कुलगुरु शुक्राचार्यको आया हुआ देखकर बड़े आदर और भक्तिके साथ उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर गुरु शुक्राचार्यने समस्त असुरोंके साथ सलाह करके उनकी सम्मतिसे शङ्खचूडको दानवों तथा असुरोंका अधिपति बना दिया। दम्भपुत्र शङ्खचूड प्रतापी एवं वीर तो था ही, उस समय असुर-राज्यपर अभिषिक्त होनेके कारण वह असुरराज विशेषरूपसे शोभा पाने लगा। तब उसने सहसा देवताओंपर आक्रमण करके वेगपूर्वक उनका संहार करना आरम्भ किया। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उसके उत्कृष्ट तेजको सहन न कर सके, अतः वे समरभूमिसे भाग चले और दीन होकर यत्र-तत्र पर्वतोंकी खोहोंमें जा छिपे। उनकी स्वतन्त्रता जाती रही। वे शङ्खचूडके वशवर्ती होनेके कारण प्रभाहीन हो गये। इधर शूरवीर प्रतापी दम्भकुमार दानवराज शङ्खचूडने भी सम्पूर्ण लोकोंको जीतकर देवताओंका सारा अधिकार छीन लिया। वह त्रिलोकीको अपने अधीन करके सम्पूर्ण लोकोंपर शासन करने लगा और स्वयं इन्द्र बनकर सारे यज्ञभागोंको भी हड़पने लगा तथा अपनी शक्तिसे कुबेर, सोम, सूर्य, अग्नि, यम और वायु आदिके अधिकारोंका भी पालन कराने लगा। उस समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न महावीर शङ्खचूड समस्त देवताओं, असुरों, दानवों, राक्षसों, गन्धर्वों, नागों, किंनरों, मनुष्यों तथा त्रिलोकीके अन्यान्य प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् था। इस प्रकार महान् राजराजेश्वर शङ्खचूड बहुत वर्षोंतक सम्पूर्ण भुवनोंके राज्यका उपभोग करता रहा। उसके राज्यमें न अकाल पड़ता था न महामारी और न अशुभ ग्रहोंका ही प्रकोप होता था; आधि-व्याधियाँ भी अपना प्रभाव नहीं डाल पाती थीं। यों सारी प्रजा सदा सुखी रहती थी। पृथ्वी बिना जोते ही अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी। नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्तम-उत्तम फलों और रसोंसे युक्त थीं। उत्तम-उत्तम मणियोंकी खदानें थीं। समुद्र अपने तटोंपर निरन्तर ढेर-के-ढेर रत्न बिखेरते रहते थे। वृक्षोंमें सदा पुष्प-फल लगे रहते थे। सरिताओंमें सुस्वादु नीर बहता रहता था।

देवताओंके अतिरिक्त सभी जीव सुखी थे। उनमें किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न होता था। चारों वर्णों और आश्रमोंके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित रहते थे। इस प्रकार जब वह त्रिलोकीका शासन कर रहा था, उस समय कोई भी दुखी नहीं था; केवल देवता भ्रातृ-द्रोहवश दुःख उठा रहे थे। मुने! महाबली शङ्खचूड गोलोकनिवासी श्रीकृष्णका परम मित्र था। साधुस्वभाववाला वह सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें निरत रहता था। पूर्वशापवश उसे दानवकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था, परंतु दानव होनेपर भी उसकी बुद्धि दानवकी-सी नहीं थी।

प्रिय व्यासजी! तदनन्तर जो पराजित होकर राज्यसे हाथ धो बैठे थे, वे सभी सुरगण तथा ऋषि परस्पर मन्त्रणा करके ब्रह्माजीकी सभाको चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्माजीका दर्शन किया और उनके चरणोंमें अभिवादन करके विशेषरूपसे उनकी स्तुति की। फिर आकुलतापूर्वक अपना सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तब ब्रह्मा उन सभी देवताओं तथा मुनियोंको ढाढ़स बँधाकर उन्हें साथ ले सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले वैकुण्ठलोकको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर देवगणोंसहित ब्रह्माने रमापतिका दर्शन किया। उनके मस्तकपर किरीट सुशोभित था, कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे और कण्ठ वनमालासे विभूषित था। वे चतुर्भुज देव अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। श्रीविग्रहपर पीताम्बर शोभा दे रहा था और सनन्दनादि सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे। ऐसे सर्वव्यापी विष्णुकी झाँकी करके ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सामर्थ्यशाली वैकुण्ठाधिपते! आप देवोंके भी देव और लोकोंके स्वामी हैं। आप त्रिलोकीके गुरु हैं। श्रीहरे! हम सब आपके शरणापन्न हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले ऐश्वर्यशाली त्रिलोकेश! आप ही लोकोंके पालक हैं। गोविन्द! लक्ष्मी आपमें ही निवास करती हैं और आप अपने भक्तोंके प्राणस्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके सभी देवता श्रीहरिके आगे रो पड़े। उनकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे कहा।

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! यह वैकुण्ठ योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम यहाँ किस लिये आये हो? तुमपर कौन-सा कष्ट आ पड़ा है? वह यथार्थरूपसे मेरे सामने वर्णन करो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिका वचन सुनकर ब्रह्माजीने विनम्रभावसे सिर झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अञ्जलि बाँधकर परमात्मा विष्णुके समक्ष स्थित हो देवताओंके कष्टसे भरी हुई शङ्खचूडकी सारी करतूत कह सुनायी। तब समस्त प्राणियोंके भावोंके ज्ञाता भगवान् श्रीहरि उस बातको सुनकर हँस पड़े और ब्रह्मासे उस रहस्यका उद्घाटन करते हुए बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—कमलयोनि! मैं शङ्खचूडका सारा वृत्तान्त जानता हूँ। पूर्वजन्ममें वह महातेजस्वी गोप था, जो मेरा भक्त था। मैं उसके वृत्तान्तसे सम्बन्ध रखनेवाले इस पुरातन इतिहासका वर्णन करता हूँ, सुनो। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये। भगवान् शंकर सब कल्याण करेंगे। गोलोकमें मेरे ही रूप श्रीकृष्ण रहते हैं। उनकी स्त्री श्रीराधा नामसे विख्यात है। वह जगज्जननी तथा प्रकृतिकी परमोत्कृष्ट पाँचवीं मूर्ति है। वही वहाँ सुन्दररूपसे विहार करनेवाली है। उनके अङ्गसे उद्भुत बहुत-से गोप और गोपियाँ भी वहाँ निवास करती हैं। वे नित्य राधा-कृष्णका अनुवर्तन करते हुए उत्तम-उत्तम क्रीडाओंमें तत्पर रहते हैं। वही गोप इस समय शम्भुकी इस लीलासे मोहित होकर शापवश अपनेको दुःख देनेवाली दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। श्रीकृष्णने पहलेसे ही रुद्रके त्रिशूलसे उसकी मृत्यु निर्धारित कर दी है। इस प्रकार वह दानव-देहका परित्याग करके पुनः कृष्ण-पार्षद हो जायगा। देवेश! ऐसा जानकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। चलो, हम दोनों शंकरकी शरणमें चलें; वे शीघ्र ही कल्याणका विधान करेंगे। अब हमें, तुम्हें तथा समस्त देवोंको निर्भय हो जाना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों कहकर ब्रह्मासहित विष्णु शिवलोकको चले। मार्गमें वे मन-ही-मन भक्तवत्सल सर्वेश्वर शम्भुका स्मरण करते जा रहे थे। व्यासजी! इस प्रकार वे रमापति विष्णु ब्रह्माके साथ उसी समय उस शिवलोकमें जा पहुँचे, जो महान्, दिव्य, निराधार तथा भौतिकतासे रहित है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शिवजीकी सभाका दर्शन किया। वह ऊँची एवं उत्कृष्ट प्रभाववाली सभा प्रकाशयुक्त शरीरोंवाले शिव-पार्षदोंसे घिरी होनेके कारण विशेषरूपसे शोभित हो रही थी। उन पार्षदोंका रूप सुन्दर कान्तिसे युक्त महेश्वरके रूपके सदृश था। उनके दस भुजाएँ थीं, पाँच मुख और तीन नेत्र थे। गलेमें नील चिह्न तथा शरीरका वर्ण अत्यन्त गौर था। वे सभी श्रेष्ठ रत्नोंसे युक्त

रुद्राक्ष और भस्मके आभरणसे विभूषित थे। वह मनोहर सभा नवीन चन्द्रमण्डलके समान आकारवाली और चौकोर थी। उत्तम-उत्तम मणियों तथा हीरोंके हारोंसे वह सजायी गयी थी। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कमल-पत्रोंसे सुशोभित थी। उसमें मणियोंकी जालियोंसे युक्त गवाक्ष बने थे, जिससे वह चित्र-विचित्र दीख रही थी। शंकरकी इच्छासे उसमें पद्मराग मणि जड़ी हुई थी, जिससे वह अद्भुत-सी लग रही थी। वह स्यमन्तकमणिकी बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियोंसे युक्त थी। उसमें चारों ओर इन्द्रनील मणिके खंभे लगे थे, जिनपर स्वर्णसूत्रसे ग्रथित चन्दनके सुन्दर पल्लव लटक रहे थे, जिससे वह मनको मोहे लेती थी। वह भलीभाँति संस्कृत तथा सुगन्धित वायुसे सुवासित थी। एक सहस्र योजन विस्तारवाली वह सभा बहुत-से किंकरोंसे खचाखच भरी थी। उसके मध्यभागमें अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित एक विचित्र सिंहासन था, उसीपर उमासहित शंकर विराजमान थे। उन्हें सुरेश्वर विष्णुने देखा। वे तारकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान लग रहे थे। वे किरीट, कुण्डल और रत्नोंकी मालाओंसे विभूषित थे। उनके सारे अङ्गमें भस्म रमायी हुई थी और वे लीला-कमल धारण किये हुए थे। महान् उल्लाससे भरे हुए उमाकान्तका मन शान्त तथा प्रसन्न था। देवी पार्वतीने उन्हें सुवासित ताम्बूल प्रदान किया था, जिसे वे चबा रहे थे। शिवगण हाथमें श्वेत चँवर लेकर परमभक्तिके साथ उनकी सेवा कर रहे थे और सिद्ध भक्तिवश सिर झुकाकर उनके स्तवनमें लगे थे। वे गुणातीत, परेशान, त्रिदेवोंके जनक, सर्वव्यापी, निर्विकल्प, निराकार, स्वेच्छानुसार साकार, कल्याणस्वरूप, मायारहित, अजन्मा, आद्य, मायाके अधीश्वर, प्रकृति और पुरुषसे भी परात्पर, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम और समतायुक्त हैं। ऐसे विशिष्ट गुणोंसे युक्त शिवको देखकर ब्रह्मा और विष्णुने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे स्तुति करने लगे। विविध प्रकारसे स्तुति करके अन्तमें वे बोले—'भगवन्! आप दीनों और अनाथोंके सहायक, दीनोंके प्रतिपालक, दीनबन्धु, त्रिलोकीके अधीश्वर और शरणागतवत्सल हैं। गौरीश! हमारा उद्धार कीजिये! परमेश्वर! हमपर कृपा कीजिये। नाथ! हम आपके ही अधीन हैं; अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें। (अध्याय २९-३०)

देवताओंका रुद्रके पास जाकर अपना दुःख निवेदन करना, रुद्रद्वारा उन्हें आश्वासन और चित्ररथको शङ्खचूडके पास भेजना, चित्ररथके लौटनेपर रुद्रका गणों, पुत्रों और भद्रकालीसहित युद्धके लिये प्रस्थान, उधर शङ्खचूडका सेनासहित पुष्पभद्राके तटपर पड़ाव डालना तथा दानवराजके दूत और शिवकी बातचीत

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर जो अत्यन्त दीनताको प्राप्त हो गये थे, उन ब्रह्मा और विष्णुका वचन सुनकर शिवजी मुस्कराये और मेघगर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें बोले।

शिवजीने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! तुमलोग शङ्खचूडद्वारा उत्पन्न हुए भयको सर्वथा त्याग दो। निस्संदेह तुम्हारा कल्याण होगा। मैं शङ्खचूडका सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे जानता हूँ। यह पूर्वजन्ममें एक गोप था, जो ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णका भक्त था। इसका नाम सुदामा था। वही सुदामा राधाजीके शापसे शङ्खचूड नामक दानवराज होकर उत्पन्न हुआ है। यह परम धर्मज्ञ और देवताओंसे द्रोह करनेवाला है। यह दुर्बुद्धिवश अपने उत्कृष्ट बलके भरोसे सम्पूर्ण देवगणोंको क्लेश दे रहा है। अब तुमलोग प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनो और देवोंको आनन्दित करनेके लिये शीघ्र ही कैलासवासी रुद्रके समीप जाओ। वह रुद्ररूप मेरा ही उत्तम पूर्णरूप है। मैं ही देव-कार्यकी सिद्धिके हेतु पृथक् स्वरूप धारण करके वहाँ प्रकट हुआ हूँ। मेरा वह रूप ऐश्वर्यशाली तथा परिपूर्णतम है। हरे! इसीलिये मैं भक्तोंके वशीभूत हो कैलास-पर्वतपर सदा निवास करता हूँ।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर देवताओंने भगवान् महेशकी स्तुति की और अन्तमें कहा—'महेशान! आप तो कृपाके आकर हैं। दीनोंका उद्धार करना तो आपका बाना ही है। प्रभो! दानवराज शङ्खचूडका वध करके इन्द्रको उसके भयसे मुक्त कीजिये और देवोंको इस विपत्तिसे उबारिये।' तब भक्तवत्सल शम्भु देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर हँसे और मेघ-गर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीशंकरने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगण! तुमलोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। मैं निश्चय ही

सैनिकोंसहित शङ्खचूडका वध कर डालूँगा। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! महेश्वरके उस अमृतस्रावी वचनको सुनकर सम्पूर्ण देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय उन्होंने समझ लिया कि अब दानव शङ्खचूड मरा हुआ ही है। तब महेश्वरके चरणोंमें प्रणिपात करके विष्णु वैकुण्ठको और ब्रह्मा सत्यलोकको चले गये तथा सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने स्थानको प्रस्थित हुए। इधर उन महारुद्रने, जो परमेश्वर, दुष्टोंके लिये कालरूप और सत्पुरुषोंकी गति हैं, देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शङ्खचूडके वधका निश्चय किया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रेमी गन्धर्वराज चित्ररथको दूत बनाकर शीघ्र ही शङ्खचूडके पास भेजा। चित्ररथने वहाँ जाकर शङ्खचूडको खूब समझाकर कहा, परंतु उसने बिना युद्ध किये देवताओंको राज्य लौटाना स्वीकार नहीं किया और कहा—'मैंने ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया है कि महेश्वरके साथ युद्ध किये बिना न तो मैं राज्य ही वापस दूँगा और न अधिकारोंको ही लौटाऊँगा। तू कल्याणकर्ता रुद्रके पास लौट जा और मेरी कही हुई बात यथार्थरूपसे उनसे कह दे। वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे। तू व्यर्थ बकवाद मत कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! यों कहे जानेपर वह शिवदूत पुष्पदन्त (चित्ररथ) अपने स्वामी महेश्वरके पास लौट गया और उसने सारी बातें ठीक-ठीक कह दीं। तब उस दूतके वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरको क्रोध आ गया। उन्होंने अपने वीरभद्र आदि गणोंसे कहा।

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! क्षेत्रपाल! आठों भैरव! मैं आज शीघ्र ही शङ्खचूडका वध करनेके निमित्त चलता हूँ; अतः मेरी आज्ञासे मेरे सभी बलशाली गण आयुधोंसे लैस होकर तैयार हो जायँ और अभी-अभी कुमारों (स्वामिकार्तिक और गणेश) के साथ रणयात्रा करें। भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! ऐसी आज्ञा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ चल पड़े। फिर तो सभी वीरगण हर्षमग्न होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। इसी समय सम्पूर्ण सेनाओंके अध्यक्ष स्कन्द और गणेश भी हर्षसे भरे हुए कवच धारण करके सशस्त्र शिवजीके निकट आ पहुँचे। फिर वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिङ्गलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकार, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघ्य, दुर्जय तथा दुर्गम आदि गणनायक जो प्रधान-प्रधान सेनापति थे, शिवजीके साथ चले। उनके गणोंकी संख्या करोड़ों करोड़ थी। आठों भैरव, एकादश भयंकर रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, बारहों आदित्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मङ्गल तथा अन्यान्य ग्रह, पराक्रमी कामदेव, उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट तथा कोटभ आदिने भी शीघ्र ही महेश्वरका अनुगमन किया। स्वयं महेश्वरी देवी भद्रकाली भी सौ भुजा धारण करके शिवजीके साथ चलीं। वे उत्तमोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर आरूढ़ थीं। उनके शरीरपर लाल चन्दनका अनुलेप लगा था और लाल वस्त्र शोभा पा रहा था। वे हर्षमग्न होकर हँसती, नाचती और उत्तम स्वरसे गान करती हुई अपने भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान कर रही थीं। उनकी एक योजन लंबी भीषणाकार जिह्वा लपलपा रही थी। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तारवाला गहरा गोलाकार खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजन लंबी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खड्ग, तीखा फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, महान् पराक्रमी सूर्यास्त्र, कालकाल, महानल, महेश्वरास्त्र, यमदण्डास्त्र, सम्मोहनास्त्र तथा समर्थ दिव्य अस्त्र और अन्यान्य सैकड़ों दिव्यास्त्र धारण किये हुए थीं। करोड़ों योगिनियाँ तथा डाकिनियाँ उनके साथ थीं। फिर भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किंनर आदिसे घिरे हुए स्कन्दने पिताके पास आकर उन चन्द्रशेखरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे पार्श्वभागमें स्थित होकर सहायकका स्थान ग्रहण किया। तदनन्तर रुद्ररूपधारी शम्भु अपनी सारी सेनाको एकत्रित करके शङ्खचूडके साथ लोहा लेनेके लिये निर्भयतापूर्वक आगे बढ़े और देवताओंका उद्धार करनेके लिये चन्द्रभागा नदीके तटपर मनोहर वटवृक्षके नीचे खड़े हो गये।

व्यासजी! उधर जब शिवदूत चला गया, तब प्रतापी शङ्खचूडने महलके भीतर जाकर तुलसीसे वह सारी वार्ता कह सुनायी।

शङ्खचूडने कहा—'देवि ! शम्भुके दूतके मुखसे (रणनिमन्त्रण सुनकर) मैं युद्धके लिये उद्यत हुआ हूँ और उनसे जूझनेके लिये मैं निश्चय ही जाऊँगा । तुम इसके लिये मुझे आज्ञा दो ।' यों कहकर उस ज्ञानीने अपनी प्रियाको नाना प्रकारसे समझाया । फिर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकृत्य समाप्त किया और पहले नित्यकर्म पूरा करके बहुत-सा दान दिया । तत्पश्चात् अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंके राज्यपर अभिषिक्त करके उसे अपनी भार्या, राज्य और सारी सम्पत्ति समर्पित कर दी । पुनः जब उसकी प्रिया तुलसी रोती हुई उसकी रणयात्राका निषेध करने लगी, तब राजा शङ्खचूडने नाना प्रकारकी कथाएँ कहकर उसे ढाढ़स बँधाया । तदनन्तर उस समादृत दानवराजने कवच धारण करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हो अपने वीर सेनापतिको बुलाकर उसे आदेश देते हुए कहा ।

शङ्खचूड बोला—सेनापते ! मेरे सभी वीर, जो सम्पूर्ण कार्योंमें कुशल और समरमें शोभा पानेवाले हैं, आज कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थान करें । शूरवीर दानवों और दैत्योंकी छियासी टुकड़ियाँ तथा बलशाली कङ्कोंकी निर्भीक सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर नगरसे बाहर निकलें । करोड़ों प्रकारसे पराक्रम प्रकट करनेवाले जो असुरोंके पचास कुल हैं, वे भी देवोंके पक्षपाती शम्भुसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हों । मेरी आज्ञासे धौम्रोंके सौ कुल भी कवचसे विभूषित हो शम्भुके साथ लोहा लेनेके लिये शीघ्र ही निकलें । कालकेयों, मौर्यों, दौर्हृदों तथा कालकोंको भी मेरी यह आज्ञा सुना दो कि वे रुद्रके साथ संग्राम करनेके लिये रण-सामग्रीसे सुसज्जित हो चलें ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! सेनापतिको यों आदेश देकर असुरोंका राजा महाबली दानवेन्द्र शङ्खचूड सहस्रों प्रकारकी बहुत बड़ी सेनाओंसे घिरा हुआ नगरसे बाहर निकला । उसका सेनापति भी युद्धशास्त्रमें निपुण, महारथी, महान् शूरवीर और रणभूमिमें रथियोंमें अग्रगण्य था । इस प्रकार युद्धस्थलमें वीरोंको भयभीत कर देनेवाला वह दानवराज तीन लाख अक्षौहिणी सेनाओंपर शासन करता हुआ शिविरसे बाहर निकला और उत्तमोत्तम रत्नोंद्वारा निर्मित विमानपर आरूढ़ हो गुरुजनोंको आगे करके युद्धके लिये चल पड़ा । आगे बढ़नेपर वह पुष्पभद्रा नदीके तटपर सिद्धाश्रममें जा पहुँचा । वहाँ एक मनोहर वटवृक्ष विराजमान था । वह सिद्धिक्षेत्र सिद्धोंको उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला था । पुण्यक्षेत्र भारतमें वह कपिलका तपःस्थान कहलाता था । वह भूभाग पश्चिम समुद्रसे पूर्व, मलयपर्वतसे पश्चिम, श्रीशैलसे उत्तर और गन्धमादनसे दक्षिण था । उसकी चौड़ाई पाँच योजन और लंबाई पाँच सौ योजन थी । भारतके उस भागमें उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली तथा शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे परिपूर्ण पुष्पभद्रा और सरस्वती नामकी दो रमणीय नदियाँ बहती हैं । सदा सौभाग्यसे संयुक्त रहनेवाली लवणसागरकी प्रिया भार्या पुष्पभद्रा सरस्वतीके साथ हिमालयसे निकली है और गोमन्तपर्वतको बायें करके पश्चिम समुद्रमें जा मिली है । वहाँ पहुँचकर शङ्खचूडने शिवजीकी सेनाको देखा ।

मुने ! उसने पहले शिवजीके पास एक दानवेश्वरको दूतके रूपमें भेजा । उसने शिवजीसे युद्ध न करनेके लिये कहा और शिवजीने उसे देवताओंका राज्य लौटा देनेकी बात कही । अन्तमें महेश्वरने कहा—'दूत ! हम किसीका भी पक्ष नहीं लेते; क्योंकि हम तो कभी स्वतन्त्र रहते ही नहीं, सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं और उनकी इच्छासे उन्हींका कार्य करते रहते हैं । देखो, पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे पहले-पहल प्रलय-समुद्रमें श्रीहरि और दैत्यश्रेष्ठ मधु-कैटभका भी युद्ध हुआ था । पुनः भक्तोंके हितकारी उन्हीं श्रीविष्णुने देवताओंके प्रार्थना करनेपर प्रह्लादके कारण हिरण्यकशिपुका वध किया था । तुमने यह भी सुना होगा कि पहले जो मैंने त्रिपुरोंके साथ युद्ध करके उन्हें भस्म कर डाला था, वह भी देवोंकी प्रार्थनापर ही हुआ था । पूर्वकालमें सर्वेश्वरी जगज्जननीका जो शुम्भ आदिके साथ युद्ध हुआ था और जिसमें उन्होंने उन दैत्योंका वध कर डाला था, वह भी देवताओंके प्रार्थना करनेपर ही घटित हुआ था । वे ही सभी देवगण आज भी ब्रह्माके शरणापन्न हुए थे । तब वे उन देवताओं और श्रीहरिके साथ मेरी शरणमें आये थे । दूत ! इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और देवगणोंकी प्रार्थनाके वशीभूत हो देवोंका अधीश्वर होनेके कारण मैं भी युद्धके लिये आया हूँ । तुम भी तो महात्मा श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो । अबतक जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता । इसलिये राजन् ! देवकार्यकी सिद्धिके लिये तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी । अर्थात् कुछ नहीं; क्योंकि मैं ईश्वर हूँ और देवताओंने मुझे विनयपूर्वक भेजा है । अतः तुम जाओ और शङ्खचूडसे मेरी बात कह दो । वह जैसा

उचित समझेगा, वैसा करेगा । मुझे तो देवताओंका कार्य करना ही है ।' यों कहकर कल्याणकर्ता महेश्वर चुप हो गये । तब शङ्खचूडका वह दूत उठा और उसके पास चल दिया ।

(अध्याय ३१—३५)

देवताओं और दानवोंका युद्ध, शङ्खचूडके साथ वीरभद्रका संग्राम, पुनः उसके साथ भद्रकालीका भयंकर युद्ध करना और आकाशवाणी सुनकर निवृत्त होना, शिवजीका शङ्खचूडके साथ युद्ध और आकाशवाणी सुनकर युद्धसे निवृत्त हो विष्णुको प्रेरित करना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके कवच और तुलसीके शीलका अपहरण, फिर रुद्रके हाथों त्रिशूलद्वारा शङ्खचूडका वध, शङ्खकी उत्पत्तिका कथन

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब उस दूतने शङ्खचूडके पास जाकर विस्तारपूर्वक शिवजीका वचन कह सुनाया तथा तत्त्वतः उनके यथार्थ निश्चयको भी प्रकट किया, तब उसे सुनकर प्रतापी दानवराज शङ्खचूडने भी परम प्रसन्नतापूर्वक युद्धको ही अङ्गीकार किया । फिर तो वह तुरंत ही मन्त्रियोंसहित रथपर जा बैठा और उसने अपनी सेनाको शंकरके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश दिया । इधर अखिलेश्वर शिवजीने भी तत्काल ही अपनी सेनाको तथा देवोंको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और स्वयं भी लीलावश युद्धके लिये संनद्ध हो गये । फिर तो शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया । उस समय नाना प्रकारके रणवाद्य बजने लगे । वीरोंके शब्द और कोलाहल चारों ओर गूँज उठे । मुने ! इस प्रकार देवताओं और दानवोंका परस्पर युद्ध होने लगा । उस समय वे दोनों सेनाएँ धर्मपूर्वक जूझने लगीं । स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ लड़ने लगे और विप्रचित्तिके साथ सूर्यका धर्मयुद्ध होने लगा । विष्णु दम्भके साथ भीषण संग्राम करने लगे । कालासुरसे काल, गोकर्णसे अग्नि, कालकेयसे कुबेर, मयसे विश्वकर्मा, भयंकरसे मृत्यु, संहारसे यम, कालाम्बिकसे वरुण, चञ्चलसे वायु, घटपृष्ठसे बुध, रक्ताक्षसे शनैश्चर, रत्नसारसे जयन्त, वर्चागणोंसे वसुगण, दोनों दीप्तिमानोंसे दोनों अश्विनीकुमार, धूम्रसे नलकूबर, धुरंधरसे धर्म, गणकाक्षसे मङ्गल, शोभाकरसे वैश्वानर, पिपिटसे मन्मथ, गोकामुख, चूर्ण, खड्ग, धूम्र, संहल, प्रतापी विश्व और पलाश नामक असुरोंसे बारहों आदित्य धर्मपूर्वक लोहा लेने लगे । इस प्रकार शिवकी सहायताके लिये आये हुए अमरोंका असुरोंके साथ युद्ध होने लगा । ग्यारहों महारुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न ग्यारह भयंकर असुर-वीरोंसे भिड़ गये । उग्र और चण्ड आदिके साथ महामणि, राहुके साथ चन्द्रमा और शुक्राचार्यके साथ बृहस्पति धर्मयुद्ध करने लगे । इस प्रकार उस महायुद्धमें नन्दीश्वर आदि सभी शिवगण श्रेष्ठ दानवोंके साथ संग्राम करने लगे । विस्तारभयसे उनका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है । मुने ! उस समय सारी सेनाएँ निरन्तर युद्धमें व्यस्त थीं और शम्भु काल्यमुतके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे । उधर शङ्खचूड भी रत्नाभरणोंसे विभूषित हो करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठा हुआ था । फिर देवताओं तथा असुरोंमें चिरकालतक अत्यन्त भयानक युद्ध होता रहा । तदनन्तर शङ्खचूड भी आकर उस भीषण संग्राममें जुट गया । इसी बीच महाबली वीर वीरभद्र समरभूमिमें बलशाली शङ्खचूडसे जा भिड़े । उस युद्धमें दानवराज जिन-जिन अस्त्रोंकी वर्षा करता था, उन-उनको वीरभद्र खेल-ही-खेलमें अपने बाणोंसे काट डालते थे ।

व्यासजी ! इसी समय देवी भद्रकालीने समरभूमिमें जाकर बड़ा भयंकर सिंहनाद किया । उनके उस शब्दको सुनकर सभी दानव मूर्च्छित हो गये । उस समय देवीने बारंबार अट्टहास किया और मधुपान करके वे रणके मुहानेपर नृत्य करने लगीं । उनके साथ ही उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा और कोटवीने भी मधुपान किया तथा अन्यान्य देवियोंने भी खूब मधु पीकर युद्धस्थलमें नाचना आरम्भ किया । उस समय शिवगणों तथा देवोंके दलोंमें महान् कोलाहल मच गया । सारा सुर-समुदाय बहुत प्रकारसे गर्जना करता हुआ हर्षमग्न हो गया । तदनन्तर कालीने शङ्खचूडके ऊपर प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान उद्दीप्त आग्नेयास्त्र चलाया, परंतु दानवराजने वैष्णवास्त्रसे उसे शीघ्र ही शान्त कर दिया । तब देवी भद्रकालीने उसपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया । वह अस्त्र दानव-शत्रुको देखकर बढ़ने लगा । तब प्रलयाग्निकी ज्वालाके समान उद्दीप्त होते हुए नारायणास्त्रको देखकर शङ्खचूड

दण्डकी भाँति भूमिपर लेट गया और बारंबार प्रणाम करने लगा। तब उस दानवको नम्र हुआ देखकर वह अस्त्र निवृत्त हो गया। तत्पश्चात् देवीने उसपर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उस अस्त्रको प्रज्वलित होता हुआ देखकर दानवराजने भूमिपर खड़े होकर उसे प्रणाम किया और ब्रह्मास्त्रसे ही उसका निवारण कर दिया। तदनन्तर वह दानवराज कुपित हो उठा और वेगपूर्वक अपने धनुषको खींचकर देवीके ऊपर मन्त्रपाठ करते हुए दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। भद्रकाली समरभूमिमें अपने विस्तृत मुखको फैलाकर उन अस्त्रोंको निगल गयीं और अट्टहासपूर्वक गर्जना करने लगीं, जिससे दानव भयभीत हो गये। तब शङ्खचूडने कालीके ऊपर एक सौ योजन लंबी शक्तिसे वार किया; परंतु देवीने अपने दिव्यास्त्रसमूहसे उसके सौ टुकड़े कर दिये। यों उन दोनोंमें चिरकालतक युद्ध होता रहा और सभी देवता तथा दानव दर्शक बनकर उसे देखते रहे। अन्तमें देवीने महान् कोपावेशसे उसपर वेगपूर्वक मुष्टि-प्रहार किया। उसकी चोटसे वह दानवराज चक्कर काटने लगा और उसी क्षण मूर्छित हो गया। फिर क्षणभरमें ही उसकी चेतना लौट आयी और वह उठ खड़ा हुआ; परंतु उस प्रतापीने मातृबुद्धि होनेके कारण देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया। तब देवीने उस दानवको पकड़कर उसे बारंबार घुमाया और बड़े क्रोधसे वेगपूर्वक ऊपरको उछाल दिया। प्रतापी शङ्खचूड वेगसे ऊपरको उछला और पृथ्वीपर गिरकर पुनः उठ खड़ा हुआ। उस महायुद्धमें वह तनिक भी भ्रान्त नहीं हुआ था; बल्कि उसका मन प्रसन्न था। तत्पश्चात् वह भद्रकालीको प्रणाम करके बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित अपने परम मनोहर विमानपर जा बैठा। इधर कालिका भूखसे विह्वल होकर दानवोंका रक्त पान करने लगीं। इसी अवसरपर वहाँ यों आकाशवाणी हुई—'ईश्वरि! अभी रणभूमिमें सिंहनाद करनेवाले डेढ़ लाख दानवेन्द्र और बचे हैं। ये बड़े उद्धत हैं, अतः तुम उन्हें अपना आहार बना लो। परंतु देवि! संग्राममें दानवराज शङ्खचूडको मारनेके लिये मन मत दौड़ाओ; क्योंकि यह तुम्हारे लिये अवध्य है—ऐसा निश्चय समझो।' आकाशवाणीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर देवी भद्रकालीने बहुत-से दानवोंका मांस भक्षण करके उनका रक्त पान किया और फिर वे शिवजीके निकट चली गयीं। वहाँ उन्होंने पूर्वापरके क्रमसे सारा युद्ध-वृत्तान्त कह सुनाया।

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! कालीका वह कथन सुनकर महेश्वरने उस समय क्या कहा और कौन-सा कार्य किया। उसे आप वर्णन करनेकी कृपा करें; क्योंकि मेरे मनमें उसे सुननेकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी है।

सनत्कुमारजी बोले—मुने! शम्भु तो जीवोंके कल्याणकर्ता, परमेश्वर और बड़े लीलाविहारी हैं। वे कालीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर उन्हें आश्वासन देते हुए हँसने लगे। तदनन्तर आकाशवाणीको सुनकर तत्त्वज्ञान-विशारद स्वयं शंकर अपने गणोंके साथ समरभूमिकी ओर चले। उस समय वे महावृषभ नन्दीश्वरपर सवार थे और उन्हींके समान पराक्रमी वीरभद्र, भैरव और क्षेत्रपाल आदि उनके साथ थे। रणभूमिमें पहुँचकर महेश्वरने वीररूप धारण किया। उस समय उन रुद्रकी बड़ी शोभा हो रही थी और वे मूर्तिमान् काल-से दीख रहे थे। जब शङ्खचूडकी दृष्टि शिवजीपर पड़ी, तब वह विमानसे उतर पड़ा और परम भक्तिके साथ दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लोटकर उसने सिरके बल उन्हें प्रणाम किया। इस प्रकार नमस्कार करनेके पश्चात् वह तुरंत ही अपने विमानपर जा बैठा और कवच धारण करके उसने धनुष-बाण उठाया। फिर तो दोनों ओरसे बाणोंकी झड़ी लग गयी। यों व्यर्थ ही बाण-वर्षा करनेवाले शिव और शङ्खचूडका वह उग्र युद्ध सैकड़ों वर्षोंतक चलता रहा। अन्तमें युद्धस्थलमें शङ्खचूडका वध करनेके लिये महाबली महेश्वरने सहसा अपना वह त्रिशूल उठाया, जिसका निवारण करना बड़े-बड़े तेजस्वियोंके लिये भी अशक्य है। तब तत्काल ही उसका निषेध करनेके लिये यों आकाशवाणी हुई—"शंकर! मेरी प्रार्थना सुनिये और इस समय इस त्रिशूलको मत चलाइये। ईश! यद्यपि आप क्षणमात्रमें पूरे ब्रह्माण्डका विनाश करनेमें सर्वथा समर्थ हैं, फिर इस अकेले दानव शङ्खचूडकी तो बात ही क्या है, तथापि आप स्वामीके द्वारा देवमर्यादाका विनाश नहीं होना चाहिये। महादेव! आप उस (देवमर्यादा) को सुनिये और उसे सत्य एवं सफल बनाइये। '(वह देवमर्यादा यह है कि) जबतक इस शङ्खचूडके हाथमें श्रीहरिका परम उग्र कवच वर्तमान रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी (तुलसी) का सतीत्व अखण्डित रहेगा, तबतक इसपर जरा और मृत्यु अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।' अतः जगदीश्वर शंकर! ब्रह्माके इस वचनको सत्य कीजिये।"

तब सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप शिवजीने उस आकाशवाणीको सुनकर 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार कर लिया और विष्णुको

उस कार्यके लिये प्रेरित किया । फिर तो शिवजीकी इच्छासे विष्णु वहाँसे चल पड़े । वे तो मायावियोंमें भी श्रेष्ठ मायावी ठहरे । अतः उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण किया और शङ्खचूडके निकट जाकर उससे यों कहा ।

वृद्ध ब्राह्मण बोले—दानवेन्द्र ! इस समय मैं याचक होकर तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मुझे भिक्षा दो । दीन-वत्सल ! अभी मैं अपने मनोरथको प्रकट नहीं करूँगा। (जब तुम देना स्वीकार कर लोगे, तब) पीछे मैं उसे बताऊँगा और तब तुम उसे पूर्ण करना ।' ब्राह्मणकी बात सुनकर राजेन्द्र शङ्खचूडका मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे । जब उसने 'ओम्' कहकर उसे स्वीकार कर लिया, तब ब्राह्मणने छलपूर्वक कहा—'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ ।' यह सुनकर ऐश्वर्यशाली दानवराज शङ्खचूडने, जो ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी था, वह दिव्य कवच जो उसे प्राणके समान था



ब्राह्मणको दे दिया । इस प्रकार श्रीहरिने मायाद्वारा उससे वह कवच ले लिया और फिर शङ्खचूडका रूप धारण करके वे तुलसीके पास पहुँचे । वहाँ जाकर सबके आत्मा एवं तुलसीके नित्य स्वामी श्रीहरिने शङ्खचूडरूपसे उसके शीलका हरण कर लिया ।

इसी समय विष्णुभगवान्‌ने शम्भुसे अपनी सारी बात कह सुनायी । तब शिवजीने शङ्खचूडके वधके निमित्त अपना उद्दीप्त त्रिशूल हाथमें लिया । परमात्मा शंकरका वह विजय नामक त्रिशूल अपनी उत्कृष्ट प्रभा बिखेर रहा था । उससे सारी दिशाएँ, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो उठे । वह मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्यों तथा प्रलयाग्निकी शिखाके समान चमकीला था । उसका निवारण करना असम्भव था । वह दुर्धर्ष, कभी व्यर्थ न होनेवाला और शत्रुओंका संहारक था । वह तेजोंका अत्यन्त उग्र समूह, सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका सहायक, भयंकर और सारे देवताओं तथा असुरोंके लिये दुस्सह था । वह एक ही स्थानपर ऐसा दमक रहा था, मानो लीलाका आश्रय लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेके लिये उद्यत हो । उसकी लंबाई एक हजार धनुष और चौड़ाई सौ हाथ थी । उस जीव-ब्रह्मस्वरूप शूलका किसीके द्वारा निर्माण नहीं हुआ था । उसका रूप नित्य था । आकाशमें चक्कर काटता हुआ वह त्रिशूल शिवजीकी आज्ञासे शङ्खचूडके ऊपर गिरा और उसने उसी क्षण उसे राखकी ढेरी बना दिया । विप्र ! महेश्वरका वह शूल मनके समान वेगशाली था । वह शीघ्र ही अपना कार्य पूर्ण करके शंकरके पास आ पहुँचा और फिर आकाश-मार्गसे चला गया । उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं । गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे । देवों तथा मुनियोंने स्तुति करना आरम्भ किया और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । शिवजीके ऊपर लगातार पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा करने लगे । दानवराज शङ्खचूड भी शिवजीकी कृपासे शापमुक्त हो गया और उसे उसके पूर्व (श्रीकृष्ण-पार्षद) रूपकी प्राप्ति हो गयी । शङ्खचूडकी हड्डियोंसे शङ्ख-जातिका प्रादुर्भाव हुआ, जिस शङ्खका जल शंकरके अतिरिक्त समस्त देवताओंके लिये प्रशस्त माना जाता है । महामुने ! श्रीहरि और लक्ष्मी तथा उनके सम्बन्धियोंको भी शङ्खका जल विशेषरूपसे अत्यन्त प्रिय है; किंतु शिवके लिये नहीं । इस प्रकार शङ्खचूडको मारकर शंकर उमा, स्कन्द और गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक नन्दीश्वर-पर सवार हो शिवलोकको चले गये । भगवान् विष्णुने वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया और देवगण परमानन्दमग्न हो अपने-अपने लोकको चले गये । उस समय जगत्‌में चारों ओर परम शान्ति छा गयी । सबको निर्विघ्नरूपसे सुख मिलने लगा । आकाश निर्मल हो गया और सारी पृथ्वीपर उत्तम-

उत्तम मङ्गलकार्य होने लगे। मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे महेशके जिस चरित्रका वर्णन किया है, वह आनन्ददायक, सर्वदुःखहारी, लक्ष्मीप्रद और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। (अध्याय ३६—४०)

विष्णुद्वारा तुलसीके शील-हरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके माहात्म्यका वर्णन

फिर व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे! रणभूमिमें आकाश-वाणीको सुनकर जब देवेश्वर शम्भुने श्रीहरिको प्रेरित किया, तब वे तुरंत ही अपनी मायासे ब्राह्मणका वेष धारण करके शङ्खचूडके पास जा पहुँचे और उन्होंने उससे परमोत्कृष्ट कवच माँग लिया। फिर शङ्खचूडका रूप बनाकर वे तुलसीके घरकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुलसीके महलके द्वारके निकट नगारा बजाया और जय-जयकारसे सुन्दरी तुलसीको अपने आगमनकी सूचना दी। उसे सुनकर सती-साध्वी तुलसीने बड़े आदरके साथ झरोखेके रास्ते राजमार्गकी ओर झाँका और अपने पतिको आया हुआ जानकर वह परमानन्दमें निमग्न हो गयी। उसने तत्काल ही ब्राह्मणोंको धन-दान करके उनसे मङ्गलाचार कराया और फिर अपना श्रृङ्गार किया। इधर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मायासे शङ्खचूडका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु रथसे उतरकर देवी तुलसीके भवनमें गये। तुलसीने पतिरूपमें आये हुए भगवान्का पूजन किया, बहुत-सी बातें कीं, तदनन्तर उनके साथ रमण किया। तब उस साध्वीने सुख, सामर्थ्य और आकर्षणमें व्यतिक्रम देखकर सबपर विचार किया और (संदेह उत्पन्न होनेपर) वह 'तू कौन है?' यों डाँटती हुई बोली।

तुलसीने कहा—दुष्ट! मुझे शीघ्र बतला कि मायाद्वारा मेरा उपभोग करनेवाला तू कौन है? तूने मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया है, अतः मैं अभी तुझे शाप देती हूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तुलसीका वचन सुनकर श्रीहरिने लीलापूर्वक अपनी परम मनोहर मूर्ति धारण कर ली। तब उस रूपको देखकर तुलसीने लक्षणोंसे पहचान लिया कि ये साक्षात् विष्णु हैं। परंतु उसका पातिव्रत्य नष्ट हो चुका था, इसलिये वह कुपित होकर विष्णुसे कहने लगी।

तुलसीने कहा—हे विष्णो! तुम्हारा मन पत्थरके सदृश कठोर है। तुममें दयाका लेशमात्र भी नहीं है। मेरे पतिधर्मके भङ्ग हो जानेसे निश्चय ही मेरे स्वामी मारे गये। चूँकि तुम पाषाण-सदृश कठोर, दयारहित और दुष्ट हो, इसलिये अब तुम मेरे शापसे पाषाण-स्वरूप ही हो जाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों कहकर शङ्खचूडकी वह सती-साध्वी पत्नी तुलसी फूट-फूटकर रोने लगी और शोकार्त होकर बहुत तरह-से विलाप करने लगी। इतनेमें वहाँ भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रकट हो गये और उन्होंने समझाकर कहा—देवि! अब तुम दुःखको दूर करनेवाली मेरी बात सुनो और श्रीहरि भी स्वस्थ मनसे उसे श्रवण करें; क्योंकि तुम दोनोंके लिये जो सुखकारक होगा, वही मैं कहूँगा। भद्रे! तुमने (जिस मनोरथको लेकर) तप किया था, यह उसी तपस्याका फल है। भला, वह अन्यथा कैसे हो सकता है? इसीलिये तुम्हें उसके अनुरूप ही फल प्राप्त हुआ है। अब तुम इस शरीरको त्यागकर दिव्य देह धारण कर लो और लक्ष्मीके समान होकर नित्य श्रीहरिके साथ (वैकुण्ठमें) विहार करती रहो। तुम्हारा यह शरीर, जिसे तुम छोड़ दोगी, नदीके रूपमें परिवर्तित हो जायगा। वह नदी भारतवर्षमें पुण्यरूपा गण्डकीके नामसे प्रसिद्ध होगी। महादेवि! कुछ कालके पश्चात् मेरे वरके प्रभावसे देवपूजन सामग्रीमें तुलसीका प्रधान स्थान हो जायगा। सुन्दरी! तुम स्वर्गलोकमें, मृत्युलोकमें तथा पातालमें सदा श्रीहरिके निकट ही निवास करोगी और पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुलसीका वृक्ष हो जाओगी। तुम वैकुण्ठमें दिव्यरूपधारिणी वृक्षाधिष्ठात्री देवी बनकर सदा एकान्तमें श्रीहरिके साथ क्रीडा करोगी। उधर भारतवर्षमें जो नदियोंकी अधिष्ठात्री देवी होगी, वह परम पुण्य प्रदान करनेवाली होगी और श्रीहरिके अंशभूत लवण-सागरकी पत्नी बनेगी। तथा श्रीहरि भी तुम्हारे शापवश पत्थरका रूप धारण करके भारतमें गण्डकी नदीके जलके निकट निवास करेंगे। वहाँ तीखी दाढ़ोंवाले करोड़ों भयंकर कीड़े उस पत्थरको काटकर उसके मध्यमें चक्रका आकार बनायेंगे। भेदसे वह अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली शालग्राम-शिला कहलायेगी और चक्रके भेदसे उसका लक्ष्मी-नारायण आदि भी नाम होगा। विष्णुकी शालग्राम शिला और वृक्षस्वरूपिणी तुलसीका समागम सदा अनुकूल तथा

बहुत प्रकारके पुष्पोंकी वृद्धि करनेवाला होगा। भद्रे! जो शालग्राम-शिलाके ऊपरसे तुलसीपत्रको दूर करेगा, उसे जन्मान्तरमें स्त्रीवियोगकी प्राप्ति होगी तथा जो शङ्खको दूर करके तुलसी-पत्रको हटायेगा, वह भी भार्याहीन होगा और सात जन्मोंतक रोगी बना रहेगा। जो महाज्ञानी पुरुष शालग्राम-शिला, तुलसी और शङ्खको एकत्र रखकर उनकी रक्षा करता है, वह श्रीहरिका प्यारा होता है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इस प्रकार कहकर शंकरजीने उस समय शालग्राम शिला और तुलसीके परम पुण्यदायक माहात्म्यका वर्णन किया। तत्पश्चात् वे श्रीहरिको तथा तुलसीको आनन्दित करके अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार सदा सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाले शम्भु अपने स्थानको चले गये। इधर शम्भुका कथन सुनकर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने उस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारण कर लिया। तब कमलापति विष्णु उसे साथ लेकर वैकुण्ठको चले गये। उसके छोड़े हुए शरीरसे गण्डकी नदी प्रकट हो गयी और भगवान् अच्युत भी उसके तटपर मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाली शिलाके रूपमें परिणत हो गये। मुने! उसमें कीड़े अनेक प्रकारके छिद्र बनाते रहते हैं। उनमें जो शिलाएँ गण्डकीके जलमें गिरती हैं, वे परम पुण्यप्रद होती हैं और जो स्थलपर ही रह जाती हैं, उन्हें पिङ्गला कहा जाता है और वे प्राणियोंके लिये संतापकारक होती हैं। व्यासजी! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने शम्भुका सारा चरित, जो पुण्यप्रदान तथा मनुष्योंकी सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, तुम्हें सुना दिया। यह पुण्य आख्यान, जो विष्णुके माहात्म्यसे संयुक्त तथा भोग और मोक्षका प्रदाता है, तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ४१)

उमाद्वारा शम्भुके नेत्र मूँद लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके पसीनेसे अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्याक्षकी पुत्रार्थ तपस्या और शिवका उसे पुत्ररूपमें अन्धकको देना, हिरण्याक्षका त्रिलोकीको जीतकर पृथ्वीको रसातलमें ले जाना और वराह रूपधारी विष्णुद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! अब जिस प्रकार अन्धकासुरने परमात्मा शम्भुके गणाध्यक्ष-पदको प्राप्त किया था, महेश्वरके उस मङ्गलमय चरितको श्रवण करो। मुनीश्वर! अन्धकासुरने पहले शिवजीके साथ बड़ा घोर संग्राम किया था, परंतु पीछे बारंबार सात्त्विक भावके उद्रेकसे उसने शम्भुको प्रसन्न कर लिया; क्योंकि नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले शम्भु शरणागतरक्षक तथा परम भक्तवत्सल हैं। उनका माहात्म्य परम अद्भुत है।

व्यासजीने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुनिवर! वह अन्धक कौन था और भूतलपर किस वीर्यवान्के कुलमें उत्पन्न हुआ था? दैत्योंमें प्रधान तथा महामनस्वी उस बलवान् अन्धकका स्वरूप कैसा था और वह किसका पुत्र था? उसने परम तेजस्वी शम्भुकी गणाध्यक्षताको कैसे प्राप्त किया? यदि अन्धक गणेश्वर हो गया तब तो वह परम धन्यवादका पात्र है।

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! पूर्वकालकी बात है, एक समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले तथा देवताओंके चक्रवर्ती सम्राट् भगवान् शंकरको विहार करनेकी इच्छा हुई। तब वे पार्वती और गणोंको साथ ले अपने निवासभूत कैलास पर्वतसे चलकर काशीपुरीमें आये। वहाँ उन्होंने उस पुरीको अपनी राजधानी बनाया और भैरव नामक वीरको उसका रक्षक नियुक्त किया। फिर पार्वतीजीके साथ रहते हुए वे भक्तजनोंको सुख देनेवाली अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। एक समय वे उसके वरदानके प्रभाववश अनेकों वीराग्रगण्य गणेश्वरों और शिवाके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँ भी तरह-तरहकी क्रीडाएँ करने लगे। एक दिन जब प्रचण्ड पराक्रमी कपर्दी शिव मन्दराचलकी पूर्व दिशामें बैठे थे, उसी समय गिरिजाने नर्मक्रीडावश उनके नेत्र बंद कर दिये। इस प्रकार जब पार्वतीने मूँगे, सुवर्ण और कमलकी प्रभावाले अपने करकमलोंसे हरके नेत्र बंद कर दिये, तब उनके नेत्रोंके मुँद जानेके कारण वहाँ क्षणभरमें ही घोर अन्धकार फैल गया। पार्वतीके हाथोंका महेश्वरके शरीरसे स्पर्श होनेके कारण शम्भुके ललाटमें स्थित अग्निसे संतप्त होकर मद-जल प्रकट हो गया और जलकी बहुत-सी बूँदें टपक पड़ीं। तदनन्तर उन बूँदोंने एक गर्भका रूप धारण कर लिया। उससे एक ऐसा जीव प्रकट हुआ, जिसका मुख विकराल था। वह अत्यन्त भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अंधा, कुरूप, जटाधारी, काले रंगका, मनुष्यसे भिन्न, बेडौल और सुन्दर

बालोंवाला था। उसके कण्ठसे घोर घर-घर शब्द निकल रहा था। वह कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोने लगता था तथा जबड़ोंको चाटते हुए नाच रहा था। उस अद्भुत दृश्यवाले जीवके प्रकट होनेपर शिवजी मुसकराकर पार्वतीजीसे बोले।

श्रीमहेश्वरने कहा—'प्रिये! मेरे नेत्रोंको मूँदकर तुमने ही तो यह कर्म किया है, फिर तुम उससे भय क्यों कर रही हो?' शंकरजीके उस वचनको सुनकर गौरी हँस पड़ीं और उनके नेत्रोंपरसे उन्होंने अपने हाथ हटा लिये। फिर तो वहाँ प्रकाश छा गया, परंतु उस प्राणीका रूप भयंकर ही बना रहा और अन्धकारसे उत्पन्न होनेके कारण उसके नेत्र भी अंधे थे। तब वैसे प्राणीको प्रकट हुआ देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा।

गौरीने कहा—भगवन्! मुझे सच-सच बताइये कि हमलोगोंके सामने प्रकट हुआ यह बेडौल प्राणी कौन है। यह तो अत्यन्त भयंकर है। किस निमित्तको लेकर किसने इसकी सृष्टि की है और यह किसका पुत्र है?

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! जब लीला रचनेवाली तथा तीनों लोकोंकी जननी गौरीने सृष्टिकर्ताकी उस अंधी सृष्टिके विषयमें यों प्रश्न किया, तब लीला-विहारी भगवान् शंकर अपनी प्रियाके उस वचनको सुनकर कुछ मुसकराये और इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—अद्भुत चरित्र रचनेवाली अम्बिके! सुनो। जब तुमने मेरे नेत्र मूँद लिये थे, उसी समय यह अद्भुत एवं प्रचण्ड पराक्रमी प्राणी मेरे पसीनेसे प्रकट हुआ। इसका नाम अन्धक है। तुम्हीं इसको उत्पन्न करनेवाली हो, अतः सखियोंसहित तुम्हें करुणापूर्वक इसकी गणोंसे यथायोग्य रक्षा करते रहना चाहिये। आर्ये! इस प्रकार बुद्धिपूर्वक विचार करके ही तुम्हें सब कार्य करना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अपने स्वामीके ऐसे वचन सुनकर गौरीका हृदय करुणार्द्र हो गया। वे अपनी सखियोंसहित अन्धककी अपने पुत्रकी भाँति नाना प्रकारके उपायोंद्वारा रक्षा करने लगीं। तदनन्तर शिशिर-ऋतु आनेपर दैत्य हिरण्याक्ष पुत्रकी कामनासे उसी वनमें आया; क्योंकि उसकी पत्नीने उसके ज्येष्ठ बन्धुकी संतान-परम्पराको देखकर उसे संतानार्थ तपश्चर्याके लिये प्रेरित किया था। वहाँ वह कश्यपनन्दन हिरण्याक्ष वनका आश्रय ले पुत्र-प्राप्तिके लिये घोर तप करने लगा। उसके मनमें महेश्वरके दर्शनकी इच्छा थी, अतः वह क्रोध आदि दोषोंको अपने काबूमें करके ठूँठकी भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ हो गया। द्विजेन्द्र! तब जिसकी ध्वजामें वृषका चिह्न वर्तमान है तथा जो पिनाक धारण करनेवाले हैं, वे महेश उसकी तपस्यासे पूर्णतया प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान करनेके लिये चले और उस स्थानपर पहुँचकर दैत्यप्रवर हिरण्याक्षसे बोले—

महेशने कहा—दैत्यनाथ! अब तू अपनी इन्द्रियोंका विनाश मत कर। किसलिये तूने इस व्रतका आश्रय लिया है? तू अपना मनोरथ तो प्रकट कर। मैं वरदाता शंकर हूँ; अतः तेरी जो अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुझे प्रदान करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! महेश्वरके उस सरस वचनको सुनकर दैत्यराज हिरण्याक्ष परम प्रसन्न हुआ। उसने गिरीशके चरणोंमें नमस्कार करके अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की; फिर वह अञ्जलि बाँधे सिर झुकाकर कहने लगा।

हिरण्याक्षने कहा—चन्द्रभाल! मेरे उत्तम पराक्रम-सम्पन्न तथा दैत्यकुलके अनुरूप कोई पुत्र नहीं है, इसीलिये मैंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है। देवेश! मुझे परम बलशाली पुत्र दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! दैत्यराजके उस वचनको सुनकर कृपालु शंकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले—'दैत्याधिप! तेरे भाग्यमें तेरे वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र तो नहीं लिखा है, किंतु मैं तुझे एक पुत्र देता हूँ। मेरा एक पुत्र है, जिसका नाम अन्धक है। वह तेरे ही समान पराक्रमी और अजेय है। तू सम्पूर्ण दुःखोंको त्यागकर उसीको पुत्ररूपसे वरण कर ले और इस प्रकार पुत्र प्राप्त कर ले।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! उससे यों कहकर गौरीके साथ विराजमान उन महात्मा भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने प्रसन्न होकर हिरण्याक्षको वह पुत्र दे दिया। इस प्रकार शिव-



जैसे पुत्र प्राप्त करके वह महामनस्वी दैत्य परम प्रसन्न हुआ। उसने अनेकों स्तोत्रोंद्वारा रुद्रकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और फिर वह अपने राज्यको चला गया। गिरीशसे पुत्र प्राप्त कर लेनेके बाद वह प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इस पृथ्वीको अपने देश रसातलमें उठा ले गया। तब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने अनन्त पराक्रमी विष्णुकी आराधना की। फिर तो भगवान् विष्णु सर्वात्मक यज्ञमय विकराल वाराह-शरीर धारणकर थूथुनके अनेकों प्रहारोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करके पाताल-लोकमें जा घुसे। वहाँ उन्होंने कभी न टूटनेवाले अपनी अगली दाढ़ोंसे तथा थूथुनसे सैकड़ों दैत्योंका कचूमर निकाल-कर अपने वज्र-सदृश कठोर पाद-प्रहारोंसे निशाचरोंकी सेनाको मथ डाला। तत्पश्चात् अद्भुत एवं प्रचण्ड तेजस्वी विष्णुने करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शन-चक्रसे हिरण्याक्षके प्रज्वलित सिरको काट लिया और दुष्ट दैत्योंको जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस असुर-राज्यपर अन्धकको अभिषिक्त कर दिया। फिर महात्मा इन्द्र विष्णुको अपनी दाढ़ोंद्वारा पाताललोकसे पृथ्वीको लाते हुए देखकर परम प्रसन्न हुए और अपने स्थान-पर आकर पूर्ववत् स्वर्ग और भूतलकी रक्षा करने लगे। इधर वाराहरूप धारण करके उत्तम कार्य करनेवाले उग्ररूपधारी श्रीहरि प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवों, मुनियों और पद्मयोनि ब्रह्माद्वारा प्रशंसित होकर अपने लोकको चले गये। इस प्रकार वाराहरूप-धारी विष्णुद्वारा असुरराज हिरण्याक्षके मारे जानेपर समस्त देव, मुनि तथा अन्यान्य सभी जीव सुखी हो गये। (अध्याय ४२)

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इधर वराहरूप-धारी श्रीहरिके द्वारा इस प्रकार भाईके मारे जानेपर हिरण्य-कशिपु शोक और क्रोधसे संतप्त हो उठा। श्रीहरिके साथ वैर करना तो उसे रुचता ही था, अतः उसने संहारप्रेमी वीर असुरोंको प्रजाका विनाश करनेके लिये आज्ञा दे दी। तब वे संहारप्रिय असुर स्वामीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर देवताओं और प्रजाओंका विनाश करने लगे। इस प्रकार जब इन दुष्ट-चित्तवाले असुरोंद्वारा सारा देवलोक तहस-नहस कर दिया गया, तब देवता स्वर्गको छोड़कर गुप्तरूपसे भूतलपर विचरने लगे। उधर भाईकी मृत्युसे दुःखी हुए हिरण्यकशिपुने भाईको जलाञ्जलि देकर उसकी स्त्री आदिको ढाढ़स बँधाया। तत्पश्चात् उस दैत्यराजने अपने लिये विचार किया कि 'मैं अजेय, अजर और अमर हो जाऊँ। मेरा ही एकच्छत्र साम्राज्य रहे और मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई न रह जाय।' यों धारणा बनाकर वह मन्दराचलपर गया और वहाँ एक गुफामें अत्यन्त घोर तपस्या करने लगा। उस समय वह पैरके अँगूठेके बल खड़ा था। उसकी भुजाएँ ऊपरको उठी थीं और दृष्टि आकाशकी ओर लगी थी। उसकी तपस्यासे संतप्त होकर देवताओंका मुख विकृत हो उठा। वे स्वर्गको छोड़कर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और उन्होंने ब्रह्मासे अपना दुखड़ा कह सुनाया। व्यासजी! उन देवताओंके इस प्रकार कहनेपर स्वयम्भू ब्रह्मा भृगु, दक्ष आदिके साथ उस दैत्येश्वरके आश्रमपर गये। तब जिसने अपने तपसे सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त कर दिया था, उस हिरण्यकशिपुने वर देनेके लिये आये हुए पद्मयोनि ब्रह्माको अपने सामने उपस्थित देखा। उधर पितामहने भी उससे कहा—'वर माँग।' तब जिसकी बुद्धि मोहित नहीं हुई थी, उस असुरने विधाताकी उस मधुर वाणीको सुनकर इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—ऐश्वर्यशाली प्रजापति! पिता-

मह ! मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें, भूतलपर, दिनमें, रातमें, ऊपर अथवा नीचे—कहीं भी शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, शुष्क वृक्ष, पर्वत, जल, अग्निके रूपमें शत्रुके प्रहारसे, देवता, दैत्य, मुनि, सिद्ध किंबहुना आपद्वारा रचे हुए जीवोंके हाथों मुझे कभी भी मृत्युका भय न हो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! हिरण्यकशिपुके वैसे वचन सुनकर पद्मयोनि ब्रह्माके मनमें दयाका भाव जाग्रत् हो उठा। उन्होंने मन-ही-मन विष्णुको प्रणाम करके उससे कहा—'दैत्येन्द्र! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, अतः तुझे सारी वस्तुएँ प्राप्त होंगी। तूने छियानबे हजार वर्षोंतक तप किया है, अब तेरी कामना पूर्ण हो चुकी है; अतः तपसे विरत होकर उठ और दानवोंके राज्यका उपभोग कर।' ब्रह्माकी वाणी सुनकर हिरण्यकशिपुका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। इस प्रकार जब प्रपितामहने उसे दानव-राज्यपर अभिषिक्त कर दिया, तब वह उन्मत्त हो उठा और त्रिलोकीको नष्ट करनेका विचार करने लगा। फिर तो उसने सम्पूर्ण धर्मोंका उच्छेद करके संग्राममें समस्त देवताओंको भी जीत लिया। तब देवता भागकर विष्णुके पास पहुँचे। वहाँ श्रीहरिने देवताओं और मुनियोंकी दुःख-गाथा सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और शीघ्र ही उस दैत्यके वध करनेका वचन दिया। तब देवता अपने स्थानको लौट गये। तदनन्तर महात्मा विष्णुने ऐसा रूप धारण किया जो आधा सिंह और आधा मनुष्यका था। वह अत्यन्त भयंकर तथा विकराल दीख रहा था। उसका मुख खूब फैला हुआ था, नासिका बड़ी सुन्दर थी और नख तीखे थे। गर्दनपर सटाएँ लहरा रही थीं। दाढ़ ही आयुध थे। उससे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी और उसका प्रभाव प्रलय-कालीन अग्निके सदृश था। अधिक कहाँतक कहा जाय, वह रूप जगन्मय था। इसी रूपसे वे भगवान् भास्करके अस्ताचल-की शरण लेनेपर असुरोंकी नगरीमें प्रविष्ट हुए। उन अतुल प्रभावशाली नृसिंहको देखकर सभी दैत्य एक साथ उनपर टूट पड़े। तब उन अद्भुत पराक्रमी नृसिंहने महाबली दैत्योंके साथ युद्ध करके बहुतोंको मार डाला और बहुतोंको पकड़कर तोड़-मरोड़ दिया। फिर वे उस नगरमें घूमने लगे। तब उन सर्वमय सिंहको देखकर दैत्यराजके पुत्र प्रह्लादने राजासे कहा—'यह मृगेन्द्र तो जगन्मय दीख रहा है। यह यहाँ किस लिये आया है।'

प्रह्लादने पुनः कहा—पिताजी! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये भगवान् अनन्त हैं और नृसिंहका रूप धारण करके आपके नगरमें प्रविष्ट हुए हैं; क्योंकि मुझे इनकी मूर्ति बड़ी विकराल दीख रही है। अतः आप युद्धसे हटकर इनकी शरणमें जाइये। इनसे बढ़कर त्रिलोकीमें दूसरा कोई योद्धा नहीं है, इसलिये आप इन मृगेन्द्रके सामने झुककर अपने राज्यका उपभोग कीजिये। अपने पुत्रकी बात सुनकर उस दुरात्माने उससे कहा—'बेटा! क्या तू भयभीत हो गया?' अपने पुत्रसे यों कहकर दैत्योंके अधिपति राजा हिरण्यकशिपुने महाबली दैत्योंको आज्ञा देते हुए कहा—'वीरो! तुमलोग इस बेडौल भ्रुकुटि और नेत्रवाले सिंहको पकड़ लो।' तब स्वामीकी आज्ञासे उन मृगेन्द्रको पकड़नेकी इच्छासे वे सभी बड़े-बड़े दैत्य रणभूमिमें घुसे; परंतु जैसे रूपकी अभिलाषासे अग्निमें प्रवेश करनेवाले पतिंगे जल-भुन जाते हैं, उसी तरह वे सब-के-सब क्षणभरमें ही जलकर भस्म हो गये। दैत्योंके दग्ध हो जानेपर भी वह दैत्यराज सम्पूर्ण शस्त्र, अस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अङ्कुश और पावक आदिसे उन मृगेन्द्रके साथ लोहा लेता ही रहा। इस प्रकार बहुत कालतक भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें उन नृसिंहने वज्रके समान कठोर अपनी अनेकों भुजाओंसे उस दैत्यको पकड़ लिया और उसे अपने जानुओंपर लिटाकर दानवोंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले नखाङ्कुरोंसे उसकी छाती चीर डाली तथा खूनसे लथपथ हुए उसके हृदय-कमल-को निकाल लिया। फिर तो उसी क्षण उसके प्राणपखेरू उड़ गये। तब भगवान् नृसिंहने बारंबारके आघातसे जिसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये थे, उस काष्ठभूत दैत्यको छोड़ दिया। उस समय उस देवशत्रुके मारे जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर प्रह्लादने आकर उनके चरणोंमें सिर झुकाया। तब अद्भुत पराक्रमी विष्णुने प्रह्लादको बुलाकर उन्हें दैत्योंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं अतर्कित गतिको प्राप्त हो गये अर्थात् अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर पितामह आदि समस्त सुरेश्वर परम प्रसन्न हो अपना कार्य सिद्ध करनेवाले पूजनीय भगवान् विष्णुको उसी दिशामें प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये। विप्रवर! प्रसङ्ग-वश मैंने रुद्रसे अन्धककी उत्पत्ति, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, नृसिंहके हाथों उसके भाईका विनाश और प्रह्लादकी राज्य-प्राप्तिका वर्णन कर दिया। द्विजश्रेष्ठ! अब मैं शिवकी कृपासे प्राप्त हुए अन्धकके प्रभावका, शंकरजीके साथ उसके युद्धका और पीछे जिस प्रकार उसे महेशके गणाध्यक्ष-पदकी प्राप्ति हुई, उस कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो। (अध्याय ४३)

भाइयोंके उपालम्भसे अन्धकका तप करना और वर पाकर त्रिलोकीको जीतकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, उसके मन्त्रियोंद्वारा शिव-परिवारका वर्णन, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका वहाँ जाना और नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके प्रहारसे नन्दीश्वरकी मूर्च्छा, पार्वतीके आवाहनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन और युद्ध, शिवद्वारा शुक्राचार्यका निगला जाना, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारण करके दानवोंके रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने त्रिशूलमें पिरोना और युद्धकी समाप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! एक समय हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक अपने भाइयोंके साथ विहारमें संलग्न था। उसी समय उसके कामासक्त मदान्ध भाइयोंने उससे कहा—'अरे अन्धे ! तुम्हें तो अब राज्यसे क्या प्रयोजन है ? हिरण्याक्ष तो मूर्ख था, जो उसने घोर तपद्वारा शंकरजीको प्रसन्न करके भी तुम-जैसे कुरूप, बेडौल, कलिप्रिय और नेत्रहीनको प्राप्त किया ! ऐसे तुम राज्यके भागी तो हो नहीं सकते; क्योंकि भला तुम्हीं विचार करो कि कहीं दूसरेसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी राज्य पाता है ? सच पूछो तो निश्चय ही इस राज्यके भागी हमीं-लोग हैं।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! उन लोगोंकी वह बात सुनकर अन्धक दीन हो गया। फिर उसने स्वयं ही बुद्धिपूर्वक विचार करके तरह-तरहकी बातोंसे उन्हें शान्त किया और रातके समय वह निर्जन वनमें चला गया। वहाँ उसने हजारों वर्षोंतक घोर तप करके अपने शरीरको सुखा डाला और अन्तमें उस शरीरको अग्निमें होम देना चाहा। तब ब्रह्माजीने उसे वैसा करनेसे रोककर कहा—'दानव ! अब तू वर माँग ले। सारे संसारमें जिस दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करनेकी तेरी अभिलाषा हो, उसे तू मुझसे ले ले।' पद्मयोनि ब्रह्माके वचनको सुनकर वह दैत्य दीनता एवं नम्रतापूर्वक कहने लगा—'भगवन् ! जिन निष्ठुरोंने मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब दैत्य आदि मेरे भृत्य हो जायँ, मुझ अंधेको दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय, इन्द्र आदि देवता मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु नारायण, सर्वमय शंकर तथा अन्यान्य किन्हीं भी प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो।' उसके उस अत्यन्त दारुण वचनको सुनकर ब्रह्माजी सशङ्कित हो उठे और उससे बोले।

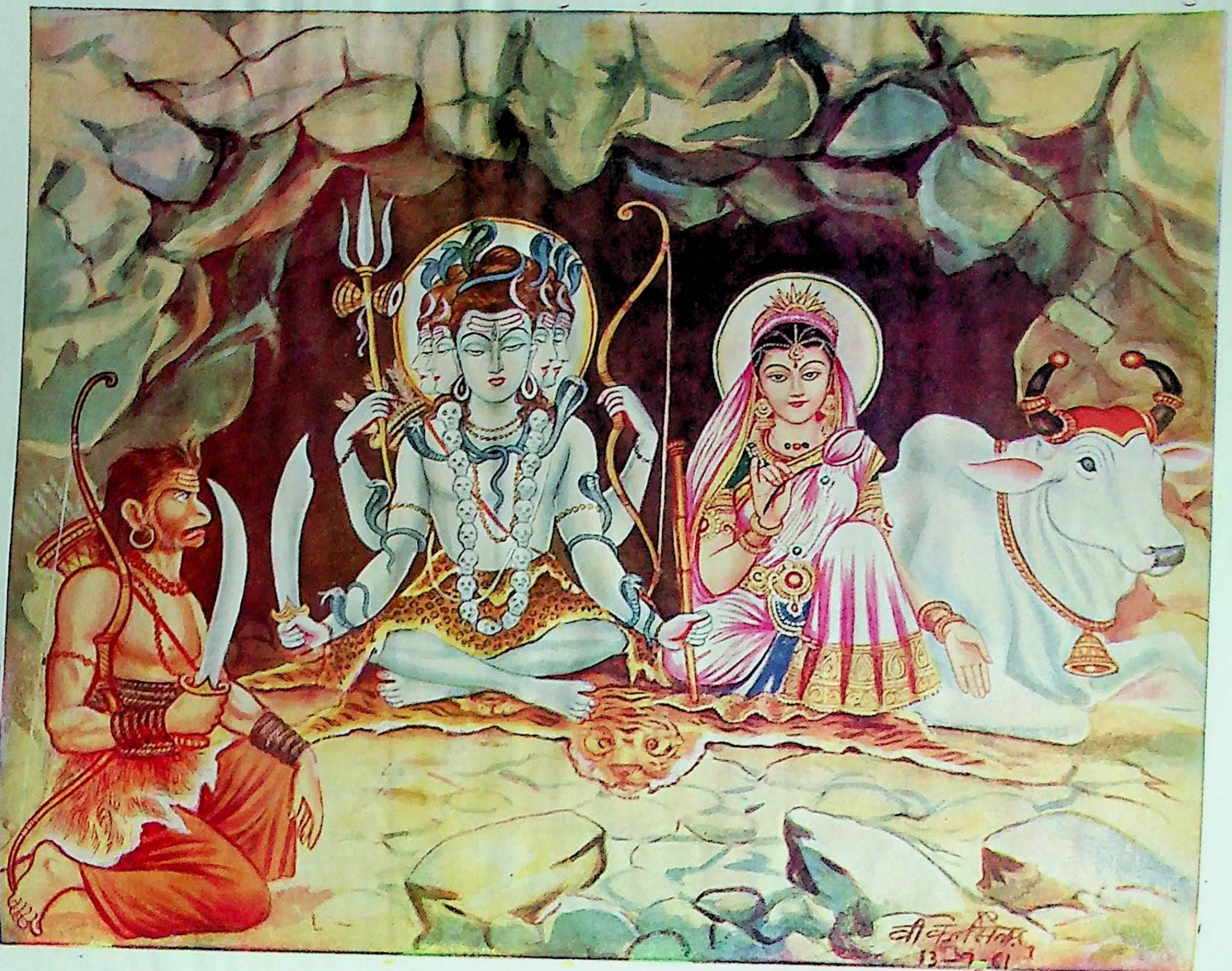
ब्रह्माजीने कहा—दैत्येन्द्र ! ये सारी बातें तो हो जायँगी, किंतु तू अपने विनाशका कोई कारण भी तो स्वीकार कर ले; क्योंकि जगत्‌में कोई ऐसा प्राणी न हुआ है और न आगे होगा ही, जो कालके गालमें न गया हो। फिर तुझ जैसे सत्पुरुषोंको तो अत्यन्त लंबे जीवनका विचार त्याग ही देना चाहिये। ब्रह्माके इस अनुनयभरे वचनको सुनकर वह दैत्य पुनः बोला।

अन्धकने कहा—प्रभो ! तीनों कालोंमें जो उत्तम, मध्यम और नीच नारियाँ होती हैं, उन्हीं नारियोंमें कोई रत्नभूता नारी मेरी भी जननी होगी। वह मनुष्यलोकके लिये दुर्लभ तथा शरीर, मन और वचनोंसे भी अगम्य है। उसमें राक्षस भावके कारण जब मेरी काम-भावना उत्पन्न हो जाय, तभी मेरा नाश हो। उसकी बात सुनकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको महान् आश्चर्य हुआ। वे शंकरजीके चरणकमलोंका स्मरण करने लगे। तब शम्भुकी आज्ञा पाकर वे उस अन्धकसे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यवर ! तू जो कुछ चाहता है, तेरे वे सभी सकाम वचन पूर्ण होंगे। दैत्येन्द्र ! अब तू उठ, अपना अभीष्ट प्राप्त कर और सदा वीरोंके साथ युद्ध करता रह। मुनीश ! हिरण्याक्षपुत्र अन्धकके शरीरमें नसें और हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं। वह ब्रह्माके ऐसे वचनको सुनकर शीघ्र ही भक्तिपूर्वक उन लोकेश्वरके चरणोंमें लोट गया और इस प्रकार बोला।

अन्धकने कहा—विभो ! जब मेरे शरीरमें नसें और हड्डियाँ मात्र ही शेष रह गयी हैं, तब भला इस देहसे शत्रु-सेनामें प्रवेश करके मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा; अतः अब आप अपने पवित्र हाथसे मेरा स्पर्श करके इस शरीरको मांसल बना दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! अन्धककी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने अपने हाथसे उसके शरीरका स्पर्श किया और फिर वे मुनिगणों तथा सिद्धसमूहोंसे भलीभाँति पूजित हो देवताओंके साथ अपने धामको चले गये। ब्रह्माके



गुफामें गौरीशंकर

[पृष्ठ २८१

स्पर्श करते ही उस दैत्यराजका शरीर भरा-पूरा हो गया, जिससे उसमें बलका संचार हो आया तथा नेत्रोंके प्राप्त हो जानेसे वह सुन्दर दीखने लगा। तब उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया। उस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ दानवोंने जब उसे वरदान प्राप्त करके आया हुआ जाना, तब वे सारा राज्य उसे समर्पित करके उसके वशवर्ती भृत्य हो गये। तदनन्तर अन्धक सेना और भृत्यवर्गको साथ ले स्वर्गको जीतनेके लिये गया। वहाँ संग्राममें समस्त देवताओंको पराजित करके उसने वज्रधारी इन्द्रको अपना करद बना लिया। उसने यत्र-तत्र बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़कर नागों, सुपर्णों, श्रेष्ठ राक्षसों, गन्धर्वों यक्षों, मनुष्यों, बड़े-बड़े पर्वतों, वृक्षों और सिंह आदि समस्त चौपाइयोंको भी जीत लिया। यहाँतक कि उसने चराचर त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया। तदनन्तर वह रसातलमें भूतलपर तथा स्वर्गमें जितनी सुन्दर रूपवाली नारियाँ थीं, उनमेंसे हजारोंको, जो अत्यन्त दर्शनीय तथा अपने अनुकूल थीं, साथ लेकर विभिन्न पर्वतोंपर तथा नदियोंके रमणीय तटोंपर विहार करने लगा। दैत्यराज अन्धक सदा दुष्टोंका ही सङ्ग करता था। उसकी बुद्धि मदसे अंधी हो गयी थी, जिससे उस मूढ़को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया कि परलोकमें आत्माको सुख देनेवाला भी कोई कर्म करना चाहिये। इस प्रकार वह महामनस्वी दैत्य उन्मत्त हो और अपने सारे प्रधान-प्रधान पुत्रोंको कुतर्कवादसे पराजित करके दैत्योंसहित सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ विचरण करने लगा। वह धनके मदसे अभिभूत हो वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरु आदि किसीको भी नहीं मानता था। प्रारब्धवश उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी, इसीसे वह स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो व्यर्थमें ही अपनी आयुके शेष दिन गँवाता हुआ रमण कर रहा था। उस दानवश्रेष्ठके तीन मन्त्री थे, जिनका नाम था—दुर्योधन, वैधस और हस्ती। एक समय उन तीनोंने उस पर्वतके किसी रमणीय स्थानपर एक परम रूपवती नारीको देखा। उसे देखकर वे शीघ्रगामी श्रेष्ठ दैत्य हर्षमग्न हो तुरंत ही महादैत्यपति वीरवर अन्धकके पास पहुँचे और बड़े प्रेमसे उस देखी हुई घटनाका वर्णन करने लगे।

मन्त्रियोंने कहा—दैत्येन्द्र! यहाँ एक गुफाके भीतर हमने एक मुनिको देखा है। ध्यानस्थ होनेके कारण उसके नेत्र बंद हैं। वह बड़ा रूपवान् है। उसके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी कला अपनी छटा बिखेर रही है और कमरमें गजेन्द्रकी खाल बँधी हुई है। बड़े-बड़े नाग उसके सारे शरीरमें लिपटे हुए हैं। खोपड़ियोंकी माला ही उस जटाधारीका आभूषण है। उसके हाथमें त्रिशूल है तथा एक विशाल धनुष, बाण और तूणीर भी वह धारण किये हुए है। उसका अक्षसूत्र स्पष्ट दीख रहा है। उसके चार भुजाएँ तथा लंबी-लंबी जटाएँ हैं। वह खड्ग, त्रिशूल और लकुट धारण किये हुए है। उसकी आकृति अत्यन्त गौर है और उसपर भस्मका अनुलेप लगा हुआ है। वह अपने उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार उस श्रेष्ठ तपस्वीका सारा वेष ही अद्भुत है। उससे थोड़ी ही दूरपर हमने एक और पुरुषको देखा है, जो विकराल वानर-सा है। उसका मुख बड़ा भयंकर है। वह सभी आयुध धारण किये हुए है, परंतु उसका हाथ रूक्ष है। वह उस तपस्वीकी रक्षामें तत्पर है। उसके पास ही एक बूढ़ा सफेद रंगका बैल भी बैठा है। उस बैठे हुए तपस्वीके पार्श्वभागमें हमने एक शुभलक्षणसम्पन्ना नारीको भी देखा है। वह भूतलपर रत्नस्वरूपा है। उसका रूप बड़ा मनोरम है और तरुणी होनेके नाते वह मनको मोहे लेती है। मूँगे, मोती, मणि, सुवर्णरत्न और उत्तम वस्त्रोंसे वह सुसज्जित है। उसके गलेमें सुन्दर मालाएँ लटक रही हैं। (कहाँतक कहें, वह इतनी सुन्दरी है कि) जिसने उसे एक बार देख लिया, उसीका नेत्र धारण करना सफल है। उसे इस लोकमें अन्य वस्तुओंके देखनेसे क्या प्रयोजन। वह दिव्य नारी पुण्यात्मा मुनिवर महेशकी मान्या एवं प्रियतमा भार्या है। दैत्येन्द्र! आप तो उत्तमोत्तम रत्नोंका उपभोग करनेवाले हैं, अतः उसे यहाँ बुलवाकर देखिये। वह आपके भी देखने योग्य है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! मन्त्रियोंके उन वचनोंको सुनकर दैत्यराज अन्धक कामातुर हो उठा। उसके सारे शरीरमें कम्प छा गया। फिर तो उसने तुरंत ही दुर्योधन आदिको उस मुनिके पास भेजा। मन्त्रियोंने वहाँ जाकर मुनीश्वरको प्रणाम करके उनसे अन्धकासुरका संदेश कहा तथा बदलेमें शिवजीका उत्तर सुनकर वे लौटकर अन्धकसे बोले।

मन्त्रियोंने कहा—राजन्! आप तो सम्पूर्ण दैत्योंके स्वामी हैं, फिर भी उस महान् पराक्रमी वीरवर तपस्वी मुनिने अपनी बुद्धिसे त्रिलोकीको तृणके समान समझकर हँसते हुए आपके लिये ऐसी बातें कही हैं—'उस निशाचरका शौर्य और धैर्य अस्थिर हैं। वह दानव कृपण, सत्त्वहीन, क्रूर, कृतघ्न और सदा ही पापकर्म करनेवाला है। क्या उसे सूर्यपुत्र यमका भय नहीं है? कहाँ तो मैं, मेरे दारुण शस्त्र और मृत्युको भी संत्रस्त कर देनेवाला युद्ध और कहाँ वह वानरका

सा मुखवाला डरपोक निशाचर, जिसके सारे अङ्ग बुढ़ापेसे जर्जर हो गये हैं ! कहाँ मेरा यह स्वरूप और कहाँ तेरी मन्दभाग्यता ! तेरी सेना भी तो नहींके बराबर ही है। फिर भी यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो युद्धके लिये तयार हो जा और आकर कुछ अपनी करतूत दिखा। मेरे पास तुझ-जैसे पापियोंका विनाश करनेवाला बज्र-सरीखा भयंकर शस्त्र है और तेरा शरीर तो कमलके समान कोमल है। ऐसी दशामें विचार करके तुझे जो रुचिकर प्रतीत हो, वह कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं--मुनिवर ! मन्त्रियोंकी बात सुनकर (माता) पार्वतीपर मोहित हुआ वह कामान्ध राक्षस विशाल सेना लेकर चल दिया और वहाँ पहुँचकर नन्दीश्वरसे युद्ध करने लगा। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस समय युद्धस्थलमें चर्बी, मज्जा, मांस और रक्तकी कीच मच गयी। वहाँ सिर कटे हुए धड़ नाच रहे थे और कच्चा मांस खानेवाले जानवर चारों ओर व्याप्त हो गये थे, जिससे वह बड़ा भयंकर लग रहा था। थोड़ी ही देरमें दैत्य भाग खड़े हुए। तब पिनाकधारी भगवान् शंकर दक्ष-कन्या सतीको भलीभाँति धीरज बँधाते हुए बोले--'प्रिये ! मैंने जो पहले अत्यन्त भयकर महान् पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया था, उसमें रात-दिन तुम्हारे प्रसंगवश जो हमारी सेनाका विनाश हुआ है, यह विघ्न-सा आ पड़ा है। देवि ! मरणधर्मा प्राणियोंका जो अमरोंपर आक्रमण हुआ है, यह मानो पुण्यका विनाश करनेवाला कोई ग्रह प्रकट हो गया है। अतः अब मैं पुनः किसी निर्जन वनमें जाकर उस परम अद्भुत दिव्य व्रतकी दीक्षा लूँगा और उस कठिन व्रतका अनुष्ठान करूँगा। सुन्दरि ! तुम्हारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये।'

सनत्कुमारजी कहते हैं--मुने ! इतना कहकर उग्र प्रभावशाली महात्मा शंकर धीरेसे अपना सिंगा बजाकर एक अत्यन्त भयंकर पावन वनमें चले गये। वहाँ वे एक हजार वर्षोंके लिये पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानमें तत्पर हो गये। इस व्रतका निभाना देवों और असुरोंकी शक्तिके बाहर है। इधर शीलगुणसे सम्पन्न पतिव्रता देवी पार्वती मन्दराचलपर ही रहकर शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। यद्यपि पुत्रस्थानीय वीरकगण उनकी सुरक्षामें तत्पर थे, तथापि उस गुहाके भीतर अकेले रहनेके कारण वे सदा भयभीत रहती थीं, जिससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। इसी बीच वरदानके प्रभावसे उन्मत्त हुआ वह दैत्य अन्धक, जिसका धैर्य कामदेवके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया था, अपने मुख्य-मुख्य योधाओंको साथ ले पुनः उस गुफापर चढ़ आया। वहाँ सैनिकोंसहित उसने वीरकगणके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। उस समय सभी वीरोंने अन्न, जल और नींदका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार वह युद्ध लगातार पाँच सौ पाँच दिन-राततक चलता रहा। अन्तमें दैत्योंकी भुजाओंसे छूटे हुए आयुधोंके प्रहारसे नन्दीश्वरका शरीर घायल हो गया, जिससे वे गुहाद्वारपर ही गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उनके गिरनेसे गुहाका सारा दरवाजा ही ढक गया, जिससे उसका खोला जाना असम्भव था। फिर दैत्योंने दो ही घड़ीमें सारे वीरकगणको अपने अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित कर दिया। तब पार्वतीने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्राह्मी, नारायणी, ऐन्द्री, वैश्वानरी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायवी, कौबेरी, यक्षेश्वरी, गारुडी आदि देवियोंके रूपमें समस्त देवता, यक्ष, सिद्ध, गुह्यक आदि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो पार्वतीके पास आ पहुँचे और राक्षसोंके साथ भिड़ गये। कुछ समय बाद भगवान् शिव भी आ गये। फिर तो घोर युद्ध हुआ। तदनन्तर शुक्राचार्यको संजीवनी विद्याके द्वारा दैत्योंको जीवित करते देखकर भूतनाथ शिवजी उनको निगल गये। इससे दैत्य ढीले पड़ गये।

व्यासजी ! अन्धक महान् पराक्रमी, वीर और त्रिपुरहन्ता शिवके समान बुद्धिमान् था। सैकड़ों वरदान मिलनेके कारण वह उन्मादके वशीभूत हो रहा था। यद्यपि बहुसंख्यक शस्त्रास्त्रोंकी चोटसे उसका शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी शिवजीपर विजय पानेके लिये उसने दूसरी माया रची। जब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करनेवाले भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने अपने त्रिशूलसे उसे बुरी तरह छेद डाला, तब भूतलपर गिरे हुए उसके रक्तकणोंसे यूथ-के-यूथ अन्धक प्रकट हो गये। उनसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गयी। वे विकृत मुखवाले भयंकर राक्षस अन्धकके सदृश ही पराक्रमी थे। इस प्रकार जब पशुपतिद्वारा मारे गये सैनिकोंके घावोंसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रक्तबिन्दुओंसे दूसरे सैनिक उत्पन्न होने लगे, तब बहुत-सी भुजारूपी लताओंद्वारा आक्रान्त होनेके कारण कुपित हुए बुद्धिमान् भगवान् विष्णुने प्रमथनाथ शिवको बुलाकर योगबलसे एक ऐसा स्त्रीरूप धारण किया, जिसका मुख विकृत था और रूप उग्र विकराल और कङ्कालमात्र था। वह स्त्रीरूप शम्भुके कानसे निकला था। जब उन देवीने रणभूमिमें उपस्थित हो अपने

युगल चरणोंसे पृथ्वीको अलंकृत किया; तब सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे । तत्पश्चात् भगवान्ने उनकी बुद्धिको प्रेरित किया । फिर तो वे क्षुधार्त होकर रणके मुहानेपर उन सैनिकोंके तथा दैत्यराजके शरीरसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रुधिरका पान करने लगीं । (जिससे राक्षसोंका उत्पन्न होना बंद हो गया) । तदनन्तर एकमात्र अन्धक ही बच रहा । यद्यपि उसके शरीरका रक्त सूख गया था, तथापि वह अपने कुलोचित सनातन क्षात्रधर्मका स्मरण करके अविनाशी भगवान् शंकरके साथ भयंकर थप्पड़ोंसे वज्र-सदृश जानुओं और चरणोंसे, वज्राकार नखोंसे, मुख, भुजा और सिरोंसे संग्राम करता रहा । तब प्रमथनाथ शिवने रणभूमिमें उसका हृदय विदीर्ण करके उसे शान्त कर दिया । फिर त्रिशूल भोंककर उसे स्थाणुके समान ऊपरको उठा लिया । उसका जर्जर शरीर नीचेको लटक रहा था । सूर्यकी किरणोंने उसे सुखा दिया । पवनके झोंकोंसे युक्त मेघोंने मूसलाधार जल बरसाकर उसे गीला कर दिया । हिमखण्डके समान शीतल चन्द्रमाकी किरणोंने उसे विशीर्ण कर दिया । फिर भी उस दैत्यराजने अपने प्राणोंका परित्याग नहीं किया ! उसने विशेषरूपसे शिवजीका स्तवन किया । तब करुणाके अगाध सागर शम्भु प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक गणाध्यक्षका पद प्रदान कर दिया । तत्पश्चात् युद्धके समाप्त हो जानेपर लोकपालोंने नाना प्रकारके सारगर्भित स्तोत्रोंद्वारा विधिपूर्वक शिवजीकी अर्चना की और हर्षित हुए ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंने गर्दन झुकाकर उत्तमोत्तम स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन किया । फिर जय-जयकार करते हुए वे आनन्द मनाने लगे । तदनन्तर शिवजी उन सबको साथ लेकर आनन्दपूर्वक गिरिराजकी गुफाको लौट आये । वहाँ उन्होंने अपने ही अंशभूत पूजनीय देवताओंको नाना प्रकारकी भेंट समर्पित करके उन्हें विदा किया और स्वयं प्रमुदित हुए गिरिराजकुमारीके साथ उत्तमोत्तम लीलाएँ करने लगे । (अध्याय ४४—४६)

नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा उनका निगला जाना, सौ वर्षके बाद शुक्रका शिवलिङ्गके रास्ते बाहर निकलना, शिवद्वारा उनका 'शुक्र' नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जपे गये मृत्युंजय मन्त्र और शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका वर्णन, शिवद्वारा अन्धकको वर-प्रदान

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! जब वह महान् भयंकर एवं रोमाञ्चकारी संग्राम चल रहा था, उस समय त्रिपुरारि शंकरने दैत्यगुरु विद्वान् शुक्राचार्यको निगल लिया था—वह घटना मैंने संक्षेपमें ही सुनी थी । अब आप उसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । पिनाकधारी शिवके उदरमें जाकर उन महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया था ? शम्भुकी जठराग्निने उन्हें जलाया क्यों नहीं ? भृगुनन्दन बुद्धिमान् शुक्र भी तो कल्पान्तकालीन अग्निके समान उग्र तेजस्वी थे । वे शम्भुके जठर-पञ्जरसे कैसे निकले ? उन्होंने कैसे और कितने कालतक आराधना की थी ? तात ! उन्हें जो मृत्युका शमन करनेवाली पराविद्या प्राप्त हुई थी, वह विद्या कौन-सी है, जिससे मृत्युका निवारण हो जाता है ? मुने ! लीलाविहारी देवाधिदेव भगवान् शंकरके त्रिशूलसे छूटे हुए अन्धकको गणाध्यक्षताकी प्राप्ति कैसे हुई ? तात ! मुझे शिवलीलामृत श्रवण करनेकी विशेष लालसा है, अतः आप मुझपर कृपा करके वह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—अमिततेजस्वी व्यासजीके इन वचनोंको सुनकर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे ।

सनत्कुमारजीने कहा—मुनिवर ! भगवान् शंकरके प्रमथोंकी जब अत्यन्त विजय होने लगी, तब अन्धक घबराकर शुक्राचार्यजीकी शरणमें गया और उसने गिड़गिड़ाकर मृतसंजीवनी विद्याके द्वारा मरे हुए असुरोंको जीवित करनेकी प्रार्थना की । इसपर शुक्राचार्यने शरणागतधर्मकी रक्षा करना उचित समझा । फिर तो वे युद्धस्थलमें गये और आदरपूर्वक विद्याके स्वामी शंकरका स्मरण करके एक-एक दैत्यपर मृतसंजीवनी विद्याका प्रयोग करने लगे । उस विद्याका प्रयोग होते ही वे सभी दैत्य-दानव वीर एक साथ ही हथियार लिये हुए इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो अभी सोकर उठे हों । जैसे पूर्णतया अभ्यस्त किया हुआ वेद, समरभूमिमें बादल और श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दिया हुआ धन आपत्तिके समय तुरंत प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार वे उठ खड़े हुए । शुक्राचार्यके संजीवनी-प्रयोगसे जब बड़े-बड़े दानव जीवित होकर प्रमथोंको बुरी तरह मारने लगे, तब प्रमथोंने

जाकर प्रमथेश्वरेश शिवको यह समाचार सुनाया । तब शिवजीने कहा—'नन्दिन् ! तुम अभी तुरंत ही जाओ और दैत्योंके बीचसे द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यको उसी प्रकार उठा लाओ जैसे बाज लवाको उठा ले जाता है ।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! वृषभध्वजके यों कहनेपर नन्दी साँड़के समान बड़े जोरसे गरजे और तुरंत ही सेनाको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ भृगुवंशके दीपक शुक्राचार्य विराजमान थे । वहाँ समस्त दैत्य हाथोंमें पाश, खड्ग, वृक्ष, पत्थर और पर्वतखण्ड लिये हुए उनकी रक्षा कर रहे थे । यह देखकर बलशाली नन्दीने उन दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यका उसी प्रकार अपहरण कर लिया, जैसे शरभ हाथीको उठा ले जाता है । महाबली नन्दीद्वारा पकड़े जानेपर शुक्राचार्यके वस्त्र खिसक गये । उनके आभूषण गिरने लगे और केश खुल गये । देवशत्रु दानव उन्हें छुड़ानेके लिये सिंहनाद करते हुए नन्दीके पीछे दौड़े और, जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नन्दीश्वरके ऊपर वज्र, त्रिशूल, तलवार, फरसा, बरेंठी और गोफन आदि अस्त्रोंकी उग्र वृष्टि करने लगे । तब उस देवासुर-संग्रामके विकराल रूप धारण करनेपर गणाधिराज नन्दीने अपने मुखकी आगसे सैकड़ों शस्त्रोंको भस्म कर दिया और उन भृगुनन्दनको दबोचकर शत्रुदलको व्यथित करते हुए वे शिवजीके समीप आ पहुँचे तथा शीघ्र ही उन्हें निवेदित करते हुए बोले—'भगवन् ! ये शुक्राचार्य उपस्थित हैं ।' तब भूतनाथ देवाधिदेव शंकरने पवित्र पुरुषद्वारा प्रदान किये हुए उपहारकी भाँति शुक्राचार्यको पकड़ लिया और बिना कुछ कहे उन्हें फलकी तरह मुखमें डाल लिया । उस समय समस्त असुर उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे ।

व्यासजी ! जब गिरिजेश्वरने शुक्राचार्यको निगल लिया, तब दैत्योंकी विजयकी आशा जाती रही । उस समय उनकी दशा सूँड़रहित गजराज, सींगहीन साँड़, मस्तकविहीन देह, अध्ययनरहित ब्राह्मण, उद्यमहीन प्राणी, भाग्यहीनके उद्यम, पतिरहित स्त्री, फलवर्जित बाण, पुण्यहीनोंकी आयु, व्रतरहित वेदाध्ययन, एकमात्र वैभवशक्तिके बिना निष्फल हुए कर्मसमूह, शूरताहीन क्षत्रिय और सत्यके बिना धर्मसमुदायकी भाँति शोचनीय हो गयी । दैत्योंका सारा उत्साह जाता रहा । तब अन्धकने महान् दुःख प्रकट करते हुए अपने शूरवीरोंको बहुत उत्साहित किया और कहा—'वीरो ! जो रणाङ्गण छोड़कर भाग जाते हैं, उनकी ख्याति अपयशरूपी कालिमासे मलिन हो जाती है और उन्हें इस लोकमें तथा परलोकमें—कहीं भी सुख नहीं मिलता । यदि पुनर्जन्मरूपी मलका अपहरण करनेवाले धारातीर्थ—रणतीर्थमें अवगाहन कर लिया जाय तो अन्य तीर्थोंमें स्नान, दान और तपकी क्या आवश्यकता है अर्थात् इनका फल रणभूमिमें प्राणत्याग करनेसे ही प्राप्त हो जाता है ।' दैत्यराजके इस वचनको पूर्णरूपसे धारण करके वे दैत्य तथा दानव रणभेरी बजाकर रणभूमिमें प्रमथगणोंपर टूट पड़े और उन्हें मथने लगे तथा बाण, खड्ग, वज्र-सरीखे कठोर पत्थर, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भाले, फरसे, खट्वाङ्ग, पट्टिश, त्रिशूल, लकुट और मुसलोंद्वारा परस्पर प्रहार करते हुए भयंकर मार-काट मचाने लगे । इस प्रकार अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ । इसी बीच विनायक, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, वीर नैगमेय और महाबली वैशाख आदि उग्र गणोंने त्रिशूल, शक्ति और बाणसमूहोंकी धारावाहिक वर्षा करके अन्धकको अंधा बना दिया । फिर तो प्रमथों तथा असुरोंकी सेनाओंमें महान् कोलाहल मच गया । उस घोर शब्दको सुनकर शम्भुके उदरमें स्थित शुक्राचार्य आश्रयरहित वायुकी भाँति निकलनेका मार्ग ढूँढ़ते हुए चक्कर काटने लगे । उस समय उन्हें रुद्रके उदरमें पातालसहित सातों लोक, ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा वह प्रमथासुर-संग्राम भी दीख पड़ा । इस प्रकार वे सौ वर्षोंतक शिवजीकी कुक्षिमें चारों ओर भ्रमण करते रहे; परंतु उन्हें उसी प्रकार कोई छिद्र नहीं दीख पड़ा, जैसे दुष्टकी दृष्टि सदाचारीके छिद्रको नहीं देख पाती । तब भृगुनन्दनने शैवयोगका आश्रय ले एक मन्त्रका जप किया । उस मन्त्रके प्रभावसे वे शम्भुके जठरपञ्जरसे शुक्ररूपमें लिङ्गमार्गसे बाहर निकले । तब उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया । गौरीने उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और विघ्नरहित बना दिया । तदनन्तर करुणासागर महेश्वर भृगुनन्दन शुक्राचार्यको वीर्यके रास्ते निकला हुआ देखकर मुसकराते हुए बोले ।

महेश्वरने कहा—भृगुनन्दन ! चूँकि तुम मेरे लिङ्गमार्गसे शुक्रकी तरह निकले हो, इसलिये अब तुम शुक्र कहलाओगे । जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! देवेश्वर शंकरके यों कहनेपर सूर्यके सदृश कान्तिमान् शुक्रने पुनः शिवजीको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ।

शुक्रने कहा—भगवन्! आपके पैर, शिर, नेत्र, हाथ और भुजाएँ अनन्त हैं। आपकी मूर्तियोंकी भी गणना नहीं हो सकती। ऐसी दशामें मैं आप स्तुत्यकी सिर झुकाकर किस प्रकार स्तुति करूँ। आपकी आठ मूर्तियाँ बतायी जाती हैं और आप अनन्तमूर्ति भी हैं। आप सम्पूर्ण सुरों और असुरोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं तथा अनिष्ट दृष्टिसे देखनेपर आप संहार भी कर डालते हैं। ऐसे स्तवनके योग्य आपकी मैं किस प्रकार स्तुति करूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार शुक्रने शिवजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया और उनकी आज्ञासे वे पुनः दानवोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए, ठीक उसी तरह जैसे चन्द्रमा मेघोंकी घटामें प्रवेश करते हैं। व्यासजी! इस प्रकार रणभूमिमें शंकरने जिस तरह शुक्रको निगल लिया था, वह वृत्तान्त तो तुम्हें सुना दिया। अब शम्भुके उदरमें शुक्रने जिस मन्त्रका जप किया था, उसका वर्णन सुनो।

महर्षे! वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिङ्गललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहन्त्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे वेदान्तगाय तपोऽन्तगाय पशुपतये व्यङ्गाय शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखण्डिने लकुटिने महायशसे भूतेश्वराय गुहावासिने वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्यनिभाय श्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिंदमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णो दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशाम्पतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तम्भकाय वसूनां स्तम्भकाय क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेतिसमाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्वताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्यनिनादिने सर्वबाधाविमोचनाय बन्धनाय सर्वधारिणे धर्मोत्तमाय पुष्पदन्तायाविभागाय मुख्याय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीमपराक्रमाय ॐ नमो नमः।*

इसी श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शुक्र शम्भुके जठर-पञ्जरसे लिङ्गके रास्ते उत्कट वीर्यकी तरह निकले थे। उस समय गौरीने उन्हें पुत्ररूपसे अपनाया और जगदीश्वर शिवने अजर-अमर बना दिया। तब वे दूसरे शंकरके सदृश शोभा पाने लगे। तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् वे ही वेदनिधि मुनिवर शुक्र पुनः इस भूतलपर महेश्वरसे उत्पन्न हुए। उस

* ॐ जो देवताओंके स्वामी, सुर-असुरद्वारा वन्दित, भूत और भविष्यके महान् देवता, हरे और पीले नेत्रोंसे युक्त, महाबली, बुद्धिस्वरूप, बाघंबर धारण करनेवाले, अग्निस्वरूप, त्रिलोकीके उत्पत्तिस्थान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलयकारी अग्निस्वरूप, गणेश, लोकपाल, महाभुज, महाहस्त, त्रिशूल धारण करनेवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, कालस्वरूप महेश्वर, अविनाशी, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, मृत्युको हटानेवाले, पारियात्र पर्वतपर उत्तम व्रत धारण करनेवाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेवाले, पशुपति, विशिष्ट अङ्गोंवाले, शूलपाणि, वृषध्वज, पापापहारी, जटाधारी, शिखण्ड धारण करनेवाले, दण्डधारी, महायशस्वी, भूतेश्वर, गुहामें निवास करनेवाले, वीणा और पणवपर ताल लगानेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्य-सरीखे रूपवाले, श्मशानवासी, ऐश्वर्यशाली, उमापति, शत्रुदमन, भगके नेत्रोंको नष्ट कर देनेवाले, पूषाके दाँतोंके विनाशक, क्रूरतापूर्वक संहार करनेवाले, पाशधारी, प्रलयकालरूप, उल्कामुख, अग्निकेतु, मननशील, प्रकाशमान, प्रजापति, ऊपर उठानेवाले जीवोंको उत्पन्न करनेवाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, वामदेव, वाणीकी चतुरतारूप, वाममार्गमें भिक्षुरूप, भिक्षुक, जटाधारी, जटिल—दुराराध्य, इन्द्रके हाथको स्तम्भित करनेवाले, वसुओंको विजडित कर देनेवाले, यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल, मेधावी, मधुकर, चलने-फिरनेवाले, वनस्पतिका आश्रय लेनेवाले, वाजसन नामसे सम्पूर्ण आश्रमोंद्वारा पूजित जगद्धाता, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सनातन, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूः-भुवः, स्वः—इन तीनों लोकोंमें विचरनेवाले, भूतभावन, त्रिनेत्र, बहुरूप, दस हजार सूर्योंके समान प्रभाशाली, महादेव, सब तरहके बाजे बजानेवाले, सम्पूर्ण बाधाओंसे विमुक्त करनेवाले, बन्धनस्वरूप, सबको धारण करनेवाले, उत्तम धर्मरूप, पुष्पदन्त, विभागरहित, मुख्यरूप, सबका हरण करनेवाले, सुवर्णके समान दीप्त कीर्तिवाले, मुक्तिके द्वारस्वरूप, भीम तथा भीमपराक्रमी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

समय उन्होंने धैर्यशाली एवं तपस्वी दानवराज अन्धकको देखा। उसका शरीर सूख गया था और वह त्रिशूलपर लटका हुआ परमेश्वर शिवका ध्यान कर रहा था। (वह शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण कर रहा था—)

महादेव—देवताओंमें महान्, विरूपाक्ष—विकराल नेत्रोंवाले, चन्द्रार्धकृतशेखर—मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, अमृत—अमृतस्वरूप, शाश्वत—सनातन, स्थाणु—समाधिस्थ होनेपर ठूँठके समान स्थिर, नीलकण्ठ—गलेमें नील चिह्न धारण करनेवाले, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, वृषभाक्ष—वृषभके नेत्र-सरीखे विशाल नेत्रोंवाले, महाज्ञेय—'महान्' रूपसे जानने योग्य, पुरुष—अन्तर्यामी, सर्वकामद—सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कामारि—कामदेवके शत्रु, कामदहन—कामदेवको दग्ध कर देनेवाले, कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, कपर्दी—विशाल जटाओंवाले, विरूप—विकराल रूपधारी, गिरिश—गिरिवर कैलासपर शयन करनेवाले, भीम—भयंकर रूपवाले, सृक्की—बड़े-बड़े जबड़ोंवाले, रक्तवासा—लाल वस्त्रधारी, योगी—योगके ज्ञाता, कालदहन—कालको भस्म कर देनेवाले, त्रिपुरघ्न—त्रिपुरोंके संहारकर्ता, कपाली—कपाल धारण करनेवाले, गूढव्रत—जिनका व्रत प्रकट नहीं होता, गुप्तमन्त्र—गोपनीय मन्त्रोंवाले, गम्भीर—गम्भीर स्वभाववाले, भावगोचर—भक्तोंकी भावनाके अनुसार प्रकट होनेवाले, अणिमादिगुणाधार—अणिमा आदि सिद्धियोंके अधिष्ठान, त्रिलोकैश्वर्यदायक—त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, वीर—बलशाली, वीरहन्ता—शत्रुवीरोंको मारनेवाले, घोर—दुष्टोंके लिये भयंकर, विरूप—विकट रूप धारण करनेवाले, मांसल—मोटे-ताजे शरीरवाले, पटु—निपुण, महामांसाद—श्रेष्ठ फलका गूदा खानेवाले, उन्मत्त—मतवाले, भैरव—कालभैरवस्वरूप, महेश्वर—देवेश्वरोंमें भी श्रेष्ठ, त्रैलोक्यद्रावण—त्रिलोकीका विनाश करनेवाले, लुब्ध—स्वजनोंके लोभी, लुब्धक—महाव्याधस्वरूप, यज्ञसूदन—दक्ष-यज्ञके विनाशक, कृत्तिकासुतयुक्त—कृत्तिकाओंके पुत्र (स्वामिकार्तिक) से युक्त, उन्मत्त—उन्मत्तका-सा वेष धारण करनेवाले, कृत्तिवासा—गजासुरके चमड़ेको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, गजकृत्तिपरीधान—हाथीका चर्म लपेटनेवाले, क्षुब्ध—भक्तोंका कष्ट देखकर क्षुब्ध हो जानेवाले, भुजगभूषण—सर्पोंको भूषणरूपमें धारण करनेवाले, दत्तालम्ब—भक्तोंके अवलम्बदाता, वेताल—वेतालस्वरूप, घोर—घोर, शाकिनीपूजित—शाकिनियोंद्वारा समाराधित, अघोर—अघोर-पथके प्रवर्तक, घोरदैत्यघ्न—भयंकर दैत्योंके संहारक, घोरघोष—भीषण शब्द करनेवाले, वनस्पति—वनस्पतिस्वरूप, भस्माङ्ग—शरीरमें भस्म रमानेवाले, जटिल—जटाधारी, शुद्ध—परम पावन, भेरुण्डशतसेवित—सैकड़ों भेरुण्डनामक पक्षियोंद्वारा सेवित, भूतेश्वर—भूतोंके अधिपति, भूतनाथ—भूतगणोंके स्वामी, पञ्चभूताश्रित—पञ्चभूतोंको आश्रय देनेवाले, खग—गगनविहारी, क्रोधित—क्रोधयुक्त, निष्ठुर—दुष्टोंपर कठोर व्यवहार करनेवाले, चण्ड—प्रचण्ड पराक्रमी, चण्डीश—चण्डीके प्राणनाथ, चण्डिकाप्रिय—चण्डिकाके प्रियतम, चण्डतुण्ड—अत्यन्त कुपित मुखवाले, गरुत्मान्—गरुडस्वरूप, निस्त्रिंश—खड्गस्वरूप, शवभोजन—शवका भोग लगानेवाले, लेलिहान—क्रुद्ध होनेपर जीभ लपलपानेवाले, महारौद्र—अत्यन्त भयंकर, मृत्यु—मृत्युस्वरूप, मृत्योरगोचर—मृत्युकी भी पहुँचसे परे, मृत्योर्मृत्यु—मृत्युके भी काल, महासेन—विशाल सेनावाले कार्तिकेयस्वरूप, श्मशानारण्यवासी—श्मशान एवं अरण्यमें विचरनेवाले, राग—प्रेमस्वरूप, विराग—आसक्तिरहित, रागान्ध—प्रेममें मस्त रहनेवाले, वीतराग—वैरागी, शतार्चि—तेजकी असंख्य चिनगारियोंसे युक्त, सत्त्व—सत्त्वगुणरूप, रजः—रजोगुणरूप, तमः—तमोगुणरूप, धर्म—धर्मस्वरूप, अधर्म—अधर्मरूप, वासवानुज—इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रस्वरूप, सत्य—सत्यरूप, असत्य—सत्यसे भी परे, सद्रूप—उत्तम रूपवाले, असद्रूप—बीभत्स रूपधारी, अहेतुक—हेतुरहित, अर्धनारीश्वर—आधा पुरुष और आधा स्त्रीका रूप धारण करनेवाले, भानु—सूर्यस्वरूप भानुकोटिशतप्रभ—कोटिशत सूर्योंके समान प्रभशाली, यज्ञ—यज्ञस्वरूप, यज्ञपति—यज्ञेश्वर, रुद्र—संहारकर्ता, ईशान—ईश्वर, वरद—वरदाता, शिव—कल्याणस्वरूप। परमात्मा शिवकी इन १०८ मूर्तियोंका ध्यान करनेसे वह दानव उस महान् भयसे मुक्त हो गया*। उस समय प्रसन्न हुए

---

* महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकण्ठं पिनाकिनम्॥
वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम्।
कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम्॥
विरूपं गिरिशं भीमं स्रक्किणं रक्तवाससम्।
योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम्॥

जटाधारी शंकरने उसे मुक्त करके उस त्रिशूलके अग्रभागसे उतार लिया और दिव्य अमृतकी वर्षासे अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् महात्मा महेश्वर उसने जो कुछ किया था, उस सबका सान्त्वनापूर्वक वर्णन करते हुए उस महादैत्य अन्धकसे बोले।

ईश्वरने कहा—हे दैत्येन्द्र! मैं तेरे इन्द्रिय-निग्रह, नियम, शौर्य और धैर्यसे प्रसन्न हो गया हूँ; अतः सुव्रत! अब तू कोई वर माँग ले। दैत्योंके राजाधिराज! तूने निरन्तर मेरी आराधना की है, इससे तेरा सारा कल्मष धुल गया और अब तू वर पानेके योग्य हो गया है। इसीलिये मैं तुझे वर देनेके लिये आया हूँ; क्योंकि तीन हजार वर्षोंतक बिना खाये-पीये प्राण धारण किये रहनेसे तूने जो पुण्य कमाया है, उसके फलस्वरूप तुझे सुखकी प्राप्ति होनी चाहिये।

गूढव्रतं गुप्तमन्त्रं गम्भीरं भावगोचरम्।
अणिमादिगुणाधारं त्रिलोकैश्वर्यदायकम्॥
वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम्।
महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै महेश्वरम्॥
त्रैलोक्यद्रावणं लुब्धं लुब्धकं यज्ञसूदनम्।
कृत्तिकानां सुतैर्युक्तमुन्मत्तं कृत्तिवाससम्॥
गजकृत्तिपरीधानं क्षुब्धं भुजगभूषणम्।
दत्तालम्बं च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम्॥
अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम्।
भस्माङ्गं जटिलं शुद्धं भेरुण्डशतसेवितम्॥
भूतेश्वरं भूतनाथं पञ्चभूताश्रितं खगम्।
क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चण्डीशं चण्डिकाप्रियम्॥
चण्डतुण्डं गरुत्मन्तं निस्त्रिंशं शवभोजनम्।
लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योरगोचरम्॥
मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम्।
रागं विरागं रागान्धं वीतरागं शतार्चिषम्॥
सत्त्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम्।
सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम्॥
अर्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्।
यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम्॥
अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः।
शिवस्य दानवो ध्यायन् मुक्तस्तस्मान्महाभयात्॥

(शि० पु० रु० सं० युद्ध० खं० ४९। ५—१८)

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर अन्धकने भूमिपर अपने घुटने टेक दिये और फिर वह हाथ जोड़कर काँपता हुआ भगवान् उमापतिसे बोला।

अन्धकने कहा—भगवन्! आपकी महिमा जाने बिना मैंने पहले रणाङ्गणमें हर्षगद्गद वाणीसे आपको जो दीन, हीन तथा नीच-से-नीच कहा है और मूर्खतावश लोकमें जो-जो निन्दित कर्म किया है, प्रभो! उस सबको आप अपने मनमें स्थान न दें अर्थात् उसे भूल जायँ। महादेव! मैं अत्यन्त भोला और दुखी हूँ। मैंने कामदोषवश पार्वतीके विषयमें भी जो दूषित भावना कर ली थी, उसे आप क्षमा कर दें। आपको तो अपने कृपण, दुखी एवं दीन भक्तपर सदा ही विशेष दया करनी चाहिये। मैं उसी तरहका एक दीन भक्त हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ। देखिये, मैंने आपके सामने अञ्जलि बाँध रक्खी है। अब आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। ये जगज्जननी पार्वती देवी भी मुझपर प्रसन्न हो जायँ और सारे क्रोधको त्यागकर मुझे कृपादृष्टिसे देखें। चन्द्रशेखर! कहाँ तो इनका भयंकर क्रोध और कहाँ मैं तुच्छ दैत्य? चन्द्रमौलि! मैं किसी प्रकार उसको सहन नहीं कर सकता। शम्भो! कहाँ तो परम उदार आप और कहाँ बुढ़ापा, मृत्यु तथा काम-क्रोध आदि दोषोंके वशीभूत मैं? (अर्थात् मेरी आपके साथ क्या तुलना है?) महेश्वर! आपके ये युद्धकलानिपुण महाबली वीर पुत्र मेरी कृपणतापर विचार करके अब क्रोधके वशीभूत मत हों। तुषार, हार, चन्द्रकिरण, शङ्ख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके-से वर्णवाले शिव! मैं इन पार्वतीको गुरुताके गौरववश नित्य मातृदृष्टिसे देखूँ। मैं नित्य आप दोनोंका भक्त बना रहूँ। देवताओंके साथ होनेवाला मेरा वैर दूर हो जाय तथा मैं शान्तचित्त हो योग-चिन्तन करता हुआ गणोंके साथ निवास करूँ। महेशान! आपकी कृपासे मैं उत्पन्न हुए इस विरोधी दानवभावका पुनः कभी स्मरण न करूँ, यही उत्तम वर मुझे प्रदान कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिसत्तम! इतनी बात कहकर वह दैत्यराज माता पार्वतीकी ओर देखकर त्रिनयन शंकरका ध्यान करता हुआ मौन हो गया। तब रुद्रने उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही उसे अपने पूर्ववृत्तान्त तथा अद्भुत जन्मका स्मरण हो आया। उस घटनाका स्मरण होते ही उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। फिर

तो माता-पिता (उमा-महेश्वर) को प्रणाम करके वह कृतकृत्य हो गया। उस समय पार्वती तथा बुद्धिमान् शंकरने उसका मस्तक सूँघकर प्यार किया। इस प्रकार अन्धकने प्रसन्न हुए चन्द्रशेखरसे अपना सारा मनोरथ प्राप्त कर लिया। मुने! महादेवजीकी कृपासे अन्धकको जिस प्रकार परम सुखद गणाध्यक्ष-पद प्राप्त हुआ था, वह सारा-का-सारा पुरातन वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया और मृत्युञ्जय-मन्त्रका भी वर्णन कर दिया। यह मन्त्र मृत्युका विनाशक और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। इसे प्रयत्नपूर्वक जपना चाहिये। (अध्याय ४७--४९)

शुक्राचार्यकी घोर तपस्या और इनका शिवजीको चित्तरत्न अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! मुनिवर शुक्राचार्यको शिवसे मृत्युंजय नामक मृत्युका प्रशमन करनेवाली परा विद्या किस प्रकार प्राप्त हुई थी, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालकी बात है, इन भृगुनन्दनने वाराणसीपुरीमें जाकर प्रभावशाली विश्वनाथका ध्यान करते हुए बहुत कालतक घोर तप किया था। वेदव्यासजी! उस समय उन्होंने वहीं एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया। फिर प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वरको एक लाख बार द्रोणभर पञ्चामृतसे तथा बहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे स्नान कराया। फिर एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यक्ष, कर्दम* और सुगन्धित उबटनका उस लिङ्गपर अनुलेप किया। तत्पश्चात् सावधानीके साथ परम प्रेमपूर्वक राजचम्पक (अमलतास), धतूर, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मल्लिका, (चमेली), शतपत्री, सिन्धुवार, ढाक, बन्धूकपुष्प, (गुलदुपहरी), पुंनाग, नागकेसर, केसर, नवमल्लिक (बेलमोगरा), चिबिलिक (रक्तदला), कुन्द (माघपुष्प), मुचुकुन्द (मोतिया), मन्दार, बिल्वपत्र, गूमा, मरुवृक (मरुआ), वृक (धूप), गठिवन, दौना, अत्यन्त सुन्दर आमके पल्लव, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पत्री, कुशाङ्कु, नन्दावर्त (नाँदरूख), अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक (गुलखेरा), दुर्वाङ्कुर, कुरंटक (करसैला)—इनमेंसे प्रत्येकके पुष्पों और अन्य पल्लवोंसे तथा नाना प्रकारके रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलोंसे शंकरजीकी विधिवत् अर्चना की। उन्हें बहुत-से उपहार समर्पित किये। तथा शिवलिङ्गके आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं अन्यान्य स्तोत्रोंका गान करके शंकरजीका स्तवन किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विधि-विधानसे महेश्वरका पूजन करते रहे; परंतु जब उन्हें थोड़ा-सा भी वर देनेके लिये उद्यत होते नहीं देखा, तब उन्होंने एक दूसरे अत्यन्त दुस्सह एवं घोर नियमका आश्रय लिया। उस समय शुक्रने इन्द्रियोंसहित मनके अत्यन्त चञ्चलतारूपी महान् दोषको बारंबार भावनारूपी जलसे प्रक्षालित किया। इस प्रकार चित्तरत्नको निर्मल करके उसे पिनाकधारी शिवके अर्पण कर दिया और स्वयं धूमकणका पान करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार उनके एक सहस्र वर्ष और बीत गये। तब भृगुनन्दन शुक्रको यों दृढ़चित्तसे घोर तप करते देखकर महेश्वर उनपर प्रसन्न हो गये। फिर तो दक्षकन्या पार्वतीके स्वामी साक्षात् विरूपाक्ष शंकर, जिनके शरीरकी कान्ति सहस्रों सूर्योंसे भी बढ़कर थी, उस लिङ्गसे निकलकर शुक्रसे बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग भृगुनन्दन! तुम तो तपस्याकी निधि हो। महामुने! मैं तुम्हारे इस अविच्छिन्न तपसे विशेष प्रसन्न हूँ। भार्गव! तुम अपना सारा मनोवाञ्छित वर माँग लो। मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं रह गयी है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुके इस परम सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचनको सुनकर शुक्र प्रसन्न हो आनन्द-समुद्रमें निमग्न हो गये। उन कमलनयन द्विजवर शुक्रका शरीर परमानन्दजनित रोमाञ्चके कारण पुलकायमान हो गया। तब उन्होंने हर्षपूर्वक शम्भुके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। फिर

* एक प्रकारका अङ्ग-लेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कङ्कोलको मिलाकर बनाया जाता है।

वे मस्तकपर अञ्जलि रखकर जय-जयकार करते हुए अष्ट-मूर्तिधारी* वरदायक शिवकी स्तुति करने लगे।

भार्गवने कहा—सूर्यस्वरूप भगवन्! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें प्रकाशित होते हैं और अपनी इन किरणोंसे समस्त अन्धकारको अभिभूत करके रातमें विचरनेवाले असुरोंका मनोरथ नष्ट कर देते हैं। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। घोर अन्धकारके लिये चन्द्रस्वरूप शंकर! आप अमृतके प्रवाहसे परिपूर्ण तथा जगत्के सभी प्राणियोंके नेत्र हैं। आप अपनी अमर्याद तेजोमय किरणोंसे आकाशमें और भूतलपर अपार प्रकाश फैलाते हैं, जिससे सारा अंधकार दूर हो जाता है; आपको प्रणाम है। सर्वव्यापिन्! आप पावन पथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। भुवन-जीवन! आपके बिना भला, इस लोकमें कौन जीवित रह सकता है। सर्पकुलके संतोष-दाता! आप निश्चल वायुरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है। विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! आप शरणागतरक्षक और अग्निकी एकमात्र शक्ति हैं। पावक आपका ही स्वरूप है। आपके बिना मृतकोंका वास्तविक दिव्य कार्य दाह आदि नहीं हो सकता। जगत्के अन्तरात्मा! आप प्राणशक्तिके दाता, जगत्स्वरूप और पद-पदपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं; आपके चरणोंमें मैं सिर झुकाता हूँ। जलस्वरूप परमेश्वर! आप निश्चय ही जगत्के पवित्रकर्ता और चित्र-विचित्र सुन्दर चरित्र करनेवाले हैं। विश्वनाथ! जलमें अवगाहन करनेसे आप विश्वको निर्मल एवं पवित्र बना देते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। आकाशरूप ईश्वर! आपसे अवकाश प्राप्त करनेके कारण यह विश्व बाहर और भीतर विकसित होकर सदा स्वभाववश श्वास लेता है अर्थात् इसकी परम्परा चलती रहती है तथा आपके द्वारा यह संकुचित भी होता है अर्थात् नष्ट हो जाता है; इसलिये दयालु भगवन्! मैं आपके आगे नतमस्तक होता हूँ। विश्वम्भरात्मक! आप ही इस विश्वका भरण-पोषण करते हैं। सर्वव्यापिन्! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अज्ञानान्धकारको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है। अतः विश्वनाथ! आप मेरे अज्ञानरूपी तमका विनाश कर दीजिये। नागभूषण! आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये आप परात्पर प्रभुको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। आत्मस्वरूप शंकर! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले, प्रत्येक रूपमें व्याप्त हैं और मैं आप परमात्माका जन हूँ। अष्टमूर्ते! आपकी इन रूपपरम्पराओंसे यह चराचर विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है, अतः मैं सदासे आपको नमस्कार करता हूँ। मुक्तपुरुषोंके बन्धो! आप विश्वके समस्त प्राणियोंके स्वरूप, प्रणतजनोंके सम्पूर्ण योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले और परमार्थस्वरूप हैं। आप अपनी इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त होकर इस फैले हुए विश्वको भलीभाँति विस्तृत करते हैं, अतः आपको मेरा अभिवादन है।*

---

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये अष्टमूर्तियोंके नाम हैं।

* त्वं भाभिराभिरभिभूय तमस्समस्त-
मस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय
लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते॥
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभि-
र्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।
विद्राविताखिलतमास्सुतमो हिमांशो
पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥
त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः
कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
स्तब्धप्रभञ्जनविवर्धितसर्वजन्तो
संतोषिताहिकुल सर्वग वै नमस्ते॥
विश्वैकपावक नतावक पावकैक-
शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।
प्राणिष्यदो जगदहो जगदान्तरात्मं-
स्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते॥
पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र
चित्रातिचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।
विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ
पानीयगाहनत एतदतो नतोऽसि॥
आकाशरूपबहिरन्तरुतावकाश-
दानाद् विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।
त्वत्तस्सदा सदय संश्वसिति स्वभावात्
संकोचमेति भवतोऽसि नतस्ततस्त्वाम्॥
विश्वम्भरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं
को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।
स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष
स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! भृगुनन्दन शुक्रने इस प्रकार अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा शिवजीका स्तवन करके भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया। जब अमित तेजस्वी भार्गवने महादेवकी इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजीने चरणोंमें पड़े हुए उन द्विजवरको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर उठा लिया और परम प्रेमपूर्वक मेघ-गर्जन-की-सी गम्भीर एवं मधुर वाणीमें कहा। उस समय शंकरजीके दाँतोंकी चमकसे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं।

महादेवजी बोले—विप्रवर कवे ! तुम मेरे पावन भक्त हो। तात ! तुम्हारे इस उग्र तपसे, उत्तम आचरणसे, लिङ्गस्थापनजन्य पुण्यसे, लिङ्गकी आराधना करनेसे, चित्तका उपहार प्रदान करनेसे, पवित्र अटल भावसे, अविमुक्त महाक्षेत्र काशीमें पावन आचरण करनेसे मैं तुम्हें पुत्ररूपसे देखता हूँ; अतः तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। तुम अपने इसी शरीरसे मेरी उदरदरीमें प्रवेश करोगे और मेरे श्रेष्ठ इन्द्रियमार्गसे निकलकर पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करोगे। महाशुचे ! मेरे पास जो मृतसंजीवनी नामकी निर्मल विद्या है, जिसका मैंने ही अपने महान् तपोबलसे निर्माण किया है, उस महामन्त्ररूपा विद्याको आज मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम पवित्र तपकी निधि हो, अतः तुममें उस विद्याको धारण करनेकी योग्यता वर्तमान है। तुम नियमपूर्वक जिस-जिसके उद्देश्यसे विद्येश्वरकी इस श्रेष्ठ विद्याका प्रयोग करोगे, वह निश्चय ही जीवित हो जायगा—यह सर्वथा सत्य है। तुम आकाशमें अत्यन्त दीप्तिमान् तारारूपसे स्थित होओगे। तुम्हारा तेज सूर्य और अग्निके तेजका भी अतिक्रमण कर जायगा। तुम ग्रहोंमें प्रधान माने जाओगे। जो स्त्री अथवा पुरुष तुम्हारे सम्मुख रहनेपर यात्रा करेंगे, उनका सारा कार्य तुम्हारी दृष्टि पड़नेसे नष्ट हो जायगा। सुव्रत ! तुम्हारे उदय होनेपर जगत्‌में मनुष्योंके विवाह आदि समस्त धर्मकार्य सफल होंगे। सभी नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियाँ तुम्हारे संयोगसे शुभ हो जायँगी और तुम्हारे भक्त वीर्यसम्पन्न तथा बहुत-सी संतानवाले होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिङ्ग 'शुक्रेश' के नामसे विख्यात होगा। जो मनुष्य इस लिङ्गकी अर्चना करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी। जो लोग वर्षपर्यन्त नक्तव्रतपरायण होकर शुक्रवारके दिन शुक्रकूपके जलसे सारी क्रियाएँ सम्पन्न करके शुक्रेशकी अर्चना करेंगे, उन्हें जिस फलकी प्राप्ति होगी, वह मुझसे श्रवण करो। उन मनुष्योंमें वीर्यकी अधिकता होगी, उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं होगा; वे पुत्रवान् तथा पुरुषत्वके सौभाग्यसे सम्पन्न होंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वे सभी मनुष्य बहुत-सी विद्याओंके ज्ञाता और सुखके भागी होंगे। यों वरदान देकर महादेव उसी लिङ्गमें समा गये। तब भृगुनन्दन शुक्र भी प्रसन्नमनसे अपने धामको चले गये। व्यासजी ! यों शुक्राचार्यको जिस प्रकार अपने तपोबलसे मृत्युंजय नामक विद्याकी प्राप्ति हुई थी, वह वृत्तान्त मैंने तुमसे वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ५०)

बाणासुरकी तपस्या और उसे शिवद्वारा वर-प्राप्ति, शिवका गणों और पुत्रोंसहित उसके नगरमें निवास करना, बाणपुत्री ऊषाका रातके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, बाणका अनिरुद्धको नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनसे अनिरुद्धका बन्धनमुक्त होना, नारदद्वारा समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणकी सेनाका संहार करना

व्यासजी बोले—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक ऐसी अद्भुत और सुन्दर कथा सुनायी है, जो शंकरकी कृपासे ओतप्रोत है। अब मुझे शशिमौलिके उस उत्तम चरित्रके श्रवण करनेकी इच्छा है, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणाध्यक्ष-पद प्रदान किया था।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी ! परमात्मा शम्भुकी

आत्मस्वरूप तव रूपपरम्पराभिराभिस्ततं हर चराचररूपमेतत् ।
सर्वान्तरात्मनिलय प्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते ॥
इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबन्धबन्धो युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते ।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि ॥

(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ५० । २४-३२)

उस कथाको, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणनायक बनाया था, आदरपूर्वक श्रवण करो। इसी प्रसङ्गमें महाप्रभु शंकरका वह सुन्दर चरित्र भी आयेगा, जिसमें उन्होंने बाणासुरपर अनुग्रह करके श्रीकृष्णके साथ संग्राम किया था। व्यासजी! दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ कश्यप मुनिकी पत्नियाँ थीं। वे सब-की-सब पतिव्रता तथा सुशीला थीं। उनमें दिति सबसे बड़ी थी, जिसके लड़के दैत्य कहलाते हैं। अन्य पत्नियोंसे भी देवता तथा चराचरसहित समस्त प्राणी पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। ज्येष्ठ पत्नी दितिके गर्भसे सर्वप्रथम दो महाबली पुत्र पैदा हुए, उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ था और उसके छोटे भाईका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए। उन दैत्यश्रेष्ठोंका क्रमशः ह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और प्रह्लाद नाम था। उनमें प्रह्लाद जितेन्द्रिय तथा महान् विष्णुभक्त हुए। उनका नाश करनेके लिये कोई भी दैत्य समर्थ न हो सका। प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, वह दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ था। उसने विप्ररूपसे याचना करनेवाले इन्द्रको अपना सिर ही दे डाला था। उसका पुत्र बलि हुआ। वह महादानी और शिवभक्त था। इसने वामनरूपधारी विष्णुको सारी पृथ्वी दान कर दी थी। बलिका औरस पुत्र बाण हुआ। वह शिवभक्त, मानी, उदार, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ और सहस्रोंका दान करनेवाला था। उस असुरराजने पूर्वकालमें त्रिलोकीको तथा त्रिलोकाधिपतियोंको बलपूर्वक जीतकर शोणितपुरमें अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहकर राज्य करने लगा। उस समय देवगण शंकरकी कृपासे उस शिवभक्त बाणासुरके किंकरके समान हो गये थे। उसके राज्यमें देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्रजा दुखी नहीं थी। शत्रुधर्मका बर्ताव करनेवाले देवता शत्रुतावश ही कष्ट झेल रहे थे। एक समय वह महासुर अपनी सहस्रों भुजाओंसे ताली बजाता हुआ ताण्डव नृत्य करके महेश्वर शिवको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा। उसके उस नृत्यसे भक्तवत्सल शंकर संतुष्ट हो गये। फिर उन्होंने परम प्रसन्न हो उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। भगवान् शंकर तो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, शरणागतवत्सल और भक्तवाञ्छाकल्पतरु ही ठहरे। उन्होंने बलिनन्दन महासुर बाणको वर देनेकी इच्छा प्रकट की।

मुने! बलिनन्दन महादैत्य बाण शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् था। उसने परमेश्वर शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की (और कहा)।

बाणासुर बोला—प्रभो! आप मेरे रक्षक हो जाइये और पुत्रों तथा गणोंसहित मेरे नगरके अध्यक्ष बनकर सर्वथा प्रीतिका निर्वाह करते हुए मेरे पास ही निवास कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! वह बलिपुत्र बाण निश्चय ही शिवजीकी मायासे मोहमें पड़ गया था, इसीलिये उसने मुक्ति प्रदान करनेवाले दुराराध्य महेश्वरको पाकर भी ऐसा वर माँगा। तब ऐश्वर्यशाली भक्तवत्सल शम्भु उसे वह वर देकर पुत्रों और गणोंके साथ प्रेमपूर्वक वहीं निवास करने लगे। एक बार बाणासुरको बड़ा ही गर्व हो गया। उसने ताण्डवनृत्य करके शंकरको संतुष्ट किया। जब बाणासुरको यह ज्ञात हो गया कि पार्वतीवल्लभ शिव प्रसन्न हो गये हैं, तब वह हाथ जोड़कर सिर झुकाये हुए बोला।

बाणासुरने कहा—देवाधिदेव महादेव! आप समस्त देवताओंके शिरोमणि हैं। आपकी ही कृपासे मैं बली हुआ हूँ। अब आप मेरा उत्तम वचन सुनिये। देव! आपने जो मुझे एक हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, ये तो अब मुझे महान् भारस्वरूप लग रही हैं; क्योंकि इस त्रिलोकीमें मुझे आपके अतिरिक्त अपनी जोड़का और कोई योद्धा ही नहीं मिला। इसलिये वृषध्वज! युद्धके बिना इन पर्वत-सरीखी सहस्रों भुजाओंको लेकर मैं क्या करूँ। मैं अपनी इन परिपुष्ट भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी लालसासे नगरों तथा पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ दिग्गजोंके पास गया; परंतु वे भी भयभीत होकर भाग खड़े हुए। मैंने यमको योद्धा, अग्निको महान् कार्य करनेवाला, वरुणको गौओंका पालनकर्ता गोपाल, कुबेरको गजाध्यक्ष, निर्ऋतिको सैरन्ध्री और इन्द्रको जीतकर सदाके लिये करद बना लिया है। महेश्वर! अब मुझे किसी ऐसे युद्धके प्राप्त होनेकी बात बताइये, जिसमें मेरी ये भुजाएँ या तो शत्रुओंके हाथोंसे छूटे हुए शस्त्रास्त्रोंसे जर्जर होकर गिर जायँ अथवा हजारों प्रकारसे शत्रुकी भुजाओंको ही गिरायें। यही मेरी अभिलाषा है, इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! उसकी बात सुनकर भक्तबाधापहारी तथा महामन्युस्वरूप रुद्रको कुछ क्रोध आ गया। तब वे महान् अद्भुत अट्टहास करके बोले।

रुद्रने कहा—'अरे अभिमानी! सम्पूर्ण दैत्योंके कुलमें नीच! तुझे सर्वथा धिक्कार है, धिक्कार है। तू बलिका पुत्र और मेरा भक्त है। तेरे-लिये ऐसी बात कहना उचित नहीं है। अब तेरा दर्प चूर्ण होगा। तुझे शीघ्र ही मेरे समान बलवान्के साथ अकस्मात् महान् भीषण युद्ध प्राप्त होगा। उस

संग्राममें तेरी ये पर्वत-सरीखी भुजाएँ जलौनी लकड़ीकी तरह शस्त्रास्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर भूमिपर गिरेंगी। दुष्टात्मन्! तेरे आयुधागारपर स्थापित तेरा जो यह मनुष्यके सिरवाला मयूर-ध्वज फहरा रहा है, इसका जब वायु-भयके बिना ही पतन हो जायगा, तब तू अपने चित्तमें समझ लेना कि वह महान् भयानक युद्ध आ पहुँचा है। उस समय तू घोर संग्रामका निश्चय करके अपनी सारी सेनाके साथ वहाँ जाना। इस समय तू अपने महलको लौट जा; क्योंकि इसीमें तेरा कल्याण है। दुर्मते! वहाँ तुझे प्रसिद्ध बड़े-बड़े उत्पात दिखायी देंगे।' यों कहकर गर्वहारी भक्तवत्सल भगवान् शंकर चुप हो गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! वह सुनकर बाणासुरने दिव्य पुष्पोंकी कलियोंसे अञ्जलि भरकर रुद्रकी अभ्यर्चना की और फिर उन महादेवको प्रणाम करके वह अपने घरको लौट गया। तदनन्तर किसी समय दैववश उसका वह ध्वज अपने-आप टूटकर गिर गया। यह देखकर बाणासुर हर्षित हो युद्धके लिये उद्यत हो गया। वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि कौन-सा युद्धप्रेमी योद्धा किस देशसे आयेगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका पारगामी विद्वान् होगा और मेरी सहस्रों भुजाओंको ईंधनकी तरह काट डालेगा तथा मैं भी अपने अत्यन्त तीखे शस्त्रोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा। इसी समय शंकरकी प्रेरणासे वह काल आ गया। एक दिन बाणासुरकी कन्या ऊषा वैशाख मासमें माधवकी पूजा करके माङ्गलिक श्रृङ्गारसे सुसज्जित हो रातके समय अपने गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी, उसी समय वह स्त्रीभाव—(कामभाव) प्राप्त हो गयी। तब देवी पार्वतीकी शक्तिसे ऊषाको स्वप्नमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धका मिलन प्राप्त हुआ। जागनेपर वह व्याकुल हो गयी और उसने अपनी सखी चित्रलेखासे स्वप्नमें मिले हुए उस पुरुषको ला देनेके लिये कहा।

तब चित्रलेखाने कहा—'देवि! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे भला, मैं कैसे ला सकती हूँ, जब कि मैं उसे जानती ही नहीं।' उसके यों कहनेपर दैत्यकन्या ऊषा प्रेमान्ध होकर मरनेपर उतारू हो गयी, तब उस दिन उसकी उस सखीने उसे बचाया। मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा बड़ी बुद्धिमती थी, वह बाणतनया ऊषासे पुनः बोली।

चित्रलेखाने कहा—सखी! जिस पुरुषने तुम्हारे मनका अपहरण किया है, उसे बताओ तो सही। वह यदि त्रिलोकीमें कहीं भी होगा तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारा कष्ट दूर करूँगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! यों कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके परदेपर देवताओं, दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों और यक्ष आदिके चित्र अङ्कित किये। फिर वह मनुष्योंका चित्र बनाने लगी। उनमें वृष्णिवंशियोंका प्रकरण आरम्भ होनेपर उसने शूर, वसुदेव, राम, कृष्ण और नरश्रेष्ठ प्रद्युम्नका चित्र बनाया। फिर जब उसने प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धका चित्र खींचा, तब उसे देखकर ऊषा लज्जित हो गयी। उसका मुख अवनत हो गया और हृदय हर्षसे परिपूर्ण हो गया।

ऊषाने कहा—'सखी! रातमें जो मेरे पास आया था और जिसने शीघ्र ही मेरे चित्तरूपी रत्नको चुरा लिया है, वह चोर पुरुष यही है।' तदनन्तर ऊषाके अनुरोध करनेपर चित्रलेखा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको तीसरे पहर द्वारकापुरी पहुँचकर क्षणमात्रमें ही पलंगपर बैठे हुए अनिरुद्धको महलमेंसे उठा लायी। वह दिव्य योगिनी थी। ऊषा अपने प्रियतमको पाकर प्रसन्न हो गयी। इधर अन्तःपुरके द्वारकी रक्षा करनेवाले बेतधारी पहरेदारोंने चेष्टाओंसे तथा अनुमानसे इस बातको लक्ष्य कर लिया। उन्होंने एक दिव्यशरीरधारी, दर्शनीय साहसी तथा समरप्रिय नवयुवकको कन्याके साथ दुःशीलताका आचरण करते हुए देख भी लिया। उसे देखकर कन्याके अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले उन महाबली पुरुषोंने बलिपुत्र बाणासुरके पास जाकर सारी बातें निवेदन करते हुए कहा।

द्वारपाल बोले—देव! पता नहीं, आपके अन्तःपुरमें बलपूर्वक प्रवेश करके कौन पुरुष छिपा हुआ है। वह इन्द्र तो नहीं है, जो वेष बदलकर आपकी कन्याका उपभोग कर रहा है? महाबाहु दानवराज! उसे यहाँ देखिये, देखिये और जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। इसमें हमलोगोंका कोई दोष नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! द्वारपालोंका वह वचन तथा कन्याके दूषित होनेका कथन सुनकर महाबली दानवराज बाण आश्चर्यचकित हो गया। तदनन्तर वह कुपित होकर अन्तःपुरमें जा पहुँचा। वहाँ उसने प्रथम अवस्थामें वर्तमान दिव्यशरीरधारी अनिरुद्धको देखा। उसे महान् आश्चर्य हुआ। फिर उसने उसका बल देखनेके लिये दस हजार सैनिकोंको भेजकर आज्ञा दी कि इसे मार डालो। सेनाने अनिरुद्धपर आक्रमण किया। तब अनिरुद्धने बात-की-बातमें दस हजार सैनिकोंको कालके हवाले कर दिया। फिर तो

असंख्य सेना-पर-सेना आने लगी और अनिरुद्ध उन्हें कालका ग्रास बनाने लगे। तदनन्तर उन्होंने बाणासुरका वध करनेके लिये एक शक्ति हाथमें ली, जो कालाग्निके समान भयंकर थी। फिर उसीसे रथकी बैठकमें बैठे हुए बाणासुरपर प्रहार किया। उसकी गहरी चोट खाकर वीरवर बाण उसी क्षण घोड़ों-सहित वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर महावीर बलिपुत्र बाणासुरने, जो महान् बलसम्पन्न तथा शिवभक्त था, छलपूर्वक नागपाशसे अनिरुद्धको बाँध लिया। इस प्रकार उन्हें बाँधकर और पिंजरेमें कैद करके वह युद्धसे उपराम हो गया। तत्पश्चात् बाण कुपित होकर महाबली सूतपुत्रसे बोला।

बाणासुरने कहा—सूतपुत्र! घास-फूससे ढके हुए अगाध कुएँमें ढकेलकर इस पापीको मार डाल। अधिक क्या कहूँ, इसे सर्वथा मार ही डालना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! उसकी यह बात सुनकर उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मबुद्धि निशाचर कुम्भाण्डने बाणासुरसे कहा।

कुम्भाण्ड बोला—देव! थोड़ा विचार तो कीजिये। मेरी समझसे तो यह कर्म करना उचित नहीं प्रतीत होता; क्योंकि इसके मरे जानेपर अपना आत्मा ही आहत हो जायगा। पराक्रममें तो यह विष्णुके समान दीख रहा है। जान पड़ता है, आपपर कुपित होकर चन्द्रचूडने अपने उत्तम तेजसे इसे बढ़ा दिया है। साहसमें यह शशिमौलिकी समानता कर रहा है; क्योंकि इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह पुरुषार्थपर ही डटा हुआ है। यह ऐसा बली है कि यद्यपि नाग इसे बलपूर्वक डँस रहे हैं, तथापि यह हमलोगोंको तृणवत् ही समझ रहा है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! दानव कुम्भाण्ड राजनीतिके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ था। वह बाणसे ऐसा कहकर फिर अनिरुद्धसे कहने लगा।

कुम्भाण्डने कहा—'नराधम! अब तू वीरवर दैत्यराजकी स्तुति कर और दीन वाणीसे 'मैं हार गया' यों बारंबार कहकर उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार कर। ऐसा करनेपर ही तू मुक्त हो सकता है, अन्यथा तुझे बन्धन आदिका कष्ट भोगना पड़ेगा।' उसकी बात सुनकर अनिरुद्ध उत्तर देते हुए बोले।

अनिरुद्धने कहा—दुराचारी निशाचर! तुझे क्षत्रिय-धर्मका ज्ञान नहीं है। अरे! शूरवीरके लिये दीनता दिखाना और युद्धसे मुख मोड़कर भागना मरणसे भी बढ़कर कष्टदायक होता है। मेरे विचारसे तो विरुद्धाचरण काँटेकी तरह चुभनेवाला होता है। वीरमानी क्षत्रियके लिये रणभूमिमें सदा सम्मुख लड़ते हुए मरना ही श्रेयस्कर है, भूमिपर पड़कर हाथ जोड़े हुए दीनकी तरह मरना कदापि नहीं*।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार अनिरुद्धने बहुत-सी वीरताकी बातें कहीं, जिन्हें सुनकर बाणासुरको महान् विस्मय हुआ और उसे क्रोध भी आया। उसी समय समस्त वीरोंके, अनिरुद्धके और मन्त्री कुम्भाण्डके सुनते-सुनते बाणासुरके आश्वासनार्थ आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—महाबली बाण! तुम बलिके पुत्र हो, अतः थोड़ा विचार तो करो। परम बुद्धिमान् शिवभक्त! तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है। शिव समस्त प्राणियोंके ईश्वर, कर्मोंके साक्षी और परमेश्वर हैं। यह सारा चराचर जगत् उन्हींके अधीन है। वे ही सदा रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपसे लोकोंकी सृष्टि, भरण-पोषण और संहार करते हैं। वे सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सबके प्रेरक, सर्वश्रेष्ठ, विकाररहित, अविनाशी, नित्य और मायाधीश होनेपर भी निर्गुण हैं। बलिके श्रेष्ठ पुत्र! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् समझना चाहिये। महामते! मनमें यों विचारकर स्वस्थ हो जाओ। नाना प्रकारकी लीलाओंके रचनेमें निपुण भक्तवत्सल भगवान् शंकर गर्वको मिटा देनेवाले हैं। वे इस समय तुम्हारे गर्वको चूर कर देंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महामुने! इतना कहकर आकाशवाणी बंद हो गयी। तब उसके वचनको मानकर बाणासुरने अनिरुद्धका वध करनेका विचार छोड़ दिया। तदनन्तर विपैले नागोंके पाशसे बँधे हुए अनिरुद्ध उसी क्षण दुर्गाका स्मरण करने लगे।

अनिरुद्धने कहा—शरणागतवत्सले! आप यश प्रदान करनेवाली हैं, आपका रोष बड़ा उग्र होता है। देवि! मैं नागपाशसे बँधा हुआ हूँ और नागोंकी विषज्वालासे संतप्त हो रहा हूँ; अतः शीघ्र पधारिये और मेरी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर! जब अनिरुद्धने पिसे हुए काले कोयलेके समान कृष्णवर्णवाली कालीको इस प्रकार संतुष्ट किया, तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिमें

---

* क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा।
न वीरमानिनी भूमौ दीनस्येव कृताञ्जलेः॥
(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ५३। ३५)

वहाँ प्रकट हुईं । उन्होंने उन सर्परूपी भयानक बाणोंको भस्मसात् करके अपने बलिष्ठ मुक्कोंके आघातसे उस नाग-पञ्जरको विदीर्ण कर दिया । इस प्रकार दुर्गाने अनिरुद्धको बन्धन-मुक्त करके उन्हें पुनः अन्तःपुरमें पहुँचा दिया और स्वयं वहीं अन्तर्धान हो गयीं । इस प्रकार शिवकी शक्तिस्वरूपा देवीकी कृपासे अनिरुद्ध कष्टसे छूट गये, उनकी सारी व्यथा मिट गयी और वे सुखी हो गये । तदनन्तर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध शिवशक्तिके प्रतापसे विजयी हो अपनी प्रिया बाणतनयाको पाकर परम हर्षित हुए और अपनी प्रियतमा उस ऊषाके साथ पूर्ववत् सुखपूर्वक विहार करने लगे । इधर पौत्र अनिरुद्धके अदृश्य हो जाने तथा नारदजीके मुखसे उसके बाणासुरके द्वारा नागपाशसे बाँधे जानेका समाचार सुनकर बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ प्रद्युम्न आदि वीरोंको साथ ले भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी । उधर भगवान् श्रीरुद्र भी अपने भक्तके पक्षमें सज-धजकर आ डटे । फिर तो श्रीकृष्ण और श्रीशिवका बड़ा भयानक युद्ध हुआ । दोनों ओरसे ज्वर छोड़े गये । अन्तमें श्रीकृष्णने स्वयं श्रीरुद्रके पास आकर उनका स्तवन करके कहा—'सर्वव्यापी शंकर ! आप गुणोंसे निर्लिप्त होकर भी गुणोंसे ही गुणोंको प्रकाशित करते हैं । गिरिशायी भूमन् ! आप स्वप्रकाश हैं । जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित हो गयी है, वे स्त्री, पुत्र, गृह आदि विषयोंमें आसक्त होकर दुःखसागरमें डूबते-उतराते रहते हैं । जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोचनीय तथा आत्मवञ्चक है । भगवन् ! आप गर्वहारी हैं, आपने ही तो इस गर्वीले बाणको शाप दिया था; अतः आपकी ही आज्ञासे मैं बाणासुरकी भुजाओंका छेदन करनेके लिये यहाँ आया हूँ । इसलिये महादेव ! आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये । प्रभो ! मुझे बाणकी भुजाओंको काटनेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न हो ।'

महेश्वरने कहा—तात ! आपने ठीक ही कहा है कि मैंने ही इस दैत्यराजको शाप दिया है और मेरी ही आज्ञासे आप बाणासुरकी भुजाएँ काटनेके लिये यहाँ पधारे हैं; किंतु रमानाथ ! हरे ! क्या करूँ, मैं तो सदा भक्तोंके ही अधीन रहता हूँ । ऐसी दशामें वीर ! मेरे देखते बाणकी भुजाएँ कैसे काटी जा सकती हैं ? इसलिये मेरी आज्ञासे आप पहले जृम्भणास्त्रद्वारा मुझे जृम्भित कर दीजिये, तत्पश्चात् अपना अभीष्ट कार्य सम्पन्न कीजिये और सुखी होइये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर ! शंकरजीके यों कहनेपर शार्ङ्गपाणि श्रीहरिको महान् विस्मय हुआ । वे अपने युद्ध-स्थानपर आकर परम आनन्दित हुए । व्यासजी ! तदनन्तर नाना प्रकारके अस्त्रोंके संचालनमें निपुण श्रीहरिने तुरंत ही अपने धनुषपर जृम्भणास्त्रका संधान करके उसे पिनाकपाणि शंकरपर छोड़ दिया । इस प्रकार श्रीकृष्ण जृम्भणास्त्रद्वारा जृम्भित हुए शंकरको मोहमें डालकर खड्ग, गदा और ऋष्टि आदिसे बाणकी सेनाका संहार करने लगे ।

(अध्याय ५१—५४)

श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, श्रीकृष्णका परिवारसमेत द्वारकाको लौट जाना, बाणका ताण्डव नृत्यद्वारा शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अन्यान्य वरदानोंके साथ महाकालत्वकी प्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासजी ! लोक-लीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण और शंकरकी उस परम अद्भुत कथाको श्रवण करो । तात ! जब भगवान् रुद्र लीला-वश पुत्रों तथा गणोंसहित सो गये, तब दैत्यराज बाण श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुआ । उस समय कुम्भाण्ड उसके अश्वोंकी बागडोर सँभाले हुए था और वह नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित था । फिर वह महाबली बलिपुत्र भीषण युद्ध करने लगा । इस प्रकार उन दोनोंमें चिरकालतक बड़ा घोर संग्राम होता रहा; क्योंकि विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण शिवरूप ही थे और उधर बलवान् बाणासुर उत्तम शिवभक्त था । मुनीश्वर ! तदनन्तर वीर्यवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें शिवकी आज्ञासे बल प्राप्त हो चुका था, चिरकालतक बाणके साथ यों युद्ध करके अत्यन्त कुपित हो उठे । तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने शम्भुके आदेशसे शीघ्र ही सुदर्शन चक्रद्वारा बाणकी बहुत-सी भुजाओं-को काट डाला । अन्तमें उसकी अत्यन्त सुन्दर चार भुजाएँ ही अवशेष रह गयीं और शंकरकी कृपासे शीघ्र ही उसकी व्यथा भी मिट गयी । जब बाणकी स्मृति लुप्त हो गयी और वीरभावको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काट लेनेके लिये उद्यत हुए, तब शंकरजी मोहनिद्राको त्यागकर उठ खड़े हुए और बोले ।

रुद्रने कहा—देवकीनन्दन ! आप तो सदासे मेरी आज्ञाका पालन करते आये हैं । भगवन् ! मैंने पहले आपको जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह तो आपने पूरा कर दिया । अब बाणका शिरश्छेदन मत कीजिये और सुदर्शन चक्रको लौटा लीजिये । मेरी आज्ञासे यह चक्र सदा मेरे भक्तोंपर अमोघ रहा है । गोविन्द ! मैंने पहले ही आपको युद्धमें अनिवार्य चक्र और जय प्रदान की थी; अब आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये । लक्ष्मीश ! पूर्वकालमें भी तो आपने मेरी आज्ञाके बिना दधीच, वीरवर रावण और तारकाक्ष आदिके पुरोंपर चक्रका प्रयोग नहीं किया था । जनार्दन ! आप तो योगीश्वर, साक्षात् परमात्मा और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले हैं । आप स्वयं ही अपने मनसे विचार कीजिये । मैंने इसे वर दे रखा है कि तुझे मृत्युका भय नहीं



होगा । मेरा वह वचन सदा सत्य होना चाहिये । मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ । हरे ! बहुत दिन पूर्व यह गर्वसे भरकर उन्मत्त हो उठा और अपने आपको भूल गया था । तब अपनी भुजाएँ खुजलाता हुआ यह मेरे पास पहुँचा और बोला—'मेरे साथ युद्ध कीजिये ।' तब मैंने इसे शाप देते हुए कहा—'थोड़े ही समयमें तेरी भुजाओंका छेदन करनेवाला आयेगा । तब तेरा सारा गर्व गल जायगा ।' (बाणकी ओर देखकर) कहा—'मेरी ही आज्ञासे तेरी भुजाओंको काटनेवाले ये श्रीहरि आये हैं ।' (फिर श्रीकृष्णसे) 'अब आप युद्ध बंद कर दीजिये और वर-वधूको साथ ले अपने घरको लौट जाइये ।' यों कहकर महेश्वरने उन दोनोंमें मित्रता करा दी और उनकी आज्ञा ले वे पुत्रों और गणोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शम्भुका कथन सुनकर अक्षत शरीरवाले श्रीकृष्णने सुदर्शनको लौटा लिया और विजयश्रीसे सुशोभित हो वे बाणासुरके अन्तःपुरमें पधारे । वहाँ उन्होंने ऊषासहित अनिरुद्धको आश्वासन दिया और बाणद्वारा दिये गये अनेक प्रकारके रत्नसमूहोंको ग्रहण किया । ऊषाकी सखी परम योगिनी चित्रलेखाको पाकर तो श्रीकृष्णको महान् हर्ष हुआ । इस प्रकार शिवके आदेशानुसार जब उनका सारा कार्य पूर्ण हो गया, तब वे श्रीहरि हृदयसे शंकरको प्रणाम कर और बलिपुत्र बाणासुरकी आज्ञा ले परिवार-समेत अपनी पुरीको लौट गये । द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने गरुडको विदा कर दिया । फिर हर्षपूर्वक मित्रोंसे मिले और स्वेच्छानुसार आचरण करने लगे ।

इधर नन्दीश्वरने बाणासुरको समझाकर यह कहा—'भक्तशार्दूल ! तुम बारंबार शिवजीका स्मरण करो । वे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, अतः उन आदिगुरु शंकरमें मन समाहित करके नित्य उनका महोत्सव करो ।' तब द्वेषरहित हुआ महामनस्वी बाण नन्दीके कहनेसे धैर्य धारण करके तुरंत ही शिवस्थानको गया । वहाँ पहुँचकर उसने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा शिवजीकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया । फिर वह पादोंसे ठुमकी लगाते हुए और हाथोंको घुमाते हुए नाना प्रकारके आलीढ और प्रत्यालीढ आदि प्रमुख स्थानकोंद्वारा सुशोभित नृत्योंमें प्रधान ताण्डव नृत्य करने लगा । उस समय वह हजारों प्रकारसे मुखद्वारा बाजा बजा रहा था और बीच-बीचमें भौंहोंको मटकाकर तथा सिरको कँपाकर सहस्रों प्रकारके भाव भी प्रकट करता जाता था । इस प्रकार नृत्यमें मस्त हुए महाभक्त बाणासुरने महान् नृत्य करके नतमस्तक हो त्रिशूलधारी चन्द्रशेखर भगवान् रुद्रको प्रसन्न कर लिया । तब नाच-गानके प्रेमी भक्तवत्सल भगवान् हर हर्षित होकर बाणसे बोले ।

रुद्रने कहा—बलिपुत्र प्यारे बाण ! तेरे नृत्यसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ, अतः दैत्येन्द्र ! तेरे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुरूप वर माँग ले ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शम्भुकी बात सुनकर

दैत्यराज बाणने इस प्रकार वर माँगा—'मेरे घाव भर जायँ, बाहुयुद्धकी क्षमता बनी रहे, मुझे अक्षय गणनायकत्व प्राप्त हो, शोणितपुरमें ऊषापुत्र अर्थात् मेरे दौहित्रका राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेष करके विष्णुसे मेरा वैरभाव मिट जाय, मुझमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त दूषित दैत्यभावका पुनः उदय न हो, मुझमें सदा निर्विकार शम्भु-भक्ति बनी रहे और शिव-भक्तोंपर मेरा स्नेह और समस्त प्राणियोंपर दयाभाव रहे ।' यों शम्भुसे वरदान माँगकर बलिपुत्र महासुर बाण अञ्जलि बाँधे रुद्रकी स्तुति करने लगा । उस समय उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये थे । तदनन्तर जिसके सारे अङ्ग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे थे, वह बलिनन्दन बाणासुर महेश्वरको प्रणाम करके मौन हो गया । अपने भक्त बाणकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर 'तुझे सब कुछ प्राप्त हो जायगा' यों कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये । तब शम्भुकी कृपासे महाकालत्वको प्राप्त हुआ रुद्रका अनुचर बाण परमानन्दमें निमग्न हो गया । व्यासजी ! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण भुवनोंमें नित्य क्रीडा करनेवाले समस्त गुरुजनोंके भी सद्गुरु शूलपाणि भगवान् शंकरका बाणविषयक चरित, जो परमोत्तम है, कर्णप्रिय मधुर वचनोंद्वारा तुमसे वर्णन कर दिया ।

(अध्याय ५५-५६)

गजासुरकी तपस्या, वर-प्राप्ति और उसका अत्याचार, शिवद्वारा उसका वध, उसकी प्रार्थनासे शिवका उसका चर्म धारण करना और 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना तथा कृत्तिवासेश्वर लिङ्गकी स्थापना करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब परम प्रेमपूर्वक शशिमौलि शिवके उस चरित्रको श्रवण करो, जिसमें उन्होंने त्रिशूलद्वारा दानवराज गजासुरका वध किया था । गजासुर महिषासुरका पुत्र था । जब उसने सुना कि देवताओंसे प्रेरित होकर देवीने मेरे पिताको मार दिया था, तब उसका बदला लेनेकी भावनासे उसने घोर तप किया । उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे । देवताओंने जाकर ब्रह्माजीसे अपना दुःख कहा, तब ब्रह्माजीने उसके सामने प्रकट होकर उसके प्रार्थनानुसार उसे वरदान दे दिया कि वह कामके वश होनेवाले किसी भी स्त्री या पुरुषसे नहीं मरेगा, महाबली और सबसे अजेय होगा ।

वर पाकर वह गर्वमें भर गया । सब दिशाओं तथा सब लोकपालोंके स्थानोंपर उसने अधिकार कर लिया । अन्तमें भगवान् शंकरकी राजधानी आनन्दवन काशीमें जाकर वह सबको सताने लगा । देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की । शंकर कामविजयी हैं ही । उन्होंने घोर युद्धमें उसे हराकर त्रिशूलमें पिरो लिया । तब उसने भगवान् शंकरका स्तवन किया ! शंकरने उसपर प्रसन्न होकर इच्छित वर माँगनेको कहा ।

तब गजासुरने कहा—दिगम्बरस्वरूप महेशान ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र हुए मेरे इस चर्मको आप सदा धारण किये रहें । विभो ! मैं पुण्य गन्धोंकी निधि हूँ, इसीलिये मेरा यह चर्म चिरकालतक उग्र तपरूपी अग्निकी ज्वालामें पड़कर भी दग्ध नहीं हुआ है । दिगम्बर ! यदि मेरा यह चर्म पुण्यवान् न होता तो रणाङ्गणमें इसे आपके अङ्गोंका सङ्ग कैसे प्राप्त होता । शंकर ! यदि आप तुष्ट हैं तो मुझे एक दूसरा वर और दीजिये । (वह यह कि) आजसे आपका नाम 'कृत्तिवासा' विख्यात हो जाय ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! गजासुरकी बात सुनकर भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्नतापूर्वक महिषासुरनन्दन गजसे कहा—'तथास्तु'—अच्छा, ऐसा ही होगा । तदनन्तर प्रसन्नात्मा भक्तप्रिय महेशान उस दानवराज गजसे, जिसका मन भक्तिके कारण निर्मल हो गया था, पुनः बोले ।

ईश्वरने कहा—दानवराज ! तेरा यह पावन शरीर मेरे इस मुक्तिसाधक क्षेत्र काशीमें मेरे लिङ्गके रूपमें स्थित हो जाय ! इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा ! यह समस्त प्राणियोंके लिये मुक्तिदाता, महान् पातकोंका विनाशक, सम्पूर्ण लिङ्गोंमें शिरोमणि और मोक्षप्रद होगा । यों कहकर देवेश्वर दिगम्बर शिवने गजासुरके उस विशाल चर्मको लेकर ओढ़ लिया । मुनीश्वर ! उस दिन बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया । काशीनिवासी सारी जनता तथा प्रमथगण हर्षमग्न हो गये । विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया । वे हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे ।

(अध्याय ५७)

दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवभक्तपर आक्रमण करनेका विचार और शिवद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब मैं चन्द्रमौलिके उस चरित्रका वर्णन करूँगा, जिसमें शंकरजीने दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यको मारा था । तुम सावधान होकर श्रवण करो । दितिपुत्र महाबली हिरण्याक्षके विष्णुद्वारा मारे जानेपर दितिको बहुत दुःख हुआ । तब देवशत्रु दुन्दुभिनिर्ह्रादने उसको आश्वासन देकर यह निश्चय किया कि 'देवताओंके बल ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण नष्ट हो जायँगे तो यज्ञ नहीं होंगे, यज्ञ न होनेपर देवता आहार न पानेसे निर्बल हो जायँगे । तब मैं उनपर सहज ही विजय पा लूँगा ।' यों विचारकर वह ब्राह्मणों-को मारने लगा । ब्राह्मणोंका प्रधान स्थान वाराणसी है, यह सोचकर वह काशी पहुँचा और वनमें वनचर बनकर समिधा लेते हुए, जलमें जलचर बनकर स्नान करते हुए और रातमें व्याघ्र बनकर सोते हुए ब्राह्मणोंको खाने लगा ।

एक बार शिवरात्रिके अवसरपर एक भक्त अपनी पर्ण-शालामें देवाधिदेव शंकरका पूजन करके ध्यानस्थ बैठा था । बलाभिमानी दैत्यराज दुन्दुभिनिर्ह्रादने व्याघ्रका रूप धारण करके उसे खा जानेका विचार किया; परंतु वह भक्त दृढ़चित्तसे शिवदर्शनकी लालसा लेकर ध्यानमें तल्लीन हो रहा था, इसके लिये उसने पहलेसे ही मन्त्ररूपी अस्त्रका विन्यास कर लिया था। इस कारण वह दैत्य उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ न हो सका । इधर सर्वव्यापी भगवान् शम्भुको उस दुष्ट रूपवाले दैत्यके अभिप्रायका पता लग गया । तब शंकरने उसे मार डालनेका विचार किया । इतनेमें, ज्यों ही उस दैत्यने व्याघ्ररूपसे उस भक्तको अपना ग्रास बनाना चाहा, त्यों ही जगत्की रक्षाके लिये मणिस्वरूप तथा भक्तरक्षणमें कुशल बुद्धिवाले त्रिलोचन भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे बगलमें दबोचकर उसके सिरपर वज्रसे भी कठोर घूँसेसे प्रहार किया । उस मुष्टि-प्रहारसे तथा काँखमें दबोचनेसे वह व्याघ्र अत्यन्त व्यथित हो गया और अपनी दहाड़से पृथ्वी तथा आकाशको कँपाता हुआ मृत्युका ग्रास बन गया । उस भयंकर शब्दको सुनकर तपस्वियोंका हृदय काँप उठा । वे रातमें ही उस शब्दका अनुसरण करते हुए उस स्थानपर आ पहुँचे । वहाँ परमेश्वर शिवको बगलमें उस पापीको दबाये हुए देखकर सब लोग उनके चरणोंमें पड़ गये और जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ।

तदनन्तर महेश्वरने कहा—जो मनुष्य यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस रूपका दर्शन करेगा, निस्संदेह मैं उसके सारे उपद्रवोंको नष्ट कर दूँगा । जो मानव मेरे इस चरित्रको सुनकर और हृदयमें मेरे इस लिङ्गका स्मरण करके संग्राममें प्रवेश करेगा, उसे अवश्य विजयकी प्राप्ति होगी ।

मुने ! जो मनुष्य व्याघ्रेश्वरके प्राकट्यसे सम्बन्ध रखने-वाले इस परमोत्तम चरित्रको सुनेगा, अथवा दूसरेको सुनायेगा, पढ़ेगा या पढ़ायेगा, वह अपनी समस्त मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त कर लेगा और अन्तमें सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित होकर मोक्षका भागी होगा । शिवलीलासम्बन्धी अमृतमय अक्षरोंसे परिपूर्ण यह अनुपम आख्यान स्वर्ग, यश और आयुका देनेवाला तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है ।

(अध्याय ५८)

विदल और उत्पल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्दुक-प्रहारद्वारा उनका काम तमाम करना, कन्दुकेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जिस प्रकार परमेश्वर शिवने संकेतसे दैत्यको लक्ष्य कराकर अपनी प्रियाद्वारा उसका वध कराया था, उनके उस चरित्रको तुम परम प्रेम-पूर्वक श्रवण करो । विदल और उत्पल नामक दो महादैत्य थे । उन्होंने ब्रह्माजीसे किसी पुरुषके हाथसे न मरनेका वर प्राप्त करके सब देवताओंको जीत लिया था । तब देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपना दुःख सुनाया । उनकी कष्ट-कहानी सुनकर ब्रह्माने उनसे कहा—'तुमलोग शिवासहित शिवका आदरपूर्वक स्मरण करके धैर्य धारण करो । वे दोनों दैत्य निश्चय ही देवीके हाथों मारे जायँगे । शिवासहित शिव परमेश्वर, कल्याणकर्ता और भक्तवत्सल हैं । वे शीघ्र ही तुमलोगोंका कल्याण करेंगे ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! देवोंसे यों कहकर ब्रह्माजी शिवका स्मरण करते हुए मौन हो गये । तब देवगण भी आनन्दित होकर अपने-अपने धामको लौट गये । एक समय नारदजीके द्वारा पार्वतीके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर वे दोनों दैत्य उनका अपहरण करनेकी बात सोचने लगे और पार्वतीजी जहाँ गेंद उछाल रही थीं, वहीं वे जाकर आकाशमें विचरने लगे । वे दोनों घोर दुराचारी थे । उनका मन अत्यन्त चञ्चल हो रहा था । वे गणोंका रूप धारण करके अम्बिकाके निकट आये । तब दुष्टोंका संहार करनेवाले शिवने अवहेलनापूर्वक उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंसे प्रकट हुई चञ्चलताके कारण तुरंत उन्हें पहचान लिया । फिर तो सर्वस्वरूपी महादेवने दुर्गतिनाशिनी दुर्गाको कटाक्षद्वारा सूचित कर दिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं । तात ! तब पार्वती अपने स्वामी महाकौतुकी परमेश्वर शंकरके उस नेत्रसंकेतको समझ गयीं । तदनन्तर सर्वज्ञ शिवकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीने उस संकेतको समझकर उसी गेंदसे एक साथ ही उन दोनोंपर चोट की । तब महादेवीकी गेंदसे आहत होकर वे दोनों महाबली दुष्ट दैत्य चक्कर काटते हुए उसी प्रकार भूतलपर गिर पड़े, जैसे वायुके झोंकेसे चञ्चल होकर दो पके हुए ताड़के फल अपनी डंठलसे टूटकर गिर पड़ते हैं अथवा जैसे वज्रके आघातसे महागिरिके दो शिखर ढह जाते हैं । इस प्रकार अकार्य करनेके लिये उद्यत उन दोनों महादैत्योंको धराशायी करके वह गेंद लिङ्गरूपमें परिणत हो गयी । समस्त दुष्टोंका निवारण करनेवाला वह लिङ्ग कन्दुकेश्वरके नामसे विख्यात हुआ और ज्येष्ठेश्वरके समीप स्थित हो गया । काशीमें स्थित कन्दुकेश्वर लिङ्ग दुष्टोंका विनाशक, भोग-मोक्षका प्रदाता और सर्वदा सत्पुरुषोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । जो मनुष्य इस अनुपम आख्यानको हर्ष-पूर्वक सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे भयका दुःख कहाँ । वह इस लोकमें नाना प्रकारके सम्पूर्ण उत्तमोत्तम सुखोंको भोगकर अन्तमें देवदुर्लभ दिव्य गतिको प्राप्त कर लेता है ।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिसत्तम ! मैंने तुमसे रुद्रसंहिताके अन्तर्गत इस युद्धखण्डका वर्णन कर दिया । यह खण्ड सम्पूर्ण मनोरथोंका फल प्रदान करनेवाला है । इस प्रकार मैंने पूरी-की-पूरी रुद्रसंहिताका वर्णन कर दिया । यह शिवजीको सदा परम प्रिय है और भुक्ति-मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाली है ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार शिवानुगामी ब्रह्मपुत्र नारद शंकरके उत्तम यशको तथा शिव-शतनामको सुनकर कृतार्थ हो गये । यों मैंने सम्पूर्ण चरित्रोंमें प्रधान तथा कल्याणकारक यह ब्रह्मा और नारदका संवाद पूर्णरूपसे कह दिया, अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है ? (अध्याय ५९)

॥ रुद्रसंहिताका युद्धखण्ड सम्पूर्ण ॥

॥ रुद्रसंहिता समाप्त ॥



शतरुद्रसंहिता

शिवजीके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान नामक पाँच अवतारोंका वर्णन

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शंकरमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा स्वामि कार्तिक और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप तो (पुराणकर्ता) व्यासजीके शिष्य तथा ज्ञान और दयाकी निधि हैं, अतः अब आप शम्भुके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा उन्होंने सत्पुरुषोंका कल्याण किया है।

सूतजी बोले—शौनकजी! आप तो मननशील व्यक्ति हैं; अतः अब मैं आपसे शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन करता हूँ; आप अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके सद्भक्तिपूर्वक मन लगाकर श्रवण कीजिये। मुने! पूर्वकालमें सनत्कुमारजीने नन्दीश्वरसे, जो सत्पुरुषोंकी गति तथा शिवस्वरूप ही हैं, यही प्रश्न किया था; उस समय नन्दीश्वरने शिवजीका स्मरण करते हुए उन्हें यों उत्तर दिया था।

नन्दीश्वरने कहा—मुने! यों तो सर्वव्यापी सर्वेश्वर शिवके कल्प-कल्पान्तरोंमें असंख्य अवतार हुए हैं, तथापि इस समय मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनमेंसे कुछका वर्णन करता हूँ। उन्नीसवाँ कल्प, जो श्वेतलोहित नामसे विख्यात है, उसमें शिवजीका 'सद्योजात' नामक अवतार हुआ था। वह उनका प्रथम अवतार कहलाता है। उस कल्पमें जब ब्रह्मा परमब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक श्वेत और लोहित वर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ब्रह्माने मन-ही-मन विचार किया। जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि यह पुरुष ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, तब उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उसकी वन्दना की। फिर जब भुवनेश्वर ब्रह्माको पता लग गया कि यह सद्योजात कुमार शिव ही हैं, तब उन्हें महान् हर्ष हुआ। वे अपनी सद्बुद्धिसे बारंबार उस परब्रह्मका चिन्तन करने लगे। ब्रह्माजी ध्यान कर ही रहे थे कि वहाँ श्वेत वर्णवाले चार यशस्वी कुमार प्रकट हुए। वे परमोत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्न तथा परब्रह्मके स्वरूप थे। उनके नाम थे—सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन। ये सब-के-सब महात्मा थे और ब्रह्माजीके शिष्य हुए। इनसे वह ब्रह्मलोक व्याप्त हो गया। तदनन्तर सद्योजातरूपसे प्रकट हुए परमेश्वर शिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टिरचनाकी शक्ति प्रदान की। (यह सद्योजात नामक पहला अवतार हुआ।)

तदनन्तर 'रक्त' नामसे प्रसिद्ध बीसवाँ कल्प आया। उस कल्पमें ब्रह्माजीने रक्तवर्णका शरीर धारण किया था। जिस समय ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ। उसके शरीरपर लाल रंगकी माला और लाल ही वस्त्र शोभा पा रहे थे। उसके नेत्र भी लाल थे और वह आभूषण भी लाल रंगका ही धारण किये हुए था। उस महान् आत्मबलसे सम्पन्न कुमारको देखकर ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि ये वामदेव शिव हैं, तब उन्होंने हाथ जोड़कर उस कुमारको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे। तब वामदेवरूपधारी परमेश्वर शम्भुने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टिरचनाकी शक्ति प्रदान की। (यह 'वामदेव' नामक दूसरा अवतार हुआ।)

इसके बाद इक्कीसवाँ कल्प आया, जो 'पीतवासा' नामसे कहा जाता था। उस कल्पमें महाभाग ब्रह्मा पीतवस्त्रधारी हुए। जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस प्रौढ़ कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर झलमला रहा था। उस ध्यानमग्न बालकको देखकर ब्रह्माजीने अपनी बुद्धिके बलसे उसे 'तत्पुरुष' शिव समझा। तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे सम्पूर्ण लोकोंद्वारा नमस्कृत महादेवी शांकरी गायत्री (तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि) का जप करके उन्हें नमस्कार किया, इससे महादेवजी प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् उनके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी दिव्यकुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए। (यह 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार हुआ।)

तत्पश्चात् स्वयम्भू ब्रह्माके उस पीतवर्ण नामक कल्पके बीत जानेपर पुनः दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ। उसका नाम 'शिव'

था। जब एकार्णवकी दशामें एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे दुखी हो विचार करने लगे। उस समय उन महातेजस्वी ब्रह्माके समक्ष एक कुमार उत्पन्न हुआ। उस महापराक्रमी बालकके शरीरका रंग काला था। वह अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा काला वस्त्र, काली पगड़ी और काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए था। उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन—चन्दन भी काले रंगका ही था। उन भयंकरपराक्रमी, महामनस्वी, देवदेवेश्वर, अलौकिक, कृष्णपिङ्गल वर्णवाले अघोरको देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् ब्रह्माजी उन भक्तवत्सल अविनाशी अघोरको ब्रह्मरूप समझकर इष्ट वचनोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। तब उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले तथा काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्वी कुमार उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब परम तेजस्वी, अव्यक्तनामा तथा शिव-सरीखे रूपवाले थे। उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक्। इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टिरचनाके निमित्त महान् अद्भुत 'घोर' नामक योगका प्रचार किया। (यह 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ।)

मुनीश्वरो ! तदनन्तर ब्रह्माका दूसरा कल्प प्रारम्भ हुआ। वह परम अद्भुत था और 'विश्वरूप' नामसे विख्यात था। उस कल्पमें जब ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे मन-ही-मन शिवजीका ध्यान कर रहे थे, उसी समय महान् सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई तथा उसी प्रकार परमेश्वर भगवान् ईशान प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको देखकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया। तब शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार सुन्दर बालकोंकी कल्पना की। उन उत्पन्न हुए शिशुओंका नाम था—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड। वे योगानुसार सद्धर्मका पालन करके योगगतिको प्राप्त हो गये। (यह ईशान नामक पाँचवाँ अवतार हुआ।)

सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! इस प्रकार मैंने जगत्की हितकामनासे सद्योजात आदि अवतारोंका प्राकट्य संक्षेपसे वर्णन किया। उनका वह सारा लोकहितकारी व्यवहार याथातथ्यरूपसे ब्रह्माण्डमें वर्तमान है। महेश्वरकी ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और ब्रह्म—ये पाँच मूर्तियाँ विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। इनमें ईशान, जो शिवस्वरूप तथा सबसे बड़ा है, पहला कहा जाता है। वह साक्षात् प्रकृतिके भोक्ता क्षेत्रज्ञमें निवास करता है। शिवजीका दूसरा स्वरूप तत्पुरुष नामसे ख्यात है। वह गुणोंके आश्रयरूप तथा भोग्य सर्वज्ञमें अधिष्ठित है। पिनाकधारी शिवका जो अघोर नामक तीसरा स्वरूप है, वह धर्मके लिये अङ्गोंसहित बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अंदर विराजमान रहता है। वामदेव नामवाला शंकरका चौथा स्वरूप अहंकारका अधिष्ठान है। वह सदा अनेकों प्रकारका कार्य करता रहता है। विचारशील बुद्धिमानोंका कथन है कि शंकरका ईशानसंज्ञक स्वरूप सदा कर्ण, वाणी और सर्वव्यापी आकाशका अधीश्वर है तथा महेश्वरका पुरुष नामक रूप त्वक्, पाणि और स्पर्शगुणविशिष्ट वायुका स्वामी है। मनीषीगण अघोर नामवाले रूपको शरीर, रस, रूप और अग्निका अधिष्ठान बतलाते हैं। शंकरजीका वामदेवसंज्ञक स्वरूप रसना, पायु, रस और जलका स्वामी कहा जाता है। प्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वीका ईश्वर शिवजीका सद्योजातनामक रूप बताया जाता है। कल्याणकामी मनुष्योंको शंकरजीके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि ये श्रेयःप्राप्तिमें एकमात्र हेतु हैं। जो मनुष्य इन सद्योजात आदि अवतारोंके प्राकट्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह जगत्में समस्त काम्य भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है। (अध्याय १)

शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका तथा अर्धनारीनररूपका सविस्तर वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—ऐश्वर्यशाली मुने ! अब तुम महेश्वरके उन श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन श्रवण करो, जो लोकमें सबके सम्पूर्ण कार्योंको पूर्ण करनेवाले अतएव सुखदाता हैं। तात ! यह जगत् उन परमेश्वर शम्भुकी आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है। जैसे सूतमें मणियाँ पिरोयी रहती हैं, उसी तरह यह विश्व उन अष्टमूर्तियोंमें व्याप्त होकर स्थित है। वे प्रसिद्ध आठ मूर्तियाँ ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। शिवजीके इन शर्व आदि अष्टमूर्तियोंद्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित हैं। शास्त्रका ऐसा निश्चय है कि कल्याणकर्ता

महेश्वरका विश्वम्भरात्मक रूप ही चराचर विश्वको धारण किये हुए है। परमात्मा शिवका सलिलात्मक रूप जो समस्त जगत्को जीवन प्रदान करनेवाला है, 'भव' नामसे कहा जाता है। जो जगत्के बाहर-भीतर वर्तमान है और स्वयं ही विश्वका भरण-पोषण करता तथा स्पन्दित होता है, उग्ररूपधारी प्रभुके उस रूपको सत्पुरुष 'उग्र' कहते हैं। महादेवका जो सबको अवकाश देनेवाला सर्वव्यापी आकाशात्मक रूप है, उसे 'भीम' कहते हैं। वह भूतवृन्दका भेदक है। जो रूप समस्त आत्माओंका अधिष्ठान, सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाला और जीवोंके भव-पाशका छेदक है, उसे 'पशुपति'का रूप समझना चाहिये। महेश्वरका सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाला जो सूर्य नामक रूप है, उसे 'ईशान' कहते हैं। वह द्युलोकमें भ्रमण करता है। अमृतमयी रश्मियोंवाला जो चन्द्रमा सम्पूर्ण विश्वको आह्लादित करता है, शिवका वह रूप 'महादेव' नामसे पुकारा जाता है। 'आत्मा' परमात्मा शिवका आठवाँ रूप है। यह मूर्ति अन्य मूर्तियोंकी व्यापिका है। इसलिये सारा विश्व शिवमय है। जिस प्रकार वृक्षके मूलको सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्पित हो जाती हैं, उसी तरह शिवका पूजन करनेसे शिवस्वरूप विश्व परिपुष्ट होता है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिको प्रसन्न देखकर पिता हर्षित होता है, उसी तरह विश्वको भलीभाँति हर्षित देखकर शंकरको आनन्द मिलता है। इसलिये यदि कोई किसी भी देहधारीको कष्ट देता है तो निस्संदेह मानो उसने अष्टमूर्ति शिवका ही अनिष्ट किया है। सनत्कुमारजी! इस प्रकार भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त विश्वको अधिष्ठित करके विराजमान हैं, अतः तुम पूर्ण भक्तिभावसे उन परम कारण रुद्रका भजन करो!

प्रिय सनत्कुमारजी! अब तुम शिवजीके अनुपम अर्धनारीनर रूपका वर्णन सुनो। महाप्राज्ञ! वह रूप ब्रह्माकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। (सृष्टिके आदिमें) जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्मा उस दुःखसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय यों आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो।' उस व्योमवाणीको सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करनेका विचार किया; परंतु इससे पहले नारियोंका कुल ईशानसे प्रकट ही नहीं हुआ था, इसलिये पद्मयोनि ब्रह्मा मैथुनी सृष्टि रचनेमें समर्थ न हो सके। तब वे यों विचार कर कि शम्भुकी कृपाके बिना मैथुनी प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती, तप करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्मा पराशक्ति शिवासहित परमेश्वर शिवका प्रेमपूर्वक हृदयमें ध्यान करके घोर तप करने लगे। तदनन्तर तपोऽनुष्ठानमें लगे हुए ब्रह्माके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे कष्टहारी शंकर पूर्णसच्चिदानन्दकी कामदा मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारी-नरके रूपसे ब्रह्माके निकट प्रकट हो गये! उन देवाधिदेव शंकरको पराशक्ति शिवाके साथ आया हुआ देख ब्रह्माने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। तब विश्वकर्ता देवाधिदेव महादेव महेश्वर परम प्रसन्न होकर ब्रह्मासे मेघकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।



ईश्वरने कहा—महाभाग वत्स! मेरे प्यारे पुत्र पितामह! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्णतया ज्ञात हो गया है। तुमने जो इस समय प्रजाओंकी वृद्धिके लिये घोर तप किया है, तुम्हारे उस तपसे मैं प्रसन्न हो गया हूँ और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगा। यों स्वभावसे ही मधुर तथा परम उदार वचन कहकर शिवजीने अपने शरीरके अर्धभागसे शिवादेवीको पृथक् कर दिया। तब शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई उन परमा शक्तिको देखकर ब्रह्मा विनम्रभावसे प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्माने कहा—शिवे! सृष्टिके प्रारम्भमें तुम्हारे पति देवाधिदेव परमात्मा शम्भुने मेरी सृष्टि की थी और (मेरेद्वारा)

सारी प्रजाओंकी रचना की थी। शिवे! तब मैंने देवता आदि समस्त प्रजाओंकी मानसिक सृष्टि की; परंतु बारंबार रचना करनेपर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है; अतः अब मैं स्त्री पुरुषके समागमसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिका निर्माण करके अपनी सारी प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ। किंतु अभीतक तुमसे अक्षय नारीकुलका प्राकट्य नहीं हुआ है, इस कारण नारीकुलकी सृष्टि करना मेरी शक्तिके बाहर है। चूँकि सारी शक्तियोंका उद्गमस्थान तुम्हीं हो; इसलिये मैं तुम अखिलेश्वरी परमा शक्तिसे प्रार्थना करता हूँ। शिवे! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, तुम मुझे नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये शक्ति प्रदान करो; क्योंकि शिवप्रिये! इसीको तुम चराचर जगत्की उत्पत्तिका कारण समझो। वरदेश्वरि! मैं तुमसे एक और वरकी याचना करता हूँ, जगन्मातः! कृपा करके उसे भी मुझे दीजिये। मैं तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। (वह वर यह है—) 'सर्वव्यापिनी जगज्जननि! तुम चराचर जगत्की वृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थ रूपसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाओ।' ब्रह्माद्वारा यों याचना किये जानेपर परमेश्वरी देवी शिवाने 'तथास्तु—ऐसा ही होगा' कहकर वह शक्ति ब्रह्माको प्रदान कर दी। सुतरां जगन्मयी शिवशक्ति शिवा देवीने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान प्रभावाली एक शक्तिकी रचना की। उस शक्तिको देखकर देवश्रेष्ठ भगवान् शंकर, जो लीलाकारी, कष्टहारी और कृपाके सागर हैं, हँसते हुए जगदम्बिकासे बोले।

शिवजीने कहा—'देवि! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याद्वारा तुम्हारी आराधना की है, अतः अब तुम उनपर प्रसन्न हो जाओ और उनका सारा मनोरथ पूर्ण करो।' तब शिवा देवीने परमेश्वर शिवकी उस आज्ञाको सिर झुकाकर ग्रहण किया और ब्रह्माके कथनानुसार दक्षकी पुत्री होना स्वीकार कर लिया। मुने! इस प्रकार शिवादेवी ब्रह्माको अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। तत्पश्चात् भगवान् शंकर भी तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस लोकमें स्त्री-भागकी कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि चल पड़ी; इससे ब्रह्माको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे शिवजीके महान् अनुपम अर्धनारी-नरार्ध रूपका वर्णन कर दिया, यह सत्पुरुषोंके लिये मङ्गलदायक है। (अध्याय २-३)

वाराहकल्पमें होनेवाले शिवजीके प्रथम अवतारसे लेकर नवम ऋषभ अवतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! एक बार रुद्रने हर्षित होकर ब्रह्माजीसे शंकरके चरित्रका प्रेमपूर्वक वर्णन किया था। वह चरित्र सदा परम सुखदायक है। (उसे तुम श्रवण करो। वह चरित्र इस प्रकार है।)

शिवजीने कहा था—ब्रह्मन्! वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे। तब उस मन्वन्तरकी चतुर्युगियोंके किसी द्वापरयुगमें मैं लोकोंपर अनुग्रह करने तथा ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये प्रकट हूँगा। ब्रह्मन्! युग-प्रवृत्तिके अनुसार उस प्रथम चतुर्युगीके प्रथम द्वापरयुगमें जब प्रभु स्वयं ही व्यास होंगे, तब मैं उस कलियुगके अन्तमें ब्राह्मणोंके हितार्थ शिवासहित श्वेत नामक महामुनि होकर प्रकट हूँगा। उस समय हिमालयके रमणीय शिखर छागल नामक पर्वतश्रेष्ठपर मेरे शिखाधारी चार शिष्य उत्पन्न होंगे। उनके नाम होंगे—श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित। वे चारों ध्यानयोगके आश्रयसे मेरे नगरमें जायँगे। वहाँ वे मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मेरे भक्त हो जायँगे तथा जन्म, जरा और मृत्युसे रहित होकर परब्रह्मकी समाधिमें लीन रहेंगे। वत्स पितामह! उस समय मनुष्य ध्यानके अतिरिक्त दान, धर्म आदि कर्महेतुक साधनोंद्वारा मेरा दर्शन नहीं पा सकेंगे। दूसरे द्वापरमें प्रजापति सत्य व्यास होंगे। उस समय मैं कलियुगमें सुतार नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँ भी मेरे दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान् नामक चार वेदवादी द्विज शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके बलसे मेरे नगरको जायँगे और मुझ अविनाशीको तत्त्वतः जानकर मुक्त हो जायँगे। तीसरे द्वापरमें जब भार्गव नामक व्यास होंगे, तब मैं भी नगरके निकट ही दमन नामसे प्रकट होऊँगा। उस समय भी मेरे विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक चार पुत्र होंगे। चतुरानन! उस अवतारमें मैं शिष्योंको साथ ले व्यासकी सहायता करूँगा और उस कलियुगमें निवृत्तिमार्गको सुदृढ़ बनाऊँगा। चौथे द्वापरमें जब अङ्गिरा व्यास कहे जायँगे, उस समय मैं सुहोत्र नामसे अवतार लूँगा। उस समय भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे। ब्रह्मन्! उनके नाम होंगे—सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम। उस अवसरपर भी इन शिष्योंके साथ मैं व्यासकी सहायतामें लगा रहूँगा। पाँचवें द्वापरमें सविता व्यास नामसे कहे जायँगे। तब मैं

कङ्क नामक महातपस्वी योगी होऊँगा। ब्रह्मन्! वहाँ भी मेरे चार योगसाधक महात्मा पुत्र होंगे। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो—सनक, सनातन, प्रभावशाली सनन्दन और सर्वव्यापक निर्मल तथा अहंकाररहित सनत्कुमार। उस समय भी कङ्क नामधारी मैं सविता नामक व्यासका सहायक बनूँगा और निवृत्तिमार्गको बढ़ाऊँगा। पुनः छठे द्वापरके प्रवृत्त होनेपर जब मृत्यु लोककारक व्यास होंगे और वेदोंका विभाजन करेंगे, उस समय भी मैं व्यासकी सहायता करनेके लिये लोकाक्षि नामसे प्रकट होऊँगा और निवृत्ति-पथकी उन्नति करूँगा। वहाँ भी मेरे चार दृढ़व्रती शिष्य होंगे। उनके नाम होंगे—सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय। विधे! सातवें द्वापरके आरम्भमें जब शतक्रतु नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं योगमार्गमें परम निपुण जैगीषव्य नामसे प्रकट होऊँगा और काशीपुरीमें गुफाके अंदर दिव्यदेशमें कुशासनपर बैठकर योगको सुदृढ़ बनाऊँगा तथा शतक्रतु नामक व्यासकी सहायता और संसार-भयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा। उस युगमें भी मेरे सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक चार पुत्र होंगे। आठवें द्वापरके आनेपर मुनिवर वसिष्ठ वेदोंका विभाजन करनेवाले वेदव्यास होंगे। योगवित्तम! उस युगमें भी मैं दधिवाहन नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा। उस समय कपिल, आसुरि, पञ्चशिख और शाल्वलपूर्वक नामवाले मेरे चार योगी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो मेरे ही समान होंगे। ब्रह्मन्! नवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें मुनिश्रेष्ठ सारस्वत व्यास नामसे प्रसिद्ध होंगे। उन व्यासके निवृत्तिमार्गकी वृद्धिके लिये ध्यान करनेपर मैं ऋषभनामसे अवतार लूँगा। उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरिश नामके चार महायोगी मेरे शिष्य होंगे। प्रजापते! उनके सहयोगसे मैं योगमार्गको सुदृढ़ बनाऊँगा। सन्मुने! इस प्रकार मैं व्यासका सहायक बनूँगा। ब्रह्मन्! उसी रूपसे मैं बहुत-से दुखी भक्तोंपर दया करके उनका भवसागरसे उद्धार करूँगा। मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको संतोष देनेवाला और नाना प्रकारसे रक्षा करनेवाला होगा। उस अवतारमें मैं भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषदोषसे मर जानेके कारण पिताद्वारा त्याग दिया जायगा, जीवन प्रदान करूँगा। तदनन्तर उस राजपुत्रकी आयुके सोलहवें वर्षमें ऋषभ ऋषि, जो मेरे ही अंश हैं, उसके घर पधारेंगे। प्रजापते! उस राजकुमारद्वारा पूजित होनेपर वे सद्रूपधारी कृपालु मुनि उसे राजधर्मका उपदेश करेंगे। तत्पश्चात् वे दीनवत्सल मुनि हर्षित चित्तसे उसे दिव्य कवच, शङ्ख और सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला एक चमकीला खड्ग प्रदान करेंगे। फिर कृपापूर्वक उसके शरीरपर भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियोंका बल भी देंगे। यों मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वासन देकर तथा उन दोनोंद्वारा पूजित हो प्रभावशाली ऋषभ मुनि स्वेच्छानुसार चले जायँगे। ब्रह्मन्! तब राजर्षि भद्रायु भी रिपुगणोंको जीतकर और कीर्तिमालिनीके साथ विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करेगा। मुने! मुझ शंकरका वह ऋषभ नामक नवाँ अवतार ऐसा प्रभाववाला होगा, वह सत्पुरुषोंकी गति तथा दीनोंके लिये बन्धु-सा हितकारी होगा। मैंने उसका वर्णन तुम्हें सुना दिया। यह ऋषभ-चरित परम पावन, महान् तथा स्वर्ग, यश और आयुको देनेवाला है; अतः इसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये। (अध्याय ४)

शिवजीद्वारा दसवेंसे लेकर अट्ठाईसवें योगेश्वरावतारोंका वर्णन

शिवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! दसवें द्वापरमें त्रिधामा नामके मुनि व्यास होंगे। वे हिमालयके रमणीय शिखर पर्वतोत्तम भृगुतुङ्गपर निवास करेंगे। वहाँ भी मेरे श्रुतिविदित चार पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—भृङ्ग, बलबन्धु, नरामित्र और तपोधन केतुशृङ्ग। ग्यारहवें द्वापरमें जब त्रिवृतनामक व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें गङ्गाद्वारमें तप नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब और प्रलम्बक नामक चार दृढ़व्रती पुत्र होंगे। बारहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें शततेजा नामके वेदव्यास होंगे। उस समय मैं द्वापरके समाप्त होनेपर कलियुगमें हेमकञ्चुकमें जाकर अत्रि नामसे अवतार लूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्तिमार्गको प्रतिष्ठित करूँगा। महामुने! वहाँ भी मेरे सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व नामक चार उत्तम योगी पुत्र होंगे। तेरहवें द्वापरयुगमें जब धर्मस्वरूप नारायण व्यास होंगे, तब मैं पर्वत-श्रेष्ठ गन्धमादनपर बालखिल्याश्रममें महामुनि बलि नामसे उत्पन्न हूँगा। वहाँ भी मेरे सुधामा, काश्यप, वशिष्ठ और विरजा नामक चार सुन्दर पुत्र होंगे। चौदहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब रक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं अङ्गिराके वंशमें गौतम नामसे उत्पन्न होऊँगा। उस कलियुगमें भी अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्कट मेरे पुत्र होंगे। पंद्रहवें द्वापरमें जब त्र्यारुणि

व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके पृष्ठभागमें स्थित वेदशीर्ष नामक पर्वतपर सरस्वतीके उत्तरतटका आश्रय ले वेदशिरा नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय महापराक्रमी वेदशिर ही मेरा अस्त्र होगा। वहाँ भी मेरे चार दृढ़ पराक्रमी पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक।

सोलहवें द्वापरयुगमें जब व्यासका नाम देव होगा, तब मैं योग प्रदान करनेके लिये परम पुण्यमय गोकर्णवनमें गोकर्ण नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक चार पुत्र होंगे। वे जलके समान निर्मल और योगी होंगे तथा उसी मार्गके आश्रयसे शिवलोकको प्राप्त हो जायँगे। सत्तरहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें देवकृतंजय व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके अत्यन्त ऊँचे एवं रमणीय शिखर महालय पर्वतपर गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा; क्योंकि हिमालय शिवक्षेत्र कहलाता है। वहीं उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल नामके मेरे पुत्र भी होंगे। अठारहवीं चतुर्युगीके द्वापरयुगमें जब ऋतंजय व्यास होंगे, तब मैं हिमालयके उस सुन्दर शिखरपर, जिसका नाम शिखण्डी पर्वत है और जहाँ महान् पुण्यमय सिद्धक्षेत्र तथा सिद्धोंद्वारा सेवित शिखण्डीवन भी है शिखण्डी नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँ भी वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य और यतीश्वर नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे। उन्नीसवें द्वापरमें महामुनि भरद्वाज व्यास होंगे। उस समय भी मैं हिमालयके शिखरपर माली नामसे उत्पन्न होऊँगा और मेरे सिरपर लंबी-लंबी जटाएँ होंगी। वहाँ भी मेरे सागरके-से गम्भीर स्वभाववाले हिरण्यनामा, कौसल्य, लोकाक्षि और प्रधिमि नामक पुत्र होंगे। बीसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें होनेवाले व्यासका नाम गोतम होगा। तब मैं भी हिमवान्‌के पृष्ठभागमें स्थित पर्वतश्रेष्ठ अट्टहासपर, जो सदा देवता, मनुष्य, यक्षेन्द्र, सिद्ध और चारणोंद्वारा अधिष्ठित रहता है, अट्टहास नामसे अवतार धारण करूँगा। उस युगके मनुष्य अट्टहासके प्रेमी होंगे। उस समय भी मेरे उत्तम योगसम्पन्न चार पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—सुमन्तु, वर्वरि, विद्वान् कबन्ध और कुणिकन्धर। इकीसवें द्वापरयुगमें जब वाचःश्रवा नामके व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे प्रकट होऊँगा। इसलिये उस शुभ स्थानका नाम 'दारुवन' पड़ जायगा। वहाँ भी मेरे प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम नामके चार परम योगी पुत्र उत्पन्न होंगे। बाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरमें जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं भी वाराणसीपुरीमें लाङ्गली भीम नामक महामुनिके रूपमें अवतरित होऊँगा। उस कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवता मुझ हलायुधधारी शिवका दर्शन करेंगे। उस अवतारमें भी मेरे भल्लवी, मधु, पिङ्ग और श्वेतकेतु नामक चार परम धार्मिक पुत्र होंगे। तेईसवीं चतुर्युगीमें जब तृणबिन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं सुन्दर कालिञ्जरगिरिपर श्वेत नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे उशिक, बृहदश्व, देवल और कवि नामसे प्रसिद्ध चार तपस्वी पुत्र होंगे। चौबीसवीं चतुर्युगीमें जब ऐश्वर्यशाली यक्ष व्यास होंगे, तब उस युगमें मैं नैमिषक्षेत्रमें शूली नामक महायोगी होकर उत्पन्न हूँगा। उस युगमें भी मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। उनके नाम होंगे—शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु। पचीसवें द्वापरमें जब व्यास शक्ति नामसे प्रसिद्ध होंगे, तब मैं भी प्रभावशाली एवं दण्डधारी महायोगीके रूपमें प्रकट हूँगा। मेरा नाम मुण्डीश्वर होगा। उस अवतारमें भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड और प्रवाहक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे। छब्बीसवें द्वापरमें जब व्यासका नाम पराशर होगा, तब मैं भद्रवट नामक नगरमें सहिष्णु नामसे अवतार लूँगा। उस समय भी उलूक, विद्युत्, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले चार तपस्वी शिष्य होंगे। सत्ताईसवें द्वापरमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे, तब मैं भी प्रभासतीर्थमें सोमशर्मा नामसे प्रकट हूँगा। वहाँ भी अक्षपाद, कुमार, उलूक और वत्स नामसे प्रसिद्ध मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। अट्ठाईसवें द्वापरमें जब भगवान् श्रीहरि पराशरके पुत्ररूपमें द्वैपायन नामक व्यास होंगे, तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने छठे अंशसे वसुदेवके श्रेष्ठ पुत्रके रूपमें उत्पन्न होकर वासुदेव कहलायेंगे। उसी समय योगात्मा मैं भी लोकोंको आश्चर्यमें डालनेके लिये योगमायाके प्रभावसे ब्रह्मचारीका शरीर धारण करके प्रकट होऊँगा। फिर श्मशान-भूमिमें मृतकरूपसे पड़े हुए अविच्छिन्न शरीरको देखकर मैं ब्राह्मणोंके हित-साधनके लिये योगमायाके आश्रयसे उसमें घुस जाऊँगा और फिर तुम्हारे तथा विष्णुके साथ मेरुगिरिकी पुण्यमयी दिव्य गुहामें प्रवेश करूँगा। ब्रह्मन्! वहाँ मेरा नाम लकुली होगा। इस प्रकार मेरा यह कायावतार उत्कृष्ट सिद्धक्षेत्र कहलायेगा और यह जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक लोकमें परम विख्यात रहेगा। उस अवतारमें भी मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। उनके नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और पौरुष्य होंगे। वे वेदोंके पारगामी ऊर्ध्वरेता ब्राह्मण योगी होंगे और माहेश्वर योगको प्राप्त करके शिवलोकको चले जायँगे।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियो! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके सभी चतुर्युगियोंके योगे-

श्वरावतारोंका सम्यक् रूपसे वर्णन किया था । विभो ! अट्ठाईस व्यास क्रमशः एक-एक करके प्रत्येक द्वापरमें होंगे और योगेश्वरावतार प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें। प्रत्येक योगेश्वरावतार-के साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होंगे, जो महान् शिवभक्त और योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले होंगे । इन पशुपति-के शिष्योंके शरीरोंपर भस्म रमी रहेगी, ललाट त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित रहेगा और रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण होगा । ये सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् और सदा बाहर-भीतरसे लिङ्गार्चनमें तत्पर रहनेवाले होंगे । ये शिवजीमें भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानमें निष्ठा रखनेवाले और जितेन्द्रिय होंगे । विद्वानोंने इनकी संख्या एक सौ बारह बतलायी है । इस प्रकार मैंने अट्ठाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर कृष्णावतारपर्यन्त सभी अवतारोंके लक्षणोंका वर्णन कर दिया । जब श्रुतिसमूहोंका वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा, तब उस कल्पमें कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे । यों महेश्वरने ब्रह्माजीपर अनुग्रह करके योगेश्वरावतारोंका वर्णन किया और फिर वे देवेश्वर उनकी ओर दृष्टिपात करके वहीं अन्तर्धान हो गये । (अध्याय ५)

नन्दीश्वरावतारका वर्णन

यहाँतक बयालीस अवतारोंका वर्णन किया गया । अब नन्दीश्वरावतारका वर्णन किया जाता है ।

सनत्कुमारजीने पूछा—प्रभो ! आप महादेवके अंश-से उत्पन्न होकर पीछे शिवको कैसे प्राप्त हुए थे ? वह सारा वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ, उसे वर्णन करनेकी कृपा करें ।

नन्दीश्वर बोले—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! मैं जिस प्रकार महादेवके अंशसे जन्म लेकर शिवको प्राप्त हुआ, उस प्रसङ्गका वर्णन करता हूँ; तुम सावधानीपूर्वक श्रवण करो । शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे । पितरोंके आदेशसे उन्होंने अयोनिज सुव्रत मृत्युहीन पुत्रकी प्राप्तिके लिये तप करके देवेश्वर इन्द्रको प्रसन्न किया । परंतु देवराज इन्द्रने ऐसा पुत्र प्रदान करनेमें अपनेको असमर्थ बताकर सर्वेश्वर महाशक्तिसम्पन्न महादेवकी आराधना करनेका उपदेश दिया । तब शिलाद भगवान् महादेवको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे । उनके तपसे प्रसन्न होकर महादेव वहाँ पधारे और महासमाधिमग्न शिलादको थपथपाकर जगाया । तब शिलादने शिवका स्तवन किया और भगवान् शिवके उन्हें वर देनेको प्रस्तुत होनेपर उनसे कहा—'प्रभो ! मैं आपके ही समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूँ ।' तब शिवजी प्रसन्न होकर मुनिसे बोले ।

शिवजीने कहा—तपोधन विप्र ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने, मुनियोंने तथा बड़े-बड़े देवताओंने मेरे अवतार धारण करनेके लिये तपस्याद्वारा मेरी आराधना की थी । इसलिये मुने ! यद्यपि मैं सारे जगत्का पिता हूँ, फिर भी तुम मेरे पिता बनोगे और मैं तुम्हारा अयोनिज पुत्र होऊँगा तथा मेरा नाम नन्दी होगा ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर कृपालु शंकरने अपने चरणोंमें प्रणिपात करके सामने खड़े हुए शिलाद मुनिकी ओर कृपादृष्टिसे देखा और उन्हें ऐसा आदेश दे वे तुरंत ही उमासहित वहाँ अन्तर्धान हो गये । महादेवजीके चले जानेके पश्चात् महामुनि शिलादने अपने आश्रममें आकर ऋषियोंसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया । कुछ समय बीत जानेके बाद जब यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिताजी यज्ञ करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे, उसी समय मैं शम्भुकी आज्ञासे यज्ञके पूर्व ही उनके शरीरसे उत्पन्न हो गया । उस समय मेरे शरीरकी प्रभा युगान्तकालीन अग्निके समान थी । तब सारी दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी और शिलाद मुनिकी भी बड़ी प्रशंसा हुई । उधर शिलादने भी जब मुझ बालकको प्रलय-कालीन सूर्य और अग्निके सदृश प्रभाशाली, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, प्रकाशमान, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि आयुधोंसे युक्त, सर्वथा रुद्ररूपमें देखा, तब वे महान् आनन्दमें निमग्न हो गये और मुझ प्रणम्यको नमस्कार करते हुए कहने लगे ।

शिलाद बोले—सुरेश्वर ! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर जैसे निर्धन-को निधि प्राप्त हो जानेसे प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार मेरी प्राप्तिसे हर्षित होकर पिताजीने महेश्वरकी भलीभाँति वन्दना की और फिर मुझे लेकर वे शीघ्र ही अपनी पर्णशालाको चल दिये । महामुने ! जब मैं शिलादकी कुटियामें पहुँच गया, तब मैंने अपने उस रूपका परित्याग करके मनुष्यरूप धारण कर लिया । तदनन्तर शालङ्कायन-नन्दन पुत्रवत्सल शिलादने मेरे

जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। फिर पाँचवें वर्षमें पिताजीने मुझे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेदोंका तथा अन्यान्य शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया। सातवाँ वर्ष पूरा होनेपर शिवजीकी आज्ञासे मित्र और वरुण नामके मुनि मुझे देखनेके लिये पिताजीके आश्रमपर पधारे। शिलाद मुनिने उनकी पूरी आवभगत की। जब वे दोनों महात्मा मुनीश्वर आनन्दपूर्वक आसनपर विराज गये, तब मेरी ओर बारंबार निहारकर बोले।

मित्र और वरुणने कहा—'तात शिलाद! यद्यपि तुम्हारा पुत्र नन्दी सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थोंका पारगामी विद्वान् है, तथापि इसकी आयु बहुत थोड़ी है। हमने बहुत तरहसे विचार करके देखा, परंतु इसकी आयु एक वर्षसे अधिक नहीं दीखती।' उन विप्रवरोंके यों कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद नन्दीको छातीसे लिपटाकर दुःखार्त हो फूट-फूटकर रोने लगे। तब पिता और पितामहको मृतककी भाँति भूमिपर पड़ा हुआ देख नन्दी शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके प्रसन्नतापूर्वक पूछने लगा—'पिताजी! आपको कौन-सा ऐसा दुःख आ पड़ा है, जिसके कारण आपका शरीर काँप रहा है और आप रो रहे हैं? आपको वह दुःख कहाँसे प्राप्त हुआ है, मैं इसे ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ।'

पिताने कहा—बेटा! तुम्हारी अल्पायुके दुःखसे मैं अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ। (तुम्हीं बताओ) मेरे इस कष्टको कौन दूर कर सकता है? मैं उसकी शरण ग्रहण करूँ।

पुत्र बोला—पिताजी! मैं आपके सामने शपथ करता हूँ और यह बिलकुल सत्य बात कह रहा हूँ कि चाहे देवता, दानव, यम, काल तथा अन्यान्य प्राणी—ये सब-के-सब मिलकर मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी बाल्यकालमें मृत्यु नहीं होगी, अतः आप दुखी मत हों।

पिताने पूछा—मेरे प्यारे लाल! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है अथवा तुम्हें कौन-सा ऐसा ज्ञान, योग या ऐश्वर्य प्राप्त है, जिसके बलपर तुम इस दारुण दुःखको नष्ट कर दोगे?

पुत्रने कहा—तात! मैं न तो तपसे मृत्युको हटाऊँगा और न विद्यासे। मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर मैंने सिर झुकाकर पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी राह ली। (अध्याय ६)

नन्दीश्वरके जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहका वर्णन

नन्दिकेश्वर कहते हैं—मुने! वनमें जाकर मैंने एकान्त स्थानमें अपना आसन लगाया और उत्तम बुद्धिका आश्रय ले मैं उग्र तपमें प्रवृत्त हुआ, जो बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी दुष्कर था। उस समय मैं नदीके पावन उत्तर तटपर सुदृढ़रूपसे ध्यान लगाकर बैठ गया और एकाग्र तथा समाहित मनसे अपने हृदयकमलके मध्यभागमें तीन नेत्र, दस भुजा तथा पाँच मुखवाले शान्तिस्वरूप देवाधिदेव सदाशिवका ध्यान करके रुद्र-मन्त्रका जप करने लगा। तब उस जपमें मुझे तल्लीन देखकर चन्द्रार्धभूषण परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उमासहित वहाँ पधारकर प्रेमपूर्वक बोले।

शिवजीने कहा—'शिलादनन्दन! तुमने बड़ा उत्तम तप किया है। तुम्हारी इस तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह माँग लो।' महादेवजीके यों कहनेपर मैं सिरके बल उनके चरणोंमें लोट गया और फिर बुढ़ापा तथा शोकका विनाश करनेवाले परमेशानकी स्तुति करने लगा। तब परम कष्टहारी वृषभध्वज परमेश्वर शम्भुने मुझ परम भक्तिसम्पन्न नन्दीको जिसके नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे और जो सिरके बल चरणोंमें पड़ा था, अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उठा लिया और शरीरपर हाथ फेरने लगे। फिर वे जगदीश्वर गणाध्यक्षों तथा हिमाचलकुमारी पार्वती देवीकी ओर दृष्टिपात करके मुझे कृपादृष्टिसे देखते हुए यों कहने लगे—'वत्स नन्दी! उन दोनों विप्रोंको तो मैंने ही भेजा था। महाप्राज्ञ! तुम्हें मृत्युका भय कहाँ? तुम तो मेरे ही समान हो। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तुम अमर, अजर, दुःखरहित, अव्यय और अक्षय होकर सदा गणनायक बने रहोगे तथा पिता और सुहृद्वर्गसहित मेरे प्रियजन होओगे। तुममें मेरे ही समान बल होगा। तुम नित्य मेरे पार्श्वभागमें स्थित रहोगे और तुमपर निरन्तर मेरा प्रेम बना रहेगा। मेरी कृपासे जन्म, जरा और मृत्यु तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर कृपासागर शम्भुने कमलोंकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर

तुरंत ही मेरे गलेमें डाल दिया। विप्रवर! उस शुभ मालाके



गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र और दस भुजाओंसे सम्पन्न हो गया तथा द्वितीय शंकर-सा प्रतीत होने लगा। तदनन्तर परमेश्वर शिवने मेरा हाथ पकड़कर पूछा—'बताओ, अब तुम्हें कौन-सा उत्तम वर दूँ?' फिर उन वृषध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्मल जलको हाथमें ले 'तुम नदी हो जाओ' यों कहकर उसे छोड़ दिया। तब वह जल उत्तम ढंगसे बहनेवाली, स्वच्छ जलसे परिपूर्ण, महान् वेगशालिनी, दिव्यरूपा पाँच सुन्दर नदियोंके रूपमें परिवर्तित हो गया। उनके नाम हैं—जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बूनदी। मुने! यह पञ्चनद शिवके पृष्ठभागकी भाँति परम शुभ है। महेश्वरके निकट इसका नाम लेनेसे यह परम पावन हो जाता है। जो मनुष्य पञ्चनदपर जाकर स्नान और जप करके परमेश्वर शिवका पूजन करता है, वह शिवसायुज्य-को प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। तत्पश्चात् शम्भुने उमासे कहा—'अव्यये! मैं नन्दीका अभिषेक करके इसे गणाध्यक्ष बनाना चाहता हूँ। इस विषयमें तुम्हारी क्या राय है?'

तब उमा बोलीं—देवेश! आप नन्दीको गणाध्यक्ष-पद प्रदान कर सकते हैं; क्योंकि परमेश्वर! यह शिलादनन्दन मेरे लिये पुत्र-सरीखा है, इसलिये नाथ! यह मुझे बहुत ही प्यारा है। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने अपने अतुलबल-शाली गणोंको बुलाकर उनसे कहा।

शिवजी बोले—गणनायको! तुम सब लोग मेरी एक आज्ञा-का पालन करो। यह मेरा प्रिय पुत्र नन्दीश्वर सभी गणनायकोंका अध्यक्ष और गणोंका नेता है; इसलिये तुम सब लोग मिलकर इसका मेरे गणोंके अधिपति-पदपर प्रेमपूर्वक अभिषेक करो। आजसे यह नन्दीश्वर तुमलोगोंका स्वामी होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! शंकरजीके इस कथनपर सभी गणनायकोंने 'एवमस्तु' कहकर उसे स्वीकार किया और वे सामग्री जुटानेमें लग गये। फिर सब देवताओं और मुनियोंने मिलकर मेरा अभिषेक किया। तदनन्तर मरुतोंकी मनोहारिणी दिव्य कन्या सुयशासे मेरा विवाह करवा दिया। उस समय मुझे बहुत-सी दिव्य वस्तुएँ मिलीं। महामुने! इस प्रकार विवाह करके मैंने अपनी उस पत्नीके साथ शम्भु, शिवा, ब्रह्मा और श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल भगवान् शिव पत्नीसहित मुझसे परम प्रेमपूर्वक बोले।

ईश्वरने कहा—सत्पुत्र! यह तुम्हारी प्रिया सुयशा और तुम मेरी बात सुनो। तुम मुझे परम प्रिय हो, अतः मैं स्नेह-पूर्वक तुम्हें मनोवाञ्छित वर प्रदान करूँगा। गणेश्वर नन्दीश! देवी पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा संतुष्ट हूँ; इसलिये वत्स! तुम मेरा उत्तम वचन श्रवण करो। तुम मेरे अटूट प्रेमी, विशिष्ट, परम ऐश्वर्यसम्पन्न, महायोगी, महान् धनुर्धारी, अजेय, सबको जीतनेवाले, महाबली और सदा पूज्य होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं उपस्थित रहूँगा। यही दशा तुम्हारे पिता और पितामहकी भी होगी। पुत्र! तुम्हारे ये महाबली पिता परम ऐश्वर्यशाली, मेरे भक्त और गणाध्यक्ष होंगे। वत्स! ये ही नियम तुम्हारे पितामहपर भी लागू होंगे। अन्तमें तुम सब लोग मुझसे वरदान प्राप्त करके मेरा सांनिध्य प्राप्त करोगे।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तत्पश्चात् महाभागा उमादेवी वर देनेके लिये उत्सुक हो मुझ नन्दीसे बोलीं—'बेटा! तू मुझसे भी वर माँग ले, मैं तेरी सारी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण कर दूँगी।' तब देवीके उस वचनको सुनकर मैंने हाथ जोड़कर कहा—'देवि! आपके चरणोंमें मेरी सदा उत्तम भक्ति बनी रहे।' मेरी याचना सुनकर देवीने कहा—'एवमस्तु—ऐसा ही होगा।' फिर शिवा नन्दीकी प्रियतमा पत्नी सुयशासे बोलीं।

देवीने कहा—वत्से ! तुम भी अपना अभीष्ट वर ग्रहण करो—तुम्हारे तीन नेत्र होंगे । तुम जन्म-बन्धनसे छूट जाओगी और पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न रहोगी तथा तुम्हारी मुझमें और अपने स्वामीमें अटल भक्ति बनी रहेगी ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञासे परम प्रसन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगणोंने भी प्रेमपूर्वक हम दोनोंको वरदान दिये । तत्पश्चात् परमेश्वर शिव कुटुम्बसहित मुझे अपनाकर तथा उमासहित वृषपर आरूढ़ हो सम्बन्धियों एवं बान्धवोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये । तब वहाँ उपस्थित विष्णु आदि समस्त देवता मेरी प्रशंसा तथा शिव-शिवाकी स्तुति करते हुए अपने-अपने धामको चल दिये । वत्स ! इस प्रकार मैंने तुमसे अपने अवतारका वर्णन कर दिया । महामुने ! यह मनुष्योंके लिये सदा आनन्ददायक और शिवभक्तिका वर्धक है । जो श्रद्धालु मानव भक्तिभावित चित्तसे मुझ नन्दीके इस जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहके वृत्तान्तको सुनेगा अथवा दूसरोंको सुनायेगा तथा पढ़ेगा या दूसरेको पढ़ायेगा, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें परमगतिको प्राप्त होगा । (अध्याय ७)

कालभैरवका माहात्म्य, विश्वानरकी तपस्या और शिवजीका प्रसन्न होकर उनकी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे उनके पुत्ररूपमें प्रकट होनेका उन्हें वरदान देना

तदनन्तर भगवान् शंकरके भैरवावतारका वर्णन करके नन्दीश्वरने कहा—महामुने ! परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ रचनेवाले तथा सत्पुरुषोंके प्रेमी हैं । उन्होंने मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको भैरवरूपसे अवतार लिया था । इसलिये जो मनुष्य मार्गशीर्षमासकी कृष्णाष्टमीको कालभैरवके संनिकट उपवास करके रात्रिमें जागरण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणसहित इस व्रतका अनुष्ठान करेगा, वह भी महापापोंसे मुक्त होकर सद्गतिको प्राप्त हो जायगा । प्राणियोंके लाखों जन्मोंमें किये हुए जो पाप हैं, वे सब-के-सब कालभैरवके दर्शनसे निर्मल हो जाते हैं । जो मूर्ख कालभैरवके भक्तोंका अनिष्ट करता है, वह इस जन्ममें दुःख भोगकर पुनः दुर्गतिको प्राप्त होता है । जो लोग विश्वनाथके तो भक्त हैं परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, उन्हें महान् दुःखकी प्राप्ति होती है । काशीमें तो इसका विशेष प्रभाव पड़ता है । जो मनुष्य वाराणसीमें निवास करके कालभैरवका भजन नहीं करता, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ते रहते हैं । जो काशीमें प्रत्येक भौमवारकी कृष्णाष्टमीके दिन कालराजका भजन-पूजन नहीं करता, उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है ।

तदनन्तर नन्दीश्वरने वीरभद्र तथा शरभावतारका वृत्तान्त सुनाकर कहा—ब्रह्मपुत्र ! भगवान् शिव जिस प्रकार प्रसन्न होकर विश्वानर मुनिके घर अवतीर्ण हुए थे, शशिमौलिके उस चरितको तुम प्रेमपूर्वक श्रवण करो । उस समय वे तेजकी निधि अग्निरूप सर्वात्मा परम प्रभु शिव अग्निलोकके अधिपतिरूपसे गृहपति नामसे अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर नर्मपुर नामका एक नगर था । उसी नगरमें विश्वानर नामके एक मुनि निवास करते थे । उनका जन्म शाण्डिल्य गोत्रमें हुआ था । वे परम पावन, पुण्यात्मा, शिवभक्त, ब्रह्मतेजके निधि और जितेन्द्रिय थे । ब्रह्मचर्याश्रममें उनकी बड़ी निष्ठा थी । वे सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते थे । फिर उन्होंने शुचिष्मती नामकी एक सद्गुणवती कन्यासे विवाह कर लिया और वे ब्राह्मणोचित कर्म करते हुए देवता तथा पितरोंको प्रिय लगनेवाला जीवन बिताने लगे । इस प्रकार जब बहुत-सा समय व्यतीत हो गया, तब उन ब्राह्मणकी भार्या शुचिष्मती, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी, अपने पतिसे बोली—'प्राणनाथ ! स्त्रियोंके योग्य जितने आनन्दप्रद भोग हैं, उन सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग लिया; परंतु नाथ ! मेरे हृदयमें एक लालसा चिरकालसे वर्तमान है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे आप पूर्ण करनेकी कृपा करें । स्वामिन् ! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ और आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे महेश्वर-सरीखा पुत्र प्रदान कीजिये । इसके अतिरिक्त मैं दूसरा वर नहीं चाहती ।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! पत्नीकी बात सुनकर पवित्र व्रतपरायण ब्राह्मण विश्वानर क्षणभरके लिये समाधिस्थ हो गये और हृदयमें यों विचार करने लगे—'अहो ! मेरी इस सूक्ष्माङ्गी पत्नीने कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है । यह तो मेरे मनोरथ-पथसे बहुत दूर है । अच्छा, शिवजी तो सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । ऐसा प्रतीत होता है, मानो

उन शम्भुने ही इसके मुखमें बैठकर वाणीरूपसे ऐसी बात कही है, अन्यथा दूसरा कौन ऐसा करनेमें समर्थ हो सकता है। तदनन्तर वे एकपत्नीव्रती मुनि विश्वानर पत्नीको आश्वासन देकर वाराणसीमें गये और घोर तपके द्वारा भगवान् शिवके वीरेश लिङ्गकी आराधना करने लगे। इस प्रकार उन्होंने एक वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए अद्भुत तप किया। तेरहवाँ मास आनेपर एक दिन वे द्विजवर प्रातःकाल त्रिपथगामिनी गङ्गाके जलमें स्नान करके ज्यों ही वीरेशके निकट पहुँचे, त्यों ही उन तपोधनको उस लिङ्गके मध्य एक अष्टवर्षीय विभूतिविभूषित बालक दिखायी दिया। उस नग्न शिशुके नेत्र कानोंतक फैले हुए थे, होठोंपर गहरी लालिमा छायी हुई थी, मस्तकपर पीले रंगकी सुन्दर जटा सुशोभित थी और मुखपर हँसी खेल रही थी। वह शैशवोचित अलंकार और चिताभस्म धारण किये हुए था तथा अपनी लीलासे हँसता हुआ श्रुतिसूक्तोंका पाठ कर रहा था। उस बालकको देखकर विश्वानर मुनि कृतार्थ हो गये और आनन्दके कारण उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा तथा बारंबार 'नमस्कार है, नमस्कार है' यों उनका हृदयोद्गार फूट पड़ा। फिर वे अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्योंद्वारा बालरूपधारी परमानन्द-स्वरूप शम्भुका स्तवन करते हुए बोले।

विश्वानरने कहा—भगवन्! आप ही एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं, यह सारा जगत् आपका ही स्वरूप है, यहाँ अनेक कुछ भी नहीं है। यह बिलकुल सत्य है कि एकमात्र रुद्रके अतिरिक्त दूसरे किसीकी सत्ता नहीं है, इसलिये मैं आप महेशकी शरण ग्रहण करता हूँ। शम्भो! आप ही सबके कर्ता-हर्ता हैं, तथा जैसे आत्मधर्म एक होते हुए भी अनेक रूपसे दीखता है, उसी प्रकार आप भी एकरूप होकर नाना रूपोंमें व्याप्त हैं। फिर भी आप रूपरहित हैं। इसलिये आप ईशके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेकी शरण नहीं ले सकता। जैसे रज्जुमें सर्प, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाहका भान मिथ्या है, उसी प्रकार, जिसे जान लेनेपर यह विश्वप्रपञ्च मिथ्या भासित होता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! जलमें जो शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें गरमी, चन्द्रमामें आह्लादकारिता, पुष्पमें गन्ध और दुग्धमें घी वर्तमान है, वह आपका ही स्वरूप है, अतः मैं आपके शरण हूँ। आप कानरहित होकर शब्द सुनते हैं; नासिकाविहीन होकर सूँघते हैं। पैर न होनेपर भी दूरतक चले जाते हैं, नेत्रहीन होकर सब कुछ देखते हैं और जिह्वारहित होकर भी समस्त रसोंके ज्ञाता हैं। भला, आपको सम्यक् रूपसे कौन जान सकता है! इसलिये मैं आपकी शरणमें जाता हूँ। ईश! आपके रहस्यको न तो साक्षात् वेद ही जानता है न विष्णु, न अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा न योगीन्द्र और न इन्द्र आदि प्रधान देवताओंको ही इसका पता है; परंतु आपका भक्त उसे जान लेता है, अतः मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। ईश! न तो आपका कोई गोत्र है न जन्म है, न नाम है न रूप है, न शील है और न देश है; ऐसा होनेपर भी आप त्रिलोकीके अधीश्वर तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, इसलिये मैं आपका भजन करता हूँ। स्मरारे! आप सर्व-स्वरूप हैं, यह सारा विश्वप्रपञ्च आपसे ही प्रकट हुआ है। आप गौरीके प्राणनाथ, दिगम्बर और परम शान्त हैं। बाल, युवा और वृद्धरूपमें आप ही वर्तमान हैं। ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसमें आप व्याप्त न हों; अतः मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ।*

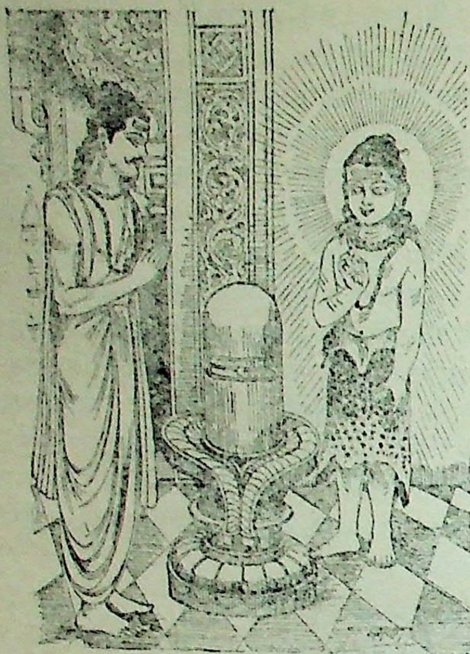
नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों स्तुति करके विप्रवर विश्वानर हाथ जोड़कर भूमिपर गिरना ही चाहते थे, तबतक सम्पूर्ण वृद्धोंके भी वृद्ध बालरूपधारी शिव परम हर्षित होकर उन भूदेवसे बोले।

---

* विश्वानर उवाच—

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥
कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः।
यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्वत्तद्वद्विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रस्यघ्राणस्त्वं व्यङ्घ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥
नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥
नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद् भजे त्वाम्॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्त्वं यत् किं नास्यतस्त्वां नतोऽहम्॥

(शि० पु० शतरुद्रसंहिता १३। ४२—४९)



बालरूपी शिवने कहा—मुनिश्रेष्ठ विश्वानर ! तुमने आज मुझे संतुष्ट कर दिया है। भूदेव ! मेरा मन परम प्रसन्न हो गया है, अतः अब तुम उत्तम वर माँग लो । यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वानर कृतकृत्य हो गये और उनका मन हर्षमग्न हो गया । तब वे उठकर बालरूपधारी शंकरजीसे बोले ।

विश्वानरने कहा—प्रभावशाली महेश्वर ! आप तो सर्वान्तर्यामी, ऐश्वर्यसम्पन्न, शर्व तथा भक्तोंको सब कुछ दे डालनेवाले हैं । भला, आप सर्वज्ञसे कौन-सी बात छिपी है । फिर भी आप मुझे दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके प्रति आकृष्ट होनेके लिये क्यों कह रहे हैं । महेशान ! ऐसा जानकर आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! पवित्र व्रतमें तत्पर विश्वानरके उस वचनको सुनकर पावन शिशुरूपधारी महादेव हँसकर शुचि (विश्वानर) से बोले—'शुचे ! तुमने अपने हृदयमें अपनी पत्नी शुचिष्मतीके प्रति जो अभिलाषा कर रक्खी है, वह निस्संदेह थोड़े ही समयमें पूर्ण हो जायगी । महामते ! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा । मेरा नाम गृहपति होगा । मैं परम पावन तथा समस्त देवताओंके लिये प्रिय होऊँगा । जो मनुष्य एक वर्षतक शिवजीके संनिकट तुम्हारे द्वारा कथित इस पुण्यमय अभिलाषाष्टक स्तोत्रका तीनों काल पाठ करेगा, उसकी सारी अभिलाषाएँ यह पूर्ण कर देगा । इस स्तोत्रका पाठ पुत्र, पौत्र और धनका प्रदाता, सर्वथा शान्तिकारक, सारी विपत्तियोंका विनाशक, स्वर्ग और मोक्षरूप सम्पत्तिका कर्ता तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । निस्संदेह यह अकेला ही समस्त स्तोत्रोंके समान है ।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर बालरूपधारी शम्भु, जो सत्पुरुषोंकी गति हैं, अन्तर्धान हो गये । तब विप्रवर विश्वानर भी प्रसन्न मनसे अपने घरको लौट गये । (अध्याय ८—१३)

शिवजीका शुचिष्मतीके गर्भसे प्राकट्य, ब्रह्माद्वारा बालकका संस्कार करके 'गृहपति' नाम रखा जाना, नारदजीद्वारा उसका भविष्य-कथन, पिताकी आज्ञासे गृहपतिका काशीमें जाकर तप करना, इन्द्रका वर देनेके लिये प्रकट होना, गृहपतिका उन्हें ठुकराना, शिवजीका प्रकट होकर उन्हें वरदान देकर दिक्पालपद प्रदान करना तथा अग्नीश्वर लिङ्ग और अग्निका माहात्म्य

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! घर आकर उस ब्राह्मणने बड़े हर्षके साथ अपनी पत्नीसे वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर विप्रपत्नी शुचिष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करने लगी । तदनन्तर समय आनेपर ब्राह्मणद्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान कर्म सम्पन्न किये जानेपर वह नारी गर्भवती हुई । फिर उन विद्वान् मुनिने गर्भके स्पन्दन करनेसे पूर्व ही पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गृह्यसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सम्यक्‌रूपसे पुंसवन-संस्कार किया । तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर कृपालु विश्वानरने सुखपूर्वक प्रसव होनेके अभिप्रायसे गर्भके रूपकी समृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार सम्पन्न कराया । तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर जब बृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ ग्रहोंका योग आया, तब शुभ लग्नमें भगवान् शंकर, जिनके मुखकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है तथा जो अरिष्टरूपी दीपकको बुझानेवाले, समस्त अरिष्टोंके विनाशक और भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंके निवासियोंको सब तरहसे सुख देनेवाले हैं, उस शुचिष्मतीके गर्भसे पुत्ररूपमें प्रकट हुए । उस समय गन्धको वहन करनेवाले वायुके वाहन मेघ दिशारूपी वधुओंके मुख-

पर वज्रसे बन गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे घनघोर बादल उत्तम गन्धवाले पुष्पसमूहोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। चारों ओर दिशाएँ निर्मल हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ-साथ सरिताओं-का जल निर्मल हो गया। प्राणियोंकी वाणी सर्वथा कल्याणी और प्रियभाषिणी हो उठी। सम्पूर्ण प्रसिद्ध ऋषि-मुनि तथा देवता, यक्ष, किंनर, विद्याधर आदि मङ्गल द्रव्य ले-लेकर पधारे। स्वयं ब्रह्माजीने नम्रतापूर्वक उसका जातकर्म-संस्कार किया और उस बालकके रूप तथा वेदका विचार करके यह निश्चय किया कि इसका नाम गृहपति होना चाहिये। फिर ग्यारहवें दिन उन्होंने नामकर्मकी विधिके अनुसार वेदमन्त्रों-का उच्चारण करते हुए उसका 'गृहपति' ऐसा नाम-करण किया। तत्पश्चात् सबके पितामह ब्रह्मा चारों वेदोंमें कथित आशीर्वादात्मक मन्त्रोंद्वारा उसका अभिनन्दन करके हंसपर आरूढ़ हो अपने लोकको चले गये। तदुपरान्त शंकर भी लौकिकी गतिका आश्रय ले उस बालककी उचित रक्षाका विधान करके अपने वाहनपर चढ़कर अपने धामको पधार गये। इसी प्रकार श्रीहरिने भी अपने लोककी राह ली। इस प्रकार सभी देवता, ऋषि-मुनि आदि भी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको पधार गये। तदनन्तर ब्राह्मण देवताने यथासमय सब संस्कार करते हुए बालकको वेदाध्ययन कराया। तत्पश्चात् नवाँ वर्ष आनेपर माता-पिताकी सेवामें तत्पर रहनेवाले विश्वानर-नन्दन गृहपतिको देखनेके लिये वहाँ नारदजी पधारे। बालकने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। फिर नारदजीने बालककी हस्तरेखा, जिह्वा, तालु आदि देखकर कहा—'मुनि विश्वानर! मैं तुम्हारे पुत्रके लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, तुम आदरपूर्वक उसे श्रवण करो। तुम्हारा यह पुत्र परम भाग्यवान् है, इसके सम्पूर्ण अङ्गोंके लक्षण शुभ हैं। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभ-लक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान सम्पूर्ण निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंद्वारा इस शिशुकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। मुझे शङ्का है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर बिजली अथवा अग्निद्वारा विघ्न आयेगा।' यों कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको चले गये।

सनत्कुमारजी! नारदजीका कथन सुनकर पत्नीसहित विश्वानरने समझ लिया कि यह तो बड़ा भयंकर वज्रपात हुआ। फिर वे 'हाय! मैं मारा गया' यों कहकर छाती पीटने लगे और पुत्रशोकसे व्याकुल होकर गहरी मूर्च्छाके वशीभूत हो गये। उधर शुचिष्मती भी दुःखसे पीड़ित हो अत्यन्त ऊँचे स्वरसे हाहाकार करती हुई ढाढ़ मारकर रो पड़ी, उसकी सारी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। तब पत्नी-के आर्तनादको सुनकर विश्वानर भी मूर्च्छा त्यागकर उठ बैठे और 'ऐं! यह क्या है? क्या हुआ?' यों उच्चस्वरसे बोलते हुए कहने लगे—'गृहपति! जो मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण, मेरी सारी इन्द्रियोंका स्वामी तथा मेरे अन्तरात्मामें निवास करनेवाला है, कहाँ है?' तब माता-पिताको इस प्रकार अत्यन्त शोकग्रस्त देखकर शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ वह बालक गृहपति मुसकराकर बोला।

गृहपतिने कहा—माताजी तथा पिताजी! बताइये, इस समय आपलोगोंके रोनेका क्या कारण है? किसलिये आपलोग फूट-फूटकर रो रहे हैं? कहाँसे ऐसा भय आपलोगोंको प्राप्त हुआ है? यदि मैं आपकी चरणरेणुओंसे अपने शरीरकी रक्षा कर लूँ तो मुझपर काल भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकता; फिर इस तुच्छ, चञ्चल एवं अल्प बलवाली मृत्युकी तो बात ही क्या है। माता-पिताजी! अब आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनिये—'यदि मैं आपलोगोंका पुत्र हूँ तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मृत्यु भी भयभीत हो जायगी। मैं सत्पुरुषोंको सब कुछ दे डालनेवाले सर्वज्ञ मृत्युंजयकी भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा—यह मैं आप लोगोंसे बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तब वे द्विजदम्पति, जो शोकसे संतप्त हो रहे थे, गृहपतिके ऐसे वचन, जो अकाल-में हुई अमृतकी घनघोर वृष्टिके समान थे, सुनकर संतापरहित हो कहने लगे—'बेटा! तू उन शिवकी शरणमें जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता, मेघवाहन, अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले और विश्वकी रक्षामणि हैं।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! माता-पिताकी आज्ञा पाकर गृहपतिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन दे वे वहाँसे चल पड़े और उस काशीपुरीमें जा पहुँचे, जो ब्रह्मा और नारायण आदि देवोंके लिये (भी) दुष्प्राप्य, महाप्रलयके संतापका विनाश करनेवाली और विश्वनाथद्वारा सुरक्षित थी तथा जो

कण्ठप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गङ्गासे सुशोभित तथा विचित्र गुणशालिनी हरपत्नी गिरिजासे विभूषित थी । वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकर्णिकापर गये । वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान करके भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया । फिर बुद्धिमान् गृहपतिने परमानन्दमग्न हो त्रिलोकीके प्राणियोंकी प्राणरक्षा करनेवाले शिवको प्रणाम किया । उस समय उनकी अञ्जलि बँधी थी और सिर झुका हुआ था । वे बारंबार उस शिवलिङ्गकी ओर देखकर हृदयमें हर्षित हो रहे थे (और यह सोच रहे थे कि) यह लिङ्ग निस्संदेह स्पष्टरूपसे आनन्दकन्द ही है । (वे कहने लगे—) अहो ! आज मुझे जो सर्वव्यापी श्रीमान् विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ, इसलिये इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर धन्यवादका पात्र दूसरा कोई नहीं है । जान पड़ता है, मेरा भाग्योदय होनेसे ही उन दिनोंमें महर्षि नारदने आकर वैसी बात कही थी, जिसके कारण आज मैं कृतकृत्य हो रहा हूँ ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार आनन्दामृत-रूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितकारी शिवलिङ्गकी स्थापना की और पवित्र गङ्गाजलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोंद्वारा शिवजीको स्नान कराकर ऐसे घोर नियमोंको स्वीकार किया, जो अकृतात्मा पुरुषोंके लिये दुष्कर थे । नारदजी ! इस प्रकार एकमात्र शिवमें मन लगाकर तपस्या करते हुए महात्मा गृहपतिकी आयुका एक वर्ष व्यतीत हो गया । तब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आनेपर नारदजीके कहे हुए उस वचनको सत्य-सा करते हुए वज्रधारी इन्द्र उनके निकट पधारे और बोले—'विप्रवर ! मैं इन्द्र हूँ और तुम्हारे शुभ व्रतसे प्रसन्न होकर आया हूँ । अब तुम वर माँगो, मैं तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण कर दूँगा ।'

तब गृहपतिने कहा—मघवन् ! मैं जानता हूँ, आप वज्रधारी इन्द्र हैं; परंतु वृत्रशत्रो ! मैं आपसे वर याचना करना नहीं चाहता, मेरे वरदायक तो शंकरजी ही होंगे ।

इन्द्र बोले—शिशो ! शंकर मुझसे भिन्न थोड़े ही हैं । अरे ! मैं देवराज हूँ, अतः तुम अपनी मूर्खताका परित्याग करके वर माँग लो, देर मत करो ।

गृहपतिने कहा—पाकशासन ! आप अहल्याका सतीत्व नष्ट करनेवाले दुराचारी पर्वत-शत्रु ही हैं न । आप जाइये; क्योंकि मैं पशुपतिके अतिरिक्त किसी अन्य देवके सामने स्पष्ट रूपसे प्रार्थना करना नहीं चाहता ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! गृहपतिके उस वचनको सुनकर इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । वे अपने भयंकर वज्रको उठाकर उस बालकको डराने-धमकाने लगे । तब बिजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त उस वज्रको देखकर बालक गृहपतिको नारदजीके वाक्य स्मरण हो आये । फिर तो वे भय-से व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये । तदनन्तर अज्ञानान्धकार-को दूर भगानेवाले गौरीपति शम्भु वहाँ प्रकट हो गये और अपने हस्तस्पर्शसे उसे जीवनदान देते हुए-से बोले—'वत्स ! उठ, उठ । तेरा कल्याण हो ।' तब रात्रिके समय मुँदे हुए कमलकी तरह उसके नेत्रकमल खुल गये और उसने उठकर अपने सामने सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शम्भुको उपस्थित देखा । उनके ललाटमें तीसरा नेत्र चमक रहा था, गलेमें नीला चिह्न था, ध्वजापर वृषभका स्वरूप दीख रहा था, वामाङ्गमें गिरिजादेवी विराजमान थीं । मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित था । बड़ी-बड़ी जटाओंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी । वे अपने आयुध त्रिशूल और आजगव धनुष धारण किये हुए थे । कपूरके समान गौरवर्णका शरीर अपनी प्रभा बिखेर रहा था, वे गजचर्म लपेटे हुए थे । उन्हें देखकर शास्त्रकथित लक्षणों तथा गुरु-वचनोंसे जब गृहपतिने समझ लिया कि ये महादेव ही हैं, तब हर्षके मारे उनके नेत्रोंमें आँसू छलक आये, गला रुँध गया और शरीर रोमाञ्चित हो उठा । वे क्षणभरतक अपने-आपको भूलकर चित्रकूट एवं त्रिपुत्रक पर्वतकी भाँति निश्चल खड़े रह गये । जब वे स्तवन करने, नमस्कार करने अथवा कुछ भी कहनेमें समर्थ न हो सके, तब शिवजी मुसकराकर बोले ।

ईश्वरने कहा—गृहपते ! जान पड़ता है, तुम वज्रधारी इन्द्रसे डर गये हो । वत्स ! तुम भयभीत मत होओ; क्योंकि मेरे भक्तपर इन्द्र और वज्रकी कौन कहे, यमराज भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकते । यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा ली है और मैंने ही तुम्हें इन्द्ररूप धारण करके डराया है । भद्र ! अब मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके भागी



होओगे। तुम समस्त देवताओंके लिये वरदाता बनोगे। अग्ने! तुम समस्त प्राणियोंके अंदर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हें दिक्पालरूपसे धर्मराज और इन्द्रके मध्यमें राज्यकी प्राप्ति होगी। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग तुम्हारे नामपर 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा। यह सब प्रकारके तेजोंकी वृद्धि करनेवाला होगा। जो लोग इस अग्नीश्वर लिङ्गके भक्त होंगे; उन्हें बिजली और अग्निका भय नहीं रह जायगा; अग्निमान्द्य नामक रोग नहीं होगा और न कभी उनकी अकालमृत्यु ही होगी। काशीपुरीमें स्थित सम्पूर्ण समृद्धियोंके प्रदाता अग्नीश्वरकी भलीभाँति अर्चना करनेवाला भक्त यदि प्रारब्धवश किसी अन्य स्थानमें भी मृत्युको प्राप्त होगा तो भी वह वह्निलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर शिवजीने गृहपतिके बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके सामने उस अग्निका दिक्पति पदपर अभिषेक कर दिया और स्वयं उसी लिङ्गमें समा गये। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे परमात्मा शंकरके गृहपति नामक अग्न्यवतारका, जो दुष्टोंको पीड़ित करनेवाला है, वर्णन कर दिया। जो सुदृढ़ पराक्रमी जितेन्द्रिय पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न स्त्रियाँ अग्निप्रवेश कर जाती हैं, वे सब-के-सब अग्निसरीखे तेजस्वी होते हैं। इसी प्रकार जो ब्राह्मण अग्निहोत्रपरायण, ब्रह्मचारी तथा पञ्चाग्निका सेवन करनेवाले हैं, वे अग्निके समान वर्चस्वी होकर अग्निलोकमें विचरते हैं। जो शीतकालमें शीत-निवारणके निमित्त बोझ-की-बोझ लकड़ियाँ दान करता है अथवा जो अग्निकी इष्टि करता है, वह अग्निके संनिकट निवास करता है। जो श्रद्धापूर्वक किसी अनाथ मृतकका अग्निसंस्कार कर देता है, अथवा स्वयं शक्ति न होनेपर दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें प्रशंसित होता है। द्विजातियोंके लिये परम कल्याणकारक एक अग्नि ही है। वही निश्चितरूपसे गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ अर्थात् सब कुछ है। जितनी अपावन वस्तुएँ हैं, वे सब अग्निका संसर्ग होनेसे उसी क्षण पावन हो जाती हैं; इसीलिये अग्निको पावक कहा जाता है। यह शम्भुकी प्रत्यक्ष तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति है, जो सृष्टि रचनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली है। भला, इसके बिना कौन-सी वस्तु दृष्टिगोचर हो सकती है। इनके द्वारा भक्षण किये हुए धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी और खाँड़ आदिका देवगण स्वर्गमें सेवन करते हैं। (अध्याय १४-१५)

शिवजीके महाकाल आदि दस अवतारोंका तथा ग्यारह रुद्र-अवतारोंका वर्णन

तदनन्तर यक्षेश्वरावतारकी बात कहकर नन्दीश्वरने कहा—मुने! अब शंकरजीके उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महाकाल आदि दस अवतारोंका वर्णन भक्तिपूर्वक श्रवण करो। उनमें पहला अवतार 'महाकाल' नामसे प्रसिद्ध है, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। उस अवतारकी शक्ति भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाली महाकाली हैं। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ, जिसकी शक्ति तारादेवी हुईं। वे दोनों भुक्ति-मुक्तिके प्रदाता तथा अपने सेवकोंके लिये सुखदायक हैं। 'बाल भुवनेश' नामसे तीसरा अवतार हुआ। उसमें बाला भुवनेशी शिवा शक्ति हुईं, जो सज्जनोंको सुख देनेवाली हैं। चौथा भक्तोंके लिये सुखद तथा भोग-मोक्षप्रदायक 'षोडश श्रीविद्येश' नामक अवतार हुआ और षोडशी-श्रीविद्या शिवा उसकी शक्ति हुईं। पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो सर्वदा भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस अवतारकी शक्तिका नाम है भैरवी गिरिजा; जो अपने उपासकोंकी अभीष्टदायिनी हैं। छठा शिवावतार 'छिन्नमस्तक' नामसे कहा जाता है और भक्तकामप्रदा गिरिजाका नाम

छिन्नमस्ता है। सम्पूर्ण मनोरथोंके दाता शम्भुका सातवाँ अवतार 'धूमवान्' नामसे विख्यात हुआ। उस अवतारमें श्रेष्ठ उपासकोंकी लालसा पूर्ण करनेवाली शिवा धूमावती हुई। शिवजीका आठवाँ सुखदायक अवतार 'बगलामुख' है। उसकी शक्ति महान् आनन्ददायिनी बगलामुखी नामसे विख्यात हुई। नवाँ शिवावतार 'मातङ्ग' नामसे कहा जाता है। उस समय सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली शर्वाणी मातङ्गी हुई। शम्भुके भुक्ति-मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाले दसवें अवतारका नाम 'कमल' है, जिसमें अपने भक्तोंका सर्वथा पालन करनेवाली गिरिजा कमला कहलायीं। ये ही शिवजीके दस अवतार हैं। ये सब-के-सब भक्तों तथा सत्पुरुषोंके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षके प्रदाता हैं। जो लोग महात्मा शंकरके इन दसों अवतारोंकी निर्विकारभावसे सेवा करते हैं, उन्हें ये नित्य नाना प्रकारके सुख देते रहते हैं। मुने! इस प्रकार मैंने दसों अवतारोंका माहात्म्य वर्णन कर दिया। तन्त्रशास्त्रमें तो यह सर्वकामप्रद बतलाया गया है। मुने! इन शक्तियों-की भी अद्भुत महिमा है। तन्त्र आदि शास्त्रोंमें इस महिमा-का सर्वकामप्रदरूपसे वर्णन किया गया है। ये नित्य दुष्टोंको दण्ड देनेवाली और ब्रह्मतेजकी विशेष रूपसे वृद्धि करनेवाली हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने तुमसे महेश्वरके महाकाल आदि दस शुभ अवतारोंका शक्तिसहित वर्णन कर दिया। जो मनुष्य समस्त शिव-पर्वोंके अवसरपर इस परम पावन कथाका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह शिवजीका परम प्यारा हो जाता है। (इस आख्यानका पाठ करनेसे) ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है, क्षत्रिय विजय-लाभ करता है, वैश्य धनपति हो जाता है और शूद्रको सुख-की प्राप्ति होती है। स्वधर्मपरायण शिवभक्तोंको यह चरित सुननेसे सुख प्राप्त होता है और उनकी शिवभक्ति विशेषरूपसे बढ़ जाती है।

मुने! अब मैं शंकरजीके एकादश श्रेष्ठ अवतारोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। उन्हें श्रवण करनेसे असत्यादिजनित बाधा पीड़ा नहीं पहुँचा सकती। पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित हो गये। तब वे भयभीत हो अपनी पुरी अमरावतीको छोड़कर भाग खड़े हुए। यों दैत्योंद्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए वे सभी देवता कश्यपजीके पास गये। वहाँ उन्होंने परम व्याकुलतापूर्वक हाथ जोड़ एवं मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें अभिवादन किया और उनका भलीभाँति स्तवन करके आदरपूर्वक अपने आनेका कारण प्रकट किया तथा दैत्योंद्वारा पराजित होनेसे उत्पन्न हुए अपने सारे दुःखोंको कह सुनाया। तात! तब उनके पिता कश्यपजी देवताओंकी उस कष्ट-कहानीको सुनकर अधिक दुखी नहीं हुए; क्योंकि उनकी बुद्धि शिवजीमें आसक्त थी। मुने! उन शान्तबुद्धि मुनिने धैर्य धारण करके देवताओं-को आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक विश्वनाथपुरी काशीको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीके जलमें स्नान करके अपना नित्य-नियम पूरा किया और फिर आदर-पूर्वक उमासहित सर्वेश्वर भगवान् विश्वनाथकी भलीभाँति अर्चना की। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे देवताओंके हितार्थ परम प्रसन्नतापूर्वक घोर तप करने लगे। मुने! शिवजीके चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले धैर्यशाली मुनिवर कश्यपको जब यों तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया, तब सत्पुरुषोंके गति-स्वरूप दीनबन्धु भगवान् शंकर अपने चरणोंमें तल्लीन मनवाले कश्यप ऋषिको वर देनेके लिये वहाँ प्रकट हुए। भक्तवत्सल महेश्वर परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त मुनिवर कश्यपसे बोले—'वर माँगो।' उन महेश्वरको देखते ही प्रसन्न बुद्धिवाले देवताओंके पिता कश्यपजी हर्षमग्न हो गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके स्तुति करते हुए यों बोले—'महेश्वर! मैं सर्वथा आपका शरणागत हूँ। स्वामिन्! देवताओंके दुःखका विनाश करके मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। देवेश! मैं पुत्रोंके दुःखसे विशेष दुखी हूँ, अतः ईश! मुझे सुखी कीजिये; क्योंकि आप देवताओंके सहायक हैं। नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर उनसे 'तथेति—ऐसा ही होगा' यों कहकर उनके सामने ही वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कश्यप भी महान् आनन्दके साथ तुरंत ही अपने स्थान-को लौट गये। वहाँ उन्होंने वह सारा वृत्तान्त आदरपूर्वक देवताओंसे कह सुनाया। तदनन्तर भगवान् शंकर अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके पेटसे ग्यारह रूप धारण करके प्रकट हुए। उस समय महान् उत्सव मनाया गया। सारा जगत् शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता हर्ष-विभोर

हो गये। उनके नाम रक्खे गये—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव। ये ग्यारहों रुद्र सुरभीके पुत्र कहलाते हैं। ये सुखके आवासस्थान हैं तथा देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये शिवरूपसे उत्पन्न हुए। ये कश्यपनन्दन वीरवर रुद्र महान् बल-पराक्रमसम्पन्न थे; इन्होंने संग्राममें देवताओंकी सहायता करके दैत्योंका संहार कर डाला। इन्हीं रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि देवगण दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये। उनका मन स्वस्थ हो गया और वे अपना-अपना राज्य-कार्य सँभालने लगे। अब भी शिव-स्वरूपधारी वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान रहते हैं। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे शंकरजीके ग्यारह रुद्र-अवतारोंका वर्णन कर दिया। ये सभी समस्त लोकोंके लिये सुखदायक हैं। यह निर्मल आख्यान सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, धन, यश और आयुका प्रदाता तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। (अध्याय १६–१८)

शिवजीके 'दुर्वासावतार' तथा 'हनुमदवतार'का वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महामुने! अब तुम शम्भुके एक दूसरे चरितको, जिसमें शंकरजी धर्मके लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक श्रवण करो। अनसूयाके पति ब्रह्मवेत्ता तपस्वी अत्रिने ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पत्नीसहित ऋक्षकुल पर्वतपर जाकर पुत्रकामनासे घोर तप किया। उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों उनके आश्रमपर गये। उन्होंने कहा कि 'हम तीनों संसारके ईश्वर हैं। हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे, जो त्रिलोकीमें विख्यात तथा माता-पिताका यश बढ़ानेवाले होंगे।' यों कहकर वे चले गये। ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा हुए, जो देवताओंके समुद्रमें डाले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे। विष्णुके अंशसे श्रेष्ठ संन्यास-पद्धतिको प्रचलित करनेवाले 'दत्त' उत्पन्न हुए और रुद्रके अंशसे मुनिवर दुर्वासाने जन्म लिया।

इन दुर्वासाने महाराज अम्बरीषकी परीक्षा की थी। जब सुदर्शनचक्रने इनका पीछा किया, तब शिवजीके आदेशसे अम्बरीषके द्वारा प्रार्थना करनेपर चक्र शान्त हुआ। इन्होंने भगवान् रामकी परीक्षा की। कालने मुनिका वेष धारण करके श्रीरामके साथ यह शर्त की थी कि 'मेरे साथ बात करते समय श्रीरामके पास कोई न आये; जो आयेगा उसका निर्वासन कर दिया जायगा।' दुर्वासाजीने हठ करके लक्ष्मणको भेजा, तब श्रीरामने तुरंत लक्ष्मणका त्याग कर दिया। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी परीक्षा की और उनको श्रीरुक्मिणीसहित रथमें जोता। इस प्रकार दुर्वासा मुनिने अनेक विचित्र चरित्र किये।

मुने! अब इसके बाद तुम हनुमान्‌जीका चरित्र श्रवण करो। हनुमद्रूपसे शिवजीने बड़ी उत्तम लीलाएँ की हैं। विप्रवर! इसी रूपसे महेश्वरने भगवान् रामका परम हित किया था। वह सारा चरित्र सब प्रकारके सुखोंका दाता है, उसे तुम प्रेमपूर्वक सुनो। एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनी-रूपका दर्शन प्राप्त हुआ, तब वे कामदेवके बाणोंसे आहत हुएकी तरह क्षुब्ध हो उठे। उस समय उन परमेश्वरने राम-कार्यकी सिद्धिके लिये अपना वीर्यपात किया। तब सप्तर्षियोंने उस वीर्यको पत्रपुटकमें स्थापित कर लिया, क्योंकि शिवजीने ही रामकार्यके लिये आदरपूर्वक उनके मनमें प्रेरणा की थी। तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस वीर्यको रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकन्या अञ्जनीमें कानके रास्ते स्थापित कर दिया। तब समय आनेपर उस गर्भसे शम्भु महान् बल-पराक्रमसम्पन्न वानर-शरीर धारण करके उत्पन्न हुए, उनका नाम हनूमान् रक्खा गया। महाबली कपीश्वर हनूमान् जब शिशु ही थे, उसी समय उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा-सा फल समझकर तुरंत ही निगल गये। जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होंने उसे महाबली सूर्य जानकर उगल दिया। तब देवर्षियोंने उन्हें शिवका अवतार माना और बहुत-सा वरदान दिया। तदनन्तर हनूमान् अत्यन्त हर्षित होकर अपनी माताके पास गये और उन्होंने यह सारा वृत्तान्त आदरपूर्वक कह सुनाया। फिर माताकी आज्ञासे धीर-वीर कपि हनूमान्‌ने नित्य सूर्यके निकट जाकर उनसे अनायास ही सारी विद्याएँ सीख



ली। तदनन्तर रुद्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनूमान् सूर्यकी आज्ञासे सूर्यांशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास चले गये। इसके लिये उन्हें अपनी मातासे भी अनुज्ञा मिल चुकी थी।

तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित्र संक्षेपसे वर्णन करके कहा—'मुने! इस प्रकार कपिश्रेष्ठ हनूमान्‌ने सब तरहसे श्रीरामका कार्य पूरा किया, नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं, असुरोंका मान-मर्दन किया, भूतलपर रामभक्तिकी स्थापना की और स्वयं भक्ताग्रगण्य होकर सीता-रामको सुख प्रदान किया। वे रुद्रावतार ऐश्वर्यशाली हनूमान् लक्ष्मणके प्राणदाता, सम्पूर्ण देवताओंके गर्वहारी और भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं। महावीर हनूमान् सदा रामकार्यमें तत्पर रहनेवाले, लोकमें 'रामदूत' नामसे विख्यात, दैत्योंके संहारक और भक्तवत्सल हैं। तात! इस प्रकार मैंने हनूमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित—जो धन, कीर्ति और आयुका वर्धक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंका दाता है—तुमसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य इस चरितको भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा समाहित चित्तसे दूसरेको सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १९-२०)

शिवजीके पिप्पलाद-अवतारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दधीचि मुनिसे अस्थि-याचना, दधीचिका शरीरत्याग, वज्र-निर्माण तथा उसके द्वारा वृत्रासुरका वध, सुवर्चाका देवताओंको शाप, पिप्पलादका जन्म और उनका विस्तृत वृत्तान्त

तदनन्तर महेशावतार तथा वृषेशावतारका चरित सुनाकर नन्दीश्वरने कहा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! अब तुम अत्यन्त आह्लादपूर्वक महेश्वरके 'पिप्पलाद' नामक परमोत्कृष्ट अवतारका वर्णन श्रवण करो। यह उत्तम आख्यान भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। मुनीश्वर! एक समय दैत्योंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचिके आश्रममें अपने-अपने अस्त्रोंको फेंककर तत्काल ही हार मान ली। तत्पश्चात् मारे जाते हुए वे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता तथा देवर्षि शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और वहाँ (ब्रह्माजीसे) उन्होंने अपना वह दुखड़ा कह सुनाया। देवताओंका वह कथन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने सारा रहस्य यथार्थरूपसे प्रकट कर दिया कि 'यह सब त्वष्टाकी करतूत है' त्वष्टाने ही तुमलोगोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महातेजस्वी वृत्रासुरको उत्पन्न किया है। यह दैत्य महान् आत्मबलसे सम्पन्न तथा समस्त दैत्योंका अधिपति है। अतः अब ऐसा प्रयत्न करो जिससे इसका वध हो सके। बुद्धिमान् देवराज! मैं धर्मके कारण इस विषयमें एक उपाय बतलाता हूँ, सुनो। जो दधीचि नामवाले महामुनि हैं, वे तपस्वी और जितेन्द्रिय हैं। उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी समाराधना करके वज्र-सरीखी अस्थियाँ हो जानेका वर प्राप्त किया है। अतः तुमलोग उनसे उनकी हड्डियोंके लिये याचना करो। वे अवश्य दे देंगे। फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके तुम निश्चय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! ब्रह्माका यह वचन सुनकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ ले तुरंत ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये। वहाँ इन्द्रने सुवर्चासहित दधीचि मुनिका दर्शन किया और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया; फिर देवगुरु बृहस्पति तथा अन्य देवताओंने भी नम्रतापूर्वक उन्हें सिर झुकाया। दधीचि

मुनि विद्वानोंमें श्रेष्ठ तो थे ही, वे तुरंत ही उसके अभिप्रायको ताड़ गये। तब उन्होंने अपनी पत्नी सुवर्चाको अपने आश्रमसे अन्यत्र भेज दिया। तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्र, जो स्वार्थ-साधनमें बड़े दक्ष हैं, अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मुनिवरसे बोले।

इन्द्रने कहा—'मुने! आप महान् शिवभक्त, दाता तथा शरणागतरक्षक हैं; इसीलिये हम सभी देवता तथा देवर्षि त्वष्टाद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं। विप्रवर! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि आपकी हड्डीसे वज्रका निर्माण करके मैं उस देवद्रोहीका वध करूँगा।' इन्द्रके यों कहनेपर परोपकारपरायण दधीचि मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया। उनके समस्त बन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः वे तुरंत ही ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय वहाँ पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उस शरीरको चटवाया और उन हड्डियोंसे अस्त्र निर्माण करनेके लिये विश्वकर्माको आदेश दिया। तब इन्द्रकी आज्ञा पाकर विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे सुदृढ़ हुई मुनिकी वज्रमयी हड्डियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंकी कल्पना की। उनके रीढ़की हड्डीसे वज्र और ब्रह्मशिर नामक बाण बनाया तथा अन्य अस्थियोंसे अन्यान्य बहुत-से अस्त्रोंका निर्माण किया। तब शिवजीके तेजसे उत्कर्षको प्राप्त हुए इन्द्रने उस वज्रको लेकर क्रोधपूर्वक वृत्रासुरपर आक्रमण किया, ठीक उसी तरह जैसे रुद्रने यमराजपर धावा किया था। फिर तो कवच आदिसे भलीभाँति सुरक्षित हुए इन्द्रने तुरंत ही पराक्रम प्रकट करके उस वज्रद्वारा वृत्रासुरके पर्वतशिखर-सरीखे सिरको काट गिराया। तात! उस समय स्वर्गवासियोंने महान् विजयोत्सव मनाया, इन्द्रपर पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर महान् आत्मबलसे सम्पन्न दधीचि मुनिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पतिके आज्ञानुसार अपने आश्रमके भीतर गयी। वहाँ देवताओंके लिये पतिको मरा हुआ जानकर वह देवताओंको शाप देते हुए बोली।

सुवर्चाने कहा—'अहो! इन्द्रसहित ये सभी देवता बड़े दुष्ट हैं और अपना कार्य सिद्ध करनेमें निपुण, मूर्ख तथा लोभी हैं; इसलिये ये सब-के-सब आजसे मेरे शापसे पशु हो जायँ।' इस प्रकार उस तपस्वी मुनिपत्नी सुवर्चाने उन इन्द्र आदि समस्त देवताओंको शाप दे दिया। तत्पश्चात् उस पतिव्रताने पतिलोकमें जानेका विचार किया। फिर तो मनस्विनी सुवर्चाने परम पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की। उसी समय शंकरजीकी प्रेरणासे सुखदायिनी आकाशवाणी हुई, वह उस मुनिपत्नी सुवर्चाको आश्वासन देती हुई बोली।

आकाशवाणीने कहा—प्राज्ञे! ऐसा साहस मत करो, मेरी उत्तम बात सुनो। देवि! तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है, तुम उसे यत्नपूर्वक उत्पन्न करो। पीछे तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करना; क्योंकि शास्त्रका ऐसा आदेश है कि गर्भवतीको अपना शरीर नहीं जलाना चाहिये अर्थात् सती नहीं होना चाहिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुनीश्वर! यों कहकर वह आकाशवाणी उपराम हो गयी। उसे सुनकर वह मुनिपत्नी क्षणभरके लिये विस्मयमें पड़ गयी। परंतु उस सती-साध्वी सुवर्चाको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी; अतः उसने बैठकर पत्थरसे अपने उदरको विदीर्ण कर डाला। तब उसके पेटसे मुनिवर दधीचिका वह गर्भ बाहर निकल आया। उसका शरीर परम दिव्य और प्रकाशमान था तथा वह अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रहा था। तात! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह गर्भ अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था। मुनिप्रिया सुवर्चाने दिव्यस्वरूपधारी अपने उस पुत्रको देखकर मन-ही-मन समझ लिया कि यह रुद्रका अवतार है। फिर तो वह महासाध्वी परमानन्दमग्न हो गयी और शीघ्र ही उसे नमस्कार करके उसकी स्तुति करने लगी। मुनीश्वर! उसने उस स्वरूपको अपने हृदयमें धारण कर लिया। तदनन्तर पतिलोककी कामनावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा मुसकराकर अपने उस पुत्रसे परम स्नेहपूर्वक बोली।

सुवर्चाने कहा—तात परमेशान! तुम इस अश्वत्थ वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता होओ और अब मुझे प्रेमपूर्वक पतिलोकमें जानेके लिये आज्ञा दो। वहाँ पतिके साथ रहती हुई मैं रुद्ररूपधारी तुम्हारा ध्यान करती रहूँगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! साध्वी सुवर्चाने अपने पुत्रसे यों कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया। मुनिवर! इस प्रकार दधीचिपत्नी सुवर्चा शिवलोकमें पहुँचकर अपने पतिसे जा मिली और आनन्दपूर्वक शंकरजीकी सेवा करने लगी। तात! इतनेमें ही हर्षमें भरे हुए इन्द्रसहित समस्त देवता मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएकी तरह शीघ्रतासे

वहाँ आ पहुँचे। तब प्रसन्न बुद्धिवाले ब्रह्माने उस बालकका नाम पिप्पलाद रक्खा। फिर सभी देवता महोत्सव मनाकर अपने-अपने धामको चले गये। तदनन्तर महान् ऐश्वर्यशाली रुद्रावतार पिप्पलाद उसी अश्वत्थके नीचे लोकोंकी हितकामनासे चिरकालिक तपमें प्रवृत्त हुए। लोकाचारका अनुसरण करनेवाले पिप्पलादका यों तपस्या करते हुए बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया।

तदनन्तर पिप्पलादने राजा अनरण्यकी कन्या पद्मासे विवाह करके तरुण हो उसके साथ विलास किया। उन मुनिके दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब पिताके ही समान महात्मा और उग्र तपस्वी थे। वे अपनी माता पद्माके सुखकी वृद्धि करनेवाले हुए। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने महान् ऐश्वर्यशाली तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं। उन कृपालुने जगत्में शनैश्चरकी पीड़ाको, जिसका निवारण करना सबकी शक्तिके बाहर था, देखकर लोगोंको प्रसन्नतापूर्वक यह वरदान दिया कि 'जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्योंको तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं हो सकती। यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है। यदि कहीं शनि मेरे वचनका अनादर करके उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायेगा तो वह निस्संदेह भस्म हो जायगा।' तात! इसीलिये उस भयसे भीत हुआ ग्रहश्रेष्ठ शनैश्चर विकृत होनेपर भी वैसे मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं पहुँचाता। मुनिवर! इस प्रकार मैंने लीलासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित तुम्हें सुना दिया, यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गाधि, कौशिक और महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाका नाश कर देते हैं। वे मुनिवर दधीचि, जो परम ज्ञानी, सत्पुरुषोंके प्रिय तथा महान् शिवभक्त थे, धन्य हैं, जिनके यहाँ स्वयं आत्मज्ञानी महेश्वर पिप्पलादनामक पुत्र होकर उत्पन्न हुए। तात! यह आख्यान निर्दोष, स्वर्गप्रद, कुग्रहजनित दोषोंका संहारक, सम्पूर्ण मनोरथोंका पूरक और शिवभक्तिकी विशेष वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय २१—२५)

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा—राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तिमालिनीकी धार्मिक दृढ़ताकी परीक्षा

तदनन्तर वैश्यनाथ अवतारका वर्णन करके नन्दीश्वरने द्विजेश्वरावतारका प्रसङ्ग चलाया। वे बोले—तात! पहले जिन नृपश्रेष्ठ भद्रायुका परिचय दिया गया था और जिनपर भगवान् शिवने ऋषभरूपसे अनुग्रह किया था, उन्हीं नरेशके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे भगवान् फिर द्विजेश्वररूपसे प्रकट हुए थे। ऋषभके प्रभावसे रणभूमिमें शत्रुओंपर विजय पाकर शक्तिशाली राजकुमार भद्रायु जब राज्यसिंहासनपर आरूढ़ हुए, तब राजा चन्द्राङ्गद तथा रानी सीमन्तिनीकी बेटी सती-साध्वी कीर्तिमालिनीके साथ उनका विवाह हुआ। किसी समय राजा भद्रायुने अपनी धर्मपत्नीके साथ वसन्त ऋतुमें वन-विहार करनेके लिये एक गहन वनमें प्रवेश किया। उनकी पत्नी शरणागतजनोंका पालन करनेवाली थी। राजाका भी ऐसा ही नियम था। उन राजदम्पतिकी धर्ममें कितनी दृढ़ता है, इसकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने एक लीला रची। शिवा और शिव उस वनमें ब्राह्मणी और ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन दोनोंने लीलापूर्वक एक मायामय व्याघ्रका निर्माण किया। वे दोनों भयसे विह्वल हो व्याघ्रसे थोड़ी ही दूर आगे रोते-चिल्लाते भागने लगे और व्याघ्र उनका पीछा करने लगा। राजाने उन्हें इस अवस्थामें देखा। वे ब्राह्मण-दम्पति भी भयसे विह्वल हो महाराजकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले।

ब्राह्मण-दम्पतिने कहा—महाराज! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। वह व्याघ्र हम दोनोंको खा जानेके लिये आ रहा है। समस्त प्राणियोंको कालके समान भय देनेवाला यह हिंसक प्राणी हमें अपना आहार बनाये, इसके पूर्व ही आप हम दोनोंको बचा लीजिये।

उन दोनोंका यह करुणक्रन्दन सुनकर महावीर राजाने ज्यों ही धनुष उठाया, त्यों ही वह व्याघ्र उनके निकट आ पहुँचा। उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया। वह बेचारी 'हा नाथ! हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा शम्भो! हा जगद्गुरो!' इत्यादि कहकर रोने और विलाप करने लगी। व्याघ्र बड़ा भयानक था। उसने ज्यों ही ब्राह्मणीको अपना ग्रास बनानेकी चेष्टा की, त्यों ही भद्रायुने तीखे बाणोंसे उसके मर्ममें आघात किया; परंतु उन बाणोंसे उस महाबली व्याघ्रको तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वह ब्राह्मणीको बलपूर्वक घसीटता हुआ तत्काल दूर निकल गया। अपनी पत्नीको बाघके पंजेमें पड़ी

देख ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ और वह बारंबार रोने लगा। देरतक रोकर उसने राजा भद्रायुसे कहा—'राजन्! तुम्हारे वे बड़े-बड़े अस्त्र कहाँ हैं? दुखियोंकी रक्षा करनेवाला तुम्हारा विशाल धनुष कहाँ है? सुना था तुममें बारह हजार बड़े-बड़े हाथियोंका बल है। वह क्या हुआ? तुम्हारे शङ्ख, खड्ग तथा मन्त्रास्त्र-विद्यासे क्या लाभ हुआ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। धर्मज्ञ राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हुए दीन-दुखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्राण-रक्षा नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके लिये तो जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है।'

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी सम्पदा, राज्य और आयुका भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़े और उसे धीरज बँधाते हुए बोले—'ब्रह्मन्! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। महामते! मुझ क्षत्रियाधमपर कृपा करके शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको मनोवाञ्छित पदार्थ दूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये, आप क्या चाहते हैं?

ब्राह्मण बोले—राजन्! अंधेको दर्पणसे क्या काम? जो भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर लेकर क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम तथा जिसके पास स्त्री नहीं है, वह धन लेकर क्या करेगा? मेरी पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुखका उपभोग नहीं किया। अतः कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको मुझे दे दीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्या यही तुम्हारा धर्म है? क्या तुम्हें गुरुने यही उपदेश किया है? क्या तुम नहीं जानते कि परायी स्त्रीका स्पर्श स्वर्ग एवं सुयशकी हानि करनेवाला है? परस्त्रीके उपभोगसे जो पाप कमाया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंद्वारा भी धोया नहीं जा सकता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं अपनी तपस्यासे भयंकर ब्रह्महत्या और मदिरापान-जैसे पापका भी नाश कर डालूँगा। फिर परस्त्री-संगम किस गिनतीमें है। अतः आप अपनी इस भार्याको मुझे अवश्य दे दीजिये। अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा, अतः इससे बचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको बुलाकर उसे अपनी पत्नीको दे दिया। तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, कुठार, ढाल, मृग, अभय, वरद और पिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठको राजाने अपने सामने प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्तवन किया।

राजाके स्तुति करनेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—राजन्! तुमने किसी अन्यका चिन्तन न करके जो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है, तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र स्तुतिको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिसे व्याघ्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, ये गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे बाण मारनेसे भी जिसके शरीरको चोट नहीं पहुँची, वह व्याघ्र मायानिर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था, इस कीर्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हूँ। तुम कोई दुर्लभ वर माँगो, मैं उसे दूँगा।

राजा बोले—देव! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपने सांसारिक तापसे घिरे हुए मुझ अधमको जो प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, यही मेरे लिये महान् वर है। देव! आप वर-

दाताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता, पद्माकर वैश्य और उसके पुत्र सुनय—इन सबको आप अपना पार्श्ववर्ती सेवक बना लीजिये।

तत्पश्चात् रानी कीर्तिमालिनीने प्रणाम करके अपनी भक्तिसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया और यह उत्तम वर माँगा—'महादेव! मेरे पिता चन्द्राङ्गद और माता सीमन्तिनी—इन दोनोंको भी आपके समीप निवास प्राप्त हो।' भक्तवत्सल भगवान् गौरीपतिने प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुसार वर देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। इधर राजाने भगवान् शंकरका प्रसाद प्राप्त करके रानी कीर्तिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपभोग किया और दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर उन्होंने शिवजीके परमपदको प्राप्त किया। राजा और रानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके भगवान शिवके धामको प्राप्त हुए। यह परम पवित्र, पापनाशक एवं अत्यन्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणानुवाद जो विद्वानोंको सुनाता है अथवा स्वयं भी शुद्धचित्त होकर पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अन्तमें भगवान शिवको प्राप्त होता है। (अध्याय २६-२७)

भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंस नामक अवतार

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने! अब मैं परमात्मा शिवके यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करता हूँ। मुनीश्वर! अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप एक भील रहता था, जिसका नाम था आहुक। उसकी पत्नीको लोग आहुका कहते थे। वह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वे दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे और शिवकी आराधना-पूजामें लगे रहते थे। एक दिन वह शिवभक्त भील अपनी पत्नीके लिये आहारकी खोज करनेके निमित्त जंगलमें बहुत दूर चला गया। इसी समय संध्याकालमें भीलकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर संन्यासीका रूप धारण करके घर आये। इतनेमें ही उस घरका मालिक भील भी चला आया और उसने बड़े प्रेमसे उन यतिराजका पूजन किया। उसके मनोभावकी परीक्षाके लिये उन यतीश्वरने दीनवाणीमें कहा—'भील! आज रातमें यहाँ रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही चला जाऊँगा, तुम्हारा सदा कल्याण हो।'

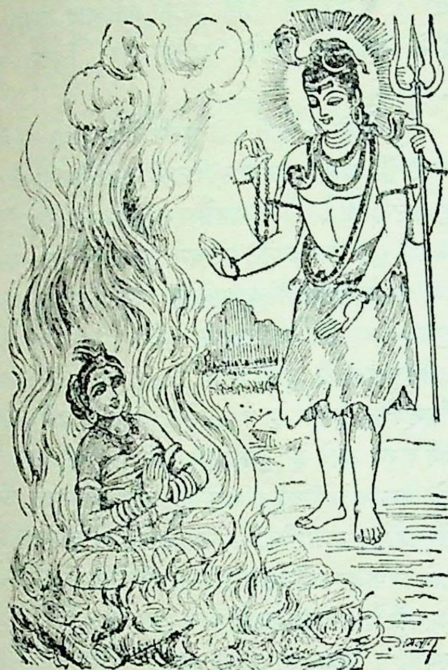
भील बोला—स्वामीजी! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरी बात सुनिये। मेरे घरमें स्थान तो बहुत थोड़ा है। फिर उसमें आपका रहना कैसे हो सकता है?

भीलकी यह बात सुनकर स्वामीजी वहाँसे चले जानेको उद्यत हो गये।

तब भीलनीने कहा—प्राणनाथ! आप स्वामीजीको स्थान दे दीजिये। घर आये हुए अतिथिको निराश न लौटाइये। अन्यथा हमारे गृहस्थ-धर्मके पालनमें बाधा पहुँचेगी। आप स्वामीजीके साथ सुखपूर्वक घरके भीतर रहिये और मैं बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर बाहर खड़ी रहूँगी।

पत्नीकी यह बात सुनकर भीलने सोचा—स्त्रीको घरसे बाहर निकालकर मैं भीतर कैसे रह सकता हूँ? संन्यासीजीका अन्यत्र जाना भी मेरे लिये अधर्मकारक ही होगा। ये दोनों ही कार्य एक गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। अतः मुझे ही घरके बाहर रहना चाहिये। जो होनहार होगी, वह तो होकर ही रहेगी। ऐसा सोच आग्रह करके उसने स्त्रीको और संन्यासीजीको तो सानन्द घरके भीतर रख दिया और स्वयं वह भील अपने आयुध पास रखकर घरसे बाहर खड़ा हो गया। रातमें जंगली क्रूर एवं हिंसक पशु उसे पीड़ा देने लगे। उसने भी यथाशक्ति उनसे बचनेके लिये महान् यत्न किया। इस तरह यत्न करता हुआ वह भील बलवान् होकर भी प्रारब्ध-प्रेरित हिंसक पशुओंद्वारा बलपूर्वक खा लिया गया। प्रातःकाल उठकर जब यतिने देखा कि हिंसक पशुओंने वनवासी भीलको खा डाला है, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। संन्यासीको दुखी देख भीलनी दुःखसे व्याकुल होनेपर भी धैर्यपूर्वक उस दुःखको दबाकर यों बोली—'स्वामीजी! आप दुखी किस-लिये हो रहे हैं? इन भीलराजका तो इस समय कल्याण ही हुआ। ये धन्य और कृतार्थ हो गये, जो इन्हें ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई। मैं चिताकी आगमें जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें; क्योंकि स्वामीका अनुसरण करना स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म है।' उसकी बात सुनकर संन्यासीजीने स्वयं चिता तैयार की और भीलनीने अपने धर्मके अनुसार उसमें प्रवेश किया। इसी समय भगवान् शंकर अपने साक्षात् स्वरूपसे उसके सामने प्रकट हो गये और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—'तुम

धन्य हो, धन्य हो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'



भगवान् शंकरका यह परमानन्ददायक वचन सुनकर भीलनीको बड़ा सुख मिला। वह ऐसी विभोर हो गयी कि उसे किसी भी बातकी सुध नहीं रही। उसकी उस अवस्थाको लक्ष्य करके भगवान् शंकर और भी प्रसन्न हुए और उसके न माँगनेपर भी उसे वर देते हुए बोले—'मेरा जो यतिरूप है, यह भावी जन्ममें हंसरूपसे प्रकट होगा और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनोंका परस्पर संयोग करायेगा। यह भील निषधदेशकी उत्तम राजधानीमें राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय नलके नामसे इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती होओगी। तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगनेके पश्चात् वह मोक्ष प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है।'

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने! ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्गरूपमें स्थित हो गये। वह भील अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ था, अतः उसीके नामपर उस लिङ्गको 'अचलेश' संज्ञा दी गयी। दूसरे जन्ममें वह आहुक नामक भील नैषध नगरमें वीरसेनका पुत्र हो महाराज नलके नामसे विख्यात हुआ और आहुका नामकी भीलनी विदर्भ नगरमें राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती हुई और वे यतिनाथ शिव वहाँ हंसरूपमें प्रकट हुए। उन्होंने दमयन्तीका नलके साथ विवाह कराया। पूर्वजन्मके सत्कारजनित पुण्यसे प्रसन्न हो भगवान् शिवने हंसका रूप धारणकर उन दोनोंको सुख दिया। हंसावतारधारी शिव भाँति-भाँतिकी बातें करने और संदेश पहुँचानेमें कुशल थे। वे नल और दमयन्ती दोनोंके लिये परमानन्ददायक हुए। (अध्याय २८)

भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमारजी! भगवान् शम्भुके एक उत्तम अवतारका नाम कृष्णदर्शन है, जिसने राजा नभगको ज्ञान प्रदान किया था। उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। श्राद्धदेव नामक मनुके जो इक्ष्वाकु आदि पुत्र थे, उनमें नवमका नाम नभग था, जिनका पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध हुआ। नाभागके ही पुत्र अम्बरीष हुए, जो भगवान् विष्णुके भक्त थे तथा जिनकी ब्राह्मणभक्ति देखकर उनके ऊपर महर्षि दुर्वासा प्रसन्न हुए थे। मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये हैं, उनके चरित्रका वर्णन सुनो। उन्हींको भगवान् शिवने ज्ञान प्रदान किया था। मनुपुत्र नभग बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने विद्याध्ययनके लिये दीर्घकालतक इन्द्रियसंयमपूर्वक गुरुकुलमें निवास किया। इसी बीचमें इक्ष्वाकु आदि भाइयोंने नभगके लिये कोई भाग न देकर पिताकी सम्पत्ति आपसमें बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतिसे राज्यका पालन करने लगे। उन सबने पिताकी आज्ञासे ही धनका बँटवारा किया था। कुछ कालके पश्चात् ब्रह्मचारी नभग गुरुकुलसे साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन करके वहाँ आये। उन्होंने देखा सब भाई सारी सम्पत्तिका बँटवारा करके अपना-अपना भाग ले चुके हैं। तब उन्होंने भी बड़े स्नेहसे दायभाग पानेकी इच्छा रखकर अपने इक्ष्वाकु आदि बन्धुओंसे कहा—'भाइयो! मेरे लिये भाग दिये बिना ही आपलोगोंने आपसमें सारी सम्पत्तिका बँटवारा कर लिया। अतः अब प्रसन्नतापूर्वक मुझे भी हिस्सा दीजिये। मैं अपना दायभाग लेनेके लिये ही यहाँ आया हूँ।'

भाई बोले—जब सम्पत्तिका बँटवारा हो रहा था, उस समय हम तुम्हारे लिये भाग देना भूल गये थे। अब इस

समय पिताजीको ही तुम्हारे हिस्सेमें देते हैं। तुम उन्हींको ले लो, इसमें संशय नहीं है।

भाइयोंका यह वचन सुनकर नभगको बड़ा विस्मय हुआ। वे पिताके पास जाकर बोले—'तात! मैं विद्याध्ययनके लिये गुरुकुलमें गया था और वहाँ अबतक ब्रह्मचारी रहा हूँ। इसी बीचमें भाइयोंने मुझे छोड़कर आपसमें धनका बँटवारा कर लिया। वहाँसे लौटकर जब मैंने अपने हिस्सेके बारेमें उनसे पूछा, तब उन्होंने आपको मेरा हिस्सा बता दिया। अतः उसके लिये मैं आपकी सेवामें आया हूँ।' नभगकी वह बात सुनकर पिताको बड़ा विस्मय हुआ। श्राद्धदेवने पुत्रको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटा! भाइयोंकी उस बातपर विश्वास न करो। वह उन्होंने तुम्हें ठगनेके लिये कही है। मैं तुम्हारे लिये भोग-साधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि उन वञ्चकोंने यदि मुझे ही दायके रूपमें तुम्हें दिया है तो मैं तुम्हारी जीविका-का एक उपाय बताता हूँ, सुनो। इन दिनों उत्तम बुद्धिवाले आङ्गिरसगोत्रीय ब्राह्मण एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, उस कर्ममें प्रत्येक छठे दिनका कार्य वे ठीक-ठीक नहीं समझ पाते—उसमें उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन ब्राह्मणोंको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दिया करो। इससे वह यज्ञ शुद्धरूपसे सम्पादित होगा। वह यज्ञ समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण जब स्वर्गको जाने लगेंगे, उस समय संतुष्ट होकर अपने यज्ञसे बचा हुआ सारा धन तुम्हें दे देंगे।'

पिताकी यह बात सुनकर सत्यवादी नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ उस उत्तम यज्ञमें गये। मुने! वहाँ छठे दिनके कर्ममें बुद्धिमान् मनुपुत्रने वैश्वदेवसम्बन्धी दोनों सूक्तोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त होनेपर वे आङ्गिरस ब्राह्मण यज्ञसे बचा हुआ अपना-अपना धन नभगको देकर स्वर्गलोकको चले गये। उस यज्ञशिष्ट धनको जब ये ग्रहण करने लगे, उस समय सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शिव तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। उनके सारे अङ्ग बड़े सुन्दर थे, परंतु नेत्र काले थे। उन्होंने नभगसे पूछा—'तुम कौन हो? जो इस धनको ले रहे हो। यह तो मेरी सम्पत्ति है। तुम्हें किसने यहाँ भेजा है। सब बातें ठीक-ठीक बताओ।'

नभगने कहा—यह तो यज्ञसे बचा हुआ धन है, जिसे ऋषियोंने मुझे दिया है। अब यह मेरी ही सम्पत्ति है। इसको लेनेसे तुम मुझे कैसे रोक रहे हो?

कृष्णदर्शनने कहा—'तात! हम दोनोंके इस झगड़ेमें तुम्हारे पिता ही पंच रहेंगे। जाकर उनसे पूछो और वे जो निर्णय दें, उसे ठीक-ठीक यहाँ आकर बताओ।' उनकी बात सुनकर नभगने पिताके पास जाकर उक्त प्रश्नको उनके सामने रक्खा। श्राद्धदेवको कोई पुरानी बात याद आ गयी और उन्होंने भगवान् शिवके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए कहा।

मनु बोले—'तात! वे पुरुष जो तुम्हें वह धन लेनेसे रोक रहे हैं, साक्षात् भगवान् शिव हैं। यों तो संसारकी सारी वस्तु ही उन्हींकी है। परंतु यज्ञसे प्राप्त हुए धनपर उनका विशेष अधिकार है। यज्ञ करनेसे जो धन बच जाता है, उसे भगवान् रुद्रका भाग निश्चित किया गया है। अतः यज्ञावशिष्ट सारी वस्तु ग्रहण करनेके अधिकारी सर्वेश्वर महादेवजी ही हैं। उनकी इच्छासे ही दूसरे लोग उस वस्तुको ले सकते हैं। भगवान् शिव तुमपर कृपा करनेके लिये ही वहाँ वैसा रूप धारण करके आये हैं। तुम वहीं जाओ और उन्हें प्रसन्न करो। अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और प्रणामपूर्वक उनकी स्तुति करो।' नभग पिताकी आज्ञासे वहाँ गये और भगवान्‌को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'महेश्वर! यह सारी त्रिलोकी ही आपकी है। फिर यज्ञसे बचे हुए धनके लिये तो कहना ही क्या है। निश्चय ही इसपर आपका अधिकार है, यही मेरे पिताने निर्णय दिया है। नाथ! मैंने यथार्थ बात न जाननेके कारण भ्रमवश जो कुछ कहा है, मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न हों।'

ऐसा कहकर नभगने अत्यन्त दीनतापूर्ण हृदयसे दोनों हाथ जोड़ महेश्वर कृष्णदर्शनका स्तवन किया। उधर श्राद्धदेवने भी अपने अपराधके लिये क्षमा माँगते हुए भगवान् शिवकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान् रुद्रने मन-ही-मन प्रसन्न हो नभगको कृपादृष्टिसे देखा और मुस्कराते हुए कहा।

कृष्णदर्शन बोले—'नभग! तुम्हारे पिताने जो धर्मा-नुकूल बात कही है, वह ठीक ही है। तुमने भी साधु-स्वभावके कारण सत्य ही कहा है। इसलिये मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान प्रदान करता हूँ। इस समय यह सारा धन मैंने तुम्हें दे दिया। अब तुम इसे ग्रहण करो। इस लोकमें निर्विकार रहकर सुख भोगो। अन्तमें मेरी कृपासे तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। साथ ही श्राद्धदेव भी अपने पुत्र नभगके साथ अपने स्थानको लौट आये। इस लोकमें विपुल भोगोंका उपभोग करके अन्तमें

वे भगवान् शिवके धाममें चले गये । ब्रह्मन् ! इस प्रकार तुमसे मैंने भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारका वर्णन किया । जो इस आख्यानको पढ़ता और सुनता है, उसे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं । (अध्याय २९)

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारकी कथा और उसकी महिमाका वर्णन

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमार ! अब तुम परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनो, जिसने इन्द्र-के घमंडको चूर-चूर कर दिया था । पहलेकी बात है, इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं तथा बृहस्पतिजीको साथ लेकर भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर गये । उस समय बृहस्पति और इन्द्रके शुभागमनकी बात जानकर भगवान् शंकर उन दोनोंकी परीक्षा लेनेके लिये अवधूत बन गये । उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था । वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होनेके कारण महाभयंकर जान पड़ते थे । उनकी आकृति बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी । वे राह रोककर खड़े थे । बृहस्पति और इन्द्रने शिवके समीप जाते समय देखा, एक अद्भुत शरीरधारी पुरुष रास्तेके बीचमें खड़ा है । इन्द्रको अपने अधिकारपर बड़ा गर्व था । इसलिये वे यह न जान सके कि ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं । उन्होंने मार्गमें खड़े हुए पुरुषसे पूछा—'तुम कौन हो ? इस नग्न अवधूतवेशमें कहाँसे आये हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? सब बातें ठीक-ठीक बताओ । देर न करो । भगवान् शिव अपने स्थानपर हैं या इस समय कहीं अन्यत्र गये हैं ? मैं देवताओं तथा गुरुजीके साथ उन्हींके दर्शनके लिये जा रहा हूँ ।'

इन्द्रके बारंबार पूछनेपर भी महान् कौतुक करनेवाले अहङ्कारहारी महायोगी त्रिलोकीनाथ शिव कुछ न बोले । चुप ही रहे । तब अपने ऐश्वर्यका घमंड रखनेवाले देवराज इन्द्रने रोषमें आकर उस जटाधारी पुरुषको फटकारा और इस प्रकार कहा ।

इन्द्र बोले—अरे मूढ़ ! दुर्मते ! तू बार-बार पूछनेपर भी उत्तर नहीं देता ? अतः तुझे वज्रसे मारता हूँ । देखूँ कौन तेरी रक्षा करता है ।

ऐसा कह उस दिगम्बर पुरुषकी ओर क्रोधपूर्वक देखते हुए इन्द्रने उसे मार डालनेके लिये वज्र उठाया । यह देख भगवान् शंकरने शीघ्र ही उस वज्रका स्तम्भन कर दिया । उनकी बाँह अकड़ गयी । इसलिये वे वज्रका प्रहार न कर सके । तदनन्तर वह पुरुष तत्काल ही क्रोधके कारण तेजसे प्रज्वलित हो उठा, मानो इन्द्रको जलाये देता हो । भुजाओंके स्तम्भित हो जानेके कारण शचीवल्लभ इन्द्र क्रोधसे उस सर्पकी भाँति जलने लगे, जिसका पराक्रम मन्त्रके बलसे अवरुद्ध हो गया हो । बृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होता देख तत्काल ही यह समझ लिया कि ये साक्षात् भगवान् हर हैं । फिर तो वे हाथ जोड़ प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे । स्तुतिके पश्चात् उन्होंने इन्द्रको उनके चरणोंमें गिरा दिया और कहा—'दीननाथ महादेव ! यह इन्द्र आपके चरणोंमें पड़ा है । आप इसका और मेरा उद्धार करें । हम दोनोंपर क्रोध नहीं, प्रेम करें । महादेव ! शरणागत इन्द्रकी रक्षा कीजिये । आपके ललाटसे प्रकट हुई यह आग इन्हें जलानेके लिये आ रही है ।'

बृहस्पतिकी यह बात सुनकर अवधूतवेषधारी करुणासिन्धु शिवने हँसते हुए कहा—'अपने नेत्रसे रोषवश बाहर निकली हुई अग्निको मैं पुनः कैसे धारण कर सकता हूँ । क्या सर्प अपनी छोड़ी हुई केंचुलको फिर ग्रहण करता है ?'

बृहस्पति बोले—देव ! भगवन् ! भक्त सदा ही कृपा-के पात्र होते हैं । आप अपने भक्तवत्सल नामको चरितार्थ कीजिये और इस भयंकर तेजको कहीं अन्यत्र डाल दीजिये ।

रुद्रने कहा—देवगुरो ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । इसलिये उत्तम वर देता हूँ । इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आजसे तुम्हारा एक नाम जीव भी होगा । मेरे ललाटवर्ती नेत्रसे जो यह आग प्रकट हुई है, इसे देवता नहीं सह सकते । अतः इसको मैं बहुत दूर छोड़ूँगा, जिससे यह इन्द्रको पीड़ा न दे सके ।

ऐसा कहकर अपने तेजःस्वरूप उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर भगवान् शिवने क्षार समुद्रमें फेंक दिया । वहाँ फेंके जाते ही भगवान् शिवका वह तेज तत्काल एक बालकके रूपमें



परिणत हो गया, जो सिन्धुपुत्र जलन्धर नामसे विख्यात हुआ। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवने ही असुरोंके स्वामी जलन्धरका वध किया था। अवधूतरूपसे ऐसी सुन्दर लीला करके लोककल्याणकारी शंकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। फिर सब देवता अत्यन्त निर्भय एवं सुखी हुए। इन्द्र और बृहस्पति भी उस भयसे मुक्त हो उत्तम सुखके भागी हुए। जिसके लिये उनका आना हुआ था, वह भगवान् शिवका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। इन्द्र और बृहस्पति प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये। सनत्कुमार! इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन किया है, जो दुष्टोंको दण्ड एवं भक्तोंको परम आनन्द प्रदान करनेवाला है। यह दिव्य आख्यान पापका निवारण करके यश, स्वर्ग, भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति करानेवाला है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो इसे सुनता या सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें शिवकी गति प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ३०)

भगवान् शिवके भिक्षुवर्यावतारकी कथा, राजकुमार और द्विजकुमारपर कृपा

नन्दीश्वर कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब तुम भगवान् शम्भुके नारी-संदेहभञ्जक भिक्षु-अवतारका वर्णन सुनो, जिसे उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था। विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो धर्ममें तत्पर, सत्यशील और बड़े-बड़े शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाले थे। धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर किसी समय शाल्वदेशके राजाओंने उस राजाकी राजधानीपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ, जिनके पास बहुत बड़ी सेना थी, राजा सत्यरथका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। शत्रुओंके साथ दारुण युद्ध करके उनकी बड़ी भारी सेना नष्ट हो गयी। फिर दैवयोगसे राजा भी शाल्वोंके हाथसे मारे गये। उन नरेशके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक मन्त्रियोंसहित भयसे विह्वल हो भाग खड़े हुए। मुने! उस समय विदर्भराज सत्यरथकी महारानी शत्रुओंसे घिरी होनेपर भी कोई प्रयत्न करके रातके समय अपने नगरसे बाहर निकल गयीं। वे गर्भवती थीं; अतः शोकसे संतप्त हो भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई वे धीरे-धीरे पूर्वदिशाकी ओर बहुत दूर चली गयीं। सबेरा होनेपर रानीने भगवान् शंकरकी दयासे एक निर्मल सरोवर देखा। उस समयतक वे बहुत दूरका रास्ता तय कर चुकी थीं। सरोवरके तटपर आकर वे सुकुमारी रानी एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयीं। भाग्यवश उसी निर्जन स्थानमें वृक्षके नीचे ही रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ मुहूर्तमें एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। दैववश उस बालककी जननी महारानीको बड़े जोरकी प्यास लगी। तब वे पानी पीनेके लिये उस सरोवरमें उतरीं। इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर रानीको अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन हो गया और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस तालाबके किनारे जोर-जोरसे रोने लगा। इतनेमें ही उसपर कृपा करके भगवान् महेश्वर वहाँ आ गये और उस शिशुकी रक्षा करने लगे। उन्हींकी प्रेरणासे एक ब्राह्मणी अकस्मात् वहाँ आ गयी। वह विधवा थी, घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी और अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए उस तालाबके तटपर पहुँची थी। उसने एक अनाथ शिशुको वहाँ क्रन्दन

करते देखा। निर्जन वनमें उस बालकको देखकर ब्राह्मणीको बड़ा विस्मय हुआ और वह मन-ही-मन विचार करने लगी—'अहो! यह मुझे इस समय बड़े आश्चर्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। इसकी माँ भी नहीं है। पिता आदि दूसरे कोई सहायक भी यहाँ नहीं दिखायी देते। क्या कारण हो गया? न जाने यह किसका पुत्र है? इसे जाननेवाला यहाँ कोई भी नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें पूछूँ। इसे देखकर मेरे हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गयी है। मैं इस बालकका अपने औरस पुत्रकी भाँति पालन-पोषण करना चाहती हूँ। परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेके कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।'

ब्राह्मणी जब इस प्रकार विचार कर रही थी, उस समय भक्तवत्सल भगवान् शंकरने बड़ी कृपा की। बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले महेश्वर एक संन्यासीका रूप धारण करके सहसा वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वह ब्राह्मणी संदेहमें पड़ी हुई थी और यथार्थ बातको जानना चाहती थी। श्रेष्ठ भिक्षुका रूप धारण करके आये हुए करुणानिधान शिवने उससे हँसकर कहा—'ब्राह्मणी! अपने चित्तमें संदेह और खेदको स्थान न दो। यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना ही पुत्र समझो और प्रेमपूर्वक इसका पालन करो।'

ब्राह्मणी बोली—प्रभो! आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पधारे हैं। इसमें संदेह नहीं कि मैं आपकी आज्ञासे इस बालकका अपने पुत्रकी ही भाँति पालन-पोषण करूँगी; तथापि मैं विशेषरूपसे यह जानना चाहती हूँ कि वास्तवमें यह कौन है, किसका पुत्र है, और आप कौन हैं, जो इस समय यहाँ पधारे हैं। भिक्षुवर! मेरे मनमें बार-बार यह बात आती है कि आप करुणासिन्धु शिव ही हैं और यह बालक पूर्वजन्ममें आपका भक्त रहा है। किसी कर्म-दोषसे यह इस दुरवस्थामें पड़ गया है। इसे भोगकर यह पुनः आपकी कृपासे परम कल्याण-का भागी होगा। मैं भी आपकी मायासे ही मोहित हो मार्ग भूलकर यहाँ आ गयी हूँ। आपने ही इसके पालनके लिये मुझे यहाँ भेजा है।

भिक्षुप्रवर शिवने कहा—ब्राह्मणी! सुनो, यह बालक शिवभक्त विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है। सत्यरथको शाल्वदेशीय क्षत्रियोंने युद्धमें मार डाला है। उनकी पत्नी अत्यन्त व्यग्र हो रातमें शीघ्रतापूर्वक अपने महलसे बाहर भाग आयीं। उन्होंने यहाँ आकर इस बालकको जन्म दिया। सबेरा होनेपर वे प्याससे पीड़ित हो सरोवरमें उतरीं। उसी समय दैववश एक ग्राहने आकर उन्हें अपना आहार बना लिया।

ब्राह्मणीने पूछा—भिक्षुदेव! क्या कारण है कि इसके पिता राजा सत्यरथ श्रेष्ठ भोगोंके उपभोगके समय बीचमें ही शाल्वदेशीय शत्रुओंद्वारा मार डाले गये। किस कारणसे इस शिशुकी माताको ग्राहने खा लिया? और यह शिशु जो जन्मसे ही अनाथ और बन्धुहीन हो गया, इसका क्या कारण है? मेरा अपना पुत्र भी अत्यन्त दरिद्र एवं भिक्षुक क्यों हुआ तथा मेरे इन दोनों पुत्रोंको भविष्यमें कैसे सुख प्राप्त होगा?

भिक्षुवर्य शिवने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्यदेशके श्रेष्ठ राजा थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता थे और सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शंकरका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे त्रिलोकीनाथ महादेवजीकी आराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्दको सुनकर राजाने बीचमें ही भगवान् शंकरकी पूजा छोड़ दी और नगरमें क्षोभ फैलनेकी आशङ्कासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महाबली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शत्रुओंने उसको सुख-भोगके बीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वही इस जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उल्लङ्घन करनेके कारण यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। इसकी माताने पूर्वजन्ममें छलसे अपनी सौतको मार डाला था। उस महान् पापके कारण ही वह इस जन्ममें ग्राहके द्वारा मारी गयी। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेनेमें बितायी है, यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। उस दोषका निवारण करनेके लिये अब तुम भगवान् शंकरकी शरणमें जाओ। ये दोनों बालक यज्ञोपवीत-संस्कारके

पश्चात् भगवान् शिवकी आराधना करें। भगवान् शिव इनका कल्याण करेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मणीको उपदेश देकर भिक्षु (श्रेष्ठ संन्यासी) का शरीर धारण करनेवाले भक्तवत्सल शिवने उसे अपने उत्तम स्वरूपका दर्शन कराया। उन्हें साक्षात् शिव जानकर ब्राह्मणपत्नीने प्रणाम किया और प्रेमसे गद्गदवाणीद्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर ब्राह्मणी उस बालकको लेकर अपने पुत्रके साथ घरको चली गयी। एकचक्रा नामके सुन्दर ग्राममें उसने घर बना रक्खा था। वह उत्तम अन्नसे अपने बेटे तथा राजकुमारका भी पालन-पोषण करने लगी। यथासमय ब्राह्मणोंने उन दोनोंका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। वे दोनों शिवकी पूजामें तत्पर रहते हुए घरपर ही बड़े हुए। शाण्डिल्य मुनिके उपदेशसे नियमपरायण हो वे दोनों शुभ व्रत रखकर प्रदोषकालमें शंकरजीकी पूजा करते थे। एक दिन द्विजकुमार राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गया। वहाँ उसे निधिसे भरा हुआ एक सुन्दर कलश मिल गया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारोंका उसी घरमें एक वर्ष व्यतीत हो गया। तदनन्तर एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मणकुमारके साथ वनमें गया। वहाँ अकस्मात् एक गन्धर्वकन्या आ गयी। उसके पिताने वह कन्या राजकुमारको दे दी। गन्धर्वकन्यासे विवाह करके राजकुमार निष्कण्टक राज्य भोगने लगे। जिस ब्राह्मणपत्नीने पहले अपने पुत्रकी भाँति उसका पालन-पोषण किया था, वही उस समय राजमाता हुई और वह ब्राह्मणकुमार उसका भाई हुआ। राजाका नाम धर्मगुप्त था। इस प्रकार देवेश्वर शिवकी आराधना करके राजा धर्मगुप्त अपनी उस रानीके साथ विदर्भदेशमें राजोचित सुखका उपभोग करने लगा। यह मैंने तुमसे शिवके भिक्षुवर्य-अवतारका वर्णन किया है, जिन्होंने राजा धर्मगुप्तको बाल्यकालमें सुख प्रदान किया था। यह पवित्र आख्यान पापहारी, परमपावन, चारों पुरुषार्थोंका साधक तथा सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर इसे सुनता या सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके धाममें जाता है। (अध्याय ३१)

शिवके सुरेश्वरावतारकी कथा, उपमन्युकी तपस्या और उन्हें उत्तम वरकी प्राप्ति

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमारजी! अब मैं परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करूँगा, जिन्होंने उपमन्युके बड़े भाई धौम्यका हितसाधन किया था। उपमन्यु व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमारके रूपमें प्रकट हुए थे। वे शैशवावस्थासे ही माताके साथ मामाके घरमें रहते थे और दैववश दरिद्र थे। एक दिन उन्हें बहुत कम दूध पीनेको मिला। इसलिये अपनी मातासे वे बारंबार दूध माँगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने घरके भीतर जाकर एक उपाय किया। उञ्छवृत्तिसे लाये हुए कुछ बीजोंको सिलपर पीसा और उन्हें पानीमें घोलकर कृत्रिम दूध तैयार किया। फिर बेटेको पुचकारकर वह उसे पीनेको दिया। माँके दिये हुए उस नकली दूधको पीकर बालक उपमन्यु बोले—'यह तो दूध नहीं है।' इतना कहकर वे फिर रोने लगे। बेटेका रोना-धोना सुनकर माँको बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथसे उपमन्युकी दोनों आँखें पोंछकर उनकी लक्ष्मी-जैसी माताने कहा—'बेटा! हमलोग सदा वनमें निवास करते हैं। हमें यहाँ दूध कहाँसे मिल सकता है। भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको दूध नहीं

मिलता। वत्स ! पूर्वजन्ममें भगवान् शिवके लिये जो कुछ किया गया है, वर्तमान जन्ममें वही मिलता है।'

माताकी यह बात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे तपस्याके लिये हिमालय पर्वतपर गये और वहाँ वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया और उसके भीतर मिट्टीके शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसमें माता पार्वतीसहित शिवका आवाहन किया। तत्पश्चात् जंगलके पत्र-पुष्प आदि ले आकर भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रके उच्चारणपूर्वक साम्ब शिवकी पूजा करने लगे। माता पार्वती और शिवका ध्यान करके उनकी पूजा करनेके पश्चात् वे पञ्चाक्षर मन्त्रका जप किया करते थे। इस तरह दीर्घकालतक उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की।

मुने ! बालक उपमन्युकी तपस्यासे चराचर प्राणियोंसहित त्रिभुवन संतप्त हो उठा। तब देवताओंकी प्रार्थनासे उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर उनके समीप पधारे। उस समय शिवने देवराज इन्द्रका, पार्वतीने शचीका, नन्दीश्वर वृषभने ऐरावत हाथीका तथा शिवके गणोंने सम्पूर्ण देवताओंका रूप धारण कर लिया। निकट आनेपर सुरेश्वर-रूप-धारी शिवने बालक उपमन्युको वर माँगनेके लिये कहा। उपमन्युने पहले तो शिवभक्ति माँगी, फिर अपनेको इन्द्र बताकर जब उन्होंने शिवकी निन्दा की, तब उस बालकने भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसीसे कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। वे इन्द्रको मारकर स्वयं भी मर जानेको उद्यत हो गये। उन्होंने जो अघोरास्त्र चलाया, उसे नन्दीने पकड़ लिया और उन्होंने अपनेको जलानेके लिये जो अग्निकी धारणा की, उसे भगवान् शिवने शान्त कर दिया। फिर वे सब-के-सब अपने यथार्थ स्वरूपमें प्रकट हो गये। शिवने उपमन्युको अपना पुत्र माना और उनका मस्तक सूँघकर कहा—'वत्स ! मैं तुम्हारा पिता और ये पार्वतीदेवी तुम्हारी माता हैं। तुम्हें आजसे सनातनकुमारत्व प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये दूध, दही और मधुके सहस्रों समुद्र देता हूँ। भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंके भी समुद्र तुम्हारे लिये सुलभ होंगे। मैं तुम्हें अमरत्व तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ।' ऐसा कहकर शम्भुने उपमन्युको बहुत-से दिव्य वर दिये। पाशुपत-व्रत, पाशुपत-ज्ञान तथा व्रतयोगका उपदेश किया। प्रवचनकी शक्ति दी और अपना परम पद अर्पित किया। फिर दोनों हाथोंसे उपमन्युको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और देवी पार्वतीको सौंपते हुए कहा—'यह तुम्हारा बेटा है।' पार्वतीने भी बड़े प्यारसे उनके मस्तकपर अपना करकमल रक्खा और उन्हें अक्षय कुमार-पद प्रदान किया। शिवने संतुष्ट होकर उनके लिये पिण्डीभूत एवं अविनाशी साकार क्षीर-सागर प्रस्तुत कर दिया। साथ ही योग-सम्बन्धी ऐश्वर्य, नित्य संतोष, अक्षय ब्रह्मविद्या तथा उत्तम समृद्धि प्रदान की। उनके कुल और गोत्रके अक्षय होनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि मैं तुम्हारे इस आश्रमपर नित्य निवास करूँगा।

इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। उपमन्यु वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर आये। उन्होंने मातासे सब बातें बतायीं। सुनकर माताको बड़ा हर्ष हुआ। उपमन्यु सबके पूजनीय और अधिक सुखी हो गये। तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन किया है। यह अवतार सत्पुरुषोंको सदा ही सुख देनेवाला है। सुरेश्वरावतारकी यह कथा पापको दूर करनेवाली तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता या सुनाता है, वह सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है। (अध्याय ३२)

शिवजीके किरातावतारके प्रसंगमें श्रीकृष्णद्वारा द्वैतवनमें दुर्वासाके शापसे पाण्डवोंकी रक्षा, व्यासजीका अर्जुनको शक्रविद्या और पार्थिवपूजनकी विधि बताकर तपके लिये सम्मति देना, अर्जुनका इन्द्रकील पर्वतपर तप, इन्द्रका आगमन और अर्जुनको वरदान, अर्जुनका शिवजीके उद्देश्यसे पुनः तपमें प्रवृत्त होना

तदनन्तर पार्वतीके विवाहप्रसङ्गमें हुए जटिल, नर्तक तथा द्विज अवतारोंकी, फिर अश्वत्थामा-अवतारकी बात कहकर नन्दीश्वरजी आगे कहते हैं—बुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! अब तुम पिनाकधारी भगवान् शिवके किरात नामक अवतारका वर्णन सुनो। उस अवतारमें उन्होंने मूक नामक दैत्यका वध और प्रसन्न होकर अर्जुनको वर प्रदान किया था। जब सुयोधनने महाबली पाण्डवोंको (जूएमें) जीत लिया, तब वे सती-साध्वी द्रौपदीके साथ द्वैतवनमें चले आये। वहीं वे

पाण्डव सूर्यद्वारा दी हुई बटलोईका आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे। प्रियवर! उसी समय सुयोधनने आदरपूर्वक मुनिवर दुर्वासाको छल करनेके प्रयोजनसे पाण्डवों-के निकट जानेके लिये प्रेरित किया। तब महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंके साथ आनन्दपूर्वक वहाँ गये और पाण्डवोंसे मनोऽनुकूल भोजनकी याचना की। तब उन सभी पाण्डवोंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दुर्वासा आदि तपस्वी मुनियोंको स्नान करनेके लिये भेजा। मुनीश्वर! इधर अन्नाभावके कारण वे सभी पाण्डव बड़े संकटमें पड़ गये और मन-ही-मन प्राण त्याग देनेका विचार करने लगे। तब द्रौपदीने श्रीकृष्णका स्मरण किया। वे तत्काल ही वहाँ आ पहुँचे और शाक (के पत्ते) का भोग लगाकर उन सभी तपस्वियोंको तृप्त कर दिया। फिर तो महर्षि दुर्वासा अपने शिष्योंको तृप्त हुआ जानकर वहाँसे चलते बने। इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे उस समय पाण्डव संकटसे मुक्त हुए।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको शिवजीकी आराधना करनेकी सम्मति दी। फिर व्यासजीने भी आकर उन्हें शंकरके समाराधनका आदेश देते हुए कहा—'शिवजी सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाले हैं। वे भक्ति करनेसे थोड़े ही समयमें प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिये सभी लोगोंको शंकरजीकी सेवा करनी चाहिये। वे महेश्वर प्रसन्न होनेपर भक्तोंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं, यहाँतक कि वे इस लोकमें सारा भोग और परलोकमें मोक्षतक दे डालते हैं—यह बिल्कुल निश्चित बात है। इसलिये भुक्ति-मुक्तिरूपी फलकी कामनावाले मनुष्योंको सदा शम्भुकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि भगवान् शंकर साक्षात् परम पुरुष, दुष्टोंके संहारक और सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप हैं। अब अर्जुन पहले दृढ़तापूर्वक शक्रविद्याका जप करें। तब इन्द्र पहले परीक्षा लेंगे, पीछे संतुष्ट हो जायँगे। प्रसन्न होनेपर वे सर्वदा विघ्नोंका नाश करते रहेंगे और फिर शिवजीका श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करेंगे।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इतना कहकर व्यास-जी अर्जुनको बुलाकर उन्हें शक्रविद्याका उपदेश देनेको उद्यत हुए, तब तीक्ष्णबुद्धि अर्जुनने स्नान करके पूर्वमुख बैठकर उस विद्याको ग्रहण कर लिया। फिर उदारबुद्धि मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिवलिङ्गके पूजनका विधान बतलाकर उनसे कहा।



व्यासजी बोले—'पार्थ! अब तुम यहाँसे परम रमणीय इन्द्रकील पर्वतपर जाओ और वहाँ जाह्नवीके तटपर बैठकर सम्यक्‌रूपसे तपस्या करो। यह विद्या अदृश्यरूपसे सदा तुम्हारा हित करती रहेगी।' अर्जुनको ऐसा आशीर्वाद देकर व्यासजी पाण्डवोंसे कहने लगे—'नृपश्रेष्ठो! तुम सब लोग धर्मपर दृढ़ बने रहो, इससे तुम्हें सर्वथा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होगी; इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार मुनिवर व्यास उन पाण्डवोंको आशीर्वाद दे तथा शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। उधर शिव-मन्त्रके धारण करनेसे अर्जुनमें भी अनुपम तेज व्याप्त हो गया। वे उस समय उद्दीप्त हो उठे। अर्जुनको देखकर सभी पाण्डवोंको निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी; क्योंकि अर्जुनमें विपुल तेज उत्पन्न हो गया है। (तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—) 'व्यासजीके कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्यको केवल तुम्हीं कर सकते हो, यह दूसरेके द्वारा कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता; अतः जाओ और हमलोगोंका जीवन सफल बनाओ।' तब अर्जुनने चारों भाइयों तथा द्रौपदीसे अनुमति माँगी। उन लोगोंको अर्जुनके बिछोहका दुःख तो हुआ पर कार्यकी महत्ता देखकर सभीने अनुमति दे दी। फिर तो अर्जुन मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए

उस उत्तम पर्वत (इन्द्रकील) को चले गये। वहाँ पहुँचकर वे गङ्गाजीके समीप एक मनोरम स्थानपर, जो स्वर्गसे भी उत्तम और अशोकवनसे सुशोभित था, ठहर गये। वहाँ उन्होंने स्नान करके गुरुवरको नमस्कार किया और जैसा उपदेश मिला था, उसीके अनुसार स्वयं ही अपना वेष बनाया। फिर पहले मन-ही-मन इन्द्रियोंका अपकर्ष करके वे आसन लगाकर बैठ गये। तत्पश्चात् समसूत्रवाले सुन्दर पार्थिव (शिवलिङ्ग) का निर्माण करके उनके आगे अनुपम तेजोराशि शंकरका ध्यान करने लगे। वे तीनों समय स्नान करके अनेक प्रकारसे बारंबार शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये। तब अर्जुनके शिरोभागसे तेजकी ज्वाला निकलने लगी। उसे देखकर इन्द्रके गुप्तचर भयभीत हो गये। वे सोचने लगे—यह यहाँ कब आ गया? पुनः उन्होंने ऐसा विचार किया कि यह घटना इन्द्रको बतला देनी चाहिये। ऐसा सोचकर वे तत्काल ही इन्द्रके समीप गये।

गुप्तचरोंने कहा—देवेश! वनमें एक पुरुष तप कर रहा है; परंतु हमें पता नहीं कि वह देवता है, ऋषि है, सूर्य है अथवा अग्नि है। उसीके तेजसे संतप्त होकर हम आपके संनिकट आये हैं। हमने उसका चरित्र भी आपसे निवेदित कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! उन गुप्तचरोंके यों कहनेपर इन्द्रको अपने पुत्र अर्जुनका सारा मनोरथ ज्ञात हो गया। तब वे पर्वतरक्षकोंको विदा करके स्वयं वहाँ जानेका विचार करने लगे। विप्रवर! इन्द्र अर्जुनकी परीक्षा करनेके लिये वृद्ध ब्रह्मचारी ब्राह्मणका वेष बनाकर वहाँ पहुँचे। उस समय उन्हें आया हुआ देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने उनकी पूजा की और फिर उनकी स्तुति करके आगे खड़े हो पूछने लगे—ब्रह्मन्! बताइये, इस समय कहाँसे आपका शुभागमन हुआ है?' इसपर ब्राह्मणवेषधारी इन्द्रने अर्जुनको ऐसे वचन कहे, जिससे वह तपसे डिग जाय; पर जब अर्जुनको दृढ़निश्चय देखा, तब अपने स्वरूपमें प्रकट होकर इन्द्रने अर्जुनको भगवान् शंकरका मन्त्र बताया और उसका जप करनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर अपने अनुचरोंको सावधानीके साथ अर्जुनकी रक्षा



करनेका आदेश देकर वे अर्जुनसे बोले—'भद्र! तुम्हें कभी भी प्रमादपूर्वक राज्य नहीं करना चाहिये। परंतप! यह विद्या तुम्हारे लिये श्रेयस्करी होगी। साधकको सर्वथा धैर्य धारण किये रहना चाहिये, रक्षक तो भगवान् शिव हैं ही। वे सम्पत्तियाँ और फल (मोक्ष) दोनों समानरूपसे देंगे। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर देवराज इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको लौट गये। तब महावीर अर्जुनने भी सुरेश्वरको प्रणाम किया और फिर वे मनको वशमें करके इन्द्रके उपदेशानुसार शिवजीके उद्देश्यसे तपस्या करने लगे।

(अध्याय ३३—३८)

किरातावतारके प्रसङ्गमें मूक नामक दैत्यका शूकर-रूप धारण करके अर्जुनके पास आना, शिवजीका किरातवेषमें प्रकट होना और अर्जुन तथा किरातवेषधारी शिवद्वारा उस दैत्यका वध

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर अर्जुन व्यासजीके उपदेशानुसार विधिपूर्वक स्नान तथा न्यास आदि करके परम भक्तिके साथ शिवजीका ध्यान करने लगे। उस समय वे एक श्रेष्ठ मुनिकी भाँति एक ही पैरके बलपर खड़े हो सूर्यकी ओर एकाग्र दृष्टि करके खड़े-खड़े मन्त्र जप कर रहे थे। इस प्रकार वे परम प्रेमपूर्वक मन-ही-मन शिवजीका

स्मरण करके शम्भुके सर्वोत्कृष्ट पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए घोर तप करने लगे। उस तपस्याका ऐसा उत्कृष्ट तेज प्रकट हुआ, जिससे देवगण विस्मित हो गये। पुनः वे शिवजीके पास गये और समाहित चित्तसे बोले।

देवताओंने कहा—सर्वेश ! एक मनुष्य आपके लिये तपस्यामें निरत है। प्रभो ! वह व्यक्ति जो कुछ चाहता है, उसे आप दे क्यों नहीं देते ?

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर देवताओंने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। फिर उनके चरणोंकी ओर दृष्टि लगाकर वे विनम्रभावसे खड़े हो गये। तब उदारबुद्धि एवं प्रसन्नात्मा महाप्रभु शिवजी उस वचनको सुनकर ठठाकर हँस पड़े और देवताओंसे इस प्रकार बोले।

शिवजीने कहा—देवताओ ! अब तुमलोग अपने स्थानको लौट जाओ। मैं सब तरहसे तुमलोगोंका कार्य सम्पन्न करूँगा। यह बिल्कुल सत्य है, इसमें संदेहकी गुंजाइश नहीं है।

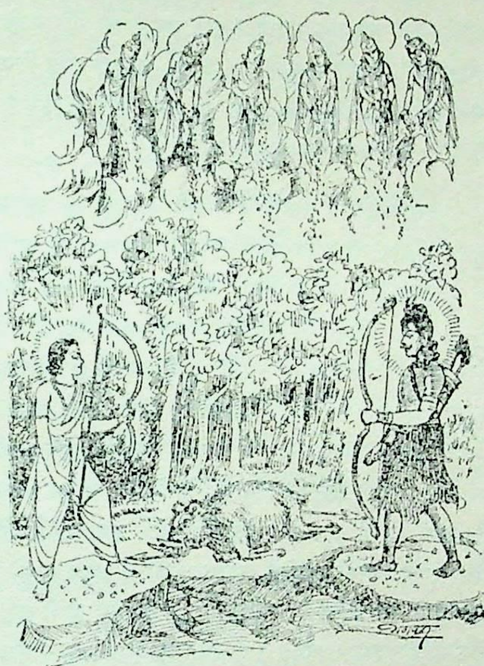
नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके उस वचनको सुनकर देवताओंको पूर्णतया निश्चय हो गया। तब वे सब अपने स्थानको लौट गये। इसी समय मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारण करके वहाँ आया। विप्रेन्द्र ! उसे उस समय मायावी दुरात्मा दुर्योधनने अर्जुनके पास भेजा था। वह जहाँ अर्जुन स्थित थे, उसी मार्गसे अत्यन्त वेगपूर्वक पर्वत-शिखरोंको उखाड़ता, वृक्षोंको छिन्न-भिन्न करता तथा अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ आया। तब अर्जुनकी भी दृष्टि उस मूक नामक असुरपर पड़ी, वे शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके यों विचार करने लगे।

अर्जुनने (मन-ही-मन) कहा—'यह कौन है और कहाँसे आ रहा है ! यह तो क्रूरकर्मा दिखायी पड़ रहा है। निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये आ रहा है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; क्योंकि जिसका दर्शन होनेपर अपना मन प्रसन्न हो जाय, वह निश्चय ही अपना हितैषी है और जिसके दीखनेपर मन व्याकुल हो जाय, वह शत्रु ही है। आचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वार्तालापसे शास्त्रज्ञानका और नेत्रसे स्नेहका परिचय मिलता है। आकारसे, चाल-ढालसे, चेष्टासे, बोलनेसे तथा नेत्र और मुखके विकारसे मनके भीतरका भाव जाना जाता है। नेत्र चार प्रकारके कहे गये हैं—उज्ज्वल, सरस, तिरछे और लाल। विद्वानोंने इनका भाव भी पृथक्-पृथक् बतलाया है। नेत्र मित्रका संयोग होनेपर उज्ज्वल, पुत्रदर्शनके समय सरस, कामिनीके प्राप्त होनेपर वक्र और शत्रुके दीख जानेपर लाल हो जाते हैं। (इस नियमके अनुसार) इसे देखते ही मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो उठी हैं, अतः यह निस्संदेह शत्रु ही है और मार डालने योग्य है। इधर मेरे लिये गुरुजी-की आज्ञा भी ऐसी है कि राजन् ! जो तुम्हें कष्ट देनेके लिये उद्यत हो, उसे तुम बिना किसी प्रकारका विचार किये अवश्य मार डालना तथा मैंने इसीलिये आयुध भी तो धारण कर रक्खा है।' यों विचारकर अर्जुन बाणका संधान करके वहीं डटकर खड़े हो गये।

इसी बीच भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षा, उनकी भक्तिकी परीक्षा और उस दैत्यका नाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय उनके साथ गणोंका यूथ भी था और वे महान् अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारण किये हुए थे। उनकी काछ बँधी थी और उन्होंने वस्त्रखण्डोंसे ईशानध्वज बाँध रक्खा था। उनके शरीरपर श्वेत धारियाँ चमक रही थीं, पीठपर बाणोंसे भरा हुआ तरकस बँधा था और वे स्वयं धनुष-बाण धारण किये हुए थे। उनका गण-यूथ भी वैसी ही साज-सज्जासे युक्त था। इस प्रकार शिव भिल्लराज बने हुए थे। वे सेनाध्यक्ष होकर तरह-तरहके शब्द करते हुए आगे बढ़े। इतनेमें सूअरकी गुर्राहटका शब्द दसों दिशाओंमें गूँज उठा। उस शब्दसे पर्वत आदि सभी जड पदार्थ झन्ना उठे। तब उस वनेचरके शब्दसे घबराकर अर्जुन सोचने लगे—'अहो ! क्या ये भगवान् शिव तो नहीं हैं, जो यहाँ शुभ करनेके लिये पधारे हैं; क्योंकि मैंने पहलेसे ही ऐसा सुन रक्खा है। पुनः श्रीकृष्ण और व्यासजीने भी ऐसा ही कहा है तथा देवताओंने भी बारंबार स्मरण करके ऐसी ही घोषणा की है कि शिवजी कल्याणकर्ता और सुखदाता हैं। वे मुक्ति प्रदान करनेके कारण मुक्तिदाता कहे जाते हैं। उनका नामस्मरण करनेसे मनुष्योंका निश्चय ही कल्याण होता है। जो लोग सर्वभावसे उनका भजन करते हैं, उन्हें स्वप्नमें भी दुःखका दर्शन नहीं होता। यदि कदाचित् कुछ दुःख आ ही जाता है तो उसे कर्मजनित समझना चाहिये। सो भी बहुतकी आशङ्का होनेपर भी थोड़ा होता है। अथवा उसे विशेषरूपसे प्रारब्धका ही दोष मानना चाहिये। अथवा कभी-कभी भगवान् शंकर अपनी इच्छासे थोड़ा या अधिक दुःख भुगताकर फिर निस्संदेह उसे दूर कर देते हैं। वे विषको अमृत और अमृतको विष बना देते हैं। यों जैसी

उनकी इच्छा होती है, वैसा वे करते हैं। भला, उन समर्थको कौन मना कर सकता है। अन्यान्य प्राचीन भक्तोंकी भी ऐसी ही धारणा थी, अतः भावी भक्तोंको सदा इसी विचारपर अपने मनको स्थिर रखना चाहिये। लक्ष्मी रहे अथवा चली जाय, मृत्यु आँखोंके सामने ही क्यों न उपस्थित हो जाय, लोग निन्दा करें अथवा प्रशंसा; परंतु शिवभक्तिसे दुःखोंका विनाश होता ही है। शंकर अपने भक्तोंको, चाहे वे पापी हों या पुण्यात्मा, सदा सुख देते हैं। यदि कभी वे परीक्षाके लिये भक्तको कष्टमें डाल देते हैं तो अन्तमें दयालुस्वभाव होनेके कारण वे ही उसके सुखदाता भी होते हैं। फिर तो वह भक्त उसी प्रकार निर्मल हो जाता है, जैसे आगमें तपाया हुआ सोना शुद्ध हो जाता है। इसी तरहकी बातें मैंने पहले भी मुनियोंके मुखसे सुन रक्खी हैं; अतः मैं शिवजीका भजन करके उसीसे उत्तम सुख प्राप्त करूँगा।'

अर्जुन यों विचार कर ही रहे थे, तबतक बाणका लक्ष्यभूत वह सूअर वहाँ आ पहुँचा। उधर शिवजी भी उस सूअरके पीछे लगे हुए दीख पड़े। उस समय उन दोनोंके मध्यमें वह शूकर अद्भुत शिखर-सा दीख रहा था। उसकी बड़ी महिमा भी कही गयी है। तब भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े। इसी समय उन दोनोंने उस शूकरपर बाण चलाया। शिवजीके बाणका लक्ष्य उसका पुच्छभाग था और अर्जुनने उसके मुखको अपना निशाना बनाया था। शिवजी-का बाण उसके पुच्छभागसे प्रवेश करके मुखके रास्ते निकल गया और शीघ्र ही भूमिमें विलीन हो गया। तथा अर्जुनका बाण उसके पिछले भागसे निकलकर बगलमें ही गिर पड़ा। तब वह शूकररूपधारी दैत्य उसी क्षण मरकर भूतलपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। उन्होंने पहले तो जय-जयकार करते हुए पुष्पोंकी वृष्टि की, फिर वे बारंबार नमस्कार करके स्तुति करने लगे। उस समय उन दोनोंने दैत्यके उस क्रूर रूपकी ओर दृष्टिपात किया। उसे देखकर शिवजीका मन संतुष्ट हो गया और अर्जुनको महान्



सुख प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अर्जुन मन-ही-मन विशेषरूपसे सुखका अनुभव करते हुए कहने लगे—'अहो! यह श्रेष्ठ दैत्य परम अद्भुत रूप धारण करके मुझे मारनेके लिये ही आया था, परंतु शिवजीने ही मेरी रक्षा की है। निस्संदेह उन परमेश्वरने ही आज (इसे मारनेके लिये) मेरी बुद्धिको प्रेरित किया है।' ऐसा विचारकर अर्जुनने शिव-नामसंकीर्तन किया और फिर बारंबार उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की।

(अध्याय ३९)

अर्जुन और शिवदूतका वार्तालाप, किरातवेषधारी शिवजीके साथ अर्जुनका युद्ध, पहचाननेपर अर्जुनद्वारा शिव-स्तुति, शिवजीका अर्जुनको वरदान देकर अन्तर्धान होना, अर्जुनका आश्रमपर लौटकर भाइयोंसे मिलना, श्रीकृष्णका अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारना

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महाज्ञानी सनत्कुमारजी! अब परमात्मा शिवकी उस लीलाको श्रवण करो, जो भक्त-वत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़तासे भरी हुई है। तदनन्तर शिवजीने उस बाणको लानेके लिये तुरंत ही अपने अनुचरको भेजा। उधर अर्जुन भी उसी निमित्त वहाँ आये। इस प्रकार एक ही समयमें रुद्रानुचर तथा अर्जुन दोनों बाण उठानेके लिये वहाँ पहुँचे। तब अर्जुनने उसे डरा-धमकाकर अपना बाण उठा लिया। यह देखकर उस अनुचरने कहा—'ऋषि-सत्तम! आप क्यों इस बाणको ले रहे हैं? यह हमारा सायक है, इसे छोड़ दीजिये।' भिल्लराजके उस अनुचरद्वारा यों

कहे जानेपर मुनिश्रेष्ठ अर्जुनने शंकरजीका स्मरण किया और इस प्रकार कहा।

अर्जुन बोले—वनेचर ! तू बड़ा मूर्ख है। तू बिना समझे-बूझे क्या बक रहा है ? इस बाणको तो मैंने अभी-अभी छोड़ा है, फिर यह तेरा कैसे ? इसकी धारियों तथा पिच्छोंपर मेरा ही नाम अङ्कित है, फिर यह तेरा कैसे हो गया ? ठीक है, तेरा कुटिल-स्वभाव छूटना कठिन है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनका वह कथन सुनकर भिल्लरूपी गणेश्वरको हँसी आ गयी। तब वह ऋषिरूपमें वर्तमान अर्जुनको यों उत्तर देते हुए बोला—'रे तापस ! सुन। जान पड़ता है, तू तपस्या नहीं कर रहा है, केवल तेरा वेष ही तपस्वीका है; क्योंकि सच्चा तपस्वी छल-कपट नहीं करता। भला, जो मनुष्य तपस्यामें निरत होगा, वह कैसे मिथ्या भाषण करेगा एवं कैसे छल करेगा। अरे तू मुझे अकेला मत समझ। तुझे ज्ञात होना चाहिये कि मैं एक सेनाका अधिपति हूँ। हमारे स्वामी बहुत-से वनचारी भीलोंके साथ वहाँ बैठे हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। यह बाण, जिसे तूने अभी उठा लिया है, उन्हींका है। यह बाण कभी तेरे पास टिक नहीं सकेगा। तापस ! तू क्यों अपनी तपस्याका फल नष्ट करना चाहता है ? मैंने तो ऐसा सुन रक्खा है कि चोरी करनेसे, छलपूर्वक किसीको कष्ट पहुँचानेसे, विस्मय करनेसे तथा सत्यका त्याग करनेसे प्राणीका तप क्षीण हो जाता है—यह बिल्कुल सत्य है।* ऐसी दशामें तुझे अब तपका फल कैसे प्राप्त होगा ? उस बाणको ले लेनेसे तू तपसे च्युत तथा कृतघ्न हो जायगा; क्योंकि निश्चय ही यह मेरे स्वामीका बाण है और तेरी रक्षाके लिये ही उन्होंने इसे छोड़ा था। इस बाणसे तो उन्होंने शत्रुको मार ही डाला और फिर बाणको भी सुरक्षित रक्खा। तू तो महान् कृतघ्न तथा तपस्यामें अमङ्गल करनेवाला है। जब तू सत्य नहीं बोल रहा है, तब फिर इस तपसे सिद्धिकी अभिलाषा कैसे करता है ? अथवा यदि तुझे बाणसे ही प्रयोजन है तो मेरे स्वामीसे माँग ले। वे स्वयं इस प्रकारके बहुत-से बाण तुझे दे सकते हैं। मेरे स्वामी आज यहाँ वर्तमान हैं। तू उनसे क्यों नहीं याचना करता ? तू जो उपकारका परित्याग करके अपकार करना चाहता है तथा अभी-अभी कर रहा है, यह तेरे लिये उचित नहीं है। तू चपलता छोड़ दे।'

इसपर कुपित होकर अर्जुनने उससे कई बातें कहीं। दोनोंमें बड़ा विवाद हुआ। अन्तमें अर्जुनने कहा—'वनचारी भील ! तू मेरी सार बात सुन ले। जिस समय तेरा स्वामी आयेगा, उस समय मैं उसे उसका फल चखाऊँगा। तेरे साथ युद्ध करना तो मुझे शोभा नहीं देता, अतः मैं तेरे स्वामीके साथ ही लोहा लूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का युद्ध उपहासास्पद ही माना जाता है। भील ! तूने मेरी बात तो सुन ही ली, अब तू मेरे महान् बलको भी देखेगा। जा, अपने स्वामीके पास लौट जा अथवा जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा कर।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनके यों कहनेपर वह भील जहाँ शिवावतार सेनापति किरात विराजमान थे, वहाँ गया और उन भिल्लराजसे अर्जुनका सारा वचन विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसकी बात सुनकर उन किरातेश्वरको महान् हर्ष हुआ। तब भीलरूपधारी भगवान् शंकर अपनी सेनाके साथ वहाँ गये। उधर पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी जब किरातकी उस सेनाको देखा, तब वे भी धनुष-बाण ले सामने आकर डट गये। तदनन्तर किरातने पुनः उस दूतको भेजा और उसके द्वारा भरतवंशी महात्मा अर्जुनसे यों कहलवाया।

किरातने कहा—तपस्विन् ! तनिक इस सेनाकी ओर तो दृष्टिपात करो। अरे ! अब तुम बाण छोड़कर जल्दी भाग जाओ। क्यों तुम इस समय एक सामान्य कामके लिये प्राण गँवाना चाहते हो ? तुम्हारे भाई दुःखसे पीड़ित हैं, स्त्री तो उनसे भी बढ़कर दुखी है। मेरा तो ऐसा विचार है कि ऐसा करनेसे पृथ्वी भी तुम्हारे हाथसे चली जायगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! जब अर्जुनकी सब तरहसे रक्षा करनेके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शम्भुने उनकी भक्तिकी दृढ़ताकी परीक्षाके निमित्त ऐसी बात कही, तब वह शिव-दूत उसी समय अर्जुनके पास पहुँचा और उसने वह सारा वृत्तान्त उनसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसकी बात सुनकर अर्जुनने उस समागत दूतसे पुनः कहा—'दूत ! तुम जाकर अपने सेनापतिसे कहो कि तुम्हारे कथनानुसार करनेसे सारी बातें विपरीत हो जायँगी। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे देता हूँ तो निस्संदेह मैं अपने कुलको दूषित करनेवाला सिद्ध

---

* चौर्याच्छलार्थमानाच्च विसयात्सत्यभञ्जनात् ॥
तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम् ।
(शि० पु० शतरुद्रसंहिता ४० । १३-१४)

होऊँगा। इसलिये भले ही मेरे भाई दुःखार्त हो जायँ तथा मेरी सारी विद्याएँ निष्फल हो जायँ, परंतु तुम आओ तो सही। मैंने ऐसा कभी नहीं सुना है कि कहीं सिंह गीदड़से डर गया हो। इसी प्रकार राजा (क्षत्रिय) कभी भी वनेचरसे भयभीत नहीं हो सकता।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! अर्जुनके यों कहनेपर वह दूत पुनः अपने स्वामीके पास लौट गया और उसने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें उसके सामने विशेषरूपसे निवेदन कर दीं। उन्हें सुनकर किरातवेषधारी सेनानायक महादेवजी अपनी सेनाके साथ अर्जुनके सम्मुख आये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया। फिर निकट जाकर उनके साथ अत्यन्त भीषण संग्राम छेड़ दिया। इस प्रकार गणों-सहित महादेवजीके साथ अर्जुनका घोर युद्ध हुआ। अन्तमें



अर्जुनने शिवजीके चरणकमलका ध्यान किया। उनका ध्यान करनेसे अर्जुनका बल बढ़ गया। तब वे शंकरजीके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घुमाने लगे। उस समय भक्तवत्सल महादेवजी हँस रहे थे। मुने! भक्तपराधीन होनेके कारण वे अर्जुनको अपनी दासता प्रदान करना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने ऐसी लीला रची थी; अन्यथा ऐसा होना सर्वथा असम्भव था। तत्पश्चात् शंकरजीने भक्तपरवशताके कारण मुसकराकर वहीं अपना सौम्य एवं अद्भुत रूप सहसा प्रकट कर दिया। पुरुषोत्तम! शिवजीका जो स्वरूप वेदों, शास्त्रों तथा पुराणोंमें वर्णित है तथा व्यासजीने अर्जुनको ध्यान करनेके लिये जिस सर्वसिद्धिदाता रूपका उपदेश दिया था, शिवजीने वही रूप दिखाया। तब ध्यानद्वारा प्राप्त होनेवाले शिवजीके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। फिर वे लज्जित होकर स्वयं पश्चात्ताप करने लगे—'अहो! जिनको मैंने प्रमुखरूपसे वरण किया है, वे त्रिलोकीके अधीश्वर कल्याणकर्ता साक्षात् स्वयं शिव तो ये ही हैं। हाय! इस समय मैंने यह क्या कर डाला? अहो! भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है। वह बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहमें डाल देती है (फिर मेरी तो बिसात ही क्या है)। उन्हीं प्रभुने अपने रूपको छिपाकर यह कौन-सी लीला रची है? मैं तो उनके द्वारा छला गया।' इस प्रकार अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके अर्जुनने प्रेमपूर्वक हाथ जोड़ एवं मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया, फिर खिन्नमनसे यों कहा।

अर्जुन बोले—देवाधिदेव महादेव! आप तो बड़े कृपालु तथा भक्तोंके कल्याणकर्ता हैं। सर्वेश! आपको मेरा अपराध क्षमा कर देना चाहिये। इस समय आपने अपने रूपको छिपाकर यह कौन-सा खेल किया है? आपने तो मुझे छल लिया। प्रभो! आप स्वामीके साथ युद्ध करनेवाले मुझको धिक्कार है!

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनको महान् पश्चात्ताप हुआ। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही महाप्रभु शंकरजीके चरणोंमें लोट गये। यह देखकर भक्तवत्सल महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। तब वे अर्जुनको अनेकों प्रकारसे आश्वासन देकर यों बोले।

शंकरजीने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परम भक्त हो, अतः खेद न करो। यह तो मैंने आज तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रची थी, इसलिये तुम शोक त्याग दो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर भगवान शिवने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर अर्जुनको उठा लिया और अपने तथा गणोंके समक्ष उनकी लाजका निवारण किया। फिर भक्तवत्सल भगवान् शंकर वीरोंमें मान्य पाण्डुपुत्र अर्जुनको सब तरहसे हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक बोले।

शिवजीने कहा—पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! मैं तुमपर

परम प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम वर माँगो । इस समय तुमने जो मुझपर प्रहार एवं आघात किया है, उसे मैंने अपनी पूजा मान लिया है । साथ ही यह सब तो मैंने अपनी इच्छासे किया है । इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है । अतः तुम्हारी जो लालसा हो, वह माँग लो; क्योंकि मेरे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे लिये अदेय हो । यह जो कुछ हुआ है, वह शत्रुओंमें तुम्हारे यश और राज्यकी स्थापनाके लिये अच्छा ही हुआ है । तुम्हें इसका दुःख नहीं मानना चाहिये । अब तुम अपनी सारी घबराहट छोड़ दो ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! भगवान् शंकरके यों कहनेपर अर्जुन भक्तिपूर्वक सावधानीसे खड़े होकर शंकरजीसे बोले ।

अर्जुनने कहा—'शम्भो ! आप तो बड़े उत्तम स्वामी हैं, आपको भक्त बहुत प्रिय हैं । देव ! भला, मैं आपकी करुणाका क्या वर्णन कर सकता हूँ । सदाशिव ! आप तो बड़े कृपालु हैं ।' यों कहकर अर्जुनने महाप्रभु शंकरकी सद्भक्तियुक्त एवं वेदसम्मत स्तुति आरम्भ की ।

अर्जुन बोले—आप देवाधिदेवको नमस्कार है । कैलासवासिन् ! आपको प्रणाम है । सदाशिव ! आपको अभिवादन है । पञ्चमुख परमेश्वर ! आपको मैं सिर झुकाता हूँ । आप जटाधारी तथा तीन नेत्रोंसे विभूषित हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । आप प्रसन्नरूपवाले तथा सहस्रों मुखोंसे युक्त हैं, आपको प्रणाम है । नीलकण्ठ ! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो । मैं सद्योजातको अभिवादन करता हूँ । वामाङ्गमें गिरिजाको धारण करनेवाले वृषध्वज ! आपको प्रणाम है । दश भुजाधारी आप परमात्माको पुनः-पुनः अभिवादन है । आपके हाथोंमें डमरू और कपाल शोभा पाते हैं तथा आप मुण्डोंकी माला धारण करते हैं, आपको नमस्कार है । आपका श्रीविग्रह शुद्ध स्फटिक तथा निर्मल कर्पूरके समान गौर वर्णका है, हाथमें पिनाक सुशोभित है, तथा आप उत्तम त्रिशूल धारण किये हुए हैं; आपको प्रणाम है । गङ्गाधर ! आप व्याघ्रचर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र लपेटनेवाले हैं, आपके अङ्गोंमें नाग लिपटे रहते हैं; आपको बारंबार अभिवादन है । सुन्दर लाल-लाल चरणोंवाले आपको नमस्कार है । नन्दी आदि गणोंद्वारा सेवित आप गणनायकको प्रणाम है । जो गणेशस्वरूप हैं, कार्तिकेय जिनके अनुगामी हैं, जो भक्तोंको भक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन आपको पुनः-पुनः नमस्कार है । आप निर्गुण, सगुण, रूपरहित, रूपवान्, कलायुक्त तथा निष्कल हैं; आपको मैं बारंबार सिर झुकाता हूँ । जिन्होंने मुझपर अनुग्रह करनेके लिये किरातवेष धारण किया है, जो वीरोंके साथ युद्ध करनेके प्रेमी तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, उन महेश्वरको प्रणाम है । जगत्में जो कुछ भी रूप दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब आपका ही तेज कहा जाता है । आप चिद्रूप हैं और अन्वयभेदसे त्रिलोकीमें रमण कर रहे हैं । जैसे धूलिकणोंकी, आकाशमें उदय हुई तारकाओंकी तथा बरसते हुए जलकी बूँदोंकी गणना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार आपके गुणोंकी भी संख्या नहीं है । नाथ ! आपके गुणोंकी गणना करनेमें तो वेद भी समर्थ नहीं हैं, मैं तो एक मन्दबुद्धि व्यक्ति हूँ; फिर मैं उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ । महेशान ! आप जो कोई भी हों, आपको मेरा नमस्कार है । महेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका दास हूँ; अतः आपको मुझपर कृपा करनी ही चाहिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनद्वारा किये गये इस स्तवनको सुनकर भगवान् शंकरका मन परम प्रसन्न हो गया । तब वे हँसते हुए पुनः अर्जुनसे बोले ।

शंकरजीने कहा—वत्स ! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम मेरी बात सुनो और अपना अभीष्ट वर माँग लो । इस समय तुम जो कुछ कहोगे, वह सब मैं तुम्हें प्रदान करूँगा ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महर्षे ! शंकरजीके यों कहनेपर अर्जुनने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो सदाशिवको प्रणाम किया और फिर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें कहना आरम्भ किया ।

अर्जुनने कहा—विभो ! आप तो स्वयं ही अन्तर्यामीरूपसे सबके अंदर विराजमान हैं (अतः घट-घटकी जाननेवाले हैं), ऐसी दशामें मैं क्या कहूँ; तथापि मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे आप सुनिये । भगवन् ! मुझपर शत्रुओंद्वारा जो संकट प्राप्त हुआ था, वह तो आपके दर्शनसे ही विनष्ट हो गया । अब जिस प्रकार मुझे इस लोककी परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर अर्जुनने भक्तवत्सल भगवान् शंकरको नमस्कार किया और फिर वे हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए उनके निकट खड़े हो गये । जब स्वामी शिवजीको यह ज्ञात हो गया कि यह पाण्डुपुत्र

अर्जुन मेरा अनन्य भक्त है, तब वे भी परम प्रसन्न हुए । फिर उन महेश्वरने अपने पाशुपत नामक अस्त्रको, जो सर्वथा समस्त प्राणियोंके लिये दुर्जय है, अर्जुनको दे दिया और इस प्रकार कहा ।



शिवजी बोले—वत्स ! मैंने तुम्हें अपना महान् अस्त्र दे दिया । इसे धारण करनेसे अब तुम समस्त शत्रुओंके लिये अजेय हो जाओगे । जाओ, विजय-लाभ करो । साथ ही मैं श्रीकृष्णसे भी कहूँगा, वे तुम्हारी सहायता करेंगे; क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे आत्मस्वरूप, भक्त और मेरा कार्य करनेवाले हैं । भारत ! मेरे प्रभावसे तुम निष्कण्टक राज्य भोगो और अपने भाई युधिष्ठिरसे सर्वदा नाना प्रकारके धर्मकार्य कराते रहो ।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शंकरजीने अर्जुनके मस्तकपर अपना कर-कमल रख दिया और अर्जुन-द्वारा पूजित हो वे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार भगवान् शंकरसे वरदान और अस्त्र पाकर अर्जुनका मन प्रसन्न हो गया । तब वे अपने मुख्य गुरु शिवका भक्तिपूर्वक स्मरण करते हुए अपने आश्रमको लौट गये । वहाँ अर्जुनसे मिलकर सभी भाइयोंको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ मानो मृतक शरीरमें प्राणका संचार हो गया हो । उत्तम व्रतका पालन करनेवाली द्रौपदीको अत्यन्त सुख मिला । जब उन पाण्डवोंको यह ज्ञात हुआ कि शिवजी परम संतुष्ट हो गये हैं, तब उनके हर्षका पार नहीं रहा । उन्हें उस सम्पूर्ण वृत्तान्तके सुननेसे तृप्ति ही नहीं होती थी । उस समय उस आश्रममें महामनस्वी पाण्डवोंका भला करनेके लिये चन्दनयुक्त पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी । तब उन्होंने हर्षपूर्वक सम्पत्तिदाता तथा कल्याणकर्ता शिवको नमस्कार किया और (तेरह वर्षकी) अवधिको समाप्त हुई जानकर यह निश्चय किया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी । इसी अवसरपर जब श्रीकृष्णको पता चला कि अर्जुन लौटकर आ गये हैं, तब यह समाचार सुनकर उन्हें बड़ा सुख मिला और वे अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारे तथा कहने लगे कि 'इसीलिये मैंने कहा था कि शंकरजी सम्पूर्ण कष्टोंका विनाश करनेवाले हैं । मैं नित्य उनकी सेवा करता हूँ, अतः आपलोग भी उनकी सेवा करें ।' मुने ! इस प्रकार मैंने शंकरजीके किरात नामक अवतारका वर्णन किया । जो इसे सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । (अध्याय ४०-४१)

शिवजीके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गावतारोंका सविस्तर वर्णन

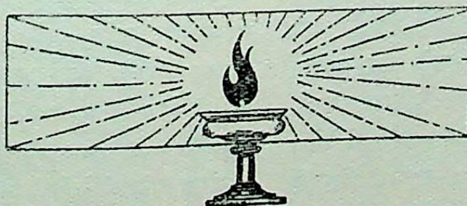
नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अब तुम सर्वव्यापी भगवान् शंकरके बारह अन्य ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपी अवतारोंका वर्णन श्रवण करो, जो अनेक प्रकारके मङ्गल करनेवाले हैं । (उनके नाम ये हैं—) सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओंकारमें अमरेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश्वर, सेतुबन्धपर रामेश्वर और शिवालयमें घुश्मेश्वर । मुने ! परमात्मा शम्भुके ये ही वे बारह अवतार हैं । ये दर्शन और स्पर्श करनेसे मनुष्योंको सब प्रकारका आनन्द प्रदान करते हैं । मुने ! उनमें पहला अवतार सोमनाथका है । यह चन्द्रमाके दुःखका विनाश करनेवाला है । इनका पूजन करनेसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका नाश हो जाता है । यह सोमेश्वर नामक शिवावतार सौराष्ट्र नामक पावन प्रदेशमें लिङ्गरूपसे

स्थित है। पूर्वकालमें चन्द्रमाने इनकी पूजा की थी। वहीं सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला एक चन्द्रकुण्ड है, जिसमें स्नान करनेसे बुद्धिमान् मनुष्य सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त हो जाता है। परमात्मा शिवके सोमेश्वर नामक महालिङ्गका दर्शन करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है और उसे भोग और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। तात! शंकरजीका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ। वह भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। मुने! भगवान् शिव परम प्रसन्नतापूर्वक अपने निवासभूत कैलासगिरिसे लिङ्गरूपमें श्रीशैलपर पधारे हैं। पुत्र-प्राप्तिके लिये इनकी स्तुति की जाती है। मुने! यह जो दूसरा ज्योतिर्लिङ्ग है, वह दर्शन और पूजन करनेसे महा सुखकारक होता है और अन्तमें मुक्ति भी प्रदान कर देता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तात! शंकरजीका महाकाल नामक तीसरा अवतार उज्जयिनी नगरीमें हुआ। वह अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है। एक बार रत्नमाल-निवासी दूषण नामक असुर, जो वैदिक धर्मका विनाशक, विप्रद्रोही तथा सब कुछ नष्ट करनेवाला था, उज्जयिनीमें जा पहुँचा। तब वेद नामक ब्राह्मणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। फिर तो शंकरजीने तुरंत ही प्रकट होकर हुंकारद्वारा उस असुरको भस्म कर दिया। तत्पश्चात् अपने भक्तोंका सर्वथा पालन करनेवाले शिव देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे वहीं प्रतिष्ठित हो गये। इन महाकाल नामक लिङ्गका प्रयत्नपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें उसे परम गति प्राप्त होती है। परम आत्मबलसे सम्पन्न परमेश्वर शम्भुने भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला ओंकार नामक चौथा अवतार धारण किया। मुने! विन्ध्यगिरिने भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे शिवजीका पार्थिवलिङ्ग स्थापित किया। उसी लिङ्गसे विन्ध्यका मनोरथ पूर्ण करनेवाले महादेव प्रकट हुए। तब देवताओंके प्रार्थना करनेपर भुक्ति-मुक्तिके प्रदाता भक्तवत्सल लिङ्गरूपी शंकर वहाँ दो रूपोंमें विभक्त हो गये। मुनीश्वर! उनमें एक भाग ओंकारमें ओंकारेश्वर नामक उत्तम लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पार्थिव लिङ्ग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुने! इन दोनोंमें जिस किसीका भी दर्शन-पूजन किया जाय, उसे भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला समझना चाहिये। महामुने! इस प्रकार मैंने तुम्हें इन दोनों महादिव्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन सुना दिया। परमात्मा शिवके पाँचवें अवतारका नाम है केदारेश। वह केदारमें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित है। मुने! वहाँ श्रीहरिके जो नर-नारायण नामक अवतार हैं, उनके प्रार्थना करनेपर शिवजी हिमगिरिके केदारशिखरपर स्थित हो गये। वे दोनों उस केदारेश्वर लिङ्गकी नित्य पूजा करते हैं। वहाँ शम्भु दर्शन और पूजन करनेवाले भक्तोंके अभीष्ट प्रदान करते हैं। तात! सर्वेश्वर होते हुए भी शिव इस खण्डके विशेषरूपसे स्वामी हैं। शिवजीका यह अवतार सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्रदान करनेवाला है। महाप्रभु शम्भुके छठे अवतारका नाम भीमशंकर है। इस अवतारमें उन्होंने बड़ी-बड़ी लीलाएँ की हैं और भीमासुरका विनाश किया है। कामरूप देशके अधिपति राजा सुदक्षिण शिवजीके भक्त थे। भीमासुर उन्हें पीड़ित कर रहा था। तब शंकरजीने अपने भक्तको दुःख देनेवाले उस अद्भुत असुरका वध करके उनकी रक्षा की। फिर राजा सुदक्षिणके प्रार्थना करनेपर स्वयं शंकरजी डाकिनीमें भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे स्थित हो गये। मुने! जो समस्त ब्रह्माण्डस्वरूप तथा भोग मोक्षका प्रदाता है, वह विश्वेश्वर नामक सातवाँ अवतार काशीमें हुआ। मुक्तिदाता सिद्धस्वरूप स्वयं भगवान् शंकर अपनी पुरी काशीमें ज्योतिर्लिङ्गरूपमें स्थित हैं। विष्णु आदि सभी देवता, कैलासपति शिव और भैरव नित्य उनकी पूजा करते हैं। जो काशी-विश्वनाथके भक्त हैं और नित्य उनके नामोंका जप करते रहते हैं, वे कर्मोंसे निर्लिप्त होकर कैवल्य-पदके भागी होते हैं। चन्द्रशेखर शिवका जो त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार है, वह गौतम ऋषिके प्रार्थना करनेपर गौतमी नदीके तटपर प्रकट हुआ था। गौतमकी प्रार्थनासे उन मुनिको प्रसन्न करनेके लिये शंकरजी प्रेमपूर्वक ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूपसे वहाँ अचल होकर स्थित हो गये। अहो! उन महेश्वरका दर्शन और स्पर्श करनेसे सारी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। तत्पश्चात् मुक्ति भी मिल जाती है। शिवजीके अनुग्रहसे शंकरप्रिया परम पावनी गङ्गा गौतमके स्नेहवश वहाँ गौतमी नामसे प्रवाहित हुई। उनमें नवाँ अवतार वैद्यनाथ नामसे प्रसिद्ध है। इस अवतारमें बहुत-सी विचित्र लीलाएँ करनेवाले भगवान् शंकर रावणके लिये आविर्भूत

हुए थे। उस समय रावणद्वारा अपने लाये जानेको ही कारण मानकर महेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूपसे चिता-भूमिमें प्रतिष्ठित हो गये। उस समयसे वे त्रिलोकीमें वैद्यनाथेश्वर नामसे विख्यात हुए। वे भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेवालेको भोग-मोक्षके प्रदाता हैं। मुने ! जो लोग इन वैद्यनाथेश्वर शिवके माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, उन्हें यह भुक्ति-मुक्तिका भागी बना देता है। दसवाँ नागेश्वरावतार कहलाता है। यह अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रादुर्भूत हुआ था। यह सदा दुष्टोंको दण्ड देता रहता है। इस अवतारमें शिवजीने दारुक नामक राक्षसको, जो धर्मघाती था, मारकर वैश्योंके स्वामी अपने सुप्रिय नामक भक्तकी रक्षा की थी। तत्पश्चात् बहुत-सी लीलाएँ करनेवाले वे परात्पर प्रभु शम्भु लोकोंका उपकार करनेके लिये अम्बिकासहित ज्योतिर्लिङ्ग-स्वरूपसे स्थित हो गये। मुने ! नागेश्वर नामक उस शिवलिङ्गका दर्शन तथा अर्चन करनेसे राशि-के-राशि महान् पातक तुरंत विनष्ट हो जाते हैं। मुने ! शिवजीका ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वरावतार कहलाता है। वह श्रीरामचन्द्रका प्रिय करनेवाला है। उसे श्रीरामने ही स्थापित किया था। जिन भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्न होकर श्रीरामको प्रेमपूर्वक विजयका वरदान दिया, वे ही लिङ्गरूपमें आविर्भूत हुए। मुने ! तब श्रीरामके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे सेतुबन्धपर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये। उस समय श्रीरामने उनकी भलीभाँति सेवा-पूजा की। रामेश्वरकी अद्भुत महिमाकी भूतलपर किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। यह सर्वदा भुक्ति-मुक्तिकी प्रदायिनी तथा भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली है। जो मनुष्य सद्भक्तिपूर्वक रामेश्वर लिङ्गको गङ्गाजलसे स्नान करायेगा, वह जीवन्मुक्त ही है। वह इस लोकमें जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, ऐसे सम्पूर्ण भोगोंको भोगनेके पश्चात् परम ज्ञानको प्राप्त होगा। फिर उसे कैवल्य मोक्ष मिल जायगा। घुश्मेश्वरावतार शंकरजीका बारहवाँ अवतार है। वह नाना प्रकारकी लीलाओंका कर्ता, भक्तवत्सल तथा घुश्माको आनन्द देनेवाला है। मुने ! घुश्माका प्रिय करनेके लिये भगवान् शंकर दक्षिण दिशामें स्थित देवशैलके निकटवर्ती एक सरोवरमें प्रकट हुए। मुने ! घुश्माके पुत्रको सुदेहाने मार डाला था। (उसे जीवित करनेके लिये घुश्माने शिवजीकी आराधना की।) तब उनकी भक्तिसे संतुष्ट होकर भक्तवत्सल शम्भुने उनके पुत्रको बचा लिया। तदनन्तर कामनाओंके पूरक शम्भु घुश्माकी प्रार्थनासे उस तड़ागमें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये! उस समय उनका नाम घुश्मेश्वर हुआ। जो मनुष्य उस शिवलिङ्गका भक्तिपूर्वक दर्शन तथा पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति-लाभ करता है। सनत्कुमारजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे इस बारह दिव्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन किया। ये सभी भोग और मोक्षके प्रदाता हैं। जो मनुष्य ज्योतिर्लिङ्गोंकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भोग-मोक्षको प्राप्त करता है। इस प्रकार मैंने इस शतरुद्रनामकी संहिताका वर्णन कर दिया। यह शिवके सौ अवतारोंकी उत्तम कीर्तिसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। जो मनुष्य इसे नित्य समाहितचित्तसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी सारी लालसाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें उसे निश्चय ही मुक्ति मिल जाती है।

(अध्याय ४२)

॥ शतरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥



कोटिरुद्रसंहिता

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंका वर्णन एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमा

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥ १ ॥

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे ही विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपाकटाक्षके ही वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर अद्वितीय आत्मज्ञानानन्द-स्वरूपमें ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम् ॥ २ ॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुस्कानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिव-नामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुञ्ज सबका मङ्गल करे ॥२॥

ऋषि बोले—सूतजी ! आपने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त जो शिवावतारका माहात्म्य बताया है, वह बहुत ही उत्तम है । तात ! आप पुनः शिवके परम उत्तम माहात्म्यका तथा शिवलिङ्गकी महिमाका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये । आप शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं; अतः धन्य हैं । प्रभो ! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए भगवान् शिवके सुरम्य यशरूपी अमृतका अपने कर्णपुटोंद्वारा पान करके हम तृप्त नहीं हो रहे हैं, अतः फिर उसीका वर्णन कीजिये । व्यासशिष्य ! भूमण्डलमें, तीर्थ-तीर्थमें जो-जो शुभ लिङ्ग हैं अथवा अन्य स्थलोंमें भी जो-जो प्रसिद्ध शिवलिङ्ग विराजमान हैं, परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिङ्गोंका समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे आप वर्णन कीजिये ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! सम्पूर्ण तीर्थ लिङ्गमय हैं । सब कुछ लिङ्गमें ही प्रतिष्ठित है । उन शिवलिङ्गोंकी कोई गणना नहीं है, तथापि मैं उनका किंचित् वर्णन करता हूँ । जो कोई भी दृश्य देखा जाता है तथा जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही रूप है; कोई भी वस्तु शिवके स्वरूपसे भिन्न नहीं है । साधुशिरोमणियो ! भगवान् शम्भुने सब लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको लिङ्गरूपसे व्याप्त कर रक्खा है। समस्त लोकोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे ही भगवान् महेश्वर तीर्थ-तीर्थमें और अन्य स्थलोंमें भी नाना प्रकारके लिङ्ग धारण करते हैं । जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब अवतार ले कार्य करके वे स्थित हो गये; लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने स्वयं अपने स्वरूपभूत लिङ्गकी कल्पना की । उस लिङ्गकी पूजा करके शिवभक्त पुरुष अवश्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है । ब्राह्मणो ! भूमण्डलमें जो लिङ्ग हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती; तथापि मैं प्रधान-प्रधान शिवलिङ्गोंका परिचय देता हूँ । मुनिश्रेष्ठ शौनक ! इस भूतलपर जो मुख्य-मुख्य ज्योतिर्लिङ्ग हैं, उनका आज मैं वर्णन करता हूँ । उनका नाम सुननेमात्रसे पाप दूर हो जाता है । सौराष्ट्रमें सोमनाथ[1], श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन[2], उज्जैनीमें महाकाल[3], ओंकारतीर्थमें परमेश्वर[4], हिमालयके शिखर-

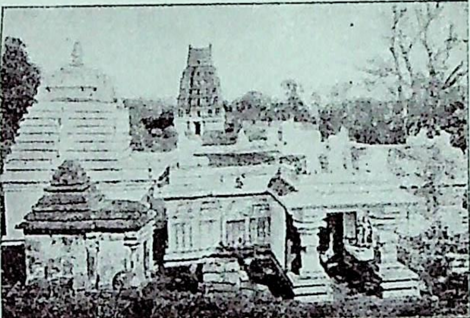
---

१. श्रीसोमनाथका दर्शन करनेके लिये काठियावाड़ प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें जाना चाहिये । २. श्रीमल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग जिस पर्वतपर विराजमान है, उसका नाम श्रीशैल या श्रीपर्वत है । यह स्थान मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णानदीके तटपर है । इसे दक्षिणका कैलास कहते हैं । ३. महाकाल या महाकालेश्वर मालवा प्रदेशमें क्षिप्रा नदीके तटपर उज्जैन नामक नगरीमें विराजमान है । उज्जैनको अवन्तिकापुरी भी कहते हैं । ४. इस शिवलिङ्गको ओंकारेश्वर भी कहते हैं । ओंकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है । उज्जैन-से खंडवा जानेवाली रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है । वहाँसे यह स्थान ७ मील दूर है । यहाँ ओंकारेश्वर और अमलेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं । परंतु दोनों एक ही ज्योतिर्लिङ्गके दो स्वरूप माने गये हैं ।

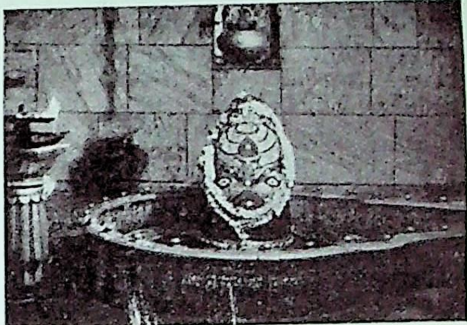
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—१



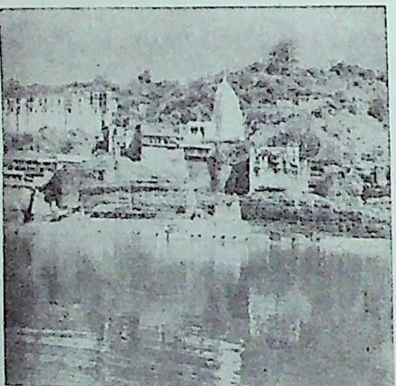
श्रीसोमनाथ, (प्रभासपाटण)　　श्रीसोमनाथ, (अहल्या-मन्दिर)



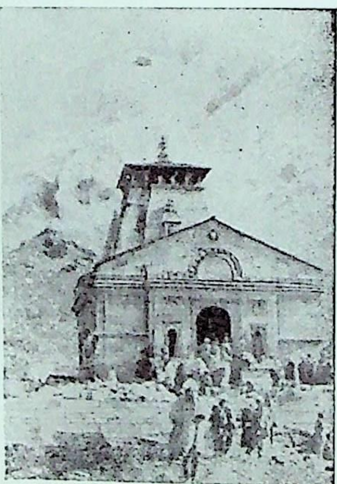
श्रीमल्लिकार्जुन-मन्दिर, श्रीशैलम्



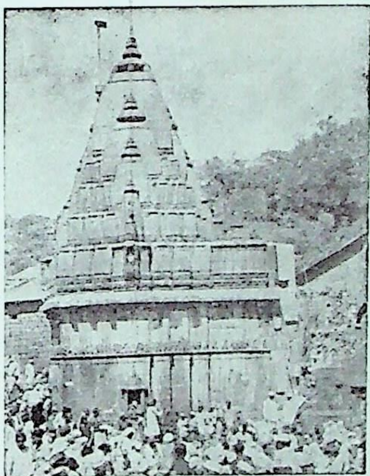
श्रीमहाकाल-ज्योतिर्लिङ्ग, उज्जैन



नर्मदा-तटपर श्रीओंकारेश्वर-मन्दिर



श्रीकेदारनाथ-मन्दिर

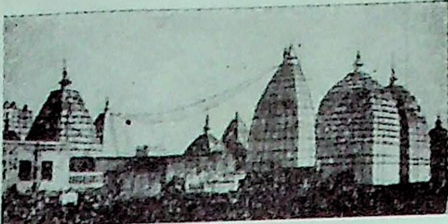


श्रीभीमाशङ्कर-मन्दिर [पृष्ठ ३३८-३३९]

द्वादश-ज्योतिर्लिङ्ग—२



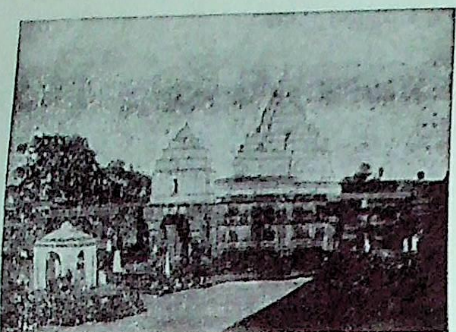
श्रीविश्वनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग, वाराणसी



श्रीवैद्यनाथ-धाम

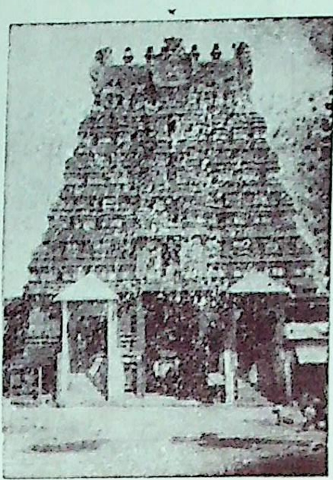


श्रीत्र्यम्बकेश्वर, नासिक

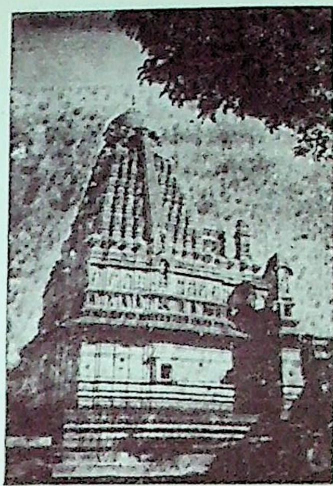


श्रीनागनाथ-मन्दिर

[पृष्ठ ३३८-३३९]



श्रीरामेश्वर-मन्दिर



श्रीघृष्णेश्वर-मन्दिर, वेरुल

पर केदार[5], डाकिनीमें भीमशङ्कर[6], वाराणसीमें विश्वनाथ[7], गोदावरीके तटपर त्र्यम्बक[8], चिताभूमिमें वैद्यनाथ[9], दारुकावनमें नागेश[10], सेतुबन्धमें रामेश्वर[11] तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर[12] का स्मरण करे। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त कर लेता है।*

मुनीश्वरो! जिस-जिस मनोरथको पानेकी इच्छा रखकर श्रेष्ठ मनुष्य इन बारह नामोंका पाठ करेंगे, वे इस लोक और परलोकमें उस मनोरथको अवश्य प्राप्त करेंगे। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्काम भावसे इन नामोंका पाठ करेंगे, उन्हें कभी माताके गर्भमें निवास नहीं करना पड़ेगा। इन सबके पूजन मात्रसे ही इहलोकमें समस्त वर्णोंके लोगोंके दुःखोंका नाश हो जाता है और परलोकमें उन्हें अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। इन बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य यत्नपूर्वक ग्रहण करना (खाना) चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके सारे पाप उसी क्षण जलकर भस्म हो जाते हैं।†

यह मैंने ज्योतिर्लिङ्गोंके दर्शन और पूजनका फल बताया। अब ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिङ्ग बताये जाते हैं। मुनीश्वरो! ध्यान देकर सुनो। सोमनाथका जो उपलिङ्ग है, उसका नाम अन्तकेश्वर है। वह उपलिङ्ग मही नदी और समुद्रके संगमपर स्थित है। मल्लिकार्जुनसे प्रकट उपलिङ्ग रुद्रेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह भृगुकक्षमें स्थित है और उपासकोंको सुख देनेवाला है। महाकालसम्बन्धी उपलिङ्ग दुग्धेश्वर या दूधनाथके नामसे प्रसिद्ध है। वह नर्मदाके तटपर है तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला कहा गया है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग कर्दमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह बिन्दु सरोवरके तटपर

---

५. श्रीकेदारनाथ या केदारेश्वर हिमालयके केदार नामक शिखरपर स्थित हैं। शिखरसे पूर्वकी ओर अलकनन्दाके तटपर श्रीबदरीनाथ अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील दूर है। ६. श्रीभीमशंकरका स्थान बम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे उसके उद्गमस्थान सह्य पर्वतपर है। यह स्थान लारीके रास्तेसे जानेपर नासिकसे लगभग १२० मील दूर है। सह्य पर्वतके उस शिखरका नाम, जहाँ इस ज्योतिर्लिङ्गका प्राचीन मन्दिर है, डाकिनी है। इससे अनुमान होता है कि कभी यहाँ डाकिनी और भूतोंका निवास था। शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग आसामके कामरूप जिलेमें गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर स्थित बताया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिलेके उज्जनक नामक स्थानमें एक विशाल शिवमन्दिर है, वही भीमशङ्करका स्थान है। ७. काशीके श्रीविश्वनाथजी तो प्रसिद्ध ही हैं। ८. यह ज्योतिर्लिङ्ग त्र्यम्बक या त्र्यम्बकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। बम्बई प्रान्तके नासिक जिलेमें नासिक पञ्चवटीसे १८ मील दूर गोदावरीके उद्गमस्थान ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीके तटपर ही इसकी स्थिति है। ९. यह स्थान संथाल परगनेमें ई० आई० रेलवेके जसीडीह स्टेशनके पास वैद्यनाथधामके नामसे प्रसिद्ध है। पुराणोंके अनुसार यही चिताभूमि है। कहीं-कहीं 'परल्यां वैद्यनाथं च' ऐसा पाठ मिलता है। इसके अनुसार परलीमें वैद्यनाथकी स्थिति है। दक्षिण हैदराबाद नगरसे इधर परभनी नामक एक जंकशन है। वहाँसे परलीतक एक ब्रांच लाइन गयी है। इस परली स्टेशनसे थोड़ी दूरपर परली गाँवके निकट श्रीवैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग है। १०. नागेश नामक ज्योतिर्लिङ्गका स्थान बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत गोमतीद्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। दारुकावन इसीका नाम है। कोई-कोई दारुकावनके स्थानमें 'दारुकावन' पाठ मानते हैं; इस पाठके अनुसार भी यही स्थान सिद्ध होता है; क्योंकि वह द्वारकाके निकट और उस क्षेत्रके अन्तर्गत है। कोई-कोई दक्षिण हैदराबादके अन्तर्गत औढ़ा ग्राममें स्थित शिवलिङ्गको ही नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है। ११. श्रीरामेश्वर तीर्थको ही सेतुबन्ध तीर्थ भी कहते हैं। यह स्थान मद्रास प्रान्तके रामनाथम् या रामनद जिलेमें है। यहाँ समुद्रके तटपर रामेश्वरका विशाल मन्दिर शोभा पाता है। १२. श्रीघुश्मेश्वरको घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहते हैं। इनका स्थान हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत दौलताबाद स्टेशनसे १२ मील दूर बेरूल गाँवके पास है। इस स्थानको ही शिवालय कहते हैं।

* सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥
(शि० पु० कोटिरु० सं० १। २१—२४)

† ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः।
तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्॥
(शि० पु० को० रु० सं० १। २८)

है और उपासकको सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है। केदारेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग भूतेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है और यमुना-तटपर स्थित है। जो लोग उसका दर्शन और पूजन करते हैं, उनके बड़े-से-बड़े पापोंका वह निवारण करनेवाला बताया गया है। भीमशंकरसम्बन्धी उपलिङ्ग भीमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह भी सह्य पर्वतपर ही स्थित है और महान् बलकी वृद्धि करनेवाला है। नागेश्वर-सम्बन्धी उपलिङ्गका नाम भी भूतेश्वर ही है, वह मल्लिका सरस्वतीके तटपर स्थित है और दर्शन करनेमात्रसे सब पापोंको हर लेता है। रामेश्वरसे प्रकट हुए उपलिङ्गको गुप्तेश्वर और घुश्मेश्वरसे प्रकट हुए उपलिङ्गको व्याघ्रेश्वर कहा गया है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यहाँ मैंने ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिङ्गोंका परिचय दिया। ये दर्शनमात्रसे पापहारी तथा सम्पूर्ण अभीष्टके दाता होते हैं। मुनिवरो! ये मुख्यताको प्राप्त हुए प्रधान-प्रधान शिवलिङ्ग बताये गये। अब अन्य प्रमुख शिवलिङ्गोंका वर्णन सुनो। (अध्याय १)

काशी आदिके विभिन्न लिङ्गोंका वर्णन तथा अत्रीश्वरकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें गङ्गा और शिवके अत्रिके तपोवनमें नित्य निवास करनेकी कथा

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! गङ्गाजीके तटपर मुक्तिदायिनी काशीपुरी सुप्रसिद्ध है। वह भगवान् शिवकी निवासस्थली मानी गयी है। उसे शिवलिङ्गमयी ही समझना चाहिये। इतना कहकर सूतजीने काशीके अविमुक्त कृत्तिवासेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेध आदि और गङ्गासागर आदिके संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, वटुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनाथेश्वर, दूरेश्वर, शृङ्गेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयागके ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटङ्केश्वर, माधवेश तथा अयोध्याके नागेश आदि अनेक प्रसिद्ध शिवलिङ्गोंका वर्णन करके अत्रीश्वरकी कथाके प्रसङ्गमें यह बतलाया कि अत्रिपत्नी अनसूयापर कृपा करके गङ्गाजी वहाँ पधारीं। अनसूयाने गङ्गाजीसे सदा वहाँ निवास करनेके लिये प्रार्थना की।



तब गङ्गाजीने कहा—अनसूये! यदि तुम एक वर्षतक की हुई शंकरजीकी पूजा और पतिसेवाका फल मुझे दे दो तो मैं देवताओंका उपकार करनेके लिये यहाँ सदा ही स्थित रहूँगी। पतिव्रताका दर्शन करके मेरे मनको जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। सती अनसूये! यह मैंने तुमसे सच्ची बात कही है। पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेसे मेरे पापोंका नाश हो जाता है और मैं विशेष शुद्ध हो जाती हूँ; क्योंकि पतिव्रता नारी पार्वतीके समान पवित्र होती है। अतः यदि तुम जगत्‌का कल्याण करना चाहती हो और लोकहितके लिये मेरी माँगी हुई वस्तु मुझे देती हो तो मैं अवश्य यहाँ स्थिररूपसे निवास करूँगी।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! गङ्गाजीकी यह बात सुनकर पतिव्रता अनसूयाने वर्षभरका वह सारा पुण्य उन्हें दे दिया। अनसूयाके पतिव्रतसम्बन्धी उस महान् कर्मको देखकर भगवान् महादेवजी प्रसन्न हो गये और पार्थिव लिङ्गसे तत्काल प्रकट हो उन्होंने साक्षात् दर्शन दिया।

शम्भु बोले—साध्वि अनसूये! तुम्हारा यह कर्म देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। प्रिय पतिव्रते! वर माँगो। क्योंकि तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो।

उस समय वे दोनों पति-पत्नी अद्भुत सुन्दर आकृति एवं पञ्चमुख आदिसे युक्त भगवान् शिवको वहाँ प्रकट हुआ देख बड़े विस्मित हुए। उन्होंने हाथ जोड़ नमस्कार और स्तुति करके बड़े भक्तिभावसे भगवान् शंकरका पूजन किया। फिर उन लोककल्याणकारी शिवसे कहा।

ब्राह्मणदम्पति बोले—देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और जगदम्बा गङ्गा भी प्रसन्न हैं तो आप इस तपोवनमें

निवास कीजिये और समस्त लोकोंके लिये सुखदायक हो जाइये। तब गङ्गा और शिव दोनों ही प्रसन्न हो उस स्थानपर, जहाँ वे ऋषिशिरोमणि रहते थे, प्रतिष्ठित हो गये। इन्हीं शिवका नाम वहाँ अत्रीश्वर हुआ। (अध्याय २—४)

ऋषिकापर भगवान् शिवकी कृपा, एक असुरसे उसके धर्मकी रक्षा करके उसके आश्रममें 'नन्दिकेश' नामसे निवास करना और वर्षमें एक दिन गङ्गाका भी वहाँ आना

तदनन्तर श्रीसूतजीने जब बहुत-से शिवलिङ्गोंके कथा-प्रसङ्ग सुना दिये, तब ऋषियोंने पूछा—'महामते सूतजी! वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन गङ्गाजी नर्मदामें कैसे आयीं? इसका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये। वहाँ महादेवजीका नाम नन्दिकेश्वर कैसे हुआ? इस बातको भी प्रसन्नतापूर्वक बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! एक ब्राह्मणी थी, जिसका नाम ऋषिका था। वह किसी ब्राह्मणकी पुत्री थी और एक ब्राह्मणको ही विधिपूर्वक ब्याही गयी थी। विप्रवरो! यद्यपि वह द्विजपत्नी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी, तथापि अपने पूर्वजन्मके किसी अशुभ कर्मके प्रभावसे 'बालवैधव्य'को प्राप्त हो गयी। तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो पार्थिवपूजनपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगी। उस समय अवसर पाकर मूढ़ नामसे प्रसिद्ध एक दुष्ट और बलवान् असुर, जो बड़ा मायावी था, कामबाणसे पीड़ित होकर वहाँ गया। उस अत्यन्त सुन्दरी कामिनीको तपस्या करती देख वह असुर उसे नाना प्रकारके लोभ दिखाता हुआ उसके साथ सम्भोगकी याचना करने लगा। मुनीश्वरो! परंतु उत्तम व्रतका पालन करने तथा शिवके ध्यानमें तत्पर रहनेवाली वह साध्वी नारी कामभावसे उसपर दृष्टि न डाल सकी। तपस्यामें लगी हुई उस ब्राह्मणीने उस असुरका सम्मान नहीं किया; क्योंकि वह अत्यन्त तपोनिष्ठ और शिवध्यानपरायणा थी। उस कृशाङ्गी युवतीसे तिरस्कृत हो उस दैत्यराज मूढ़ने उसके ऊपर क्रोध प्रकट किया और फिर अपना विकट रूप उसे दिखाया। इसके बाद उस दुष्टात्माने भयदायक दुर्वचन कहा और उस ब्राह्मणपत्नीको बारंबार त्रास देना आरम्भ किया। उस समय वह उसके भयसे थर्रा उठी और अनेक बार स्नेहपूर्वक शिव-शिवकी पुकार करने लगी। उस तन्वङ्गी द्विजपत्नीने भगवान् शिवका पूर्णतया आश्रय ले रक्खा था। शिवका नाम जपनेवाली वह नारी अत्यन्त विह्वल हो अपने धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् शम्भुकी ही शरणमें गयी।

तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी प्रतिष्ठा तथा उस ब्राह्मणीको आनन्द प्रदान करनेके लिये भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये। भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने उस कामविह्वल दैत्यराज मूढ़को तत्काल भस्म कर दिया और ब्राह्मणीकी ओर



कृपादृष्टिसे देखकर भक्तकी रक्षाके लिये दत्तचित्त हो कहा—'वर माँगो।' महेश्वरका यह वचन सुनकर उस साध्वी ब्राह्मण-पत्नीने उनके उस आनन्दजनक मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन किया। फिर सबको सुख देनेवाले परमेश्वर शम्भुको प्रणाम करके शुद्ध अन्तःकरणवाली उस साध्वीने हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति की।

ऋषिका बोली—देवदेव महादेव! शरणागतवत्सल! आप दीनबन्धु हैं। भक्तोंकी सदा रक्षा करनेवाले ईश्वर हैं। आपने मूढ़नामक असुरसे मेरे धर्मकी रक्षा की है; क्योंकि आपके द्वारा यह दुष्ट असुर मारा गया। ऐसा करके आपने सम्पूर्ण जगत्की रक्षा की है। अब आप मुझे अपने चरणोंकी परम उत्तम एवं अनन्य भक्ति प्रदान कीजिये। नाथ! यही मेरे लिये वर है। इससे अधिक और क्या हो सकता है? प्रभो! महेश्वर! मेरी दूसरी प्रार्थना भी सुनिये। आप लोगोंके उपकारके लिये यहाँ सदा स्थित रहिये।

महादेवजीने कहा—ऋषिके ! तुम सदाचारिणी और विशेषतः मुझमें भक्ति रखनेवाली हो। तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे हैं, वे सब मैंने तुम्हें दे दिये।

ब्राह्मणो ! इसी बीचमें श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवता वहाँ भगवान् शिवका आविर्भाव हुआ जान हर्षसे भरे हुए आये और अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवको प्रणाम करके उन सबने उनका भलीभाँति पूजन किया। फिर शुद्ध हृदयसे हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति भी की। इसी समय साध्वी देवनदी गङ्गा उस ऋषिकासे उसके भाग्यकी सराहना करती हुई प्रसन्न चित्त हो बोली।

गङ्गाने कहा—ऋषिके ! वैशाख मासमें एक दिन वहाँ रहनेके लिये मुझे भी तुम्हें वचन देना चाहिये। उस दिन मैं भी इस तीर्थमें निवास करना चाहती हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! गङ्गाजीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सती साध्वी ऋषिकाने लोकहितके लिये प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा हो।' भगवान् शिव ऋषिकाको आनन्द प्रदान करनेके लिये अत्यन्त प्रसन्न हो उस पार्थिव लिङ्गमें अपने पूर्ण अंशसे विलीन हो गये। यह देख सब देवता आनन्दित हो शिव तथा ऋषिकाकी प्रशंसा करने लगे और अपने-अपने धामको चले गये। उस दिनसे नर्मदाका वह तीर्थ ऐसा उत्तम और पावन हो गया तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले शिव वहाँ नन्दिकेशके नामसे विख्यात हुए। गङ्गा भी प्रतिवर्ष वैशाखमासकी सप्तमीके दिन शुभकी इच्छासे अपने उस पापको धोनेके लिये वहाँ जाती हैं, जो मनुष्योंसे वे ग्रहण किया करती हैं। (अध्याय ५-७)

प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और उसकी महिमा

तदनन्तर कपिला नगरीके कालेश्वर, रामेश्वर आदिकी महिमा बताते हुए सूतजीने समुद्रके तटपर स्थित गोकर्णक्षेत्रके शिवलिङ्गोंकी महिमाका वर्णन किया। फिर महाबल नामक शिवलिङ्गका अद्भुत माहात्म्य सुनाकर अन्य बहुत-से शिवलिङ्गों-की विचित्र माहात्म्य-कथाका वर्णन करनेके पश्चात् ऋषियोंके पूछनेपर वे ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन करने लगे।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! मैंने सद्गुरुसे जो कुछ सुना है, वह ज्योतिर्लिङ्गोंका माहात्म्य तथा उनके प्राकट्यका प्रसङ्ग अपनी बुद्धिके अनुसार संक्षेपसे ही सुनाऊँगा। तुम सब लोग सुनो। मुने ! ज्योतिर्लिङ्गोंमें सबसे पहले सोमनाथका नाम आता है; अतः पहले उन्हींके माहात्म्यको सावधान होकर सुनो। मुनीश्वरो ! महामना प्रजापति दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ किया था। चन्द्रमाको स्वामीके रूपमें पाकर वे दक्षकन्याएँ विशेष शोभा पाने लगीं तथा चन्द्रमा भी उन्हें पत्नीके रूपमें पाकर निरन्तर सुशोभित होने लगे। उन सब पत्नियोंमें भी जो रोहिणी नामकी पत्नी थी, एकमात्र वही चन्द्रमाको जितनी प्रिय थी, उतनी दूसरी कोई पत्नी कदापि प्रिय नहीं हुई। इससे दूसरी स्त्रियोंको बड़ा दुःख हुआ। वे सब अपने पिताकी शरणमें गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने जो भी दुःख था, उसे पिताको निवेदन किया। द्विजो ! वह सब सुनकर दक्ष भी दुखी हो गये और चन्द्रमाके पास आकर शान्तिपूर्वक बोले।

दक्षने कहा—कलानिधे ! तुम निर्मल कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे आश्रयमें रहनेवाली जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबके प्रति तुम्हारे मनमें न्यूनाधिकभाव क्यों है ? तुम किसीको अधिक और किसीको कम प्यार क्यों करते हो ? अबतक जो किया, सो किया, अब आगे फिर कभी ऐसा विषमतापूर्ण बर्ताव तुम्हें नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे नरक देनेवाला बताया गया है।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! अपने दामाद चन्द्रमासे स्वयं ऐसी प्रार्थना करके प्रजापति दक्ष घरको चले गये। उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया था कि अब फिर आगे ऐसा नहीं होगा। पर चन्द्रमाने प्रबल भावीसे विवश होकर उनकी बात नहीं मानी। वे रोहिणीमें इतने आसक्त हो गये थे कि दूसरी किसी पत्नीका कभी आदर नहीं करते थे। इस बातको सुनकर दक्ष दुखी हो फिर स्वयं आकर चन्द्रमाको उत्तम नीतिसे समझाने तथा न्यायोचित बर्तावके लिये प्रार्थना करने लगे।

दक्ष बोले—चन्द्रमा ! सुनो, मैं पहले अनेक बार तुमसे प्रार्थना कर चुका हूँ। फिर भी तुमने मेरी बात नहीं मानी। इसलिये आज शाप देता हूँ कि तुम्हें क्षयका रोग हो जाय।

सूतजी कहते हैं—दक्षके इतना कहते ही क्षणभरमें चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त हो गये। उनके क्षीण होते ही उस समय सब ओर महान् हाहाकार मच गया। सब देवता और ऋषि कहने लगे कि 'हाय ! हाय ! अब क्या करना चाहिये,

चन्द्रमा कैसे ठीक होंगे ?' मुने ! इस प्रकार दुःखमें पड़कर वे सब लोग विह्वल हो गये। चन्द्रमाने इन्द्र आदि सब देवताओं तथा ऋषियोंको अपनी अवस्था सूचित की। तब इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषि ब्रह्माजीकी शरणमें गये।

उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! जो हुआ, सो हुआ। अब वह निश्चय ही पलट नहीं सकता। अतः उसके निवारणके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बताता हूँ। आदरपूर्वक सुनो। चन्द्रमा देवताओंके साथ प्रभास नामक शुभ क्षेत्रमें जायँ और वहाँ मृत्युंजय मन्त्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए भगवान् शिवकी आराधना करें। अपने सामने शिवलिङ्गकी स्थापना करके वहाँ चन्द्रदेव नित्य तपस्या करें। इससे प्रसन्न होकर शिव उन्हें क्षयरहित कर देंगे।

तब देवताओं तथा ऋषियोंके कहनेसे ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार चन्द्रमाने वहाँ छः महीनेतक निरन्तर तपस्या की, मृत्युंजयमन्त्रसे भगवान् वृषभध्वजका पूजन किया। दस करोड़ मन्त्रका जप और मृत्युंजयका ध्यान करते हुए चन्द्रमा वहाँ स्थिरचित्त होकर लगातार खड़े रहे। उन्हें तपस्या करते देख भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रसन्न हो उनके सामने प्रकट हो गये और अपने भक्त चन्द्रमासे बोले।

शंकरजीने कहा—चन्द्रदेव ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह वर माँगो ! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हें सम्पूर्ण उत्तम वर प्रदान करूँगा।



चन्द्रमा बोले—देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है; तथापि प्रभो ! शंकर ! आप मेरे शरीरके इस क्षयरोगका निवारण कीजिये। मुझसे जो अपराध बन गया हो, उसे क्षमा कीजिये।

शिवजीने कहा—चन्द्रदेव ! एक पक्षमें प्रतिदिन तुम्हारी कला क्षीण हो और दूसरे पक्षमें फिर वह निरन्तर बढ़ती रहे।

तदनन्तर चन्द्रमाने भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी स्तुति की। इससे पहले निराकार होते हुए भी वे भगवान् शिव फिर साकार हो गये। देवताओंपर प्रसन्न हो उस क्षेत्रके माहात्म्यको बढ़ाने तथा चन्द्रमाके यशका विस्तार करनेके लिये भगवान् शंकर उन्हींके नामपर वहाँ सोमेश्वर कहलाये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। ब्राह्मणो ! सोमनाथका पूजन करनेसे वे उपासकके क्षय तथा कोढ़ आदि रोगोंका नाश कर देते हैं। ये चन्द्रमा धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, जिनके नामसे तीनों लोकोंके स्वामी साक्षात् भगवान् शंकर भूतलको पवित्र करते हुए प्रभासक्षेत्रमें विद्यमान हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओंने सोमकुण्डकी भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा निवास माना जाता है। चन्द्रकुण्ड इस भूतलपर पापनाशन तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो असाध्य रोग होते हैं; वे सब उस कुण्डमें छः मासतक स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फलके उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, उस फलको सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।

चन्द्रमा नीरोग होकर अपना पुराना कार्य सँभालने लगे। इस प्रकार मैंने सोमनाथकी उत्पत्तिका सारा प्रसङ्ग सुना दिया। मुनीश्वरो ! इस तरह सोमेश्वरलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ है। जो मनुष्य सोमनाथके प्रादुर्भावकी इस कथाको सुनता अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह सम्पूर्ण अभीष्टको पाता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ८—१४)

मल्लिकार्जुन और महाकालनामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! अब मैं मल्लिकार्जुनके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनाता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जब महाबली तारकशत्रु शिवापुत्र कुमार कार्तिकेय सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके फिर कैलास पर्वतपर आये, और गणेशके विवाह आदिकी बात सुनकर क्रौञ्च पर्वतपर चले गये, पार्वती और शिवजीके वहाँ जाकर अनुरोध करनेपर भी नहीं लौटे तथा वहाँसे भी बारह कोस दूर चले गये, तब शिव और पार्वती ज्योतिर्मय स्वरूप धारण करके वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे दोनों पुत्रस्नेहसे आतुर हो पर्वके दिन अपने पुत्र कुमारको देखनेके लिये उनके पास जाया करते हैं। अमावस्याके दिन भगवान् शंकर स्वयं वहाँ जाते हैं और पौर्णमासीके दिन पार्वतीजी निश्चय ही वहाँ पदार्पण करती हैं। उसी दिनसे लेकर भगवान् शिवका मल्लिकार्जुन नामक एक लिङ्ग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ। (उसमें पार्वती और शिव दोनोंकी ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं। 'मल्लिका'का अर्थ पार्वती है और 'अर्जुन' शब्द शिवका वाचक है।) उस लिङ्गका जो दर्शन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार मल्लिकार्जुन नामक द्वितीय ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन किया गया, जो दर्शनमात्रसे लोगोंके लिये सब प्रकारका सुख देनेवाला बताया गया है।

ऋषियोंने कहा—प्रभो ! अब आप विशेष कृपा करके तीसरे ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो ! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, जो आप श्रीमानोंका सङ्ग मुझे प्राप्त हुआ। साधु पुरुषोंका सङ्ग निश्चय ही धन्य है। अतः मैं अपना सौभाग्य समझकर पापनाशिनी परम पावनी दिव्य कथाका वर्णन करता हूँ। तुमलोग आदरपूर्वक सुनो। अवन्ति नामसे प्रसिद्ध एक रमणीय नगरी है, जो समस्त देहधारियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वह भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय, परम पुण्यमयी और लोकपावनी है। उस पुरीमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जो शुभकर्मपरायण, वेदोंके स्वाध्यायमें संलग्न तथा वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें सदा तत्पर रहनेवाले थे। वे घरमें अग्निकी स्थापना करके प्रतिदिन अग्निहोत्र करते और शिवकी पूजामें सदा तत्पर रहते थे। वे ब्राह्मण देवता प्रतिदिन पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर उसकी पूजा किया करते थे। वेदप्रिय नामक वे ब्राह्मण देवता सम्यक् ज्ञानार्जनमें लगे रहते थे; इसलिये उन्होंने सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर वह सद्गति प्राप्त कर ली, जो संतोंको ही सुलभ होती है। उनके शिवपूजा-परायण चार तेजस्वी पुत्र थे, जो पिता-मातासे सद्गुणोंमें कम नहीं थे। उनके नाम थे—देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उनके सुखदायक गुण वहाँ सदा बढ़ने लगे। उनके कारण अवन्ति नगरी ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण हो गयी थी।

उसी समय रत्नमाल पर्वतपर दूषण नामक एक धर्मद्वेषी असुरने ब्रह्माजीसे वर पाकर वेद, धर्म तथा धर्मात्माओंपर आक्रमण किया। अन्तमें उसने सेना लेकर अवन्ति (उज्जैन) के ब्राह्मणोंपर भी चढ़ाई कर दी। उसकी आज्ञासे चार भयानक दैत्य चारों दिशाओंमें प्रलयाग्निके समान प्रकट हो गये। परंतु वे शिवविश्वासी ब्राह्मण-बन्धु उनसे डरे नहीं। जब नगरके ब्राह्मण बहुत घबरा गये, तब उन्होंने उनको आश्वासन देते हुए कहा—'आपलोग भक्तवत्सल भगवान् शंकरपर भरोसा रक्खें।' यों कह शिवलिङ्गका पूजन करके वे भगवान् शिवका ध्यान करने लगे।

इतनेमें ही सेनासहित दूषणने आकर उन ब्राह्मणोंको देखा और कहा—'इन्हें मार डालो, बाँध लो।' वेदप्रियके पुत्र उन ब्राह्मणोंने उस समय उस दैत्यकी कही हुई वह बात नहीं सुनी; क्योंकि वे भगवान् शम्भुके ध्यान-मार्गमें स्थित थे। उस दुष्टात्मा दैत्यने ज्यों ही उन ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा की, त्यों ही उनके द्वारा पूजित पार्थिव शिवलिङ्गके स्थानमें बड़ी भारी आवाजके साथ एक गड्ढा प्रकट हो गया। उस गड्ढेसे तत्काल विकटरूपधारी भगवान् शिव प्रकट हो गये, जो महाकाल नामसे विख्यात हुए। वे दुष्टोंके विनाशक तथा सत्पुरुषोंके आश्रयदाता हैं। उन्होंने उन दैत्योंसे कहा—'अरे खल ! मैं तुम-जैसे दुष्टोंके लिये महाकाल प्रकट हुआ हूँ। तुम इन ब्राह्मणोंके निकटसे दूर भाग जाओ।'



ऐसा कहकर महाकाल शंकरने सेनासहित दूषणको अपने हुंकारमात्रसे तत्काल भस्म कर दिया । कुछ सेना उनके द्वारा मारी गयी और कुछ भाग खड़ी हुई । परमात्मा शिवने दूषणका वध कर डाला । जैसे सूर्यको देखकर सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् शिवको देखकर उसकी सारी सेना अदृश्य हो गयी । देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । उन ब्राह्मणोंको आश्वासन दे सुप्रसन्न हुए स्वयं महाकाल महेश्वर शिवने उनसे कहा—'तुमलोग वर माँगो ।' उनकी वह बात सुनकर वे सब ब्राह्मण हाथ जोड़ भक्तिभावसे भलीभाँति प्रणाम करके नतमस्तक हो बोले ।

द्विजोंने कहा—महाकाल ! महादेव ! दुष्टोंको दण्ड देनेवाले प्रभो ! शम्भो ! आप हमें संसार-सागरसे मोक्ष प्रदान करें । शिव ! आप जन-साधारणकी रक्षाके लिये सदा यहीं रहें । प्रभो ! शम्भो ! अपना दर्शन करनेवाले मनुष्योंका आप सदा ही उद्धार करें ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उनके ऐसा कहनेपर उन्हें सद्गति दे भगवान् शिव अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये उस परम सुन्दर गड्ढेमें स्थित हो गये । वे ब्राह्मण मोक्ष पा गये और वहाँ चारों ओरकी एक-एक कोस भूमि लिङ्गरूपी भगवान् शिवका स्थल बन गयी । वे शिव भूतलपर महाकालेश्वरके नामसे विख्यात हुए । ब्राह्मणो ! उनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं होता । जिस-जिस कामनाको लेकर कोई उस लिङ्गकी उपासना करता है उसे वह अपना मनोरथ प्राप्त हो जाता है तथा परलोकमें मोक्ष भी मिल जाता है । (अध्याय १५-१६)

महाकालके माहात्म्यके प्रसङ्गमें शिवभक्त राजा चन्द्रसेन तथा गोप-बालक श्रीकरकी कथा

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य भक्तिभावको बढ़ानेवाला है । उसे आदरपूर्वक सुनो । उज्जयिनीमें चन्द्रसेन नामक एक महान् राजा थे, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, शिवभक्त और जितेन्द्रिय थे । शिवके पार्षदोंमें प्रधान तथा सर्वलोक-वन्दित मणिभद्रजी राजा चन्द्रसेनके सखा हो गये थे । एक समय उन्होंने राजापर प्रसन्न होकर उन्हें चिन्तामणि नामक महामणि प्रदान की, जो कौस्तुभमणि तथा सूर्यके समान देदीप्यमान थी । वह देखने, सुनने अथवा ध्यान करनेपर भी मनुष्योंको निश्चय ही मङ्गल प्रदान करती थी । भगवान् शिवके आश्रित रहनेवाले राजा चन्द्रसेन उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके जब सिंहासनपर बैठते, तब देवताओंमें सूर्यनारायणकी भाँति उनकी शोभा होती थी । नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनके कण्ठमें चिन्तामणि शोभा देती है, यह सुनकर समस्त राजाओंके मनमें उस मणिके प्रति लोभकी मात्रा बढ़ गयी और वे क्षुब्ध रहने लगे । तदनन्तर वे सब राजा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आकर युद्धमें चन्द्रसेनको जीतनेके लिये उद्यत हो गये । वे सब परस्पर मिल गये थे और उनके साथ बहुत-से सैनिक थे । उन्होंने आपसमें संकेत और सलाह करके आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया । अपनी पुरीको सम्पूर्ण राजाओंद्वारा घिरी हुई देख राजा चन्द्रसेन उन्हीं भगवान् महाकालेश्वरकी शरणमें गये और मनको संदेहरहित करके दृढ़ निश्चयके साथ उपवासपूर्वक दिन-रात अनन्यभावसे महाकालकी आराधना करने लगे ।

उन्हीं दिनों उस श्रेष्ठ नगरमें कोई ग्वालिन रहती थी, जिसके एकमात्र पुत्र था । वह विधवा थी और उज्जयिनीमें बहुत दिनोंसे रहती थी । वह अपने पाँच वर्षके बालकको लिये हुए महाकालके मन्दिरमें गयी और उसने राजा चन्द्रसेनद्वारा

की हुई महाकालकी पूजाका आदरपूर्वक दर्शन किया। राजाके शिवपूजनका वह आश्चर्यमय उत्सव देखकर उसने भगवान्‌को प्रणाम किया और फिर वह अपने निवास-स्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। अतः घर आनेपर उसने कौतूहलवश शिवजीकी पूजा करनेका विचार किया। एक सुन्दर पत्थर लाकर उसे अपने शिबिरसे थोड़ी ही दूरपर दूसरे शिबिरके एकान्त स्थानमें रख दिया और उसीको शिवलिङ्ग माना। फिर उसने भक्तिपूर्वक कृत्रिम गन्ध, अलंकार, वस्त्र, धूप, दीप और अक्षत आदि द्रव्य जुटाकर उनके द्वारा पूजन करके मनःकल्पित दिव्य नैवेद्य भी अर्पित किया। सुन्दर-सुन्दर पत्तों और फूलोंसे बारंबार पूजन करके भाँति-भाँतिसे नृत्य किया और बारंबार भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाया। इसी समय ग्वालिनने भगवान् शिवमें आसक्तचित्त हुए अपने पुत्र-को बड़े प्यारसे भोजनके लिये बुलाया। परंतु उसका मन तो भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ था। अतः जब बारंबार बुलानेपर भी उस बालकको भोजन करनेकी इच्छा नहीं हुई, तब उसकी माँ स्वयं उसके पास गयी और उसे शिवके आगे आँख बंद करके ध्यान लगाये बैठा देख उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें आकर उसे खूब पीटा। खींचने और मारने-पीटनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिङ्ग उठाकर दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुई सारी पूजा-सामग्री नष्ट कर दी। यह देख बालक 'हाय-हाय' करके रो उठा। रोषसे भरी हुई ग्वालिन अपने बेटेको डाँट-फटकारकर पुनः घरमें चली गयी। भगवान् शिवकी पूजाको माताके द्वारा नष्ट की गयी देख वह बालक 'देव! देव! महादेव!' की पुकार करते हुए सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ, तब उसने आँखें खोलीं।

आँख खुलनेपर उस शिशुने देखा, उसका वही शिबिर भगवान् शिवके अनुग्रहसे तत्काल महाकालका सुन्दर मन्दिर बन गया, मणियोंके चमकीले खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँकी भूमि स्फटिकमणिसे जड़ दी गयी थी। तपाये हुए सोनेके बहुत-से विचित्र कलश उस शिवालयको सुशोभित करते थे। उसके विशाल द्वार, कपाट और प्रधान द्वार सुवर्ण-मय दिखायी देते थे। वहाँ बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरेके बने हुए चबूतरे शोभा दे रहे थे। उस शिवालयके मध्यभागमें दयानिधान शंकरका रत्नमय लिङ्ग प्रतिष्ठित था। ग्वालिनके उस पुत्रने देखा, उस शिवलिङ्गपर उसकी अपनी ही चढ़ायी हुई पूजन-सामग्री सुसज्जित है। यह सब देख वह बालक सहसा उठकर खड़ा हो गया। उसे मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य हुआ और वह परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो गया। तदनन्तर भगवान् शिवकी स्तुति करके उसने बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और सूर्यास्त होनेके पश्चात् वह गोप-बालक शिवालयसे बाहर निकला। बाहर आकर उसने अपने शिबिरको देखा। वह इन्द्रभवनके समान शोभा पा रहा था। वहाँ सब कुछ तत्काल सुवर्णमय होकर विचित्र एवं परम उज्ज्वल वैभवसे प्रकाशित होने लगा। फिर वह उस भवनके भीतर गया, जो सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न था। उस भवनमें सर्वत्र मणि, रत्न और सुवर्ण ही जड़े गये थे। प्रदोषकालमें सानन्द भीतर प्रवेश करके बालकने देखा, उसकी माँ दिव्य लक्षणोंसे लक्षित हो एक सुन्दर पलंगपर सो रही है। रत्नमय अलंकारोंसे उसके सभी अंग उद्दीप्त हो रहे हैं और वह साक्षात् देवाङ्गनाके समान दिखायी देती है। मुखसे विह्वल हुए उस बालकने अपनी माताको बड़े वेगसे उठाया। वह भगवान् शिवकी कृपापात्र हो चुकी थी। ग्वालिनने उठकर देखा, सब कुछ अपूर्व-सा हो गया था। उसने महान् आनन्दमें निमग्न हो अपने बेटेको छातीसे लगा लिया। पुत्रने मुखसे गिरिजापतिके कृपा-प्रसादका वह सारा वृत्तान्त सुनकर ग्वालिनने राजाको सूचना दी, जो निरन्तर भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते थे। राजा अपना नियम पूरा करके रातमें सहसा वहाँ आये और ग्वालिनके पुत्रका वह प्रभाव, जो शंकरजीको संतुष्ट करनेवाला था, देखा। मन्त्रियों और पुरोहितोंसहित राजा चन्द्रसेन वह सब कुछ देख परमानन्दके समुद्रमें डूब गये और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाते तथा प्रसन्नतापूर्वक शिवके नामका कीर्तन करते हुए उन्होंने उस बालकको हृदयसे लगा लिया। ब्राह्मणो! उस समय वहाँ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। सब लोग आनन्द-विभोर होकर महेश्वरके नाम और यशका कीर्तन करने लगे। इस प्रकार शिवका यह अद्भुत माहात्म्य देखनेसे पुरवासियोंको बड़ा हर्ष हुआ और इसीकी चर्चामें वह सारी रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये नगरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हुए राजाओंने भी प्रातःकाल अपने गुप्तचरोंके मुखसे वह सारा अद्भुत चरित्र सुना। उसे सुनकर सब आश्चर्यसे चकित हो गये और वहाँ आये हुए सब नरेश एकत्र हो आपसमें इस प्रकार बोले—'ये राजा चन्द्रसेन बड़े भारी शिवभक्त हैं; अतएव

इनपर विजय पाना कठिन है। ये सर्वथा निर्भय होकर महाकालकी नगरी उज्जयिनीका पालन करते हैं। जिसकी पुरीके बालक भी ऐसे शिवभक्त हैं, वे राजा चन्द्रसेन तो महान् शिवभक्त हैं ही। इनके साथ विरोध करनेसे निश्चय ही भगवान् शिव क्रोध करेंगे और उनके क्रोधसे हम सब लोग नष्ट हो जायँगे। अतः इन नरेशके साथ हमें मेल-मिलाप ही कर लेना चाहिये। ऐसा होनेपर महेश्वर हमपर बड़ी कृपा करेंगे।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा निश्चय करके शुद्ध हृदयवाले उन सब भूपालोंने हथियार डाल दिये। उनके मनसे वैरभाव निकल गया। वे सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो चन्द्रसेनकी अनुमति ले महाकालकी उस रमणीय नगरीके भीतर गये। वहाँ उन्होंने महाकालका पूजन किया। फिर वे सब-के-सब उस ग्वालिनके महान् अभ्युदयपूर्ण दिव्य सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनके घरपर गये। वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़कर उनका स्वागत-सत्कार किया। वे बहुमूल्य आसनोंपर बैठे और आश्चर्यचकित एवं आनन्दित हुए। गोपबालकके ऊपर कृपा करनेके लिये स्वतः प्रकट हुए शिवालय और शिवलिङ्गका दर्शन करके उन सब राजाओंने अपनी उत्तम बुद्धि भगवान् शिवके चिन्तनमें लगायी। तदनन्तर उन सारे नरेशोंने भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उस गोपशिशुको बहुत-सी वस्तुएँ प्रसन्नतापूर्वक भेंट कीं। सम्पूर्ण जनपदोंमें जो बहुसंख्यक गोप रहते थे, उन सबका राजा उन्होंने उसी बालकको बना दिया।

इसी समय समस्त देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानरराज हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजा बड़े वेगसे उठकर खड़े हो गये। उन सबने भक्तिभावसे विनम्र होकर उन्हें मस्तक झुकाया। राजाओंसे पूजित हो वानरराज हनुमान्‌जी उन सबके बीचमें बैठे और उस गोपबालकको हृदयसे लगाकर उन नरेशोंकी ओर देखते हुए बोले—'राजाओ! तुम सब लोग तथा दूसरे देहधारी भी मेरी बात सुनें। इससे तुम लोगोंका भला होगा। भगवान् शिवके सिवा देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोपबालकने शिवकी पूजाका दर्शन करके उससे प्रेरणा ली और बिना मन्त्रके भी शिवका पूजन करके उन्हें पा लिया। गोपवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बालक भगवान् शंकरका श्रेष्ठ भक्त है। इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें यह मोक्ष प्राप्त कर लेगा। इसकी वंश-परम्पराके अन्तर्गत आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके पुत्ररूपसे प्रकट हो श्रीकृष्ण नामसे प्रसिद्ध होंगे। आजसे यह गोपकुमार इस जगत्‌में श्रीकरके नामसे विशेष ख्याति प्राप्त करेगा।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा कहकर अञ्जनीनन्दन शिवस्वरूप वानरराज हनुमान्‌जीने समस्त राजाओं तथा महाराज चन्द्रसेनको भी कृपादृष्टिसे देखा। तदनन्तर उन्होंने उस



बुद्धिमान् गोपबालक श्रीकरको बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवोपासनाके उस आचार-व्यवहारका उपदेश दिया, जो भगवान् शिवको बहुत प्रिय है। इसके बाद परम प्रसन्न हुए हनुमान्‌जी चन्द्रसेन और श्रीकरसे विदा ले उन सब राजाओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। वे सब राजा हर्षमें भरकर सम्मानित हो महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। महातेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीका उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शंकरजीकी उपासना करने लगा। महाराज चन्द्रसेन और गोपबालक श्रीकर दोनों ही बड़ी प्रसन्नताके साथ महाकालकी सेवा करते थे। उन्हींकी आराधना करके उन दोनोंने परम पद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार महाकाल नामक शिवलिङ्ग सत्पुरुषोंका आश्रय है। भक्तवत्सल शंकर दुष्ट पुरुषोंका सर्वथा हनन करनेवाले हैं। यह परम पवित्र रहस्यमय आख्यान कहा गया है, जो सब प्रकारका सुख देनेवाला है। यह शिवभक्तिको बढ़ाने तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। (अध्याय १७)

विन्ध्यकी तपस्या, ओंकारमें परमेश्वर लिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी महिमाका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग सूतजी ! आपने अपने भक्तकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक शिवलिङ्गकी बड़ी अद्भुत कथा सुनायी है। अब कृपा करके चौथे ज्योतिर्लिङ्गका परिचय दीजिये—ओंकार तीर्थमें सर्वपातकहारी परमेश्वरका जो ज्योतिर्लिङ्ग है, उसके आविर्भावकी कथा सुनाइये।

सूतजी बोले—महर्षियो ! ओंकार तीर्थमें परमेश-संज्ञक ज्योतिर्लिङ्ग जिस प्रकार प्रकट हुआ, वह बताता हूँ; प्रेमसे सुनो। एक समयकी बात है, भगवान् नारद मुनि गोकर्ण नामक शिवके समीप जा बड़ी भक्तिके साथ उनकी सेवा करने लगे। कुछ कालके बाद वे मुनिश्रेष्ठ वहाँसे गिरिराज विन्ध्यपर आये और विन्ध्यने वहाँ बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। मेरे यहाँ सब कुछ है, कभी किसी बातकी कमी नहीं होती है, इस भावको मनमें लेकर विन्ध्याचल नारदजीके सामने खड़ा हो गया। उसकी वह अभिमानभरी बात सुनकर अहंकारनाशक नारद मुनि लंबी साँस खींचकर चुपचाप खड़े रह गये। यह देख विन्ध्य पर्वतने पूछा—'आपने मेरे यहाँ कौन-सी कमी देखी है ? आपके इस तरह लंबी साँस खींचनेका क्या कारण है ?'

नारदजीने कहा—भैया ! तुम्हारे यहाँ सब कुछ है। फिर भी मेरु पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है। उसके शिखरोंका विभाग देवताओंके लोकोंमें भी पहुँचा हुआ है। किंतु तुम्हारे शिखरका भाग वहाँ कभी नहीं पहुँच सका है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे जिस तरह आये थे, उसी तरह चल दिये। परंतु विन्ध्य पर्वत 'मेरे जीवन आदिको धिक्कार है' ऐसा सोचता हुआ मन-ही-मन संतप्त हो उठा। अच्छा, 'अब मैं विश्वनाथ भगवान् शम्भुकी आराधनापूर्वक तपस्या करूँगा' ऐसा हार्दिक निश्चय करके वह भगवान् शंकरकी शरणमें गया। तदनन्तर जहाँ साक्षात् ओंकारकी स्थिति है, वहाँ प्रसन्नतापूर्वक जाकर उसने शिवकी पार्थिव मूर्ति बनायी और छः मासतक निरन्तर शम्भुकी आराधना करके शिवके ध्यानमें तत्पर हो वह अपनी तपस्याके स्थानसे हिलातक नहीं। विन्ध्याचलकी ऐसी तपस्या देखकर पार्वतीपति प्रसन्न हो गये। उन्होंने विन्ध्याचलको अपना वह स्वरूप दिखाया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। वे प्रसन्न हो उस समय उससे बोले—'विन्ध्य ! तुम मनोवाञ्छित वर मागो। मैं भक्तोंको अभीष्ट वर देनेवाला हूँ और तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।'

विन्ध्य बोला—देवेश्वर शम्भो ! आप सदा ही भक्तवत्सल हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह अभीष्ट बुद्धि प्रदान कीजिये, जो अपने कार्यको सिद्ध करनेवाली हो।

भगवान् शम्भुने उसे वह उत्तम वर दे दिया और कहा—'पर्वतराज विन्ध्य ! तुम जैसा चाहो, वैसा करो।' इसी समय देवता तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ऋषि वहाँ आये और शंकरजीकी पूजा करके बोले—'प्रभो ! आप यहाँ स्थिररूपसे निवास करें।'



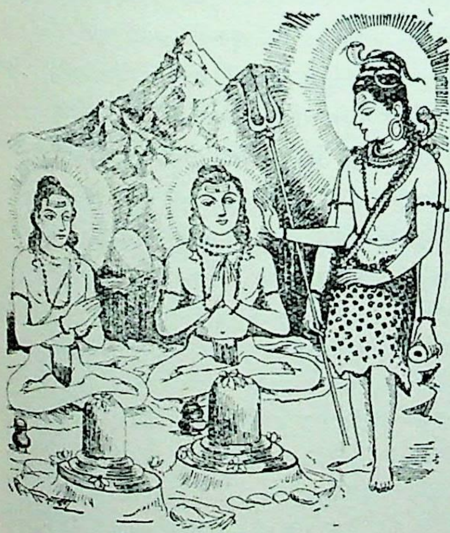
देवताओंकी यह बात सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और लोकोंको सुख देनेके लिये उन्होंने सहर्ष वैसा ही किया। वहाँ जो एक ही ओंकारलिङ्ग था, वह दो स्वरूपोंमें विभक्त हो गया। प्रणवमें जो सदाशिव थे, वे ओंकार नामसे विख्यात हुए और पार्थिवमूर्तिमें जो शिव-ज्योति प्रतिष्ठित हुई, उसकी परमेश्वर संज्ञा हुई (परमेश्वरको ही अमलेश्वर भी कहते हैं)। इस प्रकार ओंकार और परमेश्वर—ये दोनों शिवलिङ्ग भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं। उस समय देवताओं और ऋषियोंने उन दोनों लिङ्गोंकी पूजा की और भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट करके अनेक वर प्राप्त किये। तत्पश्चात् देवता अपने-अपने स्थानको गये और विन्ध्याचल भी अधिक प्रसन्नताका अनुभव करने लगा। उसने अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध किया और मानसिक

परितापको त्याग दिया । जो पुरुष इस प्रकार भगवान् शंकरका पूजन करता है, वह माताके गर्भमें फिर नहीं आता और अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! ओंकारमें जो ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ और उसकी आराधनासे जो फल मिलता है, वह सब यहाँ तुम्हें बता दिया । इसके बाद मैं उत्तम केदार नामक ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन करूँगा । (अध्याय १८)

केदारेश्वर तथा भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनके माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! भगवान् विष्णुके जो नर-नारायण नामक दो अवतार हैं और भारतवर्षके बदरिकाश्रम तीर्थमें तपस्या करते हैं, उन दोनोंने पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर उसमें स्थित हो पूजा ग्रहण करनेके लिये भगवान् शम्भुसे प्रार्थना की । शिवजी भक्तोंके अधीन होनेके कारण प्रतिदिन उनके बनाये हुए पार्थिवलिङ्गमें पूजित होनेके लिये आया करते थे । जब उन दोनोंके पार्थिव-पूजन करते बहुत दिन बीत गये, तब एक समय परमेश्वर शिवने प्रसन्न होकर कहा—'मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत संतुष्ट हूँ । तुम दोनों मुझसे वर माँगो ।' उस समय उनके ऐसा कहनेपर नर और नारायणने लोगोंके हितकी कामनासे कहा—'देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो अपने स्वरूपसे पूजा ग्रहण करनेके लिये यहीं स्थित हो जाइये ।'



उन दोनों बन्धुओंके इस प्रकार अनुरोध करनेपर कल्याणकारी महेश्वर हिमालयके उस केदारतीर्थमें स्वयं ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये । उन दोनोंसे पूजित होकर सम्पूर्ण दुःख और भयका नाश करनेवाले शम्भु लोगोंका उपकार करने और भक्तोंको दर्शन देनेके लिये स्वयं केदारेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हो वहाँ रहते हैं । वे दर्शन और पूजन करनेवाले भक्तोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं । उसी दिनसे लेकर जिसने भी भक्तिभावसे केदारेश्वरका पूजन किया, उसके लिये स्वप्नमें भी दुःख दुर्लभ हो गया । जो भगवान् शिवका प्रिय भक्त वहाँ शिवलिङ्गके निकट शिवके रूपसे अङ्कित वलय (कङ्कण या कड़ा) चढ़ाता है, वह उस वलययुक्त स्वरूपका दर्शन करके समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, साथ ही जीवन्मुक्त भी हो जाता है । जो बदरीवनकी यात्रा करता है, उसे भी जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है । नर और नारायणके तथा केदारेश्वर शिवके रूपका दर्शन करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है । केदारेश्वरमें भक्ति रखनेवाले जो पुरुष वहाँकी यात्रा आरम्भ करके उनके पासतक पहुँचनेके पहले मार्गमें ही मर जाते हैं, वे भी मोक्ष पा जाते हैं—इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।* केदारतीर्थमें पहुँचकर वहाँ प्रेमपूर्वक केदारेश्वरकी पूजा करके वहाँका जल पी लेनेके पश्चात् मनुष्यका फिर जन्म नहीं होता । ब्राह्मणो ! इस भारतवर्षमें सम्पूर्ण जीवोंको भक्तिभावसे भगवान् नर-नारायणकी तथा केदारेश्वर शम्भुकी पूजा करनी चाहिये ।

अब मैं भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य कहूँगा । कामरूप देशमें लोकहितकी कामनासे साक्षात् भगवान् शंकर ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें अवतीर्ण हुए थे । उनका वह स्वरूप कल्याण और सुखका आश्रय है । ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें एक महापराक्रमी राक्षस हुआ था, जिसका नाम भीम था । वह सदा धर्मका विध्वंस करता और समस्त प्राणियोंको दुःख देता था । वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके वीर्य और कर्कटीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था तथा अपनी माताके साथ सह्य पर्वतपर निवास करता था । एक दिन समस्त लोकोंको दुःख देनेवाले

* केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः ।
तेऽपि मुक्ता भवन्त्येव नात्र कार्या विचारणा ॥
(शि० पु० कोटिरुद्रसंहिता १९ । २२)

भयानक पराक्रमी दुष्ट भीमने अपनी मातासे पूछा—'माँ ! मेरे पिताजी कहाँ हैं ? तुम अकेली क्यों रहती हो ? मैं यह सब जानना चाहता हूँ । अतः यथार्थ बात बताओ ।'

कर्कटी बोली—बेटा ! रावणके छोटे भाई कुम्भकर्ण तेरे पिता थे । भाईसहित उस महाबली वीरको श्रीरामने मार डाला । मेरे पिताका नाम कर्कट और माताका नाम पुष्कसी था । विराध मेरे पति थे, जिन्हें पूर्वकालमें रामने मार डाला। अपने प्रिय स्वामीके मारे जानेपर मैं अपने माता-पिताके पास रहती थी । एक दिन मेरे माता पिता अगस्त्य मुनिके शिष्य सुतीक्ष्णको अपना आहार बनानेके लिये गये । वे बड़े तपस्वी और महात्मा थे । उन्होंने कुपित होकर मेरे माता-पिताको भस्म कर डाला । वे दोनों मर गये । तबसे मैं अकेली होकर बड़े दुःखके साथ इस पर्वतपर रहने लगी । मेरा कोई अवलम्ब नहीं रह गया । मैं असहाय और दुःखसे आतुर होकर यहाँ निवास करती थी । इसी समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राक्षस कुम्भकर्ण जो रावणके छोटे भाई थे, यहाँ आये । उन्होंने बलात्कारपूर्वक मेरे साथ समागम किया । फिर वे मुझे छोड़कर लङ्का चले गये । तत्पश्चात् तुम्हारा जन्म हुआ । तुम भी पिताके समान ही महान् बलवान् और पराक्रमी हो । अब मैं तुम्हारा ही सहारा लेकर यहाँ कालक्षेप करती हूँ ।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! कर्कटीकी यह बात सुनकर भयानक पराक्रमी भीम कुपित हो यह विचार करने लगा कि 'मैं विष्णुके साथ कैसा बर्ताव करूँ ? इन्होंने मेरे पिताको मार डाला । मेरे नाना-नानी भी उनके भक्तके हाथसे मारे गये । विराधको भी इन्होंने ही मार डाला और इस प्रकार मुझे बहुत दुःख दिया । यदि मैं अपने पिताका पुत्र हूँ तो श्रीहरिको अवश्य पीड़ा दूँगा ।'

ऐसा निश्चय करके भीम महान् तप करनेके लिये चला गया । उसने ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये एक हजार वर्षोंतक महान् तप किया । तपस्याके साथ-साथ वह मन-ही-मन इष्टदेवका ध्यान किया करता था । तब लोकपितामह ब्रह्मा उसे वर देनेके लिये गये और इस प्रकार बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—भीम ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो ।

भीम बोला—देवेश्वर ! कमलासन ! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो आज मुझे ऐसा बल दीजिये, जिसकी कहीं तुलना न हो ।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर उस राक्षसने ब्रह्माजीको नमस्कार किया और ब्रह्माजी भी उसे अभीष्ट वर देकर अपने धामको चले गये । ब्रह्माजीसे अत्यन्त बल पाकर राक्षस अपने घर आया और माताको प्रणाम करके शीघ्रतापूर्वक बड़े गर्वसे बोला—'माँ ! अब तुम मेरा बल देखो । मैं इन्द्र आदि देवताओं तथा इनकी सहायता करनेवाले श्रीहरिका महान् संहार कर डालूँगा ।' ऐसा कहकर भयानक पराक्रमी भीमने पहले इन्द्र आदि देवताओंको जीता और उन सबको अपने-अपने स्थानसे निकाल बाहर किया । तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे उनका पक्ष लेनेवाले श्रीहरिको भी उसने युद्धमें हराया । फिर प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीको जीतना प्रारम्भ किया । सबसे पहले वह कामरूप देशके राजा सुदक्षिणको जीतनेके लिये गया । वहाँ राजाके साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ । दुष्ट असुर भीमने ब्रह्माजीके दिये हुए वरके प्रभावसे शिवके आश्रित रहनेवाले महावीर महाराज सुदक्षिणको परास्त कर दिया और सब सामग्रियोंसहित उनका राज्य तथा सर्वस्व अपने अधिकारमें कर लिया । भगवान् शिवके प्रिय भक्त धर्मप्रेमी परम धर्मात्मा राजाको भी उसने कैद कर लिया और उनके पैरोंमें बेड़ी डालकर उन्हें एकान्त स्थानमें बंद कर दिया ! वहाँ उन्होंने भगवान्‌की प्रीतिके लिये शिवकी उत्तम पार्थिव मूर्ति बनाकर उन्हींका भजन-पूजन आरम्भ कर दिया । उन्होंने बारंबार गङ्गाजीकी स्तुति की और मानसिक स्नान आदि करके पार्थिव-पूजनकी विधिसे शंकरजीकी पूजा सम्पन्न की । विधिपूर्वक भगवान् शिवका ध्यान करके वे प्रणवयुक्त पञ्चाक्षरमन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का जप करने लगे । अब उन्हें दूसरा कोई काम करनेके लिये अवकाश नहीं मिलता था । उन दिनों उनकी साध्वी पत्नी राजवल्लभा दक्षिणा प्रेमपूर्वक पार्थिव पूजन किया करती थीं । वे दम्पति अनन्यभावसे भक्तोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरका भजन करते और प्रतिदिन उन्हींकी आराधनामें तत्पर रहते थे । इधर वह राक्षस वरके अभिमानसे मोहित हो यज्ञकर्म आदि सब धर्मोंका लोप करने लगा और सबसे कहने लगा—'तुम लोग सब कुछ मुझे ही दो ।' महर्षियो ! दुरात्मा राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ ले उसने सारी पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया । वह वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका लोप करके शक्तिशाली होनेके कारण सबका स्वयं ही उपभोग करने लगा ।

तब सब देवता तथा ऋषि अत्यन्त पीड़ित हो महाकोशीके तटपर गये और शिवका आराधन तथा स्तवन करने लगे ।

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंसे बोले—'देवगण तथा महर्षियो ! मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

देवता बोले—देवेश्वर ! आप अन्तर्यामी हैं, अतः सबके मनकी सारी बातें जानते हैं। आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। प्रभो ! महेश्वर ! कुम्भकर्णसे उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुत्र राक्षस भीम ब्रह्माजीके दिये हुए वरसे शक्तिशाली हो देवताओंको निरन्तर पीड़ा दे रहा है। अतः आप इस दुःखदायी राक्षसका नाश कर दीजिये। हमपर कृपा कीजिये, विलम्ब न कीजिये।

शम्भुने कहा—देवताओ ! कामरूप देशके राजा सुदक्षिण मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं। उनसे मेरा एक संदेश कह दो। फिर तुम्हारा सारा कार्य शीघ्र ही पूरा हो जायगा। उनसे कहना—'कामरूप देशके अधिपति महाराज सुदक्षिण ! प्रभो ! तुम मेरे विशेष भक्त हो। अतः प्रेमपूर्वक मेरा भजन करो। दुष्ट राक्षस भीम ब्रह्माजीका वर पाकर प्रबल हो गया है। इसीलिये उसने तुम्हारा तिरस्कार किया है। परंतु अब मैं उस दुष्टको मार डालूँगा, इसमें संदेह नहीं है।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! तब उन सब देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जाकर उन महाराजसे शम्भुकी कही हुई सारी बात कह सुनायी। उनसे वह संदेश कहकर देवताओं और महर्षियोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और वे सब-के-सब शीघ्र ही अपने-अपने आश्रमको चले गये।

इधर भगवान् शिव भी अपने गणोंके साथ लोकहितकी कामनासे अपने भक्तकी रक्षा करनेके लिये सादर उसके निकट गये और गुप्तरूपसे वहीं ठहर गये। इसी समय कामरूपनरेशने पार्थिव शिवके सामने गाढ़ ध्यान लगाना आरम्भ किया। इतनेमें ही किसीने राक्षससे जाकर कह दिया कि राजा तुम्हारे (नाशके) लिये कोई पुरश्चरण कर रहे हैं।

यह समाचार सुनते ही वह राक्षस कुपित हो उठा और उनको मार डालनेकी इच्छासे नंगी तलवार हाथमें लिये राजाके पास गया। वहाँ पार्थिव आदि जो सामग्री स्थित थी, उसे देखकर तथा उसके प्रयोजन और स्वरूपको समझकर राक्षसने यही माना कि राजा मेरे लिये कुछ कर रहा है। अतः 'सब सामग्रियोंसहित इस नरेशको मैं बलपूर्वक अभी नष्ट कर देता हूँ', ऐसा विचारकर उस महाक्रोधी राक्षसने राजाको बहुत डाँटा और पूछा 'क्या कर रहे हो ?' राजाने भगवान् शंकरपर रक्षाका भार सौंपकर कहा—'मैं चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शिवका पूजन करता हूँ।' तब राक्षस भीमने भगवान् शंकरके प्रति बहुत तिरस्कारयुक्त दुर्वचन कहकर राजाको धमकाया और भगवान् शंकरके पार्थिव लिङ्गपर तलवार चलायी। वह तलवार उस पार्थिव लिङ्गका स्पर्श भी नहीं करने पायी कि उससे साक्षात् भगवान् हर वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'देखो, मैं भीमेश्वर हूँ और अपने भक्तकी रक्षाके लिये प्रकट हुआ हूँ। मेरा पहलेसे ही यह व्रत है कि मैं सदा अपने भक्तकी रक्षा करूँ। इसलिये भक्तोंको सुख देनेवाले मेरे बलकी ओर दृष्टिपात करो।'

ऐसा कहकर भगवान् शिवने पिनाकसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये। तब उस राक्षसने फिर अपना त्रिशूल चलाया, परंतु शम्भुने उस दुष्टके त्रिशूलके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। तदनन्तर शंकरजीके साथ उसका घोर युद्ध हुआ जिससे सारा जगत् क्षुब्ध हो उठा। तब नारदजीने आकर भगवान् शंकरसे प्रार्थना की।

नारद बोले—लोगोंको भ्रममें डालनेवाले महेश्वर ! मेरे नाथ ! आप क्षमा करें, क्षमा करें। तिनकेको काटनेके लिये कुल्हाड़ा चलानेकी क्या आवश्यकता है। शीघ्र ही इसका संहार कर डालिये।

नारदजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शम्भुने हुंकारमात्रसे उस समय समस्त राक्षसोंको भस्म कर



डाला। मुने ! सब देवताओंके देखते-देखते शिवजीने उन सारे

राक्षसोंको दग्ध कर दिया। तदनन्तर भगवान् शंकरकी कृपासे इन्द्र आदि समस्त देवताओं और मुनीश्वरोंको शान्ति मिली तथा सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हुआ। उस समय देवताओं और विशेषतः मुनियोंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! आप यहाँ लोगोंको सुख देनेके लिये सदा निवास करें। यह देश निन्दित माना गया है। यहाँ आनेवाले लोगोंको प्रायः दुःख ही प्राप्त होता है। परंतु आपका दर्शन करनेसे यहाँ सबका कल्याण होगा। आप भीमशंकरके नामसे विख्यात होंगे और सबके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करेंगे। आपका यह ज्योतिर्लिङ्ग सदा पूजनीय और समस्त आपत्तियोंका निवारण करनेवाला होगा।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर लोकहितकारी एवं भक्तवत्सल परम स्वतन्त्र शिव प्रसन्नतापूर्वक वहीं स्थित हो गये। (अध्याय १९—२१)

विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग और उनकी महिमाके प्रसङ्गमें पञ्चक्रोशीकी महत्ताका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! अब मैं काशीके विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य बताऊँगा, जो महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। तुमलोग सुनो। इस भूतलपर जो कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर होती है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार एवं सनातन ब्रह्मरूप है। अपने कैवल्य (अद्वैत) भावमें ही रमनेवाले उन अद्वितीय परमात्मामें कभी एकसे दो हो जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई*। फिर वे ही परमात्मा सगुणरूपमें प्रकट हो शिव कहलाये। वे शिव ही पुरुष और स्त्री दो रूपोंमें प्रकट हो गये। उनमें जो पुरुष था, उसका 'शिव' नाम हुआ और जो स्त्री हुई, उसे 'शक्ति' कहते हैं। उन चिदानन्दस्वरूप शिव और शक्तिने स्वयं अदृष्ट रहकर स्वभावसे ही दो चेतनों (प्रकृति और पुरुष) की सृष्टि की। मुनिवरो! उन दोनों माता-पिताओंको उस समय सामने न देखकर वे दोनों प्रकृति और पुरुष महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी प्रकट हुई—'तुम दोनोंको तपस्या करनी चाहिये। फिर तुमसे परम उत्तम सृष्टिका विस्तार होगा।'

वे प्रकृति और पुरुष बोले—प्रभो! शिव! तपस्याके लिये तो कोई स्थान है ही नहीं। फिर हम दोनों इस समय कहाँ स्थित होकर आपकी आज्ञाके अनुसार तप करें।'

तब निर्गुण शिवने तेजके सारभूत पाँच कोस लंबे-चौड़े शुभ एवं सुन्दर नगरका निर्माण किया, जो उनका अपना ही स्वरूप था। वह सभी आवश्यक उपकरणोंसे युक्त था। उस नगरका निर्माण करके उन्होंने उसे उन दोनोंके लिये भेजा। वह नगर आकाशमें पुरुषके समीप आकर स्थित हो गया। तब पुरुष—श्रीहरिने उस नगरमें स्थित हो सृष्टिकी कामनासे शिवका ध्यान करते हुए बहुत वर्षोंतक तप किया। उस समय परिश्रमके कारण उनके शरीरसे श्वेत जलकी अनेक धाराएँ प्रकट हुईं, जिनसे सारा शून्य आकाश व्याप्त हो गया। वहाँ दूसरा कुछ भी दिखायी नहीं देता था। उसे देखकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बोल उठे—यह कैसी अद्भुत वस्तु दिखायी देती है? उस समय इस आश्चर्यको देखकर उन्होंने अपना सिर हिलाया, जिससे उन प्रभुके सामने ही उनके एक कानसे मणि गिर पड़ी। जहाँ वह मणि गिरी, वह स्थान मणिकर्णिका नामक महान् तीर्थ हो गया। जब पूर्वोक्त जलराशिमें वह सारी पञ्चक्रोशी डूबने और बहने लगी, तब निर्गुण शिवने शीघ्र ही उसे अपने त्रिशूलके द्वारा धारण कर लिया। फिर विष्णु अपनी पत्नी प्रकृतिके साथ वहीं सोये। तब उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनकी उत्पत्तिमें भी शंकरका आदेश ही कारण था। तदनन्तर उन्होंने शिवकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टि आरम्भ की। ब्रह्माजीने ब्रह्माण्डमें चौदह भुवन बनाये। ब्रह्माण्डका विस्तार महर्षियोंने पचास करोड़ योजनका बताया है। फिर भगवान् शिवने यह सोचा कि 'ब्रह्माण्डके भीतर कर्मपाशसे बँधे हुए प्राणी मुझे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?' यह सोचकर उन्होंने मुक्तिदायिनी पञ्चक्रोशीको इस जगत्‌में छोड़ दिया।

''यह पञ्चक्रोशी काशी लोकमें कल्याणदायिनी, कर्मबन्धनका नाश करनेवाली, ज्ञानदात्री तथा मोक्षको प्रकाशित करनेवाली मानी गयी है। अतएव मुझे परम प्रिय है। यहाँ स्वयं परमात्माने 'अविमुक्त' लिङ्गकी स्थापना की है। अतः मेरे अंशभूत हरे! तुम्हें कभी इस क्षेत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।'' ऐसा कहकर भगवान् हरने काशीपुरीको स्वयं अपने त्रिशूलसे उतार-

* 'स द्वितीयमैच्छत्' (बृहदारण्यक उ० — १ । ४ । ३) इस श्रुतिसे भी यही बात सिद्ध होती है।

कर मर्त्यलोकके जगत्‌में छोड़ दिया । ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होनेपर जब सारे जगत्‌का प्रलय हो जाता है, तब भी निश्चय ही इस काशीपुरीका नाश नहीं होता । उस समय भगवान् शिव इसे त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और जब ब्रह्माद्वारा पुनः नयी सृष्टि की जाती है, तब इसे फिर वे इस भूतलपर स्थापित कर देते हैं । कर्मोंका कर्षण करनेसे ही इस पुरीको 'काशी' कहते हैं । काशीमें अविमुक्तेश्वर लिङ्ग सदा विराजमान रहता है । वह महापातकी पुरुषोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाला है । मुनीश्वरो ! अन्य मोक्षदायक धामोंमें सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है । केवल इस काशीमें ही जीवोंको सायुज्य नामक सर्वोत्तम मुक्ति सुलभ होती है । जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये वाराणसी पुरी ही गति है । महापुण्यमयी पञ्चक्रोशी करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाली है । यहाँ समस्त अमरगण भी मरणकी इच्छा करते हैं । फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । यह शंकरकी प्रिय नगरी काशी सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है ।

कैलासके पति, जो भीतरसे सत्त्वगुणी और बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं, कालाग्नि रुद्रके नामसे विख्यात हैं । वे निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं । उन्होंने बारंबार प्रणाम करके निर्गुण शिवसे इस प्रकार कहा ।

रुद्र बोले—विश्वनाथ ! महेश्वर ! मैं आपका ही हूँ, इसमें संशय नहीं है । साम्ब महादेव ! मुझ आत्मजपर कृपा कीजिये । जगत्पते ! लोकहितकी कामनासे आपको सदा यहीं रहना चाहिये । जगन्नाथ ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । आप यहाँ रहकर जीवोंका उद्धार करें ।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले अविमुक्तने भी शंकरसे बारंबार प्रार्थना करके नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए ही प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ।



अविमुक्त बोले—कालरूपी रोगके सुन्दर औषध देवाधिदेव महादेव ! आप वास्तवमें तीनों लोकोंके स्वामी तथा ब्रह्मा और विष्णु आदिके द्वारा भी सेवनीय हैं । देव ! काशीपुरीको आप अपनी राजधानी स्वीकार करें । मैं अचिन्त्य सुखकी प्राप्तिके लिये यहाँ सदा आपका ध्यान लगाये स्थिरभावसे बैठा रहूँगा । आप ही मुक्ति देनेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके पूरक हैं, दूसरा कोई नहीं । अतः आप परोपकारके लिये उमासहित सदा यहाँ विराजमान रहें । सदाशिव ! आप समस्त जीवोंको संसारसागरसे पार करें । हर ! मैं बारंबार प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करें ।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! जब विश्वनाथने भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वेश्वर शिव समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये वहाँ विराजमान हो गये । जिस दिनसे भगवान् शिव काशीमें आ गये, उसी दिनसे काशी सर्वश्रेष्ठ पुरी हो गयी । (अध्याय २२)

वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! मैं संक्षेपसे ही वाराणसी तथा विश्वेश्वरके परम सुन्दर माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, सुनो । एक समयकी बात है कि पार्वती देवीने लोक-हितकी कामनासे बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शिवसे अविमुक्त क्षेत्र और अविमुक्त लिङ्गका माहात्म्य पूछा ।

तब परमेश्वर शिवने कहा—यह वाराणसीपुरी सदाके लिये मेरा गुह्यतम क्षेत्र है और सभी जीवोंकी मुक्तिका सर्वथा हेतु है । इस क्षेत्रमें सिद्धगण सदा मेरे व्रतका आश्रय ले नाना प्रकारके वेष धारण किये मेरे लोकको पानेकी इच्छा रखकर जितात्मा और जितेन्द्रिय हो नित्य महायोगका अभ्यास

करते हैं। उस उत्तम महायोगका नाम है पाशुपत योग। उसका श्रुतियोंद्वारा प्रतिपादन हुआ है। वह भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। महेश्वरि! वाराणसी पुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जिस कारणसे मैं सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ, उसे बताता हूँ, सुनो। जो मेरा भक्त तथा मेरे तत्त्वका ज्ञानी है, वे दोनों अवश्य ही मोक्षके भागी होते हैं। उनके लिये तीर्थकी अपेक्षा नहीं है। विहित और अविहित दोनों प्रकारके कर्म उनके लिये समान हैं। उन्हें जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये। वे दोनों कहीं भी मरें, तुरंत ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह मैंने निश्चित बात कही है। सर्वोत्तमशक्ति देवी उमे! इस परम उत्तम अविमुक्त तीर्थमें जो विशेष बात है, उसे तुम मन लगाकर सुनो। सभी वर्ण और समस्त आश्रमोंके लोग चाहे वे बालक, जवान या बूढ़े, कोई भी क्यों न हों—यदि इस पुरीमें मर जायँ तो मुक्त हो ही जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। स्त्री अपवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा हो या वन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता, संस्कारहीना अथवा जैसी-तैसी—कैसी ही क्यों न हो, यदि इस क्षेत्रमें मरी हो तो अवश्य मोक्षकी भागिनी होती है—इसमें संदेह नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज प्राणी जैसे यहाँ मरनेपर मोक्ष पाता है, वैसे और कहीं नहीं पाता। देवि! यहाँ मरनेवालेके लिये न ज्ञानकी अपेक्षा है न भक्तिकी; न कर्मकी आवश्यकता है न दानकी; न कभी संस्कृतिकी अपेक्षा है और न धर्मकी ही; यहाँ नाम-कीर्तन, पूजन तथा उत्तम जातिकी भी अपेक्षा नहीं होती। जो मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जैसे मरे, उसके लिये मोक्षकी प्राप्ति सुनिश्चित है। प्रिये! मेरा यह दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। ब्रह्मा आदि देवता भी इसके माहात्म्यको नहीं जानते। इसलिये यह महान् क्षेत्र अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध है; क्योंकि नैमिष आदि सभी तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ है। यह मरनेपर अवश्य मोक्ष देनेवाला है। धर्मका सार सत्य है, मोक्षका सार समता है तथा समस्त क्षेत्रों एवं तीर्थोंका सार यह 'अविमुक्त' तीर्थ (काशी) है—ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है। इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीडा तथा विविध कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ भी मनुष्य यदि इस अविमुक्त तीर्थमें प्राणोंका परित्याग करता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है। जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है और जिसने धर्मकी रुचि त्याग दी है, वह भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होता है तो पुनः संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता। फिर जो ममतासे रहित, धीर, सत्त्वगुणी, दम्भहीन, कर्मकुशल और कर्तापनके अभिमानसे रहित होनेके कारण किसी भी कर्मका आरम्भ न करनेवाले हैं, उनकी तो बात ही क्या है। वे सब मुझमें ही स्थित हैं।

इस काशीपुरीमें शिवभक्तोंद्वारा अनेक शिवलिङ्ग स्थापित किये गये हैं। पार्वति! वे सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाले और मोक्षदायक हैं। चारों दिशाओंमें पाँच-पाँच कोस फैला हुआ यह क्षेत्र 'अविमुक्त' कहा गया है, वह सब ओरसे मोक्षदायक है। जीवको मृत्युकालमें यह क्षेत्र उपलब्ध हो जाय तो उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है। यदि निष्पाप मनुष्य काशीमें मरे तो उसका तत्काल मोक्ष हो जाता है और जो पापी मनुष्य मरता है, वह कायव्यूहोंको प्राप्त होता है। उसे पहले यातनाका अनुभव करके ही पीछे मोक्षकी प्राप्ति होती है। सुन्दरि! जो इस अविमुक्त क्षेत्रमें पातक करता है, वह हजारों वर्षोंतक भैरवी यातना पाकर पापका फल भोगनेके पश्चात् ही मोक्ष पाता है। शतकोटि कल्पोंमें भी अपने किये हुए कर्मका क्षय नहीं होता। जीवको अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। केवल अशुभ कर्म नरक देनेवाला होता है, केवल शुभ कर्म स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला होता है तथा शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंसे मनुष्य-योनिकी प्राप्ति बतायी गयी है। अशुभ कर्मकी कमी और शुभ कर्मकी अधिकता होनेपर उत्तम जन्म प्राप्त होता है। शुभ कर्मकी कमी और अशुभ कर्मकी अधिकता होनेपर यहाँ अधम जन्मकी प्राप्ति होती है। पार्वति! जब शुभ और अशुभ दोनों ही कर्मोंका क्षय हो जाता है, तभी जीवको सच्चा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि किसीने पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया है, तभी उसे इस जन्ममें काशीमें पहुँचकर मृत्युकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य काशी जाकर गङ्गामें स्नान करता है, उसके क्रियमाण और संचित कर्मका नाश हो जाता है। परंतु प्रारब्ध कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होता, यह निश्चित बात है। जिसकी काशीमें मुक्ति हो जाती है, उसके प्रारब्ध कर्मका भी क्षय हो जाता है। प्रिये! जिसने एक ब्राह्मणको भी काशीवास करवाया है, वह स्वयं भी काशीवासका अवसर पाकर मोक्ष लाभ करता है।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! इस तरह काशीका तथा विश्वेश्वर लिङ्गका प्रचुर माहात्म्य बताया गया है, जो

सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसके बाद मैं त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य बताऊँगा, जिसे सुनकर मनुष्य क्षणभरमें समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय २३)

त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके प्रसङ्गमें महर्षि गौतमके द्वारा किये गये परोपकारकी कथा, उनका तपके प्रभावसे अक्षय जल प्राप्त करके ऋषियोंकी अनावृष्टिके कष्टसे रक्षा करना; ऋषियोंका छलपूर्वक उन्हें गोहत्यामें फँसाकर आश्रमसे निकालना और शुद्धिका उपाय बताना

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! सुनो, मैंने सद्गुरु व्यासजीके मुखसे जैसी सुनी है, उसी रूपमें एक पापनाशक कथा तुम्हें सुना रहा हूँ। पूर्वकालकी बात है, गौतम नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पत्नीका नाम अहल्या था। दक्षिण दिशामें जो ब्रह्मगिरि है, वहीं उन्होंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो! एक समय वहाँ सौ वर्षोंतक बड़ा भयानक अवर्षण हो गया। सब लोग महान् दुःखमें पड़ गये। इस भूतलपर कहीं गीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता था। फिर जीवोंका आधारभूत जल कहाँसे दृष्टिगोचर होता। उस समय मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग—सब वहाँसे दसों दिशाओंको चले गये। तब गौतम ऋषिने छः महीनेतक तप करके वरुणको प्रसन्न किया। वरुणने प्रकट होकर वर माँगनेको कहा—ऋषिने वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरुणने कहा—'देवताओंके विधानके विरुद्ध वृष्टि न करके मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हें सदा अक्षय रहनेवाला जल देता हूँ। तुम एक गड्ढा तैयार करो।

उनके ऐसा कहनेपर गौतमने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा और वरुणने उसे दिव्य जलके द्वारा भर दिया तथा परोपकारसे सुशोभित होनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमसे कहा—'महामुने! कभी क्षीण न होनेवाला यह जल तुम्हारे लिये तीर्थरूप होगा और पृथ्वीपर तुम्हारे ही नामसे इसकी ख्याति होगी। यहाँ किये हुए दान, होम, तप, देवपूजन तथा पितरोंका श्राद्ध—सभी अक्षय होंगे।'

ऐसा कहकर उन महर्षिसे प्रशंसित हो वरुणदेव अन्तर्धान हो गये। उस जलके द्वारा दूसरोंका उपकार करके महर्षि गौतमको भी बड़ा सुख मिला। महात्मा पुरुषका आश्रय मनुष्योंके लिये महत्त्वकी ही प्राप्ति करानेवाला होता है। महान् पुरुष ही महात्माके उस स्वरूपको देखते और समझते हैं, दूसरे अधम मनुष्य नहीं। मनुष्य जैसे पुरुषका सेवन करता है, वैसा ही फल पाता है। महान् पुरुषकी सेवासे महत्ता मिलती है और क्षुद्रकी सेवासे क्षुद्रता। उत्तम पुरुषोंका यह स्वभाव ही है कि वे दूसरोंके दुःखको नहीं सहन कर पाते। अपनेको दुःख प्राप्त हो जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। किंतु दूसरोंके दुःखका निवारण ही करते हैं। दयालु, अभिमानशून्य, उपकारी और जितेन्द्रिय—ये पुण्यके चार खंभे हैं, जिनके आधारपर यह पृथ्वी टिकी हुई है।*

तदनन्तर गौतमजी वहाँ उस परम दुर्लभ जलको पाकर विधिपूर्वक नित्य-नैमित्तिक कर्म करने लगे। उन मुनीश्वरने वहाँ नित्य-होमकी सिद्धिके लिये धान, जौ और अनेक प्रकारके नीवार बोआ दिये। तरह-तरहके धान्य, भाँति-भाँतिके वृक्ष और अनेक प्रकारके फल-फूल वहाँ लहलहा उठे। यह समाचार सुनकर वहाँ दूसरे-दूसरे सहस्रों ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी तथा बहुसंख्यक जीव जाकर रहने लगे। वह वन इस भूमण्डलमें बड़ा सुन्दर हो गया। उस अक्षय जलके संयोगसे अनावृष्टि वहाँके लिये दुःखदायिनी नहीं रह गयी। उस वनमें अनेक शुभकर्मपरायण ऋषि अपने शिष्य, भार्या और पुत्र आदिके साथ वास करने लगे। उन्होंने कालक्षेप करनेके लिये वहाँ धान बोआ दिये। गौतमजीके प्रभावसे उस वनमें सब ओर आनन्द छा गया।

एक बार वहाँ गौतमके आश्रममें जाकर बसे हुए ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ जलके प्रसङ्गको लेकर अहल्यापर नाराज हो गयीं। उन्होंने अपने पतियोंको उकसाया। उन लोगोंने गौतमका अनिष्ट करनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। भक्तपराधीन गणेशजीने प्रकट होकर वर माँगनेके लिये कहा—

---

* उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता ॥
स्वयं दुःखं च सम्प्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते ।
दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः ॥
एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्यते मही ।
(शि० पु० कोटि० सं० २४ । २४--२६)

तब ये बोले—'भगवन् ! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे समस्त ऋषि डाँट-फटकारकर गौतमको आश्रमसे बाहर निकाल दें।'

गणेशजीने कहा—ऋषियो ! तुम सब लोग सुनो। इस समय तुम उचित कार्य नहीं कर रहे हो। बिना किसी अपराधके उनपर क्रोध करनेके कारण तुम्हारी हानि ही होगी। जिन्होंने पहले उपकार किया हो, उन्हें यदि दुःख दिया जाय तो वह अपने लिये हितकारक नहीं होता। जब उपकारीको दुःख दिया जाता है, तब उससे इस जगत्में अपना ही नाश होता है।* ऐसी तपस्या करके उत्तम फलकी सिद्धि की जाती है। स्वयं ही शुभ फलका परित्याग करके अहितकारक फलको नहीं ग्रहण किया जाता। ब्रह्माजीने जो यह कहा है कि असाधु कभी साधुताको और साधु कभी असाधुताको नहीं ग्रहण करता, यह बात निश्चय ही ठीक जान पड़ती है। पहले उपवासके कारण जब तुमलोगोंको दुःख भोगना पड़ा था, तब महर्षि गौतमने जलकी व्यवस्था करके तुम्हें सुख दिया। परंतु इस समय तुम सब लोग उन्हें दुःख दे रहे हो। संसारमें ऐसा कार्य करना कदापि उचित नहीं। इस बातपर तुम सब लोग सर्वथा विचार कर लो। स्त्रियोंकी शक्तिसे मोहित हुए तुमलोग यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा यह बर्ताव गौतमके लिये अत्यन्त हितकारक ही होगा, इसमें संशय नहीं है। ये मुनिश्रेष्ठ गौतम तुम्हें पुनः निश्चय ही सुख देंगे। अतः उनके साथ छल करना कदापि उचित नहीं। इसलिये तुमलोग कोई दूसरा वर माँगो।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! महात्मा गणेशने ऋषियोंसे जो यह बात कही, वह यद्यपि उनके लिये हितकर थी, तो भी उन्होंने इसे नहीं स्वीकार किया। तब भक्तोंके अधीन होनेके कारण उन शिवकुमारने कहा—'तुमलोगोंने जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य करूँगा। पीछे जो होनहार होगी, वह होकर ही रहेगी।' ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये। मुनीश्वरो ! उसके बाद उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे तथा उन्हें प्राप्त हुए वरके कारण जो घटना घटित हुई, उसे सुनो। वहाँ गौतमके खेतमें जो धान और जौ थे, उनके पास गणेशजी एक दुर्बल गाय बनकर गये। दिये हुए वरके कारण वह गौ काँपती हुई वहाँ जाकर धान और जौ चरने लगी। इसी समय दैववश गौतमजी वहाँ आ गये। वे दयालु ठहरे, इसलिये मुट्ठीभर तिनके लेकर उन्हींसे उस गौको हाँकने लगे। उन तिनकोंका स्पर्श होते ही वह गौ पृथ्वीपर गिर पड़ी और ऋषिके देखते-देखते उसी क्षण मर गयी।

वे दूसरे-दूसरे (द्वेषी) ब्राह्मण और उनकी दुष्ट स्त्रियाँ वहाँ छिपे हुए सब कुछ देख रहे थे। उस गौके गिरते ही वे सब-के-सब बोल उठे—'गौतमने यह क्या कर डाला ?' गौतम भी आश्चर्यचकित हो, अहल्याको बुलाकर व्यथित हृदयसे दुःखपूर्वक बोले—'देवि ! यह क्या हुआ, कैसे हुआ ? जान पड़ता है परमेश्वर मुझपर कुपित हो गये हैं। अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मुझे हत्या लग गयी।'

इसी समय ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ गौतमको डाँटने और दुर्वचनोंद्वारा अहल्याको पीड़ित करने लगीं। उनके दुर्बुद्धि शिष्य और पुत्र भी गौतमको बारंबार फटकारने और धिक्कारने लगे।

ब्राह्मण बोले—अब तुम्हें अपना मुँह नहीं दिखाना चाहिये। यहाँसे जाओ, जाओ। गोहत्यारेका मुँह देखनेपर तत्काल वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। जबतक तुम इस आश्रममें रहोगे, तबतक अग्निदेव और पितर हमारे दिये हुए किसी भी हव्य-कव्यको ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये पापी गोहत्यारे ! तुम परिवारसहित यहाँसे अन्यत्र चले जाओ। विलम्ब न करो।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर उन सबने उन्हें पत्थरोंसे मारना आरम्भ किया। वे गालियाँ दे देकर गौतम और अहल्याको सताने लगे। उन दुष्टोंके मारने और धमकानेपर गौतम बोले—'मुनियो ! मैं यहाँसे अन्यत्र जाकर रहूँगा' ऐसा कहकर गौतम उस स्थानसे तत्काल निकल गये और उन सबकी आज्ञासे एक कोस दूर जाकर उन्होंने अपने लिये आश्रम बनाया। वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंने कहा—'जबतक तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है, तबतक तुम्हें कोई यज्ञ-यागादि कर्म नहीं करना चाहिये। किसी भी वैदिक देवयज्ञ या पितृयज्ञके अनुष्ठानका तुम्हें अधिकार नहीं रह गया है।' मुनिवर गौतम उनके कथनानुसार किसी तरह एक पक्ष बिताकर उस दुःखसे दुःखी हो बारंबार उन मुनियोंसे अपनी शुद्धिके लिये प्रार्थना करने लगे। उनके दीनभावसे प्रार्थना करनेपर उन ब्राह्मणोंने कहा—'गौतम ! तुम अपने पापको प्रकट करते हुए तीन बार सारी पृथ्वीकी

* अपराधं विना तस्मै कुप्यतां हानिरेव च ॥
उपस्कृतं पुरा येस्तु तेभ्यो दुःखं हितं नहि ।
यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह ॥
(शि० पु० को० रु० सं० २५ । १४-१५)

परिक्रमा करो। फिर लौटकर यहाँ एक महीनेतक व्रत करो। उसके बाद इस ब्रह्मगिरिकी एक सौ एक परिक्रमा करनेके पश्चात् तुम्हारी शुद्धि होगी। अथवा यहाँ गङ्गाजीको ले आकर उन्हींके जलसे स्नान करो तथा एक करोड़ पार्थिव लिङ्ग बनाकर महादेवजीकी आराधना करो। फिर गङ्गामें स्नान करके इस पर्वतकी ग्यारह बार परिक्रमा करो। तत्पश्चात् सौ घड़ोंके जलसे पार्थिव शिवलिङ्गको स्नान करानेपर तुम्हारा उद्धार होगा।' उन ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर गौतमने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। वे बोले—'मुनिवरो! मैं आप श्रीमानोंकी आज्ञासे यहाँ पार्थिवपूजन तथा ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा करूँगा।' ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने उस पर्वतकी परिक्रमा करनेके पश्चात् पार्थिव लिङ्गोंका निर्माण करके उनका पूजन किया। साध्वी अहल्याने भी साथ रहकर वह सब कुछ किया। उस समय शिष्य-प्रशिष्य उन दोनोंकी सेवा करते थे।

(अध्याय २४-२५)

पत्नीसहित गौतमकी आराधनासे संतुष्ट हो भगवान् शिवका उन्हें दर्शन देना, गङ्गाको वहाँ स्थापित करके स्वयं भी स्थिर होना, देवताओंका वहाँ बृहस्पतिके सिंहराशिपर आनेपर गङ्गाजीके विशेष माहात्म्यको स्वीकार करना, गङ्गाका गौतमी (या गोदावरी) नामसे और शिवका त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके नामसे विख्यात होना तथा इन दोनोंकी महिमा

सूतजी कहते हैं—पत्नीसहित गौतम ऋषिके इस प्रकार आराधना करनेपर संतुष्ट हुए भगवान् शिव वहाँ शिवा और प्रमथगणोंके साथ प्रकट हो गये। तदनन्तर प्रसन्न हुए कृपानिधान शंकरने कहा—'महामुने! मैं तुम्हारी उत्तम भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।' उस समय महात्मा शम्भुके सुन्दर रूपको देखकर आनन्दित हुए गौतमने भक्तिभावसे शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। लंबी स्तुति और प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये और बोले—'देव! मुझे निष्पाप कर दीजिये।'



भगवान् शिवने कहा—मुने! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और सदा ही निष्पाप हो। इन दुष्टोंने तुम्हारे साथ छल किया। जगत्के लोग तुम्हारे दर्शनसे पापरहित हो जाते हैं। फिर सदा मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले तुम क्या पापी हो? मुने! जिन दुरात्माओंने तुमपर अत्याचार किया है, वे ही पापी, दुराचारी और हत्यारे हैं। उनके दर्शनसे दूसरे लोग पापिष्ठ हो जायँगे। वे सब-के-सब कृतघ्न हैं। उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता।

महादेवजीकी यह बात सुनकर महर्षि गौतम मन-ही-मन बड़े विस्मित हुए। उन्होंने भक्तिपूर्वक शिवको प्रणाम करके हाथ जोड़ पुनः इस प्रकार कहा।

गौतम बोले—महेश्वर! उन ऋषियोंने तो मेरा बहुत बड़ा उपकार किया। यदि उन्होंने यह बर्ताव न किया होता तो मुझे आपका दर्शन कैसे होता? धन्य हैं वे महर्षि, जिन्होंने मेरे लिये परम कल्याणकारी कार्य किया है। उनके इस दुराचारसे ही मेरा महान् स्वार्थ सिद्ध हुआ है।

गौतमजीकी यह बात सुनकर महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गौतमको कृपादृष्टिसे देखकर उन्हें शीघ्र ही यों उत्तर दिया।

शिवजी बोले—विप्रवर! तुम धन्य हो, सभी ऋषियोंमें श्रेष्ठतर हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। ऐसा जानकर तुम मुझसे उत्तम वर माँगो।

गौतम बोले—नाथ! आप सच कहते हैं, तथापि

पाँच आदमियोंने जो कह दिया या कर दिया, वह अन्यथा नहीं हो सकता। अतः जो हो गया, सो रहे। देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गङ्गा प्रदान कीजिये और ऐसा करके लोकका महान् उपकार कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर गौतमने देवेश्वर भगवान् शिवके दोनों चरणारविन्द पकड़ लिये और लोकहितकी कामनासे उन्हें नमस्कार किया। तब शंकरदेवने पृथिवी और स्वर्गके सारभूत जलको निकालकर, जिसे उन्होंने पहलेसे ही रख छोड़ा था और विवाहमें ब्रह्माजीके दिये हुए जलमेंसे जो कुछ शेष रह गया था, वह सब भक्तवत्सल शम्भुने उन गौतम मुनिको दे दिया। उस समय गङ्गाजीका जल परम सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करके वहाँ खड़ा हुआ। तब मुनिवर गौतमने उन गङ्गाजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया।

गौतम बोले—गङ्गे! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो। तुमने सम्पूर्ण भुवनको पवित्र किया है। इसलिये निश्चित रूपसे नरकमें गिरते हुए मुझ गौतमको पवित्र करो।

तदनन्तर शिवजीने गङ्गासे कहा—देवि! तुम मुनिको पवित्र करो और तुरंत वापस न जाकर वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें कलियुगतक यहीं रहो।

गङ्गाने कहा—महेश्वर! यदि मेरा माहात्म्य सब नदियोंसे अधिक हो और अम्बिका तथा गणोंके साथ आप भी यहाँ रहें, तभी मैं इस धरातलपर रहूँगी।

गङ्गाजीकी यह बात सुनकर भगवान् शिव बोले—गङ्गे! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो। मैं तुमसे अलग नहीं हूँ, तथापि मैं तुम्हारे कथनानुसार यहाँ स्थित रहूँगा। तुम भी स्थित होओ।

अपने स्वामी परमेश्वर शिवकी यह बात सुनकर गङ्गाने मन-ही-मन प्रसन्न हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी समय देवता, प्राचीन ऋषि, अनेक उत्तम तीर्थ और नाना प्रकारके क्षेत्र वहाँ आ पहुँचे। उन सबने बड़े आदरसे जय-जयकार करते हुए गौतम, गङ्गा तथा गिरिशायी शिवका पूजन किया। तदनन्तर उन सब देवताओंने मस्तक झुका हाथ जोड़कर उन सबकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति की। उस समय प्रसन्न हुई गङ्गा और गिरीशने उनसे कहा—'श्रेष्ठ देवताओ! वर माँगो। तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे वह वर हम तुम्हें देंगे।'

देवता बोले—देवेश्वर! यदि आप संतुष्ट हैं और सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे! यदि आप भी प्रसन्न हैं तो हमारा तथा मनुष्योंका प्रिय करनेके लिये आपलोग कृपापूर्वक यहाँ निवास करें।

गङ्गा बोलीं—देवताओ! फिर तो सबका प्रिय करनेके लिये आपलोग स्वयं ही यहाँ क्यों नहीं रहते? मैं तो गौतमजीके पापका प्रक्षालन करके जैसे आयी हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगी। आपके समाजमें यहाँ मेरी कोई विशेषता समझी जाती है, इस बातका पता कैसे लगे? यदि आप यहाँ मेरी विशेषता सिद्ध कर सकें तो मैं अवश्य यहाँ रहूँगी—इसमें संशय नहीं है।



सब देवताओंने कहा—सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे! सबके परम सुहृद् बृहस्पतिजी जब-जब सिंह राशिपर स्थित होंगे, तब-तब हम सब लोग यहाँ आया करेंगे, इसमें संशय नहीं है। ग्यारह वर्षोंतक लोगोंका जो पातक यहाँ प्रक्षालित होगा, उससे मलिन हो जानेपर हम उसी पापराशिको धोनेके लिये आदरपूर्वक तुम्हारे पास आयेंगे। हमने यह सर्वथा सच्ची बात कही है। सरिद्वरे! महादेवि! अतः तुमको और भगवान् शंकरको समस्त लोकोंपर अनुग्रह तथा हमारा प्रिय करनेके लिये यहाँ नित्य निवास करना चाहिये। गुरु जबतक सिंह राशिपर रहेंगे, तभीतक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे जलमें त्रिकालस्नान और भगवान् शंकरका दर्शन करके हम शुद्ध होंगे। फिर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने स्थानको लौटेंगे।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार उन देवताओं तथा महर्षि गौतमके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर और सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा दोनों वहाँ स्थित हो गये। वहाँकी गङ्गा गौतमी (गोदावरी) नामसे विख्यात हुईं और भगवान् शिवका ज्योतिर्मय लिङ्ग त्र्यम्बक कहलाया। यह ज्योतिर्लिङ्ग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है। उसी दिनसे लेकर जब-जब बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होते हैं, तब-तब सब तीर्थ, क्षेत्र, देवता, पुष्कर आदि सरोवर, गङ्गा आदि नदियाँ तथा श्रीविष्णु आदि देवगण अवश्य ही गौतमीके तटपर पधारते और वास करते हैं। वे सब जबतक गौतमीके किनारे रहते हैं, तबतक अपने स्थानपर उनका कोई फल नहीं होता। जब वे अपने प्रदेशमें लौट आते हैं, तभी वहाँ इनके सेवनका फल मिलता है। यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग गौतमीके तटपर स्थित है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो भक्तिभावसे इस त्र्यम्बक लिङ्गका दर्शन, पूजन, स्तवन एवं वन्दना करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौतमके द्वारा पूजित त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग इस लोकमें समस्त अभीष्टोंको देनेवाला तथा परलोकमें उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मुनीश्वरो! इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो, कहो। मैं उसे भी तुम्हें बताऊँगा, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय २६)

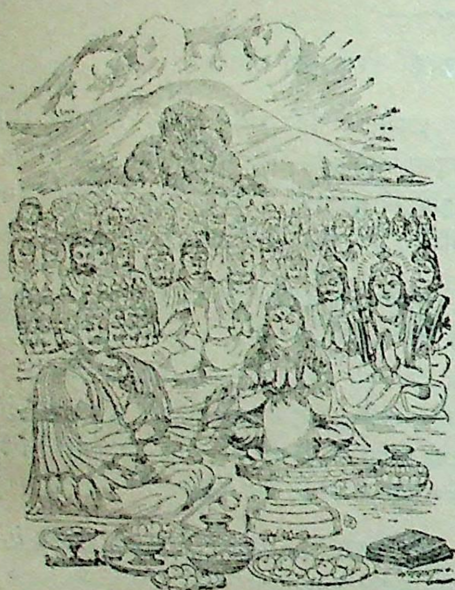
वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गके प्राकट्यकी कथा तथा महिमा

सूतजी कहते हैं—अब मैं वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गका पापहारी माहात्म्य बताऊँगा। सुनो! राक्षसराज रावण जो बड़ा अभिमानी और अपने अहंकारको प्रकट करनेवाला था, उत्तम पर्वत कैलासपर भक्तिभावसे भगवान् शिवकी आराधना कर रहा था। कुछ कालतक आराधना करनेपर जब महादेवजी प्रसन्न नहीं हुए, तब वह शिवकी प्रसन्नताके लिये दूसरा तप करने लगा। पुलस्त्यकुलनन्दन श्रीमान् रावणने सिद्धिके स्थानभूत हिमालय पर्वतसे दक्षिण वृक्षोंसे भरे हुए वनमें पृथ्वीपर एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर उसमें अग्निकी स्थापना की और उसके पास ही भगवान् शिवको स्थापित करके हवन आरम्भ किया। ग्रीष्म ऋतुमें वह पाँच अग्नियोंके बीचमें बैठता, वर्षा ऋतुमें खुले मैदानमें चबूतरेपर सोता और शीतकालमें जलके भीतर खड़ा रहता। इस तरह तीन प्रकारसे उसकी तपस्या चलती थी। इस रीतिसे रावणने बहुत तप किया, तो भी दुरात्माओंके लिये जिनको रिझाना कठिन है, वे परमात्मा महेश्वर उसपर प्रसन्न नहीं हुए। तब महामनस्वी दैत्यराज रावणने अपना मस्तक काटकर शंकरजीका पूजन आरम्भ किया। विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके वह अपना एक-एक सिर काटता और भगवान्‌को समर्पित कर देता था। इस तरह उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले। जब एक ही सिर बाकी रह गया, तब भक्तवत्सल भगवान् शंकर संतुष्ट एवं प्रसन्न हो वहीं उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान् शिवने उसके सभी मस्तकोंको पूर्ववत् नीरोग करके उसे उसकी इच्छाके अनुसार अनुपम उत्तम बल प्रदान किया। भगवान् शिवका कृपाप्रसाद पाकर राक्षस रावणने नतमस्तक हो हाथ जोड़कर उनसे कहा—'देवेश्वर! प्रसन्न होइये। मैं आपको लङ्कामें ले चलता हूँ। आप मेरे इस मनोरथको सफल कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

रावणके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर बड़े संकटमें पड़ गये और अनमने होकर बोले—'राक्षसराज! मेरी सारगर्भित बात सुनो। तुम मेरे इस उत्तम लिङ्गको भक्तिभावसे अपने घरको ले जाओ। परंतु जब तुम इसे कहीं भूमिपर रख दोगे, तब यह वहीं सुस्थिर हो जायगा, इसमें संदेह नहीं है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर राक्षसराज रावण 'बहुत अच्छा' कह वह शिवलिङ्ग साथ लेकर अपने घरकी ओर चला। परंतु मार्गमें भगवान् शिवकी मायासे उसे मूत्रोत्सर्गकी इच्छा हुई। पुलस्त्यनन्दन रावण सामर्थ्यशाली होनेपर भी मूत्रके वेगको रोक न सका। इसी समय वहाँ आस-पास एक ग्वालेको देखकर उसने प्रार्थनापूर्वक वह शिवलिङ्ग उसके हाथमें थमा दिया और स्वयं मूत्रत्यागके लिये बैठ गया। एक मुहूर्त बीतते-बीतते वह ग्वाला उस शिवलिङ्गके भारसे अत्यन्त पीड़ित हो व्याकुल हो गया, तब उसने उसे पृथ्वीपर रख दिया। फिर तो वह हीरकमय शिवलिङ्ग वहीं स्थित हो गया। वह दर्शन करनेमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाला और पापराशिको हर लेनेवाला है। मुने! वही शिवलिङ्ग तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वरके नामसे प्रसिद्ध

हुआ, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। यह दिव्य, उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजनसे भी समस्त पापोंको हर लेता है और मोक्षकी प्राप्ति कराता है। वह शिवलिङ्ग जब सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये वहीं स्थित हो गया, तब रावण भगवान् शिवका परम उत्तम वर पाकर अपने घरको चला गया। वहाँ जाकर उस महान् असुरने बड़े हर्षके साथ अपनी प्रिया मन्दोदरीको सारी बातें कह सुनायीं। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं और निर्मल मुनियोंने जब यह समाचार सुना, तब वे परस्पर सलाह करके वहाँ आये। उन सबका मन भगवान् शिवमें लगा हुआ था। उन सब देवताओंने उस समय वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवका विशेष पूजन किया।



वहाँ भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन करके देवताओंने उस शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना की और उसका वैद्यनाथ नाम रखकर उसकी वन्दना और स्तवन करके वे स्वर्गलोकको चले गये।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जब वह शिवलिङ्ग वहीं स्थित हो गया तथा रावण अपने घरको चला गया, तब वहाँ कौन-सी घटना घटित हुई—यह आप बताइये।

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! भगवान् शिवका परम उत्तम वर पाकर महान् असुर रावण अपने घरको चला गया। वहाँ उसने अपनी प्रियासे सब बातें कहीं और वह अत्यन्त आनन्दका अनुभव करने लगा। इधर इस समाचारको सुनकर देवता घबरा गये कि पता नहीं यह देवद्रोही महादुष्ट रावण भगवान् शिवके वरदानसे बल पाकर क्या करेगा। उन्होंने नारदजीको भेजा। नारदजीने जाकर रावणसे कहा—'तुम कैलास पर्वतको उठाओ, तब पता लगेगा कि शिवजीका दिया हुआ वरदान कहाँतक सफल हुआ।' रावणको यह बात जच गयी। उसने जाकर कैलासको उखाड़ लिया। इससे सारा कैलास हिल उठा। तब गिरिजाके कहनेसे महादेवजीने रावणको घमंडी समझकर इस प्रकार शाप दिया।

महादेवजी बोले—रे रे दुष्ट भक्त दुर्बुद्धि रावण! तू अपने बलपर इतना घमंड न कर। तेरी इन भुजाओंका घमंड चूर करनेवाला वीर पुरुष शीघ्र ही इस जगत्में अवतीर्ण होगा।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार वहाँ जो घटना हुई, उसे नारदजीने सुना। रावण भी प्रसन्न चित्त हो जैसे आया था, उसी तरह अपने घरको लौट गया। इस प्रकार मैंने वैद्यनाथेश्वरका माहात्म्य बताया है। इसे सुननेवाले मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है। (अध्याय २७—२८)

नागेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव और उसकी महिमा

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं परमात्मा शिवके नागेश नामक परम उत्तम ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावका प्रसङ्ग सुनाऊँगा। दारुका नामसे प्रसिद्ध कोई राक्षसी थी, जो पार्वतीके वरदानसे सदा घमंडमें भरी रहती थी। अत्यन्त बलवान् राक्षस दारुक उसका पति था। उसने बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर वहाँ सत्पुरुषोंका संहार मचा रक्खा था। वह लोगोंके यज्ञ और धर्मका नाश करता फिरता था। पश्चिम समुद्रके तटपर उसका एक वन था, जो सम्पूर्ण समृद्धियोंसे भरा रहता था। उस वनका विस्तार सब ओरसे सोलह योजन था। दारुका अपने विलासके लिये जहाँ जाती थी, वहीं भूमि, वृक्ष तथा अन्य सब उपकरणोंसे युक्त वह वन भी चला जाता था। देवी पार्वतीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको सौंप दिया था। दारुका अपने पतिके साथ इच्छानुसार उसमें विचरण करती थी। राक्षस दारुक अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ रहकर सबको भय देता था। उससे पीड़ित हुई प्रजाने महर्षि और्वकी शरणमें जाकर उनको अपना दुःख सुनाया। और्वने शरणागतोंकी

रक्षाके लिये राक्षसोंको यह शाप दे दिया कि 'ये राक्षस यदि पृथ्वीपर प्राणियोंकी हिंसा या यज्ञोंका विध्वंस करेंगे तो उसी समय अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे।' देवताओंने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने दुराचारी राक्षसोंपर चढ़ाई कर दी। राक्षस घबराये। यदि वे लड़ाईमें देवताओंको मारते तो मुनिके शापसे स्वयं मर जाते हैं और यदि नहीं मारते तो पराजित होकर भूखों मर जाते हैं। उस अवस्थामें राक्षसी दारुकाने कहा कि 'भवानीके वरदानसे मैं इस सारे वनको जहाँ चाहूँ, ले जा सकती हूँ!' यों कहकर वह समस्त वनको ज्यों-का-त्यों ले जाकर समुद्रमें जा बसी। राक्षसलोग पृथ्वीपर न रहकर जलमें निर्भय रहने लगे और वहाँ प्राणियोंको पीड़ा देने लगे।

एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सब लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। वे उन्हें बारंबार धमकियाँ देने लगे। उनमें सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वैश्य था, जो उस दलका सरदार था। वह बड़ा सदाचारी, भस्म-रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। सुप्रिय शिवकी पूजा किये बिना भोजन नहीं करता था। वह स्वयं तो शंकरका पूजन करता ही था, बहुत-से अपने साथियोंको भी उसने शिवकी पूजा सिखा दी थी। फिर सब लोग 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप और शंकरजीका ध्यान करने लगे। सुप्रियको भगवान् शिवका दर्शन भी होता था। दारुक राक्षसको जब इस बातका पता लगा, तब उसने आकर सुप्रियको धमकाया। उसके साथी राक्षस सुप्रियको मारने दौड़े। उन राक्षसोंको आया देख सुप्रियके नेत्र भयसे कातर हो गये, वह बड़े प्रेमसे शिवका चिन्तन और उनके नामोंका जप करने लगा।

वैश्यपतिने कहा—देवेश्वर शंकर! मेरी रक्षा कीजिये। कल्याणकारी त्रिलोकीनाथ! दुष्टहन्ता भक्तवत्सल शिव! हमें इस दुष्टसे बचाइये। देव! अब आप ही मेरे सर्वस्व हैं; प्रभो! मैं आपका हूँ, आपके अधीन हूँ और आप ही सदा मेरे जीवन एवं प्राण हैं।

सूतजी कहते हैं—सुप्रियके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर एक विवरसे निकल पड़े। उनके साथ ही चार दरवाजोंका एक उत्तम मन्दिर भी प्रकट हो गया। उसके मध्यभागमें अद्भुत ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग प्रकाशित हो रहा था। उसके साथ शिवपरिवारके सब लोग विद्यमान थे। सुप्रियने उनका दर्शन करके पूजन किया। पूजित होनेपर भगवान् शम्भुने प्रसन्न हो स्वयं पाशुपतास्त्र लेकर प्रधान-प्रधान राक्षसों, उनके सारे उपकरणों तथा सेवकोंको भी तत्काल ही नष्ट कर दिया और उन दुष्टहन्ता शंकरने अपने भक्त सुप्रियकी रक्षा की। तत्पश्चात् अद्भुत लीला करनेवाले और लीलासे ही शरीर धारण करनेवाले शम्भुने उस वनको यह वर दिया कि आजसे इस वनमें सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्मोंका पालन हो। यहाँ श्रेष्ठ मुनि निवास करें और तमोगुणी राक्षस इसमें कभी न रहें। शिवधर्मके उपदेशक, प्रचारक और प्रवर्तक लोग इसमें निवास करें!

सूतजी कहते हैं—इसी समय राक्षसी दारुकाने दीन-चित्तसे देवी पार्वतीकी स्तुति की। देवी पार्वती प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'बताओ, तेरा क्या कार्य करूँ?' उसने कहा—



'मेरे वंशकी रक्षा कीजिये।' देवी बोलीं—'मैं सच कहती हूँ, तेरे कुलकी रक्षा करूँगी।' ऐसा कहकर देवी भगवान् शिवसे बोलीं—'नाथ! आपकी यह बात युगके अन्तमें सच्ची होगी। तबतक तामसी सृष्टि भी रहे, ऐसा मेरा विचार है। मैं भी आपकी ही हूँ और आपके ही आश्रयमें रहती हूँ। अतः मेरी बातको भी प्रमाणित (सत्य) कीजिये। यह राक्षसी दारुका देवी है—मेरी ही शक्ति है और राक्षसियोंमें बलिष्ठ है। अतः यही राक्षसोंके राज्यका शासन करे। ये राक्षस-पत्नियाँ जिन

पुत्रोंको पैदा करेंगी, वे सब मिलकर इस वनमें निवास करें, ऐसी मेरी इच्छा है।

शिव बोले—प्रिये! यदि तुम ऐसी बात कहती हो तो मेरा यह वचन सुनो। मैं भक्तोंका पालन करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक इस वनमें रहूँगा। जो पुरुष यहाँ वर्णधर्मके पालनमें तत्पर हो प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। कलियुगके अन्त और सत्ययुगके आरम्भमें महासेनका पुत्र वीरसेन राजाओंका भी राजा होगा। वह मेरा भक्त और अत्यन्त पराक्रमी होगा और यहाँ आकर मेरा दर्शन करेगा। दर्शन करते ही वह चक्रवर्ती सम्राट् हो जायगा।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले वे दम्पति परस्पर हास्ययुक्त वार्तालाप करके स्वयं वहाँ स्थित हो गये। ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और शिवा देवी नागेश्वरीके नामसे विख्यात हुईं। वे दोनों ही सत्पुरुषोंको प्रिय हैं।

इस प्रकार ज्योतियोंके स्वामी नागेश्वर नामक महादेवजी ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए। वे तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण कामनाओंको सदा पूर्ण करनेवाले हैं। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक नागेश्वरके प्रादुर्भावका यह प्रसङ्ग सुनता है, वह बुद्धिमान् मानव महापातकोंका नाश करनेवाले सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २९-३०)

रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं यह बता रहा हूँ कि रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग पहले किस प्रकार प्रकट हुआ। इस प्रसङ्गको तुम आदरपूर्वक सुनो। भगवान् विष्णुके रामावतारमें जब रावण सीताजीको हरकर लङ्कामें ले गया, तब सुग्रीवके साथ अठारह पद्म वानरसेना लेकर श्रीराम समुद्रतटपर आये। वहाँ वे विचार करने लगे कि कैसे हम समुद्रको पार करेंगे और किस प्रकार रावणको जीतेंगे। इतनेमें ही श्रीरामको प्यास लगी। उन्होंने जल माँगा और वानर मीठा जल ले आये। श्रीरामने प्रसन्न होकर वह जल ले लिया। तबतक उन्हें स्मरण हो आया कि 'मैंने अपने स्वामी भगवान् शंकरका दर्शन तो किया ही नहीं। फिर यह जल कैसे ग्रहण कर सकता हूँ?' ऐसा कहकर उन्होंने उस जलको नहीं पीया। जल रख देनेके पश्चात् रघुनन्दनने पार्थिव-पूजन किया। आवाहन आदि सोलह उपचारोंको प्रस्तुत करके विधिपूर्वक बड़े प्रेमसे शंकरजीकी अर्चना की। प्रणाम तथा दिव्य स्तोत्रोंद्वारा यत्नपूर्वक शंकरजीको संतुष्ट करके श्रीरामने भक्तिभावसे उनसे प्रार्थना की।

श्रीराम बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मेरे स्वामी देव महेश्वर! आपको मेरी सहायता करनी चाहिये। आपके सहयोगके बिना मेरे कार्यकी सिद्धि अत्यन्त कठिन है। रावण भी आपका ही भक्त है। वह सबके लिये सर्वथा दुर्जय है। परंतु आपके दिये हुए वरदानसे वह सदा दर्पमें भरा रहता है। वह त्रिभुवनविजयी महावीर है। इधर मैं भी आपका दास हूँ, सर्वथा आपके अधीन रहनेवाला हूँ। सदाशिव! यह विचारकर आपको मेरे प्रति पक्षपात करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रार्थना और बारंबार नमस्कार करके उन्होंने उच्चस्वरसे 'जय शंकर, जय शिव' इत्यादिका उद्घोष करते हुए शिवका स्तवन किया। फिर उनके मन्त्रके जप और ध्यानमें तत्पर हो गये। तत्पश्चात् पुनः पूजन करके वे स्वामीके आगे नाचने लगे। उस समय उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो रहा था, फिर उन्होंने शिवके संतोषके लिये गाल बजाकर अव्यक्त शब्द किया। उस समय भगवान् शंकर उनपर बहुत प्रसन्न हुए और वे ज्योतिर्मय महेश्वर वामाङ्गभूता पार्वती तथा पार्षदगणोंके साथ शास्त्रोक्त निर्मल रूप धारण करके तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। श्रीरामकी भक्तिसे संतुष्टचित्त होकर महेश्वरने उनसे कहा—'श्रीराम! तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो।' उस समय उनका रूप देखकर वहाँ उपस्थित हुए सब लोग पवित्र हो गये। शिवधर्मपरायण श्रीरामजीने स्वयं उनका पूजन किया। फिर भाँति-भाँतिकी स्तुति एवं प्रणाम करके उन्होंने भगवान् शिवसे लङ्कामें रावणके साथ होनेवाले युद्धमें अपने लिये विजयकी प्रार्थना की। तब रामभक्तिसे प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—'महाराज! तुम्हारी जय हो।' भगवान् शिवके दिये हुए विजयसूचक वर एवं युद्धकी आज्ञाको पाकर श्रीरामने नतमस्तक हो हाथ जोड़कर उनसे पुनः प्रार्थना की।



श्रीराम बोले—मेरे स्वामी शंकर ! यदि आप संतुष्ट हैं तो जगत्‌के लोगोंको पवित्र करने तथा दूसरोंकी भलाई करनेके लिये सदा यहाँ निवास करें ।

सूतजी कहते हैं—श्रीरामके ऐसा कहनेपर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये । तीनों लोकोंमें रामेश्वरके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई । उनके प्रभावसे ही अपार समुद्रको अनायास पार करके श्रीरामने रावण आदि राक्षसोंका शीघ्र ही संहार किया और अपनी प्रिया सीताको प्राप्त कर लिया । तबसे इस भूतलपर रामेश्वरकी अद्भुत महिमाका प्रसार हुआ । भगवान् रामेश्वर सदा भोग और मोक्ष देनेवाले तथा भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं । जो दिव्य गङ्गाजलसे रामेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त ही है । इस संसारमें देवदुर्लभ समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उत्तम ज्ञान पाकर वह निश्चय ही कैवल्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे भगवान् शिवके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन किया, जो अपनी महिमा सुननेवालोंके समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला है । (अध्याय ३१)

घुश्माकी शिवभक्तिसे उसके मरे हुए पुत्रका जीवित होना, घुश्मेश्वर शिवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमाका वर्णन

सूतजी कहते हैं—अब मैं घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिङ्गके प्रादुर्भावका और उसके माहात्म्यका वर्णन करूँगा । मुनिवरो ! ध्यान देकर सुनो । दक्षिण दिशामें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम देवगिरि है । वह देखनेमें अद्भुत तथा नित्य परम शोभासे सम्पन्न है । उसीके निकट कोई भरद्वाजकुलमें उत्पन्न सुधर्मा नामक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहते थे । उनकी प्रिय पत्नीका नाम सुदेहा था, वह सदा शिवधर्मके पालनमें तत्पर रहती थी, घरके काम-काजमें कुशल थी और सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थी । द्विजश्रेष्ठ सुधर्मा भी देवताओं और अतिथियोंके पूजक थे । वे वेदवर्णित मार्गपर चलते और नित्य अग्निहोत्र किया करते थे । तीनों कालकी संध्या करनेसे उनकी कान्ति सूर्यके समान उद्दीप्त थी । वे वेद-शास्त्रके मर्मज्ञ थे और शिष्योंको पढ़ाया करते थे । धनवान् होनेके साथ ही बड़े दाता थे । सौजन्य आदि सद्गुणोंके भाजन थे । शिवसम्बन्धी पूजनादि कार्यमें ही सदा लगे रहते थे । वे स्वयं तो शिवभक्त थे ही, शिवभक्तोंसे बड़ा प्रेम रखते थे । शिवभक्तोंको भी वे बहुत प्रिय थे ।

यह सब कुछ होनेपर भी उनके पुत्र नहीं था । इससे ब्राह्मणको तो दुःख नहीं होता था, परंतु उनकी पत्नी बहुत दुखी रहती थी । पड़ोसी और दूसरे लोग भी उसे ताना मारा करते थे । वह पतिसे बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती थी । पति उसको ज्ञानोपदेश देकर समझाते थे, परंतु उसका मन नहीं मानता था । अन्ततोगत्वा ब्राह्मणने कुछ उपाय भी किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ । तब ब्राह्मणीने अत्यन्त दुखी हो बहुत हठ करके अपनी बहिन घुश्मासे पतिका दूसरा विवाह करा दिया । विवाहसे पहले सुधर्माने उसको समझाया कि 'इस समय तो तुम बहिनसे प्यार कर रही हो; परंतु जब इसके पुत्र हो जायगा, तब इससे स्पर्धा करने लगोगी ।' उसने वचन दिया कि मैं बहिनसे कभी डाह नहीं करूँगी । विवाह हो जानेपर घुश्मा दासीकी भाँति बड़ी बहिनकी सेवा करने लगी । सुदेहा भी उसे बहुत प्यार करती रही । घुश्मा अपनी शिवभक्ता बहिनकी आज्ञासे नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक पूजा करने लगी । पूजा करके वह निकटवर्ती तालाबमें उनका विसर्जन कर देती थी ।

शंकरजीकी कृपासे उसके एक सुन्दर सौभाग्यवान्

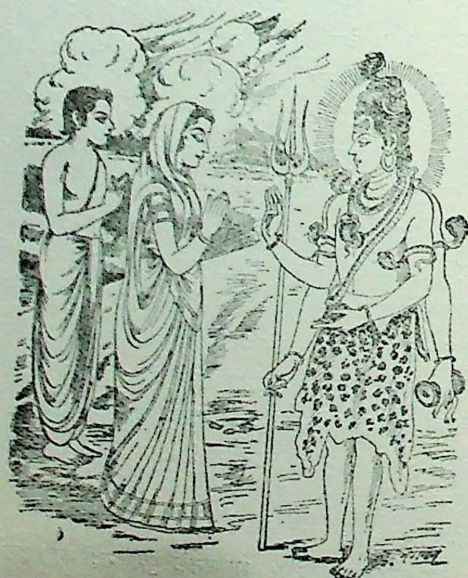
और सद्गुणसम्पन्न पुत्र हुआ। घुश्माका कुछ मान बढ़ा। इससे सुदेहाके मनमें डाह पैदा हो गयी। समयपर उस पुत्रका विवाह हुआ। पुत्रवधू घरमें आ गयी। अब तो वह और भी जलने लगी—उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और एक दिन उसने रातमें सोते हुए पुत्रको छुरेसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके मार डाला और कटे हुए अङ्गोंको उसी तालाबमें ले जाकर डाल दिया, जहाँ घुश्मा प्रतिदिन पार्थिव लिङ्गोंका विसर्जन करती थी। पुत्रके अङ्गोंको उस तालाबमें फेंककर वह लौट आयी और घरमें सुखपूर्वक सो गयी। घुश्मा सबेरे उठकर प्रतिदिनका पूजनादि कर्म करने लगी। श्रेष्ठ ब्राह्मण सुधर्मा स्वयं भी नित्यकर्ममें लग गये। इसी समय उनकी ज्येष्ठ पत्नी सुदेहा भी उठी और बड़े आनन्दसे घरके काम-काज करने लगी; क्योंकि उसके हृदयमें पहले जो ईर्ष्याकी आग जलती थी, वह अब बुझ गयी थी। प्रातःकाल जब बहूने उठकर पतिकी शय्याको देखा तो वह खूनसे भीगी दिखायी दी और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दृष्टिगोचर हुए, इससे उसको बड़ा दुःख हुआ। उसने सास (घुश्मा) के पास जाकर निवेदन किया—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली आर्ये! आपके पुत्र कहाँ गये! उनकी शय्या रक्तसे भीगी हुई है और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दिखायी देते हैं। हाय! मैं मारी गयी! किसने यह दुष्ट कर्म किया है!' ऐसा कहकर वह बेटेकी प्रिय पत्नी भाँति-भाँतिसे करुण विलाप करती हुई रोने लगी। सुधर्माकी बड़ी पत्नी सुदेहा भी उस समय 'हाय! मैं मारी गयी!' ऐसा कहकर दुःखमें डूब गयी। उसने ऊपरसे तो दुःख किया, किंतु मन-ही-मन वह हर्षसे भरी हुई थी! घुश्मा भी उस समय उस बधूके दुःखको सुनकर अपने नित्य पार्थिव-पूजनके व्रतसे विचलित नहीं हुई। उसका मन बेटेको देखनेके लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ। उसके पतिकी भी ऐसी ही अवस्था थी। जबतक नित्य-नियम पूरा नहीं हुआ, तबतक उन्हें दूसरी किसी बातकी चिन्ता नहीं हुई। दोपहरको पूजन समाप्त होनेपर घुश्माने अपने पुत्रकी भयंकर शय्यापर दृष्टिपात किया, तथापि उसने मनमें किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं माना। वह सोचने लगी—'जिन्होंने यह बेटा दिया था, वे ही इसकी रक्षा करेंगे। वे भक्तप्रिय कहलाते हैं, कालके भी काल हैं और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। एकमात्र वे प्रभु सर्वेश्वर शम्भु ही हमारे रक्षक हैं। वे माला गूँथनेवाले पुरुषकी भाँति जिनको जोड़ते हैं, उनको अलग भी करते हैं। अतः अब मेरे चिन्ता करनेसे क्या होगा।' इस तत्त्वका विचार करके उसने शिवके भरोसे धैर्य धारण किया और उस समय दुःखका अनुभव नहीं किया। वह पूर्ववत् पार्थिव शिवलिङ्गोंको लेकर स्वस्थचित्तसे शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई उस तालाबके किनारे गयी। उन पार्थिव लिङ्गोंको तालाबमें डालकर जब वह लौटने लगी तो उसे अपना पुत्र उसी तालाबके किनारे खड़ा दिखायी दिया।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! उस समय वहाँ अपने पुत्रको जीवित देखकर उसकी माता घुश्माको न तो हर्ष हुआ और न विषाद। वह पूर्ववत् स्वस्थ बनी रही। इसी समय उसपर संतुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शिव शीघ्र उसके सामने प्रकट हो गये।

शिव बोले—सुमुखि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तेरी दुष्टा सौतने इस बच्चेको मार डाला था। अतः मैं उसे त्रिशूलसे मारूँगा।

सूतजी कहते हैं—तब घुश्माने शिवको प्रणाम करके उस समय यह वर माँगा—'नाथ! यह सुदेहा मेरी बड़ी बहिन है, अतः आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये।'

शिव बोले—उसने तो बड़ा भारी अपकार किया है, तुम उसपर उपकार क्यों करती हो? दुष्ट कर्म करनेवाली सुदेहा तो मार डालनेके ही योग्य है।



घुश्माने कहा—देव ! आपके दर्शनमात्रसे पातक नहीं ठहरता। इस समय आपका दर्शन करके उसका पाप भस्म हो जाय। 'जो अपकार करनेवालोंपर भी उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे पाप बहुत दूर भाग जाता है।'* प्रभो ! यह अद्भुत भगवद्वाक्य मैंने सुन रक्खा है । इसलिये सदाशिव! जिसने ऐसा कुकर्म किया है, वही करे; मैं ऐसा क्यों करूँ (मुझे तो बुरा करनेवालेका भी भला ही करना है) ।

सूतजी कहते हैं—घुश्माके ऐसा कहनेपर दयासिन्धु भक्तवत्सल महेश्वर और भी प्रसन्न हुए तथा इस प्रकार बोले—'घुश्मे ! तुम कोई और भी वर माँगो। मैं तुम्हारे लिये हितकर वर अवश्य दूँगा; क्योंकि तुम्हारी इस भक्तिसे और विकारशून्य स्वभावसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।'

भगवान् शिवकी बात सुनकर घुश्मा बोली—'प्रभो ! यदि आप वर देना चाहते हैं तो लोगोंकी रक्षाके लिये सदा यहाँ निवास कीजिये और मेरे नामसे ही आपकी ख्याति हो।' तब महेश्वर शिवने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'मैं तुम्हारे ही नामसे घुश्मेश्वर कहलाता हुआ सदा यहाँ निवास करूँगा और सबके लिये सुखदायक होऊँगा। मेरा शुभ ज्योतिर्लिङ्ग घुश्मेश नामसे प्रसिद्ध हो। यह सरोवर शिवलिङ्गोंका आलय हो जाय और इसीलिये इसकी तीनों लोकोंमें शिवालय नामसे प्रसिद्धि हो। यह सरोवर सदा दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्टोंका देनेवाला हो। सुव्रते ! तुम्हारे वंशमें होनेवाली एक सौ एक पीढ़ियोंतक ऐसे ही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होंगे, इसमें संशय नहीं है। वे सब-के-सब सुन्दरी स्त्री, उत्तम धन और पूर्ण आयुसे सम्पन्न होंगे, चतुर और विद्वान् होंगे, उदार तथा भोग और मोक्षरूपी फल पानेके अधिकारी होंगे। एक सौ एक पीढ़ियोंतक सभी पुत्र गुणोंमें बढ़े-चढ़े होंगे। तुम्हारे वंशका ऐसा विस्तार बड़ा शोभादायक होगा।'

ऐसा कहकर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये। उनकी घुश्मेश नामसे प्रसिद्धि हुई और उस सरोवरका नाम शिवालय हो गया। सुधर्मा, घुश्मा और सुदेहा—तीनोंने आकर तत्काल ही उस शिवलिङ्गकी एक सौ एक दक्षिणावर्त परिक्रमा की। पूजा करके परस्पर मिलकर मनका मैल दूर करके वे सब वहाँ बड़े सुखका अनुभव करने लगे। पुत्रको जीवित देख सुदेहा बहुत लज्जित हुई और पति तथा घुश्मासे क्षमाप्रार्थना करके उसने अपने पापके निवारणके लिये प्रायश्चित्त किया। मुनीश्वरो ! इस प्रकार वह घुश्मेश्वर लिङ्ग प्रकट हुआ। उसका दर्शन और पूजन करनेसे सदा सुखकी वृद्धि होती है। ब्राह्मणो ! इस तरह मैंने तुमसे बारह ज्योतिर्लिङ्गोंकी महिमा बतायी। ये सभी लिङ्ग सम्पूर्ण कामनाओंके पूरक तथा भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जो इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथाको पढ़ता और सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता तथा भोग और मोक्ष पाता है। (अध्याय ३२-३३)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्यकी समाप्ति

शंकरजीकी आराधनासे भगवान् विष्णुको सुदर्शन चक्रकी प्राप्ति तथा उसके द्वारा दैत्योंका संहार

व्यासजी कहते हैं—सूतका यह वचन सुनकर उन मुनीश्वरोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके लोकहितकी कामनासे इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—सूतजी ! आप सब जानते हैं। इसलिये हम आपसे पूछते हैं। प्रभो ! हरीश्वरलिङ्गकी महिमाका वर्णन कीजिये। तात ! हमने पहलेसे सुन रक्खा है कि भगवान् विष्णुने शिवकी आराधनासे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। अतः उस कथापर भी विशेषरूपसे प्रकाश डालिये।

सूतजीने कहा—मुनिवरो ! हरीश्वरलिङ्गकी शुभ कथा सुनो ! भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें हरीश्वर शिवसे ही सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। एक समयकी बात है, दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर लोगोंको पीड़ा देने और धर्मका लोप करने लगे।

* अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति वै । तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत् ॥
(शि० पु० को० रु० सं० ३३ । २९)

उन महाबली और पराक्रमी दैत्योंसे पीड़ित हो देवताओंने देवरक्षक भगवान् विष्णुसे अपना सारा दुःख कहा। तब श्रीहरि कैलासपर जाकर भगवान् शिवकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे। वे हजार नामोंसे शिवकी स्तुति करते तथा प्रत्येक नामपर एक कमल चढ़ाते थे। तब भगवान् शंकरने विष्णुके भक्तिभावकी परीक्षा करनेके लिये उनके लाये हुए एक हजार कमलोंमेंसे एकको छिपा दिया। शिवकी मायाके कारण घटित हुई इस अद्भुत घटनाका भगवान् विष्णुको पता नहीं लगा। उन्होंने एक फूल कम जानकर उसकी खोज आरम्भ की। दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीहरिने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये उस एक फूलकी प्राप्तिके उद्देश्यसे सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया। परंतु कहीं भी उन्हें वह फूल नहीं मिला। तब विशुद्धचेता विष्णुने एक फूलकी पूर्तिके लिये अपने कमलसदृश एक नेत्रको ही निकालकर चढ़ा दिया। यह देख सबका दुःख दूर करनेवाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और वहीं उनके सामने प्रकट हो गये। प्रकट होकर वे श्रीहरिसे बोले—'हरे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु दूँगा। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'



विष्णु बोले—नाथ! आपके सामने मुझे क्या कहना है। आप अन्तर्यामी हैं, अतः सब कुछ जानते हैं, तथापि आपके आदेशका गौरव रखनेके लिये कहता हूँ। दैत्योंने सारे जगत्को पीड़ित कर रक्खा है। सदाशिव! हमलोगोंको सुख नहीं मिलता। स्वामिन्! मेरा अपना अस्त्र-शस्त्र दैत्योंके वधमें काम नहीं देता। परमेश्वर! इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

सूतजी कहते हैं—श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने तेजोराशिमय अपना सुदर्शन चक्र उन्हें दे दिया। उसको पाकर भगवान् विष्णुने उन समस्त प्रबल दैत्योंका उस चक्रके द्वारा बिना परिश्रमके ही संहार कर डाला। इससे सारा जगत् स्वस्थ हो गया। देवताओंको भी सुख मिला और अपने लिये उस आयुधको पाकर भगवान् विष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न एवं परम सुखी हो गये।

ऋषियोंने पूछा—शिवके वे सहस्र नाम कौन-कौन हैं, बताइये, जिनसे संतुष्ट होकर महेश्वरने श्रीहरिको चक्र प्रदान किया था? उन नामोंके माहात्म्यका भी वर्णन कीजिये। श्रीविष्णुके ऊपर शंकरजीकी जैसी कृपा हुई थी, उसका यथार्थरूपसे प्रतिपादन कीजिये।

शुद्ध अन्तःकरणवाले उन मुनियोंकी वैसी बात सुनकर सूतने शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया। (अध्याय ३४)

भगवान् विष्णुद्वारा पठित शिवसहस्रनाम-स्तोत्र

सूत उवाच

श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः।
तदहं कथयाम्यद्य शैवं नामसहस्रकम्॥ १॥

सूतजी बोले—मुनिवरो! सुनो, जिससे महेश्वर संतुष्ट होते हैं, वह शिवसहस्रनाम-स्तोत्र आज तुम सबको सुना रहा हूँ॥ १॥

विष्णुरुवाच

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः।
अर्थिगम्यः सदाचारः शर्वः शम्भुर्महेश्वरः॥ २॥

भगवान् विष्णुने कहा—१ शिवः—कल्याणस्वरूप, २ हरः—भक्तोंके पाप-ताप हर लेनेवाले, ३ मृडः—सुखदाता, ४ रुद्रः—दुःख दूर करनेवाले, ५ पुष्करः—आकाशस्वरूप,

६ पुष्पलोचनः-पुष्पके समान खिले हुए नेत्रवाले, ७ अर्थिगम्यः-प्रार्थियोंको प्राप्त होनेवाले, ८ सदाचारः-श्रेष्ठ आचरणवाले, ९ शर्वः-संहारकारी, १० शम्भुः-कल्याण-निकेतन, ११ महेश्वरः-महान् ईश्वर ॥ २ ॥

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः ।
वेदान्तसारसंदोहः कपाली नीललोहितः ॥ ३ ॥

१२ चन्द्रापीडः-चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, १३ चन्द्रमौलिः-सिरपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, १४ विश्वम्-सर्वस्वरूप, १५ विश्वम्भरेश्वरः-विश्वका भरण-पोषण करनेवाले श्रीविष्णुके भी ईश्वर, १६ वेदान्तसारसंदोहः-वेदान्तके सारतत्त्व सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी साकार मूर्ति, १७ कपाली-हाथमें कपाल धारण करनेवाले, १८ नीललोहितः-(गलेमें) नील और (शेष अङ्गोंमें) लोहित वर्णवाले ॥ ३ ॥

ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः ।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्वर्गसाधनः ॥ ४ ॥

१९ ध्यानाधारः-ध्यानके आधार, २० अपरिच्छेद्यः-देश, काल और वस्तुकी सीमासे अविभाज्य, २१ गौरीभर्ता-गौरी अर्थात् पार्वतीजीके पति, २२ गणेश्वरः-प्रमथगणोंके स्वामी, २३ अष्टमूर्तिः-जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और यजमान—इन आठ रूपोंवाले, २४ विश्वमूर्तिः-अखिल ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुष, २५ त्रिवर्गस्वर्गसाधनः-धर्म, अर्थ, काम तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ४ ॥

ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ।
वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः ॥ ५ ॥

२६ ज्ञानगम्यः-ज्ञानसे ही अनुभवमें आनेके योग्य, २७ दृढप्रज्ञः-सुस्थिर बुद्धिवाले, २८ देवदेवः-देवताओंके भी आराध्य, २९ त्रिलोचनः-सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले, ३० वामदेवः-लोकके विपरीत स्वभाववाले देवता, ३१ महादेवः-महान् देवता ब्रह्मादिकोंके भी पूजनीय, ३२ पटुः-सब कुछ करनेमें समर्थ एवं कुशल, ३३ परिवृढः-स्वामी, ३४ दृढः-कभी विचलित न होनेवाले ॥ ५ ॥

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः ।
सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ ६ ॥

३५ विश्वरूपः-जगत्स्वरूप, ३६ विरूपाक्षः-विकट नेत्रवाले, ३७ वागीशः-वाणीके अधिपति, ३८ शुचिसत्तमः-पवित्र पुरुषोंमें भी सबसे श्रेष्ठ, ३९ सर्वप्रमाणसंवादी-सम्पूर्ण प्रमाणोंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेवाले, ४० वृषाङ्कः-अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, ४१ वृषवाहनः-वृषभ या धर्मको वाहन बनानेवाले ॥ ६ ॥

ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरंतनः ।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः ॥ ७ ॥

४२ ईशः-स्वामी या शासक, ४३ पिनाकी-पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, ४४ खट्वाङ्गी-खाटके पायेकी आकृतिका एक आयुध धारण करनेवाले, ४५ चित्रवेषः-विचित्र वेषधारी, ४६ चिरंतनः-पुराण (अनादि) पुरुषोत्तम, ४७ तमोहरः-अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले, ४८ महायोगी-महान् योगसे सम्पन्न, ४९ गोप्ता-रक्षक, ५० ब्रह्मा-सृष्टिकर्ता, ५१ धूर्जटिः-जटाके भारसे युक्त ॥ ७ ॥

कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ।
उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥ ८ ॥

५२ कालकालः-कालके भी काल, ५३ कृत्तिवासाः-गजासुरके चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, ५४ सुभगः-सौभाग्यशाली, ५५ प्रणवात्मकः-ओंकारस्वरूप अथवा प्रणवके वाच्यार्थ, ५६ उन्नध्रः-बन्धनरहित, ५७ पुरुषः-अन्तर्यामी आत्मा, ५८ जुष्यः-सेवन करने योग्य, ५९ दुर्वासाः-'दुर्वासा' नामक मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ६० पुरशासनः-तीन मायामय असुर-पुरोंका दमन करनेवाले ॥ ८ ॥

दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः ।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥ ९ ॥

६१ दिव्यायुधः-'पाशुपत' आदि दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले, ६२ स्कन्दगुरुः-कार्तिकेयजीके पिता, ६३ परमेष्ठी-अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेवाले, ६४ परात्परः-कारणके भी कारण, ६५ अनादिमध्यनिधनः-आदि, मध्य और अन्तसे रहित, ६६ गिरीशः-कैलासके अधिपति, ६७ गिरिजाधवः-पार्वतीके पति ॥ ९ ॥

कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो मृदुः ।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधी ॥ १० ॥

६८ कुबेरबन्धुः-कुबेरको अपना बन्धु (मित्र) माननेवाले, ६९ श्रीकण्ठः-श्यामसुप्रभासे सुशोभित कण्ठवाले, ७० लोकवर्णोत्तमः-समस्त लोकों और वर्णोंसे श्रेष्ठ, ७१ मृदुः-कोमल स्वभाववाले, ७२ समाधिवेद्यः-समाधि

अथवा चित्तवृत्तियोंके निरोधसे अनुभवमें आनेयोग्य, ७३ **कोदण्डी**–धनुर्धर, ७४ **नीलकण्ठः**–कण्ठमें हालाहल विषका नील चिह्न धारण करनेवाले, ७५ **परश्वधी**–परशुधारी ॥ १० ॥

विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः ।
धर्मधाम क्षमाक्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित् ॥ ११ ॥

७६ **विशालाक्षः**–बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, ७७ **मृगव्याधः**–वनमें व्याध या किरातके रूपमें प्रकट हो शूकरके ऊपर बाण चलानेवाले, ७८ **सुरेशः**–देवताओंके स्वामी, ७९ **सूर्यतापनः**–सूर्यको भी दण्ड देनेवाले, ८० **धर्मधाम**–धर्मके आश्रय, ८१ **क्षमाक्षेत्रम्**–क्षमाके उत्पत्ति-स्थान, ८२ **भगवान्**–सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्यके आश्रय, ८३ **भगनेत्रभित्**–भगदेवताके नेत्रका भेदन करनेवाले ॥११॥

उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः ।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥ १२ ॥

८४ **उग्रः**–संहारकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले, ८५ **पशुपतिः**–मायारूपमें बँधे हुए पाशबद्ध पशुओं (जीवों) को तत्त्वज्ञानके द्वारा मुक्त करके यथार्थरूपसे उनका पालन करनेवाले, ८६ **तार्क्ष्यः**–गरुड़रूप, ८७ **प्रियभक्तः**–भक्तोंसे प्रेम करनेवाले, ८८ **परंतपः**–शत्रुता रखनेवालोंको संताप देनेवाले, ८९ **दाता**–दानी, ९० **दयाकरः**–दयानिधान अथवा कृपा करनेवाले, ९१ **दक्षः**–कुशल, ९२ **कपर्दी**–जटाजूटधारी, ९३ **कामशासनः**–कामदेवका दमन करनेवाले ॥ १२ ॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः ।
लोककर्ता मृगपतिर्महाकर्ता महौषधिः ॥ १३ ॥

९४ **श्मशाननिलयः**–श्मशानवासी, ९५ **सूक्ष्मः**–इन्द्रियातीत एवं सर्वव्यापी, ९६ **श्मशानस्थः**–श्मशानभूमिमें विश्राम करनेवाले, ९७ **महेश्वरः**–महान् ईश्वर या परमेश्वर, ९८ **लोककर्ता**–जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, ९९ **मृगपतिः**–मृगके पालक या पशुपति, १०० **महाकर्ता**–विराट् ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेके समय महान् कर्तृत्वसे सम्पन्न, १०१ **महौषधिः**–भवरोगका निवारण करनेके लिये महान् ओषधिरूप ॥ १३ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी ॥ १४ ॥

१०२ **उत्तरः**–संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, १०३ **गोपतिः**–स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, किरण, इन्द्रिय और जलके स्वामी, १०४ **गोप्ता**–रक्षक, १०५ **ज्ञानगम्यः**–तत्त्वज्ञानके द्वारा ज्ञानस्वरूपसे ही जानने योग्य, १०६ **पुरातनः**–सबसे पुराने, १०७ **नीतिः**–न्याय-स्वरूप, १०८ **सुनीतिः**–उत्तम नीतिवाले, १०९ **शुद्धात्मा**–विशुद्ध आत्मस्वरूप, ११० **सोमः**–उमासहित, १११ **सोमरतः**–चन्द्रमापर प्रेम रखनेवाले, ११२ **सुखी**–आत्मानन्दसे परिपूर्ण ॥ १४ ॥

सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥ १५ ॥

११३ **सोमपः**–सोमपान करनेवाले अथवा सोमनाथरूपसे चन्द्रमाके पालक, ११४ **अमृतपः**–समाधिके द्वारा स्वरूपभूत अमृतका आस्वादन करनेवाले, ११५ **सौम्यः**–भक्तोंके लिये सौम्यरूपधारी, ११६ **महातेजाः**–महान् तेजसे सम्पन्न, ११७ **महाद्युतिः**–परमकान्तिमान्, ११८ **तेजोमयः**–प्रकाशस्वरूप, ११९ **अमृतमयः**–अमृतरूप, १२० **अन्नमयः**–अन्नरूप, १२१ **सुधापतिः**–अमृतके पालक ॥ १५ ॥

अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः ।
लोककरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ॥ १६ ॥

१२२ **अजातशत्रुः**–जिनके मनमें कभी किसीके प्रति शत्रुभाव नहीं पैदा हुआ, ऐसे समदर्शी, १२३ **आलोकः**–प्रकाशस्वरूप, १२४ **सम्भाव्यः**–सम्माननीय, १२५ **हव्यवाहनः**–अग्निस्वरूप, १२६ **लोककरः**–जगत्‌के स्रष्टा, १२७ **वेदकरः**–वेदोंके प्रकट करनेवाले, १२८ **सूत्रकारः**–ढक्कानादके रूपमें चतुर्दश माहेश्वर सूत्रोंके प्रणेता, १२९ **सनातनः**–नित्यस्वरूप ॥ १६ ॥

महर्षिकपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सुधीः ॥ १७ ॥

१३० **महर्षिकपिलाचार्यः**–सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, १३१ **विश्वदीप्तिः**–अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करनेवाले, १३२ **त्रिलोचनः**–तीनों लोकोंके द्रष्टा, १३३ **पिनाकपाणिः**–हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, १३४ **भूदेवः**–पृथ्वीके देवता—ब्राह्मण अथवा पार्थिवलिङ्गरूप, १३५ **स्वस्तिदः**–कल्याणदाता, १३६ **स्वस्तिकृत्**–कल्याणकारी, १३७ **सुधीः**–विशुद्ध बुद्धिवाले ॥ १७ ॥

धातृधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः ।
ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः ॥ १८ ॥

१३८ **धातृधामा**–विश्वका धारण-पोषण करनेमें समर्थ तेजवाले, १३९ **धामकरः**–तेजकी सृष्टि करनेवाले,

१४० सर्वगः—सर्वव्यापी, १४१ सर्वगोचरः—सबमें व्याप्त, १४२ ब्रह्मसृक्—ब्रह्माजीके उत्पादक, १४३ विश्वसृक्—जगत्के स्रष्टा, १४४ सर्गः—सृष्टिस्वरूप, १४५ कर्णिकारप्रियः—कनेरके फूलको पसंद करनेवाले, १४६ कविः—त्रिकालदर्शी ॥ १८ ॥

शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः ।
गङ्गाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः ॥ १९ ॥

१४७ शाखः—कार्तिकेयके छोटे भाई शाखस्वरूप, १४८ विशाखः—स्कन्दके छोटे भाई विशाखस्वरूप अथवा विशाख नामक ऋषि, १४९ गोशाखः—वेदवाणीकी शाखाओंका विस्तार करनेवाले, १५० शिवः—मङ्गलमय, १५१ भिषगनुत्तमः—भवरोगका निवारण करनेवाले वैद्यों (ज्ञानियों) में सर्वश्रेष्ठ, १५२ गङ्गाप्लवोदकः—गङ्गाके प्रवाहरूप जलको सिरपर धारण करनेवाले, १५३ भव्यः—कल्याणस्वरूप, १५४ पुष्कलः—पूर्णतम अथवा व्यापक, १५५ स्थपतिः—ब्रह्माण्डरूपी भवनके निर्माता (थवई), १५६ स्थिरः—अचञ्चल अथवा स्थाणुरूप ॥ १९ ॥

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः ।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ २० ॥

१५७ विजितात्मा—मनको वशमें रखनेवाले, १५८ विधेयात्मा—शरीर, मन और इन्द्रियोंसे अपनी इच्छाके अनुसार काम लेनेवाले, १५९ भूतवाहनसारथिः—पाञ्चभौतिक रथ (शरीर) का संचालन करनेवाले बुद्धिरूप सारथि, १६० सगणः—प्रमथगणोंके साथ रहनेवाले, १६१ गणकायः—गणस्वरूप, १६२ सुकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, १६३ छिन्नसंशयः—संशयोंको काट देनेवाले ॥ २० ॥

कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः ॥ २१ ॥

१६४ कामदेवः—मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, १६५ कामपालः—सकाम भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, १६६ भस्मोद्धूलितविग्रहः—अपने श्रीअङ्गोंमें भस्म रमानेवाले, १६७ भस्मप्रियः—भस्मके प्रेमी, १६८ भस्मशायी—भस्मपर शयन करनेवाले, १६९ कामी—अपने प्रिय भक्तोंको चाहनेवाले, १७० कान्तः—परम कमनीय प्राणवल्लभरूप, १७१ कृतागमः—समस्त तन्त्र-शास्त्रोंके रचयिता ॥ २१ ॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा धर्मपुञ्जः सदाशिवः ।
अकल्मषश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः ॥ २२ ॥

१७२ समावर्तः—संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, १७३ अनिवृत्तात्मा—सर्वत्र विद्यमान होनेके कारण जिनका आत्मा कहींसे भी हटा नहीं है, ऐसे, १७४ धर्मपुञ्जः—धर्म या पुण्यकी राशि, १७५ सदाशिवः—निरन्तर कल्याणकारी, १७६ अकल्मषः—पापरहित, १७७ चतुर्बाहुः—चार भुजाधारी, १७८ दुरावासः—जिन्हें योगीजन भी बड़ी कठिनाईसे अपने हृदयमन्दिरमें बसा पाते हैं, ऐसे, १७९ दुरासदः—परम दुर्जय ॥ २२ ॥

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः ।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ॥ २३ ॥

१८० दुर्लभः—भक्तिहीन पुरुषोंको कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, १८१ दुर्गमः—जिनके निकट पहुँचना किसीके लिये भी कठिन है ऐसे, १८२ दुर्गः—पाप-तापसे रक्षा करनेके लिये दुर्गरूप अथवा दुर्ज्ञेय, १८३ सर्वायुधविशारदः—सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगकी कलामें कुशल, १८४ अध्यात्मयोगनिलयः—अध्यात्मयोगमें स्थित, १८५ सुतन्तुः—सुन्दर विस्तृत जगत्-रूप तन्तुवाले, १८६ तन्तुवर्धनः—जगत्‌रूप तन्तुको बढ़ानेवाले ॥ २३ ॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशो जनार्दनः ।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २४ ॥

१८७ शुभाङ्गः—सुन्दर अङ्गोंवाले, १८८ लोकसारङ्गः—लोकसारग्राही, १८९ जगदीशः—जगत्के स्वामी, १९० जनार्दनः—भक्तजनोंकी याचनाके आलम्बन, १९१ भस्मशुद्धिकरः—भस्मसे शुद्धिका सम्पादन करनेवाले, १९२ मेरुः—सुमेरु पर्वतके समान केन्द्ररूप, १९३ ओजस्वी—तेज और बलसे सम्पन्न, १९४ शुद्धविग्रहः—निर्मल शरीरवाले ॥ २४ ॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥ २५ ॥

१९५ असाध्यः—साधन-भजनसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिये अलभ्य, १९६ साधुसाध्यः—साधन-भजनपरायण सत्पुरुषोंके लिये सुलभ, १९७ भृत्यमर्कटरूपधृक्—श्रीरामके सेवक वानर हनुमान्‌का रूप धारण करनेवाले, १९८ हिरण्यरेताः—अग्निस्वरूप अथवा सुवर्णमय वीर्यवाले, १९९ पौराणः—

पुराणोंद्वारा प्रतिपादित, २०० रिपुजीवहरः–शत्रुओंके प्राण हर लेनेवाले, २०१ बली–बलशाली ॥ २५ ॥

महाह्रदो महागर्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः ।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ २६ ॥

२०२ महाह्रदः–परमानन्दके महान् सरोवर, २०३ महागर्तः–महान् आकाशरूप, २०४ सिद्धवृन्दारवन्दितः–सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, २०५ व्याघ्रचर्माम्बरः–व्याघ्रचर्मको वस्त्रके समान धारण करनेवाले, २०६ व्याली–सर्पोंको आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, २०७ महाभूतः–त्रिकालमें भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, २०८ महानिधिः–सबके महान् निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः ।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः ॥ २७ ॥

२०९ अमृताशः–जिनकी आशा कभी विफल न हो ऐसे अमोघसंकल्प, २१० अमृतवपुः–जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो ऐसे—नित्यविग्रह, २११ पाञ्चजन्यः–पाञ्चजन्य नामक शङ्खस्वरूप, २१२ प्रभञ्जनः–वायुस्वरूप अथवा संहारकारी, २१३ पञ्चविंशतितत्त्वस्थः–प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश–इन चौबीस जड तत्त्वोंसहित पचीसवें चेतनतत्त्व पुरुषमें व्याप्त, २१४ पारिजातः–याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षरूप, २१५ परावरः–कारण-कार्यरूप ॥ २७ ॥

सुलभः सुव्रतः शूरो ब्रह्मवेदनिधिर्निधिः ।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ २८ ॥

२१६ सुलभः–नित्य निरन्तर चिन्तन करनेवाले एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७ सुव्रतः–उत्तम व्रतधारी, २१८ शूरः–शौर्यसम्पन्न, २१९ ब्रह्मवेदनिधिः–ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२० निधिः–जगत्‌रूपी रत्नके उत्पत्तिस्थान, २२१ वर्णाश्रमगुरुः–वर्णों और आश्रमोंके गुरु (उपदेष्टा), २२२ वर्णी–ब्रह्मचारी, २२३ शत्रुजित्–अन्धकासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४ शत्रुतापनः–शत्रुओंको संताप देनेवाले ॥ २८ ॥

आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः ।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ २९ ॥

२२५ आश्रमः–सबके विश्रामस्थान, २२६ क्षपणः–जन्म-मरणके कष्टका मूलोच्छेद करनेवाले, २२७ क्षामः–प्रलयकालमें प्रजाको क्षीण करनेवाले, २२८ ज्ञानवान्–ज्ञानी, २२९ अचलेश्वरः–पर्वतों अथवा स्थावर पदार्थोंके स्वामी, २३० प्रमाणभूतः–नित्यसिद्ध प्रमाणरूप, २३१ दुर्ज्ञेयः–कठिनतासे जाननेयोग्य, २३२ सुपर्णः–वेदमय सुन्दर पंखवाले, गरुड़रूप, २३३ वायुवाहनः–अपने भयसे वायुको प्रवाहित करनेवाले ॥ २९ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः ।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माङ्गो धर्मसाधनः ॥ ३० ॥

२३४ धनुर्धरः–पिनाकधारी, २३५ धनुर्वेदः–धनुर्वेदके ज्ञाता, २३६ गुणराशिः–अनन्त कल्याणमय गुणोंकी राशि, २३७ गुणाकरः–सद्‌गुणोंकी खानि, २३८ सत्यः–सत्यस्वरूप, २३९ सत्यपरः–सत्यपरायण, २४० अदीनः–दीनतासे रहित—उदार, २४१ धर्माङ्गः–धर्ममय विग्रहवाले, २४२ धर्मसाधनः–धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ॥ ३० ॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः ।
अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१ ॥

२४३ अनन्तदृष्टिः–असीमित दृष्टिवाले, २४४ आनन्दः–परमानन्दमय, २४५ दण्डः–दुष्टोंको दण्ड देनेवाले अथवा दण्डस्वरूप, २४६ दमयिता–दुर्दान्त दानवोंका दमन करनेवाले, २४७ दमः–दमनस्वरूप, २४८ अभिवाद्यः–प्रणाम करनेयोग्य, २४९ महामायः–मायावियोंको भी मोहनेवाले महामायावी, २५० विश्वकर्मविशारदः–संसारकी सृष्टि करनेमें कुशल ॥ ३१ ॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२ ॥

२५१ वीतरागः–पूर्णतया विरक्त, २५२ विनीतात्मा–मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले, २५३ तपस्वी–तपस्यापरायण, २५४ भूतभावनः–सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक एवं रक्षक, २५५ उन्मत्तवेषः–पागलोंके समान वेष धारण करनेवाले, २५६ प्रच्छन्नः–मायाके पर्देमें छिपे हुए, २५७ जितकामः–कामविजयी, २५८ अजितप्रियः–भगवान् विष्णुके प्रेमी ॥ ३२ ॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ।
तरस्वी तारको धीमान् प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥ ३३ ॥

२५९ कल्याणप्रकृतिः–कल्याणकारी स्वभाववाले,

२६० कल्पः–समर्थ, २६१ सर्वलोकप्रजापतिः–सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाके पालक, २६२ तरस्वी–वेगशाली, २६३ तारकः–उद्धारक, २६४ धीमान्–विशुद्ध बुद्धिसे युक्त, २६५ प्रधानः–सबसे श्रेष्ठ, २६६ प्रभुः–सर्वसमर्थ, २६७ अव्ययः–अविनाशी ॥ ३३ ॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४ ॥

२६८ लोकपालः–समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले, २६९ अन्तर्हितात्मा–अन्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य स्वरूपवाले, २७० कल्पादिः–कल्पके आदिकारण, २७१ कमलेक्षणः–कमलके समान नेत्रवाले, २७२ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः–वेदों और शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वको जाननेवाले, २७३ अनियमः–नियन्त्रणरहित, २७४ नियताश्रयः–सबके सुनिश्चित आश्रयस्थान ॥ ३४ ॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्वराङ्गो विद्रुमच्छविः ।
भक्तिवश्यः परब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३५ ॥

२७५ चन्द्रः–चन्द्रमारूपसे आह्लादकारी, २७६ सूर्यः–सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, २७७ शनिः–शनैश्चररूप, २७८ केतुः–केतुनामक ग्रहस्वरूप, २७९ वराङ्गः–सुन्दर शरीरवाले, २८० विद्रुमच्छविः–मूँगेकी-सी लाल कान्तिवाले, २८१ भक्तिवश्यः–भक्तिके द्वारा भक्तके वशमें होनेवाले, २८२ परब्रह्म–परमात्मा, २८३ मृगबाणार्पणः–मृगरूपधारी यज्ञपर बाण चलानेवाले, २८४ अनघः–पापरहित ॥ ३५ ॥

अद्रिरद्र्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः ।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृतः ॥ ३६ ॥

२८५ अद्रिः–कैलास आदि पर्वतस्वरूप, २८६ अद्र्यालयः–कैलास और मन्दर आदि पर्वतोंपर निवास करनेवाले, २८७ कान्तः–सबके प्रियतम, २८८ परमात्मा–परब्रह्म परमेश्वर, २८९ जगद्गुरुः–समस्त संसारके गुरु, २९० सर्वकर्मालयः–सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयस्थान, २९१ तुष्टः–सदा प्रसन्न, २९२ मङ्गल्यः–मङ्गलकारी, २९३ मङ्गलावृतः–मङ्गलकारिणी शक्तिसे संयुक्त ॥ ३६ ॥

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ।
अहःसंवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३७ ॥

२९४ महातपाः–महान् तपस्वी, २९५ दीर्घतपाः–दीर्घकालतक तप करनेवाले, २९६ स्थविष्ठः–अत्यन्त स्थूल, २९७ स्थविरो ध्रुवः–अति प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर, २९८ अहःसंवत्सरः–दिन एवं संवत्सर आदि कालरूपसे स्थित, अंशकालस्वरूप, २९९ व्याप्तिः–व्यापकतास्वरूप, ३०० प्रमाणम्–प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वरूप, ३०१ परमं तपः–उत्कृष्ट तपस्यास्वरूप ॥ ३७ ॥

संवत्सरकरो मन्त्रप्रत्ययः सर्वदर्शनः ।
अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महारेता महाबलः ॥ ३८ ॥

३०२ संवत्सरकरः–संवत्सर आदि कालविभागके उत्पादक, ३०३ मन्त्रप्रत्ययः–वेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत (प्रत्यक्ष) होनेयोग्य, ३०४ सर्वदर्शनः–सबके साक्षी, ३०५ अजः–अजन्मा, ३०६ सर्वेश्वरः–सबके शासक, ३०७ सिद्धः–सिद्धियोंके आश्रय, ३०८ महारेताः–श्रेष्ठ वीर्यवाले, ३०९ महाबलः–प्रमथगणोंकी महती सेनासे सम्पन्न ॥ ३८ ॥

योगी योग्यो महातेजाः सिद्धिः सर्वादिरग्रहः ।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ३९ ॥

३१० योगी योग्यः–सुयोग्य योगी, ३११ महातेजाः–महान् तेजसे सम्पन्न, ३१२ सिद्धिः–समस्त साधनोंके फल, ३१३ सर्वादिः–सब भूतोंके आदिकारण, ३१४ अग्रहः–इन्द्रियोंकी ग्रहणशक्तिके अविषय, ३१५ वसुः–सब भूतोंके वासस्थान, ३१६ वसुमनाः–उदार मनवाले, ३१७ सत्यः–सत्यस्वरूप, ३१८ सर्वपापहरो हरः–समस्त पापोंका अपहरण करनेके कारण हर नामसे प्रसिद्ध ॥ ३९ ॥

सुकीर्तिशोभनः श्रीमान् वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥ ४० ॥

३१९ सुकीर्तिशोभनः–उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होनेवाले, ३२० श्रीमान्–विभूतिस्वरूपा उमासे सम्पन्न, ३२१ वेदाङ्गः–वेदरूप अङ्गोंवाले, ३२२ वेदविन्मुनिः–वेदोंका विचार करनेवाले मननशील मुनि, ३२३ भ्राजिष्णुः–एकरस प्रकाशस्वरूप, ३२४ भोजनम्–ज्ञानियोंद्वारा भोगने योग्य अमृतस्वरूप, ३२५ भोक्ता–पुरुषरूपसे उपभोग करनेवाले, ३२६ लोकनाथः–भगवान् विश्वनाथ, ३२७ दुराधरः–अजितेन्द्रिय पुरुषोंद्वारा जिनकी आराधना अत्यन्त कठिन है, ऐसे ॥ ४० ॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान् ।
कमण्डलुधरो धन्वी अवाङ्मनसगोचरः ॥ ४१ ॥

३२८ अमृतः शाश्वतः–सनातन अमृतस्वरूप, ३२९ शान्तः–शान्तिमय, ३३० बाणहस्तः प्रतापवान्–हाथमें बाण धारण करनेवाले प्रतापी वीर, ३३१ कमण्डलुधरः–कमण्डलु धारण करनेवाले, ३३२ धन्वी–पिनाकधारी, ३३३ अवाङ्मनसगोचरः–मन और वाणीके अविषय ॥ ४१ ॥

अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः ।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२ ॥

३३४ अतीन्द्रियो महामायः—इन्द्रियातीत एवं महामायावी, ३३५ सर्वावासः—सबके वासस्थान, ३३६ चतुष्पथः—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके एकमात्र मार्ग, ३३७ कालयोगी—प्रलयके समय सबको कालसे संयुक्त करनेवाले, ३३८ महानादः—गम्भीर शब्द करनेवाले अथवा अनाहत नादरूप, ३३९ महोत्साहो महाबलः—महान् उत्साह और बलसे सम्पन्न ॥ ४२ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः ।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ४३ ॥

३४० महाबुद्धिः—श्रेष्ठ बुद्धिवाले, ३४१ महावीर्यः—अनन्त पराक्रमी, ३४२ भूतचारी—भूतगणोंके साथ विचरनेवाले, ३४३ पुरंदरः—त्रिपुरसंहारक, ३४४ निशाचरः—रात्रिमें विचरण करनेवाले, ३४५ प्रेतचारी—प्रेतोंके साथ भ्रमण करनेवाले, ३४६ महाशक्तिर्महाद्युतिः—अनन्तशक्ति एवं श्रेष्ठ कान्तिसे सम्पन्न ॥ ४३ ॥

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वाचार्यमनोगतिः ।
बहुश्रुतोऽमहामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ॥ ४४ ॥

३४७ अनिर्देश्यवपुः—अनिर्वचनीय स्वरूपवाले, ३४८ श्रीमान्—ऐश्वर्यवान्, ३४९ सर्वाचार्यमनोगतिः—सबके लिये अविचार्य मनोगतिवाले, ३५० बहुश्रुतः—बहुज्ञ अथवा सर्वज्ञ, ३५१ अमहामायः—बड़ी-से-बड़ी माया भी जिनपर प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे, ३५२ नियतात्मा—मनको वशमें रखनेवाले, ३५३ ध्रुवोऽध्रुवः—ध्रुव (नित्य कारण) और अध्रुव (अनित्य कार्य)-रूप ॥ ४४ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरो जनकः सर्वशासनः ।
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥ ४५ ॥

३५४ ओजस्तेजोद्युतिधरः—ओज (प्राण और बल), तेज (शौर्य आदि गुण) तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, ३५५ जनकः—सबके उत्पादक, ३५६ सर्वशासनः—सबके शासक, ३५७ नृत्यप्रियः—नृत्यके प्रेमी, ३५८ नित्यनृत्यः—प्रतिदिन ताण्डव नृत्य करनेवाले, ३५९ प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप, ३६० प्रकाशकः—सूर्य आदिको भी प्रकाश देनेवाले ॥ ४५ ॥

स्पष्टाक्षरो बुधो मन्त्रः समानः सारसम्प्लवः ।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ॥ ४६ ॥

३६१ स्पष्टाक्षरः—ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, ३६२ बुधः—ज्ञानवान्, ३६३ मन्त्रः—ऋक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रस्वरूप, ३६४ समानः—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले, ३६५ सारसम्प्लवः—संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकारूप, ३६६ युगादिकृद्युगावर्तः—युगादिका आरम्भ करनेवाले तथा चारों युगोंको चक्रकी तरह घुमानेवाले, ३६७ गम्भीरः—गाम्भीर्यसे युक्त, ३६८ वृषवाहनः—नन्दी नामक वृषभपर सवार होनेवाले ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः ।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः ॥ ४७ ॥

३६९ इष्टः—परमानन्दस्वरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३७० अविशिष्टः—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, ३७१ शिष्टेष्टः—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ३७२ सुलभः—अनन्यचित्तसे निरन्तर स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये सुगमतासे प्राप्त होनेयोग्य, ३७३ सारशोधनः—सारतत्त्वकी खोज करनेवाले, ३७४ तीर्थरूपः—तीर्थस्वरूप, ३७५ तीर्थनामा—तीर्थनामधारी, अथवा जिनका नाम भवसागरसे पार लगानेवाला है, ऐसे, ३७६ तीर्थदृश्यः—तीर्थसेवनसे अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाले अथवा गुरुकृपासे प्रत्यक्ष होनेवाले, ३७७ तीर्थदः—चरणोदकस्वरूप तीर्थको देनेवाले ॥ ४७ ॥

अपांनिधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥ ४८ ॥

३७८ अपांनिधिः—जलके निधान समुद्ररूप, ३७९ अधिष्ठानम्—उपादानकारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय अथवा जगत्‌रूप प्रपञ्चके अधिष्ठान, ३८० दुर्जयः—जिनको जीतना कठिन है, ऐसे, ३८१ जयकालवित्—विजयके अवसरको समझनेवाले, ३८२ प्रतिष्ठितः—अपनी महिमामें स्थित, ३८३ प्रमाणज्ञः—प्रमाणोंके ज्ञाता, ३८४ हिरण्यकवचः—सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले, ३८५ हरिः—श्रीहरिस्वरूप ॥ ४८ ॥

विमोचनः सुरगणो विद्येशो बिन्दुसंश्रयः ।
बालरूपोऽबलोन्मत्तोऽविकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९ ॥

३८६ विमोचनः—संसारबन्धनसे सदाके लिये छुड़ा देनेवाले, ३८७ सुरगणः—देवसमुदायरूप, ३८८ विद्येशः—सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी, ३८९ बिन्दुसंश्रयः—बिन्दुरूप प्रणवके आश्रय, ३९० बालरूपः—बालकका रूप धारण करनेवाले, ३९१ अबलोन्मत्तः—बलसे उन्मत्त न होनेवाले, ३९२ अविकर्ता—विकाररहित, ३९३ गहनः—दुर्बोधस्वरूप या

आश्रय, ३९४ गुहः—मायासे अपने यथार्थ स्वरूपको छिपाये रखनेवाले ॥ ४९ ॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः ।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥ ५० ॥

३९५ करणम्—संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, ३९६ कारणम्—जगत्के उपादान और निमित्त कारण, ३९७ कर्ता—सबके रचयिता, ३९८ सर्वबन्धविमोचनः—सम्पूर्ण बन्धनोंसे छुड़ानेवाले, ३९९ व्यवसायः—निश्चयात्मक ज्ञानस्वरूप, ४०० व्यवस्थानः—सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था करनेवाले, ४०१ स्थानदः—ध्रुव आदि भक्तोंको अविचल स्थिति प्रदान कर देनेवाले, ४०२ जगदादिजः—हिरण्यगर्भरूपसे जगत्के आदिमें प्रकट होनेवाले ॥ ५० ॥

गुरुदो ललितोऽभेदो भावात्माऽऽत्मनि संस्थितः ।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्विराट् ॥ ५१ ॥

४०३ गुरुदः—श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले अथवा जिज्ञासुओंको गुरुकी प्राप्ति करानेवाले, ४०४ ललितः—सुन्दर स्वरूपवाले, ४०५ अभेदः—भेदरहित, ४०६ भावात्माऽऽत्मनि संस्थितः—सत्स्वरूप आत्मामें प्रतिष्ठित, ४०७ वीरेश्वरः—वीरशिरोमणि, ४०८ वीरभद्रः—वीरभद्र नामक गणाध्यक्ष, ४०९ वीरासनविधिः—वीरासनसे बैठनेवाले, ४१० विराट्—अखिलब्रह्माण्डस्वरूप ॥ ५१ ॥

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नदीधरः ।
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥ ५२ ॥

४११ वीरचूडामणिः—वीरोंमें श्रेष्ठ, ४१२ वेत्ता—विद्वान्, ४१३ चिदानन्दः—विज्ञानानन्दस्वरूप, ४१४ नदीधरः—मस्तकपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले, ४१५ आज्ञाधारः—आज्ञाका पालन करनेवाले, ४१६ त्रिशूली—त्रिशूलधारी, ४१७ शिपिविष्टः—तेजोमयी किरणोंसे व्याप्त, ४१८ शिवालयः—भगवती शिवाके आश्रय ॥ ५२ ॥

वालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः ।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥ ५३ ॥

४१९ वालखिल्यः—वालखिल्य ऋषिरूप, ४२० महाचापः—महान् धनुर्धर, ४२१ तिग्मांशुः—सूर्यरूप, ४२२ बधिरः—लौकिक विषयोंकी चर्चा न सुननेवाले, ४२३ खगः—आकाशचारी, ४२४ अभिरामः—परम सुन्दर, ४२५ सुशरणः—सबके लिये सुन्दर आश्रयरूप, ४२६ सुब्रह्मण्यः—ब्राह्मणोंके परम हितैषी, ४२७ सुधापतिः—अमृतकलशके रक्षक ॥ ५३ ॥

मघवान्कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः ।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत् ॥ ५४ ॥

४२८ मघवान् कौशिकः—कुशिकवंशीय इन्द्रस्वरूप, ४२९ गोमान्—प्रकाश-किरणोंसे युक्त, ४३० विरामः—समस्त प्राणियोंके लयके स्थान, ४३१ सर्वसाधनः—समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले, ४३२ ललाटाक्षः—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले, ४३३ विश्वदेहः—जगत्स्वरूप, ४३४ सारः—सारतत्त्वरूप, ४३५ संसारचक्रभृत्—संसारचक्रको धारण करनेवाले ॥ ५४ ॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।
परमार्थः परो मायी शम्बरो व्याघ्रलोचनः ॥ ५५ ॥

४३६ अमोघदण्डः—जिनका दण्ड कभी व्यर्थ नहीं जाता है, ऐसे, ४३७ मध्यस्थः—उदासीन, ४३८ हिरण्यः—सुवर्ण अथवा तेजःस्वरूप, ४३९ ब्रह्मवर्चसी—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, ४४० परमार्थः—मोक्षरूप उत्कृष्ट अर्थकी प्राप्ति करानेवाले, ४४१ परो मायी—महामायावी, ४४२ शम्बरः—कल्याणप्रद, ४४३ व्याघ्रलोचनः—व्याघ्रके समान भयानक नेत्रोंवाले ॥ ५५ ॥

रुचिर्विरञ्चिः स्वर्बन्धुर्वाचस्पतिरहर्पतिः ।
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५६ ॥

४४४ रुचिः—दीप्तिरूप, ४४५ विरञ्चिः—ब्रह्मस्वरूप, ४४६ स्वर्बन्धुः—स्वर्लोकमें बन्धुके समान सुखद, ४४७ वाचस्पतिः—वाणीके अधिपति, ४४८ अहर्पतिः—दिनके स्वामी सूर्यरूप, ४४९ रविः—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले, ४५० विरोचनः—विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, ४५१ स्कन्दः—स्वामी कार्तिकेयरूप, ४५२ शास्ता वैवस्वतो यमः—सबपर शासन करनेवाले सूर्यकुमार यम ॥ ५६ ॥

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः परंजयः ।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥ ५७ ॥

४५३ युक्तिरुन्नतकीर्तिः—अष्टाङ्गयोगस्वरूप तथा ऊर्ध्वलोकमें फैली हुई कीर्तिसे युक्त, ४५४ सानुरागः—भक्तजनोंपर प्रेम रखनेवाले, ४५५ परंजयः—दूसरोंपर विजय पानेवाले, ४५६ कैलासाधिपतिः—कैलासके स्वामी, ४५७ कान्तः—कमनीय अथवा कान्तिमान्, ४५८ सविता—समस्त जगत्को उत्पन्न करनेवाले, ४५९ रविलोचनः—सूर्यरूप नेत्रवाले ॥ ५७ ॥

विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्त्तानिवारितः ।
नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ५८ ॥

४६० विद्वत्तमः–विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ, परम विद्वान्, **४६१ वीतभयः**–सब प्रकारके भयसे रहित, **४६२ विश्वभर्ता**–जगत्का भरण-पोषण करनेवाले, **४६३ अनिवारितः**–जिन्हें कोई रोक नहीं सकता ऐसे, **४६४ नित्यः**–सत्यस्वरूप, **४६५ नियतकल्याणः**–सुनिश्चितरूपसे कल्याणकारी, **४६६ पुण्यश्रवणकीर्तनः**–जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपके श्रवण तथा कीर्तन परम पावन हैं, ऐसे ॥ ५८ ॥

दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः ।
उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुस्सहोऽभवः ॥ ५९ ॥

४६७ दूरश्रवाः-सर्वव्यापी होनेके कारण दूरकी बात भी सुन लेनेवाले, **४६८ विश्वसहः**–भक्तजनोंके सब अपराधोंको कृपापूर्वक सह लेनेवाले, **४६९ ध्येयः**–ध्यान करने योग्य, **४७० दुःस्वप्ननाशनः**–चिन्तन करनेमात्रसे बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाले, **४७१ उत्तारणः**–संसारसागरसे पार उतारनेवाले, **४७२ दुष्कृतिहा**–पापोंका नाश करनेवाले, **४७३ विज्ञेयः**–जाननेके योग्य, **४७४ दुस्सहः**–जिनके वेगको सहन करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है; ऐसे, **४७५ अभवः**–संसार-बन्धनसे रहित अथवा अजन्मा ॥ ५९ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्त्ता सुवीरो रुचिरांगदः ॥ ६० ॥

४७६ अनादिः–जिनका कोई आदि नहीं है, ऐसे सबके कारणस्वरूप, **४७७ भूर्भुवो लक्ष्मीः**–भूर्लोक और भुवर्लोककी शोभा, **४७८ किरीटी**–मुकुटधारी, **४७९ त्रिदशाधिपः**–देवताओं-के स्वामी, **४८० विश्वगोप्ता**–जगत्के रक्षक, **४८१ विश्वकर्ता**–संसारकी सृष्टि करनेवाले, **४८२ सुवीरः**–श्रेष्ठ वीर, **४८३ रुचिराङ्गदः**–सुन्दर बाजूबंद धारण करनेवाले ॥ ६० ॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्धवः ।
वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ६१ ॥

४८४ जननः-प्राणिमात्रको जन्म देनेवाले, **४८५ जनजन्मादिः**–जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूल कारण, **४८६ प्रीतिमान्**–प्रसन्न, **४८७ नीतिमान्**–सदा नीतिपरायण, **४८८ धवः**–सबके स्वामी, **४८९ वसिष्ठः**–मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त वशमें रखनेवाले अथवा वसिष्ठ ऋषिरूप, **४९० कश्यपः**–द्रष्टा अथवा कश्यप मुनिरूप, **४९१ भानुः**–प्रकाशमान अथवा सूर्य-रूप, **४९२ भीमः**–दुष्टोंको भय देनेवाले, **४९३ भीमपराक्रमः**–अतिशय भयदायक पराक्रमसे युक्त ॥ ६१ ॥

प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः ।
जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ६२ ॥

४९४ प्रणवः–ओंकारस्वरूप, **४९५ सत्पथाचारः**–सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले, **४९६ महाकोशः**–अन्नमयादि पाँचों कोशोंको अपने भीतर धारण करनेके कारण महाकोशरूप, **४९७ महाधनः**–अपरिमित ऐश्वर्यवाले अथवा कुबेरको भी धन देनेके कारण महाधनवान्, **४९८ जन्माधिपः**–जन्म (उत्पादन) रूपी कार्यके अध्यक्ष ब्रह्मा, **४९९ महादेवः**–सर्वोत्कृष्ट देवता, **५०० सकलागमपारगः**–समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान् ॥ ६२ ॥

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विश्वविभूषणः ।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः ॥ ६३ ॥

५०१ तत्त्वम्–यथार्थ तत्त्वरूप, **५०२ तत्त्ववित्**–यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, **५०३ एकात्मा**–अद्वितीय आत्म-रूप, **५०४ विभुः**–सर्वत्र व्यापक, **५०५ विश्वभूषणः**–सम्पूर्ण जगत्को उत्तम गुणोंसे विभूषित करनेवाले, **५०६ ऋषिः**–मन्त्र-द्रष्टा, **५०७ ब्राह्मणः**–ब्रह्मवेत्ता, **५०८ ऐश्वर्यजन्ममृत्यु-जरातिगः**–ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु और जरासे अतीत ॥ ६३ ॥

पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः ।
आत्मयोनिरनाद्यन्तो वत्सलो भक्तलोकधृक् ॥ ६४ ॥

५०९ पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिः–पञ्च महायज्ञोंकी उत्पत्तिके हेतु, **५१० विश्वेशः**–विश्वनाथ, **५११ विमलोदयः**--निर्मल अभ्युदय-की प्राप्ति करानेवाले धर्मरूप, **५१२ आत्मयोनिः**-स्वयम्भू, **५१३ अनाद्यन्तः**–आदि-अन्तसे रहित, **५१४ वत्सलः**–भक्तोंके प्रति वात्सल्य-स्नेहसे युक्त, **५१५ भक्तलोकधृक्**–भक्तजनोंके आश्रय ॥ ६४ ॥

गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः ।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ॥ ६५ ॥

५१६ गायत्रीवल्लभः–गायत्री मन्त्रके प्रेमी, **५१७ प्रांशुः**–ऊँचे शरीरवाले, **५१८ विश्वावासः**–सम्पूर्ण जगत्के आवास-स्थान, **५१९ प्रभाकरः**–सूर्यरूप, **५२० शिशुः**–बालकरूप, **५२१ गिरिरतः**–कैलास पर्वतपर रमण करनेवाले, **५२२ सम्राट्**–देवेश्वरोंके भी ईश्वर, **५२३ सुषेणः सुरशत्रुहा**–प्रमथगणोंकी सुन्दर सेनासे युक्त तथा देवशत्रुओंका संहार करनेवाले ॥ ६५ ॥

अमोघोऽरिष्टनेमिश्च कुमुदो विगतज्वरः ।
स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः ॥ ६६ ॥

५२४ अमोघोऽरिष्टनेमिः—अमोघ संकल्पवाले महर्षि कश्यपरूप, ५२५ कुमुदः—भूतलको आह्लाद प्रदान करनेवाले चन्द्रमारूप, ५२६ विगतज्वरः—चिन्तारहित, ५२७ स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिः—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले सूक्ष्म-ज्योतिःस्वरूप, ५२८ आत्मज्योतिः—अपने स्वरूपभूत ज्ञानकी प्रभासे प्रकाशित, ५२९ अचञ्चलः—चञ्चलतासे रहित ॥ ६६ ॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः ।
ज्ञानस्कन्दो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥ ६७ ॥

५३० पिङ्गलः—पिङ्गलवर्णवाले, ५३१ कपिलश्मश्रुः—कपिल वर्णकी दाढ़ी-मूँछ रखनेवाले दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ५३२ भालनेत्रः—ललाटमें तृतीय नेत्र धारण करनेवाले, ५३३ त्रयीतनुः—तीनों लोक या तीनों वेद जिनके स्वरूप हैं, ऐसे, ५३४ ज्ञानस्कन्दो महानीतिः—ज्ञानप्रद और श्रेष्ठ नीतिवाले, ५३५ विश्वोत्पत्तिः—जगत्के उत्पादक, ५३६ उपप्लवः—संहारकारी ॥ ६७ ॥

भगो विवस्वानादित्यो योगपारो दिवस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥ ६८ ॥

५३७ भगो विवस्वानादित्यः—अदितिनन्दन भग एवं विवस्वान्, ५३८ योगपारः—योगविद्यामें पारंगत, ५३९ दिवस्पतिः—स्वर्गलोकके स्वामी, ५४० कल्याणगुणनामा—कल्याणकारी गुण और नामवाले, ५४१ पापहा—पापनाशक, ५४२ पुण्यदर्शनः—पुण्यजनक दर्शनवाले अथवा पुण्यसे ही जिनका दर्शन होता है, ऐसे ॥ ६८ ॥

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ।
नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः ॥ ६९ ॥

५४३ उदारकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, ५४४ उद्योगी—उद्योगशील, ५४५ सद्योगी—श्रेष्ठ योगी, ५४६ सदसन्मयः—सदसत्स्वरूप, ५४७ नक्षत्रमाली—नक्षत्रोंकी मालासे अलंकृत आकाशरूप, ५४८ नाकेशः—स्वर्गके स्वामी, ५४९ स्वाधिष्ठान-पदाश्रयः—स्वाधिष्ठान चक्रके आश्रय ॥ ६९ ॥

पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तो वृषाकपिः ॥ ७० ॥

५५० पवित्रः पापहारी—नित्य शुद्ध एवं पापनाशक, ५५१ मणिपूरः—मणिपूर नामक चक्रस्वरूप, ५५२ नभोगतिः—आकाशचारी, ५५३ हृत्पुण्डरीकमासीनः—हृदयकमलमें स्थित, ५५४ शक्रः—इन्द्ररूप, ५५५ शान्तः—शान्तस्वरूप, ५५६ वृषाकपिः—हरिहर ॥ ७० ॥

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ॥ ७१ ॥

५५७ उष्णः—हालाहल विषकी गर्मीसे उष्णतायुक्त, ५५८ गृहपतिः—समस्त ब्रह्माण्डरूपी गृहके स्वामी, ५५९ कृष्णः—सच्चिदानन्दस्वरूप, ५६० समर्थः—सामर्थ्य-शाली, ५६१ अनर्थनाशनः—अनर्थका नाश करनेवाले, ५६२ अधर्मशत्रुः—अधर्मनाशक, ५६३ अज्ञेयः—बुद्धिकी पहुँचसे परे अथवा जाननेमें न आनेवाले, ५६४ पुरुहूतः पुरुश्रुतः—बहुत-से नामोंद्वारा पुकारे और सुने जानेवाले ॥ ७१ ॥

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ७२ ॥

५६५ ब्रह्मगर्भः—ब्रह्मा जिनके गर्भस्थ शिशुके समान हैं, ऐसे, ५६६ बृहद्गर्भः—विश्वब्रह्माण्ड प्रलयकालमें जिनके गर्भमें रहता है, ऐसे, ५६७ धर्मधेनुः—धर्मरूपी वृषभको उत्पन्न करनेके लिये धेनुस्वरूप, ५६८ धनागमः—धनकी प्राप्ति करानेवाले, ५६९ जगद्धितैषी—समस्त संसारका हित चाहनेवाले, ५७० सुगतः—उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न अथवा बुद्धस्वरूप, ५७१ कुमारः—कार्तिकेयरूप, ५७२ कुशलागमः—कल्याणदाता ॥ ७२ ॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
अरागो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ ७३ ॥

५७३ हिरण्यवर्णः ज्योतिष्मान्—सुवर्णके समान गौर वर्णवाले तथा तेजस्वी, ५७४ नानाभूतरतः—नाना प्रकारके भूतोंके साथ क्रीडा करनेवाले, ५७५ ध्वनिः—नादस्वरूप, ५७६ अरागः—आसक्तिशून्य, ५७७ नयनाध्यक्षः—नेत्रोंमें द्रष्टा-रूपसे विद्यमान, ५७८ विश्वामित्रः—सम्पूर्ण जगत्के प्रति मैत्री भावना रखनेवाले मुनिस्वरूप, ५७९ धनेश्वरः—धनके स्वामी कुबेर ॥ ७३ ॥

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ ७४ ॥

५८० ब्रह्मज्योतिः—ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, ५८१ वसुधामा—सुवर्ण और रत्नोंके तेजसे प्रकाशित अथवा वसुधास्वरूप, ५८२ महाज्योतिरनुत्तमः—सूर्य आदि ज्योतियोंके प्रकाशक सर्वोत्तम महाज्योतिःस्वरूप, ५८३ मातामहः—मातृकाओंके जन्मदाता होनेके कारण मातामह, ५८४ मातरिश्वा नभस्वान्—आकाशमें विचरनेवाले वायुदेव, ५८५ नागहारधृक्—सर्पमय हार धारण करनेवाले ॥ ७४ ॥

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ।
निरावरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥ ७५ ॥

५८६ पुलस्त्यः—पुलस्त्य नामक मुनि, ५८७ पुलहः—पुलह नामक ऋषि, ५८८ अगस्त्यः—कुम्भजन्मा अगस्त्य ऋषि, ५८९ जातूकर्ण्यः—इसी नामसे प्रसिद्ध मुनि, ५९० पराशरः—शक्तिके पुत्र तथा व्यासजीके पिता मुनिवर पराशर, ५९१ निरावरणनिर्वारः—आवरणशून्य तथा अवरोधरहित, ५९२ वैरञ्च्यः—ब्रह्माजीके पुत्र नीललोहित रुद्र, ५९३ विष्टरश्रवाः—विस्तृत यशवाले विष्णुस्वरूप ॥ ७५ ॥

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकवीराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः ॥ ७६ ॥

५९४ आत्मभूः—स्वयम्भू ब्रह्मा, ५९५ अनिरुद्धः—अकुण्ठित गतिवाले, ५९६ अत्रिः—अत्रि नामक ऋषि, अथवा त्रिगुणातीत, ५९७ ज्ञानमूर्तिः—ज्ञानस्वरूप, ५९८ महायशाः—महायशस्वी, ५९९ लोकवीराग्रणीः—विश्वविख्यात वीरोंमें अग्रगण्य, ६०० वीरः—शूरवीर, ६०१ चण्डः—प्रलयके समय अत्यन्त क्रोध करनेवाले, ६०२ सत्यपराक्रमः—सच्चे पराक्रमी ॥ ७६ ॥

व्यालाकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः ॥ ७७ ॥

६०३ व्यालाकल्पः—सर्पोंके आभूषणसे शृङ्गार करनेवाले, ६०४ महाकल्पः—महाकल्पसंज्ञक कालस्वरूपवाले, ६०५ कल्पवृक्षः—शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान उदार, ६०६ कलाधरः—चन्द्रकलाधारी, ६०७ अलंकरिष्णुः—अलंकार धारण करने या करानेवाले, ६०८ अचलः—विचलित न होनेवाले, ६०९ रोचिष्णुः—प्रकाशमान, ६१० विक्रमोन्नतः—पराक्रममें बढ़े-चढ़े ॥ ७७ ॥

आयुः शब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः ।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रप्रमाथी पादपासनः ॥ ७८ ॥

६११ आयुः शब्दपतिः—आयु तथा वाणीके स्वामी, ६१२ वेगी प्लवनः—वेगशाली तथा कूदने या तैरनेवाले, ६१३ शिखिसारथिः—अग्निरूप सहायकवाले, ६१४ असंसृष्टः—निर्लेप, ६१५ अतिथिः—प्रेमी भक्तोंके घरपर अतिथिकी भाँति उपस्थित हो उनका सत्कार ग्रहण करनेवाले, ६१६ शक्रप्रमाथी—इन्द्रका मानमर्दन करनेवाले, ६१७ पादपासनः—वृक्षोंपर या वृक्षोंके नीचे आसन लगानेवाले ॥ ७८ ॥

वसुश्रवा हव्यवाहः प्रतप्ता विश्वभोजनः ।
जप्यो जरादिशमनो लोहितात्मा तनूनपात् ॥ ७९ ॥

६१८ वसुश्रवाः—यशरूपी धनसे सम्पन्न, ६१९ हव्यवाहः—अग्निस्वरूप, ६२० प्रतप्ता—सूर्यरूपसे प्रचण्ड ताप देनेवाले, ६२१ विश्वभोजनः—प्रलयकालमें विश्व-ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बना लेनेवाले, ६२२ जप्यः—जपने योग्य नामवाले, ६२३ जरादिशमनः—बुढ़ापा आदि दोषोंका निवारण करनेवाले, ६२४ लोहितात्मा तनूनपात्—लोहित वर्णवाले अग्निरूप ॥ ७९ ॥

बृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ।
निदाघस्तपनो मेघः स्वक्षः परपुरंजयः ॥ ८० ॥

६२५ बृहदश्वः—विशाल अश्ववाले, ६२६ नभोयोनिः—आकाशकी उत्पत्तिके स्थान, ६२७ सुप्रतीकः—सुन्दर शरीरवाले, ६२८ तमिस्रहा—अज्ञानान्धकारनाशक, ६२९ निदाघस्तपनः—तपनेवाले ग्रीष्मरूप, ६३० मेघः—बादलोंसे उपलक्षित वर्षारूप, ६३१ स्वक्षः—सुन्दर नेत्रोंवाले, ६३२ परपुरंजयः—त्रिपुररूप शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले ॥ ८० ॥

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥ ८१ ॥

६३३ सुखानिलः—सुखदायक वायुको प्रकट करनेवाले शरत्कालरूप, ६३४ सुनिष्पन्नः—जिसमें अन्नका सुन्दररूपसे परिपाक होता है, वह हेमन्तकालरूप, ६३५ सुरभिः शिशिरात्मकः—सुगन्धित मलयानिलसे युक्त शिशिर ऋतुरूप, ६३६ वसन्तः माधवः—चैत्र-वैशाख—इन दो मासोंसे युक्त वसन्तरूप, ६३७ ग्रीष्मः—ग्रीष्म ऋतुरूप, ६३८ नभस्यः—भाद्रपदमासरूप, ६३९ बीजवाहनः—धान आदिके बीजोंकी प्राप्ति करानेवाला शरत्काल ॥ ८१ ॥

अङ्गिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः ।
पावनः सुमतिर्विद्वांस्त्रैविद्यो वरवाहनः ॥ ८२ ॥

६४० अङ्गिरा गुरुः—अङ्गिरा नामक ऋषि तथा उनके पुत्र देवगुरु बृहस्पति, ६४१ आत्रेयः—अत्रिकुमार दुर्वासा, ६४२ विमलः—निर्मल, ६४३ विश्ववाहनः—सम्पूर्ण जगत्का निर्वाह करानेवाले, ६४४ पावनः—पवित्र करनेवाले, ६४५ सुमतिर्विद्वान्—उत्तम बुद्धिवाले विद्वान्, ६४६ त्रैविद्यः—तीनों वेदोंके विद्वान् अथवा तीनों वेदोंके द्वारा प्रतिपादित, ६४७ वरवाहनः—वृषभरूप श्रेष्ठ वाहनवाले ॥ ८२ ॥

मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।
जमदग्निर्बलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥ ८३ ॥

६४८ **मनोबुद्धिरहंकारः**—मन, बुद्धि और अहंकारस्वरूप, ६४९ **क्षेत्रज्ञः**—आत्मा, ६५० **क्षेत्रपालकः**—शरीररूपी क्षेत्रका पालन करनेवाले परमात्मा, ६५१ **जमदग्निः**—जमदग्नि नामक ऋषिरूप, ६५२ **बलनिधिः**—अनन्त बलके सागर, ६५३ **विगालः**—अपनी जटासे गङ्गाजीके जलको टपकानेवाले, ६५४ **विश्वगालवः**—विश्वविख्यात गालव मुनि अथवा प्रलय-कालमें कालाग्निस्वरूपसे जगत्‌को निगल जानेवाले ॥ ८३ ॥

अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः ।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिंदमः ॥८४॥

६५५ **अघोरः**—सौम्यरूपवाले, ६५६ **अनुत्तरः**—सर्वश्रेष्ठ, ६५७ **यज्ञः श्रेष्ठः**—श्रेष्ठ यज्ञरूप, ६५८ **निःश्रेयसप्रदः**—कल्याणदाता, ६५९ **शैलः**—शिलामय लिङ्गरूप, ६६० **गगन-कुन्दाभः**—आकाशकुन्द—चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, ६६१ **दानवारिः**—दानव-शत्रु, ६६२ **अरिंदमः**—शत्रुओंका दमन करनेवाले ॥ ८४ ॥

रजनीजनकश्चारुर्निःशल्यो लोकशल्यधृक् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥८५॥

६६३ **रजनीजनकश्चारुः**—सुन्दर निशाकर रूप, ६६४ **निःशल्यः**—निष्कण्टक, ६६५ **लोकशल्यधृक्**—शरणागत-जनोंके शोकशल्यको निकालकर स्वयं धारण करनेवाले, ६६६ **चतुर्वेदः**—चारों वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ६६७ **चतुर्भावः**—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले, ६६८ **चतुरश्चतुरप्रियः**—चतुर एवं चतुर पुरुषोंके प्रिय ॥८५॥

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः ।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥८६॥

६६९ **आम्नायः**—वेदस्वरूप, ६७० **समाम्नायः**—अक्षरसमाम्नाय—शिवसूत्ररूप, ६७१ **तीर्थदेवशिवालयः**—तीर्थोंके देवता और शिवालयरूप, ६७२ **बहुरूपः**—अनेक रूपवाले, ६७३ **महारूपः**—विराट्‌रूपधारी, ६७४ **सर्वरूपश्चराचरः**—चर और अचर सम्पूर्ण रूपवाले ॥ ८६ ॥

न्यायनिर्मायको न्यायी न्यायगम्यो निरञ्जनः ।
सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ॥८७॥

६७५ **न्यायनिर्मायको न्यायी**—न्यायकर्ता तथा न्यायशील, ६७६ **न्यायगम्यः**—न्याययुक्त आचरणसे प्राप्त होनेयोग्य, ६७७ **निरञ्जनः**—निर्मल, ६७८ **सहस्रमूर्द्धा**—सहस्रों सिरवाले, ६७९ **देवेन्द्रः**—देवताओंके स्वामी, ६८० **सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः**—विपक्षी योद्धाओंके सम्पूर्ण शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले ॥८७॥

मुण्डो विरूपो विक्रान्तो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः ।
पिङ्गलाक्षो जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥८८॥

६८१ **मुण्डः**—मुँड़े हुए सिरवाले संन्यासी, ६८२ **विरूपः**—विविध रूपवाले, ६८३ **विक्रान्तः**—विक्रमशील, ६८४ **दण्डी**—दण्डधारी, ६८५ **दान्तः**—मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, ६८६ **गुणोत्तमः**—गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ, ६८७ **पिङ्गलाक्षः**—पिङ्गल नेत्रवाले, ६८८ **जनाध्यक्षः**—जीवमात्रके साक्षी, ६८९ **नीलग्रीवः**—नीलकण्ठ, ६९० **निरामयः**—नीरोग ॥ ८८ ॥

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ।
पद्मासनः परं ज्योतिः पारम्पर्यफलप्रदः ॥८९॥

६९१ **सहस्रबाहुः**—सहस्रों भुजाओंसे युक्त, ६९२ **सर्वेशः**—सबके स्वामी, ६९३ **शरण्यः**—शरणागत-हितैषी, ६९४ **सर्वलोकधृक्**—सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले, ६९५ **पद्मासनः**—कमलके आसनपर विराजमान, ६९६ **परं ज्योतिः**—परम प्रकाशस्वरूप, ६९७ **पारम्पर्य-फलप्रदः**—परम्परागत फलकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ८९ ॥

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ।
परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः ॥९०॥

६९८ **पद्मगर्भः**—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले विष्णुरूप, ६९९ **महागर्भः**—विराट् ब्रह्माण्डको गर्भमें धारण करनेके कारण महान् गर्भवाले, ७०० **विश्वगर्भः**—सम्पूर्ण जगत्‌को अपने उदरमें धारण करनेवाले, ७०१ **विचक्षणः**—चतुर, ७०२ **परावरज्ञः**—कारण और कार्यके ज्ञाता, ७०३ **वरदः**—अभीष्ट वर देनेवाले, ७०४ **वरेण्यः**—वरणीय अथवा श्रेष्ठ, ७०५ **महास्वनः**—डमरूका गम्भीर नाद करनेवाले ॥ ९० ॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।
देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः ॥९१॥

७०६ **देवासुरगुरुर्देवः**—देवताओं तथा असुरोंके गुरुदेव एवं आराध्य, ७०७ **देवासुरनमस्कृतः**—देवताओं तथा असुरोंसे वन्दित, ७०८ **देवासुरमहामित्रः**—देवता तथा असुर दोनोंके बड़े मित्र, ७०९ **देवासुरमहेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके महान् ईश्वर ॥ ९१ ॥

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहाश्रयः ।
देवदेवमयोऽचिन्त्यो देवदेवात्मसम्भवः ॥९२॥

७१० **देवासुरेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके शासक,

७११ दिव्यः—अलौकिक स्वरूपवाले, ७१२ देवासुरमहाश्रयः—देवताओं और असुरोंके महान् आश्रय, ७१३ देवदेवमयः—देवताओंके लिये भी देवतारूप, ७१४ अचिन्त्यः—चित्तकी सीमासे परे विद्यमान, ७१५ देवदेवात्मसम्भवः—देवाधिदेव ब्रह्माजीसे रुद्ररूपमें उत्पन्न ॥ ९२ ॥

सद्योनिरसुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ।
विबुधाग्रचरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥९३॥

७१६ सद्योनिः—सत्पदार्थोंकी उत्पत्तिके हेतु, ७१७ असुरव्याघ्रः—असुरोंका विनाश करनेके लिये व्याघ्ररूप, ७१८ देवसिंहः—देवताओंमें श्रेष्ठ, ७१९ दिवाकरः—सूर्यरूप, ७२० विबुधाग्रचरश्रेष्ठः—देवताओंके नायकोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७२१ सर्वदेवोत्तमोत्तमः—सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंके भी शिरोमणि ॥ ९३ ॥

शिवज्ञानरतः श्रीमञ्छिखिश्रीपर्वतप्रियः ।
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः ॥९४॥

७२२ शिवज्ञानरतः—कल्याणमय शिवतत्त्वके विचारमें तत्पर, ७२३ श्रीमान्—अणिमा आदि विभूतियोंसे सम्पन्न, ७२४ शिखिश्रीपर्वतप्रियः—कुमार कार्तिकेयके निवासभूत श्रीशैल नामक पर्वतसे प्रेम करनेवाले, ७२५ वज्रहस्तः—वज्रधारी इन्द्ररूप, ७२६ सिद्धखड्गः—शत्रुओंको मार गिरानेमें जिनकी तलवार कभी असफल नहीं होती, ऐसे, ७२७ नरसिंहनिपातनः—शरभरूपसे नृसिंहको धराशायी करनेवाले ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ।
नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नव्रतधरः शुचिः ॥९५॥

७२८ ब्रह्मचारी—भगवती उमाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारीरूपसे प्रकट, ७२९ लोकचारी—समस्त लोकोंमें विचरनेवाले, ७३० धर्मचारी—धर्मका आचरण करनेवाले, ७३१ धनाधिपः—धनके अधिपति कुबेर, ७३२ नन्दी—नन्दी नामक गण, ७३३ नन्दीश्वरः—इसी नामसे प्रसिद्ध वृषभ, ७३४ अनन्तः—अनन्तरहित, ७३५ नग्नव्रतधरः—दिगम्बर रहनेका व्रत धारण करनेवाले, ७३६ शुचिः—नित्य-शुद्ध ॥ ९५ ॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ।
स्वधर्मा स्वर्गतः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः ॥९६॥

७३७ लिङ्गाध्यक्षः—लिङ्गदेहके द्रष्टा, ७३८ सुराध्यक्षः—देवताओंके अधिपति, ७३९ योगाध्यक्षः—योगेश्वर, ७४० युगावहः—युगके निर्वाहक, ७४१ स्वधर्मा—आत्मविचाररूप धर्ममें स्थित अथवा स्वधर्मपरायण, ७४२ स्वर्गतः—स्वर्गलोकमें स्थित, ७४३ स्वर्गस्वरः—स्वर्गलोकमें जिनके यशका गान किया जाता है, ऐसे, ७४४ स्वरमयस्वनः—सात प्रकारके स्वरोंसे युक्त ध्वनिवाले ॥ ९६ ॥

बाणाध्यक्षो बीजकर्ता धर्मकृद्धर्मसम्भवः ।
दम्भोऽलोभोऽर्थविच्छम्भुः सर्वभूतमहेश्वरः ॥९७॥

७४५ बाणाध्यक्षः—बाणासुरके स्वामी अथवा बाणलिङ्ग नर्मदेश्वरमें अधिदेवतारूपसे स्थित, ७४६ बीजकर्ता—बीजके उत्पादक, ७४७ धर्मकृद्धर्मसम्भवः—धर्मके पालक और उत्पादक, ७४८ दम्भः—मायामयरूपधारी, ७४९ अलोभः—लोभरहित, ७५० अर्थविच्छम्भुः—सबके प्रयोजनको जाननेवाले कल्याण-निकेतन शिव, ७५१ सर्वभूतमहेश्वरः—सम्पूर्ण प्राणियोंके परमेश्वर ॥ ९७ ॥

श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः ।
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः ॥९८॥

७५२ श्मशाननिलयः—श्मशानवासी, ७५३ त्र्यक्षः—त्रिनेत्रधारी, ७५४ सेतुः—धर्ममर्यादाके पालक, ७५५ अप्रतिमाकृतिः—अनुपम रूपवाले, ७५६ लोकोत्तरस्फुटालोकः—अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाशसे युक्त, ७५७ त्र्यम्बकः—त्रिनेत्रधारी अथवा त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग, ७५८ नागभूषणः—नागहारसे विभूषित ॥ ९८ ॥

अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः ।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित् ॥९९॥

७५९ अन्धकारिः—अन्धकासुरका वध करनेवाले, ७६० मखद्वेषी—दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, ७६१ विष्णुकन्धरपातनः—यज्ञमय विष्णुका गला काटनेवाले, ७६२ हीनदोषः—दोषरहित, ७६३ अक्षयगुणः—अविनाशी गुणोंसे सम्पन्न, ७६४ दक्षारिः—दक्षद्रोही, ७६५ पूषदन्तभित्—पूषा देवताके दाँत तोड़नेवाले ॥ ९९ ॥

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ।
अकालः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः ॥१००॥

७६६ धूर्जटिः—जटाके भारसे विभूषित, ७६७ खण्डपरशुः—खण्डित परशुवाले, ७६८ सकलो निष्कलः—साकार एवं निराकार परमात्मा, ७६९ अनघः—पापके स्पर्शसे शून्य, ७७० अकालः—कालके प्रभावसे रहित, ७७१ सकलाधारः—सबके आधार, ७७२ पाण्डुराभः—श्वेत कान्तिवाले, ७७३ मृडो नटः—सुखदायक एवं ताण्डवनृत्यकारी ॥१००॥

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ।
सामगेयप्रियोऽक्रूरः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ १०१॥

७७४ पूर्णः—सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा, ७७५ पूरयिता—भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, ७७६ पुण्यः—परम पवित्र, ७७७ सुकुमारः-सुन्दर कुमार हैं जिनके, ऐसे, ७७८ सुलोचनः-सुन्दर नेत्रवाले, ७७९ सामगेयप्रियः—सामगानके प्रेमी, ७८० अक्रूरः—क्रूरतारहित, ७८१ पुण्यकीर्तिः—पवित्र कीर्तिवाले, ७८२ अनामयः—रोग-शोकसे रहित ॥ १०१॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥ १०२॥

७८३ मनोजवः—मनके समान वेगशाली, ७८४ तीर्थकरः—तीर्थोंके निर्माता, ७८५ जटिलः—जटाधारी, ७८६ जीवितेश्वरः—सबके प्राणेश्वर, ७८७ जीवितान्तकरः—प्रलयकालमें सबके जीवनका अन्त करनेवाले, ७८८ नित्यः—सनातन, ७८९ वसुरेताः—सुवर्णमय वीर्यवाले, ७९० वसुप्रदः—धनदाता ॥ १०२ ॥

सद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः खलकण्टकः ।
कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥ १०३॥

७९१ सद्गतिः—सत्पुरुषोंके आश्रय, ७९२ सत्कृतिः—शुभ कर्म करनेवाले, ७९३ सिद्धिः—सिद्धिस्वरूप, ७९४ सज्जातिः—सत्पुरुषोंके जन्मदाता, ७९५ खलकण्टकः—दुष्टोंके लिये कण्टकरूप, ७९६ कलाधरः—कलाधारी, ७९७ महाकालभूतः—महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप अथवा कालके भी काल होनेसे महाकाल, ७९८ सत्यपरायणः—सत्यनिष्ठ ॥ १०३ ॥

लोकलावण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः ।
चन्द्रसंजीवनः शास्ता लोकगूढो महाधिपः ॥ १०४॥

७९९ लोकलावण्यकर्ता—सब लोगोंको सौन्दर्य प्रदान करनेवाले, ८०० लोकोत्तरसुखालयः—लोकोत्तर सुखके आश्रय, ८०१ चन्द्रसंजीवनः शास्ता—सोमनाथरूपसे चन्द्रमाको जीवन प्रदान करनेवाले सर्वशासक शिव, ८०२ लोकगूढः—समस्त संसारमें अव्यक्तरूपसे व्यापक, ८०३ महाधिपः—महेश्वर ॥ १०४॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कीर्तिभूषणः ।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १०५॥

८०४ लोकबन्धुर्लोकनाथः—सम्पूर्ण लोकोंके बन्धु एवं रक्षक, ८०५ कृतज्ञः—उपकारको माननेवाले, ८०६ कीर्तिभूषणः—उत्तम यशसे विभूषित, ८०७ अनपायोऽक्षरः—विनाशरहित—अविनाशी, ८०८ कान्तः—प्रजापति दक्षका अन्त करनेवाले, ८०९ सर्वशस्त्रभृतां वरः—सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ॥ १०५ ॥

तेजोमयो द्युतिधरो लोकानामग्रणीरणुः ।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जेयो दुरतिक्रमः ॥ १०६॥

८१० तेजोमयो द्युतिधरः—तेजस्वी और कान्तिमान्, ८११ लोकानामग्रणीः—सम्पूर्ण जगत्के लिये अग्रगण्य देवता अथवा जगत्को आगे बढ़ानेवाले, ८१२ अणुः—अत्यन्त सूक्ष्म, ८१३ शुचिस्मितः—पवित्र मुस्कानवाले, ८१४ प्रसन्नात्मा—हर्षभरे हृदयवाले, ८१५ दुर्जेयः—जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ८१६ दुरतिक्रमः—दुर्लङ्घ्य ॥ १०६॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः ।
तुम्बवीणो महाकोपो विशोकः शोकनाशनः ॥ १०७॥

८१७ ज्योतिर्मयः—तेजोमय, ८१८ जगन्नाथः—विश्वनाथ, ८१९ निराकारः—आकाररहित परमात्मा, ८२० जलेश्वरः—जलके स्वामी, ८२१ तुम्बवीणः—तूँबीकी वीणा बजानेवाले, ८२२ महाकोपः—संहारके समय महान् क्रोध करनेवाले, ८२३ विशोकः—शोकरहित, ८२४ शोकनाशनः—शोकका नाश करनेवाले ॥ १०७ ॥

त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः ।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्ताव्यक्तो विशाम्पतिः ॥ १०८॥

८२५ त्रिलोकपः—तीनों लोकोंका पालन करनेवाले, ८२६ त्रिलोकेशः—त्रिभुवनके स्वामी, ८२७ सर्वशुद्धिः—सबकी शुद्धि करनेवाले, ८२८ अधोक्षजः—इन्द्रियों और उनके विषयोंसे अतीत, ८२९ अव्यक्तलक्षणो देवः—अव्यक्त लक्षणवाले देवता, ८३० व्यक्ताव्यक्तः—स्थूल-सूक्ष्मरूप, ८३१ विशाम्पतिः—प्रजाओंके पालक ॥ १०८ ॥

वरशीलो वरगुणः सारो मानधनो मयः ।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः ॥ १०९॥

८३२ वरशीलः—श्रेष्ठ स्वभाववाले, ८३३ वरगुणः—उत्तम गुणोंवाले, ८३४ सारः—सारतत्त्व, ८३५ मानधनः—स्वाभिमानके धनी, ८३६ मयः—सुखस्वरूप, ८३७ ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, ८३८ विष्णुः प्रजापालः—प्रजापालक विष्णु, ८३९ हंसः—सूर्यस्वरूप, ८४० हंसगतिः—हंसके समान चालवाले, ८४१ वयः—गरुड़ पक्षी ॥ १०९ ॥

वेधा विधाता धाता च स्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः ।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ॥ ११०॥

८४२ **वेधा विधाता धाता**—ब्रह्मा, धाता और विधाता नामक देवतास्वरूप, ८४३ **स्रष्टा**—सृष्टिकर्ता, ८४४ **हर्ता**—संहारकारी, ८४५ **चतुर्मुखः**—चार मुखवाले ब्रह्मा, ८४६ **कैलासशिखरावासी**—कैलासके शिखरपर निवास करनेवाले, ८४७ **सर्वावासी**—सर्वव्यापी, ८४८ **सदागतिः**—निरन्तर गतिशील वायुदेवता ॥ ११० ॥

हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः ।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः ॥१११॥

८४९ **हिरण्यगर्भः**—ब्रह्मा, ८५० **द्रुहिणः**—ब्रह्मा, ८५१ **भूतपालः**—प्राणियोंका पालन करनेवाले, ८५२ **भूपतिः**—पृथ्वीके स्वामी, ८५३ **सद्योगी**—श्रेष्ठ योगी, ८५४ **योगविद्योगी**—योग-विद्याके ज्ञाता योगी, ८५५ **वरदः**—वर देनेवाले, ८५६ **ब्राह्मणप्रियः**—ब्राह्मणोंके प्रेमी ॥ १११ ॥

देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः ।
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥११२॥

८५७ **देवप्रियो देवनाथः**—देवताओंके प्रिय तथा रक्षक, ८५८ **देवज्ञः**—देवतत्त्वके ज्ञाता, ८५९ **देवचिन्तकः**—देवताओंका विचार करनेवाले, ८६० **विषमाक्षः**—विषम नेत्रवाले, ८६१ **विशालाक्षः**—बड़े-बड़े नेत्रवाले, ८६२ **वृषदो वृषवर्धनः**—धर्मका दान और वृद्धि करनेवाले ॥ ११२ ॥

निर्ममो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः ॥११३॥

८६३ **निर्ममः**—ममतारहित, ८६४ **निरहंकारः**—अहंकार-शून्य, ८६५ **निर्मोहः**—मोहशून्य, ८६६ **निरुपद्रवः**—उपद्रव या उत्पातसे दूर, ८६७ **दर्पहा दर्पदः**—दर्पका हनन और खण्डन करनेवाले, ८६८ **दृप्तः**—स्वाभिमानी, ८६९ **सर्वर्तुपरिवर्तकः**—समस्त ऋतुओंको बदलते रहनेवाले ॥ ११३ ॥

सहस्रजित् सहस्रार्चिः स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः ।
भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भूतिनाशनः ॥११४॥

८७० **सहस्रजित्**—सहस्रोंपर विजय पानेवाले, ८७१ **सहस्रार्चिः**—सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान सूर्यरूप, ८७२ **स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः**—स्नेहयुक्त स्वभाववाले तथा उदार, ८७३ **भूतभव्यभवन्नाथः**—भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी, ८७४ **प्रभवः**—सबकी उत्पत्तिके कारण, ८७५ **भूतिनाशनः**—दुष्टोंके ऐश्वर्यका नाश करनेवाले ॥११४॥

अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः ।
निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥११५॥

८७६ **अर्थः**—परमपुरुषार्थरूप, ८७७ **अनर्थः**—प्रयोजन-रहित, ८७८ **महाकोशः**—अनन्त धनराशिके स्वामी, ८७९ **परकार्यैकपण्डितः**—पराये कार्यको सिद्ध करनेकी कलाके एकमात्र विद्वान्, ८८० **निष्कण्टकः**—कण्टकरहित, ८८१ **कृतानन्दः**—नित्यसिद्ध आनन्दस्वरूप, ८८२ **निर्व्याजो व्याजमर्दनः**—स्वयं कपटरहित होकर दूसरेके कपटको नष्ट करनेवाले ॥ ११५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः ।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥११६॥

८८३ **सत्त्ववान्**—सत्त्वगुणसे युक्त, ८८४ **सात्त्विकः**—सत्त्व-निष्ठ, ८८५ **सत्यकीर्तिः**—सत्यकीर्तिवाले, ८८६ **स्नेहकृतागमः**—जीवोंके प्रति स्नेहके कारण विभिन्न आगमोंको प्रकाशमें लाने-वाले, ८८७ **अकम्पितः**—सुस्थिर, ८८८ **गुणग्राही**—गुणोंका आदर करनेवाले, ८८९ **नैकात्मा नैककर्मकृत्**—अनेकरूप होकर अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले ॥ ११६ ॥

सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः ।
नन्दिस्कन्धधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥११७॥

८९० **सुप्रीतः**—अत्यन्त प्रसन्न, ८९१ **सुमुखः**—सुन्दर मुखवाले, ८९२ **सूक्ष्मः**—स्थूलभावसे रहित, ८९३ **सुकरः**—सुन्दर हाथवाले, ८९४ **दक्षिणानिलः**—मलयानिलके समान सुखद, ८९५ **नन्दिस्कन्धधरः**—नन्दीकी पीठपर सवार होने-वाले, ८९६ **धुर्यः**—उत्तरदायित्वका भार वहन करनेमें समर्थ, ८९७ **प्रकटः**—भक्तोंके सामने प्रकट होनेवाले अथवा ज्ञानियोंके सामने नित्य प्रकट, ८९८ **प्रीतिवर्धनः**—प्रेम बढ़ानेवाले ॥११७॥

अपराजितः सर्वसत्त्वो गोविन्दः सत्त्ववाहनः ।
अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥११८॥

८९९ **अपराजितः**—किसीसे परास्त न होनेवाले, ९०० **सर्वसत्त्वः**—सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आश्रय अथवा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु, ९०१ **गोविन्दः**—गोलोककी प्राप्ति करानेवाले, ९०२ **सत्त्ववाहनः**—सत्त्वस्वरूप धर्ममय वृषभसे वाहनका काम लेनेवाले, ९०३ **अधृतः**—आधाररहित, ९०४ **स्वधृतः**—अपने आपमें ही स्थित, ९०५ **सिद्धः**—नित्यसिद्ध, ९०६ **पूतमूर्तिः**—पवित्र शरीरवाले, ९०७ **यशोधनः**—सुयशके धनी ॥ ११८ ॥

वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी बलवानेकनायकः ।
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेककृत् ॥११९॥

९०८ वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी—वाराहको मारकर उसके दाढ़-रूपी शृङ्गोंको धारण करनेके कारण शृङ्गी नामसे प्रसिद्ध, ९०९ बलवान्—शक्तिशाली, ९१० एकनायकः—अद्वितीय नेता, ९११ श्रुतिप्रकाशः—वेदोंको प्रकाशित करनेवाले, ९१२ श्रुतिमान्—वेदज्ञानसे सम्पन्न, ९१३ एकबन्धुः—सबके एकमात्र सहायक, ९१४ अनेककृत्—अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाले ॥ ११९ ॥

श्रीवत्सलशिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्भूतकृद् भूतभावनः ॥१२०॥

९१५ श्रीवत्सलशिवारम्भः—श्रीवत्सधारी विष्णुके लिये मङ्गलकारी, ९१६ शान्तभद्रः—शान्त एवं मङ्गलरूप, ९१७ समः—सर्वत्र समभाव रखनेवाले, ९१८ यशः—यशस्वरूप, ९१९ भूशयः—पृथ्वीपर शयन करनेवाले, ९२० भूषणः—सबको विभूषित करनेवाले, ९२१ भूतिः—कल्याणस्वरूप, ९२२ भूतकृत्—प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले, ९२३ भूतभावनः—भूतोंके उत्पादक ॥ १२० ॥

अकम्पो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः ।
सत्यव्रतमहात्यागी नित्यशान्तिपरायणः ॥१२१॥

९२४ अकम्पः—कम्पित न होनेवाले, ९२५ भक्तिकायः—भक्तिस्वरूप, ९२६ कालहा—कालनाशक, ९२७ नीललोहितः—नील और लोहित वर्णवाले, ९२८ सत्यव्रतमहात्यागी—सत्य-व्रतधारी एवं महान् त्यागी, ९२९ नित्यशान्तिपरायणः—निरन्तर शान्त ॥ १२१ ॥

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः ।
शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥१२२॥

९३० परार्थवृत्तिर्वरदः—परोपकारव्रती एवं अभीष्ट वरदाता, ९३१ विरक्तः—वैराग्यवान्, ९३२ विशारदः—विज्ञानवान्, ९३३ शुभदः शुभकर्ता—शुभ देने और करनेवाले, ९३४ शुभनामा शुभः स्वयम्—स्वयं शुभस्वरूप होनेके कारण शुभ-नामधारी ॥ १२२ ॥

अनर्थितोऽगुणः साक्षी ह्यकर्ता कनकप्रभः ।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो विघ्ननाशनः ॥१२३॥

९३५ अनर्थितः—याचनारहित, ९३६ अगुणः—निर्गुण, ९३७ साक्षी अकर्ता—द्रष्टा एवं कर्तृत्वरहित, ९३८ कनकप्रभः—सुवर्णके समान कान्तिमान्, ९३९ स्वभावभद्रः—स्वभावतः कल्याणकारी, ९४० मध्यस्थः—उदासीन, ९४१ शत्रुघ्नः—शत्रुनाशक, ९४२ विघ्ननाशनः—विघ्नोंका निवारण करनेवाले ॥ १२३ ॥

शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली ।
अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥१२४॥

९४३ शिखण्डी कवची शूली—मोरपंख, कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले, ९४४ जटी मुण्डी कुण्डली—जटा, मुण्डमाला और कवच धारण करनेवाले, ९४५ अमृत्युः—मृत्युरहित, ९४६ सर्वदृक्सिंहः—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ, ९४७ तेजोराशिर्महामणिः—तेजःपुञ्ज महामणि कौस्तुभादिरूप ॥ १२४ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान् वीर्यकोविदः ।
वेद्यश्चैव वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥१२५॥

९४८ असंख्येयोऽप्रमेयात्मा—असंख्य नाम, रूप और गुणोंसे युक्त होनेके कारण किसीके द्वारा मापे न जा सकनेवाले, ९४९ वीर्यवान् वीर्यकोविदः—पराक्रमी एवं पराक्रमके ज्ञाता, ९५० वेद्यः—जाननेयोग्य, ९५१ वियोगात्मा—दीर्घकालतक सतीके वियोगमें अथवा विशिष्ट योगकी साधनामें संलग्न हुए मनवाले, ९५२ परावरमुनीश्वरः—भूत और भविष्यके ज्ञाता मुनीश्वररूप ॥ १२५ ॥

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः ।
सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्म सतां गतिः ॥१२६॥

९५३ अनुत्तमो दुराधर्षः—सर्वोत्तम एवं दुर्जय, ९५४ मधुरप्रियदर्शनः—जिनका दर्शन मनोहर एवं प्रिय लगता है, ऐसे, ९५५ सुरेशः—देवताओंके ईश्वर, ९५६ शरणम्—आश्रय-दाता, ९५७ सर्वः—सर्वस्वरूप, ९५८ शब्दब्रह्म सतां गतिः—प्रणवरूप तथा सत्पुरुषोंके आश्रय ॥ १२६ ॥

कालपक्षः कालकालः कङ्कणीकृतवासुकिः ।
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः ॥१२७॥

९५९ कालपक्षः—काल जिनका सहायक है, ऐसे, ९६० कालकालः—कालके भी काल, ९६१ कङ्कणीकृतवासुकिः—वासुकि नागको अपने हाथमें कंगनके समान धारण करनेवाले, ९६२ महेष्वासः—महाधनुर्धर, ९६३ महीभर्ता—पृथ्वीपालक, ९६४ निष्कलङ्कः—कलङ्कशून्य, ९६५ विशृङ्खलः—बन्धन-रहित ॥ १२७ ॥

द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ।
विश्वतः संवृतः स्तुत्यो व्यूढोरस्को महाभुजः ॥१२८॥

९६६ द्युमणिस्तरणिः—आकाशमें मणिके समान प्रकाश-

मान तथा भक्तोंको भवसागरसे तारनेके लिये नौकारूप सूर्य, **९६७ धन्यः**—कृतकृत्य, **९६८ सिद्धिदः सिद्धिसाधनः**—सिद्धिदाता और सिद्धिके साधक, **९६९ विश्वतः संवृतः**—सब ओरसे मायाद्वारा आवृत, **९७० स्तुत्यः**—स्तुतिके योग्य, **९७१ व्यूढोरस्कः**—चौड़ी छातीवाले, **९७२ महाभुजः**—बड़ी बाँहवाले ॥ १२८ ॥

सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः ।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः ॥१२९॥

९७३ सर्वयोनिः—सबकी उत्पत्तिके स्थान, **९७४ निरातङ्कः**—निर्भय, **९७५ नरनारायणप्रियः**—नर-नारायणके प्रेमी अथवा प्रियतम, **९७६ निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा**—दोष-सम्पर्कसे रहित तथा जगत्-प्रपञ्चसे अतीत स्वरूपवाले, **९७७ निर्व्यङ्गः**—विशिष्ट अङ्गवाले प्राणियोंके प्राकट्यमें हेतु, **९७८ व्यङ्गनाशनः**—यज्ञादि कर्मोंमें होनेवाले अङ्गवैगुण्यका नाश करनेवाले ॥ १२९ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निरङ्कुशः ।
निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः ॥१३०॥

९७९ स्तव्यः—स्तुतिके योग्य, **९८० स्तवप्रियः**—स्तुतिके प्रेमी, **९८१ स्तोता**—स्तुति करनेवाले, **९८२ व्यासमूर्तिः**—व्यासस्वरूप, **९८३ निरङ्कुशः**—अङ्कुशरहित स्वतन्त्र, **९८४ निरवद्यमयोपायः**—मोक्षप्राप्तिके निर्दोष उपायरूप, **९८५ विद्याराशिः**—विद्याओंके सागर, **९८६ रसप्रियः**—ब्रह्मानन्दरसके प्रेमी ॥ १३० ॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्णः संग्रही नित्यसुन्दरः ।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः ॥१३१॥

९८७ प्रशान्तबुद्धिः—शान्त बुद्धिवाले, **९८८ अक्षुण्णः**—क्षोभ या नाशसे रहित, **९८९ संग्रही**—भक्तोंका संग्रह करनेवाले, **९९० नित्यसुन्दरः**—सतत मनोहर, **९९१ वैयाघ्रधुर्यः**—व्याघ्रचर्मधारी, **९९२ धात्रीशः**—ब्रह्माजीके स्वामी, **९९३ शाकल्यः**—शाकल्यऋषिरूप, **९९४ शर्वरीपतिः**—रात्रिके स्वामी चन्द्रमारूप ॥ १३१ ॥

परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिराश्रितवत्सलः ।
सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्त्वावलम्बनः ॥१३२॥

९९५ परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिः—परमार्थतत्त्वका उपदेश देनेवाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेयरूप, **९९६ आश्रितवत्सलः**—शरणागतोंपर दया करनेवाले, **९९७ सोमः**—उमासहित, **९९८ रसज्ञः**—भक्तिरसके ज्ञाता, **९९९ रसदः**—प्रेमरस प्रदान करनेवाले, **१००० सर्वसत्त्वावलम्बनः**—समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीहरि प्रतिदिन सहस्र नामोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, सहस्र कमलोंद्वारा उनका पूजन एवं प्रार्थना किया करते थे। एक दिन भगवान् शिवकी लीलासे एक कमल कम हो जानेपर भगवान् विष्णुने अपना कमलोपम नेत्र ही चढ़ा दिया। इस तरह उनसे पूजित एवं प्रसन्न हो शिवने उन्हें चक्र दिया और इस प्रकार कहा—'हरे ! सब प्रकारके अनर्थोंकी शान्तिके लिये तुम्हें मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अनेकानेक दुःखोंका नाश करनेके लिये इस सहस्रनामका पाठ करते रहना चाहिये तथा समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये सदा मेरे इस चक्रको प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये, यह सभी चक्रोंमें उत्तम है। दूसरे भी जो लोग प्रतिदिन इस सहस्रनामका पाठ करेंगे या करायेंगे, उन्हें स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं प्राप्त होगा। राजाओंकी ओरसे संकट प्राप्त होनेपर यदि मनुष्य साङ्गोपाङ्ग विधिपूर्वक इस सहस्रनाम-स्तोत्रका सौ बार पाठ करे तो निश्चय ही कल्याणका भागी होता है। यह उत्तम स्तोत्र रोगका नाशक, विद्या और धन देनेवाला, सम्पूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाला, पुण्यजनक तथा सदा ही शिवभक्ति देनेवाला है। जिस फलके उद्देश्यसे मनुष्य यहाँ इस श्रेष्ठ स्तोत्रका पाठ करेंगे, उसे निस्संदेह प्राप्त कर लेंगे। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर मेरी पूजाके पश्चात् मेरे सामने इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती। उसे इस लोकमें सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली सिद्धि पूर्णतया प्राप्त होती है और अन्तमें वह सायुज्य मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।'

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! ऐसा कहकर सर्वदेवेश्वर भगवान् रुद्र श्रीहरिके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान् विष्णु भी शंकरजीके वचनसे तथा उस शुभ चक्रको पा जानेसे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे प्रतिदिन शम्भुके ध्यानपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करने लगे। उन्होंने अपने भक्तोंको भी इसका उपदेश दिया। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह प्रसङ्ग सुनाया है, जो श्रोताओंके पापको हर लेनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ३५-३६)

भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाले व्रतोंका वर्णन, शिवरात्रि-व्रतकी विधि एवं महिमाका कथन

तदनन्तर ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने शिवजीकी आराधनाके द्वारा उत्तम एवं मनोवाञ्छित फल प्राप्त करनेवाले बहुत-से महान् स्त्री-पुरुषोंके नाम बताये। इसके बाद ऋषियोंने फिर पूछा—'व्यासशिष्य! किस व्रतसे संतुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं? जिस व्रतके अनुष्ठानसे भक्तजनोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेषरूपसे वर्णन कीजिये।'

सूतजीने कहा—महर्षियो! तुमने जो कुछ पूछा है, वही बात किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछी थी। इसके उत्तरमें शिवजीने जो कुछ कहा, वह मैं तुमलोगोंको बता रहा हूँ।

भगवान् शिव बोले—मेरे बहुत-से व्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनमें मुख्य दस व्रत हैं, जिन्हें जाबालश्रुतिके विद्वान् 'दश शैवव्रत' कहते हैं। द्विजोंको सदा यत्नपूर्वक इन व्रतोंका पालन करना चाहिये। हरे! प्रत्येक अष्टमीको केवल रातमें ही भोजन करे। विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमीको भोजनका सर्वथा त्याग कर दे। शुक्लपक्षकी एकादशीको भी भोजन छोड़ दे। किंतु कृष्णपक्षकी एकादशीको रातमें मेरा पूजन करनेके पश्चात् भोजन किया जा सकता है। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको तो रातमें भोजन करना चाहिये; परंतु कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवव्रतधारी पुरुषोंके लिये भोजनका सर्वथा निषेध है। दोनों पक्षोंमें प्रत्येक सोमवारको प्रयत्नपूर्वक केवल रातमें ही भोजन करना चाहिये। शिवके व्रतमें तत्पर रहनेवाले लोगोंके लिये यह अनिवार्य नियम है। इन सभी व्रतोंमें व्रतकी पूर्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। द्विजोंको इन सब व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। जो द्विज इनका त्याग करते हैं, वे चोर होते हैं। मुक्तिमार्गमें प्रवीण पुरुषोंको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले चार व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। वे चार व्रत इस प्रकार हैं—भगवान् शिवकी पूजा, रुद्रमन्त्रोंका जप, शिवमन्दिरमें उपवास तथा काशीमें मरण। ये मोक्षके सनातन मार्ग हैं। सोमवारकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशी—इन दो तिथियोंको उपवासपूर्वक व्रत रक्खा जाय तो वह भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला होता है, इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

हरे! इन चारोंमें भी शिवरात्रिका व्रत ही सबसे अधिक बलवान् है। इसलिये भोग और मोक्षरूपी फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको मुख्यतः उसीका पालन करना चाहिये। इस व्रतको छोड़कर दूसरा कोई मनुष्योंके लिये हितकारक व्रत नहीं है। यह व्रत सबके लिये धर्मका उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दासों, दासियों तथा देवता आदि सभी देहधारियोंके लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक बताया गया है।

माघमासके[1] कृष्णपक्षमें शिवरात्रि तिथिका विशेष माहात्म्य बताया गया है। जिस दिन आधी रातके समयतक वह तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। शिवरात्रि करोड़ों हत्याओंके पापका नाश करनेवाली है। केशव! उस दिन सबेरेसे लेकर जो कार्य करना आवश्यक है, उसे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। बुद्धिमान् पुरुष सबेरे उठकर बड़े आनन्दके साथ स्नान आदि नित्य कर्म करे। आलस्यको पास न आने दे। फिर शिवालयमें जाकर शिवलिङ्गका विधिवत् पूजन करके मुझ शिवको नमस्कार करनेके पश्चात् उत्तम रीतिसे संकल्प करे—

संकल्प

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव॥
तव प्रभावाद्देवेश! निर्विघ्नेन भवेदिति।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि॥

'देवदेव! महादेव! नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। देव! मैं आपके शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान करना चाहता हूँ। देवेश्वर! आपके प्रभावसे यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो और काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें।'

ऐसा संकल्प करके पूजन-सामग्रीका संग्रह करे और उत्तम स्थानमें जो शास्त्रप्रसिद्ध शिवलिङ्ग हो, उसके पास रातमें जाकर स्वयं उत्तम विधि-विधानका सम्पादन करे; फिर शिवके दक्षिण या पश्चिम भागमें सुन्दर स्थानपर उनके निकट

१. शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ माननेसे फाल्गुन मासकी कृष्ण त्रयोदशी माघ मासकी कही गयी है। जहाँ कृष्णपक्षसे मासका आरम्भ मानते हैं, उनके अनुसार यहाँ माघका अर्थ फाल्गुन समझना चाहिये।

ही पूजाके लिये संचित सामग्रीको रक्खे। तदनन्तर श्रेष्ठ पुरुष वहाँ फिर स्नान करे। स्नानके बाद सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र धारण करके तीन बार आचमन करनेके पश्चात् पूजन आरम्भ करे। जिस मन्त्रके लिये जो द्रव्य नियत हो, उस मन्त्रको पढ़कर उसी द्रव्यके द्वारा पूजा करनी चाहिये। बिना मन्त्रके महादेवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये। गीत, वाद्य, नृत्य आदिके साथ भक्तिभावसे सम्पन्न हो रात्रिके प्रथम पहरमें पूजन करके विद्वान् पुरुष मन्त्रका जप करे। यदि मन्त्रज्ञ पुरुष उस समय श्रेष्ठ पार्थिव लिङ्गका निर्माण करे तो नित्य कर्म करनेके पश्चात् पार्थिव लिङ्गका ही पूजन करे। पहले पार्थिव बनाकर पीछे उसकी विधिवत् स्थापना करे। फिर पूजनके पश्चात् नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समय शिवरात्रि-व्रतके माहात्म्यका पाठ करे। श्रेष्ठ भक्त अपने व्रतकी पूर्तिके लिये उस माहात्म्यको श्रद्धापूर्वक सुने। रात्रिके चारों पहरोंमें चार पार्थिव लिङ्गोंका निर्माण करके आवाहनसे लेकर विसर्जनतक क्रमशः उनकी पूजा करे और बड़े उत्सवके साथ प्रसन्नतापूर्वक जागरण करे। प्रातःकाल स्नान करके पुनः वहाँ पार्थिव शिवका स्थापन और पूजन करे। इस तरह व्रतको पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर बारंबार नमस्कारपूर्वक भगवान् शम्भुसे इस प्रकार प्रार्थना करे।

प्रार्थना एवं विसर्जन

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्॥
व्रतेनानेन देवेशं यथाशक्तिकृतेन च।
संतुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि

'महादेव! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रत ग्रहण किया था, स्वामिन्! वह परम उत्तम व्रत पूर्ण हो गया। अतः अब उसका विसर्जन करता हूँ। देवेश्वर शर्व! यथाशक्ति किये गये इस व्रतसे आप आज मुझपर कृपा करके संतुष्ट हों।'

तत्पश्चात् शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके विधिपूर्वक दान दे। फिर शिवको नमस्कार करके व्रतसम्बन्धी नियमका विसर्जन कर दे। अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणों, विशेषतः संन्यासियोंको भोजन कराकर पूर्णतया संतुष्ट करके स्वयं भी भोजन करे।

हरे! शिवरात्रिको प्रत्येक प्रहरमें श्रेष्ठ शिवभक्तोंको जिस प्रकार विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे मैं बताता हूँ; सुनो! प्रथम प्रहरमें पार्थिव लिङ्गकी स्थापना करके अनेक सुन्दर उपचारोंद्वारा उत्तम भक्तिभावसे पूजा करे। पहले गन्ध, पुष्प आदि पाँच द्रव्योंद्वारा सदा महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। उस-उस द्रव्यसे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रका उच्चारण करके पृथक्-पृथक् वह द्रव्य समर्पित करे। इस प्रकार द्रव्य-समर्पणके पश्चात् भगवान् शिवको जलधारा अर्पित करे। विद्वान् पुरुष चढ़े हुए द्रव्योंको जलधारासे ही उतारे। जलधाराके साथ-साथ एक सौ आठ मन्त्रका जप करके वहाँ निर्गुण-सगुणरूप शिवका पूजन करे। गुरुसे प्राप्त हुए मन्त्रद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करे। अन्यथा नाममन्त्रद्वारा सदाशिवका पूजन करना चाहिये। विचित्र चन्दन, अखण्ड चावल और काले तिलोंसे परमात्मा शिवकी पूजा करनी चाहिये। कमल और कनेरके फूल चढ़ाने चाहिये। आठ नाममन्त्रोंद्वारा शंकरजीको पुष्प समर्पित करे। वे आठ नाम इस प्रकार हैं—भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम और ईशान। इनके आरम्भमें श्री और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति जोड़कर 'श्रीभवाय नमः' इत्यादि नाममन्त्रोंद्वारा शिवका पूजन करे। पुष्प-समर्पणके पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। पहले प्रहरमें विद्वान् पुरुष नैवेद्यके लिये पकवान बनवा ले। फिर श्रीफलयुक्त विशेषार्घ्य देकर ताम्बूल समर्पित करे। तदनन्तर नमस्कार और ध्यान करके गुरुके दिये हुए मन्त्रका जप करे। गुरुदत्त मन्त्र न हो तो पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्रके जपसे भगवान् शंकरको संतुष्ट करे, धेनुमुद्रा[1] दिखाकर उत्तम जलसे तर्पण करे। पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे। फिर जबतक पहला प्रहर पूरा न हो जाय, तबतक महान् उत्सव करता रहे।

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा।
संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्।
वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्।
विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अँगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमामें लगाये। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे। यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

दूसरा प्रहर आरम्भ होनेपर पुनः पूजनके लिये संकल्प करे। अथवा एक ही समय चारों प्रहरोंके लिये संकल्प करके पहले प्रहरकी भाँति पूजा करता रहे। पहले पूर्वोक्त द्रव्योंसे पूजन करके फिर जलधारा समर्पित करे। प्रथम प्रहरकी अपेक्षा दुगुने मन्त्रोंका जप करके शिवकी पूजा करे। पूर्वोक्त तिल, जौ तथा कमल-पुष्पोंसे शिवकी अर्चना करे। विशेषतः बिल्वपत्रोंसे परमेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये। दूसरे प्रहरमें बिजौरा नीबूके साथ अर्घ्य देकर खीरका नैवेद्य निवेदन करे। जनार्दन! इसमें पहलेकी अपेक्षा मन्त्रोंकी दुगुनी आवृत्ति करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे। शेष सब बातें पहलेकी ही भाँति तबतक करता रहे, जबतक दूसरा प्रहर पूरा न हो जाय। तीसरे प्रहरके आनेपर पूजन तो पहलेके समान ही करे; किंतु जौके स्थानमें गेहूँका उपयोग करे और आकके फूल चढ़ाये। उसके बाद नाना प्रकारके धूप एवं दीप देकर पूएका नैवेद्य भोग लगाये। उसके साथ भाँति-भाँतिके शाक भी अर्पित करे। इस प्रकार पूजन करके कपूरसे आरती उतारे। अनारके फलके साथ अर्घ्य दे और दूसरे प्रहरकी अपेक्षा दुगुना मन्त्र-जप करे। तदनन्तर दक्षिणासहित ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे और तीसरे प्रहरके पूरे होनेतक पूर्ववत् उत्सव करता रहे। चौथा प्रहर आनेपर तीसरे प्रहरकी पूजाका विसर्जन कर दे। पुनः आवाहन आदि करके विधिवत् पूजा करे। उड़द, कँगनी, मूँग, सप्तधान्य, शङ्खीपुष्प तथा बिल्वपत्रोंसे परमेश्वर शंकरका पूजन करे। उस प्रहरमें भाँति-भाँतिकी मिठाइयोंका नैवेद्य लगाये अथवा उड़दके बड़े आदि बनाकर उनके द्वारा सदाशिवको संतुष्ट करे। केलेके फलके साथ अथवा अन्य विविध फलोंके साथ शिवको अर्घ्य दे। तीसरे प्रहरकी अपेक्षा दूना मन्त्र-जप करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे। गीत, वाद्य तथा नृत्यसे शिवकी आराधनापूर्वक समय बिताये। भक्तजनोंको तबतक महान् उत्सव करते रहना चाहिये, जबतक अरुणोदय न हो जाय। अरुणोदय होनेपर पुनः स्नान करके भाँति-भाँतिके पूजनोपचारों और उपहारोंद्वारा शिवकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अपना अभिषेक कराये, नाना प्रकारके दान दे और प्रहरकी संख्याके अनुसार ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको अनेक प्रकारके भोज्य-पदार्थोंका भोजन कराये। फिर शंकरको नमस्कार करके पुष्पाञ्जलि दे और बुद्धिमान् पुरुष उत्तम स्तुति करके निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे॥
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च।
तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः॥
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं नहि देवता॥

'सुखदायक कृपानिधान शिव! मैं आपका हूँ। मेरे प्राण आपमें ही लगे हैं और मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है। यह जानकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। भूतनाथ! मैंने जानकर या अनजानमें जो जप और पूजन आदि किया है, उसे समझकर दयासागर होनेके नाते ही आप मुझपर प्रसन्न हों। उस उपवास-व्रतसे जो फल हुआ हो, उसीसे सुखदायक भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। महादेव! मेरे कुलमें सदा आपका भजन होता रहे। जहाँके आप इष्ट-देवता न हों, उस कुलमें मेरा कभी जन्म न हो।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् भगवान् शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे तिलक और आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर शम्भुका विसर्जन करे। जिसने इस प्रकार व्रत किया हो, उससे मैं दूर नहीं रहता। इस व्रतके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे शिवरात्रि-व्रत करनेवालेके लिये मैं दे न डालूँ। जिसके द्वारा अनायास ही इस व्रतका पालन हो गया, उसके लिये भी अवश्य ही मुक्तिका बीज बो दिया गया। मनुष्योंको प्रतिमास भक्तिपूर्वक शिवरात्रि-व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् इसका उद्यापन करके मनुष्य साङ्गोपाङ्ग फल लाभ करता है। इस व्रतका पालन करनेमें मैं शिव निश्चय ही उपासकके समस्त दुःखोंका नाश कर देता हूँ और उसे भोग-मोक्ष आदि सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भगवान् शिवका यह अत्यन्त हितकारक और अद्भुत वचन सुनकर श्रीविष्णु अपने धामको लौट आये। उसके बाद इस उत्तम व्रतका अपना हित चाहनेवाले लोगोंमें प्रचार हुआ। किसी समय केशवने नारदजीसे भोग और मोक्ष देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रि-व्रतका वर्णन किया था। (अध्याय ३७-३८)

शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि

ऋषि बोले—सूतजी ! अब हमें शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि बताइये, जिसका अनुष्ठान करनेसे साक्षात् भगवान् शंकर निश्चय ही प्रसन्न होते हैं।

सूतजीने कहा—ऋषियो ! तुमलोग भक्तिभावसे आदरपूर्वक शिवरात्रिके उद्यापनकी विधि सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेसे वह व्रत अवश्य ही पूर्ण फल देनेवाला होता है। लगातार चौदह वर्षोंतक शिवरात्रिके शुभव्रतका पालन करना चाहिये । त्रयोदशीको एक समय भोजन करके चतुर्दशीको पूरा उपवास करना चाहिये । शिवरात्रिके दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक शिवका पूजन करे । तत्पश्चात् वहाँ यत्नपूर्वक एक दिव्य मण्डल बनवाये, जो तीनों लोकोंमें गौरीतिलक नामसे प्रसिद्ध है। उसके मध्यभागमें दिव्य लिङ्गतोभद्र मण्डलकी रचना करे अथवा मण्डपके भीतर सर्वतोभद्र मण्डलका निर्माण करे। वहाँ प्राजापत्य नामक कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये । वे शुभ कलश वस्त्र, फल और दक्षिणाके साथ होने चाहिये । उन सबको मण्डलके पार्श्वभागमें यत्नपूर्वक स्थापित करे। मण्डपके मध्यभागमें एक सोनेका अथवा दूसरी धातु ताँबे आदिका बना हुआ कलश स्थापित करे। व्रती पुरुष उस कलशपर पार्वतीसहित शिवकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर रक्खे। वह प्रतिमा एक पल (तोले) अथवा आधे पल सोनेकी होनी चाहिये या जैसी अपनी शक्ति हो, उसके अनुसार प्रतिमा बनवा ले। वामभागमें पार्वतीकी और दक्षिण भागमें शिवकी प्रतिमा स्थापित करके रात्रिमें उनका पूजन करे। आलस्य छोड़कर पूजनका काम करना चाहिये। उस कार्यमें चार ऋत्विजोंके साथ एक पवित्र आचार्यका वरण करे और उन सबकी आज्ञा लेकर भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करे। रातको प्रत्येक प्रहरमें पृथक्-पृथक् पूजा करते हुए जागरण करे। व्रती पुरुष भगवत्सम्बन्धी कीर्तन, गीत एवं नृत्य आदिके द्वारा सारी रात बिताये । इस प्रकार विधिवत् पूजनपूर्वक भगवान् शिवको संतुष्ट करके प्रातःकाल पुनः पूजन करनेके पश्चात् सविधि होम करे । फिर यथाशक्ति प्राजापत्य विधान करे। फिर ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथाशक्ति दान दे।

इसके बाद वस्त्र, अलंकार तथा आभूषणोंद्वारा पत्नीसहित ऋत्विजोंको अलंकृत करके उन्हें विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् दान दे। फिर आवश्यक सामग्रियोंसे युक्त बछड़ेसहित गौका आचार्यको यह कहकर विधिपूर्वक दान दे कि इस दानसे भगवान् शिव मुझपर प्रसन्न हों। तत्पश्चात् कलशसहित उस मूर्तिको वस्त्रके साथ वृषभकी पीठपर रखकर सम्पूर्ण अलंकारोंसहित उसे आचार्यको अर्पित कर दे। इसके बाद हाथ जोड़ मस्तक झुका बड़े प्रेमसे गद्गद वाणीमें महाप्रभु महेश्वरदेवसे प्रार्थना करे।

प्रार्थना

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि॥
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत् कृतं शिव।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर॥

'देवदेव ! महादेव ! शरणागतवत्सल ! देवेश्वर ! इस व्रतसे संतुष्ट हो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। शिव शंकर ! मैंने भक्तिभावसे इस व्रतका पालन किया है। इसमें जो कमी रह गयी हो, वह आपके प्रसादसे पूरी हो जाय। शंकर ! मैंने अनजानमें या जान-बूझकर जो जप-पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो।'

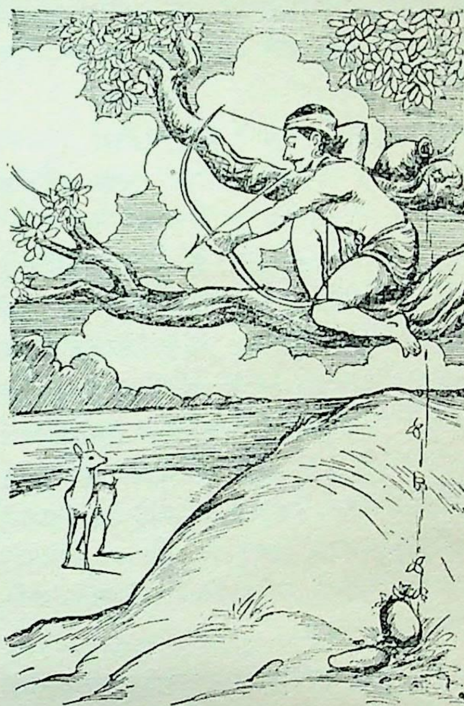
इस तरह परमात्मा शिवको पुष्पाञ्जलि अर्पण करके फिर नमस्कार एवं प्रार्थना करे। जिसने इस प्रकार व्रत पूरा कर लिया, उसके उस व्रतमें कोई न्यूनता नहीं रहती। उससे वह मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ३९)

अनजानमें शिवरात्रि-व्रत करनेसे एक भीलपर भगवान् शंकरकी अद्भुत कृपा

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! पूर्वकालमें किसने इस उत्तम शिवरात्रि-व्रतका पालन किया था और अनजानमें भी इस व्रतका पालन करके किसने कौन-सा फल प्राप्त किया था ?

सूतजीने कहा—ऋषियो ! तुम सब लोग सुनो । मैं इस विषयमें एक निषादका प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । पहलेकी बात है किसी वनमें एक भील रहता था, जिसका नाम था—गुरुद्रुह । उसका कुटुम्ब बड़ा था तथा वह बलवान् और क्रूर स्वभाव-का होनेके साथ ही क्रूरतापूर्ण कर्ममें तत्पर रहता था । वह प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नाना प्रकारकी चोरियाँ करता था । उसने बचपनसे ही कभी कोई शुभ कर्म नहीं किया था । इस प्रकार वनमें रहते हुए उस दुरात्मा भीलका बहुत समय बीत गया । तदनन्तर एक दिन बड़ी सुन्दर एवं शुभकारक शिवरात्रि आयी । किंतु वह दुरात्मा घने जंगलमें निवास करनेवाला था, इसलिये उस व्रतको नहीं जानता था । उसी दिन उस भीलके माता-पिता और पत्नीने भूखसे पीड़ित होकर उससे याचना की—'वनेचर ! हमें खानेको दो ।'

उनके इस प्रकार याचना करनेपर वह तुरंत धनुष लेकर चल दिया और मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें घूमने लगा । दैवयोगसे उसे उस दिन कुछ भी नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया । इससे उसको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा—'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? आज तो कुछ नहीं मिला । घरमें जो बच्चे हैं, उनका तथा माता-पिताका क्या होगा ? मेरी जो पत्नी है, उसकी भी क्या दशा होगी ? अतः मुझे कुछ लेकर ही घर जाना चाहिये; अन्यथा नहीं ।' ऐसा सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा और जहाँ पानीमें उतरनेका घाट था, वहाँ जाकर खड़ा हो गया । वह मन-ही-मन यह विचार करता था कि 'यहाँ कोई-न-कोई जीव पानी पीनेके लिये अवश्य आयेगा । उसीको मारकर कृतकृत्य हो उसे साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक घरको जाऊँगा ।' ऐसा निश्चय करके वह व्याध एक बेलके पेड़पर चढ़ गया और वहीं जल साथ लेकर बैठ गया । उसके मनमें केवल यही चिन्ता थी कि कब कोई जीव आयेगा और कब मैं उसे मारूँगा । इसी प्रतीक्षामें भूख-प्याससे पीड़ित हो वह बैठा रहा । उस रातके पहले पहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी, जो चकित होकर जोर-जोरसे चौकड़ी भर रही थी । ब्राह्मणो ! उस मृगीको देखकर व्याधको बड़ा हर्ष हुआ और उसने तुरंत ही उसके वधके लिये अपने धनुषपर एक बाणका संधान किया । ऐसा करते हुए उसके हाथके धक्केसे थोड़ा-सा जल और बिल्वपत्र नीचे गिर पड़े । उस पेड़के नीचे शिवलिङ्ग था । उक्त जल और बिल्वपत्रसे शिवकी प्रथम पहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी । उस पूजाके माहात्म्यसे उस व्याधका बहुत-सा पातक तत्काल नष्ट हो गया । वहाँ होनेवाली खड़खड़ाहटकी आवाजको सुनकर हरिणीने भयसे ऊपरकी ओर देखा । व्याधको देखते ही वह व्याकुल हो गयी और बोली—



मृगीने कहा—व्याध ! तुम क्या करना चाहते हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ ।

हरिणीकी वह बात सुनकर व्याधने कहा—आज मेरे कुटुम्बके लोग भूखे हैं; अतः तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा, उन्हें तृप्त करूँगा ।

व्याधका वह दारुण वचन सुनकर तथा जिसे रोकना कठिन था, उस दुष्ट भीलको बाण ताने देखकर मृगी सोचने लगी कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अच्छा कोई उपाय रचती हूँ ।' ऐसा विचारकर उसने वहाँ इस प्रकार कहा ।

मृगी बोली—भील ! मेरे मांससे तुमको सुख होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य और क्या हो सकता है ? उपकार करनेवाले प्राणीको

इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता* । परंतु इस समय मेरे सब बच्चे मेरे आश्रममें ही हैं। मैं उन्हें अपनी बहिनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट आऊँगी । वनेचर ! तुम मेरी इस बातको मिथ्या न समझो । मैं फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी, इसमें संशय नहीं है। सत्यसे ही धरती टिकी हुई है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है और सत्यसे ही निर्झरोंसे जलकी धाराएँ गिरती रहती हैं । सत्यमें ही सब कुछ स्थित है।†

सूतजी कहते हैं—मृगीके ऐसा कहनेपर भी जब व्याधने उसकी बात नहीं मानी, तब उसने अत्यन्त विस्मित एवं भयभीत हो पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मृगी बोली—व्याध ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ऐसी शपथ खाती हूँ, जिससे घर जानेपर मैं अवश्य तुम्हारे पास लौट आऊँगी। ब्राह्मण यदि वेद बेचे और तीनों काल संध्या न करे तो उसे जो पाप लगता है, पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके स्वेच्छानुसार कार्य करनेवाली स्त्रियोंको जिस पापकी प्राप्ति होती है, किये हुए उपकारको न माननेवाले, भगवान् शंकरसे विमुख रहनेवाले, दूसरोंसे द्रोह करनेवाले धर्मको लाँघनेवाले तथा विश्वासघात और छल करनेवाले लोगोंको जो पाप लगता है, उसी पापसे मैं भी लिप्त हो जाऊँ, यदि लौटकर यहाँ न आऊँ।

इस तरह अनेक शपथ खाकर जब मृगी चुपचाप खड़ी हो गयी, तब उस व्याधने उसपर विश्वास करके कहा—'अच्छा, अब तुम अपने घरको जाओ।' तब वह मृगी बड़े हर्षके साथ पानी पीकर अपने आश्रम-मण्डलमें गयी। इतनेमें ही रातका वह पहला पहर व्याधके जागते-ही-जागते बीत गया। तब उस हिरनीकी बहिन दूसरी मृगी, जिसका पहलीने स्मरण किया था, उसीकी राह देखती हुई जल पीनेके लिये वहाँ आ गयी। उसे देखकर भीलने स्वयं बाणको तरकससे खींचा। ऐसा करते समय पुनः पहलेकी भाँति भगवान् शिवके ऊपर जल और बिल्वपत्र गिरे। उसके द्वारा महात्मा शम्भुकी दूसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। यद्यपि वह प्रसङ्गवश ही हुई थी, तो भी व्याधके लिये सुखदायिनी हो गयी। मृगीने उसे बाण खींचते देख पूछा—'वनेचर ! यह क्या करते हो ?' व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—'मैं अपने भूखे कुटुम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा।' यह सुनकर वह मृगी बोली।

मृगीने कहा—व्याध ! मेरी बात सुनो। मैं धन्य हूँ। मेरा देह-धारण सफल हो गया; क्योंकि इस अनित्य शरीरके द्वारा उपकार होगा। परंतु मेरे छोटे-छोटे बच्चे घरमें हैं। अतः मैं एक बार जाकर उन्हें अपने स्वामीको सौंप दूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

व्याध बोला—तुम्हारी बातपर मुझे विश्वास नहीं है। मैं तुझे मारूँगा, इसमें संशय नहीं है।

यह सुनकर वह हरिणी भगवान् विष्णुकी शपथ खाती हुई बोली—'व्याध ! जो कुछ मैं कहती हूँ, उसे सुनो। यदि मैं लौटकर न आऊँ तो अपना सारा पुण्य हार जाऊँ; क्योंकि जो वचन देकर उससे पलट जाता है, वह अपने पुण्यको हार जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्रीको त्यागकर दूसरीके पास जाता है, वैदिक धर्मका उल्लङ्घन करके कपोलकल्पित धर्मपर चलता है, भगवान् विष्णुका भक्त होकर शिवकी निन्दा करता है, माता-पिताकी निधन-तिथिको श्राद्ध आदि न करके उसे सूना बिता देता है तथा मनमें संतापका अनुभव करके अपने दिये हुए वचनको पूरा करता है, ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ।'

सूतजी कहते हैं—उसके ऐसा कहनेपर व्याधने उस मृगीसे कहा—'जाओ।' मृगी जल पीकर हर्षपूर्वक अपने आश्रमको गयी। इतनेमें ही रातका दूसरा प्रहर भी व्याधके जागते-जागते बीत गया। इसी समय तीसरा प्रहर आरम्भ हो जानेपर मृगीके लौटनेमें बहुत विलम्ब हुआ जान चकित हो व्याध उसकी खोज करने लगा। इतनेमें ही उसने जलके मार्गमें एक हिरनको देखा। वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। उसे देखकर वनेचरको बड़ा हर्ष हुआ और वह धनुषपर बाण रखकर उसे मार डालनेको उद्यत हुआ। ऐसा करते समय उसके प्रारब्धवश कुछ जल और बिल्वपत्र शिव-लिङ्गपर गिरे, उससे उसके सौभाग्यसे भगवान् शिवकी

---

* उपकारकरस्यैव यत् पुण्यं जायते त्विह ।
तत् पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ॥
(शि० पु० को० रु० सं० ४०। २६)

† स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारिधिः ।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
(शि० पु० को० ० सं० ४०। २९)

तीसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। इस तरह भगवान्ने उसपर अपनी दया दिखायी। पत्तोंके गिरने आदिका शब्द सुनकर उस मृगने व्याधकी ओर देखा और पूछा—'क्या करते हो?' व्याधने उत्तर दिया—'मैं अपने कुटुम्बको भोजन देनेके लिये तुम्हारा वध करूँगा।' व्याधकी यह बात सुनकर हरिणके मनमें बड़ा हर्ष हुआ और तुरंत ही व्याधसे इस प्रकार बोला।

हरिणने कहा—मैं धन्य हूँ। मेरा हृष्ट-पुष्ट होना सफल हो गया; क्योंकि मेरे शरीरसे आपलोगोंकी तृप्ति होगी। जिसका शरीर परोपकारके काममें नहीं आता, उसका सब कुछ व्यर्थ चला गया। जो सामर्थ्य रहते हुए भी किसीका उपकार नहीं करता है, उसकी वह सामर्थ्य व्यर्थ चली जाती है तथा वह परलोकमें नरकगामी होता है*। परंतु एक बार मुझे जाने दो। मैं अपने बालकोंको उनकी माताके हाथमें सौंपकर और उन सबको धीरज बँधाकर यहाँ लौट आऊँगा।

उसके ऐसा कहनेपर व्याध मन-ही-मन बड़ा विस्मित हुआ। उसका हृदय कुछ शुद्ध हो गया था और उसके सारे पापपुञ्ज नष्ट हो चुके थे। उसने इस प्रकार कहा।

व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सब तुम्हारी ही तरह बातें बनाकर चले गये; परंतु वे वञ्चक अभीतक यहाँ नहीं लौटे हैं। मृग! तुम भी इस समय संकटमें हो, इसलिये झूठ बोलकर चले जाओगे। फिर आज मेरा जीवन-निर्वाह कैसे होगा?

मृग बोला—व्याध! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो। मुझमें असत्य नहीं है। सारा चराचर ब्रह्माण्ड सत्यसे ही टिका हुआ है। जिसकी वाणी झूठी होती है, उसका पुण्य उसी क्षण नष्ट हो जाता है; तथापि भील! तुम मेरी सच्ची प्रतिज्ञा सुनो। संध्याकालमें मैथुन तथा शिवरात्रिके दिन भोजन करनेसे जो पाप लगता है, झूठी गवाही देने, धरोहरको हड़प लेने तथा संध्या न करनेसे द्विजको जो पाप होता है, वही पाप मुझे भी लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ। जिसके मुखसे कभी शिवका नाम नहीं निकलता, जो सामर्थ्य रहते हुए भी दूसरोंका उपकार नहीं करता, पर्वके दिन श्रीफल तोड़ता, अभक्ष्य-भक्षण करता तथा शिवकी पूजा किये बिना और भस्म लगाये बिना भोजन कर लेता है, इन सबका पातक मुझे लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ।

सूतजी कहते हैं—उसकी बात सुनकर व्याधने कहा—'जाओ, शीघ्र लौटना।' व्याधके ऐसा कहनेपर मृग पानी पीकर चला गया। वे सब अपने आश्रमपर मिले। तीनों ही प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे। आपसमें एक दूसरेके वृत्तान्तको भलीभाँति सुनकर सत्यके पाशसे बँधे हुए उन सबने यही निश्चय किया कि वहाँ अवश्य जाना चाहिये। इस निश्चयके बाद वहाँ बालकोंको आश्वासन देकर वे सब-के-सब जानेके लिये उत्सुक हो गये। उस समय जेठी मृगीने वहाँ अपने स्वामीसे कहा—'स्वामिन्! आपके बिना यहाँ बालक कैसे रहेंगे? प्रभो! मैंने ही वहाँ पहले जाकर प्रतिज्ञा की है, इसलिये केवल मुझको जाना चाहिये। आप दोनों यहीं रहें।' उसकी यह बात सुनकर छोटी मृगी बोली—'बहिन! मैं तुम्हारी सेविका हूँ, इसलिये आज मैं ही व्याधके पास जाती हूँ। तुम यहीं रहो।' यह सुनकर मृग बोला—'मैं ही वहाँ जाता हूँ। तुम दोनों यहाँ रहो; क्योंकि शिशुओंकी रक्षा मातासे ही होती है।' स्वामीकी यह बात सुनकर उन दोनों मृगियोंने धर्मकी दृष्टिसे उसे स्वीकार नहीं किया। वे दोनों अपने पतिसे प्रेमपूर्वक बोलीं—'प्रभो! पतिके बिना इस जीवनको धिक्कार है।' तब उन सबने अपने बच्चोंको सान्त्वना देकर उन्हें पड़ोसियोंके हाथमें सौंप दिया और स्वयं शीघ्र ही उस स्थानको प्रस्थान किया, जहाँ वह व्याधशिरोमणि उनकी प्रतीक्षामें बैठा था। उन्हें जाते देख उनके वे सब बच्चे भी पीछे-पीछे चले आये। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि इन माता-पिताकी जो गति होगी, वही हमारी भी हो। उन सबको एक साथ आया देख व्याधको बड़ा हर्ष हुआ। उसने धनुषपर बाण रक्खा। उस समय पुनः जल और बिल्वपत्र शिवके ऊपर गिरे। उससे शिवकी चौथे पहरकी शुभ पूजा भी सम्पन्न हो गयी। उस समय व्याधका सारा पाप तत्काल भस्म हो गया। इतनेमें ही दोनों मृगियाँ और मृग बोल उठे—'व्याध-शिरोमणे! शीघ्र कृपा करके हमारे शरीरको सार्थक करो।'

* यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै।
तत्सामर्थ्यं भवेद्व्यर्थं परत्रं नरकं व्रजेत्॥
(शि० पु० को० रु० सं० ४०। ५७)



उनकी यह बात सुनकर व्याधको बड़ा विस्मय हुआ। शिवपूजाके प्रभावसे उसको दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया। उसने सोचा—'ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, सर्वथा आदरणीय हैं; क्योंकि अपने शरीरसे ही परोपकारमें लगे हुए हैं। मैंने इस समय मनुष्य-जन्म पाकर भी किस पुरुषार्थका साधन किया? दूसरेके शरीरको पीड़ा देकर अपने शरीरको पोसा है। प्रतिदिन अनेक प्रकारके पाप करके अपने कुटुम्बका पालन किया है। हाय! ऐसे पाप करके मेरी क्या गति होगी? अथवा मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? मैंने जन्मसे लेकर अब-तक जो पातक किया है, उसका इस समय मुझे स्मरण हो रहा है। मेरे जीवनको धिक्कार है, धिक्कार है।' इस प्रकार ज्ञानसम्पन्न होकर व्याधने अपने बाणको रोक लिया और कहा—'श्रेष्ठ मृगो! तुम जाओ। तुम्हारा जीवन धन्य है।'

व्याधके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर तत्काल प्रसन्न हो गये और उन्होंने व्याधको अपने सम्मानित एवं पूजित स्वरूपका दर्शन कराया तथा कृपापूर्वक उसके शरीरका स्पर्श करके उससे प्रेमसे कहा—'भील! मैं तुम्हारे व्रतसे प्रसन्न हूँ। वर माँगो।' व्याध भी भगवान् शिवके उस रूपको देखकर तत्काल जीवन्मुक्त हो गया और 'मैंने सब कुछ पा लिया' यों कहता हुआ उनके चरणोंके आगे गिर पड़ा। उसके इस भावको देखकर भगवान् शिव भी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उसे 'गुह' नाम देकर कृपादृष्टिसे देखते हुए उन्होंने उसे दिव्य वर दिये।

शिव बोले—व्याध! सुनो, आजसे तुम शृङ्गवेरपुरमें उत्तम राजधानीका आश्रय ले दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे वंशकी वृद्धि निर्विघ्नरूपसे होती रहेगी। देवता भी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। व्याध! मेरे भक्तोंपर स्नेह रखनेवाले भगवान् श्रीराम एक दिन निश्चय ही तुम्हारे घर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। तुम मेरी सेवामें मन लगाकर दुर्लभ मोक्ष पा जाओगे।

इसी समय वे सब मृग भगवान् शंकरका दर्शन और प्रणाम करके मृगयोनिसे मुक्त हो गये तथा दिव्य-देहधारी हो विमानपर बैठकर शिवके दर्शनमात्रसे शापमुक्त हो दिव्यधामको चले गये। तबसे अर्बुद पर्वतपर भगवान् शिव व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए, जो दर्शन और पूजन करनेपर तत्काल भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। महर्षियो! वह व्याध भी उस दिनसे दिव्य भोगोंका उपभोग करता हुआ अपनी राजधानीमें रहने लगा। उसने भगवान् श्रीरामकी कृपा पाकर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। अनजानमें ही इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे उसको सायुज्य मोक्ष मिल गया; फिर जो भक्तिभावसे सम्पन्न होकर इस व्रतको करते हैं, वे शिवका शुभ सायुज्य प्राप्त कर लें, इसके लिये तो कहना ही क्या है। सम्पूर्ण शास्त्रों तथा अनेक प्रकारके धर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके इस शिवरात्रि-व्रतको सबसे उत्तम बताया गया है। इस लोकमें जो नाना प्रकारके व्रत, विविध तीर्थ, भाँति-भाँतिके विचित्र दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, तरह-तरहके तप तथा बहुत-से जप हैं, वे सब इस शिवरात्रि-व्रतकी समानता नहीं कर सकते। इसलिये अपना हित चाहनेवाले मनुष्योंको इस शुभतर व्रतका अवश्य पालन करना चाहिये। यह शिवरात्रि-व्रत दिव्य है। इससे सदा भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। महर्षियो! यह शुभ शिवरात्रि-व्रत व्रतराजके नामसे विख्यात है। इसके विषयमें सब बातें मैंने तुम्हें बता दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ४०)

मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने बारंबार मुक्तिका नाम लिया है। यहाँ मुक्ति मिलनेपर क्या होता है ? मुक्तिमें जीवकी कैसी अवस्था होती है ? यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! सुनो। मैं तुमसे संसार-क्लेशका निवारण तथा परमानन्दका दान करनेवाली मुक्तिका स्वरूप बताता हूँ। मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सारूप्या, सालोक्या, सांनिध्या तथा चौथी सायुज्या। इस शिवरात्रि-व्रतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो ज्ञानरूप अविनाशी, साक्षी, ज्ञानगम्य और द्वैतरहित साक्षात् शिव हैं, वे ही यहाँ कैवल्य-मोक्षके तथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके भी दाता हैं। कैवल्या नामक जो पाँचवीं मुक्ति है, वह मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। मुनिवरो ! मैं उसका लक्षण बताता हूँ, सुनो। जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा यह जिसमें लीन होता है, वे ही शिव हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वही शिवका रूप है। मुनीश्वरो ! वेदोंमें शिवके दो रूप बताये गये हैं—सकल और निष्कल। शिवतत्त्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानन्द नामसे प्रसिद्ध है। निर्गुण, उपाधिरहित, अविनाशी, शुद्ध एवं निरञ्जन (निर्मल) है। वह न लाल है न पीला, न सफेद है न नीला; न छोटा है न बड़ा और न मोटा है न महीन। जहाँसे मनसहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है, वह परब्रह्म परमात्मा ही शिव कहलाता है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है। यह मायासे परे, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे रहित तथा मत्सरताशून्य परमात्मा है। यहाँ शिवज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है अथवा द्विजो ! सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा शिवका ही भजन-ध्यान करनेसे सत्पुरुषोंको शिवपदकी प्राप्ति होती है*।

संसारमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु भगवान्‌का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। इसलिये संतशिरोमणि पुरुष मुक्तिके लिये भी शिवका भजन ही करते हैं। ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं। भक्तिसे ही बहुतसे पुरुष सिद्धि-लाभ करके प्रसन्नतापूर्वक परम मोक्ष पा गये हैं। भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है, जो सदा भोग और मोक्ष देनेवाली है। वह साधु महापुरुषोंके कृपा-प्रसादसे सुलभ होती है। उत्तम प्रेमका अङ्कुर ही उसका लक्षण है। द्विजो ! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये। फिर वैधी और स्वाभाविकी—ये दो भेद और होते हैं। इनमें वैधीकी अपेक्षा स्वाभाविकी श्रेष्ठ मानी गयी है। इनके सिवा नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे भक्तिके दो प्रकार और बताये गये हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी। फिर विहिता और अविहिताके भेदसे विद्वानोंने उसके अनेक प्रकार माने हैं। उनके बहुत-से भेद होनेके कारण यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा है। उन दोनों प्रकारकी भक्तियोंके श्रवण आदि भेदसे नौ अङ्ग जानने चाहिये। भगवान्‌की कृपाके बिना इन भक्तियोंका सम्पादन होना कठिन है और उनकी कृपासे सुगमतापूर्वक इनका साधन होता है। द्विजो ! भक्ति और ज्ञानको शम्भुने एक दूसरेसे भिन्न नहीं बताया है। इसलिये उनमें भेद नहीं करना चाहिये। ज्ञान और भक्ति दोनोंके ही साधकको सदा सुख मिलता है। ब्राह्मणो ! जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भक्ति करनेवालेको ही शीघ्रतापूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः मुनीश्वरो ! ! महेश्वरकी भक्तिका साधन करना आवश्यक है। उसीसे सबकी सिद्धि होगी, इसमें संशय नहीं है। महर्षियो ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसीका मैंने वर्णन किया है। इस प्रसङ्गको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे निस्संदेह मुक्त हो जाता है। (अध्याय ४१)

* सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्। निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः ॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च। न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च ॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम् ॥
आकाशं व्यापकं यद्वत् तथैव व्यापकं त्विदम्। मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम्। भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥
(शि० पु० को० रु० सं० ४१ । १२-१६)

शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—शिव कौन हैं ? विष्णु कौन हैं ? रुद्र कौन हैं और ब्रह्मा कौन हैं ? इन सबमें निर्गुण कौन है ? हमारे इस संदेहका आप निवारण कीजिये ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! वेद और वेदान्तके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्गुण परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसीका नाम शिव है । शिवसे पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई । उन दोनोंने मूलस्थानमें स्थित जलके भीतर तप किया । वह स्थान पञ्चक्रोशी काशीके नामसे विख्यात है, जो भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है । यह जल सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त था । उस जलका आश्रय ले योगमायासे युक्त श्रीहरि वहाँ सोये । नार अर्थात् जलको अयन (निवास-स्थान) बनानेके कारण फिर 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी' कहलायी । नारायणके नाभिकमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं । ब्रह्माने तपस्या करके जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें विष्णु कहा गया है । ब्रह्मा और विष्णुके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है । उन्होंने कहा—'मैं शम्भु ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट होऊँगा' इस कथनके अनुसार समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट हुए, उनका नाम रुद्र हुआ । इस प्रकार रूपरहित परमात्मा सबके चिन्तनका विषय बननेके लिये साकाररूपमें प्रकट हुए । वे ही साक्षात् भक्तवत्सल शिव हैं । तीनों गुणोंसे भिन्न शिवमें तथा गुणोंके धाम रुद्रमें उसी तरह वास्तविक भेद नहीं है, जैसे सुवर्ण और उसके आभूषणमें नहीं है । दोनोंके रूप और कर्म समान हैं । दोनों समानरूपसे भक्तोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं । दोनों समानरूपसे सबके सेवनीय हैं तथा नाना प्रकारके लीला-विहार करनेवाले हैं । भयानक पराक्रमी रुद्र सर्वथा शिवरूप ही हैं । वे भक्तोंके कार्यकी सिद्धिके निमित्त विष्णु और ब्रह्माकी सहायता करनेके लिये प्रकट हुए हैं । अन्य जो-जो देवता जिस क्रमसे प्रकट हुए हैं, उसी क्रमसे लयको प्राप्त होते हैं । परंतु रुद्रदेव उस तरह लीन नहीं होते । उनका साक्षात् शिवमें ही लय होता है । ये प्राकृत प्राणी रुद्रमें मिलकर ही लयको प्राप्त होते हैं । परंतु रुद्र इनमें मिलकर लयको नहीं प्राप्त होते । यह भगवती श्रुतिका उपदेश है । सब लोग रुद्रका भजन करते हैं, किंतु रुद्र किसीका भजन नहीं करते । वे भक्तवत्सल होनेके कारण कभी-कभी अपने-आप भक्तजनोंका चिन्तन कर लेते हैं । जो दूसरे देवताका भजन करते हैं, वे उसीमें लीन होते हैं; इसीलिये वे दीर्घकालके बाद रुद्रमें लीन होनेका अवसर पाते हैं । जो कोई रुद्रके भक्त हैं, वे तत्काल शिव हो जाते हैं; अतः उनके लिये दूसरेकी अपेक्षा नहीं रहती । यह सनातन श्रुतिका संदेश है ।

द्विजो ! अज्ञान अनेक प्रकारका होता है, परंतु विज्ञानका एक ही स्वरूप है । वह अनेक प्रकारका नहीं होता । उसको समझनेका प्रकार मैं बताऊँगा, तुमलोग आदरपूर्वक सुनो । ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी यहाँ देखा जाता है, वह सब शिवरूप ही है । उसमें नानात्वकी कल्पना मिथ्या है । सृष्टिके पूर्व भी शिवकी सत्ता बतायी गयी है, सृष्टिके मध्यमें भी शिव विराज रहे हैं, सृष्टिके अन्तमें भी शिव रहते हैं और जब सब कुछ शून्यतामें परिणत हो जाता है, उस समय भी शिवकी सत्ता रहती ही है । अतः मुनीश्वरो ! शिवको ही चतुर्गुण कहा गया है । वे ही शिव शक्तिमान् होनेके कारण 'सगुण' जाननेयोग्य हैं । इस प्रकार वे सगुण-निर्गुणके भेदसे दो प्रकारके हैं । जिन शिवने ही भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण सनातन वेद, अनेक वर्ण, अनेक मात्रा तथा अपना ध्यान एवं पूजन दिये हैं, वे ही सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर हैं—ऐसी सनातन श्रुति है । अतएव शम्भुको 'वेदोंका प्राकट्यकर्ता' तथा 'वेदपति' कहा गया है । वे ही सबपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शंकर हैं । कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण भी वे ही हैं । दूसरोंके लिये कालका मान है, परंतु कालस्वरूप रुद्रके लिये कालकी कोई गणना नहीं है; क्योंकि वे साक्षात् स्वयं महाकाल हैं और महाकाली उनके आश्रित हैं । ब्राह्मण, रुद्र और कालीको एक-से ही बताते हैं । उन दोनोंने सत्य लीला करनेवाली अपनी इच्छासे ही सब कुछ प्राप्त किया है । शिवका कोई उत्पादक नहीं है । उनका कोई पालक और संहारक भी नहीं है । ये स्वयं सबके हेतु हैं । एक होकर भी अनेकताको प्राप्त हो सकते हैं और अनेक होकर भी एकताको । एक ही बीज बाहर होकर वृक्ष और फल आदिके रूपमें परिणत होता हुआ पुनः बीजभावको प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार शिवरूपी महेश्वर स्वयं एकसे अनेक होनेमें हेतु हैं । यह उत्तम शिवज्ञान तत्त्वतः बताया गया है । ज्ञानवान् पुरुष ही इसको जानता है, दूसरा नहीं ।

मुनि बोले—सूतजी ! आप लक्षणसहित ज्ञानका वर्णन

कीजिये, जिसको जानकर मनुष्य शिवभावको प्राप्त हो जाता है। सारा जगत् शिव कैसे है अथवा शिव ही सम्पूर्ण जगत् कैसे हैं ?

ऋषियोंका यह प्रश्न सुनकर पौराणिकशिरोमणि सूतजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके उनसे कहा।

(अध्याय ४२)

शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन तथा उसकी महिमा, कोटिरुद्रसंहिताका माहात्म्य एवं उपसंहार

सूतजीने कहा—ऋषियो ! मैंने शिवज्ञान जैसा सुना है, उसे बता रहा हूँ । तुम सब लोग सुनो, वह अत्यन्त गुह्य और परम मोक्षस्वरूप है । ब्रह्मा, नारद, सनकादि मुनि, व्यास तथा कपिल—इनके समाजमें इन्हीं लोगोंने निश्चय करके ज्ञानका जो स्वरूप बताया है; उसीको यथार्थ ज्ञान समझना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, यह ज्ञान सदा अनुशीलन करनेयोग्य है । सर्वज्ञ विद्वान्को यह निश्चितरूपसे जानना चाहिये कि शिव सर्वमय हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिव ही हैं। वे महादेवजी ही शिव कहलाते हैं। जब उनकी इच्छा होती है, तब वे इस जगत्की रचना करते हैं । वे ही सबको जानते हैं, उनको कोई नहीं जानता । वे इस जगत्की रचना करके स्वयं इसके भीतर प्रविष्ट होकर भी इससे दूर हैं। वास्तवमें उनका इसमें प्रवेश नहीं हुआ है; क्योंकि वे निर्लिप्त, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। जैसे सूर्य आदि ज्योतियोंका जलमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वास्तवमें जलके भीतर उनका प्रवेश नहीं होता, उसी प्रकार साक्षात् शिवके विषयमें समझना चाहिये। वस्तुतः तो वे स्वयं ही सब कुछ हैं। मतभेद ही अज्ञान है; क्योंकि शिवसे भिन्न किसी द्वैत वस्तुकी सत्ता नहीं है। सम्पूर्ण दर्शनोंमें मतभेद ही दिखाया जाता है, परंतु वेदान्ती नित्य अद्वैत तत्त्वका वर्णन करते हैं। जीव परमात्मा शिवका ही अंश है; परंतु अविद्यासे मोहित होकर अवश हो रहा है और अपनेको शिवसे भिन्न समझता है। अविद्यासे मुक्त होनेपर वह शिव ही हो जाता है। शिव सबको व्याप्त करके स्थित हैं और सम्पूर्ण जन्तुओंमें व्यापक हैं। वे जड और चेतन—सबके ईश्वर होकर स्वयं ही सबका कल्याण करते हैं। जो विद्वान् पुरुष वेदान्तमार्गका आश्रय ले उनके साक्षात्कारके लिये साधना करता है, उसे वह साक्षात्काररूप फल अवश्य प्राप्त होता है। व्यापक अग्नितत्त्व प्रत्येक काष्ठमें स्थित है; परंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, वही असंदिग्धरूपसे अग्निको प्रकट करके देखता है। उसी तरह जो बुद्धिमान् वहाँ भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य शिवका दर्शन प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है । सर्वत्र केवल शिव हैं, शिव हैं, शिव हैं; दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे शिव भ्रमसे ही सदा नाना रूपोंमें भासित होते हैं।

जैसे समुद्र, मिट्टी अथवा सुवर्ण—ये उपाधिभेदसे नानात्वको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार भगवान् शंकर भी उपाधियोंसे ही अनेक रूपोंमें भासते हैं । कार्य और कारणमें वास्तविक भेद नहीं होता। केवल भ्रमसे भरी हुई बुद्धिके द्वारा ही उसमें भेदकी प्रतीति होती है। भ्रम दूर होते ही भेदबुद्धिका नाश हो जाता है। जब बीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है, तब वह नानात्वको प्रकट करता है; फिर अन्तमें वह बीजरूपमें ही स्थित होता है और अङ्कुर नष्ट हो जाता है। ज्ञानी बीजरूपमें ही स्थित है और नाना प्रकारके विकार अङ्कुररूप हैं। उन विकारस्वरूप अङ्कुरोंकी निवृत्ति हो जानेपर पुरुष फिर ज्ञानीरूपमें ही स्थित होता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। सब कुछ शिव है और शिव ही सब कुछ हैं। शिव तथा सम्पूर्ण जगत्में कोई भेद नहीं है; फिर क्यों कोई अनेकता देखता है और क्यों एकता ढूँढ़ता है । जैसे एक ही सूर्य नामक ज्योति जल आदि उपाधियोंमें विशेषरूपसे नाना प्रकारकी दिखायी देती है, उसी प्रकार शिव भी हैं। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्पर्श आदि बन्धनमें नहीं आता, उसी प्रकार व्यापक शिव भी कहीं नहीं बँधते । अहंकारसे युक्त होनेके कारण शिवका अंश जीव कहलाता है। उस अहंकारसे मुक्त होनेपर वह साक्षात् शिव ही है। कर्मोंके भोगमें लिप्त होनेके कारण जीव तुच्छ है और निर्लिप्त होनेके कारण शिव महान् हैं। जैसे एक ही सुवर्ण आदि चाँदी आदिसे मिल जानेपर कम कीमतका हो जाता है, उसी प्रकार अहंकारयुक्त जीव अपना महत्त्व खो बैठता है। जैसे क्षार आदिसे शुद्ध किया हुआ उत्तम सुवर्ण आदि पूर्ववत् बहुमूल्य हो जाता है, उसी प्रकार संस्कारविशेषसे शुद्ध होकर जीव भी शुद्ध हो जाता है।

पहले सद्गुरुको पाकर भक्तिभावसे युक्त हो शिवबुद्धिसे उनका पूजन और स्मरण आदि करे। गुरुमें शिवबुद्धि करनेसे

सारे पाप आदि मल शरीरसे निकल जाते हैं। उस समय अज्ञान नष्ट हो जाता है और मनुष्य ज्ञानवान् हो जाता है। उस अवस्थामें अहंकारमुक्त निर्मल बुद्धिवाला जीव भगवान् शंकरके प्रसादसे पुनः शिवरूप हो जाता है। जैसे दर्पणमें अपना रूप दिखायी देता है, उसी तरह उसे सर्वत्र शम्भुका साक्षात्कार होने लगता है। वही जीवन्मुक्त कहलाता है। शरीर गिर जानेपर वह जीवन्मुक्त ज्ञानी शिवमें मिल जाता है। शरीर प्रारब्धके अधीन है; जो उस देहके अभिमानसे रहित है, उसे ज्ञानी माना गया है। जो शुभ वस्तुको पाकर हर्षसे खिल नहीं उठता, अशुभको पाकर क्रोध या शोक नहीं करता तथा सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वोंमें समभाव रखता है, वह ज्ञानवान् कहलाता है।* आत्मचिन्तनसे तथा तत्त्वोंके विवेकसे ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्ताका बोध हो जाय। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिमानको त्यागकर अहंकारशून्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें विलीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं भगवान् शिवकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं। भक्तिसे साधनविषयक प्रेमकी उपलब्धि बतायी गयी है। प्रेमसे श्रवण होता है, श्रवणसे सत्सङ्ग प्राप्त होता है और सत्सङ्गसे ज्ञानी गुरुकी उपलब्धि होती है। गुरुकी कृपासे ज्ञान प्राप्त हो जानेपर मनुष्य निश्चय ही मुक्त हो जाता है। इसलिये जो समझदार है, उसे सदा शम्भुका ही भजन करना चाहिये। जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शम्भुका भजन करता है, उसे अन्तमें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अतः मुक्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान् शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी शरण लेकर जीव संसारबन्धनसे छूट जाता है।

ब्राह्मणो! इस प्रकार वहाँ पधारे हुए ऋषियोंने परस्पर निश्चय करके जो यह ज्ञानकी बात बतायी है, इसे अपनी बुद्धिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। मुनीश्वरो! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। इसे तुम्हें प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। बताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो?

ऋषि बोले—व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं, शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने हमें शिवतत्त्व-सम्बन्धी परम उत्तम ज्ञानका श्रवण कराया है। आपकी कृपासे हमारे मनकी भ्रान्ति मिट गयी। हम आपसे मोक्षदायक शिवतत्त्वका ज्ञान पाकर बहुत संतुष्ट हुए हैं।

सूतजीने कहा—द्विजो! जो नास्तिक हो, श्रद्धाहीन हो और शठ हो, जो भगवान् शिवका भक्त न हो तथा इस विषयको सुननेकी रुचि न रखता हो, उसे इस तत्त्वज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये। व्यासजीने इतिहास, पुराणों, वेदों और शास्त्रोंका बारंबार विचार करके उनका सार निकालकर मुझे उपदेश दिया है। इसका एक बार श्रवण करनेमात्रसे सारे पाप भस्म हो जाते हैं, अभक्तको भक्ति प्राप्त होती है और भक्तकी भक्ति बढ़ती है। दुबारा सुननेसे उत्तम भक्ति प्राप्त होती है। तीसरी बार सुननेसे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः भोग और मोक्षरूप फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको इसका बारंबार श्रवण करना चाहिये। उत्तम फलको पानेके उद्देश्यसे इस पुराणकी पाँच आवृत्तियाँ करनी चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य उसे अवश्य पाता है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि यह व्यासजीका वचन है। जिसने इस उत्तम पुराणको सुना है, उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह शिव-विज्ञान भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है। इस प्रकार मैंने शिवपुराणकी यह चौथी आनन्ददायिनी तथा परम पुण्यमयी संहिता कही है, जो कोटिरुद्रसंहिताके नामसे विख्यात है। जो पुरुष एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस संहिताको सुनेगा या सुनायेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त कर लेगा। (अध्याय ४३)

॥ कोटिरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥

* शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाशुभं नहि। द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः॥

(शि० पु० को० रु० सं० ४३। ३१)

उमासंहिता

भगवान् श्रीकृष्णके तपसे संतुष्ट हुए शिव और पार्वतीका उन्हें अभीष्ट वर देना तथा शिवकी महिमा

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः
संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः ।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि ॥

'जो रजोगुणका आश्रय ले संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्ण ब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

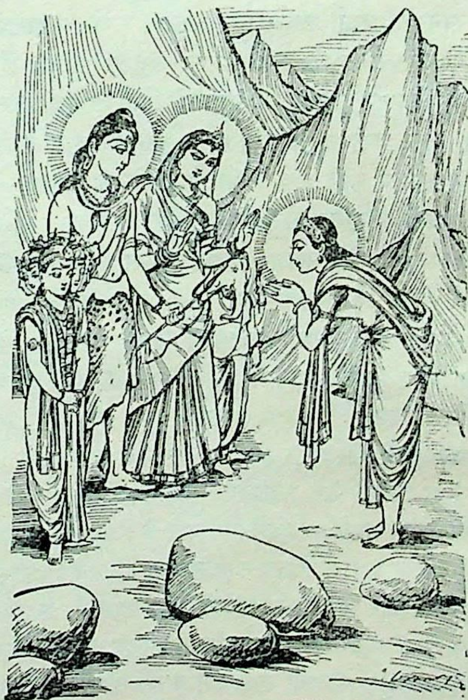
ऋषि बोले—महाज्ञानी व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। आपने कोटिरुद्र नामक चौथी संहिता हमें सुना दी। अब उमासंहिताके अन्तर्गत नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त जो परमात्मा साम्ब सदाशिवका चरित्र है, उसका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—शौनक आदि महर्षियो! भगवान् शंकरका मङ्गलमय चरित्र परम दिव्य एवं भोग और मोक्षको देनेवाला है। तुमलोग प्रेमसे इसका श्रवण करो। पूर्वकालमें मुनिवर व्यासने सनत्कुमारके सामने ऐसे ही पवित्र प्रश्नको उपस्थित किया था और इसके उत्तरमें उन्होंने भगवान् शिवके उत्तम चरित्रका गान किया था।

उस समय पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त श्रीकृष्णके हिमवान् पर्वतपर जाकर महर्षि उपमन्युसे मिलने, उनकी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करने, उनके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती, कार्तिकेय तथा गणेशसहित शिवके प्रकट होने तथा श्रीकृष्णके द्वारा उनकी स्तुतिपूर्वक वरदान माँगनेकी कथा सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—श्रीकृष्णका वचन सुनकर भगवान् भव उनसे बोले—'वासुदेव! तुमने जो कुछ मनोरथ किया है, वह सब पूर्ण होगा।' इतना कहकर त्रिशूलधारी भगवान् शिव फिर बोले—"यादवेन्द्र! तुम्हें साम्ब नामसे प्रसिद्ध एक महापराक्रमी बलवान् पुत्र प्राप्त होगा। एक समय मुनियोंने भयानक संवर्तक (प्रलयंकर) सूर्यको शाप दिया था कि 'तुम मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होओगे' अतः वे संवर्तक सूर्य ही तुम्हारे पुत्र होंगे। इसके सिवा जो-जो वस्तु तुम्हें अभीष्ट है, वह सब तुम प्राप्त करो।"

सनत्कुमारजी कहते हैं—इस प्रकार परमेश्वर शिवसे सम्पूर्ण वरोंको प्राप्त करके श्रीकृष्णने विविध प्रकारकी बहुत-सी स्तुतियोंद्वारा उन्हें पूर्णतया संतुष्ट किया। तदनन्तर भक्तवत्सला गिरिराजकुमारी शिवाने प्रसन्न हो उन तपस्वी शिवभक्त महात्मा वासुदेवसे कहा।

पार्वती बोलीं—परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। अनघ! तुम मुझसे भी उन मनोवाञ्छित वरोंको ग्रहण करो, जो भूतलपर दुर्लभ हैं।



श्रीकृष्णने कहा—देवि! यदि आप मेरे इस सत्य तपसे संतुष्ट हैं और मुझे वर दे रही हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंके प्रति कभी मेरे मनमें द्वेष न हो, मैं सदा द्विजोंका पूजन करता रहूँ। मेरे माता-पिता सदा मुझसे संतुष्ट रहें। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे

हृदयमें अनुकूल भाव रहे। आपके दर्शनके प्रभावसे मेरी संतति उत्तम हो। मैं सैकड़ों यज्ञ करके इन्द्र आदि देवताओंको तृप्त करूँ। सहस्रों साधु-संन्यासियों और अतिथियोंको सदा अपने घरपर श्रद्धासे पवित्र अन्नका भोजन कराऊँ। भाई-बन्धुओंके साथ नित्य मेरा प्रेम बना रहे तथा मैं सदा संतुष्ट रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका वह वचन सुनकर सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली सनातनी देवी पार्वती विस्मित हो उनसे बोलीं—'वासुदेव! ऐसा ही होगा। तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार श्रीकृष्णपर उत्तम कृपा करके उन्हें उन वरोंको देकर पार्वतीदेवी तथा परमेश्वर शिव दोनों वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर केशिहन्ता श्रीकृष्णने मुनिवर उपमन्युको प्रणाम करके उनसे वर-प्राप्तिका सारा समाचार बताया। तब उन मुनिने कहा—'जनार्दन! संसारमें भगवान् शिवके सिवा दूसरा कौन महादानी ईश्वर है तथा क्रोधके समय दूसरा कौन अत्यन्त दुस्सह हो उठता है। महायशस्वी गोविन्द! दान, तप, शौर्य तथा स्थिरतामें शिवसे बढ़कर कौन है। अतः तुम शम्भुके दिव्य ऐश्वर्यका सदा श्रवण करते रहो।'*

तदनन्तर उपमन्युके द्वारा शिवकी महिमा सुननेके बाद उन मुनीश्वरको नमस्कार करके वसुदेवनन्दन केशव मन-ही-मन शम्भुका स्मरण करते हुए द्वारकापुरीको चले गये।

(अध्याय १–३)

नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जो पापपरायण जीव महानरकके अधिकारी हैं, उनका संक्षेपसे परिचय दिया जाता है; सावधान होकर सुनो। परस्त्रीको प्राप्त करनेका संकल्प, पराये धनको अपहरण करनेकी इच्छा, चित्तके द्वारा अनिष्ट-चिन्तन तथा न करने योग्य कर्ममें प्रवृत्त होनेका दुराग्रह—ये चार प्रकारके मानसिक पापकर्म हैं। असंगत प्रलाप (बेसिर-पैरकी बातें), असत्यभाषण, अप्रिय बोलना और पीठ पीछे चुगली खाना—ये चार वाचिक (वाणीद्वारा होनेवाले) पाप-कर्म हैं। अभक्ष्य-भक्षण, प्राणियोंकी हिंसा, व्यर्थके कार्योंमें लगना और दूसरोंके धनको हड़प लेना—ये चार प्रकारके शारीरिक पापकर्म हैं। इस प्रकार ये बारह कर्म बताये गये, जो मन, वाणी और शरीर इन तीन साधनोंसे सम्पन्न होते हैं। जो संसार-सागरसे पार उतारनेवाले महादेवजीसे द्वेष करते हैं, वे सब-के-सब नरकोंके समुद्रमें गिरनेवाले हैं। उनको बड़ा भारी पातक लगता है। जो शिवज्ञानका उपदेश देनेवाले तपस्वीकी, गुरुजनोंकी और पिता-ताऊ आदिकी निन्दा करते हैं, वे उन्मत्त मनुष्य नरक-समुद्रमें गिरते हैं। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा इन चारोंसे सम्पर्क रखनेवाला पाँचवीं श्रेणीका पापी—ये सब-के-सब महापातकी कहे गये हैं।

जो क्रोधसे, लोभसे, भयसे तथा द्वेषसे ब्राह्मणके वधके लिये महान् मर्मभेदी दोषका वर्णन करता है, वह ब्रह्महत्यारा होता है। जो ब्राह्मणको बुलाकर उसे कोई वस्तु देनेके पश्चात् फिर ले लेता है तथा जो निर्दोष पुरुषपर दोषारोपण करता है, वह मनुष्य भी ब्रह्महत्यारा होता है। जो भरी सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए श्रेष्ठ द्विजको अपनी विद्याके अभिमानसे अपमानित करके उसे निस्तेज (हतप्रतिभ) कर देता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो दूसरोंके यथार्थ गुणोंका भी बलात् खण्डन करके झूठे गुणोंद्वारा अपने आपको उत्कृष्ट सिद्ध करता है, वह भी निश्चय ही ब्रह्महत्यारा होता है। जो साँड़ोंद्वारा बाही जाती हुई गौओंके तथा गुरुसे उपदेश ग्रहण करते हुए द्विजोंके कार्यमें विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंके उपयोगके लिये दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है। देवता और ब्राह्मणके धनको हर लेना तथा अन्यायसे धन कमाना ब्रह्महत्याके समान ही पातक जानना चाहिये। जिस किसी व्रत, नियम तथा यज्ञको ग्रहण करके उसे त्याग देना तथा पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान न करना मदिरापानके समान पातक बताया गया है। पिता और माताको त्याग देना, झूठी गवाही देना, ब्राह्मणसे झूठा वादा करना, शिव-भक्तोंको मांस खिलाना तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करना ब्रह्महत्याके तुल्य कहा गया है। वनमें निपराध प्राणियोंका वध कराना भी ब्रह्महत्याके ही तुल्य है। साधु पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणके धनको त्याग दे। उसे धर्मके कार्यमें भी न लगाये, अन्यथा ब्रह्महत्याका दोष लगता है।

* महर्षि उपमन्युके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति शिवतत्त्वके उपदेश तथा उपमन्युकी कथा वायवीयसंहितामें विस्तारसे कही जायगी।



श्रीशिव-पार्वतीका श्रीकृष्णको वरदान

[पृष्ठ ३९६

गौओंके मार्गोंमें, वनमें तथा गाँवमें जो लोग आग लगाते हैं, वे भी ब्रह्महत्या ही करते हैं। इस तरहके जो भयानक पाप हैं, वे ब्रह्महत्याके समान माने गये हैं।

ब्राह्मणके द्रव्यका अपहरण करना, पैतृक सम्पत्तिके बँटवारे-में उलट-फेर करना, अत्यन्त अभिमान और अधिक क्रोध करना, पाखण्ड फैलाना, कृतघ्नता करना, विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होना, कंजूसी करना, सत्पुरुषोंसे द्वेष रखना, परस्त्री-समागम करना, श्रेष्ठ कुलकी कन्याओंको कलङ्कित करना, यज्ञ, बाग-बगीचे, सरोवर तथा स्त्री-पुरुषोंका विक्रय करना, तीर्थयात्रा, उपवास तथा व्रत एवं उपनयन आदिका सौदा करना, स्त्रीके धनसे जीविका चलाना, स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत होना, स्त्रियोंकी रक्षा न करना तथा छलसे परायी स्त्रियोंका सेवन करना, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको त्याग देना, दूसरोंके आचारका सेवन करना, असत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना, सूखे तर्कका सहारा लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना, पितृयज्ञ और देवयज्ञको त्याग देना, अपने कर्मोंका परित्याग करना, बुरे स्वभावको अपनाना, नास्तिक होना, पापोंमें लगना और सदा झूठ बोलना—इस तरहके पापोंसे युक्त स्त्री-पुरुषोंको उपपातकी कहा गया है।

जो मनुष्य गौओं, ब्राह्मणकन्याओं, स्वामी, मित्र तथा तपस्वी महात्माओंके कार्य नष्ट कर देते हैं, वे नरकगामी माने गये हैं। जो ब्राह्मणोंको दुःख देते हैं, उन्हें मारनेके लिये शस्त्र उठाते हैं, जो द्विज होकर शूद्रोंकी सेवा करते हैं तथा जो कामवश मदिरापान करते हैं, जो पापपरायण, क्रूर तथा हिंसा-के प्रेमी हैं, जो गोशालामें, अग्निमें, जलमें, सड़कोंपर, पेड़ोंकी छायामें, पर्वतोंपर, बगीचोंमें तथा देवमन्दिरोंके आस-पास मल-मूत्रका त्याग करते हैं, बाँस, ईंट, पत्थर, काठ, सींग और कीलोंद्वारा जो रास्ता रूँधते या रोकते हैं, दूसरोंके खेत आदिकी सीमा (मेड़) मिटा देते हैं, छलसे शासन करते हैं, छल-कपटके ही कार्योंमें लगे रहते हैं, किसीको ठग-कर लाये हुए पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका छलसे ही उपयोग करते हैं, जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, दुर्बल, आतुर, भृत्य, अतिथि तथा बन्धुजनोंको भूखे छोड़कर स्वयं खा लेते हैं, जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वयं नियमोंको ग्रहण करके फिर उन्हें त्याग देते हैं, संन्यास धारण करके भी फिरसे घर बसा लेते हैं, जो शिवप्रतिमाका भेदन करनेवाले हैं, गौओंको क्रूरतापूर्वक मारते और बारंबार उनका दमन करते हैं, जो दुर्बल पशुओंका पोषण नहीं करते, सदा उन्हें छोड़े रखते हैं, अधिक भार लादकर उन्हें पीड़ा देते हैं तथा सहन न होनेपर भी बलपूर्वक उन्हें हल या गाड़ीमें जोतते हैं अथवा उनसे असह्य बोझ खिंचवाते हैं, जो उन पशुओंको खिलाये बिना ही भार ढोने या हल खींचनेके काममें जोत देते हैं, बँधे हुए भूखे पशुओंको चरनेके लिये नहीं छोड़ते तथा जो भारसे घायल, रोगसे पीड़ित और भूखसे आतुर गाय-बैलोंका यत्नपूर्वक पालन नहीं करते, वे सब-के-सब गो-हत्यारे तथा नरकगामी माने गये हैं।

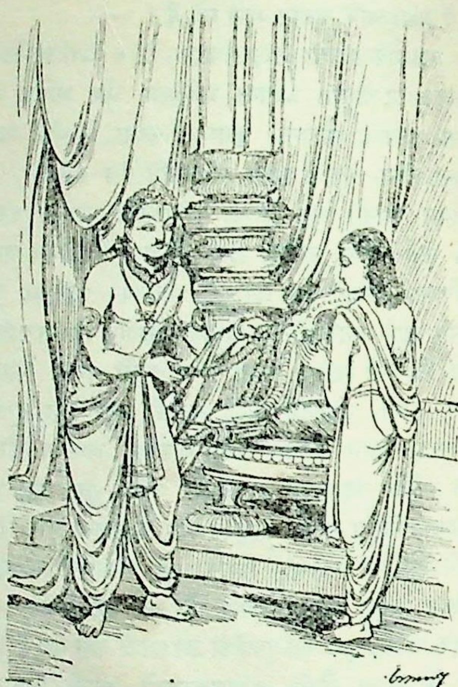
जो पापिष्ठ मनुष्य बैलोंके अण्डकोश कुटवाते हैं और वन्ध्या गायको जोतते हैं, वे महानारकी हैं। जो आशासे घर-पर आये हुए भूख, प्यास और परिश्रमसे कष्ट पाते हुए और अन्नकी इच्छा रखनेवाले अतिथियों, अनाथों, स्वाधीन पुरुषों, दीनों, बाल, वृद्ध, दुर्बल एवं रोगियोंपर कृपा नहीं करते, वे मूढ़ नरकके समुद्रमें गिरते हैं। मनुष्य जब मरता है तब उसका कमाया हुआ धन घरमें ही रह जाता है। भाई-बन्धु भी श्मशानतक जाकर लौट आते हैं, केवल उसके किये हुए पाप और पुण्य ही परलोकके पथपर जानेवाले उस जीवके साथ जाते हैं।

जो औचित्यकी सीमाको लाँघकर मनमाना कर वसूल करता है तथा दूसरोंको दण्ड देनेमें ही रुचि रखता है, वह राजा नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूसखोरों, अपनी रुचिके अनुसार कम दाम देकर अधिक कीमतका माल ले लेनेवाले अधिकारियों तथा चोर-डाकुओंसे अधिक सतायी जाती है, वह राजा भी नरकोंमें पकाया जाता है। परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार और चोरी करनेवाले प्रचण्ड पुरुषों-को जो पाप लगता है, वही परस्त्रीगामी राजाको भी लगता है। जो साधुको चोर और चोरको साधु समझता है तथा बिना विचारे ही निरपराधको प्राणदण्ड दे देता है, वह राजा नरकमें पड़ता है। जिस किसी पराये द्रव्यको सरसों बराबर भी चुरा लेनेपर मनुष्य नरकमें गिरते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस तरहके पापोंसे युक्त मनुष्य मरनेके पश्चात् यातना भोगनेके लिये नूतन शरीर पाता है, जिसमें सम्पूर्ण आकार अभिव्यक्त रहते हैं। इसलिये किये हुए पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। अन्यथा सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे हुए पापका नाश नहीं हो सकता। जो मन, वाणी और शरीर-द्वारा स्वयं पाप करता, दूसरेसे कराता तथा किसीके दुष्कर्मका अनुमोदन करता है, उसके लिये पापगति (नरक) ही फल है। (अध्याय ४—६)

पापियों और पुण्यात्माओंकी यमलोकयात्रा

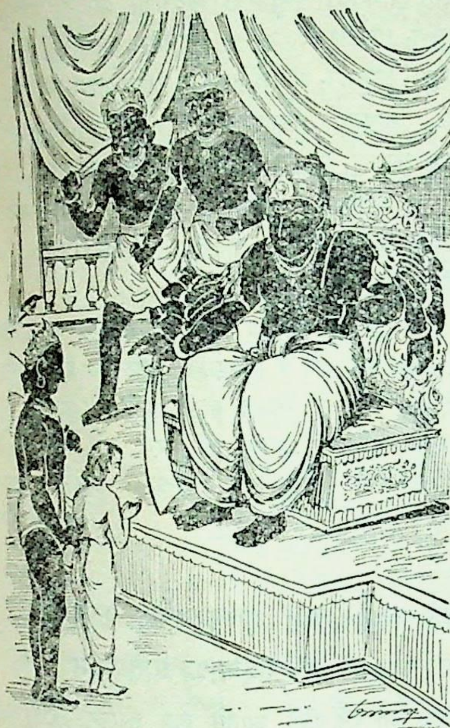
सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! मनुष्य चार प्रकारके पापोंसे यमलोकमें जाते हैं । यमलोक अत्यन्त भयदायक और भयंकर है । वहाँ समस्त देहधारियोंको विवश होकर जाना पड़ता है । कोई ऐसे प्राणी नहीं हैं, जो यमलोकमें न जाते हों । किये हुए कर्मका फल कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका विचार करो । जीवोंमें जो शुभ कर्म करनेवाले, सौम्य-चित्त और दयालु हैं, वे सौम्यमार्गसे यमपुरीके पूर्व द्वारको जाते हैं । जो पापी पापकर्मपरायण तथा दानसे रहित हैं, वे भयानक दक्षिण मार्गसे यमलोककी यात्रा करते हैं । मर्त्यलोकसे छियासी हजार योजनकी दूरी लाँघकर नानारूपवाले यमलोककी स्थिति है, यह जानना चाहिये । पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंको तो वह नगर निकटवर्ती-सा जान पड़ता है; परंतु भयानक मार्गसे यात्रा करनेवाले पापियोंको वह बहुत दूर स्थित दिखायी देता है । वहाँका मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे युक्त है; कहीं कंकड़ोंसे व्याप्त है; कहीं छूरेकी धारके समान तीखे पत्थर उस मार्गपर जड़े गये हैं, कहीं बड़ी भारी कीचड़ फैली हुई है । बड़े-छोटे पातकोंके अनुसार वहाँकी कठिनाइयोंमें भी भारीपन और हल्कापन है । कहीं-कहीं यमपुरीके मार्गपर लोहेकी सूईके समान तीखे डाभ फैले हुए हैं ।

तदनन्तर यमपुरीके मार्गकी भीषण यातनाओं और कष्टोंका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी ! जिन्होंने कभी दान नहीं किया है, वे लोग ही इस प्रकार दुःख उठाते और सुखकी याचना करते हुए उस मार्गपर जाते हैं । जिन्होंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय (राहखर्च) ले रक्खा है, वे सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं । इस रीतिसे कष्ट उठाकर पापी जीव जब प्रेतपुरीमें पहुँच जाते हैं, तब उनके विषयमें यमराजको सूचना दी जाती है । उनकी आज्ञा पाकर दूत उन पापियोंको यमराजके आगे ले जाकर खड़े करते हैं । वहाँ जो शुभ कर्म करनेवाले लोग होते हैं, उनको यमराज स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्घ्य निवेदन करके प्रिय बर्तावके द्वारा सम्मानित करते हैं और कहते हैं—'वेदोक्त कर्म करनेवाले महात्माओ ! आपलोग धन्य हैं, जिन्होंने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म किया है । अतः आपलोग दिव्याङ्गनाओंके भोगसे भूषित



तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंसे सम्पन्न निर्मल स्वर्गलोकमें जाइये । वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जानेपर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ शेष रह जाय; उसे फिर यहाँ आकर भोगियेगा ।' जो धर्मात्मा मनुष्य होते हैं, वे मानो यमराजके लिये मित्रके समान हैं । वे यमराजको सुखपूर्वक सौम्य धर्मराजके रूपमें देखते हैं ।

किंतु जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं । उनकी दृष्टिमें यमराजका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है । नेत्र टेढ़ी भौंहोंसे युक्त प्रतीत होते हैं । उनके केश ऊपरको उठे होते हैं । दाढ़ी-मूँछ बड़ी-बड़ी होती है । ओठ ऊपरकी ओर फड़कते रहते हैं । उनके अठारह भुजाएँ होती हैं, वे कुपित तथा काले कोयलोंके ढेर-से दिखायी देते हैं । उनके हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उठे होते हैं । वे सब प्रकारके दण्डका भय दिखाकर उन पापियोंको डाँटते रहते हैं । बहुत बड़े भैंसेपर आरूढ़, लाल वस्त्र और लाल माला धारण करके बहुत ऊँचे महामेरुके समान दृष्टिगोचर होते हैं । उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देते हैं ।



उनका शब्द प्रलयकालके मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर होता है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महासागरको पी रहे हैं, गिरिराजको निगल रहे हैं और मुँहसे आग उगल रहे हैं।

उनके समीप प्रलयकालकी अग्निके समान प्रभावाले मृत्यु देवता खड़े रहते हैं। काजलके समान काले कालदेवता और भयानक कृतान्त देवता भी रहते हैं। इनके सिवा मारी, उग्र महामारी, भयंकर कालरात्रि, अनेक प्रकारके रोग तथा भाँति-भाँतिके भयावह कुष्ठ मूर्तिमान् हो हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्कुश, पाश, चक्र और खड्ग लिये खड़े रहते हैं।

वज्रतुल्य मुख धारण करनेवाले रुद्रगण क्षुर, तरकस और धनुष धारण किये वहाँ उपस्थित होते हैं। सभी नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले, महान् वीर एवं भयंकर हैं। इनके अतिरिक्त असंख्य महावीर यमदूत, जिनकी अङ्गकान्ति काले कोयलेके समान काली होती है, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र लिये बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। ऐसे परिवारसे घिरे हुए घोर यमराज तथा भीषण चित्रगुप्तको पापिष्ठ प्राणी देखते हैं। यमराज उन पापकर्मियोंको बहुत डाँटते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें समझाते हैं। (अध्याय ७)

नरकोंकी अट्ठाईस कोटियों तथा प्रत्येकके पाँच-पाँच नायकके क्रमसे एक सौ चालीस रौरवादि नरकोंकी नामावली

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! तदनन्तर यमदूत पापियोंको अत्यन्त तपे हुए पत्थरपर बड़े वेगसे दे मारते हैं, मानो वज्रसे बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर दिया गया हो। उस समय शरीरसे जर्जर हुआ देहधारी जीव कानसे खून बहाने लगता है और सुध-बुध खोकर निश्चेष्ट हो जाता है। तब वायुका स्पर्श कराकर वे यमदूत फिर उसे जीवित कर देते हैं और उसके पापोंकी शुद्धिके लिये उसे नरक-समुद्रमें डाल देते हैं। पृथ्वीके नीचे नरककी सात कोटियाँ हैं, जो सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उन सबकी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। पहली कोटि घोरा कही गयी है। दूसरी सुघोरा है, जो उसके नीचे स्थित है। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा, पाँचवीं घोररूपा, छठी तलातला, सातवीं, भयानका, आठवीं कालरात्रि, नवीं भयोत्कटा, उसके नीचे दसवीं चण्डा, उसके भी नीचे महाचण्डा, फिर चण्डकोलाहला तथा उससे भिन्न प्रचण्डा है, जो चण्डोंकी नायिका कही गयी है; उसके बाद पद्मा, पद्मावती, भीता और भीमा है, जो भीषण नरकोंकी नायिका मानी गयी है। अठारहवीं कराला, उन्नीसवीं विकराला और बीसवीं नरककोटि वज्रा कही गयी है। तदनन्तर त्रिकोणा, पञ्चकोणा, सुदीर्घा, अखिलार्तिदा, समा, भीमबला, भोग्रा तथा अट्ठाईसवीं दीप्तप्राया है। इस प्रकार मैंने तुमसे भयानक नरक-कोटियोंके नाम बताये हैं। इनकी संख्या अट्ठाईस ही है। ये पापियोंको यातना देनेवाली हैं। उन कोटियोंके क्रमशः पाँच-पाँच नायक जानने चाहिये।

अब उन सब कोटियोंके नाम बताये जाते हैं, सुनो। उनमें प्रथम रौरव नरक है, जहाँ पहुँचकर देहधारी जीव रोने लगते हैं। महारौरवकी पीड़ासे तो महान् पुरुष भी रो देते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण नामक नरक हैं। फिर सुघोर है। रौरवसे सुघोरतक आदिके पाँच नरक नायक माने गये हैं। इसके बाद सुमहातीक्ष्ण, संजीवन, महातम, विलोम, विलोप, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महावक्र,

काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अङ्गार-राशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित, तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव, उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाद, सुप्रतापन, मेघ, वृष, शाल्म, सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, कुक्कुरमुख, सूकरमुख, अजमुख, महिषमुख, घूकमुख, कोकमुख, वृकमुख, ग्राह, कुम्भीनस, नक्र, सर्प, कूर्म, काक, गृध्र, उलूक, हलौक, शार्दूल, क्रथ, कर्कट, मण्डूक, पूतिमुख, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धिवपु, अग्नीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायिनी वैतरणी नदी, सुतप्तलोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, घोर असितालवन, अस्थिभङ्ग, सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अश्रुकूप, शीतल क्षारकूप, मुसलोलूखल, यन्त्र, शिला, शकट, लाङ्गल, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महाशकट-मण्डप, सम्मोह, अस्थिभङ्ग, तप्त, चञ्चल, अयोगुड (लोहेकी गोली), बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, शमल, मलात्, हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर और तम ।

इस प्रकार ये अट्ठाईस नरक और क्रमशः उनके पाँच-पाँच नायक कहे गये हैं । अट्ठाईस कोटियोंके क्रमशः रौरव आदि पाँच-पाँच ही नायक बताये जाते हैं । उपर्युक्त २८ कोटियोंको छोड़कर लगभग सौ नरक माने जाते हैं और महानरक-मण्डल एक सौ चालीस नरकोंका बताया गया है । * (अध्याय ८)

विभिन्न पापोंके कारण मिलनेवाली नरकयातनाका वर्णन तथा कुक्कुरबलि, काकबलि एवं देवता आदिके लिये दी हुई बलिकी आवश्यकता एवं महत्ताका प्रतिपादन

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! इन सब भयानक पीड़ादायक नरकोंमें पापी जीवोंको अत्यन्त भीषण नरकयातना भोगनी पड़ती है । जो मिथ्या आगम (पाखण्डियोंके शास्त्र) में प्रवृत्त होता है, वह द्विजिह्न नामक नरकमें जाता है और जिह्वाके आकारमें आधे कोसतक फैले हुए तीक्ष्ण हलोंद्वारा वहाँ उसे विशेष पीड़ा दी जाती है । जो क्रूर मनुष्य माता-पिता और गुरुको डाँटता है, उसके मुँहमें कीड़ोंसे युक्त विष्ठा ठूँसकर उसे खूब पीटा जाता है । जो मनुष्य शिवमन्दिर, बगीचे, बावड़ी, कूप, तड़ाग तथा ब्राह्मणके स्थानको नष्ट-भ्रष्ट कर देते और वहाँ स्वेच्छानुसार रमण करते हैं, वे नाना प्रकारके भयंकर कोल्हू आदिके द्वारा पेरे और पकाये जाते हैं तथा प्रलयकालपर्यन्त नरकाग्नियोंमें पकते रहते हैं । परस्त्रीगामी पुरुष उस-उस रूपसे ही व्यभिचार करते हुए मारे-पीटे जाते हैं । पुरुष अपने पहले-जैसे शरीरको धारण करके लोहेकी बनी और खूब तपायी हुई नारीका गाढ़ आलिङ्गन करके सब ओरसे जलते रहते हैं । वे उस दुराचारिणी स्त्रीका गाढ़ आलिङ्गन करते और रोते हैं । जो सत्पुरुषोंकी निन्दा सुनते हैं, उनके कानोंमें लोहे या ताँबे आदिकी बनी हुई कीलें आगसे खूब तपाकर भर दी जाती हैं; इनके सिवा जस्ते, शीशे और पीतलको गलाकर पानीके समान करके उनके कानमें भरा जाता है । फिर बारंबार गरम दूध और खूब तपाया हुआ तेल उनके कानोंमें डाला जाता है । फिर उन कानोंपर वज्रका-सा लेप कर दिया जाता है । इस तरह क्रमशः उनके कानोंको उपर्युक्त वस्तुओंसे भरकर उनको नरकोंमें यातनाएँ दी जाती हैं । क्रमशः सभी नरकोंमें सब ओर ये यातनाएँ प्राप्त होती हैं और सभी नरकोंकी यातनाएँ बड़ा कष्ट देनेवाली होती हैं । जो माता-पिताके प्रति भौंहें टेढ़ी करते अथवा उनकी ओर उद्दण्डतापूर्वक दृष्टि डालते या हाथ उठाते हैं, उनके मुखोंको अन्ततक लोहेकी कीलोंसे दृढ़तापूर्वक भर दिया जाता है । जो मनुष्य लुभाकर स्त्रियोंकी ओर अपलक दृष्टिसे देखते हैं, उनकी आँखोंमें तपाकर आगके समान लाल की हुई सूइयाँ भर दी जाती हैं ।

जो देवता, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणोंको अग्रभाग निवेदन किये बिना ही भोजन कर लेते हैं, उनकी जिह्वा और मुखमें लोहेकी सैकड़ों कीलें तपाकर ठूँस दी जाती हैं । जो लोग धर्मका उपदेश करनेवाले महात्मा कथावाचककी निन्दा करते

* यहाँ अट्ठाईस कोटियोंका पहले पृथक् वर्णन आया है, फिर प्रत्येकके पाँच-पाँच नायक बताकर ठीक एक सौ चालीस नरकोंका नामोल्लेख किया गया है । कोटियोंकी संख्या मिला देनेसे सब एक सौ अड़सठ होते हैं ।

हैं, देवता, अग्नि और गुरुके भक्तोंकी तथा सनातन धर्मशास्त्रकी भी खिल्लियाँ उड़ाते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जिह्वा, दाँतोंकी संधि, तालु, ओठ, नासिका, मस्तक तथा सम्पूर्ण अङ्गोंकी संधियोंमें आगके समान तपायी हुई तीन शाखावाली लोहेकी कीलें मुद्गरोंसे ठोकी जाती हैं। उस समय उन्हें बहुत कष्ट होता है। तत्पश्चात् सब ओरसे उनके घावोंपर तपाया हुआ नमक छिड़क दिया जाता है। फिर उस शरीरमें सब ओर बड़ी भारी यातनाएँ होती हैं। जो पापी शिव-मन्दिरके पास अथवा देवताके बगीचोंमें मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनके लिङ्ग और अण्डकोशको लोहेके मुद्गरोंसे चूर-चूर कर दिया जाता है तथा आगसे तपायी हुई सूइयाँ उसमें भर दी जाती हैं, जिससे मन और इन्द्रियोंको महान् दुःख होता है। जो धन रहते हुए भी तृष्णाके कारण उसका दान नहीं करते और भोजनके समय घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे पापका फल पाकर अपवित्र नरकमें गिरते हैं*। जो कुत्तों और कौओंको उनका भाग अर्थात् बलि न देकर स्वयं भोजन कर लेते हैं, उनके खुले हुए मुँहमें दो कीलें ठोक दी जाती हैं। 'यमराजके मार्गका अनुसरण करनेवाले जो श्याम और शबल (साँवले तथा चितकबरे) दो कुत्ते हैं, मैं उनके लिये यह अन्नका भाग देता हूँ, वे इस बलिको ग्रहण करें।' 'पश्चिम, वायव्य, दक्षिण और नैर्ऋत्य दिशामें रहनेवाले जो पुण्यकर्मा कौए हैं, वे मेरी इस दी हुई बलिको ग्रहण करें'†इस अभिप्रायके दो मन्त्रोंसे क्रमशः कुत्ते और कौएको बलि देनी चाहिये। जो लोग यत्नपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करके विधिवत् अग्निमें आहुति दे शिवसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा बलि समर्पित करते हैं, वे यमराजको नहीं देखते और स्वर्गमें जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन बलि देनी चाहिये।

एक चौकोर मण्डप बनाकर उसे गन्ध आदिसे अधिवासित करे। फिर ईशानकोणमें धन्वन्तरिके लिये और पूर्व दिशामें इन्द्रके लिये बलि दे। दक्षिण दिशामें यमके लिये, पश्चिम दिशामें सुदक्षोमके लिये और दक्षिण दिशामें पितरोंके लिये बलि देकर पुनः पूर्व दिशामें अर्यमाको अन्नका भाग अर्पित करे। द्वारदेशमें धाता और विधाताके लिये बलि निवेदन करे। तदनन्तर कुत्तों, कुत्तोंके स्वामी और पक्षियोंके लिये भूतलपर अन्न डाल दे। देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि और कीट—ये सभी गृहस्थसे अपनी जीविका चलाते हैं। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार—ये धर्ममयी धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकार नामक स्तनका पान देवता करते हैं, स्वधाका पितर लोग, वषट्कारका दूसरे-दूसरे देवता और भूतेश्वर तथा हन्तकार नामक स्तनका सदा ही मनुष्यगण पान करते हैं। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस धर्ममय धेनुका सदा ठीक समयपर पालन करता है, वह अग्निहोत्री हो जाता है। जो स्वस्थ रहते हुए भी उसका त्याग कर देता है, वह अन्धकारपूर्ण नरकमें डूबता है। इसलिये उन सबको बलि देनेके पश्चात् द्वारपर खड़ा हो क्षणभर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई भूखसे पीड़ित अतिथि या उसी गाँवका निवासी पुरुष मिल जाय तो उसे अपने भोजनसे पहले यथाशक्ति शुभ अन्नका भोजन कराये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, उसे वह अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है‡। (अध्याय ९-१०)

यमलोकके मार्गमें सुविधा प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन

व्यासजी बोले—प्रभो! पापी मनुष्य बड़े दुःखसे यमलोकके मार्गमें जाते हैं। अब आप मुझे उन धर्मोंका परिचय दीजिये, जिनसे जीव सुखपूर्वक यममार्गपर यात्रा करते हैं।

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! अपना किया हुआ

* धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया ॥
अतिथिं चावमन्यन्ते काले प्राप्ते गृहाश्रमे। तस्मात् ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ ॥
(शि० पु० उ० सं० १०। ३१-३२)

† श्यामश्च शबलश्चैव यममार्गानुरोधकौ। यौ स्वस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥
ये वा वरुणवायव्या याम्या नैर्ऋत्यवायसाः। वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णन्तु मे बलिम् ॥
(शि० पु० उ० सं० १०। ३५-३६)

‡ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥
(शि० पु० उ० सं० १०। ४८)

शुभाशुभ कर्म बिना विचारे विवश होकर भोगना पड़ता है ! अब मैं उन धर्मोंका वर्णन करता हूँ, जो सुख देनेवाले हैं। इस लोकमें जो श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, कोमलचित्त और दयालु पुरुष हैं, वे भयंकर यममार्गपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह मनुष्य विशाल घोड़ेपर सवार हो बड़े सुखसे यमलोकको जाता है। छत्र दान करनेसे मनुष्य उस मार्गपर उसी तरह छाता लगाकर चलते हैं, जैसे यहाँ छातेवाले लोग चलते हैं। शिविकाका दान करनेसे मनुष्य रथके द्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। शय्या और आसनका दान करनेसे दाता यमलोकके मार्गमें विश्राम करते हुए सुखपूर्वक जाता है। जो बगीचे लगाते और छायादार वृक्षका आरोपण करते हैं अथवा सड़कके किनारे वृक्षारोपण करते हैं, वे धूपमें भी बिना कष्ट उठाये यमलोकको जाते हैं। जो मनुष्य फुलवाड़ी लगाते हैं, वे पुष्पक विमानसे यात्रा करते हैं। देवमन्दिर बनानेवाले उस मार्गपर घरके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो यतियोंके आश्रमका निर्माण कराते हैं और अनाथोंके लिये घर बनवाते हैं, वे भी घरके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य स्वयं ही पूजित हो अपनी इच्छाके अनुकूल मार्गद्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। दीपदान करनेवाले मनुष्य सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं। गृहदान करनेसे दाता रोग-शोकसे रहित हो सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले मानव विश्राम करते हुए जाते हैं। बाजा देनेवाले उसी तरह सुखसे यात्रा करते हैं, मानो अपने घर जा रहे हों। गोदान करनेवाले लोग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे भरे-पूरे मार्गद्वारा जाते हैं। मनुष्य उस मार्गपर इस लोकमें दिये हुए अन्न-पानको ही पाता है। जो किसीको पैर धोनेके लिये जल देता है, वह ऐसे मार्गसे जाता है, जहाँ जल-की सुविधा हो। जो आदरणीय पुरुषोंके पैरोंमें उबटन लगाता है, वह घोड़ेकी पीठपर बैठकर यात्रा करता है।

व्यासजी ! जो पाद्य, अभ्यङ्ग (अङ्गराग), दीपक, अन्न और घर दान करता है, उसके पास यमराज कभी नहीं जाते। सुवर्ण और रत्नका दान करनेसे मनुष्य दुर्गम संकटों और स्थानोंको लाँघता हुआ जाता है। चाँदी, गाड़ी ढोनेवाले बैल और फूलोंकी माला दान करनेसे दाता सुखपूर्वक यमलोकमें जाता है ! इस तरहके दानोंसे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं और स्वर्गमें सदा भाँति-भाँतिके भोग पाते हैं। सब दानोंमें अन्नदानको ही उत्तम बताया गया है; क्योंकि यह तत्काल तृप्ति प्रदान करनेवाला, मनको प्रिय लगनेवाला तथा बल और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मुनिश्रेष्ठ ! अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नके अभावमें मर जाते हैं। अतएव अन्नदानसे महान् पुण्य बताया गया है; क्योंकि अन्नके बिना भूखकी आगसे तप्त हुए समस्त प्राणी मर जाते हैं। अतः अन्नकी ही सब लोग प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। अन्नके समान दान न तो हुआ है और न होगा। मुने ! यह सम्पूर्ण जगत् अन्नसे ही धारण किया जाता है। लोकमें अन्नको बलकारक बताया गया है; क्योंकि अन्नमें ही प्राण प्रतिष्ठित हैं।*

प्राप्त हुए अन्नकी कभी निन्दा न करे और न किसी तरह उसे फेंके ही। कुत्ते और चाण्डालके लिये भी किया हुआ अन्नदान कभी नष्ट नहीं होता। जो मनुष्य थके-माँदे और अपरिचित पथिकको अन्न देता है और देते समय कष्टका अनुभव नहीं करता, वह समृद्धिका भागी होता है। महामुने ! जो देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्नसे तृप्त करता है, उसे महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। अन्न और जलका दान शूद्र और ब्राह्मणके लिये भी समानरूप-से महत्त्व रखता है। अन्नकी इच्छावाले पुरुषसे उसका गोत्र, शाखा, स्वाध्याय और देश नहीं पूछना चाहिये।

अन्न साक्षात् ब्रह्मा है, अन्न साक्षात् विष्णु और शिव है। इसलिये अन्नके समान दान न हुआ है और न होगा ! जो पहले बड़ा भारी पाप करके भी पीछे अन्नका दान करनेवाला हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है। अन्न, जल, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र और आसन—इन

---

* सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सद्यः प्रीतिकरं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम्॥
नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि तदभावे म्रियन्ति च॥
अतएव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम्।
तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियन्ते सर्वदेहिनः॥
अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने।
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः॥
(शि० पु० उ० सं० [illegible] २९-३०)

आठ वस्तुओंके दान यमलोकके लिये उत्तम माने गये हैं । इस प्रकार दान-विशेषसे मनुष्य विमानपर बैठकर धर्मराजके नगरमें जाता है; इसलिये सबको दान करना चाहिये । महामुने ! जो इस प्रसङ्गको सुनता अथवा श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्नदान प्राप्त होता है ।

(अध्याय ११)

जलदान, जलाशय-निर्माण, वृक्षारोपण, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जलदान सबसे श्रेष्ठ है । वह सब दानोंमें सदा उत्तम है; क्योंकि जल सभी जीवसमुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है* । इसलिये बड़े स्नेहके साथ अनिवार्यरूपसे प्रपादान (पौंसला चलाकर दूसरोंको पानी पिलानेका प्रबन्ध) करना चाहिये । जलाशयका निर्माण इसलोक और परलोकमें भी महान् आनन्दकी प्राप्ति करानेवाला होता है—यह सत्य है, सत्य है । इसमें संशय नहीं है । इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावड़ी और तालाब बनवाये । कुएँमें जब पानी निकल आता है, तब वह पापी पुरुषके पापकर्मका आधा भाग हर लेता है तथा सत्कर्ममें लगे हुए मनुष्यके सदा समस्त पापोंको हर लेता है । जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधुपुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशका उद्धार कर देता है । जिसके जलाशयमें गरमीके मौसममें भी अनिवार्यरूपसे पानी टिका रहता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटको नहीं प्राप्त होता । जिसके पोखरेमें केवल वर्षाऋतुमें जल ठहरता है, उसे प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेका फल मिलता है—ऐसा ब्रह्माजी-का कथन है । जिसके तड़ागमें शरत्कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है । जिसके तालाबमें हेमन्त और शिशिर ऋतुतक पानी मौजूद रहता है, वह बहुत-सी सुवर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणासे युक्त यज्ञका फल पाता है । जिसके सरोवरमें वसन्त और ग्रीष्मकालतक पानी बना रहता है, उसे अतिरात्र और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है—ऐसा मनीषी महात्माओंका कथन है ।

मुनिवर व्यास! जीवोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले जलाशय-के उत्तम फलका वर्णन किया गया । अब वृक्ष लगानेमें जो गुण हैं, उनका वर्णन सुनो । जो वीरान एवं दुर्गम स्थानोंमें वृक्ष लगाता है, वह अपनी बीती तथा आनेवाली सम्पूर्ण पीढ़ियोंको तार देता है । इसलिये वृक्ष अवश्य लगाना चाहिये* । ये वृक्ष लगानेवालेके पुत्र होते हैं, इसमें संशय नहीं । वृक्ष लगानेवाला पुरुष परलोकमें जानेपर अक्षय लोकोंको पाता है । पोखरा खुदानेवाला, वृक्ष लगानेवाला और यज्ञ करानेवाला जो द्विज है, वह तथा दूसरे-दूसरे सत्यवादी पुरुष—ये स्वर्गसे कभी नीचे नहीं गिरते ।

सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है और सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है । सोये हुए पुरुषोंमें सत्य ही जागता है, सत्य ही परमपद है, सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है और सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है । तप, यज्ञ, पुण्य, देवता, ऋषि और पितरोंका पूजन, जल और विद्या—ये सब सत्यपर ही अवलम्बित हैं । सबका आधार सत्य ही है । सत्य ही यज्ञ, तप, दान, मन्त्र, सरस्वतीदेवी तथा ब्रह्मचर्य है । ओंकार भी सत्यरूप ही है । सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही आग जलाती है और सत्यसे ही स्वर्ग टिका हुआ है । लोकमें सम्पूर्ण वेदोंका पालन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान केवल सत्यसे सुलभ हो जाता है । सत्यसे सब कुछ प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है । एक सहस्र अश्वमेध और लाखों यज्ञ एक ओर तराजूपर रक्खे जायँ और दूसरी ओर सत्य हो तो सत्यका ही पलड़ा भारी होगा । देवता, पितर, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोक सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं । सत्यको परम धर्म कहा गया है । सत्यको ही परमपद बताया गया है और सत्यको ही परब्रह्म परमात्मा कहते हैं । इसलिये सदा सत्य बोलना चाहिये† । सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तप करके स्वर्ग-

---

* पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं तदा ।
सर्वेषां जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम् ॥
(शि० पु० उ० सं० १२ । १)

* अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशांस्तु तारयेत् ।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत् ॥
(शि० पु० उ० सं० ११ । ७)

† सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः ।
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं श्रुतम् ॥
सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ।
सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

को प्राप्त हुए हैं तथा सत्यधर्ममें अनुरक्त रहनेवाले सिद्ध पुरुष भी सत्यसे ही स्वर्गके निवासी हुए हैं। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विशाल, सिद्ध एवं पवित्र जलाशय है। उसमें योगयुक्त होकर मनके द्वारा स्नान करना चाहिये। सत्यको परमपद कहा गया है। जो मनुष्य अपने लिये, दूसरेके लिये अथवा अपने बेटेके लिये भी झूठ नहीं बोलते वे ही स्वर्गगामी होते हैं। वेद, यज्ञ तथा मन्त्र—ये ब्राह्मणोंमें सदा निवास करते हैं; परंतु असत्यवादी ब्राह्मणोंमें इनकी प्रतीति नहीं होती। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये।

तदनन्तर तपकी बड़ी भारी महिमा बताते हुए सनत्कुमारजीने कहा—मुने! संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है, जो तपस्याके बिना सुलभ होता हो। तपसे ही सारा सुख मिलता है, इस बातको वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा शाश्वत सुख तपसे ही प्राप्त होते हैं। तपस्यासे ही ब्रह्मा बिना परिश्रमके ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। तपस्यासे ही विष्णु इसका पालन करते हैं। तपस्याके बलसे ही रुद्रदेव संहार करते हैं तथा तपके प्रभावसे ही शेष अशेष भूमण्डलको धारण करते हैं। (अध्याय १२)

वेद और पुराणोंके स्वाध्याय तथा विविध प्रकारके दानकी महिमा, नरकोंका वर्णन तथा उनमें गिरानेवाले पापोंका दिग्दर्शन, पापोंके लिये सर्वोत्तम प्रायश्चित्त शिवस्मरण तथा ज्ञानके महत्त्वका प्रतिपादन

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! जो वनमें जंगली फल-मूल खाकर तप करता है और जो वेदकी एक ऋचाका स्वाध्याय करता है, इन दोनोंका फल समान है। श्रेष्ठ द्विज वेदाध्ययनसे जिस पुण्यको पाता है, उससे दूना फल वह उस वेदको पढ़ानेसे पाता है। मुने! जैसे चन्द्रमा और सूर्यके बिना जगत्में अन्धकार छा जाता है, उसी प्रकार पुराणके बिना ज्ञानका आलोक नहीं रह जाता है—अज्ञानका अन्धकार छाया रहता है। इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये। अज्ञानके कारण नरकमें पड़कर सदा संतप्त होनेवाले लोकको जो शास्त्रका ज्ञान देकर समझाता है, वह पुराणवक्ता अपनी इसी महत्ताके कारण सदा पूजनीय है। जो साधु पुरुष पुराणवक्ता विद्वान्‌को दानका पात्र समझकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे उत्तमोत्तम वस्तुएँ देता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो सुपात्र ब्राह्मणको भूमि, गौ, रथ, हाथी और सुन्दर घोड़े देता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह इस जन्ममें और परलोकमें भी सम्पूर्ण अक्षय मनोरथोंको पा लेता है तथा अश्वमेधयज्ञके फलका भी भागी होता है।

मुनीश्वर! जो पुरुष भगवान् शिवकी कथा सुनता है, वह कर्मोंके विशाल वनको जलाकर संसारसे तर जाता है। जो दो घड़ी, एक घड़ी अथवा एक क्षण भी भक्तिभावसे भगवान् शिवकी कथा सुनते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। मुने! सम्पूर्ण दानों अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो पुण्य होता है, वही फल शिवपुराण सुननेसे अविचलरूपमें प्राप्त हो जाता है। व्यासजी! विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणके सिवा मनुष्योंके लिये दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। वही उनके लिये मोक्ष एवं ध्यानरूपी फल देनेवाला बताया गया है। शिवपुराणका श्रवण और शिव-नामका कीर्तन मनुष्योंके

तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने। आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।
सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती। ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः। सत्येनाग्निर्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥
पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम्। सत्येन वहते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयम्॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्। लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते॥
सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः। प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सचराचराः॥
सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्। सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत्॥

(शि० पु० उ० सं० १२। २३—३१)

लिये कल्पवृक्षका रमणीय फल है, इसमें संशय नहीं है। यज्ञ, दान, तप और तीर्थसेवनसे जो फल मिलता है, उसीको मनुष्य पुराणोंके श्रवणमात्रसे पा लेता है।

प्रतिदिन सुपात्र लोगोंको बड़े-बड़े दान देने चाहिये, वे दान दाताके उद्धारक होते हैं। विप्रवर! सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान—ये पवित्र दान हैं, जो दाताको तो तारते ही हैं, लेनेवालोंका भी उद्धार कर देते हैं। सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदान—इन श्रेष्ठ दानोंको करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुलादानकी बड़ी प्रशंसा की गयी है, गौ और पृथ्वीके दान भी प्रशस्त एवं समान शक्तिवाले हैं। परंतु सरस्वतीका दान इन सबसे अधिक उत्तम है। नित्य दुही जानेवाली गाय, छाता, वस्त्र, जूता तथा अन्न और जल—ये सब वस्तुएँ याचकोंको देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तथा अपीडित याचकोंको जो संकल्पपूर्वक धनादि वस्तुओंका दान किया जाता है, उससे दाता मनस्वी होता है। लोकमें जो-जो अत्यन्त अभीष्ट और प्रिय है, वह यदि घरमें हो तो उसे अक्षय बनानेकी इच्छावाले पुरुषको गुणवान् पुरुषको दान करना चाहिये। तुला-पुरुषका दान सब दानोंमें उत्तम है। जो अपने लिये कल्याण चाहे, उसे तराजूपर बैठना और अपने शरीरसे तौली गयी वस्तुका दान करना चाहिये। दिनमें, रातमें, दोनों संध्याओंके समय, दोपहरमें, आधीरातके समय तथा भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये सारे पापोंको तुला-पुरुषका दान दूर कर देता है।

इसके बाद ब्रह्माण्डदानका माहात्म्य एवं ब्रह्माण्डका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा— मुनिवरोंमें श्रेष्ठ व्यास! पाताललोकसे ऊपर जो नरक हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनो; पापी पुरुष उन्हींमें यातनाएँ भोगते हैं। रौरव, शूकर, रोध, ताल, विवसन या विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, पीब बहानेवाली वैतरणी, कृमि या कृमीश, कृमिभोजन, कृष्ण, असिपत्रवन, दारुण लालाभक्ष, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तमस, अवीचि, रोधन, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, महारौरव और शाल्मलि इत्यादि बहुत-से दुःखदायक नरक वहाँ हैं। व्यासजी! उनमें जो पापकर्म-परायण पुरुष पकाये जाते हैं, उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ; सावधान होकर सुनो।

जो मनुष्य ब्राह्मणों, देवताओं तथा गौओंके लिये हितकर कार्योंके सिवा अन्य किसी कार्यके लिये झूठी गवाही देता है अथवा सदा झूठ बोलता है, वह रौरव नरकमें जाता है।

जो भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) की हत्या और सुवर्णकी चोरी करनेवाला, गायको कटघरेमें बंद करनेवाला, विश्वासघाती, शराबी, ब्रह्महत्यारा, दूसरोंके द्रव्यका अपहरण करनेवाला तथा इन सबका संगी है, वह मरनेपर तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाता है। गुरुके वधसे भी इसी नरककी प्राप्ति होती है। बहिन, माता, गौ तथा पुत्रीका वध करनेसे भी तप्तकुम्भमें ही गिरना पड़ता है। साध्वी स्त्रीको बेचनेवाला, अधिक ब्याज लेनेवाला, केश-विक्रय करनेवाला तथा अपने भक्तको त्यागनेवाला—ये सब पापी तप्तलोह नामक नरकमें पकाये जाते हैं। जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला तथा उनके प्रति दुर्वचन बोलनेवाला है और जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला तथा अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करनेवाला है, वे सब-के-सब लवण नामक नरकमें जाते हैं। चोर विलोहित नामक नरकमें गिरता है। मर्यादाको दूषित करनेवाले पुरुषकी भी ऐसी ही गति होती है। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और पितृगणसे द्वेष करनेवाला है तथा जो रत्नको दूषित (उसमें मिलावट) करता है, वह कृमिभक्ष नामक नरकमें पड़ता है। जो दूषित यज्ञ (दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये आभिचारिक प्रयोग या हिंसाप्रधान तामस यज्ञ) करता है, वह कृमीश नामक नरकमें पड़ता है। जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर (बलिवैश्वदेवके द्वारा देवता आदिका भाग उन्हें अर्पण किये बिना ही) भोजन कर लेता है, वह उग्र लालाभक्ष नरकमें गिरता है। जो शस्त्रसमूहोंका निर्माण करता है, वह भी उसीमें जाता है। जो द्विज अन्त्यजसे सेवा लेता है, असत् दान ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ कराता है और अभक्ष्य भक्षण करता है, ये सब-के-सब रुधिरौघ (पूयवह) नामक नरकमें गिरते हैं। जो सोमरसको बेचनेवाले हैं, उनकी भी यही गति होती है। यज्ञ और ग्रामको नष्ट करनेवाला घोर वैतरणी नदीमें पड़ता है।

जो नयी जवानीसे मतवाले हो धर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, अपवित्र आचार-विचारसे रहते हैं और छल-कपटसे जीविका चलाते हैं, वे कृत्य-नामक नरकमें जाते हैं। जो अकारण ही वृक्षोंको काटता है, वह असिपत्रवन नामक नरकमें जाता है।

भेड़ोंको बेचकर जीविका चलानेवाले तथा पशुओंकी हिंसा करनेवाले कसाई वह्निज्वाल नामक नरकमें गिरते हैं। भ्रष्टाचारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा जो कच्चे खपड़ों अथवा ईंट आदिको पकानेके लिये पजावेमें आग देता है, ये सब उसी वह्निज्वाल नरकमें गिरते हैं। जो व्रतोंका लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे गिरे हुए हैं, वे दोनों ही प्रकारके पुरुष अत्यन्त दारुण संदंश नामक नरककी यातनामें पड़ते हैं। जो ब्रह्मचारी होकर भी स्वप्नमें वीर्यस्खलन करते हैं तथा जो पुत्रोंसे विद्या पढ़ते हैं, वे श्वभोजन नामक नरकमें गिरते हैं। इस तरह ये तथा और भी सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें पापकर्मी प्राणी यातनाओंकी आगमें डालकर पकाये जाते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पापकर्म हैं, जिन्हें नरकोंमें पड़कर मनुष्य भोगा करते हैं। जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने वर्ण और आश्रमके विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। नरकमें सिर नीचे करके लटकाये गये प्राणी स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंको देखा करते हैं और देवतालोग भी नीचे दृष्टि डालनेपर उन सभी अधोमुख नारकी जीवोंको देखते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमशः उन्नति करते हुए स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा मानव-देवता तथा मुमुक्षु होते और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जितने जीव स्वर्गमें हैं, उतने ही नरकमें हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करता वही नरकमें जाता है।

कालीनन्दन ! स्वायम्भुव मनुने महान् पापोंके लिये महान् और लघु पापोंके लिये लघु प्रायश्चित्त बताये हैं। उन अशेष पापकर्मोंके लिये जो-जो प्रायश्चित्त-सम्बन्धी कर्म बताये गये हैं, उन सबमें भगवान् शंकरका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र भगवान् शिवका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, सायंकाल, रातमें तथा मध्याह्न आदिमें भगवान् शिवका स्मरण करनेसे पापरहित हुआ मनुष्य माहेश्वर धामको प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके स्मरणसे समस्त पापों और क्लेशोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिसका चित्त जप, होम और पूजा आदि करते समय निरन्तर भगवान् महेश्वरमें ही लगा रहता हो, उसके लिये इन्द्र आदि पदकी प्राप्तिरूप फल तो अन्तराय (विघ्न) ही है। मुने ! जो पुरुष भक्तिभावसे रात-दिन भगवान् शिवका स्मरण करता है, उसके सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वह कभी नरकमें नहीं पड़ता। नरक और स्वर्ग—ये पाप और पुण्यके ही दूसरे नाम हैं। इनमेंसे एक तो दुःख देनेवाला है और दूसरा सुख देनेवाला। जब एक ही वस्तु कभी प्रीति प्रदान करनेवाली होती है और कभी दुःख देनेवाली बन जाती है, तब यह निश्चय होता है कि कोई भी पदार्थ न तो दुःखमय है और न सुखमय ही है। ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परब्रह्म है और ज्ञान ही तात्त्विक बोधका कारण है। यह सारा चराचर विश्व ज्ञानमय ही है। उस परम विज्ञानसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। (अध्याय १३—१६)

मृत्युकाल निकट आनेके कौन-कौनसे लक्षण हैं, इसका वर्णन

इसके पश्चात् द्वीपों, लोकों और मनुओंका परिचय देकर संग्रामके फल, शरीर एवं स्त्रीस्वभाव आदिका वर्णन किया गया। तदनन्तर कालके विषयमें व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें पार्वतीजीने नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ सुनकर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके उनसे यही बात पूछी थी।

पार्वती बोलीं—भगवन् ! मैंने आपकी कृपासे सम्पूर्ण मत जान लिया। देव ! जिन मन्त्रोंद्वारा जिस विधिसे जिस प्रकार आपकी पूजा होती है, वह भी मुझे ज्ञात हो गया। किंतु प्रभो ! अब भी एक संशय रह गया है। वह संशय है कालचक्रके सम्बन्धमें। देव ! मृत्युका क्या चिह्न है ? आयुका क्या प्रमाण है ? नाथ ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो मुझे ये सब बातें बताइये।



महादेवजीने कहा—प्रिये ! यदि अकस्मात् शरीर सब ओरसे सफेद या पीला पड़ जाय और ऊपरसे कुछ लाल दीखे तो यह जानना चाहिये कि उस मनुष्यकी मृत्यु छः महीनेके भीतर हो जायगी। शिवे ! जब मुँह, कान, नेत्र और जिह्वाका स्तम्भन हो जाय, तब भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु जाननी चाहिये। भद्रे ! जो रुरु मृगके पीछे होनेवाली शिकारियोंकी भयानक आवाजको भी जल्दी नहीं सुनता, उसकी मृत्यु भी छः महीनेके भीतर ही जाननी चाहिये। जब सूर्य, चन्द्रमा या अग्निके सांनिध्यसे प्रकट होनेवाले प्रकाशको मनुष्य नहीं देखता, उसे सब कुछ काला-काला—अन्धकाराच्छन्न ही दिखायी देता है, तब उसका जीवन छः माससे अधिक नहीं होता। देवि ! प्रिये ! जब मनुष्यका बायाँ हाथ लगातार एक सप्ताहतक फड़कता ही रहे, तब उसका जीवन एक मास ही शेष है—ऐसा जानना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। जब सारे अङ्गोंमें अँगड़ाई आने लगे और तालु सूख जाय, तब वह मनुष्य एक मासतक ही जीवित रहता है—इसमें संशय नहीं है। त्रिदोषमें जिसकी नाक बहने लगे, उसका जीवन पंद्रह दिनसे अधिक नहीं चलता। मुँह और कण्ठ सूखने लगे तो यह जानना चाहिये कि छः महीने बीतते-बीतते इसकी आयु समाप्त हो जायगी। भामिनी ! जिसकी जीभ फूल जाय और दाँतोंसे मवाद निकलने लगे, उसकी भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु हो जाती है। इन चिह्नोंसे मृत्युकालको समझना चाहिये। सुन्दरि ! जल, तेल, घी तथा दर्पणमें भी जब अपनी परछाईं न दिखायी दे या विकृत दिखायी दे, तब कालचक्रके ज्ञाता पुरुषको यह जान लेना चाहिये कि उसकी भी आयु छः माससे अधिक शेष नहीं है। देवेश्वरि ! अब दूसरी बात सुनो, जिससे मृत्युका ज्ञान होता है। जब अपनी छायाको सिरसे रहित देखे अथवा अपनेको छायासे रहित पाये, तब वह मनुष्य एक मास भी जीवित नहीं रहता।

पार्वती ! ये मैंने अङ्गोंमें प्रकट होनेवाले मृत्युके लक्षण बताये हैं। भद्रे ! अब बाहर प्रकट होनेवाले लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो ! देवि ! जब चन्द्रमण्डल या सूर्यमण्डल प्रभाहीन एवं लाल दिखायी दे, तब आधे मासमें ही मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। अरुन्धती, महायान, चन्द्रमा—इन्हें जो न देख सके अथवा जिसे ताराओंका दर्शन न हो, ऐसा पुरुष एक मासतक जीवित रहता है। यदि ग्रहोंका दर्शन होनेपर भी दिशाओंका ज्ञान न हो—मनपर मूढ़ता छायी रहे तो छः महीनेमें निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। यदि उतथ्य नामक ताराका, ध्रुवका अथवा सूर्यमण्डलका भी दर्शन न हो सके, रातमें इन्द्र-धनुष और मध्याह्नमें उल्कापात होता दिखायी दे तथा गीध और कौवे घेरे रहें तो उस मनुष्यकी आयु छः महीनेसे अधिककी नहीं है। यदि आकाशमें सप्तर्षि तथा स्वर्गमार्ग (छायापथ) न दिखायी दें तो कालज्ञ पुरुषोंको उस पुरुषकी आयु छः मास ही शेष समझनी चाहिये। जो अकस्मात् सूर्य और चन्द्रमाको राहुसे ग्रस्त देखता है और सम्पूर्ण दिशाएँ जिसे घूमती दिखायी देती हैं, वह अवश्य ही छः महीनेमें मर जाता है। यदि अकस्मात् नीली मक्खियाँ आकर पुरुषको घेर लें तो वास्तवमें उसकी आयु एक मास ही शेष जाननी चाहिये। यदि गीध, कौवा अथवा कबूतर सिरपर चढ़ जाय तो वह पुरुष शीघ्र ही एक मासके भीतर ही मर जाता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय १७-२५)

कालको जीतनेका उपाय, नवधा शब्दब्रह्म एवं तुंकारके अनुसंधान और उससे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन

देवी पार्वतीने कहा—प्रभो ! कालसे आकाशका भी नाश होता है। वह भयंकर काल बड़ा विकराल है। वह स्वर्गका भी एकमात्र स्वामी है। आपने उसे दग्ध कर दिया था, परंतु अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा जब उसने आपकी स्तुति की, तब आप फिर संतुष्ट हो गये और वह काल पुनः अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुआ—पूर्णतः स्वस्थ हो गया। आपने उससे बातचीतमें कहा—'काल ! तुम सर्वत्र विचरोगे, किंतु लोग तुम्हें देख नहीं सकेंगे।' आप प्रभुकी कृपादृष्टि होने और वर मिलनेसे वह काल जी उठा तथा उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। अतः महेश्वर! क्या यहाँ ऐसा कोई साधन है, जिससे उस कालको नष्ट किया जा सके ? यदि हो तो मुझे बताइये; क्योंकि आप योगियोंमें शिरोमणि और स्वतन्त्र प्रभु हैं। आप परोपकारके लिये ही शरीर धारण करते हैं।

शिव बोले—देवि ! श्रेष्ठ देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, नाग और मनुष्य—किसीके द्वारा भी कालका नाश नहीं किया जा सकता; परंतु जो ध्यान-परायण योगी हैं, वे शरीरधारी होनेपर भी सुखपूर्वक कालको नष्ट कर देते हैं। वरारोहे ! यह पाञ्चभौतिक शरीर सदा उन भूतोंके गुणोंसे युक्त ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें इसका लय होता है। मिट्टीकी देह मिट्टीमें ही मिल जाती है। आकाशसे वायु उत्पन्न होती है, वायुसे तेजस्तत्त्व प्रकट होता है, तेजसे जलका प्राकट्य बताया गया है और जलसे पृथ्वीका आविर्भाव होता है। पृथ्वी आदि भूत क्रमशः अपने कारणमें लीन होते हैं। पृथ्वीके पाँच, जलके चार, तेजके तीन और वायुके दो गुण होते हैं। आकाशका एक मात्र शब्द ही गुण है। पृथ्वी आदिमें जो गुण बताये गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। जब भूत अपने गुणको त्याग देता है, तब नष्ट हो जाता है और जब गुणको ग्रहण करता है, तब उसका प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है। देवेश्वरि ! इस प्रकार तुम पाँचों भूतोंके यथार्थ स्वरूपको समझो। देवि ! इस कारण कालको जीतनेकी इच्छावाले योगीको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने कालमें उसके अंशभूत गुणोंका चिन्तन करे।

योगवेत्ता पुरुषको चाहिये कि सुखद आसनपर बैठकर विशुद्ध श्वास (प्राणायाम) द्वारा योगाभ्यास करे। रातमें जब सब लोग सो जायँ, उस समय दीपक बुझाकर अन्धकारमें योग धारण करे। तर्जनी अँगुलीसे दोनों कानोंको बंद करके दो घड़ीतक दबाये रक्खे। उस अवस्थामें अग्निप्रेरित शब्द सुनायी देता है। इससे संध्याके बादका खाया हुआ अन्न क्षणभरमें पच जाता है और सम्पूर्ण रोगों तथा ज्वर आदि बहुत-से उपद्रवोंका शीघ्र नाश कर देता है। जो साधक प्रतिदिन इसी प्रकार दो घड़ीतक शब्दब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वह मृत्यु तथा कामको जीतकर इस जगत्में स्वच्छन्द विचरता है और सर्वज्ञ एवं समदर्शी होकर सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। जैसे आकाशमें वर्षासे युक्त बादल गरजता है, उसी प्रकार उस शब्दको सुनकर योगी तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर योगियोंद्वारा प्रतिदिन चिन्तन किया जाता हुआ वह शब्द क्रमशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हो जाता है। देवि! इस प्रकार मैंने तुम्हें शब्दब्रह्मके चिन्तनका क्रम बताया है। जैसे धान चाहनेवाला पुरुष पुआलको छोड़ देता है, उसी तरह मोक्षकी इच्छावाला योगी सारे बन्धनोंको त्याग देता है।

इस शब्दब्रह्मको पाकर भी जो दूसरी वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, वे मुक्केसे आकाशको मारते और भूख-प्यासकी कामना करते हैं। यह शब्दब्रह्म ही सुखद, मोक्षका कारण, बाहर-भीतरके भेदसे रहित, अविनाशी और समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म है। इसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। जो लोग कालपाशसे मोहित हो शब्दब्रह्मको नहीं जानते, वे पापी और कुबुद्धि मनुष्य मौतके फंदेमें फँसे रहते हैं। मनुष्य तभीतक संसारमें जन्म लेते हैं, जबतक सबके आश्रयभूत परमतत्त्व (परब्रह्म परमात्मा) की प्राप्ति नहीं होती। परम तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निद्रा और आलस्य साधनाका बहुत बड़ा विघ्न है। इस शत्रुको यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आसनपर आसीन हो प्रतिदिन शब्दब्रह्मका अभ्यास करना चाहिये। सौ वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध पुरुष आजीवन इसका अभ्यास करे तो उसका शरीररूपी स्तम्भ मृत्युको जीतनेवाला हो जाता है और उसे प्राणवायुकी शक्तिको बढ़ानेवाला आरोग्य प्राप्त होता है। वृद्ध पुरुषमें भी शब्दब्रह्मके अभ्याससे होनेवाले लाभका विश्वास देखा जाता है, फिर तरुण मनुष्यकी

इस साधनासे पूर्ण लाभ हो, इसके लिये तो कहना ही क्या है। यह शब्दब्रह्म न ओंकार है न मन्त्र हैं, न बीज है, न अक्षर है। यह अनाहत नाद (बिना-आघातके अथवा बिना बजाये ही प्रकट होनेवाला शब्द) है । इसका उच्चारण किये बिना ही चिन्तन होता है । यह शब्दब्रह्म परम कल्याणमय है। प्रिये ! शुद्ध बुद्धिवाले पुरुष यत्नपूर्वक निरन्तर इसका अनुसंधान करते हैं । अतः नौ प्रकारके शब्द बताये गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ता पुरुषोंने लक्षित किया है । मैं उन्हें प्रयत्न करके बता रहा हूँ । उन शब्दोंको नादसिद्धि भी कहते हैं । वे शब्द क्रमशः इस प्रकार हैं—

घोष, कांस्य (झाँझ आदि), शृङ्ग (सिंगा आदि), घण्टा, वीणा आदि, बाँसुरी, दुन्दुभि, शङ्ख और नवाँ मेघ-गर्जन—इन नौ प्रकारके शब्दोंको त्यागकर तुंकारका अभ्यास करे। इस प्रकार सदा ही ध्यान करनेवाला योगी पुण्य और पापोंसे लिप्त नहीं होता । देवि ! योगाभ्यासके द्वारा सुननेका प्रयत्न करनेपर भी जब योगी उन शब्दोंको नहीं सुनता और अभ्यास करते-करते मरणासन्न हो जाता है, तब भी वह दिन-रात उस अभ्यासमें ही लगा रहे । ऐसा करनेसे सात दिनोंमें वह शब्द प्रकट होता है, जो मृत्युको जीतनेवाला है। देवि ! वह शब्द नौ प्रकारका है । उसका मैं यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ । पहले तो घोषात्मक नाद प्रकट होता है, जो आत्मशुद्धिका उत्कृष्ट साधन है । वह उत्तम नाद सब रोगोंको हर लेनेवाला तथा मनको वशीभूत करके अपनी ओर खींचनेवाला है । दूसरा कांस्य-नाद है, जो प्राणियोंकी गतिको स्तम्भित कर देता है । वह विष, भूत और ग्रह आदि सबको बाँधता है—इसमें संशय नहीं है । तीसरा शृङ्ग-नाद है, जो अभिचारसे सम्बन्ध रखनेवाला है । उसका शत्रुके उच्चाटन और मारणमें नियोग एवं प्रयोग करे । चौथा घण्टा नाद है, जिसका साक्षात् परमेश्वर शिव उच्चारण करते हैं। वह नाद सम्पूर्ण देवताओंको आकृष्ट कर लेता है, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है । यक्षों और गन्धर्वोंकी कन्याएँ उस नादसे आकृष्ट हो योगीको उसकी इच्छाके अनुसार महासिद्धि प्रदान करती हैं तथा उसकी अन्य कामनाएँ भी पूर्ण करती हैं । पाँचवाँ नाद वीणा है, जिसे योगी पुरुष ही सदा सुनते हैं । देवि ! उस वीणा-नादसे दूर-दर्शनकी शक्ति प्राप्त होती है। वंशीनादका ध्यान करनेवाले योगीको सम्पूर्ण तत्त्व प्राप्त हो जाता है । दुन्दुभिका चिन्तन करनेवाला साधक जरा और मृत्युके कष्टसे छूट जाता है । देवेश्वरि ! शङ्खनादका अनुसंधान होनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेघनादके चिन्तनसे योगीको कभी विपत्तिका सामना नहीं करना पड़ता । वरानने ! जो प्रतिदिन एकाग्र चित्तसे ब्रह्मरूपी तुंकारका ध्यान करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता । उसे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त हो जाती है । वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इच्छानुसार रूपधारी होकर सर्वत्र विचरण करता है, कभी विकारोंके वशीभूत नहीं होता । वह साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है । परमेश्वरि ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष शब्दब्रह्मके नवधा स्वरूपका पूर्णतया वर्णन किया है । अब और क्या सुनना चाहती हो ? (अध्याय २६)

काल या मृत्युको जीतकर अमरत्व प्रदान करनेकी चार यौगिक साधनाएँ—प्राणायाम, भ्रूमध्यमें अग्निका ध्यान, मुखसे वायुपान तथा मुड़ी हुई जिह्वाद्वारा गलेकी घाँटीका स्पर्श

पार्वती बोलीं—प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो योगी योगाकाशजनित वायुपदको जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब मुझे बताइये ।

भगवान् शिवने कहा—सुन्दरि ! पहले मैंने योगियोंके हितकी कामनासे सब कुछ बताया है, जिसके अनुसार योगियोंने कालपर विजय प्राप्त की थी । योगी जिस प्रकार वायुका स्वरूप धारण करता है, उसके विषयमें भी कहा गया है। इसलिये योगशक्तिके द्वारा मृत्यु-दिवसको जानकर प्राणायाममें तत्पर हो जाय । ऐसा करनेपर आधे मासमें ही वह आये हुए कालको जीत लेता है । हृदयमें स्थित हुई प्राणवायु सदा अग्निको उद्दीप्त करनेवाली है । उसे अग्निका सहायक बताया गया है। वह वायु बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप्त और महान् है । ज्ञान, विज्ञान और उत्साह—सबकी प्रवृत्ति वायुसे ही होती है । जिसने यहाँ वायुको जीत लिया, उसने इस सम्पूर्ण जगत्पर विजय पा ली ।

साधकको चाहिये कि वह जरा और मृत्युको जीतनेकी इच्छासे सदा धारणामें स्थित रहे; क्योंकि योगपरायण योगीको भलीभाँति धारणा और ध्यानमें तत्पर रहना चाहिये । जैसे लुहार

मुखसे धौंकनीको फूँक-फूँककर उस वायुके द्वारा अपने सब कार्यको सिद्ध करता है, उसी प्रकार योगीको प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये । प्राणायामके समय जिनका ध्यान किया जाता है, वे आराध्यदेव परमेश्वर सहस्रों मस्तक, नेत्र, पैर और हाथोंसे युक्त हैं तथा समस्त ग्रन्थियोंको आवृत करके उनसे भी दस अंगुल आगे स्थित हैं । आदिमें व्याहृति और अन्तमें शिरोमन्त्रसहित गायत्रीका तीन बार जप करे और प्राणवायुको रोके रहे । प्राणोंके इस आयामका नाम प्राणायाम है । चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर लौट आते हैं । परंतु प्राणायाम-पूर्वक ध्यानपरायण योगी जानेपर आजतक नहीं लौटे हैं (अर्थात् मुक्त हो गये हैं) । देवि ! जो द्विज सौ वर्षोंतक तपस्या करके कुशोंके अग्रभागसे एक बूँद जल पीता है, वह जिस फलको पाता है, वही ब्राह्मणोंको एकमात्र धारणा अथवा प्राणायामके द्वारा मिल जाता है । जो द्विज सवेरे उठकर एक प्राणायाम करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापको शीघ्र ही नष्ट कर देता और ब्रह्मलोकको जाता है । जो आलस्यरहित हो सदा एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा और मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील हो आकाशमें विचरता है । वह सिद्धोंके स्वरूप, कान्ति, मेधा, पराक्रम और शौर्यको प्राप्त कर लेता है । उसकी गति वायुके समान हो जाती है तथा उसे स्पृहणीय सौख्य एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है ।

देवेश्वरि ! योगी जिस प्रकार वायुसे सिद्धि प्राप्त करता है, वह सब विधान मैंने बता दिया । अब तेजसे जिस तरह वह सिद्धि लाभ करता है, उसे भी बता रहा हूँ । जहाँ दूसरे लोगोंकी बातचीतका कोलाहल न पहुँचता हो, ऐसे शान्त एकान्त स्थानमें अपने सुखद आसनपर बैठकर चन्द्रमा और सूर्य (वाम और दक्षिण नेत्र) की कान्तिसे प्रकाशित मध्यवर्ती देश भ्रूमध्यभागमें जो अग्निका तेज अव्यक्त रूपसे प्रकाशित होता है, उसे आलस्यरहित योगी दीपकरहित अन्धकारपूर्ण स्थानमें चिन्तन करनेपर निश्चय ही देख सकता है—इसमें संशय नहीं है । योगी हाथकी अँगुलियोंसे यत्नपूर्वक दोनों नेत्रोंको कुछ-कुछ दबाये रक्खे और उनके तारोंको देखता हुआ एकाग्र चित्तसे आधे मुहूर्ततक उन्हींका चिन्तन करे । तदनन्तर अन्धकारमें भी ध्यान करनेपर वह उस ईश्वरीय ज्योतिको देख सकता है । वह ज्योति सफेद, लाल, पीली, काली तथा इन्द्रधनुषके समान रंगवाली होती है । भौंहोंके बीचमें ललाटवर्ती बालसूर्य-के समान तेजवाले उन अग्निदेवका साक्षात्कार करके योगी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला हो जाता है तथा मनोवाञ्छित शरीर धारण करके क्रीडा करता है । वह योगी कारण-तत्त्वको शान्त करके उसमें आविष्ट होना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना, अणिमा आदि गुणोंको पा लेना, मनसे ही सब कुछ देखना, दूरकी बातोंको सुनना और जानना, अदृश्य हो जाना, बहुत-से रूप धारण कर लेना तथा आकाशमें विचरना इत्यादि सिद्धियोंको निरन्तर अभ्यासके प्रभावसे प्राप्त कर लेता है । जो अन्धकारसे परे और सूर्यके समान तेजस्वी है, उसी इस महान् ज्योतिर्मय पुरुष (परमात्मा) को मैं जानता हूँ । उन्हींको जानकर मनुष्य काल या मृत्युको लाँघ जाता है । मोक्षके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।* देवि ! इस प्रकार मैंने तुमसे तेजस्तत्त्वके चिन्तनकी उत्तम विधिका वर्णन किया है, जिससे योगी कालपर विजय पाकर अमरत्वको प्राप्त कर लेता है ।

देवि ! अब पुनः दूसरा श्रेष्ठ उपाय बताता हूँ, जिससे मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती ।

देवि ! ध्यान करनेवाले योगियोंकी चौथी गति (साधना) बतायी जाती है । योगी अपने चित्तको वशमें करके यथायोग्य स्थानमें सुखद आसनपर बैठे । वह शरीरको ऊँचा करके अञ्जलि बाँधकर चोंचकी-सी आकृतिवाले मुखके द्वारा धीरे-धीरे वायुका पान करे । ऐसा करनेसे क्षणभरमें तालुके भीतर स्थित जीवनदायी जलकी बूँदें टपकने लगती हैं । उन बूँदोंको वायुके द्वारा लेकर सूँघे । वह शीतल जल अमृत-स्वरूप है । जो योगी उसे प्रतिदिन पीता है, वह कभी मृत्युके अधीन नहीं होता । उसे भूख-प्यास नहीं लगती । उसका शरीर दिव्य और तेज महान् हो जाता है । वह बलमें हाथी और वेगमें घोड़ेकी समानता करता है । उसकी दृष्टि गरुड़के समान तेज हो जाती है और उसे दूरकी भी बातें सुनायी देने लगती हैं । उसके केश काले-काले और घुँघराले हो जाते हैं तथा अङ्गकान्ति गन्धर्व एवं विद्याधरोंकी समानता करती है । वह मनुष्य देवताओंके वर्षसे सौ वर्षोंतक जीवित रहता है तथा अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा बृहस्पतिके तुल्य हो जाता है । उसमें इच्छानुसार विचरनेकी शक्ति आ जाती है और वह सदा ही सुखी रहकर आकाशमें विचरणकी शक्ति प्राप्त कर लेता है ।

* वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते प्रायणाय ॥

वरानने ! अब मृत्युपर विजय पानेकी पुनः दूसरी विधि बता रहा हूँ, जिसे देवताओंने भी प्रयत्नपूर्वक छिपा रक्खा है; तुम उसे सुनो। योगी पुरुष अपनी जिह्वाको मोड़कर तालुमें लगानेका प्रयत्न करे। कुछ कालतक ऐसा करनेसे वह क्रमशः लंबी होकर गलेकी घाँटीतक पहुँच जाती है। तदनन्तर जब जिह्वासे गलेकी घाँटी सटती है, तब शीतल सुधाका स्राव करती है। उस सुधाको जो योगी सदा पीता है, वह अमरत्वको प्राप्त होता है। (अध्याय २७)

भगवती उमाके कालिका-अवतारकी कथा—समाधि और सुरथके समक्ष मेधाका देवीकी कृपासे मधुकैटभके वधका प्रसङ्ग सुनाना

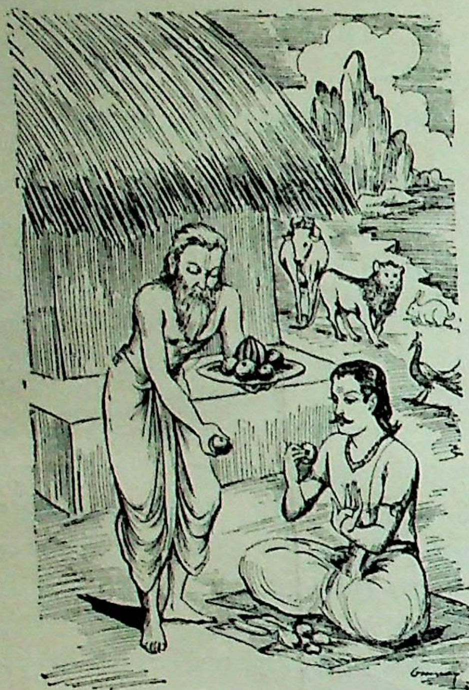
इसके अनन्तर छाया पुरुष, सर्ग, कश्यपवंश, मन्वन्तर, मनुवंश, सत्यव्रतादिवंश, पितृकल्प तथा व्यासोत्पत्ति आदिका वर्णन सुननेके पश्चात् मुनियोंने सूतजीसे कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी ! हमने आपके मुखसे भगवान् शिवकी अनेक इतिहासोंसे युक्त रमणीय कथा सुनी, जो उनके नानावतारोंसे सम्बन्ध रखती है तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। अब हम आपसे जगज्जननी भगवती उमाका मनोहर चरित्र सुनना चाहते हैं। परब्रह्म परमात्मा महेश्वरकी जो आद्या सनातनी शक्ति हैं, वे उमा नामसे विख्यात हैं। वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। महामते ! दक्षकन्या सती और हिमवान्‌की पुत्री पार्वती—ये उमाके दो अवतार हमने सुने। सूतजी ! अब उनके दूसरे अवतारोंका वर्णन कीजिये। लक्ष्मीजननी जगदम्बा उमाके गुणोंको सुननेसे कौन बुद्धिमान् पुरुष विरत हो सकता है। ज्ञानी पुरुष भी कभी उनके कथा-श्रवणके शुभ अवसरको नहीं छोड़ते।

सूतजीने कहा—महात्माओ ! तुमलोग धन्य हो और सर्वदा कृतकृत्य हो; क्योंकि परा अम्बा उमाके महान् चरित्रके विषयमें पूछ रहे हो। जो इस कथाको सुनते, पूछते और बाँचते हैं, उनके चरणकमलोंकी धूलिको ही ऋषियोंने तीर्थ माना है। जिनका चित्त परम संवित्-स्वरूपा श्रीउमादेवीके चिन्तनमें लीन है, वे पुरुष धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, उनकी माता और कुल भी धन्य हैं। जो समस्त कारणोंकी भी कारणरूपा देवेश्वरी उमाकी स्तुति नहीं करते, वे मायाके गुणोंसे मोहित तथा भाग्यहीन हैं—इसमें संशय नहीं है। जो करुणारसकी सिन्धुस्वरूपा महादेवीका भजन नहीं करते, वे संसाररूपी घोर अन्धकूपमें पड़ते हैं। जो देवी उमाको छोड़कर दूसरे देवी-देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गङ्गाजीको छोड़कर प्यास बुझानेके लिये मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है। जिनके स्मरणमात्रसे धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी अनायास प्राप्ति होती है, उन देवी उमाकी आराधना कौन श्रेष्ठ पुरुष छोड़ सकता है।

पूर्वकालमें महामना सुरथने महर्षि मेधासे यही बात पूछी थी। उस समय मेधाने जो उत्तर दिया, मैं वही बता रहा हूँ; तुमलोग सुनो। पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनके पुत्र सुरथ हुए, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। वे दाननिपुण, सत्यवादी, स्वधर्मकुशल, विद्वान्, देवीभक्त, दयासागर तथा प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन करनेवाले थे। इन्द्रके समान तेजस्वी राजा सुरथके पृथ्वीपर शासन करते समय नौ ऐसे राजा हुए, जो उनके हाथसे भूमण्डलका राज्य छीन लेनेके प्रयत्नमें लगे थे। उन्होंने भूपाल सुरथकी राजधानी कोलापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। उनके साथ राजाका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उनके शत्रुगण बड़े प्रबल थे। अतः युद्धमें भूपाल सुरथकी पराजय हुई। शत्रुओंने सारा राज्य अपने अधिकारमें करके सुरथको कोलापुरीसे निकाल दिया। राजा अपनी दूसरी पुरीमें आये और वहाँ मन्त्रियोंके साथ रहकर राज्य करने लगे। परंतु प्रबल विपक्षियोंने वहाँ भी आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया। दैवयोगसे राजाके मन्त्री आदि गण भी उनके शत्रु बन बैठे और खजानेमें जो धन संचित था, वह सब उन विरोधी मन्त्री आदिने अपने हाथमें कर लिया।

तब राजा सुरथ शिकारके बहाने अकेले ही घोड़ेपर सवार हो नगरसे बाहर निकले और गहन वनमें चले गये। वहाँ इधर-उधर घूमते हुए राजाने एक श्रेष्ठ मुनिका आश्रम देखा, जो चारों ओर फूलोंके बगीचे लगे होनेसे बड़ी शोभा पा रहा था। वहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी। सब जीव-जन्तु शान्तभावसे रहते थे। मुनिके शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्योंने उस आश्रमको सब ओरसे घेर रक्खा था। महामते ! विप्रवर मेधाके प्रभावसे उस आश्रममें महाबली व्याघ्र आदि

अल्प शक्तिवाले गौ आदि पशुओंको पीड़ा नहीं देते थे। वहाँ जानेपर मुनीश्वर मेधाने मीठे वचन, भोजन और आसन-



द्वारा उन परम दयालु विद्वान् नरेशका आदर-सत्कार किया।

एक दिन राजा सुरथ बहुत ही चिन्तित तथा मोहके वशीभूत होकर अनेक प्रकारसे विचार कर रहे थे। इतनेमें ही वहाँ एक वैश्य आ पहुँचा। राजाने उससे पूछा—'भैया! तुम कौन हो और किसलिये यहाँ आये हो? क्या कारण है कि दुखी दिखायी दे रहे हो? यह मुझे बताओ।' राजाके मुखसे यह मधुर वचन सुनकर वैश्यप्रवर समाधिने दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए प्रेम और नम्रतापूर्ण वाणीमें इस प्रकार उत्तर दिया।

वैश्य बोला—राजन्! मैं वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है। मैं धनीके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। परंतु मेरे पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है। अतः अपने प्रारब्धकर्मसे दुखी हो मैं वनमें चला आया हूँ। करुणासागर प्रभो! यहाँ आकर मैं पुत्रों, पौत्रों, पत्नी, भाई-भतीजे तथा अन्य सुहृदोंका कुशल-समाचार नहीं जान पाता।

राजा बोले—जिन दुराचारी तथा धनके लोभी पुत्र आदिने तुम्हें निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मूर्ख जीवकी भाँति तुम प्रेम क्यों करते हो?

वैश्यने कहा—राजन्! आपने उत्तम बात कही है। आपकी वाणी सारगर्भित है; तथापि स्नेहपाशसे बँधा हुआ मेरा मन अत्यन्त मोहको प्राप्त हो रहा है।

इस तरह मोहसे व्याकुल हुए वैश्य और राजा दोनों मुनिवर मेधाके पास गये। वैश्यसहित राजाने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! आप हम दोनोंके मोहपाशको काट दीजिये। मुझे राज्यलक्ष्मीने छोड़ दिया और मैंने गहन वनकी शरण ली; तथापि राज्य छिन जानेके कारण मुझे संतोष नहीं है। और यह वैश्य है, जिसे स्त्री आदि स्वजनोंने घरसे निकाल दिया है; तथापि उनकी ओरसे इसकी ममता दूर नहीं हो रही है। इसका क्या कारण है? बताइये। समझदार होनेपर भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया, यह तो बड़ी भारी मूर्खता है।



ऋषि बोले—राजन्! सनातन शक्तिस्वरूपा जगदम्बा महामाया कही गयी हैं। वे ही सबके मनको खींचकर मोहमें डाल देती हैं। प्रभो! उनकी मायासे मोहित होनेके कारण

ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी परम तत्त्वको नहीं जान पाते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? वे परमेश्वरी ही रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंका आश्रय ले समयानुसार सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करती हैं । नृपश्रेष्ठ ! जिसके ऊपर वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वरदायिनी जगदम्बा प्रसन्न होती हैं, वही मोहके घेरेको लाँघ पाता है ।

राजाने पूछा—मुने ! जो सबको मोहित करती हैं, वे देवी महामाया कौन हैं ? और किस प्रकार उनका प्रादुर्भाव हुआ है ? यह कृपा करके मुझे बताइये ।

ऋषि बोले—जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न था और योगेश्वर भगवान् केशव शेषकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले शयन कर रहे थे, उन्हीं दिनों भगवान् विष्णुके कानोंके मलसे दो असुर उत्पन्न हुए, जो भूतलपर मधु और कैटभके नामसे विख्यात हैं । वे दोनों विशालकाय घोर असुर प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे । उनके जबड़े बहुत बड़े थे । उनके मुख दाढ़ोंके कारण ऐसे विकराल दिखायी देते थे, मानो वे सम्पूर्ण जगत्को खा जानेके लिये उद्यत हों । उन दोनोंने भगवान् विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए कमलके ऊपर विराजमान ब्रह्माको देखकर पूछा—'अरे ! तू कौन है ?' ऐसा कहते हुए वे उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हो गये। ब्रह्माजीने देखा—ये दोनों दैत्य आक्रमण करना चाहते हैं और भगवान् जनार्दन समुद्रके जलमें सो रहे हैं । तब उन्होंने परमेश्वरीका स्तवन किया और उनसे प्रार्थना की—'अम्बिके ! तुम इन दोनों दुर्जय असुरोंको मोहित करो और अजन्मा भगवान् नारायणको जगा दो ।'

ऋषि कहते हैं—इस प्रकार मधु और कैटभके नाशके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिदेवी जगज्जननी महाविद्या फाल्गुन शुक्ला द्वादशीको त्रैलोक्य-मोहिनी शक्तिके रूपमें प्रकट हो महाकालीके नामसे विख्यात हुई । तदनन्तर आकाशवाणी हुई—'कमलासन ! डरो मत ! आज युद्धमें मधु-कैटभको मारकर मैं तुम्हारे कण्टकका नाश करूँगी ।' यों कहकर वे महामाया श्रीहरिके नेत्र और मुख आदिसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके दृष्टिपथमें आ खड़ी हो गयीं । फिर तो देवाधिदेव हृषीकेश जनार्दन जाग उठे । उन्होंने अपने सामने दोनों दैत्य मधु और कैटभ-को देखा । उन दैत्योंके साथ अतुल तेजस्वी विष्णुका पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध हुआ । तब महामायाके प्रभावसे



मोहित हुए उन श्रेष्ठ दानवोंने लक्ष्मीपतिसे कहा—'तुम हमसे मनोवाञ्छित वर ग्रहण करो ।'

नारायण बोले—यदि तुमलोग प्रसन्न हो तो मेरे हाथसे मारे जाओ । यही मेरा वर है । इसे दो । मैं तुम दोनोंसे दूसरा वर नहीं माँगता ।

ऋषि कहते हैं—उन असुरोंने देखा, सारी पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूबी हुई है; तब वे केशवसे बोले—'हम दोनोंको ऐसी जगह मारो, जहाँ जलसे भीगी हुई धरती न हो । 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णुने अपना परम तेजस्वी चक्र उठाया और अपनी जाँघपर उनके मस्तक रखकर काट डाला । राजन् ! यह कालिकाकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहा गया है । महामते ! अब महालक्ष्मीके प्रादुर्भावकी कथा सुनो । देवी उमा निर्विकार और निराकार होकर भी देवताओंका दुःख दूर करनेके लिये युग-युगमें साकाररूप धारण करके प्रकट होती हैं । उनका शरीरग्रहण उनकी इच्छाका वैभव कहा गया है । वे लीलासे इसलिये प्रकट होती हैं कि भक्तजन उनके गुणोंका गान करते रहें ।

(अध्याय ४८—४५)

सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे देवीका महालक्ष्मीरूपमें अवतार और उनके द्वारा महिषासुरका वध

ऋषि कहते हैं—राजन्! रम्भ नामसे प्रसिद्ध एक असुर था, जो दैत्यवंशका शिरोमणि माना जाता था। उससे महातेजस्वी महिष नामक दानवका जन्म हुआ था। दानवराज महिष समस्त देवताओंको युद्धमें पराजित करके देवराज इन्द्रके सिंहासनपर जा बैठा और स्वर्गलोकमें रहकर त्रिलोकीका राज्य करने लगा। तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी भी उन सबको साथ ले उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव और विष्णु विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने शिव और केशवको नमस्कार किया तथा अपना सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे ब्योरेवार कह सुनाया। वे बोले—'भगवन्! दुरात्मा महिषासुरने हम सबको समराङ्गणमें जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल दिया है। इसलिये हम इस मर्त्यलोकमें भटक रहे हैं और कहीं भी हमें शान्ति नहीं मिल रही है। उस असुरने इन्द्र आदि देवताओंकी कौन-कौन-सी दुर्दशा नहीं की है। सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, वायु, गन्धर्व, विद्याधर और चारण—इन सबके तथा अन्य लोगोंके भी जो कर्तव्यकर्म हैं, उन सबको वह पापात्मा असुर स्वयं ही करता है। उसने दैत्यपक्षको अभय-दान कर दिया है। इसलिये हम सब देवता आपकी शरणमें आये हैं। आप दोनों हमारी रक्षा करें और उस असुरके वधका उपाय शीघ्र ही सोचें; क्योंकि आप दोनों ऐसा करनेमें समर्थ हैं।'

देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् शिव और विष्णुने अत्यन्त क्रोध किया। रोषके मारे उनके नेत्र घूमने लगे। तब अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए भगवान् शिव और विष्णुके मुखसे तथा अन्य देवताओंके शरीरसे तेज प्रकट हुआ। तेजका वह महान् पुञ्ज अत्यन्त प्रज्वलित हो दसों दिशाओंमें प्रकाशित हो उठा। दुर्गाजीके ध्यानमें लगे हुए सब देवताओंने उस तेजको प्रत्यक्ष देखा। सम्पूर्ण देवताओंके शरीरोंसे निकला हुआ वह अत्यन्त भीषण तेज एकत्र हो एक नारीके रूपमें परिणत हो गया। वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी देवी थीं। उनका प्रकाशमान मुख भगवान् शिवके तेजसे प्रकट हुआ था। भुजाएँ विष्णुके तेजसे उत्पन्न हुई थीं। केश यमराजके तेजसे आविर्भूत हुए थे। उनके दोनों स्तन चन्द्रमाके तेजसे प्रकट हुए थे। कटिभाग इन्द्रके तेजसे तथा जङ्घा और ऊरु वरुणके तेजसे पैदा हुए थे। पृथ्वीके तेजसे नितम्बका और ब्रह्माजीके तेजसे दोनों चरणोंका आविर्भाव हुआ था। पैरोंकी अँगुलियाँ सूर्यके तेजसे और हाथकी अंगुलियाँ वसुओंके तेजसे उत्पन्न हुई थीं। नासिका कुबेरके, दाँत प्रजापतिके, तीनों नेत्र अग्निके, दोनों भौंहें साध्यगणके, दोनों कान वायुके तथा अन्य देवताओंके तेजसे प्रकट हुए थे। इस प्रकार देवताओंके तेजसे प्रकट हुई कमलालया लक्ष्मी ही वह परमेश्वरी थीं। सम्पूर्ण देवताओंकी तेजोराशिसे प्रकट हुई उन देवीको देखकर सब देवताओंको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ। परंतु उनके पास कोई अस्त्र नहीं था। यह देख ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंने शिवा देवीको अस्त्र-शस्त्रसे सम्पन्न करनेका विचार किया। तब महेश्वरने महेश्वरीको शूल समर्पित किया। भगवान् विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निदेवने शक्ति, वायु देवताने धनुष तथा बाणोंसे भरे दो तरकस और शचीपति इन्द्रने वज्र एवं घण्टा प्रदान किये। यमराजने कालदण्ड, प्रजापतिने अक्षमाला, ब्रह्माने कमण्डलु एवं सूर्यदेवने समस्त रोमकूपोंमें अपनी किरणें अर्पित कीं। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी, क्षीरसागरने सुन्दर हार तथा कभी पुराने न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये। साथ ही उन्होंने दिव्य चूडामणि, दो कुण्डल, बहुत-से कड़े, अर्धचन्द्र, केयूर, मनोहर नूपुर, गलेकी हँसुली और सब अँगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्माने उन्हें मनोहर फरसा भेंट किया। साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये। समुद्रने सदा सुरम्य एवं सरस रहनेवाली माला दी और एक कमलका फूल भेंट किया। हिमवान्ने सवारीके लिये सिंह तथा आभूषणके लिये नाना प्रकारके रत्न दिये। कुबेरने उन्हें मधुसे भरा पात्र अर्पित किया तथा सर्पोंके नेता शेषनागने विचित्र रचनाकौशलसे सुशोभित एक नागहार भेंट किया, जिसमें नाना प्रकारकी सुन्दर मणियाँ गूँथी हुई थीं। इन सबने तथा दूसरे देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहास करके उच्चस्वरसे गर्जना की। उनके उस भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा। उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी। चारों समुद्रोंने अपनी मर्यादा छोड़ दी। पृथ्वी डोलने लगी। उस समय महिषासुरसे पीड़ित हुए देवताओंने देवीकी जय-जयकार की।

तदनन्तर सब देवताओंने उन महालक्ष्मीस्वरूपा पराशक्ति जगदम्बाका भक्ति-गद्गद वाणीद्वारा स्तवन किया। सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख देववैरी दैत्य अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर हाथोंमें हथियार ले सहसा उठ

खड़े हुए। रोषसे भरा हुआ महिषासुर भी उस शब्दकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं। इस समय महिषासुरके द्वारा पालित करोड़ों शस्त्रधारी महावीर वहाँ आ पहुँचे। चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, बाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, बिडाल, अन्धक, दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र और महाहनु—ये तथा अन्य बहुत-से युद्धकुशल शूरवीर समराङ्गणमें देवीके साथ युद्ध करने लगे। वे सब-के-सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें पारंगत थे। इस प्रकार देवी और दैत्यगण दोनों परस्पर जूझने लगे। उनका वह भीषण समय मार-काटमें ही बीतने लगा। इस तरह भयानक युद्ध होनेके बाद महिषासुर देवीके साथ मायायुद्ध करने लगा।

तब देवीने कहा—रे मूढ़! तेरी बुद्धि मारी गयी है। तू व्यर्थ हठ क्यों करता है? तीनों लोकोंमें कोई भी असुर युद्धमें मेरे सामने टिक नहीं सकते।

यों कहकर सर्वकलामयी देवी कूदकर महिषासुरपर चढ़ गयीं और अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने भयंकर शूलसे उसके कण्ठमें आघात किया। उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे दूसरे रूपमें बाहर निकलने लगा। अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया। आधा निकला होनेपर भी वह महा-अधम दैत्य देवीके साथ युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका सिर काटकर उस असुरको धराशायी कर दिया। फिर तो उसके सैनिकगण 'हाय! हाय!' करके नीचे मुख किये भयभीत हो रणभूमिसे भागने और त्राहि-त्राहिकी पुकार करने लगे। उस समय इन्द्र आदि सब देवताओंने देवीकी स्तुति की। गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके महालक्ष्मी-अवतारकी कथा कही है। अब तुम सुस्थिर चित्तसे सरस्वतीके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनो। (अध्याय ४६)

देवी उमाके शरीरसे सरस्वतीका आविर्भाव, उनके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना, दूतके निराश लौटनेपर शुम्भका क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीजको भेजना और देवीके द्वारा उन सबका मारा जाना

ऋषि कहते हैं—पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो प्रतापी दैत्य थे, जो आपसमें भाई-भाई थे। उन दोनोंने चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीके राज्यपर बलपूर्वक आक्रमण किया। उनसे पीड़ित हुए देवताओंने हिमालय पर्वतकी शरण ली और सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली सर्वभूतजननी देवी उमाका स्तवन किया।

देवता बोले—महेश्वरि दुर्गे! आपकी जय हो। अपने भक्तजनोंका प्रिय करनेवाली देवि! आपकी जय हो। आप तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली शिवा हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली परा अम्बा हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। कालिका और तारारूप धारण करनेवाली देवि! आपको नमस्कार है। छिन्नमस्ता आपका ही स्वरूप है। आप ही श्रीविद्या हैं। आपको नमस्कार है। भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। भैरवरूपिणि! आपको नमस्कार है। आप ही बगलामुखी और धूमावती हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। अजिता, विजया, जया, मङ्गला और विलासिनी—ये सभी आपके ही विभिन्न रूपोंकी संज्ञाएँ हैं। इन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। दोग्ध्री (माता अथवा कामधेनु)-रूपमें आपको नमस्कार है। घोर आकार धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। अपराजिता-रूपमें आपको प्रणाम है। नित्या महाविद्याके रूपमें आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही शरणागतोंका पालन करनेवाली रुद्राणी हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। वेदान्तके द्वारा आपके ही स्वरूपका बोध होता है। आपको नमस्कार है। आप परमात्मा हैं। आपको मेरा प्रणाम है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली आप जगदम्बाको बारंबार नमस्कार है।*

---

* देवा ऊचुः—

जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये।
त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमो नमः॥
नमो मुक्तिप्रदायिन्यै पराम्बायै नमो नमः।
नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके॥
कालिकारूपसम्पन्ने नमस्ताराकृते नमः।
छिन्नमस्तास्वरूपायै श्रीविद्यायै नमोऽस्तु ते॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर वरदायिनी एवं कल्याणरूपिणी गौरी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने समस्त देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं ?' तब उन्हीं गौरीके शरीरसे एक कुमारी प्रकट हुई। वह सब देवताओंके देखते-देखते शिवशक्तिसे आदरपूर्वक बोली—'माँ! ये समस्त स्वर्गवासी देवता निशुम्भ और शुम्भ नामक प्रबल दैत्योंसे अत्यन्त पीड़ित हो अपनी रक्षाके लिये मेरी स्तुति करते हैं।' पार्वतीके शरीरकोशसे वह कुमारी निकली थी, इसलिये कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुई। कौशिकी ही साक्षात् शुम्भासुरका नाश करनेवाली सरस्वती हैं। उन्हींको उग्रतारा और महोग्रतारा भी कहा गया है। माताके शरीरसे स्वतः प्रकट होनेके कारण वे इस भूतलपर मातङ्गी भी कहलाती हैं। उन्होंने समस्त देवताओंसे कहा—'तुमलोग निर्भय रहो। मैं स्वतन्त्र हूँ। अतः किसीका सहारा लिये बिना ही तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दूँगी।' ऐसा कहकर वे देवी तत्काल वहाँ अदृश्य हो गयीं।

एक दिन शुम्भ और निशुम्भके सेवक चण्ड और मुण्डने देवीको देखा। उनका मनोहर रूप नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाला था। उसे देखते ही वे मोहित हो सुध-बुध खोकर पृथ्वीपर गिर पड़े, फिर होशमें आनेपर वे अपने राजाके पास गये और आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त बताकर बोले—'महाराज! हम दोनोंने एक अपूर्व सुन्दरी नारी देखी है, जो हिमालयके रमणीय शिखरपर रहती है और सिंहपर सवारी करती है।' चण्ड-मुण्डकी यह बात सुनकर महान् असुर शुम्भने देवीके पास सुग्रीव नामक अपना दूत भेजा और कहा—'दूत! हिमालयपर कोई अपूर्व सुन्दरी रहती है। तुम वहाँ जाओ और उससे मेरा संदेश कहकर उसे प्रयत्नपूर्वक यहाँ ले आओ।' यह आज्ञा पाकर दानवशिरोमणि सुग्रीव हिमालयपर गया और जगदम्बा महेश्वरीसे इस प्रकार बोला।

दूतने कहा—देवि! दैत्य शुम्भासुर अपने महान् बल और विक्रमके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसका छोटा भाई निशुम्भ भी वैसा ही है। शुम्भने मुझे तुम्हारे पास दूत बनाकर भेजा है। इसलिये मैं यहाँ आया हूँ। सुरेश्वरि! उसने जो संदेश दिया है, उसे इस समय सुनो। 'मैंने समराङ्गणमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उनके समस्त रत्नोंका अपहरण कर लिया है। यज्ञमें देवता आदिके दिये हुए देवभागका मैं स्वयं ही उपभोग करता हूँ। मैं मानता हूँ कि तुम स्त्रियोंमें रत्न हो, सब रत्नोंके ऊपर स्थित हो। इसलिये तुम कामजनित रसके साथ मुझको अथवा मेरे भाईको अङ्गीकार करो।'



दूतके मुँहसे शुम्भका यह संदेश सुनकर भूतनाथ भगवान् शिवकी प्राणवल्लभा महामायाने इस प्रकार कहा।

देवी बोलीं—दूत! तुम सच कहते हो। तुम्हारे कथनमें थोड़ा-सा भी असत्य नहीं है। परंतु मैंने पहलेसे एक प्रतिज्ञा कर ली है। उसे सुनो। जो मेरा घमंड

भुवनेशि नमस्तुभ्यं नमस्ते भैरवाकृते।
नमोऽस्तु बगलामुख्यै धूमावत्यै नमो नमः॥
नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै मातङ्ग्यै ते नमो नमः।
अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमो नमः॥
जयायै मङ्गलायै ते विलासिन्यै नमो नमः।
दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते॥
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः।
शरणागतपालिन्यै रुद्राण्यै ते नमो नमः॥
नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः॥

(शि० पु० उ० सं० ४७। ३—१०)

चूर कर दे, जो मुझे युद्धमें जीत ले, उसीको मैं पति बना सकती हूँ; दूसरेको नहीं। यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। इसलिये तुम शुम्भ और निशुम्भको मेरी यह प्रतिज्ञा बता दो। फिर इस विषयमें जैसा उचित हो, वैसा वे करें।

देवीकी यह बात सुनकर दानव सुग्रीव लौट गया। वहाँ जाकर उसने विस्तारपूर्वक राजाको सब बातें बतायीं। दूतकी बात सुनकर उग्र शासन करनेवाला शुम्भ कुपित हो उठा और बलवानोंमें श्रेष्ठ सेनापति धूम्राक्षसे बोला—'धूम्राक्ष! हिमालयपर कोई सुन्दरी रहती है। तुम शीघ्र वहाँ जाकर जैसे भी वह यहाँ आये, उसी तरह उसे ले आओ। असुरप्रवर! उसे लानेमें तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये। यदि वह युद्ध करना चाहे तो तुम्हें प्रयत्नपूर्वक उसके साथ युद्ध भी करना चाहिये।'

शुम्भकी ऐसी आज्ञा पाकर दैत्य धूम्रलोचन हिमालयपर गया और उमाके अंशसे प्रकट हुई भगवती भुवनेश्वरीसे कहा—'नितम्बिनि! मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो तुम्हें मरवा डालूँगा। मेरे साथ साठ हजार असुरोंकी सेना है।'

देवी बोलीं—वीर! तुम्हें दैत्यराजने भेजा है। यदि मुझे मार ही डालोगे तो क्या करूँगी। परंतु युद्धके बिना मेरा वहाँ जाना असम्भव है। मेरी ऐसी ही मान्यता है।

देवीके ऐसा कहनेपर दानव धूम्रलोचन उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ा। परंतु महेश्वरीने 'हूं' के उच्चारणमात्रसे उसको भस्म कर दिया। तभीसे वे देवी इस भूतलपर धूमावती कहलाने लगीं। उनकी आराधना करनेपर वे अपने भक्तोंके शत्रुओंका संहार कर डालती हैं। धूम्राक्षके मारे जानेपर अत्यन्त कुपित हुए देवीके वाहन सिंहने उसके साथ आये हुए समस्त असुरगणोंको चबा डाला। जो मरनेसे बचे, वे भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवीने दैत्य धूम्रलोचनको मार डाला। इस समाचारको सुनकर प्रतापी शुम्भने बड़ा क्रोध किया। वह अपने दोनों ओठोंको दाँतोंसे दबाकर रह गया। उसने क्रमशः चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज नामक असुरोंको भेजा। आज्ञा पाकर वे दैत्य उस स्थानपर गये, जहाँ देवी विराजमान थीं। अणिमा आदि सिद्धियोंसे सेवित तथा अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवती सिंहवाहिनीको देखकर वे श्रेष्ठ दानव वीर बोले—'देवि! तुम शीघ्र ही शुम्भ और निशुम्भके पास चलो, अन्यथा तुम्हें गण और वाहनसहित मरवा डालेंगे। वामे! शुम्भको अपना पति बना लो। लोकपाल आदि भी उनकी स्तुति करते हैं। शुम्भको पति बना लेनेपर तुम्हें उस महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है।'

उनकी ऐसी बात सुनकर परमेश्वरी अम्बा मुस्कराकर सरस मधुर वाणीमें बोलीं।

देवीने कहा—अद्वितीय महेश्वर परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं, जो सदाशिव कहलाते हैं। वेद भी उनके तत्त्वको नहीं जानते, फिर विष्णु आदिकी तो बात ही क्या है। उन्हीं सदाशिवकी मैं सूक्ष्म प्रकृति हूँ। फिर दूसरेको पति कैसे बना सकती हूँ। सिंहिनी कितनी ही कामातुर क्यों न हो जाय, वह गीदड़को कभी अपना पति नहीं बनायेगी। हथिनी गदहेको और बाघिन खरगोशको नहीं वरेगी। दैत्यो! तुम सब लोग झूठ बोलते हो; क्योंकि कालरूपी सर्पके फंदेमें फँसे हुए हो। तुम या तो पातालको लौट जाओ या शक्ति हो तो युद्ध करो।

देवीका यह क्रोध पैदा करनेवाला वचन सुनकर वे दैत्य बोले—'हमलोग अपने मनमें तुम्हें अबला समझकर मार नहीं रहे थे। परंतु यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी ही इच्छा है तो सिंहपर सुस्थिर होकर बैठ जाओ और युद्धके लिये आगे बढ़ो।' इस तरह वाद-विवाद करते हुए उनमें कलह बढ़ गया और समराङ्गणमें दोनों दलोंपर तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इस तरह उनके साथ लीलापूर्वक युद्ध करके परमेश्वरीने चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको मार डाला। वे देववैरी असुर द्वेषबुद्धि करके आये थे, तो भी अन्तमें उन्हें उस उत्तम लोककी प्राप्ति हुई, जिसमें देवीके भक्त जाते हैं। (अध्याय ४७)

देवीके द्वारा सेना और सेनापतियोंसहित निशुम्भ एवं शुम्भका संहार

ऋषि कहते हैं—राजन्! प्रशंसनीय पराक्रमशाली महान् असुर शुम्भने इन श्रेष्ठ दैत्योंका मारा जाना सुनकर अपने उन दुर्जय गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी, जो संग्रामका नाम सुनते ही हर्षसे खिल उठते थे। उसने कहा—'आज मेरी आज्ञासे कालक, कालकेय, मौर्य, दौर्हृद तथा अन्य असुरगण बड़ी भारी सेनाके साथ संगठित

हो विजयकी आशा रखकर शीघ्र युद्धके लिये प्रस्थान करें।' निशुम्भ और शुम्भ दोनों भाई उन दैत्योंको पूर्वोक्त आदेश देकर रथपर आरूढ़ हो स्वयं भी नगरसे बाहर निकले। उन महाबली वीरोंकी आज्ञासे उनकी सेनाएँ उसी तरह युद्धके लिये आगे बढ़ीं, मानो मरणोन्मुख पतङ्ग आगमें कूदनेके लिये उठ खड़े हुए हों। उस समय असुरराजने युद्धस्थलमें मृदङ्ग, मर्दल, भेरी, डिण्डिम, झाँझ और ढोल आदि बाजे बजवाये। उन जुझाऊ बाजोंकी आवाज सुनकर युद्धप्रेमी वीर हर्ष एवं उत्साहसे भर गये; परंतु जिन्हें अपने प्राण ही अधिक प्यारे थे, वे उस रणभूमिसे भाग चले। युद्धसम्बन्धी वस्त्रों तथा कवच आदिसे आच्छादित अङ्गवाले वे योद्धा विजयकी अभिलाषासे अस्त्र-शस्त्र धारण किये युद्ध-स्थलमें आ पहुँचे। कितने ही सैनिक हाथियोंपर सवार थे, बहुत-से दैत्य घोड़ोंकी पीठपर बैठे थे और अन्य असुर रथोंपर चढ़कर जा रहे थे। उस समय उन्हें अपने-परायेकी पहचान नहीं होती थी। उन्होंने असुरराजके साथ समराङ्गणमें पहुँचकर सब ओरसे युद्ध आरम्भ कर दिया। बारंबार शतघ्नी (तोप) की आवाज होने लगी, जिसे सुनकर देवता काँप उठे। धूल और धूएँसे आकाशमें महान् अन्धकार छा गया। सूर्यका रथ नहीं दिखायी देता था। अत्यन्त अभिमानी करोड़ों पैदल योद्धा विजयकी अभिलाषा लिये युद्धस्थलमें आकर डट गये थे। घुड़सवार, हाथीसवार तथा अन्य रथारूढ़ असुर भी बड़ी प्रसन्नताके साथ करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ आये थे। उस महासमरमें काले पर्वतोंके समान विशाल मदमत्त गजराज जोर-जोरसे चिग्घाड़ रहे थे, छोटे-छोटे शैल-शिखरोंके समान ऊँट भी अपने गलेसे गल्गल् ध्वनिका विस्तार करने लगे। अच्छी भूमिमें उत्पन्न हुए घोड़े गलेमें विशाल कण्ठहार धारण किये जोर-जोरसे हिनहिना रहे थे। वे अनेक प्रकारकी चालें जानते थे और हाथियोंके मस्तकपर पैर रखते हुए आकाशमार्गसे पक्षियोंकी भाँति उड़ जाते थे। शत्रुकी ऐसी सेनाको आक्रमण करती देख जगदम्बाने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। साथ ही शत्रुओंको हतोत्साह करनेवाले घंटेको भी बजाया। वह देख सिंह भी अपनी गर्दन और मस्तकके केशोंको कँपाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा।

उस समय हिमालय पर्वतपर खड़ी हुई रमणीय आभूषणों और अस्त्रोंसे सुशोभित शिवा देवीकी ओर देखकर निशुम्भ विलासिनी रमणियोंके मनोभावको समझनेमें निपुण पुरुषकी भाँति सरस वाणीमें बोला—'महेश्वरि! तुम-जैसी सुन्दरियोंके रमणीय शरीरपर मालतीके फूलका एक दल भी डाल दिया जाय तो वह व्यथा उत्पन्न कर देता है। ऐसे मनोहर शरीरसे तुम विकराल युद्धका विस्तार कैसे कर रही हो?' यह बात कहकर वह महान् असुर चुप हो गया। तब चण्डिका देवीने कहा—'मूढ़ असुर! व्यर्थकी बातें क्यों बकता है? युद्ध कर, अन्यथा पातालको चला जा।' यह सुनकर वह महारथी वीर अत्यन्त रुष्ट हो समर-भूमिमें बाणोंकी अद्भुत वृष्टि करने लगा, मानो बादल जलकी धारा बरसा रहे हों। उस समय उस रणक्षेत्रमें वर्षा ऋतुका आगमन हुआ-सा जान पड़ता था। मदसे उद्धत हुआ वह असुर तीखे बाण, शूल, फरसे, भिन्दिपाल, परिघ, धनुष, भुशुण्डि, प्रास, क्षुरप्र तथा बड़ी-बड़ी तलवारोंसे युद्ध करने लगा। काले पर्वतोंके समान बड़े-बड़े गजराज कुम्भस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण समराङ्गणमें चक्कर काटने लगे। उनकी पीठपर फहराती हुई शुम्भ-निशुम्भकी पताकाएँ, जो उड़ती हुई बलाकाओं (बगुलों) की पंक्तियोंके समान श्वेत दिखायी देती थीं, अपने स्थानसे खण्डित होकर नीचे गिरने लगीं। क्षत-विक्षत शरीरवाले दैत्य पृथ्वीपर गिरकर मछलियोंके समान तड़प रहे थे। गर्दन कट जानेके कारण घोड़ोंके समूह बड़े भयंकर दिखायी देते थे। कालिकाने कितने ही दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया तथा देवीके वाहन सिंहने अन्य बहुत-से असुरोंको अपना आहार बना लिया। उस समय दैत्योंके मारे जानेसे उस रणभूमिमें रक्तकी धारा बहानेवाली कितनी ही नदियाँ बह चलीं। सैनिकोंके केश पानीमें सेवारकी भाँति दिखायी देते थे और उनकी चादरें सफेद फेनका भ्रम उत्पन्न करती थीं।

इस तरह घोर युद्ध होने तथा राक्षसोंका महान् संहार हो जानेके पश्चात् देवी अम्बिकाने विषमें बुझे हुए तीखे बाणों-द्वारा निशुम्भको मारकर धराशायी कर दिया। अपने असीम शक्तिशाली छोटे भाईके मारे जानेपर शुम्भ रोषसे भर गया और रथपर बैठकर आठ भुजाओंसे युक्त हो महेश्वर-प्रिया अम्बिकाके पास गया। उसने जोर-जोरसे शङ्ख बजाया और शत्रुओंका दमन करनेवाले धनुषकी दुस्सह टंकारध्वनि की तथा देवीका सिंह भी अपने अयालोंको हिलाता हुआ दहाड़ने लगा। इन तीन प्रकारकी ध्वनियोंसे आकाशमण्डल गूँज उठा।

तदनन्तर जगदम्बाने अट्टहास किया, जिससे समस्त असुर संत्रस्त हो उठे। जब देवीने शुम्भसे कहा कि 'तुम युद्धमें

स्थिरतापूर्वक खड़े रहो' तब देवता बोल उठे—'जय हो, जय हो जगदम्बाकी ।' इस समय दैत्यराज शुम्भने बड़ी भारी शक्ति छोड़ी, जिसकी शिखासे आगकी ज्वाला निकल रही थी। परंतु देवीने एक उल्काके द्वारा उसे मार गिराया। शुम्भके चलाये हुए बाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए बाणोंके शुम्भने सहस्रों टुकड़े कर दिये । तत्पश्चात् चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस महान् असुरपर आघात किया। त्रिशूलकी चोटसे मूर्च्छित हो वह इन्द्रके द्वारा पंख काट दिये जानेपर गिरनेवाले पर्वतकी भाँति आकाश, पृथ्वी तथा समुद्रको कम्पित करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा । तदनन्तर शूलके आघातसे होनेवाली व्यथाको सहकर उस महाबली असुरने दस हजार बाँहें धारण कर लीं और देवताओंका भी नाश करनेमें समर्थ चक्रोंद्वारा सिंहसहित महेश्वरी शिवापर आघात करना आरम्भ किया। उसके चलाये हुए चक्रोंको खेल-खेलमें ही विदीर्ण करके देवीने त्रिशूल उठाया और उस असुरपर घातक प्रहार किया । शिवाके लोक-पावन पाणिपङ्कजसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों असुर परम पदके भागी हुए ।

उस महापराक्रमी निशुम्भ और भयानक बलशाली शुम्भके मारे जानेपर समस्त दैत्य पातालमें घुस गये, अन्य बहुत-से असुरोंको काली और सिंह आदिने खा लिया तथा शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये। नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। वे ठीक मार्गसे बहने लगीं। मन्द-मन्द वायु बहने लगी, जिसका स्पर्श सुखद प्रतीत होता था; आकाश निर्मल हो गया। देवताओं और ब्रह्मर्षियोंने फिर यज्ञ-यागादि आरम्भ कर दिये। इन्द्र आदि सब देवता सुखी हो गये । प्रभो ! दैत्यराजके वध-प्रसङ्गसे युक्त इस परम पवित्र उमाचरित्रका जो श्रद्धापूर्वक बारंबार श्रवण या पाठ करता है, वह इस लोकमें देवदुर्लभ भोगोंका उपभोग करके परलोकमें महामायाके प्रसादसे उमाधामको जाता है। राजन्! इस प्रकार शुम्भासुरका संहार करनेवाली देवी सरस्वतीके चरित्रका वर्णन किया गया, जो साक्षात् उमाके अंशसे प्रकट हुई थीं। (अध्याय ४८)

देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये तेजःपुञ्जरूपिणी उमाका प्रादुर्भाव

मुनियोंने कहा—सम्पूर्ण पदार्थोंके पूर्ण ज्ञाता सूतजी ! भुवनेश्वरी उमाके, जिनसे सरस्वती प्रकट हुई थीं, अवतारका पुनः वर्णन कीजिये । वे देवी परब्रह्म, मूल-प्रकृति, ईश्वरी, निराकार होती हुई भी साकार तथा नित्यानन्द-मयी सती कही जाती हैं।

सूतजीने कहा—तपस्वी मुनियो ! आपलोग देवीके उत्तम एवं महान् चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनें, जिसके जानने-मात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। एक समय देवताओं और दानवोंमें परस्पर युद्ध हुआ। उसमें महामायाके प्रभावसे देवताओंकी जीत हो गयी। इससे देवताओंको अपनी शूरवीरतापर बड़ा गर्व हुआ । वे आत्म-प्रशंसा करते हुए इस बातका प्रचार करने लगे कि "हमलोग धन्य हैं, धन्यवादके योग्य हैं। असुर हमारा क्या कर लेंगे। वे हमलोगोंका अत्यन्त दुस्सह प्रभाव देखकर भयभीत हो 'भाग चलो, भाग चलो !' कहते हुए पाताललोकमें घुस गये। 'हमारा बल अद्भुत है! हममें आश्चर्यजनक तेज है। हमारा बल और तेज दैत्यकुलका विनाश करनेमें समर्थ है ! अहो ! देवताओंका कैसा सौभाग्य है!' इस प्रकार वे जहाँ-तहाँ डींग हाँकने लगे।

तदनन्तर उसी समय उनके समक्ष तेजका एक महान् पुञ्ज प्रकट हुआ, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया था। उसे देखकर सब देवता विस्मयसे भर गये। वे रुँधे हुए गलेसे परस्पर पूछने लगे—'यह क्या है ? यह क्या है ?' उन्हें यह पता नहीं था कि यह श्यामा (भगवती उमा) का उत्कृष्ट प्रभाव है, जो देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाला है।

उस समय देवराज इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी—'तुमलोग जाओ और यथार्थरूपसे परीक्षा करो कि यह कौन है।' देवेन्द्रके भेजनेसे वायुदेव उस तेजःपुञ्जके निकट गये। तब उस तेजोराशिने उन्हें सम्बोधित करके पूछा—'अजी ! तुम कौन हो ?' उस महान् तेजके इस प्रकार पूछनेपर वायु देवता अभिमानपूर्वक बोले—'मैं वायु हूँ, सम्पूर्ण जगत्का प्राण हूँ; मुझ सर्वाधार परमेश्वरमें ही यह स्थावर-जंगमरूप सारा जगत् ओतप्रोत है । मैं ही समस्त विश्वका संचालन करता हूँ ।' तब उस महातेजने कहा—'वायो ! यदि तुम जगत्के संचालनमें समर्थ हो तो यह तृण रक्खा हुआ है। इसे अपनी इच्छाके अनुसार चलाओ तो सही।' तब वायुदेवताने सभी उपाय करके अपनी सारी शक्ति लगा दी। परंतु वह तिनका अपने स्थानसे तिलभर

भी न हटा। इससे वायुदेव लज्जित हो गये। वे चुप हो इन्द्रकी सभामें लौट गये और अपनी पराजयके साथ वहाँका सारा वृत्तान्त उन्होंने सुनाया। वे बोले—'देवेन्द्र! हम सब लोग झूठे ही अपनेमें सर्वेश्वर होनेका अभिमान रखते हैं; क्योंकि किसी छोटी-सी वस्तुका भी हम कुछ नहीं कर सकते।' तब इन्द्रने बारी-बारीसे समस्त देवताओंको भेजा। जब वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्द्र स्वयं गये। इन्द्रको आते देख वह अत्यन्त दुस्सह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। इससे इन्द्र बड़े विस्मित हुए और मन-ही-मन बोले—'जिसका ऐसा चरित्र है, उसी सर्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।' सहस्रनेत्रधारी इन्द्र बारंबार इसी भावका चिन्तन करने लगे। इसी समय निश्छल करुणामय शरीर धारण करनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शिवप्रिया उमा उन देवताओं-पर दया करने और उनका गर्व हरनेके लिये चैत्रशुक्ला नवमीको दोपहरमें वहाँ प्रकट हुई। वे उस तेज:पुजके बीचमें विराज रही थीं, अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थीं और समस्त देवताओंको सुस्पष्टरूपसे यह जता रही थीं कि 'मैं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हूँ।' वे चार हाथोंमें क्रमशः वर, पाश, अङ्कुश और अभय धारण किये थीं। श्रुतियाँ साकार होकर उनकी सेवा करती थीं। वे बड़ी रमणीय दीखती थीं तथा अपने नूतन यौवन-पर उन्हें गर्व था। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हुए थीं। लाल फूलोंकी माला तथा लाल चन्दनसे उनका शृङ्गार किया गया था। वे कोटि-कोटि कन्दर्पोंके समान मनोहारिणी तथा करोड़ों चन्द्रमाओंके समान चटकीली चाँदनीसे सुशोभित थीं। सबकी अन्तर्यामिणी, समस्त भूतोंकी साक्षिणी तथा परब्रह्मस्वरूपिणी उन महामायाने इस प्रकार कहा।

उमा बोलीं—मैं ही परब्रह्म, परम ज्योति, प्रणवरूपिणी तथा युगलरूपधारिणी हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ। मुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। मैं निराकार होकर भी साकार हूँ, सर्वतत्त्व-स्वरूपिणी हूँ। मेरे गुण अतर्क्य हैं। मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ। मैं ही कभी प्राण-वल्लभाका आकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवल्लभ पुरुषका। कभी स्त्री और पुरुष दोनों रूपोंमें एक साथ प्रकट होती हूँ (यही मेरा अर्धनारीश्वररूप है)। मैं सर्व-रूपिणी ईश्वरी हूँ, मैं ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हूँ। मैं ही जगत्पालक विष्णु हूँ तथा मैं ही संहारकर्ता रुद्र हूँ। सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली महामाया मैं ही हूँ। काली, लक्ष्मी और



सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सकल कलाएँ मेरे अंशसे ही प्रकट हुई हैं। मेरे ही प्रभावसे तुमलोगोंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय पायी है। मुझ सर्वविजयिनीको न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश्वर मान रहे हो। जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूत्रधार कठपुतलीको नचाता है, उसी प्रकार मैं ईश्वरी ही समस्त प्राणियोंको नचाती हूँ। मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे भयसे ही अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर ही लोकपालगण निरन्तर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी देव-समुदायको विजयी बनाती हूँ तथा कभी दैत्योंको। मायासे परे जिस अविनाशी परात्पर धामका श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है। सगुण और निर्गुण—ये मेरे दो प्रकारके रूप माने गये हैं। इनमेंसे प्रथम तो मायायुक्त है और दूसरा मायारहित। देवताओ! ऐसा जानकर गर्व छोड़ो और मुझ सनातनी प्रकृतिकी प्रेमपूर्वक आराधना करो।*

* उमोवाच—
परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी।
अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन॥

देवीका यह करुणायुक्त वचन सुन देवता भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर उन परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—'जगदीश्वरि ! क्षमा करो। परमेश्वरि ! प्रसन्न होओ। मातः ! ऐसी कृपा करो, जिससे फिर कभी हमें गर्व न हो।'

तबसे सब देवता गर्व छोड़ एकाग्रचित्त हो पूर्ववत् विधिपूर्वक उमादेवीकी आराधना करने लगे। ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुमसे उमाके प्रादुर्भावका वर्णन किया है, जिसके श्रवणमात्रसे परमपदकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४९)

देवीके द्वारा दुर्गमासुरका वध तथा उनके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नाम पड़नेका कारण

मुनियोंने कहा—महाप्राज्ञ सूतजी ! हम सब लोग प्रतिदिन दुर्गाजीका चरित्र सुनना चाहते हैं। अतः आप और किसी अद्भुत लीलातत्त्वका हमारे समक्ष वर्णन कीजिये। सर्वज्ञशिरोमणे सूत ! आपके मुखारविन्दसे नाना प्रकारकी सुधासदृश मधुर कथाएँ सुनते-सुनते हमारा मन कभी तृप्त नहीं होता।

सूतजी बोले—मुनियो ! दुर्गम नामसे विख्यात एक असुर था, जो रुरुका महाबलवान् पुत्र था। उसने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया था तथा देवताओंके लिये अजेय बल पाकर उसने भूतलपर बहुत-से ऐसे उत्पात किये, जिन्हें सुनकर देवलोकमें देवता भी कम्पित हो उठे। वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी वैदिक क्रिया नष्ट हो चली। उस समय ब्राह्मण और देवता भी दुराचारी हो गये। न कहीं दान होता था न अत्यन्त उग्र तप किया जाता था; न यज्ञ होता था और न होम ही किया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतकके लिये वर्षा बंद हो गयी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। सब लोग दुखी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, बावड़ी, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। इससे समस्त प्रजाओंके चित्तमें बड़ी दीनता आ गयी। उनके महान् दुःखको देखकर सब देवता महेश्वरी योगमायाकी शरणमें गये।

देवताओंने कहा—महामाये ! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो। अपने क्रोधको रोको, अन्यथा सब लोग निश्चय ही नष्ट हो जायँगे। कृपासिन्धो ! दीनबन्धो ! जैसे शुम्भ नामक दैत्य, महाबली निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महान् शक्तिशाली रक्तबीज, मधु, कैटभ तथा महिषासुरका तुमने वध किया था, उसी प्रकार इस दुर्गमासुरका शीघ्र ही संहार करो। बालकोंसे पग-पगपर अपराध बनता ही रहता है। केवल माताके सिवा संसारमें दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सहन करता हो। देवताओं और ब्राह्मणोंपर जब-जब दुःख आता है, तब-तब शीघ्र ही अवतार लेकर तुम सब लोगोंको सुखी बनाती हो।

निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी। अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी॥
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः। कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी॥
विरिञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगन्माताहमच्युतः। रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी॥
कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः। मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः॥
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः। तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः॥
यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः। तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी॥
मद्भयाद् वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्। लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम्॥
कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम्। करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया॥
अविनाशिपरं धाम मायातीतं परात्परम्। श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि॥
सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम्। मायाशबलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम्॥
एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च। भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम्॥

(शि० पु० उ० सं० ४९। २७—३९)

देवताओंकी यह व्याकुल प्रार्थना सुनकर कृपामयी देवीने उस समय अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका दर्शन कराया। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था और वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः धनुष, बाण, कमल तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुए थीं। उस समय प्रजाजनोंको कष्ट उठाते देख उनके सभी नेत्रोंमें करुणाके आँसू छलक आये। वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं। उन्होंने अपने नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित कीं। उन धाराओंसे सब लोग तृप्त हो गये और समस्त ओषधियाँ भी सिंच गयीं। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। पृथ्वीपर साग और फल-मूलके अङ्कुर उत्पन्न होने लगे। देवी शुद्ध हृदयवाले महात्मा पुरुषोंको अपने हाथमें रक्खे हुए फल बाँटने लगीं। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर घास और दूसरे



प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोजन प्रस्तुत किये। देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण प्राणी संतुष्ट हो गये। तब देवीने देवताओंसे पूछा—'तुम्हारा और कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?' उस समय सब देवता एकत्र होकर बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत हुए वेद लाकर हमें दीजिये।' तब देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! अपने घरको जाओ, जाओ। मैं शीघ्र ही सम्पूर्ण वेद लाकर तुम्हें अर्पित करूँगी।'

यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। वे प्रफुल्ल नील कमलके समान नेत्रोंवाली जगद्योनि जगदम्बाको भलीभाँति प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये। फिर तो स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर बड़ा भारी कोलाहल मच गया, उसे सुनकर उस भयानक दैत्यने चारों ओरसे देवपुरीको घेर लिया। तब शिवा देवताओंकी रक्षाके लिये चारों ओरसे तेजोमय मण्डलका निर्माण करके स्वयं उस घेरेसे बाहर आ गयीं। फिर तो देवी और दैत्य दोनोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया। समराङ्गणमें दोनों ओरसे कवचको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीचमें देवीके शरीरसे सुन्दर रूपवाली **काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी**—ये दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रक्खा था और वे सब-की-सब विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। इसके बाद उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। उन सबने मिलकर उस रौरव अथवा दुर्गम दैत्यकी सौ अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट कर दीं। इसके बाद देवीने त्रिशूलकी धारसे उस दुर्गम दैत्यको मार डाला। वह दैत्य जड़से खोदे गये वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार ईश्वरीने उस समय दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारकर चारों वेद वापस ले देवताओंको दे दिये।

तब देवता बोले—अम्बिके! आपने हमलोगोंके लिये असंख्य नेत्रोंसे युक्त रूप धारण कर लिया था, इसलिये मुनिजन आपको 'शताक्षी' कहेंगे। अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा आपने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया है, इसलिये 'शाकम्भरी'के नामसे आपकी ख्याति होगी। शिवे! आपने दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये लोग आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे। योगनिद्रे! आपको नमस्कार है। महाबले! आपको नमस्कार है। ज्ञानदायिनि! आपको नमस्कार है। आप जगन्माताको बारंबार नमस्कार है। तत्त्वमसि आदि महावाक्योंद्वारा जिन परमेश्वरीका ज्ञान होता है, उन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली भगवती दुर्गाको बारंबार नमस्कार है। मातः! आपतक मन,

वाणी और शरीरकी पहुँच होनी कठिन है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों आपके नेत्र हैं। हम आपके प्रभावको नहीं जानते, इसलिये आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। सुरेश्वरी माता शताक्षीको छोड़कर दूसरा कौन है, जो हम-जैसे अमरोंपर दृष्टिपात करके ऐसी दया करे। देवि! आपको सदा ऐसा ही यत्न करना चाहिये, जिससे तीनों लोक निरन्तर विघ्न-बाधाओंसे तिरस्कृत न हों। आप हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें।

देवीने कहा—देवताओ! जैसे बछड़ोंको देखकर गौएँ व्यग्र हो उतावलीके साथ उनकी ओर दौड़ती हैं, उसी तरह मैं तुम सबको देखकर व्याकुल हो दौड़ी आती हूँ। तुम्हें न देखनेसे मेरा एक क्षण भी युगके समान बीतता है। मैं तुम्हें अपने बच्चोंके समान समझती हूँ और तुम्हारे लिये अपने प्राण भी दे सकती हूँ। तुमलोग मेरे प्रति भक्तिभावसे सुशोभित हो, अतः तुम्हें कोई भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं तुम्हारी सारी आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये सदैव उद्यत हूँ। जैसे पूर्वकालमें तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने दैत्योंको मारा है, उसी प्रकार आगे भी असुरोंका संहार करूँगी—इसमें तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। भविष्यमें जब पुनः शुम्भ और निशुम्भ नामके दूसरे दैत्य होंगे, उस समय मैं यशोमयी देवी नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे योनिजरूप धारण करके गोकुलमें उत्पन्न होऊँगी और यथासमय उन असुरोंका वध करूँगी। नन्दकी पुत्री होनेके कारण उस समय मुझे लोग 'नन्दजा' कहेंगे। जब मैं भ्रमरका रूप धारण करके अरुण नामक असुरका वध करूँगी, तब संसारके मनुष्य मुझे 'भ्रामरी' कहेंगे। फिर मैं भीम (भयंकर) रूप धारण करके राक्षसोंको खाने लगूँगी, उस समय मेरा 'भीमा देवी' नाम प्रसिद्ध होगा। जब-जब पृथ्वीपर असुरोंकी ओरसे बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर प्रजाजनोंका कल्याण करूँगी—इसमें संशय नहीं है। जो देवी शताक्षी कही गयी हैं, वे ही शाकम्भरी मानी गयी हैं तथा उन्हींको दुर्गा कहा गया है। तीनों नामोंद्वारा एक ही व्यक्तिका प्रतिपादन होता है। इस पृथ्वीपर महेश्वरी शताक्षीके समान दूसरा कोई दयालु देवता नहीं है; क्योंकि वे देवी समस्त प्रजाओंको संतप्त देख नौ दिनोंतक रोती रह गयी थीं। (अध्याय ५०)

देवीके क्रियायोगका वर्णन—देवीकी मूर्ति एवं मन्दिरके निर्माण, स्थापन और पूजनका महत्त्व, परा अम्बाकी श्रेष्ठता, विभिन्न मासों और तिथियोंमें देवीके व्रत, उत्सव और पूजन आदिके फल तथा इस संहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा

व्यासजी बोले—महामते, ब्रह्मपुत्र, सर्वज्ञ सनत्कुमार! मैं उमाके परम अद्भुत क्रियायोगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उस क्रियायोगका लक्षण क्या है? उसका अनुष्ठान करनेपर किस फलकी प्राप्ति होती है तथा जो परा अम्बा उमाको अधिक प्रिय है, वह क्रियायोग क्या है? ये सब बातें मुझे बताइये।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् द्वैपायन! तुम जिस रहस्यकी बात पूछ रहे हो, वह सब मैं बताता हूँ; ध्यान देकर सुनो। ज्ञानयोग, क्रियायोग, भक्तियोग—ये श्रीमाताकी उपासनाके तीन मार्ग कहे गये हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। चित्तका जो आत्माके साथ संयोग होता है, उसका नाम 'ज्ञानयोग' है; उसका बाह्य वस्तुओंके साथ जो संयोग होता है, उसे 'क्रियायोग' कहते हैं। देवीके साथ आत्माकी एकताकी भावनाको भक्तियोग माना गया है। तीनों योगोंमें जो क्रियायोग है, उसका प्रतिपादन किया जाता है। कर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निश्चय किया गया है। मुनिश्रेष्ठ! मोक्षका प्रधान कारण योग है, परंतु योगके ध्येयका उत्तम साधन क्रियायोग है। प्रकृतिको माया जाने और सनातन ब्रह्मको मायावी अथवा मायाका स्वामी समझे। उन दोनोंके स्वरूपको एक दूसरेसे अभिन्न जानकर मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।*

कालीनन्दन! जो मनुष्य देवीके लिये पत्थर, लकड़ी अथवा मिट्टीका मन्दिर बनाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। प्रतिदिन योगके द्वारा आराधना करनेवालेको जिस महान् फलकी प्राप्ति होती है, वह सारा फल उस पुरुषको मिल जाता है, जो देवीके लिये मन्दिर बनवाता है। श्रीमाताका मन्दिर बनवानेवाला धर्मात्मा पुरुष अपनी पहले बीती हुई तथा

---

* मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायाविनं ब्रह्म शाश्वतम्।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥
(शि० पु० उ० सं० ५१। १२)

आगे आनेवाली हजार-हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए थोड़े या बहुत जो पाप शेष रहते हैं, वे श्रीमाताके मन्दिरका निर्माण आरम्भ करते ही क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सम्पूर्ण नदोंमें शोणभद्र, क्षमामें पृथ्वी, गहराईमें समुद्र और समस्त ग्रहोंमें सूर्यदेवका विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार समस्त देवताओंमें श्रीपरा अम्बा श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे समस्त देवताओंमें मुख्य हैं। जो उनके लिये मन्दिर बनवाता है, वह जन्म-जन्ममें प्रतिष्ठा पाता है। काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गासागर-तट, नैमिषारण्य, अमरकण्टक पर्वत, परम पुण्यमय श्रीपर्वत, ज्ञानपर्वत, गोकर्ण, मथुरा, अयोध्या और द्वारका इत्यादि पुण्य प्रदेशोंमें अथवा जिस किसी भी स्थानमें माताका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। मन्दिरमें ईंटोंका जोड़ जबतक या जितने वर्ष रहता है, उतने हजार वर्षोंतक वह पुरुष मणिद्वीपमें प्रतिष्ठित होता है। जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न उमाकी प्रतिमा बनवाता है, वह निर्भय होकर अवश्य उनके परम धाममें जाता है। शुभ ऋतु, शुभ ग्रह और शुभ नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिकी स्थापना करके योगमायाके प्रसादसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कल्पके आरम्भसे लेकर अन्ततक कुलमें जितनी पीढ़ियाँ बीत गयी हैं और जितनी आनेवाली हैं, उन सबको मनुष्य सुन्दर देवीमूर्तिकी स्थापना करके तार देता है।

जो केवल जगद्योनि परा अम्बाकी शरण लेते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं मानना चाहिये। वे साक्षात् देवीके गण हैं। जो चलते-फिरते, सोते-जागते अथवा खड़े होते समय 'उमा' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते हैं, वे शिवाके ही गण हैं। जो नित्य-नैमित्तिक कर्ममें पुष्प, धूप और दीपोंद्वारा देवी परा शिवाका पूजन करते हैं, वे शिवाके धाममें जाते हैं। जो प्रतिदिन गोबर या मिट्टीसे देवीके मन्दिरको लीपते हैं अथवा उसमें झाड़ू देते हैं, वे भी उमाके धाममें जाते हैं। जिन्होंने देवीके परम उत्तम एवं रमणीय मन्दिरका निर्माण कराया है, उनके कुलके लोगोंको माता उमा सदा आशीर्वाद देती हैं। वे कहती हैं, 'ये लोग मेरे हैं। अतः मुझमें प्रेमके भागी बने रहकर सौ वर्षोंतक जीयें और इनपर कभी कोई आपत्ति न आये।' इस प्रकार श्रीमाता रात-दिन आशीर्वाद देती हैं। जिसने महादेवी उमाकी शुभमूर्तिका निर्माण कराया है, उसके कुलके दस हजार पीढ़ियोंतकके लोग मणिद्वीपमें सम्मानपूर्वक रहते हैं। महामायाकी मूर्तिको स्थापित करके उसकी भलीभाँति पूजा करनेके पश्चात् साधक जिस-जिस मनोरथके लिये प्रार्थना करता है, उस-उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

जो श्रीमाताकी स्थापित की हुई उत्तम मूर्तिको मधुमिश्रित घीसे नहलाता है, उससे पुण्यफलकी गणना कौन कर सकता है। चन्दन, अगुरु, कपूर, जटामांसी तथा नागरमोथा आदिसे युक्त जल तथा एक रंगकी गौओंके दूधसे परमेश्वरीको नहलाये। तत्पश्चात् अष्टादशाङ्गधूपके द्वारा अग्निमें उत्तम आहुति दे तथा घृत और कर्पूरसहित बत्तियोंद्वारा देवीकी आरती उतारे। कृष्ण पक्षकी अष्टमी, नवमी, अमावास्यामें अथवा शुक्लपक्षकी पञ्चमी और दशमी तिथियोंमें गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा जगदम्बाकी विशेष पूजा करनी चाहिये। रात्रिसूक्त, श्रीसूक्त अथवा देवीसूक्तको पढ़ते या मूलमन्त्रका जप करते हुए देवीकी आराधना करनी चाहिये। विष्णुकान्ता और तुलसीको छोड़कर शेष सभी पुष्प देवीके लिये प्रीतिकारक जानने चाहिये। कमलका पुष्प उनके लिये विशेष प्रीतिकारक होता है। जो देवीको सोने-चाँदीके फूल चढ़ाता है, वह करोड़ों सिद्धोंसे युक्त उनके परम धाममें जाता है। देवीके उपासकोंको पूजनके अन्तमें सदा अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये। 'जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाली परमेश्वरि! प्रसन्न होओ।' इत्यादि वाक्योंद्वारा स्तुति एवं मन्त्रपाठ करता हुआ देवीके भजनमें लगा रहनेवाला उपासक उनका इस प्रकार ध्यान करे। देवी सिंहपर सवार हैं। उनके हाथोंमें अभय एवं वरकी मुद्राएँ हैं तथा वे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली हैं। इस प्रकार महेश्वरीका ध्यान करके उन्हें नैवेद्यके रूपमें नाना प्रकारके पके हुए फल अर्पित करे। जो परात्मा शम्भुशक्तिका नैवेद्य भक्षण करता है; वह मनुष्य अपने सारे पापपङ्कको धोकर निर्मल हो जाता है। जो चैत्र शुक्ला तृतीयाको भवानीकी प्रसन्नताके लिये व्रत करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। विद्वान् पुरुष इसी तृतीयाको दोलोत्सव करे। उसमें शंकरसहित जगदम्बा उमाकी पूजा करे। फूल, कुङ्कुम, वस्त्र, कपूर, अगुरु, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पहार तथा अन्य गन्ध-द्रव्योंद्वारा शिवसहित सर्वकल्याणकारिणी महामाया महेश्वरी श्रीगौरी देवीका पूजन करके उन्हें झूलेमें झुलाये। जो प्रतिवर्ष नियमपूर्वक उक्त तिथिको देवीका व्रत और दोलोत्सव करता है, उसे शिवा देवी सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थ देती हैं।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें जो अक्षय तृतीया तिथि आती है, उसमें आलस्यरहित हो जो जगदम्बाका व्रत करता है तथा बेला, मालती, चम्पा, जपा (अड़हुल), बन्धूक (दुपहरिया)

और कमलके फूलोंसे शंकरसहित गौरीदेवीकी पूजा करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें किये गये मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापोंका नाश करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको अक्षयरूपमें प्राप्त करता है।

ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाको व्रत करके जो अत्यन्त प्रसन्नताके साथ महेश्वरीका पूजन करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता। आषाढ़के शुक्लपक्षकी तृतीयाको अपने वैभवके अनुसार रथोत्सव करे। यह उत्सव देवीको अत्यन्त प्रिय है। पृथ्वीको रथ समझे, चन्द्रमा और सूर्यको उसके पहिये जाने, वेदोंको घोड़े और ब्रह्माजीको सारथि माने। इस भावनासे मणिजटित रथकी कल्पना करके उसे पुष्पमालाओंसे सुशोभित करे। फिर उसके भीतर शिवा देवीको विराजमान करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष यह भावना करे कि परा अम्बा उमादेवी सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये उसकी देखभाल करनेके निमित्त रथके भीतर बैठी हैं। जब रथ धीरे-धीरे चले, तब जय-जयकार करते हुए प्रार्थना करे—'देवि! दीनवत्सले! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। (पाहि देवि जनानस्मान् प्रपन्नान् दीनवत्सले)।' इन वाक्योंद्वारा देवीको संतुष्ट करे और यात्राके समय नाना प्रकारके बाजे बजवाये। ग्राम या नगरकी सीमाके अन्ततक रथको ले जाकर वहाँ उस रथपर देवीकी पूजा करे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके फिर उन्हें वहाँसे अपने घर ले आये। तदनन्तर सैकड़ों बार प्रणाम करके जगदम्बासे प्रार्थना करे। जो विद्वान् इस प्रकार देवीका पूजन, व्रत एवं रथोत्सव करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें देवीके धामको जाता है।

श्रावण और भाद्रपद मासकी शुक्ला तृतीयाको जो विधिपूर्वक अम्बाका व्रत और पूजन करता है, वह इस लोकमें पुत्र, पौत्र एवं धन आदिसे सम्पन्न होकर सुख भोगता है तथा अन्तमें सब लोकोंसे ऊपर विराजमान उमालोकमें जाता है।

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्र-व्रत करना चाहिये। उसके करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो ही जाती हैं, इसमें संशय नहीं है। इस नवरात्र व्रतके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चानन महादेव तथा षडानन कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं; फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ! नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करके विरथके पुत्र राजा सुरथने अपने खोये हुए राज्यको प्राप्त कर लिया। अयोध्याके बुद्धिमान् नरेश ध्रुवसंधिकुमार सुदर्शनने इस नवरात्रके प्रभावसे ही राज्य प्राप्त किया, जो पहले उनके हाथसे छिन गया था। इस व्रतराजका अनुष्ठान और महेश्वरीकी आराधना करके समाधि वैश्य संसारबन्धनसे मुक्त हो मोक्षके भागी हुए थे। जो मनुष्य आश्विनमासके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक व्रत करके तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको देवीका पूजन करता है, देवी शिवा निरन्तर उसके सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करती रहती हैं। जो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाको व्रत करता तथा लाल कनेर आदिके फूलों एवं सुगन्धित धूपोंसे मङ्गलमयी देवीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलको प्राप्त कर लेता है। स्त्रियोंको अपने सौभाग्यकी प्राप्ति एवं रक्षाके लिये सदा इस महान् व्रतका आचरण करना चाहिये तथा पुरुषोंको भी विद्या, धन एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके सिवा अन्य भी जो देवीको प्रिय लगनेवाले उमा-महेश्वर आदिके व्रत हैं, मुमुक्षु पुरुषोंको उनका भक्तिभावसे आचरण करना चाहिये।

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाली है। इसमें नाना प्रकारके उपाख्यान हैं। यह कल्याणमयी संहिता भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जो इसे भक्तिभावसे सुनता या एकाग्रचित्त होकर सुनाता अथवा पढ़ता या पढ़ाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिसके घरमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गयी यह संहिता विधिवत् पूजित होती है, वह सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है। उसे भूत, प्रेत और पिशाचादि दुष्टोंसे कभी भय नहीं होता। वह पुत्र-पौत्र आदि सम्पत्तिको अवश्य पाता है, इसमें संशय नहीं है। अतः शिवाकी भक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको सदा इस परम पुण्यमयी रमणीय उमा-संहिताका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये। (अध्याय ५१)

॥ उमासंहिता सम्पूर्ण ॥

कैलाससंहिता

ऋषियोंका सूतजीसे तथा वामदेवजीका स्कन्दसे प्रश्न—प्रणवार्थ-निरूपणके लिये अनुरोध

नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥

जो प्रधान (प्रकृति) और पुरुषके नियन्ता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं, उन पार्वतीसहित शिवको उनके पार्षदों और पुत्रोंके साथ प्रणाम है।

ऋषि बोले—सूतजी! हमने अनेक आख्यानोंसे युक्त परम मनोहर उमासंहिता सुनी। अब आप शिवतत्त्वका ज्ञान बढ़ानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—पुत्रो! शिवतत्त्वका प्रतिपादन करनेवाली दिव्य कैलाससंहिताका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमपूर्वक सुनो। तुम्हारे प्रति स्नेह होनेके कारण ही मैं तुम्हें यह प्रसङ्ग सुना रहा हूँ।

इतना कहकर व्यासजीने काशीमें मुनियोंके तथा सूतजीके संवाद, व्यास-मुनि-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद, शिवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति संन्यास-पद्धति, संन्यासाचार, संन्यास-मण्डल, संन्यासपद्धतिन्यास, वर्णपूजन, प्रणवार्थपद्धति आदि प्रसंगोंका वर्णन करके पुनः ऋषिगण तथा सूतजीके मिलन एवं संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीके प्रति ऋषियोंके प्रश्नका यों वर्णन किया।

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आप हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं। अतः यदि आपका हमपर अनुग्रह हो तो हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। श्रद्धालु शिष्योंपर आप-जैसे गुरुजन सदा स्नेह रखते हैं, इस बातको आपने इस समय हमें प्रत्यक्ष दिखा दिया। मुने! विरजा-होमके समय पहले आपने जो वामदेवका मत सूचित किया था, उसे हमने विस्तारपूर्वक नहीं सुना। अब हम बड़े आदर और श्रद्धाके साथ उसे सुनना चाहते हैं। कृपासिन्धो! आप प्रसन्नतापूर्वक उसका वर्णन करें।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर सूतके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने गुरुके भी परम उत्कृष्ट गुरु महादेवजीको, त्रिभुवनजननी महादेवी उमाको तथा गुरु व्यासको भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करके मुनियोंको आह्लादित करते हुए गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा।

सूतजी बोले—मुनियो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग सदा सुखी रहो। महाभाग महात्माओ! तुम भगवान् शिवके भक्त तथा दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हो, यह निश्चितरूपसे जानकर ही मैं तुमलोगोंके समक्ष इस विषयका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालके रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेव माताके गर्भसे बाहर निकलते ही शिवतत्त्वके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेदों, आगमों, पुराणों तथा अन्य सब शास्त्रोंके भी तात्त्विक अर्थको जाननेवाले थे। देवता, असुर तथा मनुष्य आदि जीवोंके जन्म-कर्मोंका उन्हें भलीभाँति ज्ञान था। उनका सम्पूर्ण अङ्ग भस्म लगानेसे उज्ज्वल दिखायी देता था। उनके मस्तकपर जटाओंका समूह शोभा देता था। वे किसीके आश्रित नहीं थे। उनके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं थी। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे परे तथा अहंकारशून्य थे। वे दिगम्बर महाज्ञानी महात्मा दूसरे महेश्वरके समान जान पड़ते थे। उन्हींके-जैसे स्वभाववाले बड़े-बड़े मुनि शिष्य होकर उन्हें घेरे रहते थे। वे अपने चरणोंके स्पर्शजनित पुण्यसे इस पृथ्वीको पवित्र करते हुए सब ओर विचरते और अपने चित्तको निरन्तर परमधाम-स्वरूप परब्रह्म परमात्मामें लगाये रहते थे। इस तरह घूमते हुए वामदेवजीने मेरुके दक्षिण शिखर—कुमारशृङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश किया, जहाँ मयूरवाहन शिवकुमार, ज्ञानमय शक्ति धारण करनेवाले, समस्त असुरोंके नाशक और सर्वदेव-वन्दित भगवान् स्कन्द रहते थे। उनके साथ उनकी शक्तिभूता 'गजावल्ली' भी थीं। वहीं स्कन्दसरके नामसे प्रसिद्ध एक सरोवर था, जो समुद्रके समान अगाध एवं विशाल दिखायी देता था। उसका जल ठंडा और स्वादिष्ठ था। वह सरोवर स्वच्छ, अगाध एवं बहुल जलराशिसे पूर्ण था। उसमें सम्पूर्ण आश्चर्यजनक गुण विद्यमान थे। वह जलाशय स्कन्दस्वामीके समीप ही था। महामुनि वामदेवने शिष्योंके साथ उसमें स्नान करके शिखरपर बैठे हुए मुनिवृन्द-सेवित कुमारका दर्शन किया। वे उगते हुए सूर्यके समान तेजस्वी थे। मोर उनका श्रेष्ठ वाहन था। उनके चार भुजाएँ थीं। सभी अङ्गोंसे उदारता सूचित होती थी। मुकुट आदि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। रत्नभूत दो शक्तियाँ उनकी उपासना करती थीं। उन्होंने अपने चार हाथोंमें क्रमशः शक्ति, कुक्कुट, वर और अभय धारण कर रक्खे थे। स्कन्दका दर्शन और पूजन करके उन मुनीश्वरने बड़ी भक्तिसे उनका स्तवन आरम्भ किया।



भगवान् स्कन्द



वामदेव बोले—जो प्रणवके वाच्यार्थ, प्रणवार्थके प्रतिपादक, प्रणवाक्षररूप बीजसे युक्त तथा प्रणवरूप हैं, उन आप स्वामी कार्तिकेयको बारंबार नमस्कार है। वेदान्तके अर्थभूत ब्रह्म ही जिनका स्वरूप है, जो वेदान्तका अर्थ करते हैं, वेदान्तके अर्थको जानते हैं और नित्य विदित हैं, उन स्कन्दस्वामीको बारंबार नमस्कार है। समस्त प्राणियोंकी हृदय-गुफामें प्रतिष्ठित गुहको नमस्कार है। जो स्वयं गुह्य हैं, जिनका रूप गुह्य है तथा जो गुह्य शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, उन स्वामी कार्तिकेयको नमस्कार है। प्रभो! आप अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्‌से भी परम महान् हैं, कारण और कार्य अथवा भूत और भविष्यके भी ज्ञाता हैं। आप परमात्मस्वरूपको नमस्कार है। आप स्कन्द (माताके गर्भसे च्युत) हैं। स्कन्दन (गर्भसे स्खलन) ही आपका रूप है। आप सूर्य और अरुणके समान तेजस्वी हैं। पारिजातकी मालासे सुशोभित, मुकुट आदि धारण करनेवाले आप स्कन्दस्वामीको सदा नमस्कार है। आप शिवके शिष्य और पुत्र हैं, शिव (कल्याण) देनेवाले हैं, शिवको प्रिय हैं तथा शिवा और शिवके लिये आनन्दकी निधि हैं। आपको नमस्कार है। आप गङ्गाजीके बालक, कृत्तिकाओंके कुमार, भगवती उमाके पुत्र तथा सरकंडोंके वनमें शयन करनेवाले हैं। आप महाबुद्धिमान् देवताको नमस्कार है। षडक्षर मन्त्र आपका शरीर है। आप छः प्रकारके अर्थका विधान करनेवाले हैं। आपका रूप छः मार्गोंसे परे हैं। आप षडाननको बारंबार नमस्कार है। द्वादशात्मन्! आपके बारह विशाल नेत्र और बारह उठी हुई भुजाएँ हैं। उन भुजाओंमें आप बारह आयुध धारण करते हैं। आपको नमस्कार है आप चतुर्भुजरूपधारी, शान्त तथा चारों भुजाओंमें क्रमशः शक्ति, कुक्कुट, वर और अभय धारण करते हैं। आप असुरविदारण देवको नमस्कार है। आपका वक्षःस्थल गजावल्लीके कुचोंमें लगे हुए कुङ्कुमसे अङ्कित है। अपने छोटे भाई गणेशजीकी आनन्दमयी महिमा सुनकर आप मन-ही-मन आनन्दित होते हैं। आपको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और किंनरगणोंसे गायी जानेवाली गाथा-विशेषके द्वारा जिनके पवित्र कीर्तिधामका चिन्तन किया जाता है, उन आप स्कन्दको नमस्कार है। देवताओंके निर्मल किरीटको विभूषित करनेवाली पुष्पमालाओंसे आपके मनोहर चरणारविन्दोंकी पूजा की जाती है। आपको नमस्कार है। जो वामदेवद्वारा वर्णित इस दिव्य स्कन्दस्तोत्रका पाठ या श्रवण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र बुद्धिको बढ़ानेवाला, शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाला, आयु, आरोग्य तथा धनकी प्राप्ति करानेवाला और सदा सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है। *

---

* वामदेव उवाच—

ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविधायिने ।
प्रणवाक्षरबीजाय प्रणवाय नमो नमः ॥
वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविधायिने ।
वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमो नमः ॥
नमो गुहाय भूतानां गुहासु निहिताय च ।
गुह्याय गुह्यरूपाय गुह्यागमविदे नमः ॥
अणोरणीयसे तुभ्यं महतोऽपि महीयसे ।
नमः परावरज्ञाय परमात्मस्वरूपिणे ॥
स्कन्दाय स्कन्दरूपाय मिहिरारुणतेजसे ।
नमो मन्दारमालोद्यन्मुकुटादिभृते सदा ॥
शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने ।
शिवप्रियाय शिवयोरानन्दनिधये नमः ॥
गाङ्गेयाय नमस्तुभ्यं कार्तिकेयाय धीमते ।
उमापुत्राय महते शरकाननशायिने ॥
षडक्षरशरीराय षड्विधार्थविधायिने ।
षडध्वातीतरूपाय षण्मुखाय नमो नमः ॥
द्वादशायतनेत्राय द्वादशोद्यतबाहवे ।
द्वादशायुधधाराय द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥
चतुर्भुजाय शान्ताय शक्तिकुक्कुटधारिणे ।
वरदाभयहस्ताय नमोऽसुरविदारिणे ॥
गजावल्लीकुचालिप्तकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे ।
नमो गजाननानन्दमहिमानन्दितात्मने ॥

वामदेवने इस प्रकार देवसेनापति भगवान् स्कन्दकी स्तुति करके तीन बार उनकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर नतमस्तक हो बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम और परिक्रमा करनेके अनन्तर वे विनीत भावसे उनके पास खड़े हो गये। वामदेवजीके द्वारा किये गये इस परमार्थपूर्ण स्तोत्रको सुनकर महेश्वरपुत्र भगवान् स्कन्द बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे महासेन वामदेवजीसे बोले—'मुने! मैं तुम्हारी की हुई पूजा, स्तुति और भक्तिसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। आज मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ? तुम योगियोंमें प्रधान, सर्वथा परिपूर्ण और निःस्पृह हो। इस जगत्‌में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसके लिये तुम-जैसे वीतराग महर्षि याचना करें; तथापि धर्मकी रक्षा और सम्पूर्ण जगत्‌पर अनुग्रह करनेके लिये तुम-जैसे साधु-संत भूतलपर विचरते रहते हैं। ब्रह्मन्! यदि इस समय मुझसे कुछ सुनना हो तो कहो; मैं लोकपर अनुग्रह करनेके लिये उस विषयका वर्णन करूँगा।'

स्कन्दकी यह बात सुनकर महामुनि वामदेवने विनयावनत हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

वामदेव बोले—भगवन्! आप परमेश्वर हैं। अलौकिक और लौकिक—सब प्रकारकी विभूतियोंके दाता हैं। सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सम्पूर्ण शक्तियोंको धारण करनेवाले और सबके स्वामी हैं। हम साधारण जीव हैं। आप परमेश्वरके समीप बोलनेकी शक्ति या बात करनेकी योग्यता हममें नहीं है; तथापि यह आपका अनुग्रह है कि आप मुझसे बात करते हैं। महाप्राज्ञ! मैं कृतार्थ हूँ। कणमात्र विज्ञानसे प्रेरित हो आपके समक्ष अपना प्रश्न रख रहा हूँ। मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे! प्रणव सबसे उत्तम मन्त्र है। वह साक्षात् परमेश्वरका वाचक है। पशुओं (जीवों) के पाश (बन्धन) को छुड़ानेवाले भगवान् पशुपति ही उसके वाच्यार्थ हैं। 'ओमितीदं सर्वम्' (तै० उ० १।८।१)—ओंकार ही यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला समस्त जगत् है, यह सनातन श्रुतिका कथन है। 'ओमिति ब्रह्म' (तै० उ० १।८।१) अर्थात् 'ॐ यह ब्रह्म है' तथा 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म' (माण्डू० २) - 'यह सब-का-सब ब्रह्म ही है।' इत्यादि बातें भी श्रुतियोंद्वारा कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने समष्टि तथा व्यष्टिभावसे प्रणवार्थका श्रवण किया है। तात्पर्य यह है कि समष्टि और व्यष्टि—सभी पदार्थ प्रणवके ही अर्थ हैं, प्रणवके द्वारा सबका प्रतिपादन होता है—यह बात मैंने सुन रखी है। महासेन! मुझे कभी आप-जैसा गुरु नहीं मिला है, अतः कृपा करके आप प्रणवके अर्थका प्रतिपादन कीजिये। उपदेशकी विधिसे तथा सदाचार-परम्पराको ध्यानमें रखकर आप हमें प्रणवार्थका उपदेश दें।

मुनिके इस प्रकार पूछनेपर स्कन्दने प्रणवस्वरूप, अड़तीस श्रेष्ठ कलाओंद्वारा लक्षित तथा सदा पार्श्वभागमें उमाको साथ रखनेवाले और मुनिवरोंसे घिरे हुए भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके उस श्रेयका वर्णन आरम्भ किया, जिसे श्रुतियोंने भी छिपा रखा है। (अध्याय १—११)

प्रणवके वाच्यार्थरूप सदाशिवके स्वरूपका ध्यान, वर्णाश्रम-धर्मके पालनका महत्त्व, ज्ञानमयी पूजा, संन्यासके पूर्वाङ्गभूत नान्दीश्राद्ध एवं ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन

श्रीस्कन्दने कहा—महाभाग मुनीश्वर वामदेव! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम भगवान् शिवके अत्यन्त भक्त हो और शिव-तत्त्वके ज्ञाताओंमें सबसे श्रेष्ठ हो। तीनों लोकोंमें कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो; तथापि तुम लोकपर अनुग्रह करनेवाले हो, इसलिये तुम्हारे समक्ष इस विषयका वर्णन करूँगा। इस लोकमें जितने जीव हैं, वे सब नाना प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हैं। परमेश्वरकी अति विचित्र मायाने उन्हें परमार्थसे वञ्चित कर दिया है। अतः प्रणवके वाच्यार्थभूत साक्षात् महेश्वरको वे नहीं जानते। वे महेश्वर ही सगुण-निर्गुण तथा त्रिदेवोंके जनक परब्रह्म परमात्मा हैं। मैं अपना दाहिना हाथ उठाकर तुमसे शपथपूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। मैं बारंबार इस सत्यको दोहराता हूँ कि प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणों तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित वाणी उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती है, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रिय-समुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके

ब्रह्मादिदेवमुनिकिंनरगीयमान-गाथाविशेषशुचिचिन्तितकांतिधाम्ने।
वृन्दारकामलकिरीटविभूषणस्रक्पूज्याभिरामपदपङ्कज ते नमोऽस्तु॥
इति स्कन्दस्तवं दिव्यं वामदेवेन भाषितम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्॥
महाप्रज्ञाकरं ह्येतच्छिवभक्तिविवर्धनम्। आयुरारोग्यधनकृत्सर्वकामप्रदं सदा॥
(शि० पु० कै० सं० ११। २२—२५)

निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके प्रकाशसे ही यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है।* हृदयाकाशके भीतर विराजमान जो भगवान् शम्भु मुमुक्षु पुरुषोंके ध्येय हैं, जो सर्वव्यापी प्रकाशात्मा, भासस्वरूप एवं चिन्मय हैं, जिन परम पुरुषकी पराशक्ति शिवा भक्तिभावसे सुलभ मनोहरा, निर्गुण, अपने गुणोंमे ही निगूढ़ और निष्कल हैं, उन परमेश्वरके तीन रूप हैं— स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे। मुने! मुमुक्षु योगियोंको नित्य क्रमशः उनके इन स्वरूपोंका ध्यान करना चाहिये। वे शम्भु निष्कल, सम्पूर्ण देवताओंके सनातन आदिदेव, ज्ञान-क्रिया-स्वभाव एवं परमात्मा कहे जाते हैं, उन देवाधिदेवकी साक्षात् मूर्ति सदाशिव हैं। ईशानादि पाँच मन्त्र उनके शरीर हैं। वे महादेवजी पञ्चकला रूप हैं। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शीतल आभासे युक्त हैं। उन प्रभुके पाँच मुख, दस भुजाएँ और पंद्रह नेत्र हैं। 'ईशान' मन्त्र उनका मुकुट-मण्डित मस्तक है! 'तत्पुरुष' मन्त्र उन पुरातन प्रभुका मुख है। 'अघोर' मन्त्र हृदय है। 'वामदेव' मन्त्र गुह्य प्रदेश है तथा 'सद्योजात' मन्त्र उनके पैर हैं। इस प्रकार वे पञ्चमन्त्र रूप हैं। वे ही साक्षात् साकार और निराकार परमात्मा हैं। सर्वज्ञता आदि छः शक्तियाँ उनके शरीरके छः अङ्ग हैं। वे शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरित हृदय-कमलके द्वारा सुशोभित हैं। वामभागमें मनोन्मनी नामक अपनी शक्तिसे विभूषित हैं।

अब मैं मन्त्र आदि छः प्रकारके अर्थोंको प्रकट करनेके लिये जो अर्थोपन्यासकी पद्धति है, उसके द्वारा प्रणवके समष्टि और व्यष्टिसम्बन्धी भावार्थका वर्णन करूँगा; परंतु पहले उपदेशका क्रम बताना उचित है, इसलिये उसीको सुनो। मुने! इस मानवलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। उनमें से जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण हैं; इन्हींका वैदिक आचारसे सम्बन्ध है। त्रैवर्णिकोंकी सेवा ही जिनके लिये सारभूत धर्म है, उन शूद्रोंका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं है। यदि सब त्रैवर्णिक अपने-अपने आश्रम-धर्मके पालनमें हार्दिक अनुरागके साथ लगे हों तो उनका ही श्रुतियों और स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मके अनुष्ठानमें अधिकार है, दूसरेका कदापि नहीं। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित कर्मका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष अवश्य सिद्धिको प्राप्त होगा, यह बात वेदोक्त मार्गको दिखानेवाले परमेश्वरने स्वयं कही है। वर्णधर्म और आश्रमधर्मके पालनजनित पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि उनके सायुज्यको प्राप्त हो गये हैं। ब्रह्मचर्यके पालनसे ऋषियोंकी, यज्ञकर्मोंके अनुष्ठानसे देवताओंकी तथा संतानोत्पादनसे पितरोंकी तृप्ति होती है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इस प्रकार ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण—इन तीनोंसे मुक्त हो वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर मनुष्य शीत, उष्ण तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए जितेन्द्रिय, तपस्वी और मिताहारी हो यम-नियम आदि योगका अभ्यास करे, जिससे बुद्धि निश्चल तथा अत्यन्त दृढ़ हो जाय। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास करके शुद्ध-चित्त हुआ पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यास कर दे। समस्त कर्मोंका संन्यास करनेके पश्चात् ज्ञानके समादरमें तत्पर रहे। ज्ञानके समादरको ही ज्ञानमयी पूजा कहते हैं। वह पूजा जीवकी साक्षात् शिवके साथ एकताका बोध कराकर जीवन्मुक्तिरूप फल देनेवाली है। यतियोंके लिये इस पूजाको सर्वोत्तम तथा निर्दोष समझना चाहिये। महाप्राज्ञ! तुमपर स्नेह होनेके कारण लोकानुग्रहकी कामनासे मैं उस पूजाकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो।

साधकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वार्थके ज्ञाता, वेदान्तज्ञानके पारंगत तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यकी शरणमें जाय। उत्तम बुद्धिसे युक्त एवं चतुर साधक आचार्यके समीप जाकर विधिपूर्वक दण्ड प्रणाम आदिके द्वारा उन्हें यत्नपूर्वक संतुष्ट करे। फिर गुरुकी आज्ञा ले वह बारह दिनोंतक केवल दूध पीकर रहे। तदनन्तर शुक्लपक्षकी चतुर्थी या दशमीको प्रातःकाल विधिवत् स्नान करके शुद्धचित्त हुआ विद्वान् साधक नित्य-कर्म करके गुरुको बुलाकर शास्त्रोक्त विधिसे नान्दीश्राद्ध करे। नान्दीश्राद्धमें

---

* यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन।
यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्यो न चन्द्रमाः॥
यस्य भासो विभातीदं जगत् सर्वं समन्ततः।
सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्॥
(शि० पु० कै० सं० १२। ७—१०)

विश्वेदेवोंकी संज्ञा सत्य और वसु बतायी गयी है। प्रथम देवश्राद्धमें नान्दीमुख-देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं। दूसरे ऋषिश्राद्धमें उन्हें ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा राजर्षि कहा गया है। तीसरे दिव्य श्राद्धमें उनकी वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञा बतायी गयी है। चौथे मनुष्यश्राद्धमें सनक आदि चार मुनीश्वर[1] ही नान्दीमुख-देवता हैं। पाँचवें भूत-श्राद्धमें पाँच महाभूत, नेत्र आदि ग्यारह इन्द्रिय-समूह तथा जरायुज आदि चतुर्विध प्राणिसमुदाय नान्दीमुख माने गये हैं। छठे पितृश्राद्धमें पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन नान्दीमुख-देवता हैं। सातवें मातृश्राद्धमें माता, पितामही और प्रपितामही—इन तीनोंको नान्दीमुख-देवता बताया गया है तथा आठवें आत्मश्राद्धमें आत्मा, पिता, पितामह और प्रपितामह—ये चार नान्दीमुख-देवता कहे गये हैं *। मातामहात्मक श्राद्धमें मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह—ये तीन नान्दीमुख-देवता सपत्नीक बताये गये हैं। प्रत्येक श्राद्धमें दो-दो ब्राह्मण करके जितने ब्राह्मण आवश्यक हों, उनको आमन्त्रित करे और स्वयं यत्नपूर्वक आचमन करके पवित्र हो उन ब्राह्मणोंके पैर धोये। उस समय इस प्रकार कहे—'जो समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिमें कारण, आयी हुई आपत्तिके समूहको नष्ट करनेके लिये धूमकेतु (अग्नि) रूप तथा अपार संसारसागरसे पार लगानेके लिये सेतुके समान हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मुझे पवित्र करें। जो आपत्तिरूप घने अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्य, अभीष्ट अर्थको देनेके लिये कामधेनु तथा समस्त तीर्थोंके जलसे पवित्र मूर्तियाँ हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मेरी रक्षा करें।' †

ऐसा कह पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तत्पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर भगवान् शंकरके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए दृढ़तापूर्वक आसन ग्रहण करे। हाथमें पवित्री ले शुद्ध हो नूतन यज्ञोपवीत धारणकर तीन बार प्राणायाम करे। तदनन्तर तिथि आदिका स्मरण करके इस तरह संकल्प करे—'मेरे संन्यासका अङ्गभूत जो पहले विश्वेदेवका पूजन, फिर देवादि अष्टविध श्राद्ध तथा अन्तमें मातामह-श्राद्ध है, उसे आपलोगोंकी आज्ञा लेकर मैं पार्वणकी विधिसे सम्पन्न करूँगा।' ऐसा संकल्प करके आसनके लिये दक्षिण दिशासे आरम्भ करके उत्तरोत्तर कुशोंका त्याग करे। तत्पश्चात् आचमन करके खड़ा हो वर्णक्रमका आरम्भ करे। अपने हाथमें पवित्री धारण करके दो ब्राह्मणोंके हाथोंका स्पर्श करते हुए इस प्रकार कहे—

'विश्वेदेवार्थं भवन्तौ वृणे।
भवद्भ्यां नान्दीश्राद्धे क्षणः प्रसादनीयः।'

अर्थात् 'हम विश्वेदेव श्राद्धके लिये आप दोनोंका वरण करते हैं। आप दोनों नान्दीश्राद्धमें अपना समय देनेकी कृपा करें।' इतना सभी श्राद्धोंके ब्राह्मणोंके लिये कहे। सर्वत्र ब्राह्मण वरणकी विधिका यही क्रम है।

इस प्रकार वरणका कार्य पूरा करके दस मण्डलोंका निर्माण करे। उत्तरसे आरम्भ करके दसों मण्डलोंका अक्षतसे पूजन करके उनमें क्रमशः ब्राह्मणोंको स्थापित करे। फिर उनके चरणोंपर भी अक्षत आदि चढ़ाये। तदनन्तर सम्बोधन-पूर्वक विश्वेदेव आदि नामोंका उच्चारण करे और कुश, पुष्प, अक्षत एवं जलसे 'इदं वः पाद्यम्' कहकर पाद्य निवेदन करे *।

इस प्रकार पाद्य देकर स्वयं भी अपना पैर धो ले और उत्तराभिमुख हो आचमन करके एक-एक श्राद्धके लिये जो दो-दो ब्राह्मण कल्पित हुए हैं, उन सबको आसनोंपर बिठाये तथा यह कहे—'विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्य

---

१. सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार।

* धर्मसिन्धुकार आदिने आत्म-श्राद्धमें भी तीन ही नान्दीमुख कहे हैं—आत्मा, पिता और पितामह।

† समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥
आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः॥
(शि० पु० कै० सं० १२। ४४-४५)

* प्रथम मण्डलमें दो विश्वेदेवोंके लिये, फिर आठ मण्डलोंमें क्रमशः देवादि आठ श्राद्धोंके अधिकारियोंके लिये तथा दसवें मण्डलमें सपत्नीक मातामह आदिके लिये पाद्य अर्पण करने चाहिये। अर्पण-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ सत्यवसुसंज्ञका: विश्वेदेवा: नान्दीमुखा: भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ १॥ ॐ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ २॥ ॐ देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयो नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ ३॥

इस प्रकार अन्य श्राद्धोंके लिये वाक्यकी ऊहा कर लेनी चाहिये।

इदमासनम्।'—विश्वेदेवस्वरूप ब्राह्मणके लिये यह आसन समर्पित है, यह कह कुशासन दे स्वयं भी हाथमें कुश लेकर आसनपर स्थित हो जाय। इसके बाद कहे—'अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थे भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्—इस नान्दीमुख श्राद्धमें विश्वेदेवके लिये आप दोनों क्षण (समय प्रदान) करें।' तदनन्तर 'प्राप्नुतां भवन्तौ—आप दोनों ग्रहण करें।' ऐसा कहे। फिर वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकार उत्तर दें 'प्राप्नुयाव—हम दोनों ग्रहण करेंगे।' इसके बाद यजमान उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे—'मेरे मनोरथकी पूर्ति हो, संकल्पकी सिद्धि हो—इसके लिये आप अनुग्रह करें।'

तत्पश्चात् (पद्धतिके अनुसार अर्घ्य दे, पूजन कर) शुद्ध केलेके पत्ते आदि धोये हुए पात्रोंमें परिपक्व अन्न आदि भोज्य पदार्थोंको परोसकर पृथक्-पृथक् कुश बिछाकर और स्वयं वहाँ जल छिड़ककर प्रत्येक पात्रपर आदरपूर्वक दोनों हाथ लगा 'पृथिवी ते पात्रम्'* इत्यादि मन्त्रका पाठ करे।' वहाँ स्थित हुए देवता आदिका चतुर्थ्यन्त उच्चारण करके अक्षतसहित जल ले 'स्वाहा' बोलकर उनके लिये अन्न अर्पित करे और अन्तमें 'न मम' इस वाक्यका उच्चारण करे।† सर्वत्र—माता आदिके लिये भी अन्न-अर्पणकी यही विधि है।

अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करे—

यत्पादपद्मस्मरणाद् यस्य नामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥

'जिनके चरणारविन्दोंके चिन्तन एवं नामजपसे न्यूनतापूर्ण अथवा अधूरा कर्म भी पूरा हो जाता है, उन साम्ब सदाशिव (उमा-महेश्वर) की मैं वन्दना करता हूँ।'

इसका पाठ करके कहे—'ब्राह्मणो! मेरे द्वारा किया हुआ यह नान्दीमुख श्राद्ध यथोक्तरूपसे परिपूर्ण हो, यह आप कहें।' ऐसी प्रार्थनाके साथ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके उनका आशीर्वाद ले और अपने हाथमें लिया हुआ जल छोड़ दे। फिर पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करे और उठकर ब्राह्मणोंसे कहे—'यह अन्न अमृतरूप हो।' फिर उदारचेता साधक हाथ जोड़ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रार्थना करे। श्रीरुद्रसूक्तका चमकाध्यायसहित पाठ करे। पुरुष-सूक्तकी भी विधिवत् आवृत्ति करे। मनमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हुए 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि पाँच मन्त्रोंका जप करे। जब ब्राह्मणलोग भोजन कर चुकें, तब रुद्रसूक्तका पाठ समाप्तकर क्षमाप्रार्थनापूर्वक उन ब्राह्मणोंको पुनः 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर उत्तरापोशनके लिये जल दे।

तदनन्तर हाथ-पैर धो आचमन करके पिण्डदानके स्थानपर जाय। वहाँ पूर्वाभिमुख बैठकर मौनभावसे तीन बार प्राणायाम करे। इसके बाद 'मैं 'नान्दीमुख' श्राद्धका अङ्गभूत पिण्डदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके दक्षिणसे लेकर उत्तरकी ओर नौ रेखाएँ खींचे और उन रेखाओंपर क्रमशः बारह-बारह पूर्वाग्र कुश बिछाये। फिर दक्षिणकी ओरसे देवता आदि-के पाँच* स्थानोंपर चुपचाप अक्षत और जल छोड़े। पितृवर्गके तीनों† स्थानोंपर क्रमशः अक्षत, जल छोड़कर नवें मातामहादिके स्थानपर भी मार्जन करे‡। तत्पश्चात् 'अत्र पितरो मादयध्वम्' कहकर देवादिके पाँचों स्थानोंपर क्रमशः अक्षत-जल छोड़े। इस प्रकार अवनेजन दे पाँचों स्थानोंपर प्रत्येकके लिये तीन-तीन पिण्ड दे§। (इसी तरह शेष स्थानोंपर भी करे।) अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सभी पिण्ड पृथक्-पृथक् देने चाहिये। फिर पितरोंके साद्‌गुण्यके लिये जल-अक्षत अर्पित करे। तत्पश्चात् अपने हृदय-कमलमें सदा-शिवदेवका ध्यान करे और पूर्वोक्त 'यत्पादपद्मस्मरणात्'……' इत्यादि श्लोकका पुनः पाठ करके ब्राह्मणोंको नमस्कारपूर्वक यथाशक्ति दक्षिणा दे। फिर त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करके देवता-पितरोंका विसर्जन करे। पिण्डोंका उत्सर्ग करके

---

* 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा' यह पूरा मन्त्र है।

† वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—'ॐ सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः स्वाहा न मम' इत्यादि।

* देव, ऋषि, दिव्य, मनुष्य और भूत—इनके पाँच स्थान समझने चाहिये।

† पिता आदि, माता आदि तथा आत्मा आदि—ये तीन स्थान हैं।

‡ उस समय इस प्रकार कहे—'शुन्धन्तां ब्रह्माणो नान्दीमुखाः शुन्धन्तां विष्णवो नान्दीमुखाः शुन्धन्तां महेश्वरा नान्दीमुखाः।' यह प्रथम रेखापर मार्जन करते समय कहे। इस प्रकार अन्य रेखाओंपर भी कहता चले।

§ पिण्डदान-वाक्य इस प्रकार है—'ब्रह्मणे नान्दीमुखाय स्वाहा', 'विष्णवे नान्दीमुखाय स्वाहा।' इत्यादि। धर्मसिन्धुकारने प्रत्येक देवताके लिये दो-दो पिण्डका विधान किया है, अतः नौ स्थानोंके २७ देवताओंके लिये ५४ पिण्ड होंगे।

उन्हें गौओंको खानेके लिये दे दे अथवा जलमें डाल दे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन करके स्वजनोंके साथ भोजन करे।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शुद्ध बुद्धिवाला साधक उपवासपूर्वक व्रत रक्खे। काँख और उपस्थके बालोंको छोड़कर शेष सभी बाल मुँड़वा दे, परंतु शिखाके सात-आठ बाल अवश्य बचा ले। फिर स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहिनकर शुद्ध हो दो बार आचमन करके मौन हो विधिवत् भस्म धारण करे। पुण्याहवाचन करके उससे अपने-आपका प्रोक्षण कर बाहर-भीतरसे शुद्ध हो होम, द्रव्य और आचार्यकी दक्षिणाके द्रव्यको छोड़कर शेष सभी द्रव्य महेश्वरार्पण-बुद्धिसे ब्राह्मणों और विशेषतः शिवभक्तोंको बाँट दे। तदनन्तर गुरुरूपधारी शिवके लिये वस्त्र आदिकी दक्षिणा दे पृथ्वीपर दण्डवत्-प्रणाम करके डोरा, कौपीन, वस्त्र तथा दण्ड आदि जो धोकर पवित्र किये गये हों, धारण करे। तदनन्तर होमद्रव्य और समिधा आदि लेकर समुद्र या नदीके तटपर, पर्वतपर, शिवालयमें, वनमें अथवा गोशालामें किसी उत्तम स्थानका विचार करके वहाँ बैठ जाय और आचमन करके पहले मानसिक जप करे। फिर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्रका तीन बार जप करके 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इस मन्त्रका पाठ करे। इसके बाद 'अथ महाव्रतम्', 'अग्निर्वै देवानाम्', 'एतस्य समाम्नायम्', 'ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ', 'अग्न आयाहि वीतये' तथा 'शं नो देवीरभीष्टये' इत्यादिका पाठ करे। तत्पश्चात् 'म य र स त ज भ न ल ग' 'पञ्च संवत्सरमयम्', 'समाम्नायः समाम्नातः', 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि', 'वृद्धिरादैच्', 'अथातो धर्मजिज्ञासा', 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'—इन सबका पाठ करे। तदनन्तर यथासम्भव वेद, पुराण आदिका स्वाध्याय करे। इसके बाद 'ॐ ब्रह्मणे नमः', 'ॐ इन्द्राय नमः', 'ॐ सूर्याय नमः', 'ॐ सोमाय नमः', 'ॐ प्रजापतये नमः', 'ॐ आत्मने नमः', 'ॐ अन्तरात्मने नमः', 'ॐ ज्ञानात्मने नमः', 'ॐ परमात्मने नमः' इत्यादि रूपसे ब्रह्मा आदि शब्दोंके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' लगाकर उनके चतुर्थ्यन्त रूपका जप करे। इसके बाद तीन मुट्ठी सत्तू लेकर प्रणवके उच्चारणपूर्वक तीन बार खाय और प्रणवसे ही दो बार आचमन करके नाभिका स्पर्श करे। उस समय आगे बताये जानेवाले शब्दोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः स्वाहा' जोड़कर उनका उच्चारण करे। यथा—'ॐ आत्मने नमः स्वाहा', 'ॐ अन्तरात्मने नमः स्वाहा', 'ॐ ज्ञानात्मने नमः स्वाहा' 'ॐ परमात्मने नमः स्वाहा', 'ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा', इति। तदनन्तर पृथक्-पृथक् प्रणवमन्त्रसे* ही दूध दही मिले हुए घीको (अथवा केवल जलको) तीन बार चाटकर पुनः दो बार आचमन करे। इसके बाद मनको स्थिर करके सुस्थिर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर शास्त्रोक्त विधिसे तीन बार प्राणायाम करे। (अध्याय १२)

संन्यासग्रहणकी शास्त्रीय विधि—गणपति-पूजन, होम, तत्त्व-शुद्धि, सावित्री-प्रवेश, सर्वसंन्यास और दण्ड-धारण आदिका प्रकार

स्कन्द कहते हैं—वामदेव! तदनन्तर मध्याह्नकालमें स्नान करके साधक अपने मनको वशमें रखते हुए गन्ध, पुष्प और अक्षत आदि पूजा द्रव्योंको ले आये और नैर्ऋत्य कोणमें देवपूजित विघ्नराज गणेशकी पूजा करे। 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक गणेशजीका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। उनकी अङ्गकान्ति लाल है, शरीर विशाल है। सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उन्होंने अपने कर-कमलोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, अक्षमाला तथा वर नामक मुद्राएँ धारण कर रक्खी हैं। इस प्रकार आवाहन और ध्यान करनेके पश्चात् शम्भुपुत्र गजाननकी पूजा करके खीर, पूआ, नारियल और गुड़ आदिका उत्तम नैवेद्य निवेदन करे। तत्पश्चात् ताम्बूल आदि दे उन्हें संतुष्ट करके नमस्कार करे और अपने अभीष्ट कार्यकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये प्रार्थना करे।

तदनन्तर अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार औपासनाग्निमें आज्यभागान्त† हवन करके अग्निदेवतासम्बन्धी यज्ञविषयक स्थालीपाक होम करना चाहिये। इसके बाद 'भूः स्वाहा' इस मन्त्रसे पूर्णाहुति होम करके हवनका कार्य

* धर्मसिन्धुकारने इसके लिये तीन मन्त्र लिखे हैं। प्रथम बार चाटकर कहे—'त्रिवृदसि', द्वितीय बार 'प्रवृदसि' और तृतीय बार 'विवृदसि'।

† कुशकण्डिकाके अनन्तर अग्निमें जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमें प्रथम दोको 'आघार' और अन्तिम दोको 'आज्यभाग' कहते हैं। प्रजापति और इन्द्रके उद्देश्यसे 'आघार' तथा अग्नि और सोमके उद्देश्यसे 'आज्यभाग' दिया जाता है।

समाप्त करे। तत्पश्चात् आलस्यरहित हो अपराह्णकालतक गायत्री-मन्त्रका जप करता रहे। तदनन्तर स्नान करके सायंकालकी संध्योपासना तथा सायंकालिक उपासनासम्बन्धी नित्यहोम आदि करके मौन हो गुरुकी आज्ञा ले चरु पकाये। फिर अग्निमें समिधा, चरु और घीकी रुद्रसूक्तसे और सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् आहुति दे। अग्निमें उमासहित महेश्वरकी भावना करे और गौरीदेवीका चिन्तन करते हुए '**गौरीर्मिमाय***' इस मन्त्रसे एक सौ आठ बार होम करके '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'इस मन्त्रसे एक बार आहुति दे।

इस प्रकार तन्त्रसे हवन करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष अग्निसे उत्तरमें एक आसनपर बैठे, जिसमें नीचे कुशा, उसके ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर वस्त्र बिछा हुआ हो। ऐसे सुखद आसनपर बैठकर मौनभावसे सुस्थिरचित्त हो जागरणपूर्वक ब्राह्ममुहूर्त आनेतक गायत्रीका जप करता रहे। इसके बाद स्नान करे। जो जलसे स्नान करनेमें असमर्थ हो, वह भस्मसे ही विधिपूर्वक स्नान करे। फिर उस अग्निपर ही चरु पकाकर उसे घीसे तर करे। उसे उतारकर अग्निसे उत्तर दिशामें कुशपर रक्खे। पुनः घीसे चरुको मिश्रित करे। इसके बाद व्याहृति मन्त्र, रुद्रसूक्त तथा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंका जप करे और इनके द्वारा एक-एक आहुति भी दे। चित्तको भगवान् शिवके चरणारविन्दमें लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेव और ब्रह्माके लिये भी एक-एक आहुति दे। इन सबके नामके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें '**नमः स्वाहा**' जोड़कर चतुर्थ्यन्त उच्चारण करे (यथा—**ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा**—इत्यादि)। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन कराकर '**अग्नये स्वाहा**' इस मन्त्रसे अग्निके मुखमें आहुति देनेतकका कार्य सम्पन्न करे। फिर '**प्राणाय स्वाहा**' इत्यादि पाँच मन्त्रोंद्वारा घृतसहित चरुकी आहुति दे। इसके बाद '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**' बोलकर एक आहुति और दे। तदनन्तर फिर रुद्रसूक्त तथा ईशानादि पाँच मन्त्रोंका जप करे। महेशादि चतुर्व्यूह मन्त्रोंका भी पाठ करे। इस प्रकार तन्त्र-होम करके अपनी गृह्यशाखामें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार उन-उन देवताओंके उद्देश्यसे बुद्धिमान् पुरुष साङ्ग होम करे। इस तरह जो अग्निमुख आदि कर्म-तन्त्रको प्रवर्तित किया गया है, उसका निर्वाह करके विरजा होम करे। छब्बीस तत्त्वरूप इस शरीरमें छिपे हुए तत्त्व-समुदायकी शुद्धिके लिये विरजा होम करना चाहिये।

उस समय यह कहे कि 'मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, इन सबकी शुद्धि हो।' उस प्रसङ्गमें आत्मतत्त्वकी शुद्धिके लिये आरुणकेतुक मन्त्रोंका पाठ करते हुए पृथ्वी आदि तत्त्वसे लेकर पुरुषतत्त्वपर्यन्त क्रमशः सभी तत्त्वोंकी शुद्धिके निमित्त घृतयुक्त चरुका होम करे तथा शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए मौन रहे*। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पृथिव्यादिपञ्चक कहलाते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि पञ्चक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ—ये वागादिपञ्चक हैं। श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना और त्वक्—ये श्रोत्रादिपञ्चक हैं। शिर, पार्श्व, पृष्ठ और उदर—ये चार हैं। इन्हींमें जङ्घाको भी जोड़ ले। फिर त्वक् आदि सात धातुएँ हैं। प्राण, अपान आदि पाँच वायुओंको प्राणादिपञ्चक कहा गया है। अन्नमयादि पाँचों कोशोंको कोशपञ्चक कहते हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय।) इनके सिवा मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृति और पुरुष हैं। भोक्तापनको प्राप्त हुए पुरुषके लिये भोगकालमें जो पाँच अन्तरङ्ग साधन हैं, उन्हें तत्त्वपञ्चक कहा गया है। उनके नाम ये हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला। ये पाँचों मायासे उत्पन्न हैं। '**मायां तु प्रकृतिं विद्यात्**'। इस श्रुतिमें प्रकृति ही माया कही गयी है। उसीसे ये तत्त्व उत्पन्न हुए हैं, इसमें संशय नहीं है। कालका स्वभाव ही 'नियति' है, ऐसा श्रुतिका कथन है। ये नियति आदि जो पाँच तत्त्व हैं, इन्हींको 'पञ्चकञ्चुक' कहते हैं। इन पाँच तत्त्वोंको न जाननेवाला विद्वान् भी मूढ ही कहा गया है।

नियति प्रकृतिसे नीचे है और यह पुरुष प्रकृतिसे ऊपर है। जैसे कौएकी एक ही आँख उसके दोनों गोलकोंमें घूमती रहती है, उसी प्रकार पुरुष प्रकृति और नियति दोनोंके पास रहता है। यह विद्यातत्त्व कहा गया है। शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव—इन पाँचोंको शिवतत्त्व कहते हैं। ब्रह्मन्! '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' इस श्रुतिके वाक्यसे यह शिवतत्त्व ही

* पूरा मन्त्र इस प्रकार है—गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् स्वाहा। (ऋग्वेद मं० १ सू० १६४। ४१)

* तत्त्वशुद्धिके लिये पृथक्-पृथक् वाक्य-योजना करनी चाहिये, जैसे पृथ्वी आदिके लिये—'पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशो मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳस्वाहा' इतना बोलकर समिधा, चरु और आज्यकी चालीस-चालीस आहुतियाँ दे। इसी तरह सभी तत्त्वोंके नाम लेकर वाक्य-योजना करे।

प्रतिपादित हुआ है। मुनीश्वर ! पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त जो तत्त्वसमूह है, उसमेंसे प्रत्येकको क्रमशः अपने-अपने कारणमें लीन करते हुए उसकी शुद्धि करो। (१ पृथिव्यादिपञ्चक, २ शब्दादिपञ्चक, ३ वागादिपञ्चक, ४ श्रोत्रादिपञ्चक, ५ शिरआदिपञ्चक, ६ त्वगादिधातुसप्तक, ७ प्राणादिपञ्चक, ८ अन्नमयादिकोशपञ्चक ९ मन आदि पुरुषान्त तत्त्व, १० नियत्यादि तत्त्वपञ्चक (अथवा पञ्चकञ्चुक) और ११ शिवतत्त्वपञ्चक—ये ग्यारह वर्ग हैं; इन एकादश-वर्गसम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें **'परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम'** इस वाक्यका उच्चारण करे*। इसके द्वारा अपने उद्देश्यका त्याग बताया गया है।

इसके बाद 'विविषा' तथा 'कर्षोत्क' सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें अर्थात् **'विविषायै स्वाहा' 'कर्षोत्काय स्वाहा'** इनके अन्तमें स्वत्वत्यागके लिये **'व्यापकाय परमात्मने शिवज्योतिषे विश्वभूतघसनोत्सुकाय परस्मै देवाय इदं न मम'** इसका उच्चारण करे। तत्पश्चात् **'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा स चा'** इस मन्त्रके अन्तमें **'विश्वरूपाय पुरुषाय ॐ स्वाहा'** बोलकर स्वत्व-त्यागके लिये **'लोकत्रयव्यापिने परमात्मने शिवायेदं न मम'** का उच्चारण करे। तदनन्तर अपनी शाखामें बतायी हुई विधिसे पहले तन्त्र-कर्मका सम्पादन करके घृतमिश्रित चरुका प्राशन एवं आचमन करनेके पश्चात् पुरोधा आचार्यको सुवर्ण आदिसे सम्पन्न समुचित दक्षिणा दे।

फिर ब्रह्माका विसर्जन करके प्रातःकालिक उपासना-सम्बन्धी नित्य होम करे। इसके बाद मनुष्य **'सं मा सिञ्चन्तु मरुतः'** इस मन्त्रका जप करे।† तत्पश्चात्—**'या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मात्मानम्*'** इत्यादि मन्त्रोंसे हाथको अग्निमें तपाकर उस अग्निको अद्वैतधाम-स्वरूप अपने आत्मामें आरोपित करे। तदनन्तर प्रातःकालकी संध्योपासना करके सूर्योपस्थानके पश्चात् जलाशयमें जाकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे। वहाँ प्रसन्नतापूर्वक मनको स्थिरकर उत्सुकतापूर्वक वेदमन्त्रोंका जप करे।†

जो अग्निहोत्री हो, वह स्थापित अग्निमें 'प्राजापत्य‡ इष्टि' करे तथा वेदोक्त वैश्वानर स्थालीपाक होम करके उसमें अपना सब कुछ दान कर दे। पूर्वोक्तरूपसे अग्निका आत्मामें आरोप करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। मुनीश्वर ! फिर वह साधक निम्नाङ्कितरूपसे 'सावित्री-प्रवेश' करे—

---

* यथा—'पृथिव्यादिपञ्चकं मे शुद्धयतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा—'पृथिव्यादिपञ्चकाय परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम।'

† धर्मसिन्धुकारने कहा है कि 'सं मा सिञ्चन्तु मरुतः' इस मन्त्रसे अग्निका उपस्थान करके उसमें काष्ठमय यज्ञपात्रोंको जला दे। यदि पात्र तैजस धातुके हों तो उन्हें आचार्यको दे दे।

पूरा मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार है—

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिञ्चत्वायुषा च धनेन
च बलेन चायुष्मन्तं करोतु मा।

अर्थात् मरुद्गण, इन्द्र, बृहस्पति तथा अग्नि—ये सभी देवता मुझपर कल्याणकी वर्षा करें। ये अग्निदेव मुझे आयु, ज्ञान-रूपी धन तथा साधनकी शक्तिसे सम्पन्न करें। साथ ही मुझको दीर्घजीवी भी बनायें।

* पूरे मन्त्र और अर्थ यों हैं—

या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मात्मानम्।
अच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे नर्या पुरूणि॥
यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिम्।
जातवेदो भुव आजायमानः सक्षय एहि॥

'हे अग्निदेव ! जो तुम्हारा यज्ञिय (यज्ञोंमें प्रकट होनेवाला) स्वरूप है, उसी स्वरूपसे तुम यहाँ पधारो और मेरे लिये बहुत-से मनुष्योपयोगी विशुद्ध धन (साधन-सम्पत्ति) की सृष्टि करते हुए आत्मारूपसे मेरे आत्मामें विराजमान हो जाओ। तुम यज्ञरूप होकर अपने कारणरूप यज्ञमें पहुँच जाओ। हे जातवेदा ! तुम पृथिवीसे उत्पन्न होकर अपने धामके साथ यहाँ पधारो।'

† वहाँ जल लेकर उसे 'आशुः शिशानः' इस सूक्तसे अभिमन्त्रित करके 'सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहा' ऐसा कहकर छोड़ दे। फिर संन्यासका संकल्प ले तीन बार जलाञ्जलि दे। उसके मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा॥ १॥ ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा॥ २॥ ॐ आपो वै गच्छ स्वाहा॥ ३॥ (धर्मसिन्धु)

‡ 'यदिष्टं यच्च पूर्तं यच्चापद्यनापदि प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि। विमुक्तोऽहं देवकिल्बिषात्स्वाहा' ऐसा कह घीकी आहुति दे—'इदं प्रजापतये न मम' कहकर त्याग करे। यही प्राजापत्येष्टि है।

ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्, ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि* भर्गो देवस्य धीमहि, ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोदयात्, ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।'

—इन वाक्योंका प्रेमपूर्वक उच्चारण करे और चित्तको चञ्चल न होने दे ।

उस समय गायत्रीका इस प्रकार ध्यान करे—ये भगवती गायत्री साक्षात् भगवान् शंकरके आधे शरीरमें वास करनेवाली हैं । इनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं । ये पंद्रह नेत्रोंसे प्रकाशित होती हैं । नूतन रत्नमय किरीटसे जगमगाती हुई चन्द्रलेखा इनके मस्तकको विभूषित करती है । इनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है । ये शुभलक्षणा देवी अपने दस हाथोंमें दस प्रकारके आयुध धारण करती हैं । हार, केयूर (बाजूबंद), कड़े, करधनी और नूपुर आदि आभूषणोंसे उनके अङ्ग विभूषित हैं । इन्होंने दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खा है । इनके सभी आभूषण रत्ननिर्मित हैं । विष्णु, ब्रह्मा, देवता, ऋषि तथा गन्धर्वराज और मनुष्य ही सदा इनका सेवन करते हैं । ये सर्वव्यापिनी शिवा सदाशिव देवकी मनोहारिणी धर्मपत्नी हैं । सम्पूर्ण जगत्‌की माता, तीनों लोकोंकी जननी, त्रिगुणमयी, निर्गुणा तथा अजन्मा हैं । इस प्रकार गायत्री-देवीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए शुद्धबुद्धिवाला पुरुष ब्राह्मणत्व आदि प्रदान करनेवाली अजन्मा आदिदेवी त्रिपदा गायत्रीका जप करे । गायत्री व्याहृतियोंसे उत्पन्न हुई हैं और उन्हींमें लीन होती हैं । व्याहृतियाँ प्रणवसे प्रकट हुई हैं और प्रणवमें ही लयको प्राप्त होती हैं । प्रणव सम्पूर्ण वेदोंका आदि है । वह शिवका वाचक, मन्त्रोंका राजाधिराज, महाबीजस्वरूप और श्रेष्ठ मन्त्र है । शिव प्रणव है और प्रणव शिव कहा गया है; क्योंकि वाच्य और वाचकमें अधिक भेद नहीं होता ! इसी महामन्त्रको काशीमें शरीर-त्याग करनेवाले जीवोंके मरणकालमें उन्हें सुनाकर भगवान् शिव परम मोक्ष प्रदान करते हैं । इसलिये श्रेष्ठ यति अपने हृदयकमलके मध्यमें विराजमान एकाक्षर प्रणवरूप परम कारण शिव देवकी उपासना करते हैं । दूसरे मुमुक्षु, धीर एवं विरक्त लौकिक पुरुष भी मनसे विषयोंका परित्याग करके प्रणवरूप परम शिवकी उपासना करते हैं ।

इस प्रकार गायत्रीका शिववाचक प्रणवमें लय करके 'अहं वृक्षस्य रेरिवा*' इन अनुवाकका जप करे । तत्पश्चात् 'यश्छन्दसामृषभः' (तैत्तिरीय १ । ४ । १)—इस अनुवाकको आरम्भसे लेकर ...'श्रुतं मे गोपाय' † तक पढ़कर कहे 'दारैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोऽहम्' अर्थात् 'मैं स्त्रीकी कामना, धनकी कामना और लोकोंमें ख्यातिकी कामनासे ऊपर उठ गया हूँ ।' मुने ! इस वाक्यका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे क्रमशः तीन बार उच्चारण करे । तत्पश्चात् सृष्टि, स्थिति और लयके क्रमसे पहले प्रणव-मन्त्रका उद्धार करके फिर क्रमशः इन वाक्योंका उच्चारण करे—'ॐ भूः संन्यस्तं मया' 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया'

---

* धर्मसिन्धुमें 'प्रविशामि' पाठ है ।

* अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । (तैत्तिरीयोप० १ । १० । १)

'मैं संसार वृक्षका उच्छेद करनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतके शिखरकी भाँति उन्नत है; अन्नोत्पादक शक्तिसे युक्त सूर्यमें जैसे उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृतस्वरूप हूँ तथा मैं प्रकाशयुक्त धनका भंडार हूँ, परमानन्दमय अमृतसे अभिषिक्त तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाला हूँ—इस प्रकार यह त्रिशङ्कु ऋषिका अनुभव किया हुआ वैदिक प्रवचन है ।

† यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देव धारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय ।

'जो वेदोंमें सर्वश्रेष्ठ है, सर्वरूप है और अमृतस्वरूप वेदोंसे प्रधानरूपमें प्रकट हुआ है, वह सबका स्वामी परमेश्वर मुझे धारणायुक्त बुद्धिसे सम्पन्न करे । हे देव ! मैं आपकी कृपासे अमृतमय परमात्माको अपने हृदयमें धारण करनेवाला बन जाऊँ । मेरा शरीर विशेष फुर्तीला—सब प्रकारसे रोगरहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय मधुमती (मधुरभाषिणी) हो जाय । मैं दोनों कानोंद्वारा अधिक सुनता रहूँ । (हे प्रणव ! तू) लौकिक बुद्धिसे ढकी हुई परमात्माकी निधि है । तू मेरे सुने हुए उपदेशकी रक्षा कर ।'

'ॐ सुवः संन्यस्तं मया' 'ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया'* इन वाक्योंका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे हृदयमें सदाशिवका ध्यान करते हुए सावधान चित्तसे उच्चारण करे। तदनन्तर 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' (मेरी ओरसे सब प्राणियोंको अभयदान दिया गया)—ऐसा कहते हुए पूर्व दिशामें एक अञ्जलि जल लेकर छोड़े। इसके बाद शिखाके शेष बालोंको हाथसे उखाड़ डाले और यज्ञोपवीतको निकालकर जलके साथ हाथमें ले इस प्रकार कहे—'ओं भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा' यों कहकर उसका जलमें ही होम कर दे। फिर 'ॐ भूः संन्यस्तं मया' 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया' 'ॐ सुवः संन्यस्तं मया' —इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके उसका आचमन करे। फिर जलाशयके किनारे आकर वस्त्र और कटिसूत्रको भूमिपर त्याग दे तथा उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके सात पदसे कुछ अधिक चले। कुछ दूर जानेपर आचार्य उससे कहे, 'ठहरो, ठहरो भगवन्! लोकव्यवहारके लिये कौपीन और 'दण्ड स्वीकार करो।' यों कह आचार्य अपने हाथसे ही उसे कटिसूत्र और कौपीन देकर गेरुआ वस्त्र भी अर्पित करे। तत्पश्चात् संन्यासी जब उससे अपने शरीरको ढककर दो बार आचमन कर ले तब आचार्य उस शिष्यसे कहे—'इन्द्रस्य वज्रोऽसि' यह मन्त्र बोलकर दण्ड ग्रहण करो।' तब वह इस मन्त्रको पढ़े और 'सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय†।—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दण्डकी प्रार्थना करके उसे हाथमें ले। (तत्पश्चात् प्रणव या गायत्रीका उच्चारण करके कमण्डलु ग्रहण करे।)

तदनन्तर भगवान् शिवके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए गुरुके निकट जा वह तीन बार पृथ्वीमें लोटकर दण्डवत् प्रणाम करे। उस समय वह अपने मनको पूर्णतया संयममें रक्खे। फिर धीरेसे उठकर प्रेमपूर्वक अपने गुरुकी ओर देखते हुए हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप खड़ा हो जाय। संन्यास-दीक्षा-विषयक कर्म आरम्भ होनेके पहले ही शुद्ध गोबर लेकर आँवले बराबर उसके गोले बना ले और सूर्यकी किरणोंसे ही उन्हें सुखाये। फिर होम आरम्भ होनेपर उन गोलोंको होमाग्निके बीचमें डाल दे। होम समाप्त होनेपर उन सबको संग्रह करके सुरक्षित रक्खे। तदनन्तर दण्ड-धारणके पश्चात् गुरु विरजाग्निजनित उस श्वेत भस्मको लेकर उसीको शिष्यके अङ्गोंमें लगाये अथवा उसे लगानेकी आज्ञा दे। उसका क्रम इस प्रकार है—'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳ ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूꣳषि' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर ईशानादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उस भस्मका शिष्यके अङ्गोंसे स्पर्श कराकर उसे मस्तकसे लेकर पैरोंतक सर्वाङ्गमें लगानेके लिये दे दे। शिष्य उस भस्मको विधिपूर्वक हाथमें लेकर 'त्र्यायुषम्०*' तथा 'त्र्यम्बकम्०†' इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए ललाट आदि अङ्गोंमें क्रमशः त्रिपुण्ड्र धारण करे।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय-कमलमें विराजमान उमासहित भगवान् शंकरका भक्तियुक्त चित्तसे ध्यान करे। फिर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें ऋषि, छन्द और देवतासहित प्रणवका उपदेश करे। इसके बाद कृपा करके प्रणवके अर्थका भी बोध कराये। श्रेष्ठ गुरुको चाहिये कि वह प्रणवके छः प्रकारके अर्थका ज्ञान कराते हुए उसके बारह भेदोंका उपदेश दे। तत्पश्चात् शिष्य दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर गुरुको साष्टाङ्ग प्रणाम करे और सदा उनके अधीन रहे, उनकी आज्ञाके बिना दूसरा कोई कार्य न करे। गुरुकी आज्ञासे शिष्य वेदान्तके तात्पर्यके अनुसार सगुण-निर्गुण-भेदसे शिवके ज्ञानमें तत्पर रहे। गुरु अपने उसी शिष्यके द्वारा श्रवण,

* मैंने भूलोकका संन्यास (पूर्णतः त्याग) कर दिया। मैंने भुवः (अन्तरिक्ष) लोकका परित्याग कर दिया तथा मैंने स्वर्गलोकका भी सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनोंको भलीभाँति त्याग दिया।

† हे दण्ड! तुम मेरे सखा (सहायक) हो, मेरी रक्षा करो। मेरे ओज (प्राणशक्ति) की रक्षा करो। तुम वही मेरे सखा हो, जो इन्द्रके हाथमें वज्रके रूपमें रहते हो। तुमने ही वज्ररूपसे आघात करके वृत्रासुरका संहार किया है। तुम मेरे लिये कल्याणमय बनो। मुझमें जो पाप हो, उसका निवारण करो।

* त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥
(यजुर्वेद ३। ६२)

† त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥
(यजुर्वेद ३। ६०)

मनन और निदिध्यासनपूर्वक जपके अन्तमें प्रातःकालिक आदि नियमोंका अनुष्ठान करवाये। कैलासप्रस्तर नामक मण्डलमें शिवके द्वारा प्रतिपादित मार्गके अनुसार शिष्य वहीं रहकर शिवपूजन करे। यदि गुरुके आदेशके अनुसार वह प्रतिदिन वहीं रहकर मङ्गलमय देवता शिवकी पूजा करनेमें असमर्थ हो तो उनसे अर्घासहित स्फटिकमय शिवलिङ्ग ग्रहण कर ले और कहीं भी रहकर नित्य उसका पूजन किया करे। वह गुरुके निकट शपथ खाते हुए इस तरह प्रतिज्ञा करे—'मेरे प्राण चले जायँ, यह अच्छा है। मेरा सिर काट लिया जाय, यह भी अच्छा है; परंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये विना कदापि भोजन नहीं कर सकता।' ऐसा कहकर सुदृढ़ चित्तवाला शिष्य मनमें शिवकी भक्ति लिये गुरुके निकट तीन बार शपथ खाय और तभीसे मनमें उत्साह रखकर उत्तम भक्तिभावसे पञ्चावरणपूजनकी पद्धतिके अनुसार प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा करे।

(अध्याय १३)

प्रणवके अर्थोंका विवेचन

वामदेवजी बोले—भगवन्! षडानन! सम्पूर्ण विज्ञानमय अमृतके सागर! समस्त देवताओंके स्वामी महेश्वरके पुत्र! प्रणतार्तिके भञ्जन कार्तिकेय! आपने कहा है कि प्रणवके छः प्रकारके अर्थोंका परिज्ञान अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है। वह छः प्रकारके अर्थोंका ज्ञान क्या है? प्रभो! वे छः प्रकारके अर्थ कौन-कौन-से हैं और उनका परिज्ञान क्या वस्तु है? उनके द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु क्या है और उन अर्थोंका परिज्ञान होनेपर कौन-सा फल मिलता है? पार्वतीनन्दन! मैंने जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका सम्यक्रूपसे वर्णन कीजिये।

सुब्रह्मण्य स्कन्द बोले—मुनिश्रेष्ठ! तुमने जो कुछ पूछा है, उसे आदरपूर्वक सुनो। समष्टि और व्यष्टिभावसे महेश्वरका परिज्ञान ही प्रणवार्थका परिज्ञान है। मैं इस विषयको विस्तारके साथ कहता हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! मेरे इस प्रवचनसे उन छः प्रकारके अर्थोंकी एकताका भी बोध होगा। पहला मन्त्ररूप अर्थ है, दूसरा यन्त्रभावित अर्थ है, तीसरा देवताबोधक अर्थ है, चौथा प्रपञ्चरूप अर्थ है, पाँचवाँ अर्थ गुरुके रूपको दिखानेवाला है और छठा अर्थ शिष्यके स्वरूपका परिचय देनेवाला है। इस प्रकार ये छः अर्थ बताये गये। मुनिश्रेष्ठ! उन छहों अर्थोंमें जो मन्त्ररूप अर्थ है, उसको तुम्हें बताता हूँ। उसका ज्ञान होनेमात्रसे मनुष्य महाज्ञानी हो जाता है। प्रणवमें वेदोंने पाँच अक्षर बताये हैं, पहला आदिस्वर—'अ', दूसरा पाँचवाँ स्वर—'उ', तीसरा पञ्चम वर्ग पवर्गका अन्तिम अक्षर 'म', उसके बाद चौथा अक्षर बिन्दु और पाँचवाँ अक्षर नाद। इनके सिवा दूसरे वर्ण नहीं हैं। यह समष्टिरूप वेदादि (प्रणव) कहा गया है। नाद सब अक्षरोंकी समष्टिरूप है; बिन्दुयुक्त जो चार अक्षर हैं, वे व्यष्टिरूपसे शिववाचक प्रणवमें प्रतिष्ठित हैं।

विद्वन्! अब यन्त्ररूप या यन्त्रभावित अर्थ सुनो। वह यन्त्र ही शिवलिङ्गरूपमें स्थित है। सबसे नीचे पीठ (अर्घा) लिखे। उसके ऊपर पहला स्वर अकार लिखे। उसके ऊपर उकार अङ्कित करे और उसके भी ऊपर पवर्गका अन्तिम अक्षर मकार लिखे। मकारके ऊपर अनुस्वार और उसके भी ऊपर अर्धचन्द्राकार नाद अङ्कित करे। इस तरह यन्त्रके पूर्ण हो जानेपर साधकका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होता है। इस प्रकार यन्त्र लिखकर उसे प्रणवसे ही वेष्टित करे। उस प्रणवसे ही प्रकट होनेवाले नादके द्वारा नादका अवसान समझे।

मुने! अब मैं देवतारूप तीसरे अर्थको बताऊँगा, जो सर्वत्र गूढ़ है। वामदेव! तुम्हारे स्नेहवश भगवान् शंकरके द्वारा प्रतिपादित उस अर्थका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। 'सद्योजातं प्रपद्यामि' यहाँसे आरम्भ करके 'सदाशिवोम्' तक जो पाँच* मन्त्र हैं, श्रुतिने प्रणवको इन सबका वाचक कहा है। इन्हें ब्रह्मरूपी पाँच सूक्ष्म देवता समझना चाहिये। इन्हींका शिवकी मूर्तिके रूपमें भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। शिवका वाचक मन्त्र शिवमूर्तिका भी वाचक है; क्योंकि मूर्ति और मूर्तिमान्में अधिक भेद नहीं है। 'ईशान मुकुटोपेतः' इस श्लोकसे आरम्भ करके पहले इन मन्त्रोंद्वारा शिवके विग्रहका प्रतिपादन किया जा चुका है। अब उनके पाँच मुखोंका वर्णन सुनो। पञ्चम मन्त्र 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' को आदि मानकर वहाँसे लेकर ऊपरके 'सद्योजात' मन्त्रतक क्रमशः एक चक्रमें अङ्कित करे। फिर 'सद्योजात' से लेकर 'ईशान' मन्त्रतक क्रमशः उसी चक्रमें अङ्कित करे। ये ही पाँच भगवान् शिवके पाँच मुख बताये गये हैं। पुरुषसे लेकर सद्योजाततक जो ब्रह्मरूप चार मन्त्र हैं, वे ही महेश्वर देवके चतुर्व्यूह पदपर प्रतिष्ठित हैं।

* इन पाँचों मन्त्रोंका उल्लेख पहले हो चुका है।

'ईशान' मन्त्र सद्योजातादि पाँचों मन्त्रोंका समष्टिरूप है। मुने! पुरुषसे लेकर सद्योजाततक जो चार मन्त्र हैं, वे ईशान देवके व्यष्टिरूप हैं।

इसे अनुग्रहमय चक्र कहते हैं। यही पञ्चार्थका कारण है। यह सूक्ष्म, निर्विकार, अनामय परब्रह्मस्वरूप है। अनुग्रह भी दो प्रकारका है। एक तो तिरोभाव आदि पाँच*कृत्योंके अन्तर्गत है, दूसरा जीवोंको कार्य-कारण आदिके बन्धनोंसे मुक्ति देनेमें समर्थ है। यह दोनों प्रकारका अनुग्रह सदाशिवका ही द्विविध कृत्य कहा गया है। मुने! अनुग्रहमें भी सृष्टि आदि कृत्योंका योग होनेसे भगवान् शिवके पाँच कृत्य माने गये हैं। इन पाँचों कृत्योंमें भी सद्योजात आदि देवता प्रतिष्ठित बताये गये हैं। वे पाँचों परब्रह्मस्वरूप तथा सदा ही कल्याणदायक हैं। अनुग्रहमय चक्र शान्त्यतीत† कलारूप है। सदाशिवसे अधिष्ठित होनेके कारण उसे परम पद कहते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले संन्यासियोंको मिलने योग्य पद यही है। जो सदाशिवके उपासक हैं और जिनका चित्त प्रणवोपासनामें संलग्न है, उन्हें भी इसी पदकी प्राप्ति होती है। इसी पदको पाकर मुनीश्वरगण उन ब्रह्मरूपी महादेवजीके साथ प्रचुर दिव्य भोगोंका उपभोग करके महाप्रलयकालमें शिवकी समताको प्राप्त हो जाते हैं। वे मुक्त जीव फिर कभी संसारसागरमें नहीं गिरते।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।

(मुण्डक ३। २। ६)

—इस सनातन श्रुतिने इसी अर्थका प्रतिपादन किया है। शिवका ऐश्वर्य भी यह समष्टिरूप ही है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेकी शक्ति सदाशिवमें ही बतायी गयी है। चमकाध्यायके पदसे यह सूचित होता है कि शिवसे बढ़कर दूसरा कोई पद नहीं है। ब्रह्मपञ्चकके विस्तारको ही प्रपञ्च कहते हैं। इन पाँच ब्रह्ममूर्तियोंसे ही निवृत्ति आदि पाँच कलाएँ हुई हैं। वे सब-की-सब सूक्ष्मभूतस्वरूपिणी होनेसे कारणरूपमें विख्यात हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वामदेव! स्थूलरूपमें प्रकट जो यह जगत्-प्रपञ्च है, इसको जिसने पाँच रूपोंद्वारा व्याप्त कर रक्खा है, वह ब्रह्म अपने उन पाँचों रूपोंके साथ ब्रह्मपञ्चक नाम धारण करता है। मुनिश्रेष्ठ! पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश—इन पाँचोंको ब्रह्मने ईशानरूपसे व्याप्त कर रक्खा है। मुनीश्वर! प्रकृति, त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायु—इन पाँचको ब्रह्मने ही पुरुषरूपसे व्याप्त कर रक्खा है। अहंकार, नेत्र, पैर, रूप और अग्नि—ये पाँच अघोररूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं, बुद्धि, रसना, पायु, रस और जल—ये वामदेवरूपी ब्रह्मसे नित्य व्याप्त रहते हैं। मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी—ये पाँच सद्योजातरूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं। इस प्रकार यह जगत् पञ्चब्रह्मस्वरूप है। यन्त्ररूपसे बताया गया जो शिववाचक प्रणव है, वह नादपर्यन्त पाँचों वर्णोंका समष्टिरूप है तथा बिन्दुयुक्त जो चार वर्ण हैं, वे प्रणवके व्यष्टिरूप हैं। शिवके उपदेश किये हुए मार्गसे उत्कृष्ट मन्त्राधिराज शिवरूपी प्रणवका पूर्वोक्त यन्त्ररूपसे चिन्तन करना चाहिये। (अध्याय १४)

शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपञ्च और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन

तदनन्तर उत्तम श्रेष्ठ पद्धतिका वर्णन करके सृष्टि, स्थिति और संहार—सबको शक्तिमान् शिवकी लीला बतलाते हुए वामदेवजीके पूछनेपर स्कन्दने कहा— मुने! कर्मास्ति तत्त्वसे लेकर जो विस्तृत शास्त्रवाद है अर्थात् कर्म-सत्ताके प्रतिपादक कर्मफलवादसे आरम्भ करके शास्त्रोंमें जो विविध विषयोंका विशद विवेचन है, वह ज्ञान प्रदान करनेवाला है; अतः ज्ञानवान् पुरुषको विवेकपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। तुमने जिन शिष्योंको उपदेश दिया है, उनमेंसे कौन तुम्हारे समान है? वे अधम शिष्य आज भी अन्यान्य शास्त्रोंमें भटक रहे हैं। अनीश्वरवादी दर्शनोंके चक्करमें पड़कर मोहित हो रहे हैं। छः मुनियोंने उन्हें शाप दे रक्खा है; क्योंकि पहले वे शिवकी निन्दा किया करते थे। अतः

* सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह—ये परमेश्वरके पाँच कृत्य हैं।

† कलाएँ पाँच हैं—निवृत्तिकला, प्रतिष्ठाकला, विद्याकला, शान्तिकला तथा शान्त्यतीताकला।

उनकी बातें नहीं सुननी चाहिये; क्योंकि वे अन्यथावादी (शिव-शास्त्रके विपरीत बात करनेवाले) हैं। यहाँ पाँच* अवयवोंसे युक्त अनुमानके प्रयोगके लिये भी अवकाश है ही। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वामदेव! जैसे धूमका दर्शन होनेसे लोग अनुमानद्वारा पर्वतपर अग्निकी सत्ताका प्रतिपादन करते हैं, उसी प्रकार इस प्रत्यक्ष प्रपञ्चके दर्शनरूप हेतुका अवलम्बन करके परमेश्वर परमात्माको जाना जा सकता है, इसमें संशय नहीं है।

यह विश्व स्त्री-पुरुषरूप है, ऐसा प्रत्यक्ष ही देखा जाता है। छः कोशरूप जो शरीर है, उसमें आदिके तीन माताके अंशसे उत्पन्न हुए हैं और अन्तिम तीन पिताके अंशसे—यह श्रुतिका कथन है। इस प्रकार सभी शरीरोंमें स्त्री-पुरुषभावको जाननेवाले लोग हैं। मुने! विद्वानोंने परमात्मामें भी स्त्री-पुरुषभावको जाना है। श्रुति कहती है, परब्रह्म परमात्मा सत्, चित् और आनन्दरूप है। असत् प्रपञ्चको निवृत्त करनेवाला शब्द ही सत् कहा जाता है। चित्-शब्दसे जड जगत्की निवृत्ति की जाती है। यद्यपि सत्-शब्द तीनों लिङ्गोंमें विद्यमान है; तथापि यहाँ परब्रह्म परमात्माके अर्थमें पुँल्लिङ्ग सत्-शब्द-को ही ग्रहण करना चाहिये। वह सत् शब्द प्रकाशका वाचक है। 'सन् प्रकाशः'—सन् शब्द स्पष्टरूपसे प्रकाशका वाचक है। परमात्मामें जो सत्ता या प्रकाशरूपता है, वह उसके पुरुषभावको सूचित करती है। ज्ञान शब्दका पर्यायवाची जो चित्-शब्द है, वह स्त्रीलिङ्ग है अर्थात् परमात्मामें चिद्रूपता उसके स्त्रीभावको सूचित करती है। प्रकाश और चित्—ये दोनों जगत्के कारणभावको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार सच्चिदात्मा परमेश्वर भी जब जगत्के कारणभावको प्राप्त होते हैं, तब उन एकमात्र परमात्मामें ही 'शिव' भाव और 'शक्ति'-भावका भेद किया जाता है। जब तेल और बत्तीमें मलिनता होती है, तब उसके प्रकाशमें भी मलिनता आ जाती है। चिताकी आग आदिमें अशिवता और मलिनता स्पष्ट देखी जाती है। अतः मलिनता आदि आरोपित वस्तु है, उसका निवर्तक होनेके कारण परमात्माके 'शिवत्व'का ही श्रुतिके द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

जीवके आश्रित जो चिच्छक्ति है, वह सदा दुर्बल होती है। उसकी निवृत्तिके लिये ही परमात्मामें सार्वकालिक सर्वशक्तिमत्ता विद्यमान है। ईश्वर बलवान् हैं, शक्तिमान् हैं—यह व्यवहार देखा जाता है। महामुने वामदेव! लोक और वेदमें भी सदा ही परमात्माकी शिवरूपता और शक्ति-रूपताका साक्षात्कार कराया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे निरन्तर आनन्द प्रकट रहता है, अतः मुने! उस आनन्दको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही पापरहित मुनि शिवमें मन लगाकर निरामय शिव (परम कल्याण एवं परमानन्द) को प्राप्त हुए हैं। उपनिषदोंमें शिव और शक्तिको ही सर्वात्मा एवं ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म-शब्दसे बृंहि-धात्वर्थगत व्यापकता एवं सर्वात्मताका ही प्रतिपादन होता है। शम्भु नामक विग्रहमें बृंहणत्व और बृहत्त्व (व्यापकता एवं विशालता) नित्य विद्यमान है। सद्योजातादि पञ्चब्रह्ममय शिवविग्रहमें विश्वकी प्रतीति ब्रह्म-शब्दसे ही कही गयी है।

वामदेव! 'हंसः' पदको उलट देनेसे 'सोऽहम्' पद बनता है। उसमें प्रणवका प्राकट्य कैसे होता है, यह तुम्हारे स्नेहवश मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। 'सोऽहम्' पदमेंसे सकार और हकार नामक व्यञ्जनोंको त्याग देनेसे स्थूल 'ओम्' शब्द बच रहता है, जो परमात्माका वाचक है! तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं कि उसे महामन्त्ररूप जानना चाहिये। उसमें जो सूक्ष्म महामन्त्र है, उसका उद्धार मैं तुम्हें बता रहा हूँ। 'हंसः' पदमें तीन अक्षर हैं—'ह्, अ, स'। इन तीनोंमें जो 'अ' है, वह पंद्रहवें (अनुस्वार) और सोलहवें (विसर्ग) के

---

* प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन—ये अनुमान-के पाँच अवयव हैं। 'पर्वतो वह्निमान्' (पर्वतपर आग है)—यह प्रतिज्ञा है। 'धूमवत्त्वात्' (क्योंकि वहाँ धूम दिखायी देता है)—यह हेतु है। 'जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ आग अवश्य रहती है, जैसे रसोईघर'—यह उदाहरण है। 'यतोऽयं धूमवान्' (चूँकि यह पर्वत धूमवान् है)—यह उपनय है। 'अतः अग्निमान्' (अतः अग्निसे युक्त है)—यह निगमन है। इसी तरह ईश्वरके लिये भी अनुमान होता है—यथा—'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यम्' (पृथ्वी तथा अङ्कुर आदि किसी कर्ताद्वारा उत्पन्न हुए हैं)—यह प्रतिज्ञा है। 'कार्यत्वात्' (क्योंकि ये कार्य हैं)—यह हेतु है। 'यत् यत् कार्यं तत्तत् कर्तृजन्यं यथा घटः कुम्भकार-जन्यः' (जो-जो कार्य है, वह किसी-न-किसी कर्तासे उत्पन्न होता है, जैसे घड़ा कुम्भकारसे उत्पन्न होता है—यह उदाहरण हुआ। 'यतः इदं कार्यम्' (चूँकि ये पृथ्वी आदि कार्य हैं)—यह उपनय हुआ। 'अतः कर्तृजन्यम्' (इसलिये कर्तासे उत्पन्न हुए हैं)—यह निगमन हुआ। पृथ्वी आदि कार्य हम-जैसे लोगोंसे उत्पन्न हुआ है, यह कहना सम्भव नहीं; अतः इसका कोई विलक्षण कर्ता है, वही सर्वशक्तिमान् ईश्वर है।

साथ है। मकारके साथ जो 'अ' है, वह विसर्गसहित है; वह यदि सकारके साथ ही उठकर 'हं'के आदिमें चला जाय तो 'हंसः'के विपरीत 'सोऽहम्' यह महामन्त्र हो जायगा। इसमें जो सकार है, वह शिवका वाचक है अर्थात् शिव ही सकारके अर्थ माने गये हैं। शक्त्यात्मक शिव ही इस महामन्त्र-के वाच्यार्थ हैं, यह विद्वानोंका निर्णय है। गुरु जब शिष्यको इस महामन्त्रका उपदेश देते हैं, तब 'सोऽहम्' पदसे उसको शक्त्यात्मक शिवका ही बोध कराना अभीष्ट होता है। अर्थात् वह यह अनुभव करे कि 'मैं शक्त्यात्मक शिवरूप हूँ।' इस प्रकार जब यह महामन्त्र जीवपरक होता है अर्थात् जीवकी शिवरूपताका बोध कराता है, तब पशु (जीव) अपनेको शक्त्यात्मक एवं शिवका अंश जानकर शिवके साथ अपनी एकता सिद्ध हो जानेसे शिवकी समताका भागी हो जाता है।

अब श्रुतिके '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' इस वाक्यमें जो 'प्रज्ञानम्' पद आया है, उसके अर्थको दिखाया जा रहा है। 'प्रज्ञान' शब्द 'चैतन्य'का पर्याय है, इसमें संशय नहीं है। मुने! शिव-सूत्रने यह कहा गया है कि 'चैतन्यम् आत्मा' अर्थात् आत्मा (ब्रह्म या परमात्मा) चैतन्यरूप है। चैतन्य-शब्दसे यह सूचित होता है कि जिसमें विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक जगत्‌के निर्माणकी क्रिया स्वभावतः विद्यमान है, उसीको आत्मा या परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार मैंने यहाँ शिवसूत्रोंकी व्याख्या ही की है।

'**ज्ञानं बन्धः**' यह दूसरा शिवसूत्र है। इसमें पशुवर्ग (जीवसमुदाय) का लक्षण बताया गया है। इस सूत्रमें आदि पद '**ज्ञानम्**' के द्वारा किंचिन्मात्र ज्ञान और क्रियाका होना ही जीवका लक्षण कहा गया है। यह ज्ञान और क्रिया पराशक्तिका प्रथम स्पन्दन है। कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वानोंने '**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**'* इस श्रुतिके द्वारा इसी पराशक्तिका प्रसन्नतापूर्वक स्तवन किया है। भगवान् शंकरकी तीन दृष्टियाँ मानी गयी हैं— ज्ञान, क्रिया और इच्छारूप। ये तीनों दृष्टियाँ जीवके मनमें स्थित हो इन्द्रियज्ञानगोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो सदा जानती और करती हैं। अतः यह दृष्टित्रयरूप जीव आत्मा (महेश्वर) का स्वरूप ही है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है।

अब मैं जगत्प्रपञ्चके साथ प्रणवकी एकताका बोध करनेवाले प्रपञ्चार्थका वर्णन करूँगा। '**ओमितीदं सर्वम्**' (तैत्तिरीय १। ८। १) अर्थात् यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला समस्त जगत् ओंकार है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। इससे प्रणव और जगत्‌की एकता सूचित होती है। '**तस्माद्वा**' (तैत्तिरीय २। १) इस वाक्यसे आरम्भ करके तैत्तिरीय श्रुतिने संसारकी सृष्टिके क्रमका वर्णन किया है। वामदेव! उस श्रुतिका जो विवेकपूर्ण तात्पर्य है, उसे मैं तुम्हारे स्नेहवश बता रहा हूँ, सुनो! शिव-शक्तिका संयोग ही परमात्मा है, यह ज्ञानी पुरुषोंका निश्चित मत है। शिवकी जो पराशक्ति है, उससे चिच्छक्ति प्रकट होती है। चिच्छक्तिसे आनन्दशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, आनन्दशक्तिसे इच्छाशक्तिका उद्भव हुआ है, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पाँचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। मुने! इन्हींसे निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं। चिच्छक्तिसे नाद और आनन्दशक्तिसे बिन्दुका प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्तिसे मकार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्तिसे पाँचवाँ स्वर उकार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्तिसे अकारकी उत्पत्ति हुई है। मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रणवकी उत्पत्ति बतलायी है।

अब ईशानादि पञ्च ब्रह्मकी उत्पत्तिका वर्णन सुनो। शिवसे ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशानसे तत्पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है, तत्पुरुषसे अघोरका, अघोरसे वामदेवका और वामदेवसे सद्योजातका प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणवसे ही मूलभूत पाँच स्वर और तैंतीस व्यञ्जनके रूपमें अड़तीस अक्षरोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अब कलाओंकी उत्पत्तिका क्रम सुनो। ईशानसे शान्त्यतीताकला उत्पन्न हुई है। तत्पुरुषसे शान्तिकला, अघोरसे विद्याकला, वामदेवसे प्रतिष्ठाकला और सद्योजातसे निवृत्तिकलाकी उत्पत्ति हुई है। ईशानसे चिच्छक्तिद्वारा मिथुनपञ्चककी उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि—इन पाँच कृत्योंका हेतु होनेके कारण उसे पञ्चक कहते हैं। यह बात

---

* यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। ८) की है। इसका पूरा पाठ इस प्रकार है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

देह और इन्द्रियसे उनका है सम्बन्ध नहीं कोई।
अधिक कहाँ उनके सम भी तो दीख रहा न कहीं कोई॥
ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियामय उनकी पराशक्ति भारी।
विविध रूपमें सुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी॥

तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियोंने कही है। वाच्य-वाचकके सम्बन्धसे उनमें मिथुनत्वकी प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पञ्चकमें भूतपञ्चककी गणना है। मुनिश्रेष्ठ! आकाशादिके क्रमसे इन पाँचों मिथुनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवाँ मिथुन पृथ्वी है। इनमें आकाशसे लेकर पृथ्वीतकके भूतोंका जैसा स्वरूप बताया गया है, उसे सुनो! आकाशमें एकमात्र शब्द ही गुण है; वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंकी प्रधानता है; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण माने गये हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे सम्पन्न है। यही भूतोंका व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणोंद्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परवर्ती भूतोंमें किस प्रकार व्यापक हैं, यह दिखाया गया है। इसके विपरीत गन्धादि गुणोंके क्रमसे वे भूत पूर्ववर्ती भूतोंसे व्याप्य हैं अर्थात् गन्ध गुणवाली पृथ्वी जलका और रसगुणवाला जल अग्निका व्याप्य है, इत्यादि रूपसे इनकी व्याप्यताको समझना चाहिये। पाँच भूतोंका यह विस्तार ही 'प्रपञ्च' कहलाता है। सर्वसमष्टिका जो आत्मा है, उसीका नाम 'विराट्' है और पृथ्वीतत्त्वसे लेकर क्रमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वोंका समुदाय है, वही 'ब्रह्माण्ड' है। वह क्रमशः तत्त्वसमूहमें लीन होता हुआ अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वरमें ही लयको प्राप्त होता है और सृष्टिकालमें फिर शक्तिद्वारा शिवसे निकलकर स्थूल प्रपञ्चके रूपमें प्रलयकालपर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है।

अपनी इच्छासे संसारकी सृष्टिके लिये उद्यत हुए महेश्वरका जो प्रथम परिस्पन्द है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। यही इच्छाशक्ति-तत्त्व है; क्योंकि सम्पूर्ण कृत्योंमें इसीका अनुवर्तन होता है। मुनीश्वर! ज्ञान और क्रिया—इन दो शक्तियोंमें जब ज्ञानका आधिक्य हो, तब उसे सदाशिव-तत्त्व समझना चाहिये; जब क्रियाशक्तिका उद्रेक हो तब उसे महेश्वर-तत्त्व जानना चाहिये तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ समान हों तब वहाँ शुद्ध विद्यात्मक-तत्त्व समझना चाहिये। समस्त भाव-पदार्थ परमेश्वरके अङ्गभूत ही हैं; तथापि उनमें जो भेद-बुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपको मायासे निगृहीत करके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम 'पुरुष' होता है। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' (उस शरीरको रचकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिने उसके इसी स्वरूपका प्रतिपादन किया है अथवा इसी तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उक्त श्रुतिका प्रादुर्भाव हुआ है। यही पुरुष मायासे मोहित होकर संसारी (संसार-बन्धनमें बँधा हुआ) पशु कहलाता है। शिवतत्त्वके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मोंमें आसक्त हो मूढ़ताको प्राप्त हो जाती है। वह जगत्को शिवसे अभिन्न नहीं जानता तथा अपनेको भी शिवसे भिन्न ही समझता है। प्रभो! यदि शिवसे अपनी तथा जगत्की अभिन्नताका बोध हो जाय तो इस पशु (जीव) को मोहका बन्धन न प्राप्त हो। जैसे इन्द्रजाल-विद्याके ज्ञाता (बाजीगर) को अपनी रची हुई अद्भुत वस्तुओंके विषयमें मोह या भ्रम नहीं होता है, उसी प्रकार ज्ञानयोगीको भी नहीं होता। गुरुके उपदेशद्वारा अपने ऐश्वर्यका बोध प्राप्त हो जानेपर वह चिदानन्दघन शिवरूप ही हो जाता है।

शिवकी पाँच शक्तियाँ हैं—१–सर्वकर्तृत्वरूपा, २–सर्वतत्त्वरूपा, ३–पूर्णत्वरूपा, ४–नित्यत्वरूपा और ५–व्यापकत्वरूपा। जीवकी पाँच कलाएँ हैं—१ कला, २ विद्या, ३ राग, ४ काल और ५ नियति। इन्हें कलापञ्चक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्वमें हेतु बनती है और कुछ तत्त्वका साधन होती है, उस कलाका नाम 'विद्या' है। जो विषयोंमें आसक्ति पैदा करनेवाली है, उस कलाका नाम 'राग' है। जो भाव पदार्थों और प्रकाशोंका भासनात्मकरूपसे क्रमशः अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतोंका आदि कहलाता है, वही 'काल' है। यह मेरा कर्तव्य है और यह नहीं है—इस प्रकार नियन्त्रण करनेवाली जो विभुकी शक्ति है, उसका नाम 'नियति' है। उसके आक्षेपसे जीवका पतन होता है। ये पाँचों ही जीवके स्वरूपको आच्छादित करनेवाले आवरण हैं। इसलिये 'पञ्चकञ्चुक' कहे गये हैं। इनके निवारणके लिये अन्तरङ्ग साधनकी आवश्यकता है। (अध्याय १५-१६)

महावाक्योंके अर्थपर विचार तथा संन्यासियोंके योगपट्टका प्रकार

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! अब महावाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

१–प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय० ३ । ३ तथा आत्मप्र० १),
२–अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्य० १ । ४ । १०),
३–तत्त्वमसि (छा० उ० ख० ८ से १६ तक),
४–अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य० २; बृह० २।५।१९),
५–ईशावास्यमिदं सर्वम् (ईशा० १),
६–प्राणोऽस्मि (कौषी० ३),
७–प्रज्ञानात्मा (कौषी० ३),
८–यदेह तदमुत्र तदन्विह (कठ० २ । १ । १०)
९–अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि(केन० १।३),
१०–एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः (बृह० ३।७।३-२३),
११–स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः,
(तैत्तिरीय० २ । ८),
१२–अहमस्मि परं ब्रह्म परात्परम् ।
१३–वेदशास्त्रगुरूणां तु स्वयमानन्दलक्षणम् ।
१४–सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः ।
१५–तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि,
१६–अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्च प्राणोऽहमस्मि,
१७–वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि;
१८–त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि,
१९–सर्वोऽहं सर्वात्मको संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोऽहम्,
२०–सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्यो० ३ । १४ । २),
२१–सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम्,
२२–योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि ।*

इस प्रकार सर्वत्र चिन्तन करे। अब इन महावाक्योंका भावार्थ कहते हैं—'प्रज्ञानं ब्रह्म'का वाक्यार्थ पहले ही समझाया जा चुका है। (अब 'अहं ब्रह्मास्मि'का अर्थ बताया जाता है।) शक्तिस्वरूप अथवा शक्तियुक्त परमेश्वर ही 'अहम्' पदके अर्थभूत हैं। 'अकार' सब वर्णोंका अग्रगण्य, परम प्रकाश शिवरूप है। 'हकार' व्योमस्वरूप होनेके कारण उसका शक्तिरूपसे वर्णन किया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे सदा आनन्द उदित होता है। 'मकार' उसी आनन्दका बोधक है। 'ब्रह्म' शब्दसे शिव-शक्तिकी सर्वरूपता स्पष्ट ही सूचित होती है। पहले ही इस बातका उपदेश किया गया है कि वह शक्तिमान् परमेश्वर मैं हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये। (अब तत्त्वमसि का अर्थ कहते हैं—) 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत्पदका वही अर्थ है, जो 'सोऽहमस्मि'में सः पदका अर्थ बताया गया है अर्थात् तत्पद शक्त्यात्मक परमेश्वरका ही वाचक है; अन्यथा 'सोऽहम्' इस वाक्यमें विपरीत अर्थकी भावना हो सकती है। क्योंकि अहम्-पद पुँल्लिङ्ग है, अतः 'स'के साथ उसका अन्वय हो जायगा; परंतु तत् पद नपुंसक है और 'त्वम्' पुँल्लिङ्ग, अतः परस्परविरोधी लिङ्ग होनेके कारण उन दोनोंमें अन्वय नहीं हो सकता। जब दोनोंका अर्थ 'शक्तिमान्‌परमेश्वर' होगा, तब अर्थमें समानलिङ्गता होनेसे अन्वयमें अनुपपत्ति नहीं होगी। यदि ऐसा न माना जाय तो स्त्री-पुरुषरूप जगत्‌का कारण भी किसी और ही प्रकारका होगा। इसलिये 'सोऽहमस्मि'का 'सः' और 'तत्त्वमसि'का 'तत्'—ये दोनों समानार्थक हैं। इन महावाक्योंके उपदेशसे एक ही अर्थकी भावनाका विधान है।

(अब 'अयमात्मा ब्रह्म'का अर्थ बताया जाता है—) **'अयमात्मा ब्रह्म'** इस वाक्यमें 'अयम्' और 'आत्मा'—ये दोनों पद पुँल्लिङ्गरूप हैं। अतः यहाँ अन्वयमें बाधा नहीं है। 'अयम्'

* इन वाक्योंका साधारण अर्थ यों समझना चाहिये—१–ब्रह्म उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप अथवा चैतन्यरूप है। २–वह ब्रह्म मैं हूँ। ३–वह ब्रह्म तू है। ४–यह आत्मा ब्रह्म है। ५–यह सब ईश्वरसे व्याप्त है। ६–मैं प्राण हूँ। ७–प्रज्ञानस्वरूप हूँ। ८–जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ (परलोकमें) भी है; जो वहाँ है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी है। ९–वह ब्रह्म विदित (ज्ञात वस्तुओं) से भिन्न है और अविदित (अज्ञात) से भी ऊपर है। १०–वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। ११–वह जो यह पुरुषमें है और वह जो यह आदित्यमें है, एक ही है। १२–मैं परात्परस्वरूप परात्पर परब्रह्म हूँ। १३–वेदों, शास्त्रों और गुरुजनोंके वचनोंसे स्वयं ही हृदयमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मका अनुभव होने लगता है। १४–जो सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है। १५–मैं तत्त्वका प्राण हूँ, पृथ्वीका प्राण हूँ। १६–मैं जलका प्राण हूँ, तेजका प्राण हूँ। १७–वायुका प्राण हूँ, आकाशका प्राण हूँ। १८–मैं त्रिगुणका प्राण हूँ। १९–मैं सब हूँ, सर्वरूप हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ; जो भूत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ। २०–यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। २१–मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ। २२–जो वह है, वह मैं हूँ। मैं वह हूँ और वह मैं हूँ।

शक्तिमान् परमेश्वररूप आत्मा ब्रह्म है—' यह इस वाक्यका तात्पर्य है। (अब 'ईशा वास्यमिदं सर्वम्' का भावार्थ बता रहे हैं–) परमेश्वरसे रक्षणीय होनेके कारण यह सम्पूर्ण जगत् उनसे व्याप्त है। (अब 'प्राणोऽस्मि' 'प्रज्ञानात्मा' और 'यदेवेह तदमुत्र०' इन वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है–) मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूँ। यहाँ प्राण-शब्द परमेश्वरका ही वाचक है। जो यहाँ है, वह वहाँ है—ऐसा चिन्तन करे। यहाँ यत्, तत्का अर्थ क्रमशः यः और सः है अर्थात् जो परमात्मा यहाँ है, वह परमात्मा वहाँ है—ऐसा सिद्धान्तपक्षका अवलम्बन करनेवाले विद्वानोंने कहा है। उपर्युक्त वाक्यमें 'यदमुत्र तदन्विह' इस वाक्यांशका भाव यह है कि 'योऽमुत्र स इह स्थितः' अर्थात् जो परमात्मा वहाँ परलोकमें स्थित है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी स्थित है। इस प्रकार विद्वानोंको पहलेके समान ही परमपुरुष परमात्मारूप अर्थ यहाँ अभीष्ट है।

(अब 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' इस वाक्यपर विचार करते हैं–) मुने! 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' इस वाक्यमें जिस प्रकार फलकी भी विपरीतताकी भावना होती है, उसे यहाँ बताता हूँ; सुनो। 'विदितात्' यह पद 'अयथाविदितात्'के अर्थमें प्रवृत्त हो सकता है। वह विदितसे भिन्न है अर्थात् जो असम्यग्रूपसे ज्ञात है, उससे भिन्न है। इसी प्रकार जो यथावत् रूपसे विदित नहीं है, उससे भी पृथक् है। इस कथनसे यह निश्चित होता है कि मुक्तिरूप फलकी सिद्धिके लिये कोई और ही तत्त्व है, जो विदिताविदितसे पर है। परंतु जो आत्मा है, वह सर्वरूप है, वह किसीसे अन्य नहीं हो सकता। अतः आत्मा या ब्रह्म आदि पद पूर्ववत् शक्तिमान् परमेश्वर शिवके ही बोधक हैं, यह मानना चाहिये।

(अब 'एष त आत्मा०' तथा 'यश्चायं पुरुषे' इन दो वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—) यह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा है, जो स्वयं ही अमृतस्वरूप शिव है। यह जो पुरुषमें शम्भु है, वही सूर्यमें भी स्थित है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो पुरुषमें है, वही आदित्यमें है। इन दोनोंमें पृथक्ता नहीं है। वह तत्त्व एक ही है। उसीको सर्वरूप कहा गया है। पुरुष और आदित्य—इन दो उपाधियोंसे युक्त जो अर्थ किया जाता है, वह औपचारिक है। उन शम्भुनाथको सब श्रुतियाँ हिरण्मय बताती हैं। 'हिरण्यबाहवे नमः' इसमें जो बाहु शब्द है, वह सब अङ्गोंका उपलक्षण है। अन्यथा उसे हिरण्यपति कहना किसी भी यत्नसे सम्भव नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद्में जो यह श्रुति है—'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः। (छान्दोग्य० १। ६। ६) इसके द्वारा आदित्यमण्डलान्तर्गत पुरुषको सुवर्णमय दाढ़ी मूँछोंवाला, सुवर्ण-सदृश केशोंवाला तथा नखसे लेकर केशाग्रभागपर्यन्त सारा-का-सारा सुवर्णमय—प्रकाशमय ही बताया गया है। अतः वह हिरण्मय पुरुष साक्षात् शम्भु ही हैं।

अब 'अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्' इस वाक्यका तात्पर्य बताता हूँ, सुनो। 'अहम्' पदके अर्थभूत सत्यात्मा शिव ही बताये गये हैं। वे ही शिव मैं हूँ, ऐसी वाक्यार्थयोजना अवश्य होती है। उन्हींको सबसे उत्कृष्ट और सर्वस्वरूप परब्रह्म कहा गया है। उसके तीन भेद हैं—पर, अपर तथा परात्पर। रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन देवता श्रुतिने ही बताये हैं। ये ही क्रमशः पर, अपर तथा परात्पररूप हैं। इन तीनोंसे भी जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे शम्भु 'परब्रह्म' शब्दसे कहे गये हैं।

वेदों, शास्त्रों और गुरुके वचनोंके अभ्याससे शिष्यके हृदयमें स्वयं ही पूर्णानन्दमय शम्भुका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान शम्भु ब्रह्मरूप ही हैं। वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं शिव ही सम्पूर्ण तत्त्वसमुदायका प्राण हूँ।

ऐसा कहकर स्कन्दजी फिर कहते हैं—मुने! मैं शिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका प्राण हूँ। पृथिवी आदिका भी प्राण हूँ। पृथ्वी आदिके गुणोंतकका ग्रहण होनेसे यह समझ लो कि यहाँ सारे आत्मतत्त्व गृहीत हो गये। फिर सबका ग्रहण विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका भी ग्रहण कराता है। इन सब तत्त्वोंका मैं प्राण हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्वात्मक हूँ; जीवका भी अन्तर्यामी होनेसे उसका भी जीव (आत्मा) हूँ। जो भूत, वर्तमान और भविष्यकाल है, वह सब मेरा स्वरूप होनेके कारण मैं ही हूँ। 'सर्वो वै रुद्रः' (सब कुछ रुद्र ही हैं)—यह श्रुति साक्षात् शिवके मुखसे प्रकट हुई है। अतः शिव ही सर्वरूप हैं; क्योंकि उन्हींका इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य सम्बन्ध है। अपने और परायेके भेदसे रहित होनेके कारण मैं ही अद्वितीय आत्मा हूँ। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस वाक्यका अर्थ पहले बताया जा चुका है। मैं भावरूप होनेके कारण पूर्ण हूँ। नित्यमुक्त भी मैं ही हूँ। पशु (जीव) मेरी कृपासे मुक्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं। जो सर्वात्मक शम्भु हैं, वही मैं हूँ। मैं शिवरूप हूँ। वामदेव! इस प्रकार सम्पूर्ण वाक्योंके अर्थ भगवान्

शिव ही बताये गये हैं* । ईशावास्योपनिषद्की श्रुतिके दो वाक्योंद्वारा प्रतिपादित अर्थ साक्षात् शिवकी एकताका ज्ञान प्रदान करनेवाला होता है । गुरुको चाहिये कि शिष्योंको इसका आदरपूर्वक उपदेश करे ।

गुरुको उचित है कि वे आधारसहित शङ्खको लेकर अस्त्र-मन्त्र (फट्) से तथा भस्मद्वारा उसकी शुद्धि करके उसे अपने सामने चौकोर मण्डलमें स्थापित करे । फिर ओंकारका उच्चारण करके गन्ध आदिके द्वारा उस शङ्खकी पूजा करे । उसमें वस्त्र लपेट दे और सुगन्धित जल भरकर प्रणवका उच्चारण करते हुए उसका पूजन करे । तत्पश्चात् सात बार प्रणवके द्वारा फिर उस शङ्खको अभिमन्त्रित करके शिष्यसे कहे—'हे शिष्य ! जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है—भेदभाव रखता है, वह भयका भागी होता है । यह श्रुतिका सिद्धान्त बताया गया, इसलिये तुम अपने चित्तको स्थिर करके निर्भय हो जाओ† ।' ऐसा कहकर गुरु स्वयं महादेवजीका ध्यान करते हुए उन्हीं-के रूपमें शिष्यका अर्चन करे । शिष्यके आसनकी पूजा करके उसमें शिवके आसन और शिवकी मूर्तिकी भावना करे । फिर सिरसे पैरतक 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रोंका न्यास करके मस्तक, मुख और कलाओंके भेदसे प्रणवकी कलाओंका भी न्यास करे । शिष्यके शरीरमें अड़तीस मन्त्ररूपा प्रणवकी कलाओंका न्यास करके उसके मस्तकपर शिवका आवाहन करे । तत्पश्चात् स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे । फिर अङ्गन्यास करके आसनपूर्वक षोडश उपचारोंकी कल्पना करे । खीरका नैवेद्य अर्पण करके 'ॐ स्वाहा'का उच्चारण करे । कुल्ला और आचमन कराये । अर्घ्य आदि देकर क्रमशः धूप-दीपादि समर्पित करे । शिवके आठ नामोंसे पूजन करके वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंके साथ **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** इत्यादि ब्रह्मानन्दवल्लीके मन्त्रोंको तथा **'भृगुर्वै वारुणिः'** इत्यादि भृगुवल्लीके मन्त्रोंको पढ़े । तत्पश्चात् **'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'**—(महानारा० १० । ३) से लेकर **'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः'** (महानारा० १० । ८) तक महानारायणोपनिषद्के मन्त्रोंका पाठ करे । इसके बाद शिष्यके सामने कह्लार आदिकी बनी हुई माला लेकर खड़े हो गुरु शिवनिर्मित पाञ्चास्यिक शास्त्रके सिद्धिस्कन्दका धीरे-धीरे जप करे । अनुकूल चित्तसे **'पूर्णोऽहम्'** इस मन्त्रतकका जप करके गुरु उस मालाको शिष्यके कण्ठमें पहना दे । तदनन्तर ललाटमें तिलक लगाकर सम्प्रदाय-के अनुसार उसके सर्वाङ्गमें विधिवत् चन्दनका लेप कराये । तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक श्रीपादयुक्त नाम देकर शिष्यको छत्र और चरणपादुका अर्पित करे । उसे व्याख्यान देने तथा आवश्यक कर्म आदिके लिये गुर्वासन ग्रहण करनेका अधिकार दे । फिर गुरु अपने उस शिवरूपी शिष्यपर अनुग्रह करके कहे—''तुम सदा समाधिस्थ रहकर 'मैं शिव हूँ' इस प्रकारकी भावना करते रहो ।'' यों कहकर वह स्वयं शिवको नमस्कार करे । फिर सम्प्रदायकी मर्यादाके अनुसार दूसरे लोग भी उसे नमस्कार करें । उस समय शिष्य उठकर गुरुको नमस्कार करे । अपने गुरुके गुरुको और उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाये ।

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विनीतभावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकारका उपदेश दे—'बेटा ! आजसे तुम समस्त लोकोंपर अनुग्रह करते रहो । यदि कोई शिष्य होनेके लिये आये तो पहले उसकी परीक्षा कर लो, फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ । राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो । श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका सङ्ग करो, दूसरोंका नहीं । प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो । गुरुभक्तिका आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो ।'*

* तत्त्वयोश्चारम्यहं प्राणः सर्वः सर्वात्मको ह्ययम् ।
जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्वदा ॥
यद् भूतं यच्च भव्यं यद् भविष्यत् सर्वमेव च ।
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ॥
श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोद्गता ।
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥
स्वस्मात् परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेव हि ।
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः ॥
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेव हि ।
पशवो मत्प्रसादेन मुक्ता मद्भावमाश्रिताः ॥
योऽसौ सर्वात्मकः शम्भुस्सोऽहं हंसः शिवोऽस्म्यहम् ।
इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ॥
(शि० पु० कै० सं० १९ । २६—३१)

† यस्त्वन्तरं किंचिदपि कुरुतेऽस्त्यणि भीतिभाक् ।
इत्याह श्रुतिसत्त्वं दृढात्मा गतभीर्भव ॥
(शि० पु० कै० सं० १९ । ३५-३६)

* रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव ।
सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः ॥
अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुङ्क्ष्वाप्राणसंक्षयम् ।
गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव ॥
(शि० पु० कै० सं० १९ । ५३-५४)

मुनीश्वर वामदेव ! तुम्हारे स्नेहवश अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी मैंने यह योगपट्टका प्रकार तुम्हें बताया है। ऐसा कहकर स्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके क्षौर और स्नानविधिका वर्णन किया। (अध्याय १७—१९)

यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

वामदेवजी बोले—जो मुक्त यति हैं, उनके शरीरका दाहकर्म नहीं होता। मरनेपर उनके शरीरको गाड़ दिया जाता है, यह मैंने सुना है। मेरे गुरु कार्तिकेय ! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है। भगवन् ! शंकरनन्दन ! जो पूर्ण परब्रह्ममें अहंभावका आश्रय ले देहपञ्जरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो उपासनाके मार्गसे शरीरबन्धनसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त हुए हैं, उनकी गतिमें क्या अन्तर है—यह बताइये। प्रभो ! मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये अच्छी तरह विचार करके प्रसन्नतापूर्वक मुझसे इस विषयका वर्णन कीजिये।

स्कन्दने कहा—जो कोई यति समाधिस्थ हो शिवके चिन्तनपूर्वक अपने शरीरका परित्याग करता है, वह यदि महान् धीर हो तो परिपूर्ण शिवरूप हो जाता है; किंतु यदि कोई अधीरचित्त होनेके कारण समाधिलाभ नहीं कर पाता तो उसके लिये उपाय बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। वेदान्त-शास्त्रके वाक्योंसे जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीन पदार्थोंका परिज्ञान होता है, उसे गुरुके मुखसे सुनकर यति यम-नियमादिरूप योगका अभ्यास करे। उसे करते हुए वह भलीभाँति शिवके ध्यानमें तत्पर रहे। मुने ! उसे नित्य नियमपूर्वक प्रणवके जप और अर्थचिन्तनमें मनको लगाये रखना चाहिये। मुने ! यदि देहकी दुर्बलताके कारण धीरता धारण करनेमें असमर्थ यति निष्कामभावसे शिवका स्मरण करके अपने जीर्ण शरीरको त्याग दे तो भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दीके भेजे हुए विख्यात पाँच आतिवाहिक देवता आते हैं। उनमेंसे कोई तो अग्निका अभिमानी, कोई ज्योतिःपुञ्जस्वरूप, कोई दिनाभिमानी, कोई शुक्लपक्षाभिमानी और कोई उत्तरायणका अभिमानी होता है। ये पाँचों सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं। इसी तरह धूमाभिमानी; तमका अभिमानी, रात्रिका अभिमानी, कृष्णपक्षका अभिमानी और दक्षिणायनका अभिमानी—ये सब मिलकर पाँच होते हैं। ये पाँचों विख्यात देवता दक्षिण मार्गमें प्रसिद्ध हैं। महामुने वामदेव ! अब तुम उन सब देवताओंकी वृत्तिका वर्णन सुनो। कर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए जीवोंको साथ ले वे पाँचों देवता उनके पुण्यवश स्वर्गलोकको जाते हैं और वहाँ यथोक्त भोगोंका उपभोग करके वे जीव पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मनुष्यलोकमें आते तथा पूर्ववत् जन्म ग्रहण करते हैं।

इनके सिवा जो उत्तर मार्गके पाँच देवता हैं, वे भूतलसे लेकर ऊर्ध्वलोकतकके मार्गको पाँच भागोंमें विभक्त करके यतिको साथ ले क्रमशः अग्नि आदिके मार्गमें होते हुए उसे सदाशिवके धाममें पहुँचाते हैं। वहाँ देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम करके लोकानुग्रहके कर्ममें ही लगाये गये वे अनुग्रहाकार देवता उन सदाशिवके पीछे खड़े हो जाते हैं। यतिको आया देख देवाधिदेव सदाशिव यदि वह विरक्त हो तो उसे महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश दे गणपतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने ही समान शरीर देते हैं। इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् शंकर उसपर अनुग्रह करते हैं। उसे अनुगृहीत करके निश्चल समाधि देते हैं। अपने प्रति दास्यभावकी फलस्वरूपा तथा सूर्य आदिके कार्य करनेकी शक्ति-रूपा ऐसी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, जो कहीं अवरुद्ध नहीं होतीं। साथ ही वे जगद्गुरु शंकर उस यतिको वह परम मुक्ति देते हैं, जो ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर भी पुनरावृत्तिके चक्करसे दूर रहती है। अतः यही समष्टिमान् सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त पद है और यही मोक्षका राजमार्ग है, ऐसा वेदान्त-शास्त्रका निश्चय है।

जिस समय यति मरणासन्न हो शरीरसे शिथिल हो जाय, उस समय उस श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले दूसरे यति अनुकूलताकी भावना ले उसके चारों ओर खड़े हो जायँ। वे सब वहाँ क्रमशः प्रणव आदि वाक्योंका उपदेश दे उनके तात्पर्यका सावधानी और प्रसन्नताके साथ सुस्पष्ट वर्णन करें तथा जब-तक उसके प्राणोंका लय न हो जाय तबतक निर्गुण परम-ज्योतिःस्वरूप सदाशिवका उसे निरन्तर स्मरण कराते रहें। सब यतियोंका यहाँ समानरूपसे संस्कार-क्रम बताया जाता है। संन्यासी सब कर्मोंका त्याग करके भगवान् शिवका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये उनके शरीरका दाहसंस्कार नहीं होता और उसके न होनेसे उनकी दुर्गति नहीं होती। संन्यासीके शरीरको दूषित करनेवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। उसके गाँवोंमें रहनेवाले

लोग अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। इसलिये उस दोषका परिहार करनेके लिये शान्तिका विधान बताया जाता है। उस समय 'नम इरिण्याय' से लेकर 'नम अमीवकेभ्यः' तकके मन्त्रका विनीतचित्त होकर जप करे। फिर अन्तमें ओंकारका जप करते हुए मिट्टीसे देवयजनकी* पूर्ति करे। मुनीश्वर ! ऐसा करनेसे उस दोषकी शान्ति हो जाती है।

(अब संन्यासीके शवके संस्कारकी विधि बताते हैं) पुत्र या शिष्य आदिको चाहिये कि यतिके शरीरका यथोचित रीतिसे उत्तम संस्कार करे। ब्रह्मन् ! मैं कृपापूर्वक संस्कारकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। पहले यतिके शरीरको शुद्ध जलसे नहलाकर पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। पूजनके समय श्रीरुद्रसम्बन्धी चमकाध्याय और नमकाध्यायका पाठ करके रुद्रसूक्तका उच्चारण करे। उसके आगे शङ्खकी स्थापना करके शङ्खस्थ जलसे यतिके शरीरका अभिषेक करे। सिरपर पुष्प रखकर प्रणवद्वारा उसका मार्जन करे। पहलेके कौपीन आदिको हटाकर दूसरे नवीन कौपीन आदि धारण कराये। फिर विधिपूर्वक उसके सारे अङ्गोंमें भस्म लगाये। विधिवत् त्रिपुण्ड्र लगाकर चन्दनद्वारा तिलक करे। फिर फूलों और मालाओंसे उसके शरीरको अलंकृत करे। छाती, कण्ठ, मस्तक, बाँह, कलाई और कानोंमें क्रमशः रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रोच्चारणपूर्वक धारण कराकर उन सब अङ्गोंको सुशोभित करे। फिर धूप देकर उस शरीरको उठाये और विमानके ऊपर रखकर ईशानादि पञ्चब्रह्ममय रमणीय रथपर स्थापित करे। आदिमें ओंकारसे युक्त पाँच सद्योजातादि ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके सुगन्धित पुष्पों और मालाओंसे उस रथको सुसज्जित करे। फिर नृत्य, वाद्य तथा ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी ध्वनिके साथ ग्रामकी प्रदक्षिणा करते हुए उस प्रेतको बाहर ले जाय।

तदनन्तर साथ गये हुए वे सब यति गाँवके पूर्व या उत्तर दिशामें पवित्र स्थानमें किसी पवित्र वृक्षके निकट देवयजन (गड्ढा) खोदें। उसकी लंबाई संन्यासीके दण्डके बराबर ही होनी चाहिये। फिर प्रणव तथा व्याहृति-मन्त्रोंसे उस स्थानका प्रोक्षण करके वहाँ क्रमशः शमीके पत्र और फूल बिछाये। उनके ऊपर उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर योगपीठ रक्खे। उसके ऊपर पहले कुश बिछाये, कुशोंके ऊपर मृगचर्म तथा उसके भी ऊपर वस्त्र बिछाकर प्रणवसहित सद्योजातादि पञ्चब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करते हुए पञ्चगव्योंद्वारा उस शवका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् रुद्रसूक्त एवं प्रणवका उच्चारण करते हुए शङ्खके जलसे उसका अभिषेक करके उसके मस्तकपर फूल डाले। शिष्य आदि संस्कारकर्ता पुरुष वहाँ गये हुए मृत यतिके अनुकूल भाव रखते हुए शिवका चिन्तन करता रहे। तदनन्तर ॐकारका उच्चारण और स्वस्तिवाचन करके उस शवको उठाकर गड्ढेके भीतर योगासनपर इस तरह बिठाये जिससे उसका मुख पूर्व दिशाकी ओर रहे। फिर चन्दन-पुष्पसे अलंकृत करके उसे धूप और गुग्गुलकी सुगन्ध दे। इसके बाद 'विष्णो ! हव्यमिदं रक्षस्व' ऐसा कहकर उसके दाहिने हाथमें दण्ड दे और 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो०' (शु० यजु० २३ । ६५) इस मन्त्रको पढ़कर बायें हाथमें जलसहित कमण्डलु अर्पित करे। फिर 'ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं०' (शु० यजु० १३ । ३) इस मन्त्रसे उसके मस्तकका स्पर्श करके दोनों भौहोंके स्पर्शपूर्वक रुद्रसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् 'मा नो महान्तमुत' (शु० यजु० १६ । १५) इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर नारियलके द्वारा यतिके शवके मस्तकका भेदन करे। इसके बाद उस गड्ढेको पाट दे। फिर उस स्थानका स्पर्श करके अनन्यचित्तसे पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। तदनन्तर 'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' (महानारा० १० । ३) से लेकर 'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ।' (महानारा० १० । ८) तक महानारायणोपनिषद्के मन्त्रोंका जप करके संसाररूपी रोगके भेषज, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले उमासहित महादेवजीका चिन्तन एवं पूजन करे। (पूजनकी विधि यों है—)

एक हाथ ऊँचे और दो हाथ लंबे-चौड़े एक पीठका मिट्टीके द्वारा निर्माण करे। फिर उसे गोबरसे लीपे। वह पीठ चौकोर होना चाहिये। उसके मध्यभागमें उमा-महेश्वरको स्थापित करके गन्ध, अक्षत, सुगन्धित पुष्प, बिल्वपत्र और तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रणवसे धूप और दीप निवेदन करे। फिर दूध और हविष्यका नैवेद्य लगाकर पाँच बार परिक्रमा करके नमस्कार करे। फिर बारह बार

* संन्यासीके शरीरको गाड़नेके लिये जो गड्ढा खोदा जाता है, उसको 'देवयजन' कहते हैं।

प्रणवका जप करके प्रणाम करे । तदनन्तर (ब्रह्मीभूत यतिकी तृप्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, घृतदीपदानका संकल्प करके गर्तके ऊपर मृण्मय लिङ्ग बनाकर पुरुषसूक्तसे पूजा करके घृतमिश्रित पायसकी बलि दे । घीका दीप जला पायसबलि-को जलमें डाल दे) तत्पश्चात् दिशा-विदिशाओंके क्रमसे प्रणव-के उच्चारणपूर्वक '**ॐब्रह्मणे नमः**' इस मन्त्रसे ब्रह्मीभूत यतिके लिये शङ्खसे आठ बार अर्घ्यजल दे । इस प्रकार दस दिनोंतक करता रहे । मुनिश्रेष्ठ ! यह दशाहतककी विधि तुम्हें बतायी गयी । अब यतियोंके एकादशाहकी विधि सुनो ।

(अध्याय २०-२१)

यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन

स्कन्दजी कहते हैं—वामदेव ! यतिका एकादशाह प्राप्त होनेपर जो विधि बतायी गयी है, उसका मैं तुम्हारे स्नेह-वश वर्णन करता हूँ । मिट्टीकी वेदी बनाकर उसका सम्मार्जन और उपलेपन करे । तत्पश्चात् पुण्याहवाचनपूर्वक प्रोक्षण करके पश्चिमसे लेकर पूर्वकी ओर पाँच मण्डल बनाये और स्वयं श्राद्धकर्ता उत्तराभिमुख बैठकर कार्य करे । प्रादेशमात्र लंबा-चौड़ा चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें बिन्दु, उसके ऊपर त्रिकोण मण्डल, उसके ऊपर षट्कोण मण्डल और उसके ऊपर गोल मण्डल बनावे । फिर अपने सामने शङ्खकी स्थापना करके पूजाके लिये बतायी हुई पद्धतिके क्रमसे आचमन, प्राणायाम एवं संकल्प करके पूर्वोक्त पाँच आति-वाहिक देवताओंका देवेश्वरी देवियोंके रूपमें पूजन करे । उत्तर ओर आसनके लिये कुश डालकर जलका स्पर्श करे । पश्चिमसे आरम्भ करके पूर्वपर्यन्त जो मण्डल बताये गये हैं, उनके भीतर पीठके रूपमें पुष्प रक्खे और उन पुष्पोंपर क्रमशः उक्त पाँचों देवियोंका आवाहन करे । पहले अग्निपुञ्जस्वरूपिणी आतिवाहिक देवीका आवाहन करते हुए इस प्रकार कहे—'**ओं ह्रीं अग्निरूपामातिवाहिकदेवताम् आवाहयामि नमः**' । इस प्रकार सर्वत्र वाक्ययोजना और भावना करे । इस तरह पाँचों देवियोंका आवाहन करके प्रत्येकके लिये आदरपूर्वक स्थापना आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे । तत्पश्चात् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः—इन बीजमन्त्रोंद्वारा षडङ्गन्यास और करन्यास करे । इसके बाद उन देवियोंका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये । उन सबके चार-चार हाथ हैं । उनमेंसे दो हाथोंमें वे पाश और अङ्कुश धारण करती हैं तथा शेष दो हाथोंमें अभय और वरद मुद्राएँ हैं । उनकी अङ्गकान्ति चन्द्रकान्तमणिके समान है । लाल अँगूठियोंकी प्रभासे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंके मुख-मण्डलको रँग दिया है । वे लाल वस्त्र धारण करती हैं । उनके हाथ और पैर कमलोंके समान शोभा पाते हैं । तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाकी छटासे वे मनको मोहे लेती हैं । माणिक्यनिर्मित मुकुटोंसे उद्भासित चन्द्रलेखा उनके सीमन्तको विभूषित कर रही है । कपोलोंपर रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं । उनके उरोज पीन तथा उन्नत हैं । हार, केयूर, कड़े और करधनीकी लड़ियोंसे विभूषित होनेके कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती हैं । उनका कटिभाग कृश और नितम्ब स्थूल हैं । उनके अङ्ग लाल रंगके दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित हैं । चरणारविन्दोंमें माणिक्यनिर्मित पायजेबोंकी झनकार होती रहती है । पैरोंकी अँगुलियोंमें बिछुओं-की पंक्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर है ।

यदि अनुग्रह मुर्देके समान मूर्तिमान् हो तो उससे क्या सिद्ध हो सकता है । इसलिये वे देवियाँ महेश्वरकी भाँति शक्त्यात्मक मूर्तिवाले अनुग्रहसे सम्पन्न हैं । अतः उनके अनुग्रहसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है । सबपर अनुग्रह करने-वाले भगवान् शिवने ही उन पाँच मूर्तियोंको स्वीकार किया है । इसलिये वे दिव्य, सम्पूर्ण कार्य करनेमें समर्थ तथा परम अनुग्रहमें तत्पर हैं । इस प्रकार उन सब अनुग्रहपरायण कल्याणमयी देवियोंका ध्यान करके इनके लिये शङ्खस्थ जलके बिन्दुओंद्वारा पैरोंमें पाद्य, हाथोंमें आचमनीय तथा मस्तकोंपर अर्घ्य देना चाहिये । तदनन्तर शङ्खके जलकी बूँदोंसे उनका स्नानकर्म सम्पन्न कराना चाहिये । स्नानके पश्चात् दिव्य लाल रंगके वस्त्र और उत्तरीय अर्पित करे । बहुमूल्य मुकुट एवं आभूषण दे (इन वस्तुओंके अभावमें मनके द्वारा भावना करके इन्हें अर्पित करना चाहिये) । तत्पश्चात् सुगन्धित चन्दन, अत्यन्त सुन्दर अक्षत तथा उत्तम गन्धसे युक्त मनोहर

पुष्प चढ़ाये। अत्यन्त सुगन्धित धूप और घीकी बत्तीसे युक्त दीपक निवेदन करे। इन सब वस्तुओंको अर्पण करते समय आरम्भमें 'ॐ ह्रीं' का प्रयोग करके फिर 'समर्पयामि नमः' बोलना चाहिये। यथा 'ॐ ह्रीं अग्न्यादिरूपाभ्यः पञ्चदेवीभ्यः दीपं समर्पयामि नमः।' इस तरह अन्य उपचारोंको अर्पित करते समय वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये।

दीपसमर्पणके पश्चात् हाथ जोड़कर प्रत्येक देवीके लिये पृथक् पृथक् केलेके पत्तेपर पूरा-पूरा सुवासित नैवेद्य रक्खे। वह नैवेद्य घी, शक्कर और मधुसे मिश्रित खीर, पूआ, केलेके फल और गुड़ आदिके रूपमें होना चाहिये। 'भूर्भुवः स्वः' बोलकर उसका प्रोक्षण आदि संस्कार करे। फिर 'ॐ ह्रीं स्वाहा नैवेद्यं निवेदयामि नमः' बोलकर नैवेद्यसमर्पणके पश्चात् 'ॐ ह्रीं नैवेद्यान्ते आचमनार्थं पानीयं समर्पयामि नमः' कहते हुए बड़े प्रेमसे जल अर्पित करे। मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक नैवेद्यको पूर्व दिशामें हटा दे और उस स्थानको शुद्ध करके कुल्ला, आचमन तथा अर्घ्यके लिये जल दे। फिर ताम्बूल, धूप और दीप देकर परिक्रमा एवं नमस्कार करके मस्तकपर हाथ जोड़ इन सब देवियोंसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे श्रीमाताओ! आप अत्यन्त प्रसन्न हो शिवपदकी अभिलाषा रखनेवाले इस यतिको परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें रख दें और इसके लिये अपनी स्वीकृति दें।' इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबका, वे जैसे आयी थीं, उसी तरह बिदा देकर, विसर्जन कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी कन्याओंको बाँट दे या गौओंको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इनके सिवा और कहीं किसी प्रकार भी न डाले।

यहीं पार्वण करे। यतिके लिये कहीं भी एकोद्दिष्ट श्राद्धका विधान नहीं है। यहाँ पार्वण-श्राद्धके लिये जो नियम है, उसे मैं बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! तुम उसे सुनो। इससे कल्याणकी प्राप्ति होगी। श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान करके प्राणायाम करे। यज्ञोपवीत पहन सावधान हो हाथमें पवित्री धारण करके देश-कालका कीर्तन करनेके पश्चात् 'मैं इस पुण्यतिथिको पार्वण-श्राद्ध करूँगा' इस तरह संकल्प करे। संकल्पके बाद उत्तर दिशामें आसनके लिये उत्तम कुश बिछाये। फिर जलका स्पर्श करे। उन आसनोंपर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले चार शिवभक्त ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे बिठाये। वे ब्राह्मण उबटन लगाकर स्नान किये होने चाहिये। उनमेंसे एक ब्राह्मणसे कहे—'आप विश्वेदेवके लिये यहाँ श्राद्ध ग्रहण करनेकी कृपा करें।' इसी तरह दूसरेसे आत्माके लिये, तीसरेसे अन्तरात्माके लिये और चौथेसे परमात्माके लिये श्राद्ध ग्रहण करनेकी प्रार्थना करके श्राद्धकर्ता यति श्रद्धा और आदरपूर्वक उन सबका यथोचित रूपसे वरण करे। फिर उन सबके पैर धोकर उन्हें पूर्वाभिमुख बिठाये और गन्ध आदिसे अलंकृत करके शिवके सम्मुख भोजन कराये। तदनन्तर वहाँ गोबरसे भूमिको लीपकर पूर्वाग्र कुश बिछाये और प्राणायामपूर्वक पिण्डदानके लिये संकल्प करके तीन मण्डलोंकी पूजा करे। इसके बाद पहले पिण्डको हाथमें ले 'आत्मने इमं पिण्डं ददामि' ऐसा कहकर उस पिण्डको प्रथम मण्डलमें दे दे। तत्पश्चात् दूसरे पिण्डको 'अन्तरात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर दूसरे मण्डलमें दे दे। फिर तीसरे पिण्डको 'परमात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर तीसरे मण्डलमें अर्पित करे। इस तरह भक्तिभावसे विधिपूर्वक पिण्ड और कुशोदक दे। तत्पश्चात् उठकर परिक्रमा और नमस्कार करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको विधिवत् दक्षिणा दे। उसी जगह और उसी दिन नारायणबलि करे। रक्षाके लिये ही सर्वत्र श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है। अतः विष्णुकी महापूजा करे और खीरका नैवेद्य लगाये। इसके बाद वेदोंके पारंगत बारह विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर केशव आदि नाम-मन्त्रोंद्वारा गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। उनके लिये विधिपूर्वक जूता, छाता और वस्त्र आदि दे। अत्यन्त भक्तिसे भाँति-भाँतिके शुभ वचन कहकर उन्हें संतोष दे। फिर पूर्वाग्र कुशोंको बिछाकर 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ सुवः स्वाहा' ऐसा उच्चारण करके पृथ्वीपर खीरकी बलि दे। मुनीश्वर! यह मैंने एकादशाहकी विधि बतायी है। अब द्वादशाहकी विधि बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनो। (अध्याय २२)

यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलास पर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार

स्कन्दजी कहते हैं—वामदेव ! बारहवें दिन प्रातःकाल उठकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान और नित्यकर्म करके शिवभक्तों, यतियों अथवा शिवके प्रति प्रेम रखनेवाले ब्राह्मणोंको* निमन्त्रित करे । मध्याह्नकालमें स्नान करके पवित्र हुए उन ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विधिपूर्वक भाँति-भाँतिके स्वादिष्ठ अन्न भोजन कराये । फिर परमेश्वरके निकट बिठाकर पञ्चावरण-पद्धतिसे उनका पूजन करे । तत्पश्चात् मौनभावसे प्राणायाम करके देश-काल आदिके कीर्तनपूर्वक महान् संकल्पकी प्रणालीके अनुसार संकल्प करते हुए—'**अस्मद्गुरोरिह पूजां करिष्ये** (मैं अपने गुरुकी यहाँ पूजा करूँगा)' ऐसा कहकर कुशोंका स्पर्श करे । फिर ब्राह्मणोंके पैर धोकर आचमन करके श्राद्धकर्ता मौन रहे और भस्मसे विभूषित उन ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख आसनपर बिठाये । वहाँ सदाशिव आदिके क्रमसे उन आठ ब्राह्मणोंका बड़े आदरके साथ चिन्तन करे अर्थात् उन्हें सदाशिव आदिका स्वरूप माने । मुने ! अन्य चार ब्राह्मणोंका भी चार गुरुओंके रूपमें चिन्तन करे । चारों गुरु ये हैं—गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठी गुरु । परमेष्ठी गुरुका उनमें उमासहित महेश्वरकी भावना करते हुए चिन्तन करे । अपने गुरुका नाम लेकर ध्यान करे । उन सबके लिये '**इदमासनम्**' ऐसा कहकर पृथक्-पृथक् आसन रक्खे । आदिमें प्रणव, बीचमें द्वितीयान्त गुरु तथा अन्तमें '**आवाहयामि नमः**' बोलकर आवाहन करे । यथा—**ॐ अमुकनामानं गुरुम् आवाहयामि नमः । ॐ परमगुरुम् आवाहयामि नमः । ॐ परात्परगुरुम् आवाहयामि नमः । ॐ परमेष्ठिगुरुम् आवाहयामि नमः** । इस प्रकार आवाहन करके अर्घोदक (अर्घेमें रक्खे हुए जल) से पाद्य, आचमन और अर्घ्य निवेदन करे । फिर वस्त्र, गन्ध और अक्षत देकर '**ॐ गुरवे नमः**' इत्यादि रूपसे गुरुओंको तथा '**ॐ सदाशिवाय नमः**' इत्यादि रूपसे आठ नामोंके उच्चारणपूर्वक आठ अन्य ब्राह्मणोंको सुगन्धित फूलोंसे अलंकृत करे । तत्पश्चात् धूप, दीप देकर '**कृतमिदं सकलमाराधनं सम्पूर्णमस्तु** (की गयी यह सारी आराधना पूर्णरूपसे सफल हो)' ऐसा कहकर खड़ा हो नमस्कार करे । इसके बाद केलेके पत्तोंको पात्ररूपमें बिछाकर जलसे शुद्ध करके उनपर शुद्ध अन्न, खीर, पूआ, दाल और साग आदि व्यञ्जन परोसकर केलेके फल, नारियल और गुड भी रक्खे । पात्रोंको रखनेके लिये आसन भी अलग-अलग दे । उन आसनोंका क्रमशः प्रोक्षण करके उन्हें यथास्थान रक्खे । फिर भोजनपात्रका भी प्रोक्षण एवं अभिषेक करके हाथसे उसका स्पर्श करते हुए कहे—'**विष्णो ! हव्यमिदं रक्षस्व** (हे विष्णो ! इस हविष्यको आप सुरक्षित रक्खें)' फिर उठकर उन ब्राह्मणोंको पीनेके लिये जल देकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'**सदाशिवादयो मे प्रीता वरदा भवन्तु** (सदाशिव आदि मुझपर प्रसन्न हो अभीष्ट वर देनेवाले हों)' ।

इसके बाद '**ये देवा**' (शु० यजु० १७ । १३-१४) आदि मन्त्रका उच्चारण करके अक्षतसहित इस अन्नका त्याग करे । फिर नमस्कार करके उठे और '**सर्वत्राकृतमस्तु** ।' ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करके 'गणानां त्वा' (शु० यजु० २३ । १९) इस मन्त्रका पहले पाठ करके चारों वेदोंके आदिमन्त्रोंका, रुद्राध्यायका, चमकाध्यायका, रुद्रसूक्तका तथा सद्योजातादि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करे । ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें भी यथासम्भव मन्त्र बोले और अक्षत छोड़े, फिर आचमनादि जल दे । हाथ-पैर और मुँह धोनेके लिये भी जल अर्पित करे । आचमनके पश्चात् सब ब्राह्मणोंको सुखपूर्वक आसनोंपर बिठाकर शुद्ध जल देनेके अनन्तर मुखशुद्धिके लिये यथोचित कपूर आदिसे युक्त ताम्बूल अर्पित करे । फिर दक्षिणा, चरणपादुका, आसन, छाता, व्यजन, चौकी और

---

* धर्मसिन्धुके अनुसार सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये । इनमेंसे चार तो गुरु, परम गुरु, परमेष्ठि गुरु और परात्पर गुरुके लिये होते हैं और बारह ब्राह्मणोंकी केशवादि नामोंसे पूजा होती है । परंतु इस पुराणमें दिये गये वर्णनके अनुसार बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना आवश्यक है ।

बाँसकी छड़ी देकर परिक्रमा और नमस्कारके द्वारा उन ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे तथा उनसे आशीर्वाद ले। पुनः प्रणाम करके गुरुके प्रति अविचल भक्तिके लिये प्रार्थना करे। तत्पश्चात् विसर्जनकी भावनासे कहे—**'सदाशिवादयः प्रीता यथासुखं गच्छन्तु'** (सदाशिव आदि संतुष्ट हो सुखपूर्वक यहाँसे पधारें)। इस प्रकार विदा करके दरवाजेतक उनके पीछे-पीछे जाय। फिर उनके रोकनेपर आगे न जाकर लौट आये। लौटकर द्वारपर बैठे हुए ब्राह्मणों, बन्धुजनों, दीनों और अनाथोंके साथ स्वयं भी भोजन करके सुखपूर्वक रहे। ऐसा करनेसे उसमें कहीं भी विकृति नहीं हो सकती। यह सब सत्य है, सत्य है और बारंबार सत्य है। इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरुकी उत्तम आराधना करनेवाला शिष्य इस लोकमें महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

मुने! यह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तसे निश्चित किया गया है। तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, उसे विद्वान् पुरुष तुम्हारा ही मत कहेंगे। अतः यति इसी मार्गसे चलकर **'शिवोऽहमस्मि'** (मैं शिव हूँ) इस रूपमें आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवरूप हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर दिव्य ज्ञानदाता गुरु देवेश्वर कार्तिकेय पितामाताके सर्वदेववन्दित चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए अनेक शिखरोंसे आवृत, शोभाशाली एवं परम आश्चर्यमय कैलासशिखरको चले गये। श्रेष्ठ शिष्योंसहित वामदेव भी मयूरवाहन कार्तिकेयको प्रणाम करके शीघ्र ही परम अद्भुत कैलासशिखरपर जा पहुँचे और महादेवजीके निकट जा उन्होंने उमासहित महेश्वरके मायानाशक मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया। फिर भक्तिभावसे अपना सारा अङ्ग भगवान् शिवको समर्पित करके, वे शरीरकी सुधि भुलाकर उनके निकट दण्डकी भाँति पड़ गये और बारंबार उठ-उठकर नमस्कार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा, जो वेदों और आगमोंके रससे पूर्ण थे, जगदम्बा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया। इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणारविन्दको अपने मस्तकपर रखकर उनका पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। तुम सभी ऋषि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा वेदोंके गोपनीय रहस्य, वेदसर्वस्व और मोक्षदायक तारक मन्त्र ॐकारका ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें सायुज्यरूपा अनुपम एवं उत्तम मुक्तिका चिन्तन किया करो। अब मैं गुरुदेवकी सेवाके लिये बदरिकाश्रम तीर्थको जाऊँगा। तुम्हें फिर मेरे साथ सम्भाषणका एवं सत्सङ्गका अवसर प्राप्त हो।

(अध्याय २३)

॥ कैलाससंहिता सम्पूर्ण ॥



वायवीयसंहिता (पूर्वखण्ड)

प्रयागमें ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ

व्यास उवाच

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥
शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम्।
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते ॥
तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम् ॥

व्यासजी कहते हैं—जो जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है । जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्रष्टा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मङ्गलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ ।

जो धर्मका क्षेत्र और महान् तीर्थ है, जहाँ गङ्गा और यमुनाका संगम हुआ है तथा जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस प्रयागमें शुद्ध हृदयवाले सत्यव्रतपरायण महातेजस्वी एवं महाभाग मुनियोंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया । वहाँ क्लेशरहित कर्म करनेवाले उन महात्माओंके यज्ञका समाचार सुनकर निपुण कथावाचक, त्रिकालवेत्ता, उत्तम नीतिके ज्ञाता तथा क्रान्तदर्शी विद्वान् पौराणिकशिरोमणि सूतजी उस स्थानपर आये । सूतजीको आते देख मुनियोंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा । उन्होंने उनसे सान्त्वनापूर्ण मधुर बातें कहकर उनकी यथायोग्य पूजा की । मुनियोंद्वारा की हुई उस पूजाको ग्रहण करके सूतजीने उनकी प्रेरणासे अपने लिये बताये गये उपयुक्त आसनको स्वीकार किया । उस समय महर्षियोंने अनुकूल वचनोंद्वारा उनका सत्कार करते हुए उन्हें अत्यन्त अभिमुख करके यह बात कही ।

ऋषि बोले—शिवभक्तशिरोमणि महाबुद्धिमान् महाभाग रोमहर्षणजी ! आप सर्वज्ञ हैं और हमारे महान् सौभाग्यसे यहाँ पधारे हैं । तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपको विदित न हो । आप भाग्यवश हमें दर्शन देनेके लिये स्वयं यहाँ आ गये हैं । अतः अब हमारा कोई कल्याण किये बिना आपको यहाँसे व्यर्थ नहीं जाना चाहिये । इसलिये आप हमें शीघ्र वह पवित्र पुराण सुनायें, जो अत्यन्त श्रवणीय, उत्तम कथा और ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारसर्वस्वसे सम्पन्न हो ।

वेदवादी मुनियोंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब सूतजीने मधुर, न्याययुक्त एवं शुभ वचनोंमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! आपने मेरा सत्कार किया और मुझपर कृपा की है, ऐसी दशामें आपसे प्रेरित होकर मैं आपके समक्ष महर्षियोंद्वारा सम्मानित पुराणका भलीभाँति प्रवचन क्यों नहीं करूँगा । अब मैं महादेवजी, देवी पार्वती, कुमार स्कन्द, गणेशजी, नन्दी तथा सत्यवतीकुमार साक्षात् भगवान् व्यासको प्रणाम करके उस परम पवित्र वेदतुल्य पुराणकी कथा कहूँगा, जो शिवतत्त्वके ज्ञानका सागर है और भोग एवं मोक्षरूपी फल देनेवाला साक्षात् साधन है । विद्याके सम्पूर्ण स्थानोंका, पुराणोंकी संख्याका और उनकी उत्पत्तिका विवरण दे रहा हूँ । आपलोग मुझसे इस विषयको ध्यानपूर्वक सुनें । छः वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं । इनके साथ आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और उत्तम अर्थशास्त्रको भी गिन लिया जाय तो ये विद्याएँ अठारह हो जाती हैं । इन अठारह विद्याओंके मार्ग एक दूसरेसे भिन्न हैं । इन सबके निर्माता त्रिकालदर्शी विद्वान् साक्षात् भगवान् शूलपाणि शिव हैं, ऐसा श्रुतिका कथन है । सम्पूर्ण जगत्के स्वामी उन भगवान् शिवको जब समस्त संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने सबसे पहले अपने सनातन पुत्र साक्षात् ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और अपने उन प्रथम पुत्र, विश्वयोनि ब्रह्माको परमेश्वर शिवने जगत्की सृष्टिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पहले ये सब विद्याएँ दीं । उसके बाद उन्होंने पालन करनेके लिये भगवान् श्रीहरिको नियुक्त किया और उन्हें जगत्की रक्षाके लिये शक्ति प्रदान की ।

वे भगवान् विष्णु ब्रह्माजीके भी पालक हैं। ब्रह्माजी विद्या प्राप्त करके जब प्रजाकी सृष्टिके विस्तारकार्यमें लगे, तब उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पहले पुराणको ही स्मरण किया और उन्हींको वे प्रकाशमें लाये। पुराणोंके प्रकट होनेके अनन्तर उनके चार मुखोंसे चारों वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। फिर उन्हीं-के मुखसे सम्पूर्ण शास्त्रोंकी प्रवृत्ति हुई।

द्वापरमें भगवान् श्रीहरि सत्यवतीके गर्भसे उसी तरह प्रकट हुए, जैसे अरणिसे आग प्रकट होती है। उस समय उनका नाम श्रीकृष्णद्वैपायन हुआ। मुनिवर ! श्रीकृष्ण-द्वैपायनने वेदोंको संक्षिप्त करके उन्हें चार भागोंमें विभक्त किया। इस प्रकार चार भागोंमें वेदोंका व्यास (विस्तार) करनेसे वे लोकमें वेदव्यासके नामसे विख्यात हुए। इसी तरह उन्होंने पुराणोंको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंमें सीमित किया। आज भी देवलोकमें पुराणोंका विस्तार सौ कोटि श्लोकोंमें है। जो द्विज छहों अङ्गों और उपनिषदों-सहित चारों वेदोंको तो जानता है किंतु पुराणको नहीं जानता, वह श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो सकता। इतिहास और पुराणोंसे वेदकी व्याख्या करे। जिसका ज्ञान बहुत कम है अर्थात् जो पौराणिक ज्ञानसे शून्य है, ऐसे पुरुषसे वेद यह सोचकर डरता है कि यह मुझपर प्रहार कर बैठेगा। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित— ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। छोटे और बड़ेके भेदसे अठारह पुराण बताये गये हैं। १—ब्रह्मपुराण, २—पद्मपुराण, ३—विष्णुपुराण, ४—शिवपुराण, ५—भागवतपुराण, ६—भविष्यपुराण, ७—नारदपुराण, ८—मार्कण्डेयपुराण, ९—अग्निपुराण, १०—ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११—लिङ्गपुराण, १२—वाराहपुराण, १३—स्कन्दपुराण, १४—वामनपुराण, १५—कूर्मपुराण, १६—मत्स्यपुराण, १७—गरुडपुराण और १८—ब्रह्माण्डपुराण— यह पुराणोंका पवित्र क्रम है। इनमें शिवपुराण चौथा है, जो भगवान् शिवसे सम्बन्ध रखता है और सब मनोरथोंका साधक है। इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या एक लाख है और यह बारह संहिताओंमें विभक्त है। इसका निर्माण साक्षात् भगवान् शिवने ही किया है तथा इसमें धर्म प्रतिष्ठित है। वेदव्यासने इस एक लाख श्लोकवाले शिवपुराणको संक्षिप्त करके चौबीस हजार श्लोकोंका कर दिया है। इसमें सात संहिताएँ हैं। पहली विद्येश्वर-संहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीयसंहिता है। इस प्रकार इसमें सात ही संहिताएँ हैं। विद्येश्वरसंहितामें दो हजार, रुद्रसंहितामें दस हजार पाँच सौ, शतरुद्रसंहितामें दो हजार एक सौ अस्सी, कोटिरुद्रसंहितामें दो हजार दो सौ चालीस, उमासंहितामें एक हजार आठ सौ चालीस, कैलाससंहितामें एक हजार दो सौ चालीस और वायवीयसंहितामें चार हजार श्लोक हैं। इस परम पवित्र शिवपुराणको आपलोगोंने सुन लिया। केवल चार हजार श्लोकोंकी वायवीयसंहिता रह गयी है, जो दो भागोंसे युक्त है। उसका वर्णन मैं करूँगा। जो वेदोंका विद्वान् न हो, उससे इस उत्तम शास्त्रका वर्णन नहीं करना चाहिये। जो पुराणोंको न जानता हो और जिसकी पुराणपर श्रद्धा न हो, उससे भी इसकी कथा नहीं कहनी चाहिये। जो भगवान् शिवका भक्त हो, शिवोक्त धर्मका पालन करता हो और दोषदृष्टिसे रहित हो, उस जाँचे-बूझे हुए धर्मात्मा शिष्यको ही इसका उपदेश देना चाहिये। जिनकी कृपासे मुझको पुराणसंहिताका ज्ञान है, उन अमिततेजस्वी भगवान् व्यासको नमस्कार है।

(अध्याय १)

ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जा उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमग्न हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! पहले अनेक कल्पोंके बारंबार बीतनेपर सुदीर्घकालके पश्चात् जब यह वर्तमान कल्प उपस्थित हुआ और सृष्टिका कार्य आरम्भ हुआ, जब जीविका-साधक कर्म—कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यकी प्रतिष्ठा हुई तथा प्रजावर्गके लोग सजग एवं सचेत हो गये, तब छः कुलोंमें उत्पन्न हुए महर्षियोंमें परस्पर बहस छिड़ गयी। 'यह परब्रह्म है, यह नहीं है' इस प्रकार उनमें महान् विवाद होने लगा। किंतु परम तत्त्वका निरूपण अत्यन्त कठिन होनेके कारण उस समय वहाँ कुछ निश्चय न हो सका। तब वे सब लोग जगत्-स्रष्टा अविनाशी ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये उस स्थानपर

गये, जहाँ देवताओं और असुरोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे। देवताओं और दानवोंसे भरे हुए सुन्दर रमणीय मेरु-शिखरपर, जहाँ सिद्ध और चारण परस्पर बातचीत करते हैं, यक्ष और गन्धर्व सदा रहते हैं, विहंगोंके समुदाय कलरव करते हैं, मणि और मूँगे जिसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा निकुञ्ज, कन्दराएँ, छोटी गुफाएँ और अनेकानेक निर्झर जिसे सुशोभित करते हैं, एक ब्रह्मवन नामसे प्रसिद्ध वन है। उसमें नाना प्रकारके वन्यपशु भरे हुए हैं। उसकी लंबाई सौ योजन और चौड़ाई दस योजनकी है। उसके भीतर एक रमणीय सरोवर है, जो सुस्वादु निर्मल जलसे भरा रहता है। वहाँके रमणीय पुष्पित वृक्षोंपर मतवाले भौंरे छाये रहते हैं। उस वनमें एक मनोहर एवं विशाल नगर है, जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होता रहता है। वहाँ दुर्धर्ष शक्तिसे युक्त बलाभिमानी दैत्य, दानव तथा राक्षसोंका निवास है। वह नगर तपाये हुए सुवर्णका बना जान पड़ता है। उसकी चहारदीवारियाँ और सदर फाटक बहुत ऊँचे हैं। छोटे बुर्जों, ढालू छतों, आवासस्थानों तथा सैकड़ों गलियोंसे उस नगरकी बड़ी शोभा है। वह विचित्र बहुमूल्य मणियोंसे आकाशको चूमता-सा प्रतीत होता है तथा कई करोड़ विशाल भवनोंसे अलंकृत है।

उस नगरमें प्रजापति ब्रह्मा अपने सभासदोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर उन मुनियोंने साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजीको देखा। देवर्षियोंके समुदाय उनकी सेवामें बैठे थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध सुवर्णके समान थी। वे सब आभूषणोंसे विभूषित थे। उनका मुख प्रसन्न था, उससे सौम्यभाव प्रकट होता था। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। दिव्यकान्तिसे सम्पन्न, दिव्य गन्ध एवं अनुलेपनसे चर्चित, दिव्य श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित ब्रह्माजीके चरणारविन्दोंकी वन्दना सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा योगीन्द्र भी करते थे। जैसे प्रभा दिवाकरकी सेवा करती है, उसी प्रकार समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त साक्षात् सरस्वती देवी हाथमें चँवर ले उनकी सेवा कर रही थीं, इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

ब्रह्माजीका दर्शन करके उन सभी महर्षियोंके मुख और नेत्र खिल उठे। उन्होंने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर उन सुरश्रेष्ठकी स्तुति की।



ऋषि बोले—संसारकी सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तीन रूप धारण करनेवाले आप पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्माको नमस्कार है। प्रकृति जिनका शरीर है, जो प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले हैं तथा प्रकृतिरूपमें तेईस विकारोंसे युक्त होनेपर भी जो वास्तवमें निर्विकार हैं, उन ब्रह्मदेवको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड जिनकी देह है, तो भी जो ब्रह्माण्डके उदरमें निवास करते हैं तथा वहाँ रहकर जिनके कार्य और करण सम्यक्-रूपसे सिद्ध होते हैं, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है। जो सर्वलोकस्वरूप तथा समस्त लोकोंके स्रष्टा हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका शरीरसे संयोग और वियोग करानेमें हेतु हैं, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है। नाथ! पितामह! आपसे ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, तथापि मायासे आवृत होनेके कारण हम आपको नहीं जानते।

सूतजी कहते हैं—उन महाभाग महर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर ब्रह्माजी उन मुनियोंको आह्लाद प्रदान करते हुए गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—महान् सत्त्वगुणसे सम्पन्न महाभाग महातेजस्वी महर्षियो! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस लिये आये हो?

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उन सभी मुनियोंने हाथ जोड़ विनयभरी वाणीमें कहा।

मुनि बोले—भगवन्! हमलोग अज्ञानके महान् अन्ध-

कारसे आवृत हो खिन्न हो रहे हैं। परस्पर विवाद करते हुए हमें परमतत्त्वका साक्षात्कार नहीं हो रहा है। आप सम्पूर्ण जगत्के धारण-पोषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। नाथ! यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। कौन ऐसा पुरुष है, जो सम्पूर्ण जीवोंसे पुरातन, अन्तर्यामी, उत्कृष्ट विशुद्ध परिपूर्ण एवं सनातन परमेश्वर है? कौन अपने अद्भुत क्रियाकलापद्वारा सबसे प्रथम संसारकी सृष्टि करता है? महाप्राज्ञ! हमारे इस संदेहका निवारण करनेके लिये आप हमें परमार्थ-तत्त्वका उपदेश दें।

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। वे देवताओं, दानवों और मुनियोंके निकट खड़े हो गये और चिरकालतक ध्यानमग्न हो 'रुद्र' ऐसा कहते हुए आनन्दविभोर हो गये। उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और वे हाथ जोड़कर बोले। (अध्याय २)

ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी ही महत्ताका प्रतिपादन, उनकी कृपाको ही सब साधनोंका फल बताना तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमिषारण्यमें आना

ब्रह्माजीने कहा—मुनियो! जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष कभी किसीसे नहीं डरता, जिनसे सम्पूर्ण भूतों और इन्द्रियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रपूर्वक यह समस्त जगत् पहले प्रकट होता है, जो कारणोंके भी स्रष्टा और विचारक परम कारण हैं, जिनके सिवा और किसीसे कभी भी जगत्की उत्पत्ति नहीं होती,* सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण जो स्वयं ही सर्वेश्वर नाम धारण करते हैं, सब मुमुक्षु जिन शम्भुका अपने हृदयाकाशके भीतर ध्यान करते हैं, जिन्होंने सबसे पहले मुझे ही अपने पुत्रके रूपमें उत्पन्न किया और मुझे ही सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान दिया, जिनके कृपाप्रसादसे मैंने यह प्रजापतिका पद प्राप्त किया है, जो ईश्वर अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चल भावसे प्रकाशमान आकाशमें विराजमान हैं, जिन परमपुरुष परमात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है, जो अकेले ही बहुत-से निष्क्रिय जीवोंके शासक एवं उन्हें सक्रियता प्रदान करनेवाले हैं, जो महेश्वर एक बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं, जो सबका शासन करनेवाले ईश्वर इन जीवोंसहित इन समस्त लोकोंको वशमें रखते हैं, सब रूपोंमें जो एकमात्र भगवान् रुद्र ही हैं, दूसरा कोई नहीं है, जो सदा ही मनुष्योंके हृदयमें भलीभाँति प्रविष्ट होकर स्थित हैं, जो स्वयं सम्पूर्ण विश्वको देखते हुए भी दूसरोंसे कदापि लक्षित नहीं होते और सदा समस्त जगत्के अधिष्ठाता हैं, जो अनन्त शक्तिशाली एकमात्र भगवान् रुद्र कालसे मुक्त समस्त कारणोंपर भी शासन करते हैं, जिनके लिये न दिन है न रात्रि है, जिनके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है, जिनकी ज्ञान, बल और क्रियारूपा पराशक्ति स्वाभाविक एवं नित्य है।'* जो इस क्षर (विनाशशील), अव्यक्त (प्रकृति) पर तथा अमृतस्वरूप अक्षर (अविनाशी) जीवात्मापर शासन करते हैं, उनका निरन्तर ध्यान करनेसे, मनको उनमें लगाये रहनेसे तथा उन्हींके तत्त्वकी भावना करते हुए उनमें तन्मय रहनेसे जीव अन्तमें उन्हींको प्राप्त हो जाता है। फिर तो सारी माया अपने-आप दूर हो जाती है। उनके पास न तो बिजली प्रकाश करती है और न सूर्य तथा चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं, अपितु उन्हींके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। ऐसा सनातन श्रुतिका कथन है।† एकमात्र महादेव महेश्वरको ही अपना

---

* यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम्।
न सम्प्रसूयतेऽन्यस्मात् कुतश्चन कदाचन॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। १—३)

* न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः।
स्वाभाविकी पराशक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। ११)

† यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः।
यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। १४)

आराध्यदेव जानना चाहिये। उनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई पद उपलब्ध नहीं होता। ये स्वयं ही सबके आदि हैं, किंतु इनका न आदि है न अन्त। ये स्वभावसे ही निर्मल, स्वतन्त्र, परिपूर्ण, स्वेच्छाधीन तथा चराचररूप हैं। इनका शरीर अप्राकृतिक (दिव्य) है। ये श्रीमान् महेश्वर लक्ष्य और लक्षणसे रहित हैं। ये नित्यमुक्त होकर सबको बन्धनसे मुक्त करनेवाले हैं। कालकी सीमासे परे रहकर कालको प्रेरित करनेवाले हैं।* ये सबके ऊपर निवास करते हैं। स्वयं ही सबके आवासस्थान हैं, सर्वज्ञ हैं तथा छः प्रकारके अध्वा (मार्ग) से युक्त इस सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं। उत्तरोत्तर उत्कृष्ट भूतोंसे वे परम उत्कृष्ट हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। अनन्त आनन्दराशिरूपी मकरन्दका पान करनेवाले मधुव्रत (भ्रमर) हैं। अखण्ड ब्रह्माण्डोंको मसलकर मृत्पिण्डके समान कर देनेकी कलामें पण्डित हैं। उदारता, वीरता, गम्भीरता और मधुरताके महासागर हैं। इनके समान भी कोई वस्तु नहीं है, फिर इनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकती है। ये उपमा-रहित हैं। समस्त प्राणियोंके राजाधिराजके रूपमें विराजमान हैं। ये ही सृष्टिके प्रारम्भमें अपने अद्भुत क्रियाकलापद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं और अन्तकालमें यह फिर इन्हींमें लीन हो जायगा। सब प्राणी इन्हींके वशमें हैं। ये ही सबको विभिन्न कार्योंमें नियुक्त करनेवाले हैं। पराभक्तिसे ही इनका दर्शन होता है, अन्य किसी प्रकारसे कभी नहीं।

व्रत, सम्पूर्ण दान, तपस्या और नियम—इन सब साधनोंको पूर्वकालमें सत्पुरुषोंने भावशुद्धि तथा अनुरागकी उत्पत्तिके लिये ही बताया था, इसमें संशय नहीं है। मैं, भगवान् विष्णु, रुद्रदेव तथा दूसरे-दूसरे देवता एवं असुर आज भी उग्र तपस्याओंके द्वारा उनके दर्शनकी इच्छा रखते हैं। धर्मभ्रष्ट, मूढ़, दुष्ट और घृणित आचार-विचारवाले लोगोंको उनका दर्शन होना असम्भव है। भक्तजन भीतर और बाहर भी उन्हींका पूजन एवं ध्यान करते हैं। यह रूप तीन प्रकारका है—स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे। हम सब देवता आदि जिस रूपको प्रत्यक्ष देखते हैं, वह स्थूल है। सूक्ष्म रूपका दर्शन केवल योगियोंको होता है और उससे भी परे जो नित्य, ज्ञानस्वरूप आनन्दमय तथा अविनाशी भगवत्स्वरूप है, वह उसमें निष्ठा रखनेवाले भजनपरायण भक्तोंकी ही दृष्टिमें आता है। भगवद्व्रतका आश्रय लेनेवाले भक्त ही उसको देख पाते हैं। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, गुह्यसे भी गुह्यतर एवं उत्कृष्ट साधन है भगवान् शिवके प्रति भक्ति। जो उस भक्तिसे युक्त है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें संदेह नहीं है। वह भक्ति भगवान् शिवकी कृपासे ही उपलब्ध होती है और उनकी कृपा भी भक्तिसे ही सम्भव होती है—इस प्रकार ये दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं—ठीक वैसे ही, जैसे अङ्कुरसे बीज और बीजसे अङ्कुर होता है। जीवको भगवत्कृपासे ही सर्वत्र सिद्धियाँ मिलती हैं। सम्पूर्ण साधनोंसे अन्तमें भगवान्की कृपा ही साध्य है। अन्तःकरणकी शुद्धि या प्रसादका साधन है धर्म और उस धर्मके स्वरूपका प्रतिपादन वेदने किया है। वेदोंके अभ्याससे पहलेके पुण्य और पापोंमें समता आती है, उस समतासे प्रसाद (प्रसन्नता या अन्तःशुद्धि) का सम्पर्क प्राप्त होता है और उससे धर्मकी वृद्धि होती है। धर्मकी वृद्धिसे पशु (जीवके) पापोंका क्षय होता है। इस तरह जिसके पाप क्षीण हो गये हैं, उस जीवको अनेक जन्मोंके अभ्याससे क्रमशः उमा-महेश्वरके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त होकर उसके हृदयमें उनके प्रति भक्तिका उदय होता है। उस भक्तिभावके अनुरूप ही महेश्वरके कृपाप्रसादका उद्रेक होता है। उस प्रसादसे कर्मोंका त्याग होता है। कर्मोंके त्यागका अभिप्राय उनके फलोंके त्यागसे है, कर्मोंके स्वरूपतः त्यागसे नहीं। अतः यह सिद्ध हुआ कि कर्मफलोंके त्यागसे शिवधर्ममें मङ्गलमयी प्रवृत्ति होती है।

इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुम सब लोग अपने स्त्री-पुत्रों और अग्नियोंके साथ वाणी और

---

* अप्राकृतवपुः श्रीमान् लक्ष्यलक्षणवर्जितः।
अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। १७)

मनके दोषोंसे रहित होकर एकमात्र भगवान् शिवका ही ध्यान करते रहो। उन्हींमें निष्ठा रखकर उनके भजनमें तत्पर हो जाओ। उन्हींमें मन लगाकर उनके आश्रित होकर रहो। सब कार्य करते हुए मनसे उन्हींका चिन्तन किया करो। एक सहस्र दिव्य वर्षोंके लिये दीर्घकालिक यज्ञका आरम्भ करके उसे पूर्ण करो। यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर साक्षात् वायुदेवता वहाँ पधारेंगे। फिर वे ही तुम सब लोगोंके कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे। तत्पश्चात् तुम सब लोग परम सुन्दर पुण्यमयी वाराणसीपुरीको जाना, जहाँ पिनाकपाणि श्रीमान् भगवान विश्वनाथ भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये देवी पार्वतीके साथ सदा विहार करते हैं। द्विजोत्तमो! वहाँ तुम्हें बड़ा भारी आश्चर्य दिखायी देगा। उस आश्चर्यको देखकर तुम फिर मेरे पास आना, तब मैं तुम्हें मोक्षका उपाय बताऊँगा। उस उपायसे एक ही जन्ममें मुक्ति तुम्हारे हाथमें आ जायगी, जो अनेक जन्मोंके संसारबन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली होगी। यह मैंने मनोमय चक्रका निर्माण किया है। इस चक्रको मैं यहाँसे छोड़ता हूँ। जहाँ जाकर इसकी नेमि विशीर्ण हो जाय—टूट-फूट जाय, वही तपस्याके लिये शुभ देश है।

ऐसा कहकर पितामह ब्रह्माने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोमय चक्रकी ओर देखा और महादेवजीको प्रणाम करके उसे छोड़ दिया। वे सब ब्राह्मण उन लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उस स्थानके लिये चल दिये, जहाँ उस चक्रकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होनेवाली थी। ब्रह्माजीका फेंका हुआ वह सुन्दर चक्र मनोहर शिलाखण्डोंसे युक्त और निर्मल एवं स्वादिष्ट जलसे पूर्ण किसी वनमें गिरा। उस चक्रकी नेमिके



शीर्ण होनेसे वह मुनिपूजित वन नैमिष नामसे विख्यात हुआ। अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधर वहाँ आकर रहने लगे। पूर्वकालमें जगत्‌की सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले विश्वस्रष्टा एवं गार्हपत्य अग्निके उपासक ब्रह्मज्ञ प्रजापतियोंने वहीं दिव्य यज्ञका आरम्भ किया था। वहीं शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने शक्ति, ज्ञान और क्रियायोगके द्वारा शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान किया था। उसी स्थानपर वेदवेत्ता विद्वान् सदा वाद और जल्पके बलसे युक्त वचनोंद्वारा अतिवाद करनेवाले वेदबहिष्कृत नास्तिकोंको पराहत या पराजित करते थे। तभीसे नैमिषारण्य ऋषियोंकी तपस्याके योग्य स्थान बन गया। स्फटिकमणिमय पर्वतकी शिलाओंसे झरते हुए अमृतके समान मधुर एवं स्वच्छ जलके कारण वह वन बड़ा रमणीय प्रतीत होता है। वहाँ प्रायः अत्यन्त रसीले फल देनेवाले वृक्ष हैं तथा उस वनमें हिंसक जीव-जन्तुओंका अभाव है।

(अध्याय ३)

नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन, उनका सत्कार तथा ऋषियोंके पूछनेपर वायुके द्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने उस देशमें महादेवजीकी आराधना करते हुए एक महान् यज्ञका आयोजन किया। वह यज्ञ जब आरम्भ हुआ, तब महर्षियोंको सर्वथा आश्चर्यजनक जान पड़ा। तदनन्तर समय बीतनेपर जब प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब

ब्रह्माजीकी आज्ञासे वायुदेव स्वयं वहाँ पधारे । उनको आया देख दीर्घकालिक यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले वे मुनि ब्रह्माजीकी बातको याद करके अनुपम हर्षका अनुभव करने लगे । उन सबने उठकर आकाशजन्मा वायुदेवताको प्रणाम किया और उन्हें बैठनेके लिये एक सोनेका बना हुआ आसन दिया । वायुदेवता उस आसनपर बैठे । मुनियोंने उनकी विधिवत् पूजा की । तदनन्तर उन सबका अभिनन्दन करके वे कुशल-मङ्गल पूछने लगे ।

वायुदेवता बोले—ब्राह्मणो ! इस महान् यज्ञका अनुष्ठान पूर्ण होनेतक तुम सब लोग सकुशल रहे न ? यज्ञहन्ता देवद्रोही दैत्योंने तुम्हें बाधा तो नहीं पहुँचायी ? तुम्हें कोई प्रायश्चित्त तो नहीं करना पड़ा ? तुम्हारे यज्ञमें कोई दोष तो नहीं आया ? क्या तुमलोगोंने स्तोत्र और शस्त्रग्रहोंद्वारा देवताओंका तथा पितृकर्मोंद्वारा पितरोंका भलीभाँति पूजन करके यज्ञविधिका अनुष्ठान भलीभाँति सम्पन्न किया ? इस महायज्ञकी समाप्ति हो जानेपर अब आपलोग क्या करना चाहते हैं ?



मुनियोंने कहा—प्रभो ! हमारे कल्याणकी वृद्धिके लिये जब आप स्वयं यहाँ आ गये, तब अब हमारा सब प्रकारसे कुशल-मङ्गल ही है तथा हमारी तपस्या भी उत्तम होगी । अब पहलेका वृत्तान्त सुनिये । हमारा हृदय अज्ञानान्धकारसे आक्रान्त हो गया था, तब हमने विज्ञानकी प्राप्तिके लिये पूर्वकालमें प्रजापतिकी उपासना की । शरणागतवत्सल प्रजापतिने हम शरणागतोंपर कृपा करके इस प्रकार कहा—'ब्राह्मणो ! रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं । वे ही परम कारण हैं । उन्हें तर्कसे नहीं जाना जा सकता । भक्तिमान् पुरुष ही उनके स्वरूपको ठीक-ठीक देखता और समझता है । भक्ति भी उनकी कृपासे ही मिलती है और उस कृपासे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है । अतः उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करनेके लिये तुमलोग नैमिषारण्यमें यज्ञका आयोजन करो । दीर्घकालतक चलनेवाले उस यज्ञके द्वारा परम कारण रुद्रदेवकी आराधना करो । यज्ञके अन्तमें उन रुद्रदेवके कृपाप्रसादसे वायुदेवता वहाँ पधारेंगे । उनके मुखसे वहाँ तुम्हें ज्ञानलाभ होगा और उससे कल्याणकी प्राप्ति होगी ।' महाभाग ! ऐसा आदेश देकर परमेष्ठीने हम सबको यहाँ भेजा । हम इस देशमें आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक दीर्घकालिक यज्ञके अनुष्ठानमें लगे रहे हैं । अतः इस समय आपके आगमनके सिवा हमारे लिये दूसरी कोई प्रार्थनीय वस्तु नहीं है ।

दीर्घकालसे यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए उन महर्षियोंका यह पुरातन वृत्तान्त सुनकर वायुदेवता मन-ही-मन प्रसन्न हो मुनियोंसे घिरे हुए वहाँ बैठे रहे । फिर उन सबके पूछनेपर उनके भक्तिभावकी वृद्धिके लिये उन्होंने भगवान् शंकरके सृष्टि आदि ऐश्वर्यको संक्षेपसे बताया ।

नैमिषारण्यके ऋषियोंने पूछा—देव ! आपने ईश्वरविषयक ज्ञान कैसे प्राप्त किया ? तथा आप अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शिष्य किस प्रकार हुए ?

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! उन्नीसवें कल्पका नाम श्वेतलोहितकल्प समझना चाहिये । उसी कल्पमें चतुर्मुख ब्रह्माने सृष्टिकी कामनासे तपस्या की । उनकी उस तीव्र तपस्यासे संतुष्ट हो स्वयं उनके पिता देवदेव महेश्वरने उन्हें दर्शन दिया । वे दिव्य कुमारावस्थासे युक्त रूप धारण करके रूपवानोंमें श्रेष्ठ श्वेतनामक मुनि होकर दिव्य वाणी बोलते हुए उनके सामने उपस्थित हुए । वेदोंके अधिपति तथा सबके पालक पिता महेश्वरका दर्शन करके गायत्रीसहित ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया और उन्हींसे उत्तम ज्ञान पाया । ज्ञान पाकर विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्मा सम्पूर्ण चराचर भूतोंकी

सृष्टि करने लगे। साक्षात् परमेश्वर शिवसे सुनकर ब्रह्माजीने अमृतस्वरूप ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिये मैंने तपस्याके बलसे उन्हींके मुखसे उस ज्ञानको उपलब्ध किया।

मुनियोंने पूछा—आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया, जो सत्यसे भी परम सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परमानन्दको प्राप्त करता है?

वायुदेवता बोले—महर्षियो! मैंने पूर्वकालमें पशु, पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड (प्रकृति), चेतन (जीव) और उन दोनोंका नियन्ता (परमेश्वर)। इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं। तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर तथा उन दोनोंसे अतीत कहते हैं। अक्षर ही पशु कहा गया है। क्षर तत्त्वका ही नाम पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे परे जो परमतत्त्व है, उसीको पति या पशुपति कहते हैं। प्रकृतिको ही क्षर कहा गया है। पुरुष (जीव) को ही अक्षर कहते हैं और जो इन दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर दोनोंसे भिन्न तत्त्व परमेश्वर कहा गया है। मायाका ही नाम प्रकृति है। पुरुष उस मायासे आवृत है। मल और कर्मके द्वारा प्रकृतिका पुरुषके साथ सम्बन्ध होता है। शिव ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर हैं। माया महेश्वरकी शक्ति है। चित्स्वरूप जीव उस मायासे आवृत है। चेतन जीवको आच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है। उससे शुद्ध हो जानेपर जीव स्वतः शिव हो जाता है। वह विशुद्ध ही शिवत्व है।

मुनियोंने पूछा—सर्वव्यापी चेतनको माया किस हेतुसे आवृत करती है? किसलिये पुरुषको आवरण प्राप्त होता है और किस उपायसे उसका निवारण होता है?

वायुदेवता बोले—व्यापक तत्त्वको भी आंशिक आवरण प्राप्त होता है; क्योंकि कला आदि भी व्यापक हैं। भोगके लिये किया गया कर्म ही उस आवरणमें कारण है। मलका नाश होनेसे वह आवरण दूर हो जाता है। कला, विद्या, राग, काल और नियति—इन्हींको कला आदि कहते हैं। कर्मफलका जो उपभोग करता है, उसीका नाम पुरुष (जीव) है। कर्म दो प्रकारके हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म। पुण्यकर्मका फल सुख और पापकर्मका फल दुःख है। कर्म अनादि है और फलका उपभोग कर लेनेपर उसका अन्त हो जाता है। यद्यपि जड कर्मका चेतन आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, तथापि अज्ञानवश जीवने उसे अपने-आपमें मान रक्खा है। भोग कर्मका विनाश करनेवाला है, प्रकृतिको भोग्य कहते हैं और भोगका साधन है शरीर। बाह्य इन्द्रियाँ और अन्तःकरण उसके द्वार हैं। अतिशय भक्तिभावसे उपलब्ध हुए महेश्वरके कृपाप्रसादसे मलका नाश होता है और मलका नाश हो जानेपर पुरुष निर्मल—शिवके समान हो जाता है। विद्या पुरुषकी ज्ञानशक्तिको और कला उसकी क्रियाशक्तिको अभिव्यक्त करनेवाली है। राग भोग्य वस्तुके लिये क्रियामें प्रवृत्त करनेवाला होता है। काल उसमें अवच्छेदक होता है और नियति उसे नियन्त्रणमें रखनेवाली है। अव्यक्तरूप जो कारण है, वह त्रिगुणमय है; उसीसे जड जगत्की उत्पत्ति होती है और उसीमें उसका लय होता है। तत्त्वचिन्तक पुरुष उस अव्यक्तको ही प्रधान और प्रकृति कहते हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे प्रकट होते हैं; तिलमें तेलकी भाँति वे प्रकृतिमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं। सुख और उसके हेतुको संक्षेपसे सात्त्विक कहा गया है, दुःख और उसके हेतु राजस कार्य हैं तथा जडता और मोह—ये तमोगुणके कार्य हैं। सात्त्विकी वृत्ति ऊर्ध्वको ले जानेवाली है, तामसी वृत्ति अधोगतिमें डालनेवाली है तथा राजसी वृत्ति मध्यम स्थितिमें रखनेवाली है। पाँच तन्मात्राएँ, पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्रधान (चित्त), महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार और मन—ये चार अन्तःकरण—सब मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। इस प्रकार संक्षेपसे ही विकारसहित अव्यक्त (प्रकृति) का वर्णन किया गया। कारणावस्थामें रहनेपर ही इसे अव्यक्त कहते हैं और शरीर आदिके रूपमें जब वह कार्यावस्थाको प्राप्त होता है, तब उसकी 'व्यक्त' संज्ञा होती है—ठीक उसी तरह, जैसे कारणावस्थामें स्थित होनेपर जिसे हम 'मिट्टी' कहते हैं, वही कार्यावस्थामें 'घट' आदि नाम धारण कर लेती है। जैसे घट आदि कार्य मृत्तिका आदि कारणसे अधिक भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार शरीर आदि व्यक्त पदार्थ अव्यक्तसे अधिक भिन्न नहीं हैं। इसलिये एकमात्र अव्यक्त ही कारण, करण, उनका आधारभूत शरीर तथा भोग्य वस्तु है, दूसरा कोई नहीं।

मुनियोंने पूछा—प्रभो! बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे

व्यतिरिक्त किसी आत्मा नामक वस्तुकी वास्तविक स्थिति कहाँ है ?

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! सर्वव्यापी चेतनका बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे पार्थक्य अवश्य है । आत्मा नामक कोई पदार्थ निश्चय ही विद्यमान है; परंतु उसकी सत्तामें किसी हेतुकी उपलब्धि बहुत ही कठिन है ! सत्पुरुष बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको आत्मा नहीं मानते; क्योंकि स्मृति (बुद्धिका ज्ञान) अनियत है तथा उसे सम्पूर्ण शरीरका एक साथ अनुभव नहीं होता । इसीलिये वेदों और वेदान्तोंमें आत्माको पूर्वानुभूत विषयोंका स्मरणकर्ता सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक तथा अन्तर्यामी कहा जाता है । यह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है । न ऊपर है, न अगल-बगलमें है, न नीचे है और न किसी स्थानविशेषमें । यह सम्पूर्ण चल शरीरोंमें अविचल, निराकार एवं अविनाशी रूपसे स्थित है । ज्ञानी पुरुष निरन्तर विचार करनेसे उस आत्मतत्त्वका साक्षात्कार कर पाते हैं ।*

पुरुषका जो वह शरीर कहा गया है, इससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है । शरीर ही सब विपत्तियोंका मूल कारण है । उससे युक्त हुआ पुरुष अपने कर्मके अनुसार सुखी, दुखी और मूढ़ होता है ।† जैसे पानीसे सींचा हुआ खेत अङ्कुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञानसे आप्लावित हुआ कर्म नूतन शरीरको जन्म देता है । ये शरीर अत्यन्त दुःखोंके आलय माने जाते हैं । इनकी मृत्यु अनिवार्य होती है । भूतकालमें कितने ही शरीर नष्ट हो गये और भविष्यकालमें सहस्रों शरीर आनेवाले हैं, वे सब आ-आकर जब जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, तब पुरुष उन्हें छोड़ देता है । कोई भी जीवात्मा किसी भी शरीरमें अनन्त कालतक रहनेका अवसर नहीं पाता । यहाँ स्त्रियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंसे जो मिलन होता है, वह पथिकको मार्गमें मिले हुए दूसरे पथिकोंके समागमके ही समान है । जैसे महासागरमें एक काष्ठ कहींसे और दूसरा काष्ठ कहींसे बहता आता है, वे दोनों काष्ठ कहीं थोड़ी देरके लिये मिल जाते हैं और मिलकर फिर बिछुड़ जाते हैं । उसी प्रकार प्राणियोंका यह समागम भी संयोग-वियोगसे युक्त है ।‡ ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं । उन सभी पशुओंके लिये ही यह दृष्टान्त या दर्शन-शास्त्र कहा गया है । यह जीव पाशोंमें बँधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है । यह ईश्वरकी लीलाका साधनभूत है, ऐसा ज्ञानी महात्मा कहते हैं । (अध्याय ४-५)

महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो ! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, जो अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय कहा गया है । वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है । उसके बिना संसारकी सृष्टि कैसे हो सकती है; क्योंकि पशु अज्ञानी और पाश अचेतन है । प्रधान परमाणु आदि जितने भी जड तत्त्व हैं, उन सबका कर्ता वह पति ही है—यह बात स्वयं समझमें आ जाती है । किसी बुद्धिमान् या चेतन कारणके बिना इन जड तत्त्वोंका निर्माण कैसे सम्भव है । पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष योनिसे मुक्त होता है । क्षर और अक्षर—ये दोनों एक दूसरेसे संयुक्त होते हैं । पति या महेश्वर ही व्यक्ताव्यक्त जगत्का भरण-पोषण करते हैं ।

---

* न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः । नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन ॥
अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम् । सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात् ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५ । ४८-४९)

† यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम् । अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ॥
विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः । सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५ । ५१-५२)

‡ नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् । पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः ॥
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ । समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५ । ५८-५९)

वे ही जगत्‌को बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—ये तीन ही तत्त्व जानने योग्य हैं। विज्ञ पुरुषोंके लिये इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु जानने योग्य नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्‌की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। ये ही सबसे पहले देवताओंमें ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। श्रुति कहती है कि 'रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अङ्गकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं।'* इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्‌से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय गुफामें निवास करते हैं।†

* विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। १७-१८)

† सर्वतःपाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। २१—२४)

एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।* जीवात्मा इस वृक्षके प्रति आसक्तिमें डूबा हुआ है, अतः मोहित होकर शोक करता रहता है। वह जब कभी भगवत्कृपासे भक्तसेवित परम कारणरूप परमेश्वरका और उनकी महिमाका साक्षात्कार कर लेता है, तब शोकरहित हो सुखी हो जाता है। छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है।† ये विश्वकर्मा महेश्वर ही परम देवता परमात्मा हैं, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्हें जानकर ही पुरुष परमानन्दमय अमृतका अनुभव करता है। ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ, असीम एवं अविनाशी परमात्मा-में विद्या और अविद्या दोनों गूढ़भावसे स्थित हैं। विनाश-शील जडवर्गको ही यहाँ अविद्या कहा गया है और अविनाशी जीवको विद्या नाम दिया गया है; जो उन दोनों विद्या और अविद्यापर शासन करते हैं, वे महेश्वर उनसे सर्वथा भिन्न—विलक्षण हैं। ये प्रतापी महेश्वर इस जगत्‌में समष्टि भूत और इन्द्रियवर्ग रूप एक-एक जालको अनेक प्रकारसे रचकर इसका विस्तार करते हैं। फिर अन्तमें संहार करके सबको अनेकसे एकमें परिणत कर देते हैं तथा पुनः सृष्टिकालमें सबकी पूर्ववत् रचना करके सबपर आधिपत्य करते हैं। जैसे सूर्य अकेला ही ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलकी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार ये भजनीय परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप पृथ्वी आदि तत्त्वोंका नियमन करते हैं। श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, जगत्‌की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याण-स्वरूप एवं सोलह कलाओंकी रचना कर उन

* द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ३०)

† छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च।
माया विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया पर.।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ३२-३३)

महादेवको जो जानते हैं, वे शरीरके बन्धनको सदाके लिये त्याग देते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं। जो काल आदिसे परे, जिनसे यह समस्त प्रपञ्च प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं। उनके शरीररूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं। उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है। उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण होता हुआ ही उनका अधीश्वर भी है। उसका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें, समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है। वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, सबका द्रष्टा, साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है। सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों) से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (विकसित) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ।*

यह वेदान्त शास्त्रका परम गोपनीय ज्ञान है; पूर्व कल्पमें मुझे इसका उपदेश किया गया था। मैंने बड़े भारी सौभाग्यसे ब्रह्माजीके मुखसे इस ज्ञानको पाया था। जो शम-दमसे रहित हो, उसे इस परम उत्तम ज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो अपना पुत्र, सदाचारी तथा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये। जिनकी परमदेव परमेश्वरमें परम

---

* परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः।
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः॥
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्।
देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे॥
कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥
न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते।
न तत्समोऽधिकश्चापि कश्चिज्जगति दृश्यते॥
परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता॥
ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम्।
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः॥
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन।
न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः॥
स एकः सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः।
सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते॥
सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः।
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम्॥
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः।
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति॥
सांख्ययोगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम्।
ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैः सर्वैरेव विमुच्यते॥
विश्वकृद् विश्ववित् स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी।
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः॥
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वयम्।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः॥
मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम्।
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ५५–६७½)

भक्ति है, जैसे परमेश्वरमें है, वैसे ही गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।* अतः संक्षेपसे यह सिद्धान्तकी बात सुनो। भगवान् शिव प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे ही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं।

(अध्याय ६)

ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना

तदनन्तर कालमहिमा, प्रलय, ब्रह्माण्डकी स्थिति तथा सर्ग आदिका वर्णन करके वायुदेवताने कहा— पहले ब्रह्माजीने पाँच मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया, जो उनके ही समान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—सनक, सनन्दन, विद्वान् सनातन, ऋभु और सनत्कुमार। वे सब-के-सब योगी, वीतराग और ईर्ष्यादोषसे रहित थे। इन सबका मन ईश्वरके चिन्तनमें लगा रहता था। इसलिये उन्होंने सृष्टिरचनाकी इच्छा नहीं की। सृष्टिसे विरत हो सनक आदि महात्मा जब चले गये, तब ब्रह्माजीने पुनः सृष्टिकी इच्छासे बड़ी भारी तपस्या की। इस प्रकार दीर्घकालतक तपस्या करनेपर भी जब कोई काम न बना, तब उनके मनमें दुःख हुआ। उस दुःखसे क्रोध प्रकट हुआ। क्रोधसे आविष्ट होनेपर ब्रह्माजीके दोनों नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं। उन अश्रुबिन्दुओंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अश्रुसे उत्पन्न हुए उन सब भूतों-प्रेतोंको देखकर ब्रह्माजीने अपनी निन्दा की। उस समय क्रोध और मोहके कारण उन्हें तीव्र मूर्च्छा आ गयी। क्रोधसे आविष्ट हुए प्रजापतिने मूर्च्छित होनेपर अपने प्राण त्याग दिये। तब प्राणोंके स्वामी भगवान् नीललोहित रुद्र अनुपम कृपा प्रसाद प्रकट करनेके लिये ब्रह्माजीके मुखसे वहाँ प्रकट हुए। उन जगदीश्वर प्रभुने अपनेको ग्यारह रूपोंमें प्रकट किया। महादेवजीने अपने उन महामना ग्यारह स्वरूपोंसे कहा—'बच्चो! मैंने लोकपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंकी सृष्टि की है; अतः तुम आलस्यरहित हो सम्पूर्ण लोककी स्थापना, हितसाधन तथा प्रजा-संतानकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करो।'

महेश्वरके ऐसा कहनेपर वे रोने और चारों ओर दौड़ने लगे। रोने और दौड़नेके कारण उनका नाम 'रुद्र' हुआ। जो रुद्र हैं, वे निश्चय ही प्राण हैं और जो प्राण हैं, वे महात्मा रुद्र हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र महेश्वरने दया करके मरे हुए देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीको पुनः प्राणदान दिया। ब्रह्माजीके शरीरमें प्राणोंके लौट आनेपर रुद्रदेवका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन विश्वनाथने ब्रह्माजीसे यह उत्तम बात कही—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले जगद्गुरु महाभाग विरिञ्च! डरो मत, डरो मत। मैंने तुम्हारे प्राणोंको नूतन जीवन प्रदान किया है; अतः सुखसे उठो।' स्वप्नमें सुने हुए वाक्यकी भाँति उस मनोहर वचनको सुनकर ब्रह्माजीने प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर नेत्रोंद्वारा धीरेसे भगवान् हरकी ओर देखा। उनके प्राण पहलेकी तरह लौट आये थे। अतः ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़ स्नेहयुक्त गम्भीर वाणीद्वारा उनसे कहा—'प्रभो! आप दर्शनमात्रसे मेरे मनको आनन्द प्रदान कर रहे हैं; अतः बताइये, आप कौन हैं? जो सम्पूर्ण जगत्के रूपमें स्थित हैं, क्या वे ही भगवान् आप ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए हैं?'

उनकी यह बात सुनकर देवताओंके स्वामी महेश्वर अपने परम सुखदायक करकमलोंद्वारा ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए बोले—'देव! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि मैं परमात्मा हूँ और इस समय तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ हूँ। ये जो ग्यारह रुद्र हैं, तुम्हारी सुरक्षाके लिये यहाँ आये हैं। अतः तुम मेरे अनुग्रहसे इस तीव्र मूर्च्छाको त्यागकर जाग उठो और पूर्ववत् प्रजाकी सृष्टि करो।'

भगवान शिवके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन विश्वात्माने आठ नामोंद्वारा परमेश्वर शिवका स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! रुद्र! आपका तेज असंख्य सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रसस्वरूप और जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। नन्दी और सुरभि (कामधेनु) ये दोनों आपके स्वरूप हैं। आप पृथ्वीरूपधारी शर्वको नमस्कार है। स्पर्शमय वायुरूपवाले

* यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ७५)

आपको नमस्कार है। आप ही वसुरूपधारी ईश हैं। आपको नमस्कार है। अत्यन्त तेजस्वी अग्निरूप आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रासे युक्त आकाशरूपधारी आप भीमदेवको नमस्कार है। उग्ररूपवाले यजमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमरूप आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है। इस प्रकार आठ मूर्ति और आठ नामवाले आप भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है।*

इस प्रकार विश्वनाथ महादेवजीकी स्तुति करके लोकपितामह ब्रह्माने प्रणामपूर्वक उनसे प्रार्थना की—'भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी मेरे पुत्र भगवान् महेश्वर! कामनाशन! आप सृष्टिके लिये मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जगत्प्रभो! इस महान् कार्यमें संलग्न हुए मुझ ब्रह्माकी आप सर्वत्र सहायता करें और स्वयं भी प्रजाकी सृष्टि करें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर कल्याणकारी, त्रिपुरनाशक रुद्रदेवने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। तदनन्तर प्रसन्न हुए महादेवजीका अभिनन्दन करके सृष्टिके लिये उनकी आज्ञा पाकर भगवान् ब्रह्माने अन्यान्य प्रजाओंकी सृष्टि आरम्भ की। उन्होंने अपने मनसे ही मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठकी सृष्टि की। ये सब ब्रह्माजीके पुत्र कहे गये हैं। धर्म, संकल्प और रुद्रके साथ इनकी संख्या बारह होती है। ये सब पुराने गृहस्थ हैं। देवगणोंसहित इनके बारह दिव्य वंश कहे गये हैं, जो प्रजावान्, क्रियावान् तथा महर्षियोंसे अलंकृत हैं। तत्पश्चात् जलपर स्थित हुए रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करनेका विचार किया। ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये समाधिस्थ हो अपने चित्तको एकाग्र किया। तत्पश्चात् मुखसे देवताओंको, कोखसे पितरोंको, कटिके अगले भागसे असुरोंको तथा प्रजननेन्द्रिय (लिङ्ग) से सब मनुष्योंको उत्पन्न किया। उनके गुदास्थानसे राक्षस उत्पन्न हुए, जो सदा भूखसे व्याकुल रहते हैं। उनमें तमोगुण और रजोगुण-की प्रधानता होती है। वे रातको विचरते और बलवान् होते हैं। साँप, यक्ष, भूत और गन्धर्व—ये भी ब्रह्माजीके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। उनके पक्ष भागसे पक्षी हुए। वक्षःस्थलसे अजङ्गम (स्थावर) प्राणियोंका जन्म हुआ। मुखसे बकरों और पार्श्वभागसे भुजंगमोंकी उत्पत्ति हुई। दोनों पैरोंसे घोड़े, हाथी, शरभ, नीलगाय, मृग, ऊँट, खच्चर, न्यङ्कु नामक मृग तथा पशु जातिके अन्यान्य प्राणी उत्पन्न हुए। रोमावलियोंसे ओषधियों और फल-मूलोंका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माजीके पूर्ववर्ती मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उनके दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम और उक्थ नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप्य साम और अतिरात्र नामक यज्ञको प्रकट किया। उनके उत्तरवर्ती मुखसे एकविंश स्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक यज्ञ, अनुष्टुप् छन्द और वैराज नामक सामका प्रादुर्भाव हुआ। उनके अङ्गोंसे और भी बहुत-से छोटे-बड़े प्राणी उत्पन्न हुए। उन्होंने यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओंके समुदाय, मनुष्य, किंनर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-जङ्गम जगत्‌की रचना की। उनमेंसे जिन्होंने जैसे-जैसे कर्म पूर्व कल्पोंमें अपनाये थे, पुनः-पुनः सृष्टि होनेपर उन्होंने फिर उन्हीं कर्मोंको अपनाया। उस समय वे अपनी पूर्व भावनासे भावित होकर हिंसा-अहिंसासे युक्त, मृदु-कठोर, धर्म-अधर्म तथा सत्य और मिथ्या कर्मको अपनाते हैं; क्योंकि पहलेकी वासनाके अनुकूल कर्म ही उन्हें अच्छे लगते हैं।

इस प्रकार विधाताने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय, भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता एवं व्यवहारकी सृष्टि की है। उन पितामहने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप तथा कार्य-विस्तारको वेदोक्त वर्णनके अनुसार ही निश्चित किया। ऋषियोंके नाम तथा जीविका-साधक कर्म भी उन्होंने वेदोंके अनुसार ही निर्दिष्ट किये। अपनी रात व्यतीत होनेपर अजन्मा ब्रह्माने स्वरचित प्राणियोंको वे ही नाम और कर्म

* ब्रह्मोवाच—

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने॥
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः।
ईशाय वसवे तुभ्यं नमः स्पर्शमयात्मने॥
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः।
महाशिवाय सोमाय नमस्त्वमृतमूर्तये॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० १२। ४१—४४)

दिये, जो पूर्वकल्पमें उन्हें प्राप्त थे। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नामरूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादि कालमें भी उनके पूर्वभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भू ब्रह्माजीकी लोकसृष्टि उन्हींके विभिन्न अङ्गोंसे प्रकट हुई है। महत्से लेकर विशेषपर्यन्त सब कुछ प्रकृतिका विकार है। यह प्राकृत जगत् चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित, ग्रह और नक्षत्रोंसे मण्डित, नदियों, पर्वतों तथा समुद्रोंसे अलंकृत और भाँति-भाँतिके रमणीय नगरों एवं समृद्धिशाली जनपदोंसे सुशोभित है। इसीको ब्रह्माजीका वन या ब्रह्म वृक्ष कहते हैं।

उस ब्रह्मवनमें अव्यक्त एवं सर्वज्ञ ब्रह्मा विचरते हैं। वह सनातन ब्रह्मवृक्ष अव्यक्तरूपी बीजसे प्रकट एवं ईश्वरके अनुग्रहपर स्थित है। बुद्धि इसका तना और बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं। इन्द्रियाँ भीतरके खोखले हैं। महाभूत इसकी सीमा हैं। विशेष पदार्थ इसके निर्मल पत्ते हैं। धर्म और अधर्म इसके सुन्दर फूल हैं। इसमें सुख और दुःखरूपी फल लगते हैं तथा यह सम्पूर्ण भूतोंके जीवनका सहारा है। ब्राह्मणलोग द्युलोकको उनका मस्तक, आकाशको नाभि, चन्द्रमा और सूर्यको नेत्र, दिशाओंको कान और पृथ्वीको उनके पैर बताते हैं। वे अचिन्त्यस्वरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं। वक्षःस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है; दोनों जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उनके अङ्गोंसे ही सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

(अध्याय ७—१२)

भगवान् रुद्रके ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट होनेका रहस्य, रुद्रके महामहिम स्वरूपका वर्णन, उनके द्वारा रुद्रगणोंकी सृष्टि तथा ब्रह्माजीके रोकनेसे उनका सृष्टिसे विरत होना

ऋषि बोले—प्रभो! आपने चतुर्मुख ब्रह्माके मुखसे परमात्मा रुद्रदेवकी सृष्टि बतायी है। इस विषयमें हमको संशय होता है। जो प्रलयकालमें कुपित होकर ब्रह्मा, विष्णु और अग्निसहित समस्त लोकका संहार कर डालते हैं; जिन्हें ब्रह्मा और विष्णु भयसे प्रणाम करते हैं, जिन लोकसंहारकारी महेश्वरके वशमें वे दोनों सदा ही रहते हैं, जिन महादेवजीने पूर्वकालमें ब्रह्मा और विष्णुको अपने शरीरसे प्रकट किया था, जो प्रभु सदा ही उन दोनोंके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले हैं, वे आदिदेव पुरातन पुरुष भगवान् रुद्र अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पुत्र कैसे हो गये? तात! भगवान् ब्रह्माने मुनियोंसे जैसी बात बतायी थी, वह सब आप ठीक-ठीक कहिये। भगवान् शिवके उत्तम यशका श्रवण करनेके लिये हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा है।

वायुदेवताने कहा—ब्राह्मणो! तुम सब लोग जिज्ञासामें कुशल हो, अतः तुमने यह बहुत ही उचित प्रश्न किया है। मैंने भी पूर्वकालमें पितामह ब्रह्माजीके समक्ष यही प्रश्न रक्खा था। उसके उत्तरमें पितामहने मुझसे जो कुछ कहा था, वही मैं तुम्हें बताऊँगा। जैसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए और फिर जिस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति हुई, वह सब विषय सुना रहा हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—तीनों ही कारणात्मा हैं। वे क्रमशः चराचर जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वरसे प्रकट हुए हैं। उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है। वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो सदा उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कर्मोंमें नियुक्त किया था। ब्रह्माको सृष्टि-कार्यमें, विष्णुको रक्षाकार्यमें तथा रुद्रको संहारकार्यमें नियुक्ति हुई थी। कल्पान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने ब्रह्मा और नारायणकी सृष्टि की थी। इसी तरह दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको उत्पन्न किया था। फिर कल्पान्तरमें भगवान् विष्णुने भी रुद्र तथा ब्रह्माकी सृष्टि की थी। इस तरह पुनः ब्रह्माने नारायणकी और रुद्रदेवने ब्रह्माकी सृष्टि की। इस प्रकार विभिन्न कल्पोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक दूसरेका हित चाहते हैं। उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको लेकर महर्षिगण उनके प्रभावका वर्णन किया करते हैं।

प्रत्येक कल्पमें भगवान् रुद्रके आविर्भावका जो कारण है, उसे बता रहा हूँ। उन्हींके प्रादुर्भावसे ब्रह्माजीकी सृष्टिका प्रवाह अविच्छिन्नरूपसे चलता रहता है। ब्रह्माण्डसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा प्रत्येक कल्पमें प्रजाकी सृष्टि करके प्राणियोंकी

वृद्धि न होनेसे जब अत्यन्त दुखी हो मूर्छित हो जाते हैं, तब उनके दुःखकी शान्ति और प्रजावर्गकी वृद्धिके लिये उन-उन कल्पोंमें रुद्रगणोंके स्वामी कालस्वरूप नीललोहित महेश्वर रुद्र अपने कारणभूत परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माजीके पुत्र होकर उनपर अनुग्रह करते हैं । वे ही तेजोराशि, अनामय, अनादि, अनन्त, धाता, भूतसंहारक और सर्वव्यापी भगवान् ईश परम ऐश्वर्यसे संयुक्त, परमेश्वरसे भावित और सदा उन्हींकी शक्तिसे अधिष्ठित हो उन्हींके चिह्न धारण करते हैं । उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हो उन्हींके समान रूप धारणकर उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं । इनका सारा व्यवहार उन्हीं परमेश्वरके समान होता है । ये उनकी आज्ञाके पालक हैं । सहस्रों सूर्योंके समान उनका तेज है । वे अर्धचन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण करते हैं । उनके हार, बाजूबंद और कड़े सर्पमय हैं । वे मूँजकी मेखला धारण करते हैं । जलंधर, विरिञ्चि और इन्द्र उनकी सेवामें खड़े रहते हैं तथा हाथमें कपालखण्ड उनकी शोभा बढ़ाता है । गङ्गाकी ऊँची तरङ्गोंसे उनके पिङ्गल वर्णवाले केश और मुख भीगे रहते हैं । उनके कमनीय कैलास पर्वतके विभिन्न प्रान्त टूटी हुई दाढ़वाले सिंह आदि वन्य पशुओंसे आक्रान्त हैं । उनके बायें कानोंके पास गोलाकार कुण्डल झिलमिलाता रहता है । वे महान् वृषभपर सवारी करते हैं । उनकी वाणी महान् मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर है, कान्ति प्रचण्ड अग्निके समान उद्दीप्त है और बल-पराक्रम भी महान् है । इस प्रकार ब्रह्मपुत्र महेश्वरका विशाल रूप बड़ा भयानक है । वे ब्रह्माजीको विज्ञान देकर सृष्टिकार्यमें उनकी सहायता करते हैं । अतः रुद्रके कृपा-प्रसादसे प्रत्येक कल्पमें प्रजापतिकी प्रजासृष्टि प्रवाहरूपसे नित्य बनी रहती है ।

एक समय ब्रह्माजीने नीललोहित भगवान् रुद्रसे सृष्टि करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् रुद्रने मानसिक संकल्पके द्वारा बहुत-से पुरुषोंकी सृष्टि की । वे सब-के-सब उनके अपने ही समान थे । सबने जटाजूट धारण कर रक्खे थे । सभी निर्भय, नीलकण्ठ और त्रिनेत्र थे । जरा और मृत्यु उनके पास नहीं पहुँचने पाती थी । चमकीले शूल उनके श्रेष्ठ आयुध थे । उन रुद्रगणोंने सम्पूर्ण चौदह भुवनोंको आच्छादित कर लिया था । उन विविध रुद्रोंको देखकर पितामहने रुद्रदेवसे कहा—'देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है । आप ऐसी प्रजाओंकी सृष्टि न कीजिये, आपका कल्याण हो । अब दूसरी प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये, जो मरण-धर्मवाली हों ।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर परमेश्वर रुद्र उनसे हँसते हुए बोले—'मेरी सृष्टि वैसी नहीं होगी । अशुभ प्रजाओंकी सृष्टि तुम्हीं करो ।' ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी भगवान् रुद्र उन रुद्रगणोंके साथ प्रजाकी सृष्टिके कार्यसे निवृत्त हो गये । (अध्याय १३-१४)

ब्रह्माजीके द्वारा अर्द्धनारीश्वररूपकी स्तुति तथा उस स्तोत्रकी महिमा

वायुदेव कहते हैं—जब फिर ब्रह्माजीकी रची हुई प्रजा बढ़ न सकी, तब उन्होंने पुनः मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया । इसके पहले ईश्वरसे नारियोंका समुदाय प्रकट नहीं हुआ था । इसलिये तबतक पितामह मैथुनी सृष्टि नहीं कर सके थे । तब उन्होंने मनमें ऐसे विचारको स्थान दिया, जो निश्चित-रूपसे उनके मनोरथकी सिद्धिमें सहायक था । उन्होंने सोचा, प्रजाओंकी वृद्धिके लिये परमेश्वरसे ही पूछना चाहिये; क्योंकि उनकी कृपाके बिना ये प्रजाएँ बढ़ नहीं सकतीं । ऐसा सोचकर विश्वात्मा ब्रह्माने तपस्या करनेकी तैयारी की । तब जो आद्या, अनन्ता, लोकभाविनी, सूक्ष्मतरा, शुद्धा, भाव-गम्या, मनोहरा, निर्गुणा, निष्प्रपञ्चा, निष्कला, नित्या तथा सदा ईश्वरके पास रहनेवाली जो उनकी परमा शक्ति है, उसीसे युक्त भगवान् त्रिलोचनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हुए ब्रह्माजी बड़ी भारी तपस्या करने लगे । तीव्र तपस्यामें लगे हुए परमेष्ठी ब्रह्मापर उनके पिता महादेवजी थोड़े ही समयमें संतुष्ट हो गये । तदनन्तर अपने अनिर्वचनीय अंशसे किसी अद्भुत मूर्तिमें आविष्ट हो भगवान् महादेव आधे शरीरसे नारी और आधे शरीरसे ईश्वर होकर स्वयं ब्रह्माजीके पास गये । उन सर्वव्यापी, सब कुछ देनेवाले, सत्-असत्से रहित, समस्त उपमाओंसे शून्य, शरणागतवत्सल और सनातन शिवको दण्डवत् प्रणाम करके ब्रह्माजी उठे और हाथ जोड़ महादेवजी तथा महादेवी पार्वतीकी स्तुति करने लगे ।



ब्रह्मा बोले—देव ! महादेव ! आपकी जय हो ! ईश्वर ! महेश्वर ! आपकी जय हो ! सर्वगुणश्रेष्ठ शिव ! आपकी जय हो । सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी शंकर ! आपकी जय हो । प्रकृतिरूपिणी कल्याणमयी उमे ! आपकी जय हो । प्रकृतिकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रकृतिसे दूर रहनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रकृतिसुन्दरि ! आपकी जय हो । अमोघ महामाया और सफल मनोरथवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो । अमोघ महालीला और कभी व्यर्थ न जानेवाले महान् बलसे युक्त परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो । सम्पूर्ण जगत्‌की माता उमे ! आपकी जय हो । विश्वजगन्मये ! आपकी जय हो । विश्वजगद्धात्रि ! आपकी जय हो । समस्त संसारकी सखी–सहायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! आपका ऐश्वर्य तथा धाम दोनों सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । आपका रूप और अनुचर-वर्ग भी आपकी ही भाँति सनातन हैं । आपकी जय हो, जय हो । अपने तीन रूपोंद्वारा तीनों लोकोंका निर्माण, पालन और संहार करनेवाली देवि ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । तीनों लोकों अथवा आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - तीनों आत्माओंकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रभो ! जगत्‌के कारण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव और विस्तार आपकी कृपादृष्टिके ही अधीन है, आपकी जय हो । प्रलयकालमें आपकी उपेक्षायुक्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे जो भयानक आग प्रकट होती है, उसके द्वारा सारा भौतिक जगत् भस्म हो जाता है; आपकी जय हो ।

देवि ! आपके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान देवता आदिके लिये भी असम्भव है । आपकी जय हो । आप आत्मतत्त्वके सूक्ष्म ज्ञानसे प्रकाशित होती हैं । आपकी जय हो । ईश्वरि ! आपने स्थूल आत्मशक्तिसे चराचर जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है । आपकी जय हो, जय हो । प्रभो ! विश्वके तत्त्वोंका समुदाय अनेक और एकरूपमें आपके ही आधारपर स्थित है, आपकी जय हो । आपके श्रेष्ठ सेवकोंका समूह बड़े-बड़े असुरोंके मस्तकपर पाँव रखता है । आपकी जय हो । शरणागतोंकी रक्षा करनेमें अतिशय समर्थ परमेश्वरि ! आपकी जय हो । संसाररूपी विषवृक्षके उगनेवाले अङ्कुरोंका उन्मूलन करनेवाली उमे ! आपकी जय हो । प्रादेशिक ऐश्वर्य, वीर्य और शौर्यका विस्तार करनेवाले देव ! आपकी जय हो । विश्वसे परे विद्यमान देव ! आपने अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत कर दिया है, आपकी जय हो । पञ्चविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमानन्दमय अमृतकी प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । पञ्चविध पुरुषार्थके विज्ञानरूप अमृतसे परिपूर्ण स्तोत्रस्वरूपिणी परमेश्वरि ! आपकी जय हो । अत्यन्त भयानक संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले वैद्यशिरोमणि ! आपकी जय हो । अनादि कर्ममल एवं अज्ञानरूपी अन्धकारराशिको दूर करनेवाली चन्द्रिकारूपिणी शिवे ! आपकी जय हो । त्रिपुरका विनाश करनेके लिये कालाग्निस्वरूप महादेव ! आपकी जय हो । त्रिपुरभैरवि ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंसे मुक्त महेश्वर ! आपकी जय हो । तीनों गुणोंका मर्दन करनेवाली महेश्वरि ! आपकी जय हो । आदिसर्वज्ञ ! आपकी जय हो । सबको ज्ञान देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । प्रचुर दिव्य अङ्गोंसे सुशोभित देव ! आपकी जय हो । मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली देवि ! आपकी जय हो । भगवन् ! देव ! कहाँ तो आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ मेरी तुच्छ वाणी; तथापि भक्तिभावसे प्रलाप करते हुए मुझ सेवकके अपराधको आप क्षमा कर दें* ।

इस प्रकार सुन्दर उक्तियोंद्वारा भगवान् रुद्र और देवीका एक

---

* ब्रह्मोवाच—

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ।
जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप ॥
जय प्रकृतिकल्याणि जय प्रकृतिनायिके ।
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि ॥
जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ ।
जयामोघमहालील जयामोघमहाबल ॥

साथ गुणगान करके चतुर्मुख ब्रह्माने रुद्र एवं रुद्राणीको बारंबार नमस्कार किया। ब्रह्माजीके द्वारा पठित यह पवित्र एवं उत्तम अर्द्धनारीश्वर-स्तोत्र शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है। जो भक्तिपूर्वक जिस किसी भी गुरुकी शिक्षासे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिव और पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है। जो समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनके विग्रह जन्म और मृत्युसे रहित हैं तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दरी नारीके रूपमें एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ। (अध्याय १५)

महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

वायुदेवता कहते हैं—तदनन्तर महादेवजी महामेघकी गर्जनाके समान मधुर-गम्भीर, मङ्गलदायिनी एवं मनोहर वाणीमें बोले—'ब्रह्मन्! तुमने इस समय प्रजाजनोंकी वृद्धिके लिये ही तपस्या की है। तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ और तुम्हें अभीष्ट वर देता हूँ।' इस प्रकार परम उदार तथा स्वभावतः मधुर वचन कहकर देवेश्वर हरने अपने शरीरके वामभागसे देवी रुद्राणीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुण-सम्पन्ना देवीको ब्रह्मवेत्ता पुरुष परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं तथा जिनमें जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारोंका प्रवेश नहीं है, वे भवानी उस समय शिवके अङ्गसे प्रकट हुईं। जिनका परमभाव देवताओंको भी ज्ञात नहीं है, वे समस्त देवताओंकी अधीश्वरी देवी अपने स्वामीके अङ्गसे प्रकट हुईं। उन सर्वलोकमहेश्वरी परमेश्वरीको देखकर विराट् पुरुष ब्रह्माने प्रणाम किया और उन सर्वज्ञा, सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा, सदसद्भावसे रहित और अपनी प्रभासे इस सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाली पराशक्ति महादेवीसे इस प्रकार प्रार्थना की।

ब्रह्माजी बोले—सर्वजगन्मयी देवि! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया। इनकी आज्ञासे मैं समस्त जगत्की सृष्टि करता हूँ। किंतु देवि! मेरे मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता आदि समस्त प्राणी बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। अतः अब मैं मैथुनी सृष्टि करके ही अपनी सारी प्रजाको बढ़ाना चाहता हूँ। आपके पहले नारी-कुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। इसलिये नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है। सम्पूर्ण शक्तियोंका आविर्भाव आपसे ही होता है। अतः सर्वत्र सबको सब प्रकारकी शक्ति देनेवाली आप वरदायिनी माया देवेश्वरीसे ही प्रार्थना करता हूँ, संसारभयको दूर करनेवाली सर्वव्यापिनी देवि! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक अंशसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाइये।

ब्रह्मयोनि ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी रुद्राणीने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान कान्तिमती एक शक्ति प्रकट की। उसे देखकर देवदेवेश्वर

जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मयि । जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि ॥
जय शाश्वतिकैश्वर्य जय शाश्वतिकालय । जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतिकानुग ॥
जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि । जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके ॥
जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण । जयापेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक ॥
जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्ज्वले । जय स्थूलात्मशक्त्येशे जय व्याप्तचराचरे ॥
जय नानैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय । जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठानुगकदम्बक ॥
जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि । जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षाङ्कुरोद्गमे ॥
जय प्रादेशिकैश्वर्यवीर्यशौर्यविजृम्भण । जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव ॥
जय प्रणीतपञ्चार्थप्रयोगपरमामृत । जय पञ्चार्थविज्ञानसुधास्तोत्रस्वरूपिणि ॥
जयातिघोरसंसारमहारोगभिषग्वर । जयानादिमलाज्ञानतमःपटलचन्द्रिके ॥
जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि । जय त्रिगुणनिर्मुक्त जय त्रिगुणमर्दिनि ॥
जय प्रथमसर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिके । जय प्रचुरदिव्याङ्ग जय प्रार्थितदायिनि ॥
क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं हि नो वचः । तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपन्तं क्षमस्व माम् ॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० १५ । १६—३१)



हरने हँसते हुए कहा—'तुम तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके उनका मनोरथ पूर्ण करो।' परमेश्वर शिवकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके वह देवी ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार दक्षकी पुत्री हो गयी। इस प्रकार ब्रह्माजीको ब्रह्मरूपिणी अनुपम शक्ति देकर देवी शिवा महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। फिर महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस जगत्के भीतर स्त्रीजातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ और मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टिका कार्य चलने लगा। मुनिवरो! इससे ब्रह्माजीको भी आनन्द और संतोष प्राप्त हुआ। देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावका यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। प्राणियोंकी सृष्टिके प्रसङ्गमें इस विषयका वर्णन किया गया है। यह पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है; अतः अवश्य सुनने योग्य है। जो प्रतिदिन देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावकी इस कथाका कीर्तन करता है, उसे सब प्रकारका पुण्य प्राप्त होता है तथा वह शुभलक्षण पुत्र पाता है। (अध्याय १६)

भगवान् शिवका पार्वती तथा पार्षदोंके साथ मन्दराचलपर जाकर रहना, शुम्भ-निशुम्भके वधके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे शिवका पार्वतीको 'काली' कहकर कुपित करना और कालीका 'गौरी' होनेके लिये तपस्याके निमित्त जानेकी आज्ञा माँगना

वायुदेवता कहते हैं—इस प्रकार महादेवजीसे ही सनातन पराशक्तिको पाकर प्रजापति ब्रह्मा मैथुनी सृष्टि करनेकी इच्छा लेकर स्वयं भी आधे शरीरसे अद्भुत नारी और आधे शरीरसे पुरुष हो गये। आधे शरीरसे जो नारी उत्पन्न हुई थी, वह उनसे शतरूपा ही प्रकट हुई थी। ब्रह्माजीने अपने आधे पुरुष शरीरसे विराट्को उत्पन्न किया। वे विराट् पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। देवी शतरूपाने अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके उद्दीप्त यशवाले मनुको ही पतिरूपमें प्राप्त किया।

इसके पश्चात् मनुके वंश तथा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस आदिके प्रसङ्ग सुनाकर वायुदेवताने यह बताया कि भगवान् शंकरने दक्ष तथा देवताओंके अपराध क्षमा कर दिये।

तदनन्तर ऋषियोंने पूछा—प्रभो! अपने गणों तथा देवीके साथ अन्तर्धान होकर भगवान् शिव कहाँ गये, कहाँ रहे और क्या करके विरत हुए?

वायुदेव बोले—महर्षियो! पर्वतोंमें श्रेष्ठ और विचित्र कन्दराओंसे सुशोभित जो परम सुन्दर मन्दराचल है, वही अपनी तपस्याके प्रभावसे देवाधिदेव महादेवजीका प्रिय निवास-स्थान हुआ। उसने पार्वती और शिवको अपने सिरपर ढोनेके लिये बड़ा भारी तप किया था और दीर्घकालके बाद उसे उनके चरणारविन्दोंके स्पर्शका सुख प्राप्त हुआ। उस पर्वतके सौन्दर्यका विस्तारपूर्वक वर्णन सहस्रों मुखोंद्वारा सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। उसके सामने समस्त पर्वतोंका सौन्दर्य तुच्छ हो जाता है। इसीलिये महादेवजीने देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय पर्वतको अपना अन्तःपुर बना लिया। इस सर्वश्रेष्ठ पर्वतका स्मरण करके रैभ्य-आश्रमके समीप स्थित हुए अम्बिकासहित भगवान् त्रिलोचन वहाँसे अन्तर्धान होकर चले गये। मन्दराचलके उद्यानमें पहुँचकर देवीसहित महेश्वर वहाँकी रमणीय तथा दिव्य अन्तःपुरकी भूमियोंमें रमण करने लगे।

जब इस तरह कुछ समय बीत गया और ब्रह्माजीकी मैथुनी सृष्टिके द्वारा जब प्रजाएँ बढ़ गयीं, तब शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे परस्पर भाई थे। उनके तपोबलसे प्रभावित हो परमेष्ठी ब्रह्माने उन दोनों भाइयोंको यह वर दिया था कि 'इस जगत्के किसी भी पुरुषसे तुम मारे नहीं जा सकोगे।' उन दोनोंने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की थी कि 'पार्वती देवीके अंशसे उत्पन्न जो अयोनिजा कन्या उत्पन्न हो, जिसे पुरुषका स्पर्श तथा रति नहीं प्राप्त हुई हो तथा जो अलङ्घ्य पराक्रमसे सम्पन्न हो, उसके प्रति कामभावसे पीड़ित होनेपर हम युद्धमें उसीके हाथों मारे जायँ।' उनकी इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी। तभीसे युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उन दोनोंने जगत्को अनीतिपूर्वक वेदोंके स्वाध्याय और वषट्कार (यज्ञ) आदिसे रहित कर दिया। तब ब्रह्माने उन दोनोंके वधके लिये देवेश्वर शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप एकान्तमें देवीकी निन्दा करके भी जैसे-तैसे उन्हें क्रोध दिलाइये और उनके रूप-रंगकी निन्दासे उत्पन्न हुई, कामभावसे रहित, कुमारीस्वरूपा शक्तिको निशुम्भ और शुम्भके वधके लिये देवताओंको अर्पित कीजिये।'

ब्रह्माजीके इस तरह प्रार्थना करनेपर भगवान् नीललोहित रुद्र एकान्तमें पार्वतीकी निन्दा-सी करते हुए मुसकराकर बोले—'तुम तो काली हो।' तब सुन्दर वर्णवाली देवी पार्वती अपने श्यामवर्णके कारण आक्षेप सुनकर कुपित हो उठीं और पतिदेवसे मुसकराकर समाधानरहित वाणीद्वारा बोलीं।

देवीने कहा—प्रभो! यदि मेरे इस काले रंगपर आपका प्रेम नहीं है तो इतने दीर्घकालसे अपनी शिक्षाका आप दमन क्यों करते रहे हैं? कोई स्त्री कितनी ही सर्वाङ्ग-सुन्दरी क्यों न हो, यदि पतिका उसपर अनुराग नहीं हुआ तो अन्य समस्त गुणोंके साथ ही उसका जन्म लेना व्यर्थ हो जाता है। स्त्रियोंकी यह सृष्टि ही पतिके भोगका प्रधान अङ्ग है। यदि वह उससे वञ्चित हो गयी तो इसका और कहाँ उपयोग हो सकता है? इसलिये आपने एकान्तमें जिसकी निन्दा की है, उस वर्णको त्यागकर अब मैं दूसरा वर्ण ग्रहण करूँगी अथवा स्वयं ही मिट जाऊँगी।

ऐसा कहकर देवी पार्वती शय्यासे उठकर खड़ी हो गयीं और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके गद्गद कण्ठसे जानेकी आज्ञा माँगने लगीं।

इस प्रकार प्रेम भङ्ग होनेसे भयभीत हो भूतनाथ भगवान् शिव स्वयं भवानीको प्रणाम करते हुए ही बोले।

भगवान् शिवने कहा—प्रिये! मैंने क्रीडा या मनोविनोदके लिये यह बात कही है। मेरे इस अभिप्रायको न जानकर तुम कुपित क्यों हो गयीं? यदि तुमपर मेरा प्रेम नहीं होगा तो और किसपर हो सकता है? तुम इस जगत्की माता हो और मैं पिता तथा अधिपति हूँ। फिर तुमपर मेरा प्रेम न होना कैसे सम्भव हो सकता है। हम दोनोंका वह प्रेम भी क्या कामदेवकी प्रेरणासे हुआ है, कदापि नहीं; क्योंकि कामदेवकी उत्पत्तिसे पहले ही जगत्की उत्पत्ति हुई है। कामदेवकी सृष्टि तो मैंने साधारण लोगोंकी रतिके लिये की है। कामदेव मुझे साधारण देवताके समान मानकर मेरा कुछ-कुछ तिरस्कार करने लगा था, अतः मैंने उसे भस्म कर दिया। हम दोनोंका यह लीलाविहार भी जगत्की रक्षाके लिये ही है, अतः उसीके लिये आज मैंने तुम्हारे प्रति यह परिहासयुक्त बात कही थी। मेरे इस कथनकी सत्यता तुमपर शीघ्र ही प्रकट हो जायगी।

देवीने कहा—भगवन्! पतिके प्यारसे वञ्चित होनेपर जो नारी अपने प्राणोंका भी परित्याग नहीं कर देती, वह कुलाङ्गना और शुभलक्षणा होनेपर भी सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित ही समझी जाती है। मेरा शरीर गौर वर्णका नहीं है, इस बातको लेकर आपको बहुत खेद होता है, अन्यथा क्रीड़ा या परिहासमें भी आपके द्वारा मुझे 'काली कलूटी' कहा जाना कैसे सम्भव हो सकता था। मेरा कालापन आपको प्रिय नहीं है, इसलिये वह सत्पुरुषोंद्वारा भी निन्दित है; अतः तपस्याद्वारा इसका त्याग किये बिना अब मैं यहाँ रह ही नहीं सकती।

शिव बोले—यदि अपनी श्यामताको लेकर तुम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छामात्रसे ही दूसरे वर्णसे युक्त हो जाओ।

देवीने कहा—मैं आपसे अपने रंगका परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलनेका संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही मैं शीघ्र गौरी हो जाऊँगी।

शिव बोले—महादेवि! पूर्वकालमें मेरी ही कृपासे ब्रह्माको ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई थी। अतः तपस्याद्वारा उन्हें बुलाकर तुम क्या करोगी?

देवीने कहा—इसमें संदेह नहीं कि ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंको आपसे ही उत्तम पदोंकी प्राप्ति हुई है, तथापि आपकी आज्ञा पाकर मैं तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती हूँ। पूर्वकालमें जब मैं सतीके नामसे दक्षकी पुत्री हुई थी, तब तपस्याद्वारा ही मैंने आप जगदीश्वरको पतिके रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार आज भी तपस्याद्वारा ब्राह्मण ब्रह्माको संतुष्ट करके मैं गौरी होना चाहती हूँ। ऐसा करनेमें यहाँ क्या दोष है? यह बताइये।

महादेवीके ऐसा कहनेपर वामदेव मुस्कराते हुए-से चुप रह गये। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने देवीको रोकनेके लिये हठ नहीं किया। (अध्याय १७–२४)

पार्वतीकी तपस्या, एक व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका उनके पास आना, देवीके साथ उनका वार्तालाप, देवीके द्वारा काली त्वचाका त्याग और उससे कृष्णवर्णा कुमारी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई कौशिकीके द्वारा शुम्भ-निशुम्भका वध

वायुदेव कहते हैं—महर्षियो! तदनन्तर पतिव्रता माता पार्वती पतिकी परिक्रमा करके उनके वियोगसे होनेवाले दुःख-को किसी तरह रोककर हिमालय पर्वतपर चली गयीं। उन्होंने पहले सखियोंके साथ जिस स्थानपर तप किया था, उस स्थान-से उनका प्रेम हो गया था। अतः फिर उसीको उन्होंने तपस्याके लिये चुना। तदनन्तर माता-पिताके घर जा उनका दर्शन और प्रणाम करके उन्हें सब समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये और फिर तपोवनमें जा स्नानके पश्चात् तपस्वीका परमपावन वेष धारण करके अत्यन्त तीव्र एवं परम दुष्कर तपस्या करनेका संकल्प किया। वे मन-ही-मन सदा पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई किसी क्षणिक लिङ्गमें उन्हींका ध्यान करके पूजनकी बाह्य विधिके अनुसार जंगलके फल-फूल आदि उपकरणोंद्वारा तीनों समय उनका पूजन करती थीं। 'भगवान् शंकर ही ब्रह्माका रूप धारण करके मेरी तपस्याका फल मुझे देंगे' ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर वे प्रतिदिन तपस्यामें लगी रहती थीं। इस तरह तपस्या करते-करते जब बहुत समय बीत गया, तब एक दिन उनके पास कोई बहुत बड़ा व्याघ्र देखा गया। वह दुष्टभावसे वहाँ आया था। पार्वतीजीके निकट आते ही उस दुरात्माका शरीर जडवत् हो गया। वह उनके समीप चित्रलिखित-सा दिखायी देने लगा। दुष्टभावसे पास आये हुए उस व्याघ्रको देखकर भी देवी पार्वती साधारण नारीकी भाँति स्वभावसे विचलित नहीं हुईं। उस व्याघ्रके सारे अङ्ग अकड़ गये थे। वह भूख-से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था और यह सोचकर कि 'यही मेरा भोजन है' निरन्तर देवीकी ओर ही देख रहा था। देवीके सामने खड़ा-खड़ा वह उनकी उपासना-सी करने लगा। इधर देवीके हृदयमें सदा यही भाव आता था कि यह व्याघ्र मेरा ही उपासक है, दुष्ट वन-जन्तुओंसे मेरी रक्षा करनेवाला है। यह सोचकर वे उसपर कृपा करने लगीं। उन्हींकी कृपासे उसके तीनों प्रकारके मल तत्काल नष्ट हो गये। फिर तो उस व्याघ्रको सहसा देवीके स्वरूपका बोध हुआ, उसकी भूख मिट गयी और उसके अङ्गोंकी जडता भी दूर हो गयी। साथ ही उसकी जन्मसिद्ध दुष्टता नष्ट हो गयी और उसे निरन्तर तृप्ति बनी रहने लगी। उस समय उत्कृष्टरूपसे अपनी कृतार्थताका अनुभव करके वह तत्काल भक्त हो गया और उन परमेश्वरी-की सेवा करने लगा। अब वह अन्य दुष्ट जन्तुओंको खदेड़ता हुआ तपोवनमें विचरने लगा। इधर देवीकी तपस्या बढ़ी और तीव्रसे तीव्रतर होती गयी।

देवता शुम्भ आदि दैत्योंके दुराग्रहसे दुखी हो ब्रह्माजी-की शरणमें गये। उन्होंने शत्रुपीड़नजनित अपने दुःखको उनसे निवेदन किया। शुम्भ और निशुम्भ वरदान पानेके घमंडसे देवताओंको जैसे-जैसे दुःख देते थे, वह सब सुनकर ब्रह्माजीको उनपर बड़ी दया आयी। उन्होंने दैत्यवधके लिये भगवान् शंकरके साथ हुई बातचीतका स्मरण करके देवताओं-के साथ देवीके तपोवनको प्रस्थान किया। वहाँ सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा-ने उत्तम तपमें परिनिष्ठित परमेश्वरी पार्वतीको देखा। वे सम्पूर्ण जगत्की प्रतिष्ठा-सी जान पड़ती थीं। अपने, श्रीहरिके तथा रुद्रदेवके भी जन्मदाता पिता महामहेश्वरकी भार्या आर्या जगन्माता गिरिराजनन्दिनी पार्वतीजीको ब्रह्माजीने प्रणाम किया।

देवगणोंके साथ ब्रह्माजीको आया देख देवीने उनके योग्य अर्घ्य देकर स्वागत आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। बदलेमें उनका भी सत्कार और अभिनन्दन करके ब्रह्माजी अनजानकी भाँति देवीसे तपस्याका कारण पूछने लगे।



पार्वतीकी काली त्वचाके आवरणसे कौशिकीका प्राकट्य

[पृष्ठ ४७१

ब्रह्माजी बोले—देवि ! इस तीव्र तपस्याके द्वारा आप यहाँ किस अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि करना चाहती हैं ? तपस्याके सम्पूर्ण फलोंकी सिद्धि तो आपके ही अधीन है । जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन्हीं परमेश्वरको पतिके रूपमें पाकर आपने तपस्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया है अथवा यह सारा ही क्रियाकलाप आपका लीलाविलास है । परंतु आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप इतने दिनोंसे महादेवजीके विरहका कष्ट कैसे सह रही हैं ?

देवीने कहा—ब्रह्मन् ! जब सृष्टिके आदिकालमें महादेवजीसे आपकी उत्पत्ति सुनी जाती है, तब समस्त प्रजाओंमें प्रथम होनेके कारण आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हैं । फिर जब प्रजाकी वृद्धिके लिये आपके ललाटसे भगवान् शिवका प्रादुर्भाव हुआ, तब आप मेरे पतिके पिता और मेरे श्वशुर होनेके कारण गुरुजनोंकी कोटिमें आ जाते हैं और जब मैं यह सोचती हूँ कि स्वयं मेरे पिता गिरिराज हिमालय आपके पुत्र हैं, तब आप मेरे साक्षात् पितामह लगते हैं । लोकपितामह ! इस तरह आप लोकयात्राके विधाता हैं । अन्तःपुरमें पतिके साथ जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे मैं आपके सामने कैसे कह सकूँगी ? अतः यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ । मेरे शरीरमें जो यह कालापन है, इसे सात्त्विक-विधिसे त्यागकर मैं गौरवर्णा होना चाहती हूँ ।

ब्रह्माजी बोले—देवि ! इतने ही प्रयोजनके लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया ? क्या इसके लिये आपकी इच्छामात्र ही पर्याप्त नहीं थी ? अथवा यह आपकी एक लीला ही है । जगन्मातः ! आपकी लीला भी लोकहितके लिये ही होती है । अतः आप इसके द्वारा मेरे एक अभीष्ट फलकी सिद्धि कीजिये । निशुम्भ और शुम्भ नामक जो दो दैत्य हैं, उनको मैंने वर दे रक्खा है । इससे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है और वे देवताओंको सता रहे हैं । उन दोनोंको आपके ही हाथसे मारे जानेका वरदान प्राप्त हुआ है । अतः अब विलम्ब करनेसे कोई लाभ नहीं । आप क्षणभरके लिये सुस्थिर हो जाइये । आपके द्वारा जो शक्ति रची या छोड़ी जायगी, वही उन दोनोंके लिये मृत्यु हो जायगी ।

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गिरिराजकुमारी देवी पार्वती सहसा अपने काली त्वचाके आवरणको उतारकर गौरवर्णा हो गयीं । त्वचाकोष (काली त्वचामय आवरण)-रूपसे त्यागी गयी जो उनकी शक्ति थी, उसका नाम 'कौशिकी' हुआ । वह काले मेघके समान कान्तिवाली कृष्णवर्णा कन्या हो गयी । देवीकी वह मायामयी शक्ति ही योगनिद्रा और वैष्णवी कहलाती है । उसके आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं । उसने उन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और त्रिशूल आदि आयुध धारण कर रक्खे थे । उस देवीके तीन रूप हैं—सौम्य, घोर और मिश्र । वह तीन नेत्रोंसे युक्त थी । उसने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण कर रक्खा था । उसे पुरुषका स्पर्श तथा रतिका योग नहीं प्राप्त था और वह अत्यन्त सुन्दरी थी । देवीनें अपनी इस सनातन शक्तिको ब्रह्माजीके हाथमें दे दिया । वही दैत्यप्रवर शुम्भ और निशुम्भका वध करनेवाली हुई । उस समय प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उस पराशक्तिको सवारीके लिये एक प्रबल सिंह प्रदान किया, जो उनके साथ ही आया था । उस देवीके रहनेके लिये ब्रह्माजीने विन्ध्यगिरिपर वासस्थान दिया और वहाँ नाना प्रकारके उपचारोंसे उनका पूजन किया । विश्वकर्मा ब्रह्माके द्वारा सम्मानित हुई वह शक्ति अपनी माता गौरीको और ब्रह्माजीको क्रमशः प्रणाम करके अपने ही अङ्गोंसे उत्पन्न और अपने ही समान शक्तिशालिनी बहुसंख्यक शक्तियोंको साथ ले दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भको मारनेके लिये उद्यत होकर विन्ध्यपर्वतको चली गयी । उसने समराङ्गणमें उन दोनों दैत्यराजोंको मार गिराया । उस युद्धका अन्यत्र वर्णन हो चुका है, इसलिये उसकी विस्तृत कथा यहाँ नहीं कही गयी । दूसरे स्थलोंसे उसकी ऊहा कर लेनी चाहिये । अब मैं प्रस्तुत प्रसङ्गका वर्णन करता हूँ । (अध्याय २५)

गौरी देवीका व्याघ्रको अपने साथ ले जानेके लिये ब्रह्माजीसे आज्ञा माँगना, ब्रह्माजीका उसे दुष्कर्मी बताकर रोकना, देवीका शरणागतको त्यागनेसे इनकार करना, ब्रह्माजीका देवीकी महत्ता बताकर अनुमति देना और देवीका माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना

वायुदेवता कहते हैं—कौशिकीको उत्पन्न करके उसे ब्रह्माजीके हाथमें देनेके पश्चात् गौरी देवीने प्रत्युपकारके लिये पितामहसे कहा ।

देवी बोलीं—क्या आपने मेरे आश्रममें रहनेवाले इस व्याघ्रको देखा है ? इसने दुष्ट जन्तुओंसे मेरे तपोवनकी रक्षा की है । यह मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभावसे मेरा

भजन करता रहा है। अतः इसकी रक्षाके सिवा दूसरा कोई मेरा प्रिय कार्य नहीं है। यह मेरे अन्तःपुरमें विचरनेवाला होगा। भगवान् शंकर इसे प्रसन्नतापूर्वक गणेश्वरका पद प्रदान करेंगे। मैं इसे आगे करके सखियोंके साथ यहाँसे जाना चाहती हूँ। इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें; क्योंकि आप प्रजापति हैं।

देवीके ऐसा कहनेपर उन्हें भोली-भाली जान हँसते और मुस्कराते हुए ब्रह्माजी उस व्याघ्रकी पुरानी क्रूरतापूर्ण करतूतें बताते हुए उसकी दुष्टताका वर्णन करने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! कहाँ तो पशुओंमें क्रूर व्याघ्र और कहाँ यह आपकी मङ्गलमयी कृपा। आप विषधर सर्पके मुखमें साक्षात् अमृत क्यों सींच रही हैं? यह केवल व्याघ्रके रूपमें रहनेवाला कोई दुष्ट निशाचर है। इसने बहुत-सी गौओं और तपस्वी ब्राह्मणोंको खा डाला है। यह उन सबको इच्छानुसार ताप देता हुआ मनमाना रूप धारण करके विचरता है। अतः इसे अपने पापकर्मका फल अवश्य भोगना चाहिये। ऐसे दुष्टोंपर आपको कृपा करनेकी क्या आवश्यकता है? इस स्वभावसे ही कलुषित चित्तवाले दुष्ट जीवसे देवीको क्या काम है?

देवी बोलीं—आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। यह ऐसा ही सही, तथापि मेरी शरणमें आ गया है। अतः मुझे इसका त्याग नहीं करना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! इसकी आपके प्रति भक्ति है, इस बातको जाने बिना ही मैंने आपके समक्ष इसके पूर्वचरित्रका वर्णन किया है। यदि इसके भीतर भक्ति है तो पहलेके पापोंसे इसका क्या बिगड़नेवाला है; क्योंकि आपके भक्तका कभी नाश नहीं होता। जो आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता, वह पुण्यकर्मा होकर भी क्या करेगा। देवि! आप ही अजन्मा, बुद्धिमती, पुरातन शक्ति और परमेश्वरी हैं। सबके बन्ध और मोक्षकी व्यवस्था आपके ही अधीन है। आपके सिवा पराशक्ति कौन है? आपके बिना किसको कर्मजनित सिद्धि प्राप्त हो सकती है? आप ही असंख्य रुद्रोंकी विविध शक्ति हैं। शक्तिरहित कर्ता काम करनेमें कौन-सी सफलता प्राप्त करेगा? भगवान् विष्णुको, मुझको तथा अन्य देवता, दानव और राक्षसोंको उन-उन ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेके लिये आपकी आज्ञा ही कारण है। असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र, जो आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, बीत चुके हैं और भविष्यमें भी होंगे। देवेश्वरि! आपकी आराधना किये बिना हम सब श्रेष्ठ देवता भी धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति नहीं कर सकते। आपके संकल्पसे ब्रह्मत्व और स्थावरत्वका तत्काल व्यत्यास (फेर-बदल) भी हो जाता है अर्थात् ब्रह्मा स्थावर (वृक्ष आदि) हो जाता है और स्थावर ब्रह्मा; क्योंकि पुण्य और पापके फलोंकी व्यवस्था आपने ही की है। आप ही जगत्‌के स्वामी परमात्मा शिवकी अनादि, अमध्य और अनन्त आदि सनातन शक्ति हैं। आप सम्पूर्ण लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये किसी अद्‌भुत मूर्तिमें आविष्ट हो नाना प्रकारके भावोंसे क्रीड़ा करती हैं। भला, आपको ठीक-ठीक कौन जानता है। अतः यह पापाचारी व्याघ्र भी आज आपकी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करे, इसमें कौन बाधक हो सकता है।

इस प्रकार उनके परम तत्त्वका स्मरण कराकर ब्रह्माजीने जब उचित प्रार्थना की, तब गौरीदेवी तपस्यासे निवृत्त हुईं। तदनन्तर देवीकी आज्ञा लेकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। फिर देवीने अपने वियोगको न सह सकनेवाले माता-पिता मेना और हिमवान्‌का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया तथा उन्हें नाना प्रकारसे आश्वासन दिया। इसके बाद देवीने तपस्याके प्रेमी तपोवनके वृक्षोंको देखा। वे उनके सामने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो उनसे होनेवाले वियोगके शोकसे पीड़ित हो वे आँसू बरसा रहे हों। अपनी शाखाओंपर बैठे हुए विहंगमोंके कलरवोंके व्याजसे मानो वे व्याकुलतापूर्वक नाना प्रकारसे दीनतापूर्ण विलाप कर रहे थे। तदनन्तर पतिके दर्शनके लिये उतावली हो उस व्याघ्रको औरस पुत्रकी भाँति स्नेहसे आगे करके सखियोंसे बातचीत करती और देहकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको उद्दीपित करती हुई गौरीदेवी मन्दराचलको चली गयीं, जहाँ सम्पूर्ण जगत्‌के आधार, स्रष्टा, पालक और संहारक पतिदेव महेश्वर विराजमान थे।

(अध्याय २६)

मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद्य सम्बन्धपर प्रकाश तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना

ऋषियोंने पूछा—अपने शरीरको दिव्य गौरवर्णसे युक्त बनाकर गिरिराजकुमारी देवी पार्वतीने जब मन्दराचल प्रदेशमें प्रवेश किया, तब वे अपने पतिसे किस प्रकार मिलीं ? प्रवेशकालमें उनके भवनद्वारपर रहनेवाले गणेश्वरोंने क्या किया तथा महादेवजीने भी उन्हें देखकर उस समय उनके साथ कैसा बर्ताव किया ?

वायुदेवताने कहा—जिस प्रेमगर्भित रसके द्वारा अनुरागी पुरुषोंके मनका हरण हो जाता है, उस परम रसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है। द्वारपाल बड़ी उतावलीसे राह देखते थे। उनके साथ ही महादेवजी भी देवीके आगमनके लिये उत्सुक थे। जब वे भवनमें प्रवेश करने लगीं, तब शङ्कित हो उन-उन प्रेमजनित भावोंसे वे उनकी ओर देखने लगे। देवी भी उनकी ओर उन्हीं भावोंसे देख रही थीं। उस समय उस भवनमें रहनेवाले श्रेष्ठ पार्षदोंने देवीकी वन्दना की। फिर देवीने विनययुक्त वाणीद्वारा भगवान् त्रिलोचनको प्रणाम किया। वे प्रणाम करके अभी उठने भी नहीं पायी थीं कि परमेश्वरने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर बड़े आनन्दके साथ हृदयसे लगा लिया। फिर मुसकराते हुए वे एकटक नेत्रोंसे उनके मुखचन्द्रकी सुधाका पान-सा करने लगे। फिर उनसे बातचीत करनेके लिये उन्होंने पहले अपनी ओरसे वार्ता आरम्भ की।

देवाधिदेव महादेवजी बोले—सर्वाङ्गसुन्दरि प्रिये ! क्या तुम्हारी वह मनोदशा दूर हो गयी, जिसके रहते तुम्हारे क्रोधके कारण मुझे अनुनय-विनयका कोई भी उपाय नहीं सूझता था। यदि साधारण लोगोंकी भाँति हम दोनोंमें भी एक दूसरेके अप्रियका कारण विद्यमान है, तब तो इस चराचर जगत्का नाश हुआ ही समझना चाहिये। मैं अग्निके मस्तकपर स्थित हूँ और तुम सोमके। हम दोनोंसे ही यह अग्नि-सोमात्मक जगत् प्रतिष्ठित है ! जगत्के हितके लिये स्वेच्छासे शरीर धारण करके विचरनेवाले हम दोनोंके वियोगमें यह जगत् निराधार हो जायगा। इसमें शास्त्र और युक्तिसे निश्चित किया हुआ दूसरा हेतु भी है। यह स्थावर-जंगमरूप जगत् वाणी और अर्थमय ही है ! तुम साक्षात् वाणीमय अमृत हो और मैं अर्थमय परम उत्तम अमृत हूँ। ये दोनों अमृत एक-दूसरेसे विलग कैसे हो सकते हैं। तुम मेरे स्वरूपका बोध करानेवाली विद्या हो और मैं तुम्हारे दिये हुए विश्वासपूर्ण बोधसे जाननेयोग्य परमात्मा हूँ। हम दोनों क्रमशः विद्यात्मा और वेद्यात्मा हैं, फिर हममें वियोग होना कैसे सम्भव है। मैं अपने प्रयत्नसे जगत्की सृष्टि और संहार नहीं करता। एकमात्र आज्ञासे ही सबकी सृष्टि और संहार उपलब्ध होते हैं। वह अत्यन्त गौरवपूर्ण आज्ञा तुम्हीं हो। ऐश्वर्यका एकमात्र सार आज्ञा (शासन) है, क्योंकि वही स्वतन्त्रताका लक्षण है। आज्ञासे वियुक्त होनेपर मेरा ऐश्वर्य कैसा होगा। हमलोगोंका एक दूसरेसे विलग होकर रहना कभी सम्भव नहीं है। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे ही मैंने उस समय उस दिन लीलापूर्वक व्यङ्ग्य वचन कहा था। तुम्हें भी तो यह बात अज्ञात नहीं थी। फिर तुम कुपित कैसे हो गयीं ? अतः यही कहना पड़ता है कि तुमने मुझपर भी जो क्रोध किया था, वह त्रिलोकीकी रक्षाके लिये ही था; क्योंकि तुममें ऐसी कोई बात नहीं है, जो जगत्के प्राणियोंका अनर्थ करनेवाली हो।

इस प्रकार प्रिय वचन बोलनेवाले साक्षात् परमेश्वर शिवके प्रति शृङ्गार-रसके सारभूत भावोंकी प्राकृतिक जन्मभूमि देवी पार्वती अपने पतिकी कही हुई यह मनोहर बात सुनकर इसे सत्य जान मुसकराकर रह गयीं, लज्जावश कोई उत्तर न दे सकीं। केवल कौशिकीके यशका वर्णन छोड़कर और कुछ उन्होंने नहीं कहा। देवीने कौशिकीके विषयमें जो कुछ कहा उसका वर्णन करता हूँ।

देवी बोलीं—'भगवन् ! मैंने जिस कौशिकीकी सृष्टि की है, उसे क्या आपने नहीं देखा है ? वैसी कन्या न तो इस लोकमें हुई है और न होगी।' यों कहकर देवीने उसके विन्ध्यपर्वतपर निवास करने तथा समराङ्गणमें शुम्भ और निशुम्भका वध करके उनपर विजय पानेका प्रसङ्ग सुनाकर उसके बल-पराक्रमका वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि वह उपासना करनेवाले लोगोंको सदा प्रत्यक्ष फल देती है तथा निरन्तर लोकोंकी रक्षा करती रहती है। इस विषयमें ब्रह्माजी आपको आवश्यक बातें बतायेंगे।

उस समय इस प्रकार बातचीत करती हुई देवीकी आज्ञासे ही एक सखीने उस व्याघ्रको लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। उसे देखकर देवी कहने लगीं—'देव ! यह व्याघ्र मैं आपके लिये भेंट लायी हूँ। आप इसे देखिये। इसके



समान मेरा उपासक दूसरा कोई नहीं है। इसने दुष्ट जन्तुओंके समूहसे मेरे तपोवनकी रक्षा की थी। यह मेरा अत्यन्त भक्त है और अपने रक्षणात्मक कार्यसे मेरा विश्वासपात्र बन गया है। मेरी प्रसन्नताके लिये यह अपना देश छोड़कर यहाँ आ गया है। महेश्वर! यदि मेरे आनेसे आपको प्रसन्नता हुई है और यदि आप मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं तो मैं चाहती हूँ कि यह नन्दीकी आज्ञासे मेरे अन्तःपुरके द्वारपर अन्य रक्षकोंके साथ उन्हींके चिह्न धारण करके सदा स्थित रहे।'

वायुदेव कहते हैं--देवीके इस मधुर और अन्ततोगत्वा प्रेम बढ़ानेवाले शुभ वचनको सुनकर महादेवजीने कहा—'मैं बहुत प्रसन्न हूँ।' फिर तो वह व्याघ्र उसी क्षण लचकती हुई सुवर्णजटित बेंतकी छड़ी, रत्नोंसे जटित विचित्र कवच, सर्पकी-सी आकृतिवाली छुरी तथा रक्षकोचित वेष धारण किये गणाध्यक्षके पदपर प्रतिष्ठित दिखायी दिया। उसने उमासहित महादेव और नन्दीको आनन्दित किया था। इसलिये सोमनन्दी नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार देवीका प्रिय कार्य करके चन्द्रार्धभूषण महादेवजीने उन्हें रत्नभूषित दिव्य आभूषणोंसे भूषित किया। चन्द्रभूषण भगवान् शिवने सर्वमनोहारिणी गिरिराजकुमारी गौरी देवीको पलंगपर बिठाकर उस समय सुन्दर अलंकारोंसे स्वयं ही उनका श्रृङ्गार किया।

(अध्याय २७)

अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अग्निषोमात्मकताका प्रतिपादन

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! पार्वती देवीका समाधान करते हुए महादेवजीने यह बात क्यों कही कि 'सम्पूर्ण विश्व अग्निषोमात्मक एवं वागर्थात्मक है। ऐश्वर्यका सार एकमात्र आज्ञा ही है और वह आज्ञा तुम हो।' अतः इस विषयमें हम क्रमशः यथार्थ बातें सुनना चाहते हैं।

वायुदेव बोले—महर्षियो! रुद्रदेवका जो घोर तेजोमय शरीर है, उसे अग्नि कहते हैं और अमृतमय सोम शक्तिका स्वरूप है; क्योंकि शक्तिका शरीर शान्तिकारक है। जो अमृत है, वह प्रतिष्ठा नामक कला है; और जो तेज है, वह साक्षात् विद्या नामक कला है। सम्पूर्ण सूक्ष्म भूतोंमें वे ही दोनों रस और तेज हैं। तेजकी वृत्ति दो प्रकारकी है। एक सूर्यरूपा है और दूसरी अग्निरूपा। इसी तरह रसवृत्ति भी दो प्रकारकी है—एक सोमरूपिणी और दूसरी जलरूपिणी। तेज विद्युत् आदिके रूपमें उपलब्ध होता है तथा रस, मधुर आदिके रूपमें। तेज और रसके भेदोंने ही इस चराचर जगत्को धारण कर रक्खा है। अग्निसे अमृतकी उत्पत्ति होती है और अमृतस्वरूप घीसे अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव अग्नि और सोमको दी हुई आहुति जगत्के लिये हितकारक होती है। शस्य-सम्पत्ति हविष्यका उत्पादन करती है। वर्षा शस्यको बढ़ाती है। इस प्रकार वर्षासे ही हविष्यका प्रादुर्भाव होता है, जिससे यह अग्निषोमात्मक जगत् टिका हुआ है। अग्नि वहाँतक ऊपरको प्रज्वलित होता है, जहाँतक सोमसम्बन्धी परम अमृत विद्यमान है; और जहाँतक अग्निका स्थान है, वहाँतक सोमसम्बन्धी अमृत नीचेको झरता है। इसीलिये कालाग्नि नीचे है और शक्ति ऊपर। जहाँतक अग्नि है, उसकी गति ऊपरकी ओर है और जो जलका आप्लावन है, उसकी गति नीचेकी ओर है। आधार-शक्तिने ही इस ऊर्ध्वगामी कालाग्निको धारण कर रक्खा है तथा निम्नगामी सोम शिव-शक्तिके आधारपर प्रतिष्ठित है। शिव ऊपर हैं और शक्ति नीचे तथा शक्ति ऊपर है और शिव नीचे। इस प्रकार शिव और शक्तिने यहाँ सब कुछ व्याप्त कर रक्खा है। बारंबार अग्निद्वारा जलाया हुआ जगत् भस्मसात् हो जाता है। यह अग्निका वीर्य है। भस्मको ही अग्निका वीर्य कहते हैं। जो इस प्रकार भस्मके श्रेष्ठ स्वरूपको जानकर 'अग्निः' इत्यादि मन्त्रोंद्वारा भस्मसे स्नान करता है, वह बँधा हुआ जीव पाशसे मुक्त हो जाता है। अग्निके वीर्यरूप भस्मको सोमने अयोग-युक्तिके द्वारा फिर आप्लावित किया; इसलिये वह प्रकृतिके अधिकारमें चला गया। यदि योगयुक्तिसे शाक्त अमृतवर्षाके द्वारा उस

भसका सब ओर आप्लावन हो तो वह प्रकृतिके अधिकारोंको निवृत्त कर देता है। अतः इस तरहका अमृतप्लावन सदा मृत्युपर विजय पानेके लिये ही होता है। शिवाग्निके साथ शक्तिसम्बन्धी अमृतका स्पर्श होनेपर जिसने अमृतका आप्लावन प्राप्त कर लिया, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है। जो अग्निके इस गुह्य स्वरूपको तथा पूर्वोक्त अमृतप्लावनको ठीक-ठीक जानता है, वह अग्निषोमात्मक जगत्‌को त्यागकर फिर यहाँ जन्म नहीं लेता। जो शिवाग्निसे शरीरको दग्ध करके शक्तिस्वरूप सोमामृतसे योगमार्गके द्वारा इसे आप्लवित करता है, वह अमृतस्वरूप हो जाता है। इसी अभिप्रायको हृदयमें धारण करके महादेवजीने इस सम्पूर्ण जगत्‌को अग्निषोमात्मक कहा था। उनका वह कथन सर्वथा उचित है। (अध्याय २८)

जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! अब यह बता रहा हूँ कि जगत्‌की वागर्थात्मकताकी सिद्धि कैसे की गयी है। छः अध्वाओं (मार्गों) का सम्यक् ज्ञान मैं संक्षेपसे ही करा रहा हूँ, विस्तारसे नहीं। कोई भी ऐसा अर्थ नहीं है, जो बिना शब्दका हो और कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो बिना अर्थका हो। अतः समयानुसार सभी शब्द सम्पूर्ण अर्थोंके बोधक होते हैं। प्रकृतिका यह परिणाम शब्दभावना और अर्थभावनाके भेदसे दो प्रकारका है। उसे परमात्मा शिव तथा पार्वतीकी प्राकृत मूर्ति कहते हैं। उनकी जो शब्दमयी विभूति है, उसे विद्वान् तीन प्रकारकी बताते हैं—स्थूला, सूक्ष्मा और परा। स्थूला वह है जो कानोंको प्रत्यक्ष सुनायी देती है; जो केवल चिन्तनमें आती है, वह सूक्ष्मा कही गयी है और जो चिन्तनकी भी सीमासे परे है, उसे परा कहा गया है। वह शक्तिस्वरूपा है। वही शिवतत्त्वके आश्रित रहनेवाली 'पराशक्ति' कही गयी है। ज्ञानशक्तिके संयोगसे वही इच्छाकी उपोद्बलिका (उसे दृढ़ करनेवाली) होती है। वह सम्पूर्ण शक्तियोंकी समष्टिरूपा है। वही शक्तितत्त्वके नामसे विख्यात हो समस्त कार्यसमूहकी मूल प्रकृति मानी गयी है। उसीको कुण्डलिनी कहा गया है। वही विशुद्धाध्वपरा माया है। वह स्वरूपतः विभागरहित होती हुई भी छः अध्वाओंके रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है। उन छः अध्वाओंमेंसे तीन तो शब्दरूप हैं और तीन अर्थरूप बताये गये हैं। सभी पुरुषोंको आत्मशुद्धिके अनुरूप सम्पूर्ण तत्त्वोंके विभागसे लय और भोगके अधिकार प्राप्त होते हैं। वे सम्पूर्ण तत्त्वकलाओंद्वारा यथायोग्य प्राप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिमें पाँच प्रकारके परिणाम होते हैं, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। मन्त्राध्वा, पदाध्वा और वर्णाध्वा—ये तीन अध्वा शब्दसे सम्बन्ध रखते हैं तथा भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा—ये तीन अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। इन सबमें भी परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव बताया जाता है। सम्पूर्ण मन्त्र पदोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि वे वाक्यरूप हैं। सम्पूर्ण पद भी वर्णोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि विद्वान् पुरुष वर्णोंके समूहको ही पद कहते हैं। वे वर्ण भी भुवनोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि उन्हींमें उनकी उपलब्धि होती है। भुवन भी तत्त्वोंके समूहद्वारा बाहर-भीतरसे व्याप्त हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति ही तत्त्वोंसे हुई है। उन कारणभूत तत्त्वोंसे ही उनका आरम्भ हुआ है। अनेक भुवन उनके अंदरसे ही प्रकट हुए हैं। उनमेंसे कुछ तो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्य भुवनोंका ज्ञान शिवसम्बन्धी आगमसे प्राप्त करना चाहिये। कुछ तत्त्व सांख्य और योगशास्त्रोंमें भी प्रसिद्ध हैं।

शिवशास्त्रोंमें प्रसिद्ध तथा दूसरे-दूसरे भी जो तत्त्व हैं, वे सब-के-सब कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिकालमें पाँच परिणाम हुए, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। वे पाँच कलाएँ उत्तरोत्तर तत्त्वोंसे व्याप्त हैं। अतः परा शक्ति सर्वत्र व्यापक है। वह विभागरहित होकर भी छः अध्वाओंके रूपमें विभक्त है। शक्तिसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव शिवतत्त्वसे हुआ है। अतः जैसे घड़े आदि मिट्टीसे व्याप्त हैं, उसी प्रकार वे सारे तत्त्व एकमात्र शिवसे ही व्याप्त हैं। जो छः अध्वाओंसे प्राप्त होनेवाला है, वही शिवका परम धाम है। पाँच तत्त्वोंके शोधनसे व्यापिका और अव्यापिका शक्ति जानी जाती है। निवृत्तिकलाके द्वारा रुद्रलोकपर्यन्त ब्रह्माण्डकी स्थितिका शोधन होता है। प्रतिष्ठाकलाद्वारा उससे भी ऊपर जहाँतक अव्यक्तकी सीमा है, वहाँतककी शोध की जाती है। मध्यवर्तिनी विद्याकलाद्वारा उससे भी ऊपर विद्येश्वरपर्यन्त स्थानका शोधन होता है। शान्तिकलाद्वारा उससे भी ऊपरके स्थानका तथा शान्त्यतीता कलाके द्वारा अध्वाके अन्ततकका शोधन हो जाता है। उसीको 'परम व्योम' कहा गया है।

ये पाँच तत्त्व बताये गये, जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। वहीं साधकोंको यह सब कुछ देखना चाहिये; जो अध्वाकी व्याप्तिको न जानकर शोधन करना चाहता है, वह शुद्धिसे वञ्चित रह जाता है, उसके फलको नहीं पा सकता। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ, केवल नरककी ही प्राप्ति करानेवाला होता है। शक्तिपातका संयोग हुए बिना तत्त्वोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी व्याप्ति और बुद्धिका ज्ञान भी

असम्भव है। शिवकी जो चित्स्वरूपा परमेश्वरी परा शक्ति है, वही आज्ञा है। उस कारणरूपा आज्ञाके सहयोगसे ही शिव सम्पूर्ण शिवके अधिष्ठाता होते हैं। विचारदृष्टिसे देखा जाय तो आत्मामें कभी विकार नहीं होता। यह विकारकी प्रतीति मायामात्र है। न तो बन्धन है और न उस बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली कोई मुक्ति है। शिवकी जो अव्यभिचारिणी पराशक्ति है, वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा है। वह उन्हींके समान धर्मवाली है और विशेषतः उनके उन-उन विलक्षण भावोंसे युक्त है। उसी शक्तिके साथ शिव गृहस्थ बने हुए हैं और वह भी सदा उन शिवके ही साथ उनकी गृहिणी बनकर रहती है। जो प्रकृतिजन्य जगत्‌रूप कार्य है, वही उन शिव दम्पतिकी संतान है। शिव कर्ता हैं और शक्ति कारण। यही उन दोनोंका भेद है। वास्तवमें एकमात्र साक्षात् शिव ही दो रूपोंमें स्थित हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि स्त्री और पुरुष-रूपमें ही उनका भेद है। अन्य लोग कहते हैं कि पराशक्ति शिवमें नित्य समवेत है। जैसे प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चित्स्वरूपिणी पराशक्ति शिवसे अभिन्न ही है। यही सिद्धान्त है। अतः शिव परम कारण हैं, उनकी आज्ञा ही परमेश्वरी है। उसीसे प्रेरित होकर शिवकी अविनाशिनी मूल प्रकृति कार्यभेदसे महामाया, माया और त्रिगुणात्मिका प्रकृति—इन तीन रूपोंमें स्थित हो छः अध्वाओंको प्रकट करती है। वह छः प्रकारका अध्वा वागर्थमय है, वही सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें स्थित है; सभी शास्त्रसमूह इसी भावका विस्तारसे प्रतिपादन करते हैं। (अध्याय २९)

ऋषियोंके प्रश्नका उत्तर देते हुए वायुदेवके द्वारा शिवके स्वतन्त्र एवं सर्वानुग्राहक स्वरूपका प्रतिपादन

तदनन्तर ऋषियोंने कई कारण दिखाकर पूछा—वायुदेव! यदि शिव सदा शान्तभावसे रहकर ही सबपर अनुग्रह करते हैं तो सबकी अभिलाषाओंको एक साथ ही पूर्ण क्यों नहीं कर देते? जो सब कुछ करनेमें समर्थ होगा, वह सबको एक साथ ही बन्धन-मुक्त क्यों नहीं कर सकेगा? यदि कहें अनादिकालसे चले आनेवाले सबके विचित्र कर्म अलग-अलग हैं, अतः सबको एक समान फल नहीं मिल सकता तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि कर्मोंकी विचित्रता भी वहाँ नियामक नहीं हो सकती। कारण कि वे कर्म भी ईश्वरके करानेसे ही होते हैं। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ। उपर्युक्तरूपसे विभिन्न युक्तियोंद्वारा फैलायी गयी नास्तिकता जिस प्रकारसे शीघ्र ही निवृत्त हो जाय, वैसा उपदेश दीजिये।

वायु देवताने कहा—ब्राह्मणो! आपलोगोंने युक्तियोंसे प्रेरित होकर जो संशय उपस्थित किया है, वह उचित ही है; क्योंकि किसी बातको जाननेकी इच्छा अथवा तत्त्वज्ञानके लिये उठाया गया प्रश्न साधुबुद्धिवाले पुरुषोंमें नास्तिकताका उत्पादन नहीं कर सकता। मैं इस विषयमें ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करूँगा, जो सत्पुरुषोंके मोहको दूर करनेवाला है। असत् पुरुषोंका जो अन्यथा भाव होता है, उसमें प्रभु शिवकी कृपाका अभाव ही कारण है। परिपूर्ण परमात्मा शिवके परम अनुग्रहके बिना कुछ भी कर्तव्य नहीं है, ऐसा निश्चय किया गया है। परानुग्रह कर्ममें स्वभाव ही पर्याप्त (पूर्णतः समर्थ) है, अन्यथा निःस्वभाव पुरुष किसीपर भी अनुग्रह नहीं कर सकता। पशु और पाशरूप सारा जगत् ही पर कहा गया है। वह अनुग्रहका पात्र है। परको अनुगृहीत करनेके लिये पतिकी आज्ञाका समन्वय आवश्यक है। पति आज्ञा देनेवाला है, वही सदा सबपर अनुग्रह करता है। उस अनुग्रहके लिये ही आज्ञा-रूप अर्थको स्वीकार करनेपर शिव परतन्त्र कैसे कहे जा सकते हैं। अनुग्राहककी अपेक्षा न रखकर कोई भी अनुग्रह सिद्ध नहीं हो सकता। अतः स्वातन्त्र्य-शब्दके अर्थकी अपेक्षा न रखना ही अनुग्रहका लक्षण है। जो अनुग्राह्य है, वह परतन्त्र माना जाता है; क्योंकि पतिके अनुग्रहके बिना उसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। जो मूर्त्यात्मा हैं, वे भी अनुग्रहके पात्र हैं; क्योंकि उनसे भी शिवकी आज्ञाकी निवृत्ति नहीं होती—वे भी शिवकी आज्ञासे बाहर नहीं हैं। यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो शिवकी आज्ञाके अधीन न हो। सकल (सगुण या साकार) होनेपर भी जिसके द्वारा हमें निष्कल (निर्गुण या निराकार) शिवकी प्राप्ति होती है, उस मूर्ति या लिङ्गके रूपमें साक्षात् शिव ही विराज रहे हैं। वह 'शिवकी मूर्ति है' यह बात तो उपचारसे कही जाती है। जो साक्षात् निष्कल तथा परम कारणरूप शिव हैं, वे किसीके द्वारा भी साकार अनुभावसे उपलक्षित नहीं होते, ऐसी बात नहीं है। यहाँ प्रमाणमय होना ... स्वभावकी उपपादक

नहीं है, प्रमाण अथवा प्रतीकमात्रसे अपेक्षा-बुद्धिका उदय नहीं होता। वे परम तत्त्वके उपलक्षणमात्र हैं, इसके सिवा उनका और कोई अभिप्राय नहीं है। कोई-न-कोई मूर्ति ही आत्माका साक्षात् उपलक्षण होती है। 'शिवकी मूर्ति है' इस कथनका अभिप्राय यह है कि उस मूर्तिके रूपमें परम शिव विराजमान हैं। मूर्ति उनका उपलक्षण है। जैसे काष्ठ आदि आलम्बनका आश्रय लिये बिना केवल अग्नि कहीं उपलब्ध नहीं होती, उसी प्रकार शिव भी मूर्त्यात्मामें आरूढ़ हुए बिना उपलब्ध नहीं होते। यही वस्तुस्थिति है। जैसे किसीसे यह कहनेपर कि 'तुम आग ले आओ' उसके द्वारा जलती हुई लकड़ी आदिके सिवा साक्षात् अग्नि नहीं लायी जाती, उसी प्रकार शिवका पूजन भी मूर्तिरूपमें ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये पूजा आदिमें 'मूर्त्यात्मा' की परिकल्पना होती है; क्योंकि मूर्त्यात्माके प्रति जो कुछ किया जाता है, वह साक्षात् शिवके प्रति किया गया ही माना गया है। लिङ्ग आदिमें विशेषतः अर्चाविग्रहमें जो पूजनकृत्य होता है, वह भगवान् शिवका ही पूजन है। उन-उन मूर्तियोंके रूपमें शिवकी भावना करके हमलोग शिवकी ही उपासना करते हैं। जैसे परमेष्ठी शिव मूर्त्यात्मापर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित शिव हम पशुओंपर अनुग्रह करते हैं। परमेष्ठी शिवने लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही सदाशिव आदि सम्पूर्ण मूर्त्यात्माओंको अधिष्ठित—अपनी आज्ञामें रखकर अनुगृहीत किया है।

भगवान् शिव सबपर अनुग्रह ही करते हैं, किसीका निग्रह नहीं करते, क्योंकि निग्रह करनेवाले लोगोंमें जो दोष होते हैं, वे शिवमें असम्भव हैं। ब्रह्मा आदिके प्रति जो निग्रह देखे गये हैं, वे भी श्रीकण्ठमूर्ति शिवके द्वारा लोकहितके लिये ही किये गये हैं। विद्वानोंकी दृष्टिमें निग्रह भी स्वरूपसे दूषित नहीं है। (जब वह राग-द्वेषसे प्रेरित होकर किया जाता है, तभी निन्दनीय माना जाता है।) इसीलिये दण्डनीय अपराधियोंको राजाओंकी ओरसे मिले हुए दण्डकी प्रशंसा की जाती है। यदि साधुकी रक्षा करनी है तो असाधुका निवारण करना ही होगा। पहले साम आदि तीन उपायोंसे असाधुके निवारणका प्रयत्न किया जाता है। यदि यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो अन्तमें चौथे उपाय दण्डका ही आश्रय लिया जाता है। यह दण्डान्त अनुशासन लोकहितके लिये ही किया जाना चाहिये। यही उसके औचित्यको परिलक्षित कराता है। यदि अनुशासन इसके विपरीत हो तो उसे अहितकर कहते हैं। जो सदा हितमें ही लगे रहनेवाले हैं, उन्हें ईश्वरका दृष्टान्त अपने सामने रखना चाहिये। (ईश्वर केवल दुष्टोंको ही दण्ड देते हैं, इसीलिये निर्दोष कहे जाते हैं।) अतः जो दुष्टोंको ही दण्ड देता है, वह उस निग्रह-कर्मको लेकर सत्पुरुषोंद्वारा लाञ्छित कैसे किया जा सकता है। लोकमें जहाँ कहीं भी निग्रह होता है, वह यदि विद्वेषपूर्वक न हो, तभी श्रेष्ठ माना जाता है। जो पिता पुत्रको दण्ड देकर उसे अधिक शिक्षित बनाता है, वह उससे द्वेष नहीं करता।

शिवकी आज्ञाका पालन ही हित है और जो हित है, वही उनका अनुग्रह है। अतएव सबको हितमें नियुक्त करनेवाले शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले कहे गये हैं। जो उपकार-शब्दका अर्थ है, उसे भी अनुग्रह ही कहा गया है; क्योंकि उपकार भी हितरूप ही होता है। अतः सबका उपकार करनेवाले शिव सर्वानुग्राहक हैं। शिवके द्वारा जड-चेतन सभी सदा हितमें ही नियुक्त होते हैं। परंतु सबको जो एक साथ और एक समान हितकी उपलब्धि नहीं होती, इसमें उनका स्वभाव ही प्रतिबन्धक है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सभी कमलोंका विकासके लिये प्रेरित करते हैं, परंतु वे अपने-अपने स्वभावके अनुसार एक साथ और एक समान विकसित नहीं होते, स्वभाव भी पदार्थोंके भावी अर्थका कारण होता है, किंतु वह नष्ट होते हुए अर्थको कर्ताओंके लिये सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे अग्निका संयोग सुवर्णको ही पिघलाता है, कोयले या अङ्गारको नहीं, उसी प्रकार भगवान् शिव परिपक्व मलवाले पशुओंको ही बन्धनमुक्त करते हैं, दूसरोंको नहीं। जो वस्तु जैसी होनी चाहिये, वैसी वह स्वयं नहीं बनती। वैसी बननेके लिये कर्ताकी भावनाका सहयोग होना आवश्यक है। कर्ताकी भावनाके बिना ऐसा होना सम्भव नहीं है, अतः कर्ता सदा स्वतन्त्र होता है।

सबपर अनुग्रह करनेवाले शिव जिस तरह स्वभावसे ही निर्मल हैं, उसी तरह 'जीव' संज्ञा धारण करनेवाली आत्माएँ स्वभावतः मलिन होती हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे जीव क्यों नियमपूर्वक संसारमें भटकते और शिव क्यों संसार-बन्धनसे परे रहते? विद्वान् पुरुष कर्म और मायाके बन्धनको ही जीवका 'संसार' कहते हैं। यह बन्धन जीवको ही प्राप्त होता है, शिवको नहीं। इसमें कारण है, जीवका स्वाभाविक मल। वह कारणभूत मल जीवोंका अपना स्वभाव ही है, आगन्तुक नहीं है। यदि आगन्तुक होता तो किसीको भी किसी भी कारणसे बन्धन प्राप्त हो जाता। जो यह हेतु है, वह एक

है; क्योंकि सब जीवोंका स्वभाव एक-सा है। यद्यपि सबमें एक-सा आत्मभाव है, तो भी मलके परिपाक और अपरिपाकके कारण कुछ जीव बद्ध हैं और कुछ बन्धनसे मुक्त हैं। बद्ध जीवोंमें भी कुछ लोग लय और भोगके अधिकारके अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट होकर ज्ञान और ऐश्वर्य आदिकी विषमता-को प्राप्त होते हैं अर्थात् कुछ लोग अधिक ज्ञान और ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं तथा कुछ लोग कम। कोई मूर्त्यात्मा होते हैं और कोई साक्षात् शिवके समीप विचरनेवाले होते हैं। मूर्त्या-त्माओंमें कोई तो शिवस्वरूप हो छहों अध्वाओंके ऊपर स्थित होते हैं, कोई अध्वाओंके मध्यमार्गमें महेश्वर होकर रहते हैं और कोई निम्नभागमें रुद्ररूपसे स्थित होते हैं। शिवके समीपवर्ती स्वरूपमें भी मायासे परे होनेके कारण उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्टके भेदसे तीन श्रेणियाँ होती हैं—वहाँ निम्न स्थान-में आत्माकी स्थिति है, मध्यम स्थानमें अन्तरात्माकी स्थिति है और जो सबसे उत्कृष्ट श्रेणीका स्थान है, उसमें परमात्मा-की स्थिति है। ये ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहलाते हैं। कोई वसु (जीव) परमात्मपदका आश्रय लेने-वाले होते हैं, कोई अन्तरात्मपदपर और आत्मपदपर प्रतिष्ठित होते हैं।

भगवान् शिव तो अनायास ही समस्त पशुओंको बन्धनसे मुक्त करनेमें समर्थ हैं। फिर वे उन्हें बन्धनमें डाले रखकर क्यों दुःख देते हैं ? यहाँ ऐसा विचार या संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि सारा संसार दुःखरूप ही है, ऐसा विचार-वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। जो स्वभावतः दुःखमय है, वह दुःखरहित कैसे हो सकता है। स्वभावमें उलट-फेर नहीं हो सकता। वैद्यकी दवासे रोग अरोग नहीं होता। वह रोगपीड़ित मनुष्यका अपनी दवासे सुखपूर्वक उद्धार कर देता है। इसी प्रकार जो स्वभावतः मलिन और स्वभावसे ही दुखी हैं, उन पशुओंको अपनी आज्ञारूपी ओषधि देकर शिव दुःखसे छुड़ा देते हैं। रोग होनेमें वैद्य कारण नहीं है, परंतु संसारकी उत्पत्तिमें शिव कारण हैं। अतः रोग और वैद्यके दृष्टान्तसे शिव और संसारके दार्ष्टान्तमें समानता नहीं है। इसलिये इसके द्वारा शिवपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। जब दुःख स्वभावसिद्ध है, तब शिव उसके कारण कैसे हो सकते हैं। जीवोंमें जो स्वाभाविक मल है, वही उन्हें संसारके चक्करमें डालता है। संसारका कारणभूत जो मल—अचेतन माया आदि है, वह शिवका सांनिध्य प्राप्त किये बिना स्वयं चेष्टा-शील नहीं हो सकता। जैसे चुम्बक मणि लोहेका सांनिध्य पाकर ही उपकारक होता है—लोहेको खींचता है, उसी प्रकार शिव भी जड माया आदिका सांनिध्य पाकर ही उसके उपकारक होते हैं, उसे सचेष्ट बनाते हैं। उनके विद्यमान सांनिध्यको अकारण हटाया नहीं जा सकता। अतः जगत्के लिये जो सदा अज्ञात हैं, वे शिव ही इसके अधिष्ठाता हैं। शिवके बिना यहाँ कोई भी प्रवृत्त (चेष्टाशील) नहीं होता, उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। उनसे प्रेरित होकर ही यह सारा जगत् विभिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करता है, तथापि वे शिव कभी मोहित नहीं होते। उनकी आज्ञारूपिणी जो शक्ति है, वही सबका नियन्त्रण करती है। उसका सब ओर मुख है। उसीने सदा इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चका विस्तार किया है, तथापि उसके दोषसे शिव दूषित नहीं होते। जो दुर्बुद्धि मानव मोहवश इसके विपरीत मान्यता रखता है, वह नष्ट हो जाता है। शिवकी शक्तिके वैभवसे ही संसार चलता है, तथापि इससे शिव दूषित नहीं होते।

इसी समय आकाशसे शरीररहित वाणी सुनायी दी—'सत्यम् ओम् अमृतम् सौम्यम्'* इन पदोंका वहाँ स्पष्ट उच्चारण हुआ, उसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उनके समस्त संशयोंका निवारण हो गया तथा उन मुनियोंने विस्मित हो प्रभु पवनदेवको प्रणाम किया। इस प्रकार उन मुनियोंको संदेहरहित करके भी वायुदेवने यह नहीं माना कि इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। 'इनका ज्ञान अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है' ऐसा समझकर ही वे इस प्रकार बोले।

वायु देवताने कहा—मुनियो ! परोक्ष और अपरोक्षके भेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको अस्थिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उप-देशसे जो ज्ञान होता है, उसे विद्वान् पुरुष परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जायगा। अपरोक्ष ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता, ऐसा निश्चय करके तुमलोग आलस्य-रहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो।

(अध्याय ३२)

* इन पदोंका सम्मिलित अर्थ इस प्रकार है—हाँ, यह सत्य है, अमृतमय है और सौम्य है।

परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव ! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है ? उसको और उसके साधनोंको आज आप हमें बतानेकी कृपा करें ।

वायुने कहा—भगवान् शिवका बताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर साक्षात् मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं। वह परमधर्म पाँचों पर्वोंके कारण क्रमशः पाँच प्रकारका जानना चाहिये। उन पर्वोंके नाम हैं—क्रिया, तप, जप, ध्यान और ज्ञान। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, उन उत्कृष्ट साधनोंसे सिद्ध हुआ धर्म परम धर्म माना गया है। जहाँ परोक्ष ज्ञान भी अपरोक्ष ज्ञान होकर मोक्षदायक होता है। वैदिक धर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—परम और अपरम । धर्म-शब्दसे प्रतिपाद्य अर्थमें हमारे लिये श्रुति ही प्रमाण है। योगपर्यन्त जो परम धर्म है, वह श्रुतियोंके शिरोभूत उपनिषद्में वर्णित है और जो अपरम धर्म है, वह उसकी अपेक्षा नीचे श्रुतिके मुखभागसे अर्थात् संहिता-मन्त्रोंद्वारा प्रतिपादित हुआ है। जिसमें पशु (बद्ध) जीवोंका अधिकार नहीं है, वह वेदान्तवर्णित धर्म 'परम धर्म' माना गया है। उससे भिन्न जो यज्ञ-यागादि है, उसमें सबका अधिकार होनेसे वह साधारण या 'अपरम धर्म' कहलाता है। जो अपरम धर्म है, वही परम धर्मका साधन है । धर्मशास्त्र आदिके द्वारा उसका सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक साङ्गोपाङ्ग निरूपण हुआ है। भगवान् शिवके द्वारा प्रतिपादित जो परम धर्म है, उसीका नाम श्रेष्ठ अनुष्ठान है। इतिहास और पुराणोंद्वारा उसका किसी प्रकार विस्तार हुआ है । परंतु शैव-शास्त्रोंद्वारा उसके विस्तारका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है । वहीं उसके स्वरूपका सम्यक्रूपसे प्रतिपादन हुआ है। साथ ही उसके संस्कार और अधिकार भी सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक बताये गये हैं। शैव-आगमके दो भेद हैं—श्रौत और अश्रौत । जो श्रुतिके सार तत्त्वसे सम्पन्न है वह श्रौत है; और जो स्वतन्त्र है, वह अश्रौत माना गया है। स्वतन्त्र शैवागम पहले दस प्रकारका था, फिर अठारह प्रकारका हुआ । वह कायिका आदि संज्ञाओंसे सिद्ध होकर सिद्धान्त नाम धारण करता है । श्रुतिसारमय जो शैव-शास्त्र है, उसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें किया गया है । उसीमें उत्कृष्ट 'पाशुपत व्रत' और 'पाशुपत ज्ञान' का वर्णन किया गया है। युग-युगमें होनेवाले शिष्योंको उसका उपदेश देनेके लिये भगवान् शिव स्वयं ही योगाचार्यरूपसे जहाँ-तहाँ अवतीर्ण हो उसका प्रचार करते हैं ।

इस शैव-शास्त्रको संक्षिप्त करके उसके सिद्धान्तका प्रवचन करनेवाले मुख्यतः चार महर्षि हैं—रुरु, दधीच, अगस्त्य और महायशस्वी उपमन्यु । उन्हें संहिताओंका प्रवर्तक 'पाशुपत' जानना चाहिये। उनकी संतान-परम्परामें सैकड़ों-हजारों गुरुजन हो चुके हैं। पाशुपत सिद्धान्तमें जो परम धर्म बताया गया है, वह चर्या[1] आदि चार पादोंके कारण चार प्रकारका माना गया है। उन चारोंमें जो पाशुपत योग है, वह दृढ़तापूर्वक शिवका साक्षात्कार करानेवाला है। इसलिये पाशुपत योग ही श्रेष्ठ अनुष्ठान माना गया है। उसमें भी ब्रह्माजीने जो उपाय बताया है, उसका वर्णन किया जाता है। भगवान् शिवके द्वारा परिकल्पित जो 'नामाष्टकमय योग' है, उसके द्वारा सहसा 'शैवी प्रज्ञा'का उदय होता है। उस प्रज्ञाद्वारा पुरुष शीघ्र ही सुस्थिर परम ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिसके हृदयमें वह ज्ञान प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके ऊपर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं। उनके कृपा-प्रसादसे वह परम योग सिद्ध होता है, जो शिवका अपरोक्ष दर्शन कराता है। शिवके अपरोक्ष ज्ञानसे संसार-बन्धनका कारण दूर हो जाता है। इस प्रकार संसारसे मुक्त हुआ पुरुष शिवके समान हो जाता है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ उपाय है। उसीका पृथक् वर्णन करते हैं। **शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा), संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा**—ये मुख्यतः आठ नाम हैं। ये आठों मुख्य नाम शिवके प्रतिपादक हैं। इनमेंसे आदि पाँच नाम क्रमशः शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंसे सम्बन्ध रखते हैं और उन पाँच उपाधियोंको ग्रहण करनेसे सदाशिव आदिके बोधक होते हैं। उपाधिकी निवृत्ति होनेपर इन भेदोंकी निवृत्ति हो जाती है। वह पद ही नित्य है। किंतु उस पदपर प्रतिष्ठित होनेवाले अनित्य कहे गये हैं। पदोंका परिवर्तन होनेपर पदवाले पुरुष मुक्त हो जाते हैं । परिवर्तनके अनन्तर पुनः दूसरे आत्माओंको उस पदकी प्राप्ति बतायी जाती है और उन्हींके वे आदि पाँच नाम नियत होते हैं । उपादान आदि योगसे अन्य तीन नाम (संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा) भी त्रिविध उपाधिका प्रतिपादन करते हुए शिवमें ही अनुगत होते हैं।

---

१. चर्या, विद्या, क्रिया और योग—ये चार पाद हैं ।

अनादि मलका संसर्ग उनमें पहलेसे ही नहीं है तथा वे स्वभावतः अत्यन्त शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'शिव' कहलाते हैं अथवा वे ईश्वर समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र घनीभूत विग्रह हैं । इसलिये शिवतत्त्वके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ महात्मा उन्हें शिव कहते हैं । तेईस तत्त्वोंसे परे जो प्रकृति बतायी गयी है, उससे भी परे पचीसवें तत्त्वके स्थानमें पुरुषको बताया गया है, जिसे वेदके आदिमें ओंकाररूप कहा गया है । ओंकार और पुरुषमें वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध है । उसके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान एकमात्र वेदसे ही होता है । वे ही वेदान्तमें प्रतिष्ठित हैं । किंतु वह प्रकृतिसे संयुक्त है; अतः उससे भी परे जो परम पुरुष है, उसका नाम 'महेश्वर' है; क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनोंकी प्रवृत्ति उसीके अधीन है । अथवा यह जो अविनाशी त्रिगुणमय तत्त्व है, इसे प्रकृति समझना चाहिये । इस प्रकृतिको माया कहते हैं । यह माया जिनकी शक्ति है, उन मायापतिका नाम 'महेश्वर' है । महेश्वरके सम्बन्धसे जो माया अथवा प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं, वे अनन्त या 'विष्णु' कहे गये हैं । वे ही कालात्मा और परमात्मा आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं । उन्हींको स्थूल और सूक्ष्मरूप भी कहा गया है । दुःख अथवा दुःखके हेतुका नाम 'रुत्' है । जो प्रभु उसका द्रावण करते हैं—उसे मार भगाते हैं, उन परम कारण शिवको साधु पुरुष 'रुद्र' कहते हैं । कला, काल आदि तत्त्वोंसे लेकर भूतोंमें पृथ्वी-पर्यन्त जो छत्तीस[1] तत्त्व हैं, उन्हींसे शरीर बनता है । उस शरीर, इन्द्रिय आदिमें जो तन्द्रारहित हो व्यापकरूपसे स्थित हैं, वे भगवान् शिव 'रुद्र' कहे गये हैं । जगत्के पितारूप जो मूर्त्यात्मा हैं, उन सबके पिताके रूपमें भगवान् शिव विराजमान हैं; इसलिये वे 'पितामह' कहे गये हैं । जैसे रोगोंके निदानको जाननेवाला वैद्य तदनुकूल उपायों और दवाओंसे रोगको दूर कर देता है, उसी तरह ईश्वर लययोगाधिकारसे सदा जड-मूलसहित संसार-रोगकी निवृत्ति करते हैं; अतः संपूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता विद्वान् उन्हें 'संसार-वैद्य' कहते हैं । दस विषयोंके ज्ञानके लिये दसों इन्द्रियोंके होते हुए भी जीव तीनों कालोंमें होनेवाले स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि मायाने ही उन्हें मलसे आवृत कर दिया है । परंतु भगवान् सदाशिव सम्पूर्ण विषयोंके ज्ञानके साधनभूत इन्द्रियादिके न होनेपर भी जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें ठीक-ठीक जानते हैं; इसलिये वे 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं । जो इन सभी उत्तम गुणोंसे नित्य संयुक्त होनेके कारण सबके आत्मा हैं, जिनके लिये अपनेसे अतिरिक्त किसी दूसरे आत्माकी सत्ता नहीं है, वे भगवान् शिव स्वयं ही 'परमात्मा' हैं ।

आचार्यकी कृपासे इन आठों नामोंका अर्थसहित उपदेश पाकर शिव आदि पाँच नामोंद्वारा निवृत्ति आदि पाँचों कलाओंकी ग्रन्थिका क्रमशः छेदन और गुणके अनुसार शोधन करके गुणित, उद्घातयुक्त और अनिरुद्ध प्राणोंद्वारा हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्रसे युक्त पुर्यष्टकका भेदन करके सुषुम्णा नाड़ीद्वारा अपने आत्माको सहस्रार चक्रके भीतर ले जाय । उसका शुभ्रवर्ण है । वह तरुण सूर्यके सदृश रक्तवर्ण केसरके द्वारा रञ्जित और अधोमुख है । उसके पचास दलोंमें स्थित 'अ'से लेकर 'क्ष'तक सबिन्दु अक्षर-कर्णिकाके बीचमें गोलाकार चन्द्र-मण्डल है । यह चन्द्रमण्डल छत्राकारमें स्थित है । उसने एक ऊर्ध्वमुख द्वादश-दल कमलको आवृत कर रक्खा है । उस कमलकी कर्णिकामें विद्युत्-सदृश अकथादि त्रिकोण यन्त्र है । उस यन्त्रके चारों ओर सुधासागर होनेके कारण वह मणिद्वीपके आकारका हो गया है । उस द्वीपके मध्यभागमें मणिपीठ है । उसके बीचमें नाद-बिन्दुके ऊपर हंसपीठ है । उसपर परम शिव विराजमान हैं । उक्त चन्द्रमण्डलके ऊपर शिवके तेजमें अपने आत्माको संयुक्त करे । इस प्रकार जीवको शिवमें लीन करके शाक्त अमृत-वर्षाके द्वारा अपने शरीरके अभिषिक्त होनेकी भावना करे । तत्पश्चात् अमृतमय विग्रहवाले अपने आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे उतारकर हृदयमें द्वादश-दल कमलके भीतर स्थित चन्द्रमासे परे श्वेत कमलपर अर्द्धनारीश्वर रूपमें विराजमान मनोहर आकृतिवाले निर्मल देव भक्तवत्सल महादेव शंकरका चिन्तन करे । उनकी अङ्गकान्ति शुद्धस्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है । वे शीतल प्रभासे युक्त और प्रसन्न हैं । इस प्रकार मन-ही-मन ध्यान करके शान्तचित्त हुआ मनुष्य शिवके आठ नामोंद्वारा ही भावमय पुष्पोंसे उनकी पूजा करे । पूजनके अन्तमें पुनः प्राणायाम करके चित्तको भलीभाँति एकाग्र रखते हुए शिव-नामाष्टकका जप करे ।

---

१. कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, पाँच शब्द आदि विषय तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये छत्तीस तत्त्व हैं ।

फिर भावनाद्वारा नाभिमें आठ आहुतियोंका हवन करके पूर्णाहुति एवं नमस्कारपूर्वक आठ फूल चढ़ाकर अन्तिम अर्चना पूरी करके चुल्लूमें लिये हुए जलकी भाँति अपने आपको शिवके चरणोंमें समर्पित कर दे । इस प्रकार करनेसे शीघ्र ही मङ्गलमय पाशुपत ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है और साधक उस ज्ञानकी सुस्थिरता पा लेता है । साथ ही वह परम उत्तम पाशुपत-व्रत एवं परम योगको पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । (अध्याय ३२)

पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भस्मधारणकी महत्ता

ऋषि बोले—भगवन् ! हम परम उत्तम पाशुपत व्रतको सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके ब्रह्मा आदि सब देवता पाशुपत माने गये हैं ।

वायुदेवने कहा—मैं तुम सब लोगोंको गोपनीय पाशुपत-व्रतका रहस्य बताता हूँ, जिसका अथर्वशीर्षमें वर्णन है तथा जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । चित्रासे युक्त पौर्णमासी इसके लिये उत्तम काल है । शिवके द्वारा अनुगृहीत स्थान ही इसके लिये उत्तम देश है अथवा क्षेत्र, बगीचे आदि तथा वनप्रान्त भी शुभ एवं प्रशस्त देश हैं । पहले त्रयोदशीको भलीभाँति स्नान करके नित्यकर्म सम्पन्न कर ले । फिर अपने आचार्यकी आज्ञा लेकर उनका पूजन और नमस्कार करके व्रतके अङ्गरूपसे देवताओंकी विशेष पूजा करे । उपासकको स्वयं श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत पुष्प और श्वेत चन्दन धारण करना चाहिये । वह कुशके आसनपर बैठकर हाथमें मुट्ठीभर कुश ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके तीन प्राणायाम करनेके पश्चात् भगवान् शिव और देवी पार्वतीका ध्यान करे । फिर यह संकल्प करे कि मैं शिवशास्त्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार यह पाशुपत-व्रत करूँगा । वह जबतक शरीर गिर न जाय, तबतकके लिये अथवा बारह, छः या तीन वर्षोंके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक महीनेके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक दिनके इस व्रतकी दीक्षा ले । संकल्प करके विरजा होमके लिये विधिवत् अग्निकी स्थापना करके क्रमशः घी, समिधा और चरुसे हवन करे । तत्पश्चात् तत्त्वोंकी शुद्धिके उपदेशसे फिर मूलमन्त्रद्वारा उन समिधा आदि सामग्रियोंकी ही आहुतियाँ दे । उस समय वह बारंबार यह चिन्तन करे कि 'मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, सब शुद्ध हो जायँ ।' उन तत्त्वोंके नाम इस प्रकार हैं—पाँचों भूत, उनकी पाँचों तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय, त्वचा आदि सात धातु, प्राण आदि पाँच वायु, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति-तत्त्व और शिव-तत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं ।

विरज मन्त्रोंसे आहुति करके होता रजोगुणरहित शुद्ध हो जाता है । फिर शिवका अनुग्रह पाकर वह ज्ञानवान् होता है । तदनन्तर गोबर लाकर उसकी पिण्डी बनाये । फिर उसे मन्त्र-द्वारा अभिमन्त्रित करके अग्निमें डाल दे । इसके बाद इसका प्रोक्षण करके उस दिन व्रती केवल हविष्य खाकर रहे । जब रात बीतकर प्रातःकाल आये, तब चतुर्दशीमें पुनः पूर्वोक्त सब कृत्य करे । उस दिन शेष समय निराहार रहकर ही बितावे । फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल इसी तरह होमपर्यन्त कर्म करके रुद्राग्निका उपसंहार करे ! तदनन्तर यत्नपूर्वक उसमेंसे भस्म ग्रहण करे । इसके बाद साधक चाहे जटा रखा ले, चाहे सारा सिर मुँड़ा ले या चाहे तो केवल सिरपर शिखा धारण करे । इसके बाद स्नान करके यदि वह लोकलज्जासे ऊपर उठ गया हो तो दिगम्बर हो जाय । अथवा गेरुआ वस्त्र, मृगचर्म या फटे-पुराने चीथड़ेको ही धारण कर ले । एक वस्त्र धारण करे या वल्कल पहनकर रहे । कटिमें मेखला धारण करके हाथमें दण्ड ले ले । तदनन्तर दोनों पैर धोकर आचमन करे । विरजाग्निसे प्रकट हुए भस्मको एकत्र करके **'अग्निरिति भस्म'** इत्यादि छः अथर्ववेदीय मन्त्रोंद्वारा उसे अपने शरीरमें लगाये । मस्तकसे लेकर पैरतक सभी अङ्गोंमें उसे अच्छी तरह मल दे । इसी क्रमसे प्रणव या शिवमन्त्रद्वारा सर्वाङ्गमें भस्म रमा-कर **'त्र्यायुषम्'** इत्यादि मन्त्रोंसे ललाट आदि अङ्गोंमें त्रिपुण्ड्रकी रचना करे । इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो शिवयोगका आचरण करे । तीनों संध्याओंके समय ऐसा ही करना चाहिये । यही 'पाशुपत-व्रत' है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है । यह जीवोंके पशुभावको निवृत्त कर देता है । इस प्रकार पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानद्वारा पशुत्वका परित्याग करके लिङ्गमूर्ति सनातन महादेवजीका पूजन करना चाहिये । यदि वैभव हो तो सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जिसमें नौ प्रकारके रत्न जड़े गये हों । उसमें कर्णिका और केसर भी हों । ऐसे कमलको भगवान्का

आसन बनावे । धनाभाव होनेपर लाल या सफेद कमलके फूलका आसन अर्पित करे । वह भी न मिले तो केवल भावनामय कमल समर्पित करे ।

उस कमलकी कर्णिकामें पीठिकासहित छोटेसे स्फटिक मणिमय लिङ्गकी स्थापना करके क्रमशः विधिपूर्वक उसका पूजन करे । उस लिङ्गका शोधन करके पहले शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना कर लेनी चाहिये । फिर आसन दे पञ्चमुखके प्रकारसे मूर्तिकी कल्पना करके पञ्चगव्य आदिसे पूर्ण, अपने वैभवके अनुसार संगृहीत भरे हुए सुवर्णनिर्मित कलशोंसे उस मूर्तिको स्नान कराये । फिर सुगन्धित द्रव्य, कपूर, चन्दन और कुङ्कुम आदिसे वेदीसहित भूषणभूषित शिवलिङ्गका अनुलेपन करके बिल्वपत्र, लाल कमल, श्वेत कमल, नील कमल, अन्यान्य सुगन्धित पुष्प, पवित्र एवं उत्तम पत्र तथा दूर्वा और अक्षत आदि विचित्र उपचार चढ़ाकर यथाप्राप्त सामग्रियोंद्वारा महापूजनकी विधिसे उसमें मूर्तिकी अभ्यर्चना करे । फिर धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे । इस तरह भगवान् शिवको उत्तम वस्त्र निवेदन करके अपना कल्याण करे । उस व्रतमें विशेषतः वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये, जो अपनेको अधिक प्रिय हों, श्रेष्ठ हों और न्यायपूर्वक उपार्जित हुई हों । बिल्वपत्र, उत्पल और कमलोंकी संख्या एक-एक हजार होनी चाहिये । अन्य पत्रों और फूलोंमेंसे प्रत्येककी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिये । इन सामग्रियोंमें भी बिल्वपत्रको विशेष यत्नपूर्वक जुटाये । उसे भूलकर भी न छोड़े । सोनेका बना हुआ एक ही कमल एक सहस्र कमलोंसे श्रेष्ठ बताया गया है । नील कमल आदिके विषयमें भी यही बात है । ये सब बिल्वपत्रोंके समान ही महत्त्व रखते हैं । अन्य पुष्पोंके लिये कोई नियम नहीं है । वे जितने मिलें, उतने ही चढ़ाने चाहिये । अष्टाङ्ग अर्घ्य उत्कृष्ट माना जाता है । धूप और आलेप (चन्दन) के विषयमें विशेष बात यह है । 'वामदेव' नामक मुखमें चन्दन, 'तत्पुरुष' नामक मुखमें हरिताल और 'ईशान' नामक मुखमें भस्म लगाना चाहिये । कोई-कोई भस्मकी जगह आलेपनका विधान करते हैं । दूसरे प्रकारके धूपका विधान होनेसे कुछ लोग प्रसिद्ध धूपका निषेध करते हैं । 'अघोर' नामक मुखके लिये श्वेत अगुरुका धूप देना चाहिये । 'तत्पुरुष'नामक मुखके लिये कृष्ण अगुरुके धूपका विधान है । 'वामदेव'के लिये गुग्गुल, 'सद्योजात' मुखके लिये सौगन्धिक तथा 'ईशान'के लिये भी उशीर आदि धूपको विशेषरूपसे देना चाहिये । शर्करा, मधु, कपूर, कपिला गायका घी, चन्दनका चूरा तथा अगुरु नामक काष्ठ आदिका चूर्ण—इन सबको मिलाकर जो धूप तैयार किया जाता है, उसे सबके लिये सामान्यरूपसे उपयोगके योग्य बताया गया है । कपूरकी बत्ती और घीके दीपक जलाकर दीपमाला देनी चाहिये । तत्पश्चात् प्रत्येक मुखके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य और आचमन देनेका विधान है ।

प्रथम आवरणमें गणेश और कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये । उनके साथ ही बाह्य अङ्गोंकी भी पूजा आवश्यक है । प्रथमावरणकी पूजा हो जानेपर द्वितीयावरणमें चक्रवर्ती विघ्नेश्वरोंका पूजन करना चाहिये । तृतीयावरणमें भव आदि अष्टमूर्तियोंकी पूजाका विधान है । वहीं महादेव आदि एकादश मूर्तियोंका भी पूजन आवश्यक है । चौथे आवरणमें सभी गणेश्वर पूजनीय हैं । पञ्चमावरणमें कमलके बाह्यभागमें क्रमशः दस दिक्पालों, उनके अस्त्रों और अनुचरोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये । वहीं ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी, समस्त ज्योतिर्गणोंकी, सब देवी-देवताओंकी, सभी आकाशचारियोंकी, पातालवासियोंकी, अखिल मुनीश्वरोंकी, योगियोंकी, सब यज्ञोंकी, द्वादश सूर्योंकी, मातृकाओंकी, गणोंसहित क्षेत्रपालोंकी और इस समस्त चराचर जगत्‌की पूजा करनी चाहिये । इन सबको शंकरजीकी विभूति मानकर शिवकी प्रसन्नताके लिये ही इनका पूजन करना उचित है ।

इस प्रकार आवरण-पूजाके पश्चात् परमेश्वर शिवका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक घृत और व्यञ्जनसहित मनोहर हविष्य निवेदन करना चाहिये । मुखशुद्धिके लिये आवश्यक उपकरणोंसहित ताम्बूल देकर नाना प्रकारके फूलोंसे पुनः इष्टदेवका शृङ्गार करे । आरती उतारे । तत्पश्चात् पूजनका शेष कृत्य पूर्ण करे । प्याला तथा उपकारक सामग्रियोंसहित शय्या समर्पित करे । शय्यापर चन्द्रमाके समान चमकीला हार दे । राजोचित मनोहर वस्तुएँ सब प्रकारसे संचित करके दे । स्वयं पूजन करे, दूसरोंसे भी कराये तथा प्रत्येक पूजनमें आहुति दे । इसके बाद स्तुति, प्रार्थना और जप करके पञ्चाक्षरी विद्याको जपे । परिक्रमा और प्रणाम करके अपने-आपको समर्पित करे । तदनन्तर इष्टदेवके सामने ही गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करे । इसके बाद अर्घ्य और आठ फूल देकर पूजित लिङ्ग या मूर्तिसे देवताका विसर्जन करे । फिर अग्निदेवका भी विसर्जन करके पूजा समाप्त करे । मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन इसी प्रकार पूर्वोक्तरूपसे सेवा करे । पूजनके अन्तमें सुवर्णमय कमल तथा अन्य सब उपकरणों-

सहित उस शिवलिङ्गको गुरुके हाथमें दे दे अथवा शिवालयमें स्थापित कर दे। गुरुओं, ब्राह्मणों तथा विशेषतः व्रतधारियोंकी पूजा करके सामर्थ्य हो तो भक्त ब्राह्मणों तथा दीनों और अनाथोंको भी संतुष्ट करे। स्वयं उपवासमें असमर्थ होनेपर फल-मूल खाकर या दूध पीकर रहे अथवा भिक्षान्नभोजी हो या एक समय भोजन करे। रातको प्रतिदिन परिमित भोजन करे और पवित्रभावसे भूमिपर ही सोये। भस्मपर, तृणपर अथवा चीर या मृगचर्मपर शयन करे। प्रतिदिन ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इस व्रतका अनुष्ठान करे। यदि शक्ति हो तो रविवारके दिन, आर्द्रा नक्षत्रमें, दोनों पक्षोंकी पूर्णिमा और अमावास्याको, अष्टमीको तथा चतुर्दशीको उपवास करे। मन, वाणी और क्रियाद्वारा सम्पूर्ण प्रयत्नसे पाखण्डी, पतित, रजस्वला स्त्री, सूतकमें पड़े हुए लोग तथा अन्त्यज आदिके सम्पर्कका त्याग करे। निरन्तर क्षमा, दान, दया, सत्यभाषण और अहिंसामें तत्पर रहे। संतुष्ट और शान्त रहकर जप और ध्यानमें लगा रहे। तीनों काल स्नान करे अथवा भस्म-स्नान कर ले। मन, वाणी और क्रियाद्वारा विशेष पूजा किया करे। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ! व्रतधारी पुरुष कभी अशुभ आचरण न करे। प्रमादवश यदि वैसा आचरण बन जाय तो उसके गुरु-लाघवका विचार करके उसके दोषका निवारण करनेके लिये पूजा, होम और जप आदिके द्वारा उचित प्रायश्चित्त करे। व्रतकी समाप्तिपर्यन्त भूलकर भी अशुभ आचरण न करे। सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार गोदान, वृषोत्सर्ग और पूजन करे। भक्त पुरुष निष्कामभावसे शिवकी प्रीतिके लिये ही सब कुछ करे। यह संक्षेपसे इस व्रत-की सामान्य विधि कही गयी है।

अब शास्त्रके अनुसार प्रत्येक मासमें जो विशेष कृत्य है, उसे बताता हूँ। वैशाख मासमें हीरेके बने हुए शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें मरकत मणिमय शिवलिङ्गकी पूजा उचित है। आषाढ़मासमें मोतीके बने हुए शिवलिङ्गको पूजनीय समझे। श्रावणमासमें नीलमका बना हुआ शिवलिङ्ग पूजनके योग्य है। भाद्रपदमासमें पूजनके लिये पद्मराग मणिमय लिङ्गको उत्तम माना गया है। आश्विनमासमें गोमेदमणिके बने हुए लिङ्गको उत्तम समझे। कार्तिकमासमें मूँगेके और मार्गशीर्षमासमें वैदूर्यमणिके बने हुए लिङ्गकी पूजाका विधान है। पौषमासमें पुष्पराग (पुखराज) मणिके तथा माघमासमें सूर्यकान्तमणिके लिङ्गका पूजन करना चाहिये। फाल्गुनमासमें चन्द्रकान्तमणिके और चैत्रमें सूर्यकान्तमणिके बने हुए लिङ्गके पूजनकी विधि है। अथवा रत्नोंके न मिलनेपर सभी मासोंमें सुवर्णमय लिङ्गका ही पूजन करना चाहिये। सुवर्णके अभावमें चाँदी, ताँबे, पत्थर, मिट्टी, लाह या और किसी वस्तुका जो सुलभ हो, लिङ्ग बना लेना चाहिये। अथवा अपनी रुचिके अनुसार सर्वगन्धमय लिङ्गका निर्माण करे। व्रतकी समाप्तिके समय नित्यकर्म पूर्ण करके पूर्ववत् विशेष पूजा और हवन करनेके पश्चात् आचार्यका तथा विशेषतः व्रती ब्राह्मणका पूजन करे। फिर आचार्यकी आज्ञा ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके कुशासनपर बैठे। हाथमें कुश ले, प्राणायाम करके 'साम्ब सदाशिव'का ध्यान करते हुए यथाशक्ति मूलमन्त्रका जप करे। फिर पूर्ववत् आज्ञा ले हाथ जोड़ नमस्कार करके कहे— 'भगवन्! अब मैं आपकी आज्ञासे इस व्रतका उत्सर्ग करता हूँ।' ऐसा कह शिवलिङ्गके मूल भागमें उत्तर दिशाकी ओर कुशोंका त्याग करे। तदनन्तर दण्ड, चीर, जटा और मेखलाको भी त्याग दे। इसके बाद फिर विधिपूर्वक आचमन करके पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करे।

जो आत्यन्तिक दीक्षा ग्रहण करके अपने शरीरका अन्त होनेतक शान्तभावसे इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'नैष्ठिक व्रती' कहा गया है। उसे सब आश्रमोंसे ऊपर उठा हुआ महापाशुपत जानना चाहिये। वही तपस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ है और वही महान् व्रतधारी है। जो बारह दिनोंतक प्रतिदिन विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी नैष्ठिकके ही तुल्य है; क्योंकि उसने तीव्रव्रतका आश्रय लिया है। जो अपने शरीरमें घी लगाकर व्रतके सभी नियमोंके पालनमें तत्पर हो दो-तीन दिन या एक दिन भी इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी कोई नैष्ठिक ही है। जो निष्काम होकर अपना परम कर्तव्य मानकर अपने आपको शिवके चरणोंमें समर्पित करके इस उत्तम व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, उसके समान कहीं कोई नहीं है। विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापातकजनित अत्यन्त दारुण पापोंसे भी तत्काल छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। रुद्राग्निका जो सबसे उत्तम वीर्य (बल) है, वही भस्म कहा गया है। अतः जो सभी समयोंमें भस्म लगाये रहता है, वह वीर्यवान् माना गया है। भस्ममें निष्ठा रखनेवाले पुरुषके सारे दोष उस भस्माग्निके संयोगसे दग्ध होकर नष्ट हो जाते हैं। जिसका शरीर भस्मस्नानसे विशुद्ध है, वह भस्मनिष्ठ कहा गया है। जिसके सारे अङ्गोंमें भस्म लगा हुआ है, जो भस्मसे प्रकाश-मान है, जिसने भस्ममय त्रिपुण्ड्र लगा रक्खा है तथा जो भस्मसे

स्नान करता है, वह भस्मनिष्ठ माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दुःसह रोग भी भस्मनिष्ठके निकटसे दूर भागते हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शरीरको भासित करता है, इसलिये 'भसित' कहा गया है तथा पापोंका भक्षण करनेके कारण उसका नाम 'भस्म' है। भूति (ऐश्वर्य) कारक होनेसे उसे 'भूति' या 'विभूति' भी कहते हैं। विभूति रक्षा करनेवाली है, अतः उसका एक नाम 'रक्षा' भी है। भस्मके माहात्म्यको लेकर यहाँ और क्या कहा जाय। भस्मसे स्नान करनेवाला व्रती पुरुष साक्षात् महेश्वरदेव कहा गया है। यह परमेश्वर (रुद्राग्नि) सम्बन्धी भस्म शिवभक्तोंके लिये बड़ा भारी अस्त्र है; क्योंकि उसने धौम्य मुनिके बड़े भाई उपमन्युके तपमें आयी हुई आपत्तियोंका निवारण किया था; इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान करनेके पश्चात् हवनसम्बन्धी भस्मका धनके समान संग्रह करके सदा भस्मस्नानमें तत्पर रहना चाहिये। (अध्याय ३३)

बालक उपमन्युको दूधके लिये दुखी देख माताका उसे शिवकी आराधनाके लिये प्रेरित करना तथा उपमन्युकी तीव्र तपस्या

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! धौम्यके बड़े भाई उपमन्यु जब छोटे बालक थे, तब उन्होंने दूधके लिये तपस्या की थी और भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें क्षीरसागर प्रदान किया था। परंतु शैशवावस्थामें उन्हें शिव-शास्त्रके प्रवचनकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई, अथवा वे कैसे शिवके सत्स्वरूपको जानकर तपस्यामें निरत हुए? तपश्चरणके पर्वमें उन्हें भस्मके विज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई, जिससे जो रुद्राग्निका उत्तम वीर्य है, उस आत्मरक्षक भस्मको उन्होंने प्राप्त किया?

वायुदेवने कहा—महर्षियो! जिन्होंने वह तप किया था, वे उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं थे, परम बुद्धिमान् मुनिवर व्याघ्रपादके पुत्र थे। उन्हें जन्मान्तरमें ही सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। परंतु किसी कारणवश वे अपने पदसे च्युत हो गये—योगभ्रष्ट हो गये। अतः भाग्यवश जन्म लेकर वे मुनिकुमार हुए।

एक समयकी बात है, अपने मामाके आश्रममें उन्हें पीनेके लिये बहुत थोड़ा दूध मिला। उनके मामाका बेटा अपनी इच्छाके अनुसार गरम-गरम उत्तम दूध पीकर उनके सामने खड़ा था। मातुलपुत्रको इस अवस्थामें देखकर व्याघ्रपादकुमार उपमन्युके मनमें ईर्ष्या हुई और वे अपनी माँके पास जाकर बड़े प्रेमसे बोले—'मातः! महाभागे! तपस्विनी! मुझे अत्यन्त स्वादिष्ट गरम-गरम गायका दूध दो। मैं थोड़ा-सा नहीं पीऊँगा।'

बेटेकी यह बात सुनकर व्याघ्रपादकी पत्नी तपस्विनी माताके मनमें उस समय बड़ा दुःख हुआ। उसने पुत्रको बड़े आदरके साथ छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक लाड़-प्यार करके अपनी निर्धनताका स्मरण हो आनेसे वह दुखी हो विलाप करने लगी। महातेजस्वी बालक उपमन्यु बारंबार दूधको याद करके रोते हुए मातासे कहने लगे—'माँ! दूध दो, दूध दो।' बालकके उस हठको जानकर उस तपस्विनी ब्राह्मण-पत्नीने उसके हठके निवारणके लिये एक सुन्दर उपाय किया। उसने स्वयं उञ्छ-वृत्तिसे कुछ बीजों-का संग्रह किया था। उन बीजोंको देखकर उसने तत्काल उठा लिया और पीसकर पानीमें घोल दिया। फिर मीठी वाणीमें बोली—'आओ, आओ मेरे लाल!' यों कह बालकको शान्त करके हृदयसे लगा लिया और दुःखसे पीड़ित हो उसने कृत्रिम दूध उसके हाथमें दे दिया। माताके दिये हुए उस बनावटी दूधको पीकर बालक अत्यन्त व्याकुल हो उठा और बोला—'माँ! यह दूध नहीं है।' तब वह बहुत दुखी हो गयी और बेटेका मस्तक सूँघकर अपने दोनों हाथोंसे उसके कमलसदृश नेत्रोंको पोंछती हुई बोली—'बेटा! अपने पास सभी वस्तुओंका अभाव होनेके कारण दरिद्रतावश मुझ अभागिनीने पीसे हुए बीजको पानीमें घोलकर यह तुम्हें मिथ्या दूध दिया था। तुम 'दूध नहीं दिया' ऐसा कहकर रोते हुए मुझे बारंबार दुखी करते हो। किंतु भगवान् शिवकी कृपाके विना तुम्हारे लिये कहीं दूध नहीं है। भक्तिपूर्वक माता पार्वती और अनुचरोंसहित भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें जो कुछ समर्पित किया गया हो, वही सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण होता है। महादेवजी ही धन देनेवाले हैं। इस समय हमलोगोंने उनकी आराधना नहीं की है। वे भगवान् ही सकाम पुरुषोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले हैं। हम

लोगोंने आजसे पहले कभी भी धनकी कामनासे भगवान् शिवकी पूजा नहीं की है। इसीलिये हम दरिद्र हो गये और यही कारण है कि तुम्हारे लिये दूध नहीं मिल रहा है। बेटा! पूर्वजन्ममें भगवान् शिव अथवा विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वही वर्तमान जन्ममें मिलता है, दूसरा कुछ नहीं।'*

उपमन्यु बोले—माँ! यदि माता पार्वतीसहित भगवान् शिव विद्यमान हैं, तब आजसे शोक करना व्यर्थ है। महाभागे! अब शोक छोड़ो, सब मङ्गलमय ही होगा। माँ! आज मेरी बात सुन लो। यदि कहीं महादेवजी हैं तो मैं देरसे या जल्दी ही उनसे क्षीरसागर माँग लाऊँगा।

वायुदेवता कहते हैं—उस महाबुद्धिमान् बालककी वह बात सुनकर उसकी मनस्विनी माता उस समय बहुत प्रसन्न हुई और यों बोली।

माताने कहा—बेटा! तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। तुम्हारा यह विचार मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अब तुम देर न लगाओ। साम्ब सदाशिवका भजन करो। अन्य देवताओंको छोड़कर मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिभावके साथ पार्षदगणोंसहित उन्हीं साम्ब सदाशिवका भजन करो। 'नमः शिवाय' यह मन्त्र उन देवाधिदेव वरदायक शिवका साक्षात् वाचक माना गया है। प्रणवसहित जो दूसरे सात करोड़ महामन्त्र हैं, वे सब इसीमें लीन होते हैं और फिर इसीसे प्रकट होते हैं। यह मन्त्र दूसरे सभी मन्त्रोंसे प्रबल है। यही सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है अतः दूसरेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। इसलिये तुम दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर केवल पञ्चाक्षरके जपमें लग जाओ। इस मन्त्रके जिह्वापर आते ही यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। यह उत्तम भस्म जिसे मैंने तुम्हारे पिताजीसे ही प्राप्त किया है, यह विरजा होमकी अग्निसे सिद्ध हुआ है, अतः बड़ी-से-बड़ी आपत्तियोंका निवारण करनेवाला है। मैंने तुम्हें जो पञ्चाक्षर मन्त्र बताया है, उसको मेरी आज्ञासे ग्रहण करो। इसके जपसे ही शीघ्र तुम्हारी रक्षा होगी।

वायुदेवता कहते हैं—इस प्रकार आज्ञा देकर और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर माताने पुत्रको विदा किया। मुनि उपमन्युने उस आज्ञाको शिरोधार्य करके ही उसके चरणोंमें प्रणाम किया और तपस्याके लिये जानेकी तैयारी की। उस समय माताने आशीर्वाद देते हुए कहा—'सब देवता तुम्हारा मङ्गल करें।' माताकी आज्ञा पाकर उस बालकने दुष्कर तपस्या आरम्भ की। हिमालय पर्वतके एक शिखरपर जाकर उपमन्यु एकाग्रचित्त हो केवल वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीके शिवलिङ्गकी स्थापना की। उसमें माता पार्वती तथा गणोंसहित अविनाशी महादेवजीका आवाहन करके भक्तिभावसे पञ्चाक्षर-मन्त्रद्वारा ही वनके पत्र-पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करते हुए वे चिरकालतक उत्तम तपस्यामें लगे रहे। उस एकाकी कृशकाय बालक द्विजवर उपमन्युको शिवमें मन लगाकर तपस्या करते देख मरीचिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हुए कुछ मुनियोंने अपने राक्षस-स्वभावसे सताना और उनके तपमें विघ्न डालना आरम्भ किया। उनके द्वारा सताये जानेपर भी उपमन्यु किसी प्रकार तपमें लगे रहे और सदा 'नमः शिवाय' का आर्तनादकी भाँति जोर-जोरसे उच्चारण करते रहे। उस शब्दको सुनते ही उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाले वे मुनि उस बालकको सताना छोड़कर उसकी सेवा करने लगे। ब्राह्मण-बालक महात्मा उपमन्युकी उस तपस्यासे सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रदीप्त एवं संतप्त हो उठा। (अध्याय ३४)

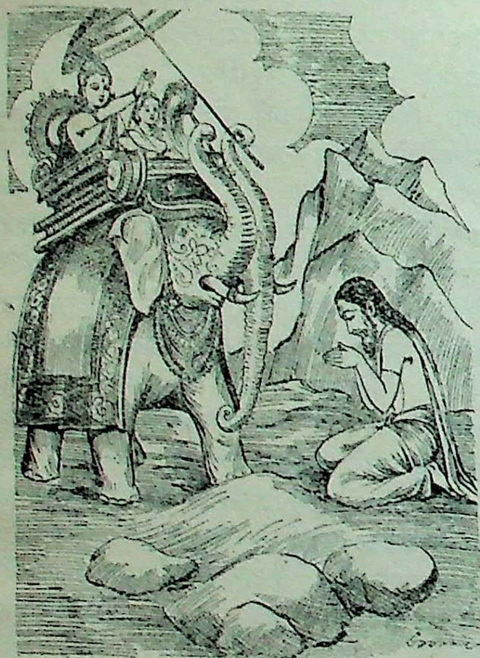
भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना

तदनन्तर भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर श्रीशिवजीने पहले इन्द्रका रूप धारण करके उपमन्युके पास जानेका विचार किया। फिर श्वेत ऐरावतपर आरूढ़ हो स्वयं देवराज इन्द्रका शरीर ग्रहण करके भगवान् सदाशिव देवता, असुर,

* पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत। तदेव लभ्यते नान्यद् विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम्॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३४। ३२)

सिद्ध तथा बड़े-बड़े नागोंके साथ उपमन्यु मुनिके तपोवनकी ओर चले। उस समय वह ऐरावत दायीं सूँड़में चँवर लेकर शचीसहित दिव्य-रूपवाले देवराज इन्द्रको हवा कर रहा था और बायीं सूँड़में श्वेत छत्र लेकर उनपर लगाये चल रहा था। इन्द्रका रूप धारण किये उमासहित भगवान् सदाशिव उस श्वेत छत्रसे उसी तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमण्डलसे मन्दराचल शोभायमान होता है। इस तरह इन्द्रके स्वरूपका आश्रय ले परमेश्वर शिव उपमन्युके उस आश्रमपर अपने उस भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये जा पहुँचे। इन्द्ररूपधारी परमेश्वर शिवको आया देख मुनियोंमें श्रेष्ठ उपमन्यु मुनिने मस्तक झुकाकर



प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'देवेश्वर! जगन्नाथ! भगवन्! देवशिरोमणे! आप स्वयं यहाँ पधारे, इससे मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया।'

इन्द्ररूपधारी शिव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धौम्यके बड़े भैया महामुने उपमन्यो! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम वर माँगो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करूँगा।

वायुदेवता कहते हैं—उन इन्द्रदेवके ऐसा कहनेपर उस समय मुनिप्रवर उपमन्युने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं भगवान् शिवकी भक्ति माँगता हूँ।' यह सुनकर इन्द्रने कहा—'क्या तुम मुझे नहीं जानते! मैं समस्त देवताओंका पालक और तीनों लोकोंका अधिपति इन्द्र हूँ। सब देवता मुझे नमस्कार करते हैं। ब्रह्मर्षे! मेरे भक्त हो जाओ। सदा मेरी ही पूजा करो। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा। निर्गुण रुद्रको त्याग दो। उस निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा, जो देवताओं-की पङ्क्तिसे बाहर होकर पिशाचभावको प्राप्त हो गया है।'

वायुदेवता कहते हैं—यह सुनकर पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वे मुनि उपमन्यु इन्द्रको अपने धर्ममें विघ्न डालनेके लिये आया हुआ जानकर बोले।

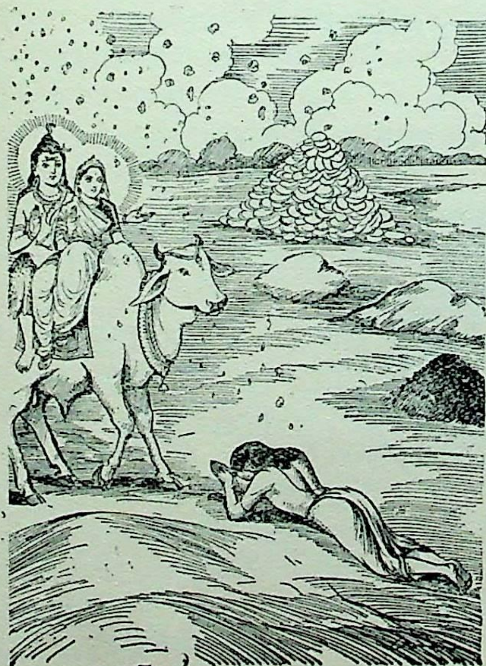
उपमन्युने कहा—यद्यपि तुम भगवान् शिवकी निन्दामें तत्पर हो, तथापि इसी प्रसंगमें परमात्मा महादेवजीकी निर्गुणता बताकर तुमने स्वयं ही उनका सम्पूर्ण महत्त्व स्पष्ट-रूपसे कह दिया। तुम नहीं जानते कि भगवान् रुद्र सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी जनक हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। ब्रह्मवादी लोग उन्हींको सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त तथा नित्य एक और अनेक कहते हैं। अतः मैं उन्हींसे वर माँगूँगा। जो युक्तिवादसे परे तथा सांख्य और योगके सारभूत अर्थका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट जानकर जिनकी उपासना करते हैं, उन भगवान् शिवसे ही मैं वर माँगूँगा। देवाधम! दूधके लिये जो मेरी इच्छा है, वह यों ही रह जाय; परंतु शिवास्त्रके द्वारा तुम्हारा वध करके मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगा।

वायुदेवता कहते हैं—ऐसा कहकर स्वयं मर जानेका निश्चय करके उपमन्यु दूधकी भी इच्छा छोड़कर इन्द्रका वध करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय अघोर अस्त्रसे अभिमन्त्रित घोर भस्मको लेकर मुनिने इन्द्रके उद्देश्यसे छोड़ दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए वे अपनी देहको दग्ध करनेके लिये उद्यत हो गये और आग्नेयी धारणा धारण करके स्थित हुए।

ब्राह्मण उपमन्यु जब इस प्रकार स्थित हुए, तब भगदेवताके नेत्रका नाश करनेवाले भगवान् शिवने योगी

उपमन्युकी उस धारणाको अपनी सौम्यदृष्टिसे रोक दिया। उनके छोड़े हुए उस अघोरास्त्रको नन्दीश्वरकी आज्ञासे शिववल्लभ नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया। तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् शिवने अपने बालेन्दुशेखररूपको धारण कर लिया और ब्राह्मण उपमन्युको उसे दिखाया। इतना ही नहीं, उस प्रभुने उस मुनिको सहस्रों क्षीरसागर, सुधासागर, दधि आदिके सागर, घृतके समुद्र, फलसम्बन्धी रसके समुद्र तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्रका दर्शन कराया और पूओंका पहाड़ खड़ा करके दिखा दिया। इसी तरह देवी पार्वतीके साथ महादेवजी वहाँ वृषभपर आरूढ़ दिखायी दिये। वे अपने गणाध्यक्षों तथा त्रिशूल आदि दिव्यास्त्रोंसे घिरे हुए थे। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं।

उस समय उपमन्यु आनन्दसागरकी लहरोंसे घिरे हुए थे। वे भक्तिविनम्र चित्तसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। इसी समय वहाँ मुस्कराते हुए भगवान् शिवने 'यहाँ आओ, यहाँ आओ' कहकर उन्हें बुलाया और उनका मस्तक सूँघकर अनेक वर दिये।



शिव बोले—वत्स ! तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ सदा इच्छानुसार भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका उपभोग करो। दुःखसे छूटकर सर्वदा सुखी रहो, तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति भक्ति सदा बनी रहे। महाभाग उपमन्यो ! ये पार्वती देवी तुम्हारी माता हैं। आज मैंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया और तुम्हारे लिये क्षीरसागर प्रदान किया। केवल दूधका ही नहीं, मधु, दही, अन्न, घी, भात तथा फल आदिके रसका भी समुद्र तुम्हें दे दिया। ये पूओंके पहाड़ तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके सागर मैंने तुम्हें समर्पित किये। महामुने ! ये सब ग्रहण करो। आजसे मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ और जगदम्बा उमा तुम्हारी माता है। मैंने तुम्हें अमरत्व तथा गणपतिका सनातन पद प्रदान किया। अब तुम्हारे मनमें जो दूसरी-दूसरी अभिलाषाएँ हों, उन सबको तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ वरके रूपमें माँगो। मैं संतुष्ट हूँ। इसलिये वह सब दूँगा। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

वायुदेव कहते हैं—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और मस्तक सूँघकर यह कहते हुए देवीकी गोदमें दे दिया कि यह तुम्हारा पुत्र है। देवीने कार्तिकेयकी भाँति प्रेमपूर्वक उनके मस्तकपर अपना करकमल रक्खा और उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। क्षीरसागरने भी साकार रूप धारण करके उनके हाथमें अनश्वर पिण्डीभूत स्वादिष्ठ दूध समर्पित किया। तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने संतुष्टचित्त हो उन्हें योगजनित ऐश्वर्य, सदा संतोष, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या और उत्तम समृद्धि प्रदान की। तदनन्तर उनके तपोमय तेजको देखकर प्रसन्नचित्त हुए शम्भुने उपमन्यु मुनिको पुनः दिव्य वरदान दिया। पाशुपतव्रत, पाशुपतज्ञान, तात्त्विक व्रतयोग तथा चिरकालतक उसके प्रवचनकी परम पटुता उन्हें प्रदान की। भगवान् शिव और शिवासे दिव्य वर तथा नित्य कुमारत्व पाकर वे प्रमुदित हो उठे। इसके बाद प्रसन्नचित्त हो प्रणाम करके

हाथ जोड़ ब्राह्मण उपमन्युने देवदेव महेश्वरसे यह वर माँगा ।

उपमन्यु बोले—देवदेवेश्वर ! प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! प्रसन्न होइये और मुझे अपनी परम दिव्य एवं अव्यभिचारिणी भक्ति दीजिये । महादेव ! मेरे जो अपने सगे-सम्बन्धी हैं, उनमें मेरी सदा श्रद्धा बनी रहनेका वर दीजिये ! साथ ही, अपना दासत्व, उत्कृष्ट स्नेह और नित्य सामीप्य प्रदान कीजिये ।

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त हुए द्विजश्रेष्ठ उपमन्युने हर्ष-गद्गद वाणीद्वारा महादेवजीका स्तवन किया ।

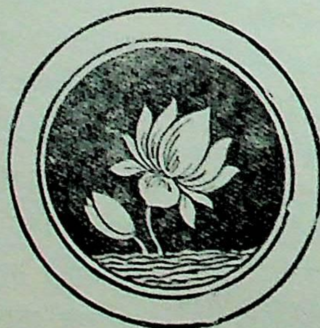
उपमन्यु बोले—देवदेव ! महादेव ! शरणागतवत्सल ! करुणासिन्धो ! साम्बसदाशिव ! आप सदा मुझपर प्रसन्न होइये ।

वायुदेव कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर सबको वर देनेवाले प्रसन्नात्मा महादेवने मुनिवर उपमन्युको इस प्रकार उत्तर दिया ।

शिव बोले—वत्स उपमन्यो ! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ । इसलिये मैंने तुम्हें सब कुछ दे दिया । ब्रह्मर्षे ! तुम मेरे सुदृढ़ भक्त हो; क्योंकि इस विषयमें मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली है । तुम अजर-अमर, दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होओ । द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहेंगे । मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति सदा बनी रहेगी । विप्रवर ! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा । तुम मेरे पास सानन्द विचरोगे ।

ऐसा कहकर उपमन्युको अभीष्ट वर दे करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी भगवान् महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये । उन श्रेष्ठ परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर उपमन्युका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा । उन्हें बहुत सुख मिला और वे अपनी जन्म-दायिनी माताके स्थानपर चले गये । (अध्याय ३५)

॥ वायवीयसंहिताका पूर्वखण्ड सम्पूर्ण ॥



वायवीयसंहिता (उत्तरखण्ड)

ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसङ्ग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ

सूत उवाच

नमः समस्तसंसारचक्रभ्रमणहेतवे।
गौरीकुचतटद्वन्द्वकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे ॥

सूतजी कहते हैं—जो समस्त संसार-चक्रके परिभ्रमणमें कारणरूप हैं तथा गौरीके युगल उरोजोंमें लगे हुए केसरसे जिनका वक्षःस्थल अङ्कित है, उन भगवान् उमावल्लभ शिवको नमस्कार है।

उपमन्युको भगवान् शंकरके कृपाप्रसादके प्राप्त होनेका प्रसङ्ग सुनाकर मध्याह्नकालमें नित्य नियमके उद्देश्यसे वायुदेव कथा बंद करके उठ गये। तब नैमिषारण्यनिवासी अन्य ऋषि भी 'अब अमुक बात पूछनी है' ऐसा निश्चय करके उठे और प्रतिदिनकी भाँति अपना तात्कालिक नित्यकर्म पूरा करके भगवान् वायुदेवको आया देख फिर आकर उनके पास बैठ गये। नियम समाप्त होनेपर जब आकाशजन्मा वायुदेव मुनियोंकी सभामें अपने लिये निश्चित उत्तम आसनपर विराजमान हो गये—सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे लोकवन्दित पवनदेव परमेश्वरकी श्रीसम्पन्न विभूतिका मन-ही-मन चिन्तन करके इस प्रकार बोले—'मैं उन सर्वज्ञ और अपराजित महान् देव भगवान् शंकरकी शरण लेता हूँ, जिनकी विभूति इस समस्त चराचर जगत्के रूपमें फैली हुई है।'

उनकी शुभ वाणीको सुनकर वे निष्पाप ऋषि भगवान्की विभूतिका विस्तारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये यह उत्तम वचन बोले।

ऋषियोंने कहा—भगवन्! आपने महात्मा उपमन्युका चरित्र सुनाया, जिससे यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने केवल दूधके लिये तपस्या करके भी परमेश्वर शिवसे सब कुछ पा लिया। हमने पहलेसे ही सुन रक्खा है कि अनायास ही महान् कर्म करनेवाले वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय धौम्यके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे पाशुपत व्रतका अनुष्ठान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था; अतः आप यह बतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम उत्तम पाशुपतज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया।



वायुदेव बोले—अपनी इच्छासे अवतीर्ण होनेपर भी सनातन वासुदेवने मानव-शरीरकी निन्दा-सी करते हुए लोकसंग्रहके लिये शरीरकी शुद्धि की थी। वे पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तप करनेके लिये उन महामुनिके आश्रमपर गये थे, जहाँ बहुत-से मुनि उपमन्युजीका दर्शन कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने भी वहाँ जाकर उनका दर्शन किया। उनके सारे अङ्ग भस्मसे उज्ज्वल दिखायी देते थे। मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अङ्कित था। रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण थी। वे जटामण्डलसे मण्डित थे। शास्त्रोंसे वेदकी भाँति वे अपने शिष्यभूत महर्षियोंसे घिरे हुए थे और शिवजीके ध्यानमें तत्पर हो शान्तभावसे बैठे थे। उन महातेजस्वी उपमन्युका दर्शन करके श्रीकृष्णने उन्हें नमस्कार किया। उस समय उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। श्रीकृष्णने बड़े आदरके साथ मुनिकी तीन बार परिक्रमा की। फिर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ मस्तक झुका हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। तदनन्तर उपमन्युने विधिपूर्वक 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे श्रीकृष्णके शरीरमें भस्म लगाकर उनसे

बारह महीनेका साक्षात् पाशुपतव्रत करवाया । तत्पश्चात् मुनिने उन्हें उत्तम ज्ञान प्रदान किया । उसी समयसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सम्पूर्ण दिव्य पाशुपत मुनि उन श्रीकृष्णको चारों ओर घेरकर उनके पास बैठे रहने लगे । फिर गुरुकी आज्ञासे परम शक्तिमान् श्रीकृष्णने पुत्रके लिये साम्ब शिवकी आराधनाका उद्देश्य मनमें लेकर तपस्या की । उस तपस्यासे संतुष्ट हो एक वर्षके पश्चात् पार्षदोंसहित, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर साम्ब शिवने उन्हें दर्शन दिया । श्रीकृष्णने वर देनेके लिये प्रकट हुए सुन्दर अङ्गवाले महादेवजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति भी की । गणोंसहित साम्ब सदाशिवका स्तवन करके श्रीकृष्णने अपने लिये एक पुत्र प्राप्त किया । वह पुत्र तपस्यासे संतुष्ट चित्त हुए साक्षात् शिवने श्रीविष्णुको दिया था । चूँकि साम्ब शिवने उन्हें अपना पुत्र प्रदान किया, इसलिये श्रीकृष्णने जाम्बवती-कुमारका नाम साम्ब ही रक्खा । इस प्रकार अमित-पराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षि उपमन्युसे ज्ञानलाभ और भगवान् शंकरसे पुत्र-लाभ हुआ । इस प्रकार यह सब प्रसङ्ग मैंने पूरा-पूरा कह सुनाया । जो प्रतिदिन इसे कहता-सुनता या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका ज्ञान पाकर उन्हींके साथ आनन्दित होता है ।

(अध्याय १)

उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

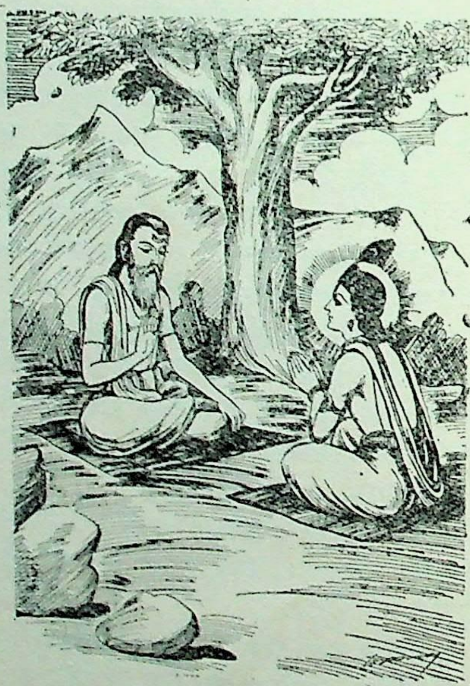
ऋषियोंने पूछा—पाशुपत ज्ञान क्या है ? भगवान् शिव पशुपति कैसे हैं ? और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे किस प्रकार प्रश्न किया था ? वायुदेव ! आप साक्षात् शंकरके स्वरूप हैं, इसलिये ये सब बातें बताइये । तीनों लोकोंमें आपके समान दूसरा कोई वक्ता इन बातोंको बतानेमें समर्थ नहीं है ।

सूतजी कहते हैं—उन महर्षियोंकी यह बात सुनकर वायुदेवने भगवान् शंकरका स्मरण करके इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया ।

वायुदेव बोले—महर्षियो ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णरूपधारी भगवान् विष्णुने अपने आसनपर बैठे हुए महर्षि उपमन्युसे उन्हें प्रणाम करके न्यायपूर्वक यों प्रश्न किया ।

श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! महादेवजीने देवी पार्वतीको जिस दिव्य पाशुपत ज्ञान तथा अपनी सम्पूर्ण विभूतिका उपदेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ । महादेवजी पशुपति कैसे हुए ? पशु कौन कहलाते हैं ? वे पशु किन पाशोंसे बाँधे जाते हैं और फिर किस प्रकार उनसे मुक्त होते हैं ?

महात्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर श्रीमान् उपमन्युने महादेवजी तथा देवी पार्वतीको प्रणाम करके उनके प्रश्नके अनुसार उत्तर देना आरम्भ किया ।



उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन ! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर-पर्यन्त जो भी संसारके वशवर्ती चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति होनेके कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है । वे पशुपति अपने पशुओंको मल और माया आदि पाशोंसे बाँधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे स्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त करते हैं । जो चौबीस तत्त्व हैं, वे मायाके कार्य

एवं गुण हैं। वे ही विषय कहलाते हैं, जीवों (पशुओं) को बाँधनेवाले पाश वे ही हैं। इन पाशोंद्वारा ब्रह्मासे लेकर कीट-पर्यन्त समस्त पशुओंको बाँधकर महेश्वर पशुपति देव उनसे अपना कार्य कराते हैं। उन महेश्वरकी ही आज्ञासे प्रकृति पुरुषोचित बुद्धिको जन्म देती है। बुद्धि अहंकारको प्रकट करती है तथा अहंकार कल्याणदायी देवाधिदेव शिवकी आज्ञासे ग्यारह इन्द्रियों और पाँच तन्मात्राओंको उत्पन्न करता है। तन्मात्राएँ भी उन्हीं महेश्वरके महान् शासनसे प्रेरित हो क्रमशः पाँच महाभूतोंको उत्पन्न करती हैं। वे सब महाभूत शिवकी आज्ञासे ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंके लिये देहकी सृष्टि करते हैं, बुद्धि कर्तव्यका निश्चय करती है और अहंकार अभिमान करता है। चित्त चेतता है और मन संकल्प-विकल्प करता है, श्रवण आदि ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् शब्द आदि विषयोंको ग्रहण करती हैं। वे महादेवजीके आज्ञा-बलसे केवल अपने ही विषयोंको ग्रहण करती हैं। वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं और शिवकी इच्छासे अपने लिये नियत कर्म ही करती हैं, दूसरा कुछ नहीं। शब्द आदि जाने जाते हैं और बोलना आदि कर्म किये जाते हैं। इन सबके लिये भगवान् शंकरकी गुरुतर आज्ञाका उल्लङ्घन करना असम्भव है। परमेश्वर शिवके शासनसे ही आकाश सर्वव्यापी होकर समस्त प्राणियोंको अवकाश प्रदान करता है, वायुतत्त्व प्राण आदि नामभेदोंद्वारा बाहर-भीतरके सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है। अग्नितत्त्व देवताओंके लिये हव्य और कव्यभोजी पितरोंके लिये कव्य पहुँचाता है। साथ ही मनुष्योंके लिये पाक आदिका भी कार्य करता है। जल सबको जीवन देता है और पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को सदा धारण किये रहती है।

शिवकी आज्ञा सम्पूर्ण देवताओंके लिये अलङ्घनीय है। उसीसे प्रेरित होकर देवराज इन्द्र देवताओंका पालन, दैत्योंका दमन और तीनों लोकोंका संरक्षण करते हैं। वरुणदेव सदा जलतत्त्वके पालन और संरक्षणका कार्य सँभालते हैं, साथ ही दण्डनीय प्राणियोंको अपने पाशोंद्वारा बाँध लेते हैं। धनके स्वामी यक्षराज कुबेर प्राणियोंको उनके पुण्यके अनुरूप सदा धन देते हैं और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको सम्पत्तिके साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं। ईश्वर असाधु पुरुषोंका निग्रह करते हैं तथा शेष शिवकी ही आज्ञासे अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। उन शेषको श्रीहरिकी तामसी रौद्रमूर्ति कहा गया है, जो जगत्का प्रलय करनेवाली है। ब्रह्माजी शिवकी ही आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तथा अपनी अन्य मूर्तियोंद्वारा पालन और संहारका कार्य भी करते हैं। भगवान् विष्णु अपनी त्रिविध मूर्तियोंद्वारा विश्वका पालन, सर्जन और संहार भी करते हैं। विश्वात्मा भगवान् हर भी तीन रूपोंमें विभक्त हो सम्पूर्ण जगत्का संहार, सृष्टि और रक्षा करते हैं। काल सबको उत्पन्न करता है। वही प्रजाकी सृष्टि करता है तथा वही विश्वका पालन करता है। यह सब वह महाकालकी आज्ञासे प्रेरित होकर ही करता है। भगवान् सूर्य उन्हींकी आज्ञासे अपने तीन अंशोंद्वारा जगत्का पालन करते, अपनी किरणोंद्वारा वृष्टिके लिये आदेश देते और स्वयं ही आकाशमें मेघ बनकर बरसते हैं। चन्द्रभूषण शिवका शासन मानकर ही चन्द्रमा ओषधियोंका पोषण और प्राणियोंको आह्लादित करते हैं। साथ ही देवताओंको अपनी अमृतमयी कलाओंका पान करने देते हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आकाशचारी ऋषि, सिद्ध, नागगण, मनुष्य, मृग, पशु, पक्षी, कीट आदि, स्थावर प्राणी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, अङ्गोंसहित वेद, शास्त्र, मन्त्र, वैदिक स्तोत्र और यज्ञ आदि, कालाग्निसे लेकर शिवपर्यन्त भुवन, उनके अधिपति, असंख्य ब्रह्माण्ड, उनके आवरण, वर्तमान, भूत और भविष्य, दिशा-विदिशाएँ, कला आदि कालके भिन्न-भिन्न भेद तथा जो कुछ भी इस जगत्में देखा और सुना जाता है, वह सब भगवान् शंकरकी आज्ञाके बलसे ही टिका हुआ है। उनकी आज्ञाके ही बलसे यहाँ पृथ्वी, पर्वत, मेघ, समुद्र, नक्षत्रगण, इन्द्रादि देवता, स्थावर, जङ्गम अथवा जड और चेतन—सबकी स्थिति है। (अध्याय २)

भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पञ्चमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! महेश्वर परमात्मा शिवकी मूर्तियोंसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् किस प्रकार व्याप्त है, यह सुनो। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान तथा सदाशिव—ये उन परमेश्वरकी पाँच मूर्तियाँ जाननी चाहिये, जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है। इनके सिवा और भी उनके पाँच शरीर हैं, जिन्हें पञ्च-ब्रह्म (मन्त्र) कहते

है । इस जगत्में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन मूर्तियोंसे व्याप्त न हो । ईशान, पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—ये महादेवजीकी विख्यात पाँच ब्रह्ममूर्तियाँ हैं । इनमें जो ईशान नामक उनकी आदि श्रेष्ठतम मूर्ति है, वह प्रकृतिके साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञको व्याप्त करके स्थित है । मूर्तिमान् प्रभु शिवकी जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है, वह गुणोंके आश्रयरूप भोग्य-अव्यक्त (प्रकृति) में अधिष्ठित है । पिनाकपाणि महेश्वरकी जो अत्यन्त पूजित अघोर नामक मूर्ति है, वह धर्म आदि आठ अङ्गोंसे युक्त बुद्धितत्त्वको अपना अधिष्ठान बनाती है । विधाता महादेवकी वामदेव नामक मूर्तिको आगमवेत्ता विद्वान् अहंकारकी अधिष्ठात्री बताते हैं । बुद्धिमान् पुरुष अमित-तेजस्वी शिवकी सद्योजात नामक मूर्तिको मनकी अधिष्ठात्री कहते हैं । विद्वान् पुरुष भगवान् शिवकी ईशान-नामक मूर्तिको श्रवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और व्यापक आकाश-तत्त्वकी स्वामिनी मानते हैं । पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण समस्त विद्वानोंने महेश्वरके तत्पुरुष नामक विग्रहको त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु-तत्त्वका स्वामी समझा है । मनीषी मुनि शिवकी अघोर नामक मूर्तिको नेत्र, पैर, रूप और अग्नि-तत्त्वकी अधिष्ठात्री बताते हैं । भगवान् शिवके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महात्मा पुरुष उनकी वामदेव नामक मूर्तिको रसना, पायु, रस और जलतत्त्वकी स्वामिनी समझते हैं तथा सद्योजात नामक मूर्तिको वे घ्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वी-तत्त्वकी अधिष्ठात्री कहते हैं । महादेवजीकी ये पाँचों मूर्तियाँ कल्याणकी एकमात्र हेतु हैं । कल्याणकामी पुरुषोंको इनकी सदा ही यत्न-पूर्वक वन्दना करनी चाहिये । उन देवाधिदेव महादेवजीकी जो आठ मूर्तियाँ हैं, तत्स्वरूप ही यह जगत् है । उन आठ मूर्तियोंमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोत भावसे स्थित है, जैसे सूतमें मनके पिरोये होते हैं ।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये शिवकी विख्यात आठ मूर्तियाँ हैं । महेश्वरकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंसे क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित होते हैं । उनकी पृथ्वीमयी मूर्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती है । उसके अधिष्ठाताका नाम शर्व है । इसलिये वह शिवकी 'शार्वी' मूर्ति कहलाती है । यही शास्त्रका निर्णय है । उनकी जलमयी मूर्ति समस्त जगत्के लिये जीवनदायिनी है । जल परमात्मा भवकी मूर्ति है, इसलिये उसे 'भावी' कहते हैं । शिवकी तेजोमयी शुभमूर्ति विश्वके बाहर-भीतर व्याप्त होकर स्थित है । उस घोररूपिणी मूर्तिका नाम रुद्र है, इसलिये वह 'रौद्री' कहलाती है । भगवान् शिव वायुरूपसे स्वयं गतिशील होते और इस जगत्को गतिशील बनाते हैं । साथ ही वे इसका भरण-पोषण भी करते हैं । वायु भगवान् उग्रकी मूर्ति है; इसलिये साधु पुरुष इसे 'औग्री' कहते हैं । भगवान् भीमकी आकाशरूपिणी मूर्ति सबको अवकाश देनेवाली, सर्वव्यापिनी तथा भूतसमुदायकी भेदिका है । वह भीम नामसे प्रसिद्ध है (अतः इसे 'भैमी' मूर्ति भी कहते हैं) । सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण आत्माओंकी अधिष्ठात्री शिवमूर्तिको 'पशुपति' मूर्ति समझना चाहिये । वह पशुओंके पाशोंका उच्छेद करनेवाली है । महेश्वरकी जो 'ईशान' नामक मूर्ति है, वही दिवाकर (सूर्य) नामक धारण करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करती हुई आकाशमें विचरती है । जिनकी किरणोंमें अमृत भरा है और जो सम्पूर्ण विश्वको उस अमृतसे आप्यायित करते हैं, वे चन्द्रदेव भगवान् शिवके महादेव नामक विग्रह हैं; अतः उन्हें 'महादेव' मूर्ति कहते हैं । यह जो आठवीं मूर्ति है, वह परमात्मा शिवका साक्षात् स्वरूप है तथा अन्य सब मूर्तियोंमें व्यापक है । इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व शिवरूप ही है । जैसे वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् शिवकी पूजासे उनके स्वरूपभूत जगत्का पोषण होता है । इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना और सबका उपकार करना—यह शिवका आराधन माना गया है । जैसे इस जगत्में अपने पुत्र-पौत्र आदिके प्रसन्न रहनेसे पिता-पितामह आदिको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की प्रसन्नतासे भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं । यदि किसी भी देहधारीको दण्ड दिया जाता है तो उसके द्वारा अष्टमूर्तिधारी शिवका ही अनिष्ट किया जाता है, इसमें संशय नहीं है । आठ मूर्तियोंके रूपमें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हुए भगवान् शिवका तुम सब प्रकारसे भजन करो; क्योंकि रुद्रदेव सबके परम कारण हैं ।

(अध्याय ३)

शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्णने पूछा—भगवन् ! अमित तेजस्वी भगवान् शिवकी मूर्तियोंने इस सम्पूर्ण जगत्को जिस प्रकार व्याप्त कर रखा है, वह सब मैंने सुना । अब मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका यथार्थ

स्वरूप क्या है, उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्को किस प्रकार व्याप्त कर रक्खा है।

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन! मैं शिवा और शिवके श्रीसम्पन्न ऐश्वर्यका और उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन तो भगवान् शिव भी नहीं कर सकते। साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति हैं और महादेवजी शक्तिमान्। उन दोनोंकी विभूतिका लेशमात्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के रूपमें स्थित है। यहाँ कोई वस्तु जडरूप है और कोई वस्तु चेतनरूप। वे दोनों क्रमशः शुद्ध, अशुद्ध तथा पर और अपर कहे गये हैं। जो चिन्मण्डल जडमण्डलके साथ संयुक्त हो संसारमें भटक रहा है, वही अशुद्ध और अपर कहा गया है। उससे भिन्न जो जडके बन्धनसे मुक्त है, वह पर और शुद्ध कहा गया है। अपर और पर चिदचित्स्वरूप हैं, इनपर स्वभावतः शिव और शिवाका स्वामित्व है। शिवा और शिवके ही वशमें यह विश्व है। विश्वके वशमें शिवा और शिव नहीं हैं। यह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं। जैसे शिव हैं वैसी शिवा देवी हैं तथा जैसी शिवा देवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें कोई अन्तर न समझे। जैसे चन्द्रिकाके विना ये चन्द्रमा सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार शिव विद्यमान होनेपर भी शक्तिके बिना सुशोभित नहीं होते। जैसे ये सूर्यदेव कभी प्रभाके बिना नहीं रहते और प्रभा भी उन सूर्यदेवके बिना नहीं रहती, निरन्तर उनके आश्रय ही रहती है, उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान्को सदा एक-दूसरेकी अपेक्षा होती है। न तो शिवके बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव*। जिसके द्वारा शिव सदा देहधारियोंको भोग और मोक्ष देनेमें समर्थ होते हैं, वह आदि अद्वितीय चिन्मयी पराशक्ति शिवके ही आश्रित है। ज्ञानी पुरुष उसी शक्तिको सर्वेश्वर परमात्मा शिवके अनुरूप उन-उन अलौकिक गुणोंके कारण उनकी समधर्मिणी कहते हैं। वह एकमात्र चिन्मयी पराशक्ति सृष्टिधर्मिणी है। वही शिवकी इच्छासे विभागपूर्वक नाना प्रकारके विश्वकी रचना करती है। वह शक्ति मूलप्रकृति, माया और त्रिगुणा—तीन प्रकारकी बतायी गयी है, उस शक्तिरूपिणी शिवाने ही इस जगत्का विस्तार किया है। व्यवहारभेदसे शक्तियोंके एक-दो, सौ, हजार एवं बहुसंख्यक भेद हो जाते हैं।

शिवकी इच्छासे पराशक्ति शिव-तत्त्वके साथ एकताको प्राप्त होती है। तबसे कल्पके आदिमें उसी प्रकार सृष्टिका प्रादुर्भाव होता है, जैसे तिलसे तेलका। तदनन्तर शक्तिमान्से शक्तिमें क्रियामयी शक्ति प्रकट होती है। उसके विक्षुब्ध होनेपर आदिकालमें पहले नादकी उत्पत्ति हुई। फिर नादसे बिन्दुका प्राकट्य हुआ और बिन्दुसे सदाशिव देवका। उन सदाशिवसे महेश्वर प्रकट हुए और महेश्वरसे शुद्ध विद्या। वह वाणीकी ईश्वरी है। इस प्रकार त्रिशूलधारी महेश्वरसे वागीश्वरी नामक शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ, जो वर्णों (अक्षरों) के रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है और मातृका कहलाती है। तदनन्तर अनन्तके समावेशसे मायाने काल, नियति, कला और विद्याकी सृष्टि की। कलासे राग तथा पुरुष हुए। फिर मायासे ही त्रिगुणात्मिका अव्यक्त प्रकृति हुई। उस त्रिगुणात्मक अव्यक्तसे तीनों गुण पृथक्-पृथक प्रकट हुए। उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम; इनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनसे गुणेश नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट हुईं। साथ ही 'महत्' आदि तत्त्वोंका क्रमशः प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींसे शिवकी आज्ञाके अनुसार असंख्य अण्ड-पिण्ड प्रकट होते हैं, जो अनन्त आदि विद्येश्वर चक्रवर्तियोंसे अधिष्ठित हैं। शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके बहुत-से भेद कहे गये हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे उनके अनेक रूप जानने चाहिये। रुद्रकी शक्ति रौद्री, विष्णुकी वैष्णवी, ब्रह्माकी ब्रह्माणी और इन्द्रकी इन्द्राणी कहलाती है। यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ—जिसे विश्व कहा गया है, वह उसी प्रकार शक्त्यात्मासे व्याप्त है जैसे शरीर अन्तरात्मासे। अतः सम्पूर्ण स्थावर-जंगमरूप जगत् शक्तिमय है। यह पराशक्ति परमात्मा शिवकी कला कही गयी है। इस तरह यह परा शक्ति ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलकर चराचर जगत्की सृष्टि करती है, ऐसा विज्ञ पुरुषोंका निश्चय

---

* चन्द्रो न खलु भात्येष यथा चन्द्रिकया विना।
न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्याविना शिवः॥
प्रभया हि विना यद्वद्भानुरेष न विद्यते।
प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया॥
एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः॥

(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ४। १०-१२)

है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा—अपनी इन तीन शक्तियोंद्वारा शक्तिमान् ईश्वर सदा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित होते हैं। यह इस प्रकार हो और यह इस प्रकार न हो—इस तरह कार्योंका नियमन करनेवाली महेश्वरकी इच्छाशक्ति नित्य है। उनकी जो ज्ञानशक्ति है, वह बुद्धिरूप होकर कार्य, करण, कारण और प्रयोजनका ठीक-ठीक निश्चय करती है; तथा शिवकी जो क्रियाशक्ति है, वह संकल्परूपिणी होकर उनकी इच्छा और निश्चयके अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्की क्षणभरमें कल्पना कर देती है। इस प्रकार तीनों शक्तियोंसे जगत्का उत्थान होता है। प्रसव-धर्मवाली जो शक्ति है, वह पराशक्तिसे प्रेरित होकर ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करती है। इस तरह शक्तियोंके संयोगसे शिव शक्तिमान् कहलाते हैं। शक्ति और शक्तिमान्से प्रकट होनेके कारण यह जगत् शाक्त और शैव कहा गया है। जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती। स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुषरूप ही है; यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अतः स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है। इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो परमात्मा कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी पराशक्ति। शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी। शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं। परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्द्धाङ्गिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्ऋति हैं और पार्वती नैर्ऋती। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया। शिव यक्ष हैं और पार्वती ऋद्धि। चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा उनकी पत्नी। नागराज अनन्तको वलयरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्ता। कालशत्रु शिव कालाग्निरुद्र हैं और काली कालान्तकप्रिया हैं जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकूति कहते हैं। महादेवजी भृगु हैं और पार्वती ख्याति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गङ्गाधर अङ्गिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया हैं। यज्ञविध्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कश्यप हैं और महेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

भगवान् शिव विषयी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। जो कुछ सुननेमें आता है वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तुसमुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बाल चन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है। भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले मङ्गलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले हैं)। भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जानने योग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशुशशिशेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं। सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वतीदेवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रज्ञरूपमें स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणि प्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकर-प्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराज-

कन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। वृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं। भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँल्लिङ्गरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेव मनोरमा देवी शिवा सारा स्त्रीलिङ्ग रूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्द-जालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मङ्गलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महात्माओंने उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है।

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।

श्रीकृष्ण! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके अनुसार परमेश्वर शिवा और शिवके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु इयत्तापूर्वक नहीं; अर्थात् इस वर्णनसे यह नहीं मान लेना चाहिये कि इन दोनोंके यथार्थ रूपका पूर्णतः वर्णन हो गया; क्योंकि इनके स्वरूपकी इयत्ता (सीमा) नहीं है। जो समस्त महापुरुषोंके भी मनकी सीमासे परे है, परमेश्वर शिव और शिवाके उस यथार्थ स्वरूपका वर्णन कैसे किया जा सकता है। जिन्होंने अपने चित्तको महेश्वरके चरणोंमें अर्पित कर दिया है तथा जो उनके अनन्य भक्त हैं, उनके ही मनमें वे आते हैं और उन्हींकी बुद्धिमें आरूढ़ होते हैं। दूसरोंकी बुद्धिमें वे आरूढ़ नहीं होते। यहाँ मैंने जिस विभूतिका वर्णन किया है, वह प्राकृत है, इसलिये अपरा मानी गयी है। इससे भिन्न जो अप्राकृत एवं परा विभूति है, वह गुह्य है। उनके गुह्य रहस्यको जाननेवाले पुरुष ही उन्हें जानते हैं। परमेश्वरकी यह अप्राकृत परा विभूति वह है, जहाँसे मन और इन्द्रियोंसहित वाणी लौट आती है। परमेश्वरकी वही विभूति यहाँ परम धाम है, वही यहाँ परमगति है और वही यहाँ पराकाष्ठा है।* जो अपने श्वास और इन्द्रियोंपर विजय पा चुके हैं, वे योगीजन ही उसे पानेका प्रयत्न करते हैं। शिवा और शिवकी यह विभूति संसाररूपी विषधर सर्पके डसनेसे मृत्युके अधीन हुए मानवोंके लिये संजीवनी ओषधि है। इसे जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भयभीत नहीं होता। जो इस परा और अपरा विभूतिको ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूतिको लाँघकर परा विभूतिका अनुभव करने लगता है।

श्रीकृष्ण! यह तुमसे परमात्मा शिव और पार्वतीके यथार्थ स्वरूपका गोपनीय होनेपर भी वर्णन किया गया है; क्योंकि तुम भगवान् शिवकी भक्तिके योग्य हो। जो शिष्य न हों, शिवके उपासक न हों और भक्त भी न हों, ऐसे लोगोंको कभी शिव-पार्वतीकी इस विभूतिका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह वेदकी आज्ञा है। अतः अत्यन्त कल्याणमय श्रीकृष्ण! तुम दूसरोंको इसका उपदेश न देना। जो तुम्हारे जैसे योग्य पुरुष हों, उन्हींसे कहना; अन्यथा मौन ही रहना। जो भीतरसे पवित्र, शिवका भक्त और विश्वासी हो, वह यदि इसका कीर्तन करे तो मनोवाञ्छित फलका भागी होता है। यदि पहलेके प्रबल प्रतिबन्धक कर्मोंद्वारा प्रथम बार फलकी प्राप्तिमें बाधा पड़ जाय, तो भी बारंबार साधनका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है। (अध्याय ४)

परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! यह चराचर जगत् देवाधिदेव महादेवजीका स्वरूप है। परंतु पशु (जीव) भारी पाशसे बँधे होनेके कारण जगत्‌को इस रूपमें नहीं जानते। महर्षिगण उन परमेश्वर शिवके निर्विकल्प परम भावको न जाननेके कारण उन एकका ही अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं—कोई उस परमतत्त्वको अपर ब्रह्मरूप कहते हैं, कोई परब्रह्मरूप बताते हैं और कोई आदि-अन्तसे रहित उत्कृष्ट महादेवस्वरूप कहते हैं। पञ्च महाभूत,

* यतो वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह। अप्राकृता परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी ॥
सैवेह परमं धाम सैवेह परमा गतिः। सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ४। ७६-७७)

इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा प्राकृत विषयरूप जड तत्त्वको अपर ब्रह्म कहा गया है। इससे भिन्न समष्टि चैतन्यका नाम परब्रह्म है। बृहत् और व्यापक होनेके कारण उसे ब्रह्म कहते हैं। प्रभो! वेदों एवं ब्रह्माजीके अधिपति परब्रह्म परमात्मा शिवके वे पर और अपर दो रूप हैं। कुछ लोग महेश्वर शिवको विद्याविद्या-स्वरूपी कहते हैं। इनमें विद्या चेतना है और अविद्या अचेतना। यह विद्या-अविद्यारूप विश्व जगद्गुरु भगवान् शिवका रूप ही है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि विश्व उनके वशमें है। भ्रान्ति, विद्या तथा पराविद्या या परम तत्त्व—ये शिवके तीन उत्कृष्ट रूप माने गये हैं। पदार्थोंके विषयमें जो अनेक प्रकारकी असत्य धारणाएँ हैं, उन्हें भ्रान्ति कहते हैं। यथार्थ धारणा या ज्ञानका नाम विद्या है तथा जो विकल्परहित परम ज्ञान है, उसे परम तत्त्व कहते हैं। परम तत्त्व ही सत् है, इससे विपरीत असत् कहा गया है। सत् और असत् दोनोंका पति होनेके कारण शिव सदसत्पति कहलाते हैं। अन्य महर्षियोंने क्षर, अक्षर और उन दोनोंसे परे परम तत्त्वका प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण भूत क्षर हैं और जीवात्मा अक्षर कहलाता है। वे दोनों परमेश्वरके रूप हैं; क्योंकि उन्हींके अधीन हैं। शान्त-स्वरूप शिव उन दोनोंसे परे हैं, इसलिये क्षराक्षरपर कहे गये हैं। कुछ महर्षि परम कारणरूप शिवको समष्टि-व्यष्टि-स्वरूप तथा समष्टि और व्यष्टिका कारण कहते हैं। अव्यक्तको समष्टि कहते हैं और व्यक्तको व्यष्टि। वे दोनों परमेश्वर शिवके रूप हैं, क्योंकि उन्हींकी इच्छासे प्रवृत्त होते हैं। उन दोनोंके कारणरूपसे स्थित भगवान् शिव परम कारण हैं। अतः कारणार्थवेत्ता ज्ञानी पुरुष उन्हें समष्टि-व्यष्टिका कारण बताते हैं। कुछ लोग परमेश्वरको जाति-व्यक्तिस्वरूप कहते हैं। जिसका शरीरमें भी अनुवर्तन हो, वह जाति कही गयी है। शरीरकी जातिके आश्रित रहनेवाली जो व्यावृत्ति है, जिसके द्वारा जातिभावनाका आच्छादन और वैयक्तिक भावनाका प्रकाशन होता है, उसका नाम व्यक्ति है। जाति और व्यक्ति दोनों ही भगवान् शिवकी आज्ञासे परिपालित हैं, अतः उन महादेवजीको जाति-व्यक्तिस्वरूप कहा गया है।

कोई-कोई शिवको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहते हैं। प्रकृतिका ही नाम प्रधान है। जीवात्माको ही क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तेईस तत्त्वोंको मनीषी पुरुषोंने व्यक्त कहा है और जो कार्य-प्रपञ्चके परिणामका एकमात्र कारण है, उसका नाम काल है। भगवान् शिव इन सबके ईश्वर, पालक, धारणकर्ता, प्रवर्तक, निवर्तक तथा आविर्भाव और तिरोभावके एकमात्र हेतु हैं। वे स्वयंप्रकाश एवं अजन्मा हैं। इसीलिये उन महेश्वरको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहा गया है। कारण, नेता, अधिपति और धाता बताया गया है। कुछ लोग महेश्वरको विराट् और हिरण्य-गर्भरूप बताते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टिके हेतु हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ है और विश्वरूपको विराट् कहते हैं। ज्ञानी पुरुष भगवान् शिवको अन्तर्यामी और परम पुरुष कहते हैं। दूसरे लोग उन्हें प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूप बताते हैं। कोई उन्हें तुरीयरूप मानते हैं और कोई सौम्यरूप। कितने ही विद्वानोंका कथन है कि वे ही माता, मान, मेय और मितिरूप हैं। अन्य लोग कर्ता, क्रिया, कार्य, करण और कारणरूप कहते हैं। दूसरे ज्ञानी उन्हें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप बताते हैं। कोई भगवान् शिवको तुरीयरूप कहते हैं तो कोई तुरीयातीत। कोई निर्गुण बताते हैं, कोई सगुण। कोई संसारी कहते हैं, कोई असंसारी। कोई स्वतन्त्र मानते हैं, कोई अस्वतन्त्र। कोई उन्हें घोर समझते हैं, कोई सौम्य। कोई रागवान् कहते हैं, कोई वीतराग; कोई निष्क्रिय बताते हैं, कोई सक्रिय। किन्हींके कथनानुसार वे निरिन्द्रिय हैं तो किन्हींके मतमें सेन्द्रिय हैं। एक उन्हें ध्रुव कहता है तो दूसरा अध्रुव; कोई उन्हें साकार बताते हैं तो कोई निराकार। किन्हींके मतमें वे अदृश्य हैं तो किन्हींके मतमें दृश्य; कोई उन्हें वर्णनीय मानते हैं तो कोई अनिर्वचनीय। किन्हींके मतमें वे शब्दस्वरूप हैं तो किन्हींके मतमें शब्दातीत; कोई उन्हें चिन्तनका विषय मानते हैं तो कोई अचिन्त्य समझते हैं। दूसरे लोगोंका कहना है कि वे ज्ञानस्वरूप हैं, कोई उन्हें विज्ञानकी संज्ञा देते हैं। किन्हींके मतमें वे ज्ञेय हैं और किन्हींके मतमें अज्ञेय। कोई उन्हें पर बताता है तो कोई अपर। इस तरह उनके विषयमें नाना प्रकारकी कल्पनाएँ होती हैं। इन नाना प्रतीतियोंके कारण मुनिजन उन परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपका निश्चय नहीं कर पाते। जो सर्वभावसे उन परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, वे ही उन परम कारण शिवको बिना यत्नके ही जान पाते हैं। जबतक पशु (जीव), जिनका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है उन सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, पुराण-पुरुष तथा तीनों लोकोंके शासक शिवको नहीं देखता, तबतक वह पाशोंसे बद्ध हो इस दुःखमय संसार-चक्रमें गाड़ीके पहियेकी नेमिके समान घूमता रहता है। जब यह द्रष्टा जीवात्मा सबके शासक, ब्रह्माके भी आदिकारण, सम्पूर्ण

जगत्के रचयिता, सुवर्णोपम, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुषका साक्षात्कार कर लेता है, तब पुण्य और पाप दोनोंको भलीभाँति हटाकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समताको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! शिवको न तो आणव मलका ही बन्धन प्राप्त है, न कर्मका और न मायाका ही। प्राकृत, बौद्ध, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रिय, तन्मात्रा और पञ्चभूतसम्बन्धी भी कोई बन्धन उन्हें नहीं छू सका है। अमित तेजस्वी शम्भुको न काल, न कला, न विद्या, न नियति, न राग और न द्वेषरूप ही बन्धन प्राप्त है। उनमें न तो कर्म हैं, न उन कर्मोंका परिपाक है, न उनके फलस्वरूप सुख और दुःख हैं, न उनका वासनाओंसे सम्बन्ध है, न कर्मोंके संस्कारोंसे। भूत, भविष्य और वर्तमान भोगों तथा उनके संस्कारोंसे भी उनका सम्पर्क नहीं है। न उनका कोई कारण है, न कर्ता। न आदि है, न अन्त और न मध्य है; न कर्म और करण है; न अकर्तव्य है और न कर्तव्य ही है। उनका न कोई बन्धु है और न अबन्धु; न नियन्ता है, न प्रेरक; न पति है, न गुरु है और न त्राता ही है। उनसे अधिककी चर्चा कौन करे, उनके समान भी कोई नहीं है। उनका न जन्म होता है न मरण। उनके लिये कोई वस्तु न तो वाञ्छित है और न अवाञ्छित ही। उनके लिये न विधि है न निषेध। न बन्धन है न मुक्ति। जो-जो अकल्याणकारी दोष हैं वे उनमें कभी नहीं रहते। परंतु सम्पूर्ण कल्याणकारी गुण उनमें सदा ही रहते हैं; क्योंकि शिव साक्षात् परमात्मा हैं। वे शिव अपनी शक्तियोंद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर अपने स्वभावसे च्युत न होते हुए सदा ही स्थित रहते हैं; इसलिये उन्हें स्थाणु कहते हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवसे अधिष्ठित है; अतः भगवान् शिव सर्वरूप माने गये हैं। जो ऐसा जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता।

रुद्र सर्वरूप हैं। उन्हें नमस्कार है। वे सत्स्वरूप, परम महान् पुरुष, हिरण्यबाहु भगवान्, हिरण्यपति, ईश्वर, अम्बिकापति, ईशान, पिनाकपाणि तथा वृषभवाहन हैं। एकमात्र रुद्र ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही कृष्ण-पिङ्गल वर्णवाले पुरुष हैं। वे हृदयके भीतर कमलके मध्यभागमें केशके अग्रभागकी भाँति सूक्ष्मरूपसे चिन्तन करने योग्य हैं। उनके केश सुनहरे रंगके हैं। नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। अङ्गकान्ति अरुण और ताम्रवर्णकी है। वे सुवर्णमय नीलकण्ठ देव सदा विचरते रहते हैं। उन्हें सौम्य, घोर, मिश्र, अक्षर, अमृत और अव्यय कहा गया है। वे पुरुषविशेष परमेश्वर भगवान् शिव कालके भी काल हैं। चेतन और अचेतनसे परे हैं। इस प्रपञ्चसे भी परात्पर हैं। शिवमें ऐसे ज्ञान और ऐश्वर्य देखे गये हैं, जिनसे बढ़कर ज्ञान और ऐश्वर्य अन्यत्र नहीं हैं। मनीषी पुरुषोंने भगवान् शिवको लोकमें सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली पदपर प्रतिष्ठित बताया है। प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न होकर एक सीमित कालतक रहनेवाले ब्रह्माओंको आदिकालमें विस्तारपूर्वक शास्त्रका उपदेश देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। एक सीमित कालतक रहनेवाले गुरुओंके भी वे गुरु हैं। वे सर्वेश्वर सदा सभीके गुरु हैं। कालकी सीमा उन्हें छू नहीं सकती। उनकी शुद्ध स्वाभाविक शक्ति सबसे बढ़कर है। उन्हें अनुपम ज्ञान और नित्य अक्षय शरीर प्राप्त है। उनके ऐश्वर्यकी कहीं तुलना नहीं है। उनका सुख अक्षय और बल अनन्त है। उनमें असीम तेज, प्रभाव, पराक्रम, क्षमा और करुणा भरी है। वे नित्य परिपूर्ण हैं। उन्हें सृष्टि आदिसे अपने लिये कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है। प्रणव उन परमात्मा शिवका वाचक है। शिव, रुद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है, इसमें संशय नहीं है।

इसीलिये शास्त्रोंके पारंगत मनस्वी विद्वान् वाच्य और वाचककी एकता स्वीकार करते हुए महादेवजीको प्रणवरूप कहते हैं। माण्डूक्योपनिषद्में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार, मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद कहते हैं। उकार यजुर्वेदरूप कहा गया है। मकार सामवेद है और नाद अथर्ववेदकी श्रुति है। अकार महाबीज है, वह रजोगुण तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। उकार प्रकृतिरूपा योनि है, वह सत्त्वगुण तथा पालनकर्ता श्रीहरि है। मकार जीवात्मा एवं बीज है, वह तमोगुण तथा संहारकर्ता रुद्र है। नाद परम पुरुष परमेश्वर है, वह निर्गुण एवं

निष्क्रिय शिव है । इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस सम्पूर्ण जगत्का प्रतिपादन करके अपनी अर्द्धमात्रा (नाद) के द्वारा शिवस्वरूपका बोध कराता है। जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिनसे बढ़कर कोई न तो अधिक सूक्ष्म है और न महान् ही है तथा जो अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चल भावसे प्रकाशमय आकाशमें स्थित हैं, उन परम पुरुष परमेश्वर शिवसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।*

(अध्याय ६)

परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिव-धर्मका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—परमेश्वर शिवकी स्वाभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विलक्षण है । वह एक होकर भी अनेक रूपसे भासित होती है । जैसे सूर्यकी प्रभा एक होकर भी अनेक रूपमें प्रकाशित होती है। उस विद्याशक्तिसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया और माया आदि अनेक शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, ठीक उसी तरह जैसे अग्निसे बहुत-सी चिनगारियाँ प्रकट होती हैं। उसीसे सदाशिव और ईश्वर आदि तथा विद्या और विद्येश्वर आदि पुरुष भी प्रकट हुए हैं । परात्पर प्रकृति भी उसीसे उत्पन्न हुई है। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सारे विकार तथा अज (ब्रह्मा) आदि मूर्तियाँ भी उसीसे प्रकट हुई हैं। इनके सिवा जो अन्य वस्तुएँ हैं, वे सब भी उसी शक्तिके कार्य हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शक्ति सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा तथा ज्ञानानन्दस्वरूपिणी है । उसीसे शीतांशुभूषण भगवान् शिव शक्तिमान् कहलाते हैं। शक्तिमान्—शिव वेद्य हैं और शक्तिरूपिणी शिवा विद्या हैं । वे शक्तिरूपा शिवा ही प्रज्ञा, श्रुति, स्मृति, धृति, स्थिति, निष्ठा, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, आज्ञाशक्ति, परब्रह्म, परा और अपरा नामकी दो विद्याएँ, शुद्ध विद्या और शुद्ध कला हैं; क्योंकि सब कुछ शक्तिका ही कार्य है। माया, प्रकृति, जीव, विकार, विकृति, असत् और सत् आदि जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब उस शक्तिसे ही व्याप्त है।

वे शक्तिरूपिणी शिवा देवी मायाद्वारा समस्त चराचर ब्रह्माण्डको अनायास ही मोहमें डाल देती और लीलापूर्वक उसे मोहके बन्धनसे मुक्त भी कर देती हैं । इस शक्तिके सत्ताईस प्रकार हैं, सत्ताईस प्रकारवाली इस शक्तिके साथ सर्वेश्वर शिव सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं । इन्हींके चरणोंमें मुक्ति विराजती है । पूर्वकालकी बात है, संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छावाले कुछ ब्रह्मवादी मुनियोंके मनमें यह संशय हुआ । वे परस्पर मिलकर यथार्थ रूपसे विचार करने लगे—इस जगत्का कारण क्या है ? हम किससे उत्पन्न हुए हैं और किससे जीवन धारण करते हैं ? हमारी प्रतिष्ठा कहाँ है ? हमारा अधिष्ठाता कौन है ? हम किसके सहयोगसे सदा सुखमें और दुःखमें रहते हैं ? किसने इस विश्वकी अलङ्घनीय व्यवस्था की है ? यदि कहें काल, स्वभाव, नियति (निश्चित फल देनेवाला कर्म) और यदृच्छा (आकस्मिक घटना) इसमें कारण हों तो यह कथन युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पाँचों महाभूत तथा जीवात्मा भी कारण नहीं हैं। इन सबका संयोग तथा अन्य कोई भी कारण नहीं है; क्योंकि ये काल आदि अचेतन हैं। जीवात्माके चेतन होनेपर भी वह सुख-दुःखसे अभिभूत तथा असमर्थ होनेसे इस जगत्का कारण नहीं हो सकता। अतः कौन कारण है, इसका विचार करना चाहिये । इस प्रकार आपसमें विचार करनेपर जब वे युक्तियोंद्वारा किसी निर्णयतक न पहुँच सके, तब उन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमेश्वरकी स्वरूपभूता अचिन्त्य शक्तिका साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणोंसे—सत्त्व, रज और तमसे ढकी है तथा उन तीनों गुणोंसे परे है। परमेश्वरकी वह साक्षात् शक्ति समस्त पाशोंका विच्छेद करनेवाली है। उसके द्वारा बन्धन काट दिये जानेपर जीव अपनी दिव्य दृष्टिसे उन सर्वकारणकारण शक्तिमान् महादेवजीका दर्शन करने लगते हैं; जो कालसे लेकर जीवात्मातक पूर्वोक्त समस्त कारणोंपर तथा सम्पूर्ण विश्वपर अपनी इस शक्तिके द्वारा ही शासन करते हैं। वे परमात्मा अप्रमेय हैं । तदनन्तर परमेश्वरके प्रसाद-योग, परम-योग तथा सुदृढ़ भक्ति-योगके द्वारा उन मुनियोंने दिव्य गति प्राप्त कर ली।

---

* यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
(शि०पु० वा० सं० उ० ख० ६ । ३१, यह मन्त्र अक्षरशः (३ । ९) श्वेताश्वतरोपनिषद्में है।

श्रीकृष्ण ! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिवका दर्शन करते हैं, उन्हींको सनातन शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं, यह श्रुतिका कथन है । शक्तिमान्‌का शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता । अतः शक्ति और शक्तिमान् दोनोंके तादात्म्यसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है । मुक्तिकी प्राप्तिमें निश्चय ही ज्ञान और कर्मका कोई क्रम विवक्षित नहीं है, जब शिव और शक्तिकी कृपा हो जाती है, तब वह मुक्ति हाथमें आ जाती है । देवता, दानव, पशु, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं । गर्भका बच्चा, जन्मता हुआ बालक, शिशु, तरुण, वृद्ध, मुमूर्षु, स्वर्गवासी, नारकी, पतित, धर्मात्मा, पण्डित अथवा मूर्ख साम्बशिवकी कृपा होनेपर तत्काल मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है । परमेश्वर अपनी स्वाभाविक करुणासे अयोग्य भक्तोंके भी विविध मलोंको दूर करके उनपर कृपा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । भगवान्‌की कृपासे ही भक्ति होती है और भक्तिसे ही उनकी कृपा होती है । अवस्थाभेदका विचार करके विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहित नहीं होता है । कृपाप्रसादपूर्वक जो यह भक्ति होती है, वह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाली है । उसे मनुष्य एक जन्ममें नहीं प्राप्त कर सकता । अनेक जन्मोंतक श्रौत-स्मार्त कर्मोंका अनुष्ठान करके सिद्ध हुए विरक्त एवं ज्ञानसम्पन्न पुरुषोंपर महेश्वर प्रसन्न होते और कृपा करते हैं । देवेश्वर शिवके प्रसन्न होनेपर उस पशु (जीव) में बुद्धिपूर्वक थोड़ी-सी भक्तिका उदय होता है । तब वह यह अनुभव करने लगता है कि भगवान् शिव मेरे स्वामी हैं । फिर तपस्यापूर्वक वह नाना प्रकारके शैवधर्मोंके पालनमें संलग्न होता है । उन धर्मोंके पालनमें बारंबार लगे रहनेसे उसके हृदयमें पराभक्तिका प्रादुर्भाव होता है । उस पराभक्तिसे परमेश्वरका परम प्रसाद उपलब्ध होता है । प्रसादसे सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा मिलता है और छुटकारा मिल जानेपर परमानन्दकी प्राप्ति होती है, जिस मनुष्यका भगवान् शिवमें थोड़ा-सा भी भक्तिभाव है, वह तीन जन्मोंके बाद अवश्य मुक्त हो जाता है । उसे इस संसारमें योनियन्त्रकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती । साङ्गा (अङ्गसहित) और अनङ्गा (अङ्गरहित) जो सेवा है, उसीको भक्ति कहते हैं । उसके फिर तीन भेद होते हैं—मानसिक, वाचिक और शारीरिक । शिवके रूप आदिका जो चिन्तन है, उसे मानसिक सेवा कहते हैं । जप आदि वाचिक सेवा है और पूजन आदि कर्म शारीरिक सेवा है । इन त्रिविध साधनोंसे सम्पन्न होनेवाली जो यह सेवा है, इसे 'शिवधर्म' भी कहते हैं । परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिव-धर्म बताया है—तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान । लिङ्गपूजन आदिको 'कर्म' कहते हैं । चान्द्रायण आदि व्रतका नाम 'तप' है । वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जो शिवमन्त्रका अभ्यास (आवृत्ति) है, उसीको 'जप' कहते हैं । शिवका चिन्तन ही 'ध्यान' कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस ज्ञानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे कहा गया है । श्रीकण्ठ शिवने शिवाके प्रति जिस ज्ञानका उपदेश किया है, वही शिवागम है । शिवके आश्रित जो भक्तजन हैं, उनपर कृपा करके कल्याणके एकमात्र साधक इस ज्ञानका उपदेश किया गया है । अतः कल्याणकामी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयासक्तिका त्याग करे ।

(अध्याय ७)

शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भगवन् ! अब मैं उस शिव-ज्ञानको सुनना चाहता हूँ, जो वेदोंका सारतत्त्व है तथा जिसे भगवान् शिवने अपने शरणागत भक्तोंकी मुक्तिके लिये कहा है । प्रभु शिवकी पूजा कैसे की जाती है ? पूजा आदिमें किसका अधिकार है तथा ज्ञानयोग आदि कैसे सिद्ध होते हैं ? उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर ! ये सब बातें विस्तारपूर्वक बताइये ।

उपमन्युने कहा—भगवान् शिवने जिस वेदोक्त ज्ञानको संक्षिप्त करके कहा है, वही शैव-ज्ञान है । वह निन्दा-स्तुति आदिसे रहित तथा श्रवणमात्रसे ही अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करनेवाला है । यह दिव्य ज्ञान गुरुकी कृपासे प्राप्त होता है और अनायास ही मोक्ष देनेवाला है । मैं उसे संक्षेपमें ही बताऊँगा; क्योंकि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कोई कर ही नहीं सकता है । पूर्वकालमें महेश्वर शिव सृष्टिकी इच्छा करके सत्कार्य-कारणोंसे नियुक्त हो स्वयं ही अव्यक्तसे व्यक्त रूपमें प्रकट हुए । उस समय ज्ञानस्वरूप भगवान् विश्वनाथने देवताओंमें सबसे प्रथम देवता वेदपति ब्रह्माजीको उत्पन्न

किया । ब्रह्माने उत्पन्न होकर अपने पिता महादेवको देखा तथा ब्रह्माजीके जनक महादेवजीने भी उत्पन्न हुए ब्रह्माकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा और उन्हें सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी । रुद्रदेवकी कृपादृष्टिसे देखे जानेपर सृष्टिके सामर्थ्यसे युक्त हो उन ब्रह्मदेवने समस्त संसारकी रचना की और पृथक्-पृथक् वर्णों तथा आश्रमोंकी व्यवस्था की । उन्होंने यज्ञके लिये सोमकी सृष्टि की । सोमसे द्युलोकका प्रादुर्भाव हुआ । फिर पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, यज्ञमय विष्णु और शचीपति इन्द्र प्रकट हुए । वे सब तथा अन्य देवता रुद्राध्याय पढ़कर रुद्रदेवकी स्तुति करने लगे । तब भगवान् महेश्वर अपनी लीला प्रकट करनेके लिये उन सबका ज्ञान हरकर प्रसन्नमुख-से उन देवताओंके आगे खड़े हो गये ।

तब देवताओंने मोहित होकर उनसे पूछा—'आप कौन हैं ?' भगवान् रुद्र बोले—'श्रेष्ठ देवताओ ! सबसे पहले मैं ही था । इस समय भी सर्वत्र मैं ही हूँ और भविष्यमें भी मैं ही रहूँगा । मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है । मैं भी अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त करता हूँ । मुझसे अधिक और मेरे समान कोई नहीं है । जो मुझे जानता है, वह मुक्त हो जाता है ।'* ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहीं अन्तर्धान हो गये । जब देवताओंने उन महेश्वरको नहीं देखा, तब वे सामवेदके मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे । अथर्वशीर्षमें वर्णित पाशुपत-व्रतको ग्रहण करके उन अमरगणोंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें भस्म लगा लिया । यह देख उनपर कृपा करनेके लिये पशुपति महादेव अपने गणों और उमाके साथ उनके निकट आये । प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतकर निद्रारहित एवं निष्पाप हुए योगीजन अपने हृदयमें जिनका दर्शन करते हैं, उन्हीं महादेवको उन देवेश्वरोंने वहाँ देखा । जिन्हें ईश्वरकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली पराशक्ति कहते हैं, उन वामलोचना भवानीको भी उन्होंने वामदेव महेश्वरके वामभाग-में विराजमान देखा । जो संसारको त्यागकर शिवके परमपद-को प्राप्त हो चुके हैं तथा जो नित्य सिद्ध हैं, उन गणेश्वरोंका भी देवताओंने दर्शन किया । तत्पश्चात् देवता महेश्वरसम्बन्धी वैदिक और पौराणिक दिव्य स्तोत्रोंद्वारा देवीसहित महेश्वरकी स्तुति करने लगे । तब वृषभध्वज महादेवजी भी उन देवताओं-की ओर कृपापूर्वक देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो स्वभावतः मधुर वाणीमें बोले—'मैं तुमलोगोंपर बहुत संतुष्ट हूँ ।' उन प्रार्थनीय एवं पूज्यतम भगवान् वृषभध्वजको अत्यन्त प्रसन्न-चित्त जान देवताओंने प्रणाम करके आदरपूर्वक उनसे पूछा ।

देवता बोले—भगवन् ! इस भूतलपर किस मार्गसे आपकी पूजा होनी चाहिये और उस पूजामें किसका अधिकार है ? यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें ।

तब देवेश्वर शिवने देवीकी ओर मुसकराते हुए देखा और अपने परम घोर सूर्यमय स्वरूपको दिखाया । उनका वह स्वरूप सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वतेजोमय, सर्वोत्कृष्ट तथा शक्तियों, मूर्तियों, अङ्गों, ग्रहों और देवताओंसे घिरा हुआ था । उसके आठ भुजाएँ और चार मुख थे । उसका आधा भाग नारीके रूपमें था । उस अद्भुत आकृतिवाले आश्चर्यजनक स्वरूपको देखते ही सब देवता यह जान गये कि सूर्यदेव, पार्वतीदेवी, चन्द्रमा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा शेष पदार्थ भी शिवके ही स्वरूप हैं । सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवमय ही है । परस्पर ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिया और नमस्कार किया । अर्घ्य देते समय वे इस प्रकार बोले—'जिनका वर्ण सिन्दूरके समान है और मण्डल सुन्दर है, जो सुवर्णके समान कान्तिमान् आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जिनके हाथमें भी कमल हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके भी कारण हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है ।'* यों कह उत्तम रत्नोंसे पूर्ण सुवर्ण, कुङ्कुम, कुश और पुष्पसे युक्त जल सोनेके पात्रमें लेकर उन देवेश्वरको अर्घ्य दे और कहे—'भगवन् ! आप प्रसन्न हों । आप सबके आदिकारण हैं । आप ही रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्यरूप हैं । गणोंसहित आप शान्त शिवको नमस्कार है ।'†

जो एकाग्रचित्त हो सूर्यमण्डलमें शिवका पूजन करके

---

* सोऽब्रवीद् भगवान् रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः ।
आसं प्रथममेवाहं वर्त्तामि च सुरोत्तमाः ॥
भविष्यामि च मत्तोऽन्यो व्यतिरिक्तो न कश्चन ।
अहमेव जगत्सर्वं तर्पयामि स्वतेजसा ।
मत्तोऽधिकः समो नास्ति मां यो वेद स मुच्यते ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८ । १५—१७)

* सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय सुवर्णवर्णाभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८ । ३२)

† प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद ।
नमः शिवाय शान्ताय सगणायादिहेतवे ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ८ । ३३-३४)

प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें उनके लिये उत्तम अर्घ्य देता है, प्रणाम करता है और इन श्रवणसुखद श्लोकोंको पढ़ता है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यदि वह भक्त है तो अवश्य ही मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन शिवरूपी सूर्यका पूजन करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा उनकी आराधना करनी चाहिये।

तत्पश्चात् मण्डलमें विराजमान महेश्वर देवताओंकी ओर देखकर और उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शिवशास्त्र देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस शास्त्रमें शिवपूजाका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको दिया गया है। यह जानकर देवेश्वर शिवको प्रणाम करके देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब वह शास्त्र लुप्त हो गया, तब भगवान् शंकरके अङ्कमें बैठी हुई महेश्वरी शिवाने पतिदेवसे उसके विषयमें पूछा। तब देवीसे प्रेरित हो चन्द्रभूषण महादेवने वेदोंका सार निकालकर सम्पूर्ण आगमोंमें श्रेष्ठ शास्त्रका उपदेश किया, फिर उन परमेश्वरकी आज्ञासे मैंने, गुरुदेव अगस्त्यने और महर्षि दधीचिने भी लोकमें उस शास्त्रका प्रचार किया। शूलपाणि महादेव स्वयं भी युग-युगमें भूतलपर अवतार ले अपने आश्रित जनोंकी मुक्तिके लिये ज्ञानका प्रसार करते हैं। ऋभु, सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता, मृत्यु, इन्द्र, मुनिवर वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, मुनिश्रेष्ठ त्रिवृत्, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, स्वरक्ष, बुद्धिमान् आरुणि, कृतञ्जय, भरद्वाज, श्रेष्ठ विद्वान् गौतम, वाचःश्रवा मुनि, पवित्र सूक्ष्मायणि, तृणबिन्दु मुनि, कृष्ण, शक्ति, शाक्तेय (पाराशर), उत्तर, जातूकर्ण्य और साक्षात् नारायण-स्वरूप कृष्णद्वैपायन मुनि—ये सब व्यासावतार हैं। अब क्रमशः कल्पयोगेश्वरोंका वर्णन सुनो। लिङ्गपुराणमें द्वापरके अन्तमें होनेवाले उत्तम व्रतधारी व्यासावतार तथा योगाचार्यावतारोंका वर्णन है। भगवान् शिवके शिष्योंमें भी जो प्रसिद्ध हैं, उनका वर्णन है। उन अवतारोंमें भगवान्‌के मुख्य-रूपसे चार महातेजस्वी शिष्य होते हैं। फिर उनके सैकड़ों, हजारों शिष्य-प्रशिष्य हो जाते हैं। लोकमें उनके उपदेशके अनुसार भगवान् शिवकी आज्ञा पालन करने आदिके द्वारा भक्तिसे अत्यन्त भावित हो भाग्यवान् पुरुष मुक्त हो जाते हैं।

(अध्याय ८)

शिवके अवतार, योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! समस्त युगावर्तोंमें योगाचार्यके व्याजसे भगवान् शंकरके जो अवतार होते हैं और उन अवतारोंके जो शिष्य होते हैं, उन सबका वर्णन कीजिये।

उपमन्युने कहा—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कङ्क लौगाक्षि, महामायावी जैगीषव्य, दधिवाह, ऋषभ मुनि, उग्र, अत्रि, सुपालक, गौतम, वेदशिरा मुनि, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लाङ्गुली, महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डीश, सहिष्णु, सोमशर्मा और नकुलीश्वर—ये वाराह कल्पके इस सातवें मन्वन्तरमें युगक्रमसे अट्ठाईस योगाचार्य प्रकट हुए हैं। इनमेंसे प्रत्येकके शान्तचित्तवाले चार-चार शिष्य हुए हैं, जो श्वेतसे लेकर रुष्यपर्यन्त बताये गये हैं। मैं उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। श्वेत, श्वेत-शिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान, विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्गम, दुरतिक्रम, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सुधामा, विरजा, शङ्ख, अण्डज, सारस्वत, मेघ, मेघवाह, सुवाहक, कपिल, आसुरि, पञ्चशिख, वाष्कल, पराशर, गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृङ्ग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बात्मा, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, सिद्धि, सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, गुरुश्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, काश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल, वाचःश्रवा, सुवीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कुबन्ध, कुशकन्धर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, भल्लवी, मधुपिङ्ग, श्वेतकेतु, उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेष, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुम्भकर्ण, कुम्भ, प्रबाहुक, उलूक, विद्युत्, शम्बूक, आश्वलायन, अक्षपाद, कणाद, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य—ते योगाचार्यरूपी महेश्वरके शिष्य हैं। इनकी संख्या एक सौ बारह है। ये सब-के-सब सिद्ध पाशुपत हैं। इनका शरीर भस्मसे विभूषित रहता है। ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, वेद और वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, शिवाश्रममें अनुरक्त, शिवज्ञानपरायण, सब प्रकारकी

आसक्तियोंसे मुक्त, एकमात्र भगवान् शिवमें ही मनको लगाये रखनेवाले, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धीर, सर्वभूतहितकारी, सरल, कोमल, स्वस्थ, क्रोधशून्य और जितेन्द्रिय होते हैं, रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण है। उनके मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अङ्कित होते हैं। उनमेंसे कोई तो शिखाके रूपमें ही जटा धारण करते हैं। किन्हींके सारे केश ही जटारूप होते हैं। कोई-कोई ऐसे हैं, जो जटा नहीं रखते हैं और कितने ही सदा माथा मुड़ाये रहते हैं। वे प्रायः फल-मूलका आहार करते हैं। प्राणायाम-साधनमें तत्पर होते हैं। 'मैं शिवका हूँ' इस अभिमानसे युक्त होते हैं। सदा शिवके ही चिन्तनमें लगे रहते हैं। उन्होंने संसाररूपी विषवृक्षके अङ्कुरको मथ डाला है। वे सदा परम धाममें जानेके लिये ही कटिबद्ध होते हैं। जो योगाचार्योंसहित इन शिष्योंको जान-मानकर सदा शिवकी आराधना करता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

(अध्याय ९)

भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा

तदनन्तर श्रीकृष्णके प्रश्न करनेपर उपमन्यु मन्दराचल-पर घटित हुए शिव-पार्वती-संवादको प्रस्तुत करते हुए बोले—श्रीकृष्ण ! एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शिवसे पूछा—'महादेव ! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति, मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं ?'

महादेवजी बोले—देवि ! यदि साधकके मनमें श्रद्धा भक्ति न हो तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उसके वशमें हो जाता हूँ। फिर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है। अतः जो मुझे वशमें करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिये। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। जो मानव अपने वर्णाश्रमधर्मके पालनमें लगा रहता है, उसीकी मुझमें श्रद्धा होती है, दूसरेकी नहीं। वर्णाश्रमी पुरुषोंके सम्पूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरी ही आज्ञा लेकर उनका वर्णन किया था। ब्रह्माजीका बताया हुआ वह धर्म अधिक धनके द्वारा साध्य है तथा अनेक प्रकारके क्रियाकलापसे युक्त होता है। उससे मिलनेवाला अधिकांश फल अक्षय नहीं है तथा उस धनके अनुष्ठानमें अनेक प्रकारके क्लेश और आयास उठाने पड़ते हैं। उस महान् धर्मसे परम दुर्लभ श्रद्धाको पाकर जो वर्णाश्रमी मनुष्य अनन्यभावसे मेरी शरणमें आ जाते हैं, उन्हें सुखद मार्गसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं। वर्णाश्रमसम्बन्धी आचारकी सृष्टि मैंने ही बारंबार की है। उसमें भक्तिभाव रखकर जो मेरे हो गये हैं, उन्हीं वर्णाश्रमियोंका मेरी उपासनामें अधिकार है, दूसरोंका नहीं, यह मेरी निश्चित आज्ञा है। मेरी आज्ञाके अनुसार धर्ममार्गसे चलनेवाले वर्णाश्रमी पुरुष मेरी शरणमें आ मेरे कृपाप्रसादसे मल और माया आदि पाशोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा मेरे पुनरावृत्तिरहित धाममें पहुँचकर मेरा उत्तम साधर्म्य प्राप्त करके परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं। इसलिये मेरे बताये हुए वर्णधर्मको पाकर अथवा न पाकर भी जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्माका उद्धार कर लेता है। यह कोटि-कोटि गुना अधिक अलब्ध-लाभ है। अतः मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मोक्षमार्गसे विलग होकर दूसरी किसी वस्तुके लिये श्रम करता है, उसके लिये वही सबसे बड़ी हानि है, वही बड़ी भारी त्रुटि है, वही मोह है और वही अन्धता एवं मूकता है*। देवेश्वरि ! मेरा जो सनातनधर्म है, वह चार चरणोंसे युक्त बताया गया है। उन चरणोंके नाम हैं—ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग। पशु, पाश और पतिका ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। गुरुके अधीन जो विधिपूर्वक षडध्वशोधनका कार्य होता है, उसे क्रिया कहते हैं। मेरे द्वारा विहित, वर्णाश्रमप्रयुक्त

* सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सान्धमूकता।
यदन्यत्र श्रमं कुर्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १० । २९)

जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरणका नाम चर्या है। मेरे बताये हुए मार्गसे ही मुझमें सुस्थिरभावसे चित्त लगानेवाले साधकके द्वारा जो अन्तःकरणकी अन्य वृत्तियोंका निरोध किया जाता है उसीको योग कहते हैं। देवि! चित्तको निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अश्वमेध यज्ञोंके समूहसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वह मुक्ति देनेवाला है। विषयभोगकी इच्छा रखनेवाले लोगोंके लिये यह 'मनःप्रसाद' दुर्लभ है। जिसने यम और नियमके द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस विरक्त पुरुषके लिये ही योगको सुलभ बताया गया है। योग पूर्वपापोंको हर लेनेवाला है। वैराग्यसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे योग। योगज्ञ पुरुष पतित हो तो भी मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। सदा अहिंसा-धर्मका पालन सबके लिये उचित है। ज्ञानका संग्रह भी आवश्यक है। सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना, वेद-शास्त्रोंका पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अनुराग रखना और सदा ज्ञानशील होना ब्राह्मणके लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोगकी सिद्धिके लिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन करता है, वह शीघ्र ही विज्ञान पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है। प्रिये! ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्निके द्वारा इस कर्ममय शरीरको क्षणभरमें दग्ध करके मेरे प्रसादसे योगका ज्ञाता होकर कर्म-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्षका प्रतिबन्धक बताया गया है; इसलिये योगी पुरुष योगके द्वारा पुण्यापुण्यका परित्याग कर दे। फलकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, केवल कर्म करनेमात्रसे नहीं; अतः कर्मके फलको त्याग देना चाहिये। प्रिये! पहले कर्ममय यज्ञद्वारा बाहर मेरी पूजा करके फिर ज्ञानयोगमें तत्पर हो साधक योगका अभ्यास करे। कर्मयज्ञसे मेरे यथार्थ स्वरूपका बोध प्राप्त हो जानेपर जीव योगयुक्त हो मेरे यजनसे विरत हो जाते हैं। उस समय वे मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें भी समभाव रखते हैं। जो मेरा भक्त नित्ययुक्त एवं एकाग्रचित्त हो ज्ञानयोगमें तत्पर रहता है, वह मुनियोंमें श्रेष्ठ एवं योगी होकर मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो वर्णाश्रमी पुरुष मनसे विरक्त नहीं हैं, वे मेरा आश्रय ले ज्ञान, चर्या और क्रिया—इन तीनमें ही प्रवृत्त होनेके अधिकारी हैं, उन्हींके अनुष्ठानकी योग्यता रखते हैं। मेरा पूजन दो प्रकारका है—बाह्य और आभ्यन्तर। इसी तरह मन, वाणी और शरीर—इन त्रिविध साधनोंके भेदसे मेरा भजन तीन प्रकारका माना गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान—ये मेरे भजनके पाँच स्वरूप हैं; अतः साधुपुरुष उसे पाँच प्रकारका भी कहते हैं। मूर्ति आदिमें जो मेरा पूजन आदि होता है, जिसे दूसरे लोग जान लेते हैं, वह 'बाह्य' पूजन या भजन कहा गया है तथा वही भजन-पूजन जब मनके द्वारा होनेसे केवल अपने ही अनुभवका विषय होता है, तब 'आभ्यन्तर' कहलाता है। मुझमें लगा हुआ चित्त ही 'मन' कहलाता है। सामान्यतः मन मात्रको यहाँ मन नहीं कहा गया है। इसी तरह जो वाणी मेरे नामके जप और कीर्तनमें लगी हुई है, वही 'वाणी' कहलाने योग्य है, दूसरी नहीं तथा जो मेरे शास्त्रमें बताये हुए त्रिपुण्ड्र आदि चिह्नोंसे अङ्कित है और निरन्तर मेरी सेवा-पूजामें लगा हुआ है, वही शरीर 'शरीर' है, दूसरा नहीं। मेरी पूजाको ही 'कर्म' जानना चाहिये। बाहर जो यज्ञ आदि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। मेरे लिये शरीरको सुखाना ही 'तप' है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदिका अनुष्ठान नहीं। पञ्चाक्षर मन्त्रकी आवृत्ति, प्रणवका अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदिका बारंबार पाठ ही यहाँ 'जप' कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं। मेरे स्वरूपका चिन्तन-स्मरण ही 'ध्यान' है। आत्मा आदिके लिये की हुई समाधि नहीं। मेरे आगमोंके अर्थको भलीभाँति जानना ही 'ज्ञान' है, दूसरी किसी वस्तुके अर्थको समझना नहीं।

देवि! पूर्ववासनावश बाह्य अथवा आभ्यन्तर जिस पूजनमें मनका अनुराग हो, उसीमें दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिये। बाह्य पूजनसे आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें दोषोंका मिश्रण नहीं होता तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले दोषोंकी भी वहाँ सम्भावना नहीं रहती है। भीतरकी शुद्धिको ही शुद्धि समझनी चाहिये। बाहरी शुद्धिको शुद्धि नहीं कहते हैं। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित है, वह बाहरसे शुद्ध होनेपर भी अशुद्ध ही है। देवि! बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही प्रकारका भजन भाव (अनुराग) पूर्वक ही होना चाहिये, बिना भावके नहीं। भावरहित भजन तो एकमात्र विप्रलम्भ (छलना) का ही कारण होता है। मैं तो सदा ही कृतकृत्य एवं पवित्र हूँ, मनुष्य मेरा क्या करेंगे? उनके द्वारा किये गये बाह्य अथवा आभ्यन्तर पूजनमें उनका जो भाव (प्रेम) है, उसीको मैं ग्रहण करता हूँ। देवि! क्रियाका एकमात्र आत्मा भाव ही है। वही मेरा सनातन धर्म है। मन, वाणी

और कर्मद्वारा कहीं भी किञ्चिन्मात्र फलकी इच्छा न रखकर ही क्रिया करनी चाहिये। देवेश्वरि! फलका उद्देश्य रखनेसे मेरा आश्रय लघु हो जाता है; क्योंकि फलार्थीको यदि फल न मिला तो वह मुझे छोड़ सकता है। सती साध्वी देवि! फलार्थी होनेपर भी जिस साधकका चित्त मुझमें ही प्रतिष्ठित है, उसे उसके भावके अनुसार फल मैं अवश्य देता हूँ। जिनका मन फलकी इच्छा न रखकर ही मुझमें लगा हो, परंतु पीछे वे फल चाहने लगे हों, वे भक्त भी मुझे प्रिय हैं। जो पूर्व संस्कारवश ही फलाफलकी चिन्ता न करके विवश हो मेरी शरण लेते हैं, वे भक्त मुझे अधिक प्रिय हैं। परमेश्वरि! उन भक्तोंके लिये मेरी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई वास्तविक लाभ नहीं है तथा मेरे लिये भी वैसे भक्तोंकी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं है। मुझमें समर्पित हुआ उनका भाव मेरे अनुग्रहसे ही उनको मानो बलपूर्वक परम निर्वाणरूप फल प्रदान करता है।

जिन्होंने अपने चित्तको मुझे समर्पित कर दिया है, अतएव जो मेरे अनन्य भक्त हैं, वे महात्मा पुरुष ही मेरे धर्मके अधिकारी हैं। उनके आठ लक्षण बताये गये हैं। मेरे भक्तजनोंके प्रति स्नेह, मेरी पूजाका अनुमोदन, स्वयंकी भी मेरे पूजनमें प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओंका होना, मेरी कथा सुननेमें भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अङ्गोंमें विकारका होना, बारंबार मेरी स्मृति और सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना—ये आठ प्रकारके चिह्न यदि किसी म्लेच्छमें भी हों तो वह विप्रशिरोमणि श्रीमान् मुनि है। वह संन्यासी है और वही पण्डित है। जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदोंका विद्वान् हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है। परंतु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो तो भी प्रिय है। उसे उपहार देना चाहिये, उससे प्रसाद ग्रहण करना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है। जो भक्तिभावसे मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल समर्पित करता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह भी मेरी दृष्टिसे कभी ओझल नहीं होता है। * (अध्याय १०)

वर्णाश्रम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्ताका प्रतिपादन

महादेवजी कहते हैं—देवेश्वरि! अब मैं अधिकारी, विद्वान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण-भक्तोंके लिये संक्षेपसे वर्ण-धर्मका वर्णन करता हूँ। तीनों काल स्नान, अग्निहोत्र, विधिवत् शिवलिङ्ग-पूजन, दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्य-भाषण, संतोष, आस्तिकता, किसी भी जीवकी हिंसा न करना, लज्जा, श्रद्धा, अध्ययन, योग, निरन्तर अध्यापन, व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, उपदेश-श्रवण, तपस्या, क्षमा, शौच, शिखा-धारण, यज्ञोपवीत-धारण, पगड़ी धारण करना, दुपट्टा लगाना, निषिद्ध वस्तुका सेवन न करना, रुद्राक्षकी माला पहनना, प्रत्येक पर्वमें विशेषतः चतुर्दशीको शिवकी पूजा करना, ब्रह्मकूर्चका† पान, प्रत्येक मासमें ब्रह्मकूर्चसे विधिपूर्वक मुझे नहलाकर मेरा विशेषरूपसे पूजन करना,

---

* न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १०। ७१-७२)

† पाराशरस्मृतिके ग्यारहवें अध्यायमें ब्रह्मकूर्चका वर्णन इस प्रकार है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रं पापशोधनम्॥२९॥
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि॥३०॥
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा। मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम्॥३१॥
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते। घृतमेकपलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम्॥३२॥
गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि॥३३॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। पञ्चगव्यमृचापूतं स्थापयेदग्निसंनिधौ॥३४॥
आपो हिष्ठेति चालोड्य मा नस्तोकेति मन्त्रयेत्। सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः॥३५॥
एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि। इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोकेति शंवती॥३६॥

एतामिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद् द्विजः ।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ ३७ ॥
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ।
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥
ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ।
पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशाका जल–ये पवित्र और पापनाशक 'पञ्चगव्य' कहे जाते हैं । (कुशोदक-मिश्रित पञ्चगव्य ही ब्रह्मकूर्च कहलाता है ।) ब्रह्मकूर्चका विधान करनेवालेको उचित है कि काली गौका गोमूत्र, सफेद गौका गोबर, ताँबेके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही और कपिला गौका घी अथवा कपिला गौका ही गोमूत्र आदि पाँचों वस्तु लाये; १ पल गोमूत्र, आधे अँगूठे भर गोबर, ७पल दूध, ३ पल दही, १ पल घी और १ पल कुशाका जल ग्रहण करे । 'गायत्री' मन्त्रसे गोमूत्र, 'गन्धद्वारा' मन्त्रसे गोबर, 'आप्यायस्व' मन्त्रसे दूध, 'दधिक्राव्ण' मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि शुक्र' मन्त्रसे घी और 'देवस्य त्वा' मन्त्रसे कुशाका जल ग्रहण करे; इस प्रकार ऋचाओंसे पवित्र किये हुए पञ्चगव्यको अग्निके पास रक्खे । 'आपो हिष्ठा' मन्त्रसे गोमूत्र आदिको चलाये, 'मा नस्तोके' मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे (मथे), 'इरावती' 'इदं विष्णुः' 'मानस्तोके' और 'शंवती' इन ऋचाओंद्वारा अग्रभागसे युक्त ७ हरित कुशाओंसे पञ्चगव्यका होम करे; होमसे बचे हुए पञ्चगव्यको ओंकार पढ़कर मिलाये, ओंकार उच्चारण करके मथे, ओंकार पढ़कर उठाये और ओंकार उच्चारण करके द्विज पीये । जैसे अग्नि काठको जला देता है, वैसे ही ब्रह्मकूर्च मनुष्योंके त्वचों और हाड़ोंमें टिके हुए पापोंको जला देता है । देवताओंसे अधिष्ठित होनेके कारण ब्रह्मकूर्च तीनों लोकोंमें पवित्र हुआ है ॥ २९–३९ ॥

सम्पूर्ण क्रियान्नका त्याग, श्राद्धान्नका परित्याग, बासी अन्न तथा विशेषतः यावक (कुल्थी या बोरो धान) का त्याग, मद्य और मद्यकी गन्धका त्याग, शिवको निवेदित (चण्डेश्वरके भाग) नैवेद्यका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य धर्म हैं । ब्राह्मणोंके लिये विशेष धर्म ये हैं—क्षमा, शान्ति, संतोष, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, शिवज्ञान, वैराग्य, भस्म-सेवन और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे निवृत्ति—इन दस धर्मोंको ब्राह्मणोंका विशेष धर्म कहा गया है ।

अब योगियों (यतियों) के लक्षण बताये जाते हैं । दिनमें भिक्षान्नभोजन उनका विशेष धर्म है । यह वानप्रस्थ आश्रमवालोंके लिये भी उनके समान ही अभीष्ट है । इन सबको और ब्रह्मचारियोंको भी रातमें भोजन नहीं करना चाहिये । पढ़ना, यज्ञ कराना और दान लेना—इनका विधान मैंने विशेषतः क्षत्रिय और वैश्यके लिये नहीं किया है । मेरे आश्रयमें रहनेवाले राजाओं या क्षत्रियोंके लिये थोड़ेमें धर्मका संग्रह इस प्रकार है । सब वर्णोंकी रक्षा, युद्धमें शत्रुओंका वध, दुष्ट पक्षियों, मृगों तथा दुराचारी मनुष्योंका दमन करना, सब लोगोंपर विश्वास न करना, केवल शिवयोगियोंपर ही विश्वास रखना, ऋतुकालमें ही स्त्रीसंसर्ग करना, सेनाका संरक्षण, गुप्तचर भेजकर लोकमें घटित होनेवाले समाचारोंको जानना, सदा अस्त्र धारण करना तथा भस्ममय कञ्चुक धारण करना । गोरक्षा, वाणिज्य और कृषि—ये वैश्यके धर्म बताये गये हैं । शूद्रेतर वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा शूद्रका धर्म कहा गया है । बाग लगाना, मेरे तीर्थोंकी यात्रा करना तथा अपनी धर्मपत्नीके साथ ही समागम करना गृहस्थके लिये विहित धर्म है । वनवासियों, यतियों और ब्रह्मचारियोंके लिये ब्रह्मचर्यका पालन मुख्य धर्म है । स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातन धर्म है, दूसरा नहीं । कल्याणि ! यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है । जो स्त्री पतिकी सेवा छोड़कर व्रतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है । इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

अब मैं विधवा स्त्रियोंके सनातन धर्मका वर्णन करूँगा । व्रत, दान, तप, शौच, भूमि-शयन, केवल रातमें ही भोजन, सदा ब्रह्मचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे स्नान, शान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सब जीवोंको अन्नका वितरण, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा विशेषतः एकादशीको विधिवत् उपवास और मेरा पूजन—ये विधवा स्त्रियोंके धर्म हैं । देवि ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे अपने आश्रमका सेवन करनेवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थों और गृहस्थोंके धर्मका वर्णन किया । साथ ही शूद्रों और नारियोंके लिये भी इस सनातन धर्मका उपदेश दिया । देवेश्वरि ! तुम्हें सदा मेरा ध्यान और मेरे षडक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये । यही सम्पूर्ण वेदोक्त धर्म है और यही धर्म तथा अर्थका संग्रह है ।

लोकमें जो मनुष्य अपनी इच्छासे मेरे विग्रहकी सेवाका व्रत धारण किये हुए हैं, पूर्वजन्मकी सेवाके संस्कारसे युक्त होनेके कारण भावातिरेकसे सम्पन्न हैं, वे स्त्री आदि विषयोंमें अनुरक्त हों या विरक्त, पापोंसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होते,

जैसे जलसे कमलका पत्ता । मेरे प्रसादसे विशुद्ध हुए उन विवेकी पुरुषोंको मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है । फिर उनके लिये कर्तव्याकर्तव्यका विधि-निषेध नहीं रह जाता । समाधि तथा शरणागति भी आवश्यक नहीं रहती । जैसे मेरे लिये कोई विधि-निषेध नहीं है, वैसे ही उनके लिये भी नहीं है । परिपूर्ण होनेके कारण जैसे मेरे लिये कुछ साध्य नहीं है, उसी प्रकार उन कृतकृत्य ज्ञानयोगियोंके लिये भी कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है । वे मेरे भक्तोंके हितके लिये मानवभावका आश्रय लेकर भूतलपर स्थित हैं । उन्हें रुद्रलोकसे परिभ्रष्ट रुद्र ही समझना चाहिये; इसमें संशय नहीं है । जैसे मेरी आज्ञा ब्रह्मा आदि देवताओंको कार्यमें प्रवृत्त करनेवाली है, उसी प्रकार उन शिवयोगियोंकी आज्ञा भी अन्य मनुष्योंको कर्तव्यकर्ममें लगानेवाली है । वे मेरी आज्ञाके आधार हैं । उनमें अतिशय सद्भाव भी है । इसलिये उनका दर्शन करनेमात्रसे सब पापों-का नाश हो जाता है तथा प्रशस्त फलकी प्राप्तिको सूचित करनेवाले विश्वासकी भी वृद्धि होती है । जिन पुरुषोंका मुझमें अनुराग है, उन्हें उन बातोंका भी ज्ञान हो जाता है,जो पहले कभी उनके देखने, सुनने या अनुभवमें नहीं आयी होती है । उनमें अकस्मात् कम्प, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठमें स्वरविकार तथा आनन्द आदि भावोंका बारंबार उदय होने लगता है । ये सब लक्षण उनमें कभी एक-एक करके अलग-अलग प्रकट होते हैं और कभी सम्पूर्ण भावोंका एक साथ उदय होने लगता है । कभी विलग न होनेवाले इन मन्द, मध्यम और उत्तम भावोंद्वारा उन श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी पहचान करनी चाहिये ।

जैसे जब लोहा आगमें तपकर लाल हो जाता है, तब केवल लोहा नहीं रह जाता, उसी तरह मेरा सांनिध्य प्राप्त होनेसे वे केवल मनुष्य नहीं रह जाते—मेरा स्वरूप हो जाते हैं । हाथ, पैर आदिके साधर्म्यसे मानव-शरीर धारण करनेपर भी वे वास्तवमें रुद्र हैं । उन्हें प्राकृत मनुष्य समझकर विद्वान् पुरुष उनकी अवहेलना न करे । जो मूढ़चित्त मानव उनके प्रति अवहेलना करते हैं, वे अपनी आयु, लक्ष्मी, कुल और शीलको त्यागकर नरकमें गिरते हैं, अथवा बहुत कहनेसे क्या लाभ ? जिस किसी भी उपायसे मुझमें चित्त लगाना कल्याण-की प्राप्तिका एकमात्र साधन है ।

उपमन्यु कहते हैं—इस प्रकार परमात्मा श्रीकण्ठनाथ शिवने तीनों लोकोंके हितके लिये ज्ञानके सारभूत अर्थका संग्रह प्रकट किया है । सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण और विद्याएँ इस विज्ञान-संग्रहकी ही विस्तृत व्याख्याएँ हैं । ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठेय, अधिकार, साधन और साध्य—इन छः अर्थों-का ही यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है । श्रीकृष्ण ! जो शिव और शिवासम्बन्धी ज्ञानामृतसे तृप्त है और उनकी भक्तिसे सम्पन्न है, उसके लिये बाहर-भीतर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है । इसलिये क्रमशः बाह्य और आभ्यन्तर कर्मको त्यागकर ज्ञानसे ज्ञेयका साक्षात्कार करके फिर उस साधनभूत ज्ञानको भी त्याग दे । यदि चित्त शिवमें एकाग्र नहीं है तो कर्म करनेसे भी क्या लाभ ? और यदि चित्त एकाग्र ही है तो कर्म करने-की भी क्या आवश्यकता है ? अतः बाहर और भीतरके कर्म करके या न करके जिस-किसी भी उपायसे भगवान् शिवमें चित्त लगाये । जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे सत्पुरुषोंको इहलोक और परलोक-में भी सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है । यहाँ '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं; अतः परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य) की प्राप्तिके लिये उस मन्त्र-का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । (अध्याय ११)

पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—सर्वज्ञ महर्षिप्रवर ! आप सम्पूर्ण ज्ञानके महासागर हैं । अब मैं आपके मुखसे पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ ।

उपमन्युने कहा—देवकीनन्दन ! पञ्चाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता; अतः संक्षेपसे इसकी महिमा सुनो—वेदमें तथा शैवागममें दोनों जगह यह षडक्षर (प्रणवसहित पञ्चाक्षर) मन्त्र समस्त शिवभक्तोंके सम्पूर्ण अर्थका साधक कहा गया है । इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, परंतु यह महान् अर्थसे सम्पन्न है । यह वेदका सारतत्त्व है, मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, संदेहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है । यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंके मनको प्रसन्न एवं निर्मल करनेवाला, सुनिश्चित अर्थवाला (अथवा निश्चय ही मनोरथको पूर्ण करनेवाला) तथा परमेश्वरका गम्भीर वचन है । इस मन्त्रका मुखसे सुखपूर्वक उच्चारण होता है । सर्वज्ञ शिवने सम्पूर्ण देहधारियोंके सारे मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस

'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका प्रतिपादन किया है। यह आदि षडक्षर मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों) का बीज (मूल) है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, उसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये।

'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्युतिमान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं। ईशान आदि जो सूक्ष्म एकाक्षररूप ब्रह्म हैं, वे सब 'नमः शिवाय' इस मन्त्रमें क्रमशः स्थित हैं। सूक्ष्म षडक्षर मन्त्रमें पञ्चब्रह्म रूपधारी साक्षात् भगवान् शिव स्वभावतः वाच्यवाचकभावसे विराजमान हैं। अप्रमेय होनेके कारण शिव वाच्य हैं और मन्त्र उनका वाचक माना गया है। शिव और मन्त्रका यह वाच्य-वाचक-भाव अनादिकालसे चला आ रहा है। जैसे यह घोर संसारसागर अनादिकालसे प्रवृत्त है, उसी प्रकार संसारसे छुड़ानेवाले भगवान् शिव भी अनादिकालसे ही नित्य विराजमान हैं। जैसे औषध रोगोंका स्वभावतः शत्रु है, उसी प्रकार भगवान् शिव संसारदोषोंके स्वाभाविक शत्रु माने गये हैं। यदि ये भगवान् विश्वनाथ न होते तो यह जगत् अन्धकारमय हो जाता; क्योंकि प्रकृति जड है और जीवात्मा अज्ञानी। अतः इन्हें प्रकाश देनेवाले परमात्मा ही हैं। प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त जो कुछ भी जड तत्त्व है, वह किसी बुद्धिमान् (चेतन) कारणके बिना स्वयं 'कर्ता' नहीं देखा गया है। जीवोंके लिये धर्म करने और अधर्मसे बचनेका उपदेश दिया जाता है। उनके बन्धन और मोक्ष भी देखे जाते हैं। अतः विचार करनेसे सर्वज्ञ परमात्मा शिवके बिना प्राणियोंके आदि-सर्गकी सिद्धि नहीं होती। जैसे रोगी वैद्यके बिना सुखसे रहित हो क्लेश उठाते हैं, उसी प्रकार सर्वज्ञ शिवका आश्रय न लेनेसे संसारी जीव नाना प्रकारके क्लेश भोगते हैं।

अतः यह सिद्ध हुआ कि जीवोंका संसारसागरसे उद्धार करनेवाले स्वामी अनादि सर्वज्ञ परिपूर्ण सदाशिव विद्यमान हैं। वे प्रभु आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। स्वभावसे ही निर्मल हैं तथा सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हैं। उन्हें शिव नामसे जानना चाहिये। शिवागममें उनके स्वरूपका विशदरूपसे वर्णन है। यह पञ्चाक्षर मन्त्र उनका अभिधान (वाचक) है और वे शिव अभिधेय (वाच्य) हैं। अभिधान और अभिधेय (वाचक और वाच्य) रूप होनेके कारण परमशिवस्वरूप यह मन्त्र 'सिद्ध' माना गया है। 'ॐ नमः शिवाय' यह जो षडक्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है। यह शिवका विधि-वाक्य है, अर्थवाद नहीं है। यह उन्हीं शिवका स्वरूप है, जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल हैं।

जो समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् शिव झूठी बात कैसे कह सकते हैं? जो सर्वज्ञ हैं, वे तो मन्त्रसे जितना फल मिल सकता है, उतना पूरा-का-पूरा बतायेंगे। परंतु जो राग और अज्ञान आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं, वे ही झूठी बात कह सकते हैं। वे राग और अज्ञान आदि दोष ईश्वरमें नहीं हैं; अतः ईश्वर कैसे झूठ बोल सकते हैं? जिनका सम्पूर्ण दोषोंसे कभी परिचय ही नहीं हुआ, उन सर्वज्ञ शिवने जिस निर्मल वाक्य—पञ्चाक्षर मन्त्रका प्रणयन किया है, वह प्रमाणभूत ही है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा करे। यथार्थ पुण्य-पापके विषयमें ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा न करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है। शान्त स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धिके लिये जो सुन्दर बात कही है, उसे सुभाषित समझना चाहिये। जो वाक्य राग, द्वेष, असत्य, काम, क्रोध और तृष्णाका अनुसरण करनेवाला हो, वह नरकका हेतु होनेके कारण दुर्भाषित कहलाता है।* अविद्या एवं रागसे युक्त वाक्य जन्म-मरणरूप संसार-क्लेशकी प्राप्तिमें कारण होता है। अतः वह कोमल, ललित अथवा संस्कृत (संस्कारयुक्त) हो तो भी उससे क्या लाभ? जिसे सुनकर कल्याणकी प्राप्ति हो तथा राग आदि दोषोंका नाश हो जाय, वह वाक्य सुन्दर शब्दावलीसे युक्त न हो तो भी शोभन तथा समझने योग्य है। मन्त्रोंकी संख्या बहुत होनेपर भी जिस विमल षडक्षर मन्त्रका निर्माण सर्वज्ञ शिवने किया है, उसके समान कहीं कोई दूसरा मन्त्र नहीं है।

षडक्षर मन्त्रमें छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं; अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र कहीं नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रोंसे यह षडक्षर मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे वृत्तिसे सूत्र। जितने शिवज्ञान हैं और जो-जो विद्यास्थान हैं, वे सब षडक्षर मन्त्ररूपी सूत्रके संक्षिप्त भाष्य हैं। जिसके हृदयमें 'ॐ नमः शिवाय' यह षडक्षर मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे बहुसंख्यक

---

* रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्।
वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद् दुर्भाषितमुच्यते॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १२। २७)

मन्त्रों और अनेक विस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन है ? जिसने '🕉 **नमः शिवाय**' इस मन्त्रका जप दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, उसने सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ लिया और समस्त शुभ कृत्योंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। आदिमें 'नमः' पदसे युक्त 'शिवाय'—ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपंजरसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय १२)

पञ्चाक्षर मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वाङ्मयकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पञ्चाक्षर-विद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अङ्गन्यास आदिका विचार

देवी बोलीं—महेश्वर ! दुर्जय, दुर्लङ्घ्य एवं कलुषित कलिकालमें जब सारा संसार धर्मसे विमुख हो पापमय अन्धकारसे आच्छादित हो जायगा, वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार नष्ट हो जायँगे, धर्मसंकट उपस्थित हो जायगा, सबका अधिकार संदिग्ध, अनिश्चित और विपरीत हो जायगा, उस समय उपदेशकी प्रणाली नष्ट हो जायगी और गुरु-शिष्यकी परम्परा भी जाती रहेगी, ऐसी परिस्थितिमें आपके भक्त किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं ?

महादेवजीने कहा—देवि ! कलिकालके मनुष्य मेरी परम मनोरम पञ्चाक्षरी विद्याका आश्रय ले भक्तिसे भावित-चित्त होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो अकथनीय और अचिन्तनीय हैं—उन मानसिक, वाचिक और शारीरिक दोषोंसे जो दूषित, कृतघ्न, निर्दय, छली, लोभी और कुटिल चित्त हैं, वे मनुष्य भी यदि मुझमें मन लगाकर मेरी पञ्चाक्षरी विद्याका जप करेंगे, उनके लिये वह विद्या ही संसारभयसे तारनेवाली होगी। देवि ! मैंने बारंबार प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही है कि भूतलपर मेरा पतित हुआ भक्त भी इस पञ्चाक्षरी विद्याके द्वारा बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

देवी बोलीं—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरकको ही प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसी दशामें पतित मानव इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है ?

महादेवजीने कहा—सुन्दरि ! तुमने यह बहुत ठीक बात पूछी है। अब इसका उत्तर सुनो, पहले मैंने इस विषयको गोपनीय समझकर अबतक प्रकट नहीं किया था। यदि पतित मनुष्य मोहवश (अन्य) मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह निःसंदेह नरकगामी हो सकता है। किंतु पञ्चाक्षर मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो केवल जल पीकर और हवा खाकर तप करते हैं तथा दूसरे लोग जो नाना प्रकारके व्रतोंद्वारा अपने शरीरको सुखाते हैं, उन्हें इन व्रतोंद्वारा मेरे लोककी प्राप्ति नहीं होती। परंतु जो भक्तिपूर्वक पञ्चाक्षर मन्त्रसे ही एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह भी इस मन्त्रके ही प्रतापसे मेरे धाममें पहुँच जाता है। इसलिये तप, यज्ञ, व्रत और नियम पञ्चाक्षरद्वारा मेरे पूजनकी करोड़वीं कलाके समान भी नहीं है। कोई बद्ध हो या मुक्त, जो पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करता है, वह अवश्य ही संसारपाशसे छुटकारा पा जाता है। देवि ! ईशान आदि पाँच ब्रह्म जिसके अङ्ग हैं, उस षडक्षर या पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा जो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मुक्त हो जाता है। कोई पतित हो या अपतित, वह इस पञ्चाक्षर मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करे। मेरा भक्त पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश, गुरुसे ले चुका हो या नहीं, वह क्रोधको जीतकर इस मन्त्रके द्वारा मेरी पूजा किया करे। जिसने मन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है, उसकी अपेक्षा दीक्षा लेनेवाला पुरुष कोटि-कोटि गुना अधिक माना गया है। अतः देवि ! दीक्षा लेकर ही इस मन्त्रसे मेरा पूजन करना चाहिये। जो इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर मैत्री, मुदिता (करुणा, उपेक्षा) आदि गुणोंसे युक्त तथा ब्रह्मचर्यपरायण हो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मेरी समता प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ ? मेरे पञ्चाक्षर मन्त्रमें सभी भक्तोंका अधिकार है। इसलिये वह श्रेष्ठतर मन्त्र है। पञ्चाक्षरके प्रभावसे ही लोक, वेद, महर्षि, सनातनधर्म, देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् टिके हुए हैं।

देवि ! प्रलयकाल आनेपर जब चराचर जगत् नष्ट हो जाता है और सारा प्रपञ्च प्रकृतिमें मिलकर वहीं लीन हो जाता है, तब मैं अकेला ही स्थित रहता हूँ, दूसरा कोई कहीं नहीं रहता। उस समय समस्त देवता और शास्त्र पञ्चाक्षर मन्त्रमें

स्थित होते हैं। अतः मेरी शक्तिसे पालित होनेके कारण वे नष्ट नहीं होते हैं। तदनन्तर मुझसे प्रकृति और पुरुषके भेदसे युक्त सृष्टि होती है। तत्पश्चात् त्रिगुणात्मक मूर्तियोंका संहार करनेवाला अवान्तर प्रलय होता है। उस प्रलयकालमें भगवान् नारायणदेव मायामय शरीरका आश्रय ले जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। उनके नाभिकमलसे पञ्चमुख ब्रह्माजीका जन्म होता है। ब्रह्माजी तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे; किंतु कोई सहायक न होनेसे उसे कर नहीं पाते थे। तब उन्होंने पहले अमिततेजस्वी दस महर्षियोंकी सृष्टि की, जो उनके मानसपुत्र कहे गये हैं। उन पुत्रोंकी सिद्धि बढ़ानेके लिये पितामह ब्रह्माने मुझसे कहा—महादेव! महेश्वर! मेरे पुत्रोंको शक्ति प्रदान कीजिये। उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पाँच मुख धारण करनेवाले मैंने ब्रह्माजीके प्रति प्रत्येक मुखसे एक-एक अक्षरके क्रमसे पाँच अक्षरोंका उपदेश किया। लोकपितामह ब्रह्माजीने भी अपने पाँच मुखोंद्वारा क्रमशः उन पाँचों अक्षरोंको ग्रहण किया और वाच्यवाचकभावसे मुझ महेश्वरको जाना। मन्त्रके प्रयोगको जानकर प्रजापतिने विधिवत् उसे सिद्ध किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रोंको यथावत् रूपसे उस मन्त्रका और उसके अर्थका भी उपदेश दिया। साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मासे उस मन्त्ररत्नको पाकर मेरी आराधनाकी इच्छा रखनेवाले उन मुनियोंने उनकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करते हुए मेरुके रमणीय शिखरपर मुञ्जवान् पर्वतके निकट एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तीव्र तपस्या की। वे लोकसृष्टिके लिये अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिये वायु पीकर कठोर तपस्यामें लग गये। जहाँ उनकी तपस्या चल रही थी, वह श्रीमान् मुञ्जवान् पर्वत सदा ही मुझे प्रिय है और मेरे भक्तोंने निरन्तर उसकी रक्षा की है।

उन ऋषियोंकी भक्ति देखकर मैंने तत्काल उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन आर्य ऋषियोंको पञ्चाक्षर मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे ज्ञान कराया। संसारकी सृष्टि बढ़े, इसके लिये मैंने उन्हें मन्त्रकी सारी विधियाँ बतायीं तब वे उस मन्त्रके माहात्म्यसे तपस्यामें बहुत बढ़ गये और देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंकी सृष्टिका भलीभाँति विस्तार करने लगे।

अब इस उत्तम विद्या पञ्चाक्षरीके स्वरूपका वर्णन किया जाता है। आदिमें 'नमः' पदका प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद 'शिवाय' पदका। यही वह पञ्चाक्षरी विद्या है, जो समस्त श्रुतियोंकी सिरमौर है तथा सम्पूर्ण शब्दसमुदायकी सनातन बीजरूपिणी है। यह विद्या पहले-पहल मेरे मुखसे निकली; इसलिये मेरे ही स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाली है। इसका एक देवीके रूपमें ध्यान करना चाहिये। इस देवीकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। इसके पीन पयोधर ऊपरको उठे हुए हैं। यह चार भुजाओं और तीन नेत्रोंसे सुशोभित है। इसके मस्तकपर बालचन्द्रमाका मुकुट है। दो हाथोंमें पद्म और उत्पल हैं। अन्य दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा है। मुखाकृति सौम्य है। यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित है। श्वेत कमलके आसनपर विराजमान है। इसके काले-काले घुँघराले केश बड़ी शोभा पा रहे हैं। इसके अङ्गोंमें पाँच प्रकारके वर्ण हैं, जिनकी रश्मियाँ प्रकाशित हो रही हैं। वे वर्ण हैं—पीत, कृष्ण, धूम्र, स्वर्णिम तथा रक्त। इन वर्णोंका यदि पृथक्-पृथक् प्रयोग हो तो इन्हें बिन्दु और नादसे विभूषित करना चाहिये। बिन्दुकी आकृति अर्द्ध चन्द्रके समान है और नादकी आकृति दीपशिखाके समान। सुमुखि! यों तो इस मन्त्रके सभी अक्षर बीजरूप हैं, तथापि उनमें दूसरे अक्षरको इस मन्त्रका बीज समझना चाहिये। दीर्घ-स्वरपूर्वक जो चौथा वर्ण है, उसे कीलक और पाँचवें वर्णको शक्ति समझना चाहिये। इस मन्त्रके वामदेव ऋषि हैं और पंक्ति छन्द है। वरानने! मैं शिव ही इस मन्त्रका देवता हूँ*। वरारोहे! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अङ्गिरा और भरद्वाज—ये नकारादि वर्णोंके क्रमशः ऋषि माने गये हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती और विराट्—ये क्रमशः पाँचों अक्षरोंके छन्द हैं। इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और स्कन्द—ये क्रमशः उन अक्षरोंके देवता हैं। वरानने! मेरे पूर्व आदि चारों दिशाओंके तथा ऊपरके—पाँचों मुख इन नकारादि अक्षरोंके क्रमशः स्थान हैं। पञ्चाक्षर मन्त्रका पहला अक्षर उदात्त है। दूसरा और

* 'ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरीमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः शिवो देवता, मं बीजं यं शक्तिः, वां कीलकं सदाशिवकृपाप्रसादोपलब्धिपूर्वकमखिलपुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः।' शिवपुराणके इस वर्णनके अनुसार यही विनियोग-वाक्य है। मन्त्र-महार्णव आदिमें जो विनियोग दिया गया है, उसमें 'ॐ' बीजम्, 'नमः' शक्तिः, 'शिवाय' इति कीलकम् इतना अन्तर है।

चौथा भी उदात्त ही है। पाँचवाँ स्वरित है और तीसरा अक्षर अनुदात्त माना गया है। इस पञ्चाक्षर मन्त्रके—मूल विद्या शिव, शैव, सूत्र तथा पञ्चाक्षर नाम जाने। शैव (शिव-सम्बन्धी) बीज प्रणव मेरा विशाल हृदय है। नकार सिर कहा गया है, मकार शिखा है, 'शि' कवच है, 'वा' नेत्र है और यकार अस्त्र है। इन वर्णोंके अन्तमें अङ्गोंके चतुर्थ्यन्तरूपके साथ क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट् जोड़नेसे अङ्गन्यास होता है।*

देवि! थोड़ेसे भेदके साथ यह तुम्हारा भी मूलमन्त्र है। उस पञ्चाक्षर मन्त्रमें जो पाँचवाँ वर्ण 'य' है, उसे बारहवें स्वरसे विभूषित किया जाता है, अर्थात् 'नमः शिवाय'के स्थानमें 'नमः शिवायै' कहनेसे यह देवीका मूल मन्त्र हो जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह इस मन्त्रसे मन, वाणी और शरीरके भेदसे हम दोनोंका पूजन, जप और होम आदि करे। (मन आदिके भेदसे यह पूजन तीन प्रकारका होता है—मानसिक, वाचिक और शारीरिक।) देवि! जिसकी जैसी समझ हो, जिसे जितना समय मिल सके, जिसकी जैसी बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ति, उत्साह एवं योग्यता और प्रीति हो, उसके अनुसार वह शास्त्रविधिसे जब कभी, जहाँ कहीं अथवा जिस किसी भी साधनद्वारा मेरी पूजा कर सकता है। उसकी की हुई वह पूजा उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति करा देगी। सुन्दरि! मुझमें मन लगाकर जो कुछ क्रम या व्युत्क्रमसे किया गया हो, वह कल्याणकारी तथा मुझे प्रिय होता है। तथापि जो मेरे भक्त हैं और कर्म करनेमें अत्यन्त विवश (असमर्थ) नहीं हो गये हैं, उनके लिये सब शास्त्रोंमें मैंने ही नियम बनाया है, उस नियमका उन्हें पालन करना चाहिये। अब मैं पहले मन्त्रकी दीक्षा लेनेका शुभ विधान बता रहा हूँ, जिसके बिना मन्त्र-जप निष्फल होता है और जिसके होनेसे जप-कर्म अवश्य सफल होता है।

(अध्याय १३)

गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय बातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकता-की प्रशंसा तथा पञ्चाक्षर मन्त्रकी विशेषताका वर्णन

(महादेवजी कहते हैं—) वरानने! आज्ञाहीन, क्रिया-हीन, श्रद्धाहीन तथा विधिके पालनार्थ आवश्यक दक्षिणासे हीन जो जप किया जाता है, वह सदा निष्फल होता है। मेरा स्वरूपभूत मन्त्र यदि आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध और श्रद्धासिद्ध होनेके साथ ही दक्षिणासे भी युक्त हो तो उसकी सिद्धि होती है और उससे महान् फल प्राप्त होता है। शिष्यको चाहिये कि वह पहले तत्त्ववेत्ता आचार्य, जपशील, सद्गुणसम्पन्न, ध्यानयोगपरायण एवं ब्राह्मण गुरुकी सेवामें उपस्थित हो, मनमें शुद्ध भाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करे। ब्राह्मण साधक अपने मन, वाणी, शरीर और धनसे आचार्यका पूजन करे। वह वैभव हो तो गुरुको भक्तिभावसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र और गृह आदि अर्पित करे। जो अपने लिये सिद्धि चाहता हो, वह धनके दानमें कृपणता न करे। तदनन्तर सब सामग्रियोंसहित अपने आपको गुरुकी सेवामें अर्पित कर दे।

इस प्रकार यथाशक्ति निश्छलभावसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके गुरुसे मन्त्र एवं ज्ञानका उपदेश क्रमशः ग्रहण करे। इस तरह संतुष्ट हुए गुरु अपने पूजक शिष्यको, जो एक वर्षतक उनकी सेवामें रह चुका हो, गुरुकी सेवामें उत्साह रखनेवाला हो, अहंकाररहित हो और उपवासपूर्वक स्नान करके शुद्ध हो गया हो, पुनः विशेष शुद्धिके लिये पूर्ण कलशमें

* अङ्गन्यास वाक्यका प्रयोग यों समझना चाहिये—ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुम्, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यं अस्त्राय फट् इति हृदयादिषडङ्गन्यासः। इसी तरह करन्यासका प्रयोग है—यथा—ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। विनियोगमें जो ऋषि आदि आये हैं, उनका न्यास इस प्रकार समझना चाहिये—ॐ वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिच्छन्दसे नमः मुखे, शिवदेवतायै नमः हृदये, मं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः, वां कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

रक्खे हुए पवित्र द्रव्ययुक्त मन्त्रशुद्ध जलसे नहलाकर चन्दन, पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उसे सुन्दर वेश-भूषासे विभूषित करे। तत्पश्चात् शिष्यसे ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और ब्राह्मणोंकी पूजा करवाकर समुद्र-तटपर, नदीके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, किसी भी पवित्र स्थानमें अथवा घरमें सिद्धिदायक काल आनेपर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र एवं सर्वदोषरहित शुभ योगमें गुरु अपने उस शिष्यको अनुग्रहपूर्वक विधिके अनुसार मेरा ज्ञान दे। एकान्त स्थानमें अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उच्च स्वरसे हम दोनोंके उस उत्तम मन्त्रका शिष्यसे भलीभाँति उच्चारण कराये। बारंबार उच्चारण कराकर शिष्यको इस प्रकार आशीर्वाद दे—'तुम्हारा कल्याण हो, मङ्गल हो, शोभन हो, प्रिय हो' इस तरह गुरु शिष्यको मन्त्र और आज्ञा प्रदान करे *। इस प्रकार गुरुसे मन्त्र और आज्ञा पाकर शिष्य एकाग्रचित्त हो संकल्प करके पुरश्चरण-पूर्वक प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करता रहे। वह जबतक जीये, तबतक अनन्यभावसे तत्परतापूर्वक नित्य एक हजार आठ मन्त्रोंका जप किया करे। जो ऐसा करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आदरपूर्वक पूरा कर देता है वह 'पौरश्चरणिक' कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है। उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है।

साधकको चाहिये कि वह शुद्ध देशमें स्नान करके सुन्दर आसन बाँधकर अपने हृदयमें तुम्हारे साथ मुझ शिवका और अपने गुरुका चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह किये मौनभावसे बैठे, चित्तको एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदिके द्वारा पाँचों तत्त्वोंका शोधन करके मन्त्रका न्यास आदि करे। इसके बाद सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके प्राण और अपान नियमन करते हुए हम दोनोंके स्वरूपका ध्यान करे और विद्यास्थान अपने रूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा मन्त्रके वाच्यार्थरूप मुझ परमेश्वरका स्मरण करके पञ्चाक्षरीका जप करे। मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्नकोटिका माना गया है—ऐसा आगमार्थविशारद विद्वानोंका कथन है। जो ऊँचे-नीचे स्वरसे युक्त तथा स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरोंके साथ मन्त्रका वाणीद्वारा उच्चारण करता है, उसका यह जप 'वाचिक' कहलाता है। जिस जपमें केवल जिह्वामात्र हिलती है अथवा बहुत धीमे स्वरसे अक्षरोंका उच्चारण होता है तथा जो दूसरोंके कानमें पड़नेपर भी उन्हें कुछ सुनायी नहीं देता, ऐसे जपको 'उपांशु' कहते हैं। जिस जपमें अक्षर-पङ्क्तिका एक वर्णसे दूसरे वर्णका, एक पदसे दूसरे पदका तथा शब्द और अर्थका मनके द्वारा बारंबार चिन्तनमात्र होता है, वह 'मानस' जप कहलाता है। वाचिक जप एक गुना ही फल देता है, उपांशु जप सौ गुना फल देनेवाला बताया जाता है, मानस जपका फल सहस्र गुना कहा गया है तथा सगर्भ जप उससे सौ गुना अधिक फल देनेवाला है। प्राणायामपूर्वक जो जप होता है, उसे 'सगर्भ' जप कहते हैं। अगर्भ जपमें भी आदि और अन्तमें प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है। मन्त्रार्थवेत्ता बुद्धिमान् साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्रका स्मरण कर ले। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रोंका मानसिक जप कर ले। पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। इन दोनोंमें सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है। सगर्भकी अपेक्षा भी ध्यानसहित जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है। इन पाँच प्रकारके जपोंमेंसे कोई एक जप अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये।

अङ्गुलीसे जपकी गणना करना एकगुना बताया गया है। रेखासे गणना करना आठगुना उत्तम समझना चाहिये। पुत्रजीव (जियापोता) के बीजोंकी मालासे गणना करनेपर जपका दसगुना अधिक फल होता है। शङ्खके मनकोंसे सौ गुना, मूँगोंसे हजार गुना, स्फटिकमणिकी मालासे दस हजार गुना, मोतियोंकी मालासे लाख गुना, पद्माक्षसे दस लाख गुना और सुवर्णके बने हुए मनकोंसे गणना करनेपर कोटि गुना अधिक फल बताया गया है। कुशकी गाँठसे तथा रुद्राक्षसे गणना करनेपर अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है। तीस रुद्राक्षके दानोंसे बनायी गयी माला जप-कर्ममें धन देनेवाली होती है। सत्ताईस दानोंकी माला पुष्टिदायिनी और पचीस दानोंकी माला मुक्तिदायिनी होती है, पंद्रह रुद्राक्षोंकी बनी हुई माला अभिचार-कर्ममें फलदायक होती है। जपकर्ममें अँगूठेको मोक्षदायक समझना चाहिये और तर्जनीको

* शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति।
एवं दद्याद् गुरुर्मन्त्रमाज्ञां चैव ततः पराम्॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १४। १५)

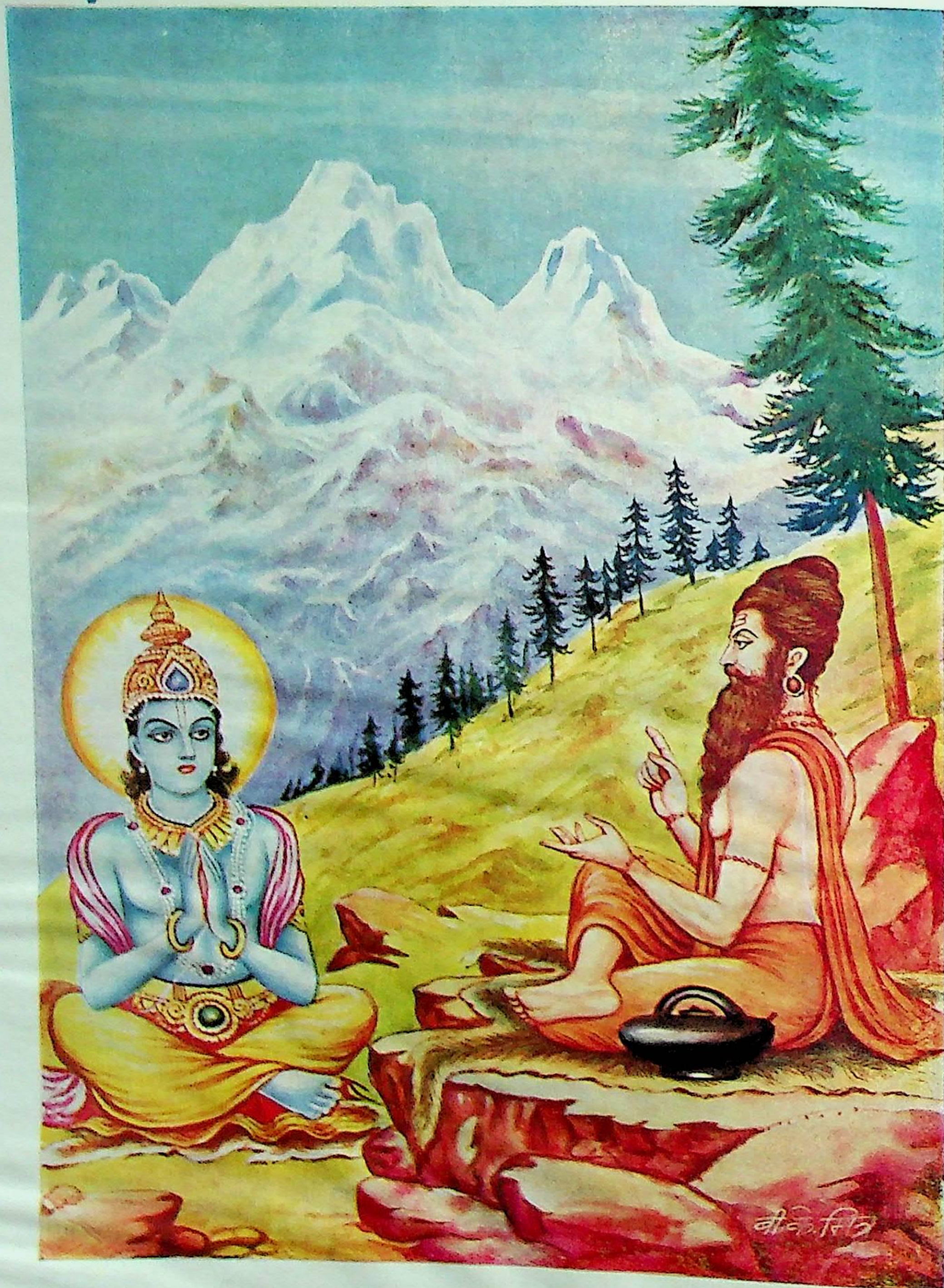
शत्रुनाशक । मध्यमा धन देती है और अनामिका शान्ति प्रदान करती है । एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तमोत्तम मानी गयी है । सौ दानोंकी माला उत्तम और पचास दानोंकी माला मध्यम होती है । चौवन दानोंकी माला मनोहारिणी एवं श्रेष्ठ कही गयी है । इस तरहकी मालासे जप करे । वह जप किसीको दिखाये नहीं । कनिष्ठिका अंगुलि अक्षरणी (जपके फलको क्षरित--नष्ट न करनेवाली) मानी गयी है; इसलिये जपकर्ममें शुभ है । दूसरी अंगुलियोंके साथ अंगुष्ठद्वारा जप करना चाहिये; क्योंकि अङ्गुष्ठके बिना किया हुआ जप निष्फल होता है ।

घरमें किये हुए जपको समान या एकगुना समझना चाहिये । गोशालामें उसका फल सौगुना हो जाता है, पवित्र वन या उद्यानमें किये हुए जपका फल सहस्रगुना बताया जाता है । पवित्र पर्वतपर दस हजार गुना, नदीके तटपर लाख गुना, देवालयमें कोटि गुना और मेरे निकट किये हुए जपको अनन्त गुना कहा गया है । सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है । पूर्वाभिमुख किया हुआ जप वशीकरणमें और दक्षिणाभिमुख जप अभिचार-कर्ममें सफलता प्रदान करनेवाला है । पश्चिमाभिमुख जपको धनदायक जानना चाहिये और उत्तराभिमुख जप शान्तिदायक होता है । सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये, सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गलेमें कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीरसे अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये । जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है । यदि कभी वैसा सम्भव हो जाय तो आचमन करे अथवा तुम्हारे साथ मेरा (पार्वतीसहित शिवका) स्मरण करे या ग्रह-नक्षत्रोंका दर्शन करे अथवा प्राणायाम कर ले ।

बिना आसनके बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे । गलीमें या सड़कपर, अपवित्र स्थानमें तथा अँधेरेमें भी जप न करे । दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसनसे बैठकर, सवारी या खाटपर चढ़कर अथवा चिन्तासे व्याकुल होकर जप न करे । यदि शक्ति हो तो इन सब नियमोंका पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ ! संक्षेपसे मेरी यह बात सुनो । सदाचारी मनुष्य शुद्धभावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है । आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है । आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता । इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये* । वेदज्ञ विद्वानोंने वेद-शास्त्रके कथनानुसार जिस वर्णके लिये जो कर्म विहित बताया है, उस वर्णके पुरुषको उसी कर्मका सम्यक आचरण करना चाहिये । वही उसका सदाचार है, दूसरा नहीं । सत्पुरुषोंने उसका आचरण किया है; इसीलिये वह सदाचार कहलाता है । उस सदाचारका भी मूल कारण आस्तिकता है । यदि मनुष्य आस्तिक हो तो प्रमाद आदिके कारण सदाचारसे कभी भ्रष्ट हो जानेपर भी दूषित नहीं होता । अतः सदा आस्तिकताका आश्रय लेना चाहिये । जैसे इहलोकमें सत्कर्म करनेसे सुख और दुष्कर्म करनेसे दुःख होता है, उसी तरह परलोकमें भी होता है—इस विश्वासको आस्तिकता कहते हैं ।

सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पञ्चाक्षर मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है । चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुषके जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता । अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पतित, मर्यादारहित और नीचके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता । किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसंदेह सिद्ध होगा ही, किंतु दूसरे किसीके लिये वह सिद्ध नहीं हो सकता । प्रिये ! इस मन्त्रके लिये लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार और योग आदिका अधिक विचार अपेक्षित नहीं है । यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत् ही रहता है । यह महामन्त्र कभी किसीका शत्रु नहीं होता । यह सदा सुसिद्ध, सिद्ध अथवा साध्य ही रहे, सिद्ध गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है । असिद्ध गुरुका भी दिया हुआ मन्त्र सिद्ध कहा गया है । जो केवल परम्परासे प्राप्त हुआ है, किसी गुरुके उपदेशसे नहीं मिला है, वह मन्त्र साध्य होता

* आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम् ।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ॥
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान् भवेत् ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १४ । ५५-५६)



उपमन्यु और श्रीकृष्ण

है। जो मुझमें, मन्त्रमें तथा गुरुमें अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मन्त्र किसी गुरुके द्वारा, साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विघ्नयुक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पञ्चाक्षरीका आश्रय ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं। महेश्वरि ! जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रोंके लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो दोष हैं, वे इस मन्त्रमें सम्भव नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदिकी अपेक्षा न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! इस प्रकार त्रिशूल-धारी महादेवजीने तीनों लोकोंके हितके लिये साक्षात् महादेवी पार्वतीसे इस पञ्चाक्षर मन्त्रकी विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है। (अध्याय १४)

त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

श्रीकृष्ण बोले—भगवन् ! आपने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् वेदके तुल्य है। अब मैं उत्तम शिव-संस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-ग्रहणके प्रकरणमें आपने कुछ सूचित किया था। वह बात मुझे भूली नहीं है।

उपमन्युने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें शिवद्वारा कथित परम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों-का शोधन करनेवाला है। मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा आदिमें उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस षडध्वशोधन कर्मको संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही उसका नाम संस्कार है। यह विज्ञान देता है और पाशबन्धनको क्षीण करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं। शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'शाम्भवी,' 'शाक्ती' और 'मान्त्री' तीन प्रकारकी दीक्षाका उपदेश किया है। गुरुके दृष्टिपात मात्रसे, स्पर्शसे तथा सम्भाषणसे भी जीवको जो तत्काल पाशोंका नाश करनेवाली संज्ञा सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है, वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्रा और तीव्रतरा। पाशोंके क्षीण होनेमें जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षासे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा मानी गयी है। जीवित पुरुषके पापका अत्यन्त शोधन करने-वाली जो दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है। गुरु योगमार्गसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञान-दृष्टिसे जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह शाक्ती कही गयी है। क्रियावती दीक्षाको मान्त्री दीक्षा कहते हैं। इसमें पहले होमकुण्ड और यज्ञमण्डपका निर्माण किया जाता है। फिर गुरु बाहरसे मन्द या मन्दतर उद्देश्यको लेकर शिष्यका संस्कार करते हैं। शक्तिपातके अनुसार शिष्य गुरुके अनुग्रहका भाजन होता है। शैव-धर्मका अनुसरण शक्तिपातमूलक है; अतः संक्षेपसे उसके विषयमें निवेदन किया जाता है। जिस शिष्यमें गुरुकी शक्तिका पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती तथा उसमें न तो विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही होती हैं; अतः प्रचुर शक्तिपातके लक्षणोंको देखकर गुरु ज्ञान अथवा क्रियाके द्वारा शिष्यका शोधन करे। जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है; अतः गुरु सब प्रकारसे शिष्यका परीक्षण करे। उत्कृष्ट बोध और आनन्दकी प्राप्ति ही शक्तिपातका लक्षण है; क्योंकि वह परमा-शक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोधका लक्षण है अन्तःकरणमें (सात्त्विक) विकार। जब अन्तःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीरमें कम्प, रोमाञ्च, स्वरविकार[1], नेत्रविकार[2] और अङ्गविकार[3] प्रकट होते हैं।

शिष्य भी शिवपूजन आदिमें गुरुका सम्पर्क प्राप्त करके, अथवा उनके साथ रह करके उनमें प्रकट होनेवाले इन लक्षणोंसे गुरुकी परीक्षा करे। शिष्य गुरुका शिक्षणीय होता है और उसका गुरुके प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा

१. कण्ठसे गद्गदवाणीका प्रकट होना। २. नेत्रोंसे अश्रुपात होना। ३. शरीरमें स्तम्भ (जडता) तथा स्वेद आदिका उदय होना।

प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरुके गौरवके अनुरूप हो। जो गुरु है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरु माना गया है। विद्याके आकारमें शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है। जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं। शिव, विद्या और गुरुके पूजनसे समान फल मिलता है। शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमन्त्रमय। अतः सम्पूर्ण यत्नसे गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये। यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरुके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी मिथ्याचार—कपटपूर्ण बर्ताव न करे। गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे। उनके सामने और पीठ पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचारसे युक्त गुरु-भक्त और सदा मनमें उत्साह रखनेवाला जो गुरुका प्रिय कार्य करनेवाला शिष्य है, वही शैव धर्मोंके उपदेशका अधिकारी है। यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्दका प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्दका साक्षात्कार करा सकता है। ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता।

नौकाएँ एक दूसरीको पार लगा सकती हैं, किंतु क्या कोई शिला दूसरी शिलाको तार सकती है ? नाममात्रके गुरुसे नाममात्रकी ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्त्वका ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं। तत्त्व-हीनको कैसे बोध होगा और बोधके बिना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा ?* जो आत्मानुभवसे शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है। पशुकी प्रेरणासे कोई पशुत्वको नहीं लाँघ सकता; अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अज्ञ नहीं। समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सब प्रकारके उपाय-विधानका जानकार होनेपर भी जो तत्त्वज्ञानसे हीन है, उसका जीवन निष्फल है। जिस पुरुषकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि तत्त्वके अनुसंधानमें प्रवृत्त होती है, उसके दर्शन, स्पर्श आदिसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अतः जिसके सम्पर्कसे ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्दकी प्राप्ति सम्भव हो, बुद्धिमान् पुरुष उसीको अपना गुरु चुने, दूसरेको नहीं। योग्य गुरुका जबतक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तबतक विनयाचारचतुर मुमुक्षु शिष्योंको उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। उनका अच्छी तरह ज्ञान—सम्यक् परिचय हो जानेपर उनमें सुस्थिर भक्ति करे। जबतक तत्त्वका बोध न प्राप्त हो जाय, तबतक निरन्तर गुरुसेवनमें लगा रहे। तत्त्वको न तो कभी छोड़े और न किसी तरह भी उसकी उपेक्षा ही करे। जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़ेसे भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले।

गुरुको भी चाहिये कि वह अपने आश्रित ब्राह्मणजातीय शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे। क्षत्रिय शिष्यकी दो वर्ष और वैश्यकी तीन वर्षतक परीक्षा करे। प्राणोंको संकटमें डालकर सेवा करने और अधिक धन देने आदिका अनुकूल-प्रतिकूल आदेश देकर, उत्तम जातिवालोंको छोटे काममें लगाकर और छोटोंको उत्तम काममें नियुक्त करके उनके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा करे। गुरुके तिरस्कार आदि करनेपर भी जो विषादको नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्मके योग्य हैं। जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते, सदा हृदयमें उत्साह रखकर सब कार्य करनेको उद्यत रहते, अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्पर्धारहित होकर प्रिय वचन बोलते, सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचारसे संयुक्त और शिवभक्त होते, ऐसे आचार-व्यवहारवाले द्विजातियोंको मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा यथोचित रीतिसे शुद्ध करके तत्त्वका बोध कराना चाहिये, यह शास्त्रोंका निर्णय है। शिव-संस्कार कर्ममें नारीका स्वतः अधिकार नहीं है। यदि वह शिवभक्त हो तो पतिकी आज्ञासे ही उक्त संस्कारकी अधिकारिणी होती है। विधवा स्त्रीका पुत्र आदिकी अनुमतिसे और कन्याका पिताकी आज्ञासे शिव-संस्कारमें अधिकार होता है। शूद्रों, पतितों और वर्ण-संकरोंके लिये षडध्वशोधन (शिव-संस्कार) का विधान नहीं है। वे भी यदि परमकारण शिवमें स्वाभाविक अनुराग रखते हों तो शिवका चरणोदक लेकर अपने पापोंकी शुद्धि करें।

(अध्याय १५)

* अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्। एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥
यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्त्वा मोचयन्त्यपि। तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १५। ३८-३९)

समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! नाना प्रकारके दोषोंसे रहित शुद्ध स्थान और पवित्र दिनमें गुरु पहले शिष्यका 'समय' नामक संस्कार करे। गन्ध, वर्ण और रस आदिसे विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके वास्तु-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिसे वहाँ मण्डपका निर्माण करे। मण्डपके बीचमें वेदी बनाकर आठों दिशाओंमें छोटे-छोटे कुण्ड बनाये। फिर ईशानकोणमें या पश्चिम दिशामें प्रधानकुण्डका निर्माण करे। एक ही प्रधान कुण्ड बनाकर चँदोवा, ध्वज तथा अनेक प्रकारकी बहुसंख्यक मालाओंसे उसको सजाये। तत्पश्चात् वेदीके मध्यभागमें शुभ लक्षणोंसे युक्त मण्डल बनाये। लालरंगके सुवर्ण आदिके चूर्णसे वह मण्डल बनाना चाहिये। मण्डल ऐसा हो कि उसमें ईश्वरका आवाहन किया जा सके। निर्धन मनुष्य सिन्दूर तथा अगहनी या तिन्नीके चावलके चूर्णसे मण्डल बनाये। उस मण्डपमें एक या दो हाथका श्वेत या लाल कमल बनाये। एक हाथके कमलकी कर्णिका आठ अङ्गुलकी होनी चाहिये। उसके केसर चार अङ्गुलमें हों और शेष भागमें अष्टदल आदिकी कल्पना करे। दो हाथके कमलकी कर्णिका आदि एक हाथवालेसे दुगुनी होनी चाहिये। उक्त वेदी या मण्डपके ईशानकोणमें पुनः एक वेदीपर एक हाथ या आधे हाथका मण्डल बनाये और उसे शोभाजनक सामग्रियोंसे सुशोभित करे। तत्पश्चात् धान, चावल, सरसों, तिल, फूल और कुशासे उस मण्डलको आच्छादित करके उसके ऊपर शुभ लक्षणसे युक्त शिवकलशकी स्थापना करे। वह कलश सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका होना चाहिये। उसपर गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश और दूर्वाङ्कुर रक्खे जायँ, उसके कण्ठमें सफेद सूत लपेटा जाय और उसे दो नूतन वस्त्रोंसे आच्छादित किया जाय। उसमें शुद्ध जल भर दिया जाय। कलशमें एक मुट्ठा कुश अग्रभाग ऊपरकी ओर करके डाला जाय। सुवर्ण आदि द्रव्य छोड़ा जाय और उस कलशको ऊपरसे ढक दिया जाय। उस आसनरूप कमलके उत्तर दलमें सूत्र आदिके बिना झारी या गडुआ, वर्धनी (विशिष्ट जलपात्र), शङ्ख, चक्र और कमलदल आदि सब सामग्री संग्रह करके रक्खे। उक्त आसनमण्डलके अग्रभागमें चन्दनमिश्रित जलसे भरी हुई वर्धनी अस्त्रराजके लिये रक्खे। फिर मण्डलके पूर्वभागमें पूर्ववत् मन्त्रयुक्त कलशकी स्थापना करके शिवकी विधिपूर्वक महापूजा आरम्भ करे।

समुद्र या नदीके किनारे, गोशालामें, पर्वतके शिखरपर, देवालयमें अथवा घरमें या किसी भी मनोहर स्थानमें मण्डपादि रचनाके बिना पूर्वोक्त सब कार्य करे। फिर पूर्ववत् मण्डल और अग्निकी वेदी बनाकर गुरु प्रसन्नमुखसे पूजा-भवनमें प्रवेश करे। वहाँ सब प्रकारके मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करके नित्यकर्मके अनुष्ठानपूर्वक मण्डलके मध्यभागमें महेश्वरकी महापूजा करनेके अनन्तर पुनः शिवकलशपर शिवका आवाहन-पूजन करे। पश्चिमाभिमुख यज्ञरक्षक ईश्वरका ध्यान करके अस्त्रराजकी वर्धनीमें दक्षिणकी ओर ईश्वरके अस्त्रकी पूजा करे। फिर मन्त्रयुक्त कलशमें मन्त्र तथा मुद्रा आदिका न्यास करके मन्त्रविशारद गुरु मन्त्र-याग करे। इसके बाद देशिक-शिरोमणि गुरु प्रधान कुण्डमें शिवाग्निकी स्थापना करके उसमें होम करे। साथ ही दूसरे ब्राह्मण भी चारों ओरसे उसमें आहुति डालें। आचार्यसे आधे या चौथाई होमका उनके लिये विधान है। आचार्यशिरोमणिको प्रधान कुण्डमें ही हवन करना चाहिये। दूसरे लोगोंको स्वाध्याय, स्तोत्र एवं मङ्गलपाठ करना चाहिये। अन्य शिवभक्त भी वहाँ विधिवत् जप करें। नृत्य, गीत, वाद्य एवं अन्य मङ्गल कृत्य भी होने चाहिये। सदस्योंका विधिवत् पूजन, पुण्याहवाचन तथा पुनः भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न करके शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छा मनमें ले आचार्य महादेवजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

> प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्।
> विमोचयैनं विश्वे[illegible] घृणया च घृणानिधे ॥

'देवदेवेश्वर ! प्रसन्न होइये। विश्वनाथ ! दयानिधे ! मेरे शरीरमें प्रवेश करके आप कृपापूर्वक इस शिष्यको बन्धन-मुक्त कराइये।'

तदनन्तर 'मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार इष्टदेवकी अनुमति पाकर गुरु उस शिष्यको जिसने उपवास किया हो, या हविष्य भोजन किया हो, अपने निकट बुलाये। वह शिष्य एक समय भोजन करनेवाला और विरक्त हो। स्नान करके प्रातःकालका कृत्य पूरा कर चुका हो। मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करके प्रणवका जप और महादेवजीका ध्यान कर रहा हो। उसे पश्चिम या दक्षिण द्वारके सामने मण्डलमें कुशके आसन-पर उत्तरकी ओर मुँह करके बिठाये और गुरु स्वयं पूर्वकी ओर मुँह करके खड़ा रहे। शि[illegible]य ऊपरकी ओर मुँह करके हाथ जोड़ ले। गुरु प्रोक्षणीके जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसके

मस्तकपर अस्त्रमुद्राद्वारा फूल फेंककर मारे। फिर अभिमन्त्रित नूतन वस्त्र—आधे दुपट्टेसे उसकी आँख बाँध दे। इसके बाद शिष्यको दरवाजेसे मण्डलके भीतर प्रवेश कराये। शिष्य भी गुरुसे प्रेरित हो शंकरजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। इसके बाद प्रभुको सुवर्णमिश्रित पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तदनन्तर मूलमन्त्रसे गुरु शिष्यका प्रोक्षण करके पूर्ववत् अस्त्रमन्त्रके द्वारा उसके मस्तकपर फूलसे ताड़न करनेके पश्चात् नेत्र-बन्धन खोल दे। शिष्य पुनः मण्डलकी ओर देखकर हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम करे। इसके बाद शिवस्वरूप आचार्य शिष्यको मण्डलके दक्षिण अपने बायें भागमें कुशके आसनपर बिठाये और महादेवजीकी आराधना करके उसके मस्तकपर शिवका वरद हाथ रक्खे। 'मैं शिव हूँ' इस अभिमानसे युक्त गुरु शिवके तेजसे सम्पन्न अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रक्खे और शिवमन्त्रका उच्चारण करे। उसी हाथसे वह शिष्यके सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करे। शिष्य भी आचार्यरूपमें उपस्थित हुए ईश्वरको पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तदनन्तर जब शिष्य शिवाग्निमें महादेवजीकी विधिवत् पूजा करके तीन आहुति दे ले, तब गुरु पुनः पूर्ववत् शिष्यको अपने पास बिठा ले। कुशोंके अग्रभागसे उसका स्पर्श करते हुए विद्या या मन्त्रद्वारा अपने आपको उसके भीतर आविष्ट करे।

तत्पश्चात् महादेवजीको प्रणाम करके नाड़ी-संधान करे। फिर शिव-शास्त्रमें बताये हुए मार्गसे प्राणका निष्क्रमण करके शिष्यके शरीरमें प्रवेशकी भावना करे; साथ ही मन्त्रोंका तर्पण भी करे। मूलमन्त्रके तर्पणके लिये उसीके उच्चारण-पूर्वक दस आहुतियाँ देनी चाहिये। फिर अङ्गोंके तर्पणके लिये अङ्गमन्त्रोंद्वारा ही क्रमशः तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद पूर्णाहुति देकर मन्त्रवेत्ता गुरु प्रायश्चित्तके निमित्त मूल-मन्त्रसे पुनः दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। फिर देवेश्वर शिवका पूजन करके सम्यक् आचमन और हवन करनेके पश्चात् यथोचित रीतिसे जातितः वैश्यका उद्धार करे। भावनाद्वारा उसके वैश्यत्वको निकालकर उसमें क्षत्रियत्वकी उत्पत्ति करे। फिर इसी तरह क्षत्रियत्वका भी उद्धार करके गुरु उसमें ब्राह्मणत्वकी उद्भावना करे। इसी प्रणालीसे जातितः क्षत्रियका भी उद्धार करके ब्राह्मण बनाये। फिर उन दोनों शिष्योंमें रुद्रत्वकी उत्पत्ति करे। जो जातिसे ही ब्राह्मण है, उस शिष्यमें केवल रुद्रत्वकी ही स्थापना करे। फिर शिष्यका प्रोक्षण और ताड़न करके उसके आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशमान शिवस्वरूप आत्माको अपने आत्मामें स्थित होनेकी भावना करे। तदनन्तर पूर्वोक्त नाड़ीसे गुरु-मन्त्रोच्चारण-पूर्वक वायुका रेचन (निःसारण) करे। वायुका निःसारण करके उस नाड़ीके द्वारा ही शिष्यके हृदयमें वह स्वयं प्रवेश करे। प्रवेश करके उसके चैतन्यका नील बिन्दुके समान चिन्तन करे। साथ ही यह भावना करे कि मेरे तेजसे इसका सारा मल नष्ट हो गया और यह पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है। इसके बाद उस जीव-चैतन्यको लेकर नाड़ीसे संहारमुद्रा एवं पूरक प्राणायामद्वारा अपने आत्मासे एकीभूत करनेके लिये उसमें निविष्ट करे। फिर रेचककी ही भाँति कुम्भकद्वारा उसी नाड़ीसे उस जीव-चैतन्यको वहाँसे लेकर शिष्यके हृदयमें स्थापित कर दे। तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके शिवसे उपलब्ध हुए यज्ञोपवीतको उसे देकर गुरु तीन बार आहुति दे पूर्णाहुति होम करे। इसके बाद आराध्यदेवके दक्षिण भागमें शिष्यको कुश तथा फूलसे आच्छादित करके श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उसका मुँह उत्तरकी ओर करके उसे स्वस्तिकासनमें स्थित करे। शिष्य गुरुकी ओर हाथ जोड़े रहे। गुरु स्वयं पूर्वाभिमुख हो एक श्रेष्ठ आसनपर खड़ा रहे और पहलेसे ही स्थापनपूर्वक सिद्ध किये हुए पूर्ण घटको लेकर शिवका ध्यान करते हुए मन्त्रपाठ तथा माङ्गलिक वाद्योंकी ध्वनिके साथ शिष्यका अभिषेक करे। तदनन्तर शिष्य उस अभिषेकके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण करे, आचमन करके अलंकृत हो हाथ जोड़ मण्डपमें जाय। तब गुरु पहलेकी भाँति उसे कुशासनपर बिठाकर मण्डलमें महादेवजीकी पूजा करके करन्यास करे। इसके बाद मन-ही-मन महादेवजीका ध्यान करते हुए दोनों हाथोंमें भस्म ले शिष्यके अङ्गोंमें लगाये और शिव-मन्त्रका उच्चारण करे।

तदनन्तर शिवाचार्य मातृकान्यासके मार्गसे शिष्यका दहन-प्लावनादि सकलीकरण करके उसके मस्तकपर शिवके आसनका ध्यान करे और वहाँ शिवका आवाहन करके यथोचित रीतिसे उनकी मानसिक पूजा करे। तत्पश्चात् हाथ जोड़ महादेवजीकी प्रार्थना करे—'प्रभो! आप नित्य यहाँ विराजमान हों।' इस तरह प्रार्थना करके मन-ही-मन यह भावना करे कि शिष्य भगवान् शंकरके तेजसे प्रकाशित हो रहा है। इसके बाद पुनः शिवकी पूजा करके शिवारूपिणी शैवी आज्ञा प्राप्त करके गुरु शिष्यके कानमें धीरे-धीरे शिव-मन्त्रका उच्चारण करे। शिष्य हाथ जोड़े हुए उस मन्त्रको

सुनकर उसीमें मन लगा शिवाचार्यकी आज्ञाके अनुसार धीरे-धीरे उसकी आवृत्ति करे। फिर मन्त्र-ज्ञान-कुशल आचार्य शाक्त-मन्त्रका उपदेश दे, उसका सुखपूर्वक उच्चारण करवाकर शिष्यके प्रति मङ्गलाशंसा करे। तत्पश्चात् संक्षेपसे वाच्यवाचक योगके अनुसार ईश्वररूप मन्त्रका उपदेश देकर योगासनकी शिक्षा दे। तदनन्तर शिष्य गुरुकी आज्ञासे शिव, अग्नि तथा गुरुके समीप भक्तिभावसे प्रतिज्ञापूर्वक निम्नाङ्कित-रूपसे दीक्षावाक्यका उच्चारण करे—

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीय भगवन्तं त्रिलोचनम्॥

'मेरे लिये प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा होगा अथवा सिर कटा देना भी अच्छा होगा; किंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना कभी भोजन नहीं कर सकता।'

जबतक मोह दूर न हो, तबतक वह भगवान् शिवमें ही निष्ठा रखकर उन्हींके आश्रित हो नियमपूर्वक उन्हींकी आराधना करता रहे। फिर भगवान् शिव ही उसे योगक्षेम प्रदान करते हैं। ऐसा करनेसे उस शिष्यका नाम 'समय' होगा। उसे शिवाश्रममें रहनेका अधिकार प्राप्त होगा। वहाँ रहनेवाले शिष्यको गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा उनके वशमें रहना चाहिये। इसके बाद गुरु करन्यास करके अपने हाथसे भस्म लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस भस्म तथा रुद्राक्षको अभिमन्त्रित करके शिष्यके हाथमें दे दे। साथ ही महादेवजीकी प्रतिमा अथवा उनका गूढ़ शरीर (लिङ्ग) और यथासम्भव पूजा, होम, जप एवं ध्यानके साधन भी दे। फिर वह शिष्य भी शिवाचार्यसे प्राप्त हुई उन वस्तुओंको उन्हींकी आज्ञासे बड़े आदरके साथ ग्रहण करे। उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे, आचार्यसे प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको भक्तिभावसे सिरपर रखकर ले जाय और उनकी रक्षा करे। अपनी रुचिके अनुसार मठमें या घरमें शंकरजीकी पूजा करता रहे, इसके बाद गुरु भक्ति, श्रद्धा और बुद्धिके अनुसार शिष्यको शिवाचार्यकी शिक्षा दे। शिवाचार्यने समयाचारके विषयमें जो कुछ कहा हो, जो आज्ञा दी हो तथा और भी जो कुछ बातें बतायी हों, उन सबको शिष्य शिरोधार्य करे। गुरुके आदेशसे ही वह शिवागमका ग्रहण, पठन और श्रवण करे। न तो अपनी इच्छासे करे और न दूसरेकी प्रेरणासे ही। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे समयाख्य-संस्कार—समयाचारकी दीक्षा-का वर्णन किया है। यह मनुष्योंको साक्षात् शिवधामकी प्राप्ति करानेके लिये सबसे उत्तम साधन है। (अध्याय १६)

षडध्वशोधनकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इसके बाद गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर उसके सम्पूर्ण बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये षडध्वशोधन करे। कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेपसे छः अध्वा कहे गये हैं। निवृत्ति आदि जो पाँच कलाएँ हैं, उन्हें विद्वान् पुरुष कलाध्वा कहते हैं। अन्य पाँच अध्वा इन पाँचों कलाओंसे व्याप्त हैं। शिवतत्त्वसे लेकर भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्त्व हैं, उनको 'तत्त्वाध्वा' कहा गया है। यह अध्वा शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है। आधारसे लेकर उन्मनातक 'भुवनाध्वा' कहा गया है। यह भेद और उपभेदोंको छोड़कर साठ है। रुद्रस्वरूप जो पचास वर्ण हैं, उन्हें 'वर्णाध्वा'की संज्ञा दी गयी है। पदोंको 'पदाध्वा' कहा गया है, जिसके अनेक भेद हैं। सब प्रकारके उपमन्त्रोंसे 'मन्त्राध्वा' होता है, जो परम विद्यासे व्याप्त है। जैसे तत्त्वनायक शिवकी तत्त्वोंमें गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वरकी मन्त्राध्वामें गणना नहीं होती। कलाध्वा व्यापक है और अन्य अध्वा व्याप्य हैं। जो इस बात-को ठीक-ठीक नहीं जानता है, वह अध्वशोधनका अधिकारी नहीं है। जिसने छः प्रकारके अध्वाका रूप नहीं जाना, वह उनके व्याप्य-व्यापक भावको समझ ही नहीं सकता है। इसलिये अध्वाओंके स्वरूप तथा उनके व्याप्य-व्यापक भावको ठीक-ठीक जानकर ही अध्वशोधन करना चाहिये।

पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल-निर्माणका कार्य वहाँ करके पूर्व दिशामें दो हाथ लम्बा-चौड़ा कलशमण्डल बनावे। तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्यसहित स्नान और नित्यकर्म करके मण्डलमें प्रविष्ट हो पहलेकी ही भाँति शिवजीकी पूजा करे। फिर वहाँ लगभग चार सेर चावलसे तैयार की गयी खीरमेंसे आधा प्रभुको नैवेद्य लगा दे और शेष खीरको होमके लिये रख दे। पूर्व दिशाकी ओर बने हुए अनेक रंगोंसे अलंकृत

१. निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता—ये पाँच कलाएँ हैं।

मण्डलमें गुरु पाँच कलशोंकी स्थापना करे। चारको तो चारों दिशाओंमें रक्खे और एकको मध्यभागमें। उन कलशोंपर मूलमन्त्रके 'नमः शिवाय' इन पाँचों अक्षरोंको बिन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे। मध्यवर्ती कलशपर **'ॐ नं ईशानाय नमः ईशानं स्थापयामि'** कहकर ईशानकी स्थापना करे। पूर्ववर्ती कलशपर **'ॐ मं तत्पुरुषाय नमः तत्पुरुषं स्थापयामि'** कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर **'ॐ शिं अघोराय नमः अघोरं स्थापयामि'** कहकर अघोरकी, वाम या उत्तरभागमें रक्खे हुए कलशपर **'ॐ वां वामदेवाय नमः वामदेवं स्थापयामि'** कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर **'ॐ यं सद्योजाताय नमः सद्योजातं स्थापयामि'** कहकर सद्योजातकी स्थापना करे। तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पूर्ववत् शिवाग्निमें होम आरम्भ करे। पहले होमके लिये जो आधी खीर रक्खी गयी थी, उसका हवन करके शेष भाग शिष्यको खानेके लिये दे। पहलेकी भाँति मन्त्रोंका तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे। प्रदीपन कर्ममें **'ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा'** का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अङ्गोंको तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। (अङ्गोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन छःकी गणना है।) इनमेंसे एक-एक अङ्गको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करे। फिर उस सूत्रको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बाँध दे। शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अँगूठेतक लटकता रहे। सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे। फिर मन्त्रज्ञ गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूत्रमें स्थापित करे। फिर पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्यके हृदयमें ताड़न करे और उससे चैतन्यको लेकर बारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदित कर उस लटकते हुए सूत्रको एक सूतसे जोड़े और **'हुं फट्'** मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे। फिर यह भावना करे कि शिष्यका शरीर सूत्रमय पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है, यह विषय इन्द्रिय और देह आदिका जनक है।

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम ले-लेकर जोड़ना चाहिये। यथा—

'व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि।' इति।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें 'नमः' जोड़कर इनकी पूजा करे। यथा—**शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः** इत्यादि। अथवा आकाशादिके बीजभूत (हं यं रं वं लं) मन्त्रोंद्वारा या पञ्चाक्षरके पाँच अक्षरोंमें नाद-बिन्दुका योग करके बीजरूप हुए उन मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाशोंकी व्याप्तिका चिन्तन करे। इसी तरह मलादि पाशोंमें भी कलाओंकी व्याप्ति देखे। फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे। तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर पुष्पसे ताड़न करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूत्रको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अङ्कित करे। इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकलापर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें पुनः शिवका पूजन करे। इसके बाद देवताके दक्षिण भागमें शिष्यको कुशयुक्त आसनपर मण्डलमें उत्तराभिमुख बिठाकर गुरु होमावशिष्ट चरु उसे दे। गुरुके दिये हुए उस चरुको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय। फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे। इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पञ्चगव्य दे। शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे। इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् बिठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे। शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दतौनके कोमल अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे। फिर उस दतौनको धोकर फेंक दे और कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर शिवका स्मरण करे। फिर गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे। उस फेंके हुए दतौनको यदि गुरुने पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब तो

मङ्गल है; अन्यथा अन्य दिशाओंमें देखनेपर अमङ्गल होता है। यदि निन्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौवन आहुतियोंका होम करे। तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके कानमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिण भागमें शिष्यको बिठाये। वहाँ नूतन वस्त्रपर बिछे हुए कुशके अभिमन्त्रित आसनपर पवित्र हुआ शिष्य मन-ही-मन शिवका ध्यान करते हुए पूर्वकी ओर सिरहाना करके रातमें सोये। शिखामें सूत बँधे हुए उस शिष्यकी शिखाको शिखासे ही बाँधकर गुरु नूतन वस्त्रद्वारा हुंकार उच्चारण करके उसे ढक दे। फिर शिष्यके चारों ओर भस्म, तिल और सरसोंसे तीन रेखा खींचकर फट् मन्त्रका जप करके रेखाके बाह्यभागमें दिक्पालोंके लिये बलि दे। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहाँ रातमें सोया रहे और सवेरा होनेपर उठकर अपने देखे हुए स्वप्नकी बातें गुरुको बताये।

(अध्याय १७)

षडध्वशोधनकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! तदनन्तर गुरुकी आज्ञा ले शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्मको समाप्त करके शिवका चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डलके समीप जाय। इसके बाद पूजाके सिवा पहले दिनका शेष सारा कृत्य नेत्रबन्धनपर्यन्त कर लेनेके अनन्तर गुरु उसे मण्डलका दर्शन कराये। आँखमें पट्टी बँधे रहनेपर शिष्य कुछ फूल बिखेरे। जहाँ भी फूल गिरें, वहीं उसको उपदेश दे। फिर पूर्ववत् उसे निर्माल्य मण्डलमें ले जाकर ईशान देवकी पूजा कराये और शिवाग्निमें हवन करे। यदि शिष्यने दुःस्वप्न देखा हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये सौ या पचास बार मूलमन्त्रसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर शिखामें बँधे हुए सूतको पूर्ववत् लटकाकर आधारशक्तिकी पूजासे लेकर निवृत्तिकला-सम्बन्धी वागीश्वरी-पूजनपर्यन्त सब कार्य होमपूर्वक करे।

इसके बाद निवृत्तिकलामें व्यापक सती वागीश्वरीको प्रणाम करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें प्राप्त करानेकी भावना करे। फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताड़न-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्यको लेकर द्वादशान्तमें निवेदन करे। फिर वहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त मुद्राद्वारा मानसिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें संयुक्त करे। देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्यक् योनियों (पशु-पक्षियों) की पाँच और मनुष्योंकी एक जाति। इस प्रकार कुल चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक साथ प्रवेश करानेके लिये गुरु मन-ही-मन भावनाद्वारा शिष्यकी आत्माको यथोचित रीतिसे वागीश्वरीके गर्भमें निविष्ट करे। वागीश्वरीमें गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका पूजन, प्रणाम और उनके निमित्त हवन करके यह चिन्तन करे कि यथावत्‌रूपसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और परा प्रीतिका चिन्तन करे। तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे। भोक्तृत्व-विषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति) रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके त्रिविध पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बँधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केवल स्वच्छ माने। फिर अग्निमें पूर्णाहुति देकर ब्रह्माका पूजन करे। ब्रह्माके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आज्ञा सुनाये।

पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम्।
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी॥

'पितामह! यह जीव शिवके परमपदको जानेवाला है। तुम्हें इसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुरुतर आज्ञा है।'

ब्रह्माजीको शिवका यह आदेश सुनाकर उनकी विधिवत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी अर्चना करे और उनके लिये तीन आहुति दे। तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा शुद्ध हुए शिष्यके आत्माका पूर्ववत् उद्धार करके अपनी आत्मा एवं सूत्रमें स्थापित कर वागीशका पूजन करे। उनके लिये तीन आहुति दे और प्रणाम करके विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् निवृत्त पुरुष प्रतिष्ठाकलाके साथ सांनिध्य स्थापित करे। उस समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके आत्माके प्रतिष्ठाकलामें प्रवेशकी भावना करे। इसके बाद प्रतिष्ठाका आवाहन करके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्य

सम्पन्न करनेके पश्चात् उसमें व्यापक वागीश्वरीदेवीका ध्यान करे। उनकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान है। ध्यानके पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करे।

तदनन्तर भगवान् विष्णुको परमात्मा शिवकी आज्ञा सुनाये। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठाका विद्यासे संयोग करे। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करे। साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरी देवीका चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्निमें पूर्णहोमान्त सब कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलरुद्रका आवाहन एवं पूजन आदि करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे उन्हें भी शिवकी आज्ञा सुना दे। तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्यकी दोषशान्तिके लिये विद्याकलाको लेकर उसकी व्याप्तिका अवलोकन करे और उसमें व्यापिका वागीश्वरी देवीका पूर्ववत् ध्यान करे। उनकी आकृति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण रंगकी है और वे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही हैं। इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करे। फिर महेश्वर देवका आवाहन, पूजन और उनके उद्देश्यसे हवन करके उन्हें मन-ही-मन शिवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनाये। तत्पश्चात् महेश्वरका विसर्जन करके अन्य शान्तिकलाको शान्त्यतीता कलातक पहुँचाकर उसकी व्यापकताका अवलोकन करे। उसके स्वरूपमें व्यापक वागीश्वरी देवीका चिन्तन करे। उनका स्वरूप आकाशमण्डलके समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति होमपर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करे। शेष कार्यकी पूर्ति करके सदाशिवकी विधिवत् पूजा करे और उन्हें भी अमित पराक्रमी शम्भुकी आज्ञा सुना दे। फिर वहाँ भी पूर्ववत् शिष्यके मस्तकपर शिवकी पूजा करके उन वागीश्वर देवको प्रणाम करे और उनका विसर्जन कर दे।

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे पूर्ववत् शिष्यके मस्तकका प्रोक्षण करके यह चिन्तन करे कि शान्त्यतीताकलाका शिव-मन्त्रमें विलय हो गया। छहों अध्वाओंसे परे जो शिवकी सर्वाध्वव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूपका ध्यान करे। फिर उस शक्तिके आगे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हुए शिष्यको ले आकर बिठा दे और आचार्य कैंचीको धोकर शिव-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखाका छेदन करे। उस शिखाको पहले गोबरमें रखकर फिर 'ॐ नमः शिवाय वौषट्' का उच्चारण करके उसका शिवाग्निमें हवन कर दे। फिर कैंची धोकर रख दे और शिष्यकी चेतनाको उसके शरीरमें लौटा दे। इसके बाद जब शिष्य स्नान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डलके निकट ले जाय और शिवको दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोपजनित दोषकी शुद्धिके लिये यथोचित रीतिसे पूजा करे। तदनन्तर वाचक मन्त्रका धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। फिर मन्त्र-वैकल्यजनित दोषकी शुद्धिके लिये देवेश्वर शिवका पूजन करके मन्त्रका मानसिक उच्चारण करते हुए अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। वहाँ मण्डलमें विराजमान अम्बा पार्वतीसहित शम्भुकी समाराधना करके तीन आहुतियोंका हवन करनेके पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करे—

> **भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः।**
> **कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम्॥**

'भगवन्! आपकी कृपासे इस शिष्यकी षडध्वशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधाममें पहुँचाइये।'

इस तरह भगवान्से प्रार्थना कर नाड़ी-संधानपूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति होमपर्यन्त कर्मका सम्पादन करके भूतशुद्धि करे। स्थिर-तत्त्व (पृथ्वी), अस्थिर-तत्त्व (वायु), शीत-तत्त्व (जल), उष्ण-तत्त्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश-तत्त्वका भूतशुद्धि कर्ममें चिन्तन करे। यह चिन्तन उन भूतोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे ही करना चाहिये। भूतोंकी ग्रन्थियोंका छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओंसहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोगके द्वारा उन्हें परम शिवमें नियोजित करे। इस प्रकार शिष्यके शरीरका शोधन करके भावनाद्वारा उसे दग्ध करे। फिर उसकी राखको भावनाद्वारा ही अमृतकणोंसे आप्लावित करे। तदनन्तर उसमें आत्माकी स्थापना करके उसके विशुद्ध-अध्वमय शरीरका निर्माण करे। उसमें पहले सम्पूर्ण अध्वोंमें व्यापक शुद्ध शान्त्यतीतकलाका शिष्यके मस्तकपर न्यास करे। फिर शान्तिकलाका मुखमें, विद्याकलाका गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त-भागमें, प्रतिष्ठाकलाका उससे नीचेके अङ्गोंमें चिन्तन करे। तदनन्तर अपने बीजोंसहित सूत्र-मन्त्रका न्यास करके सम्पूर्ण अङ्गोंसहित शिष्यको शिष्य-स्वरूप समझे। फिर उसके हृदयकमलमें महादेवजीका आवाहन करके पूजन करे। गुरुको चाहिये कि शिष्यमें भगवान् शिवके स्वरूपकी नित्य उपस्थिति मानकर शिवके तेजसे तेजस्वी हुए उस शिष्यके अणिमा आदि गुणोंका भी

चिन्तन करे। फिर भगवान् शिवसे 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। इसी प्रकार पुनः शिष्यके लिये निम्नाङ्कित गुणोंका ही उपपादन करे। सर्वज्ञता, तृप्ति, आदि-अन्तरहित बोध, अलुप्त-शक्तिमत्ता, स्वतन्त्रता और अनन्तशक्ति—इन गुणोंकी उसमें भावना करे।

इसके बाद महादेवजीसे आज्ञा लेकर उन देवेश्वरका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशोंद्वारा क्रमशः शिष्यका अभिषेक करे। तदनन्तर शिष्यको अपने पास बिठाकर पूर्ववत् शिवकी अर्चना करके उनकी आज्ञा ले उस शिष्यको शैवी विद्याका उपदेश करे। उस शैवी विद्याके आदिमें ओंकार हो। वह उस ओंकारसे ही सम्पुटित हो और उसके अन्तमें नमः लगा हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनोंसे संयुक्त हो। यथा ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ नमः। इसी तरह शक्ति विद्याका भी उपदेश करे। यथा—ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः। इन विद्याओंके साथ ऋषि, छन्द, देवता, शिवा और शिवकी शिवरूपता, आवरण-पूजा तथा शिव-सम्बन्धी आसनोंका भी उपदेश दे। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका पुनः पूजन करके कहे—'भगवन्! मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें' इस तरह भगवान् शिवसे निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर शिष्यसहित गुरु पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर महादेवजीको प्रणाम करे। प्रणामके अनन्तर उस मण्डलसे और अग्निसे भी उनका विसर्जन कर दे। इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्योंका क्रमशः पूजन करना चाहिये। सदस्यों और ऋत्विजोंकी अपने वैभवके अनुसार सेवा करनी चाहिये। साधक यदि अपना कल्याण चाहे तो धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे। (अध्याय १८)

साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! अब मैं साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करूँगा। इस बातकी सूचना मैं पहले दे चुका हूँ। पूर्ववत् मण्डलमें कलशपर स्थापित महादेवजीकी पूजा करनेके पश्चात् हवन करे। फिर नंगे सिर शिष्यको उस मण्डलके पास भूमिपर बिठावे। पूर्णाहुति होमपर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूल मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। श्रेष्ठ गुरु कलशोंसे मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करके संदीपन कर्म करे। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मोंका सम्पादन करके अभिषेक करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यको उत्तम मन्त्र दे; वहाँ विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित करके पुष्पयुक्त जलसे शिष्यके हाथपर शैवी विद्याको समर्पित करे और इस प्रकार कहे—

तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः।
भवत्वेष महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥

'सौम्य! यह महामन्त्र परमेश्वर शिवके कृपाप्रसादसे तुम्हारे लिये ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सम्पूर्ण सिद्धियोंके फलको देनेवाला हो।'

ऐसा कह महादेवजीकी पूजा करके उनकी आज्ञा ले गुरु साधकको साधन और शिवयोगका उपदेश दे। गुरुके उस उपदेशको सुनकर मन्त्रसाधक शिष्य उसके सामने ही विनियोगका मन्त्र-साधन आरम्भ करे। मूलमन्त्रके साधनको पुरश्चरण कहते हैं; क्योंकि विनियोग नामक कर्म सबसे पहले आचरणमें लाने योग्य है। यही पुरश्चरण शब्दकी व्युत्पत्ति है। मुमुक्षुके लिये मन्त्रसाधन अत्यन्त कर्तव्य है; क्योंकि किया हुआ मन्त्रसाधन इहलोक और परलोकमें साधकके लिये कल्याणदायक होता है।

शुभ दिन और शुभ देशमें निर्दोष समयमें दाँत और नख साफ करके अच्छी तरह स्नान करे और पूर्वाह्णकालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्त गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणोंसे अलंकृत हो, सिरपर पगड़ी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारण कर देवालयमें, घरमें या और किसी पवित्र तथा मनोहर देशमें पहलेसे अभ्यासमें लाये गये सुखासनसे बैठकर शिव-शास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार अपने शरीरको शिवरूप बनाये। फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिवका पूजन करके उन्हें खीरका नैवेद्य अर्पित करे। क्रमशः उनकी पूजा पूरी करके उन प्रभुको प्रणाम करे और उनके मुखसे आज्ञा पाकर एक करोड़, आधा करोड़ अथवा चौथाई करोड़ शिवमन्त्रका जप करे अथवा बीस लाख या दस लाख जप करे। उसके बादसे सदा खीर एवं क्षार नमकरहित अन्य पदार्थका दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करे। अहिंसा, क्षमा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम) का पालन करता रहे। खीर न मिले तो फल, मूल आदिका भोजन करे। भगवान्

शिवने निम्नाङ्कित भोज्य पदार्थोंका विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं । पहले तो चरु भक्षण करने योग्य है । उसके बाद सत्तूके कण, जौके आटेका हलुआ, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल—ये आहारके लिये विहित हैं। इन भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन मौनभावसे भोजन करे । इस साधनमें विशेष रूपसे ऐसा करनेका विधान है । व्रतीको चाहिये कि एक सौ आठ मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए पवित्र जलसे स्नान करे अथवा नदी-नदके जलको यथाशक्ति मन्त्र-जपके द्वारा अभिमन्त्रित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन तर्पण करे और शिवाग्निमें आहुति दे । हवनीय पदार्थ सात, पाँच या तीन द्रव्योंके मिश्रणसे तैयार करे अथवा केवल घृत-से ही आहुति दे ।

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्तिभावसे शिवकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अथवा प्रतिदिन बिना भोजन किये ही एकाग्रचित्त हो एक सहस्र मन्त्रका जप किया करे । मन्त्र-साधनाके बिना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उसका अमङ्गल ही होता है । वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है । साधन, विनियोग तथा नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारण कर कुश-की पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये ।

(अध्याय १९)

योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! जिसका इस प्रकार संस्कार किया गया हो और जिसने पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान पूरा कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु उसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, योग्यता न होनेपर न करे । इस अभिषेकके लिये पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे । इनमें चार तो चारों दिशाओंमें हों और पाँचवाँ मध्यमें हो। पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर प्रतिष्ठाकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर शान्तिकलाका और मध्यवर्ती कलशपर शान्त्यतीताकलाका न्यास करके उनमें रक्षा आदिका विधान करके धेनुमुद्रा बाँधकर कलशों-को अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुतिपर्यन्त होम करे । फिर नंगे सिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु-मन्त्रोंका तर्पण आदि करे और पूर्णाहुतिपर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यको अभिषेकके लिये ऊँचे आसनपर बिठाये । पहले सकलीकरणकी क्रिया करके पञ्च-कलारूपी शिष्यके शरीरमें मन्त्रका न्यास करे । फिर उस शिष्यको बाँधकर शिवको सौंप दे । तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे युक्त कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिवमन्त्रसे अभिषेक करे । अन्तमें मध्यवर्ती कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये । इसके बाद शिवभावको प्राप्त हुए आचार्य शिष्यके मस्तकपर शिवहस्त[1] रक्खें और उसे शिवाचार्यकी संज्ञा दे । तदनन्तर उसको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके शिवमण्डलमें महादेवजीकी आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दे। फिर देवेश्वरकी पूजा एवं भूतलपर साष्टाङ्ग प्रणाम करके गुरु मस्तकपर हाथ जोड़ भगवान् शिव-से यह निवेदन करे—

> भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः ।
> अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम् ॥

'भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने इस योग्य शिष्यको आचार्य बना दिया है । देव ! अब आप अनुग्रह करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें ।' इस प्रकार कहकर गुरु शिष्यके साथ पुनः शिवको प्रणाम करे और दिव्य शिवशास्त्रका शिवकी ही भाँति पूजन करे । इसके बाद शिवकी आज्ञा लेकर आचार्य अपने उस शिष्यको अपने दोनों हाथोंसे शिवसम्बन्धी ज्ञानकी पुस्तक दे। वह उस शिवागम विद्याको मस्तकपर रखकर फिर उसे विद्यासनपर रक्खे और यथोचित रीतिसे

१. गुरु पहले अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध द्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे । इस प्रकार वह 'शिवहस्त' हो जाता है । 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्ध चित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं । उस 'शिवहस्त'के स्पर्श-मात्रसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है ।

प्रणाम कर उसकी पूजा करे । तदनन्तर गुरु उसे राजोचित चिह्न प्रदान करे; क्योंकि आचार्य पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पानेके भी योग्य है ।

तत्पश्चात् गुरु उसे पूर्वाचार्योंद्वारा आचरित शिवशास्त्रोक्त आचारका अनुशासन करे, जिससे सब लोकोंमें सम्मान होता है । 'आचार्य' पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त लक्षणोंके अनुसार यत्नपूर्वक शिष्योंकी परीक्षा करके उनका संस्कार करनेके अनन्तर उन्हें शिवज्ञानका उपदेश दे । इस प्रकार वह बिना किसी आयासके शौच, क्षमा, दया, अस्पृहा (कामना-त्याग) तथा अनसूया (ईर्ष्या-त्याग) आदि गुणों-का यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे । इस तरह उस शिष्यको आदेश देकर मण्डलसे शिवका, शिव-कलशोंका तथा अग्नि आदिका विसर्जन करके वह सदस्योंका भी पूजन (दक्षिणा आदिसे सत्कार) करे ।

अथवा, अपने गणोंसहित गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे । जहाँ दो या तीन संस्कारोंका प्रयोग करना हो, वहाँके लिये विधिका उपदेश किया जाता है—वहाँ आदिमें ही अध्वशुद्धि-प्रकरणमें कहे अनुसार कलशोंकी स्थापना करे । अभिषेकके सिवा समयाचार दीक्षाके सब कर्म करके शिवका पूजन और अध्वशोधन करे । अध्वशुद्धि हो जानेपर फिर महादेवजीकी पूजा करे । इसके बाद हवन और मन्त्र-तर्पण करके दीपन-कर्म करे तथा महेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यके हाथमें मन्त्र समर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करे ।

अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-संस्कारका क्रमशः अनुचिन्तन करके गुरु अभिषेकपर्यन्त अध्वशुद्धिका कार्य सम्पन्न करे । वहाँ शान्त्यतीता आदि कलाओंके लिये जिस विधिका अनुष्ठान किया गया है वह सारा विधान तीन तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये भी कर्तव्य है । शिव-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व कहे गये हैं । शक्तिमें पहले शिवका, फिर विद्याका और उसके बाद उसकी आत्माका आविर्भाव हुआ है । शिवसे 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा' ।' उससे 'विद्याकलाध्वा' विद्यासे परिशिष्ट 'प्रतिष्ठाकलाध्वा' और उससे 'निवृत्तिकलाध्वा' व्याप्त है । शिवशास्त्रके पारंगत मनीषी पुरुष मन्त्रमूलक शाम्भव (शैव) संस्कारको दुर्लभ मानकर शाक्त-संस्कारका प्रतिपादन करते हैं । श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण यह चतुर्विध संस्कार कर्मका वर्णन किया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय २०)

अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन

तदनन्तर श्रीकृष्णके पूछनेपर नित्य-नैमित्तिक कर्म तथा न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्यु बोले—अब मैं पूजाके विधानका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ । इसे शिवशास्त्रमें शिवने शिवाके प्रति कहा है । मनुष्य अग्नि-होत्रपर्यन्त अन्तर्यागका अनुष्ठान करके पीछे बहिर्याग (बाह्य पूजन) करे । (उसकी विधि इस प्रकार है—) अन्तर्याग-में पहले पूजाद्रव्योंको मनसे कल्पित और शुद्ध करके गणेश-जीका विधिपूर्वक चिन्तन एवं पूजन करे । तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर भागमें क्रमशः नन्दीश्वर और सुयशाकी आराधना करके विद्वान् पुरुष मनसे उत्तम आसनकी कल्पना करे । सिंहासन, योगासन अथवा तीनों तत्त्वोंसे युक्त निर्मल पद्मासन-की भावना करे । उसके ऊपर सर्वमनोहर साम्ब-शिवका ध्यान करे । वे शिव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और सम्पूर्ण अवयवोंसे शोभायमान हैं । वे सबसे बढ़कर हैं और समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं । उनके हाथ-पैर लाल हैं । उनका मुस्कराता हुआ मुख कुन्द और चन्द्रमाके समान शोभा पाता है । उनकी अङ्गकान्ति शुद्धस्फटिकके समान निर्मल है । तीन नेत्र प्रफुल्ल कमलकी भाँति सुन्दर हैं । चार भुजाएँ, उत्तम अङ्ग और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये भगवान् हर अपने दो हाथोंमें वरद तथा अभयकी मुद्रा धारण करते हैं और शेष दो हाथोंमें मृगमुद्रा एवं टङ्क लिये हुए हैं । उनकी कलाईमें सर्पोंकी माला कड़ेका काम देती है । गलेके भीतर मनोहर नील चिह्न शोभित होता है, उनकी कहीं कोई उपमा नहीं है । वे अपने अनुगामी सेवकों तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ विराजमान हैं ।

इस तरह ध्यान करके उनके वामभागमें महेश्वरी शिवाका चिन्तन करे । शिवाकी अङ्गकान्ति प्रफुल्ल कमल-दलके समान परम सुन्दर है । उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं । मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित है । मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं । वे नील उत्पलदलके समान कान्तिमती हैं । मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करती हैं । उनके पीन पयोधर अत्यन्त गोल, घनीभूत, ऊँचे और स्निग्ध हैं । शरीरका मध्यभाग कृश है । नितम्बभाग स्थूल है । वे महीन पीले वस्त्र धारण किये हुए हैं । सम्पूर्ण

आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। ललाटपर लगे हुए सुन्दर तिलकसे उनका सौन्दर्य और खिल उठा है। विचित्र फूलोंकी मालासे गुम्फित केशपाश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी आकृति सब ओरसे सुन्दर और सुडौल है। मुख लज्जासे कुछ-कुछ झुका है। वे दाहिने हाथमें शोभाशाली सुवर्णमय कमल धारण किये हुए हैं और दूसरे हाथको दण्डकी भाँति सिंहासनपर रखकर उसका सहारा ले उस महान् आसनपर बैठी हुई हैं। शिवा देवी समस्त पाशोंका छेदन करनेवाली साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं। इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके शुभ एवं श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुष्पोंद्वारा उनका पूजन करे।

अथवा उपर्युक्त वर्णनके अनुसार प्रभु शिवकी एक मूर्ति बनवा ले, उसका नाम शिव या सदाशिव हो। दूसरी मूर्ति शिवाकी होनी चाहिये; उसका नाम माहेश्वरी, षड्विंशका अथवा 'श्रीकण' हो। फिर अपने ही शरीरकी भाँति मूर्तिमें मन्त्र-न्यास आदि करके उस मूर्तिमें सत्-असत्से परे मूर्तिमान् परम शिवका ध्यान करे। इसके बाद बाह्य पूजनके ही क्रमसे मनसे पूजा सम्पादित करे। तत्पश्चात् समिधा और घी आदिसे नाभिमें होमकी भावना करे। तदनन्तर भ्रूमध्यमें शुद्ध दीपशिखाके समान आकारवाले ज्योतिर्मय शिवका ध्यान करे। इस प्रकार अपने अङ्गमें अथवा स्वतन्त्र विग्रहमें शुभ ध्यानयोगके द्वारा अग्निमें होमपर्यन्त सारा पूजन करना चाहिये। यह विधि सर्वत्र ही समान है। इस तरह ध्यानमय आराधनाका सारा क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिङ्ग-में, वेदीपर अथवा अग्निमें पूजन करे। (अध्याय २१—२३)

शिवपूजनकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! विशुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे गन्ध, चन्दनमिश्रित जलके द्वारा पूजा-स्थानका प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद वहाँ फूल बिखेरे। अस्त्र-मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके विघ्नोंको भगाये। फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से पूजा-स्थानको सब ओरसे अवगुण्ठित करे। अस्त्र-मन्त्रका सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास करके पूजाभूमिकी कल्पना करे। वहाँ सब ओर कुश बिछा दे और प्रोक्षण आदिके द्वारा उस भूमिका प्रक्षालन करे। पूजा-सम्बन्धी समस्त पात्रोंका शोधन करके द्रव्यशुद्धि करे। प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीयपात्र— इन चारोंका प्रक्षालन, प्रोक्षण और वीक्षण करके इनमें शुभ जल डाले और जितने मिल सकें, उन सभी पवित्र द्रव्योंको उनमें डाले। पञ्चरत्न, चाँदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, पल्लव और कुश ये सब अनेक प्रकारके पुण्य द्रव्य हैं। स्नान और पीनेके जलमें विशेषरूपसे सुगन्ध आदि एवं शीतल मनोज्ञ पुष्प आदि छोड़े। पाद्यपात्रमें खश और चन्दन छोड़ना चाहिये। आचमनीयपात्रमें विशेषतः जायफल, कङ्कोल, कपूर, सहिजन और तमालका चूर्ण करके डालना चाहिये। इलायची सभी पात्रोंमें डालनेकी वस्तु है। कपूर, चन्दन, कुशाग्रभाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, घी, सरसो, फूल और भस्म—इन सबको अर्घ्यपात्रमें छोड़ना चाहिये। कुश, फूल, जौ, धान, सहिजन, तमाल और भस्म—इन सबका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेपण करना चाहिये। सर्वत्र मन्त्र-न्यास करके कवच-मन्त्रसे प्रत्येक पात्रको बाहरसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके धेनुमुद्रा दिखाये। पूजाके सभी द्रव्योंका प्रोक्षणीपात्रके जलसे मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षण करके विधिवत् शोधन करे। श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि अधिक पात्रोंके न मिलनेपर सब कर्मोंमें एकमात्र प्रोक्षणीपात्रको ही सम्पादित करके रक्खे और उसीके जलसे सामान्यतः अर्घ्य आदि दे। तत्पश्चात् मण्डपके दक्षिण द्वारभागमें भक्ष्य-भोज्य आदिके क्रमसे विधिपूर्वक विनायकदेवकी पूजा करके अन्तःपुरके स्वामी साक्षात् नन्दीकी भलीभाँति पूजा करे। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णमय पर्वतके समान है। समस्त आभूषण उसकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तकपर बालचन्द्रका मुकुट सुशोभित होता है। उनकी मूर्ति सौम्य है। वे तीन नेत्र और चार भुजाओंसे युक्त हैं। उनके एक हाथमें चमचमाता हुआ त्रिशूल, दूसरेमें मृगी, तीसरेमें टङ्क और चौथेमें तीखा बेंत है। उनके मुखकी कान्ति चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल है। मुख बानरके सदृश है।

द्वारके उत्तर पार्श्वमें उनकी पत्नी सुयशा हैं, जो मरुद्गणोंकी कन्या हैं। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हैं और पार्वतीजीके चरणोंका शृङ्गार करनेमें लगी रहती हैं। उनका पूजन करके परमेश्वर शिवके भवनके भीतर प्रवेश करे और उन द्रव्योंसे शिवलिङ्गका पूजन करके निर्माल्यको वहाँसे हटा ले। तदनन्तर फूल धोकर शिवलिङ्गके मस्तकपर उसकी शुद्धिके लिये रक्खे। फिर हाथमें फूल ले यथाशक्ति मन्त्रका जप करे। इससे मन्त्रकी शुद्धि होती है। ईशान कोणमें चण्डीकी आराधना करके उन्हें पूर्वोक्त निर्माल्य अर्पित करे। तत्पश्चात् [illegible] लिये आसनकी कल्पना

करे। क्रमशः आधार आदिका ध्यान करे--कल्याणमयी आधारशक्ति भूतलपर विराजमान हैं और उनकी अङ्गकान्ति श्याम है। इस प्रकार उनके स्वरूपका चिन्तन करे। उनके ऊपर फन उठाये सर्पाकार अनन्त बैठे हैं; जिनकी अङ्गकान्ति उज्ज्वल है। वे पाँच फनोंसे युक्त हैं और आकाशको चाटते हुए-से जान पड़ते हैं। अनन्तके ऊपर भद्रासन है, जिसके चारों पायोंमें सिंहकी आकृति बनी हुई है। वे चारों पाये क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप हैं। धर्म नामवाला पाया आग्नेय कोणमें है और उसका रंग सफेद है। ज्ञान नामक पाया नैर्ऋत्य कोणमें है और उसका रंग लाल है। वैराग्य वायव्य कोणमें है और उसका रंग पीला है तथा ऐश्वर्य ईशान कोणमें है और उसका वर्ण श्याम है। अधर्म आदि उस आसनके पूर्वादि भागोंमें क्रमशः स्थित हैं अर्थात् अधर्म पूर्वमें, अज्ञान दक्षिणमें, अवैराग्य पश्चिममें और अनैश्वर्य उत्तरमें हैं। इनके अङ्ग राजावर्त मणिके समान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। इस भद्रासनको ऊपरसे आच्छादित करनेवाला श्वेत निर्मल पद्ममय आसन है। अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य—गुण ही उस कमलके आठ दल हैं; वामदेव आदि रुद्र अपनी वामा आदि शक्तियोंके साथ उस कमलके केसर हैं। वे मनोन्मनी आदि अन्तःशक्तियाँ ही बीज हैं, अपर वैराग्य कर्णिका है, शिवस्वरूप ज्ञान नाल है, शिवधर्म कन्द है, कर्णिकाके ऊपर तीन मण्डल (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल और वह्निमण्डल) हैं और उन मण्डलोंके ऊपर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्वरूप त्रिविध आसन हैं। इन सब आसनोंके ऊपर विचित्र बिछौनोंसे आच्छादित एक सुखद दिव्य आसनकी कल्पना करे, जो शुद्ध विद्यासे अत्यन्त प्रकाशमान हो। आसनके अनन्तर आवाहन, स्थापन, संनिरोधन, निरीक्षण एवं नमस्कार करे। इन सबकी पृथक्-पृथक् मुद्राएँ बाँधकर दिखाये।*

तदनन्तर पाद्य, आचमन, अर्घ्य, (स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत,) गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, (नैवेद्य) और ताम्बूल देकर शिवा और शिवको शयन कराये अथवा उपर्युक्त रूपसे आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमन्त्र एवं अन्य ईशानादि ब्रह्म-मन्त्रोंद्वारा सकलीकरणकी क्रिया करके देवी पार्वतीसहित परम कारण शिवका आवाहन करे। भगवान् शिवकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे निश्चल, अविनाशी, समस्त लोकोंके परम कारण, सर्वलोक-स्वरूप, सबके बाहर-भीतर विद्यमान, सर्वव्यापी, अणुसे अणु और महान्से भी महान् हैं। भक्तोंको अनायास ही दर्शन देते हैं। सबके ईश्वर एवं अव्यय हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंके लिये भी अगोचर हैं। सम्पूर्ण वेदोंके सारतत्त्व हैं। विद्वानोंके भी दृष्टिपथमें नहीं आते हैं। आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। भवरोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औषधरूप हैं। शिवतत्त्वके रूपमें विख्यात हैं और सबका कल्याण करनेके लिये जगत्में सुस्थिर शिवलिङ्गके रूपमें विद्यमान हैं।

ऐसी भावना करके भक्तिभावसे गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य--इन पाँच उपचारोंद्वारा उत्तम शिवलिङ्गका पूजन करे। परमात्मा महेश्वर शिवकी लिङ्गमयी मूर्तिके स्नान-कालमें जय-जयकार आदि शब्द और मङ्गलपाठ करे। पञ्चगव्य, घी, दूध, दही, मधु और शर्कराके साथ फल-मूलके सारतत्त्वसे, तिल, सरसों, सत्तूके उबटनसे, जौ आदिके उत्तम बीजोंसे, उड़द आदिके चूर्णोंसे तथा आटा आदिसे आलेपन करके गरम जलसे शिवलिङ्गको नहलाये। लेप और गन्धके निवारणके लिये बिल्वपत्र आदिसे रगड़े। फिर जलसे नहलाकर चक्रवर्ती सम्राट्के लिये उपयोगी उपचारोंसे (अर्थात् सुगन्धित तेल-फुलेल आदिके द्वारा) सेवा करे। सुगन्धयुक्त आँवला और हल्दी भी क्रमशः अर्पित करे। इन सब वस्तुओंसे शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिका भलीभाँति शोधन करके चन्दन-मिश्रित जल, कुश-पुष्पयुक्त जल, सुवर्ण एवं रत्नयुक्त जल तथा मन्त्रसिद्ध जलसे क्रमशः स्नान कराये। इन सब द्रव्योंका मिलना सम्भव न होनेपर यथासम्भव संगृहीत वस्तुओंसे युक्त जलद्वारा अथवा केवल मन्त्राभिमन्त्रित जलद्वारा श्रद्धापूर्वक शिवको स्नान कराये। कलश, शङ्ख और वर्धनीसे तथा कुश और पुष्पसे युक्त हाथके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक इष्टदेवता-को नहलाना चाहिये। पवमानसूक्त, रुद्रसूक्त, नीलरुद्रसूक्त, त्वरितमन्त्र, लिङ्गसूक्त, आदिसूक्त, अथर्वशीर्ष, ऋग्वे

* दोनों हाथोंकी अञ्जलि बनाकर अनामिका अङ्गुलिके मूलपर्वपर अंगूठेको लगा देना 'आवाहन' मुद्रा है। इसी आवाहन मुद्राको अधोमुख कर दिया जाय तो वह 'स्थापन' मुद्रा हो जाती है। यदि मुट्ठीके भीतर अंगूठेको डाल दिया जाय और दोनों हाथोंकी मुट्ठी संयुक्त कर दी जाय तो वह 'संनिरोधन' मुद्रा कही गयी है। दोनों मुट्ठियोंको उत्तान कर देनेपर 'सम्मुखीकरण' नामक मुद्रा होती है। इसीको यहाँ 'निरीक्षण' नामसे कहा गया है। शरीरको दण्डकी भाँति देवताके सामने डाल देना, मुखको नीचेकी ओर रखना और दोनों हाथोंको देवताकी ओर फैला देना—साष्टाङ्ग प्रणामकी इस क्रियाको ही यहाँ 'नमस्कार' मुद्रा कहा गया है।

सामवेद तथा शिवसम्बन्धी ईशानादि पञ्च ब्रह्म-मन्त्र, शिवमन्त्र तथा प्रणवसे देवदेवेश्वर शिवको स्नान कराये।

जैसे महादेवजीको स्नान कराये, उसी तरह महादेवी-पार्वतीको भी स्नान आदि कराना चाहिये। उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि वे दोनों सर्वथा समान हैं। पहले महादेवजीके उद्देश्यसे स्नान आदि क्रिया करके फिर देवीके लिये उन्हीं देवाधिदेवके आदेशसे सब कुछ करे। अर्धनारीश्वर-की पूजा करनी हो तो उसमें पूर्वापरका विचार नहीं है। अतः उसमें महादेव और महादेवीकी साथ-साथ पूजा होती रहती है। शिवलिङ्गमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्द्धनारीश्वरकी भावनासे सभी उपचारोंका शिव और शिवाके लिये एक साथ ही उपयोग होता है। पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिङ्गका अभिषेक करके उसे वस्त्रसे पोंछे। फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत चढ़ावे। तत्पश्चात् पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीने योग्य जल, मुखशुद्धि, पुनराचमन, मुखवास तथा सम्पूर्ण रत्नोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पवित्र पुष्पमालाएँ, छत्र, चँवर, व्यजन, ताड़का पंखा और दर्पण देकर सब प्रकारकी मङ्गल-मयी वाद्यध्वनियोंके साथ इष्टदेवकी नीराजना करे (आरती उतारे)। उस समय गीत और नृत्य आदिके साथ जय-जयकार भी होनी चाहिये। सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीके सुन्दर पात्रमें कमल आदिके शोभायमान फूल रक्खे। कमलके बीज तथा दही, अक्षत आदि भी डाल दे। त्रिशूल, शङ्ख, दो कमल, नन्द्यावर्त नामक शङ्खविशेष, सूखे गोबरकी आग, श्रीवत्स, स्वस्तिक, दर्पण, वज्र तथा अग्नि आदिसे चिह्नित पात्रमें आठ दीपक रक्खे। वे आठों आठ दिशाओंमें रहें और एक नवाँ दीपक मध्यभागमें रहे। इन नवों दीपकोंमें वामा आदि नव शक्तियोंका पूजन करे। फिर कवचमन्त्रसे आच्छादन और अस्त्र-मन्त्रद्वारा सब ओरसे संरक्षण करके धेनुमुद्रा दिखाकर दोनों हाथोंसे पात्रको ऊपर उठाये अथवा पात्रमें क्रमशः पाँच दीप रक्खे। चारको चारों कोनोंमें और एकको बीचमें स्थापित करे। तत्पश्चात् उस पात्रको उठाकर शिवलिङ्ग या शिवमूर्ति आदिके ऊपर क्रमशः तीन बार प्रदक्षिण क्रमसे घुमाये और मूलमन्त्रका उच्चारण करता रहे। तदनन्तर मस्तकपर अर्घ्य और सुगन्धित भस्म चढ़ाये। फिर पुष्पाञ्जलि देकर उपहार निवेदन करे। इसके बाद जल देकर आचमन कराये। फिर सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त पाँच ताम्बूल भेंट करे। तत्पश्चात् प्रोक्षणीय पदार्थोंका प्रोक्षण करके नृत्य और गीतका आयोजन करे। लिङ्ग या मूर्ति आदिमें शिव तथा पार्वतीका चिन्तन करते हुए यथाशक्ति शिव-मन्त्रका जप करे। जपके पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ, आत्मसमर्पण तथा कार्यका विनयपूर्वक विज्ञापन करे। फिर अर्घ्य और पुष्पाञ्जलि दे विधिवत् मुद्रा बाँधकर इष्टदेवसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित देवताका विसर्जन करके अपने हृदयमें उसका चिन्तन करे। पाद्यसे लेकर मुखवासपर्यन्त पूजन करना चाहिये अथवा अर्घ्य आदिसे पूजन आरम्भ करना चाहिये या अधिक संकटकी स्थितिमें प्रेमपूर्वक केवल फूलमात्र चढ़ा देना चाहिये। प्रेमपूर्वक फूलमात्र चढ़ा देनेसे ही परम धर्मका सम्पादन हो जाता है। जबतक प्राण रहे, शिवका पूजन किये बिना भोजन न करे। (अध्याय २४)

शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! दीपदानके बाद और नैवेद्य-निवेदनसे पहले आवरणपूजा करनी चाहिये अथवा आरतीका समय आनेपर आवरण-पूजा करे। वहाँ शिव या शिवाके प्रथम आवरणमें ईशानसे लेकर 'सद्योजातपर्यन्त' तथा हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्तका पूजन करे।* ईशानमें, पूर्वभागमें, दक्षिणमें, उत्तरमें, पश्चिममें, आग्नेयकोणमें, ईशान-कोणमें, नैर्ऋत्यकोणमें, वायव्यकोणमें, फिर ईशानकोणमें तत्पश्चात् चारों दिशाओंमें गर्भावरण अथवा मन्त्र-संघातकी पूजा बतायी गयी है या हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त अङ्गोंकी पूजा करे। इनके बाह्यभागमें पूर्व दिशामें इन्द्रका, दक्षिण दिशामें यमका, पश्चिम दिशामें वरुणका, उत्तर दिशामें कुबेरका, ईशानकोणमें ईशानका, अग्निकोणमें अग्निका, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिका, वायव्यकोणमें वायुका, नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्त या विष्णुका तथा ईशान और पूर्वके बीचमें ब्रह्माका पूजन करे। कमलके बाह्यभागमें वज्रसे लेकर कमलपर्यन्त लोकेश्वरोंके सुप्रसिद्ध आयुधोंका पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। यह ध्यान करना चाहिये कि समस्त आवरणदेवता ... महादेव और महादेवीकी

* अर्थात्—

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पांच मूर्तियोंका तथा हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इन अङ्गोंका पूजन करना चाहिये।

ओर दोनों हाथ जोड़े देख रहे हैं। फिर सभी आवरण देवताओंको प्रणाम करके 'नमः' पदयुक्त अपने-अपने नामसे पुष्पोपचार समर्पणपूर्वक उनका क्रमशः पूजन करे (यथा **इन्द्राय नमः पुष्पं समर्पयामि** इत्यादि)। इसी तरह गर्भावरणका भी अपने आवरण-सम्बन्धी मन्त्रसे यजन करे। योग, ध्यान, होम, जप, बाह्य अथवा आभ्यन्तरमें भी देवताका पूजन करना चाहिये। इसी तरह उनके लिये छः प्रकारकी हवि भी देनी चाहिये—किसी एक शुद्ध अन्नका बना हुआ, मूँगमिश्रित अन्न या मूँगकी खिचड़ी, खीर, दधिमिश्रित अन्न, गुड़का बना हुआ पकवान तथा मधुसे तर किया हुआ भोज्य पदार्थ। इनमेंसे एक या अनेक हविष्यको नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे संयुक्त तथा गुड़ और खाँड़से सम्पन्न करके नैवेद्यके रूपमें अर्पित करना चाहिये। साथ ही मक्खन और उत्तम दही परोसना चाहिये। पूआ आदि अनेक प्रकारके भक्ष्य-पदार्थ और स्वादिष्ट फल देने चाहिये। लाल चन्दन और पुष्पवासित अत्यन्त शीतल जल अर्पित करना चाहिये। मुख-शुद्धिके लिये मधुर इलायचीके रससे युक्त सुपारीके टुकड़े, खैर आदिसे युक्त सुनहरे रंगके पीले पानके पत्तोंके बने हुए बीड़े, शिलाजीतका चूर्ण, सफेद चूना, जो अधिक रूखा या दूषित न हो, कपूर, कङ्कोल, नूतन एवं सुन्दर जायफल आदि अर्पित करने चाहिये। आलेपनके लिये चन्दनका मूलकाष्ठ अथवा उसका चूरा, कस्तूरी, कुङ्कुम, मृगमदात्मक रस होने चाहिये। फूल वे ही चढ़ाने चाहिये, जो सुगन्धित, पवित्र और सुन्दर हों। गन्धरहित, उत्कट गन्धवाले, दूषित, बासी तथा स्वयं ही टूटकर गिरे हुए फूल शिवके पूजनमें नहीं देने चाहिये। कोमल वस्त्र ही चढ़ाने चाहिये। भूषणोंमें विशेषतः वे ही अर्पित करने चाहिये, जो सोनेके बने हुए तथा विद्युन्मण्डलके समान चमकीले हों, ये सब वस्तुएँ कपूर, गुग्गुल, अगुरु और चन्दनसे भूषित तथा पुष्पसमूहोंसे सुवासित होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कपूर, सुगन्धित काष्ठ तथा गुग्गुलके चूर्ण, घी और मधुसे बना हुआ धूप उत्तम माना गया है।

कपिला गायके अत्यन्त सुगन्धित घीसे प्रतिदिन जलाये गये कर्पूरयुक्त दीप श्रेष्ठ माने गये हैं। पञ्चगव्य, मीठा और कपिला गायका दूध, दही एवं घी—ये सब भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये अभीष्ट हैं। हाथीके दाँतके बने हुए भद्रासन, जो सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित हैं, शिवके लिये श्रेष्ठ बताये गये हैं। उन आसनोंपर विचित्र बिछावन, कोमल गद्दे और तकिये होने चाहिये। इनके सिवा और भी बहुत-सी छोटी-बड़ी सुन्दर एवं सुखद शय्याएँ होनी चाहिये। समुद्रगामिनी नदी एवं नदसे लाया तथा कपड़ेसे छानकर रक्खा हुआ शीतल जल भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये श्रेष्ठ कहा गया है। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र, जो मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित, नवरत्नजटित, दिव्य एवं सुवर्णमय दण्डसे मनोहर हो, भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करने योग्य हैं। सुवर्णभूषित दो श्वेत चँवर, जो रत्नमय दण्डोंसे शोभायमान तथा दो राजहंसोंके समान आकारवाले हों, शिवकी सेवामें देने योग्य हैं। सुन्दर एवं स्निग्ध दर्पण, जो दिव्य गन्धसे अनुलिप्त, सब ओरसे रत्नोंद्वारा आच्छादित तथा सुन्दर हारोंसे विभूषित हो, भगवान् शंकरको अर्पित करना चाहिये। उनके पूजनमें हंस, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा गम्भीर ध्वनि करनेवाले शङ्खका उपयोग करना चाहिये, जिसके मुख और पृष्ठ आदि भागोंमें रत्न एवं सुवर्ण जड़े गये हों। शङ्खके सिवा नाना प्रकारकी ध्वनि करनेवाले सुन्दर काहल (वाद्यविशेष), जो सुवर्णनिर्मित तथा मोतियोंसे अलंकृत हों, बजाने चाहिये। इनके अतिरिक्त भेरी, मृदङ्ग, मुरज, तिमिच्छ और पटह आदि बाजे भी, जो समुद्रकी गर्जनाके समान ध्वनि करनेवाले हों, यत्नपूर्वक जुटाकर रखने चाहिये। पूजाके सभी पात्र और भाण्ड भी सुवर्णके ही बनवाये। परमात्मा महेश्वर शिवका मन्दिर राजमहलके समान बनवाना चाहिये, जो शिल्पशास्त्रमें बताये हुए लक्षणोंसे युक्त हो। वह ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हो। उसका गोपुर इतना ऊँचा हो कि पर्वताकार दिखायी दे। वह अनेक प्रकारके रत्नोंसे आच्छादित हो। उसके दरवाजेके फाटक सोनेके बने हुए हों। उस मन्दिरके मण्डपमें तपाये हुए सोने तथा रत्नोंके सैकड़ों खम्भे लगे हों। चँदोवेमें मोतियोंकी लड़ियाँ लगी हुई हों। दरवाजेके फाटकमें मूँगे जड़े गये हों। मन्दिरका शिखर सोनेके बने हुए दिव्य कलशाकार मुकुटोंसे अलंकृत एवं अस्त्रराज त्रिशूलसे चिह्नित हो।

न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। यदि कोई अन्यायोपार्जित द्रव्यसे भी भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करता है तो उसे भी कोई पाप नहीं लगता; क्योंकि भगवान् भावके वशीभूत हैं। न्यायोपार्जित धनसे भी यदि कोई बिना भक्तिके पूजन करता है तो उसे उसका फल नहीं मिलता; क्योंकि पूजाकी सफलतामें भक्ति ही कारण है। भक्तिसे अपने वैभवके अनुसार भगवान् शिवके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाय वह थोड़ा हो या बहुत, करनेवाला धनी हो या दरिद्र, दोनोंका समान फल है। जिसके पास बहुत थोड़ा

धन है, वह मानव भी भक्तिभावसे प्रेरित होकर भगवान् शिवका पूजन कर सकता है, किंतु महान् वैभवशाली भी यदि भक्तिहीन है तो उसे शिवका पूजन नहीं करना चाहिये। शिवके प्रति भक्तिहीन पुरुष यदि अपना सर्वस्व भी दे डाले तो उससे वह शिवाराधनाके फलका भागी नहीं होता; क्योंकि आराधनामें भक्ति ही कारण है।* शिवके प्रति भक्तिको छोड़कर कोई अत्यन्त उग्र तपस्याओं और सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी दिव्य शिवधाममें नहीं जा सकता। अतः श्रीकृष्ण! सर्वत्र परमेश्वर शिवके आराधनमें भक्तिका ही महत्त्व है। यह गुह्यसे भी गुह्यतर बात है। इसमें संदेह नहीं है।

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। इसलिये जो भक्तिभावसे युक्त है, उसे रजोगुण और तमोगुणसे क्या हानि हो सकती है? श्रीकृष्ण! अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह समस्त देवताओं एवं असुरोंके लिये भी पूजनीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करे; क्योंकि अभक्तोंको कहीं भी फल नहीं मिलता।

(अध्याय २५)

पञ्चाक्षर मन्त्रके जप तथा भगवान् शिवके भजन-पूजनकी महिमा, अग्निकार्यके लिये कुण्ड और वेदी आदिके संस्कार, शिवाग्निकी स्थापना और उसके संस्कार, होम, पूर्णाहुति, भस्मके संग्रह एवं रक्षणकी विधि तथा हवनान्तमें किये जानेवाले कृत्यका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! कोई बड़ा भारी पाप करके भी भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रद्वारा यदि देवेश्वर शिवका पूजन करे तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। जो भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रद्वारा एक ही बार शिवका पूजन कर लेता है, वह भी शिवमन्त्रके गौरववश शिवधामको चला जाता है। जो मूढ़ दुर्लभ मानव-जन्म पाकर भगवान् शिवकी अर्चना नहीं करता, उसका वह जन्म निष्फल है; क्योंकि वह मोक्षका साधक नहीं होता। जो दुर्लभ मानव-जन्म पाकर पिनाकपाणि महादेवजीकी आराधना करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ एवं श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, जिनका चित्त भगवान् शिवके सामने प्रणत होता है तथा जो सदा ही भगवान् शिवके चिन्तनमें लगे रहते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते।† मनोहर भवन, हाव, भाव, विलाससे विभूषित तरुणी स्त्रियाँ और जिससे पूर्ण तृप्ति हो जाय, इतना धन—ये सब भगवान् शिवकी आराधनाके फल हैं। जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, बल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब बातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं। इसलिये जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगा उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, जवानी शीघ्रतासे बीती जा रही है और रोग तीव्रगतिसे निकट आ रहा है, इसलिये सबको पिनाकपाणि महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, जबतक मृत्यु नहीं आती है, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता है और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शिवकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है।‡

* भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोऽपि मानवः। महाविभवसारोऽपि न कुर्याद् भक्तिवर्जितः॥
सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः। न तेन फलभाक् स स्याद् भक्तिरेवात्र कारणम्॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २५। ५१-५२)

† दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम्॥
तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः। भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः॥
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २६। १५-१७)

‡ त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम्॥
त्वरितं व्याधिरभ्येति तस्मात्पूज्यः पिनाकधृक्। यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शंकरम्। न शिवार्चनतुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २६। २१-२३)

अब मैं अग्निकार्यका वर्णन करूँगा। कुण्डमें, स्थण्डिल-पर, वेदीमें, लोहेके हवनपात्रमें या नूतन सुन्दर मिट्टीके पात्रमें विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके उसका संस्कार करे। तत्पश्चात् वहाँ महादेवजीकी आराधना करके होमकर्म आरम्भ करे। कुण्ड दो या एक हाथ लंबा-चौड़ा होना चाहिये। वेदीको गोल या चौकोर बनाना चाहिये। साथ ही मण्डल भी बनाना आवश्यक है। कुण्ड विस्तृत और गहरा होना चाहिये। उसके मध्यभागमें अष्टदल-कमल अङ्कित करे। वह दो या चार अंगुल ऊँचा हो। कुण्डके भीतर दो बित्तेकी ऊँचाईपर नाभिकी स्थिति बतायी गयी है। मध्यमा अंगुलिके मध्यम और उत्तम पर्वोंके बराबर मध्यभाग या कटिभाग जानना चाहिये। साधु पुरुष चौबीस अंगुलके बराबर एक हाथका परिमाण बताते हैं। कुण्डकी तीन, दो या एक मेखला होनी चाहिये। इन मेखलाओंका इस तरह निर्माण करे, जिससे कुण्डकी शोभा बढ़े। सुन्दर और चिकनी योनि बनाये, जिसकी आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति अथवा हाथीके अधरोष्ठके समान हो; कुण्डके दक्षिण या पश्चिम भागमें मेखलाके बीचो-बीच सुन्दर योनिका निर्माण करना चाहिये, जो मेखलासे कुछ नीची हो। उसका अग्रभाग कुण्डकी ओर हो तथा वह मेखला-को कुछ छोड़कर बनायी गयी हो। वेदीके लिये ऊँचाईका कोई नियम नहीं है। वह मिट्टी या बालूकी होनी चाहिये। गायके गोबर या जलसे मण्डल बनाना चाहिये। पात्रका परिमाण नहीं बताया गया है। कुण्ड और मिट्टीकी वेदीको गोबर और जलसे लीपना चाहिये। पात्रको धोकर तपाये तथा अन्य वस्तुओंका जलसे प्रोक्षण करे। अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार कुण्डमें और वेदीपर उल्लेखन (रेखा) करे। (रेखाओंपरसे मृत्तिका लेकर ईशानकोणमें फेंक दे।) फिर अग्निके उस आसनका कुशों अथवा पुष्पोंद्वारा जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् पूजन और हवनके लिये सब प्रकारके द्रव्योंका संग्रह करे। धोनेयोग्य वस्तुओंको धोकर प्रोक्षणीके जलसे उनका प्रोक्षण करके उन्हें शुद्ध करे। इसके बाद सूर्यकान्तमणिसे प्रकट, काष्ठसे उत्पन्न, श्रोत्रियकी अग्निशालामें संचित अथवा दूसरी किसी उत्तम अग्निको आधारसहित ले आये। उसे कुण्ड अथवा वेदीके ऊपर तीन बार प्रदक्षिण-क्रमसे घुमाकर अग्निबीज (रं) का उच्चारण करके उस अग्निको उक्त कुण्ड या वेदीके आसनपर स्थापित कर दे। कुण्डमें स्थापित करना हो तो योनिमार्गसे अग्निका आधान करे और वेदीपर अपने सामनेकी ओर अग्निकी [illegible] करे। योनिप्रदेशके पास स्थित विद्वान् पुरुष समस्त कुण्डको अग्निसे संयुक्त करे। साथ ही यह भावना करे कि अपनी नाभिके भीतर जो अग्निदेव विराजमान हैं, वे ही नाभिरन्ध्रसे चिनगारीके रूपमें निकलकर बाह्य अग्निमें मण्डलाकार होकर लीन हुए हैं। अग्निपर समिधा रखनेसे लेकर घीके संस्कार-पर्यन्त सारा कार्य मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गृह्यसूत्रमें बताये हुए क्रमसे मूलमन्त्रद्वारा सम्पन्न करे। तदनन्तर शिवमूर्तिकी पूजा करके दक्षिण पार्श्वमें मन्त्र-न्यास करे और घृतमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। स्रुक् और स्रुवा—ये दोनों धातुके बने हुए हों तो ग्रहण करने योग्य हैं। परंतु काँसी, लोहे और शीशेके बने हुए स्रुक्, स्रुवाको नहीं ग्रहण करना चाहिये अथवा यज्ञ-सम्बन्धी काष्ठके बने हुए स्रुक्, स्रुवा ग्राह्य हैं। स्मृति या शिव-शास्त्रमें जो विहित हों, वे भी ग्राह्य हैं अथवा ब्रह्मवृक्ष (पलास या गूलर) आदिके छिद्ररहित बिचले दो पत्ते लेकर उन्हें कुशसे पोंछे और अग्निमें तपाकर फिर उनका प्रोक्षण करे। उन्हीं पत्तोंको स्रुक् और स्रुवाका रूप दे। उनमें घी उठाये और अपने गृहसूत्रमें बताये हुए क्रमसे शिव-बीज (ॐ) सहित आठ बीजाक्षरोंद्वारा अग्निमें आहुति दे। इससे अग्निका संस्कार सम्पन्न होता है। वे बीज इस प्रकार हैं—भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं ड्रुं द्रुं। ये सात हैं, इनमें शिव-बीज (ॐ) को सम्मिलित कर लेनेपर आठ बीजाक्षर होते हैं। उपर्युक्त सात बीज क्रमशः अग्निकी सात जिह्वाओंके हैं। उनकी मध्यमा जिह्वाका नाम बहुरूपा है। उसकी तीन शिखाएँ हैं। उनमेंसे एक शिखा दक्षिणमें और दूसरी वाम दिशा (उत्तर) में प्रज्वलित होती है और बीचवाली शिखा बीचमें ही प्रकाशित होती है। ईशानकोण जो जिह्वा है, उसका नाम हिरण्या है। पूर्व दिशामें विद्यमान जिह्वा कनका नामसे प्रसिद्ध है।-अग्निकोणमें रक्ता, नैर्ऋत्यकोणमें कृष्णा और वायव्यकोणमें सुप्रभा नामकी जिह्वा प्रकाशित होती है। इनके अतिरिक्त पश्चिममें जो जिह्वा प्रज्वलित होती है, उसका नाम मरुत् है। इन सबकी प्रभा अपने-अपने नामके अनुरूप है। अपने-अपने बीजके अनन्तर क्रमशः इनका नाम लेना चाहिये और नामके अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करना चाहिये। इस तरह जो जिह्वामन्त्र[1] बनते हैं, उनके द्वारा क्रमशः प्रत्येक

१. ओं भ्रुं त्रिशिखायै बहुरूपायै स्वाहा (दक्षिणे मध्ये उत्तरे च) ३। ओं स्तुं हिरण्यायै स्वाहा (ऐशान्यै) १। ओं ब्रुं कनकायै स्वाहा (पूर्वस्याम्) १। ओं श्रुं रक्तायै स्वाहा (आग्नेय्याम्) १। ओं [illegible] कृष्णायै स्वाहा (नैर्ऋत्याम्) १।

जिह्वाके लिये एक-एक घीकी आहुति दे, परंतु मध्यमाकी तीन जिह्वाओंके लिये तीन आहुतियाँ दे । कुण्डके मध्यभागमें 'रं वह्नये स्वाहा' बोलकर तीन आहुतियाँ दे । ये आहुतियाँ घी अथवा समिधासे देनी चाहिये । आहुति देनेके पश्चात् अग्निमें जलका सेचन करे । ऐसा करनेपर वह अग्नि भगवान् शिवकी हो जाती है । फिर उसमें शिवके आसनका चिन्तन करे और वहाँ अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका आवाहन करके पूजन करे । पाद्य-अर्घ्य आदिसे लेकर दीपदानपर्यन्त पूजन करके अग्निका जलसे प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् समिधाओंकी आहुति दे । वे समिधाएँ पलासकी या गूलर आदि दूसरे यज्ञिय वृक्षकी होनी चाहिये । उनकी लंबाई बारह अंगुलकी हो । समिधाएँ टेढ़ी न हों । स्वतः सूखी हुई भी न हों । उनके छिलके न उतरे हों तथा उनपर किसी प्रकारकी चोट न हो । सब समिधाएँ एक-सी होनी चाहिये । दस अंगुल लंबी समिधाएँ भी हवनके लिये विहित हैं । उनकी मोटाई कनिष्ठिका अङ्गुलिके समान होनी चाहिये अथवा प्रादेशमात्र (अंगूठेसे लेकर तर्जनीपर्यन्त) लंबी समिधाएँ उपयोगमें लानी चाहिये । यदि उपयुक्त समिधाएँ न मिलें तो जो मिल सकें, उन सबका ही हवन करना चाहिये । समिधा-हवनके बाद घीकी आहुति दे । घीकी धारा दूर्वादलके समान पतली और चार अंगुल लंबी हो । उसके बाद अन्नकी आहुति देनी चाहिये, जिसका प्रत्येक ग्रास सोलह-सोलह माशेके बराबर हो । लावा, सरसों, जौ और तिल—इन सबमें घी मिलाकर यथा-सम्भव भक्ष्य, लेह्य और चोष्यका भी मिश्रण करे तथा इन सबकी यथाशक्ति दस, पाँच या तीन आहुतियाँ दे अथवा एक ही आहुति दे । स्रुवासे, समिधासे, स्रुक्से अथवा हाथसे आहुति देनी चाहिये । उसमें भी दिव्य तीर्थसे अथवा ऋषितीर्थसे आहुति देनेका विधान है; यदि उपर्युक्त सभी द्रव्य न मिलें तो किसी एक ही द्रव्यसे श्रद्धापूर्वक आहुति देनी चाहिये । प्रायश्चित्तके लिये मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन आहुतियाँ दे । फिर होमावशिष्ट घृतसे स्रुक्को भरकर उसके अग्रभागमें फूल रखकर उसे दर्भसहित अधोमुख स्रुवासे ढक दे । इसके बाद खड़ा हो उसे अञ्जलिमें लेकर 'ओं नमः शिवाय वौषट्' का उच्चारण करके जौके तुल्य घीकी धाराकी आहुति दे । इस प्रकार पूर्णाहुति करके अग्निमें पूर्ववत् जलका छींटा दे । तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके अग्निकी रक्षा करे । फिर अग्निका भी विसर्जन करके भावनाद्वारा नाभिमें स्थापित करके नित्य यजन करे ।

अथवा शिवशास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार वागीश्वरीके गर्भसे प्रकट हुए अग्निदेवको लाकर विधिवत् संस्कार करके उनका पूजन करे । फिर समिधाका आधान करके सब ओरसे परिधियोंका निर्माण करे । इसके बाद वहाँ दो-दो पात्र रखकर शिवका यजन करके प्रोक्षणीपात्रका शोधन करे । उस पात्रके जलसे पूर्वोक्त वस्तुओंका प्रोक्षण करके जलसे भरे हुए प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें रक्खे । घीके संस्कारतकका सारा कार्य करके स्रुक् और स्रुवाका संशोधन करे । तदनन्तर पिता शिवद्वारा माता वागीश्वरीका गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार करके प्रत्येक संस्कारके निमित्त पृथक्-पृथक् आहुति दे और गर्भसे अग्निके उत्पन्न होनेकी भावना करे । उनके तीन पैर, सात हाथ, चार सींग और दो मस्तक हैं । मधुके समान पिङ्गलवर्णवाले तीन नेत्र हैं । सिरपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट है । उनकी अङ्गकान्ति लाल है । लाल रंगके ही वस्त्र, चन्दन, माला और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं । सब लक्षणोंसे सम्पन्न, यज्ञोपवीत-धारी तथा त्रिगुण मेखलासे युक्त हैं । उनके दायें हाथोंमें शक्ति है, स्रुक् और स्रुवा है तथा बायें हाथोंमें तोमर, ताड़का पंखा और घीसे भरा हुआ पात्र है । इस आकृतिमें उत्पन्न हुए अग्निदेवका ध्यान करके उनका 'जातकर्म' संस्कार करे । तत्पश्चात् नालच्छेदन करके सूतककी शुद्धि करे । फिर आहुति देकर उस शिवसम्बन्धी अग्निका रुचि नाम रक्खे । इसके बाद माता-पिताका विसर्जन करके चूडाकर्म और उपनयन आदिसे लेकर आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कार करे ।* तत्पश्चात् घृतधारा आदिका होम करके स्विष्टकृत् होम करे । इसके बाद 'रं' बीजका उच्चारण करके अग्निपर जलका छींटा डाले । फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश, लोकेश्वरगण और उनके अस्त्रोंका सब ओर क्रमशः पूजन करके धूप, दीप

ओं हूं सुप्रभायै स्वाहा (पश्चिमायाम्) १ । ओं द्रं मरुज्जिह्वायै स्वाहा (वायव्ये) १ ।

* उपनयनसे आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कारोंकी नामावली इस प्रकार है—उपनयन, व्रतबन्ध, समावर्तन, विवाह, उपाकर्म, उत्सर्जन, (सात पाक-यज्ञ—) हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण, अष्टकाहोम, (सात हविर्यज्ञसंस्था—) अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणि, (सात सोमयज्ञ-संस्था—) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ।

आदिकी सिद्धिके लिये अग्निको अलग निकालकर कर्मविधिका ज्ञाता पुरुष पुनः घृतयुक्त पूर्वोक्त होम-द्रव्य तैयार करके अग्निमें आसनकी कल्पना (भावना) करे और उसपर पूर्ववत् महादेव और महादेवीका आवाहन, पूजन करके पूर्णाहुतिपर्यन्त सब कार्य सम्पन्न करे।

अथवा अपने आश्रमके लिये शास्त्रविहित अग्निहोत्र-कर्म करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। शिवाश्रमी पुरुष इन सब बातोंको समझकर होम-कर्म करे। इसके लिये दूसरी कोई विधि नहीं है। शिवाग्निका भस्म संग्रहणीय है। अग्निहोत्र-कर्मका भस्म भी संग्रह करनेके योग्य है। वैवाहिक अग्निका भस्म भी जो परिपक्व, पवित्र एवं सुगन्धित हो, संग्रह करके रखना चाहिये। कपिला गायका वह गोबर, जो गिरते समय आकाशमें ही दोनों हाथोंपर रोक लिया गया हो, उत्तम माना गया है। वह यदि अधिक गीला वा अधिक कड़ा न हो, दुर्गन्धयुक्त और सूखा हुआ न हो तो अच्छा माना गया है। यदि वह पृथ्वीपर गिर गया हो तो उसमेंसे ऊपर और नीचेके हिस्सेको त्यागकर बीचका भाग ले ले। उस गोबरका पिण्ड बनाकर उसे शिवाग्नि आदिमें मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक छोड़ दे। जब वह पक जाय, तब उसे निकाल ले। उसमें जितना अधपका हो, उसको और जो भाग बहुत अधिक पक गया हो, उसको भी त्यागकर श्वेत भस्म ले ले और उसे घोटकर चूर्ण बना दे। इसके बाद उसे भस्म रखनेके पात्रमें रख दे। भस्मपात्र धातुका, लकड़ीका, मिट्टीका, पत्थरका अथवा और किसी वस्तुका बनवा ले। वह देखनेमें सुन्दर होना चाहिये। उसमें रक्खे हुए भस्मको धनकी भाँति किसी शुभ, शुद्ध एवं समतल स्थानमें रक्खे। किसी अयोग्य या अपवित्रके हाथमें भस्म न दे। नीचे अपवित्र स्थानमें भी न डाले। नीचेके अङ्गोंसे उसका स्पर्श न करे। भस्मकी न तो उपेक्षा करे और न उसे लाँघे ही। शास्त्रोक्त समयपर उस पात्रसे भस्म लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपने ललाट आदिमें लगाये। दूसरे समयमें उसका उपयोग न करे और न अयोग्य व्यक्तियोंके हाथमें उसे दे। भगवान् शिवका विसर्जन न हुआ हो, तभी भस्म संग्रह कर ले; क्योंकि विसर्जनके बाद उसपर चण्डका अधिकार हो जाता है।

जब अग्निकार्य सम्पन्न कर लिया जाय, तब शिवशास्त्रोक्त मार्गसे अथवा अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिसे बलिकर्म करे। तदनन्तर अच्छी तरह लिपे-पुते मण्डलमें विद्यासनको बिछाकर विद्याकोशकी स्थापना करके क्रमशः पुष्प आदिके द्वारा यजन करे। विद्याके सामने गुरुका भी मण्डल बनाकर वहाँ श्रेष्ठ आसन रक्खे और उसपर पुष्प आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर पूजनीय पुरुषोंकी पूजा करे और भूखोंको भोजन कराये। इसके बाद स्वयं सुखपूर्वक शुद्ध अन्न भोजन करे। वह अन्न तत्काल भगवान् शिवको निवेदित किया गया हो अथवा उनका प्रसाद हो। उसे आत्मशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक भोजन करे। जो अन्न चण्डको समर्पित हो, उसे लोभवश ग्रहण न करे। गन्ध और पुष्पमाला आदि जो अन्य वस्तुएँ हैं, उनके लिये भी यह विधि समान ही है अर्थात् चण्डका भाग होनेपर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये। वहाँ विद्वान् पुरुष 'मैं ही शिव हूँ' ऐसी बुद्धि न करे। भोजन और आचमन करके शिवका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शेष समय शिवशास्त्रकी कथाके श्रवण आदि योग्य कार्योंमें बिताये। रातका प्रथम प्रहर बीत जानेपर मनोहर पूजा करके शिव और शिवाके लिये एक परम सुन्दर शय्या प्रस्तुत करे। उसके साथ ही भक्ष्य, भोज्य, वस्त्र, चन्दन और पुष्पमाला आदि भी रख दे। मनसे और क्रियाद्वारा भी सब सुन्दर व्यवस्था करके पवित्र हो महादेवजी और महादेवीके चरणोंके निकट शयन करे। यदि उपासक गृहस्थ हो तो वह वहाँ अपनी पत्नीके साथ शयन करे। जो गृहस्थ न हों, वे अकेले ही सोयें। उषःकाल आया जान मन-ही-मन पार्वतीदेवी तथा पार्षदोंसहित अविनाशी भगवान् शिवको प्रणाम करके देशकालोचित कार्य तथा शौच आदि कृत्य पूर्ण करे। फिर यथाशक्ति शङ्ख आदि वाद्योंकी दिव्य ध्वनियोंसे महादेव और महादेवीको जगाये। इसके बाद उस समय खिले हुए परम सुगन्धित पुष्पोंद्वारा शिवा और शिवकी पूजा करके पूर्वोक्त कार्य आरम्भ करे। (अध्याय २७)

काम्य कर्मके प्रसङ्गमें शक्तिसहित पञ्चमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन

तदनन्तर शिवाश्रमसेवियोंके लिये नैमित्तिक कर्मकी विधि बताकर उपमन्युजीने कहा—यदुनन्दन! अब मैं काम्य-कर्मका वर्णन करूँगा, जो इहलोक और परलोकमें भी फल देनेवाला है। शैवों तथा माहेश्वरोंको क्रमशः भीतर और बाहर इसे करना चाहिये। जैसे शिव और महेश्वरमें यहाँ अत्यन्त भेद नहीं है, उसी प्रकार शैवों और माहेश्वरोंमें

भी अधिक भेद नहीं है । जो मनुष्य शिवके आश्रित रहकर ज्ञानयज्ञमें तत्पर होते हैं, वे शैव कहलाते हैं और जो शिवाश्रित भक्त भूतलपर कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, वे महान् ईश्वरका यजन करनेके कारण माहेश्वर कहे गये हैं । इसलिये ज्ञानयोगी शैवोंको अपने भीतर भगवान्‌द्वारा कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये और कर्मपरायण माहेश्वरोंको बाहर विहित द्रव्यों तथा उपकरणोंद्वारा उसका सम्पादन करना चाहिये । आगे बताये जानेवाले कर्मके प्रयोगमें उनके लिये कोई भेद नहीं है ।

गन्ध, वर्ण और रस आदिके द्वारा विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके मनोऽभिलषित स्थानपर आकाशमें चँदोवा तान दे और उस स्थानको भलीभाँति लीप-पोतकर दर्पणके समान स्वच्छ बना दे । तत्पश्चात् शास्त्रोक्त मार्गसे वहाँ पहले पूर्वदिशाकी कल्पना करे । उस दिशामें एक या दो हाथका मण्डल बनाये । उस मण्डलमें सुन्दर अष्टदल कमल अङ्कित करे । कमलमें कर्णिका भी होनी चाहिये । यथासम्भव संचित रत्न और सुवर्ण आदिके चूर्णसे उसका निर्माण करे । वह अत्यन्त शोभायमान और पाँच आवरणोंसे युक्त हो ! कमलके आठ दलोंमें पूर्वादि क्रमसे अणिमा आदि आठ सिद्धियोंकी कल्पना करे तथा उनके केसरोंमें शक्तिसहित वामदेव आदि आठ रुद्रोंको पूर्वादि दलके क्रमसे स्थापित करे । कमलकी कर्णिकामें वैराग्यको स्थान दे और बीजोंमें नवशक्तियोंकी स्थापना करे । कमलके कन्दमें शिव-सम्बन्धी धर्म और नालमें शिव-सम्बन्धी ज्ञानकी भावना करे । कर्णिकाके ऊपर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी भावना करे । इन मण्डलोंके ऊपर शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वका चिन्तन करे । सम्पूर्ण कमलासनके ऊपर सुखपूर्वक विराजमान और नाना प्रकारके विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत, पाँच आवरणोंसहित भगवान् शिवका माता पार्वतीके साथ पूजन करे । उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है । वे सतत प्रसन्न रहते हैं । उनकी प्रभा शीतल है । मस्तकपर विद्युन्मण्डलके समान चमकीली जटारूप मुकुट उनकी शोभा बढ़ाता है । वे व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं । उनके मुखारविन्दपर कुछ कुछ मन्द मुसकानकी छटा छा रही है । उनके हाथकी हथेलियाँ और पैरोंके तलवे लाल कमलके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हैं । वे भगवान शिव समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके हाथोंमें उत्तमोत्तम दिव्य आयुध शोभा पा रहे हैं और अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका लेप लगा हुआ है । उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं । अर्धचन्द्र उनकी शिखाके मणि हैं । उनका पूर्ववर्ती मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित एवं सौम्य है । उसमें तीन नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं तथा सिरपर बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है । दक्षिणमुख नील जलधरके समान श्याम प्रभासे भासित होता है । उसकी भौंहें टेढ़ी हैं । वह देखनेमें भयानक है । उसमें गोलाकार लाल-लाल आँखें दृष्टिगोचर होती हैं । दाढ़ोंके कारण वह मुख विकराल जान पड़ता है । उसका पराभव करना किसीके लिये भी कठिन है । उसके अधरपल्लव फड़कते रहते हैं । उत्तरवर्ती मुख मूँगेकी भाँति लाल है । काले काले केशपाश उसकी शोभा बढ़ाते हैं । उसमें विभ्रमविलाससे युक्त तीन नेत्र हैं और उसका मस्तक अर्द्धचन्द्रमय मुकुटसे विभूषित है । भगवान् शिवका पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा तीन नेत्रोंसे प्रकाशमान है । उसका मस्तक चन्द्रलेखाकी शोभा धारण करता है । वह मुख देखनेमें सौम्य है और मन्द मुस्कानकी शोभासे उपासकोंके मनको मोहे लेता है । उनका पाँचवाँ मुख स्फटिकमणिके समान निर्मल, चन्द्रलेखासे समुज्ज्वल, अत्यन्त सौम्य तथा तीन प्रफुल्ल नेत्रकमलोंसे प्रकाशमान है ।

भगवान् शिव अपने दाहिने हाथोंमें शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि धारण करके उन सबकी प्रभासे प्रकाशित होते हैं तथा बायें हाथोंमें नाग, बाण, घण्टा, पाश तथा अङ्कुश उनकी शोभा बढ़ाते हैं । पैरोंसे लेकर घुटनोंतकका भाग निवृत्तिकलासे सम्बद्ध है । उससे ऊपर नाभितकका भाग प्रतिष्ठाकलासे, कण्ठतकका भाग विद्याकलासे, ललाटतकका भाग शान्तिकलासे और उसके ऊपरका भाग शान्त्यतीता-कलासे संयुक्त है । इस प्रकार वे पञ्चाध्वव्यापी तथा साक्षात् पञ्चकलामय शरीरधारी हैं । ईशानमन्त्र उनका मुकुट है । तत्पुरुष मन्त्र उन पुरातनदेवका मुख है । अघोरमन्त्र हृदय है । वामदेवमन्त्र उन महेश्वरका गुह्यभाग है और सद्योजातमन्त्र उनका युगल चरण है । उनकी मूर्ति अड़तीस कलामयी* है । परमेश्वर शिवका विग्रह मातृका-(वर्णमाला)-

* कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं । ये सब तत्त्व जीवके शरीरमें होते हैं । परमेश्वरके शरीरको शक्ति (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) तथा [illegible] तत्त्वोंको

मय, पञ्चब्रह्म ('ईशानः सर्वविद्यानां' इत्यादि पाँच मन्त्र) मय, प्रणवमय तथा हंसशक्तिसे सम्पन्न है। इच्छाशक्ति उनके अङ्कमें आरूढ़ है, ज्ञानशक्ति दक्षिण भागमें है तथा क्रियाशक्ति वामभागमें विराजमान है। वे त्रितत्त्वमय हैं अर्थात् आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व उनके स्वरूप हैं। वे सदाशिव साक्षात् विद्यामूर्ति हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये।

मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना और सकलीकरणकी क्रिया करके मूलमन्त्रसे ही यथोचित रीतिसे क्रमशः पाद्य आदि विशेषार्घ्यपर्यन्त पूजन करे। फिर पराशक्तिके साथ साक्षात् मूर्तिमान् शिवका पूर्वोक्त मूर्तिमें आवाहन करके सदसद्व्यक्ति-रहित परमेश्वर महादेवका गन्धादि पञ्चोपचारोंसे पूजन करे। पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे, छः अङ्गमन्त्रोंसे, मातृका-मन्त्रसे, प्रणवसे, शक्तियुक्त शिवमन्त्रसे, शान्त तथा अन्य वेदमन्त्रोंसे अथवा केवल शिवमन्त्रसे उन परम देवका पूजन करे। पाद्यसे लेकर मुखशुद्धिपर्यन्त पूजन सम्पन्न करके इष्टदेवका विसर्जन किये बिना ही क्रमशः पाँच आवरणोंकी पूजा आरम्भ करे।

(अध्याय २८-२९)

आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! पहले शिवा और शिवके दायें और बायें भागमें क्रमशः गणेश और कार्तिकेयका गन्ध आदि पाँच उपचारोंद्वारा पूजन करे। फिर इन सबके चारों ओर ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच ब्रह्ममूर्तियों-का शक्तिसहित क्रमशः पूजन करे। यह प्रथम आवरणमें किया जानेवाला पूजन है। उसी आवरणमें हृदय आदि छः अङ्गों तथा शिव और शिवाका अग्निकोणसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। वहीं वामा आदि शक्तियोंके साथ वाम आदि आठ रुद्रोंकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजा करे। यह पूजन वैकल्पिक है। यदुनन्दन ! यह मैंने तुमसे प्रथम आवरणका वर्णन किया है।

अब प्रेमपूर्वक दूसरे आवरणका वर्णन किया जाता है, श्रद्धापूर्वक सुनो। पूर्व दिशावाले दलमें अनन्तका और उनके वामभागमें उनकी शक्तिका पूजन करे। दक्षिण दिशावाले दलमें शक्तिसहित सूक्ष्मदेवकी पूजा करे। पश्चिम दिशाके दलमें शक्तिसहित शिवोत्तमका, उत्तर दिशावाले दलमें शक्तियुक्त एकनेत्रका, ईशानकोणवाले दलमें एक-रुद्र और उनकी शक्तिका, अग्निकोणवाले दलमें त्रिमूर्ति और उनकी शक्तिका, नैर्ऋत्यकोणके दलमें श्रीकण्ठ और उनकी शक्तिका तथा वायव्यकोणवाले दलमें शक्तिसहित शिखण्डीशका पूजन करे। समस्त चक्रवर्तियोंकी भी द्वितीय आवरणमें ही पूजा करनी चाहिये। तृतीय आवरणमें शक्तियों-सहित अष्टमूर्तियोंका पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव—ये क्रमशः आठ मूर्तियाँ हैं। इसके बाद उसी आवरणमें शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नील-लोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव, भवोद्भव तथा कपर्दीश (या कपालीश)—ये ग्यारह मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे जो प्रथम आठ मूर्तियाँ हैं, उनका अग्निकोणवाले दलसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें पूजन करना चाहिये। देवदेवको पूर्वदिशाके दलमें स्थापित एवं पूजित करे और ईशानका पुनः अग्निकोणमें स्थापन-पूजन करे। फिर इन दोनोंके बीचमें भवोद्भवकी पूजा करे और उन्हींके बाद कपालीश या कपर्दीशका स्थापन-पूजन करना चाहिये। उस तृतीय आवरणमें फिर वृषभराजका पूर्वमें, नन्दीका दक्षिणमें, महाकालका उत्तरमें, शास्ताका अग्निकोणके दलमें, मातृकाओंका दक्षिण दिशाके दलमें, गणेशजीका नैर्ऋत्य कोणके दलमें, कार्तिकेयका पश्चिम दलमें, ज्येष्ठाका वायव्य-कोणके दलमें, गौरीका उत्तरदलमें, चण्डका ईशानकोणमें तथा शास्ता एवं नन्दीश्वरके बीचमें मुनीन्द्र वृषभका यजन करे। महाकालके उत्तरभागमें पिङ्गलका, शास्ता और मातृकाओंके बीचमें भृङ्गीश्वरका, मातृकाओं तथा गणेशजीके बीचमें वीरभद्रका, स्कन्द और गणेशजीके बीचमें सरस्वती देवीका, ज्येष्ठा और कार्तिकेयके बीचमें शिवचरणोंकी अर्चना करनेवाली श्रीदेवीका, ज्येष्ठा और गणाम्बा (गौरी) के बीचमें महामोटीकी पूजा करे। गणाम्बा और चण्डके बीचमें दुर्गा-देवीकी पूजा करे। इसी आवरणमें पुनः शिवके अनुचर-

---

जोड़ लेनेसे अड़तीस कलाएँ होती हैं। समस्त जड़-चेतन परमेश्वरका स्वरूप होनेसे उनकी मूर्तिको अड़तीस कलामयी बताया गया है। अथवा पाँच स्वर और तैंतीस व्यञ्जनरूप होनेसे उनके शरीरको अड़तीस कलामय कहा गया है।

वर्गकी पूजा करे। इस अनुचरवर्गमें रुद्रगण, प्रमथगण और भूतगण आते हैं। इन सबके विविध रूप हैं और ये सब-के-सब अपनी शक्तियोंके साथ हैं। इनके बाद एकाग्रचित्त हो शिवाके सखीवर्गका भी ध्यान एवं पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार तृतीय आवरणके देवताओंका विस्तारपूर्वक पूजन हो जानेपर उसके बाह्यभागमें चतुर्थ आवरणका चिन्तन एवं पूजन करे। पूर्वदलमें सूर्यका, दक्षिणदलमें चतुर्मुख ब्रह्माका, पश्चिमदलमें रुद्रका और उत्तर दिशाके दलमें भगवान् विष्णुका पूजन करे। इन चारों देवताओंके भी पृथक्-पृथक् आवरण हैं। इनके प्रथम आवरणमें छहों अङ्गों तथा दीप्ता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युता—इनकी क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओंमें स्थिति है। द्वितीय आवरणमें पूर्वसे लेकर उत्तरतक क्रमशः चार मूर्तियोंकी और उनके बाद उनकी शक्तियोंकी पूजा करे। आदित्य, भास्कर, भानु और रवि—ये चार मूर्तियाँ क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये चार मूर्तियाँ भी पूर्वादि दिशाओंमें पूजनीय हैं। पूर्वदिशामें विस्तरा, दक्षिण दिशामें सुतरा, पश्चिम दिशामें बोधिनी और उत्तर दिशामें आप्यायिनीकी पूजा करे। ईशानकोणमें उषाकी, अग्निकोणमें प्रभाकी, नैर्ऋत्यकोणमें प्राज्ञाकी और वायव्यकोणमें संध्याकी पूजा करे। इस तरह द्वितीय आवरणमें इन सबकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

तृतीय आवरणमें सोम, मङ्गल, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बुध, विशालबुद्धि बृहस्पति, तेजोनिधि शुक्र, शनैश्चर तथा धूम्रवर्णवाले भयंकर राहु-केतुका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे अथवा द्वितीय आवरणमें द्वादश आदित्योंकी पूजा करनी चाहिये और तृतीय आवरणमें द्वादश राशियोंकी। उसके बाह्य भागमें सात-सात गणोंकी सब ओर पूजा करनी चाहिये। ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, नागों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यक्षों, यातुधानों, सात छन्दोमय अश्वों तथा वालखिल्योंका पूजन करे। इस तरह तृतीय आवरणमें सूर्यदेवका पूजन करनेके पश्चात् तीन आवरणोंसहित ब्रह्माजीका पूजन करे।

पूर्व दिशामें हिरण्यगर्भका, दक्षिणमें विराट्का, पश्चिम दिशामें कालका और उत्तर दिशामें पुरुषका पूजन करे। हिरण्यगर्भ नामक जो पहले ब्रह्मा हैं, उनकी अङ्गकान्ति कमलके समान है। काल जन्मसे ही अञ्जनके समान काले हैं और पुरुष स्फटिक मणिके समान निर्मल हैं। त्रिगुण, राजस, तामस तथा सात्त्विक—ये चारों भी पूर्वादि दिशाके क्रमसे प्रथम आवरणमें ही स्थित हैं।

द्वितीय आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें क्रमशः सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् तीसरे आवरणमें ग्यारह प्रजापतियोंकी पूजा करे। उनमेंसे प्रथम आठका तो पूर्व आदि आठ दिशाओंमें पूजन करे, फिर शेष तीनका पूर्व आदिके क्रमसे अर्थात् पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिममें स्थापन-पूजन करे। दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप और वसिष्ठ—ये ग्यारह विख्यात प्रजापति हैं। इनके साथ इनकी पत्नियोंका भी क्रमशः पूजन करना चाहिये। प्रसूति, आकूति, ख्याति, सम्भूति, धृति, स्मृति, क्षमा, संनति, अनसूया, देवमाता अदिति तथा अरुन्धती—ये सभी ऋषि-पत्नियाँ पतिव्रता, सदा शिवपूजनपरायणा, कान्तिमती और प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) हैं। अथवा प्रथम आवरणमें चारों वेदोंका पूजन करे, फिर द्वितीय आवरणमें इतिहास-पुराणोंकी अर्चना करे तथा तृतीय आवरणमें धर्मशास्त्र-सहित सम्पूर्ण वैदिक विद्याओंका सब ओर पूजन करना चाहिये। चार वेदोंको पूर्वादि चार दिशाओंमें पूजना चाहिये, अन्य ग्रन्थोंको अपनी रुचिके अनुसार आठ या चार भागोंमें बाँटकर सब ओर उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार दक्षिणमें तीन आवरणोंसे युक्त ब्रह्माजीकी पूजा करके पश्चिममें आवरणसहित रुद्रका पूजन करे।

ईशान आदि पाँच ब्रह्म और हृदय आदि छः अङ्गोंको रुद्रदेवका प्रथम आवरण कहा गया है। द्वितीय आवरण विद्येश्वरमय[1] है। तृतीय आवरणमें भेद है। अतः उसका वर्णन किया जाता है। उस आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे त्रिगुणादि चार मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व दिशामें पूर्णरूप शिव नामक महादेव पूजित होते हैं, इनकी 'त्रिगुण' संज्ञा है (क्योंकि ये त्रिगुणात्मक जगत्के आश्रय हैं)। दक्षिण दिशामें 'राजस' पुरुषके नामसे प्रसिद्ध सृष्टिकर्ता ब्रह्माका पूजन किया जाता है, ये 'भव' कहलाते हैं। पश्चिम दिशामें 'तामस' पुरुष अग्निकी पूजा की जाती है; इन्हींको संहारकारी हर कहा गया है। उत्तर दिशामें

---

१. पाशुपत-दर्शनमें विद्येश्वरोंकी संख्या आठ बतायी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी। इनको क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित करके इनकी पूजा करे। द्वितीय आवरणमें इन्हींकी पूजा बतायी गयी है।

'सात्त्विक' पुरुष सुखदायक विष्णुका पूजन किया जाता है। ये ही विश्वपालक 'मृड' हैं। इस प्रकार पश्चिमभागमें शम्भुके शिवरूपका, जो पचीस तत्त्वोंका साक्षी छब्बीसवाँ तत्त्वरूप है, पूजन करके उत्तर दिशामें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।

इनके प्रथम आवरणमें वासुदेवको पूर्वमें, अनिरुद्धको दक्षिणमें, प्रद्युम्नको पश्चिममें और संकर्षणको उत्तरमें स्थापित करके इनकी पूजा करनी चाहिये। यह प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय शुभ आवरण बताया जाता है। मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, तीनमेंसे एक राम, आप श्रीकृष्ण और हयग्रीव—ये द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। तृतीय-आवरणमें पूर्वभागमें चक्रकी पूजा करे, दक्षिणभागमें कहीं भी प्रतिहत न होनेवाले नारायणास्त्रका यजन करे, पश्चिममें पाञ्चजन्यका और उत्तरमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करे। इस प्रकार तीन आवरणोंसे युक्त साक्षात् विश्वनामक परम हरि महाविष्णुकी, जो सदा सर्वत्र व्यापक हैं, मूर्तिमें भावना करके पूजा करे। इस तरह विष्णुके चतुर्व्यूहक्रमसे चार मूर्तियोंका पूजन करके क्रमशः उनकी चार शक्तियोंका पूजन करे। प्रभाका अग्निकोणमें, सरस्वतीका नैर्ऋत्यकोणमें, गणाम्बिकाका वायव्यकोणमें तथा लक्ष्मीका ईशानकोणमें पूजन करे। इसी प्रकार भानु आदि मूर्तियों और उनकी शक्तियोंका पूजन करके उसी आवरणमें लोकेश्वरोंकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा ईशान। इस प्रकार चौथे आवरणकी विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके बाह्यभागमें महेश्वरके आयुधोंकी अर्चना करे। ईशानकोणमें तेजस्वी त्रिशूलकी, पूर्वदिशामें वज्रकी, अग्निकोणमें परशुकी, दक्षिणमें बाणकी, नैर्ऋत्यकोणमें खड्गकी, पश्चिममें पाशकी, वायव्यकोणमें अङ्कुशकी और उत्तर दिशामें पिनाककी पूजा करे। तत्पश्चात् पश्चिमाभिमुख रौद्ररूपधारी क्षेत्रपालका अर्चन करे।

इस तरह पञ्चम आवरणकी पूजाका सम्पादन करके समस्त आवरण देवताओंके बाह्यभागमें अथवा पाँचवें आवरणमें ही मातृकाओंसहित महावृषभ नन्दिकेश्वरका पूर्व दिशामें पूजन करे। तदनन्तर समस्त देवयोनियोंकी चारों ओर अर्चना करे। इसके सिवा जो आकाशमें विचरनेवाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अनन्त आदि नागराज, उन-उन नागेश्वरोंके कुलमें उत्पन्न हुए अन्य नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत और भैरवोंके नायक, नाना योनियोंमें उत्पन्न हुए अन्य पातालवासी जीव, नदी, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट आदि क्षुद्र योनिके जीव, मनुष्य, नाना प्रकारके आकारवाले मृग, क्षुद्र जन्तु, ब्रह्माण्डके भीतरके लोक, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके बाहरके असंख्य भुवन और उनके अधीश्वर तथा दसों दिशाओंमें स्थित ब्रह्माण्डके आधारभूत रुद्र हैं और गुणजनित, मायाजनित, शक्तिजनित तथा उससे भी परे जो कुछ भी शब्दवाच्य जडचेतनात्मक प्रपञ्च है, उन सबको शिवा और शिवके पार्श्वभागमें स्थित जानकर उनका सामान्यरूपसे यजन करे। वे सब लोग हाथ जोड़कर मन्द मुस्कानयुक्त मुखसे सुशोभित होते हुए प्रेमपूर्वक महादेव और महादेवीका दर्शन कर रहे हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इस तरह आवरण-पूजा सम्पन्न करके विक्षेपकी शान्तिके लिये पुनः देवेश्वर शिवकी अर्चना करनेके पश्चात् पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करे। तदनन्तर शिव और पार्वतीके सम्मुख उत्तम व्यञ्जनोंसे युक्त तथा अमृतके समान मधुर, शुद्ध एवं मनोहर महाचरुका नैवेद्य निवेदन करे। यह महाचरु बत्तीस आढक (लगभग तीन मन आठ सेर) का हो तो उत्तम है और कम-से-कम एक आढक (चार सेर) का हो तो निम्न श्रेणीका माना गया है। अपने वैभवके अनुसार जितना हो सके, महाचरु तैयार करके उसे श्रद्धापूर्वक निवेदित करे। तदनन्तर जल और ताम्बूल-इलायची आदि निवेदन करके आरती उतारकर शेष पूजा समाप्त करे। याग-के उपयोगमें आनेवाले द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदिको उत्तम श्रेणीका ही तैयार कराकर दे। भक्तिमान् पुरुष वैभव होते हुए धन व्यय करनेमें कंजूसी न करे। जो शठ या कंजूस है और पूजाके प्रति उपेक्षाकी भावना रखता है, वह यदि कृपणतावश कर्मको किसी अङ्गसे हीन कर दे तो उसके वे काम्यकर्म सफल नहीं होते, ऐसा सत्पुरुषोंका कथन है।

इसलिये मनुष्य यदि फलसिद्धिका इच्छुक हो तो उपेक्षा-भावको त्यागकर सम्पूर्ण अङ्गोंके योगसे काम्यकर्मोंका सम्पादन करे। इस तरह पूजा समाप्त करके महादेव और महादेवीको प्रणाम करे। फिर भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके स्तुतिपाठ करे। स्तुतिके पश्चात् साधक उत्सुकतापूर्वक कम-से-कम एक सौ आठ बार और सम्भव हो तो एक हजारसे अधिक बार पञ्चाक्षरी विद्याका जप करे। तत्पश्चात् क्रमशः विद्या और गुरुकी पूजा करके अपने अभ्युदय और श्रद्धाके अनुसार यज्ञमण्डपके सदस्योंका भी पूजन करे। फिर आवरणोंसहित

---

१. सांख्योक्त २४ प्राकृत तत्त्वोंके साक्षी जीवको पचीसवाँ तत्त्व कहा गया है; जो इससे भी परे हैं, वे सर्वसाक्षी परमात्मा शिव छब्बीसवें तत्त्वरूप हैं।

देवेश्वर शिवका विसर्जन करके यज्ञके उपकरणोंसहित वह सारा मण्डल गुरुको अथवा शिवचरणाश्रित भक्तोंको दे दे। अथवा उसे शिवके ही उद्देश्यसे शिवके क्षेत्रमें समर्पित कर दे। अथवा समस्त आवरण-देवताओंका यथोचित रीतिसे पूजन करके सात प्रकारके होमद्रव्योंद्वारा शिवाग्निमें इष्टदेवताका यजन करे।

यह तीनों लोकोंमें विख्यात योगेश्वर नामक योग है। इससे बढ़कर कोई योग त्रिभुवनमें कहीं नहीं है। संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इससे साध्य न हो। इस लोकमें मिलनेवाला कोई फल हो या परलोकमें, इसके द्वारा सब सुलभ हैं। यह इसका फल नहीं है, ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता; क्योंकि सम्पूर्ण श्रेयोरूप साध्यका यह श्रेष्ठ साधन है। यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि पुरुष जो कुछ फल चाहता है, वह सब चिन्तामणिके समान इससे प्राप्त हो सकता है। तथापि किसी क्षुद्र फलके उद्देश्यसे इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि किसी महान्से लघु फलकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्वयं लघुतर हो जाता है। महादेवजीके उद्देश्यसे महान् या अल्प जो भी कर्म किया जाय, वह सब सिद्ध होता है। अतः उन्हींके उद्देश्यसे कर्मका प्रयोग करना चाहिये। शत्रु तथा मृत्युपर विजय पाना आदि जो फल दूसरोंसे सिद्ध होनेवाले नहीं हैं, उन्हीं लौकिक या पारलौकिक फलोंके लिये विद्वान् पुरुष इसका प्रयोग करे। महापातकोंमें, महान् रोगसे भय आदिमें तथा दुर्भिक्ष आदिमें यदि शान्ति करनेकी आवश्यकता हो तो इसीसे शान्ति करे। अधिक बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? इस योगको महेश्वर शिवने शैवोंके लिये बड़ी भारी आपत्तिका निवारण करनेवाला अपना निजी अस्त्र बताया है। अतः इससे बढ़कर यहाँ अपना कोई रक्षक नहीं है, ऐसा समझकर इस कर्मका प्रयोग करनेवाला पुरुष शुभ फलका भागी होता है। जो प्रतिदिन पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर स्तोत्रमात्रका पाठ करता है, वह भी अभीष्ट प्रयोजनका अष्टमांश फल पा लेता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए पूर्णिमा, अष्टमी अथवा चतुर्दशीको उपवासपूर्वक स्तोत्रका पाठ करता है, उसे आधा अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए लगातार एक मासतक स्तोत्रका पाठ करता है और पूर्णिमा, अष्टमी एवं चतुर्दशीको व्रत रखता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फलका भागी होता है।

(अध्याय ३०)

शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मङ्गलकी कामना

उपमन्युरुवाच

स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पञ्चावरणमार्गतः।
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते॥ १॥

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! अब मैं तुम्हारे समक्ष पञ्चावरण-मार्गसे की जानेवाली स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिससे यह योगेश्वर नामक पुण्यकर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होता है॥ १॥

जय जय जगदेकनाथ शम्भो
प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव।
अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचा-
मपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम्॥ २॥

जगत्के एकमात्र रक्षक! नित्य चिन्मयस्वभाव! प्रकृति-मनोहर शम्भो! आपका तत्त्व कलुषराशिसे रहित, निर्मल वाणी तथा मनकी पहुँचसे भी परे है। आपकी जय हो, जय हो॥२॥

स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित।
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव॥ ३॥

आपका श्रीविग्रह स्वभावसे ही निर्मल है, आपकी चेष्टा परम सुन्दर है, आपकी जय हो। आपकी महाशक्ति आपके ही तुल्य है। आप विशुद्ध कल्याणमय गुणोंके महासागर हैं, आपकी जय हो॥ ३॥

अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासदृशविग्रह।
अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमङ्गल॥ ४॥

आप अनन्त कान्तिसे सम्पन्न हैं। आपके श्रीविग्रहकी कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो। आप अतर्क्य महिमाके आधार हैं तथा शान्तिमय मङ्गलके निकेतन हैं। आपकी जय हो॥ ४॥

निरञ्जन निराधार जय निष्कारणोदय।
निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण॥ ५॥

निरञ्जन (निर्मल), आधाररहित तथा विना कारणके प्रकट होनेवाले शिव! आपकी जय हो। निरन्तर परमानन्दमय! शान्ति और सुखके कारण! आपकी जय हो॥ ५॥

जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद।
जय स्वतन्त्रसर्वस्व जयासदृशवैभव॥ ६॥

अतिशय उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे सुशोभित तथा अत्यन्त करुणा-

के आधार ! आपकी जय हो । प्रभो ! आपका सब कुछ स्वतन्त्र है तथा आपके वैभवकी कहीं समता नहीं है; आपकी जय हो, जय हो ॥ ६ ॥

जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित् ।
जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ॥ ७ ॥

आपने विराट् विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, किंतु आप किसीसे भी व्याप्त नहीं हैं । आपकी जय हो, जय हो । आप सबसे उत्कृष्ट हैं; किंतु आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है । आपकी जय हो, जय हो ॥ ७ ॥

जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय ।
जयामेय जयामाय जयाभव जयामल ॥ ८ ॥

आप अद्भुत हैं, आपकी जय हो । आप अक्षुद्र (महान) हैं, आपकी जय हो । आप अक्षत (निर्विकार) हैं, आपकी जय हो । आप अविनाशी हैं, आपकी जय हो । अप्रमेय परमात्मन् ! आपकी जय हो । मायारहित महेश्वर ! आपकी जय हो । अजन्मा शिव ! आपकी जय हो । निर्मल शंकर ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

महाभुज महासार महागुण महाकथ ।
महाबल महामाय महारस महारथ ॥ ९ ॥

महाबाहो ! महासार ! महागुण ! महती कीर्तिकथासे युक्त ! महाबली ! महामायावी ! महान् रसिक तथा महारथ ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥

नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते ॥ १० ॥

आप परम आराध्यको नमस्कार है । आप परम कारण-को नमस्कार है । शान्त शिवको नमस्कार है और आप परम कल्याणमय प्रभुको नमस्कार है ॥ १० ॥

त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम् ॥ ११ ॥
अतस्त्वद्विहितामाज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम् ॥ १२ ॥

देवताओं और असुरोंसहित यह सम्पूर्ण जगत् आपके अधीन है । अतः आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥ ११-१२ ॥

अयं पुनर्जनो नित्यं भवदेकसमाश्रयः ।
भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं सम्प्रयच्छतु ॥ १३ ॥

हे सनातन देव ! यह सेवक एकमात्र आपके ही आश्रित है; अतः आप इसपर अनुग्रह करके इसे इसकी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें ॥ १३ ॥

जयाम्बिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि ।
जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे ॥ १४ ॥

अम्बिके ! जगन्मातः ! आपकी जय हो । सर्वजगन्मयी ! आपकी जय हो । असीम ऐश्वर्यशालिनि ! आपकी जय हो । आपके श्रीविग्रहकी कहीं उपमा नहीं है, आपकी जय हो ॥१४॥

जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वान्तभञ्जिके ।
जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे ॥ १५ ॥

मन, वाणीसे अतीत शिवे ! आपकी जय हो । अज्ञानान्ध-कारका भञ्जन करनेवाली देवि ! आपकी जय हो । जन्म और जरासे रहित उमे ! आपकी जय हो । कालसे भी अतिशय उत्कृष्ट शक्तिवाली दुर्गे ! आपकी जय हो ॥ १५ ॥

जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये ।
जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृम्भिणि ॥ १६ ॥

अनेक प्रकारके विधानोंमें स्थित परमेश्वरी ! आपकी जय हो । विश्वनाथ-प्रिये ! आपकी जय हो । समस्त देवताओंकी आराधनीया देवि ! आपकी जय हो । सम्पूर्ण विश्वका विस्तार करनेवाली जगदम्बिके ! आपकी जय हो ॥ १६ ॥

जय मङ्गलदिव्याङ्गि जय मङ्गलदीपिके ।
जय मङ्गलचारित्रे जय मङ्गलदायिनि ॥ १७ ॥

मङ्गलमय दिव्य अङ्गोंवाली देवि ! आपकी जय हो । मङ्गलको प्रकाशित करनेवाली ! आपकी जय हो । मङ्गलमय चरित्रवाली सर्वमङ्गले ! आपकी जय हो । मङ्गलदायिने ! आपकी जय हो ॥ १७ ॥

नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये ।
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते ॥ १८ ॥

परम कल्याणमय गुणोंकी आप मूर्ति हैं, आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः आपमें ही लीन होगा ॥ १८ ॥

त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोऽपि न शक्नुयात् ।
जन्मप्रभृति देवेशि जनोऽयं त्वदुपाश्रितः ॥ १९ ॥
अतोऽस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम् ।

देवेश्वरि ! अतः आपके बिना ईश्वर भी फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकते । यह जन जन्मकालसे ही आपकी शरणमें

आया हुआ है। अतः देवि ! आप अपने इस भक्तका मनोरथ सिद्ध कीजिये ॥ १९½ ॥

पञ्चवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसंनिभः ॥ २० ॥
वर्णब्रह्मकलादेहो देवः सकलनिष्कलः ।
शिवमूर्तिसमारूढः शान्त्यतीतः सदाशिवः ।
भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु ॥ २१ ॥

प्रभो ! आपके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। आपकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल है। वर्ण, ब्रह्म और कला आपके विग्रहरूप हैं। आप सकल और निष्कल देवता हैं। शिवमूर्तिमें सदा व्याप्त रहनेवाले हैं। शान्त्यतीत पदमें विराजमान सदाशिव आप ही हैं। मैंने भक्तिभावसे आपकी अर्चना की है। आप मुझे प्रार्थित कल्याण प्रदान करें ॥ २०-२१ ॥

सदाशिवाङ्कमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया ।
जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् ॥ २२ ॥

सदाशिवके अङ्कमें आरूढ़, इच्छाशक्तिस्वरूपा, सर्वलोक-जननी शिवा मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ २२ ॥

शिवयोर्दयितौ पुत्रौ देवौ हेरम्बषण्मुखौ ।
शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ ॥ २३ ॥
तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ ।
सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २४ ॥
सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा ।
स्वेच्छावतारं कुर्वन्तौ स्वांशभेदैरनेकशः ॥ २५ ॥
ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम् ॥ २६ ॥

शिव और पार्वतीके प्रिय पुत्र, शिवके समान प्रभावशाली सर्वज्ञ तथा शिव-ज्ञानामृतका पान करके तृप्त रहनेवाले देवता गणेश और कार्तिकेय परस्पर स्नेह रखते हैं। शिवा और शिव दोनोंसे सत्कृत हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता भी इन दोनों देवोंका सर्वथा सत्कार करते हैं। ये दोनों भाई निरन्तर सम्पूर्ण लोकों-की रक्षा करनेके लिये उद्यत रहते हैं और अपने विभिन्न अंशोंद्वारा अनेक बार स्वेच्छापूर्वक अवतार धारण करते हैं। वे ही ये दोनों बन्धु शिव और शिवाके पार्श्वभागमें मेरे द्वारा इस प्रकार पूजित हो उन दोनोंकी आज्ञा ले प्रतिदिन मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें ॥ २३—२६ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम् ।
मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ॥ २७ ॥
शिवार्चनरतं शान्तं शान्त्यतीतं खमास्थितम् ।
पञ्चाक्षरान्तिमं बीजं कलाभिः पञ्चभिर्युतम् ॥ २८ ॥
प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ २९ ॥

जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल, ईशान नामसे प्रसिद्ध और सदा कल्याणस्वरूप है, परमात्मा शिवकी मूर्धाभिमानिनी मूर्ति है; शिवार्चनमें रत, शान्त, शान्त्यतीत कलामें प्रतिष्ठित, आकाशमण्डलमें स्थित शिव-पञ्चाक्षरका अन्तिम बीज-स्वरूप, पाँच कलाओंसे युक्त और प्रथम आवरण-में सबसे पहले शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे ॥ २७—२९ ॥

बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।
पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः ॥ ३० ॥
शान्त्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम् ।
प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम् ॥ ३१ ॥
पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३२ ॥

जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे युक्त, पुरातन, तत्पुरुष नामसे विख्यात, परमेष्ठी शिवके पूर्ववर्ती मुखका अभिमानी, शान्तिकलास्वरूप या शान्तिकलामें प्रतिष्ठित, वायु-मण्डलमें स्थित, शिव-चरणार्चन-परायण, शिव-के बीजोंमें प्रथम और कलाओंमें चार कलाओंसे युक्त है, मैंने पूर्वदिशामें भक्तिभावसे शक्तिसहित जिसका पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म शिव मेरी प्रार्थना सफल करे ॥ ३०—३२ ॥

अञ्जनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम् ।
देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम् ॥ ३३ ॥
विद्यापदं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम् ।
द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम् ॥ ३४ ॥
शम्भोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३५ ॥

जो अञ्जन आदिके समान श्याम, घोर शरीरवाला एवं अघोर नामसे प्रसिद्ध है, महादेवजीके दक्षिण मुखका अभिमानी तथा देवाधिदेव शिवके चरणोंका पूजक है, विद्याकलापर आरूढ और अग्निमण्डलके मध्य विराजमान है, शिवबीजों-में द्वितीय तथा कलाओंमें अष्टकलायुक्त एवं भगवान् शिवके दक्षिणभागमें शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे ॥ ३३—३५ ॥

कुङ्कुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेषधृक्।
वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम् ॥ ३६ ॥
वारिमण्डलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम्।
तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम् ॥ ३७ ॥
देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३८ ॥

जो कुङ्कुमचूर्ण अथवा केसरयुक्त चन्दनके समान रक्त-पीत वर्णवाला, सुन्दरवेषधारी और वामदेव नामसे प्रसिद्ध है, भगवान् शिवके उत्तरवर्ती मुखका अभिमानी है, प्रतिष्ठाकलामें प्रतिष्ठित है, जलके मण्डलमें विराजमान तथा महादेवजीकी अर्चनामें तत्पर है, शिव-बीजोंमें चतुर्थ तथा तेरह कलाओंसे युक्त है और महादेवजीके उत्तर भागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थना पूर्ण करे ॥ ३६—३८ ॥

शङ्खकुन्देन्दुधवलं सद्याख्यं सौम्यलक्षणम्।
शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम् ॥ ३९ ॥
निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम्।
तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम् ॥ ४० ॥
देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ४१ ॥

जो शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमाके समान धवल, सौम्य तथा सद्योजात नामसे विख्यात है, भगवान् शिवके पश्चिम मुखका अभिमानी एवं शिवचरणोंकी अर्चनामें रत है, निवृत्तिकलामें प्रतिष्ठित तथा पृथ्वीमण्डलमें स्थित है, शिव-बीजोंमें तृतीय, आठ कलाओंसे युक्त और महादेवजीके पश्चिम-भागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु दे ॥ ३९–४१ ॥

शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्त्ती शिवभाविते।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४२ ॥

शिव और शिवाकी हृदयरूपी मूर्तियाँ शवभावसे भावित हो उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ ४२ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४३ ॥

शिव और शिवाकी शिखारूपा मूर्तियाँ शिवके ही आश्रित रहकर उन दोनोंकी आज्ञाका आदर करके मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ४३ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणा शिवभाविते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४४ ॥

शिव और शिवाकी कवचरूपा मूर्तियाँ शिवभावसे भावित हो शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मेरी कामना सफल करें ॥ ४४ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४५ ॥

शिव और शिवाकी नेत्ररूपा मूर्तियाँ शिवके आश्रित रह उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मेरा मनोरथ प्रदान करें ॥ ४५ ॥

अस्त्रमूर्ती च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४६ ॥

शिव और शिवाकी अस्त्ररूपा मूर्तियाँ नित्य उन्हीं दोनोंके अर्चनमें तत्पर रह उनकी आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ४६ ॥

वामो ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा।
बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः ॥ ४७ ॥
सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥ ४८ ॥

वाम, ज्येष्ठ, रुद्र, काल, विकरण, बलविकरण, बलप्रमथन तथा सर्वभूतदमन—ये आठ शिव-मूर्तियाँ तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—वामा, ज्येष्ठा, रुद्राणी, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी तथा सर्वभूतदमनी—ये सब शिव और शिवाके ही शासनसे मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें ॥ ४७-४८ ॥

अथानन्तश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः।
एकरुद्रस्त्रिमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिकः ॥ ४९ ॥
तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः।
ते मे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥ ५० ॥

अनन्त, सूक्ष्म, शिव (अथवा शिवोत्तम), एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी—ये आठ विद्येश्वर तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—अनन्ता, सूक्ष्मा, शिवा (अथवा शिवोत्तमा), एकनेत्रा, एकरुद्रा, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठी और शिखण्डिनी, जिनकी द्वितीय आवरणमें पूजा हुई है, शिवा और शिवके ही शासनसे मेरी मनःकामना पूर्ण करें ॥ ४९-५० ॥

भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः।
महादेवादयश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः ॥ ५१ ॥
शक्तिभिः सहिताः सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशन्तु फलमीप्सितम् ॥ ५२ ॥

भव आदि आठ मूर्तियाँ और उनकी शक्तियाँ तथा शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियाँ, जिनकी स्थिति तीसरे आवरणमें है, शिव और पार्वतीकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट फल प्रदान करें ॥ ५१-५२ ॥

वृषराजो महातेजा महामेघसमस्वनः।
मेरुमन्दरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ॥ ५३ ॥
सिताभ्रशिखराकारककुदा परिशोभितः।
महाभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजितः ॥ ५४ ॥
रक्तास्यशृङ्गचरणो रक्तप्रायविलोचनः।
पीवरोन्नतसर्वाङ्गः सुचारुगमनोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥
प्रशस्तलक्षणः श्रीमान् प्रज्वलन्मणिभूषणः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः ॥ ५६ ॥
तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः।
गोराजपुरुषः श्रीमान् श्रीमच्छूलवरायुधः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ५७ ॥

जो वृषभोंके राजा, महातेजस्वी, महान् मेघके समान शब्द करनेवाले, मेरु, मन्दराचल, कैलास और हिमालयके शिखरकी भाँति ऊँचे एवं उज्ज्वल वर्णवाले हैं, श्वेत बादलोंके शिखरकी भाँति ऊँचे ककुद्से शोभित हैं, महानागराज (शेष) के शरीरकी भाँति पूँछ जिनकी शोभा बढ़ाती है, जिनके मुख, सींग और पैर भी लाल हैं, नेत्र भी प्रायः लाल ही हैं, जिनके सारे अङ्ग मोटे और उन्नत हैं, जो अपनी मनोहर चालसे बड़ी शोभा पाते हैं, जिनमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, जो चमचमाते हुए मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हो अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, जो भगवान् शिवको प्रिय हैं और शिवमें ही अनुरक्त रहते हैं, शिव और शिवा दोनोंके ही जो ध्वज और वाहन हैं तथा उनके चरणोंके स्पर्शसे जिनका पृष्ठभाग परम पवित्र हो गया है, जो गौओंके राजपुरुष हैं, वे श्रेष्ठ और चमकीला त्रिशूल धारण करनेवाले नन्दिकेश्वर वृषभ शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ५३—५७ ॥

नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः।
सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वन्दितः ॥ ५८ ॥
शर्वस्यान्तःपुरद्वारि सार्द्धं परिजनैः स्थितः।
सर्वेश्वरसमप्रख्यः सर्वासुरविमर्दनः ॥ ५९ ॥
सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः।
शिवप्रियः शिवासक्तः श्रीमच्छूलवरायुधः ॥ ६० ॥
शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६१ ॥

जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके लिये पुत्रके तुल्य प्रिय हैं, श्रीविष्णु आदि देवताओंद्वारा नित्य पूजित एवं वन्दित हैं, भगवान् शंकरके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ खड़े रहते हैं, सर्वेश्वर शिवके समान ही तेजस्वी हैं तथा समस्त असुरोंको कुचल देनेकी शक्ति रखते हैं, शिवधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण शिवभक्तोंके अध्यक्षपदपर जिनका अभिषेक हुआ है, जो भगवान् शिवके प्रिय, शिवमें ही अनुरक्त तथा तेजस्वी त्रिशूल नामक श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले हैं, भगवान् शिवके शरणागत भक्तोंपर जिनका स्नेह है तथा शिवभक्तोंका भी जिनमें अनुराग है, वे महातेजस्वी नन्दीश्वर शिव और पार्वतीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ५८—६१ ॥

महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः।
महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु ॥ ६२ ॥

दूसरे महादेवके समान महातेजस्वी महाबाहु महाकाल महादेवजीके शरणागत भक्तोंकी नित्य ही रक्षा करें ॥ ६२ ॥

शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोरर्चकः सदा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ६३ ॥

वे भगवान् शिवके प्रिय हैं, भगवान् शिवमें उनकी आसक्ति है तथा वे सदा ही शिव तथा पार्वतीके पूजक हैं, इसलिये शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ६३ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः।
महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६४ ॥

जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थके ज्ञाता, भगवान् विष्णुके द्वितीय स्वरूप, सबके शासक तथा महामोहात्मा कद्रूके पुत्र हैं, मधु, फलका गुदा और आसव जिन्हें प्रिय हैं, वे नागराज भगवान् शेष शिव और पार्वतीकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरी इच्छाको पूर्ण करें ॥ ६४ ॥

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डविक्रमा ॥ ६५ ॥

एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः ।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात् ॥ ६६ ॥

ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री तथा प्रचण्ड पराक्रमशालिनी चामुण्डा देवी—ये सर्वलोक-जननी सात माताएँ परमेश्वर शिवके आदेशसे मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें ॥ ६५-६६ ॥

मत्तमातङ्गवदनो गङ्गोमाशंकरात्मजः ।
आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः ॥ ६७ ॥
ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः ।
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ॥ ६८ ॥
विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ६९ ॥

जिनका मतवाले हाथीका-सा मुख है; जो गङ्गा, उमा और शिवके पुत्र हैं; आकाश जिनका शरीर है, दिशाएँ भुजाएँ हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं; ऐरावत आदि दिव्य दिग्गज जिनकी नित्य पूजा करते हैं, जिनके मस्तकसे शिवज्ञानमय मदकी धारा बहती रहती है, जो देवताओंके विघ्नका निवारण करते और असुर आदिके कार्योंमें विघ्न डालते रहते हैं, वे विघ्नराज गणेश शिवसे भावित हो शिवा और शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ प्रदान करें ॥ ६७—६९ ॥

षण्मुखः शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः ।
अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः ॥ ७० ॥
गङ्गायाश्च गणाम्बायाः कृत्तिकानां तथैव च ।
विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ॥ ७१ ॥
इन्द्रजिच्चेन्द्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा ।
शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा ॥ ७२ ॥
तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः ।
कुमारः सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ॥ ७३ ॥
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चकः सदा ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७४ ॥

जिनके छः मुख हैं, भगवान् शिवसे जिनकी उत्पत्ति हुई है, जो शक्ति और वज्र धारण करनेवाले प्रभु हैं, अग्निके पुत्र तथा अपर्णा (शिवा) के बालक हैं; गङ्गा, गणाम्बा तथा कृत्तिकाओंके भी पुत्र हैं; विशाख, शाख और नैगमेय—इन तीनों भाइयोंसे जो सदा घिरे रहते हैं; जो इन्द्रविजयी, इन्द्रके सेनापति तथा तारकासुरको परास्त करनेवाले हैं; जिन्होंने अपनी शक्तिसे मेरु आदि पर्वतोंको छेद डाला है, जिनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर हैं, कुमार नामसे जिनकी प्रसिद्धि है, जो सुकुमारोंके रूपके सबसे बड़े उदाहरण हैं; शिवके प्रिय, शिवमें अनुरक्त तथा शिव-चरणोंकी नित्य अर्चना करनेवाले हैं; स्कन्द शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दें ॥ ७०—७४ ॥

ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजने रता ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७५ ॥

सर्वश्रेष्ठ और वरदायिनी ज्येष्ठा देवी, जो सदा भगवान् शिव और पार्वतीके पूजनमें लगी रहती हैं, उन दोनोंकी आज्ञा मानकर मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ७५ ॥

त्रैलोक्यवन्दिता साक्षादुल्काकारा गणाम्बिका ।
जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाभ्यर्थिता शिवात् ॥ ७६ ॥
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृता ।
दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा ॥ ७७ ॥
कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च ।
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च ॥ ७८ ॥
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ७९ ॥

त्रैलोक्यवन्दिता, साक्षात् उल्का (लुकाठी)-जैसी आकृतिवाली गणाम्बिका, जो जगत्‌की सृष्टि बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर शिवके शरीरसे पृथक् हुई शिवाके दोनों भौंहोंके बीचसे निकली थीं, जो दाक्षायणी, सती, मेना तथा हिमवान्-कुमारी उमा आदिके रूपमें प्रसिद्ध हैं; कौशिकी, भद्रकाली, अपर्णा और पाटलाकी जननी हैं; नित्य शिवार्चनमें तत्पर रहती हैं एवं रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहलाती हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दें ।

चण्डः सर्वगणेशानः शम्भोर्वदनसम्भवः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८० ॥

समस्त शिवगणोंके स्वामी चण्ड, जो भगवान् शंकरके मुखसे प्रकट हुए हैं, शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ८० ॥

पिङ्गलो गणपः श्रीमान् शिवासक्तः शिवप्रियः ।
आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ८१ ॥

भगवान् शिवमें आसक्त और शिवके प्रिय गणपाल

श्रीमान् पिङ्गल शिव और शिवाकी आज्ञासे ही मेरी मनःकामना पूर्ण करें ॥ ८१ ॥

भृङ्गीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः ।
प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरस्सरम् ॥ ८२ ॥

शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले भृङ्गीश्वर नामक गणपाल अपने स्वामीकी आज्ञा ले मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८२ ॥

वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसंनिभः ।
भद्रकालीप्रियो नित्यं मातॄणां चाभिरक्षिता ॥ ८३ ॥
यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः ।
उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गतक्षकः ॥ ८४ ॥
शिवस्यानुचरः श्रीमान् शिवशासनपालकः ।
शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८५ ॥

हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, भद्रकाली-के प्रिय, सदा ही मातृगणोंकी रक्षा करनेवाले; दुरात्मा दक्ष और उसके यज्ञका सिर काटनेवाले; उपेन्द्र, इन्द्र और यम आदि देवताओंके अङ्गोंमें घाव कर देनेवाले, शिवके अनुचर तथा शिवकी आज्ञाके पालक, महातेजस्वी श्रीमान् वीरभद्र शिव और शिवाके आदेशसे ही मुझे मेरी मनचाही वस्तु दें ॥ ८३–८५ ॥

सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा ।
शिवयोः पूजने सक्ता सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८६ ॥

महेश्वरके मुखकमलसे प्रकट हुई तथा शिव-पार्वतीके पूजनमें आसक्त रहनेवाली वे सरस्वती देवी मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८६ ॥

विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ।
शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८७ ॥

भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान लक्ष्मी देवी, जो सदा शिव और शिवाके पूजनमें लगी रहती हैं, उन शिवदम्पतीके आदेशसे ही मेरी अभिलाषा पूर्ण करें ॥ ८७ ॥

महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा ।
तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८८ ॥

महादेवी पार्वतीके पादपद्मोंकी पूजामें परायण महामोटी उन्हींकी आज्ञासे मेरी मनचाही वस्तु मुझे दें ॥ ८८ ॥

कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः परमा सुता ।
विष्णोर्निद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी ॥ ८९ ॥
निशुम्भशुम्भसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया ।
सत्कृत्य शासनं मातुः सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ९० ॥

पार्वतीकी सबसे श्रेष्ठ पुत्री सिंहवाहिनी कौशिकी, भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा महामाया, महामहिषमर्दिनी महालक्ष्मी तथा मधु और फलोंके गूदे तथा रसको प्रेमपूर्वक भोग लगानेवाली निशुम्भ-शुम्भसंहारिणी महासरस्वती माता पार्वतीकी आज्ञासे मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ ८९-९० ॥

रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ।
भूताख्याश्च महावीर्या महादेवसमप्रभाः ॥ ९१ ॥
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः ।
सशक्तयः सानुचराः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ९२ ॥
सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ।
परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः ॥ ९३ ॥
परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः ।
शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ॥ ९४ ॥
सौम्या घोरास्तथा मिश्राश्चान्तरालद्वयात्मिकाः ।
विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ॥ ९५ ॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशन्तु वै ।

रुद्रदेवके समान तेजस्वी रुद्रगण, प्रख्यातपराक्रमी प्रमथगण तथा महादेवजीके समान तेजस्वी महाबली भूतगण, जो नित्यमुक्त, उपमारहित, निर्द्वन्द्व, उपद्रवशून्य, शक्तियों और अनुचरोंके साथ रहनेवाले, सर्वलोक-वन्दित, समस्त लोकोंकी सृष्टि और संहारमें समर्थ, परस्पर एक-दूसरेके अनुरक्त और भक्त, आपसमें अत्यन्त स्नेह रखनेवाले, एक-दूसरेको नमस्कार करनेवाले, शिवके नित्य प्रियतम, शिवके ही चिह्नोंसे लक्षित, सौम्य, घोर, उभय भावयुक्त, दोनोंके बीचमें रहनेवाले द्विरूप, कुरूप, सुरूप और नानारूपधारी हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मेरा मनोरथ सिद्ध करें ॥ ९१–९५½ ॥

देव्याः प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ॥ ९६ ॥
सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ।
तृतीयावरणे शम्भोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ॥ ९७ ॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

देवीकी प्रिय सखियोंका समुदाय, जो देवीके ही लक्षणोंसे लक्षित है और भगवान् शिवके तीसरे आवरणमें रुद्रकन्याओं तथा अनेक शक्तियोंसहित नित्य भक्तिभावसे पूजित हुआ है,

वह शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मङ्गल प्रदान करे ॥ ९६-९७½ ॥

दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीप्तसुमण्डलः ॥ ९८ ॥
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकारात्मकश्चाद्य एकः सामान्यविक्रियः ॥ ९९ ॥
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः ॥१००॥
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्चानुगैः सह ।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥१०१॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

भगवान् सूर्य महेश्वरकी मूर्ति हैं, उनका सुन्दर मण्डल दीप्तिमान् है, वे निर्गुण होते हुए भी कल्याणमय गुणोंसे युक्त हैं, केवल सद्गुणरूप हैं; निर्विकार, सबके आदि-कारण और एकमात्र (अद्वितीय) हैं; यह सामान्य जगत् उन्हींकी सृष्टि है, सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके कर्म असाधारण हैं; इस तरह वे तीन, चार और पाँच रूपोंमें विभक्त हैं, भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे सूर्यदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ ९८–१०१½ ॥

दिवाकरषडङ्गानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः ॥१०२॥
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ।
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः ॥१०३॥
विस्तरा सुतरा बोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः ।
उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः ॥१०४॥
सोमादिकेतुपर्यन्ता ग्रहाश्च शिवभाविताः ।
शिवयोराज्ञया नुन्ना मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥१०५॥
अथ वा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः ।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः ॥१०६॥
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्च सुरास्तथा ।
सप्त सप्तगणाश्चैते सप्तच्छन्दोमया हयाः ॥१०७॥
वालखिल्यादयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥१०८॥

सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाले छहों अङ्ग, उनकी दीप्ता आदि आठ शक्तियाँ; आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये आठ आदित्यमूर्तियाँ और उनकी विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी तथा उनके अतिरिक्त उषा, प्रभा, प्राज्ञा और संध्या—ये शक्तियाँ; चन्द्रमासे लेकर केतुपर्यन्त शिवभावित ग्रह, बारह आदित्य, उनकी बारह शक्तियाँ तथा ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, अप्सराओंके समूह, ग्रामणी (अगुवा), यक्ष, राक्षस—ये सात-सात संख्यावाले गण, सात छन्दोमय अश्व, बालखिल्य आदि मुनि—ये सब-के-सब भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले हैं । ये लोग शिव और पार्वतीकी आज्ञाका आदर करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १०२–१०८ ॥

ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः ।
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥१०९॥
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकारात्मको देवस्ततः साधारणः पुरः ॥११०॥
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः ॥१११॥
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः ।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥११२॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

ब्रह्माजी देवाधिदेव महादेवजीकी मूर्ति हैं । भूमण्डलके अधिपति हैं । चौसठ गुणोंके ऐश्वर्यसे युक्त हैं और बुद्धितत्त्व-में प्रतिष्ठित हैं । वे निर्गुण होते हुए भी अनेक कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न हैं, सद्गुणसमूहरूप हैं, निर्विकार देवता हैं, उनके सामने दूसरे सब लोग साधारण हैं । सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके सब कर्म असाधारण हैं । इस तरह वे तीन, चार एवं पाँच आवरणों या स्वरूपोंमें विभक्त हैं । भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे ब्रह्मदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १०९–११२½ ॥

हिरण्यगर्भो लोकेशो विराट् कालश्च पूरुषः ॥११३॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः ।
प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः ॥११४॥
एकादश सपत्नीका धर्मः संकल्प एव च ।
शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः ॥११५॥
शिवाज्ञावशगाः सर्वे दिशन्तु मम मङ्गलम् ।

हिरण्यगर्भ, लोकेश, विराट्, कालपुरुष, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष आदि ब्रह्मपुत्र, ग्यारह

प्रजापति और उनकी पत्नियाँ, धर्म तथा संकल्प—ये सब-के-सब शिवकी अर्चनामें तत्पर रहनेवाले और शिवभक्तिपरायण हैं, अतः शिवकी आज्ञाके अधीन हो मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ ११३-११५½ ॥

चत्वारश्च तथा वेदाः सेतिहासपुराणकाः ॥११६॥
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विताः ।
परस्पराविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ॥११७॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ।

चार वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और वैदिक विद्याएँ—ये सब-के-सब एकमात्र शिवके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले हैं; अतः इनका तात्पर्य एक-दूसरेके विरुद्ध नहीं है। ये सब शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मङ्गल करें ॥ ११६-११७½ ॥

अथ रुद्रो महादेवः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥११८॥
वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान् प्रभुः ।
शिवाभिमानसम्पन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः ॥११९॥
केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः ।
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः ॥१२०॥
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।
ब्रह्मणोऽपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः ॥१२१॥
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः ।
बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः ॥१२२॥
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः ।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥१२३॥
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम् ।

महादेव रुद्र शम्भुकी सबसे गरिष्ठ मूर्ति हैं। ये अग्नि-मण्डलके अधीश्वर हैं। समस्त पुरुषार्थों और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं, सर्वसमर्थ हैं। इनमें शिवत्वका अभिमान जाग्रत् है। वे निर्गुण होते हुए भी त्रिगुणरूप हैं। केवल सात्त्विक, राजस और तामस भी हैं। ये पहलेसे ही निर्विकार हैं। सब कुछ इन्हींकी सृष्टि है। सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण इनका कर्म असाधारण माना जाता है। ये ब्रह्माजीके भी मस्तकका छेदन करनेवाले हैं। ब्रह्माजीके पिता और पुत्र भी हैं। इसी तरह विष्णुके भी जनक और पुत्र हैं तथा उन्हें नियन्त्रणमें रखनेवाले हैं। ये उन दोनों—ब्रह्मा और विष्णु-को ज्ञान देनेवाले तथा नित्य उनपर अनुग्रह रखनेवाले हैं। ये प्रभु ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर भी व्याप्त हैं तथा इहलोक और परलोक—दोनों लोकोंके अधिपति रुद्र हैं। ये शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके ही चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; अतः शिवकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरा मङ्गल करें ॥ ११८-१२३½ ॥

तस्य ब्रह्म षडङ्गानि विद्येशानां तथाष्टकम् ॥१२४॥
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः ।
शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः ।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥१२५॥

भगवान् शंकरके स्वरूपभूत ईशानादि, ब्रह्म, हृदयादि छः अङ्ग, आठ विद्येश्वर, शिव आदि चार मूर्तिभेद—शिव, भव, हर और मृड—ये सब-के-सब शिवके पूजक हैं। ये लोग शिवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १२४-१२५ ॥

अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः ।
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ॥१२६॥
निर्गुणः सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः ॥१२७॥
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।
दक्षिणाङ्गभवेनापि स्पर्धमानः स्वयम्भुवा ॥१२८॥
आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु ।
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः ॥१२९॥
असुरान्तकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः ।
प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह ॥१३०॥
भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरत् क्षितौ ।
अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयञ्जगत् ॥१३१॥
मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा ।
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने ॥१३२॥
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम् ॥१३३॥

भगवान् विष्णु महेश्वर शिवके ही उत्कृष्ट स्वरूप हैं। वे जलतत्त्वके अधिपति और साक्षात् अव्यक्त पदपर प्रतिष्ठित हैं। प्राकृत गुणोंसे रहित हैं। उनमें दिव्य सत्त्वगुणकी प्रधानता है तथा वे विशुद्ध गुणस्वरूप हैं। उनमें निर्विकार-रूपताका अभिमान है। साधारणतया तीनों लोक उनकी कृति हैं। सृष्टि, पालन आदि करनेके कारण उनके कर्म असाधारण हैं। वे रुद्रके दक्षिणाङ्गसे प्रकट हुए स्वयम्भूके साथ एक समय स्पर्धा कर चुके हैं। साक्षात् आदिब्रह्मा-द्वारा उत्पादित होकर भी वे उनके भी उत्पादक हैं। ब्रह्माण्डके

भीतर और बाहर व्याप्त हैं, इसलिये विष्णु कहलाते हैं। दोनों लोकोंके अधिपति हैं। असुरोंका अन्त करनेवाले, चक्रधारी तथा इन्द्रके भी छोटे भाई हैं। दस अवतार-विग्रहोंके रूपमें यहाँ प्रकट हुए हैं। भृगुके शापके बहाने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उन्होंने स्वेच्छासे इस भूतलपर अवतार लिया है। उनका बल अप्रमेय है। वे मायावी हैं और अपनी माया-द्वारा जगत्‌को मोहित करते हैं। उन्होंने महाविष्णु अथवा सदाविष्णुका रूप धारण करके त्रिमूर्तिमय आसनपर वैष्णवोंद्वारा नित्य पूजा प्राप्त की है। वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणोंकी अर्चनामें तत्पर हैं। वे शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १२६–१३३ ॥

वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः।
संकर्षणः समाख्याताश्चतस्रो मूर्तयो हरेः ॥ १३४॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः ॥ १३५॥
चक्रं नारायणस्यास्त्रं पाञ्चजन्यं च शार्ङ्गकम्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३६॥

वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा संकर्षण—ये श्रीहरिकी चार विख्यात मूर्तियाँ (व्यूह) हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, श्रीकृष्ण, विष्णु, हयग्रीव, चक्र, नारायणास्त्र, पाञ्चजन्य तथा शार्ङ्गधनुष—ये सब-के-सब शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १३४–१३६ ॥

प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता।
शिवयोः शासनादेता मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३७॥

प्रभा, सरस्वती, गौरी तथा शिवके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली लक्ष्मी—ये शिव और शिवाके आदेशसे मेरा मङ्गल करें ॥ १३७ ॥

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा।
वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक् ॥ १३८॥
सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे ॥ १३९॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा त्रिशूलधारी ईशान—ये सब-के-सब शिव-सद्भावसे भावित होकर शिवार्चनमें तत्पर रहते हैं। ये शिव और शिवाकी आज्ञाका आदर मानकर मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १३८-१३९ ॥

त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ।
खड्गपाशाङ्कुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः ॥ १४०॥
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वन्तु मे सदा ॥ १४१॥

त्रिशूल, वज्र, परशु, बाण, खड्ग, पाश, अङ्कुश और श्रेष्ठ आयुध पिनाक—ये महादेव तथा महादेवीके दिव्य आयुध शिव और शिवाकी आज्ञाका नित्य सत्कार करते हुए सदा मेरी रक्षा करें ॥ १४०-१४१ ॥

वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः।
वडवाख्यानलस्पर्द्धी पञ्चगोमातृभिर्वृतः ॥ १४२॥
वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ १४३॥

वृषभरूपधारी देव, जो सुरभीके महाबली पुत्र हैं, वड़वानलसे भी होड़ लगाते हैं, पाँच गोमाताओंसे घिरे रहते हैं और अपनी तपस्याके प्रभावसे परमेश्वर शिव तथा परमेश्वरी शिवाके वाहन हुए हैं, उन दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरी इच्छा पूर्ण करें ॥ १४२-१४३ ॥

नन्दा सुनन्दा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः ॥ १४४॥
शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः।
शिवयोः शासनादेव दिशन्तु मम वाञ्छितम् ॥ १४५॥

नन्दा, सुनन्दा, सुरभि, सुशीला और सुमना—ये पाँच गोमाताएँ सदा शिवलोकमें निवास करती हैं। ये सब-की-सब नित्य शिवार्चनमें लगी रहती और शिवभक्तिपरायणा हैं, अतः शिव तथा शिवाके आदेशसे ही मेरी इच्छाकी पूर्ति करें ॥ १४४-१४५ ॥

क्षेत्रपालो महातेजा नीलजीमूतसंनिभः।
दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः ॥ १४६॥
रक्तोर्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान् भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः।
रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः ॥ १४७॥
नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः ।
भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः ॥ १४८॥
क्षेत्रे क्षेत्रसमासीनः स्थितो यो रक्षकः सताम्।
शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः ॥ १४९॥
शिवाश्रितान् विशेषेण रक्षन् पुत्रानिवौरसान्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ॥ १५०॥

क्षेत्रपाल महान् तेजस्वी हैं, उनकी अङ्गकान्ति नील

मेघके समान है और मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। उनके लाल-लाल ओठ फड़कते रहते हैं, जिससे उनकी शोभा बढ़ जाती है, उनके सिरके बाल भी लाल और ऊपरको उठे हुए हैं। वे तेजस्वी हैं, उनकी भौंहें तथा आँखें भी टेढ़ी ही हैं। वे लाल और गोलाकार तीन नेत्र धारण करते हैं। चन्द्रमा और सर्प उनके आभूषण हैं। वे सदा नंगे ही रहते हैं तथा उनके हाथोंमें त्रिशूल, पाश, खड्ग और कपाल उठे रहते हैं। वे भैरव हैं और भैरवों, सिद्धों तथा योगिनियोंसे घिरे रहते हैं। प्रत्येक क्षेत्रमें उनकी स्थिति है। वे वहाँ सत्पुरुषोंके रक्षक होकर रहते हैं। उनका मस्तक सदा शिवके चरणोंमें झुका रहता है, वे सदा शिवके सद्भावसे भावित हैं तथा शिवके शरणागत भक्तोंकी औरस पुत्रोंकी भाँति विशेष रक्षा करते हैं। ऐसे प्रभावशाली क्षेत्रपाल शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मङ्गल प्रदान करें ॥ १४६–१५० ॥

तालजङ्घादयस्तस्य प्रथमावरणेऽर्चिताः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम् ॥ १५१ ॥

तालजङ्घ आदि शिवके प्रथम आवरणमें पूजित हुए हैं, वे चारों देवता शिवकी आज्ञाका आदर करके मेरी रक्षा करें ॥ १५१ ॥

भैरवाद्याश्च ये चान्ये समन्तात्तस्य वेष्टिताः ।
तेऽपि मामनुगृह्णन्तु शिवशासनगौरवात् ॥ १५२ ॥

जो भैरव आदि तथा दूसरे लोग शिवको सब ओरसे घेरकर स्थित हैं, वे भी शिवके आदेशका गौरव मानकर मुझपर अनुग्रह करें ॥ १५२ ॥

नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः ।
साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः ॥ १५३ ॥
विनिर्वृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः ।
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैः सह ॥ १५४ ॥
सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः ।
शिवयोराज्ञया मह्यं दिशन्तु समकाङ्क्षितम् ॥ १५५ ॥

नारद आदि देवपूजित दिव्य मुनि, साध्य, नाग, जनलोकनिवासी देवता, विशेषाधिकारसे सम्पन्न महर्लोकनिवासी, सप्तर्षि तथा अन्य वैमानिकगण सदाशिवकी अर्चनामें तत्पर रहते हैं। ये सब शिवकी आज्ञाके अधीन हैं, अतः शिवा और शिवकी आज्ञासे मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें ॥ १५३–१५५ ॥

गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रो देवयोनयः ।
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः ॥ १५६ ॥
असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः ।
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः ॥ १५७ ॥
कूष्माण्डाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे ।
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः ॥ १५८ ॥
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च ।
द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च ॥ १५९ ॥
गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि समन्ततः ।
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः ॥ १६० ॥
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः ।
अण्डान्यावरणैः सार्द्धं मासाश्च दश दिग्गजाः ॥ १६१ ॥
वर्णाः पदानि मन्त्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः ।
ब्रह्माण्डधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः ॥ १६२ ॥
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् ।
सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥ १६३ ॥

गन्धर्वोंसे लेकर पिशाचपर्यन्त जो चार देवयोनियाँ हैं, जो सिद्ध, विद्याधर, अन्य आकाशचारी, असुर, राक्षस, पातालतलवासी अनन्त आदि नागराज, गरुड आदि दिव्य पक्षी, कूष्माण्ड, प्रेत, वेताल, ग्रह, भूतगण, डाकिनियाँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ तथा वैसी ही और स्त्रियाँ, क्षेत्र, आराम (बगीचे), गृह आदि तीर्थ, देवमन्दिर, द्वीप, समुद्र, नदियाँ, नद, सरोवर, सुमेरु आदि पर्वत, सब ओर फैले हुए वन, पशु, पक्षी, वृक्ष, कृमि, कीट आदि, मृग, समस्त भुवन, भुवनेश्वर, आवरणोंसहित ब्रह्माण्ड, बारह मास, दस दिग्गज, वर्ण, पद, मन्त्र, तत्त्व, उनके अधिपति, ब्रह्माण्ड-धारक रुद्र, अन्य रुद्र और उनकी शक्तियाँ तथा इस जगत्‌में जो कुछ भी देखा, सुना और अनुमान किया हुआ है—ये सब-के-सब शिवा और शिवकी आज्ञासे मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ १५६–१६३ ॥

अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी ।
पञ्चार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता ॥ १६४ ॥
शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम् ।
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसम्मितम् ॥ १६५ ॥
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः ।
शिवाभ्यामविशेषेण उत्कृत्येह समर्चिताः ॥ १६६ ॥
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥ १६७ ॥

जो पञ्च-पुरुषार्थस्वरूपा होनेसे पञ्चार्था कही गयी है,

जिसका स्वरूप दिव्य है तथा जो पशु-विद्याकी कोटिसे बाहर है, वह पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाली शैवी परा विद्या, शिवधर्मशास्त्र, शैवधर्म, श्रुतिसम्मत शिवसंज्ञकपुराण, शैवागम तथा धर्म-कामादि चतुर्विध पुरुषार्थ, जिन्हें शिव और शिवाके समान ही मानकर उन्हींके समान पूजा दी गयी है, उन्हीं दोनोंकी आज्ञा लेकर मेरे अभीष्टकी सिद्धिके लिये इस कर्मका अनुमोदन करें, इसे सफल और सुसम्पन्न घोषित करें ॥ १६४—१६७ ॥

श्वेताद्या नकुलीशान्ताः सशिष्याश्चापि देशिकाः ।
तत्संततीया गुरवो विशेषाद् गुरवो मम ॥१६८॥
शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥१६९॥

श्वेतसे लेकर नकुलीशपर्यन्त, शिष्यसहित आचार्यगण, उनकी संतान-परम्परामें उत्पन्न गुरुजन, विशेषतः मेरे गुरु, शैव, माहेश्वर, जो ज्ञान और कर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, मेरे इस कर्मको सफल और सुसम्पन्न मानें ॥ १६८-१६९ ॥

लौकिका ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥१७०॥
सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः ।
सौरा ब्राह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः ॥१७१॥
शिष्टाः सर्वे विशिष्टाश्च शिवशासनयन्त्रिताः ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां ममाभिप्रेतसाधकम् ॥१७२॥

लौकिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वज्ञ विद्वान्, सर्वशास्त्रकुशल, सांख्यवेत्ता, वैशेषिक, योगशास्त्रके आचार्य, नैयायिक, सूर्योपासक, ब्रह्मोपासक, शैव, वैष्णव तथा अन्य सब शिष्ट और विशिष्ट पुरुष शिवकी आज्ञाके अधीन हो मेरे इस कर्मको अभीष्ट-साधक मानें ॥ १७०—१७२ ॥

शैवाः सिद्धान्तमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा ।
शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे ॥१७३॥
शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात् ।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु शंसन्तु सफलक्रियाम् ॥१७४॥

सिद्धान्तमार्गी शैव, पाशुपत शैव, महाव्रतधारी शैव तथा अन्य कापालिक शैव—ये सब-के-सब शिवकी आज्ञाके पालक तथा मेरे भी पूज्य हैं। अतः शिवकी आज्ञासे इन सबका मुझपर अनुग्रह हो और वे इस कार्यको सफल घोषित करें ॥ १७३-१७४ ॥

दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः ।
अविरोधेन वर्तन्तां मन्त्रं श्रेयोऽर्थिनो मम ॥१७५॥

जो दक्षिणाचारके ज्ञानमें परिनिष्ठित तथा दक्षिणाचारके उत्कृष्ट मार्गपर चलनेवाले हैं, वे परस्पर विरोध न रखते हुए मन्त्रका जप करें और मेरे कल्याणकामी हों ॥ १७५ ॥

नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः ।
पाषण्डाश्चातिपापाश्च वर्तन्तां दूरतो मम ॥१७६॥
बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपि चिदास्तिकाः ।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु सन्तः शंसन्तु मङ्गलम् ॥१७७॥

नास्तिक, शठ, कृतघ्न, तामस, पाखण्डी और अति पापी प्राणी मुझसे दूर ही रहें। यहाँ बहुतोंकी स्तुतिसे क्या लाभ ? जो कोई भी आस्तिक संत हैं, वे सब मुझपर अनुग्रह करें और मेरे मङ्गल होनेका आशीर्वाद दें ॥ १७६-१७७ ॥

नमः शिवाय साम्बाय ससुतायादिहेतवे ।
पञ्चावरणरूपेण प्रपञ्चेनावृताय ते ॥१७८॥

जो पञ्चावरणरूपी प्रपञ्चसे घिरे हुए हैं और सबके आदि कारण हैं, उन आप पुत्रसहित साम्ब सदाशिवको मेरा नमस्कार है ॥ १७८ ॥

इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम् ।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम् ॥१७९॥
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम् ।
कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् ॥१८०॥

ऐसा कहकर शिव और शिवाके उद्देश्यसे भूमिपर दण्ड-की भाँति गिरकर प्रणाम करे और कम-से-कम एक सौ आठ बार पञ्चाक्षरी विद्याका जप करे। इसी प्रकार शक्तिविद्या (ओं नमः शिवायै) का जप करके उसका समर्पण करे और महादेवजीसे क्षमा माँगकर शेष पूजाकी समाप्ति करे ॥ १७९-१८० ॥

एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम् ।
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्येकसाधनम् ॥१८१॥

यह परम पुण्यमय स्तोत्र शिव और शिवाके हृदयको अत्यन्त प्रिय है, सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साक्षात् साधन है ॥ १८१ ॥

य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥१८२॥

जो एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन इसका कीर्तन अथवा श्रवण

करता है, वह सारे पापोंको शीघ्र ही धो-बहाकर भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ १८२ ॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा।
शरणागतघाती च मित्रविश्रम्भघातकः ॥१८३॥
दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा।
स्तवेनानेन जप्तेन तस्मात्पापात् प्रमुच्यते ॥१८४॥

जो गो-हत्यारा, कृतघ्न, वीरघाती, गर्भस्थ शिशुकी हत्या करनेवाला, शरणागतका वध करनेवाला और मित्रके प्रति विश्वासघाती है, दुराचार और पापाचारमें ही लगा रहता है तथा माता और पिताका भी घातक है, वह भी इस स्तोत्रके जपसे तत्काल पापमुक्त हो जाता है॥ १८३-१८४ ॥

दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च।
यदि संकीर्तयेदेतन्न ततोऽनर्थभाग्भवेत् ॥१८५॥

दुःस्वप्न आदि महान् अनर्थसूचक भयोंके उपस्थित होनेपर यदि मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन करे तो वह कदापि अनर्थका भागी नहीं हो सकता ॥ १८५ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम्।
स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः ॥१८६॥

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा और जो भी मनोवाञ्छित वस्तु है, उन सबको इस स्तोत्रके जपमें संलग्न रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर लेता है ॥ १८६ ॥

असम्पूज्य शिवं स्तोत्रजपात्फलमुदाहृतम्।
सम्पूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते ॥१८७॥

शिवकी पूर्वोक्त पूजा न करके केवल स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसको यहाँ बताया गया है; परंतु शिवकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता ॥ १८७ ॥

आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन् संकीर्तिते सति।
सार्धमम्बिकया देवः श्रुत्वैव दिवि तिष्ठति ॥१८८॥
तस्मान्नभसि सम्पूज्य देवदेवं सहोमया।
कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥१८९॥

यह फलकी प्राप्ति अलग रहे, इस स्तोत्रका कीर्तन करनेपर इसे सुनते ही माता पार्वतीसहित महादेवजी आकाशमें आकर खड़े हो जाते हैं। अतः उस समय उमासहित देवदेव महादेवकी आकाशमें पूजा करके दोनों हाथ जोड़ खड़ा हो जाय और इस स्तोत्रका पाठ करे ॥ १८८-१८९ ॥

(अध्याय ३१)

ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्ति-पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! यह मैंने तुमसे इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्रदान करनेवाला क्रम बताया है, जो उत्तम तो है ही, इसमें क्रिया, जप, तप और ध्यानका समुच्चय भी है। अब मैं शिव-भक्तोंके लिये यहीं फल देनेवाले पूजन, होम, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मका वर्णन करता हूँ। मन्त्रार्थके श्रेष्ठ ज्ञाताको चाहिये कि वह पहले मन्त्रको सिद्ध करे, अन्यथा इष्टसिद्धिकारक कर्म भी फलद नहीं होता। मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर भी, जिस कर्मका फल किसी प्रबल अदृष्टके कारण प्रतिबद्ध हो, उसे विद्वान् पुरुष सहसा न करे। उस प्रतिबन्धका यहाँ निवारण किया जा सकता है। कर्म करनेके पहले ही शकुन आदि करके उसकी परीक्षा कर ले और प्रतिबन्धकका पता लगनेपर उसे दूर करनेका प्रयत्न करे। जो मनुष्य ऐसा न करके मोहवश ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान करता है, वह उससे फलका भागी नहीं होता और जगत्में उपहासका पात्र बनता है। जिस पुरुषको विश्वास न हो, वह ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कभी न करे; क्योंकि उसके मनमें श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाहीन पुरुष-को उस कर्मका फल नहीं मिलता। किया कर्म निष्फल हो जाय, तो भी उसमें देवताका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त विधिसे ठीक-ठीक कर्म करनेवाले पुरुषोंको यहीं फलकी प्राप्ति देखी जाती है। जिसने मन्त्रको सिद्ध कर लिया है, प्रतिबन्धकको दूर कर दिया है, मन्त्रपर विश्वास रखता है और मनमें श्रद्धासे युक्त है, वह साधक कर्म करनेपर उसके फलको अवश्य पाता है। उस कर्मके फलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपरायण होना चाहिये। रातमें हविष्यभोजन करे, खीर या फल खाकर रहे; हिंसा आदि जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें मनसे भी न करे, सदा अपने शरीरमें भस्म लगाये, सुन्दर पवित्र वेषभूषा धारण करे और पवित्र रहे।

इस प्रकार आचारवान् होकर अपने अनुकूल शुभ दिनमें पुष्पमाला आदिसे अलंकृत पूर्वोक्त लक्षणवाले स्थानमें एक

हाथ भूमिको गोबरसे लीपकर वहाँ बिछे हुए भद्रासनपर कमल अङ्कित करे, जो अपने तेजसे प्रकाशमान हो। वह तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला हो। उसमें आठ दल हों और केसर भी बना हो। मध्यभागमें वह कर्णिकासे युक्त और सम्पूर्ण रत्नोंसे अलंकृत हो। उसमें अपने आकारके समान ही नाल होनी चाहिये। वैसे स्वर्णनिर्मित कमलपर सम्यग् विधिसे मन-ही-मन अणिमा आदि सब सिद्धियोंकी भावना करे। फिर उसपर रत्नका, सोनेका अथवा स्फटिक मणिका उत्तम लक्षणोंसे युक्त वेदीसहित शिवलिङ्ग स्थापित करके उसमें विधिपूर्वक पार्षदों-सहित अविनाशी साम्ब सदाशिवका आवाहन और पूजन करे। फिर वहाँ साकार भगवान् महेश्वरकी भावनामयी मूर्तिका निर्माण करे, जिसके चार भुजाएँ और चार मुख हों। वह सब आभूषणोंसे विभूषित हो, उसे व्याघ्रचर्म पहनाया गया हो। उसके मुखपर कुछ-कुछ हास्यकी छटा छा रही हो। उसने अपने दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा धारण की हो और शेष दो हाथोंमें मृग मुद्रा और टङ्क ले रक्खे हों। अथवा उपासक-की रुचिके अनुसार अष्टभुजा मूर्तिकी भावना करनी चाहिये। उस दशामें वह मूर्ति अपने दाहिने चार हाथोंमें त्रिशूल, परशु, खड्ग और वज्र लिये हो और बायें चार हाथोंमें पाश, अङ्कुश, खेट और नाग धारण करती हो। उसकी अङ्गकान्ति प्रातः-कालके सूर्यकी भाँति लाल हो और वह अपने प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र धारण करती है। उस मूर्तिका पूर्ववर्ती मुख सौम्य तथा अपनी आकृतिके अनुरूप ही कान्तिमान् है। दक्षिणवर्ती मुख नील मेघके समान श्याम और देखनेमें भयंकर है। उत्तरवर्ती मुख मूँगेके समान लाल है और सिरकी नीली अलकें उसकी शोभा बढ़ाती हैं। पश्चिमवर्ती मुख पूर्ण चन्द्रमा-के समान उज्ज्वल, सौम्य तथा चन्द्रकलाधारी है। उस शिवमूर्तिके अङ्कमें पराशक्ति माहेश्वरी शिवा आरूढ़ हैं। उनकी अवस्था सोलह वर्षकी-सी है। वे सबका मन मोहनेवाली हैं और महालक्ष्मीके नामसे विख्यात हैं।

इस प्रकार भावनामयी मूर्तिका निर्माण और सकलीकरण करके उनमें मूर्तिमान् परम कारण शिवका आवाहन और पूजन करे। वहाँ स्नान करानेके लिये कपिला गायके पञ्चगव्य और पञ्चामृतका संग्रह करे। विशेषतः चूर्ण और बीजको भी एकत्र करे। फिर पूर्व दिशामें मण्डल बनाकर उसे रत्नचूर्ण आदिसे अलंकृत करके कमलकी कर्णिकामें ईशान-कलशकी स्थापना करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर सद्योजात आदि मूर्तियोंके कलशोंकी स्थापना करे। इसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमें क्रमशः विद्येश्वरके आठ कलशोंकी स्थापना करके उन सबको तीर्थके जलसे भर दे और कण्ठमें सूत लपेट दे। फिर उनके भीतर पवित्र द्रव्य छोड़कर मन्त्र और विधिके साथ साड़ी या धोती आदि वस्त्रसे उन सब कलशोंको चारों ओरसे आच्छादित कर दे। तदनन्तर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबमें मन्त्रन्यास करके स्नानका समय आनेपर सब प्रकारके माङ्गलिक शब्दों और वाद्योंके साथ पञ्चगव्य आदिके द्वारा परमेश्वर शिवको स्नान कराये। कुशोदक, स्वर्णोदक और रत्नोदक आदिको—जो गन्ध, पुष्प आदिसे वासित और मन्त्रसिद्ध हों—क्रमशः ले-लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन-उनके द्वारा महेश्वरको नहलाये। फिर गन्ध, पुष्प और दीप आदि निवेदन करके पूजा-कर्म सम्पन्न करे। आलेपन या उबटन कम-से-कम एक पल और अधिक-से-अधिक ग्यारह पल हो। सुन्दर सुवर्णमय और रत्नमय पुष्प अर्पित करे। सुगन्धित नील कमल, नील कुमुद, अनेकशः बिल्वपत्र, लाल कमल और श्वेत कमल भी शम्भुको चढ़ाये। कालागुरुके धूपको कपूर, घी और गुग्गुलसे युक्त करके निवेदन करे। कपिला गायके घीसे युक्त दीपकमें कपूरकी बत्ती बनाकर रक्खे और उसे जलाकर देवताके सम्मुख दिखाये। ईशानादि पाँच ब्रह्मकी, छहों अङ्गोंकी और पाँच आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये। दूधमें तैयार किया हुआ पदार्थ नैवेद्यके रूपमें निवेदनीय है। गुड़ और घीसे युक्त महाचरुका भी भोग लगाना चाहिये। पाटल, उत्पल और कमल आदिसे सुवासित जल पीनेके लिये देना चाहिये। पाँच प्रकारकी सुगन्धोंसे युक्त तथा अच्छी तरह लगाया हुआ ताम्बूल मुखशुद्धिके लिये अर्पित करना चाहिये। सुवर्ण और रत्नोंके बने हुए आभूषण, नाना प्रकारके रंगवाले नूतन महीन वस्त्र, जो दर्शनीय हों, इष्टदेवको देने चाहिये। उस समय गीत, वाद्य और कीर्तन आदि भी करने चाहिये।

मूलमन्त्रका एक लाख जप करना चाहिये। पूजा कम-से-कम एक बार, नहीं तो दो या तीन बार करनी चाहिये; क्योंकि अधिकका अधिक फल होता है। होम-सामग्रीके लिये जितने द्रव्य हों, उनमेंसे प्रत्येक द्रव्यकी कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। मारण और उच्चाटन आदिमें शिवके घोर रूपका चिन्तन करना चाहिये। शान्तिकर्म या पौष्टिककर्म करते समय शिवलिङ्गमें, शिवाग्निमें तथा अन्य प्रतिमाओंमें शिवके सौम्य रूपका ध्यान करना चाहिये। मारण आदि कर्मोंमें लोहेके बने हुए स्रुक् और स्रुवका उपयोग करना चाहिये।

अन्य शान्ति आदि कर्मोंमें सोनेके स्रुक् और स्रुवा बनवाने चाहिये। मृत्युपर विजय पानेके लिये घी, दूधमें मिलायी हुई दूर्वासे, मधुसे, घृतयुक्त चरुसे अथवा केवल दूधसे भी हवन करना चाहिये तथा रोगोंकी शान्तिके लिये तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष महान् दारिद्र्यकी शान्तिके लिये घी, दूध अथवा केवल कमलके फूलोंसे होम करे। वशीकरणका इच्छुक पुरुष घृतयुक्त जातीपुष्प (चमेली या मालतीके फूल) से हवन करे। द्विजको चाहिये कि वह घृत और करवीर पुष्पोंसे आहुति देकर आकर्षणका प्रयोग सफल करे। तेलकी आहुतिसे उच्चाटन और मधुकी आहुतिसे स्तम्भन कर्म करे। सरसोंकी आहुतिसे भी स्तम्भन किया जाता है। बड़के बीज और तिलकी आहुतिद्वारा मारण और उच्चाटन करे। नारियलके तेलकी आहुति देकर विद्वेषण कर्म करे। रोहीके बीजकी आहुति देकर बन्धनका तथा लाल सरसो मिले हुए सम्पूर्ण होम-द्रव्योंसे सेना-स्तम्भनका प्रयोग करे।

अभिचार-कर्ममें हस्तचालित यन्त्रसे तैयार किये गये तेलकी आहुति देनी चाहिये। कुटकीकी भूसी, कपासकी ढोढ़ तथा तैलमिश्रित सरसोंकी भी आहुति दी जा सकती है। दूधकी आहुति ज्वरकी शान्ति करनेवाली तथा सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाली होती है। मधु, घी और दहीको परस्पर मिलाकर इनसे, दूध और चावलसे अथवा केवल दूधसे किया गया होम सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है। सात समिधा आदिसे शान्तिक अथवा पौष्टिक कर्म भी करे। विशेषतः द्रव्योंद्वारा होम करनेपर वश्य और आकर्षणकी सिद्धि होती है। बिल्वपत्रोंका हवन वशीकरण तथा आकर्षणका साधक और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है, साथ ही वह शत्रुपर विजय प्रदान कराता है। शान्तिकार्यमें पलाश और खैर आदिकी समिधाओंका होम करना चाहिये। क्रूरतापूर्ण कर्ममें कनेर और आककी समिधाएँ होनी चाहिये। लड़ाई-झगड़ेमें कटीले पेड़ोंकी समिधाओंका हवन करना चाहिये। शान्ति और पुष्टिकर्मको विशेषतः शान्तचित्त पुरुष ही करे। जो निर्दय और क्रोधी हो, उसीको आभिचारिक कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। वह भी उस दशामें, जब कि दुरवस्था चरम सीमको पहुँच गयी हो और उसके निवारणका दूसरा कोई उपाय न रह गया हो, आततायीको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म करना चाहिये। अपने राष्ट्रपतिको हानि पहुँचानेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। यदि कोई आस्तिक, परम धर्मात्मा और माननीय पुरुष हो, उससे यदि कभी आततायीपनका कार्य हो जाय, तो भी उसको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्मका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो कोई भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् शिवके आश्रित हो, उसके तथा राष्ट्रपतिके उद्देश्यसे भी आभिचारिक कर्म करके मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है। इसलिये कोई भी पुरुष जो अपने लिये सुख चाहता हो, अपने राष्ट्रपालक राजाकी तथा शिवभक्तकी अभिचार आदिके द्वारा हिंसा न करे। दूसरे किसीके उद्देश्यसे भी मारण आदिका प्रयोग करनेपर पश्चात्तापसे युक्त हो प्रायश्चित्त करना चाहिये।

निर्धन या धनवान् पुरुष भी बाणलिङ्ग (नर्मदासे प्रकट हुए शिवलिङ्ग), ऋषियोंद्वारा स्थापित लिङ्ग या वैदिक लिङ्गमें भगवान् शंकरकी पूजा करे। जहाँ ऐसे लिङ्गका अभाव हो, वहाँ सुवर्ण और रत्नके बने हुए शिव-लिङ्गमें पूजा करनी चाहिये। यदि सुवर्ण और रत्नोंके उपार्जनकी शक्ति न हो तो मनसे ही भावनामयी मूर्तिका निर्माण करके मानसिक पूजन करना चाहिये। अथवा प्रतिनिधि द्रव्योंद्वारा शिवलिङ्गकी कल्पना करनी चाहिये। जो किसी अंशमें समर्थ और किसी अंशमें असमर्थ है, वह भी यदि अपनी शक्तिके अनुसार पूजन-कर्म करता है तो अवश्य फलका भागी होता है। जहाँ इस कर्मका अनुष्ठान करनेपर भी फल नहीं दिखायी देता, वहाँ दो या तीन बार उसकी आवृत्ति करे। ऐसा करनेसे सर्वथा फलका दर्शन होगा। पूजाके उपयोगमें आया हुआ जो सुवर्ण, रत्न आदि उत्तम द्रव्य हो, वह सब गुरुको दे देना चाहिये तथा उसके अतिरिक्त दक्षिणा भी देनी चाहिये। यदि गुरु नहीं लेना चाहते हों तो वह सब वस्तु भगवान् शिवको ही समर्पित कर दे अथवा शिव-भक्तोंको दे दे। इनके सिवा दूसरोंको देनेका विधान नहीं है। जो पुरुष गुरु आदिकी अपेक्षा न रखकर स्वयं यथाशक्ति पूजा सम्पन्न करता है, वह भी ऐसा ही आचरण करे। पूजामें चढ़ायी हुई वस्तु स्वयं न ले ले। जो मूढ़ लोभवश पूजाके अङ्गभूत उत्तम द्रव्यको स्वयं ग्रहण कर लेता है, वह अभीष्ट फलको नहीं पाता। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। किसीके द्वारा पूजित शिवलिङ्गको मनुष्य ग्रहण करे या न करे, यह उसकी इच्छापर निर्भर है। यदि ले ले तो स्वयं नित्य उसकी पूजा करे अथवा उसकी प्रेरणासे दूसरा कोई पूजा करे। जो पुरुष इस कर्मका शास्त्रीय विधिके अनुसार

ही निरन्तर अनुष्ठान करता है, वह फल पानेसे कभी वञ्चित नहीं रहता । इससे बढ़कर प्रशंसाकी बात और क्या हो सकती है ?

तथापि मैं संक्षेपसे कर्मजनित उत्तम सिद्धिकी महिमाका वर्णन करता हूँ । इससे शत्रुओं अथवा अनेक प्रकारकी व्याधियोंका शिकार होकर और मौतके मुँहमें पड़कर भी मनुष्य बिना किसी विघ्न-बाधाके मुक्त हो जाता है । अत्यन्त कृपण भी उदार और निर्धन भी कुबेरके समान हो जाता है । कुरूप भी कामदेवके समान सुन्दर और बूढ़ा भी जवान हो जाता है । शत्रु क्षणभरमें मित्र और विरोधी भी किंकर हो जाता है । अमृत विषके समान और विष भी अमृतके समान हो जाता है । समुद्र भी स्थल और स्थल भी समुद्रवत् हो जाता है । गड्ढा पहाड़-जैसा ऊँचा और पर्वत भी गड्ढेके समान हो जाता है । अग्नि सरोवरके समान शीतल और सरोवर भी अग्निके समान दाहक बन जाता है । उद्यान जंगल और जंगल उद्यान हो जाता है । क्षुद्र मृग सिंहके समान शौर्यशाली और सिंह भी क्रीडामृगके समान आज्ञा-पालक हो जाता है । स्त्रियाँ अभिसारिका बन जाती हैं—अधिक प्रेम करने लगती हैं और लक्ष्मी सुस्थिर हो जाती है । वाणी इच्छानुसार दासी बन जाती है और कीर्ति गणिकाके समान सर्वत्रगामिनी हो जाती है । बुद्धि स्वेच्छानुसार विचरनेवाली और मन हीरेको छेदनेवाली सूईके समान सूक्ष्म हो जाता है । शक्ति आँधीके समान प्रबल हो जाती है और बल मत्त गजराजके समान पराक्रमशाली होता है । शत्रुपक्षके उद्योग और कार्य स्तब्ध हो जाते हैं तथा शत्रुओंके समस्त सुहृद्गण उनके लिये शत्रुपक्षके समान हो जाते हैं । शत्रु बन्धु-बान्धवोंसहित जीते-जी मुर्देके समान हो जाते हैं और सिद्धपुरुष स्वयं आपत्तिमें पड़कर भी अरिष्टरहित (संकटमुक्त) हो जाता है । अमरत्व-सा प्राप्त कर लेता है । उसका खाया हुआ अपथ्य भी उसके लिये सदा रसायनका काम देता है । निरन्तर रतिका सेवन करनेपर भी वह नया-सा ही बना रहता है । भविष्य आदिकी सारी बातें उसे हाथपर रक्खे हुए आँवलेके समान प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं । अणिमा आदि सिद्धियाँ भी इच्छा करते ही फल देने लगती हैं । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ, इस कर्मका सम्पादन कर लेनेपर सम्पूर्ण कामार्थ सिद्धियोंमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं रहती, जो अलभ्य हो ।

(अध्याय ३२)

पारलौकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिङ्ग-महाव्रतकी विधि और महिमाका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! अब मैं केवल परलोकमें फल देनेवाले कर्मकी विधि बतलाऊँगा । तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरा कोई कर्म नहीं है । यह विधि अतिशय पुण्यसे युक्त है और सम्पूर्ण देवताओंने इसका अनुष्ठान किया है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि ब्रह्मवेत्ता महर्षि, श्वेत, अगस्त्य, दधीचि तथा हम-सरीखे शिवभक्त, नन्दीश्वर, महाकाल और भृङ्गीश आदि गणेश्वर, पातालवासी दैत्य, शेष आदि महानाग, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, भूत और पिशाच—इन सबने अपना-अपना पद प्राप्त करनेके लिये इस विधिका अनुष्ठान किया है । इस विधिसे ही सब देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं । इसी विधिसे ब्रह्माको ब्रह्मत्वकी, विष्णुको विष्णुत्वकी रुद्रको रुद्रत्वकी, इन्द्रको इन्द्रत्वकी और गणेशको गणेशत्वकी प्राप्ति हुई है ।

श्वेतचन्दनयुक्त जलसे लिङ्गस्वरूप शिव और शिवाको स्नान कराकर प्रफुल्ल श्वेत कमलोंद्वारा उनका पूजन करे । फिर उनके चरणोंमें प्रणाम करके वहीं लिपी-पुती भूमिपर सुन्दर शुभ लक्षण पद्मासन बनवाकर रक्खे । धन हो तो अपनी शक्तिके अनुसार सोने या रत्न आदिका पद्मासन बनवाना चाहिये । कमलके केसरोंके मध्यभागमें अङ्गुष्ठके बराबर छोटे-से सुन्दर शिवलिङ्गकी स्थापना करे । वह सर्वगन्धमय और सुन्दर होना चाहिये । उसे दक्षिणभागमें स्थापित करके बिल्वपत्रोंद्वारा उसकी पूजा करे । फिर उसके दक्षिण भागमें अगुरु, पश्चिम भागमें मैनसिल, उत्तर भागमें चन्दन और पूर्व भागमें हरिताल चढ़ाये । फिर सुन्दर सुगन्धित विचित्र पुष्पोंद्वारा पूजा करे । सब ओर काले अगुरु और गुग्गुलकी धूप दे । अत्यन्त महीन और निर्मल वस्त्र निवेदन करे । घृतमिश्रित खीरका भोग लगाये । घीके दीपक जलाकर रक्खे । मन्त्रोच्चारणपूर्वक सब कुछ चढ़ाकर परिक्रमा करे । भक्तिभावसे देवेश्वर शिवको प्रणाम करके उनकी स्तुति करे और अन्तमें त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे । तत्पश्चात् शिवपञ्चाक्षर मन्त्रसे सम्पूर्ण उपहारोंसहित वह शिवलिङ्ग शिवको समर्पित करे और स्वयं दक्षिणामूर्तिका आश्रय ले । जो इस प्रकार

पञ्च गन्धमय शुभ लिङ्गकी नित्य अर्चना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह शिवलिङ्ग-महाव्रत सब व्रतोंमें उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकरके भक्त हो; इसलिये तुमसे इसका वर्णन किया है। जिस किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। केवल शिव-भक्तोंको ही इसका उपदेश देना चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् शिवने ही इस व्रतका उपदेश दिया था।

तदनन्तर लिङ्गकी कारणरूपता तथा लिङ्गप्रतिष्ठा एवं पूजाकी व्याख्या करके उपमन्युने कहा— यदुनन्दन! यदि कोई स्थापित शिवलिङ्ग न मिले तो शिवके स्थानभूत जल, अग्नि, सूर्य तथा आकाशमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। (अध्याय ३३—३६)

योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अङ्गोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविध प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण

श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आपने ज्ञान, क्रिया और चर्याका संक्षिप्त सार उद्धृत करके मुझे सुनाया है। यह सब श्रुतिके समान आदरणीय है और इसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। अब मैं अधिकार, अङ्ग, विधि और प्रयोजनसहित परम दुर्लभ योगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। यदि योग आदिका अभ्यास करनेके पहले ही मृत्यु हो जाय तो मनुष्य आत्मघाती होता है; अतः आप योगका ऐसा कोई साधन बताइये जिसे शीघ्र सिद्ध किया जा सके, जिससे कि मनुष्यको आत्मघाती न होना पड़े। योगका वह अनुष्ठान, उसका कारण, उसके लिये उपयुक्त समय, साधन तथा उसके भेदोंका तारतम्य क्या है?

उपमन्यु बोले—श्रीकृष्ण! तुम सब प्रश्नोंके तारतम्यके ज्ञाता हो। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उचित है, इसलिये मैं इन सब बातोंपर क्रमशः प्रकाश डालूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चल वृत्ति है, उसीको संक्षेपसे 'योग' कहा गया है। यह योग पाँच प्रकारका है—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग। मन्त्र-जपके अभ्यासवश मन्त्रके वाच्यार्थमें स्थित हुई विक्षेप-रहित जो मनकी वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मनकी वही वृत्ति जब प्राणायामको प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्रके स्पर्शसे रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है। जिससे सम्पूर्ण विश्वके रूपमात्रका अवयव विलीन (तिरोहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तुका भी भान नहीं होता। जिससे एकमात्र उपाधिशून्य शिव-स्वभावका चिन्तन किया जाता है और मनकी वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं।

देखे और सुने गये लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी ओरसे जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसीका योगमें अधिकार है, दूसरे किसीका नहीं है। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंके दोषोंका और ईश्वरके गुणोंका सदा ही दर्शन करनेसे मन विरक्त होता है। प्रायः सभी योग आठ या छः अङ्गोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानोंने योगके आठ अङ्ग बताये हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़ेमें योगके छः लक्षण हैं। शिव-शास्त्रमें इनके पृथक्-पृथक् लक्षण बताये गये हैं। अन्य शिवागमोंमें, विशेषतः कामिक आदिमें, योगशास्त्रोंमें और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें भी इनके लक्षणोंका वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्पुरुषोंने यम कहा है। इस प्रकार यम पाँच अवयवोंके योगसे युक्त है। शौच, संतोष, तप, जप (स्वाध्याय) और प्रणिधान—इन पाँच भेदोंसे युक्त दूसरे योगाङ्गको नियम कहा गया है। तात्पर्य यह कि नियम अपने अंशोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। आसनके आठ भेद कहे गये हैं—स्वस्तिक आसन, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यङ्कासन और अपनी रुचिके अनुसार आसन। अपने शरीरमें प्रकट हुई जो वायु है, उसको प्राण कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायामके तीन भेद कहे गये हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको दबाकर या बंद करके दूसरेसे उदरस्थित वायुको बाहर निकाले। इस क्रियाको रेचक कहा गया है। फिर दूसरे नासिका-छिद्रके द्वारा बाह्य वायुसे शरीरको धौंकनीकी भाँति भर ले। इसमें वायुके पूरणकी क्रिया होनेके कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साधक भीतरकी

वायुको न तो छोड़ता है और न बाहरकी वायुको ग्रहण करता है, केवल भरे हुए घड़ेकी भाँति अविचल भावसे स्थित रहता है; तब उस प्राणायामको 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। योगके साधकको चाहिये कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामोंको न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे और न बहुत देरसे करे। साधनाके लिये उद्यत हो क्रमयोगसे उसका अभ्यास करे।

रेचक आदिमें नाड़ीशोधनपूर्वक जो प्राणायामका अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छासे उत्क्रमणपर्यन्त करते रहना चाहिये—यह बात योगशास्त्रमें बतायी गयी है। कनिष्ठ आदि-के क्रमसे प्राणायाम चार प्रकारका कहा गया है। मात्रा और गुणोंके विभाग—तारतम्यसे ये भेद बनते हैं। चार भेदोंमेंसे जो कन्यक या कनिष्ठ प्राणायाम है, यह प्रथम उद्घात[1] कहा गया है; इसमें बारह मात्राएँ होती हैं। मध्यम प्राणायाम द्वितीय उद्घात है, उसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं। उत्तम श्रेणी-का प्राणायाम तृतीय उद्घात है, उसमें छत्तीस मात्राएँ होती हैं। उससे भी श्रेष्ठ जो सर्वोत्कृष्ट चतुर्थ[2] प्राणायाम है, वह शरीरमें स्वेद और कम्प आदिका जनक होता है।

योगीके अंदर आनन्दजनित रोमाञ्च, नेत्रोंसे अश्रुपात, जल्प, भ्रान्ति और मूर्च्छा आदि भाव प्रकट होते हैं। घुटनेके चारों ओर प्रदक्षिण-क्रमसे न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे चुटकी बजाये। घुटनेकी एक परिक्रमामें जितनी देरतक चुटकी बजती है, उस समयका मान एक मात्रा है। मात्राओंको क्रमशः जानना चाहिये। उद्घात-क्रम-योगसे नाड़ीशोधनपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायामके दो भेद बताये गये हैं—अगर्भ और सगर्भ। जप और ध्यानके विना किया गया प्राणायाम 'अगर्भ' कहलाता है और जप तथा ध्यानके सहयोग-पूर्वक किये जानेवाले प्राणायामको 'सगर्भ' कहते हैं। अगर्भसे सगर्भ प्राणायाम सौ गुना अधिक उत्तम है। इसलिये योगीजन प्रायः सगर्भ प्राणायाम किया करते हैं। प्राणविजयसे ही शरीरकी वायुओंपर विजय पायी जाती है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रयाण करता है, इसी लिये इसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ भोजन किया जाता है, उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'अपान' कहते हैं। जो वायु सम्पूर्ण अङ्गोंको बढ़ाती हुई उनमें व्याप्त रहती है, उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु मर्मस्थानोंको उद्वेजित करती है, उसकी 'उदान' संज्ञा है। जो वायु सब अङ्गोंको समभाव-से ले चलती है, वह अपने उस समनयन रूप कर्मसे 'समान' कहलाती है। मुखसे कुछ उगलनेमें कारणभूत वायुको 'नाग' कहा गया है। आँख खोलनेके व्यापारमें 'कूर्म' नामक वायुकी स्थिति है। छींकमें कृकल और जँभाईमें 'देवदत्त' नामक वायुकी स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहती है। वह मृतक शरीरको भी नहीं छोड़ती। क्रमसे अभ्यासमें लाया हुआ यह प्राणायाम जब उचित प्रमाण या मात्रासे युक्त हो जाता है, तब वह कर्ताके सारे दोषोंको दग्ध कर देता है और उसके शरीरकी रक्षा करता है।

प्राणपर विजय प्राप्त हो जाय तो उससे प्रकट होनेवाले चिह्नोंको अच्छी तरह देखे। पहली बात यह होती है कि विष्ठा, मूत्र और कफकी मात्रा घटने लगती है, अधिक भोजन करने-की शक्ति हो जाती है और विलम्बसे साँस चलती है। शरीरमें हल्कापन आता है। शीघ्र चलनेकी शक्ति प्रकट होती है। हृदयमें उत्साह बढ़ता है। स्वरमें मिठास आती है। समस्त रोगोंका नाश हो जाता है। बल, तेज और सौन्दर्यकी वृद्धि होती है। धृति, मेधा, युवापन, स्थिरता और प्रसन्नता आती है। तप, प्रायश्चित्त, यज्ञ, दान और व्रत आदि जितने भी साधन हैं—ये प्राणायामके सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। अपने-अपने विषयमें आसक्त हुई इन्द्रियोंको वहाँसे हटाकर जो अपने भीतर निगृहीत करता है, उस साधनको 'प्रत्याहार' कहते हैं। मन और इन्द्रियाँ ही मनुष्यको स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाली हैं। यदि उन्हें वशमें रक्खा जाय तो वे स्वर्गकी प्राप्ति कराती हैं और विषयोंकी ओर खुली छोड़ दिया जाय तो वे नरकमें डालनेवाली होती हैं। इसलिये सुखकी इच्छा रखने-वाले बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ज्ञान-वैराग्यका आश्रय ले इन्द्रियरूपी अश्वोंको शीघ्र ही काबूमें करके स्वयं ही आत्मा-का उद्धार करे।

चित्तको किसी स्थान-विशेषमें बाँधना—किसी ध्येय विशेष-में स्थिर करना ... यही ... 'धारणा' का स्वरूप है। एक-

---

१. उद्घातका अर्थ नाभिमूलसे प्रेरणा की हुई वायुका सिरमें टक्कर खाना है। यह प्राणायाममें देश, काल और संख्याका परि-माण है।

२. योगसूत्रमें चतुर्थ प्राणायामका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः' अर्थात् बाह्य और आभ्य-न्तर विषयोंको फेंकनेवाला प्राणायाम चौथा है।

मात्र शिव ही स्थान हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि दूसरे स्थानोंमें त्रिविध दोष विद्यमान हैं। किसी नियमित कालतक स्थान-स्वरूप शिवमें स्थापित हुआ मन जब लक्ष्यसे च्युत न हो तो धारणाकी सिद्धि समझना चाहिये, अन्यथा नहीं। मन पहले धारणासे ही स्थिर होता है, इसलिये धारणाके अभ्याससे मन-को धीर बनाये। अब ध्यानकी व्याख्या करते हैं। ध्यानमें 'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु माना गया है। इसी धातुसे ल्युट् प्रत्यय करनेपर 'ध्यान' की सिद्धि होती है; अतः विक्षेपरहित चित्तसे जो शिवका बारंबार चिन्तन किया जाता है, उसीका नाम 'ध्यान' है। ध्येयमें स्थित हुए चित्तकी जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और बीचमें दूसरी वृत्ति अन्तर नहीं डालती उस ध्येयाकार वृत्तिका प्रवाहरूपसे बना रहना 'ध्यान' कहलाता है। दूसरी सब वस्तुओंको छोड़कर केवल कल्याणकारी परम-देव देवेश्वर शिवका ही ध्यान करना चाहिये। वे ही सबके परम ध्येय हैं। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका अन्तिम निर्णय है। इसी प्रकार शिवादेवी भी परम ध्येय हैं। ये दोनों शिवा और शिव सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं। श्रुति, स्मृति एवं शास्त्रोंसे यह सुना गया है कि शिवा और शिव सर्वव्यापक, सर्वदा उदित, सर्वज्ञ एवं नाना रूपोंमें निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं। इस ध्यानके दो प्रयोजन जानने चाहिये। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियोंकी उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानप्रयोजन—इन चारोंको अच्छी तरह जानकर योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखनेवाला है, ऐसा ही पुरुष ध्याता कहा गया है अर्थात् वही ध्यान करनेमें सफल हो सकता है।

साधकको चाहिये कि वह जपसे थकनेपर फिर ध्यान करे और ध्यानसे थक जानेपर पुनः जप करे। इस तरह जप और ध्यानमें लगे हुए पुरुषका योग जल्दी सिद्ध होता है। बारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, बारह धारणाओं-का ध्यान होता है और बारह ध्यानकी एक समाधि कही गयी है। समाधिको योगका अन्तिम अङ्ग कहा गया है। समाधिसे सर्वत्र बुद्धिका प्रकाश फैलता है। जिस ध्यानमें केवल ध्येय ही अर्थरूपसे भासता है, ध्याता निश्चल महासागरके समान स्थिरभावसे स्थित रहता है और ध्यानस्वरूपसे शून्य-सा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं। जो योगी ध्येयमें चित्तको लगाकर सुस्थिरभावसे उसे देखता है और बुझी हुई आगके समान शान्त रहता है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है। वह न सुनता है न सूँघता है, न बोलता है न देखता है, न स्पर्श-का अनुभव करता है न मनसे संकल्प-विकल्प करता है, न उसमें अभिमानकी वृत्तिका उदय होता है और न वह बुद्धिके द्वारा ही कुछ समझता है। केवल काष्ठकी भाँति स्थित रहता है। इस तरह शिवमें लीनचित्त हुए योगीको यहाँ समाधिस्थ कहा जाता है। जैसे वायुरहित स्थानमें रक्खा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं है—निस्पन्द बना रहता है, उसी तरह समाधिनिष्ठ शुद्ध चित्त योगी भी उस समाधिसे कभी विच-लित नहीं होता—सुस्थिरभावसे स्थिर रहता है। इस प्रकार उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। (अध्याय ३७)

योगमार्गके विघ्न, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर बुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! आलस्य, तीक्ष्ण व्याधियाँ, प्रमाद, स्थान-संशय, अनवस्थितचित्तता, अश्रद्धा, भ्रान्ति-दर्शन, दुःख, दौर्मनस्य और विषयलोलुपता—ये दस योग-साधनमें लगे हुए पुरुषोंके लिये योगमार्गके विघ्न कहे गये हैं।* योगियोंके शरीर और चित्तमें जो अलसताका भाव आता है, उसीको यहाँ 'आलस्य' कहा गया है। वात, पित्त और कफ—इन धातुओंकी विषमतासे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको 'व्याधि' कहते हैं। कर्मदोषसे इन व्याधियोंकी

* योगदर्शन, समाधिपादके ३० वें सूत्रमें नौ प्रकारके चित्त-विक्षेपोंको योगका अन्तराय बताया गया है और ३१ वें सूत्रमें पाँच 'विक्षेपसहभू' संज्ञक विघ्न अथवा प्रतिबन्धक कहे गये हैं। किंतु यहाँ शिवपुराणमें दस प्रकारके अन्तराय बताये गये हैं। इनमें योगदर्शन-कथित 'अलब्धभूमिकत्व' को छोड़ दिया गया है और 'विक्षेप-सहभू' में परिगणित दुःख और दौर्मनस्यको सम्मिलित कर लिया गया है। योगसूत्रमें 'स्त्यान और संशय—ये दो पृथक्-पृथक् अन्तराय हैं और यहाँ 'स्थान-संशय' नामसे एक ही अन्तराय माना गया है; साथ ही इस पुराणमें 'अश्रद्धा' को भी एक अन्तरायके रूपमें गिना गया है।

उत्पत्ति होती है । असावधानीके कारण योगके साधनोंका न हो पाना 'प्रमाद' है ! 'यह है या नहीं है' इस प्रकार उभयकोटिसे आक्रान्त हुए ज्ञानका नाम 'स्थान-संशय' है । मनका कहीं स्थिर न होना ही अनवस्थितचित्तता (चित्तकी अस्थिरता) है । योगमार्गमें भावरहित (अनुरागशून्य) जो मनकी वृत्ति है, उसीको 'अश्रद्धा' कहा गया है । विपरीत-भावनासे युक्त बुद्धिको 'भ्रान्ति' कहते हैं । 'दुःख' कहते हैं कष्टको, उसके तीन भेद हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक । मनुष्योंके चित्तका जो अज्ञानजनित दुःख है, उसे आध्यात्मिक दुःख समझना चाहिये । पूर्वकृत कर्मोंके परिणामसे शरीरमें जो रोग आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें आधिभौतिक दुःख कहा गया है । विद्युत्पात, अस्त्र-शस्त्र और विष आदिसे जो कष्ट प्राप्त होता है, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं । इच्छापर आघात पहुँचनेसे मनमें जो क्षोभ होता है, उसीका नाम है 'दौर्मनस्य' । विचित्र विषयोंमें जो सुखका भ्रम है, वही 'विषयलोलुपता' है ।

योगपरायण योगीके इन विघ्नोंके शान्त हो जानेपर जो दिव्य उपसर्ग' (विघ्न) प्राप्त होते हैं, वे सिद्धिके सूचक हैं । प्रतिभा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वाद और वेदना—ये छः प्रकारकी सिद्धियाँ ही 'उपसर्ग' कहलाती हैं, जो योगशक्तिके अपव्ययमें कारण होती हैं । जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हो, किसीकी ओटमें हो, भूतकालमें रहा हो, बहुत दूर हो अथवा भविष्यमें होनेवाला हो, उसका ठीक-ठीक प्रतिभास (ज्ञान) हो जाना 'प्रतिभा' कहलाता है । सुननेका प्रयत्न न करनेपर भी सम्पूर्ण शब्दोंका सुनायी देना 'श्रवण' कहा गया है । समस्त देहधारियोंकी बातोंको समझ लेना 'वार्ता' है । दिव्य पदार्थोंका बिना किसी प्रयत्नके दिखायी देना 'दर्शन' कहा गया है, दिव्य रसोंका स्वाद प्राप्त होना 'आस्वाद' कहलाता है, अन्तःकरणके द्वारा दिव्य स्पर्शोंका तथा ब्रह्मलोक-तकके गन्धादि दिव्य भोगोंका अनुभव 'वेदना' नामसे विख्यात है ।

सिद्ध योगीके पास स्वयं ही रत्न उपस्थित हो जाते हैं और बहुत-सी वस्तुएँ प्रदान करते हैं । मुखसे इच्छानुसार नाना प्रकारकी मधुर वाणी निकलती है । सब प्रकारके रसायन और दिव्य ओषधियाँ सिद्ध हो जाती हैं । देवाङ्गनाएँ इस योगीको प्रणाम करके मनोवाञ्छित वस्तुएँ देती हैं । योगसिद्धिके एक देशका भी साक्षात्कार हो जाय तो मोक्षमें मन लग जाता है—यह मैंने जैसे देखा या अनुभव किया है, उसी प्रकार मोक्ष भी हो सकता है । कृशता, स्थूलता, बाल्यावस्था वृद्धावस्था, युवावस्था, नाना जातिका स्वरूप; पृथ्वी, जल अग्नि और वायु—इन चार तत्त्वोंके शरीरको धारण करना, नित्य अपार्थिव एवं मनोहर गन्धको ग्रहण करना—ये पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुण बताये गये हैं ।

जलमें निवास करना, पृथ्वीपर ही जलका निकल आना, इच्छा करते ही बिना किसी आतुरताके स्वयं समुद्रको भी पी जानेमें समर्थ होना, इस संसारमें जहाँ चाहे वहीं जलका दर्शन होना, घड़ा आदिके बिना हाथमें ही जलराशिको धारण करना, जिस विरस वस्तुको भी खानेकी इच्छा हो, उसका तत्काल सरस हो जाना, जल, तेज और वायु—इन तीन तत्त्वोंके शरीरको धारण करना तथा देहका फोड़े, फुंसी और घाव आदिसे रहित होना—पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुणोंको मिलाकर ये सोलह जलीय ऐश्वर्यके अद्भुत गुण हैं ।

शरीरसे अग्निको प्रकट करना, अग्निके तापसे जलनेका भय दूर हो जाना, यदि इच्छा हो तो बिना किसी प्रयत्नके इस जगत्‌को जलाकर भस्म कर देनेकी शक्तिका होना, पानीके ऊपर अग्निको स्थापित कर देना, हाथमें आग धारण करना, सृष्टिको जलाकर फिर उसे ज्यों-का-त्यों कर देनेकी क्षमताका होना, मुखमें ही अन्न आदिको पचा लेना तथा तेज और वायु—दो ही तत्त्वोंसे शरीरको रच लेना—ये आठ गुण जलीय ऐश्वर्यके उपर्युक्त सोलह गुणोंके साथ चौबीस होते हैं । ये चौबीस तैजस ऐश्वर्यके गुण कहे गये हैं । मनके समान वेगशाली होना, प्राणियोंके भीतर क्षणभरमें प्रवेश कर जाना, बिना प्रयत्नके ही पर्वत आदिके महान् भारको उठा लेना, भारी हो जाना, हल्का होना, हाथमें वायुको पकड़ लेना, अङ्गुलिके अग्रभागकी चोटसे भूमिको भी कम्पित कर देना, एकमात्र वायुतत्त्वसे ही शरीरका निर्माण कर लेना—ये आठ गुण तैजस ऐश्वर्यके चौबीस गुणोंके साथ बत्तीस हो जाते हैं । विद्वानोंने वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके ये ही बत्तीस गुण स्वीकार किये हैं । शरीरकी छायाका न होना, इन्द्रियोंका दिखायी न देना, आकाशमें इच्छानुसार विचरण करना, इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषयोंका समन्वय होना, आकाशको लाँघना, अपने शरीरमें उसका निवेश करना, आकाशको पिण्डकी भाँति ठोस बना देना और निराकार होना—ये आठ गुण अग्निके बत्तीस गुणोंसे मिलकर चालीस होते हैं । ये चालीस ही वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके गुण हैं । यही सम्पूर्ण इन्द्रियोंका ऐश्वर्य है, इसीको 'ऐन्द्र' एवं 'आम्बर' (आकाशसम्बन्धी) ऐश्वर्य भी कहते हैं ।

इच्छानुसार सभी वस्तुओंकी उपलब्धि, जहाँ चाहे वहाँ निकल जाना, सबको अभिभूत कर लेना, सम्पूर्ण गुह्य अर्थका दर्शन होना, कर्मके अनुरूप निर्माण करना, सबको वशमें कर लेना, सदा प्रिय वस्तुका ही दर्शन होना और एक ही स्थानसे सम्पूर्ण संसारका दिखायी देना—ये आठ गुण पूर्वोक्त इन्द्रियसम्बन्धी ऐश्वर्य-गुणोंसे मिलकर अड़तालीस होते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्य इन अड़तालीस गुणोंसे युक्त कहा गया है। यह पहलेके ऐश्वर्योंसे अधिक गुणवाला है। इसे 'मानस ऐश्वर्य' भी कहते हैं। छेदना, पीटना, बाँधना, खोलना, संसारके वशमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको ग्रहण करना, सबको प्रसन्न रखना, पाना, मृत्युको जीतना तथा कालपर विजय पाना—ये सब अहंकारसम्बन्धी ऐश्वर्यके अन्तर्गत हैं। अहंकारिक ऐश्वर्यको ही 'प्राजापत्य' भी कहते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्यके गुणोंके साथ इसके आठ गुण मिलकर छप्पन होते हैं। महान् आभिमानिक ऐश्वर्यके ये ही छप्पन गुण हैं। संकल्पमात्रसे सृष्टि-रचना करना, पालन करना, संहार करना, सबके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना, प्राणियोंके चित्तको प्रेरित करना, सबसे अनुपम होना, इस जगत्से पृथक् नये संसारकी रचना कर लेना तथा शुभको अशुभ और अशुभको शुभ कर देना—यह 'बौद्ध ऐश्वर्य' है। प्राजापत्य ऐश्वर्यके गुणोंको मिलाकर इसके चौसठ गुण होते हैं। इस बौद्ध ऐश्वर्यको ही 'ब्राह्म ऐश्वर्य' भी कहते हैं। इससे उत्कृष्ट है गौण ऐश्वर्य, जिसे प्राकृत भी कहते हैं। उसीका नाम 'वैष्णव ऐश्वर्य' है। तीनों लोकोंका पालन उसीके अन्तर्गत है। उस सम्पूर्ण वैष्णव-पदको न तो ब्रह्मा कह सकते हैं और न दूसरे ही उसका पूर्णतया वर्णन कर सकते हैं। उसीको पौरुषपद भी कहते हैं। गौण और पौरुषपदसे उत्कृष्ट गणपतिपद है। उसीको ईश्वरपद भी कहते हैं। उस पदका किंचित् ज्ञान श्रीविष्णुको है। दूसरे लोग उसे नहीं जान सकते। ये सारी विज्ञान-सिद्धियाँ औपसर्गिक हैं। इन्हें परम वैराग्यद्वारा प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये। इन अशुद्ध प्रातिभासिक गुणोंमें जिसका चित्त आसक्त है, उसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला निर्भय परम ऐश्वर्य नहीं सिद्ध होता।

इसलिये देवता, असुर और राजाओंके गुणों तथा भोगोंको जो तृणके समान त्याग देता है, उसे ही उत्कृष्ट योग-सिद्धि प्राप्त होती है। अथवा यदि जगत्पर अनुग्रह करनेकी इच्छा हो तो वह योगसिद्ध मुनि इच्छानुसार विचरे। इस जीवनमें गुणों और भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

अब मैं योगके प्रयोगका वर्णन करूँगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो। शुभकाल हो, शुभदेश हो, भगवान् शिवका क्षेत्र आदि हो, एकान्त स्थान हो, जीव-जन्तु न रहते हों, कोलाहल न होता हो और किसी बाधाकी सम्भावना न हो—ऐसे स्थानमें लिपी-पुती सुन्दर भूमिको गन्ध और धूप आदिसे सुवासित करके वहाँ फूल बिखेर दे, चँदोवा आदि तानकर उसे विचित्र रीतिसे सजा दे तथा वहाँ कुश, पुष्प, समिधा, जल, फल और मूलकी सुविधा हो। फिर वहाँ योगका अभ्यास करे। अग्निके निकट, जलके समीप और सूखे पत्तोंके ढेरपर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ डाँस और मच्छर भरे हों, साँप और हिंसक जन्तुओंकी अधिकता हो, दुष्ट पशु निवास करते हों, भयकी सम्भावना हो तथा जो दुष्टोंसे घिरा हुआ हो—ऐसे स्थानमें भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। श्मशानमें चैत्यवृक्षके नीचे, बाँबीके निकट, जीर्ण-शीर्ण घरमें, चौराहेपर, नदी-नद और समुद्रके तटपर, गली या सड़कके बीचमें, उजड़े हुए उद्यानमें, गोष्ठ आदिमें, अनिष्टकारी और निन्दित स्थानमें भी योगाभ्यास न करे। जब शरीरमें अजीर्णका कष्ट हो, खट्टी डकार आती हो, विष्ठा और मूत्रसे शरीर दूषित हो, सर्दी हुई हो या अतिसार रोगका प्रकोप हो, अधिक भोजन कर लिया गया हो या अधिक परिश्रमके कारण थकावट हुई हो, जब मनुष्य अत्यन्त चिन्तासे व्याकुल हो, अधिक भूख-प्यास सता रही हो तथा जब वह अपने गुरुजनोंके कार्य आदिमें लगा हुआ हो, उस अवस्थामें भी उसे योगाभ्यास नहीं करना चाहिये।

जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोता और जागता हो एवं सर्वथा आयासरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये। आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत, सब ओरसे बराबर और पवित्र होना चाहिये। पद्मासन और स्वस्तिकासन आदि जो यौगिक आसन हैं, उनपर भी अभ्यास करना चाहिये। अपने आचार्यपर्यन्त गुरुजनोंकी परम्पराको क्रमशः प्रणाम करके अपनी गर्दन, मस्तक और छातीको सीधी रक्खे। ओठ और नेत्र अधिक सटे हुए न हों। सिर कुछ-कुछ ऊँचा हो। दाँतोंसे दाँतोंका स्पर्श न करे। दाँतोंके अग्रभागमें स्थित हुई जिह्वाको अविचल भावसे रखते हुए, एड़ियोंसे दोनों अण्डकोषों और जननेन्द्रियकी रक्षापूर्वक

दोनों जाँघोंके ऊपर बिना किसी यत्नके अपनी दोनों भुजाओंको रक्खे । फिर दाहिने हाथके पृष्ठभागको बायें हाथकी हथेलीपर रखकर धीरेसे पीठको ऊँची करे और छातीको आगेकी ओरसे सुस्थिर रखते हुए नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये । अन्य दिशाओंकी ओर दृष्टिपात न करे । प्राणका संचार रोककर पाषाणके समान निश्चल हो जाय । अपने शरीरके भीतर मानस-मन्दिरमें हृदय-कमलके आसनपर पार्वतीसहित भगवान् शिवका चिन्तन करके ध्यान-यज्ञके द्वारा उनका पूजन करे ।

मूलाधार चक्रमें, नासिकाके अग्रभागमें, नाभिमें, कण्ठमें, तालुके दोनों छिद्रोंमें, भौंहोंके मध्यभागमें, द्वारदेशमें, ललाटमें या मस्तकमें शिवका चिन्तन करे । शिवा और शिवके लिये यथोचित रीतिसे उत्तम आसनकी कल्पना करके वहाँ सावरण या निरावरण शिवका स्मरण करे । द्विदल, चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल अथवा षोडशदल कमलके आसनपर विराजमान शिवका विधिवत् स्मरण करना चाहिये । दोनों भौंहोंके मध्यभागमें द्विदल कमल है, जो विद्युत्के समान प्रकाशमान है । भ्रूमध्यमें स्थित जो कमल है, उसके क्रमशः दक्षिण और उत्तर भागमें दो पत्ते हैं, जो विद्युत्के समान दीप्तिमान् हैं । उनमें दो अन्तिम वर्ण 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं । षोडशदल कमलके पत्ते सोलह स्वररूप हैं, जिनमें 'अ' से लेकर 'अः' तकके अक्षर क्रमशः अङ्कित हैं । यह जो कमल है, उसकी नालके मूलभागसे बारह दल प्रस्फुटित हुए हैं, जिनमें 'क' से लेकर 'ठ' तकके बारह अक्षर क्रमशः अङ्कित हैं । सूर्यके समान प्रकाशमान इस कमलके उन द्वादश दलोंका अपने हृदयके भीतर ध्यान करना चाहिये । तत्पश्चात् गो-दुग्धके समान उज्ज्वल कमलके दस दलोंका चिन्तन करे । उनमें क्रमशः 'ड' से लेकर 'फ' तकके अक्षर अङ्कित हैं । इसके बाद नीचेकी ओर दलवाले कमलके छः दल हैं, जिनमें 'ब' से लेकर 'ल' तकके अक्षर अङ्कित हैं । इस कमलकी कान्ति धूमरहित अङ्गारके समान है । मूलाधारमें स्थित जो कमल है, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है । उसमें क्रमशः 'व' से लेकर 'स' तकके चार अक्षर चार दलोंके रूपमें स्थित हैं । इन कमलोंमेंसे जिसमें ही अपना मन रमे, उसीमें महादेव और महादेवीका अपनी धीर बुद्धिसे चिन्तन करे । उनका स्वरूप अँगूठेके बराबर, निर्मल और सब ओरसे दीप्तिमान् है । अथवा वह शुद्ध दीपशिखाके समान आकारवाला है और अपनी शक्तिसे पूर्णतः मण्डित है । अथवा चन्द्रलेखा या ताराके समान रूपवाला है अथवा वह नीवारके सींक या कमलनालसे निकलनेवाले सूतके समान है । कदम्बके गोलक या ओसके कणसे भी उसकी उपमा दी जा सकती है । वह रूप पृथिवी आदि तत्त्वोंपर विजय प्राप्त करनेवाला है । ध्यान करनेवाला पुरुष जिस तत्त्वपर विजय पानेकी इच्छा रखता हो, उसी तत्त्वके अधिपतिकी स्थूल मूर्त्तिका चिन्तन करे । ब्रह्मासे लेकर सदाशिवपर्यन्त तथा भव आदि आठ मूर्तियाँ ही शिवशास्त्रमें शिवकी स्थूल मूर्तियाँ निश्चित की गयी हैं । मुनीश्वरोंने उन्हें 'घोर', 'शान्त' और 'मिश्र' तीन प्रकारकी बताया है । फलकी आशा न रखनेवाले ध्यान-कुशल पुरुषोंको इनका चिन्तन करना चाहिये । यदि घोर मूर्तियोंका चिन्तन किया जाय तो वे शीघ्र ही पाप और रोगका नाश करती हैं । मिश्र मूर्तियोंमें शिवका चिन्तन करनेपर चिरकालमें सिद्धि प्राप्त होती है और सौम्यमूर्तिमें शिवका ध्यान किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होनेमें न तो अधिक शीघ्रता होती है और न अधिक विलम्ब ही । सौम्यमूर्तिमें ध्यान करनेसे विशेषतः मुक्ति, शान्ति एवं शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है । क्रमशः सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है । (अध्याय ३८)

ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! श्रीकण्ठनाथका स्मरण करनेवाले लोगोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तत्काल हो जाती है, ऐसा जानकर कुछ योगी उनका ध्यान अवश्य करते हैं । कुछ लोग मनकी स्थिरताके लिये स्थूल रूपका ध्यान करते हैं । स्थूल रूपके चिन्तनमें लगकर जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूपमें वह स्थिर होता है । भगवान् शिवका चिन्तन करनेपर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती हैं । अन्य मूर्तियोंका ध्यान करनेपर भी शिवरूपका अवश्य चिन्तन करना चाहिये । जिस-जिस रूपमें मनकी स्थिरता लक्षित हो, उस-उसका बारंबार ध्यान करना चाहिये । ध्यान पहले सविषय होता है, फिर निर्विषय होता है—ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है । इस विषयमें कुछ सत्पुरुषोंका मत है कि

कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं । बुद्धिकी ही कोई प्रवाहरूपा संतति 'ध्यान' कहलाती है, इसलिये निर्विषय बुद्धि केवल—निर्गुण निराकार ब्रह्ममें ही प्रवृत्त होती है ।

अतः सविषय ध्यान प्रातःकालके सूर्यकी किरणोंके समान ज्योतिका आश्रय लेनेवाला है तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्मतत्त्वका अवलम्बन करनेवाला है । इन दोके सिवा और कोई ध्यान वास्तवमें नहीं है । अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूपका अवलम्बन करनेवाला है तथा निराकार स्वरूपका जो बोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है । वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमशः सबीज और निर्बीज कहा जाता है । निराकारका आश्रय लेनेसे उसे निर्बीज और साकारका आश्रय लेनेसे सबीजकी संज्ञा दी गयी है । अतः पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्तमें सब प्रकारकी सिद्धिके लिये निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिये । प्राणायाम करनेसे क्रमशः शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं । उनके नाम हैं—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद । समस्त आपदाओंके शमनको ही शान्ति कहा गया है । तम (अज्ञान) का बाहर और भीतरसे नाश ही प्रशान्ति है । बाहर और भीतर जो ज्ञानका प्रकाश होता है, उसका नाम दीप्ति है तथा बुद्धिकी जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठता) है, उसीको प्रसाद कहा गया है । बाह्य और आभ्यन्तरसहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धिके प्रसादसे शीघ्र ही प्रसन्न (निर्मल) हो जाते हैं ।

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानप्रयोजन—इन चारको जानकर ध्यान करनेवाला पुरुष ध्यान करे । जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, श्रद्धालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसादगुणसे युक्त हो, ऐसे साधकको ही सत्पुरुषोंने ध्याता कहा है । 'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु है । इसका अर्थ है चिन्तन । भगवान् शिवका बारंबार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है । जैसे थोड़ा-सा भी योगाभ्यास पापका नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करनेवाले पुरुषके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्तसे परमेश्वरका जो चिन्तन है, उसीका नाम 'ध्यान' है । बुद्धिके प्रवाहरूप ध्यानका जो आलम्बन या आश्रय है, उसीको साधु पुरुष 'ध्येय' कहते हैं । स्वयं साम्ब सदाशिव ही वह ध्येय हैं । मोक्ष-सुखका पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्यकी उपलब्धि—ये पूर्ण शिवध्यानके साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं । ध्यानसे सौख्य और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये मनुष्यको सब कुछ छोड़कर ध्यानमें लग जाना चाहिये । बिना ध्यानके ज्ञान नहीं होता और जिसने योगका साधन नहीं किया है, उसका ध्यान नहीं सिद्ध होता । जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागरको पार कर लिया । समस्त उपाधियोंसे रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रता-पूर्ण ध्यान—ये योगाभ्याससे युक्त योगीको ही सिद्ध होते हैं । जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है । जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है । जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ीको भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्मको भी क्षण-भरमें दग्ध कर देती है । जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा-सा योगाभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है । श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कहीं अन्त नहीं है ।*

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है और ध्यानके समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे ।† अपने आत्मा एवं परमात्माका बोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन केवल जलसे भरे हुए तीर्थों और पत्थर एवं मिट्टीकी बनी हुई देवमूर्तियोंका आश्रय नहीं लेते (वे आत्मतीर्थमें अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं) । जैसे अयोगी पुरुषोंको मिट्टी और काठ आदिकी बनी हुई स्थूल मूर्तियोंका प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियोंको ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है । जैसे राजाको अपने अन्तःपुरमें विचरनेवाले स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं और बाहरके लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान् शंकरको अन्तःकरणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारोंका आश्रय लेने-वाले कर्मकाण्डी नहीं । जैसे लोकमें यह देखा गया है कि बाहरी लोग राजाके भवनमें राजकीय पुरुषोचित

---

* यथा वह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ।
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात् ॥
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् ।
यद्भवेत् सुमहच्छ्रेयस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥
(शि० पु० वा० स० उ० ख० ३९ । २५, २७)

† नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः ।
नास्ति ध्यानरूपो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत् ॥
(शि० पु० वा० स० उ० ख० ३९ । २८)

फलका उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्तःपुरके लोग ही उस फलके भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ बाह्य-कर्मी पुरुष उस फलको नहीं पाते, जो ध्यानयोगियोंको सुलभ होता है।

ज्ञानयोगकी साधनाके लिये उद्यत हुआ पुरुष यदि बीचमें ही मर जाय तो भी वह योगके लिये उद्योग करनेमात्रसे रुद्रलोकमें जायगा। वहाँ दिव्य सुखका उपभोग करके वह फिर योगियोंके कुलमें जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोगको पाकर संसारसागरको लाँघ जायगा। योगका जिज्ञासु पुरुष भी जिस गतिको पाता है, उसे यज्ञकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञोंका अनुष्ठान करके भी नहीं पाता। करोड़ों वेदवेत्ता द्विजोंकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है, वह एक शिवयोगीको भिक्षा देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन और होम—इन सभी पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह सारा फल शिवयोगियोंको अन्न देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। जो मूढ़ मानव शिवयोगियोंकी निन्दा करते हैं, वे श्रोताओंसहित नरकमें पड़ते हैं और प्रलयकालतक वहीं रहते हैं। श्रोताके होनेपर ही कोई शिवयोगियोंकी निन्दाका वक्ता हो सकता है, इसलिये महापुरुषोंके मतमें उस निन्दाको सुननेवाला भी महान् पापी और दण्डनीय है। जो लोग सदा भक्तिभावसे शिवयोगियोंकी सेवा करते हैं, वे महान् भोग पाते और अन्तमें शिवयोगकी भी उपलब्धि कर लेते हैं। इसलिये भोगार्थी मनुष्योंको चाहिये कि वे रहनेको स्थान, खान-पान, शय्या तथा ओढ़ने-बिछानेकी सामग्री आदि देकर सदा शिवयोगियोंका सत्कार करें। योगधर्म ससार—अत्यन्त प्रबल है, अतः पापरूपी मुद्गरोंसे उसका भेदन नहीं हो सकता। योगधर्म और पापमुद्गरमें उतना ही अन्तर समझना चाहिये, जितना वज्र और तन्दुलमें; अतः योगीजन पापों और ताप-समूहोंसे उसी तरह लिप्त नहीं होते, जैसे कमलका पत्ता पानीसे।

शिवयोगपरायण मुनि जिस देशमें नित्य निवास करता है, वह देश भी पवित्र हो जाता है। फिर उसकी पवित्रताके विषयमें तो कहना ही क्या। अतः चतुर एवं विद्वान् पुरुष सब कृत्योंको छोड़कर सम्पूर्ण दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये शिव-योगका अभ्यास करे। जिसका योगफल सिद्ध हो गया है, वह योगी यथेष्ट भोगोंको भोगकर समस्त लोकोंकी हित-कामनासे संसारमें विचरे अथवा अपने स्थानपर ही रहे या विषयसुखको अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे और वैराग्ययोगसे स्वेच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग कर दे। जो मनुष्य बहुत-से अरिष्ट देखकर अपनी मृत्युको निकट जान ले, उसे योगानुष्ठानमें संलग्न हो शिवक्षेत्रका आश्रय लेना चाहिये। वह मनुष्य यदि धीरचित्त होकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदिके बिना भी स्वयं ही प्राणोंका परित्याग कर सकता है। अनशन करके, शिवाग्निमें शरीरकी आहुति देकर अथवा शिवतीर्थोंमें अवगाहन करते हुए अपने शरीरको उन्हींके जलमें डालकर शिवशास्त्रोक्त विधिसे जो अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अथवा जो रोग आदिसे विवश होकर शिवक्षेत्रकी शरण लेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाय तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। इसलिये लोग अनशन आदिसे शिवक्षेत्रमें श्रेष्ठ मरणकी कामना करते हैं; क्योंकि शास्त्रपर विश्वास करके धीर हुए मनसे उनके द्वारा इस तरहकी मृत्यु स्वीकार की जाती है। जो शिवके लिये अथवा शिवभक्तोंके लिये प्राणत्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्तिमार्गपर स्थित नहीं है। इस कारण इस संसारमण्डलसे उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमेंसे किसी एक उपायका किसी तरह भी अवलम्बन करके अथवा विधिवत् षडध्वशुद्धिको प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं—प्राणियोंके समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिये। विशेषतः उसके पुत्र आदिको उसके मरनेसे आशौचकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषके मृत शरीरको धरतीमें गाड़ दे या पवित्र अग्निसे जला दे या शिव-स्वरूप जलमें डाल दे अथवा काठ या मिट्टीके ढेलेकी भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिये बराबर है। यदि ऐसे पुरुषके उद्देश्यसे भी कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो दूसरोंका कल्याण ही करे और अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्तोंको तृप्त करे। उसके धनको शिवभक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान् शिवको समर्पित कर दे। परंतु उसकी पशु-संतति (शिवभक्तिहीन संतान) उस धनको ग्रहण न करे। (अध्याय ३९)

वायुदेवका अन्तर्धान, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथस्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धि-प्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार क्रोधको जीतनेवाले उपमन्युसे यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने जो ज्ञानयोग प्राप्त किया था, उसका प्रणतभावसे बैठे हुए उन मुनियोंको उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रातःकाल नैमिषारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सत्रके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्माजीके आदेशसे साक्षात् सरस्वतीदेवी स्वादिष्ट जलसे भरी हुई स्वच्छ सुन्दर नदीके रूपमें वहाँ बहने लगीं। सरस्वती नदीको उपस्थित देख मुनि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्र समाप्त करके उसमें अवगाहन (स्नान) आरम्भ किया। उस नदीके मङ्गलमय जलसे देवता आदिका तर्पण करके पूर्ववृत्तान्तका स्मरण करते हुए वे सब-के-सब वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये। उस समय हिमालयके चरणोंसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहनेवाली भागीरथीका दर्शन करके उन ऋषियोंने उसमें स्नान किया और भागीरथीके ही किनारेका मार्ग पकड़कर वे आगे बढ़े। तदनन्तर वाराणसीमें पहुँचकर उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ उत्तरवाहिनी गङ्गामें स्नान करके उन्होंने अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन और विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके जब वे चलनेको उद्यत हुए, तब उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा, जो करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता था। उसने अपनी प्रभाके प्रसारसे सम्पूर्ण दिगन्तको व्याप्त कर लिया था। तदनन्तर जिन्होंने अपने शरीरमें भस्म लगा रखा था, वे सैकड़ों सिद्ध पाशुपत मुनि निकट जाकर उस तेजमें लीन हो गये। उन तपस्वी महात्माओंके इस प्रकार लीन हो जानेपर वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। वह एक अद्भुत सी घटना घटित हुई। उस महान् आश्चर्यको देखकर वे नैमिषारण्यके निवासी महर्षि 'यह क्या है' इस बातको न जानते हुए ब्रह्मवनको चले गये।

इनके जानेसे पहले ही लोकपावन पवनदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंका जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ, जिस तरह उनसे उनकी बातचीत हुई, उन ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धि जिस प्रकार पार्षदोंसहित साम्ब सदाशिवमें लगी थी और जिस प्रकार उन यज्ञपरायण ऋषियोंका वह दीर्घकालिक यज्ञ पूरा हुआ था, ये सारी बातें जगत्स्रष्टा ब्रह्मयोनि ब्रह्माजीको बतायीं। फिर अपने कार्यके लिये उनसे आज्ञा ले वे अपने नगरको चले गये। तदनन्तर अपने स्थानपर बैठे हुए ब्रह्माजी गानकी कलामें परस्पर स्पर्द्धा रखने और विवाद करनेवाले तुम्बुरु और नारदके गानजनित रसका आस्वादन करते हुए वहाँ मध्यस्थता करने लगे। उस समय वे गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित हो सुखपूर्वक बैठे थे। उस वेलामें किसी बाहरी व्यक्तिको वहाँ जानेका अवसर नहीं दिया जाता था। इसीलिये जब नैमिषारण्यनिवासी मुनि वहाँ पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें द्वारपर ही रोक दिया। वे मुनि ब्रह्मभवनसे बाहर ही पार्श्वभागमें बैठ गये। इधर संगीतगोष्ठीमें नारदने तुम्बुरुकी समानता प्राप्त की। तब परमेष्ठी ब्रह्माने उन्हें तुम्बुरुके साथ रहनेकी आज्ञा दी और वे पारस्परिक स्पर्धाको त्यागकर तुम्बुरुके परम मित्र हो गये। तत्पश्चात् गन्धर्वों और अप्सराओंसे घिरे हुए नारद नकुलेश्वर महादेवको वीणागान सुनाकर संतुष्ट करनेके लिये तुम्बुरुके साथ ब्रह्मभवनसे उसी प्रकार निकले, जैसे मेघोंकी घटासे सूर्यदेव बाहर निकलते हैं।

उस समय मुनिवर नारदको देखकर उन छः कुलोंमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ ब्रह्माजीसे मिलनेका अवसर पूछा। नारदजीका चित्त दूसरी ओर लगा था और वे बड़ी उतावलीमें थे। अतः उनके पूछनेपर बोले—'यही अवसर है! आपलोग भीतर जाइये।' यह कहते हुए वे चले गये। तदनन्तर द्वारपालोंने ब्रह्माजीसे उन ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। उनकी आज्ञा पाकर वे सब एक साथ ब्रह्माजीके भवनमें प्रविष्ट हुए। भीतर जाकर उन्होंने दूरसे ही दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। फिर उनका आदेश पाकर वे ऋषि उनके पास गये और चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठे। उन्हें वहाँ बैठा देख कमलासन ब्रह्माने उनका कुशल-समाचार पूछा और बताया कि मुझे तुमलोगोंका सारा वृत्तान्त ज्ञात हो चुका है; क्योंकि वायुदेवने ही यहाँ सब कुछ कहा है। अब तुम बताओ, जब वायुदेव तुम्हें कथा सुनाकर अदृश्य हो गये, तब तुमने क्या किया?

देवेश्वर ब्रह्माके इस प्रकार पूछनेपर उन मुनियोंने अवभृथ-स्नानके पश्चात् गङ्गातीर्थमें जाने, वाराणसीकी यात्रा

करने, वहाँ देवेश्वरोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गों और अविमुक्तेश्वर लिङ्गके भी दर्शन-पूजन करने, आकाशमें महान् तेजःपुञ्जके दिखायी देने, कतिपय महर्षियोंके उसमें लीन होने तथा फिर उस तेजके अदृश्य हो जानेकी सब बातें ब्रह्माजीसे विस्तार-पूर्वक उन्हें बारंबार प्रणाम करके कहीं। साथ ही यह भी बताया कि 'हम अपने मनमें बहुत विचार करनेपर भी उस तेजको ठीक-ठीक जान न सके'। मुनियोंका कथन सुनकर विश्वस्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माने किंचित् सिर हिलाकर गम्भीर वाणी-में कहा—'महर्षियो! तुम्हें परम उत्तम पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होनेका अवसर आ रहा है। तुमने दीर्घकालिक सत्रद्वारा चिरकालतक प्रभुकी आराधना की है। इसलिये वे प्रसन्न होकर तुमलोगोंपर कृपा करनेको उत्सुक हैं। उस तेजःपुञ्जके दर्शनकी जो घटना घटित हुई है, उससे यही बात सूचित होती है। तुमने वाराणसीमें आकाशके भीतर जो दीप्तिमान् दिव्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिङ्ग ही था, उसे महेश्वरका उत्कृष्ट तेज समझो। उस तेजमें श्रौत और पाशुपत-व्रतका पालन करनेवाले मुनि, जो स्वधर्ममें पूर्णतः निष्ठा रखनेवाले थे और अपने पापको दग्ध कर चुके थे, लीन हुए हैं। लीन होकर वे स्वस्थ एवं मुक्त हो गये हैं। इसी मार्गसे तुम्हें भी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होनेवाली है। तुम्हारे देखे हुए उस तेजसे यही बात सूचित होती है। तुम्हारे लिये यह वही समय दैववश स्वयं उपस्थित हो गया है। तुम मेरुपर्वतके दक्षिण शिखरपर, जहाँ देवता रहते हैं, जाओ, वहीं मेरे पुत्र सनत्कुमार, जो उत्कृष्ट मुनि हैं, निवास करते हैं। वे वहाँ साक्षात् भूतनाथ नन्दीके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं।

'पूर्वकालकी बात है सनत्कुमार अज्ञानवश अपनेको सब योगियोंका शिरोमणि मानने लगे थे। इसीलिये दुर्विनीत हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय परमेश्वर शिवको सामने देखकर भी उनके लिये उचित अभ्युत्थान आदि सत्कार नहीं किया। वे अपने स्थानपर निर्भय बैठे रहे। उनके इस अपराधसे कुपित हो नन्दीने उन्हें बहुत बड़ा ऊँट बना दिया। तब उनके लिये मुझे बड़ा शोक हुआ और मैंने दीर्घकालतक महादेव और महादेवीकी उपासना करके नन्दीसे भी बड़ी अनुनय-विनय की। इस प्रकार प्रयत्न करके किसी तरह उनको ऊँटकी योनिसे छुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनत्कुमार-रूपकी प्राप्ति करायी। उस समय महादेवजीने मुस्कराते हुए-से अपने गणाध्यक्ष नन्दीसे कहा—'अनघ! सनत्कुमार मुनिने मेरी ही अवहेलना करके अपना वैसा अहंकार प्रकट किया था, अतः तुम्हीं उनको मेरे यथार्थ स्वरूपका उपदेश दो। ब्रह्माका ज्येष्ठ पुत्र मूढ़की भाँति मेरा स्मरण कर रहा है, अतः मैंने ही उसको तुम्हें शिष्यके रूपमें दिया है; तुमसे उपदेश पाकर वह मेरे ज्ञानका प्रवर्तक होगा और वही तुम्हारा धर्माध्यक्षके पदपर अभिषेक करेगा।'

महादेवजीके ऐसा कहनेपर समस्त भूतगणोंके अध्यक्ष नन्दीने प्रातःकाल मस्तक झुकाकर स्वामीकी वह आज्ञा शिरोधार्य की तथा सनत्कुमार भी मेरी आज्ञासे इस गणराज नन्दीको प्रसन्न करनेके लिये मेरुपर दुष्कर तपस्या कर रहे हैं। गणाध्यक्ष नन्दीके समागमसे पहले ही तुमलोग सनत्कुमारसे मिलो; क्योंकि उनपर कृपा करनेके लिये नन्दी शीघ्र ही वहाँ आयेंगे।

विश्वयोनि ब्रह्माके इस प्रकार शीघ्र आदेश देकर भेजनेपर वे मुनि मेरु पर्वतके दक्षिणवर्ती कुमार-शिखरपर गये।

(अध्याय ४०)

मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनत्कुमारजीसे मिलना, भगवान् नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपात मात्रसे पाशछेदन एवं ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

सूतजी कहते हैं—वहाँ मेरु पर्वतपर सागरके समान एक विशाल सरोवर है, जिसका नाम स्कन्द-सर है। उसका जल अमृतके समान स्वादिष्ठ, शीतल, स्वच्छ, अगाध और हलका है। वह सरोवर सब ओरसे स्फटिक मणिके शिलाखण्डों-द्वारा संघटित हुआ है। उसके चारों ओर सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूलोंसे भरे हुए वृक्ष उसे आच्छादित किये रहते हैं। उस सरोवरमें सेवार, उत्पल, कमल और कुमुदके पुष्प तारोंके समान शोभा पाते हैं और तरङ्गें बादलोंके समान उठती रहती हैं, जिससे जान पड़ता है कि आकाश ही भूमिपर उतर आया है। वहाँ सुखपूर्वक उतरने-चढ़नेके लिये सुन्दर घाट और सीढ़ियाँ हैं। वहाँकी भूमि नीली शिलाओंसे आबद्ध है। आठों दिशाओंकी ओरसे वह सरोवर बड़ी शोभा

पाता है। वहाँ बहुत-से लोग नहानेके लिये उतरते हैं और कितने ही नहाकर निकलते रहते हैं। स्नान करके श्वेत यज्ञोपवीत और उज्ज्वल कौपीन धारण किये, वल्कल पहने, सिरपर जटा अथवा शिखा रखाये या मूँड मुड़ाये, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये, वैराग्यसे विमल एवं मुसकराते मुखवाले बहुत-से मुनिकुमार घड़ोंमें, कमलिनीके पत्तोंके दोनोंमें, सुन्दर कलशोंमें, कमण्डलुओंमें तथा वैसे ही करकों (करवों) आदिमें अपने लिये, दूसरोंके लिये, विशेषतः देवपूजाके लिये वहाँसे नित्य जल और फूल ले जाते हैं। वहाँ इष्ट और शिष्ट पुरुष जलमें स्नान करते देखे जाते हैं। उस सरोवरके किनारे-की शिलाओंपर तिल, अक्षत, फूल और छोड़े हुए पवित्रक दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ स्थान-स्थानपर अनेक प्रकारकी पुष्पबलि आदि दी जाती है। कुछ लोग सूर्यको अर्घ्य देते हैं और कुछ लोग वेदीपर बैठकर पूजन आदि करते हैं।

उस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्पवृक्षके नीचे हीरेकी शिलासे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगचर्म बिछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। वे अपनी अविचल समाधिसे उसी समय उपरत हुए थे। उस समय बहुतसे ऋषि-मुनि उनकी सेवामें बैठे थे और योगीश्वर भी उनकी पूजा करते थे। नैमिषारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया। उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके आस-पास बैठ गये। सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने उनसे ज्यों ही अपने आगमनका कारण बताना आरम्भ किया, त्यों ही आकाशमें दुन्दुभियोंका तुमुल नाद सुनायी दिया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरोंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ था। उसमें अप्सराएँ तथा रुद्रकन्याएँ भी थीं। वहाँ मृदङ्ग, ढोल और वीणाकी ध्वनि गूँज रही थी। उस विमानमें विचित्र रत्नजटित चँदोवा तना था और मोतियोंकी लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत-से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण और किन्नर नाचते, गाते और बाजे बजाते हुए उस विमानको सब ओरसे घेरकर चल रहे थे, उसमें वृषभचिह्नसे युक्त और मूँगेके दण्डसे विभूषित ध्वजा-पताका फहरा रही थी, जो उसके गोपुरकी शोभा बढ़ाती थी। उस विमानके मध्यभागमें दो चँवरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वलमणिमय दण्डवाले शुद्ध छत्रके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशाके साथ बैठे थे। वे अपनी कान्तिसे, शरीरसे तथा तीनों नेत्रोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। भगवान् शंकरको आवश्यक कार्योंकी सूचना देनेवाले वे नन्दी मानो जगत्स्रष्टा शिवके अलङ्घनीय आदेशका मूर्तिमान् स्वरूप होकर वहाँ आये थे, अथवा उनके रूपमें मानो साक्षात् शम्भुका सम्पूर्ण अनुग्रह ही साकार रूप धारण करके वहाँ सबके सामने उपस्थित हुआ था। शोभाशाली श्रेष्ठ त्रिशूल ही उनका आयुध है। वे विश्वेश्वर गणोंके अध्यक्ष हैं और दूसरे विश्वनाथकी भाँति शक्तिशाली हैं। उनमें विश्वस्रष्टा विधाताओंका भी निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति है। उनके चार भुजाएँ हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है, वे चन्द्रलेखासे विभूषित हैं। कण्ठमें नाग और मस्तकपर चन्द्रमा उनके अलङ्कार हैं। वे साकार ऐश्वर्य और सक्रिय सामर्थ्यके स्वरूप-से जान पड़ते हैं।

उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे दोनों हाथ जोड़कर उठे और उन्हें आत्मसमर्पण-सा करते हुए खड़े हो गये। इतनेहीमें वह विमान धरतीपर आ गया, सनत्कुमारने देव नन्दीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—'ये छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमिषारण्यमें दीर्घकालसे सत्रका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही यहाँ आये हुए हैं।' ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमात्रसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये। सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान साक्षात् मेरे गुरु व्यासको दिया और पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया। त्रिपुरारि शिवके इस पुराणरत्नका उपदेश वेदके न जाननेवाले लोगोंको नहीं देना चाहिये। जो भक्त और शिष्य न हो, उसको तथा नास्तिकोंको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि मोहवश इन अनधिकारियोंको इसका उपदेश दिया गया तो यह नरक प्रदान करता है। जिन लोगोंने सेवानुगत-मार्गसे इस पुराणका उपदेश दिया, लिया, पढ़ा अथवा सुना है, उनको यह सुख तथा धर्म आदि त्रिवर्ग प्रदान करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष देता है। इस पौराणिक मार्गके सम्बन्धसे आप लोगोंने और मैंने एक दूसरेका उपकार किया है; अतः मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हमलोगोंका सदा सब प्रकारसे मङ्गल ही हो।

सूतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और प्रयागमें उस महायज्ञके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि विषय-कलुषित कलिकालके आनेसे काशीके आसपास निवास करने लगे। तदनन्तर पशु-पाशसे छूटनेकी इच्छासे उन सबने पूर्णतया पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया और सम्पूर्ण बोध एवं समाधिपर अधिकार करके वे अनिन्द्य महर्षि परमानन्दको प्राप्त हो गये।

व्यास उवाच

एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात्।
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि॥
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च॥
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत् पापं हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक्॥
पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः।
तस्मात् पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः॥
पञ्चावृतिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया।
परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः॥
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः।
सप्तकृत्वस्तदावृत्यालभन्त शिवदर्शनम्॥
श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः।
इह भुक्त्वाखिलान् भोगानन्ते मुक्तिं लभेच्च सः॥
एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसम्मितं भक्तिवर्धनम्॥
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा।
सगणः ससुतः साम्बः शं करोतु स शंकरः॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० ४१। ४३—५१)

व्यासजी कहते हैं—यह शिवपुराण पूरा हुआ, इस हितकर पुराणको बड़े आदर एवं प्रयत्नसे पढ़ना तथा सुनना चाहिये। नास्तिक, श्रद्धाहीन, शठ, महेश्वरके प्रति भक्तिसे रहित तथा धर्मध्वजी (पाखण्डी) को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। इसका एक बार श्रवण करनेसे ही सारा पाप भस्म हो जाता है। भक्तिहीन भक्ति पाता है और भक्त भक्तिकी समृद्धिका भागी होता है। दोबारा श्रवण करनेपर उत्तम भक्ति और तीसरी बार सुननेपर मुक्ति सुलभ हो जाती है, इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको बारंबार इसका श्रवण करना चाहिये। किसी भी उत्तम फलको पानेके लिये शुद्ध-बुद्धिसे इस पुराणकी पाँच आवृत्ति करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य उस फलको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीनकालके राजाओं, ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ वैश्योंने इसकी सात आवृत्ति करके शिवका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है। जो मनुष्य भक्तिपरायण हो इसका श्रवण करेगा, वह भी इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिव-पुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। अपने प्रमथगणों, दोनों पुत्रों तथा देवी पार्वतीजीके साथ भगवान् शंकर इस पुराणके वक्ता और श्रोताका सदा कल्याण करें। (अध्याय ४१)

॥ वायवीयसंहिता सम्पूर्ण ॥

॥ शिवपुराण सम्पूर्ण ॥



रुद्र-देवता-तत्त्व

(लेखक—सर्वदर्शनाचार्य, तत्त्व-चिन्तक स्वामी अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)

परीक्षा-पारित, व्यापक अतएव सर्वमान्य नैसर्गिक नियमोंके आधारपर प्रमाणोंके द्वारा तत्त्व-निर्णय-पद्धतिको मीमांसा (न्याय) कहते हैं। यहाँ रुद्र-तत्त्वका निर्णय भी इसी पद्धतिसे किया जा रहा है। 'रुद्र' शब्दके अर्थ एवं 'रुद्रतत्त्व'को जाननेके पूर्व, 'देवता' शब्दके अर्थ और उसके तत्त्वको सम्यक् समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि 'रुद्रो देवता' इस ज्ञानमें देवता-तत्त्व व्यापक एवं रुद्र-तत्त्व व्याप्य है। इसी प्रकार देवता-तत्त्व विशेष्य एवं रुद्र-तत्त्व उसका विशेषण है। रुद्र उद्देश्य एवं देवता-तत्त्व विधेय है।

अस्फुटतया भासमान व्यापक वस्तुके 'इदमिदं' 'इदमियत्' 'इदमित्थम्' रूप निर्णयसे अस्फुटतया प्रतीयमान व्याप्य वस्तुका निर्णय भी सरल हो जाता है। अस्पष्टार्थ वैदिक शब्दोंको सुस्पष्टार्थमें लानेके लिये 'निरुक्त-प्रक्रिया' आविष्कृत हुई है, जिसके द्वारा अस्पष्टार्थ शब्दोंके विवक्षित अर्थतक सुगमतासे पहुँचा जा सकता है। इस दिशामें 'निरुक्त प्रक्रिया' शत-प्रतिशत-रूपमें सफल सिद्ध हुई है 'शाकपूणि' 'तैटिकि' 'शतबलाक्ष' एवं 'यास्क' प्रभृति सभी प्राचीन आचार्योंने इस प्रक्रियापर परम श्रद्धा व्यक्त करते हुए उसका अनुसरण किया है।

'देवता शब्दकी निरुक्ति'

निरुक्तकार 'यास्क' ने 'देवता' शब्दकी निरुक्ति यह की है—'**देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्यु स्थानो भवति वा, यो देवः सा देवता इति**' इन निरुक्तियोंके फलित अर्थोंका निर्देश 'तन्त्रालोक' ग्रन्थमें सर्वश्री अभिनवगुप्ताचार्यने इस प्रकार किया है—जो शाक्त पुद्गल (स्थूल) पिण्डोंसे भिन्न है, किंतु उनकी उपादान-कारण भी है, जो शक्ति, पुद्गल पिण्ड एवं तद्गत कार्योंपर नियन्त्रण करती है और जो जड भूतोंके तत्-तत् परिणामोंकी जनयित्री एवं रक्षिका भी है, वही शक्ति 'देवता' शब्दसे अभिहित है। इस सिद्धान्तके उपोद्बलक 'ऐतरेय ब्राह्मण' एवं 'पाशुपत सूत्र' के क्रमशः '**यज्जायते तदाभिर्देवताभिः**' '**शक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्**'— ये दो वाक्य हैं। अर्थात् जो वस्तु विश्वमें उत्पन्न होती है, उसके उपादान कारण देवता हैं एवं यह विश्व परमात्माकी शक्तियों (देवताओं) की समष्टिमात्र है। आधुनिक संस्कृत भाषामें 'शक्ति' इस शब्दसे जिस अर्थका बोध होता है अथवा दार्शनिकोंकी परिभाषामें 'तत्त्व' शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, उसी अर्थको अभिव्यक्त करनेके लिये वैदिक भाषामें 'देवता' शब्दका प्रयोग हुआ है।

'देवता' शब्दका प्रयोग

मन्त्र-संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, तन्त्र और पुराणोंमें 'देवता' शब्दका प्रयोग पाँच अर्थोंमें हुआ है। इनमेंसे चार अर्थ शक्य एवं एक अर्थ पारिभाषिक है। 'देवता' शब्दका नाक्षत्र प्राणोंमें भी क्वचित् प्रयोग हुआ है। उपासनाके लिये कल्पित सांकल्पिक देवताओं (प्रतिमाओं) और विद्वानोंमें भी इसका प्रयोग कहीं-कहीं होता है।

१. सब द्रव्योंके उपादान, इन्द्रिय-रहित, निरवयव, ज्योतीरूप धर्मात्मक, (गुण अथवा शक्तिरूप) अग्नि, सोम, इन्द्र, वरुण तथा सूर्य आदि प्राकृत पदार्थरूप तत्त्वविशेष 'देवता' शब्दका प्रथम अर्थ है। महाभाष्यकार पतञ्जलि-परिभाषित, '**गुणसमुदायो द्रव्यम्**' इस द्रव्य-परिभाषाको वैदिक परिभाषामें '**देवतासमुदायो द्रव्यम्**' इस प्रकार अभिनीत किया जा सकता है। पौराणिकोंकी परिभाषामें यह तत्त्व 'स्थानाभिमानी देवता' इस संज्ञासे भी परिभाषित है। (वायुपुराण)

२. अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस एवं अगन्ध अधामच्छदप्राण (दम) 'देवता' शब्दका द्वितीय अर्थ है। यह प्राण अनेक रूपोंमें विवर्तित होकर विश्वरूपमें परिणत हो जाता है। इस प्राणात्मक दमके निकल जानेसे वस्तुमात्र निर्माल्य एवं नष्ट हो जाती है। इस प्राणको ही अधिष्ठात्री देवता कहते हैं।

३. स्थानाभिमानी (भूतात्मक देवता) एवं अधिष्ठात्री देवता (प्राणात्मक) इन दोनोंपर नियन्त्रण करनेवाली मनोमयी अभिमानिविध देवता, 'देवता' शब्दका तीसरा अर्थ है। ये त्रिविध देवता अचेतन, सर्वव्यापक, नियताकार-रहित एवं विश्व-शरीरी हैं। 'कुमारिल भट्ट' की—

> **विग्रहो हविरादानं युगपत् कर्मसंनिधिः।**
> **प्रीतिः फलप्रदानं च देवतानां न विद्यते॥**

यह उक्ति इन्हीं त्रिविध देवताओंको लक्ष्यमें रखकर कही गयी है; जिसका अभिप्राय यह है कि देवता आकार (शरीर-रहित) एवं चेतना रहित हैं । इसलिये हवि-ग्रहण, प्रीति, कर्म-फलोंके प्रदान आदिसे वे दूर हैं । किंतु इन त्रिविध देवताओंमेंसे धर्मात्मक (गुणात्मक) देवता ही अचेतन हैं, प्राणात्मक एवं अभिमानिरूप देवता चेतन हैं । ये अभिमानि-विध रुद्रदेव ही उपासनासे प्रसन्न तथा संकल्पानुसार एक देशकालमें परिच्छिन्न होकर प्रत्यक्ष हो जाते हैं और अभिलषित फल देते हैं । यह न्याय सभी देवताओंके लिये लागू है । श्रीतुलसी एवं श्रीगङ्गा आदिकी पूजा-प्रार्थना उनके अभिमानि-विधरूप देवताके उद्देश्यसे ही की जाती है ।

४. विग्रहवान् (शरीरधारी) चेतन, सौम्यप्राणिविशेष, ब्राह्म, प्राजापत्यादि अष्टविकल्प-भिन्न २८ वीर्योंसे सम्पन्न, सत्त्व-प्रधान सर्गके प्राणी 'देवता' शब्दका चतुर्थ अर्थ है। मनुष्याकार-शरीरयुक्त चेतन और प्राणि-विशेष ये देवता एक-देशीय हैं । बहुत-से तत्त्वचिन्तक इन्हें तथा अभिमानि-विध-देवताओंको एक ही मानते हैं, किंतु यह अविज्ञान है—भ्रम है । अभिमानि-विध देवता मनोमय और सर्वव्यापक हैं, जब कि प्राणिविध देवता एकदेशीय एवं देवयोनिविशेष हैं ।

५. जिसके उद्देश्यसे यत्किंचन कर्म किया जाता है, उस कर्मकी वही देवता है एवं जिसके उद्देश्यसे जो वाक्य कहा जाता है, उस वाक्यमें भी वही देवता है । यह पारिभाषिक देवता 'देवता' शब्दका पाँचवाँ अर्थ है । पारिभाषिक देवता, जड-चेतन उभय-विध हैं; क्योंकि वैदिक मन्त्रोंमें दोनोंका वर्णन है । मीमांसकोंकी 'मान्त्रवर्णिकी' देवता अथवा शब्द-रूपा देवता ये ही पारिभाषिकी देवता हैं ।

संहिता-ग्रन्थोंमें प्रायः प्राकृत-पदार्थ-विध अर्थमें, ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रायः प्राणिविध एवं अभिमानि-विध अर्थमें, तन्त्र और पुराणोंमें प्रायः अभिमानि-विध एवं अष्ट-विकल्प-प्राणि-विध अर्थमें देवता शब्द प्रयुक्त हुआ है । क्वचित्-क्वचित् इन अर्थोंमें 'देवता' शब्दका प्रयोग-सांकर्य भी है (आधि-दैविकाध्याय)

चिर-कालसे देवता शब्दके व्यापक तत्त्वात्मक अर्थ-ज्ञानके अभाव एवं देवता शब्दके, केवल ज्योत्स्नावासी, अष्टविकल्प (दैवसर्ग) सम्बन्धी एकदेशीय प्राणिविध अर्थतक ही सीमित हो जानेके कारण वैदिक मन्त्रोंके ऋषिविवक्षित अर्थतक पहुँचना कठिन हो गया है । उदाहरणके लिये 'त्वं सोमासि सत्पतिः त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः' यह ऋग्वेदीय ऋचा प्रस्तुत की जा सकती है । देवता-विज्ञानसे रहित मानव इस ऋचाका यही सीमित अर्थ करेगा कि—'हे सोमदेव ! आप सज्जनोंके स्वामी हैं, आप राजा हैं, वृत्रासुरके नाशक हैं, आप यज्ञरूप हैं ।' किंतु रहूगण-वंशज गौतम ऋषिको इस ऋचामें इतना ही अर्थ विवक्षित नहीं है; अपितु गौतमने इसमें तत्त्वात्मक सोमदेवताके कार्योंका उल्लेख किया है—हे सोम ! आप सत्पति हैं । यहाँ 'सत्' शब्द मूर्ति-शक्तिका वाचक है, जिसका कार्य विश्व-पदार्थोंमें विद्यमान विभिन्न घनताका उत्पादन है । वह शक्ति सोमाश्रित है, अतः सोम सत्पति (घनताका उत्पादक) है । विश्वमें 'यच्च यावत्' सौर आग्नेय एवं चान्द्र आदि दीप्तियाँ (प्रकाश) हैं; इन सबका कारण सोमतत्त्व ही है । इसलिये वह राजा है । वृत्र नाम अज्ञान, आवरण आदि तमःशक्तियोंका है । तामसिक शक्तियोंको ही वेदोंमें 'असुर' कहा गया है । प्रकाश एवं ज्ञानरूप होनेसे सोम इन वृत्रोंका निरसन करता है, अतः वह सोम ही वृत्रहा है । अग्नि, सूर्य एवं इन्द्र आदि भी सोमके संयोगसे ही वृत्रहा हैं, पृथक् रहकर नहीं । विश्वके कोमल पदार्थरूपमें परिणत होनेसे सोम भद्र है । अध्यात्ममें संकल्परूपसे विवर्तित होनेके कारण वह क्रतु (संकल्प) है । इस प्रकार वैदिक मन्त्रोंके वास्तविक ज्ञानके लिये देवता-तत्त्वका यथार्थ ज्ञान परमावश्यक है । देवताविशेष होनेसे रुद्र-देवताकी जिज्ञासा-गर्भित चर्चा की जा रही है ।

'रुद्र' शब्दकी निरुक्ति

वेद, तन्त्र और पुराणोंमें 'रुद्र'शब्दकी निरुक्ति कई प्रकारसे की गयी है, जो 'रुद्र' शब्दके अर्थ एवं रुद्रतत्त्वके ज्ञानमें सहायक है । **'यत् अरुजत् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्'** (काठक शाखा) व्याधियोंके उत्पादक होनेसे रुद्रकी रुद्रता है । **'यत् अरोदीत् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्'** (हारिद्रविकम्) अभिव्यक्त होते ही रुदन करनेके कारण रुद्रका रुद्रत्व है । **'रोरूयमाणो द्रवति इति रुद्रः'** (यास्क और देवराज) रुदन (संशब्दन) करते हुए दौड़ना रुद्रकी रुद्रता है । **'रुतस्य भयस्य द्रावणात् रुद्रः'** (पाशुपतसूत्रम्) भयको पिघलाकर बहा देना रुद्रकी रुद्रता है । **'सेधनात् (स्थूलावस्थायाः) द्रावणात् रुद्रः'** (तन्त्रालोक) पदार्थोंको स्थूलावस्थासे द्रावण (तरल) करना ही रुद्रकी रुद्रता है । **'रोषणात् रुद्रः'** (गरुड-पुराणम्) रोष (क्षोभ) युक्त होना रुद्रकी रुद्रता है । **'द्रुत-रूपेण उपलभ्यमानत्वात् रुद्रः'** (अथर्वशीर्षोपनिषद्) तरलरूपसे

उपलब्ध पदार्थ रुद्र है। 'रोदनाद् द्रावणाद् रुद्रः' (पद्मपुराणम्) शब्दयुक्त और द्रावण-शील पदार्थ रुद्र है। 'रोदयति इति रुद्रः' (देवराजयज्वा) अर्थपति होनेसे अर्थासक्त प्राणियोंको रुलानेवाला रुद्र है।

रुद्रतत्त्व कौन ?

वह रुद्रतत्त्व कौन ? इस जिज्ञासाके उत्तरमें यजुर्वेदकी कठसंहिताने 'अग्निर्वै रुद्रः' यह कहा है, जिसका अभिप्राय है कि अग्नि ही रुद्र है। शुक्ल यजुर्वेदकी काण्वशाखाने 'देवानां या घोराः तन्वः ताः रुद्रः' यह कहकर देवताओंके घोर शरीरोंको रुद्र-शब्दसे अभिहित किया है। 'तैत्तिरीयसंहिता' के मतमें 'रुद्रो वै क्रूरो देवानाम्' अनेकविध तत्त्वोंमें क्रूर तत्त्व ही रुद्र है। तान्त्रिक, पौराणिक और सांख्यके मतसे क्रियाशक्ति (अहंकार) ही रुद्र है, जिसके ज्ञान, क्रिया और अर्थ—ये तीन अवान्तर भेद हैं। क्रियाशक्तिके रजोगुणात्मक होनेसे 'शान्ता घोराश्च मूढाश्च' इस सांख्य-परिभाषासे क्रियामय रुद्रकी घोरता स्वतःसिद्ध है।

रुद्रतत्त्वका निर्णय

पूर्वोक्त 'रुद्र' शब्दकी निरुक्तियों एवं समनन्तरोक्त रुद्र-शब्दार्थके निर्णायक वैदिक वाक्योंके समन्वयसे रुद्रतत्त्वका निर्णय यह होता है कि जो तत्त्व पदार्थमात्रमें स्पन्दनशील, क्षोभशील (रोष-रूप), द्रवणशील (गतिरूप), क्रूर (घोर), व्याधि-मूल, कठिन पदार्थोंका द्रावक (तरलता-सम्पादक), ध्वनि-शील होकर दौड़नेवाला, रुलानेवाला तथा सदा द्रुत अवस्थामें उपलब्ध है, वही रुद्रतत्त्व है। यह तत्त्व अन्तरिक्षमें अभिव्यक्त होकर विश्वमें फैला हुआ है।

प्रतिमा और उपासना

अन्तरिक्षमें अभिव्यक्त, वस्तुतः विश्व-व्यापक रुद्रदेवता स्वानुकूल जिन-जिन विशेष शक्तियों अथवा अपने भिन्न-भिन्न विवर्तोंद्वारा विश्वमें जिन कार्योंका संचालन करते हैं, उन्हीं शक्तियों और कार्योंको व्यवहार-मार्गसे सरल-रूपमें समझाने एवं उसकी उपासनाके लिये ऋषियोंने निदानशास्त्रके आधार-पर उसके भिन्न-भिन्न सदृश-शिल्पों (मूर्तियों) का निर्माण किया है। किसी भी वस्तुके सदृश-शिल्पको मूर्ति कहते हैं। मूर्ति (प्रतिमा) देवताओंका सांकल्पिक रूप है। देवताओंके इस सांकल्पिक आकार (आकृति), मुख, हस्त, वर्ण (रंग), अवस्था एवं वाहन आदिके भेदका रहस्य 'तन्त्रराज तन्त्र' में इस प्रकार उपलब्ध है—

क्षित्यादिभूतैः सत्त्वादिगुणैरेकैकसंहतैः ।
एकद्व्यादिसमारब्धैर्वर्णाकारैस्तु शक्तयः ॥
असंख्याता भवन्त्यासाम् ....

अर्थात् सत्त्व, रज, तम आदि प्राकृत गुणों अथवा चित्त, स्पन्द, ज्ञान, इच्छा और कृतिरूप आत्मगुणोंमेंसे एक-एक गुणोंसे संयुक्त क्षित्यादि पञ्चभूतोंमेंसे एक अथवा दो भूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण प्राकृत (नित्य-सिद्ध) एवं सांकल्पिक देवताओंके आकार, आयुध, वर्ण आदिमें भेद हो जाता है और उससे देवता असंख्य हो जाते हैं। सांकल्पिक देवताओंके रूपों (प्रतिमाओं)में पाञ्चभौतिक शक्तियाँ मुख-रूप हैं। सत्त्व, रज आदि गुण-शक्तियाँ हस्त-रूप हैं। शक्तियोंके कार्य आयुध-रूप हैं। योगियोंका आवेदन है कि अचिन्त्य, अप्रमेय, निर्गुण और गुण-स्वरूप परमात्माको समझने एवं उसके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये प्रतिमाकी कल्पना माध्यम-रूपसे की गयी है। परमात्माकी व्यष्टिगत उपासनासे समष्टिगत परमात्माकी प्राप्ति होती है। सब जगह रहनेवाला अव्यक्त, अचिन्त्य वायु, जिस प्रकार पंखांके द्वारा प्रबुद्ध (अभिव्यक्त) होनेपर स्वेदापनोद आदि क्रिया करता है, उसी प्रकार सर्वत्रगामी इन्द्र आदि सब शक्तियाँ साधकके विश्वाससे एक देशमें अभिव्यक्त होकर उसके मनोवाञ्छितको देती हैं। इसलिये उनका वह सर्वगामी स्वरूप अपने संकल्पसे परिच्छिन्न (एकदेशीय) हो जाता है। कार्य-भेदके अनुसार उसका दो-चार-छः भुजा-रूपमें चिन्तन किया जाता है। वस्तुतः सब देवता ज्ञान और क्रिया-रूप होनेसे विश्वरूप एवं बोधरूप हैं। अपने संकल्पसे उनका जो रूप बनता है, उसे सांकल्पिक अथवा वैधानिक रूप कहते हैं। उस रूपकी आकृति, वर्ण, हाथ, आयुध एवं वाहन आदि अपने कार्य-भेदसे होनेवाले संकल्पके भेदसे भिन्न-भिन्न हैं। जैसे कि वक्ष्यमाण वचनोंसे प्रमाणित है—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥
(ब्रह्मसंधान)

व्यष्ट्युपासनया पुंसः समष्टिर्व्याप्तिमाप्नुयात् ।
सर्वगोऽप्यनिलो यद्वद् व्यजनेनोपवीजितः ॥
प्रबुद्धः स्वक्रियां कुर्याद् घर्मनिर्णोदनादिकाम् ।
तद्वत् सर्वगताः सर्वा ऐन्द्राद्याः शक्तयः स्फुटम् ॥
साधकाश्वाससम्बुद्धास्तत्तत्प्रेष्ठफलप्रदाः ।
(तन्त्रालोक)

ततः सांकल्पिकं रूपं वपुरासां विचिन्तयेत्।
कृत्यभेदानुसारेण द्विचतुःषड्भुजादिकम्।
वस्तुतो विश्वरूपास्ता देव्यो बोधात्मिका यतः॥
(तन्त्रराज तन्त्र)

मूर्तियोंका निर्माण निदान-शास्त्रके आधारपर किया जाता है। संकेतका ही नाम निदान है। अमुकको अमुक समझो—यही निदान है। ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों भावोंमें निदानका समान सम्बन्ध है—जैसे शोक और प्रलयका निदान (संकेत) काला रंग है। आपत्कालका निदान (संकेत) लाल रंग है। निरुपद्रवताका संकेत हरितवर्ण है। कीर्तिका निदान (सूचक) श्वेत रंग है। पृथिवीका निदान कमल है। मोहिनी शक्तिका निदान सुरा है, लक्ष्मीका निदान हस्ती है संहारशक्तिका निदान छिन्नमस्तक है। सकल कला एवं सकल विद्याओंका निदान (संकेत) शुक है। निदानका सम्बन्ध सजातीय भावसे ही होता है, विजातीयसे नहीं। निदानविद्या (नैदान उपासना) में आहार्यारोप-ज्ञानका प्रभाव मुख्य है। आहार्यारोप ज्ञानका अभिप्राय अन्यमें अन्यबुद्धि करना है। जैसे कमल पृथिवी ही है, इसमें कमलमें पृथिवीका आरोप किया गया है। इससे यह जानना चाहिये कि जिस देवताका सम्बन्ध किसी भी रूपमें कमलसे जोड़ा गया है, वहाँपर उसका सम्बन्ध पृथिवीसे समझना ही निदान-विद्याको अभिप्रेत है। जैसे कि लक्ष्मीका निवास कमल है, ऐसा कहनेपर लक्ष्मीका निवास पृथिवी ही है, यह सिद्ध हो जायगा। कौन नहीं जानता कि सुवर्ण, रजत, रत्न तथा अन्नादि विविधरूपधारिणी लक्ष्मी पृथिवीसे प्रकट होती रहती है और उसीमें निवास करती रहती है। इसलिये उसे 'वसुन्धरा' कहा गया है। लक्ष्मीके समुद्रसे निकलनेके पौराणिक उपाख्यानका तात्पर्य अन्तरिक्षमें विद्यमान दिव्य सोम समुद्रका स्वर्ण, रत्न, धातु, उपधातु एवं अन्नादि-रूपसे लक्ष्मीमें परिणत हो जाना ही लक्ष्मीका समुद्र-जात आविर्भाव है। (लिङ्गपुराणम्)।

भगवान्‌के हाथमें भी कमल है, जिसका यह अर्थ होता है कि पृथिवीसम्बन्धी समस्त ऐश्वर्य भगवान्‌के हाथमें है। कमल-का धारण पृथिवी-तत्त्वका ही धारण है; क्योंकि नैदानोंकी भाषामें पृथिवी ही कमल है।

चार प्रकारकी उपासनाओंमें निदानसे की जानेवाली उपासना निदानवती कहलाती है। उपासनाके विषयमें सर्वज्ञों-का आदेश है कि उसमें चित् (आत्मा), अचित् (प्राण आदि) जो कोई भी जड-चेतन पदार्थ साक्षात् अथवा परम्परासे भोग-मोक्षका साधक हो, वह उपास्य (पूज्य) है। उसकी प्राप्तिके उपाय (कर्म, ज्ञान, भक्ति) आदि भी पूज्य हैं। उपेयकी प्राप्तिमें मूर्तिपूजा, काल (एकादशी आदि पर्व), क्रिया (स्नान संध्या) आदि भी सहायक होनेसे पूज्य हैं। उपायमें तन्मयतासे उपेयकी प्राप्ति शीघ्र होती है। पूजाका अर्थ है—पूज्यमें आदर-भावसे तल्लीन हो जाना। यह तल्लीनता ही निदान विद्या एवं आहार्यारोपका मूल है।* तत्तत् देवताओं-की शक्तियोंको समझानेके लिये ऋषियोंने निदान (संकेत) द्वारा तत्तत् देवताओंका प्रकृति-अनुरूप ध्यान बताया है। इसी विज्ञानके आधारपर शास्त्रोंमें रुद्रका ध्यान इस प्रकार मिलता है। ब्रह्माण्डमें यथावस्थित रुद्रका आन्तर ध्यान ही बाह्यमें रुद्रकी पञ्चमुखी प्रतिमा है।

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रपाशाङ्कुशान्
घण्टां भीतिहरां दधानमभितो कल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥

पञ्चमुख आदिका रहस्य

'अग्निर्वै रुद्रः' इस वैदिक वाक्यके अनुसार एक ही अग्नितत्त्व (रुद्रतत्त्व) अग्नि, वायु एवं सूर्य—इन तीनों रूपोंमें परिणत हो रहा है। इनमेंसे एक ही सूर्यात्मक रुद्र ('सूर्योऽसौ रुद्र उच्यते'—ब्रह्माण्डपुराण) पाँच दिशाओंमें व्याप्त होकर पञ्चमुख बन जाता है। उसी एकके पाँचों मुख, पूर्वा, पश्चिमा, उत्तरा, दक्षिणा एवं ऊर्ध्वा दिग्भेदसे क्रमशः तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, अघोर एवं ईशान—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। पाँचों मुख क्रमशः चतुष्कल, अष्टकल, त्रयोदशकल, अष्टकल एवं पञ्चकल हैं। पाँचों क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील एवं पीतवर्णके हैं। इस पञ्चवक्त्र शिवके 'प्रतिवक्त्रं भुजद्वयम्' इस सिद्धान्तसे १० हाथ हैं। दसोंमें अभय, टंक,

---

* तत्र यद् यन्निजाभीष्टभोगमोक्षोपकारकम्।
पारम्पर्येण साक्षाद् वा भवेच्चिदचिदात्मकम्॥
तत्पूज्यं तदुपायाश्च पूज्यास्तन्मयताप्तये।
तदुपायोऽपि सम्पूज्यो मूर्तिकालक्रियादिकः॥
उपेयद्युतिसामर्थ्यमुपायत्वं तदर्चनात्।
तद्रूप तन्मयीभावादुपेयं शीघ्रमाप्नुयात्॥
सा पूजा ह्यादराल्लयः ··· ··· ·· ·· · ··· (तन्त्रालोकः)

शूल, वज्र, पाश, खडग, अंकुश, घण्टा, नाद और अग्नि—ये दस आयुध हैं। शिवकी सर्वज्ञताके सूचक अमित आकल्प (आभूषण) हैं। निदान-भाषामें प्रकाशोंके निदान (संकेत) आभूषण हैं। रुद्रकी पाँच दिशाओंमें व्याप्ति है। उसके सूचक पाँच मुख हैं। इस रुद्रके आग्नेय, वायव्य एवं सौम्य—ये तीन स्वरूप धर्म हैं। ये तीनों भी तीन-तीन प्रकारके हैं। आग्नेय प्राणके अग्नि, वायु, इन्द्र—ये तीन भेद हैं। वायव्य प्राणके वायु, शब्द एवं अग्नि—ये तीन भेद हैं। सौम्य प्राणके वरुण, चन्द्र, दिक्—ये तीन भेद हैं। इस प्रकार उसकी नौ शक्तियाँ हो जाती हैं। ये नवों शक्तियाँ घोर हैं। इनके अतिरिक्त एक शान्त शक्ति है, जिसे मिलाकर ये दस शक्तियाँ उसके दस हाथ हैं एवं दस आयुध हैं! इन्हीं शक्तियोंके सूचक उपर्युक्त ध्यानश्लोकमें वर्णित दस आयुध हैं। टंक आग्नेय तापका सूचक है, इससे यह फलित होता है कि जिस देवताके हाथमें टंक हो, वह यह सूचित करता है कि उस देवताके वशमें आग्नेय ताप है। शूल वायव्य तापका सूचक है। वज्र ऐन्द्र तापका द्योतक है। पाश वारुण तापका संकेत है। खड्गका सम्बन्ध चान्द्री शक्तिसे है। इसलिये उसका नाम चन्द्रहास है। अंकुश दिक्सम्बन्धी शक्तिसे सम्बन्धित है। नाग विष-संचर नाडीसे सम्बन्धित है। जिस वायु-सूत्रसे शरीरोंमें रुद्र प्रविष्ट होता है, वही संचर नाडी कहलाती है। इस नाडीका नाक्षत्रिक सर्प-प्राणसे सम्बन्ध है। सारे ग्रह सर्पाकार हैं, इनमें सौर तेज व्याप्त रहता है। सब ग्रहरूप सर्पोंके साथ 'रुद्रात्मक' सूर्यका भोग होता है। अतः रुद्रके सर्वाङ्गमें सर्प भूषणरूपसे स्थित हैं। नाग इसी उपर्युक्त अर्थके सूचक हैं। इनकी दृष्टि प्रकाशरूपा है। इसीकी परिचायिका अग्निज्वाला है। मस्तकस्थ इन्दु (ब्रह्मणस्पतिसोम) सोमाहुतिका सूचक है। अभय-मुद्रा परोरजाशक्तिकी परिचायिका है। स्वरात्मक वाक्के अधिष्ठाता रुद्र हैं—इसका संकेत घण्टा है। सूर्यमें प्रकाश, ताप (अग्नि) और आहुति सोम (चन्द्रमा)—ये तीनों हैं। रुद्रने इन तीनों ही प्रकाशोंसे विश्वको प्रकाशित कर रक्खा है। इन तीनों प्रकाशोंके सूचक तीन नेत्र हैं। आकर्षण-शक्तिका परिचायक पाश है। इसी आकर्षण-शक्तिका निर्देश 'अदित्यैरास्नासि' इस वैदिक मन्त्रमें निहित है, जिसके अर्थके अनुसार पृथिवीके आकर्षणका परिचायक रास्ना (पाश) है। इस आकर्षण पाशसे ही समस्त विश्व परस्परमें आकृष्ट है। नियतिशक्तिका निदान अंकुश है। इस नियतिके कारण ही सूर्य 'पथ्यामुदेति पथ्यामस्तमेति' यह कहा गया है। जो प्रज्ञापराधसे रुद्रकी इस नियतिशक्तिगत नियमों (वैदिक सनातन नियमों) का उल्लंघन करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। शुक्लवर्ण शान्तिका सूचक है। इसका फलितार्थ यह है कि रुद्रका रौद्रभाव शान्ति-स्थापनार्थ है अथवा मूलमें रुद्र शुक्ल है, लाल और नीला रंग उसकी तुलावस्थाके सूचक हैं। इस प्रकार सब अस्त्र-शस्त्र आदि संकेतोंसे प्रतीयमान अर्थोंको समझाना ही निदान-विद्याका कार्य है। (पितृ-समीक्षा)

उपर्युक्त अस्त्र-शस्त्र आदि संकेतोंका रहस्य तन्त्रग्रन्थोंके अनुसार वर्णित किया गया है। अब विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार निदानगत रहस्योंके अर्थोंका उद्घाटन किया जा रहा है।

महादेवके पाँच मुख पञ्चमहाभूतोंके सूचक हैं। दस हाथ दस दिशाओंके संकेत हैं। हाथोंमें विद्यमान अस्त्र-शस्त्र जगद्रक्षक शक्तियोंके सूचक हैं, जिसका फलित अर्थ यह होता है कि दस दिशाओंमें व्याप्त रुद्रकी शक्तियाँ जगत्की रक्षा कर रही हैं। हस्तगत अक्षमाला कालकी परिचायिका है, जिसका फलितार्थ यह है कि काल और उसके परिणाम रुद्रके हाथमें हैं। कमण्डलु जगदुत्पादक जलका सूचक है। रुद्रका चाप, जिसे आजगव और पिनाक भी कहा जाता है, वह्निका सूचक है। बाण पञ्चतन्मात्राओंके सूचक हैं अथवा निगमानुसार अन्न, वात और वर्षाके सूचक हैं। दण्ड मृत्युका परिचायक है। मातु लुङ्ग, समग्र जगद्बीज परमाणुओंका सूचक है। चर्म (ढाल) अज्ञानावरणका संकेत है। त्रिशूल इच्छा, ज्ञान, क्रिया—इन तीनों शक्तियोंका सूचक है। खड्ग ज्ञानका प्रतीक है। रुद्रके पाँचों मुखोंमेंसे औतराह मुख 'उमामुख' कहलाता है, जो जलतत्त्वप्रधान है। उमामुख महादेवके हाथोंमें इन्दीवर और दर्पण है। यहाँ 'इन्दीवर' (नीलकमल) वैराग्य एवं दर्पण निर्मल ज्ञानका परिचायक है। रुद्रके सिरमें स्थित चन्द्रमा ऐश्वर्यका परिचायक है। त्रैलोक्य-शमन (नाशक) क्रोधका सूचक वासुकि नाग है। विशाल और चित्र-विचित्र व्याघ्र-चर्म, विविधरूपधारिणी मृगतृष्णाका सूचक है। रक्तवर्ण वृषभ जगद्धारिणी शक्तिका निदान और 'तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः' (श्रीमद्भागवत) चतुष्पाद है। निदान-शास्त्रमें प्रकृति (मूलकारण) को शुक्ल और विकृति (कार्य) को कृष्णवर्ण माना है। अतः महादेव कर्पूरगौर (शुक्ल) हैं। जगज्जीवनकी कारणभूत ओषधियाँ जटाएँ हैं।

यहाँतक 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के अनुसार निदानगत रहस्योंका वर्णन किया गया। इसके अनन्तर 'योगवासिष्ठ'के मतसे निदान-रहस्योंका निरूपण किया जा रहा है।

अनेक तत्त्वचिन्तक मानते हैं कि सृष्टि, स्थिति, लय, अनुग्रह (अनुमति) एवं निग्रह (निर्ऋति)—इन पाँच कार्योंकी निर्मात्री पाँच शक्तियोंके निदान (संकेत) पाँच मुख हैं। पूर्वमुख सृष्टि; दक्षिणमुख स्थिति, पश्चिममुख प्रलय, उत्तरमुख अनुग्रह (कृपा) एवं ऊर्ध्वमुख निग्रह (ज्ञान)का सूचक है। बहुत-से चिन्तनशील महादेवके पाँच मुखोंका संकेत (सम्बन्ध) मन्त्रयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं शरणागतियोगसे क्रमशः मानते हैं। सृष्टि आदि पाँच कार्योंके ही पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय एवं ऊर्ध्वाम्नाय—ये तान्त्रिक संकेत हैं। इनका रुद्रके पाँच मुखोंसे सम्बन्ध है। रुद्रदेव कहीं षण्मुख भी माने गये हैं। उनके मतमें षडाम्नाय होते हैं।

अहंकारात्मक (सूर्यके अभिमानी) रुद्र सर्वभूतोंके आत्मा और सर्वव्यापी हैं। इस अहंकाररूपी रुद्रके प्रत्येक शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ ही पाँच मुख हैं। इसलिये ज्ञानेन्द्रियाँ सब ओरसे प्रकाशरूप कही गयी हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ) तथा इनके पाँच विषय (बोलना, ग्रहण करना, मलत्याग, गमन एवं विषय-सुखकी उपलब्धि करना)—ये क्रमशः अहंकाररूपी रुद्रकी दाहिनी एवं बायीं भुजाएँ हैं। मुकुट द्युलोकका और भस्मधारण विश्वधारणका परिचायक है। कपाल द्यावा-पृथिवीका निदान है। श्मशानवास अध्यात्ममें सुषुम्णाका एवं अधिदैवतमें आकाशका संकेत है। अक्षमाला वर्णपञ्चाशिकाकी परिचायिका है। तीन गुण, तीन काल, अन्तःकरणत्रय, प्रणव-के तीन अक्षर और वेदत्रयी रुद्रके पाँचों मुखोंके क्रमशः तीन-तीन नेत्र हैं, जिनसे ब्रह्माण्डात्मक एवं पिण्डात्मक विश्व प्रकाशित हैं। त्रिशूल त्रिगुणात्मक जगत्के धारणका निदान (संकेत) है। चिद्घन रुद्रकी इच्छात्मक (अहंतात्मक) शक्तिके स्पन्दनका निदान नृत्य है। वस्तुगत परिणाम ही नृत्यके अभिनय हैं। प्रलय और सृष्टि, सृष्टि और प्रलयकी संधियोंमें यह नृत्य अधिकतर होता है; इसलिये रुद्रको 'संध्या-नट' कहते हैं। शक्ति और शक्तिमान्के अभेदकी परिचायिका शिव-पार्वतीकी संश्लिष्ट (अर्धनारीश्वर) मूर्ति है। मात्राओंसे रहित पदार्थमात्रमें प्रतिष्ठित शब्द-ब्रह्म (प्रणव) के नादका जो उच्चारण होता रहता है, वह अर्ध-मात्रारूप होनेसे इन्दु कहलाता है। यही महादेवकी शिरःस्थ इन्दुकला है। अपनेसे उत्पन्न और अवयवभूत दृश्य-वस्तुओंको हृदयमें धारण करनेकी परिचायिका मुण्डमाला है। रुद्रकी महान् आकृति उसकी सर्वव्यापकताकी सूचिका है। महादेवके संहारक होनेसे उनका वर्ण नील है। वेदने रुद्रको धूम्र एवं रक्तवर्ण भी कहा है। इनमें रक्तवर्ण सौभाग्य और विजयादिका सूचक है तथा धूम्रवर्ण क्षोभ एवं उच्चाटनका सूचक है। सर्वगत अहंप्रतीति ही अहंकारात्मक रुद्रका कार्य है।

श्रीअभिनवगुप्ताचार्यके मतसे निदान-रहस्योंका वर्णन इस प्रकार है। रुद्रके प्रकाशरूप होनेसे प्रकाशके ऊर्ध्व प्रसरणको ऊर्ध्वादिक् अथवा ईश कहते हैं। प्रकाशका सम्मुख होकर प्रसरण होनेके कारण पूर्वादिक् तत्पुरुष है। प्रसृत प्रकाशके उद्रेकके अनुकूल होनेसे दक्षिणादिक् अघोर कहलाती है। प्रकाशके प्रतिकूल प्रसरणके न्यून होने तथा मेय इन्दुके संस्पर्श होनेके कारण उत्तरादिक् वामदेव कहलाती है। प्रकाशके विमुख होनेके कारण पश्चिमादिक् सद्योजात है। प्रकाश संस्पर्शके अयोग्य होनेके कारण अधरा दिशा पातालवक्त्र अथवा पिचुवक्त्र है। महादेवके पञ्चमुखोंका यह भेद पञ्चमहाभूतों-की व्याप्तिके कारण है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी—ये रुद्रके मुख हैं। इसमें आकाश दो प्रकारका है—एक प्रकाशमय और दूसरा अन्धकारमय। आकाशके द्विविध होनेसे महादेवको कहीं-कहीं षण्मुख भी कहा गया है, कहीं वे सप्तमुख भी माने गये हैं। महत्, अहंकार एवं पञ्च-तन्मात्रा ही महादेवके सप्तमुख हैं। भस्म प्रकृतिका परिचायक है। याज्ञवल्क्यने भस्मको ज्योतिका परिचायक माना है। 'स्वच्छन्द तन्त्र'के अनुसार जटाएँ ऊर्ध्वपद वामेश्वर्यादि शक्तियोंका संकेत है। 'तन्त्रलोक'के अनुसार मुकुट 'स्वातन्त्र्योच्छालन' (विकास) का परिचायक है। विश्वकी आप्यायिनी दयाशक्तिका निदान अर्धचन्द्र है। त्रिविध पाशों-के सूचक सर्प हैं। प्रपञ्चीय अवयवोंका सूचक कपाल है, जिसका फलितार्थ यह होता है कि सब प्रकारके प्रपञ्चोंके अवयव महादेवके हाथों (शक्तियों) पर हैं। चैतन्यस्फार (विकास) का परिचायक सिंह-चर्म है। मायाका सूचक गज-चर्म है। इच्छा आदि तीन शक्तियोंके अष्टादश परिणामों-की सूचक अष्टादश भुजाएँ हैं। अख्याति (अव्यक्तावस्था अथवा अभाव) का सूचक महाविष है, जिससे रुद्रदेव नील-कण्ठ हैं। ज्ञान-क्रियात्मक शक्तिका परिचायक वृषभ है; वह चित्-अचित्को धारण करता है, इसलिये धर्म है। अर्धनारीश्वर-

रूपमें वामार्ध भोग्य वस्तुका परिचायक है। दक्षिणार्ध भोक्तृ-वस्तु (जीवात्मा) का परिचायक है, जिसका यह अर्थ होता है कि भोक्ता रुद्रके भोग्यवस्तु सदा वामार्धमें रहती है। नन्दी आदि रुद्रगण मरीचि-समूहोंके परिचायक हैं। स्व-गणोंके साथ रुद्र नृत्य करते हैं—इसका अर्थ है कि स्व-रश्मियोंके साथ रुद्र नर्तन करते हैं। ब्राह्मी-माहेश्वरी आदि सप्त माताएँ काम, क्रोध आदि सप्त भावोंकी परिचायिका हैं। महादेवके मस्तकमें स्थित गङ्गा, जटाएँ एवं सोम—ये तीनों अमृतके परिचायक हैं। भस्म वीर्यका एवं नग्नता शास्त्राच्छादन-का संकेत है। उनका सच्चा आच्छादन दया, क्षमा, धृति आदि आत्मगुण हैं। महादेव, अन्य प्राकृत आच्छादनों (दुर्गुणों) से रहित है। प्रलयकालमें आवरणों (विश्वविवर्तों) के राहित्यका निदान भी नग्नता है। वस्त्र समुद्रोंके संकेत हैं। भुजाएँ देवताओंकी सूचक हैं। मौक्तिक आभूषण नक्षत्रोंके परिचायक हैं। केश पुष्करावर्तादि मेघोंके सूचक हैं। प्राणापानका सूचक घ्राणेन्द्रिय है। श्रुति और स्मृति रुद्रकी गतियाँ हैं। रुद्रका नील-लोहित वर्ण प्रकृति-पुरुषके समन्वयका द्योतक है। जटाएँ सप्तरसोंकी परिचायिका हैं। त्रिपुण्ड्र इच्छा, क्रिया और ज्ञानात्मक शक्तियोंका द्योतक है। अग्निरूप प्रजापतिके मूर्धासे उत्पन्न वायुमय एवं व्योमकेश शिवकी वायुमयी (विभिन्न प्राणमयी) जटाओंमें विद्यमान जलोंकी सूचिका गङ्गा है। जटास्थित गङ्गा (सप्त-रसों) द्वारा गङ्गाधर रुद्र क्षीण ओषधियोंका पुनः-पुनः प्रतिसंधान करते रहते हैं, जिससे ओषधियों, वनस्पतियों और तृणादिकों-के मूल नष्ट नहीं होते। यह प्रभाव रुद्र-जटास्थित गङ्गाजलका ही है। विश्वमें व्याप्त नादका निदान डमरू है। 'साधनमाला' के मतमें काल-रात्रिका निदान व्याघ्रचर्म है। काल-रात्रि प्रकाशरूप रुद्रको विविध रूपोंमें विवर्तित करती है, अतः वह चित्र-विचित्र है। ललाटमें स्थित चन्द्रमा सर्वौषधि-मूलोंके उद्भव सोमका परिचायक है। सोमात्मक आपोमय यह सोम नीरूप वायुमें वायुरूप होकर सब ओषधियों और वनस्पतियों-का पोषक है। इस वायुरूप दिक्सोमको वायुरूप शिव धारण करता है। गगनात्मक महादेव, अनेक ब्रह्माण्डरूप मुण्डमाला पहनता है। 'वायुपुराण' के अनुसार रुद्र-शरीरके आभूषण सर्प हैं, जो शारीरिक अष्ट-धातुओंके परिचायक हैं। 'अग्नि-पुराण' के मतमें रुद्रके भूषण सर्पोंको वात-पित्त-कफात्मक माना गया है। रुद्र-शिरःस्थित गङ्गाप्रवाह अमृत-सेवनका परिचायक है। रुद्रके शस्त्रास्त्र राग-द्वेष, मोह-ईर्ष्या, धर्म आदि शक्तियोंके परिचायक हैं। (साधनमाला)। 'स्कन्दपुराण' का कथन है कि चन्द्रमाकी सोलहवीं कला 'अमा' है, जो महादेवके सिरमें स्थित होकर प्रकृति (विश्व) को प्रकाशित करती है। शिरःस्थ चन्द्र कला शुद्धाशुद्ध-स्वरूपिणी है। रुद्रका त्रिशूल और परशु दुष्ट तत्त्वोंके नाशका संकेत है। आर्तोंकी सर्वविधि पीडाके नाशकी सूचिका उनकी अभय-मुद्रा है। उनका वरद-हस्त स्वस्थोंको अभ्युदयमें पहुँचानेका संकेत है। रुद्रके हाथमें विद्यमान मृगतन्त्रके अनुसार उनकी तीव्रगतिका एवं 'विष्णु-धर्मोत्तरपुराण' के अनुसार कर्मका परिचायक है। रुद्रकी वृषभध्वजताका रहस्य निम्नाङ्कित श्लोकमें बताया गया है—

धर्मो हि वीर्यं ध्रियते हि धर्मः धर्मो धृतो धारयते हि रूपम्।
यद् धर्मयोगादिह योऽस्ति धर्मी धर्मे हते हन्यत एव तस्मिन्॥

अर्थात् किसी भी देवताका ध्वज उसमें विद्यमान शक्ति-का संकेत है। जो धर्मी (पदार्थ) जिस धर्म (शक्ति) को धारण करता है, वह शक्ति उसकी ध्वजा है और वही शक्ति उस धर्मी पदार्थका वाहन (आधार) है। इसलिये ध्वज और वाहन दोनों एकरूप हैं। अहंकारात्मक रुद्रके वस्तुरूप होनेसे वह अहंकारात्मक रुद्र तत्-तत् धर्मोंको धारण करता है और वे धृत शक्तियाँ उसका वहन करती हैं; रुद्रकी वृषभध्वजताका यही मार्मिक अर्थ है। जैसे मेष (उष्णता) अग्निका ध्वज और वाहन दोनों है, वैसे ही कार्तिकेयका मयूर (चित्राग्नि) ध्वज और वाहन दोनों है। वेदने देवता और वाहनमें अधिक भेद न मानकर इनका परस्परमें वाहक-वाह्यभाव-सम्बन्ध माना है।

यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) इच्छा, ज्ञान, क्रिया—इन तीन शक्तियोंका सूचक है। इन शक्तियोंमें यज्ञात्मक अखिल विश्व सम्प्रोत है। इन तीनों शक्तियोंमें एक-एकके तीन-तीन भेद होनेसे ये नौ हो जाती हैं। अतः यज्ञसूत्र नवतन्तुमय है। विश्व-धारक ये नौ सूत्र ही तन्त्रोक्त नौ महाविद्याएँ हैं। इनका परस्पर सम्मेलन ही यज्ञ-सूत्रकी ग्रन्थि है। षोडशी उपनिषत् ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को ब्रह्मनाडीका निदान मानती है। जैसे—

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत्।
यज्ञसूत्रायते तस्मै यज्ञसूत्रं समर्पये॥

(नारदपञ्चरात्र)

बिल्वपत्र सर्वतत्त्वमय है। बिल्वपत्रके मूलमें जनार्दन, मध्यमें ब्रह्मा, अन्तमें रुद्र एवं तलमें सर्वदेव निवास करते हैं।

बिल्वपत्र सर्वांशमें ज्योतिर्मय है। बिल्वपत्रमें तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम), तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), तीनों तत्त्वों (प्रकृति, जीव एवं परमात्मा) का समभावसे उन्मेष है। बिल्ववृक्षमें सुवर्णकणोंका अधिक उद्रेक होनेसे वह श्रीवृक्ष है—**'वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः (ऋग्वेद)**। बिल्वपत्रका स्पर्श एवं गन्ध शोक, मोह, दारिद्र्य, अपमृत्यु एवं अलक्ष्मीका नाशक है। उससे रुद्रका समर्चन ज्योति, ज्ञान, लक्ष्मी, आरोग्य एवं आयुष्य आदिका वर्धक है और अन्धकार, अज्ञान, अलक्ष्मी, अनारोग्य एवं अनायुष्यका भेदक है—**'बिल्वं भरणाद् वा भेदनाद् वा' (निरुक्त)**।

रुद्राक्षके सम्बन्धमें शास्त्रोंका मत है कि रुद्र (सूर्य) की अक्षि (तेज) ही वनस्पतिरूपसे परिणत होकर रुद्राक्ष हो गया है। केवल सौर-शक्तिके विकसित होनेपर एकवक्त्र (एकशक्ति) रुद्राक्ष होता है, दो शक्तियोंके विकसित होनेपर द्विवक्त्र, तीन शक्तियोंके विकसित होनेसे त्रिवक्त्र आदि रुद्राक्षके अनेक भेद हैं। रुद्राक्ष-रूपसे परिणत ये विभिन्न शक्तियाँ मानवोंमें सम्भावित, वर्तमान एवं भविष्यत् तथा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्ध रोगोंकी निरोधिका हैं। इसलिये आर्य-शास्त्रोंमें इनके धारणका विधान है।

रुद्रका मुख्य कार्य घन पदार्थोंको तरल बनाना है। मूलाधार-कमल, हृदय-कमल, शिरःकमल—इन तीनों पुष्करों (कमलों) में रहनेके कारण रुद्रको त्रिपुष्करस्थ कहा गया है। इनमेंसे सहस्र-दल कमल (शिरोगुहा) ही अध्यात्ममें कैलास है, अधिदैवतमें द्यु-लोक ही कैलास है। तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी, मृत्यु—ये रुद्रकी दस कलाएँ हैं (परशुरामकल्पसूत्र)। अध्यात्ममें ब्रह्मा रजोभावमें, विष्णु सत्त्वभावमें, रुद्र क्रोध-भावमें स्थित हैं। अधिदैवतमें पृथिवीभागमें ब्रह्मा, जलभाग-में भगवान् विष्णु एवं तेजोभागमें रुद्र स्थित हैं। (ब्रह्मसंधान)

'लिङ्गपुराण' के मतसे पञ्चमुखका रहस्य इस प्रकार है। रुद्रका पहला ईशान-मुख (आकाशात्मक ऊर्ध्वमुख) भोग्य प्रकृति-वर्गके भोक्ता क्षेत्रज्ञरूप शक्तिका परिचायक है। यह ईशानात्मक क्षेत्रज्ञशक्ति (मुख) ही प्राणिमात्रमें श्रोत्रेन्द्रिय-रूप, वागेन्द्रिय-रूप, शब्दतन्मात्रा-रूप एवं आकाश-रूपसे परिणत हो गयी है। इनमेंसे शब्द-तन्मात्रा आकाशकी जननी है एवं आकाश, अणु, मध्यम तथा परम महत् परिमाणका जनक है। इन त्रिविध परिमाणोंके कारण वस्तुएँ (प्रमेय) छोटी-बड़ी और मध्यम आकारकी हैं। दूसरा तत्पुरुष नामक पश्चिम मुख परमात्म-गुहा प्रकृति-शक्तिका सूचक है। तत्पुरुष-शक्ति ही त्वगिन्द्रिय-रूप, पाणि (हस्त)-रूप, स्पर्श-तन्मात्रा-रूप एवं वायुरूपसे परिणत हुई है। विश्वमें व्याप्ति (फैलाना) इसका कार्य है। तीसरा अघोर नामक दक्षिण मुख बुद्धिशक्ति-का निदान है। बुद्धिके ही धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, विराग, राग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य (अस्मिता)—ये आठ अवतार हैं। प्राणिमात्रके शरीरमें चक्षु-रूप, पादेन्द्रिय-रूप, शब्द-तन्मात्रा-रूप एवं अग्नि-रूपसे एक ही अघोरशक्ति परिणत हो गयी है। यही विश्वका प्रकाश है। चौथा वामदेव नामक उत्तर मुख सर्वत्र व्याप्त महादेवकी सुन्दर मूर्ति अहंकार-शक्तिका द्योतक है। यही वामदेव-शक्ति रसनेन्द्रियरूप, पायु-इन्द्रियरूप, रस-तन्मात्रा एवं जरा—इन रूपोंमें परिणत हो गयी है। यह जलात्मक-रूप विश्वका संजीवन है। वामदेवका अर्थ सुन्दर देव होता है, विश्वमें जल ही सुन्दर है। पाँचवाँ सद्योजात नामक पूर्व-मुख सब शरीरमें विद्यमान मनःशक्तिका सूचक है। यही सद्योजात तत्त्व सब शरीरोंमें घ्राणेन्द्रिय-रूप, उपस्थे-न्द्रिय-रूप, गन्ध-तन्मात्रारूप और पृथिवी-रूपसे परिणत हुआ है। यह पार्थिवी-शक्ति विश्वकी आधार है। इस प्रकार रुद्रकी पञ्चमुखात्मक पाँच शक्तियाँ २५ तत्त्वोंमें परिणत होकर विस्तृत विश्वाकारको धारण कर रही हैं।

'तन्त्रलोक'में श्रीअभिनवगुप्तने चित्, स्पन्द, ज्ञान, इच्छा एवं कृति (प्रयत्न)—ये पाँच कलाएँ रुद्रके प्रतिमुखसे सम्बन्धित मानी हैं। अतः रुद्र इस प्रकार २५ तत्त्वोंमें परिणत होकर विश्वाकार बना हुआ है। श्रीमधुसूदनजीका कथन है कि वह पञ्चमुख विभु रुद्र प्रतिमुख एकादश भेद-भिन्न है। इसलिये ५५ भेदोंसे भिन्न होकर विश्व-रूप धारण कर रहा है। जब इन ५५ प्राणोंका परस्परमें यज्ञ (समवा-यात्मक) सम्बन्ध होता है, तब वे शक्तियाँ प्रमेयरूपमें परिणत होकर विश्वरूप धारण कर लेती हैं। अतः वस्तुमात्र उस रुद्र-का लिङ्ग (अनुमापक) है।

शिव और रुद्र

देवता-तत्त्व अग्नि और सोम—इन दो भागोंमें विभक्त है। इनमें अग्नितत्त्व अग्नि, वायु और सूर्यरूपमें परिणत होता है। सोम वायु और आप-रूपसे विवर्तित होता है। इनमें आग्नेय वायु रुद्र है और सौम्य वायु शिव है, जैसा कि—**'या ते रुद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी'** (कपिष्ठल-

संहिता) इस वैदिक मन्त्रमें कहा गया है। रोषात्मक प्रलयंकर रुद्र-तत्त्व ही जब जल (सोम) से युक्त होता है, तब वह शिव अथवा साम्ब सदाशिव कहलाता है । एक ही तत्त्व अवस्था-भेदसे रुद्र और शिव-रूपमें विवर्तित होता रहता है। यह तो अवस्था-भेदसे रुद्र और शिवकी परिभाषा हुई; किंतु यत्कालावच्छेदेन वह तत्त्व रुद्र है, तत्कालावच्छेदेन वह शिव भी है । रुद्र विश्वके नाशक, 'नाष्ट्रारक्षांसि' (नाशक शक्तियों) का नाशक है । इसलिये सब वस्तुओंकी रक्षा करनेके कारण वह शिव भी है। यदि रोषरूपी रुद्र ओषधियों, वनस्पतियों, पशुओं, पक्षियों, प्रस्तर तथा मनुष्योंमें मात्रा-रूपसे न रहे तो 'नाष्ट्रारक्षांसि' इनको कभी नष्ट कर डालें। इनकी रक्षाके लिये वह स्थिरधन्वा, क्षिप्रेषु और तिग्मायुध होकर भेषज-रूप हो रहा है—'रुद्रः किलास भेषजम्' (ऋग्-वेद) । भेषजरूपता ही शिवकी शिवता है।

रुद्रके व्यूह

देवता-तत्त्वसे अभिन्न होनेके कारण रुद्र-तत्त्व भी ६ व्यूहों (प्रकारों) में विभक्त है—१ प्राकृत पदार्थ-रूप, २ प्राण-रूप, ३ अभिमानि-रूप, ४ सौम्य-प्राणि-रूप, ५ नाक्षत्रिक-प्राण-रूप, ६ औपासनिक-रूप। इनमें अर्क, धत्तूर, विष आदि उग्र प्राकृत पदार्थोंका उत्पादक प्राकृत-शक्ति-रूप पहला रुद्र है। काम, क्रोध, मोह, दम्भ आदि प्राणात्मक रुद्र दूसरा है। अर्क, धत्तूर एवं काम, क्रोध आदिका अभिमानी तीसरा व्यूह है। ज्योत्स्नावासी सौम्य-प्राणि-विशेष चौथा प्रकार है। मूल, ज्येष्ठा आदि नक्षत्र-सम्बन्धी प्राण पाँचवाँ व्यूह है। 'प्रकृतिवत् विकृतिः कर्तव्या'—इस न्यायसे प्रकृतिमें व्याप्त रुद्रका अपने संकल्प-भेद-विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त संकल्पज प्रतिमामें आना पाँचवाँ अर्थ है । वेदोंमें इन सब अर्थोंके लिये रुद्र-शब्दका प्रयोग हुआ है। प्रकृति-शक्ति-रूप (तत्त्वात्मक) रुद्र, प्राण-रूप रुद्र, अभिमानि-रूप रुद्र सर्वव्यापक एवं अप्राणिविध हैं। इनको लक्ष्यमें रखकर श्रीअभिनवगुप्त-का कथन है—

> **न खल्वेष शिवः शान्तो नाम कश्चिद् विभेदवान् ।**
> **सर्वेतराध्वव्यावृत्तो घटतुल्योऽस्ति कुत्रचित् ॥**
> **महाप्रकाशरूपा हि येयं संविद् विजृम्भते ।**
> **स शिवः शिवतैवास्य वैश्वरूप्यावभासिता ॥**
>
> (तन्त्रालोक)

अर्थात् जगत्से भिन्न घटवत् एक देशमें स्थित कहीं भी शान्त शिव नहीं रहते । यही प्रकाश-रूप संवित् जो सब जगह सब रूपोंसे उछल रही है, वही शिव है। विश्व-रूप-से भासना ही उसकी शिवता है।

एकादश रुद्र

'प्राणा वाव रुद्रः' इस वैदिक प्रमाणके अनुसार अध्यात्ममें मुख्य प्राणात्मक एवं अधिदैवतमें सूर्यात्मक एक रुद्र है । प्राण, अपान आदि भेद-भिन्न अनेक प्राण एवं सूर्यकी अनेक रश्मियाँ अनेक रुद्र हैं । रुद्रोंका कार्य भी कठिन द्रव्योंको तरल बनाकर पदार्थोंकी रक्षा करना है । रुद्रगण नील-लोहित हैं; फिर भी शोचिष्-केश होनेसे शुक्लवर्ण हैं । रुद्र-वायु चतुष्कर्मा होनेसे चतुर्भुज है । रुद्रोंके वर्ण रक्त, पीत, हरित आदि हैं। पदार्थोंमें विद्यमान संचरण ही रुद्रोंका कार्य है । रुद्रोंका आयुध त्रिशूल है । रुद्रगणोंके लिये 'ज्वलन्तः वर्षन्तः द्योतमानाः' आदि अनेक विशेषण मिलते हैं, जो रुद्रोंके कार्योंके निर्देशक हैं । पृथ्वीमें विद्यमान 'अङ्गिराग्नि' रुद्र है। अङ्गिराग्निके पुत्र रुद्रगण हैं। रुद्र-गणों-के पुत्र मरुद्गण हैं । रजोगुण (रक्तवर्ण) एवं तमोगुण (कृष्णवर्ण)—इन दोनोंका समन्वित वर्ण नील-लोहित होनेसे ये नील-लोहित कहलाते हैं। वेदने रुद्र-गणोंका वर्ण धूम्र भी माना है, जो उच्चाटन तथा मारणका सूचक है । रुद्रगण संख्यामें ११ हैं।* सामवेदीय 'जैमिनीय ब्राह्मण' का कथन है कि 'त्रिष्टुप्' छन्दके अक्षर ४४ हैं । 'त्रिष्टुप्' छन्दके साथ सम्बन्ध होनेसे रुद्रोंकी संख्या भी ४४ है। 'काठक-संहिता' रुद्रोंकी संख्या १० मानती है । प्रतिवस्तुकी रक्षाके लिये १०-१० रुद्र प्रतिदिशाओंमें रहते हैं। जैसा कि **'तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशो-र्ध्वाः'**—इस कपिष्ठल-संहितोक्त वाक्यसे रुद्रोंकी संख्या १०० हो जाती है। इनका वर्णन करनेके कारण ग्रन्थका नाम भी 'शतरुद्री' हो गया है। जिस दिशाके रुद्र निर्बल पड़ जाते हैं, उसी स्थलसे वस्तुएँ सड़ने लगती हैं । 'स्कन्दपुराण' का आवेदन है कि रुद्र बोधनात्मक (ज्ञान-रूप) हैं, जिनके

> * ये चैकादश रुद्रा वै तव प्रोक्ता मया प्रिये ।
> दश ते वायवः प्रोक्ता आत्मा चैकादश स्मृतः ॥
> तेषां नामानि वक्ष्यामि वायूनां शृणु मे क्रमात् ।
> प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च ॥
> नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।
>
> (स्कन्दपुराण)

अविकाशमें वस्तु जड कही जाती है। स्पन्द ही जड-चेतनका विभाजक है। रुद्र स्पन्दात्मक है।

पार्वती

'इच्छाशक्तिरूपकुमारी' इस 'पाशुपतसूत्र' के प्रमाणसे महादेव रुद्रकी इच्छाशक्ति ही पार्वती है। इच्छाको ही प्रकृति कहा गया है। स्कन्दपुराणीय **'शिवस्य गृहमेधिनो गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादयः'** इस वाक्यके अनुसार प्रकृति महादेवकी पत्नी मानी गयी है। 'साधनमाला'के अनुसार स्वाभा (अपनी कान्ति) ही अङ्गना है। निरुक्तकारने भी **'आत्मैव सर्वं देवस्य देवस्य'** यह कहकर इस उपर्युक्त भावका अनुमोदन किया है। चन्द्रमाकी एक कलाको 'स्कन्दपुराण'ने 'अमा' कहा है, वही दक्षपुत्री 'सती' मानी गयी है। जिस व्यक्तिमें उपर्युक्त 'अमा' नामक कलाका विकास अधिक हो, उसका ज्ञानमय शिवके साथ प्रेमल सम्बन्ध रहता है और वह आस्तिक होता है। जिस व्यक्तिमें उक्त कलाके विकासकी न्यूनता है, वह केवल शुष्क कर्ममें निरत रहता है एवं ज्ञानात्मक शिवसे द्वेष रखता है; ऐसे व्यक्तिमें पशु-भावकी वृद्धि अधिक होती है और वह नास्तिक होता है। दक्षमें मानवोचित दिव्य-भाव नहीं है। इसका सूचक उसका मानव-मुखच्छेदन एवं पशु-भावका द्योतक अजमुखका प्रतिष्ठापन है। वस्तुतः पार्वती ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया—इन तीन शक्तियोंके सम्मिलित-रूप शिवमें विद्यमान अहंता-शक्ति है। यह अहंता जब स्पन्दित होती है, तब पार्वती कहलाती है; क्योंकि उसमें ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि पर्व आनेसे वह पर्ववती (पार्वती) हो जाती है। यही क्रियाशक्ति है। जबतक यह इच्छा शक्तिरूपमें है, तबतक सती कहलाती है और क्रियाशक्तिरूपमें परिणत होते ही पार्वती बन जाती है।

सेनापति स्कन्द

'वराहपुराण'में अहंकारको स्कन्द कहा गया है। उसका कथन है—

पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नामतः स्मृतः।
अव्यक्तं तु उमादेवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा॥
तत्संयोगादहंकारः स च सेनापतिर्गुहः।

'लिङ्गपुराण'का कथन है कि प्रकृति-पुरुषके संयोगसे स्कन्न वीर्य ही 'स्कन्द' है। यह महत्तत्त्व अथवा अहंकार है। 'वैदिक ब्राह्मण' ग्रन्थमें पृथिवी-पिण्डस्थित अग्नि प्रजापति नामसे अभिहित किया गया है। उसके ८ अवतार हैं। संवत्सराग्नि, वैश्वानराग्नि, कुमाराग्नि, चित्राग्नि एवं पाशुकाग्नि—इनमेंसे कुमाराग्नि ही स्कन्द है। वह कुमाराग्निरूपी स्कन्द चित्राग्नि (मयूर) रूप वाहनपर स्थित है। कालाग्नि रुद्र (नाभिस्थ वह्नि) एवं ऊर्ध्वमस्तकस्थ शान्तिपूर्णामृतरस-रूपा पार्वती—इन दोनोंका द्रवित तेज एवं शशाङ्कका स्फुटमिश्रण ही 'कार्तिकेय' है। यह अन्तःकरणरूप है। कार्तिकेयके हाथमें विद्यमान शक्ति आग्नेय सामर्थ्य (ज्ञान) है। ज्ञान ही देवताओंका सेनापति है। द्यावापृथिवीके सम्पर्कसे स्कन्न वीर्य ही 'स्कन्द' है, वह संवत्सराग्नि-रूप है। संवत्सरकी छः ऋतुएँ उसके छः मुख हैं और बारह मास ही बारह भुजाएँ हैं। 'अहंकार स्कन्द है' इस पक्षमें मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उस स्कन्दके छः मुख हैं। तन्त्र-शास्त्रका कथन है—

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपशक्तिधरं भजे।
शिवशक्तिज्ञानयोगं ज्ञानशक्तिस्वरूपकम्॥

इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाका समवेत रूप ही स्कन्दके हाथमें रहनेवाली शक्ति है और वह स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके ज्ञानात्मक संयोगसे उत्पन्न अपूर्व सामर्थ्य ही शक्ति है।

गणेश

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' का कथन है कि कल्याण एवं हर्षरूपात्मक गणेश है। **'गणास्या विघ्ननाशिनी'** इस तान्त्रिक सिद्धान्तसे किसी भी देवताकी गजमुखता विघ्ननाशिनी शक्तिकी सूचिका है। 'वराहपुराण'में आकाशको 'गणपति' कहा गया है। आर्यशक्तिका सूचक गजमुख है। 'भावनोपनिषद्'का कथन है कि 'सुमति' और 'कुमति'—ये दो शक्तियाँ उनके दन्त हैं; उनमेंसे 'सुमति' नामक एक ही दन्तको गणेशजीने सुरक्षित रक्खा है। 'कुमति' नामक अशुभ दन्तको उखाड़कर अपने हाथमें ले रक्खा है। नैदानोंकी परिभाषामें इसका यह अर्थ होता है—'कुमतिको इन्होंने दबा रखा है।' पृथिवीमें विद्यमान 'मूषक' नामक अग्नि उनका वाहन है। मूलाधार-शक्ति ही गणेश है, ऐसा तान्त्रिक मानते हैं। आकाश सर्वाधार है, अतः आकाश अथवा शब्द-तन्मात्रा गणेश सिद्ध हो जाती है। आकाशकी उत्पत्ति अहंकार (स्कन्द) के अनन्तर शिव-शक्तिसे हुई है, अतः वह पार्वती एवं शिवका पुत्र है। देश, आयतन एवं काल सब कार्योंके सामान्य कारण हैं; अतः आधार-पूजा प्रथम आवश्यक है। 'वैखानसागम'के मतमें काम, क्रोध, शोक, मोह, भय आदि गण आकाशके ही परिणाम

हैं, इसलिये आकाश गणाधिपति है । गणेशकी महोदरता उसकी सर्वाधारताकी सूचिका है। हस्तिमुखका क्रमशः क्षीण शुण्डादण्ड क्रमशः शब्दतन्मात्रासे लेकर गन्धतन्मात्रातक अर्थ-शक्तिके विभिन्न परिणामोंका परिचय है। इससे यह भी सूचित होता है कि शब्द-तन्मात्राकी अपेक्षा स्पर्शतन्मात्रा अल्प (व्याप्य) है। शब्द-तन्मात्रासे लेकर गन्ध-तन्मात्रातक सब तन्मात्राएँ गणेशरूप हैं; क्योंकि ये भूतोंकी आधार हैं। आज भी महाराष्ट्रमें वृक्षादिकी मुख्य जड़को गणेश-मूल कहते हैं।

शिवलिङ्ग

'लयनाल्लिङ्गमित्याहुः'—इस लिङ्गपुराणीय वाक्यके आधारसे कार्य-समूह जहाँ लयको प्राप्त होता है, वह तत्त्व लिङ्ग-पदवाच्य है । कार्योंका लय अक्षर-तत्त्वमें होता है, अतः क्षर-तत्त्वसे वेष्टित अक्षर-तत्त्व ही लिङ्ग है । वह तत्त्व तत्त्वचिन्तक कपिलकी परिभाषामें अव्यक्त अथवा महत्तत्त्व है और वह क्षरात्मक अहंकारसे वेष्टित है । तत्त्वोंकी इसी अवस्थाको ब्रह्म कहा गया है—

प्रकृतिश्च पुमांश्चैव परं ब्रह्म प्रकीर्तितम्।
पुमान् बिन्दुस्तद्वदने नादरूपा जगन्मयी ॥
बिन्दुर्लिङ्गं शिवः पुंसः योनिर्नादस्वरूपिणी।

—हठसंकेतचंद्रिका

अर्थात् प्रकृति-तत्त्व और पुमान्-तत्त्व—इन दोनोंकी यामल (सम्मिलित) अवस्था ही परब्रह्म-शब्दसे अभिहित की जाती है। इनमेंसे निदान-शास्त्रानुसार पुमान्-तत्त्वका सूचक बिन्दु है। बिन्दुतत्त्वको परिच्छिन्न (वेष्टित) करनेवाली प्रकृति है। इसी अर्थको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि पुमान्-तत्त्वका लिङ्ग (चिह्न) बिन्दु है और नादतत्त्वका लिङ्ग (चिह्न) योनि है। अतः क्षरात्मक योनि-रूप नादसे आलिङ्गित अक्षर-तत्त्व ही शिवशक्तिकी अव्यक्तावस्थाका लिङ्ग (अनुमापक) है। (पुराणोत्पत्ति-प्रसङ्ग) निदान-भाषामें बिन्दुका निदान (संकेत) लिङ्ग है। नादका निदान (संकेत) योनि है । प्रकृति ही पीठ है, जीव लिङ्ग है। **'प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिङ्गमुच्यते'** अथवा प्राण लिङ्ग है, अग्नि पीठ है। प्राण अथवा जीव दोनों ही दीपाकार हैं और प्रकृति एवं अग्निमें स्थित हैं। सूर्य ही ज्योतिर्लिङ्ग है। शिवलिङ्गका रहस्य एवं स्वरूप बताते हुए 'स्कन्दपुराण' ने यह कहा है—

अनादिमच्युतं दिव्यं प्रमाणातीतगोचरम्।
अधश्चोर्ध्वगतं दिव्यं जीवाख्यं देहसंस्थितम् ॥
हृदयादि द्वादशान्तस्थं प्राणापानोदयास्तगम्।
अग्राह्यमिन्द्रियात्मानं निष्कलं कालगं विभुम् ॥
स्वरादिव्यञ्जनातीतं वर्णादिपरिवर्जितम्।
वाचामवाच्यविषयमहंकारार्धरूपिणम् ॥
हृत्पद्मकोशमध्यस्थं शून्यरूपं निरञ्जनम्।
एनं सदाशिवं विद्धि प्रभासे (शरीरे) लिङ्गरूपिणम् ॥

इसका फलितार्थ यह है कि जो अनादि, अच्युत, दिव्य, प्रमाणातीत, सर्वत्रग, हृदयसे लेकर द्वादशान्तमें स्थित है, प्राण-अपानके उदयास्तमें है, इन्द्रियाग्राह्य, अवयवोंसे रहित, जो प्राणोंमें स्थित है, व्यापक है, स्वर और व्यञ्जन—इन दोनोंसे रहित, वर्णोंसे रहित, स्थूलादि अवस्थाओंसे रहित, वाणीका अविषय, जिसका आधा शरीर अहंकार है, वह सदाशिव, जीवरूपसे हृदय-कमलमें निवास करता है। वही प्रभासक्षेत्रमें लिङ्ग-रूपसे विराजमान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रकृति-रूप मेखलासे वेष्टित परमात्मा ही लिङ्ग (जीवरूप अथवा प्राणरूप) से विवर्तित हो रहा है। खेद है कि विषय-कीट पामरोंको वेदसिद्ध निदान-विद्याद्वारा निर्दिष्ट नाद-बिन्दुके यामलरूपके प्रतिमात्मक चिह्नमें प्राकृत लिङ्ग-योनिका भ्रान्तिमूलक आभास होता है ! इसे उनके घोर अज्ञान, मानसिक विकार अथवा स्त्रैण-स्वभावके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

अष्टमूर्ति शिव

तस्मिन् ध्रुवे निस्तरङ्गे समापत्तिमुपागतः।
संविदः सृष्टि-धर्मित्वादाद्यामेति तरङ्गिताम् ॥
सैव मूर्तिरिति ख्याता....................

(तन्त्रालोक)

उपर्युक्त श्लोकसे उपलब्ध होनेवाले अर्थके अनुसार मूर्तिकी परिभाषा यह है कि ध्रुव, निस्तरङ्ग ज्ञानमें तरङ्गोंकी परम्परा मूर्ति है। इसका तात्पर्य यह है कि तत्त्वका सूक्ष्म अवस्थासे स्थूल अवस्थामें आ जाना ही मूर्ति है। यह इसकी मूर्ति है, ऐसा कहनेसे यह उसकी स्थूलावस्था है—यह बोध होता है। किसी भी तत्त्वको सदा-सर्वदा अव्यक्त (निराकार) और निर्गुण अवस्थामें मानना अज्ञान है। एक ही तत्त्व व्यक्त और अव्यक्त दोनों अवस्थाओंको धारण करता रहता है। सूक्ष्म रुद्रतत्त्वका आठ प्रकारकी स्थूलावस्थाओंमें परिणत हो जाना ही उसकी आठ मूर्तियाँ हैं, जिनके अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवतमें भिन्न-भिन्न कार्य हैं। रुद्रकी [illegible] आठ मूर्तियोंके

नाम, स्थान तथा कार्योंका निर्देश 'ब्रह्माण्डपुराण' में इस प्रकार किया गया है—१ रुद्र, २ भव, ३ शर्व, ४ ईशान, ५ पशुपति, ६ भीम, ७ उग्र, ८ महादेव—इनमेंसे प्रथम 'रुद्र' नामक मूर्ति सूर्यमें प्रकाशरूपसे रहती है। इसी कारण उदय और अस्त होते हुए सूर्यका देखना निषिद्ध माना गया है*। क्योंकि उस समयकी रक्तता सूर्यकी रुद्रताका द्योतक है। द्वितीय 'भव' नामक मूर्ति रस-रूपसे जलमें रहती है। जल अथवा जलस्थ रुद्रको 'भव' इसलिये कहते हैं कि उससे प्राणी उत्पन्न होते हैं और स्थिर रहते हैं। जलमें रुद्र-शक्तिके निवासके कारण ही उसमें मल-मूत्र त्याग करना निषिद्ध माना गया है। जलमें थूकने, नग्न स्नान करने और मैथुनके निषेधका भी यही कारण है। जलमें मल-मूत्रादिके त्याग करनेसे जलस्थ रुद्रकी उग्रशक्तिके आघातसे इन्द्रियोंकी शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगती है। तृतीय 'शर्व' नामक मूर्ति भूमिमें काठिन्य (अस्थि) रूपसे निवास करती है। भूमिगत रौद्री शक्तिके कारण ही कृष्ट (खेती की हुई) जमीन, मार्ग, स्वच्छाया तथा वृक्षतलमें मल-मूत्रका त्याग निषिद्ध माना गया है; क्योंकि इन स्थलोंमें भूमिस्थ रुद्रकी रुद्रता विशेषरूपसे रहती है, जिसके सम्बन्धसे इन्द्रिय-निर्बलता आना निश्चित है। चतुर्थ 'ईशान' नामक मूर्ति वायुमें प्राणापान आदि पञ्च-प्राणरूपसे रहती है, इसलिये प्रवान्त वायुकी निन्दा निषिद्ध है; क्योंकि वायुका वहन विश्वहितार्थ है। पाँचवीं 'पशुपति' मूर्ति उष्णतारूपसे अग्निमें रहती है। अग्नि स्वयं पशु (प्रमेय) एवं पशुओं (दृश्यवस्तुओं) का रक्षक भी है, इसलिये वह अग्न्यात्मक रुद्र पशुपति कहलाता है। रुद्रके अग्निगत निवासके कारण ही अग्निमें अमेध्य (मलादि) का जलाना, पाँव तपाना, अग्निका उल्लङ्घन करना एवं उसे अपने नीचे रखना निषिद्ध माना गया है। यहाँ प्रसङ्गवशात् यह जान लेना भी अयुक्त न होगा कि अग्न्युपासक पारसियोंने शवको दग्ध न कर गृध्रादि पक्षियोंके लिये छोड़नेकी जो प्रथा प्रचलित की है, उसके मूलमें अग्निको पवित्र रखनेका भाव ही निहित है। पर शव तो सोम हो जाता है, अतः आर्योंने उसके अग्निमें होमनेको निषिद्ध नहीं माना। अग्निमें अमेध्य वस्तुको जलानेसे उसके परमाणु वायु-मण्डलको दूषित करते हैं। अग्निमें पाँव तपानेसे चक्षु-शिराएँ उग्र होकर चक्षु-शक्तिको मन्द करती हैं। छठी 'भीम' नामक मूर्ति आकाशमें सुषिर (छिद्र) रूपसे रहती है। उसका सम्बन्ध हमारे शरीरस्थ छिद्रोंसे है, इसलिये असंवृत तथा खुले सिर मलत्याग करना निषिद्ध है। भोजन, जलपान, शयन एवं उच्छिष्ट पदार्थोंको मुक्ताकाशके नीचे न सेवन करनेके शास्त्रीय आदेशके मूलमें भी यही भावना है कि ऐसा करनेवालेकी शक्तियोंको भीमात्मक रुद्र कमजोर कर देता है। सातवीं 'उग्र' नामक मूर्ति सोमयागमें दीक्षित ब्राह्मणमें चैतन्यरूपसे रहती है, अतः दीक्षित ब्राह्मणकी निन्दा एवं उसके अपकर्मोंका कीर्तन निषिद्ध है। ऐसा करनेसे उसके सब पाप अपनेमें संक्रान्त हो जाते हैं; क्योंकि उस समय दीक्षित यजमान उग्र रहता है। आठवीं 'महादेव' नामक मूर्ति संकल्परूपसे चन्द्रमामें रहती है। सोमकी आत्मा (शरीर) ओषधियाँ हैं। अमावस्याके दिन चन्द्रमा ओषधियों और प्राणियोंमें पूर्णरूपेण प्रवेश करता है, अतः उस दिन किसी भी प्राणीकी हिंसा और वृक्षका छेदन करना निषिद्ध है। अमावस्याके दिन निषिद्ध दो बातोंको आचरणमें लेनेसे रुद्रकी अवज्ञाके दोषसे दूषित होकर शुभ संकल्पोंके नष्ट होनेका भय बना रहेगा। अमावस्याको दिन और रात्रिके रक्षक सूर्य-चन्द्रके दोनों प्रकाश एक होकर रहते हैं, इसलिये उस दिन संयम (ब्रह्मचर्य) से रहना चाहिये।

अध्यात्ममें रुद्रकी अष्ट-मूर्तियोंके कार्य नीचे लिखे प्रकारसे बताये गये हैं—पहली 'रुद्र' नामक मूर्ति आँखोंमें प्रकाशरूप है, जिससे प्रजा देखती है। दूसरी 'भव' नामक मूर्ति भुक्त-पीत अन्न-पान आदिसे देहका उपचय (वृद्धि) करती है। इसे 'स्वधा' कहा जाता है। तीसरी 'शर्व' नामक मूर्ति अध्यात्ममें स्थित (तेज) अस्थिरूपसे सब वस्तुओंके धारणकी आधारभूता है। यह आधारशक्ति ही 'गणेश' कहलाती है। चौथी 'ईशान' शक्ति प्राणापान-वृत्तिरूपसे प्राणियोंके शरीरमें स्थित है और वही प्राणियोंकी जीवनी शक्ति है। पाँचवीं 'पशुपति' मूर्ति उदरमें रहकर अशित-पीतको पचाती है, जिसे पाचकाग्नि कहा जाता है। इसीका अपर नाम 'स्वाहा' है। छठी 'भीमा' मूर्ति देहमें छिद्रोंकी कारण है। वेदमें उसे 'दुरोदेवता' भी कहा गया है। सातवीं 'उग्रा' नामक मूर्ति जीवात्माओंके वितान भाव (ऐश्वर्य) में रहती है। आठवीं 'महादेव' मूर्ति, संकल्परूपसे प्राणिमात्रके मनमें रहती है। इस संकल्परूप चन्द्रमाके लिये ही **'नवो नवो भवति जायमानः'** यह कहा गया है, जिसका **अर्थ** है कि संकल्पोंके सदैव ही नवीन-नवीन रूप बनते **रहते हैं।**

---

* उद्यन्तमस्तं यन्तं च वर्जयेद् दर्शने रविम्।
शश्वच्च जायते यस्मात् शश्वत् संतिष्ठते तु यत्॥
तस्मात् सूर्यं न वीक्षेत आयुष्कामः शुचिः सदा।
(ब्रह्माण्डपुराण)

अभिनवगुप्तके मतमें रुद्रकी अष्ट मूर्तियाँ निम्नलिखित प्रकारोंसे हैं—आठ नाग, आठ दिग्गज, आठ ग्रह, आठ भैरव और आठ गणपति। 'लिङ्गपुराण' के मतमें अव्यक्त (पुरुष) एवं प्रधान (प्रकृति) अथवा महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्च तन्मात्राएँ—ये महादेवकी आठ मूर्तियाँ हैं। मतान्तरसे १ स्वयम्, २ आत्मा, ३ इन्द्र, ४ सूर्य, ५ वायु, ६ अग्नि, ७ जल, ८ पृथिवी—इस प्रकार भी रुद्रकी अष्ट-मूर्तियाँ कही गयी हैं।

रुद्रका हरि-हरात्मक रूप

जिस प्रकार रुद्रका अर्धनारीश्वर रूप प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उसका हरि-हर रूप भी पुराणोंमें वर्णित है। इसके अर्ध (वाम) भागमें हरि और अवशिष्ट अर्ध (दक्षिण) भागमें हर हैं। दोनों मिलकर एक रूपसे प्रकट हो रहे हैं। 'वायुपुराण'का आवेदन है—

प्रकाशं चाप्रकाशं च जङ्गमं स्थावरं तथा।
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम्॥

अर्थात् यह विश्व हरि-हरात्मक है। इसलिये प्रतीकोपासना (अङ्गोपासना) के सिद्धान्तसे एकका उपासक ज्ञात-अज्ञात अवस्थामें दोनोंका उपासक है। वैदिक शब्दोंमें यह विश्व हरि-हरात्मक है—इसका अर्थ यह होता है कि विश्व अग्नीषोमा-त्मक है। **'सोमो वै विष्णुः'** इस वैदिक वाक्यके अनुसार सोमतत्त्व नारायणात्मक एवं **'अग्निर्वै रुद्रः'** इस वेदवाणीके अनुसार अग्नितत्त्व रुद्रात्मक है। दोनोंका मिला हुआ रूप ही यह विश्व है—**'अग्नीषोमात्मकं जगत्'** (महाभारत)

कामदहन

कंदर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः॥

(वायुपुराण)

अर्थात् हर्षपुत्र (कंदर्प) सबको गर्वयुक्त बना देता है। ज्ञानरूपी शंकरने उसे जला दिया। वह स्थूलरूपसे जल जानेपर भी सूक्ष्म वासनारूपसे प्राणिमात्रके हृदयमें रहता है। अतः निष्काम (हर्ष-शोकरहित) हो जाना ही काम-दहन है। ब्रह्माके शिरश्छेदका अभिप्राय यह है कि मानसाग्नि ब्रह्माका पाँचवाँ सिर है, वह सत्त्वरूप है; उसका रजःसम्पृक्त तमोगुणसे मूर्च्छित हो जाना ही शिरश्छेद है—**'मुमोह रजसा सत्त्वम्'** (स्कन्दपुराण)।

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

'वराहपुराण'के अनुसार बोधात्मक रुद्रद्वारा यज्ञ (प्राणरूप-दक्ष) के मुष्क (प्रजनन-शक्ति) का नाश कर दिया जाना ही दक्ष-यज्ञ-विध्वंस है। वस्तुमें विद्यमान प्रजनन-शक्ति ही दक्ष है। ज्ञानात्मक शिवकी पत्नी सती (बुद्धि) है। बुद्धि प्राणात्मक दक्षकी अन्यतम शक्ति है, अतः वह दाक्षायणी कहलाती है। ज्ञान-रुद्र एवं बुद्धि (सती) के तिरस्कर्ता प्राण (दक्ष) का यज्ञ (कार्य) विश्वके लिये अभ्युदयात्मक न होकर नाशक होता है। यह वायुपुराणोक्त अर्थ अध्यात्मपक्षका है। अन्य पुराणोंमें आधिदैवत तथा आधिभौतिक पक्षमें इसके तात्पर्यान्तर भी हैं; क्योंकि पुराणोंके उपाख्यान अनेक अभिप्रायोंको लिये हुए होते हैं।

मोहिनीपर मोह

अग्निर्वै वरुणानीरभ्यकामयत्, तस्य तेजः परापतत्, तद्धिरण्यमभवत्। अग्निं वरुणानीरभ्यकामयन्त। ताः समभवन्। यदग्ने रेतोऽसिच्यत, तद्धरितमभवत्, यदपां तद्रजतम्, आपो वै वरुणानीः' (कपिष्ठल-संहिता)। इन वैदिक वाक्योंका तात्पर्य यह है कि अग्नि (रुद्र) ने जल (सोम) की कामना की और वह उसके साथ मिल गया; मिलनेपर जलसे प्रतिमूर्च्छित अग्नि (रुद्र) देवता (तत्त्व) धातु-उपधातु-रूपमें परिणत हो गये। रुद्र (अग्नि) तत्त्वकी प्रधानता और वरुणानी (मोहिनीरूप) जलकी न्यूनतामें सुवर्ण बन जाता है। रुद्र-तत्त्वकी और वरुणानी-तत्त्वकी अधिकतामें रजत बन जाता है। लोहमें रुद्र-तत्त्वकी अल्पतरता और वरुणानी-तत्त्वकी अत्यधिकता है। सोमसे अग्नि (रुद्र) का मूर्च्छित (मुग्ध) हो जाना ही रुद्रका मोहिनीपर आसक्त होकर पीछे दौड़ना है। मोहिनी नाम सुन्दर वस्तुका है। वेदमें स्त्री-रूप जलको सुन्दर कहा है। इस प्रकार वेदोक्त नैसर्गिक धातु-निर्माण-प्रक्रियाका वर्णन श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें मोहिनीकथाके रूपकसे किया गया है।

आधुनिकोंका अज्ञान

वेदों, तन्त्रों और पुराणोंमें ऋषियोंके अभिप्रेत रुद्रतत्त्वके सम्बन्धमें प्रमाणोंके आधारसे यह चर्चा की गयी है। इस चर्चासे रुद्र देवताके विषयमें आधुनिकोंकी कल्पनाएँ कितनी भ्रान्ति-मूलक हैं, यह विदित हो जाता है। उन्होंने अपनी भ्रान्तिमूलक

कल्पनाओंके आधारसे यहाँतक कह डाला है कि 'रुद्र, गणेश आदि देवता अवैदिक होनेसे अनार्य-देवता हैं। आर्योंने अनार्योंसे जब संधि की, तब उनके देवताओंको अपने देवताओंमें मिलाकर उन्हें मान्य कर लिया।' उन्होंने अपने अज्ञानमूलक भ्रमके कारण आर्योंके इतिहास, तत्त्ववाद, सामाजिक व्यवस्था, देश (वासस्थान), काल (उद्गम-समय) आदि-आदि सब विषयोंमें विपर्यास उत्पन्न कर दिया, जिसके फलस्वरूप बुद्धि-भ्रम उत्पन्न हो जानेसे हम ऋषिप्रोक्त प्राचीन वैज्ञानिक, सांस्कृतिक मर्यादाओंसे दूर होते जा रहे हैं। खेद है कि भारतकी वैज्ञानिक एवं संस्कार-सम्पन्न परम्पराके रहस्योंको न जाननेके कारण, उन लोगोंने संस्कृत भाषाके कतिपय शब्दोंका विचित्र, अघटित एवं गर्ह्य अर्थ करनेमें कुछ भी संकोच नहीं किया है। उनकी संकीर्ण दृष्टिमें 'नर्मदा' शब्द 'नृमेधा' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ वे यह करते हैं कि नर-बलि देनेवाले नृमेधा मानव जहाँ रहते हों, वह नर्मदा है। इन नृमेधा मनुष्योंसे वे रुद्रका सम्बन्ध भी जोड़ते हैं, जब कि संस्कृत भाषामें 'नर्मदा' का अर्थ होता है— ज्ञान-प्रवाहिनी नदी 'नर्मदां नदीवरां चिद्रूपां विशालाम्'— (वैखानसागम।)

पाश्चात्त्य विद्वान् एवं उनके शिष्य भारतीय विद्वानोंकी यह कल्पना भी नितान्त मिथ्या है कि 'रुद्र कोई मनुष्यविध प्राणी था और वह महान् क्रूर था, उसीका वर्णन वैदिक ऋचाओं और पुराणोंमें है।' उनकी इस कल्पनाको—

क्षोणी रथो विधिर्यन्ता शरोऽहं (विष्णुः) मन्दरं धनुः।
रथाङ्गे चापि चन्द्रार्कौ युद्धमस्य च त्रैपुरे॥

—यह श्लोक ही खण्डित कर रहा है, जिसका अर्थ यह है कि पृथिवी ही महादेवका रथ है, सारथि ब्रह्मा है, शर भगवान् विष्णु है, धनुष अग्नि ही है, चन्द्र और सूर्य ही रथके चक्र हैं। यह युद्ध पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु-लोक-रूप अधिदैवत एवं नाभि, हृदय और शिरोरूप आध्यात्मिक त्रैपुरोंमें होता रहता है, जिसका फल उभयत्र सुख-शान्ति है।

'निरुक्त' में रुद्रदेवताके इस घोर किंतु परिणाममें शान्त (शिव) रूपका निर्देश करते हुए 'यास्क'ने दो वैदिक ऋचाओंको उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है—

१ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधावने। अषाढाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः॥

२ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः, सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः।

प्रथम ऋचामें 'इमा गिरः,' 'भरता शृणोतु नः' ये पाँच पद स्पष्टार्थक हैं। अन्य पदोंकी व्याख्या यह है कि पिण्ड, (अध्यात्म), ब्रह्माण्ड (अधिदैवत) एवं भूत (आधिभौतिक) भेदसे त्रिविध विश्वमें तीन तन्त्र हैं। अर्थ-तन्त्र, प्राण-तन्त्र, ज्ञान-तन्त्र—इन तीनोंके क्रमशः रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा संचालक एवं अधिकारी हैं। इसलिये ब्रह्मसूत्रमें इन तीनों देवताओंको आधिकारिक देवता कहा गया है। इनमेंसे अर्थ-तन्त्रके संचालक रुद्र हैं और वे ही पदार्थोंके रक्षक होकर उन्हें नाशक शक्तियोंसे त्रिविध रीतियोंद्वारा बचाते हैं। बहुत-से पदार्थोंमेंसे नाशक शक्तियोंको निकालनेके रूपमें, बहुत-से पदार्थोंमें नाशक शक्तियोंको व्यवस्थित बनानेके रूपमें, बहुत-से पदार्थोंमेंसे नाशक शक्तियोंको नष्ट करनेके रूपमें रुद्रके पदार्थ-रक्षणकी त्रिविध रीतियाँ हैं।

मन्त्रमें प्रयुक्त 'स्थिरधन्वने' का अर्थ है कि रुद्रकी धनुःशक्ति बड़ी प्रबल है। धनुःशक्ति अस्त्र-शक्तियों (असन-शक्तियों) में अन्यतम है। अस्त्र-शक्तिका रूप आदित्य-सदृश है, वह द्रव्यगत दोष-गणोंका उच्चाटन अथवा दाह करती है। 'परशुरामकल्पसूत्र' के अनुसार धनुःशक्ति मोहनरूपा भी है। वेदने देवताओंका धनुष आज्य-(तेज) वायु-वह्नि-अहंकार-रूपात्मक माना है। अतः वेदोक्त धनुष-शब्दके अर्थके अनुसार 'स्थिरधन्वने'का अर्थ यह हुआ कि रुद्रका प्रकाश-वायु-अग्नि-अहंकाररूप धनुष स्थिर तथा दृढ़-प्रकाश है और वही नाशक शक्तियोंके निरसनमें समर्थ हो सकता है।

'क्षिप्रेषवे' का अर्थ यह है कि रुद्रकी बाणात्मिक-शक्ति क्षिप्र (नाशक शक्तियोंको शीघ्र दबानेवाली) है। वेदने बाणशक्तिको अग्नि, वायु, सूर्य, अन्न, वर्षा, इन्द्रिय, शब्दादि विषय एवं क्रियाशक्ति आदि रूपोंमें माना है। 'पञ्चरात्र' ने बाणात्मिका शक्तिको कुट्टनात्मक (दोषापनोदक) माना है (कुट्टनं तु शरात्मना—पञ्चरात्र)। रुद्रदेव अपने बाणोंके द्वारा नाशक शक्तियोंका द्रावण, शोषण, बन्धन, मोहन एवं उन्मादन करते हुए उनका शासन करते हैं।

'तिग्मायुधाय'का अर्थ है कि रुद्रकी आयुध-शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है, इसलिये उन्हें 'तिग्मायुध' कहा गया है। आयुध-शक्तिके शर, कुन्त, असि, मुद्गर, चक्र, पट्टिश, वज्र, शूल, ऋष्टि, शक्ति, इषु, चाप आदि कई भेद हैं। ये सब आयुध-शक्तिके रश्मिरूप हैं। तन्त्रोंका यह सिद्धान्त है कि देवता

ही अपने अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध एवं आकल्प—इन चार व्यूहों (विभागों) में परिणत हो जाती है। 'निरुक्त' में 'यास्क' का भी यही मत है कि 'आत्मैवैषां रथो भवति आत्मा अश्वः आत्मा आयुधम्, आत्मा इषवः, आत्मा सर्वम्, (जायादि) देवस्य देवस्य इति।' इसका फलितार्थ यह होता है कि आत्मा (देवता) ही अपने रथ, वाहन, आयुध, इषु एवं पत्नी आदि रूपोंमें परिणत हो जाती है। इस सिद्धान्तसे रुद्रके चाप, बाण, आयुध आदि रुद्रके रश्मिरूप हैं। रुद्रदेव अपनी रुद्रताके मूर्तरूप चाप, बाण एवं आयुधात्मक शक्तियोंसे विश्वनाशक शक्तियोंका नाश करते हैं। ओषधि, वनस्पति, पुष्प एवं फल आदिके उत्पादनमें सहायक बनते हैं, अन्नोत्पादक और जीवनीय शक्तियोंके निर्माता हैं और स्वयं अनभिभूत रहकर नाशक शक्तियोंका नाश करते रहते हैं। ऐसे रुद्रदेवसे स्तुतिद्वारा सम्बन्ध जोड़ना प्रथम मन्त्रका अभिप्राय है।

१ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः।
२ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः।
३ नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः।

इन आयुर्वैदिक श्रुतियोंके आधारपर इनसे पूर्व उपरिलिखित 'या ते दिद्युत् अवसृष्टा दिवस्परि' इस ऋचाका यह अर्थ होता है कि हे रुद्र! विकृत वर्षा, वायु और अन्नसे उत्पन्न अतिसार, मन्दाग्नि, शूल आदि रोगोंकी उत्पादक और विध्वंसक शक्तियोंके नाशके लिये आपके द्वारा प्रयुक्त सहस्रों संरक्षक शक्तियाँ द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूलोकमें घूमती रहती हैं। वे विश्वमें 'सर्वजनहिताय' 'सर्वजनसुखाय' प्रमाणित हों—ऐसी कामना है। इस कामनाका मूल यह है कि विश्वमें रोगोंके मूल रुद्र, यम, वरुण, निर्ऋति—ये चार देवता हैं। विविध ज्वर, महामारी और उन्माद आदि रोग रुद्र-जन्य हैं। मूर्च्छा, मृत्यु, अङ्ग-भङ्ग प्रभृति यम-जन्य हैं। संधिवात, शूल, पक्षाघात आदि वरुण-जन्य हैं। महाशोक, कलह, दारिद्र्य आदि व्याधियाँ निर्ऋति-जन्य हैं। इन देवताओंमें रुद्र प्रथम और मुख्य हैं। अतः उक्त व्याधियोंसे मुक्ति पानेकी कामना करते हुए रुद्र-देवतासे सम्बन्ध जोड़ना ही 'या ते दिद्युत्' इस ऋग्वेदीय ऋचाका ध्येय है। हम भी इस वैदिक आदेशके पालनार्थ 'ॐ नमः शिवाय, शिवतराय' उच्चारण करते हुए इस लेखका समापन करते हैं।

प्रलयंकरके प्रति

(लेखक—श्रीरसिकविहारी मंजुल, एम्० ए०)

नेति नेति हे निरपेक्षित-नीतों के नायक।
कुसुमायुध-रिपु हे त्रिनेत्र, हे साधु-सहायक॥
सृजक विधाता, विष्णुरूप हो संसृति-पालक।
रुद्र-रूपसे विकट प्रलयके हो संचालक॥
परम-ज्ञान-भंडार, भक्तिमय हे भूतेश्वर।
नृत्य तुम्हारा होता ताण्डव-तुङ्ग-भयंकर॥
तुम्हीं नित्य हो, तुम्हीं सत्य हो, हे जगदीश्वर।
नीलकण्ठ! तुमको प्रणाम शत-शत उर के कर॥
रुद्र-क्रुद्ध, हे दक्ष-यज्ञ-विध्वंस-विधायक।
ब्रह्मचर्य-पद हे अखण्ड, हे ब्रह्म-सहायक॥
हे उदार योगीश्वर! हे उन्मुक्त शेषधर।
दग्ध-ताप-जग-मध्य तुम्हीं हो परम शान्तिकर॥
दया करो, स्वीकार करो अन्तरतमके स्वर।
क्षमा करो, धो दो त्रिताप, हे पाप-ताप हर!॥
कृपादृष्टि कर दो, वर दो, हर लो दुख सत्वर।
अखिल-अमर-कर-वन्ध देव देवाधिदेव हर॥

शिव-महिमा

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी, वाचस्पति)

शंकरकी अर्द्धाङ्गभूता भगवती पार्वती जिस समय अद्भुत तपस्यामें नियत थीं और उनके प्रेमकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् शंकरने ब्रह्मचारीका वेष बनाकर उनके सामने अपनी ही भरपेट निन्दा की थी, 'शंकर इतना दरिद्र है कि उसे वस्त्रतक पहननेको नहीं मिलता, इसीसे 'दिगम्बर' कहलाता है। वह श्मशानवासी है, उसका रूप ही भयंकर है', इत्यादि अनेकानेक दोष जब अपने-आपमें बताये थे, उस समय पार्वतीका उत्तर महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यों अङ्कित हुआ है—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

अर्थात् शिव परम दरिद्र होकर भी सब सम्पत्तियोंके उद्गमस्थान हैं, सब सम्पत्तियाँ वहींसे प्रकट होती हैं; वे श्मशानवासी होकर भी तीनों लोकोंके नाथ हैं, भयानक रूपमें रहनेपर भी उनका नाम 'शिव' है। सत्य तो यह है कि पिनाकधारी भोलानाथका यथार्थ तत्त्व कोई जान ही नहीं पाया; वे क्या हैं और कैसे हैं—यह तत्त्व कोई नहीं जानता। यह भगवान् शंकरकी अत्यन्त अन्तरङ्ग, परमशक्ति भगवती पार्वतीकी राय है। इसी प्रकार बालब्रह्मचारी परमतत्त्वज्ञ भीष्मपितामहसे नीति, धर्म और मोक्षके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रहस्यका विवेचन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरने जब शिव-महिमाके सम्बन्धमें प्रश्न किया, तब वृद्ध पितामहने भी यही उत्तर दिया था—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते॥

(महा० अनु० १४। ३)

'जो सबमें रहते हुए भी कहीं किसीको दिखायी नहीं देते, उन महादेवके गुणोंका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।' 'मैं असमर्थ हूँ' इतना ही कहकर भीष्मपितामहको संतोष नहीं हुआ; किंतु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया कि मनुष्य-देह-धारी कोई भी महादेवकी महिमा नहीं कह सकता—

को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः॥

आगे भीष्मपितामहने युधिष्ठिरको निराश होते देख यों धैर्य दिलाया कि 'इस सभामें साक्षात् विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, वे शिवकी महिमा कह सकते हैं।' साथ ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की कि-'आप-युधिष्ठिरको और सब ऋषि-मुनि आदिको शिवमहिमा सुनायें।' भगवान् श्रीकृष्णने भी यहाँसे प्रारम्भ किया कि 'हिरण्यगर्भ, इन्द्र, महर्षि आदि भी शिव-तत्त्व जाननेमें असमर्थ हैं; मैं उनके कुछ गुणोंका ही व्याख्यान करता हूँ।' ऐसी स्थितिमें एक क्षुद्रातिक्षुद्र नर-कीटका शिवमहिमाकी व्याख्याके लिये मुँह खोलना या लेखनी उठाना सर्वथा दुस्साहस एवं अनधिकार चेष्टा ही कही जा सकती है; किंतु इसका उत्तर श्रीपुष्पदन्ताचार्यने अपने सुप्रसिद्ध 'महिम्नः-स्तोत्र' के आरम्भमें ही दे दिया है—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हरनिरपवादः परिकरः॥

'यदि आपकी महिमाको पूर्णरूपसे बिना जाने स्तुति करना अनुचित हो तो ब्रह्मादिकी भी वाणी रुक जायगी। कोई भी स्तुति नहीं कर सकेगा; क्योंकि आपकी महिमाका अन्त कोई जान ही नहीं सकता। अनन्तका अन्त कैसे जाना जाय। तब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जिसने जितना समझ पाया है, उतना कह देनेका उसका अधिकार दूषित न ठहराया जाय तो मुझ-जैसा तुच्छ पुरुष भी स्तुतिके लिये कमर क्यों न कसे। कुछ तो हम भी जानते ही हैं; जितना जानते हैं, उतना क्यों न कहें?, आकाश अनन्त है—सृष्टिमें कोई भी पक्षी ऐसा नहीं जो आकाशका अन्त पा ले। किंतु इसलिये वे उड़ना नहीं छोड़ते; प्रत्युत जिसके पक्षोंमें जितनी शक्ति है, उतनी उड़ान वह आकाशमें भरता है। हंस अपनी शक्तिके अनुसार उड़ता है और कौआ अपनी शक्तिके अनुसार। यदि न उड़ें तो उनका पक्षि-जीवन व्यर्थ ही हो जाय। फिर उन्हें पक्षी कौन [illegible]। इसी प्रकार अपनी-

अपनी बुद्धिके अनुसार अनन्त शिवतत्त्वमें जितना समझ सकें, उतना समझना और जितना समझा है, उसके मननके लिये परस्पर कहना और सुनना मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सबका आवश्यक कर्तव्य है। बस, उसी कर्तव्यकी आंशिक पूर्तिके लिये यह छोटा-सा लेख भी पाठकोंकी सेवामें समर्पित है।

ईश्वर-निरूपण

शिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं। ईश्वर और महेश्वर शिवके पर्याय शब्द हैं, शिवके ही नाम हैं—यह अमरकोष पढ़नेवाला भी जानता है। श्रुति भी यही कहती है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(श्वेताश्वतर० ३। २)

'एक ही रुद्र है, जो कि इन सब लोकोंको अपनी शक्तिसे वशमें रखता है; अतएव वह ईश्वर है। उसीकी सब उपासना करते हैं, वह सब लोकोंको उत्पन्नकर अन्तकालमें संहार भी करता है, वही सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित है।' इत्यादि। अतएव शिवतत्त्वका विचार या ईश्वर-तत्त्वका विचार एक ही बात है। ईश्वरका निरूपण वैदिक सिद्धान्तमें दो भावोंसे है—एक वैज्ञानिक भावसे अर्थात् व्यापकरूपसे, दूसरा उपासना-भावसे अर्थात् मनुष्यरूपमें। वैज्ञानिक रूपकी भी मनुष्याकार कल्पना होती है और अवताररूपसे मनुष्याकारधारी भी ईश्वर होता है। इन दोनों रूपोंमें आश्चर्यजनक समानता होती है। अस्तु, वैज्ञानिक भावमें ईश्वरका जगत्के साथ छः प्रकारका सम्बन्ध शास्त्रमें बताया जाता है—(१) 'जगति ईश्वरः'[1], (२) 'ईश्वरे जगत्'[2], (३) 'जगद् ईश्वर एव'[3], (४) 'जगद् ईश्वरश्च भिन्नौ'[4], (५) ईश्वरो जगतोऽतिरिच्यते, जगत्तु ईश्वरान्नातिरिच्यते'[5], (६) 'ईश्वराद् भेदेन अभेदेन वा अनिर्वचनीयं जगत्।'[6] [(१) जगत्में ईश्वर है, (२) ईश्वरमें जगत् है, (३) जगत् ईश्वर ही है, (४) जगत् और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं—ईश्वर जगत्से परे है, (५) ईश्वर जगत्से भिन्न है, किंतु जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं, (६) जगत् अनिर्वचनीय है—भिन्न वा अभिन्न कुछ भी नहीं कहा जा सकता।] ये सम्बन्ध देखनेमें परस्परविरुद्ध प्रतीत होते हैं, किंतु विचारदृष्टिसे देखनेपर उपादान-कारणके साथ कार्यके छहों प्रकारके सम्बन्ध व्यवहारमें आते हुए प्रतीत होते हैं। वस्त्रमें तन्तु हैं, तन्तुओंके आधारपर वस्त्र है; तन्तु ही पटरूपताको प्राप्त हो गये हैं; पट एक अतिरिक्त वस्तु (अवयवी) है जो तन्तुओंसे उत्पन्न हुआ है; तन्तुओंकी सत्ता स्वतन्त्र है—तन्तु पटसे पूर्व भी थे, आगे भी रहेंगे और जहाँ पट उत्पन्न नहीं हुआ, वहाँ भी हैं, किंतु पट तन्तुओंसे स्वतन्त्र अपनी सत्ता नहीं रखता; कह नहीं सकते कि तन्तु और पट भिन्न-भिन्न हैं या एक हैं। यों छहों प्रकारके व्यवहार लोकमें भी उपादान और उपादेयमें प्राप्त होते हैं। ईश्वरने अपनी इच्छासे स्वयं ही जगद्रूप धारण किया है—'एकोऽहं बहु स्याम्, प्रजायेय'। वह जगत्का उपादान-कारण भी है और निमित्त कारण भी, इसलिये उसके साथ जगत्के छहों प्रकारके सम्बन्धोंका होना युक्तियुक्त ही है। हाँ, तन्तु-पट आदिकी अपेक्षा इतनी विशेषता यहाँ समझने योग्य है कि ईश्वर चेतन है, अतः वह जगत्को अपनी इच्छासे रचकर शासकरूपसे भी उसके प्रत्येक अवयवमें प्रविष्ट हो रहा है—

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (श्रुति)

'ईश्वर जगत्को बनाकर उसीमें अनुप्रविष्ट होता है।' निम्नाङ्कित श्रुति इस दूसरे रूपका ही वर्णन करती है; क्योंकि सृष्टिके अनन्तर प्रविष्ट होना इसमें बताया गया है—

एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः। (बृहदारण्यक उपनिषद्)

'हे गार्गि! इस अक्षर पुरुषके शासन—नियन्त्रणमें सूर्य और चन्द्रमा ठहरे हैं।'

भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। (कठोपनिषद्)

१—२. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। (गीता ६। ३०)

३. मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय। (गीता ७। ७)

४. परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। (गीता ८। २०)

५. मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। (गीता ९। ४)

६. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। (गीता ७। २५)

'इसीके भयसे पवन चलता है, इसीके भयसे सूर्य उदय होता है।'

—इत्यादि श्रुति भी शासकरूपसे इसी प्रविष्ट रूपका वर्णन करती है। लकड़ी, पत्थर, वृक्ष आदि जितने पार्थिव पदार्थ हम देखते हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टिसे दो प्रकारकी प्राणरूप अग्नि है—एक वह जो उन पदार्थोंकी उत्पादिका (उपादान-कारण) है और दूसरी उनमें उत्पत्तिके अनन्तर प्रविष्ट हुई है। इन दोनोंका नाम वैदिक परिभाषामें क्रमसे 'चित्य' और 'चिते निधेय' है। जिसका चयन हुआ है, तह-पर-तहके क्रमसे जिसकी चुनाई होकर ये सब वस्तुएँ बनी हैं, वह 'चित्य' अग्नि है और वस्तु बन जानेपर समुदायपर जो प्राणशक्ति बैठकर उसे अपने स्वरूपमें रखती है, वह 'चिते निधेय' (चुने हुएपर ठहरनेवाली) कहाती है। इस प्राणशक्तिकी व्याप्ति उस स्थूल वस्तुकी सीमातक ही नहीं रहती, किंतु यह उसकी परिधिसे बाहर भी बहुत दूरतक व्याप्त रहती है। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके आकारको हमारे नेत्रोंतक लाकर हमें दिखाना, फोटोग्राफीके आईनेमें वस्तुके आकारको ले आना, उत्कट गरम या ठंढे पदार्थकी गर्मी या सर्दीका दूरतक प्रभाव होना, अत्यन्त प्रकाशमान पदार्थका दूरसे ही आँखोंको चौंधिया देना, इमलीके वृक्षके नीचे जाते ही वायुका प्रभाव हो जाना या नीमके वृक्षके नीचे सोने-बैठनेसे आरोग्य प्राप्त होना आदि शतशः इस दूसरी (चिते निधेय) प्राणशक्तिके ही कार्य हैं। वैदिक विज्ञान बहुत कुछ इसीपर निर्भर है। अस्तु, इसी प्रकार ईश्वर भी उपादान-रूपसे और शासकरूपसे—दोनों प्रकारसे सब जगत्में प्रविष्ट माना गया है। यों ईश्वरके तीन रूप हैं—सृष्ट, प्रविष्ट और विविक्त। जो जगत्का उपादान-कारण बना है— वह सृष्ट रूप कहा जाता है; जो उसका शासन कर रहा है—वह प्रविष्ट रूप है और—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

(पुरुषसूक्त)

'यह सम्पूर्ण भूतग्राम उस परमात्माका एक पाद है, शेष तीन पाद तो उसके अमृतरूपमें प्रकाशमान रहते हैं।'

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

(गीता १० । ४२)

'मैं सम्पूर्ण जगत्में एक अंशसे व्याप्त होकर उसको धारण करता हुआ विराजमान हूँ।'

जो जाना जाता है, वह जगत्से असंस्पृष्ट शुद्ध रूप ईश्वरका तीसरा 'विविक्त' रूप है; इन्हीं तीनोंको क्रमसे 'विश्व', 'विश्वचर' और 'विश्वातीत' नामोंसे भी कहा जाता है।

पशुपति या प्रजापति

विश्वको 'सत्य' या 'प्रजापति' भी कहते हैं। उसमें तीन भाग हैं—आत्मा, प्राण और प्रजा या पशु। शैव दर्शनोंमें इन तत्त्वोंको 'पशुपति' 'पाश' और 'पशु' कहा जाता है। निरूपणकी परिभाषा भिन्न-भिन्न होनेके कारण परस्पर थोड़ा बहुत भेद हो जाता है; किंतु मूल-तत्त्व सब जगह एक ही रहते हैं, शब्दोंका ही भेद रहता है। कार्य-जगत् या जगत्का बाह्य रूप 'पशु' नामसे कहा जाता है, इसमें जड-चेतन दोनों नामोंसे कहे जानेवाले सभीका अन्तर्भाव हो जाता है। जीवभावमें रहता हुआ जीव भी 'पशु' श्रेणीमें ही आता है; क्योंकि जीवभाव उसका जगत्सम्बन्धी रूप है। इन सबका नियमन करनेवाला या उत्पन्न करनेवाला, सबका पिता, सबका स्वामी तथा आत्मा ईश्वर या पशुपति है; और वह जिन साधनोंसे इन्हें उत्पन्न करता है या बाँधकर वशमें रखता है, वे 'प्रकृति' या 'प्राण' पाश कहे जाते हैं। प्रकृति-पाश प्रजा या पशु आत्मासे सर्वथा पृथक् नहीं कहे जा सकते—इस कारण तीनोंकी समष्टिका भी प्रजापति या पशुपति-नामसे निर्देश हुआ है। अस्तु, ये आत्मा और प्राण आदि शब्द सापेक्ष होनेके कारण भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपेक्षाकृत व्यवहारमें आते हैं। किसी दृष्टिसे जो 'प्राण' है, दूसरी दृष्टिसे वह 'आत्मा' भी कहा जा सकता है। एक दृष्टिसे जिसे 'पशु' कह सकते हैं, दूसरी दृष्टिसे वह 'आत्मा' भी हो सकता है। जैसे श्रुतिके सिद्धान्तमें इस सब जगत्का मूल तत्त्व एक है, वह सब नाम-रूपसे परे, सब गुण-धर्मोंका मूल होनेके कारण उनसे रहित—स्वतन्त्र एक निर्विशेषतत्त्व है, जो मन और बुद्धिकी पहुँचसे बाहर है। यद्यपि गुण-धर्मसे रहित होनेके कारण उसका वाचक कोई शब्द नहीं हो सकता, तथापि व्यवहारके लिये उसे 'रस' नामसे पुकारते हैं—'रसो वै सः' (तैत्तिरीय श्रुति)। वह मुख्य 'आत्मा' है, सबका आत्मा होनेके कारण उसे 'परमात्मा' भी कह सकते हैं। यह निर्विकार होनेके कारण

१. यह विषय 'श्रीकृष्णावतारपर वैज्ञानिक दृष्टि' शीर्षक लेखमें कुछ विस्तारसे लिखा गया है—देखिये कल्याण 'श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क' पृ० ५२२। यहाँ आवश्यकतानुसार उसका सारांश

जगत्‌का कारण नहीं बन सकता; इसलिये जो उसकी आत्मभूत 'शक्ति' सृष्टि, प्रलय और स्थितिके कारणरूपसे मानी जाती है, वह 'बल' या 'शक्ति' प्राणरूप है और इससे आगे उत्पन्न होनेवाले पुरुष, प्रकृति आदि सब 'पशु' हैं। यह एक दृष्टि हुई। यह निर्विशेष 'क्षर,' 'अक्षर' और 'अव्यय' तीनों पुरुषोंसे भी पर—उनका भी आत्मा है; यही शिवका मुख्य रूप 'परमशिव' है।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः। (माण्डूक्योपनिषद् ७)

यह श्रुति निर्विशेष रूपका ही वर्णन करती है और उसे ही 'शिव' कहती है। इस रूपकी उपासना नहीं हो सकती; क्योंकि यह मनमें नहीं आ सकता। 'नेति-नेति' कहकर श्रुति किसी प्रकार उसका परिचय कराती है, कर्म या उपासनासे उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं बन सकता; किंतु यह भी सिद्धान्त है कि लक्ष्य हमारा वही है। आगे उत्पन्न होनेवाले प्रतीकोंके द्वारा उसीकी उपासना की जाती है, मुख्य आत्मा वही है, वही प्राप्य मुख्य लक्ष्य है।

अब आगे चलिये। शक्तिसहित आत्मा या बलविशिष्ट रस 'परात्पर' कहलाता है। बल या शक्ति जब मायारूपसे प्रकट होकर अपरिच्छिन्न रसको परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) कर लेती है, तब अव्यय पुरुषका प्रादुर्भाव होता है। उसकी पाँच कलाएँ हैं—आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक्। क्रमसे बलोंकी चिति होकर अक्षर पुरुष और आगे उसीसे क्षर पुरुष भी प्रकट हो जाता है। अब इस दशामें अव्यय पुरुष 'आत्मा,' अक्षर उसकी 'प्रकृति' या 'प्राण' और क्षर 'पशु' कहा जाता है। अर्थात् 'क्षर' रूप पशुके लिये 'अव्यय' पशुपति और अक्षर पाश है। या यों कहें कि अव्यय ईश्वर, अक्षर, प्रकृति और क्षर जगत् है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें अव्ययपुरुषको ही 'ईश्वर' कहा गया है। नारायणोपनिषद्‌में भी अव्ययकी कलाओंका प्रतिसंचार (विपरीत) क्रमसे जन्यजनकभाव कहा गया है—

अन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम्, प्राणैर्मनो मनसश्च विज्ञानम्, विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः स वा एष पुरुषः पञ्चधा; पञ्चात्मा, येन सर्वमिदं प्रोतम्.........

ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च
भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान्।
(नारायणोपनिषद् ७९)

इन पाँचों कलाओंके अधिष्ठातारूपसे भगवान् शंकरके पाँच रूप माने जाते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न ध्यान तन्त्र-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। आनन्दमय रूपकी 'मृत्युंजय' नामसे उपासना होती है; क्योंकि 'रस' स्वयं आनन्दरूप है—'रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' (श्रुति)। और बल, जिसका दूसरा नाम मृत्यु भी है, उस आनन्दका तिरोधान करता है। मृत्यु (बल) पर जय करनेसे, मनसे हटा देनेसे आनन्द प्रकट होता है, वा यों कहिये कि आनन्द ही मृत्युका जय करके प्रकट हुआ करता है। इसलिये आनन्द 'मृत्युंजय' है। दूसरी कला विज्ञानमय शंकरमूर्तिकी 'दक्षिणामूर्ति' नामसे उपासना प्रसिद्ध है। 'विज्ञान' बुद्धिका नाम है, उसका घन 'सूर्यमण्डल' है, सूर्यमण्डलसे ही विज्ञान सौर-जगत्‌के सब प्राणियोंको प्राप्त होता है। सूर्य सौर-जगत्‌के केन्द्रमें स्थित है, वृत्त (मण्डल) में केन्द्र सबसे उत्तर माना जाता है। यह वृत्तकी परिभाषा है, अतः विज्ञान उत्तरसे दक्षिणको आनेवाला सिद्ध हुआ। इसी कारण विज्ञानमय मूर्ति 'दक्षिणामूर्ति' कही जाती है। 'वर्णमातृका' पर यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। विज्ञानका आधार वर्णमातृका है। इसके स्पष्टीकरणकी सम्भवतः आवश्यकता न होगी। ये दोनों (मृत्युंजय और दक्षिणामूर्ति) प्रकाश-प्रधान होनेके कारण श्वेतवर्ण माने जाते हैं। तीसरी मनोमय (अव्यय पुरुष) की कलाका अधिष्ठाता 'कामेश्वर' शिव है। मन कामप्रधान है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं तदासीत्। (श्रुति)

इस कारण इसका 'कामेश्वर' नाम है और मनके धर्म अनुरागका वर्ण 'रक्त' माना जाता है, इसलिये यह कामेश्वर-मूर्ति तन्त्रोंमें रक्तवर्ण मानी गयी है। पञ्चप्रेतपर्यङ्कपर शक्तिके साथ विराजमान इस कामेश्वरमूर्तिकी उपासना तान्त्रिकोंमें प्रसिद्ध है। चौथी कला 'प्राणमय मूर्ति' 'पशुपति', 'नीललोहित' आदि नामोंसे उपासित होती है। यह पञ्चमुखी मूर्ति है। आत्मा—पशुपति प्राणरूप पाशके द्वारा विकाररूप पशुओंका नियमन करता है—यह हम पूर्व कह चुके हैं, अतः प्राणमय मूर्तिको ही 'पशुपति' कहना युक्तियुक्त है। प्राण वैदिक परिभाषामें दो प्रकारका है—एक आग्नेय, दूसरा सौम्य। अग्निका वर्ण लोहित—

सुनहरी और सोमका नील या कृष्ण माना गया है। 'यदग्ने रोहितं रूपम्,' 'तेजसस्तद्रूपम्', 'यच्छुक्लं तदपाम्', 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' (छान्दोग्योपनिषद् ६ प्रपा० ४ खं०) (सोम ही अन्न होता है, इस कारण यहाँ अन्न शब्दसे सोमका निर्देश हुआ है) । इसीलिये यह मूर्ति 'नीललोहित कुमार नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों रूपोंके सम्मिश्रणसे पाँच रूप बनते हैं— इसलिये पाँच वर्णके पाँच मुखोंका ध्यान इस मूर्तिका ध्यान कहा गया है—

> मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
> स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
> शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
> पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥

सोम (कृष्णवर्ण) पर जब अग्नि (लोहित) आरूढ़ हो तो धूमल रक्त होता है और अग्निपर सोम आरूढ़ हो तो पीत-रूप हो जाता है। सोम और अग्निकी मात्राके तारतम्यसे और भी—मोतिया, बैंगनी, हरित आदि रूप बनते हैं। अस्तु, यहाँ इस विषयका विस्तार करनेसे प्रकरण-विच्छेदका भय है, इसलिये उक्त शिव-मूर्तिके ध्यानपर विशेष वक्तव्य यथास्थान उपस्थित किया जायगा। इस पञ्चमुख मूर्तिका एक मुख सबके ऊपर है और चार मुख चारों दिशाओंमें। ऊर्ध्वमुख ईशान नामसे, पूर्वमुख तत्पुरुष नामसे, दक्षिण अघोर नामसे, उत्तर वामदेव नामसे और पश्चिम सद्योजात नामसे पूजा जाता है। अवसर हुआ तो इन बातोंका स्पष्टीकरण मूर्तिनिरूपणमें करेंगे। पाँचवीं कला वाङ्मयमूर्ति 'भूतेश' नामसे उपास्य है। वाक्, अन्न और भूत—ये शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं। ये ही 'भूतेश' शिव अष्टमूर्ति माने जाते हैं, इस सम्बन्धमें भी आगे बहुत कुछ वक्तव्य होगा।

यह अव्यय पुरुष सर्वात्मा, सर्वाधार, सबका आयतन है। आगे जो दूसरे प्रकारसे शिवमूर्तियाँ कही जायँगी, वे भी इससे पृथक् कभी नहीं हो सकतीं, सब इसीका विस्तार है।

हाँ, तो यह बताया जा चुका है कि तीनों पुरुषोंका प्रादुर्भाव होनेपर अव्यय पुरुष आत्मा या पशुपति, अक्षर पुरुष प्राण या पाश और क्षर पुरुष विकार या पशु समझा जाता है— यह दूसरी दृष्टि हुई। अब क्षर पुरुषके प्रथम विकार—प्राण, अप, वाक्, अन्नाद और अन्न—ये पाँच जब प्रादुर्भाव होते हैं तब अव्यय पुरुष आत्मा, अक्षर और क्षर–दोनों उसकी परा और अपरा-प्रकृति या प्राण और प्राण, अप आदि पाँचों विकार कहे जाते हैं; इन्हींको इस दृष्टिसे पशुपति, पाश और पशु कहा जाता है। आगे जब क्रमसे प्राण आदि पाँचों तत्त्व परस्पर पञ्चीकरणके द्वारा आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूपोंमें विस्तृत होते हैं और आधिदैविक रूपमें इनके स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा; आध्यात्मिक रूपमें अव्यक्त, महान्, विज्ञान, प्रज्ञान और शरीर एवं आधिभौतिक रूपमें गुहा (सत्य या आकाश) अप्, ज्योति, रस और अमृत—ये नाम पड़ते हैं, तब अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों 'पुरुष' 'आत्मा' या 'पशुपति', प्राण आदि पाँचों पूर्वोक्त 'प्रकृति' 'प्राण' या 'पाश' और ये आधिदैविक आदि सब रूप 'विकार' या 'पशु' कहे जाते हैं। आधिदैविक आदि रूपोंमें भी पुरुष और प्रकृतिसे अनुगत स्वयम्भू और परमेष्ठीका एक सम्मुग्धरूप 'पशुपति' सूर्य और चन्द्रमा 'पाश' और पृथ्वी 'पशु' कहे जाते हैं। यों ही सौर-जगत्की दृष्टिसे सूर्य पशुपति (आत्मा), सूर्यरश्मि पाश और पृथ्वी, चन्द्रमा आदि पशु होते हैं। आगे इन पाँचों मण्डलोंमें जो-जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनकी दृष्टिसे ये मण्डल पशुपति और वे जन्य पदार्थ पशु समझे जाते हैं—जैसे पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाले ओषधि, पार्थिव शरीर आदिके लिये पृथ्वी ही 'पशुपति' है, पृथ्वीका आकर्षण पाश है और वे ओषधि आदि पशु हैं। आगे अग्निके भेदोंमें भी पाँच प्रकारके पशुओंका उल्लेख होगा और नियन्ता ईश्वरके प्रकरणमें 'स्मृत' पदार्थोंको 'पशु' कहा जायगा—वहाँ 'पशुपति' भी भिन्न-भिन्न होंगे। यों ही दृष्टिभेदसे शब्द-व्यवहारमें भेद होता जायगा। नियामकको ईश्वर, आत्मा या पशुपति, नियम्यको विकार या पशु और जिसके द्वारा नियमन हो; उसे प्राण या पाश कहा जाता है; किंतु यह स्मरण रहे कि ये सब पदार्थ वैदिक सिद्धान्तमें एक ही मूलतत्त्वके भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिये अनेकेश्वरवादका वैदिक दृष्टिमें कोई प्रसङ्ग नहीं आता। अव्यय पुरुषकी भावनासे ही हम भिन्न-भिन्न रूपोंकी उपासना किया करते हैं, अधिकारके अनुसार उपास्यरूपमें भेद होता है; किंतु लक्ष्य एक है, उसमें किसीका भेद नहीं। आगे इसका कुछ स्पष्टीकरण सुनिये—

अक्षर पुरुष और महेश्वर

पूर्व कह चुके हैं कि अव्यय पुरुष सबका आलम्बन है,

---

१. ये पाँचों ब्रह्माण्डके अधिष्ठानमण्डल हैं, इन्हें ही 'सप्तलोक' कहा जाता है। देखो श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क पृ० ५२४-५२५।

२. 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। (ऋग्वेद)

किंतु वह कार्य और कारण दोनोंसे अतीत है। वह न जगत् है न जगत्कर्ता; हाँ, जगत् और जगत्कर्ता दोनोंका आलम्बन अवश्य है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। (श्रुति)
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि। (गीता)

—इत्यादि विचित्र भावोंसे श्रुति-स्मृतिमें उसका वर्णन मिलता है। जब बलोंकी ग्रन्थि होकर बलप्रधान अक्षर पुरुषका प्रादुर्भाव होता है, तब जगत्की सृष्टिका उपक्रम होता है। अतः सृष्टि-कर्ता ईश्वर 'अक्षर' पुरुषको ही कहते हैं। यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों पुरुष कभी पृथक्-पृथक् नहीं रहते। जहाँ क्षर है, वहाँ अक्षर और अव्यय भी अवश्य है। अक्षर भी बिना अव्ययके निरालम्ब कभी नहीं रहता। विशिष्टरूप एक है और वही उपलब्ध होता है, अपेक्षाकृत दृष्टिभेदसे तीनों पुरुषोंका विभाग है। अस्तु, अक्षर पुरुष जो कि जगत्का निमित्तकारण है, ईश्वर है। वह बलप्रधान है; बलका नाम शक्ति, प्राण या क्रिया भी है। सोता हुआ बल शक्ति-नामसे, जागकर कार्य करनेको उद्यत होनेपर प्राण-नामसे और कार्यरूपमें परिणत होनेपर क्रिया-नामसे पुकारा जाता है। शक्तिका बल तीन प्रकारसे सब पदार्थोंमें लक्षित होता है—गति, आगति और प्रतिष्ठा। प्रत्येक पदार्थमेंसे प्रतिक्षण प्राणोंकी गति या उत्क्रान्ति होती रहती है। किंतु केवल उत्क्रान्ति ही हो तो सब पदार्थोंका प्रतिक्षण समूल नाश हो जाय; इसलिये जैसे गति है वैसे आगति (आमद) भी है। जगत्के सब पदार्थ प्रतिक्षण लेते और देते रहते हैं, इसी व्यवहारको दार्शनिक परिभाषामें 'आदान' और 'विसर्ग' कहते हैं। सूर्यमण्डलमें आदान और विसर्ग स्फुटरूपसे हमें दिखायी देते हैं। सूर्य अपनी किरणोंसे सब पदार्थोंको ताप देता है, ओषधि आदिका परिपाक करनेमें अपनी शक्ति लगाता है और चारों ओरसे जल, रस या सोमको लेता भी रहता है। न केवल सूर्य, किंतु पृथिवी भी अपना बल पार्थिव पदार्थोंको देती रहती है और आकर्षणद्वारा उनमेंसे कुछ लेती भी रहती है। किसी भी पदार्थमें आदान-विसर्ग न हों, तो वह कभी परिवर्तित न हो, पुराना न पड़े, सदा एकरूप रहे; किंतु एक रूपमें कोई भी पदार्थ रहता नहीं, इससे सबमें आदान और विसर्गका होना सिद्ध है। जब आदान अधिक होता है और विसर्ग न्यून, तब सब पदार्थ बढ़ते हैं, बाल्यावस्थासे युवावस्थामें जाते हैं और इसके विपरीत आदानकी अपेक्षा विसर्ग जब अधिक होता है, तब घटनेकी बारी आती है; इससे ही जरा (वृद्धावस्था) आती है। यों आदान और विसर्गके द्वारा परिवर्तन होता रहनेपर भी पदार्थमें जो सत्ता-स्थिरता-एकरूपता प्रतीत होती है, उससे तीसरा प्रतिष्ठा-बल भी स्वीकार करना पड़ता है। बौद्ध दर्शनमें केवल आदान-विसर्ग ही माने जाते हैं—इससे वहाँ प्रत्येक पदार्थको क्षणिक कहा गया है; किंतु इस क्षणिकताको उच्छृङ्खल मान लेनेपर व्यवहारका लोप हो जायगा। 'स एवायम्' (यह वस्तु वही है)—यह प्रत्यभिज्ञा सबको होती है और इसीके आधारपर सारे जगत्का व्यवहार चलता है। एक कुम्हार बड़े परिश्रमसे बड़ा पक्का घड़ा बनाता है और इंजीनियर बड़े कला-कौशलसे मशीन बनाता है। अपना बनाया घड़ा और अपनी बनायी मशीन एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगी—ऐसी सम्भावना इन्हें हो तो ये कभी बुद्धि और शरीरका श्रम न करें। हमारे बोये आमके बीजसे एक वृक्ष लगेगा और वह चिरस्थायी होकर फल देता रहेगा, ऐसा विश्वास न हो तो कोई भी चतुर माली सुयोग्य स्थानमें वृक्ष लगाकर उसे सींचनेका प्रयास न करे। यह एक विषयान्तर है, विस्तारकी आवश्यकता नहीं। ऐसी बहुत-सी युक्तियोंसे क्षणिकवादका निराकरण करके वैदिक दर्शनमें प्रतिष्ठा-बल भी माना जाता है। बलकी इन तीनों अवस्थाओंके अधिष्ठाता अक्षर पुरुषके भी तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र। प्रतिष्ठा-बलका अधिष्ठाता ब्रह्मा है, आदानका विष्णु और विसर्ग या उत्क्रान्तिका इन्द्र। ये तीनों ईश्वरके रूप हैं। बारह आदित्योंमें जो विष्णु और इन्द्र हैं या अन्तरिक्षके देवता जो इन्द्र हैं, वे देवतारूप इन्द्र या विष्णु आगे उत्पन्न होनेवाले हैं। उनको और इनको एक न समझ लिया जाय। अस्तु, इन तीनोंकी स्थिति स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा या इन मण्डलोंसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंके केन्द्र या हृदयमें रहती है, अथवा यों कहिये कि ये ही तीनों इन सब मण्डलोंको या इनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक (पूर्वोक्त) रूपोंको बनाकर उनमें विराजमान होते हैं। ऋग्वेद संहिता म० ६ अ० ६ का ६९ सूक्त इन्द्र और विष्णुका सूक्त है, उसका सूक्ष्मदृष्टिसे मनन करनेपर यह तत्त्व स्फुट होता है। उसका अन्तिम मन्त्र है—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्च नैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्॥

इसका अर्थ है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही विजय करनेवाले हैं, ये कभी नहीं हारते और इन दोनोंमें भी कोई एक नहीं हारता। ये दोनों स्पर्धा (युद्ध) करते रहते हैं और इसीसे तीन प्रकारके 'सहस्र' को प्रेरित करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ६। १५ में इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए तीन प्रकारके 'सहस्र' का अर्थ लोकसहस्र, वेदसहस्र और वाक्-सहस्र किया है। लोक, वेद और वाक् ही अक्षर पुरुषसे निकलकर सब संसारके उपादान-कारण होते हैं। यह वैदिक विज्ञानका एक जटिल विषय है, इस छोटे-से लेखमें इस विषयपर कुछ कहा नहीं जा सकता। जिन सज्जनोंको इस विषयको जाननेकी अभिरुचि हो, वे इसका स्पष्टीकरण गुरुवर श्री ६ मधुसूदन झा विद्यावाचस्पति महानुभावके 'ब्रह्मविज्ञान' का 'संशयोच्छेदवाद'[1], 'अहोरात्रवाद' या 'सिद्धान्तवाद' पढ़ें। अस्तु, शतपथब्राह्मण, काण्ड ११, अ० १ ब्रा० ६ में भी क्षर और अक्षर पुरुषकी कलाओंका निरूपण प्राप्त होता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी इनका निरूपण ब्राह्मणोंमें बहुधा हुआ है।

उत्क्रान्ति और आगतिके साथ जब प्रतिष्ठा-बलका सम्बन्ध होता है, तब क्रमसे अग्नि और सोम नामकी दो कलाएँ और प्रकट हो जाती हैं। यहाँ भी यह स्मरण रहे कि जिसे हम 'अग्नि' कहते हैं, वह भौतिक अग्नि तथा रसरूप सोम अभी बहुत पीछे उत्पन्न होनेवाले हैं। ये अग्नि और सोम अक्षर पुरुषके केवल शक्तिविशेष हैं, इन्हें 'मैटर' न समझा जाय। बाह्य गतिशील (भीतरसे बाहरको जानेवाली) प्राणशक्तिको अग्नि और अन्तर्गतिशील (बाहरसे भीतरकी ओर जानेवाली) प्राणशक्तिको सोम कहा जाता है। अग्नि विकासशील है और सोम संकोचशील। अग्नि प्रसरणशील (फैलनेवाला) है, तो सोम आकुञ्चनशील (सिकुड़नेवाला)। अग्नि विरलभाव (पतलापन) करनेवाला है, तो सोम घनीभाव (ठोसपन, मोटापन) करनेवाला। किसी भी वस्तुका विकास वा प्रसरण होते-होते जब अन्तिम सीमापर पहुँच जाता है—जहाँ आगे विकास सम्भव ही न हो, प्रत्येक अवयव विशकलित (पृथक्-पृथक्) हो चुका हो, तब फिर स्वभावतः संकोचन आरम्भ हो जाता है, इसलिये वैज्ञानिक प्रक्रियामें ऐसा समझा गया है कि अग्नि ही सोम बन जाता है और सोम फिर अग्निमें गिरते ही अग्निरूप हो जाता है। इन्हीं विकास और संकोचनके परिणामरूपमें पिण्डों (सूर्य, पृथिवी और गोलों) की उत्पत्ति होती है और उन पिण्डोंमें भी ये ही अग्नि और सोम बराबर यज्ञ[2] करते रहते हैं। यों अक्षर पुरुषकी पाँच कलाएँ सिद्ध हुईं —ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। इनमें आदिके तीन अन्तश्चर, अन्तर्यामी या हृद्य (केन्द्रमें रहनेवाले) और आगेके दोनों अग्नि और सोम बहिश्चर (पिण्डमें व्याप्त रहनेवाले) या सूत्रात्मकरूप हैं।

आदिके तीन रूपोंमें प्रतिष्ठा-बल—ब्रह्मा और आदान-बल—विष्णुको बाहर जानेका अवसर नहीं आता, ये केन्द्रमें ही अपना-अपना कार्य करते हैं; किंतु उत्क्रान्ति-बल—इन्द्र केन्द्रमें रहता हुआ भी केन्द्रस्थ शक्तिको बाहर फेंकनेवाला है, इसलिये वह स्वयं भी उत्क्रान्त होता है अर्थात् बाहर जाता है। बाहर जानेपर अग्नि और सोमके साथ भी उसका योग होता है। अथवा सूक्ष्म दृष्टिसे यों कहो कि अग्नि और सोमका प्रादुर्भाव उत्क्रान्तिके कारण ही है, अतः वे दोनों इन्द्रके ही रूपान्तर हैं। बस, इन्द्र, अग्नि और सोम—इन तीनों सम्मिलित शक्तियोंका नाम 'महेश्वर' या 'शिव' है। अक्षर पुरुष ही जगत्कर्ता ईश्वर कहाता है, यह कह चुके हैं। उसकी प्रत्येक कला भी 'ईश्वर' है; किंतु तीन कलाएँ जहाँ सम्मिलित हों, उस रूपको महत्त्वके कारण 'महेश्वर' कहा जाता है। इसीलिये भगवान् शंकर 'त्रिनेत्र' हैं, वे तीन बलोंके 'नेता' हैं। श्रुतिमें भी उनका नाम 'त्र्यम्बक' है और पुराणादिमें तो स्पष्ट ही उनके तीन नेत्रोंके नाम बताये गये हैं—

वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्।

सूर्यमण्डल 'इन्द्रप्रधान' है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

(श्रुति)

'जैसे पृथिवीके गर्भमें अग्नि है, वैसे सूर्यमण्डलके गर्भमें इन्द्र है।'

चन्द्रमाका 'सोम' मण्डल होना प्रसिद्ध ही है और अग्नि तो अग्नि है ही; यों इन्द्र, अग्नि और सोम—तीनोंकी समष्टिका महेश्वर होना स्पष्ट बताया जाता है। यद्यपि हम कह चुके हैं कि अक्षरकी कलाएँ शक्तिरूप हैं—प्रत्यक्ष-दृश्य भौतिक अग्नि, सोम, सूर्य आदिसे वे बहुत परे हैं; किंतु उन अदृश्य शक्तियोंका परिचय शास्त्रमें हमें इन सूर्य आदिके द्वारा ही देता

१. ये सब ग्रन्थ संस्कृतभाषामें पद्यबद्ध हैं। आदिके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

१. यज्ञकी व्याख्याके लिये देखो 'कल्याण श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क' पृष्ठ ५२१।

है। यदि ऐसा न किया जाय तो उन अदृश्य शक्तियोंका ज्ञान ही मनुष्योंको कैसे हो। ईश्वरकी उपासना प्रकृतिको या जगत्को आलम्बन या प्रतीक बनाकर ही की जाती है। इन सूर्य-पृथिवी आदि मण्डलोंकी परिचालिका भी तो वही अक्षरशक्ति है, इन्हींमें कार्य करती हुई उस शक्तिको हम पाते हैं और इनमें ही उसकी दृष्टि रखकर उपासना करते हैं। यही क्यों, वह शक्ति भी तो इन्हीं पाशोंके द्वारा हमारा सबका नियमन करती है। इसलिये भगवान् शिव इन तीनों नेत्रोंसे सब जगत्को देखते हैं, या सब जगत् इनके द्वारा उन्हें देखता है (नेत्रोंसे ही मनुष्यका भाव पहचाना जाता है)। किसी भी प्रकारसे उलट-पुलटकर समझ लीजिये, वैज्ञानिक भाषामें सब तरह कहा जा सकता है।

तीन बलोंकी समष्टि होनेके कारण तीनोंके धर्म शिवमें व्यवहृत होते हैं। इन्द्र उत्क्रान्ति (विसर्ग) बलका अधिष्ठाता है और उत्क्रान्तिसे ही वस्तुका विनाश होता है। जब आमदसे व्यय अधिक हो, शनैः-शनैः जीर्ण होकर प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपको खो देता है, इसी दृष्टिसे महेश्वरको 'संहारक' या 'प्रलयकर्ता' कहा जाता है। आदानसे (बाहरसे खुराक लेनेसे) वस्तुका पालन होता है और आदान ही यज्ञ है, इसलिये विष्णुको पालक वा यज्ञरूप और प्रतिष्ठासे ही वस्तुका स्वरूप बनता है, इसलिये ब्रह्माको 'उत्पादक' कहा जाता है; किंतु यह सब अपेक्षाकृत है। एक वस्तुकी दृष्टिसे जिसे 'उत्क्रान्ति' कहते हैं, दूसरी वस्तुके लिये वही 'प्रतिष्ठा' या 'आगति' (आदान) हो जाती है। जैसे दीपशिखा उत्क्रान्त हुई, उससे कज्जलकी प्रतिष्ठा (जन्म) हो गयी। समुद्रसे जलकी उत्क्रान्ति हुई—उससे मेघका जन्म हो गया। सूर्यमण्डलसे किरणोंकी उत्क्रान्ति हुई, इससे पृथिवी या पार्थिव ओषधि आदिका पालन होता है। सूर्यसे प्रकाश उत्क्रान्त हुआ, उससे चन्द्रमण्डल प्रकाशित या पालित हो गया। सूर्यने रसका आदान किया, इससे जलका सरोवर सूख गया। यही न्याय सृष्टि और प्रलयमें भी चलता है। स्वयम्भू आदि मण्डलोंसे प्राणोंकी उत्क्रान्ति होकर परमेष्ठी, सूर्य आदि नये-नये मण्डल बनते हैं; सूर्यसे पृथिवी बनती है और वह इसकी शक्तियोंको अपनेमें ले लेता है, तो यह लीन हो जाती है। तात्पर्य यह कि एकका आदान दूसरेकी दृष्टिसे विसर्ग और एकका विसर्ग दूसरेकी दृष्टिसे आदान कहा जा सकता है। एकका विनाश दूसरेका उत्पादक है। बीज नष्ट हुआ, अङ्कुरने जन्म लिया; इसलिये आदान और विसर्गमें ही प्रतिष्ठा भी अनुगत है। इसी विचारसे स्पष्ट कहा जाता है कि—

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुषके तो तीन रूप हैं, एक ही शक्तिके तो तीन व्यापार हैं—दृष्टिमात्रका भेद है। एक ही बिन्दुपर तीनों शक्तियाँ रहती हैं; किंतु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियोंमें विशेषकर शक्तियोंका स्थान-भेद देखा गया है; वहाँ प्रतिष्ठा-बल मध्यमें और गतिबल तथा आगति-बल इधर-उधर रहते हैं। जैसा कि मनुष्य-शरीरके अन्तर्गत हृदयकमलमें ब्रह्माकी, नाभिमें विष्णुकी और मस्तकमें शिवकी स्थिति मानी गयी है। मनुष्य-शरीर पार्थिव है, पृथिवीसे जो प्राण मानव-शरीरमें आता है, वह नीचेसे ही आता है। इसलिये आदान-शक्तिके अधिष्ठाता विष्णुकी स्थिति नाभिमें कही गयी है और उत्क्रमण उससे विपरीत दिशामें होना सिद्ध ही है; इससे महेश्वरकी स्थिति शिरोभागमें मानी जाती है। सम्पूर्ण शरीरकी प्रतिष्ठा हृदय है, हृदयमें ही एक प्रकारकी तिलमात्र ज्योति याज्ञवल्क्यस्मृति आदिमें बतायी जाती है, वहींसे सब शरीरको चेतना मिलती है, अतः वह ब्रह्माका स्थान हुआ। संध्योपासनमें इन्हीं स्थानोंमें इन तीनों देवताओंका ध्यान होता है; किंतु वृक्षोंमें यह स्थिति कुछ बदल गयी है, वहाँके लिये यों कहा जाता है—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।
अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः॥

यहाँ अश्वत्थको प्रधान वृक्ष मानकर उपलक्षणरूपसे अश्वत्थका नाम लिया गया है, सभी वृक्षोंकी स्थिति इस प्रकार है। उनकी प्रतिष्ठा (जीवन) मूलपर निर्भर है, इसलिये मूलमें ब्रह्मा कहा जाता है। मूलसे जो रस आता है, उसके द्वारा वृक्षका पालन या पोषण मध्यभागसे होता है। आया हुआ रस यज्ञद्वारा गुदा, त्वचा आदिके रूपमें मध्यभागमें ही परिणत होता है, इससे यज्ञरूप पालक विष्णुकी स्थिति मध्यमें मानी गयी है और यह रस ऊपरके भागसे उत्क्रान्त होता रहता है; इसीसे वृक्षके ऊपरी भागसे शाखा, पत्ते आदि निकलते रहते हैं। अतएव उत्क्रान्तिका अधिपति महेश्वर वहाँ भी अग्रभागमें ही माना गया है। यह सब इन्द्रप्राणरूपसे महेश्वरकी उपासना है।

रुद्र और शिव

अब अग्नि और सोमके सम्बन्धको लेकर भी शिव-तत्त्व का विचार आवश्यक है; क्योंकि तीनों प्राणोंकी समष्टिका

नाम 'महेश्वर' या 'शिव' कहा गया है। अग्निको 'रुद्र' कहते हैं। 'अग्निर्वै रुद्रः' (शतपथब्रा० ५ । ३ । १ । १०, ६ । १ । ३ । १०), 'अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः स एषोऽत्र रुद्रो देवता' (शतपथब्रा० ९ । १ । १ । १) इत्यादि अनेकानेक श्रुतियोंमें अग्निको 'रुद्र' कहा गया है । यद्यपि इन वाक्योंमें सामान्यरूपसे अग्निको 'रुद्र' कहा है, तथापि देवताओं-की स्वरूपविवेचनाके लिये इस सम्बन्धमें कुछ विशेष समझने-की आवश्यकता है। अक्षरकी पाँच कलाएँ और क्षर पुरुषसे पाँच प्रकृतियोंका प्रादुर्भाव होकर उनसे उत्पन्न होनेवाले स्वयम्भू आदि पाँच मण्डल कहे जा चुके हैं । ये मण्डल क्षर पुरुषकी आधिदैविक पाँच कलाएँ कही जाती हैं । इनमें यद्यपि सब अक्षर-प्राण सर्वत्र व्यापक हैं, तथापि एक-एक मण्डलमें क्रमसे एक-एक अक्षर-प्राणकी प्रधानता रहनेसे वह मण्डल उसीका कहा जाता है। स्वयम्भूमण्डलमें ब्रह्मा, परमेष्ठी-में विष्णु, सूर्यमें इन्द्र, पृथिवीमें अग्नि और चन्द्रमामें सोमकी प्रधानता है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ।

—इत्यादि श्रुतियोंमें पृथिवीमें अग्निकी प्रधानता सर्वत्र घोषित है। पृथिवीमें अग्नि दो प्रकारसे रहता है—चित्य और 'चिते निधेय', यह पूर्व ईश्वर-निरूपणमें कह आये हैं। पृथिवी-पिण्डकी सृष्टिके अनन्तर जो अग्नि-प्राण इस पिण्डमें प्रविष्ट हुआ है, वह 'अमृताग्नि' नामसे ब्राह्मणोंमें व्यवहृत है। वह अमृताग्नि पृथिवीके गोलेसे प्रतिक्षण निकलता हुआ सूर्यमण्डलतक जाता है, इसकी व्याप्तिको कई भागोंमें बाँटकर उनके नाम श्रुतिमें 'स्तोम' वा 'अहर्गण' रक्खे गये हैं और उन भागोंके आधारपर ही त्रिलोकी[1]की कल्पना है। अमृताग्नि-की स्थिति पृथिवी-गोलके हृदय या केन्द्रमें है। वहाँसे पृथिवी-गोलकी परिधितक तीन 'अहर्गण' मान लिये जाते हैं। इन तीनसे आगे क्रमसे छः-छःका एक-एक विभाग है, जिसे पृथक्पृथक् स्तोमके नामसे पुकारा जाता है। पहला स्तोम ३+६=९ अहर्गणपर पूरा होता है, जिसे 'त्रिवृत्स्तोम' कहते हैं, (त्रिवृत् नाम ९ का है), दूसरा ९+६=१५ पर पूर्ण होनेवाला पञ्चदशस्तोम कहलाता है और तीसरा १५+६=२१ एकविंशस्तोम है । नौतक पृथिवीलोक, पंद्रहतक अन्तरिक्ष और इक्कीसतक द्युलोक माना गया है । इक्कीसवें भागका सूर्य-मण्डलसे सम्बन्ध है—'असौ वा आदित्यो एकविंशः' (श्रुति) । इस त्रिलोकीमें त्रिवृत् (९) स्तोमतक इस अग्निका नाम 'अग्नि' ही रहता है, अन्तरिक्षलोकमें अर्थात् ९ से १५ तक इसे 'वायु' कहते हैं और १५ से २१ तक द्युलोकमें 'आदित्य' नामसे इसका निर्देश होता है। यह सब विषय निरुक्त दैवतकाण्डके प्रथमाध्यायमें वर्णित है। अस्तु, तात्पर्य यह कि एक ही अग्निकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—अग्नि, वायु, आदित्य। अग्निके सहचर 'आठ वसु', वायुके सहचर 'एकादश रुद्र'[1] और आदित्यके सहचर 'द्वादश आदित्य' कहलाते हैं। अर्थात् अग्नि आठ रूपोंमें, वायु ग्यारह रूपोंमें और आदित्य बारह रूपोंमें प्राप्त होता है। इससे आगे (सूर्यमण्डल-से परे) यह अमृताग्नि सोमरूपमें परिणत होकर बारह अहर्गणतक और जाता है, जिसमें २१+६=२७ का त्रिणव-स्तोम और २७+६=३३ तक त्रयस्त्रिंशस्तोम कहा जाता है। ये दोनों स्तोम त्रिलोकीसे बाहर हैं, इनमें 'दिक्सोम' और 'भास्वरसोम'—दो प्रकारके सोमकी स्थिति है। यह सोम फिर ऊपरसे नीचेको आकर अग्निका अन्न (खाद्य) बनता रहता है, इसी 'अन्न' से 'अन्नाद' अग्निका जीवन है । जिस प्रकार अग्निकी तीन अवस्थाएँ बतायी गयी हैं, वैसे ही सोमकी भी तीन अवस्थाएँ हैं—सूक्ष्म दशामें 'सोम', किञ्चित् घन होनेपर 'वायु' और अधिक घन होनेपर उसे ही 'अप्' कहते हैं । इसलिये सूर्यसे ऊपरका परमेष्ठिमण्डल (महः और जनलोक) 'अप्लोक', 'वायुलोक' या सोमलोक कहलाता है। स्मरण रहे कि अग्निकी अवस्थाओंमें भी एक वायुका उल्लेख आया है, वह 'आग्नेय वायु' है और सोमकी अवस्थाओंका यह 'सौम्य वायु' है । ये दोनों प्राणरूप हैं अर्थात् शक्तिविशेष हैं, 'मैटर' या भूत नहीं । यह भी स्मरण रहे कि बिना अग्निके सोम या बिना सोमके अग्नि कहीं रह नहीं सकता, इसलिये सौम्य वायुमें भी अग्निका सम्बन्ध है; किंतु सोमकी प्रधानता-के कारण उसे 'सौम्य वायु' कहते हैं और आग्नेय वायुमें भी सोम है, किंतु अग्निकी प्रधानता है । पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें आग्नेय वायु रहता है और सूर्य और परमेष्ठीके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें सौम्य वायु रहता है । यही आग्नेय वायु भौतिक वायु और भौतिक अग्निका उत्पादक है, अतएव श्रुतिमें कहा गया है कि

१. त्रिलोकी दस प्रकारकी है । उनमें यह त्रिलोकी 'सौम्य त्रिलोकी' कही जाती है ।

१. यह वायु देवतारूप वायु है, भौतिक वायु नहीं । भौतिक वायु इससे उत्पन्न होता है ।

'मरुतो रुद्रपुत्रासः'-- मरुत् रुद्रके पुत्र हैं । 'मरुत्' नाम भौतिक वायुका है और इस अग्निको भी रुद्रका वीर्य कहा जाता है, जिससे कि रुद्रका नाम 'कृशानुरेताः' है । सूर्यके ताप (धूप) में भी रुद्रप्राणकी ही प्रखरता रहती है । अतः धूपको 'रौद्र' या 'रौद' कहते हैं । रुद्रप्राणसे ही भूमिके स्तरमें पारद बनता है, अतः उसे 'रुद्रवीर्य' कहा गया है । यह सब 'ब्रह्मविज्ञान' ग्रन्थका विषय है, यहाँ इसका विशेष विस्तार किया नहीं जा सकता । यहाँ इतना ही कहना है कि सौम्य वायु 'साम्ब सदाशिव' और आग्नेय वायु 'रुद्र' कहा जाता है । आग्नेय वायु उपद्रावक है । वह रूक्षता पैदा करता है, रोग उत्पन्न करता है, हर एक पदार्थका भेदक है, अतः वह 'रुद्र' (रुलानेवाला भयंकर) कहा गया है और सौम्य वायु सबका प्राणप्रद, सब उपद्रवोंका शान्त करनेवाला संयोजक है । अतः वह 'शिव' है । जैसा कि आगे कहते हैं— रुद्र भी किसी अवस्थामें 'शिव' होता है; किंतु सौम्य वायु सदा ही शिव है, अतः उसे 'सदाशिव' कहते हैं । अम्बा वैदिक परिभाषामें 'जल' का नाम है । सौम्य वायु जलसे मिश्रित रहता है, अतः वह 'साम्ब सदाशिव' कहलाता है ।

रुद्रके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

अग्निर्वा रुद्रः, तस्यैते द्वे तन्वौ, घोरान्या च शिवान्या च ।

अर्थात् अग्निका नाम रुद्र है । उसके दो रूप हैं—एक घोर, दूसरा शिव । जो अग्निका रूप उपद्रावक, रोगप्रद, नाशक है, उसे 'घोररुद्र' कहते हैं और जो लाभप्रद, रोगनाशक, रक्षक है, उसे 'शिव' कहते हैं । यों रुद्र भी 'शिव' माने गये हैं । घोर रुद्रोंसे **'मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्'**, **'मा नः स्तोके तनये मा न आयुषि'** **'नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे'** इत्यादि रक्षाकी प्रार्थना या **'परो मूजवतोऽतीहि'** इत्यादि दूर रहनेकी प्रार्थना की जाती है, उनसे बचना आवश्यक है और शिव रुद्रकी पूजा-उपासना होती है, उनकी रक्षामें हम सब रहना चाहते हैं । अग्निमें जितना सोम-सम्बन्ध है, वह उतना ही 'शिव' (कल्याणकर) हो जाता है, यह शतपथ--नवमकाण्डमें आरम्भमें ही स्पष्ट किया गया है ।

रुद्र ग्यारह प्रसिद्ध हैं । आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक या अधियज्ञ-भेदसे इन ग्यारहके पृथक्-पृथक् नाम श्रुति, पुराण आदिमें प्राप्त होते हैं । शतपथ—चतुर्दशकाण्ड (बृहदारण्यक उपनिषद्)—५ अध्याय ९ ब्राह्मणमें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्नोत्तरमें देवतानिरूपणमें (**दशेमे पुरुषे प्राणाः, आत्मैकादशः**) पुरुषके दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा आध्यात्मिक रुद्र बताये गये हैं । दस प्राणोंकी व्याख्या अन्यत्र श्रुतिमें इस प्रकार है--**'सप्त शीर्षण्याः प्राणाः, द्वाववाञ्चौ, नाभिर्दशमी'**—मस्तकमें रहनेवाले सात प्राण, दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख, नीचेके दो प्राण, मल-मूत्र त्यागनेके दो द्वार और दशवीं नाभि । अन्तरिक्षस्थ वायुप्राण ही हमारे शरीरोंमें प्राणरूप होकर प्रविष्ट है और वही इन दसों स्थानोंमें कार्य करता है, इसलिये इन्हें रुद्रप्राणके सम्बन्धसे 'रुद्र' कहा गया है । ग्यारहवाँ आत्मा भी यहाँ 'प्राणात्मा' ही विवक्षित है, जो कि इन दसोंका अधिनायक 'मुख्य प्राण' कहाता है । आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान (विद्युत्), पवमान, पावक और शुचि नामसे कहे गये हैं । इनमें आदिके आठ शिवकी अष्टमूर्ति कहाते हैं, जिनका निरूपण आगे लिखते हैं और आगेके तीन (पवमान, पावक और शुचि) घोर रूप हैं । ये उपद्रावक रुद्र (वायुविशेष) हैं । इनमें शुचि सूर्यमें, पवमान अन्तरिक्षमें और पावक पृथिवीमें कार्य करता है; किंतु हैं तीनों अन्तरिक्षके वायु । अष्टमूर्तिकी उपासना है और तीनोंसे पृथक् रहनेकी प्रार्थना है । आधिदैविक एकादश रुद्र तारामण्डलोंमें रहते हैं--इनके कई नाम भिन्न-भिन्न रूपसे मिलते हैं-(१) अज*एकपात्, (२) अहिर्बुध्न्य, (३) विरूपाक्ष, (४) त्वष्टा अयोनिज या गर्भ, (५) रैवत, भैरव, कपर्दी वा वीरभद्र, (६) हर, नकुलीश, पिङ्गला या स्थाणु, (७) बहुरूप, सेनानी या गिरीश, (८) त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर या सुरेश्वर, (९) सावित्र, भूतेश या कपाली, (१०) जयन्त, वृषाकपि, शम्भु या संध्य, (११) पिनाकी, मृगव्याध, लुब्धक या शर्व--इनका पुराणोंमें स्थान-स्थानपर विस्तृत वर्णन है । ये सब तारामण्डलमें तारारूपसे दिखायी देते हैं । रुद्रप्राण इनमें अधिकतासे रहता है और इनकी रश्मियोंसे भूमण्डलमें आया करता है, इसीसे इन्हें 'रुद्र' कहा गया है । इनमें भी 'घोर' और 'शिव' दोनों प्रकारकी रुद्राग्नि है । इनके आधारपर फलाफल हिंदू-शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं—जैसे कि श्लेषा-नक्षत्रपर सूर्यके रहनेपर जो वर्षा होती है, उसे रोगोत्पादक और मघाकी वर्षाको रोगनाशक माना जाता है, इत्यादि । रोम देशके पुराने तारामण्डलके चित्रोंमें सर्पधारी, कपालधारी,

* यह नामावली श्रीगुरुचरणोंकी 'देवतानिवित्' पुस्तकके आधारपर लिखी गयी है । —लेखक

शूलधारी आदि भिन्न-भिन्न आकारोंके इन तारोंके चित्र दिखायी देते हैं, उन तारोंका आकार ध्यानपूर्वक देखनेपर उसी संनिवेशका प्रतीत होता है, इसीलिये उनके वैसे आकार बनाये गये हैं। ऐसे ही शिवके भी भिन्न-भिन्न रूप उपासनामें प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें कई एक शिवके आख्यान इन तारोंके ही सम्बन्धके हैं, जैसा कि शिवने ब्रह्माका एक मस्तक काट दिया—इस कथाका 'लुब्धकबन्धु' तारेसे सम्बन्ध है। यह कथा ब्राह्मणोंमें भी प्राप्त होती है और वहाँ इसका तारापरक ही विवरण मिलता है। दक्षयज्ञकी कथा भी आधिदैविक और आधिभौतिक—दोनों भावोंसे पूर्ण है। वह मनुष्याकारधारी शिवका चरित्र भी है और 'दक्षका सिर काटकर उसके बकरेका सिर लगाया गया'—इसका यह आशय भी है कि प्राचीन कालमें नक्षत्रोंकी गणना कृत्तिकाको आरम्भमें रखकर होती थी, किंतु उसे अश्विनी (मेष) से आरम्भ किया गया। यों ही कई एक कथाएँ आधिदैविक भावसे हैं। यज्ञमें ग्यारह अग्नि होते हैं। पहले तीन अग्नि हैं—गार्हपत्य, आहवनीय और धिष्ण्य। इनमें गार्हपत्यके दो भेद हो जाते हैं। इष्टिमें जो गार्हपत्य था, वह सोमयागमें 'पुराणगार्हपत्य' कहाता है और इष्टिके आहवनीयको सोमयागमें गार्हपत्य बना लेते हैं—वह 'नूतनगार्हपत्य' कहाता है। धिष्ण्याग्निके आठ भेद हैं—जिनके नाम श्रुतिमें आग्नीध्रीय, आच्छावाकीय, नेष्ट्रीय, पोत्रीय, ब्राह्मणाच्छंसीय, होत्रीय, प्रशास्त्रीय और मार्जालीय हैं। आहवनीय एक ही प्रकारका है, यों ग्यारह होते हैं। ये सब अन्तरिक्षस्थ अग्नियोंकी अनुकृति हैं—इसलिये ये भी एकादश रुद्र कहे जाते हैं। ये शिवरूप ही यज्ञमें ग्राह्य हैं, घोर रूपोंका यज्ञमें प्रयोजन नहीं।

एक रुद्र और अनन्त रुद्र

'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' और **'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्'**, यों तन्त्रोंमें एक रुद्र और असंख्यात रुद्र—दोनों प्रकारके वर्णन प्राप्त होते हैं। इसकी व्यवस्था शतपथब्राह्मण—नवमकाण्डके आरम्भमें (प्रथमाध्याय, प्रथम ब्राह्मण) ही इस प्रकार की गयी है कि 'क्षत्र रुद्र' एक है और असंख्यात रुद्र 'विट्' (वैश्य) रुद्र हैं, विट्को ही 'प्रजा' कहते हैं। इसका अभिप्राय यही होता है कि एक रुद्र राजा—अधिनायक मुख्य है और अनन्त रुद्र उसकी प्रजा—अनुगामी हैं। मुख्य रुद्रको 'शतशीर्षा', 'सहस्राक्ष', 'शतेषुधि' कहा गया है। उसकी उत्पत्ति प्रजापतिके मन्यु (क्रोध) और अश्रुके सम्बन्धसे वहाँ बतायी गयी है। **'नमस्ते रुद्र मन्यवे'** इत्यादि मन्त्रोंकी व्याख्या भी वहाँ है। अस्तु—इसका तात्पर्य पूर्वोक्त ही है कि अग्नि (प्रजापतिका मन्यु वा क्रोध) और सोम (अश्रुजल) के सम्बन्धसे 'रुद्र' प्राण होता है। जिनमें 'विप्रुट्'—बिन्दुमात्रका सम्बन्ध है, वे वायुके अनन्त भेद असंख्यात रुद्र बताये गये हैं। विकृत वायुके भिन्न-भिन्न अंश जो पृथिवी, अन्तरिक्ष या सूर्यलोकमें व्याप्त हैं, उनका ही विस्तृत वर्णन रुद्राध्यायके मन्त्रोंमें आया है—उन रुद्रोंके अस्त्र आदि भी बताये हैं। **'येषां वात इषवः'** इत्यादि और किस तरह इनका प्रभाव प्राणियोंपर पड़ता है; इसका भी वर्णन है। **'ये यामे पात्रे विध्यन्ति'** इत्यादि स्थानविशेष भी इनके आये हैं—**'परो मूजवतोऽतीहि'** (आप मूजवान् पर्वतसे परे चले जाइये)। मूजवान् पर्वत हेमकूट (हिंदूकुश) का प्रत्यन्त पर्वत है—जो कि पश्चिमके सुलेमान पर्वतसे बहुत उत्तर, श्वेतगिरि (सफेद कोह) से भी उत्तर है। इसीसे पूर्वकी ओर क्रौञ्चगिरि (काराकुरम्) है, जिसका विदारण स्वामिकार्तिकेयके द्वारा पुराणोंमें वर्णित है। 'उमावन', 'शरवण' आदि स्थान इसीके आसपास हैं। वहाँसे आगेका वायु बहुत ही विकृत माना जाता है, इसीलिये विकृत वायुसे वहाँसे चले जानेकी प्रार्थना की गयी है। अस्तु, रुद्रका विज्ञान न समझकर आजकलके कई विद्वान् रुद्रपाठवर्णित रुद्रोंको 'जर्म्स' कहने लगे हैं; किंतु हैं वे विकृतवायुप्रविष्ट 'रुद्रप्राण।' यह सब 'घोर रुद्र' का विस्तार है। रुद्रका वर्णन श्रुति, मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंमें ओतप्रोत है। घोर रुद्र दूरसे नमस्कार्य हैं और शिवरुद्र उपास्य।

अष्टमूर्ति शिव

अक्षर पुरुषकी 'इन्द्र', 'अग्नि', 'सोम'-इन तीनों कलाओंके एक अधिष्ठाता 'महेश्वर' या 'शिव' कहाते हैं—इस पूर्वोक्त तत्त्वका स्मरण रखिये। जितने पिण्ड बने हैं, वे सब अग्नि और सोमसे बने हैं; किंतु किसी पिण्डमें अग्निकी और किसीमें सोमकी प्रधानता है। स्वयम्भू-मण्डल आग्नेय, परमेष्ठि-मण्डल सौम्य, फिर सूर्यमण्डल आग्नेय, चन्द्रमा सौम्य और फिर पृथिवी आग्नेय है। जो-जो आग्नेय हैं, उन्हें 'महेश्वर', 'रुद्र' या 'शिव' कहकर पूजते हैं। सोमसम्पृक्त अग्निको ही पूर्वप्रकरणमें 'रुद्र' कहा जा चुका है।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशः॥

'जो यह लाल (बैंगनी), गुलाबी, खाकी या मिश्रित रूपका दिखायी देता है और इसके चारों ओर जो हजारों रुद्र हैं' इत्यादि वर्णन सूर्यमण्डलका ही रुद्ररूपसे है, वही सर्ववर्ण है और उसके चारों ओर सब देवता रहते हैं— 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्।' अस्तु, सूर्यमण्डलसे जो मण्डलाकार आग्नेय प्राण निकलता रहता है, उसे 'संवत्सराग्नि' कहते हैं। इसकी पूर्ति एक वर्षमें होती है, इसलिये वर्षको भी 'संवत्सर' कहा करते हैं। यह सौर अग्नि ही पृथिवीमें 'वैश्वानर' अग्निरूपसे परिणत होता है, यह निरुक्तकारने सिद्ध किया है। भूमण्डलके चारों ओर बारह योजन ऊपरतक एक 'भूवायु' है, जिसमें भूमिका-सा आकर्षण है। पक्षी उसीके आधारपर रहते हैं, इसे ज्योतिषमें 'आवह वायु' और वैदिक परिभाषामें 'एमूष वराह' या 'उषा' कहते हैं। इस उषारूप पत्नीमें संवत्सराग्निरूप पुरुष जब गर्भाधान करता है (प्रविष्ट होता है) तब दोनोंके योगसे 'कुमार' नामक अग्निकी उत्पत्ति होती है—यह सब विषय शतपथब्राह्मण—काण्ड ६, अध्याय १, ब्राह्मण तीनमें स्पष्ट है। यही कुमाराग्नि 'कुमारो नीललोहितः' कहकर रुद्ररूपसे उपास्य माना गया है। इस कुमाराग्निके आठ रूप हैं, जो कि 'चित्राग्नि' नामसे कहे जाते हैं। इन आठों रूपोंका विवरण उनके आठ नाम—रुद्र, सर्व (शर्व), पशुपति, उग्र, अशनि (भीम), भव, महादेव और ईशान और उनके आठ स्थान—अग्नि (भौतिक तेज), अप् (जल), ओषधि (पृथिवी), वायु, विद्युत् (वैश्वानराग्नि, यजमानका आत्मा), पर्जन्य (आकाश), चन्द्रमा और सूर्य शतपथके उक्त स्थानमें स्पष्ट रूपसे गिनाये हैं। पौराणिक निरूपणमें जो नामभेद हैं— उन्हें हमने कोष्ठोंमें प्रकट कर दिया है। इसी श्रुतिका संकेत करते हुए महिम्नःस्तोत्रमें कहा गया है—

> भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोऽग्रः सहमहां-
> स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
> अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
> प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते॥

उक्त आठों स्थानोंमें जो आग्नेय प्राण हैं—वे 'रुद्र' या 'शिव' रूपसे उपास्य हैं, यही शिवकी आठ मूर्तियाँ कही जाती हैं। इसके आगे ही शतपथके काण्ड ६ अ० २ ब्रा० १ में इस कुमाराग्निसे पाँच पशुओं—पुरुष, अश्व, गो, अज और अविकी उत्पत्ति बतायी है। ये पाँचों भी अग्नि (प्राणविशेष) हैं, जिनकी प्रधानतासे आधिभौतिक पशुओंके भी यही नाम पड़ते हैं। इन पशुओंका पति (अधिनायक) होनेके कारण भी यह कुमाराग्नि—रुद्र 'पशुपति' कहाता है।

शिव और शक्ति

रुद्र-निरूपणमें पूर्व कह आये हैं कि पार्थिव अग्नि इक्कीस अहर्गण (एकविंशस्तोम) तक अर्थात् द्युलोक या स्वर्लोकतक (सूर्यमण्डलतक) व्याप्त है, उससे आगे सोममण्डल है। अग्निकी गति ऊपरको और सोमकी गति ऊपरसे नीचेकी ओर रहती है। यह भी कह चुके हैं कि विशकलनकी सीमापर पहुँचकर अग्नि ही सोमरूपसे परिणत हो जाता है और फिर ऊपरसे नीचेकी ओर आकर अग्निमें प्रवेशकर सोम अग्नि बन जाता है। इनमें अग्निको 'शिव' और सोमको 'शक्ति' कहते हैं। 'सोम' शब्द उमासे ही बना है— 'उमया सहितः सोमः।' शक्तिरूपकी विवक्षा कर उमा भगवती कह लीजिये और शक्तिमान् द्रव्य या प्राणको शक्तिका आश्रय, शक्तिसे अतिरिक्त मानकर 'उमया सहितः सोमः' कह लीजिये, बात एक ही है। भेद-अभेदकी विवक्षामात्रका भेद है। यह तत्त्व बृहज्जाबालोपनिषद्—ब्राह्मण २ में स्पष्ट है—

> अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते। रौद्री घोरा या तैजसी तनूः। सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः।

> अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्याकला स्वयम्।
> स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसि (सी)॥ १॥
> द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
> तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चान (नि) लात्मिका॥ २॥
> वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
> तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥ ३॥
> अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
> अतएव हविः क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ४॥
> ऊर्ध्वशक्तिमयं (यः) सोम अधो (धः) शक्तिमयोऽनलः।
> ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत्॥ ५॥
> अग्ने (ग्नि) रूर्ध्वं भवत्येषा (ष) यावत्सौम्यं परामृतम्।
> यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः॥ ६॥
> अतएव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा।
> यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत्॥ ७॥
> आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः।
> तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः॥ ८॥

शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन ॥ ९ ॥

इसका तात्पर्य है कि 'इस सब जगत्के आत्मा अग्नि और सोम हैं या इसे अग्निरूप भी कहते हैं। घोर तेज (अग्नि) रुद्रका शरीर है; अमृतमय, शक्ति देनेवाला सोम शक्तिरूप है। अमृतरूप सोम सबकी प्रतिष्ठा है, विद्या और कला आदिमें तेज (अग्नि) व्याप्त है। स्थूल या सूक्ष्म सब भूतोंमें रस (सोम) और तेज (अग्नि) सब जगह व्याप्त हैं। तेज दो प्रकारका है—सूर्य और अग्नि; सोमके भी दो रूप हैं—रस (अप्) और अनिल (वायु)। तेजके विद्युत् आदि अनेक विभाग हैं और रसके मधुर आदि भेद हैं। तेज और रससे ही यह चराचर जगत् बना है। अग्निसे ही अमृत (सोम) उत्पन्न होता है और सोमसे अग्नि बढ़ता है, अतएव अग्नि और सोमके परस्पर हविर्यज्ञसे सब जगत् उत्पन्न है। अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर अर्थात् ऊपरको जाकर सोमरूप हो जाता है और सोम अधःशक्तिमय होकर अर्थात् नीचे आकर अग्नि बन जाता है, इन दोनोंके सम्पुटमें निरन्तर यह विश्व रहता है। जबतक सोमरूपमें परिणत न हो, तबतक अग्नि ऊपर ही जाता रहता है और सोम—अमृत जबतक अग्निरूप न बने तबतक नीचे ही गिरता रहता है। इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे हैं और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है। दूसरी स्थितिमें फिर (सोमकी आहुति हो जानेपर) अग्नि ऊपर और पावन-सोम नीचे हो जाता है। ऊपर जाता हुआ अग्नि अपनी आधारशक्ति सोमसे ही घृत है (बिना सोमके उसका जीवन नहीं) और नीचे आता हुआ सोम शिवकी ही शक्ति कहाता है अर्थात् बिना शिवके आधारके वह भी नहीं रह सकता। दोनों एक दूसरेके आधारपर हैं। शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है, शिव और शक्ति जहाँ व्याप्त न हों—ऐसा कोई स्थान नहीं।'

अब इसपर और व्याख्या लिखनेकी आवश्यकता नहीं रही। अग्निसे सोम और सोमसे अग्नि बनते हैं—वे दोनों एक ही तत्त्व हैं। इसलिये शिव और शक्तिका अभेद (एकरूपता) माना जाता है, एकके बिना दूसरा नहीं रहता। इसलिये शिव और उमा मिलकर एक अङ्ग है, उमा शिवकी अर्द्धाङ्गिनी है। सोम भोज्य है और अग्नि भोक्ता, इसलिये अग्नि पुरुष और सोम स्त्री माना गया है। लोकक्रममें सोम ऊपर रहता है, इससे शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई शक्तिकी उपासना होती है। शिव ज्ञानस्वरूप या रसस्वरूप है और शक्ति क्रिया या बलरूपा। क्रिया या बल, ज्ञान या रसके आधारपर खड़ा रहता है, इसलिये भगवतीको शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई मानते हैं,—यह भी भाव इसमें अन्तर्निहित है। बिना क्रियाके ज्ञानमें स्फूर्ति नहीं—वह मुर्दा है, इसलिये वहाँ शिवको 'शव' रूप माना जाता है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि विश्वरूप (विराट्रूप) शिव है, उसपर चित्कलारूपा (ज्ञानशक्तिरूपा) भगवती खड़ी है। वही इसकी प्रधान शक्ति है, उसके बिना विश्वरूप निश्चेष्ट है। वह 'शव' रूप है। ज्ञान और क्रियाको अर्द्धाङ्ग भी कह सकते हैं। यों कोई भी भाव मान लिया जाय, सभी प्रमाणसिद्ध और अनुभवगम्य हैं।

विश्वचर ईश्वर और शिवमूर्ति

विश्वकी उत्पत्तिसे शिवका सम्बन्ध संक्षेपमें दिखाया गया है, यह शिवका 'विश्व' रूप या 'ब्रह्मसत्य' कहाता है। हम ईश्वर-निरूपणमें पूर्व कह चुके हैं कि ईश्वर जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट होता है। वह प्रविष्ट होनेवाला रूप ईश्वरका 'विश्वचर' रूप कहा जाता है, इसे वैदिक परिभाषामें 'देवसत्य' कहते हैं। यही सब जगत्का नियन्ता है और व्यवहारमें, न्यायदर्शनमें या उपासनाशास्त्रोंमें यही नियन्ता 'ईश्वर' कहलाता है। ईश्वरके इस रूपकी व्याप्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, समष्टिब्रह्माण्डमें और प्रत्येक व्यष्टि-पदार्थमें यह व्यापकरूपसे विराजमान है और ब्रह्माण्डसे बाहर भी व्याप्त रहकर ब्रह्माण्डको अपने उदरमें रक्खे हुए है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

—इत्यादि शतशः मन्त्रोंमें ईश्वरके विश्वचर रूपका वर्णन मिलता है और इनमें 'शिव', 'ईशान', 'रुद्र' आदि पद भी स्पष्ट है।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर कहलाता है, इस शरीरका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥
(मुण्डक० २।१।४)

'अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्वव्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथिवी पादरूप है—वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।'

इसी प्रकारका संक्षिप्त या विस्तृत वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान हैं। हम पूर्व कह चुके हैं कि अग्निकी व्याप्ति इक्कीस स्तोमतक (सूर्यमण्डलतक) है, इसी अग्निको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों पृथिवीसे आरम्भकर सूर्यमण्डलसे परे, स्वयम्भूमण्डल-तक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। हमारी आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान है, जो कि अन्य दोनों नेत्रोंसे किञ्चित् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं ही—

'वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्'

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई, इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं—अप्, वायु और सोम, यह भी पूर्व कह चुके हैं। इनमेंसे सोम चन्द्रमारूपसे, अप् गङ्गारूपसे और वायु जटारूपसे शंकरके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान है। सूर्यमण्डलसे ऊपर परमेष्ठिमण्डलका सोम मण्डलरूपमें नहीं है—इसलिये शिवके मस्तकपर भी चन्द्रमाका मण्डल नहीं, किंतु कलामात्र है। सोमके ही तीन भाग हैं, जो कि तीन कला (अंश, अवयव) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता; किंतु भागोंमें विभक्त होकर रहता है—इसलिये भी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्तियुक्त है। मण्डलरूप पृथिवीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह स्मरण रहे; परमेष्ठि-मण्डलका 'अप्' ही गङ्गाके रूपमें परिणत होता है—यह गङ्गाके विज्ञानमें कहीं अन्यत्र स्पष्ट किया जायगा। वह गङ्गा जटामें है अर्थात् वायुमण्डलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशको उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्त ही मिलता है—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।

इससे भी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक-एक केशके समूहको 'जटा' कहते हैं और वायुका भी एक-एक डोरा पृथक्-पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है—यह जटा और वायुका सादृश्य है। पृथिवीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसे ही है, आगेके सोममण्डलका पृथिवीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता—सूर्य-चन्द्रद्वारा होता है; इससे हमारा असली ब्रह्माण्ड सूर्यतक ही है। यही यहाँ भी (शिवमूर्तिमें भी) सूचित किया है, क्योंकि मस्तकतक ही शरीरकी व्याप्ति है, केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भाग ही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है, इसी प्रकार अग्नि ही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है—यह कह चुके हैं। यह परमेष्ठिमण्डलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान कहा है, वह इस हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पद्मपुराणमें पृथिवीका पद्मरूपसे निरूपण किया है; और शंकरका ध्यान पद्मासनस्थितरूपमें है—**'पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः'**, इससे पृथिवीकी पाद-रूपता भी ध्यानमें आ जाती है।

ईश्वरके शरीर इस ब्रह्माण्डमें विष और अमृत—दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, ईश्वर-शरीरमें ही है। किंतु ईश्वर विषको गुप्त—अन्तर्लीन रखता है और अमृतको प्रकट। जो ईश्वरके उपासक ईश्वरके शरीररूपसे जगत्‌को देखते हैं, उनकी दृष्टिमें अमृत ही आता है, विष विलीन ही रहता है। अतएव शंकरकी मूर्तिमें विष गलेके भीतर है, वह भी कालिमारूपसे मूर्तिकी शोभा ही बढ़ा रहा है और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूपसे सिरपर विराजमान है। वैज्ञानिक समुद्रमन्थनके द्वारा जो विष प्रकट होता है, उसे रुद्र ही धारण करते हैं; किंतु इस संक्षिप्त लेखमें उस कथाका भाव नहीं बताया जा सकता। ईश्वरको शास्त्रकारोंने 'विरुद्धधर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होते हैं, वे सब ईश्वरमें अविरुद्ध होकर रहते हैं। सभी विरुद्ध धर्मोंको ब्रह्माण्डमें ही तो रहना है, बाहर जायँ कहाँ! और ब्रह्माण्ड

ठहरा ईश्वर-शरीर, फिर वहाँ विरोध काहेका ? यह भाव भी शिवमूर्तिमें स्पष्ट है कि वहाँ अमृत भी है, विष भी; अग्नि भी है, जल भी—किसीका परस्पर विरोध है ही नहीं । इस भावको पार्वतीकी उक्तिमें कविकुलगुरु कालिदासने बड़े सुन्दर शब्दोंमें चित्रित किया है । इस प्रकरणका एक पद्य हम लेखके आरम्भमें दे चुके हैं, दूसरा भी बड़ा मार्मिक है—

विभूषणोद्भासि भुजङ्गभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथ वेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥

(कुमारसम्भव ५)

वह शरीर भूषणोंसे भूषित भी है और सर्प-शरीरोंसे वेष्टित भी । गजचर्म भी ओढ़े हुए है और सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रधारी भी हो सकता है । वह शरीर कपालपाणि भी है और चन्द्रमुकुट भी । जो विश्वमूर्ति ठहरा, उस शरीरका एक रूपसे निश्चय कौन कर सकता है ?

भगवान् शंकरके हाथमें परशु, मृग, वर और अभय बताये गये हैं—

परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।

ध्यानमें हाथोंके द्वारा देवमूर्तिके कार्य प्रकट किये जाते हैं—यह 'निदान' की परिभाषा है । यहाँ भी शंकरके (ईश्वरके) चार कर्म इन चिह्नोंद्वारा बताये गये हैं । परशु (या त्रिशूल) रूप आयुधसे दुष्टोंका, आत्मविघातक दोषों और उपद्रवोंका और पवमान, पावक, शुचि आदि घोर रुद्रोंका हनन सूचित किया जाता है । काल आनेपर सबका हनन भी इसीसे सूचित हो जाता है । दूसरे हाथमें मृग है । शतपथब्राह्मण—काण्ड १, अध्याय १, ब्राह्मण ४ में कृष्ण मृगको यज्ञका स्वरूप बताया गया है । अन्यत्र शतपथ और तैत्तिरीयमें यह भी आख्यान है कि अग्नि वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हो गया, 'वनस्पतीनाविवेश' इस ऋचाको भी वहाँ प्रमाणरूपमें उपस्थित किया गया है । उस अग्निको देवताओंने ढूँढ़ा, इससे 'मृग्यत्वान्मृगः'—ढूँढ़नेयोग्य होनेसे वह अग्नि 'मृग' कहाया । यह अग्नि वेदका रक्षक है । अस्तु, दोनों ही प्रकारसे मृगके धारणद्वारा यज्ञकी रक्षा या वेदकी रक्षा—यह ईश्वरका कर्म सूचित किया गया है । वरमुद्राके द्वारा सबको सब कुछ देनेवाला ईश्वर (शंकर) ही है, अग्नि, वायु और इन्द्ररूपसे वही सब जगत्का पालक है—यह भाव व्यक्त किया है और अभयके द्वारा अनिष्टसे जगत्का त्राण विवक्षित है । यम, निर्ऋति, वरुण और रुद्र—ये चार जगत्के अनिष्टकारक माने गये हैं; इनमें रुद्र समयपर हनन करता है और अन्य अनिष्टोंका उपमर्दन कर रक्षा भी करता है । इसीसे रुद्रमूर्तिमें अभयमुद्रा आवश्यक है । शंकर व्याघ्र-चर्मको नीचेके अङ्गमें पहनते हैं या आसन बनाकर बिछाते भी हैं और गजचर्मको ऊपर ओढ़ते हैं, इससे भी उपद्रवी दुष्टोंका दबना और सम्पत्ति देना लक्षित होता है । उनके गलेमें जो मुण्डमाला है, उससे यही सूचित होता है कि सब जगत्के पदार्थ ईश्वरके रूपमें अन्तर्गत हैं, उनके रूपमें सब पिरोये हुए हैं—

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

ईश्वरसत्तासे पृथक् किये जानेपर सब पदार्थ अचेतन—मृत हैं, यही भाव 'मुण्ड' रूपसे सूचित किया है । प्रलयकालमें शिव ही शेष रहते हैं, शेष सब पदार्थ चेतनाशून्य होकर मृत-मुण्डरूपसे उनमें प्रोत रहते हैं—यह भी मुण्डमालाका भाव है ।

सर्प

शिवको 'सर्पभूषण' कहा जाता है । उनकी मूर्तिमें जगह-जगह साँप लिपटे हुए हैं । इसका स्थूल अभिप्राय कह चुके हैं कि मङ्गल और अमङ्गल सब कुछ ईश्वर-शरीरमें है । दूसरा अभिप्राय यह भी है कि संहारकारक शिवके पास संहारसामग्री भी रहनी ही चाहिये । समयपर उत्पादन और समयपर संहार—दोनों ईश्वरके ही कार्य हैं । सर्पसे बढ़कर संहारक तमोगुणी कोई हो ही नहीं सकता; क्योंकि अपने बालकोंको भी खा जाना—यह व्यापार सर्पजातिमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं । तीसरा अभिप्राय किञ्चित् निगूढ़ है । चन्द्रमा, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रह जो सूर्यके चारों ओर घूमते हैं—वे अपने एक परिभ्रमणमें जिस मार्गपर गये थे, ठीक उन्हीं बिन्दुओंपर दूसरी बार नहीं जाते । किञ्चित् हटकर उसी मार्गपर चलते हैं, यों एक-एक बारके भ्रमणका एक-एक कुण्डलाकार वृत्त बनता जाता है । कुछ नियत परिभ्रमणोंके बाद वे फिर अपने उस पूर्व वृत्तपर आ जाते हैं, यह नियम भिन्न-भिन्न ग्रहोंका भिन्न-भिन्न रूपसे है । मङ्गल ७९ वर्षमें फिर अपने पूर्व-वृत्तपर आता है, और-और ग्रहोंका भी समय नियत है । यह भिन्न-भिन्न मण्डलोंका समुदाय रस्सीकी तरह लपेटा हुआ खयालमें लाया जाय तो वह सर्पकुण्डलीके आकारका ही होता है । अतः वेदोंमें इनका

व्यवहार नाग या सर्प कहकर ही किया गया है। आधुनिक ज्योतिष-शास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर घूमनेवालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं, अतः आठ ही सर्प प्रधान माने गये हैं। और भी बहुत-से तारे घूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त (सर्प) ईश्वरके शरीर—ब्रह्माण्डमें अन्तर्गत हैं—इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमें भी अनेक रुद्र हैं, और उनके आकार सर्प-जैसे दिखायी देते हैं—यह पूर्व रुद्रनिरूपणमें कह चुके हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान् शंकर हैं—यह चौथा अभिप्राय भी भुलाया न जाय।

श्वेत मूर्ति

भगवान् शंकरकी मूर्ति उज्ज्वल—श्वेत है—

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गम्

इसके अभिप्राय निम्नलिखित हैं—

(१) व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् ज्ञानरूप है। ज्ञानको 'प्रकाश' कहते हैं, अतः उसका वर्ण श्वेत ही होना चाहिये।

(२) श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक है। वस्त्र आदिपर दूसरे रंग चढ़ानेके लिये यत्न करना पड़ता है, किंतु श्वेत रंगके लिये कोई रँगरेज नहीं होता। श्वेतपर और-और रूप चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं, श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। धोबीद्वारा दूसरे रंगके उतार दिये जानेपर श्वेत प्रकट हो जाता है। इससे श्वेत नैसर्गिक ठहरा। बस, यही बताना है कि ईश्वरका कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, वह स्वभावतः एकरूप है, या यों कहो कि कृत्रिम रूपोंसे वर्जित है, नीरूप है।

(३) वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि श्वेत कोई भिन्न रूप नहीं। सब रूपोंके समुदायको ही श्वेत कहते हैं। सब रूपोंको जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जायँ तो काला रूप बनता है और सब जाग्रत् रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं—यह वैज्ञानिक लोग जानते हैं। तिकोने काँचकी सहायतासे सर्वसाधारण भी देख सकते हैं; किंतु सबके मिलनेके कारण प्रतीत श्वेत रूप ही होता है। भिन्न-भिन्न सब वर्णोंके पत्ते एक यन्त्रमें रखकर उसे जोरसे घुमाया जाय तो श्वेत ही दिखायी देगा। इससे सिद्ध है कि सब रूप हों, किंतु उनमें भेद-भाव न हो; वह शुक्ल होता है। यही स्थिति ईश्वरकी है। जगत्के सब रूप उसीमें ओतप्रोत हैं किंतु भेद छोड़कर। भेद अविद्याकृत है। ईश्वरमें अभिन्नरूपसे सबकी स्थिति है। तब उस ईश्वरको श्वेत ही कहना और देखना चाहिये।

(४) सात लोकोंमें जो स्वयम्भूसे पृथिवीतक पाँच मण्डल बताये गये हैं, उनमेंसे सूर्यमण्डलमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमण्डल कृष्ण है—यह हम कल्याणके कृष्णाङ्क-परिशिष्टाङ्कके पृष्ठ ५३६-५३७ में दिखा चुके हैं। उससे आगे स्वयम्भूमण्डल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आग्नेय-मण्डल होनेके कारण वह 'शिवमण्डल' या 'रुद्रमण्डल' भी कहाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है।

विभूति

शंकर भगवान् सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त—आच्छन्न रहते हैं। इसका भी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर-जगत्में सूर्यप्राण उद्भूत (सबसे ऊपर, प्रकाशित) रहते हैं और आगेके अमृतमण्डलों (परमेष्ठी और स्वयम्भू) के प्राण आच्छन्न (ढके हुए, गुप्त) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारण ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ते हैं—यह वैज्ञानिकोंका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं, हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उस पदार्थका रूप प्रतीत होता है, यह आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है। अस्तु, जब इन पदार्थोंमें अग्नि लगायी जाती है तो अग्निका स्वभाव है कि घनीभूत पदार्थोंका विशकलन करे—उन्हें तोड़े। यों अग्निद्वारा पृथक् किया जाकर सौर-प्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तब भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठिमण्डलके प्राणका समनुगत कृष्ण-रूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है, किसी भी पदार्थको जलानेपर वह काला ही होगा—यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपर भी फिर अग्निका प्रयोग किया जाय और अग्निद्वारा विशकलित होकर दूसरा स्तर भी निकल जाय—उड़ जाय—तब तीसरा अन्तर्निगूढ़ स्वयम्भू प्राणोंका स्तर प्रकट होता है और वह स्वयम्भूप्राणके समनुगत श्वेत रूपका देखा जाता है। किसी भी रंगके पदार्थको जलाइये, अन्तमें

प्रकाशमान श्वेत भस्म ही शेष रहता है । यह मौलिक तत्त्व है, इसे अग्नि नहीं उड़ा सकता । भगवान् शंकर इसी मौलिक तत्त्व—भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं । इसी मौलिक तत्त्वसे वे सृष्टिकी रचना करते हैं—यह शिवपुराणकी सृष्टि-प्रक्रियामें स्पष्ट है। स्वयम्भूमण्डलके अधिष्ठाता श्वेत मूर्ति शिवका जगद्व्याप्त स्वयम्भू प्राणरूप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वारसिक है—इसमें संदेह नहीं । शिवके अन्य प्रकारके भी ध्यान हैं, यह पूर्व लिखा गया है। उन अन्यान्य शिवमूर्तियोंके सम्बन्धमें भी विवेचना आवश्यक थी और शिवलिङ्गके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ वक्तव्य था; किंतु लेख विस्तृत हो गया, अब लिखनेके लिये न तो उपयुक्त समय है और न स्थान ही । इसलिये इन विवेचनाओंको समयान्तरके लिये छोड़कर, दो-एक आवश्यक बातें और कहकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं ।

शिव और विष्णु

उपासनाके प्रेमियोंमें इस बातपर आधुनिक युगमें बहुत विवाद रहता है कि शिव और विष्णुमें कौन बड़ा ? कोई विष्णुको ही परमात्मा कहकर शिवको उनके उपासक मानते हुए जीवकोटिमें माननेका साहस करते हैं और कोई शिवको पर-तत्त्व कहकर विष्णुको उनके अनुगत, सेवक या जीवविशेष कहनेतकका पाप करते हैं । कुछ सज्जन दोनोंको ईश्वरके ही रूप कहते हुए भी उनमें तारतम्य रखते हैं । वैज्ञानिक प्रक्रियामें वस्तुतः इन विवादोंका अवसर ही नहीं है । यहाँ न कोई छोटा है, न बड़ा । अपने-अपने कार्यके सब प्रभु हैं। यह उपासककी इच्छा और अधिकारके अनुसार नियत है कि वह किसी रूपको अपनी उपासनाके लिये चुन ले, किंतु किसीको छोटा कहना या निन्दा करना अपनेको विज्ञानशून्य घोषित करना है । अस्तु, अब क्रमसे देखिये—निर्विशेष, परात्पर या अव्यय पुरुष, जो उपासना और ज्ञानका मुख्य लक्ष्य है, जो जीवका अन्तिम प्राप्य है, उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं । उसे '**वेवेष्टीति विष्णुः**'—सर्वत्र व्यापक है, इसलिये 'विष्णु' कह लीजिये, अथवा '**शेरतेऽस्मिन् सर्वे इति शिवः**'—सब कुछ उसीके पेटमें है, इसलिये 'शिव' कह लीजिये । उसका कोई नाम-रूप न होते हुए भी—

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ।

—इस वेदान्तसूत्रके अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम उसके हो सकते हैं । अतएव विष्णुसहस्रनाममें शिवके नाम और शिवसहस्रनाममें विष्णुके नाम आते हैं, मूलरूपमें भेद है ही नहीं । यों परम शिव या महाविष्णु एक ही वस्तु है, उपासकके अधिकार या रुचिके अनुसार उसकी भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे उपासना होती है । अब आगे अक्षर पुरुषमें आइये—यहाँ विष्णु और महेश्वर शक्ति-भेदसे पृथक्-पृथक् प्रतीत होंगे, जैसा कि कहा गया है कि आदान क्रियाके अधिष्ठाता विष्णु और उत्क्रान्तिके अधिष्ठाता महेश्वर हैं; किंतु वस्तुतः विचार करनेपर एक ही अक्षर पुरुषकी दोनों कलाएँ हैं, इसलिये मौलिक भेद इनमें सिद्ध नहीं होता । आदान और उत्क्रान्ति दोनों एक ही गतिके भेद हैं । गति यदि केन्द्राभिमुखी हो तो 'आदान' कहाता है और यदि केन्द्रसे विपरीत दिशामें अर्थात् पराङ्मुखी हो तो 'उत्क्रान्ति' कहाती है, यों एक ही गतिके दिग्भेदसे दो विभेद हैं—तब वास्तविक भेद कहाँ रहा ? नाममात्रका ही तो भेद है । एक कविने बड़ी सुन्दरतासे कहा है—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययतो भिन्नवद्भाति ।
कलयतु कश्चन मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम् ॥

व्याकरणके अनुसार हरि और हर दोनों शब्द एक ही 'हृ' धातुसे बनते हैं, अतः प्रकृति (मूल धातु) दोनोंमें एक है, केवल प्रत्यय जुदा-जुदा है—तब इनका भेद मानना शास्त्रसे अनभिज्ञोंका ही काम है । दूसरा अर्थ श्लोकका यह है कि दोनोंकी प्रकृति एक है अर्थात् मूल-तत्त्वरूपसे दोनों एक हैं, केवल प्रत्यय—प्रतीति—बाहरी दृष्टिसे भेद हो रहा है; यह भेद शास्त्र-दृष्टिवालोंको कभी प्रतीत नहीं होता । अतएव उत्क्रान्तिका नेता 'इन्द्र' कहाता है तो आदानका 'उपेन्द्र' (दूसरा इन्द्र) । विष्णुका दूसरा नाम 'उपेन्द्र' भी है ।

कुछ सज्जन शिवको संहारकर्ता कहकर उपासनाके अयोग्य मानते हैं; किंतु वैज्ञानिक दृष्टिसे यह भी तर्क नहीं ठहरता । हम अक्षर पुरुषके निरूपणमें स्पष्ट कर चुके हैं कि एक दृष्टिसे जो संहार है, दूसरी अपेक्षासे वही उत्पादन या पालन है । नाममात्रका भेद है, वास्तविक भेद इसमें भी नहीं है । इसके अतिरिक्त संहार भी तो ईश्वरका ही काम है और वह अवश्यम्भावी है । समयपर उत्पादन और पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है । तीनों कार्य ईश्वरके द्वारा ही होते हैं । यदि एक ही शक्ति तीनों कार्योंकी करनेवाली न मानी जाय तो बड़ा युक्तिविरोध आ पड़े । संहार करनेवाला कोई और है, तो वह पालकसे जबर्दस्त कहा जायगा; क्योंकि उसके पालितको वह नष्ट कर देता है ।

फिर संहारक ही ईश्वर कहायेगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जिसने सबका संहार किया वही तो अन्तमें शेष रहेगा, फिर सृष्टिके समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा रूप है ही कहाँ, जो सृष्टि करे? इन सब कुतर्कोंका समाधान तभी होता है जब कि एक ही ईश्वरके कार्यापेक्षासे तीनों रूप माने जायँ— उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस रूप या शक्तिकी आवश्यकता होती है, उस समय वह प्रकट हो जाता है, तत्त्व एक ही है। फिर भी कहा जाय कि तत्त्व चाहे एक हो, किंतु संहारकारक रूपसे हमें ध्यान नहीं करना चाहिये—तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपोंके उपासक अपने उपास्यमें सभी शक्तियोंका ध्यान करते हैं। विष्णुके उपासक भी उनको उत्पादक, पालक और संहर्ता तीनों कहते हैं और शिवके उपासक भी ऐसा ही करते हैं। कोई भी शक्ति न माननेसे ईश्वरमें न्यूनता आ जायगी। ईश्वरका काम यथाकाल सब कार्य करना है, कालमें संहार अभीष्ट ही है। क्या संहारका ध्यान न करनेवालोंका संहार न होगा? फिर महेश्वर तो केवल संहारक हैं भी नहीं, तीन अक्षर कलाओंकी समष्टिको 'महेश्वर' बताया गया है; इनमें अग्नि और सोम ही तो सब जगत्‌के उत्पादक हैं; इसलिये यह उत्कर्षापकर्षकी कल्पना कोरी कल्पना ही है। कुछ सज्जन शिवको तमोगुणी कहकर उपासनाके अयोग्य ठहरानेका साहस करते हैं, किंतु यह भी साहसमात्र ही है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुणके वशमें तो हो ही नहीं सकते। ईश्वर और जीवमें यही तो भेद है कि जीव प्रकृतिके वशमें है और ईश्वर प्रकृतिका नियन्ता है। तब शिव तमोगुणी हैं—इसका अभिप्राय यह होगा कि वे तमोगुणके नियन्ता हैं। तो फिर सत्त्वगुणके नियमन करनेकी अपेक्षा तमोगुणके नियमन करनेका कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवाला रूप और भी उत्कृष्ट है कि नहीं—इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

वस्तुतः तमोगुण 'आवरक' कहलाता है, भूतोंकी उत्पत्ति तमोगुणसे ही मानी जाती है और वैज्ञानिक प्रक्रियामें भूतोंके उत्पादक अग्नि और सोम हैं। उन अग्नि और सोमके अधिनायक महेश्वर हैं, इसलिये उन्हें तमोगुणका अधिष्ठाता कहा गया है। इससे उपास्यतामें कोई हानि नहीं। उपासक उन्हें तमोगुणके नियन्ता कहकर उपासना करते हैं; अतएव परमवैराग्यवान्, अत्यन्त शान्त, विषयनिर्लिप्त रूपसे वे उनका ध्यान करते हैं, इससे उपासकोंमें तमोगुणकी वृद्धि होगी— इसकी लेशतः भी सम्भावना नहीं। बल्कि वे भी तमोगुणके नियन्ता हो जायँगे।

अब प्राकृत स्वयम्भू आदि मण्डलोंपर विचार कीजिये। यहाँ भी एक दृष्टिसे एककी व्याप्ति न्यून रहती है, तो दूसरी दृष्टिसे दूसरेकी। विष्णु यज्ञस्वरूप हैं और यज्ञद्वारा ही रुद्र आदि सब देवता उत्पन्न होते हैं—यज्ञके आधारपर ही सब देवताओंकी स्थिति है। रुद्र शिवका रूप है, इसलिये कहा जा सकता है कि शिव विष्णुके उदरमें हैं—उनसे उत्पन्न होते हैं। किंतु दूसरी दृष्टिसे अग्निप्रधान सूर्यमण्डल रुद्रका रूप है, उस मण्डलकी व्याप्तिमें अर्थात् सौर-जगत्‌के अन्तर्गत यज्ञमय विष्णु हैं। सौर-जगत्‌में जो यज्ञ हो रहा है उसीसे हमारा जीवन है और 'यज्ञो वै विष्णुः'—यज्ञ ही विष्णुका रूप है, इस दृष्टिसे शिव या रुद्रके पेटमें विष्णु रहे। अब आगे बढ़िये—सूर्यका उत्पादक यज्ञ परमेष्ठिमण्डलमें होता है, अतएव वह मण्डल विष्णुप्रधान कहा गया है—उस मण्डलके पेटमें सूर्यमण्डल आ जाता है, इससे विष्णुके पेटमें शिवका अन्तर्भाव हुआ। और आगे चलें तो परमेष्ठिमण्डल स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत रहता है, स्वयम्भूमण्डल आग्नेय होनेके कारण रुद्रका या अग्निके नियन्ता महेश्वरका मण्डल कहा जा सकता है—यह अभी विस्तारसे निरूपित हो चुका है। स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत एक वाचस्पति तारा है, वह श्रुतिमें इन्द्र माना गया है और इन्द्र महेश्वरके रूपमें अन्तर्गत है। उस मण्डलकी व्याप्तिमें परमेष्ठिमण्डलके अन्तर्भूत रहनेके कारण फिर शिवके उदरमें विष्णु आ गये। इसीलिये स्पष्ट कहा गया है—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोस्तु हृदयं शिवः।

सब जिसके अन्तर्गत हैं—वह परमाकाश सर्वरूप है, उसे परमशिव कह लीजिये या महाविष्णु। इसलिये इस दृष्टिसे भी कोई भेद या छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं होता।

अब आगे जो हमने विश्वचररूप ईश्वरका बताया है, वह विष्णु भी कहा जा सकता है और शिव भी। विष्णुका वर्णन भी पृथिवी पाद, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र इत्यादि रूपसे ही मिलता है और शिवका भी वैसा ही वर्णन हम लिख चुके हैं। जिस प्रकार शिवकी उपास्य-मूर्तिमें हमने सब ब्रह्माण्डका अन्तर्भाव बताया है, वैसा ही विष्णुमूर्तिका रहस्यविवरण भी विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें मिलता है। इसमें केवल इतना विवक्षाभेद है—जगत्‌के तीन मूल हैं, ज्ञान, क्रिया और अर्थ। या यों कहो कि इनका समुदाय ही जगत् है। इसमें क्रियाको 'यज्ञ' कहते हैं और यज्ञ विष्णुका रूप बताया गया है। इससे क्रियाप्रधानरूपसे—कुर्वद्रूपतामें—जिसमें बराबर

कार्य हो रहा है—यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह विष्णुकी मूर्ति होगी और ज्ञानकी प्रधानता-से—प्रशान्तभावमें यदि ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह शिवमूर्ति कही जायगी। इसीलिये यह प्रवाद भी चला है कि उपासनाका विष्णुसे और ज्ञानकाण्डका शिवसे सम्बन्ध है, क्योंकि उपासना क्रियारूप है। महेश्वरकी उपासना भी ज्ञानप्राप्तिके लिये ही मानी गयी है—'ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्'। ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर भी प्रथम भूमिकाओंमें निदिध्यासन आदि क्रियाओंकी मुक्तिके लिये आवश्यकता रहती है—इसलिये फिर '**मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्**' मान लिया गया। ज्ञान बिना अर्थके नहीं रहता, वही अर्थका धारक है—इसलिये विद्वानोंकी उक्ति है कि—

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थजातमशेषं च धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥

'सब अर्थोंके धारण करनेवाले बालेन्दु-मुकुट भगवान् शंकर हैं।'

इस दृष्टिमें भी अर्थ मुख्य है या यज्ञ—इसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। यज्ञसे अर्थ बनते हैं, अर्थ होनेपर ज्ञान होता है और ज्ञानसे क्रिया या यज्ञ होता है, बिना अर्थ-के भी यज्ञ नहीं हो सकता। यों दोनों रूप परस्पर सापेक्ष रहते हैं, विवक्षाभेदसे कोई किसीको प्रधान मान ले। वस्तुतः यज्ञ और अर्थ एक ही मूलसे निकले हैं—अतः एक ही हैं।

यों वैज्ञानिक भावमें किसी भी दृष्टिसे हरि और हरका मौलिक भेद या छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल दृष्टिभेद है। उसमें उपासकके अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी रूपमें प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादिमें जो कहीं किसीकी और कहीं किसीकी प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारीका मनोभाव उस रूपमें दृढ़ करनेके लिये—उसी रूपमें 'ब्रह्मदृष्टि' करानेके उद्देश्यसे है—किसी-के वास्तविक उत्कर्ष या अपकर्षका कहीं भी तात्पर्य नहीं।

न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

'निन्दा निन्दनीयकी निन्दाके उद्देश्यसे नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिके उद्देश्यसे होती है'—यह मीमांसाका न्याय भी इसीके अनुकूल है।

मनुष्याकारधारी शिव

लेखके आरम्भमें हम कह आये हैं कि हमारे शास्त्रोंमें ईश्वर-का दो भावोंमें वर्णन है, वैज्ञानिकरूपसे और मनुष्याकारसे। वे मनुष्याकार ईश्वरके सगुणरूप या अवतार कहे जाते हैं। वैज्ञानिक निरूपणमें और इन मनुष्याकारधारी ईश्वर-रूपोंके चरित्रोंमें आश्चर्यजनक सादृश्य देखा जाता है। अतएव आर्य-शास्त्रोंका विश्वास है कि उपासकोंपर अनुग्रहके कारण ईश्वर मनुष्यरूप ग्रहण करता है। गुरुवर श्री ६ मधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पतिके 'देवासुरख्याति', 'अत्रिख्याति' और 'इन्द्रविजय' आदिमें निरूपण है कि पृथिवीमें भी एक त्रिलोकी है। कारणावतपर्वत—जिससे इरावती नदी निकलती है—के उत्तरका प्रदेश भूस्वर्ग (त्रिविष्टप) कहाता है, उसके 'इन्द्र-विष्टप', 'विष्णुविष्टप', 'ब्रह्मविष्टप' आदि विभाग भी पुराणादि-में सुप्रसिद्ध हैं। आर्यसभ्यताके प्राधान्यकालमें इस प्रदेशमें सब वैज्ञानिक देवताओंके समान ही संस्था प्रचलित थी। अस्तु, इस अप्रकृत विषयका हम यहाँ विस्तार न करेंगे; यहाँ हमारा वक्तव्य केवल इतना ही है कि एक भगवान् शंकरका मनुष्यरूप भी है। वह लक्ष्यालक्ष्यरूप है, कभी कार्यकालमें प्रकट होता है और कभी अलक्षित रहता है। इसी प्रकारके वर्णन इस रूपके पुराणोंमें हैं। इसे शिवावतार कह सकते हैं। समय-समयपर इन शंकर भगवान्‌की तीन स्थानोंपर स्थिति बतायी गयी है। प्रथम भद्रवट-स्थानमें—जो कि कैलाससे पूर्वकी ओर लौहित्यगिरिके ऊपर है, ब्रह्मपुत्रा नदी उसके नीचे होकर बहती है। दूसरा स्थान कैलास पर्वतपर और तीसरा मूँजवान् पर्वतपर। मूँजवान्‌का स्थान-निर्देश हम पहले कर चुके हैं। इन शंकरके गण, भूत आदिका निवास हिमालय और हेमकूटके दर्रोंमें बताया गया है। ये शंकर भगवान् भी पूर्ण वैराग्यरत, आत्मसंयमी हैं। काशीखण्डमें एक कथा है कि इन शंकर भगवान्‌ने अपना सारा राज्य मानसरोवरपर विष्णुभगवान्‌को दे दिया और स्वयं विरक्त होकर एकान्तमें रहने लगे। देवताओंके कार्यके लिये—स्वामिकार्तिकेयकी उत्पत्तिके लिये पार्वती-विवाह करनेको या त्रिपुरासुरका वध करनेको—ऐसे ही अन्यान्य समयोंमें देवताओंकी प्रार्थनापर ये प्रकट होते रहे हैं। पार्वती-विवाह, त्रिपुर-वध आदिकी कथाएँ इनकी बड़ी रोचक और आर्यसभ्यताके युगमें पदार्थ-विज्ञानका अद्‌भुत महत्त्व प्रकट करनेवाली हैं; किंतु उनका विवरण शंकर भगवान्‌की कृपासे कभी समयान्तरमें सम्भव होगा—यह आशा कर शंकर-स्मरण करते हुए इस लेखको पूर्ण किया जाता है। ॐ शान्तिः।

लिङ्ग-रहस्य

(लेखक—स्व० श्रीरामदासजी गौड़, एम्० ए०)

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥

(महाभारत, अनु० अ० १४)

१–लिङ्गार्चनकी व्यापकता

माहेश्वरलिङ्गकी अर्चा अनादिकालसे जगद्व्यापक है। खीष्टीय धर्मके प्रचारके पूर्व पाश्चात्त्य देशोंकी प्रायः सभी जातियोंमें किसी-न-किसी रूपमें लिङ्गपूजा सर्वत्र प्रचलित रही है। रोमक और यूनान दोनों देशोंमें क्रमशः प्रियेपस और फल्लुसके नामसे लिङ्गकी ही अर्चा होती थी। इन दोनों राष्ट्रोंके प्राचीन धर्मका लिङ्गपूजा प्रधान अङ्ग था। वृषकी मूर्ति लिङ्गके साथ ही पूज्य थी। पूजाकी विधिमें धूप, दीप, पुष्पादि हिंदुओंकी ही तरह काममें आते थे। मिस्रदेशमें तो हर और ईशिःकी उपासना उनके धर्मका प्रधान अङ्ग था। इन तीनों देशोंमें प्रायः फाल्गुनमासमें ही वसन्तोत्सवके रूपमें लिङ्गपूजा वार्षिक समारोहसे हुआ करती थी। मिस्रमें ओसिरिः नामके देवता एथियोपिआके चन्द्रशैलसे निकली हुई नीलनदीके अधिष्ठाता माने जाते हैं। यहाँ कैलासके चन्द्रगिरिसे निकली गङ्गा और पश्चिमगामी सिन्धुनद जिसका दूसरा नाम नील भी है, दोनोंके ही स्वामी भगवान् शंकर हैं। 'फल्लुस' शब्दकी व्युत्पत्ति कर्नल टाडके मतसे अद्भुत है। वह कहते हैं कि यह शब्द संस्कृतके 'फलेश' से निकला है * क्योंकि भगवान् शंकर यजनका तुरंत ही फल देते हैं और उन्हें वसन्तारम्भके ऋतुफल निवेदन भी किये जाते हैं। प्लुतार्कके लेखोंसे पता चलता है कि उस समय मिस्रमें प्रचलित लिङ्गपूजा सारे पश्चिममें प्रचलित थी।

प्राचीन चीन और जापानके साहित्यमें भी लिङ्गपूजाकी गवाही मिलती है और पुरानी मूर्त्तियोंसे यह भी अनुमान होता है कि अमेरिकाके महाद्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिङ्गपूजा किया करते थे।

ईसाइयोंके वेदके दो विभाग हैं। पुराने सुसमाचार नामक विभागमें राजाओंकी पुस्तकके पंद्रहवें अध्यायमें यह कथा है कि रैहोगोयमके पुत्र आशाने अपनी माता मामाकाको लिङ्गके सामने बलि देनेसे रोका था। पीछे उन्होंने क्रोधमें आकर उस लिङ्गमूर्त्तिको तोड़-फोड़ डाला। यहूदियोंके देवता बेलफेगोकी पूजा लिङ्गमूर्त्तिकी होती थी। उनका एक गुप्तमन्त्र था, जिसकी दीक्षा यहूदी लिया करते थे। मोयावी और मरिनावासी यहूदियोंके उपास्य लिङ्गकी स्थापना फेगोशैलपर हुई थी। इनकी उपासनाविधि मिस्रवासियोंसे मिलती-जुलती थी। पहाड़के ऊपर जंगलमें और बड़े वृक्षके नीचे यहूदियोंने लिङ्ग और बछड़ेकी मूर्त्ति स्थापित की, इसपर यहूदियोंके परम पिता उनसे रुष्ट हो गये थे। यह बालेश्वर-शिवलिङ्ग पत्थरका बनाते और स्थापित करते थे और 'बाल' नामसे ही पूजते भी थे। बालेश्वरकी वेदीके सामने यह धूप जलाते थे और लिङ्गके सामनेवाले वृष (नन्दी) को हर अमावस्याको पूजा चढ़ाते थे। मिस्रके ओसिरिसके लिङ्गके सामने भी बैल रहता था।

कर्नल टाडका कहना है कि मुहम्मद साहबके पहले 'लात' नामक अरबके देवताकी उपासना 'लिङ्ग' के रूपमें हुआ करती थी और सोमनाथके शिवलिङ्गको भी पश्चिमी लोग 'लात' ही कहते थे। 'लात' की मूर्त्तियाँ दोनों जगह बहुत विशाल और रत्नोंसे सुसज्जित थीं। यह एक ही पत्थरका लिङ्ग था, जो पचास पुरुष या पोरसा ऊँचा था। जिस मन्दिरमें यह स्थापित था उसमें इस लिङ्गको सँभालनेके लिये ठोस सोनेके छप्पन खम्भे

* Tod's Rajasthan, Uol. I. P. 603.

थे। * महमूद गजनवी इसे ध्वंस करके सोना ढो ले गया। दोनों देशोंमें नाम एक ही था 'लात' या 'लाट' यह विचित्रता थी। आकार और लम्बाईके हिसाबसे 'लाट' कहना तो ठीक ही था। परंतु कोषकार रिचर्डसन लिखता है कि 'लात' अल्लाहकी सबसे बड़ी पुत्रीका नाम था और उसका चिह्न या मूर्ति लिङ्गकी तरह थी। जो हो, मुसलमानोंने 'लात'का ध्वंसावशेष भी न रक्खा, परंतु मक्केश्वर तो अबतक लिङ्गरूपमें काबेमें पधराये हुए हैं। इस मक्केश्वर लिङ्गकी चर्चा भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें आयी है।

मक्केश्वर लिङ्ग काले पत्थरका है। इसे मुसलमान 'असवद' कहते हैं। पहले इसराएली और यहूदी इसकी पूजा करते थे। मुहम्मद साहबके समयमें इसकी चार कुलोंके पण्डे पूजा-अर्चा किया करते थे। जब काबेमें इसके लिये एक स्थान बनाया गया और इसके प्राचीन स्थानसे वहाँ ले जाकर जब पधरानेका प्रश्न आया तब चारों पण्डोंमें यह झगड़ा उठा कि मूर्तिको उठाकर निश्चित स्थानतक पहुँचानेका गौरव किसे प्राप्त हो? हजरत मुहम्मद साहबका फैसला सर्वमान्य हुआ और एक चादरपर चारोंने उसे थामकर रक्खा और चादरके चारों कोनोंको थामकर उस स्थानपर ले जाकर मूर्तिको पधराया। काबेमें इस मूर्तिकी पूजा नहीं होती, परंतु जो मुसलमान हज करने जाता है, इस मूर्तिका चरणचुम्बन करके आता है।

यद्यपि अब पहलेकी तरह पूजा नहीं होती तथापि फ्रांसके अनेक प्रसिद्ध स्थानोंमें अबतक लिङ्ग देखनेमें आते हैं। गिरजाघरोंमें, धर्म-मन्दिरोंमें, अजायबखानोंमें, फ्रांस ही नहीं और देशोंमें भी लिङ्गरूपके पत्थर स्मारक-रूपसे रक्खे देखे जाते हैं। लिङ्गपूजाका पाश्चात्त्य देशोंमें इतना प्रचार था कि 'लिङ्गार्चा' अथवा Phallicism एक सम्प्रदाय ही समझा जाता था, जिसका अस्तित्व सभी देशोंमें पाया जाता है। इसी तरहका 'लिङ्गायत' सम्प्रदाय हमारे देशमें भी है। दक्षिणमें इस सम्प्रदायके शैव मिलते हैं जो 'जङ्गम'* कहलाते हैं और सोने या चाँदीके सम्पुटमें शिवलिङ्ग रखकर बाहु या गलेमें पहनते हैं। ऐंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें Phallicism शब्दमें इस सम्प्रदायका वर्णन अधिक विस्तारसे मिलेगा।

पणि:जातिके लोगोंकी चर्चा हमारे वैदिक साहित्यमें आयी है। यह पाश्चात्त्य वणिक्-समाज था, जिसका आना-जाना भारतसे लेकर भूमध्यसागरतक हुआ करता था। पच्छाहँमें यही लोग फणिश् कहलाते थे और इबरानी-जाति इन्हींके विकासका फल हुई, जिनके यहाँ भारतीय बालेश्वरलिङ्गकी उपासना विधिवत् होती थी। मन्दिरोंकी बनावट भी भारतीय ढंगकी थी, जैसा कि उनके ध्वंसावशेषोंसे अवगत होता है। इस बालेश्वरलिङ्गको बैबिलमें 'शिउन' कहा है। इस घने सादृश्यको देखकर अनेक प्राच्यविद्या-विशारद कहलानेवालोंने यहाँतक अटकलका घोड़ा दौड़ानेका साहस किया है कि उनकी दृष्टिमें भारतके लोगोंने लिङ्गोपासना पच्छाहीं देशोंके लिङ्गायत-सम्प्रदायवालोंसे सीखी है।

अमेरिका-महाद्वीपमें पेरुविया नामक स्थानमें वहाँके प्राचीन निवासी रहते हैं। उनका पुराना राजवंश सूर्यवंशी कहा जाता है और वह 'रामसीतोया' नामका एक महोत्सव भी करते हैं। वहाँकी मध्यवर्ती कुछ जातियोंमें ईश्वरको 'सिवु' कहते हैं। फ्रीजिया-देशमें जो आसुरिया-देश या छोटी एशियाका एक भूखण्ड है वहाँके निवासी 'सेवा' या 'सेवाजियः' नामके देवताकी उपासना करते हैं। जिस समय मन्त्र लेते हैं कुछ ऐसा

* Richardson,s Dictionarx (8129) में देखो 'लात' शब्द।

* काशीमें इन्हीं जङ्गमोंके बसनेसे एक पुराना महल्ला 'जङ्गमवाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है।

अनुष्ठान भी करते हैं जिसमें साँपोंका भी काम लगता है। मिस्रमें भी 'सेवा' देवताके साथ सर्पका सम्बन्ध है। यह व्यालमालधारी भगवान् शिवके सिवा और कोई नहीं।

इन प्रमाणोंपर विचार करनेसे इस बातमें तो तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि लिङ्गपूजा बहुत प्राचीन है और संसारमें साधारणतया किसी कालमें अवश्य फैली हुई थी और सर्वत्र लिङ्गोपासनाका प्रचार था।

अब अपने देशकी ओर आइये। हमारे देशमें तो हिमालयमें मानसरोवर और कैलाससे लेकर कन्याकुमारी और रामेश्वरजीतक और अटकसे लेकर कटकतक लिङ्गों और शिवालयोंकी कोई गणना नहीं है। असंख्य लिङ्ग हैं, असंख्य शिवालय हैं। यह देश शिवमय ही है। यह तो वर्तमानकालकी बात हुई जब कि एक सुदीर्घ-कालसे हमारा देश आसुरी माया और संस्कारसे आवृत है। परंतु शिवलिङ्ग और शिवालय भारतीय संस्कारोंमें रग-रगमें भिना चला आया है—इस बातकी साक्षी भूगर्भमें गड़ी पड़ी है। छोटी-छोटी खुदाइयोंमें, नेवों और कुओंके भीतर तो शिवलिङ्ग अकसर मिलते ही रहते हैं। काशीमें अभी हालमें कपड़ेके चौक बाजारके बीचमें दो-तीन पोरसा नीचे शिवलिङ्ग और मन्दिरका मिलना कोई मूल्य नहीं रखता जब कि मोहं-जो-दारो और हरप्पाकी खुदाईमें ऐसी तहोंमें शिवलिङ्ग मिलते हैं जो समयको निकट-से-निकट खींच लानेवाले कट्टर आनुमानिकोंकी अटकलसे आजसे कम-से-कम छः हजार और भारतीय महायुद्धसे कम-से-कम एक हजार वर्ष पहलेके ठहरते हैं। सर जान मार्शल अनेक लिङ्गोंके प्रादुर्भावसे चकराकर कहते हैं कि शैवधर्म कलकालिथिक (Chalcolithic age) युग या इससे भी पहलेका है और इस सम्बन्धके अपने ग्रन्थमें उस समयके इन शैवोंको आर्यजातिके पूर्वगामी कोई अधिक सभ्य राष्ट्रके मनुष्य ठहराते हैं; क्योंकि उनके मतसे भारतमें तबतक आर्यलोग आकर बसे ही न थे। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पुरातत्त्व एवं भूगर्भके खोजी सत्यकी खोजकी उत्सुकतामें समयको सदा संकुचित करके ही देखते रहे हैं। अतः मेरी समझमें तो मोहं-जो-दारोके सबसे नीचेके स्तर महाभारतकी लड़ाईके कई हजार वर्ष पहलेके होंगे। इस तरह शिवलिङ्गकी उपासनाकी साक्षी महाभारतकी ऐतिहासिक घटनासे कई हजार वर्ष पूर्वकी पत्थरकी लीक है। मार्शल महोदय यह कहकर मोहं-जो-दारोकी उस लिङ्गप्राप्तिको अनार्य ठहराते हैं कि 'शिव'जीका वैदिक विश्व-देवतामें कोई स्थान नहीं है, परंतु यह मार्शलकी भारी भूल है। रुद्राध्याय तो शिव भगवान्के नामोंसे भरा पड़ा है। रुद्रकी स्तुतियाँ चारों संहिताओंमें हैं। 'शिव' नामपर अनेक मन्त्र हैं। कपर्दिन्, पशुपति, सहस्राक्ष, सद्योजातादि अनेक नाम अनेक स्थलोंमें आये हैं और जहाँ इन्द्रद्वारा शिवलिङ्गोपासकोंके प्रति घृणा प्रकट की गयी है वहाँ तो स्पष्टतया लिङ्गपूजा प्रमाणित होती है।* अतः लिङ्गपूजाकी प्राचीनतम परम्परा प्रमाणित है।

२—लिङ्गार्चन-सम्बन्धी साहित्य

ऋग्वेदमें लिङ्गोपासनाकी चर्चा जब मौजूद है तब रामायणकालमें उसकी चर्चाका होना कोई विशेष महत्त्वकी बात नहीं समझी जा सकती। तो भी कालक्रम-से वैदिक साहित्यके बाद इतिहास, पुराण तथा तन्त्रोंकी गणना की जाती है। वैदिक साहित्यमें, संहिताओंमें, ब्राह्मणोंमें, आरण्यकोंमें और उपनिषदोंमें रुद्रादि अनेक नामोंसे और उमा, विद्या आदि अनेक नामोंसे उमामहेश्वर-के प्रसङ्ग आते हैं। पुराणोंमें उन्हीं वैदिक विषयोंकी ही तो व्याख्या है। इतिहासोंमें तो घटना-प्रसङ्गसे चर्चा आती है। वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डमें रावणके कथाप्रसङ्गमें आया है—

* ऋग्वेद १० । ९२ । ९, १ । ११४ । १–४, १० । १३६ । सम्पूर्ण । २ । ३४ । १ तथा २ । ११ । २

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥
बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥
(३१ । ४२-४३)

शिवभक्त रावण जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ स्वर्णलिङ्ग भी जाता है और बालूकी वेदीपर पधराकर वह विधिवत् पूजा करता है और लिङ्गके सामने नृत्य करता है।

महाभारत अनुशासनपर्वमें चौदहवें अध्यायसे भगवान् महेश्वरका प्रसङ्ग चलता है, जिसके अन्तर्गत 'शिवसहस्रनाम' कहा गया है और सौप्तिकपर्वमें तो अश्वत्थामाकी स्तुतिपर रीझकर भगवान् शंकरने उनके शरीरमें ही प्रवेश किया है। भगवान् श्रीकृष्णका उपमन्युसे दीक्षा पाना और भगवान् शंकरके प्रीत्यर्थ तपस्या करना न केवल अनुशासनपर्वमें ही वर्णित है बल्कि प्रायः सभी वैष्णव और शैवपुराणोंमें यह कथा आयी है। फिर लिङ्गपूजाकी चर्चा भी प्रायः सभी पुराणोंमें है। पद्मपुराण वैष्णवपुराण है तो भी लिङ्गपूजाका प्रसङ्ग उसमें बड़े विस्तारसे वर्णित है। शिवपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण—यह छः तो शैवपुराण ही ठहरे। इनमें तो भगवान् शंकरकी कथाका विस्तार है ही, परन्तु हिंदू-साहित्यमात्रमें जहाँ कहीं शिवोपासनकी चर्चा है, वहाँ बहुधा लिङ्गकी चर्चा अवश्य ही आयी है।

इतिहासों और पुराणोंके सिवा तन्त्र-ग्रन्थ और स्मृतियाँ भी हैं। तन्त्रोंकी तो रचना ही उमा-महेश्वर-संवादपर है। तन्त्रोंके द्वारा भगवान् शंकरने अनेक विद्याओं और रहस्योंका उद्घाटन किया है। स्मृतियोंमें भी कर्मकाण्ड-सम्बन्धी विषयोंमें शिवोपासनाका विषय जहाँ-तहाँ आया है। वीरमित्रोदयमें शिवोपासना और लिङ्गार्चाका विस्तारसे वर्णन है। तन्त्रोंमें लिङ्गार्चनतन्त्र तो वस्तुतः अर्चाकी विधिका प्रामाणिक ग्रन्थ है। इन सभी धर्म-शास्त्रोंमें शिव-पूजाको नित्यकर्ममें रक्खा है और संध्याकी तरह जलग्रहणके पूर्वका इसे आवश्यक कर्म बतलाया है।

संहिताओंमें तो रुद्रकी स्तुतिमात्र है, परन्तु शतपथ ब्राह्मणमें (६ । १ । ३ । ७–१९) और शांखायन ब्राह्मणमें (६ । १ । १–९) भगवान् रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन प्रायः उसी ढंगपर है जिस ढंगपर कि मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें दिया हुआ है। साथ ही सारे शैवसाहित्यमें भगवान् महेश्वरके साथ-ही-साथ भगवती उमाका भी वर्णन है। वाजसनेयिसंहितामें 'अम्बिका' (३ । ५७) और 'शिवा' (१६ । १) तलवकार उपनिषद्में (३ । ११-१२ तथा ४ । १-२) 'ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी उमा हैमवती' और तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकमें 'कन्याकुमारी' 'कात्यायनी' 'दुर्गा' इत्यादिकी चर्चा है।

इस तरह प्रायः सारा हिंदू-साहित्य भवानी-शंकरके यशः कीर्त्तनसे भरा पड़ा है।

प्र०—'इसी तरह क्या सारा हिंदू-साहित्य भगवान् विष्णुके उत्कर्षसे नहीं भरा पड़ा है? कट्टर शैवपुराणोंमें भी तो भगवान् विष्णुका प्रतिपादन है! यह क्या बात है?'

उ०—प्रस्तुत प्रसङ्गमें इस प्रश्नपर विस्तारपूर्वक विचार नहीं हो सकता। हम इतना ही कह देना यहाँ पर्याप्त समझते हैं कि सृष्टिसे परे परमात्म-सत्ता एक ही है, जिसे परमब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एक ही है, परंतु उसकी सगुण सत्ता त्रिगुणात्मिका होनेसे तीन रूपोंमें तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है। भक्त जिस भावका उपासक होता है वही उसके लिये उत्कृष्ट दीखता है। दूसरे दो रूप उसके अधीन भासते हैं। वस्तुतः सत्ता एक ही है। एकपर दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके

हितार्थ भक्तभावनकी लीलामात्र हैं । यह बात प्रसङ्ग-प्रसङ्गपर अच्छी तरह स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि त्रिमूर्ति एक ही सत्ता है । इनमें भेद माननेवालोंकी अधोगति होती है । इस प्रकार सारे हिंदू-साहित्यमें भिन्न-भिन्न नामोंसे एक ही परमात्म-सत्ताका प्रतिपादन है । 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः ।

लिङ्गपुराणके तीसरे ही अध्यायमें कहा है कि भगवान् महेश्वर अलिङ्ग हैं । प्रकृति प्रधान ही लिङ्ग है, महेश्वर निर्गुण हैं । प्रकृति सगुण है । प्रकृति या लिङ्गके ही विकास और विस्तारसे विश्वकी सृष्टि होती है । सारा ब्रह्माण्ड लिङ्गके ही अनुरूप बनता है । ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिङ्ग अनन्त-कोटि हैं । सारी सृष्टि लिङ्गके ही अन्तर्गत है, लिङ्गमय है और अन्तमें लिङ्गमें ही सारी सृष्टिका लय भी होता है । इसी तरहका भाव स्कन्दपुराणके इस श्लोकसे व्यक्त होता है—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते ॥

आकाश लिङ्ग है, पृथिवी उसकी पीठिका है, सब देवताओंका आलय है । इसमें सबका लय होता है, इसी लिये इसे लिङ्ग कहते हैं ।

आकाशको लिङ्ग कहा है, यह आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी उक्ति है । सम्प्रति शर्मण्य-देशके (जर्मनीके) प्रसिद्ध विश्वविख्यात गणिताचार्य अलवर्ट एंस्टैनने यह सिद्ध किया है कि अनन्त आकाश वक्र है, पर वलयके-से वक्रके अनुरूप है । देशमात्र वक्र है, जो कि लिङ्गका रूप है । देश, काल और वस्तु—इन्हीं तीन पदार्थोंसे यह सारा विश्व बना है । ये तीनों ही लिङ्गवत् वक्र हैं । उपादान जब वक्र हैं तो जितनी वस्तुएँ इन उपादानोंसे बनी हैं—विद्युत्कणों, परमाणुओं और अणुओंसे लेकर ब्रह्माण्डतक सम्पूर्ण सृष्टि वक्र है, लिङ्गरूप है । वस्तुतः जिसे सीधी रेखा कहते हैं वह कोई अस्तित्व नहीं रखती, वह केवल अंश-मात्र है वक्रका ।

एंस्टैनका सापेक्षवाद आज पाश्चात्त्य विज्ञानपर शासन कर रहा है, उसके अनुसार धरतीकी आकर्षण-शक्ति कोई वस्तु नहीं है । देशकी वक्रताके कारण ही वस्तुएँ गिरती हैं या लुढ़कती हैं । वस्तुकी मात्रा जिस पिण्डमें जितनी अधिक है, उतनी ही वक्रता उस पिण्डमें बढ़ी हुई है इसीलिये उसमें उतना ही अधिक खिंचाव देखनेमें आता है । वराह भगवान्‌का जोरोंसे दौड़ना लिखा है, गिरना नहीं । केतकीका पत्ता गिरता है परंतु अभी उस पिण्डके आधे-तक भी नहीं पहुँचा है जिसका विस्तार अनन्त है, जिसकी आधीसे भी कम दूरीतक गिरनेमें केतकच्छदको दस कल्प बीत गये हैं । आकाशकी अनन्तता तो इस लिङ्ग या पिण्डकी अपेक्षा अत्यधिक होगी और वह भी 'लिङ्ग' है । यह महान् ज्योतिर्लिङ्ग तो प्रकृतिका, आग्नेय वस्तुमात्राका एक विशाल समूह है, जिसका आकाशकी अपेक्षा आद्यन्त होनेपर भी जो ब्रह्मा और विष्णुके समान ईश्वरोंको भी अनादि अनन्त है । निदान अनन्तकोटि विश्व लिङ्गमय है और विश्वोंसे परे सगुण परात्पर ब्रह्मका आकार भी लिङ्ग है । अतः सब शर्वमय है । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सिद्ध है ।

सृष्टिके आरम्भमें सर्वप्रथम ज्योतिर्मय लिङ्गका आविर्भाव उसके कर्त्ता और पाताके सम्मुख हुआ है । परमात्म-सत्ता जो निर्गुण, निराकार, निर्विकार है, विवृत्त होकर इसी वक्राकारमें विकसित होती है जिसे चिह्नमात्र कह सकते हैं और इसी चिह्नके मूल रूपसे अनादि और अनन्त विविधताका विकास होता है । उस अमूर्त्त और अरूप परमात्माकी मूर्त्ति और रूपका आविर्भाव इसी लिङ्ग-रूपमें हो सकता है ।

यह लिङ्ग त्रिदेववाले रुद्रका नहीं है । यह परात्पर परतम ब्रह्मका लिङ्ग है । देखिये स्वयं भगवान् विष्णु अपने श्रीमुखसे क्या कहते हैं—

स्रष्टा त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम् ।
हर्ता च सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः ॥ ११ ॥

अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि।
अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे ॥ १२॥
निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम्।
सत्त्वं त्वदीय एवासि ज्ञानमात्मा तव प्रभो ॥ १३॥
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः।
नगाः
प्राणिनः पक्षिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि ॥ १४॥
स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः।
त्वं योगस्त्वं परा संवित्किं त्वं न भवसीश्वर ॥ १५॥
त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जग्मुषामपि।
कालस्वरूपतां प्राप्य कलयस्यखिलं जगत् ॥ १६॥
परेशः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकः शिवः।
स एव मे कथंकारं साक्षाद्भवति धूर्जटिः ॥ १७॥
(स्क०पु० १ । ३ । २ । १४)

शिवपुराणमें भी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डके छठे अध्यायमें भगवान् वायुदेवने शिवके लिङ्गस्वरूपका ऐसा ही उपनिषदुक्त परब्रह्मके सदृश ही वर्णन किया है।

३—मैथुनी सृष्टिका आरम्भ

जगत्की सृष्टिमें मैथुनी सृष्टिका विकास पीछेका है। पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टिसे ही काम लिया। उन्होंने अपने मानसपुत्र इसीलिये उत्पन्न किये कि वे मानसी सृष्टिको ही बढ़ावें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। उनके मानसिक पुत्रोंमें प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी। भला, प्रजाकी वृद्धि वे क्यों करें ? इससे उन्हें क्या लाभ ? हानि अवश्य थी कि कर्मका बन्धन बढ़ता था, झंझट बढ़ता था, परमात्मासे या अध्यात्मसे दूरीकरण होता था। सनकादिको पसंद न आया। नारदको एक आँख न भाया। उन्होंने देखा कि संसार जितना ही बढ़ता है उतना ही भगवान्से दूर होता है, परंतु ब्रह्माका उद्देश्य तो संसारको बढ़ाना ही था। वे कैसे रुक सकते थे ? उन्होंने सृष्टि-रचनाकी परीक्षा-पर-परीक्षा की और पग-पगपर असफल हुए और प्रत्येक असफलतापर उन्होंने तपस्या की। तपस्या एकमात्र उपाय थी। जब जिस किसीको कोई मनोरथ होता उसकी पूर्तिके लिये वह तपस्या करता। तपस्याकी निर्दिष्ट विधियाँ थीं और अधिकार-निर्धारण भी था। अविहित तपस्या फलवती नहीं होती थी। यह सब सही है, परंतु विहित तपस्या ही उस समय उपाय था। इस प्रसङ्गमें शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें पंद्रहवें अध्यायमें वायु भगवान् कहते हैं—

यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त वेधसः।
तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ १ ॥
न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात्।
तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः ॥ २ ॥
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्।
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वरः ॥ ३ ॥
प्रसादेन विना तस्य न वर्धेरन्निमाः प्रजाः।
एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥
तदाद्या परमा शक्तिरनन्ता लोकभाविनी।
आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५ ॥

× × ×

तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम्।
संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ ७ ॥
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः।
अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह ॥ ८ ॥
ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि।
अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवः स्वयं हरः ॥ ९ ॥
तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम्।
अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः ॥ १० ॥
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥ ११ ॥
अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम्।
अचलं निर्गुणं शान्तमनन्तमहिमास्पदम् ॥ १२ ॥
सर्वगं सर्वदं सर्वं सदसद्व्यक्तिवर्जितम्।
सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥ १३ ॥
प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः।

× × ×

तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥ १५ ॥

× × ×

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शंकराभ्याम्॥ ३५॥

जब फिर भी प्रजा न बढ़ी, तब ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिका ध्यान आया। पहले ईश्वरने स्त्रीकुल नहीं पैदा किया था। यह बात साधारण जीवोंकी समझमें आ ही नहीं सकती कि आरम्भमें सृष्टिके लिये कैसी असाधारण आवश्यकता थी। ब्रह्मामें भी वह असाधारण बुद्धि न थी। पूर्वकल्पकी स्मृतिसे उन्होंने पुरुष और स्त्रीकी रचना भी की तो भी उन्हें ठीक विधि न सूझी। इसलिये उन्होंने भगवान् शंकरके साथ-ही-साथ उनकी परम शक्तिका भी ध्यान किया और महाघोर तप किया। भगवान् संतुष्ट हुए और अर्धनारीश्वररूपमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुए। ब्रह्माजीने विनीत हो स्तुति की और नर-नारीरूप भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान्‌ने उन्हें वर दिया और साथ ही अपने शरीरसे देवी-देवकी रचना करने लगे।

ससर्ज वपुषो भागाद्देवीं देववरो हरः॥ ६॥
यामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम्।
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः॥ ७॥
यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्ममृत्युजरादयः।
या भवानी भवस्याङ्गात्समाविरभवत्किल॥ ८॥
यस्या वाचो निवर्त्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह।
सा भर्त्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत॥ ९॥

× × × ×

तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम्।

× × × ×

प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट्॥ १४॥

× × × ×

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम्।
तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते॥ १८॥

× × × ×

त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम्।
चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे॥ २०॥
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि।
एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना॥ २१॥
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम्।
तामाह प्रहसन् प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः॥ २२॥
ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम्।

× × × ×

ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत्।
दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम्॥ २४॥
विवेश देहं देवस्य देवश्चान्तरधीयत।
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः॥ २५॥
प्रजासृष्टिश्च विप्रेन्द्रा मैथुनेन प्रवर्तते।
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं संतोषं मुनिपुङ्गवाः॥ २६॥

उस देवीको विद्वान् 'ब्रह्म' कहते हैं। (यहाँ 'ब्रह्म' नामसे पुरुष और प्रकृतिकी एकता स्पष्ट है।) वह परमात्माकी शक्ति है। परमात्माके सभी विशेषण उसके लिये उपयुक्त हैं। वह अर्धाङ्गिनी देवी जब प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने स्तुति की और कहा कि इस सृष्टिको बारंबार बनाता हूँ पर इनकी बढ़न्ती नही होती, इसीलिये अब मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ। आपने पहले नारीकुल नहीं सिरजा, इसलिये मुझमें नारीकुल सिरजनेकी शक्ति नहीं है। आप सारी शक्तियोंकी खानि हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि अपने एक अंशसे चराचरकी वृद्धि करो और मेरे अंशसे उत्पन्न पुत्र दक्षकी कन्या होओ। इसपर उस 'ब्रह्म' ने अपनी भौंहोंके बीचसे एक शक्ति प्रकट की और आप ईश्वरमें लीन हो गयी। जो शक्ति ब्रह्माके लिये इस तरह प्रकटी, उसे भगवान् शंकरने आज्ञा दी कि तू तपस्याद्वारा ब्रह्माका आराधन करके उनके मनोरथोंको पूरा कर। यह कह भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिकी शक्ति मिली और तभीसे मैथुनधर्मद्वारा प्रजाकी सृष्टि प्रवृत्त हुई। भगवती दक्षकी कन्या सती हुईं और मैथुनधर्मकी प्रवृत्तिके लिये पहले-पहल ब्रह्माजी अपने शरीरको ही विभक्त करके दहिने आधेसे स्वायम्भुव मनु और बायें आधेसे शतरूपारूपसे स्वयं प्रकट हुए और मानव-सृष्टिका प्रारम्भ किया। मनु और शतरूपाने भी तपस्या की और तब वे सृष्टिकर्ममें प्रवृत्त हुए।

सृष्टिकी कथा बहुत बड़ी है । सभी पुराण सर्ग और प्रतिसर्गकी कथा कहते हैं । यहाँ वह सब प्रयोजनीय नहीं है । हमने ऊपर अत्यावश्यक श्लोक उद्धृत किये हैं । ऊपर उसके भाव भी संक्षेपसे दिये हैं । सभी प्रसङ्गोंपर अवतरण देनेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा । अर्धनारीश्वर-रूपका लिङ्ग और पीठिकासे घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

सृष्टिके इस प्रसङ्गका महाभारत अनुशासनपर्वके चौदहवें अध्यायमें इन्द्र और उपमन्युके संवादमें उपमन्युके इन वचनोंसे मिलान करनेपर मैथुनी सृष्टिसे अर्धनारीश्वर-का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम्।
कस्य वान्यस्य रेतस्तद्येन हैमो गिरिः कृतः ॥२१६॥
दिग्वासाःकीर्त्यते कोऽन्यो लोकेकश्चोर्ध्वरेतसः।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः॥२१७॥

× × × ×

पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥२३५॥

'देवों और असुरोंके गुरु अग्निके मुखमें आदिकालमें किसके वीर्यकी आहुति दी गयी ? वह क्या किसी औरका वीर्य है जिससे स्वर्ण-सुमेरु बना है ? लोकमें दिगम्बर और ऊर्ध्वरेता और कौन है ? किसने अपनी स्त्रीको अर्धाङ्गिनी बनाया है और किसने कामको जीता है?' 'चराचरमें पुरुषमात्रको हर और स्त्री-मात्रको गौरी जानो, यह चराचर जगत् इन दोनों शरीरोंसे व्याप्त रहा है........।'

शैवपुराण तो साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझे जाते हैं, परंतु महाभारत इतिहास है, उसे किसी साम्प्रदायिक पक्षपातसे कोई प्रयोजन नहीं है । उपमन्युका उपाख्यान जिससे कि ऊपरका अंश अवतरित है, महाभारतकी विशेषता नहीं है । प्रायः सभी पुराणोंमें श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरितमें उपमन्युकी कथा है जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे दीक्षा ली है, भगवान् शंकरके प्रीत्यर्थ बड़ी उग्र तपस्या की है और मनोवाञ्छित वर पाया है । इसी अध्यायके ये उद्धृत श्लोक पता देते हैं कि अर्धनारीश्वरने ब्रह्माजीको मैथुनी सृष्टिमें किस तरहकी सहायता दी ? ब्रह्माजीने सारी सृष्टि कर डाली, परंतु सृष्टिकी वृद्धिका कोई उपाय न किया । जिनको सिरजा वे बने रहे, परंतु फिर ? उनकी रक्षा भी होती रही । परंतु अपने आप वह सृष्टि बढ़े—ऐसा कोई उपाय न था । ब्रह्माजी अपनी असफलतापर झुँझलाये तो पिशाच-प्रेतादि उत्पन्न हो गये । क्रोध हुआ तो रुद्रोंकी उत्पत्ति हुई । इस तरह विविध भावोंसे विविध प्रकारकी सृष्टि होती गयी । नियमन कैसे हो ? जब उन्होंने देखा कि हमारे मानस पुत्र वैरागी हुए जाते हैं, तब काम, लोभ, मोह आदि विकार उपजाये । जिनकी सृष्टि की, उनमें मिलनेकी कामना हुई, कलाकी प्रवृत्ति हुई, सुन्दर रचनाओंकी ओर मन लगा । प्रकृतिमें, संसारमें सौन्दर्य देखनेकी इच्छा हुई । सुन्दर मणि हों, सुन्दर पौधे हों, सुन्दर पशु-पक्षी हों, सुन्दर मनुष्य, ऋषि, देवता हों । सौन्दर्यपर मोह हुआ, उन सुन्दर वस्तुओंके संग्रहपर लोभ हुआ, इसी प्रकार मद-मात्सर्य आदि भी उत्पन्न हुए । परंतु इनसे भी वृद्धि न हुई तब लाचार हो वे अर्धनारीश्वर भगवान् शंकरकी शरण गये । उन्होंने शक्तिमान् और शक्तिमें मेलका मार्ग दिखाया । अब ब्रह्माजीने जिस काम-देवताकी रचना की थी, उससे काम लिया गया । काम अब मैथुनी सृष्टिके लिये प्रवर्त्तक हुआ । शक्तिने नारीको सुन्दर बनाया और कामने दोनोंको मिलनेके लिये प्रवृत्त किया । यों गर्भाधानका कारण काम बना ।

यह लिङ्गोपासना सृष्टिके परम रहस्यकी साक्षी है, प्रवृत्ति-मार्गका ठीक पता देती है और धीरे-धीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिङ्गोपासनासे ही यथार्थ निवृत्ति-मार्गपर आरूढ़ हो जाता है ।

४—पशुपति और लिङ्ग-शब्द तथा लिङ्गार्चन

भगवान् शंकरके अनेक नामोंमेंसे 'पशुपति' और 'लिङ्ग' ये दो समझमें कम आते हैं। 'पशुपति' शब्दपर शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें यों लिखा है—

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति।
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः॥६०॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥६१॥
स एव बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः॥६२॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥६३॥

(अध्याय ५)

'यह जीव शरीरको देखता है, शरीर जीवको नहीं देखता। दोनोंको कोई उनसे भी परे देखता है परंतु ये दोनों उसे नहीं देखते। ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सभी पशु कहलाते हैं। सब पशुओंके लिये ही यह निदर्शन कहा है। यह मायापाशोंमें बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् (मदारी) की लीलाओंका साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है और ईशकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है।'

इसलिये जीव 'पशु' है और उसका 'पति' ईश है, ब्रह्म है, इसलिये 'पशुपति' महेश्वरका एक नाम है।

'लिङ्ग' शब्दका साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतिको भी लिङ्ग कहते हैं। देव-चिह्नके अर्थमें लिङ्ग-शब्द शिवजीके ही लिङ्गके लिये आता है। और प्रतिमाओंको मूर्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्तिमान्के ध्यानके अनुसार होता है, परंतु लिङ्गमें आकार या रूपका उल्लेखन नहीं है। वह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुषकी जननेन्द्रियका-सा है, जिसे लिङ्ग कहते हैं; परंतु स्कन्दपुराणमें 'लयनाल्लिङ्गमुच्यते' कहा है अर्थात् लय या प्रलय होता है इसीसे उसे 'लिङ्ग' कहते हैं। प्रलयसे लिङ्गका क्या सम्बन्ध है?

प्रलयकी अग्निमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिङ्गमें समा जाता है। वेद-शास्त्रादि भी लिङ्गमें ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिङ्गसे ही सब-के-सब प्रकट होते हैं। अतः 'लय' से ही लिङ्ग-शब्दका उद्भव ठीक ही है, उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि 'लिङ्ग' शब्दके अनेक अर्थोंमें एक लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता तो प्रसङ्गसे आती है। विषयात्मक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। 'पशुपति' और 'लिङ्ग' शब्दका भी यही हाल है।

लिङ्गार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है।

हमारे देशमें प्रायः सभी जगह पार्थिव-पूजा प्रचलित है। परंतु विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिङ्गकी भी स्थापना है। ये स्थावर मूर्त्तियाँ होती हैं। बाणलिङ्ग या सोने-चाँदीके छोटे लिङ्ग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन पाशुपत सम्प्रदायवाले एवं आजकलके लिङ्गायत सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ लिये फिरते हैं अथवा बाँह या गलेमें बाँधे रहते हैं।

लिङ्ग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं। गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है। उसमेंसे हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

(१) गन्धलिङ्ग—दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन

और तीन भाग कुंकुमसे बनाते हैं। शिव-सायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है ।

(२) *पुष्पलिङ्ग*—विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथ्वीके आधिपत्य-लाभके लिये पूजते हैं ।

(३) *गोशकृल्लिङ्ग*—स्वच्छ कपिलवर्णके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, परंतु जिसके लिये बनाया जाता है वह मर जाता है । मिट्टीपर गिरे गोबरका व्यवहार वर्जित है ।

(४) *रजोमयलिङ्ग*—रजसे बनाकर पूजनेवाला विद्याधरत्व और फिर शिव-सायुज्य पाता है ।

(५) *यवगोधूमशालिज लिङ्ग*—जौ, गेहूँ, चावलके आटेका बनाकर श्रीपुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

(६) *सिताखण्डमय लिङ्ग*—से आरोग्यलाभ होता है।

(७) *लवणज लिङ्ग*—हरताल, त्रिकटुको लवणमें मिलाकर बनता है । इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है ।

(८) *तिलपिष्टोत्थ लिङ्ग*—अभिलाषा सिद्ध करता है । इसी तरह—

(९–१२) *तुषोत्थ लिङ्ग*—मारणशील है, *भस्ममय लिङ्ग*—सर्वफलप्रद है, *गुडोत्थ लिङ्ग*—प्रीति बढ़ानेवाला है और *शर्करामय लिङ्ग*—सुखप्रद है ।

(१३-१४) *वंशाङ्कुरमय लिङ्ग*—वंशाकर है, *केशास्थिलिङ्ग*—सर्वशत्रुनाशक है ।

(१५–१७) *द्रुमोद्भूत लिङ्ग*—दारिद्र्यकर, *पिष्टमय*—विद्याप्रद और *दधिदुग्धोद्भव लिङ्ग*—कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है ।

(१८–२१) *धान्यज*—धान्यप्रद, *फलोत्थ*—फलप्रद, *धात्रीफलजात*—मुक्तिप्रद, *नवनीतज*—कीर्ति और सौभाग्य देता है ।

(२२–२७) *दूर्वाकाण्डज*—अपमृत्युनाशक, *कर्पूरज*—मुक्तिप्रद, *अयस्कान्तमणिज*—सिद्धिप्रद, *मौक्तिक*—सौभाग्यकर, *स्वर्णनिर्मित*—महामुक्तिप्रद, *रजत*—भूतिवर्धक है ।

(२८–३६) *पित्तलज तथा कांस्यज*—मुक्तिद, *त्रपुज, आयसज और सीसकज*—शत्रुनाशक होते हैं। *अष्टधातुज*—सर्वसिद्धिप्रद, *अष्टलौहजात*—कुष्ठनाशक, *वैदूर्यज*—शत्रुदर्पनाशक और *स्फटिकलिङ्ग*—सर्वकामप्रद है ।

परंतु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा—इन द्रव्योंके लिङ्गोंकी पूजा कलियुगमें वर्जित है । पारेका शिवलिङ्ग विहित है और वह महान् ऐश्वर्य देता है ।

लिङ्ग बनाकर उसका संस्कार करना पार्थिव लिङ्गोंको छोड़ और सब लिङ्गोंके लिये करना पड़ता है । स्वर्णपात्रमें दूधके अंदर तीन दिनोंतक रखकर फिर 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी षोडशोपचारसे पूजा करनी उचित है । फिर पात्रसे उठाकर लिङ्गको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है । फिर प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है ।

पार्थिव लिङ्ग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाते हैं। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिट्टी लेता है । परंतु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हर्ज नहीं, मिट्टी चाहे जैसी मिले ।

लिङ्ग साधारणतया अंगुष्ठप्रमाणका बनाते हैं । पाषाणादिके लिङ्ग मोटे और बड़े बनते हैं। लिङ्गसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठ करना होता है । लिङ्गकी लम्बाई कम होनेसे शत्रुकी वृद्धि होती है । योनिपीठ बिना या मस्तकादि अङ्ग बिना लिङ्ग बनाना अशुभ है । पार्थिव लिङ्ग अपने अंगूठेके एक पोरवेभर बनाना होता है । लिङ्ग सुलक्षण होना चाहिये । अलक्षण अमङ्गलकारी होता है ।

लिङ्गमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है । लिङ्गके मूलमें ब्रह्मा, मध्यदेशमें त्रिलोकीनाथ

विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य(ॐ-रूप)महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिङ्ग महादेव हैं। अतः एक लिङ्गकी पूजामें सबकी पूजा हो जाती है—(लिङ्गपुराण)। पारद-के लिङ्गका सबसे अधिक माहात्म्य है। पारद-शब्दमें प विष्णु, आ कालिका, र शिव, द ब्रह्मा— इस तरह सभी मौजूद हैं। उसके बने लिङ्गकी पूजासे, जो जीवनमें एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलते हैं।

यह तो लिङ्ग-निर्माणकी बात हुई। परंतु नर्मदादि नदियोंमें भी पाषाणलिङ्ग मिलते हैं। नर्मदाका बाणलिङ्ग भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है। बाणलिङ्गकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रूपेकी भी बनाते हैं।

परंतु नदीसे बाणलिङ्ग निकालकर पहले परीक्षा होती है, फिर संस्कार। पहले एक बार लिङ्गके बराबर चावल लेकर तौले। फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिङ्ग हलका ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिङ्ग पूजनीय है। तीन, पाँच या सात बार तौलनेपर भी तौल बराबर निकले तो उस लिङ्गको जलमें फेंक दे। यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिङ्ग उदासीनोंके लिये पूजनीय है—(सूतसंहिता)। तौलमें कमी-बेशी ही बाणलिङ्गकी पहचान है। जब बाणलिङ्ग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है। संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य विधिसे गणेशादिकी पूजा आदि है। फिर बाणलिङ्गको स्नान कराते हैं। स्नान कराकर यह ध्यान-मन्त्र—

ॐप्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं बाणाख्यं च महाप्रभम्।
कामबाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्॥
शृङ्गारादिरसोल्लासं बाणाख्यं परमेश्वरम्॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा करनी होती है। भरसक षोडशोपचार पूजा होती है। फिर जप करके स्तवपाठ करनेका दस्तूर है। बाणलिङ्गकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

बाणलिङ्गके प्रकार बहुत हैं। विस्तारभयसे यहाँ हम उनका उल्लेख नहीं करते। हाँ, यह जानना आवश्यक है कि बाणलिङ्ग निन्द्य न हो। कर्कश होनेसे पुत्र-दारादि-क्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एकपार्श्वस्थित होनेसे पुत्रदारादिधनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, छिद्र होनेसे प्रवास और लिङ्गमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है। ये निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है। तीक्ष्णाग्र, वक्रशीर्ष तथा त्रिकोण लिङ्ग भी वर्जित हैं। अति स्थूल, अति कृश, स्वल्प, भूषणयुक्त मोक्षार्थियोंके लिये हैं, गृहस्थोंके लिये वर्जित हैं।

मेघाभ और कपिल वर्णका लिङ्ग शुभ है, परंतु गृहस्थ लघु या स्थूल कपिल वर्णवालेकी पूजा न करे। भौंरेकी तरह काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ, संस्कृत हो या मन्त्रसंस्काररहित भी हो तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है। बाणलिङ्ग प्रायः कँवलगट्टेकी शकलका होता है। पकी जामुन या मुरगीके अण्डेके अनुरूप भी होता है। श्वेत, नीला और शहदके रंगका भी होता है। ये ही लिङ्ग प्रशस्त हैं। इन्हें बाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि बाणासुरने तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिङ्गरूपमें प्रकट रहें। एक बाणलिङ्ग-की पूजासे अनेक और लिङ्गोंकी पूजाका फल मिलता है।

पार्थिव-पूजा

'ॐ हराय नमः' मन्त्रसे मिट्टी लेकर 'ॐ महेश्वराय नमः' मन्त्रसे अंगूठेके पोरभरका लिङ्ग बनावे। तीन भागमें बाँटे। ऊपरीको लिङ्ग, मध्यको गौरीपीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं। दहिने या बायें किसी एक ही हाथसे लिङ्ग बनावे। असमर्थ दोनों लगा सकता है। लिङ्ग बन जाय तो उसके सिरपर नन्हीं-सी मिट्टीकी

गोली बनाकर रक्खी जाती है । यह वज्र है । पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गात्रपर हाथ रखकर 'ॐहराय नमः' और 'ॐमहेश्वराय नमः' कहे । पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें बिल्वपत्र जरूरी है। पूजकके माथेपर भस्म या मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला जरूर होनी चाहिये । आसनशुद्धि, जलशुद्धि, गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इस प्रकार भगवान् शंकरका ध्यान करे—

ॐध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिङ्गके मस्तकपर फूल रक्खे । तब 'ॐपिनाकधृक्, इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह संनिधेहि, इह संनिधेहि, इह संनिरुद्ध्यस्व, इह संनिरुद्ध्यस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण ।' इस प्रकार आवाहनादि करे । आवाहनादि पाँच मुद्रा दिखाकर करते हैं । पीछे 'ॐशूलपाणे, इह सुप्रतिष्ठितो भव' मन्त्रसे लिङ्ग-प्रतिष्ठा करे । फिर 'ॐपशुपतये नमः' मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ाये । फिर मस्तकपरका वज्र फेंककर चार अरवा चावल चढ़ाये । फिर पाद्यादि दशोपचार 'ॐ एतत् पाद्यम् ॐ नमः शिवाय नमः ।' 'इदमर्घ्यम् ॐ नमः शिवाय नमः' इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ करे । शिवके अर्घ्यमें केला और बेलपत्र देना होता है और स्नानके पहले मधुपर्क । इसके बाद शिवकी अष्टमूर्तिकी पूजा करनी होती है । गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वसे लेकर उत्तरावर्त्ती मार्गसे आठवीं दिशा अग्निकोणपर आकर समाप्त करना होगा । 'एते गन्धपुष्पे ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' (पूर्व) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः' (ईशान) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः' (उत्तर) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः' (वायव्य) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः' (पश्चिम)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः' (नैर्ऋत्य) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः' (दक्षिण) । 'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय सूर्य-मूर्त्तये नमः' (अग्निकोण) । इस तरह अष्टमूर्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्य' इत्यादि मन्त्रोंसे करे । फिर दहिने हाथका अंगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा 'बम्' 'बम्' शब्द करते हुए दहिना गाल बजाये । अब अन्तमें महिम्नस्तोत्र या और कोई शिव-स्तुति पढ़ना आवश्यक है । अब प्रणाम करके दहिने हाथसे अर्घ्यजलसे आत्म-समर्पण करके लिङ्गके मस्तकपर थोड़ा जल चढ़ाये और कृताञ्जलि हो क्षमा-प्रार्थना करे ।

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥

इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन करना होता है । ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाकर पीछे संहारमुद्राद्वारा एक निर्माल्यपुष्प सूँघते हुए उस त्रिकोण-मण्डलके ऊपर डाल देना होता है । इस घड़ी ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् शंकरने मेरे हृत्-कमलमें प्रवेश किया है । इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ॐ चण्डेश्वराय नमः' 'ॐ महादेव क्षमस्व' कहकर शिवको ले मण्डलके ऊपर रख देना होता है ।

५-ज्योतिर्लिङ्गानि

शैवपुराणोंमें बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका उल्लेख है । काशी-धामके विश्वेश्वरलिङ्ग इन सबमें प्रधान हैं । इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है । औरंगजेबके समयमें मुसल-मानोंके उपद्रवसे वह ज्योतिर्लिङ्ग ज्ञानवापीके भीतर सुरक्षित रहा। बदरिकाश्रममें केदारेश्वर दूसरे हैं । कृष्णा-के तटवर्ती श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन तीसरे हैं । वहीं भीमशंकर चौथे हैं । काश्मीर-प्रदेशके ओंकारमें अमरेश्वर या अमर-

नाथ पाँचवें हैं। उज्जयिनीमें महाकालेश्वर छठे हैं। महाकालेश्वरकी मूर्त्तिको अलतमश बादशाहने शक ११५८में तोड़ डाला था। सूरत या सौराष्ट्रदेशमें सोमनाथके मन्दिर-को संवत् १०८१ में महमूद गजनवीने नष्ट किया और लूट ले गया। यह सातवें हैं। चिताभूम झारखण्डमें वैद्यनाथजी आठवें हैं। औढ़देशमें नागनाथ नवें हैं। शिवालयमें घूश्मेश (या शैवालमें घुषमेश) दसवें हैं। ब्रह्मगिरिमें त्र्यम्बकनाथ ग्यारहवें हैं। सेतुबन्धमें रामेश्वर बारहवें हैं। शिवपुराण उत्तरखण्डके तीसरे अध्यायमें उपर्युक्त नाम दिये हुए हैं। परंतु 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग-स्तोत्र' प्रसिद्ध है। उसमें कावेरी और नर्मदासङ्गमपर मान्धातापुरमें ओंकारेश्वर नाम लिङ्गको चौथा बताया है। सह्याद्रिकी चोटीपर गोदावरीके किनारे त्र्यम्बकनाथका पता बताया है। भीमशंकरका ठीक पता वहाँ भी नहीं लिखते। इलापुरीमें घुश्मेश्वरकी जगह घृष्णेश्वरको बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग बताया है। इन स्थानोंका ठीक पता लगाना स्वतन्त्र विषय है।

लिङ्गसम्बन्धी साहित्य इतना विशाल है कि उसका सार भी यहाँ इस लेखमें सम्भव नहीं है, परंतु जिन बातोंके जाननेका शिव-भक्तोंको साधारणतया कुतूहल रहता है, संक्षेपमें उन विषयोंकी थोड़ी-सी जानकारी पिछले पृष्ठोंसे यदि पाठकोंको हो जाय तो इन पंक्तियोंका लेखक अपनेको कृतकृत्य समझेगा। यदि यह कृतकृत्यता उसे न भी प्राप्त हुई तो इसमें तो संदेह नहीं कि जगद्गुरु जगदीश्वर मदीयगुरु महेश्वर भगवान् शंकरके गुण-कीर्त्तन-का उसे अलभ्य लाभ और कल्याणके साथ-ही-साथ सहृदय पाठकोंका और लेखकका परम कल्याण हुआ।* एवमस्तु।

शिव-तत्त्व

(लेखक—स्व० श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी०ए०, बी०एल्०, बी०एस्-सी०, एम्०आर्०इ०इ०, एम्०आई०ई०)

देवाधिदेव महादेवके विषयमें सम्यक्रूपसे आलोचना करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है, यही सब शास्त्रों-का सिद्धान्त है। पूर्णका वर्णन ही क्या किया जा सकता है? हम भी गन्धर्वराज पुष्पदन्तके शब्दोंमें सर्वप्रथम यही कहते हैं—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः॥

'हे शिव! मुझ-जैसे अज्ञ पुरुषसे तुम्हारी महिमा यदि पूर्णरूपेण व्यक्त करके नहीं कही गयी है तो मैं यह कहूँगा कि ब्रह्मादि भी तुम्हारी महिमाको व्यक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं, मेरी तो बिसात ही क्या है? किंतु अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा विषय कहनेमें यदि दोष न होता हो तो मैं भी यथासाध्य तुम्हारे गुणोंका वर्णन अपनी बुद्धिके अनुसार करता हूँ, इसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।' मेरी प्रार्थना है—

आमि शिखि नाइ किछु बूझि नाइ किछु
दाओ हे शिखाये बुझाये।

अर्थात् 'न तो मैंने कुछ सीखा है और न मैं कुछ समझता ही हूँ। तुम्हीं सिखा दो, समझा दो।' मेरी इच्छा होती है कि माता पार्वतीने ब्रह्मचारि-वेशधारी शंकरके निकट शिवकी जो व्याख्या की है उसे ज्ञातव्य समझकर नीचे उद्धृत करूँ—

स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः।
सर्वं जगद्वपुस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः॥
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्त्ति सः।
अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः॥
श्मशानं चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनाम्।
भूतयः कथिता भूतिस्तां बिभर्ति स भूतिभृत्॥

* 'शिवाङ्क' में प्रकाशित स्वर्गीय श्रीगौड़जीके महत्त्वपूर्ण लेखका कुछ अंश।

वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततो वृषी।
सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्यास्तान् बिभर्त्ति जगन्मयः॥
नानाविधान् कर्मयोगाञ्जटारूपान् बिभर्त्ति सः।
वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरस्त्रिगुणं वपुः॥
भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः।
एवंविधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः॥

'वे समस्त जगत्के आदि हैं, सुतरां उनके वंशका वृत्तान्त कौन जान सकता है ? समस्त जगत् उनका स्वरूप है, इसीलिये वे दिगम्बर हैं। वे त्रिगुणात्मक शूल धारण करते हैं, इसीलिये उन्हें 'शूली' कहते हैं। भूत सर्वथा संसारमें बद्ध नहीं हैं; बल्कि पूर्णतः मुक्त हैं, इसीलिये वे मुक्त भूतगणोंके अधिपति हैं। यह संसार ही श्मशानक्षेत्र है, वे प्राणियोंके प्रति कृपावशतः इस श्मशान-में वास करते हैं। उनकी विभूति ही सबको प्रकृत विभूति (ऐश्वर्य) प्रदान करती है, इसीलिये वे इस विभूतिको अपने शरीरपर धारण करते हैं। धर्म ही वृष है और उसपर आरूढ़ होनेके कारण वह 'वृषवाहन' कहलाते हैं। क्रोधादि दोषसमूह ही सर्प हैं, जगन्मय महेश्वर इन सबको वशीभूत कर भूषणके रूपमें धारण करते हैं। विविध कर्मकलाप ही जटा हैं, वह इन सबको धारण करते हैं। वेदत्रयी उनके तीन नेत्र हैं। त्रिगुणमय शरीर ही त्रिपुरपदवाच्य है, इसको भस्मसात् करनेके कारण ही वह 'त्रिपुरघ्न' कहलाते हैं। जो सूक्ष्मदर्शी पुरुष इस प्रकारके महादेवको जानते हैं वे उन हरका भजन क्यों न करेंगे ?'

माँ पार्वतीके द्वारा वर्णित शिव उन्हींके निकट प्रकट होते हैं। हम इस रहस्यको क्या समझें ? साधारण नेत्रोंसे देखते हैं तो मालूम होता है कि शिव सर्वशास्त्रके वर्णनातीत लक्ष्य हैं। काण्ट (Kant) के देश और काल (Time and space) से अतीत 'Ding and sich, वस्तु-तत्त्व हमारे शिव ही हैं। इसीलिये वे महाकालके नामसे विख्यात हैं, दिगम्बर हैं—असभ्य, बर्बरजातीय पुरुष अथवा राक्षस नहीं। भर्तृहरिने भी उन्हें 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' (दिशा एवं काल आदिसे अनवच्छिन्न) कहा है। श्रुति भी उन्हें 'अप्रमेय' और 'अनाद्य' कहती है—

अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम्।

(ब्रह्मबिन्दु० १४। ५। २)

इसी कारण वह 'स आदिः सर्वजगताम्' हैं और उनके पिताका कोई पता नहीं बताया गया है। उन्हींके विषयमें यह कहा गया है—

'सर्वकार्यधर्मविलक्षणे ब्रह्मणि'

(तैत्ति० उ० भा०)

He forms the very supreme unity of all contradictions. (Cardinal Nichola Causa)

इसी कारण माता पार्वतीने कहा है—'सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्याः' इत्यादि। उनका प्रभुत्व असमग्र नहीं है अर्थात् वे Devil या Satan अथवा God ही नहीं, वे तो 'शिवमद्वैतम्' हैं—एकेश्वर, सर्वेश्वर हैं। शिव भिक्षुक हैं, यह सुनकर, जान पड़ता है, माता पार्वती सकुचा जाती हैं। परंतु मैं समझता हूँ कि वे हमारे मनकी ही भिक्षा माँगते हैं। अहा ! वे सर्वदा ही वंशीनिनादसे अथवा डमरू-ध्वनिसे हमारे मनको भिक्षा-रूपमें हरण करते हैं। हम उनको नहीं चाहते तथापि वे हमारे मनको चाहते हैं, क्योंकि वे अपना मन भक्तों-को देकर स्वयं भिक्षुक बन गये हैं। यही बात अन्यत्र भी देखनेमें आती है—

इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मरातया।
मनोरथवती नाम भिक्षापात्रं समर्पिता॥

(काशीखण्ड ३०। १०२)

तथा हम भी प्रार्थना करते हैं—

लक्ष्मीपते निगमतत्त्वविदाश्रयाय
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसोमनसोऽस्ति दैन्यं
दत्तं मया मम मनः कृपया गृहाण॥

अब उपर्युक्त वर्णनके विषयमें कुछ विचार किया

जायगा । 'बोधसार'* नामक ग्रन्थसे सर्वसाधारणके ज्ञानार्थ संक्षेपमें कहा जाता है ।

दिगम्बरता-विचार

निरावरणविज्ञानस्वरूपो हि स्वयं हरः।
स्वैरं चरति संसारे तेन प्रोक्तो दिगम्बरः॥

जो कारणाविद्या जीवको अपने ब्रह्मत्वकी उपलब्धि नहीं करने देती, उस अविद्याका लेशमात्र भी परमात्मा शिव गुरुमें स्वभावतः ही नहीं रह सकता, क्योंकि वे समष्टि-व्यष्टि देहत्रयरूप प्रपञ्चके विधि-निषेधसे अतीत हैं । इसी कारण वे 'दिगम्बर' कहलाते हैं । उनकी इस दिगम्बरताको बेसमझ लोग 'नग्नता' कह बैठते हैं ।

भस्मोद्धूलन-विचार

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते किल।
तेनैव भस्मना गात्रमुद्धूलयति धूर्जटिः॥

देह-संवलित चिदाभासमें 'मैं' बुद्धिके द्वारा जो कर्म होते हैं वे संचित, प्रारब्ध और क्रियमाणरूपमें बन्धनका कारण बनते हैं, वही सब कर्म निष्क्रिय ब्रह्मरूपताकी प्राप्ति होनेपर शरीरान्तर (पुनर्जन्म) के उत्पादनमें असमर्थ हो जाते हैं और इसलिये भस्मके सदृश अकिञ्चित्कर हो जाते हैं—यह बात गीता आदि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है । शिवके असुरविमर्दन तथा विश्वसंहारादि कर्म उसी प्रकार अकिञ्चित्कर हैं । इसी कर्मके द्वारा आवृत होकर वे लोकदृष्टिमें आविर्भूत होते हैं । इसी कारण वे मूढ़जनोंके निकट भस्मावृततया प्रतिपादित होते हैं ।

भासते भिन्नभावानामपि भेदो न भस्मनि।
स्वस्वभावस्वभावेन भस्म भर्गस्य वल्लभम्॥

'परस्पर भिन्न वस्तुएँ भी भस्मीभूत हो जानेपर एक-रूप ही भासती हैं, इसी कारण भस्म सब वस्तुओंकी एकरूपताका प्रतिपादक है । तुल्य स्वभाववाले 'भर्ग' अर्थात् जगद्बीज-भर्जक शिवके निकट आनन्ददायक है ।'

जटाजूट-विचार

विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातनवटो हरः।
वेदान्तसांख्ययोगाख्यास्तिस्रस्तज्जटयः स्मृताः॥

'यही हर अर्थात् अपरोक्ष परमात्मा पञ्चम्यादि भूमिका-रूढ़ जीवन्मुक्तोंके विश्रामस्थान, पुरातन वटवृक्षस्वरूप हैं । वेदान्त, सांख्य और योग—ये तीन उस वटवृक्षकी जटाके रूपमें शिरोभूषण हैं । शिवके जटाजूटका यही तात्पर्य है ।'

त्रिनेत्रता-विचार

आप्यायनस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत्।
सोमसूर्याग्निनयनस्त्रिनेत्रस्तेन शंकरः॥

'शंकर चन्द्रके समान जगदानन्ददायक, सूर्यके समान अज्ञानतमोनाशक तथा अग्निके समान रागादि दोषोंके दहनकर्त्ता हैं । इसी कारण चन्द्रसूर्याग्निनयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन किया जाता है ।

भुजगभूषणता-विचार

योगिनः पवनाहारास्तथा गिरिबिलेशयाः।
निजरूपे धृतास्तेन भुजङ्गाभरणो हरः॥

'योगिजन सर्पके समान वायुभक्षण कर प्राणधारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओंमें रहते हैं । 'विविक्तसेवी' एवं 'लब्धाशी' होनेके कारण वे शिवको इतने प्रिय हैं कि वे इन योगिजनोंको अपने अङ्गका भूषण बनाये रखते हैं । इसी कारण शंकर 'भुजङ्गाभरण' के रूपमें वर्णित होते हैं ।'

त्रिशूल-विचार

शान्तिवैराग्यबोधाख्यैस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभिः ।
त्रिगुणत्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः॥

---

* 'बोधसार' ग्रन्थ महात्मा श्रीनरहरिस्वामीकृत है । बहुत उत्तम ग्रन्थ है । इसका हिंदी-भाषान्तर पं० रामावतारजी विद्याभास्कर शास्त्रीने किया है और उसे ठा० कायमसिंहजीने प्रकाशित किया है । उसका कुछ अंश कल्याणमें भी पहले छप चुका है । हिंदी-भाषान्तरसहित, ६२५ पृष्ठके ग्रन्थका मूल्य २।) है । साधकों और वेदान्तप्रेमी महानुभावोंको ग्रन्थ पढ़ना चाहिये । पहले यह ग्रन्थ—विद्याभास्कर बुकडिपो, चौक, वाराणसीमें मिलता था । —सम्पादक

शान्ति अर्थात् उपरति, जो यम-नियमादिके अभ्यास, चित्तनिरोध तथा व्यवहारके संकोचद्वारा उत्पादित होती है।

वैराग्य अर्थात् दोषदर्शनके द्वारा रूप-रसादि सब विषयोंके त्यागकी इच्छा एवं भोगवस्तुके अभावमें बुद्धिकी अदीनता।

बोध अर्थात् श्रवणादिजनित सत्य-मिथ्या-विवेचन, जिसके द्वारा चिदात्मा और अहंकारकी एकतारूप ग्रन्थिका अनुदय और विनाश होता है।

ये तीनों उपाय अज्ञान और अज्ञानके कार्यको शीघ्र ही भेदन करनेमें समर्थ होनेके कारण त्रिशूलके फलोंके साथ सादृश्यको प्राप्त होते हैं। इसी त्रिशूलके द्वारा त्रिलोचन सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंका तथा उनके कार्यरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक देहत्रयका विनाश करते हैं, मिथ्यात्वका निश्चय करा उसमें अप्रतीति उत्पादन कराते हैं।

वृषभवाहन-विचार

ब्रह्माद्या यत्र नारूढास्तमारोहति शंकरः।
समाधिं धर्ममेघाख्यं तेनायं वृषवाहनः॥

जिस धर्ममेघ नामक समाधिमें ब्रह्मादि कोई स्थित नहीं हो सकते, शंकर उसी समाधिमें आरूढ़ देखे जाते हैं। इसी कारण शंकर 'वृषवाहन' कहलाते हैं। जिस प्रकार मन ही ब्रह्म है, ऐसा समझकर मनमें ब्रह्मबुद्धि करके उपासना की जाती है, इसी प्रकार नन्दीवृषमें धर्ममेघ-समाधि-बुद्धि एवं शिवमें ब्रह्माभिन्न-प्रत्यात्मगुरु-बुद्धि करके उपासना करनी चाहिये। समाधिद्वारा बुद्धिका साक्षात्कार हो जानेपर निरोध-समाधिद्वारा चैतन्यमात्राधिगम होनेसे वह बुद्धि जब पृथक्त्वविषयक प्रज्ञा बनती है तब उसे 'विवेक-ख्याति' कहते हैं। इस प्रकारकी विवेक-ख्यातिसे सर्वज्ञता-सिद्धि उत्पन्न होती है। ब्रह्मवेत्ता जब इस सर्वज्ञता-सिद्धिके प्रति भी आसक्तिरहित हो जाता है, तब विवेक-ख्याति पूर्णताको प्राप्त होती है। इस प्रकारकी समाधिको 'धर्ममेघ' कहते हैं। मेघ जिस प्रकार वारिवर्षण करते हैं, यह समाधि भी उसी प्रकार परम धर्मका वर्षण करती है, अर्थात् उस अवस्थामें साधक बिना प्रयत्नके ही कृतकृत्य हो जाता है।

श्मशान-विचार

नित्यं क्रीडति यत्रायं स्वयं संसारभैरवः।
तत्र श्मशाने संसारे शिवः सर्वत्र दृश्यते॥

स्वतःसिद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप, ज्ञानिजन-प्रत्यक्ष शंकर सर्वजगत्‌के लयके अधिष्ठान हैं। इसी कारण वे सबके भयका कारण बन संसारमें नित्य-क्रीड़ा करते हैं। इस श्मशानवत् अमङ्गलरूप संसारमें सर्वदा और सब पदार्थोंमें वे ज्ञानिजनोंको दृष्टिगोचर होते हैं। उपासनाके लिये संसारमें श्मशान-दृष्टि करनी चाहिये।

गण-विचार

आनन्दसागरः शम्भुस्तच्छक्तिर्द्रव उच्यते।
शीकरा इव सामुद्रास्तदानन्दकणा गणाः॥

शम्भु चतुर्विध (विद्यानन्द चार प्रकारका होता है—(१) दुःखाभाव या दुःखनाश, (२) सर्वकामावाप्ति, (३) कृतकृत्यता तथा (४) प्राप्तप्राप्तव्यता) विद्यानन्दके समुद्रके समान हैं। मुनिगण शक्तिको या जगदुत्पादन सामर्थ्यको इस सागरके जलरूपमें वर्णन करते हैं। समुद्रके शीकरोंके समान इस आनन्द-समुद्रके समस्त क्षुद्र अंशोंको अर्थात् विविध प्रकारके विद्यानन्दको, शिवके सांनिध्य और अन्तरङ्गताके कारण, गण या सेवक समझना चाहिये। अर्थात् उपासनाके लिये गणोंकी विद्यानन्दरूपताका चिन्तन करना चाहिये।

जगद्विलक्षणः स्वामी स्वरूपाकृतिलक्षणैः।
जगद्विलक्षणा एव गणास्तस्य किमद्भुतम्॥

जब स्वामी स्वयं ही स्वरूप, आकृति और लक्षणसे सृष्टिसे विलक्षण हैं, तब उनके गण या सेवकगण अद्भुत स्वभाववाले हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है? भावार्थ

यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप शिव असत्, जड और दुःखरूप जगत्-प्रपञ्चके विपरीत स्वभाववाले होनेके कारण उनके सेवक-विद्यानन्दादि भी विषयानन्दसे विपरीत स्वभाववाले अवश्य होंगे ।

इस प्रकार शिवके साधारण, प्रचलित तथा ध्यानमें वर्णित समस्त विषय शास्त्रोंमें विवेचित हुए हैं । लेखके बढ़ जानेके भयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया जाता है ।

कोई ऐसा विचार कर सकते हैं कि यदि तत्त्वतः शिव परमात्माके स्वरूप हैं तो उनका इस प्रचलित भावमें ध्यान क्यों किया जाता है ? बात यह है कि अधिकारिभेदसे कार्य-कारण-भेद होता है । परंतु—

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।

अर्थात् जिस प्रकारसे नाना प्रकारके नदी-नाले नाना मार्गसे समुद्रमें ही जाते हैं, उसी प्रकार भक्त चाहे जिस भावसे भक्ति करे, तुम्हीं उसके गन्तव्य स्थान हो । कोई मार्ग तुमसे विपरीत नहीं है तथा कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें तुम शिव-स्वरूपसे विद्यमान न हो ।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत् तत्त्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि ॥

अतएव उनका प्रचलित भावसे विचार करनेमें ही क्या दोष है ? वे भावमय हैं, भाव ही देखते हैं । वे अमूर्त हैं, भक्तके लिये मूर्ति धारण करते हैं । यही देखता हूँ—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च सर्वेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

साकारका अवलम्बन करके ही निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी भावना की जाती है । साकारके बिना निराकार-में स्थितिलाभ नहीं होता । सब कुछ साकार ही दृष्टि-गोचर होता है, परंतु अभ्यासके द्वारा निराकारकी उपलब्धि होती है तथा उसमें स्थिति प्राप्त की जाती है । भगवान् चिन्मय, अद्वितीय, कलारहित तथा रूप-रहित होते हुए भी उपासकको कृतार्थ करनेके लिये उसके ध्येयरूपमें उपस्थित होते हैं । 'ब्रह्मणो रूप-कल्पना—कर्त्तरि षष्ठी' । इसीको स्पष्ट करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः ।
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः ॥
(अग० सं० तृ०)

जो सर्वेश्वर, सर्वमय, सब भूतोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं, वही सबके उपकारके लिये निराकार होते हुए भी साकार हुए हैं ! यह साकार रूप मनुष्यकी कल्पना नहीं है, भगवान् ही अपनी शक्तिसे रूप धारण करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे गीताके १६ वें अध्यायमें वर्णित दैवी सम्पत्तिके लिये भगवान्से आत्म-निवेदन करनेपर तथा १२ वें अध्यायमें कहे हुए भक्तके लक्षणोंसे युक्त होनेपर आशुतोष शंकर साधकके निकट आविर्भूत होते हैं । ऐसा करनेसे ही शिवका रूप है या नहीं, पुराण सत्य हैं या असत्य इत्यादि नाना प्रकारके संदेह दूर होते हैं । केवल पुस्तक पढ़नेसे पुस्तकी विद्याके आगे कोई नहीं जा सकता । सद्गुरुके शरणागत हो अपने चरित्रको सुधारना तथा भगवान् शंकरकी कृपा प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ समझकर कार्य करनेसे शिव दया करते हैं । तब—

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

श्रीशिवचालीसा

दोहा

अज अनादि अविगत अलख, अकल अतुल अविकार ।
बंदौं शिव-पद-युग-कमल अमल अतीव उदार ॥ १ ॥
आर्तिहरण सुखकरण शुभ भक्ति-मुक्ति-दातार ।
करौ अनुग्रह दीन लखि अपनो विरद विचार ॥ २ ॥
पर्‍यो पतित भवकूप महँ सहज नरक आगार ।
सहज सुहृद पावन-पतित, सहजहि लेहु उबार ॥ ३ ॥
पलक-पलक आशा भर्‍यो, रह्यो सु-बाट निहार ।
ढरो तुरंत स्वभाववश, नेक न करौ अबार ॥ ४ ॥

जय शिवशंकर औढरदानी ।
जय गिरितनया मातु भवानी ॥ १ ॥
सर्वोत्तम योगी योगेश्वर ।
सर्वलोक-ईश्वर-परमेश्वर ॥ २ ॥
सब उर-प्रेरक सर्वनियन्ता ।
उपद्रष्टा भर्ता अनुमन्ता ॥ ३ ॥
पराशक्ति-पति अखिल विश्वपति ।
परब्रह्म परधाम परमगति ॥ ४ ॥
सर्वातीत अनन्य सर्वगत ।
निज स्वरूप महिमामें स्थित रत ॥५॥
अंगभूति-भूषित श्मशानचर ।
भुजंगभूषण चन्द्रमुकुटधर ॥ ६ ॥
वृषवाहन नंदीगण नायक ।
अखिल विश्वके भाग्य-विधायक ॥७॥
व्याघ्रचर्म परिधान मनोहर ।
रीछचर्म ओढ़े गिरिजावर ॥ ८ ॥
कर त्रिशूल डमरूवर राजत ।
अभय वरद मुद्रा शुभ साजत ॥ ९ ॥
तनु कर्पूर-गौर उज्ज्वलतम ।
पिंगल जटाजूट सिर उत्तम ॥१०॥
भाल त्रिपुण्ड्र मुण्डमालाधर ।
गल रुद्राक्ष-माल शोभाकर ॥ ११ ॥
विधि-हरि-रुद्र त्रिविध वपुधारी ।
बने सृजन-पालन-लयकारी ॥१२॥
तुम हो नित्य दयाके सागर ।
आशुतोष आनन्द-उजागर ॥१३॥
अति दयालु भोले भण्डारी ।
अग-जग सबके मंगलकारी ॥१४॥
सती-पार्वतीके प्राणेश्वर ।
स्कन्द-गनेश जनक शिव सुखकर ॥१५॥
हरि-हर रूप एक गुणशीला ।
करत स्वामि-सेवककी लीला ॥१६॥
रहते दोउ पूजत पुजवावत ।
पूजा-पद्धति सबन्हि सिखावत ॥१७॥
मारुति बन हरि-सेवा कीन्ही ।
रामेश्वर बन सेवा लीन्ही ॥१८॥
जग-हित घोर हलाहल पीकर ।
बने सदाशिव नीलकंठ वर ॥१९॥
असुरासुर शुचि वरद शुभंकर ।
असुरनिहन्ता प्रभु प्रलयंकर २०॥
'नमः शिवाय' मन्त्र पञ्चाक्षर ।
जपत मिटत सब क्लेश भयंकर ॥२१॥
जो नर-नारि रटत शिव-शिव नित ।
तिनको शिव अति करत परम हित ॥२२॥
श्रीकृष्ण तप कीन्हों भारी ।
ह्वै प्रसन्न वर दियो पुरारी ॥२३॥
अर्जुन संग लड़े किरात बन ।
दियो पाशुपत-अस्त्र मुदित मन ॥२४॥
भक्तनके सब कष्ट निवारे ।
दे निज भक्ति सबन्हि उद्धारे ॥२५॥
शंखचूड़ जालंधर मारे ।
दैत्य असंख्य प्राण हर तारे ॥२६॥
अन्धकको गणपति पद दीन्हों ।
शुक्र शुक्रपथ बाहर कीन्हों ॥२७॥
तेहि संजीवनि विद्या दीन्हीं ।
बाणासुर गणपति-गति कीन्हीं ॥२८॥
अष्टमूर्ति पंचानन चिन्मय ।
द्वादश ज्योतिलिङ्ग ज्योतिर्मय ॥२९॥

भुवन चतुर्दश व्यापक रूपा ।
अकथ अचिन्त्य असीम अनूपा ॥३०॥
काशी मरत जंतु अवलोकी ।
देत मुक्ति-पद करत अशोकी ॥३१॥
भक्त भगीरथकी रुचि राखी ।
जटा बसी गंगा सुर साखी ॥३२॥
रुरु अगस्त्य उपमन्यू ज्ञानी ।
ऋषि दधीच आदिक बिज्ञानी ॥३३॥
शिवरहस्य शिवज्ञान प्रचारक ।
शिवहिं परम प्रिय लोकोद्धारक ॥३४॥
इनके शुभ सुमिरनतें शंकर ।
देत मुदित ह्वै अति दुर्लभ वर ॥३५॥
अति उदार करुणावरुणालय ।
हरण दैन्य-दारिद्र्य-दुःख-भय ॥३६॥
तुम्हरो भजन परम हितकारी ।
विप्र शूद्र सब ही अधिकारी ॥३७॥
बालक वृद्ध नारि-नर ध्यावहिं ।
ते अलभ्य शिवपदको पावहिं ॥३८॥
भेदशून्य तुम सबके स्वामी ।
सहज सुहृद सेवक अनुगामी ॥३९॥
जो जन शरण तुम्हारी आवत ।
सकल दुरित तत्काल नसावत ॥४०॥

दोहा

वहन करौ तुम शीलवश, निज जनकौ सब भार ।
गनौ न अघ, अघ-जाति कछु, सब बिधि करौ सँभार ॥१॥
तुम्हरो शील स्वभाव लखि, जो न शरण तव होय ।
तेहि सम कुटिल कुबुद्धि जन, नहिं कुभाग्य जन कोय ॥२॥
दीनहीन अति मलिन मति, मैं अघ-ओघ अपार ।
कृपा-अनल प्रगटौ तुरत, करौ पाप सब छार ॥३॥
कृपा-सुधा बरसाय पुनि, शीतल करौ पवित्र ।
राखौ पदकमलनि सदा, हे कुपात्रके मित्र ? ॥४॥

शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न'काराय नमः शिवाय ॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय ॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि'काराय नमः शिवाय ॥
वशिष्ठकुम्भोद्भवगौतमाय मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व'काराय नमः शिवाय ॥
यज्ञस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य'काराय नमः शिवाय ॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

श्रीशिव

(लेखक—स्व० पं० श्रीहनूमान् शर्मा)

(१)

भगवान् शिव परम कल्याणमय हैं। उनके स्वरूपमें, लीलामें, साधनमें सर्वत्र परम कल्याणकारी कल्याण ही भरा है। अतएव कल्याणकारी कल्याणके कल्याणेच्छु सम्पादकोंने कल्याणजीवी पाठकोंकी कल्याणी कामनासे प्रेरित होकर जो यह प्रयास किया है सो सर्वथा उचित ही है। किंतु स्थूल दृष्टिवालोंको शिवके लोकप्रसिद्ध वेश-भूषादिमें कल्याण नहीं दीखता। ठीक भी है—

नंगा शरीर, सिरपर जटा, गलेमें मुण्डमाल, श्मशानमें वास, राखसे रँगे हुए और संहारमें तत्पर कैसा कल्याण करते हैं! चरित-चर्चामें भी कई घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें अमङ्गल हुआ है। उदाहरणमें दक्षका यज्ञ विध्वंस करके उसका अमङ्गल किया। इन्द्रादिको हर्षित करनेवाले सृष्टि-बीज कामदेवको भस्म करके रतिको रुलाया और सृष्टिका कई बार संहार करके ब्रह्माको निराश किया!

ऐसी अवस्थामें शिवको 'कल्याण' कहना विलक्षण कल्पना है। किंतु तत्त्वज्ञ शिव-भक्त शिवको शिव ही नहीं, सदाशिव कहते हैं। और इसीलिये शिवाराधनासे शिव-सायुज्य मिलनेका सफल प्रयत्न किया जाता है।

(२)

पुराणादिके पढ़नेसे प्रतीत होता है कि सृष्टिके बनाने, बढ़ाने और विनाश करनेवाले त्रिदेव हैं। उनमें ब्रह्मा उसको बनाते, विष्णु उसको बढ़ाते और शिव उसका संहार करते हैं। ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होगा। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, सृष्टि रचते और शास्त्र बनाते हैं और विष्णु यथावकाश सोते हैं। किंतु शिव और शक्ति सोते नहीं, सदा उपस्थित रहते हैं। उनको कब विश्राम मिलता है, यह उनके प्रणेता (परमेश्वर) की इच्छापर है।

शास्त्रोंमें शिवके अनेकों नाम लिखे हैं। वे सब गुण-कर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'रुद्र' नाम था। प्रलयकारी, भयकारी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देखकर ही इस नामकी कल्पना की गयी थी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तडित्प्रवाह अथवा वज्रपातादि होते हैं, वे सब रुद्रके ही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। अथवा स्वयं रुद्र ही वायु, वह्नि या इन्द्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।

ऋग्, यजु और अथर्ववेदमें शिवके ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, कपर्दी, शितकण्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वभूतेश आदि नाम निर्दिष्ट किये गये हैं। साथ ही उनको भयकारी, भयहारी, शान्तिवर्द्धक, महौषधिज्ञ, ज्ञानप्रद, स्वर्णसंनिभ और चमकती हुई चाँदीके पहाड़-जैसा माना है तथा उनसे सुख-सम्पदा, संतान तथा सौभाग्यादि प्राप्त होनेकी प्रार्थना की है।

अकेले ऋग्वेदकी ६०-७० ऋचाओंमें शिवके नाम, काम, प्रभाव और स्वरूपादिका वर्णन है। यजुर्वेदमें क्रोधित शिवको शान्त करनेके लिये शतरुद्रका स्वतन्त्र विधान किया है। अथर्ववेदमें इनको 'सहस्रचक्षु' 'तिग्मायुध' 'वज्रायुध' और 'विद्युच्छक्ति' आदि बतलाया है और सामवेदमें इनका 'अग्नि' स्वरूप स्वीकार किया है।

कैवल्य, अथर्व, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर और नारायण आदि उपनिषदोंमें एवं आश्वलायनादि गृह्यसूत्रोंमें शिवको त्र्यम्बक, त्रिलोचन, त्रिपुरहन्ता, ताण्डवनर्तक, पञ्चवक्त्र, कृत्तिवास, अष्टमूर्ति, व्याघ्रकृत्ति, वृषभध्वज, वज्रहस्त, भिषक्तम, संगीतज्ञ, पशुपति, औषधविधिज्ञ, आरोग्यकारक,

वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा है और इन सबकी सार्थकता तथा तथ्य आदि भी बतलाये हैं।

शिव वामन और स्कन्द आदि पुराणोंमें तथा वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और कुमारसम्भव आदि अनेकों ग्रन्थोंमें शिवके लोकोत्तर गुणोंका विस्तारके साथ वर्णन है। उनमें उनके अनेकों चरित्र, अनेकों आख्यान या अनेकों कथाएँ लिखी हैं और उनको परमेश्वर, सर्वेश्वर या अजन्मा माना है। प्रसङ्ग-वश यहाँ शिवके कुछ नाम, काम और चरित्रोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

(३)

विद्युत् (बिजली) शिवका प्रहरण (प्रहार करनेका साधन) है। त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युत्प्रवाह निर्गत होता है। अजेय शत्रुओंका संहार करना हो तभी वे उस नेत्रको खोलते हैं। मानो वर्तमान समयके विज्ञानकी विद्युत्-ज्वाला तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त बिजलीको शूलाग्रमें नियुक्त करके भी कई बार प्रहार किया है। शिवास्त्र और रुद्रास्त्र उसीके रूपान्तर हैं।

शिव अपने सेवकोंपर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उनकी हिंसा। वे सदैव मङ्गलकर और कृपालु रहते हैं। इसीसे 'शिव' नाम सार्थक हो सकता है। शत्रुनाशके लिये सदैव धनुष चढ़ाये रहनेसे 'पिनाकी' और ब्रह्माके मस्तकको करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहलाते हैं। ब्रह्माके अनुचित व्यवहारको देखकर तत्काल सिर काट लिया और कई दिनोंतक उसे करमें लिये रहे।

आबालवृद्धको आरोग्य रखने; पशुओंतकको तन्दुरुस्त करने और प्रत्येक प्रकारकी महौषधियोंका ज्ञान होनेसे आप 'वैद्यनाथ' कहाते हैं। धन-पुत्र और सुख-सौभाग्यादि देनेसे ही इनका 'सदाशिव' नाम विख्यात हुआ है। सदैव अचल-अटल या स्थिर रहनेसे 'स्थाणु' और शीघ्र प्रसन्न होनेसे 'आशुतोष' कहलाते हैं तथा अम्बिका अथवा पार्वतीके पति होनेसे आपने 'अम्बिकेश्वर' नाम पाया है।

एक बार परब्रह्मने स्वयं अलक्षित रहकर देवताओंको विजयी किया था। इससे देवता गर्वित हुए कि हम सबको जीत सकते हैं। परब्रह्मने उनका घमंड दूर करनेके लिये हाथमें एक तृण लेकर अग्निसे कहा कि इसे जलाओ, वह न जला सके। वरुण (जल) से कहा इसे बहाओ, वह न बहा सके और वायुसे कहा इसे उड़ाओ, किंतु वह न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र आये तब परब्रह्म अन्तर्धान हो गये और सुशोभना स्वर्णवर्णा 'अम्बिका' ने इनको दर्शन दिये।

अम्बिका ब्रह्मविद्या हैं। वे ही कात्यायनी, गौरी, पार्वती और भवानी आदि भी कहलाती हैं। भगवान् रुद्र अग्निस्वरूप हैं, यह पहले कहा जा चुका है। शास्त्रमें अग्निकी सात जिह्वाएँ बतलायी हैं। वे सब शिवाके नामोंमें भी परिणत होती हैं। 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वरुचि'—ये सब नाम अग्निवर्णा दुर्गाके भी हैं। जिस भाँति शिव अग्निवर्ण माने गये हैं, उसी भाँति शिवा भी स्वयं अग्निस्वरूपा हैं। अतएव—

अग्निवर्ण रुद्रके अग्निवर्णा अम्बिका, कल्याणकारी शिवके कल्याणिनी पार्वती और देवाधिदेव महादेवके देव्यादिपूज्या महादेवी दुर्गा पत्नीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। इससे विदित होता है कि शिवने जैसा स्वरूप धारण किया है—शक्ति भी तद्रूपमें ही अवतरित हुई हैं। उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरी, शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला—ये सब शक्तिके ही रूपान्तर हैं।

(४)

वास्तवमें जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक

हैं, उसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी एक हैं। अपने-अपने प्रसङ्ग या प्रयोजनवश इनको भिन्न-भिन्न मानते हैं अथवा कार्य और अवसरके अनुसार ये सब यथासमय भिन्न-भिन्न रूप धारणकर प्रयोग सिद्ध करती हैं ।

इस विषयमें एक बार शिवने विष्णुसे पूछा था कि हम सब एक होते हुए भी अलग-अलग क्यों हैं ? इसपर विष्णुने उत्तर दिया कि—'संसारमें जिस समय कुछ भी नहीं रहता उस समय केवल परब्रह्म या उनका काल-नामक नित्यस्वरूप रहता है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये उसी परब्रह्मके रूप हैं और ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी उस नित्यस्वरूपा (प्रकृति) अथवा शक्तिके रूपान्तर हैं ।

जब स्रष्टाको सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब प्रकृति-को विक्षोभित करके अपने त्रिगुणात्मक अखण्ड शरीरको तीन भागोंमें बाँटकर ऊपरके भागको चतुर्मुख, चतुर्भुज, रक्तवर्ण और कमलसंनिभ रूपमें परिणत करते हैं । वही 'ब्रह्मा' हैं । मध्य-भागको एकमुख, चतुर्भुज, श्यामवर्ण और शङ्ख, चक्र, गदाधारीके रूपमें परिणत करते हैं । वही 'विष्णु' हैं । और अधोभागको पञ्चमुख, चतुर्भुज और स्फटिकसंनिभ शुक्लरूपमें परिणत करते हैं । वही 'शिव' हैं । इन तीनोंमें उत्पत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्तिकी शक्ति भी युक्त कर देते हैं जिससे ये अपने-अपने कर्त्तव्य-पालनमें परायण हो जाते हैं और उससे विकास, वृद्धि, विनाश सदैव होते रहते हैं ।

शिवके उपर्युक्त नामोंमें एक नाम 'सर्वभूतेश' भी आया है और सर्वेश, सर्वशक्तिमान् या सृष्टिसंहारक हैं ही। इन नामोंके तथ्यपर दृष्टि दी जाय तो सर्वभूतेश-का अर्थ पञ्चमहाभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश) के अधिपति या उनसे यथारुचि काम कराने-वाला भी हो सकता है । यह स्पष्ट है कि संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थ पञ्चमहाभूतोंसे ही प्रकट होते हैं और उनका यथायोग्य योग होता रहनेसे ही वे बढ़ते और जीवित रह सकते हैं । कदाचित् कुपित भूत बिगड़ जायँ तो संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थका सर्वनाश हो सकता है । किंतु बिगड़ना भूतेशकी इच्छापर है । यही कारण है कि शिव 'सर्वभूतेश' होनेसे ही परमात्मा माने गये हैं, इसी प्रकार शिवाके नामोंमें भी एक नाम 'स्फुलिङ्गिनी' है ।

'स्फुलिङ्ग' का असली स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालामय शिखाओंके साथ चमक-दमकसे उठती या उड़ती हुई चिनगारियोंके देखनेसे प्रतीत होता है अथवा वेगवान् बिजलीके महाप्रवाहमें किसी प्रकारका अवरोध आनेपर जब वह क्रोधित शक्तिकी तरह तड़कती-भड़कती और घोर नाद करती है, उस समय भी स्फुलिङ्गके स्वरूप-का आभास होता है । इसीलिये शिवके सम्बन्धमें कहा गया है कि 'वह चाहें तो चराचर सृष्टिका क्षणभरमें नाश कर सकते हैं ।' अस्तु ।

उपर्युक्त विवरणसे विज्ञ पाठकोंको विदित हो सकता है कि 'शिव क्या हैं, उनकी शक्ति कैसी है, संसार-का सर्वनाश या अमिट कल्याण करनेमें ये कहाँतक समर्थ हैं और प्राचीनकालमें इनका किस रूपमें और किस सीमातक प्रभाव फैला हुआ था ।'

(५)

यहाँ इस बातके विचारकी विशेष आवश्यकता है कि 'शिव जब अग्निमय, वायुमय या हिममय आदि हैं तो फिर पुराणोक्त कथाओंमें इनके मानव-शरीरधारी-जैसे चरित्रोंका वर्णन किस प्रकार किया है ? इसके लिये यह ध्यान रहना चाहिये कि प्रथम तो सर्वसमर्थ सभी कुछ कर सकते हैं । जिनमें संसारके बनाने या बिगाड़नेकी सामर्थ्य है वे स्वयं संसारी होकर भी सांसारिक व्यवहार बना सकते हैं और दूसरे किसी अप्रकट रूपवाले देव, देवी या उपास्यकी उपासना की जाय तो सर्वसाधारण

उसको किस रूपमें मानकर या उसके किस आधारको लेकर उसकी पूजा, उपासना या भक्ति कर सकते हैं ?'

यह स्पष्ट ही है कि 'विश्वास ही फल देता है' और प्रत्येक देवभक्त अपने इष्टदेवसे अभीष्ट-सिद्धिके विश्वासपर ही उसकी आराधना करता है। ऐसी अवस्थामें शिव-भक्तोंके लिये पुराणोंमें उनके मानवशरीरधारियों-जैसे नानाविध स्वरूपोंका वर्णन होना अत्यावश्यक ही है और उनके चारु चरित्रोंको पढ़ने, देखने या सुननेसे ही उसकी सेवा, पूजा या उपासनामें प्रवृत्ति हो सकती है।

पुराणोंमें शिवके अनेक चरित्र वर्णन किये गये हैं और उनके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ हैं, जिनसे शिवतत्त्वका ज्ञान होता है और उनमें भक्ति, प्रीति या अनुराग बढ़ता है। यह उसीका प्रभाव है कि भारतमें छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े असंख्य शिव-मन्दिर हैं और उनमें अगणित मनुष्य पूजा, उपासना या स्तोत्रपाठादि करते हैं। यदि शिव-मन्दिरोंकी गणना की जाय तो उनकी संख्या लाखोंपर और उनके उपासकोंकी संख्या करोड़ोंपर पहुँच सकती है।

अति क्षुद्र बस्ती या छोटी-सी ढानीमें भी गजभरके चबूतरेपर शिव-मूर्ति स्थापित देखी जाती है और उनकी उसी भक्ति-भाव या कामनासे पूजा होती है जिससे रामेश्वर, विश्वेश्वर, सोमेश्वर या तारकेश्वर आदिकी होती है। अन्तर यही है कि वहाँ विशाल मन्दिरोंके भव्य आयोजनोंसे हजारों-लाखों उपासक उपस्थित होते हैं और यहाँ संकीर्ण मन्दिरकी मध्यगत मूर्तिको एक, दो, दस या सौ-पचास स्त्री-पुरुष पूजते हैं। जो फल सोमेश्वर या विश्वेश्वर देते हैं वही फल हमारे मालेश्वर, जागेश्वर या कामपूर्णेश्वर देते हैं। प्रधानता है भाव, भक्ति और विश्वासकी और आवश्यकता है एकान्त चिन्तन या चित्तसंलग्नताकी। अस्तु।

(६)

पुराणोंके गूढ़ाशयगर्भित स्थलोंको साधारण मनुष्य सहज ही नहीं समझते। साथ ही विज्ञानभित्तिपर आरूढ किये हुए वर्णन भी वे नहीं समझ सकते। अधिकांश बातोंको सुनकर वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यथा—'हिंदू शिवलिङ्गका पूजन करते हैं और योनिमें उसकी स्थापना की जाती है।' यह विषय गहन है, वे जान नहीं सकते। लिङ्गोपासकोंके लिये यहाँ इसका किञ्चित् दिग्दर्शन हो जाना अच्छा है।

(१) किसी प्रकारके चिह्न या स्वरूपका नाम भी 'लिङ्ग' होता है। पञ्चभूतात्मक, स्थावरजंगमात्मक या सृष्टिरूपात्मक शिवका क्या स्वरूप होना चाहिये ? इसके समाधानार्थ शिवस्वरूपको 'लिङ्ग' रूपमें परिणत किया है। लिङ्ग कैसा होना चाहिये यह लिंङ्गपुराण और लिङ्गार्चनतन्त्र आदिमें लिखा है।

(२) सृष्टिसंहारके बाद सम्पूर्ण जगत्-पिण्ड अण्डाकृतिमें हो जाता है और उसी अण्डसे सृष्टि विकसित होती है। विनाश और विकासमें शिवका प्राधान्य या रूपयोग है ही। अतः अण्डाकृति 'शिवलिङ्ग' (शिवचिह्न) सबके लिये हितकर एवं पूजनीय है।

(३) शैवलोग सृष्ट्युत्पादनमें लिङ्गको प्रधान मानते हैं। उनका कथन है कि प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे ही सृष्टि आरम्भ होती है। ठीक ही है—मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंगादिमें भी सहवासजनक सृष्टिका विधान देखा जाता है। प्रकृति और पुरुष, शिव और शक्ति हैं।

(४) स्कन्दपुराणमें आकाशको लिङ्ग और पृथिवीको पीठ माना है। यही सब देवताओंका आलय

है और इसीमें सबका लय होता है। इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं।

(५) लिङ्गपुराणमें दो प्रकारका लिङ्ग बतलाया है। अलिङ्ग (बिना चिह्नवाले) शिवसे लिङ्ग (चिह्नवान्) शिवकी उत्पत्ति हुई है। उसमें शिव लिङ्गी और शिवा लिङ्ग माने गये हैं।

(६) अन्यत्र उसी पुराणमें यह भी लिखा है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु दोनों आपसमें अपनेको बड़ा बताने लगे। उनके बड़ेपनको प्रत्यक्ष करनेके लिये वहाँ ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग उपस्थित हुआ। वे दोनों उसको नीचे-ऊपरसे नापने लगे, किंतु किसीको भी उसका थाह नहीं आया, तब वे स्वतः शान्त हो गये। जो कुछ भी हो, लिङ्गार्चन सबके लिये हितकर और आवश्यक बतलाया गया है और सर्वापेक्षा लिङ्गार्चनका महाफल लिखा है। यही कारण है कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी येन केन प्रकारेण शिव-लिङ्ग-पूजनका प्रचार पाया जाता है।

चीनमें 'हुवेङ्-हिफुइ', ग्रीकमें 'फालास', रोमकमें 'प्रियासस' और मक्केमें 'मक्केश्वर' के नामसे शिवलिङ्ग-का पूजन होता था। इनके सिवा विसमिसके सर्किसमें, इटालीके मन्दिरोंमें, टैलोसके गिरजामें तथा बुरजोके धर्म-मन्दिरोंमें अब भी शिवलिङ्ग मौजूद हैं। पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग पाये गये हैं। अनेक जगह अति विशाल या प्रलम्ब शिवलिङ्ग भी देखे गये हैं। चीनी परिव्राजक ह्वेनसांगने काशीमें १०० हाथ लम्बा 'ताँबेका शिवलिङ्ग' देखा था। अब वह नहीं माछ्म होता। ग्रीकलोग विकसदेवके साथमें १२० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग ले जाते थे और सीरिया-प्रदेश तथा बाबिलन-राज्योंमें ३०० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग था। अस्तु।

भारतवर्षीय शिवलिङ्गोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सबसे विशेष विख्यात और सुपूजित हैं। शिवपुराणमें लिखा है कि यों तो मैं (शिव) सर्वव्यापी हूँ, किंतु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें मेरा विशेषांश विद्यमान है।

(७)

शिव-मन्दिरोंमें पाषाण-निर्मित शिवलिङ्गोंकी अपेक्षा बाणलिङ्गोंकी विशेषता है। अधिकांश उपासक मृण्मय शिवलिङ्ग अथवा बाणलिङ्गकी स्वतन्त्र सेवा भी करते हैं। शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके शिवलिङ्ग-निर्माणका विधान, उनकी पूजा-विधि और तल्लब्ध विविध फल भी लिखे हैं।

(१) 'कस्तूरी' आदिसे निर्माण किये हुए शिव-लिङ्गका यथाविधि पूजन करनेसे शिव-सायुज्यका लाभ होता है। (२) 'पुष्पमय' लिङ्गका पूजन करनेसे भूम्याधिपत्य प्राप्त होता है। (३) 'गो-शकृत्' (गोबर) का लिङ्ग पूजनेसे ऐश्वर्यलाभ और जिसके लिये किया जाय उसकी मृत्यु होती है। गोबर अधर लिया जाय, पृथ्वीपर न गिरे। (४) 'रजोमय' लिङ्ग पूजनेसे विद्या धारण होती है। (५) 'धान्य'—जौ, गेहूँ और चावल आदिके चूनसे बने हुए लिङ्गको पूजनेसे स्त्री, पुत्र और धन मिलता है। और (६) 'सिता' (मिश्री) के लिङ्गका पूजन करनेसे आरोग्य-लाभ होता है। इसी प्रकार (७) 'लवण' लिङ्गसे सौभाग्य, (८) 'पार्थिव' से कार्यसिद्धि, (९) 'भस्ममय'से सर्वफल, (१०) 'गुड़लिङ्ग' से प्रीतिवृद्धि, (११) 'वंशाङ्कुरनिर्मित' लिङ्गसे वंशवृद्धि, (१२) 'केशास्थि' निर्मित लिङ्गसे शत्रुनाश, (१३) 'द्रुमोद्भूत' से दारिद्र्य, (१४) 'दुग्धोद्भव' से कीर्ति, लक्ष्मी और सुख, (१५) 'फलोत्थ' से फललाभ, (१६) 'धात्रीफल' से मुक्ति-लाभ, (१७) 'नवनीत' निर्मितसे कीर्ति तथा सौभाग्य, (१८) 'कर्पूर' जनितसे मुक्तिलाभ, (१९) 'स्वर्णमय' से महामुक्ति, (२०) 'रजत' से विभूति, (२१)

'कांस्य' तथा पित्तलमयसे सामान्य मोक्ष, (२२) 'सीसकादि' से शत्रुनाश, (२३) 'अष्टधातुज' से सर्वसिद्धि, (२४) 'मणिजात' से अभिमाननाश और (२५) 'पारद' निर्मितसे महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि लिङ्ग-निर्माण-विधि और उसकी पूजाविधि सम्यक्-प्रकारसे जानकर फिर सकाम शिव-पूजन करना चाहिये। उसका संक्षिप्त विधान यह है—

ब्राह्मण सफेद मिट्टीको, क्षत्रिय लाल मिट्टीको, वैश्य पीली मिट्टीको और शूद्र काली मिट्टीको भिगोकर एक या दो तोला लेकर उसका अंगुष्ठप्रमाण शिवलिङ्ग और उससे दूनी वेदी तथा उससे आधी योनिपीठ (जलहरी) बनावे। पाषाणादिका शिवलिङ्ग मोटा और रत्न अथवा धातुओंका यथाशक्ति इच्छानुसार मोटा या छोटा भी हो सकता है। लिङ्ग सुडौल, अव्रण और सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण लिङ्ग अच्छा नहीं। पीठहीन और अंगुष्ठपर्व-प्रमाणसे छोटा-बड़ा भी शुभ नहीं। ऐसे लिङ्ग त्याग देने चाहिये।

लिङ्गार्चनमें 'बाणलिङ्ग' का विशेष महत्त्व माना गया है। वह सब प्रकारसे शुभ, सौम्य, सुलक्षण और श्रेयस्कर होता है। प्रतिष्ठामें भी पाषाणलिङ्गकी अपेक्षा बाणलिङ्गका स्थापन सुगम है। नर्मदाके सभी कंकर 'शंकर' माने गये हैं। उनमें मनोरम मूर्तिको लेकर चावलोंसे तौलना चाहिये। तीन बार तौलनेपर भी चावल बढ़ते ही रहें तो वह मूर्ति वृद्धिकारक होती है। नर्मदानदीमें आध तोला वजनसे लेकर ८० मन वजनतककी मूर्तियाँ मिलती हैं। वे सब असंख्य संख्यामें स्वतः प्राप्त और स्वतः संघटित होती हैं। उनमें कई लिङ्ग बड़े ही अद्भुत, मनोहर, विलक्षण और सुन्दर होते हैं। उनके पूजनसे महाफल मिलता है।

मिट्टीकी, पाषाणकी या नर्मदाकी जिस किसी मूर्तिका पूजन करना हो, पूजा करनेसे पहले पवित्र होकर शुद्धासनपर पूर्वाभिमुख बैठे। जल, फल, फूल और गन्धाक्षत आदि यथायोग्य रख ले। पार्थिव-पूजन करना हो तो भीगी हुई मिट्टीका कराङ्गुष्ठके ऊर्ध्व-पर्व-तुल्य शिवलिङ्ग बनावे। उसको जलहरीमें स्थापनकर प्राणप्रतिष्ठा करे और फिर षोडश, दश या पञ्च यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करे। यदि बाणलिङ्ग मन्दिरोंकी चिरप्रतिष्ठित मूर्तिका पूजन करना हो तो उसमें प्राणप्रतिष्ठा न करे। अस्तु, सब प्रकारकी शिव-पूजन-विधि अनेक ग्रन्थोंमें लिखी है। उसे देख लेना चाहिये।

(८)

शिवलिङ्गके दर्शनोंसे उनके आध्यात्मिक स्वरूपका आभास होता है और तत्त्वज्ञ उसमें भूमण्डलके प्रत्येक पदार्थका अनुभव करते हैं। किंतु सर्वसाधारणके जाननेके लिये शिव-पार्वतीकी मानुषी मूर्ति ही उनके प्रत्येक चरित्रको प्रकट करनेवाली होती है। अतः चित्रादिमें उनका वही स्वरूप अङ्कित देखा जाता है जो उनके चरित्रोंमें वर्णित हुआ है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अत्यन्त प्राचीन कालमें शिव-भक्त सृष्टिके प्रत्येक पदार्थको शिवस्वरूपमें परिणत मानते थे और इस कारण उनको चित्र-प्रतिमा या लिङ्ग-स्थापनकी आवश्यकता नहीं होती थी। उनकी दृष्टिमें सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ ही शिव था। उनको यदि उपासना या पूजा करनी होती तो उसीकी करते थे। संसारमें उस प्रकारके 'रुद्र-वन,' 'शंकर-दावानल,' 'शिव-समुद्र' और 'गौरीशंकर' आदि दृश्य पदार्थ या प्रतिमाएँ अब भी ऐसी विद्यमान हैं जिनसे शिवस्वरूप नाम-तुल्य आभासित होता है और वे हजारों-लाखों वर्षोंसे शिव-स्वरूप धारण किये हुए हैं।

धन्य है उन यूरोपीय सज्जनोंको जिन्होंने भारतीय हिंदू-शास्त्रोंके वर्णनोंको प्रत्यक्ष देखनेका सफल प्रयत्न या प्रयास किया है और धन, जन तथा समयकी

अपरिमित हानि सहकर 'गौरीशंकर' जैसे अगम्य और दुर्बोध्य दृश्योंको देखा है। इस लेखका अङ्गीभूत होनेसे उसका संक्षिप्त विवरण विदित कर लेना आवश्यक प्रतीत हुआ है। हिमालयके दो अति उच्च शिखर ही 'गौरीशंकर' नामसे प्रसिद्ध हैं और वास्तवमें उनका स्वरूप भी शास्त्र-लिखितके तुल्य है। पुराणोंमें हिमालयकी विस्तृत चालीस हजार कोस और महोन्नति आठ हजार कोस मानी गयी है। किंतु आधुनिक अन्वेषक अभीतक इसका आपाद-मस्तक अन्वेषण कर नहीं सके हैं। अभी उनकी नाप-जोखमें चालीस शिखर आये हैं, जिनकी ऊँचाई सत्रहसे उन्तीस हजार फीटतक है। यह समुद्र-तलसे मानी गयी है।

भारतीय यात्रियोंको जिन शिखरोंतक जानेका प्रयोजन पड़ता है या वे जाते हैं उनके नाम और ऊँचाई इस भाँति हैं—(१) कृष्णशैल १७५७२ फीट, (२) यमुनोत्तरी २००३८, (३) श्रीकण्ठ २०१४९, (४) नीलकण्ठ २१६६१, (५) केदारनाथ २२७९०, (६) बदरीनाथ (नर-नारायण) २३२१०, (७) त्रिशूल २३३००, (८) धवलगिरि २६८२६, (९) काञ्चनजङ्घा २८१५२ और (१०) गौरीशंकर (एवरेस्ट) २९००२ फीट हैं। भारतके ब्रह्मपुत्र, सतलज, व्यास, रावी, कोशी, घाघरा, चनाव, झेलम और गङ्गादि नद-नदी शैलराजसे ही निर्गत हुए हैं।

आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्ज-सम्भूत, सप्तर्षिमण्डलसे गिरी हुई गङ्गा गौरीशंकर(शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृङ्गोंके विस्तृत और गहनतम गर्तोंमें घूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको तृप्त और पवित्र करती हुई सागरमें सम्मिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशंकर और उनके जटाजूट तथा गङ्गा आदिका अमिट स्वरूप इसी प्रकारका प्रतीत होता है।

(९)

उपासकोंके लिये इस बातकी नितान्त आवश्यकता होती है कि वह अपने अभीष्ट देवके स्वरूपको हृदयङ्गम करके उसका ध्यान करें। शिव-भक्तोंने उनके चरित्रगत अनेकों स्वरूपोंकी कल्पना की है और उन्हींका ध्यान करते हैं। उनमेंसे कुछ ध्यान यहाँ भी प्रकाशित किये जाते हैं—

१—सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥ १॥

२—शिव-पार्वती

वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसं
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम्।
वप्रोरुन्यस्तपाणेररुणकुवलयं संदधत्याः प्रियाया
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम्॥ २॥

३—मृत्युंजय

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युंजयं भावयेत्॥ ३॥

४—महामृत्युंजय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे॥ ४॥

५—महेश

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥ ५॥

६—पशुपति

मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं
त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रु स्फुरन्मूर्द्धजम्।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं सुमुन्दरमसिं शक्तिं दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यस्वरूपं भजे ॥६॥

७—चण्डेश्वर

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दुचूडम्॥

८—अर्द्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥८॥

९—पञ्चवक्त्र

घण्टाकपालसृणिमुण्डकृपाणखेट-
खट्वाङ्गशूलडमरूमभयं दधानम्।
रक्ताम्बमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रं
पञ्चाननाब्जमरुणां शुकमीशमीडे ॥९॥

१०—सद्योजात

कर्पूरेन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनम्।
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम्।
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् ॥१०॥

११—विश्वरूप

हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनं च यथाश्रुतम् ॥११॥

१२—दिग्बाहु

कैलासाचलसंनिभं त्रिनयनं पञ्चास्यमम्बायुतं
नीलग्रीवमहीशभूषणधरं व्याघ्रत्वचा प्रावृतम्।
अक्षस्रग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां बिभ्रतं
गङ्गाम्भोविलसज्जटं दशभुजं वन्दे महेशं परम् ॥१२॥

सब भूतों (पृथिवी-अप्-तेजादि) के हृदयमें स्थित रहनेवाले विश्वरूप महेश्वर भक्तोंपर कृपा करके यथाश्रुत दर्शन देते हैं। इसीलिये कल्पनागत स्वरूपका ध्यान किया जाता है।

(१०)

आरम्भमें विचार था कि लेखकी समाप्ति शिवचरित्रके संकलनसे की जाय, किंतु इसके समाप्त होनेसे पहले वह विचार ही समाप्त हो गया। वेदों, पुराणों, इतिहासों, स्तोत्रपाठ, पूजा और उपासना आदिके विधानोंमें और अगणित ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें शिव-चरित्रका संकलन है।

(१) शिव गँजेड़ी, भँगेड़ी, सुलफाबाज, अमलदार, पोस्ती और आक-धतूरे खानेवाले हैं। (२) वह कामी, क्रोधी, त्यागी, वैरागी, योगी, भोगी, दयालु, कृपालु, उदार और भोले भण्डारी हैं। (३) समुद्र-मन्थनके चौदह रत्नोंमें हालाहल इन्हींको मिला था। (४) भस्मासुरको वर देनेमें इनसे बड़ी भूल हुई थी। (५) जालन्धरके न मरनेसे उसकी पतिव्रता स्त्रीको बिगाड़नेका जाल इन्होंने ही रचा था। (६) त्रिपुर और मदन-दहनका दावानलरूप नेत्र इन्हींका है।

(७) सतीके स्वतः चले जानेसे श्वशुरका यज्ञनाश इन्होंने ही करवाया था। (८) सतीको सीतारूपमें देखकर इन्होंने उसे त्याग दिया था। (९) उसके मृतदेहको कंधेपर रखकर ये पागलकी तरह फिरते रहे थे। (१०) पार्वतीपरिणयनमें इनके अद्भुत रूपको देखकर खास सासू भी सहम गयी थी। (११) पार्वतीके साथ रहकर इन्होंने मन्त्र-तन्त्र-यामल और औषध-शास्त्रोंकी अपूर्व रचना की थी। (१२) शुकदेवने इनसे ही अमर कथा पढ़ी थी।

(१३) हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, वज्रक और बाणासुरादि इन्हींकी दयासे दिग्विजयी बने थे। (१४) अपना अमोघ अस्त्र अर्जुनको इन्होंने ही दिया था। (१५) सीतास्वयंवरका किसीसे भी

न हटनेवाला धनुष इन्हींका पिनाक था। (१६) वृत्रासुरादि अजेय असुरोंका इन्होंने ही संहार किया था। (१७) पार्वतीके पास जानेसे रोकनेवाले गणेशका सिर इन्होंने ही उड़ाया था और पत्नीकी प्रसन्नताके लिये पुत्र-को गजवदन बना दिया था।

(१८) अस्पृश्य भीलके जूँठे जलबिन्दु और बासी बिल्वपत्रोंको प्राप्तकर इन्होंने ही उसे शिवसायुज्य दिया था। (१९) मेघनाद-जैसे दुधमुँहे बच्चोंको इन्होंने ही इन्द्रजीत बनाया था और (२०) लङ्कासे रामेश्वर आकर प्रतिदिन दर्शन करनेवाला विभीषण इन्हींका भक्त था। कहाँतक लिखें—

शिव-चरित्रका इस प्रकार प्राबल्य और बाहुल्य देखकर ही उसकी सूचीमात्र देनेमें भी संकोच हो गया है और इस लेखको यहीं समाप्त कर दिया है।

श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय

(लेखक—सम्मान्य पण्डित स्व० श्रीहाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य, प्रधानाध्यापक मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज, काशी)

अवतरणिका

शिव-नैवेद्यके विषयमें शिवपुराणादि शास्त्र-ग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपण है; इसके पूर्व अनेक विशिष्ट पण्डित भी विचारकर इस विषयमें शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकाशित कर चुके हैं, तथापि इस समय कुछ लोग शास्त्रीय सिद्धान्तकी अनभिज्ञताके कारण इस विषयमें भ्रममें पड़े हैं; इसलिये यहाँ दो-चार अक्षर लिख देना कर्तव्य समझता हूँ।

शिवनैवेद्य-ग्रहणकी प्रशंसा

शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके २२वें अध्यायमें शिव-नैवेद्यकी प्रशंसा स्पष्टरूपसे लिखी है—

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः॥ ४॥
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम्॥ ७॥
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्॥ ९॥
शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥ ११॥

'शिवके नैवेद्यको देखनेमात्रसे समस्त पाप दूर भाग जाते हैं। उसके खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्यको सिर झुकाकर मुदित मनसे ग्रहण करे और प्रयत्नपूर्वक शिवजीका स्मरण करके उसका भक्षण करे। जिसके मनमें शिव-नैवेद्यके ग्रहणकी इच्छा नहीं, वह घोर पापी है और वह निश्चय ही नरकगामी होगा। शिवकी दीक्षासे युक्त शिवभक्त पुरुषके लिये सभी शिवलिङ्गोंका नैवेद्य शुभ और महा-प्रसाद है। अतः वह उसका अवश्य भक्षण करे।'

इस प्रकार जो शिवमन्त्रसे दीक्षित हैं, वे सभी लिङ्गोंका नैवेद्य भक्षण कर सकते हैं। जिनकी अन्य देवकी दीक्षा है, उनके लिये विचारणीय है।

अन्यदीक्षायुतनृणां शिवभक्तिरतात्मनाम्।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥
काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥
ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(शि० पु० वि० सं० २२। १२-१५)

'जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है और श्रीशिवमें भक्ति है—उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणका यह निर्णय है—

जिस स्थानमें शालग्राम-शिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, पारद (पारा) के लिङ्गमें, पाषाण

रजत तथा स्वर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केसरसे निर्मित लिङ्गमें, स्फटिक-लिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें, समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें श्रीशिवका नैवेद्य-भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्य भक्षणकर उसे धारण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।'

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि जिनकी शैवी दीक्षा नहीं है, वे भी उपर्युक्त लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण कर सकते हैं, परंतु पार्थिव लिङ्ग प्रभृतिके, अर्थात् जिनके नाम श्लोकोंमें नहीं आये हैं, नैवेद्यका भक्षण वे न करें। शैवी-दीक्षावाले तो सभी लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण करें। यह पहले उद्धृत किये हुए—

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। ११)

—इस वचनमें स्पष्ट कहा है।

ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम तथा नैवेद्यकी ग्राह्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकमें ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य सभीको ग्रहण करना चाहिये, यह बताया है। ज्योतिर्लिङ्गोंका निरूपण शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहितामें इस प्रकार किया है और उनके नैवेद्यको सबके लिये ग्राह्य तथा भक्ष्य कहा है—

सौराष्ट्र-देशमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमालयमें केदार, डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोमतीतटमें त्र्यम्बक, चिताभूमि (अन्य लिङ्गोंके स्थानकी तरह यह भी देशविशेष है—मृतककी चिता नहीं है) में वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर, शिवालयमें घुश्मेश—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं; इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन सबको करना चाहिये। जो इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करते हैं, उनके सारे पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं।

श्रीविश्वेश्वरप्रभृति लिङ्गोंके नैवेद्यकी ग्राह्यता

काशीमें श्रीविश्वेश्वर-लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण उसके ज्योतिर्लिङ्ग होनेके कारण सभीके लिये पुण्यजनक है, यह शास्त्रप्रमाणसे सिद्ध है। पहले शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताका जो वचन उद्धृत किया गया है, उसमें देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित सभी लिङ्गोंके नैवेद्यको भक्ष्य बताया है। काशीमें शुक्रेश्वर, वृद्धकालेश्वर, सोमेश्वर प्रभृति जितने पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं, वे सभी किसी-न-किसी देवता या सिद्धके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए हैं; इसलिये काशीके पुराण-प्रसिद्ध लिङ्गोंका नैवेद्य शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य—सभीको भक्ष्य है।

श्रीविश्वेश्वरप्रभृति लिङ्गोंके स्थानजलकी महिमा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। १८)

जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करते हैं, उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। श्रीविश्वेश्वरके स्नानके जलका विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः।
एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः॥

(स्कन्दपुराण—काशीखण्ड ४१। १८०)

'श्रीविश्वेश्वरके स्नान-जलको मस्तकमें धारण करना, यह योगशास्त्रमें प्रतिपादित जालन्धर-बन्धके समान पुण्यजनक है और समस्त देवताओंको दुर्लभ है।'

मीमांसकपद्धतिसे वचनोंकी एकवाक्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए शास्त्र-वाक्योंसे शिव-नैवेद्यकी भक्ष्यता तथा शिवचरणोदककी ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषयमें कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकारके भी मिलते हैं; पूर्वपण्डितोंकी परम्पराके अनुसार उन वचनोंकी

मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्योंमें परस्पर विरोध प्रतीत होनेपर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसाकी युक्तियोंसे उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्रके निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य प्रभृति महानुभावोंने मीमांसाकी पद्धतिसे परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होनेवाले शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णयको सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसाकी पद्धतिको न जाननेसे विरुद्ध वचन देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है। इसलिये मीमांसाकी पद्धतिसे यहाँ निर्णय दिया जाता है--

पूर्व-मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, चतुर्थ सूत्रमें मीमांसकधुरन्धर श्रीकुमारिल भट्ट लिखते हैं--

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते।

(श्लोकवार्तिक १।१।४।९)

जिन स्थलोंमें एकवाक्यता सम्भव है, वहाँ वाक्यभेद इष्ट नहीं है; (क्योंकि वाक्यभेद करनेसे अर्थात् भिन्न वाक्य माननेसे वहाँ गौरव होता है।) यही युक्ति प्रकृतमें सारी मीमांसाका मूल है। सामान्य वचनका विशेष वाक्यमें उपसंहार किया जाता है अर्थात् विशेष वाक्यके साथ सामान्य वाक्यकी एकवाक्यतासे विशेष वाक्यके विषयमें सामान्य वचनका संकोच किया जाता है--सामान्य वाक्यको विशेष विषयमें नियमित किया जाता है--यह मीमांसकोंकी युक्तियुक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्टने यही बात तन्त्र-वार्तिकमें कही है—

सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः।

विधि तथा निषेधोंका उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य दोनोंका माना गया है। 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इस सामान्य विधिका 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' इस विशेष वाक्यमें उपसंहार माना गया है। इसी पद्धतिके अनुसार—

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्॥
न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता।
न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी॥

ब्राह्मणीके लिये सहमरणके निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्योंका—

पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति॥

अर्थात् पृथक् चितामें आरूढ़ होकर ब्राह्मणीको सती न होना चाहिये, इस विशेष निषेध-वाक्यके साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शंकर भट्टने 'मीमांसाबालप्रकाश'में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्यने 'पराशर-भाष्य' में तथा कमलाकर भट्टने 'निर्णय-सिन्धु'में इन निषेध-वाक्योंकी इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनोंका विशेष वचनोंमें उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारोंको सम्मत है। इसी पद्धतिसे शिवनिर्माल्यके निषेधक सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे इस विषयमें कुछ भी संदेह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताकी व्यवस्था

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताके प्रतिपादक वचन ये हैं--

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात् (स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम्

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। १९)

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एवं विनिःक्षिपेत्॥

(पाद्मे शिवोक्तिः)

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्॥
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्।

(स्कान्दे सूतोक्तिः)

धराहिरण्यगोरत्नं ताम्ररौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इन वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिवके चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्योंको 'चण्डेश्वर'के निवेदन करना चाहिये। (इस प्रकार) यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिलाके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। अर्थात् शालग्रामजी-का स्पर्श हो जानेपर सबके ग्रहणके योग्य हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है; जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करे—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।

(२२। १६)

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः।

(शिवपुराण—विद्येश्वरसंहिता २२। १६)

शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्न प्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इसलिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्रहण तथा भक्षणके योग्य हैं—

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

(शि० पु० वि० सं० २२। १७)

'बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लौह (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित है), स्वयम्भूलिङ्ग (केदारेश्वरप्रभृति)—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओंमें (मूर्तियोंमें) चण्डका अधिकार नहीं है।'

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यादिमें ग्रहण न करनेकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेरुतन्त्र (चतुर्दश पटल) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना।
सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।
तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया॥

'बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ (जल, पत्र आदि) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये।' यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।

सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशीप्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्वयम्भूलिङ्ग हैं तो कोई सिद्धलिङ्ग हैं। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्वयं प्रकट हुए हैं वे स्वयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध-महात्मा जनोंद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं, वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है, अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-

विद्येश्वरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है ।

शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इस प्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः ।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः ॥

(शि० पु० वि० सं० २२ । २०)

जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रक्खी जाती है, वह अग्राह्य है । जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है ।

लिङ्गार्चनतन्त्र, द्वादशपटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंको ही अग्राह्य बताया है—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत् ।
तन्निर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि ॥

इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जितने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंका ही निषेध करते हैं ।

शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एक-वाक्यता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नर्मदेश्वर लिङ्ग, धातुमय लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका सबके लिये ग्रहण तथा भक्षण करना शास्त्रविधिसम्मत है । अन्य लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना शास्त्रसम्मत नहीं है । शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-नैवेद्य-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहे गये हैं, वे भी इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं । जिन शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण शास्त्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त नहीं हो सकता । निषिद्ध कर्मोंके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्त कहे हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है । पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है । विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके न करनेसे, निषिद्ध कर्मके करनेसे और इन्द्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है; उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३ । २१९-२२०)

निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद पूर्वभागमें भी श्रीशिव-निर्माल्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था की है । नर्मदेश्वर-लिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग (जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं)—इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्य सभीके भक्ष्य तथा ग्राह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है । जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किंतु किसी भी लिङ्गको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी दीक्षावाले मनुष्योंके लिये ग्राह्य हैं । जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्थिवलिङ्गके निवेदितको छोड़-कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाको निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं । और जिन शिवनिर्माल्योंके लिये निषेध है, वे भी शालग्राम-शिलाके स्पर्शसे ग्रहण योग्य हो जाते हैं, यह शास्त्रमर्यादा है ।

शिवनिर्माल्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

'प्रायश्चित्तविवेक', 'तिथितत्त्व' तथा 'निर्णयसिन्धु' आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्धृत है—

स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा
(वाससा) आप्लुतः शुचिः ।

अर्थात् रुद्रके निर्माल्यको स्पर्श करनेवाला पुरुष सचैल स्नानसे शुद्ध होता है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते।
(स्कन्दपुराण)

इस वचनमें जो अशुचि अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है——

'अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करता है वह पापी होता है; इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

स्नानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्माल्यको धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पातक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥
(विद्येश्वरसंहिता २२। १५)

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥
(तिथितत्त्वमें उद्धृत स्कन्ध)

शिवनिर्माल्य-धारणकी इस विधिके साथ अविरोध सम्पादन करनेके लिये—इस विधिके अनुरोधसे भी—पूर्वोक्त शिवनिर्माल्य-धारणका प्रायश्चित्त 'अशुचि'के विषयमें ही समझना उचित है।

शिवनिर्माल्य-विषयक अन्य वाक्योंकी व्यवस्था

ऊपर शिव-निर्माल्य-ग्रहणके अनुकूल तथा प्रतिकूल शास्त्र-वाक्योंका तात्पर्य मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करके दिखाया गया है। इस विषयमें इस प्रकारके जितने भी अन्य शास्त्र-वाक्य हैं, उन सभीके तात्पर्यका पूर्वप्रदर्शित मीमांसकपद्धतिसे निर्णय करना शास्त्रमर्मज्ञ पुरुषोंका कर्तव्य है। युक्तियुक्त मीमांसा-पद्धतिका परित्याग कर शास्त्र-वचनोंके अनर्थको अर्थ कर जनतामें उपदेश देना अपने पाण्डित्यपर विज्ञजनोंका संशय उत्पन्न कराना ही है।

भस्मरुद्राक्षधारणकी विधि

इस अवसरपर प्रसङ्गवश और दो बातें कह देना अनुचित न होगा।

कुछ महाशय साम्प्रदायिक आग्रहवश भस्म-त्रिपुण्ड् तथा रुद्राक्षधारणकी अनर्गल निन्दा करते हैं। उनसे मुझे कुछ कहना नहीं है। जो आग्रही हैं, वे अपना हठ छोड़नेके लिये कभी प्रस्तुत नहीं होंगे—इस बातको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। इसलिये उन आग्रही महाशयोंके लिये व्यर्थ परिश्रम न उठाकर मैं जिज्ञासु जनताके लिये इस तत्त्वका उद्घाटन करना उचित समझता हूँ।

बृहज्जाबालोपनिषद्—पञ्चम ब्राह्मणमें भस्म-धारणकी विशेष प्रशंसा है——

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्॥
त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कधारणात् सोऽपि पूज्यते॥
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥
(७-९)

जिस ब्राह्मणने मस्तकमें भस्म-त्रिपुण्ड् धारण किया है, उसने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन तथा श्रवण किया है—समस्त कर्तव्यका अनुष्ठान किया है। जिसने वर्णाश्रमके आचारका परित्याग कर दिया है, जिसकी समस्त क्रिया लुप्त हो गयी है—एक बार त्रिपुण्ड् धारण कर लेनेपर वह भी पूजित होता है। जो मनुष्य भस्मधारण

न कर कर्म करते हैं, कोटि जन्मोंसे भी उनकी संसारसे मुक्ति नहीं होती ।'

बृहज्जाबालोपनिषद्में और भी बहुत वाक्य हैं जिनसे चारों वर्णोंके लिये भस्म-धारण कर्त्तव्य सिद्ध होता है । कालाग्निरुद्र तथा भस्मजाबाल-उपनिषदोंमें भी भस्मधारणकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है ।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्में रुद्राक्ष-धारणकी विधि है—एक मुखसे लेकर चतुर्दशमुखपर्यन्त रुद्राक्षके धारणका फल विस्ताररूपसे वर्णन किया गया है । शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता तथा स्कन्दपुराण-काशीखण्डमें भी भस्म-रुद्राक्ष-धारणकी विधि है ।

उपनिषद् श्रुति हैं; पूर्वोक्त सब उपनिषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत हैं । धर्म तथा अधर्मके निर्णयमें श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है । महर्षि जैमिनि पूर्व-मीमांसामें लिखते हैं—

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम् ।
(१ । ३ । ३)

इस सूत्रका अर्थ 'कुतूहलवृत्ति'में इस प्रकार लिखा है—

प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं मूलप्रमाणानपेक्षं श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्यान्न तु स्मृतिवाक्यम् ।

जिस स्थलमें प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य ही प्रमाण है, स्मृतिवाक्य (मन्वादि धर्मशास्त्र तथा पुराण) प्रमाण नहीं हैं ।

'व्यासस्मृति' में इस बातको स्पष्ट किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥
(१ । ४)

'जिस विषयमें श्रुति, स्मृति तथा पुराणका परस्पर विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य प्रमाण है; स्मृति तथा पुराणके विरोधस्थलमें स्मृति प्रमाण है ।'

श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ

(लेखक—श्रीपन्नालालसिंहजी)

श्रीविष्णुपुराणमें लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

'एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, स्थिति और प्रलयके सम्बन्धको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं ।'

शिव परमात्मा या ब्रह्मका ही नामान्तर हैं । वे शान्त शिव अद्वैत और चतुर्थ (शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थम्'—माण्डूक्योपनिषद्) हैं, वे विश्वाद्य, विश्वबीज, विश्वदेव, विश्वरूप, विश्वाधिक और विश्वान्तर्यामी हैं । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—यह सभी कुछ ब्रह्ममय है, तभी तो बृहदारण्यक उपनिषद्के अन्तर्यामीब्राह्मणमें कहा है कि 'जो सर्वभूतोंमें अवस्थित होते हुए भी सर्वभूतोंसे पृथक् हैं, सर्वभूत जिन्हें जानते नहीं, किंतु सर्वभूत जिनके शरीर हैं और जो सर्वभूतोंके अंदर रहकर सर्वभूतोंका नियन्त्रण करते हैं, वे ही (परम) आत्मा, वे ही अन्तर्यामी और वे ही अमृत हैं ।'

भगवान्ने गीतामें कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

'अर्थात् मेरी इस अव्यक्त मूर्तिद्वारा सारा संसार व्याप्त है ।' शिवपुराणमें भी महादेव कहते हैं—

अहं शिवः शिवश्चायं त्वं चापि शिव एव हि ।
सर्वं शिवमयं ब्रह्म शिवात्परं न किंचन ॥

'मैं शिव, यह शिव, तुम शिव, सब कुछ शिवमय है । शिवके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।'

पञ्चभूतोंमें जगत् संगठित है । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा इन्हीं अष्टमूर्तियों-

द्वारा समस्त चराचरका बोध होता है। तभी महादेवका एक नाम 'अष्टमूर्ति' है।

शिवपुराणमें आया है—

तस्यादिदेवदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्।
तस्मिन् व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव॥
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशुपतिः।
ईशानश्च महादेवः मूर्त्तयश्चाष्ट विश्रुताः॥
भूम्यम्भोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिता महेशस्य सर्वादेरष्टमूर्तिभिः॥
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥

'इन देवादिदेवकी अष्टमूर्तियोंसे यह अखिल जगत् इस प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार सूतके धागेमें सूतकी ही मणियाँ। भगवान् शंकरकी इन अष्टमूर्तियोंके नाम ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। इन अष्टमूर्तियोंद्वारा विश्वमें अधिष्ठित उन्हीं परम कारण भगवान्‌की सर्वतोभावेन आराधना करो।'

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः
ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः
ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः
ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः
ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः
ॐ पशुपते यजमानमूर्त्तये नमः
ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः

सूर्य और चन्द्र प्रत्यक्ष देवता हैं।

पृथिवी, जल आदि पञ्चसूक्ष्मभूत हैं, जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। जीव ही यजमानरूपसे यज्ञ या उपासना करनेवाला है, इसलिये उसे 'यजमान' भी कहते हैं। पाश या मायायुक्त जीव ही पाशु या पशु है और जीवके उद्धारकर्ता होनेके कारण ही महादेव 'पशुपति' हैं। वे ही जीवका पाशमोचन करते हैं—

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्त्तिनः॥
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः॥
स एव मोचकस्तेषां भक्तानां समुपासितः।
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणास्तथा।
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः॥
सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी।
मूर्तिः पशुपतिर्ज्ञेया पशुपाशनिकृन्तनी॥

'ब्रह्मासे लेकर स्थावर (वृक्ष-पाषाणादि) पर्यन्त जितने भी संसारवशवर्ती जीव हैं, सभी देवाधिदेव महादेवके पशु कहे जाते हैं और उन सबके पति होनेके कारण महादेव 'पशुपति' कहे जाते हैं। वही पशुपति ब्रह्मा आदि सब पशुओंको मल, मायादि अविद्याके पाशमें जकड़कर रखते हैं और फिर भक्तोंद्वारा पूजे जाकर उन्हें उक्त पाशसे मुक्त करते हैं। चौबीस तत्त्व और मायाकृत कर्मके गुण 'विषय' कहलाते हैं। ये विषय ही जीवको बन्धनमें डालनेवाले हैं, इसीलिये इन्हें 'पाश' कहते हैं। महादेव सब जीवोंके अधिष्ठाता और सर्वक्षेत्रोंमें वास करनेवाले (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। —गीता) तथा पशुपाशको काटनेवाले होनेके कारण पशुपति नामसे प्रख्यात हैं।'

शिवपुराणका कथन है कि परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इस कारण जैसे मूलमें जल-सिञ्चन करनेसे वृक्षकी सभी शाखाएँ हरी-भरी रहती हैं, वैसे ही विश्वात्मा शिवकी पूजा करनेसे उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि-लाभ करता है। अब हमें यह देखना है कि शिवकी आराधना क्या है? सब प्राणियोंको अभयदान, सबके प्रति अनुग्रह, सबका उपकार करना—यही शिवकी वास्तविक आराधना है। जिस प्रकार पिता पुत्र-पौत्रादिके आनन्दसे आनन्दित होता

है, उसी प्रकार अखिल विश्वकी प्रीतिसे शंकरकी प्रीति होती है। किसी देहधारीको यदि कोई पीड़ा पहुँचाता है तो इससे अष्टमूर्तिधारी महादेवका ही अनिष्ट होता है। जो इस प्रकार अपनी अष्टमूर्तियोंके द्वारा अखिल विश्वको अधिष्ठित किये हुए हैं, उन्हीं परम कारण महादेव-का सर्वतोभावेन आराधन करना चाहिये।

आत्मनश्चाष्टमी मूर्त्तिः शिवस्य परमात्मनः।
व्यापकेतरमूर्त्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्॥
वृक्षमूलस्य सेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा।
शिवस्य पूजया तद्वत् पुष्येत्तस्य वपुर्जगत्॥
सर्वाभयप्रदानञ्च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत् पिता।
तथा सर्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः॥
देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः।
अनिष्टमष्टमूर्त्तेस्तत् कृतमेव न संशयः॥
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥

(शिवपुराण)

'सर्वभूतोंमें और आत्मामें ब्रह्म अथवा शिवका दर्शन अर्थात् 'सर्वं शिवमयं चैतत्'—इस भावकी अनुभूति किये बिना जन्म-मरणसे मुक्ति नहीं होती। इस भावकी उत्पत्तिके लिये ही इन अष्टमूर्त्तियोंकी पूजा कही गयी है। वास्तवमें जीव-देह ही देवालय है। मायासे मुक्त होनेपर जीव ही सदाशिव है। अज्ञानरूप निर्माल्यका त्याग कर सोऽहं-भावसे उन्हीं सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये—

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत्॥

इसी भावको हृदयस्थ करके आओ, आज हम महादेव-के असंख्य मन्दिरोंमें उनका पूजन करें। आओ, हम अपने हृदयकमलमें उन्हीं आत्मलिङ्गका अनुभव करके निर्मल-चित्तसे श्रद्धारूपी नदीके जलसे समाधि-सुमनोंके द्वारा मोक्षप्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें—

आराधयामि मणिसंनिभमात्मलिङ्गं
मायापुरीहृदयपङ्कजसंनिविष्टम्।
श्रद्धानदीविमलचित्तजलावगाहं
नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय॥

अष्टमूर्त्तिके तीर्थ

(१) सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्यमें कोई भेद नहीं है, इसलिये प्रत्येक सूर्यमन्दिर शिवमन्दिर ही है।

(२) 'चन्द्र'—काठियावाड़का सोमनाथका मन्दिर और बङ्गालका चन्द्रनाथ-क्षेत्र—ये दोनों महादेवके सोममूर्तिके ही तीर्थ हैं।

सोमनाथका* मन्दिर प्रभासक्षेत्रमें है और चन्द्रनाथका वर्तमान पूर्व-पाकिस्तानके चटगाँव (Chittagoug)नगरसे ३४ मील उत्तर-पूर्वमें एक पर्वतपर स्थित है। स्थानका नाम सीताकुण्ड है। श्रीचन्द्रनाथका मन्दिर पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर है, जो समुद्रकी सतहसे चार सौ गज ऊँचा है। देवीपुराणके चैत्र-माहात्म्यके अनुसार यह त्रयोदश ज्योतिर्लिङ्ग है जो पहले गुप्त था और कलिमें लोकहितार्थ प्रकट हुआ है। काशी, प्रयाग, भुवनेश्वर, गङ्गासागर, गङ्गा और नैमिषारण्यके दर्शनसे जो फल प्राप्त होता है, वह श्रीचन्द्रनाथ-क्षेत्रमें जानेसे एक साथ प्राप्त हो जाता है।

श्रीचन्द्रनाथके निकट और भी अनेक तीर्थ हैं। उदाहरणार्थ—

(१) उत्तरमें लवणाक्ष कुण्ड है जिसमेंसे अग्निकी ज्वाला निकलती है, (२) पर्वतके नीचे गुरुधूनी है जो पत्थरपर प्रज्वलित है, (३) बडवानल कुण्ड है जिसके जलपर सप्तजिह्वात्मक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती

* इसका चित्र भी इसी अंकमें अलग दिया गया है। —सम्पादक

है। इसके अतिरिक्त (४) तप्त जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड, (५) सहस्रधारा-जलप्रपात, (६) कुमारी कुण्ड, (७) श्रीव्यासजीकी तपस्याभूमि, व्यासकुण्ड, (८) सीताकुण्ड, (९) ज्योतिर्मय, जहाँ पाषाणके ऊपर ज्योति प्रज्वलित है, (१०) काली, (११) श्रीस्वयम्भूनाथ, (१२) मन्दाकिनी नामका स्रोत, (१३) गयाक्षेत्र, जहाँ पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है, (१४) श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर, (१५) क्षत्रशिला, जहाँ पत्थरकी गुफामें अनेक शिवलिङ्ग हैं, (१६) विरूपाक्ष-मन्दिर, (१७) हर-गौरीका विहार-स्थल, जो एक सुरम्य नीरव स्थानमें है । यहाँ सघन वृक्षावलीके होते हुए भी पशु-पक्षीगण बिल्कुल शब्द नहीं करते । तथा (१८) आदित्यनाथ ।

(३) नेपालके पशुपतिनाथ महादेव 'यजमान' मूर्तिके तीर्थ हैं—पशुपतिनाथ लिङ्गरूपमें नहीं, मानुषी विग्रहके रूपमें विराजमान हैं । विग्रह कटिप्रदेशसे ऊपरके भागका ही है। मन्दिर चीनी और जापानी ढंगका बना हुआ है और नेपालराज्यकी राजधानी काठमाण्डूमें बागमती नदीके दक्षिण तीरपर आर्याघाटके समीप अवस्थित है। मूर्ति स्वर्णनिर्मित पञ्चमुखी है। इसके आस-पास चाँदीका जँगला है, जिसमें पुजारीको छोड़कर और किसीकी तो बात ही क्या, स्वयं नेपाल-सम्राट्का भी प्रवेश नहीं हो सकता। नेपालराज्यमें भी बिना पासपोर्टके बाहरके लोगोंका प्रवेश बंद है; पर महाशिवरात्रिके अवसरपर लोग पासके बिना भी जाकर पशुपतिनाथके दर्शन कर सकते हैं । नेपाल महाराज अपनेको श्रीपशुपतिनाथजीका दीवान कहते हैं ।

(४) शिवकाञ्चीका 'क्षिति' लिङ्ग—पञ्चमहाभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं वे सभी दक्षिण भारतके मद्रासप्रान्तमें हैं। इनमेंसे एकाम्रेश्वरका क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है । इस मूर्त्तिपर जल नहीं चढ़ाया जाता, चमेलीके तेलसे स्नान कराया जाता है । मन्दिर बहुत विशाल और सुन्दर है । अंदर अनेक देवमूर्त्तियोंके साथ एक पाषाणमूर्ति भगवान् शङ्कराचार्यकी भी है । मन्दिरके 'गोपुरम्' पर हैदरअलीके गोलोंके चिह्न अबतक मौजूद हैं । अप्रैल मासमें यहाँका प्रधान वार्षिकोत्सव होता है जो पंद्रह दिनतक रहता है । यहाँ ज्वरहरेश्वर, कैलासनाथ तथा कामाक्षीदेवी आदिके मन्दिर भी दर्शनीय हैं । काञ्चीमें मरनेसे काशीकी तरह सद्योमुक्ति मानी जाती है । इसकी सप्त मोक्षदा पुरियोंमें गणना है ।

इस तीर्थका इतिहास यह है कि एक समय पार्वतीने कौतूहलवश चुपचाप पीछेसे आकर दोनों हाथोंसे भगवान् शंकरके तीनों नेत्र बंद कर लिये । श्रीमहेश्वरके लोचनत्रय आच्छादित हो जानेसे सारे संसारमें घोर अन्धकार छा गया; क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि जो संसारको प्रकाशित करते हैं, वे शंकर (के नेत्रों) से ही प्रकाश पाते हैं—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।
(कठोपनिषद्)

अतः ब्रह्माण्डलोपकी नौबत आ पहुँची । इस प्रकार श्रीशिवके अर्द्धनिमेषमात्रमें संसारके एक करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये । असमय ही देवीके इस प्रलयङ्कर अन्याय-कार्यको देखकर श्रीशिवजीने इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप श्रीपार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश किया । अतएव वह महादेवजीकी आज्ञासे काञ्चीपुरीमें कम्पानदीके तटपर आकर एक आम्रवृक्षकी छायामें जटावल्कलधारिणी एवं भस्म-विभूषिता तपस्विनीका वेश धारणकर कम्पाकी बालुकासे लिङ्ग बना, विधिपूर्वक पूजा और तपस्या करने लगीं। जब श्रीपार्वतीको कठिन तपस्या करते कुछ काल बीत गया, तब शंकरजीने गौरीकी भक्ति और एकनिष्ठाकी परीक्षाके लिये नदीमें बाढ़ ला दी, जिससे उनके चारों ओर जल-ही-जल हो गया । भगवतीने आँख खोलकर देखा तो उन्हें यह आशङ्का हुई कि नदीके वर्द्धमान

प्रबल प्रवाहमें कहीं वह बालुका-लिङ्ग विलीन न हो जाय, जिससे उनकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित हो और इसी आशङ्कासे वे चिन्तित हो उठीं। समस्त कामनाओंके त्यागपूर्वक भगवान्‌को अपना मन समर्पण करके उनका भजन करनेसे कोई भी विघ्न भक्तका अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवती शिवलिङ्गको छातीसे चिपटाकर ध्यानमग्न हो गयीं। उन्होंने जलप्रवाहके भँवरमें पड़कर भी उस लिङ्गका परित्याग नहीं किया। तब भगवान् शंकर प्रकट होकर बोले—

विमुञ्च बालिके लिङ्गं प्रवाहोऽयं गतो महान्।
त्वयार्चितमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरवैभवम्॥
भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम्।
तपश्चर्यां तवालोक्य चरितं धर्मपालनम्॥
लिङ्गमेतन्नमस्कृत्य कृतार्थाः सन्तु मानवाः।

'हे बालिके! नदीमें जो बाढ़ आयी थी वह अब चली गयी है। तुम लिङ्गको छोड़ दो। तुमने इस स्थिर वैभवयुक्त सैकत-लिङ्गकी पूजा की है, अतएव हे महाभागे! यह सुरपूजित पार्थिव लिङ्ग वरदाता बन गया। अर्थात् जो कोई इसकी जिस कामनाके साथ उपासना करेगा, उसकी वह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारी तपश्चर्या और धर्मपालनका दर्शन और श्रवण एवं इस लिङ्गकी आराधना करके लोग कृतार्थ होंगे।'

अनैषं तैजसं रूपमह स्थावरलिङ्गताम्।

'यहाँ मैं अपने ज्योतिर्मय रूपको त्यागकर स्थावर लिङ्गमें परिणत हो गया हूँ।' तुम गौतमाश्रम, अरुणाचल (तिरुवण्णमल्ले) तीर्थमें जाकर तपस्या करो। वहाँ मैं तेजोरूपमें तुमसे मिलूँगा।

शिवकाञ्चीका एकाम्रनाथ क्षितिलिङ्ग ही महादेवीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग है।

अम्बिकाने काञ्चीसे चलते समय तपस्याके लिये आये हुए देवताओं और ऋषियोंको वर प्रदान किया।

तिष्ठतात्रैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः।
नियमांश्चाधितिष्ठन्तः कम्पारोधसि पावने॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम्।
पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छनम्॥
अहं च निष्कलं रूपमास्थायैतद्दिवानिशम्।
आराधयामि मन्त्रेण महेश्वरं वरप्रदम्॥
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्धर्मपरिपालनात्।
मल्लिङ्गदर्शनाच्च तथा सिद्ध्यन्त्वष्टविभूतयः॥
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमिति कामतः।
मां प्रणम्यात्र मद्भक्ता लभन्तां वाञ्छितं वरम्॥

'हे दृढव्रत देवताओ और मुनियो! नियमाधिष्ठित होकर आपलोग पवित्र कम्पातटपर निवास कीजिये और सर्वपापक्षयकर तथा सर्वसौभाग्यवर्द्धक मदीयकुचकङ्कण-लाञ्छित इस सैकतलिङ्गकी पूजा कीजिये। मैं भी निष्कल (अव्यक्त) रूपसे अवस्थित होकर अहर्निश इस स्थानपर वरद महेश्वरकी आराधना करूँगी। मेरे तपस्या-प्रभाव एवं धर्मपालनके फलस्वरूप इस लिङ्गका दर्शन और पूजन करके मनुष्य अभिलषित ऐश्वर्य और विभूति लाभ करेंगे। मैं सर्वकाम प्रदान करती हूँ, मेरे भक्त मुझे कामदायिनी कामाक्षी मानकर कामनापूर्वक मेरी अर्चना करके अभिलषित वर लाभ करेंगे।'

(५) जम्बुकेश्वर—मद्रास-प्रान्तके त्रिचनापल्ली जिलेमें 'श्रीरङ्गनाथ' से एक मीलपर जम्बुकेश्वर—'अप'लिङ्ग है। यहाँके शिवलिङ्गकी स्थिति एक जलके स्रोतपर है, अतः जलहरीके नीचेसे जल बराबर ऊपर उठता हुआ नजर आता है। स्थापत्य-शिल्पकी दृष्टिसे यह मन्दिर भी बहुत उत्तम बना है। मन्दिरके बाहर पाँच परकोटे हैं, तीसरे परकोटेमें एक जलाशय भी है, जहाँ स्नान किया जाता है। यहाँके जम्बु अर्थात् जामुनके पेड़का भी बड़ा माहात्म्य है। यह स्थान 'चिदम्बरम्' से पश्चिमकी ओर इरोद जानेवाली लाइनपर त्रिचिनापल्लीसे थोड़ी दूर आगे है।

(६) तिरुवण्णमल्ले या अरुणाचल—यहाँ महादेवका 'तेजोलिङ्ग' है। शिवकाञ्चीसे श्रीपार्वतीजीके तिरुवण्णमल्ले

या अरुणाचल-तीर्थ पहुँचकर कुछ काल और तपस्या करनेके पश्चात् अरुणाचल-पर्वतमें अग्निशिखाके रूपमें एक तेजोलिङ्गका आविर्भाव हुआ और उससे जगत्का वह अन्धकार दूर हुआ, जिसका वर्णन काञ्चीके क्षितिलिङ्गके इतिहासमें आया है। यही 'तेजोलिङ्ग' है। यहाँ हर और पार्वतीका मिलन हो गया। यह स्थान * चिदम्बरम्के उत्तर-पश्चिममें विल्लुपुरम्से आगे कटपडी जानेवाली लाइन-पर स्थित है।

(७) कालहस्तीश्वर—तिरुपति-बालाजीसे कुछ ही दूर उत्तर आर्काट जिलेमें स्वर्णमुखी नदीके तटपर काल-हस्तीश्वर—'वायु'लिङ्ग है। मन्दिर बहुत ऊँचा और सुन्दर है और स्टेशनसे एक मील दूर नदीके उस पार है। मन्दिरके गर्भगृहमें वायु और प्रकाशका सर्वथा अभाव है। दर्शन भी दीपकके सहारे होते हैं। यह स्थान वायु-लिङ्गका माना जाता है। लोगोंका विश्वास है कि यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव विराज-मान रहते हैं। यहाँकी शिवमूर्ति गोल नहीं, चौकोर है। इस शिवमूर्तिके सामने एक मूर्ति कण्णप्प भीलकी है। कण्णप्प भील एक बहुत बड़ा शिवभक्त हो गया है। इसने भगवान् शंकरको अपने दोनों नेत्र निकालकर अर्पण कर दिये थे। शिवजीने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा; जिसपर इसने यही माँगा कि 'मैं सेवार्थ सदा आपके सामने उपस्थित रहा करूँ।'

स्वर्णमुखी नदीका सम्बन्ध शालग्रामकी मूर्तिसे बतलाया जाता है, अतः वे यात्री, जिनके पास शालग्रामकी मूर्ति होती है, इसमें एक रात्रिके लिये अवश्य निवास करते हैं। दाक्षिणात्यलोग इस तीर्थको 'दक्षिण काशी' कहते हैं। यहाँ एक मन्दिर मणिकुण्डेश्वर नामका है। लोग मरणासन्न व्यक्तियोंको इस मन्दिरके अंदर सुला देते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वाराणसीकी भाँति यहाँ भी शिवजी मरनेवालोंके कानमें तारकमन्त्र सुनाकर मुक्त कर देते हैं। पास ही पहाड़ीपर, एक भगवती दुर्गाका मन्दिर भी है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जो सात दिनोंतक रहता है।

(८) चिदम्बरम्-'आकाश'लिङ्ग—यह मन्दिर समुद्र-तटसे दो-तीन मीलके अन्तरपर कावेरीनदीके तटपर बड़े सुरम्य स्थानमें बना हुआ है। मन्दिरके चारों ओर एकके बाद दूसरा, इस क्रमसे चार बड़े-बड़े घेरे हैं। यहाँ मूल-मन्दिरमें कोई मूर्ति ही नहीं है। एक दूसरे ही मन्दिरमें ताण्डवनृत्यकारी चिदम्बरेश्वर नटराजकी मनोरम मूर्ति विराजमान है। चिदम्बरम्का अर्थ है (चित् =ज्ञान+अम्बर= आकाश) चिदाकाश। बगलमें ही एक मन्दिरमें शेष-शायी विष्णुभगवान्के दर्शन होते हैं। शंकरजीके मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणावर्त शङ्ख रक्खा हुआ है, जो गजमुक्ता, सर्पमणि एवं एकमुखी रुद्राक्षकी भाँति अमूल्य और अलभ्य माना जाता है। मन्दिरमें एक ओर एक परदा-सा पड़ा हुआ है। परदा उठाकर दर्शन करनेपर स्वर्णनिर्मित कुछ मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ निरा आकाश-ही-आकाश है। यही भगवान्का आकाशलिङ्ग है। निज-मन्दिरसे निकलकर बाहरके घेरेमें आते ही कनक-सभा मिलती है, जिसके पूर्वीय और पश्चिमीय द्वारोंपर नाट्यशास्त्रोक्त १०८ मुद्राएँ

* यहाँका सबसे बड़ा उत्सव 'कार्तिगाई' नामक है। इस उत्सवके अवसरपर मन्दिरके पुजारी एक बड़े-से पात्रमें बहुत-सा कपूर जलाकर उस पात्रको ऊपरसे ढक देते हैं और प्रज्व-लित अवस्थामें ही उसे बाहर मण्डपमें ले आते हैं, जहाँ दक्षिण-की प्रथाके अनुसार भगवान्का दूसरा मानुषी विग्रह घुमा-फिराकर रक्खा जाता है। वहाँ उस पात्रको खोल दिया जाता है और उसी समय मन्दिरके शिखरपर भी बहुत-सा कपूर जला दिया जाता है और घीकी मशाल भी जला दी जाती है। कहते हैं कि शिखरका यह प्रकाश दो दिन दो रात बराबर रक्खा जाता है। यही भगवान्का तेजोलिङ्ग कहलाता है और इसीके दर्शनके लिये लगभग एक लाख दर्शकोंकी भीड़ उत्सव-पर जमा होती है।

खुदी हुई हैं। मन्दिरके बाहरी घेरेमें रक्खी हुई श्रीगणेश-जीकी मूर्ति इतनी विशाल है, जितनी भारतमें कहीं नहीं मिलेगी। इस मन्दिरका अनूठी कारीगरीसे तैयार किया हुआ प्रधानद्वार (गोपुर), सहस्र स्तम्भोंका मण्डप तथा शिवगंगा नामक सुन्दर सरोवर आदि द्राविड़ स्थापत्य या भास्कर्य शिल्पके अद्भुत नमूने हैं। सहस्रस्तम्भ-मण्डपमें केवल खम्भे-ही-खम्भे हैं, ऊपर छत नहीं है। उत्सवोंके अवसरपर इन खम्भोंपर चाँदनी डाल दी जाती है। गर्भ-मन्दिरके सामने ड्योढ़ीपर पीतलकी एक विशाल चौखट बनी हुई है। वहाँपर रात्रिमें सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं। यहाँ जून तथा दिसम्बरके महीनोंमें दो बड़े-बड़े उत्सव होते हैं। जिन्हें क्रमशः 'तिरुमञ्जनम्' और 'अरुद्र-दर्शनम्' कहते हैं। इन अवसरोंपर बड़ी धूमधामसे भगवान्की सवारी निकलती है और कई दिनोंतक बड़ी भीड़भाड़ रहती है।

दक्षिणमें ६३ शिवभक्त या 'आडियार' आविर्भूत हुए हैं जिन्होंने 'द्राविणदेव' के नामसे तामिल-प्रबन्ध लिखे हैं। ये सब तीर्थ इन भक्तोंके लीला-क्षेत्र हैं। इस स्थानमें एक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है जो हिंदू-विश्व-विद्यालयके ढंगका है। यहाँका पुस्तकालय बड़ा प्रसिद्ध है, इसमें संसारभरकी भाषाओंकी पुस्तकें संगृहीत हुई हैं।

अन्तमें, महाकवि कालिदासने अष्टमूर्तिकी जिस स्तुति-से अपने विश्वविख्यात 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटकका मंगलाचरण किया है, उसीके द्वारा हम भी सर्वान्तर्यामी श्रीमहादेवको प्रणाम कर लेखको मंगलके साथ समाप्त करें।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं
या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा
या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया
प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु व-
स्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

भगवान् शिव

(रचयिता—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न)

शिव शिव हर हर, शिव शिव हर हर,
बाघाम्बर धर, डमरू सुकर धर। शिव० ॥ १ ॥
कर त्रिशूल धर, अभय सुवर कर,
भस्म अंग धर, जटाजूट धर। शिव० ॥ २ ॥
भाल चन्द्रधर तीन नयनधर,
नाग हार धर, मुण्ड माल धर। शिव० ॥ ३ ॥
जटा गंग सारंग अंग धर,
उमा वाम श्रीनाथ दक्ष धर। शिव० ॥ ४ ॥
गरल कंठ धर, नीलकंठ धर,
नन्दि पीठ भव भूत-भार धर। शिव० ॥ ५ ॥
क्रिया-कर्म-कारण अनन्त धर,
भक्त-हेतु कर सार सुधर धर। शिव० ॥ ६ ॥

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

**शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥**

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है । मुझ-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है । परंतु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दघन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनोविनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ । विद्वान् महानुभाव क्षमा करें ।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है । इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परंतु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है । शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है । इसका क्या कारण है ? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों ? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंमें भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है । इसका क्या हेतु है ?

इस प्रश्नपर मूल-तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी वस्तुतः मूल-सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है; क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं । वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१—मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता; क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है ।

२—महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है । ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है ।

३—प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है ।

४—सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसे समझानेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिका रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है । इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है ।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं । अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है । पुराणोंकी रचना प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यासजीने की है । वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्य-

को जाननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्था-में उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परमहितके उद्देश्यसे पुराणों-की रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इस प्रकार-के वर्णन और उपदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वर-के नाना प्रकारके नाम और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आरूढ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्र्यके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने सबके लिये परम धाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्‌के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करने-वाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है; क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड़ दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।

विज्ञानानन्दघन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्मको ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—

इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और शक्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधाभिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि॥
यथैकस्या मृदो भेदो नाम्नि पात्रे न वस्तुतः।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः॥
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिवपुराण)

'हे विष्णो! हे हरे!! मैं स्वभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस, प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंमें कोई स्पर्शता नहीं आती, उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता। मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्टी ही है। समुद्रके भी फेन, बुदबुदे, तरंगादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः दृश्य पदार्थ मात्र शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल-स्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।'

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्चवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(विष्णु० १।२।१—५)

'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव आदि नामों-

से प्रसिद्ध संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म—उभयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अंदर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्‌को मेरा प्रणाम है।'

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ, हरि और शंकरके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णुभगवान्‌के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमयि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
(मार्कण्डेय० ९१।१०)

'ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रय! हे गुणमयी नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार हो।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥
(ब्रह्मवै० प्रकृति० २।६६।७—११)

'तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो; परम तेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा एवं परात्परा हो। तुम सर्वबीजस्वरूपा, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहिता हो। तुम सर्वज्ञा, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंकी भी मङ्गल हो।'

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दघनस्वरूप-के साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।
× × × ×
(देवीपुराण ८३।१३—१६)

'आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्त-रूप त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार

है। हे महाभाग ! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर परब्रह्मस्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु-महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥
(पद्म० पाता० २८। ६—८)

'आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।'

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥
(ब्रह्मवै० १। ३। २५-२६)

'आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारण हैं, कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।'

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४। २७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
(९। १८)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥
(९। १९)

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७। ७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०। ३)

हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य-धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान* और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।

'हे धनंजय ! मेरेसे सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित) अनादि† तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण तत्त्वतः एक ही हैं। इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परंतु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उस परमात्माको लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही हैं। परंतु इस प्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिके आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है। यथोचित वैध सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी अपने इष्टदेवके आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथा-योग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही है तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने या श्रीब्रह्मा-

---

* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम 'निधान' है।

† 'अनादि' उसको कहते हैं जो आदिरहित हो और सबका कारण हो।

ने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसीसे कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

> एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
> परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
> क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
> नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥
> अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
> यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥
> (शिवपुराण)

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्से कहते हैं—

> मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने।
> ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
> उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।
> (शिव० ज्ञान० ४। ६१-६२)

'मेरे दर्शनका जो फल है वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

> ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
> आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
> ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
> कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
> ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
> मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥
> (पद्म० पाता० २८। २१—२३)

'आप (शंकर) मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अंदर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अंदर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।'

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

> त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
> ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
> पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
> कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि॥
> प्रजावान् भूमिवान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।
> ज्ञानवान् मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्॥
> शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
> कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥
> (ब्रह्मवैवर्त० प्र० ६। ३१, ३२, ४५, ४७)

'मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा तबतक कालसूत्रमें (नरकमें) पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है ।'

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत (४ । ७ । ५४) में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

'हे विप्र ! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, हमारे अंदर जो भेद-भावना नहीं करता, निस्संदेह वह शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।'

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

संकरप्रिय मम द्रोही सिवद्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास ॥
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि ।
संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है । परमात्माकी प्राप्तिके पूर्व-कालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है; तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासना-को परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्वीकार करते हैं; क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता । अतएव परमात्माके किसी भी नाम-रूपकी निष्कामभावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है । हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको विलम्ब हो सकता है । तथापि सकाम-भावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही माना गया है (गीता ७ । १८); क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है । 'मद्भक्ता यान्ति मामपि' (गीता ७ । २३) ।

'शिव' शब्द नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है । यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है । 'शिव' शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे हुई है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है । सब चाहते हैं अखण्ड आनन्दको । अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ आनन्द हुआ । जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्दको ही परम मङ्गल और परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ परम मङ्गल, परम कल्याण समझना चाहिये । इस आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको ही शंकर कहते हैं । 'शं' आनन्दको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है, अतएव जो आनन्द करता है वही 'शंकर' है । ये सब लक्षण उस नित्य विज्ञानानन्दघन परम ब्रह्मके ही हैं ।

इस प्रकार रहस्य समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है । जो पुरुष शिव-तत्त्वको जान लेता है, उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता । शिव-तत्त्वको हिमालयतनया भगवती पार्वती यथार्थरूपसे जानती थीं, इसीलिये छद्मवेशी स्वयं शिवके बहकानेसे भी वे अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नहीं टलीं । उमा-शिवका यह संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है ।

शिव-तत्त्वैकनिष्ठ पार्वती शिवप्राप्तिके लिये घोर तप करने लगीं । माता मेनकाने स्नेहकातरा होकर उ (वत्से !) मा (ऐसा तप न करो) कहा, इससे उनका नाम 'उमा' हो गया । उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका 'अपर्णा' नाम पड़ा । उनकी कठोर तपस्याको देख-सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषिगण भी कहने लगे कि 'अहो, इसको धन्य है, इसकी तपस्याके सामने

दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है ।' पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तपोभूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्पादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य 'शिवसे विवाह करना है' यह जानकर कहने लगे।

'हे देवि ! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है । मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है । तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका संकल्प सर्वथा अनुचित है । तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पोतना चाहती हो । हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो । गङ्गाजल परित्यागकर कुएँका जल पीनेकी इच्छा करती हो । सूर्यका प्रकाश छोड़कर खद्योतको और रेशमी वस्त्र त्यागकर चमड़ा पहनना चाहती हो । तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी संनिधिका त्याग कर असुरोंका साथ करनेके समान है । उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शंकरपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है ।

'जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र भूतपति महादेव ! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूत-प्रेत ! कहाँ तुम्हारे पिताके घर बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी ध्वनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी ध्वनि ! न महादेवके माँ-बापका पता है, न जातिका ! दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है । दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़े रहते हैं ! न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है ! सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, रुण्डमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी ?'

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकीं । वे तमककर बोलीं—'बस, बस, बस, रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती । मालूम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते । इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो । तुम किसी धूर्त ब्रह्मचारीके रूपमें यहाँ आये हो । शिव वस्तुतः निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं । उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी ? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है ? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है ? वही अनादि, अनन्त, नित्य-निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातन देव हैं । तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं । अरे, ये सारी विद्याएँ आयी कहाँसे हैं ? वेद जिनके निःश्वास हैं उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो ? छिः, छिः !! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो । अरे, इन देवताओंको, जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँसे हुआ ? यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है । इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अंदर घुसनेका साहस नहीं कर सकते । तुम उन्हें अमङ्गलवेश कहते हो ? अरे, उनका 'शिव'—यह मङ्गलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या ? जिस चिता-भस्मकी तुम निन्दा करते हो, नृत्यके अन्तमें जब वह उनके श्रीअङ्गोंसे झड़ती है, उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको लालायित होते हैं । बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको बिल्कुल नहीं जानते । जो मनुष्य इस प्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके संचित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं । तुम-जैसे शिव-

निन्दकका सत्कार करनेसे पाप लगता है। शिव-निन्दकको देखकर भी मनुष्यको सचैल स्नान करना चाहिये, तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि यह दुष्ट फिरसे शिवकी निन्दा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करे। शिवकी निन्दा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी पापका भागी होता है।' यह कहकर उमा वहाँसे चल दीं। ज्यों ही वे वहाँसे जाने लगीं, बटु-वेश-धारी शंकरने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देरतक पार्वतीसे छिपे न रह सके, पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थीं उसी रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ कालमें शिवने पार्वतीका पाणिग्रहण कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी, सदाशिव परमात्माको निर्गुण, निराकार एवं सगुण, निराकार समझकर उनकी सगुण, साकार दिव्य मूर्तिकी उपासना करता है, उसीकी उपासना सच्ची और सर्वाङ्गपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वाङ्गपूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ और लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी, देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष! उपासना करनेवालोंपर बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है? सकामभावसे, अपना मतलब गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं उनपर भी आप रीझ जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते। जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यङ्गसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाईं तुलसीदासजी महाराजकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे विधाताके वचनोंमें कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी!
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी ॥ टेक ॥
निज घरकी बर बात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्रीसारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनको नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख; जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम-प्रसंसा बिनय ब्यंगजुत; सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगतमातु मुसकानी।

ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्त्वको जानते नहीं हैं, अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो! आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपलोग उचित समझें तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गीता अध्याय ६, श्लोक १० से १४ के अनुसार—

(१) भगवान् शंकरके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका, उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा श्रवण करके, मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन

करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करना ।

(२) भगवान् शिवकी शान्तमूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना ।

(३) भगवान् शंकरमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनय-भावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करना ।

(४) 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना ।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना ।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करना ।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंको करना ।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शंकरकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना ।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उस शिवके नाम-जपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना ।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना ।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिबद्ध होकर ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है । इसलिये कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये । इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है । अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उसके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आवे, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये । यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी भी आती हो तो कोई हर्ज नहीं, किंतु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी चाहिये; क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ भगवान्का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परम पदको प्राप्त हो जाता है । अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये ।

परात्पर शिव

(लेखक—स्व० श्रीगौरीशंकरजी गोयनका)

नोदयति यन्न नश्यति निर्वाति न निर्वृतिं प्रयच्छति च ।
ज्ञानक्रियास्वभावं तत्तेजः शाम्भवं जयति ॥

एक परमतत्त्व है, जो सर्वत्र अनुस्यूत है, सब कारणोंका कारण है । सबका अधिपति, सबका रचयिता, पालयिता एवं संहर्ता है । जिसके भयसे सूर्य प्रतिदिन यथासमय उदित होता है और यथासमय अस्त । वायु अविरत बहता है, चन्द्र प्रतिपक्ष घटता-बढ़ता है, ऋतुएँ यथावसर आविर्भूत होती हैं, अपने वैभवसे प्रकृतिकी छविको नयनाभिराम बनाती हैं । कभी अवनितल, तरु, निंकुञ्ज और लताएँ पल्लवों और पुष्पोंसे आच्छन्न होकर मनोज्ञताकी मूर्ति बन जाती हैं, तो कभी उनमें एक पीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता । कभी नाना पक्षियोंके कलरवसे कोने-कोनेमें चहल-पहल मच जाती है, तो कभी कहीं एक शब्द भी नहीं सुनायी देता । कभी काले-काले बादलोंकी घटाएँ, विद्युल्लताओंका परिनर्तन, मेघका तर्जन-गर्जन अपना दृश्य उपस्थित करते हैं, तो कभी लूकी लपटें, हेमन्तका शीतजन्य हाहाकार और शिशिरका सीत्कार आदि अपना अभिनय दिखाते हैं । यह सब उसी सुचतुर शिल्पीकी कुशलता ही तो है, उसी मायावीकी मायाका विलास ही तो है । वसन्तके बाद सदा ग्रीष्मका ही आविर्भाव होता है । उसके पश्चात् वर्षा, इसी क्रमसे अन्यान्य ऋतुएँ आती हैं और जाती हैं । इसमें तनिक भी परिवर्तन या विपर्यय नहीं होता । ये सब बातें बिना संचालकके सम्भव नहीं हैं ।

जो दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य देनेवाले हैं, श्मशानवासी होते हुए भी त्रैलोक्याधिपति हैं, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्द्धनारीश्वर हैं, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित् हैं, अज होते हुए भी अनेक रूपोंसे आविर्भूत हैं, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष हैं, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हैं, सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं, अनन्त रत्न-राशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषण हैं, वही इस जगत्के संचालक हैं, वही परात्पर शिव हैं । विपत्ति पड़नेपर सब देवता जिनकी शरणमें जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी घोर तपस्या कर जिनके कृपाभाजन हुए हैं, जिन्होंने अन्धक, शुक्र, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदि अनेकोंको अतुल ऐश्वर्य देकर फिर उनका संहार किया, जिन्होंने भयभीत देवताओंकी प्रार्थनापर हालाहल गरलको अमृतके समान पी लिया, चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं; स्वर्ग सिर है, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं; जिनके मुखसे ब्राह्मण और ब्रह्मा पैदा हुए, इन्द्र, विष्णु और क्षत्रिय जिनके हाथोंसे उत्पन्न हुए, जिनके ऊरुदेशसे वैश्य और पाँवसे शूद्र पैदा हुए, अनेक देव, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षस आदि जिनकी कृपासे अनन्त ऐश्वर्यके अधिपति हुए हैं; जो ज्ञान, तप, ऐश्वर्य, लीला आदिसे जगत्के कल्याणमें रत हैं; जिनके समान न कोई दाता है, न तपस्वी है, न ज्ञानी है, न त्यागी है, न वक्ता है, न उपदेष्टा है, न ऐश्वर्यशाली है, जो सदा सब वस्तुओंसे परिपूर्ण हैं, जिनके आवास कैलासका विशाल वर्णन करते-करते शेष, शारदा आदि भी थकित रह जाते हैं; जो श्रुतियोंमें महादेव, देवदेव, महेश्वर, महेशान, आशुतोष आदि अनेक नामोंसे पुकारे गये हैं—वही परात्पर हैं, परमकारण हैं ।

उनके अनन्त नाम हैं और हैं उनकी अपरिमित विभूतियाँ । कोई उनको शिव, महादेव कहकर उपासना करता है तो कोई ब्रह्म, नारायण, पुरुष, कर्ता, कर्म, अर्हन्,

बुद्ध आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींकी उपासना करते हैं। महाकवि कालिदासने बहुत ठीक कहा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे॥

निश्चय ही ये विभिन्न मार्ग उसी एक परात्परको विषय करते हैं। नद-नदी-नाले, इनमेंसे भले ही कोई पूर्वकी ओर बहे और कोई पश्चिमकी ओर, अन्तमें वे सब समुद्रमें ही जा गिरते हैं।

महिम्नःस्तोत्रमें पुष्पदन्ताचार्यने भी इसी भावका संकेत किया है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

'स्मार्त, सांख्य, योग, पाशुपतमत, पाञ्चरात्रमत आदि विभिन्न शास्त्रोंमें 'यह श्रेष्ठ है, यह हितकर है' इत्यादि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सीधे-टेढ़े अनेक मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके एक आप ही गम्य हैं, जैसे कि नद, नदी, नाले, झरनों, स्रोतोंके जलका एकमात्र आश्रय सागर है।'

कहाँ अतुल महिमावाले परात्पर शिव, कहाँ मैं अत्यल्पज्ञ प्राणी! उनकी परात्परता तथा सर्वकारणताके विषयमें लिखनेकी भला मेरी क्या सामर्थ्य? तथापि अपनी लेखनीको उनके गुण-लेखनसे पवित्र करनेके लिये कुछ निवेदन करनेका साहस करता हूँ। सम्भव है, इससे पाठकोंका यत्किंचित् मनोविनोद हो जाय।

जैसे नृपतिके छत्र, चँवर आदि असाधारण अभिज्ञान है, उसी प्रकार जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करना परात्परका असाधारण अभिज्ञान है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्म। (तैत्ति०)

'जिससे हिरण्यगर्भसे लेकर कीटपर्यन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर प्राण धारण करते हैं, अन्तमें जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसको जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है।'

द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।
(श्वे० ३। ३)

'द्यौ और पृथिवी (ब्रह्माण्डके दो कटाहों) की सृष्टि, स्थिति और लय करनेवाला स्वयंप्रकाश एक है।' इत्यादि अनेक श्रुतियों एवं **'जन्माद्यस्य यतः'** (ब्र० १। १। २) 'जिससे इस जगत्के जन्म आदि होते हैं, वह ब्रह्म है'—इत्यादि सूत्रोंसे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

यहाँपर देखना यह है कि उक्त लक्षण शिवजीमें घटता है या नहीं? श्वेताश्वतर-उपनिषद्में एक गाथा आयी है। उसका आशय यह है कि कतिपय ब्रह्मवादी ऋषियोंको **'यतो वा'** श्रुतिके बलसे जगत्के जन्म आदिका कारण, सबका अधिष्ठाता ब्रह्म है—ऐसा निश्चय हुआ; किंतु वह ब्रह्म अमुक देवतारूप है, इस प्रकार विशेष ज्ञान उन्हें नहीं था। अतः उन्हें संशय हुआ कि समस्त संसारकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाला वह ब्रह्म किस रूपवाला है। उक्त संशयको **'किं कारणं ब्रह्म'** (श्वे० १। १) इत्यादि प्रकरणसे दिखाकर जगत्के हेतु काल, स्वभाव, नियति, महाभूत, पुरुष हैं या इनका संयोग है, अथवा यह बिना किसी कारणके बना है, इस प्रकारकी आशङ्काओंका—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावात्

—इत्यादिसे उपर्युक्त संशयकी सिद्धिके लिये

निराकरण करते हुए ब्रह्म किंरूप है, इस विषयमें स्वयं निर्णय करनेमें असमर्थ हो ऋषियोंने सोचा कि ब्रह्मविद्या देनेमें अतिनिपुण तथा उदार परमशक्तिस्वरूपा अम्बिका देवीके प्रसादसे ही इस विषयका निर्णय हो सकेगा। वे ऐसा निश्चय कर समाधिस्थ हो गये। उन्हें परमात्माकी शक्तिके दर्शन हुए। उसके प्रसादसे उन्हें पूर्वोक्त काल, स्वभाव आदि कारणोंके कारण, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सत्-अभिन्न चित्, चित्-अभिन्न सत्, आनन्दाम्बुनिधि परमात्माका विशेषरूपसे साक्षात्कार हुआ। अनन्तर—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
(श्वे० १। १०)

—इत्यादि उपसंहारसे विस्तारपूर्वक यह निर्णय किया है कि '**यतो वा**' श्रुतिमें जिसे 'ब्रह्म' नामसे जगत्‌के जन्म आदिका कारण कहा गया है, वे शिव ही हैं। कूर्मपुराणमें इसी गाथाका विस्तृत वर्णन इस तरह किया गया है—

समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः।
वितेनिरे बहून् वादानात्मविज्ञानसंश्रयान्॥
किमस्य जगतो मूलमात्मा वास्माकमेव हि।
कोऽपि स्यात्सर्वभूतानां हेतुरीश्वर एव च॥
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानकर्मावलम्बिनाम्।
आविरासीन्महादेवी गौरी गिरिवरात्मजा॥

—इत्यादिसे लेकर

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम्॥

—एतत्पर्यन्त श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌की गाथाका ही विशद रूपसे उल्लेख है। इसका भी सारांश यही है कि शिवजी सबके कारण हैं, परात्पर हैं, पुराणपुरुष हैं इत्यादि।

अथर्व-शिर-उपनिषद् २ में कहा है—

देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमंस्ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानिति। सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति।

'देवतालोग महाकैलासमें गये, उन्होंने रुद्रसे पूछा—'आप कौन हैं?' रुद्रभगवान् बोले—'मैं एक (प्रत्यग्रूप) हूँ। मैं सृष्टिके पूर्वमें था, इस समय हूँ और भविष्यमें रहूँगा—मैं तीनों कालोंसे अपरिच्छिन्न हूँ। मुझ सर्वेश्वरसे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।'

अथर्वशिखा-उपनिषद्‌में भी सनत्कुमार आदिने अथर्वण ऋषिसे प्रश्न किया है—

भगवन्! किमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तद्ध्यानं को वा ध्याता कश्च ध्येयः।

वे क्रमशः तीन प्रश्नोंका उत्तर देकर कहते हैं—

ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्। सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते……कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः। सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये।

यहाँपर '**ध्यायीतेशानम्**' से शिवजीको ध्यानयोग्य कहा। तदनन्तर शिवसे इतर सम्पूर्ण देवताओंकी उपेक्षा कर शिवजीका ही ध्यान करना चाहिये, यह दिखानेके लिये कहा है। सब देवताओंमें प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहारमें नियुक्त हैं; किंतु वे भी भूत और इन्द्रिय आदिके समान परमेश्वरसे उत्पन्न होते हैं। सब कारणोंके कारण शिवजी कदापि उत्पत्ति, विनाश आदि विकारोंको प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार सब देवताओंसे शिवजीकी विशिष्टताका निश्चय कर, उपपत्तिपूर्वक—ये सबके ध्येय हैं, ऐसा उपसंहार किया है।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।

हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥
(श्वे० ४ । १२)

'जो देवताओंकी उत्पत्ति करनेवाला है, ऐश्वर्य देनेवाला है, जगत्में सबसे अधिक (श्रेष्ठ) है उस महर्षि रुद्रने पैदा होते हुए हिरण्यगर्भको देखा, वह हमको अच्छी बुद्धिसे युक्त करे।'

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥
(श्वे० ४ । १८)

'सृष्टिके आदिकालमें जब केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था; न दिन था न रात्रि थी, न सत् (कारण) था न असत् (कार्य) था, केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे। वही अक्षर हैं, वही सबके जनक परमेश्वर-का प्रार्थनीय स्वरूप हैं, उन्हींसे शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है।'

इत्यादि अनेक उपनिषद्-खण्डोंसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर अनादि हैं, अनन्त हैं, सबके कारण हैं, परम उपास्य हैं, आनन्दमय हैं, सच्चित् हैं, उनके बराबर दूसरा कोई है ही नहीं। उन्होंने सबसे प्रथम उत्पन्न हुए जीव हिरण्यगर्भको पैदा होते देखा। वे देश तथा कालके परिच्छेदसे शून्य हैं।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्को देखनेसे ज्ञात होता है कि वह आदिसे लेकर अन्ततक सारा-का-सारा शिवपरक ही है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।
(श्वे० ३ । २)

'केवल एक रुद्र ही तो हैं, इसलिये ब्रह्मवादीलोग दूसरेके मुखका अवलोकन नहीं करते थे—

विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
(श्वे० ३ । ४)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥
(श्वे० ६ । ७)

'जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे भी उत्कृष्ट, इन्द्र आदि देवताओंके भी देवता, जगत्के पति हिरण्यगर्भ आदिके भी अधिपति, पर-अक्षरसे भी पर, भुवनोंके परमेश्वर देवको हम जानते हैं।'

मायिनं तु महेश्वरम्।

—इत्यादि अनेक वचन उपर्युक्त कथनका समर्थन करते हैं। श्वेताश्वतरकी भाँति अथर्वशिर-उपनिषद् भी पूर्णतया शिवपरक ही है।

यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतम्, यद्वैद्युतं तत् परं ब्रह्म, यत् परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः।
(अथर्वशिर० ३)

—इत्यादिसे शिवजीकी ज्योतिःस्वरूपता, अद्वितीयता, परब्रह्मता, परात्परताका स्पष्ट वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरके **'तमेव विदित्वातिमृत्यु-मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** आदि अनेक मन्त्र-खण्डोंके अविकलरूपसे मिलने तथा **'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्'** आदि कितने ही मन्त्रोंका अर्थसाम्य होनेसे पुराणपुरुषके विराट्-रूपका प्रतिपादन करनेवाला पुरुषसूक्त भी शिवपरक ही है। रुद्रपरक होनेके कारण ही रुद्राभिषेकमें उसे स्थान मिला है। लिङ्गपुराणमें शिवजीकी पूजाकी विधिमें कहा गया है—

ज्येष्ठसाम्नां त्रयेणैव तथा देवव्रतैरपि।
रथन्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥

'तीन ज्येष्ठसाम (सामके भेद), तीन देवव्रत, पुण्य-रथन्तर (सामभेद) तथा पुण्यपुरुषसूक्तसे शिवजीका अभिषेक करे।' इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुषसूक्त शिवपरक ही है। इसके अतिरिक्त लिङ्गपुराणमें, पुरुषसूक्तमें

प्रतिपादित पुराणपुरुषकी महिमा शिवजीकी ही महिमा है, शिवजी ही पुराणपुरुष हैं, यह स्पष्टतया कहा गया है—

द्यौर्मूर्धा हि विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः ।
सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रे महात्मनः ॥
वक्त्राद्वै ब्राह्मणा जाता ब्रह्मा च भगवान् विभुः ।
इन्द्रविष्णू भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ॥
वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात् पिनाकिनः ।

इत्यादि

अन्य पुराणोंमें भी शिवजीकी परात्परता, सर्वकारणताके वचनोंकी जहाँ-तहाँ भरमार है । शिवपुराणमें इसका वर्णन देखिये—

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षात् महेश्वरात् ।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ॥
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे पुनः ॥

इत्यादि

यहाँपर 'महेश्वर'पदवाच्य शिवजीको ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रका जनक और शासक स्पष्ट ही कहा गया है ।

महाभारतमें देखिये—

यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा सर्वलोकान् सनातनः ।
उपास्यते तिग्मतेजा वृतो भूतैः सहस्रशः ॥

(भीष्मपर्व)

—इत्यादि मैनाकके वर्णनके प्रकरणमें भूतपति शिवजीको सब लोकोंका स्रष्टा, सब प्राणियोंका उपास्यदेव तथा पुराणपुरुष कहा गया है ।

शान्तिपर्वमें—

ईश्वरश्चेतनः कर्त्ता पुरुषः कारणं शिवः ।
विष्णुर्ब्रह्मा शशी सूर्यः शक्रो देवाश्च सान्वयाः ॥
सृज्यते ग्रस्यते चैव तमोभूतमिदं जगत् ।
अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः ॥

—इत्यादिसे ईश्वर शिवजीको सर्वकारण एवं सर्वदेवमय बतलाया गया है और सृष्टिके पूर्व केवल उन्हींकी स्थितिका निर्देश किया गया है ।

अनुशासनपर्वमें—

स एष भगवानीशः सर्वतत्त्वादिरव्ययः ।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥
सोऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥
युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रं प्रभुरथासृजत् ।

यहाँपर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा संहारकर्ता रुद्र आदिकी सृष्टि करनेवाले शिवजी सर्वादि, सर्वप्रधान, सब तत्त्वोंको जाननेवाले हैं—ऐसा स्पष्टतया उल्लेख है ।

महाभारतमें शिवजी सर्वप्रधान, देवाधिदेव, परिपूर्णतम, परात्पर एवं क्या ज्ञानमें, क्या दानमें, क्या सम्मानमें सबसे अधिक हैं—इस बातकी द्योतक अनेकानेक आख्यायिकाएँ हैं ।

जाम्बवतीके अत्यन्त अनुनय-विनय करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण उसकी पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना करनेको कैलासपर गये । ऋषिप्रवर उपमन्युके मुखारविन्दसे उनकी अतुल महिमाको सुनकर अति मुग्ध हुए और ऋषिके उपदेशसे विधिपूर्वक भगवान् शिवजीकी आराधनामें संलग्न हुए । एक मासतक फल खाकर, दूसरे मासमें पानी पीकर और तीन मास केवल वायुका भक्षण करके, ऊपरको हाथ उठाये, एक पैरसे खड़े रहे । उनकी इस उग्र तपस्यासे भगवान् प्रसन्न हुए । शिवजीने जगदम्बा पार्वतीसमेत उनको दर्शन देकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये । उस समय उनके चारों ओर सभी देवगण वेदमन्त्रोंसे उनका जयजयकार मना रहे थे । श्रीकृष्ण भगवान्ने—

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ॥
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ।
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ॥

(महा० अनु० ४५ । ३९६-९७, ४०७)

—इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की । और उनके साक्षात्कारसे अपनेको कृतकृत्य माना । द्रोणपर्वमें अभिमन्युके शोकसे कातर अर्जुनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण कराने तथा पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिके लिये अर्जुनको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण कैलासमें देवाधिदेव महादेवके समीप गये और—

नमो बिश्वस्य पतये महतां पतये नमः।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजभृत्यवे॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्ध्यतां नो वरः प्रभो॥
(महा० द्रोण० ८० । ६३-६४)

इत्यादि अनेक प्रकारकी स्तुतिसे उन्हें प्रसन्न कर कृतकृत्य हुए। इस प्रकारकी अनेक गाथाएँ हैं। कहाँतक कहें, श्रीकृष्णभगवान्‌का प्रधान अस्त्र सुदर्शन भी शिवजीका प्रसादरूप ही है। यह गाथा शिवपुराण आदिमें विस्तारसे कही गयी है। किसी समय दैत्य बड़े बलवान् हो गये थे। उन्होंने देवताओंको बड़ा कष्ट दिया। देवताओंने विष्णुभगवान्‌की शरण ली। विष्णुभगवान्‌ने उन्हें आश्वासन देकर देवदेव शिवजीकी बड़ी आराधना की। अन्तमें नियम किया कि भगवान् शिवजीके सहस्रनामका पाठ किया जाय और प्रत्येक नामपर भगवान्‌को मानसरोवरमें पैदा हुए सुन्दर कमल चढ़ाये जायँ। इस प्रकार स्तुति करनेसे भगवान् शिव अवश्य प्रसन्न होंगे। विष्णुकी दृढ़भक्तिको जाननेके लिये शिवजीने एक दिन चढ़ानेके लिये प्रस्तुत हजार कमलोंमेंसे एक कमल उठा लिया। जब विष्णुको ज्ञात हुआ कि एक कमल कम है, तो उन्होंने सारी पृथ्वी खोज डाली, किंतु उन्हें कमल नहीं मिला। तब अन्तमें उन्होंने अपनी आँख कमलके बदलेमें चढ़ा दी। भगवान् शिव दृढ़भक्त जानकर विष्णुपर रीझ गये और साक्षात् दर्शन देकर बोले—'हे हरे! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, तुम मेरे दृढ़भक्त हो; जो इच्छा हो, माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

प्रसन्नवदन विष्णुने हाथ जोड़कर कहा—'आप अन्तर्यामी हैं, सबके अभिलाषको जानते हैं। यद्यपि आपसे कुछ छिपा नहीं है, तथापि आपके आज्ञानुसार कहता हूँ—हे देवदेव! दैत्योंने सारे संसारको पीड़ित कर रक्खा है। उनका संहार करनेमें मेरे अस्त्र-शस्त्र समर्थ नहीं हैं। मैं क्या करूँ? आपको छोड़ मेरा कोई दूसरा आसरा नहीं है।' यह सुनकर भगवान् देवाधिदेव शिवने तेजःपुञ्जरूप अपना सुदर्शनचक्र विष्णुके अर्पण कर दिया। उसे पाकर उन्होंने अनायास दैत्योंको मार डाला और देवोंकी रक्षा की, इत्यादि।

हरिवंशमें शिवजीकी स्तुति करते हुए श्रीकृष्ण-भगवान्‌ने कहा है—

अहं ब्रह्मा कपिलोऽथाप्यनन्तः
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता
एवं सर्वेश कारणात्मा त्वमीड्यः॥

इस वचनसे भी भगवान् शिवकी सर्वदेवमयता, सबका आधिपत्य, देवाधिदेवता, सर्वकारणता और परात्परता स्पष्ट झलकती है।

वायुसंहितामें शिवजीका उपक्रम करके कहा है—

सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमाद् द्यौ समवर्तत।
धरा वह्निश्च सूर्यश्च वज्रपाणिः शचीपतिः॥
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत्।

इससे भी स्पष्टतया प्रतीत होता है कि पुरुषसूक्तमें उक्त महाविराट् पुराणपुरुष शिवजी ही हैं। वही जगत्‌के मूल हैं। उन्हींसे चराचर जगत्‌की सृष्टि हुई है।

पराशरपुराणके निम्नलिखित वचनोंसे भलीभाँति विदित होता है कि श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणोंमें जहाँ कहीं अन्यान्य देवताओंको जगत्‌का कारण बतलाया गया है—उसका पर्यवसान शंकरजीमें ही है। उसमें स्पष्ट कहा गया है—साम्बशिव ही सबके कारण हैं। सत्य, ज्ञान, अनन्त वही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके अधीन हैं, उनकी आज्ञा तथा कृपा बिना कुछ नहीं कर सकते।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
न विष्णुर्न विरञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान्॥
श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम।
शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा ब्रुवन्ति हि॥
इत्यादि

परमेश्वर सबसे परे हैं, यह बात स्मृतिमें भी डिण्डिम-घोषसे स्पष्ट कही गयी है—

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहंकारः अहंकारान्महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषाद् भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥
प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
ईश्वरान्न परं किञ्चित्............॥

विद्वान् लोग कहते हैं कि सारी इन्द्रियोंसे मन पर है, मनसे अहंकार पर है, अहंकारसे महत्तत्त्व पर है, महत्तत्त्वसे प्रकृति पर है, प्रकृतिसे पुरुष पर है, पुरुषसे भगवान् प्राण श्रेष्ठ है, प्राणका ही यह सारा जगत् है। प्राणसे व्योम परतर है, ज्योतिःस्वरूप ईश्वर (शिव) व्योमसे भी परे है; ईश्वरसे कुछ भी पर नहीं है—वह परात्पर है। श्रुति भी कहती है—

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्

'जिससे परे और कुछ भी नहीं है।'

पूर्व-उद्धृत श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासके वचनोंपर ध्यान देते हुए किसीको भी शिवजीके देवाधिदेव, सर्वकारण, परात्पर, परमोपास्य, अनादि, अनन्त, परमैश्वर्यशाली, सबके शोक-संतापको हरनेवाले ज्योतिरूप होनेमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता। किंतु अनेक स्थलोंमें त्र्यक्ष, शूलपाणि, रुद्र, नीललोहित, महेश आदि नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें कहींपर विष्णुभगवान्से उत्पन्न और कहींपर ब्रह्मासे उत्पन्न माना गया है। यहाँपर लोगोंको संदेह हो जाता है कि बात क्या है, कहींपर उसी नामवाले व्यक्तिकी ऐसी महिमा गायी गयी है और कहींपर उन्हें जन्म तथा संहारका कर्तामात्र माना गया है ? जैसे—

तस्य ललाटात् त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत।

अर्थात् 'विष्णुके ललाटसे शूलको हाथमें लिये हुए एक त्रिनेत्र पुरुष पैदा हुए।'

एतौ द्वौ पुरुषश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ मम।

अर्थात् 'ये दो पुरुषश्रेष्ठ (ब्रह्मा और रुद्र) मेरे (विष्णुके) प्रसाद और क्रोधसे पैदा हुए हैं।'

प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः।

अर्थात् 'ब्रह्माकी गोदमें कुमार नीललोहित (शिव) पैदा हुए।'

इत्यादि श्रुति और स्मृतिमें नारायण (विष्णु) तथा ब्रह्मासे जो उनकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है, वह अन्यान्य कल्पोंमें संहार-रुद्ररूपसे नारायणसे उनके आविर्भावमात्रका कथन है। उसका कारण भी भगवान् परात्पर शिवका वरदान ही है। जैसे कूर्मपुराणमें उन्होंने कहा है—

अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पान्ते घोररूपधृक्।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः॥

इत्यादि।

ब्रह्मासे आविर्भूत होनेमें भी कारण भगवान्का अनुग्रह ही है। वायुपुराणमें कहा है—

निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः।
पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽनुजः॥

इत्यादि।

महाभारतमें भी कहा है—

अनादिनिधनो देवश्चैतन्यादिसमन्वितः।
ज्ञानानि च वशे यस्य तारकादीन्यशेषतः॥
अणिमादिगुणोपेतमैश्वर्यं न च कृत्रिमम्।
सृष्ट्यर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्थितः प्रभुः॥

अर्थात् 'अनादि, अनन्त एवं चैतन्य आदिसे युक्त देव (परमशिव), जिनके वशमें तारक आदि समस्त ज्ञान हैं और जिनका अणिमा आदिसे युक्त ऐश्वर्य कृत्रिम नहीं है, वे प्रभु (परमशिव) सृष्टिके लिये ब्रह्माके ललाटसे पुत्ररूपसे उदित हुए।' ऐसा ही वर्णन शिवपुराणमें है।

भगवान् परात्पर शिव कितने दयालु हैं कि परम उत्कृष्ट होते हुए भी अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये स्वेच्छासे उनके नियम्य बन जाते हैं। महान् लोगोंका यह स्वभाव ही है, अपनी मान-मर्यादाको कम करके भी अपने आश्रितकी मान-मर्यादाको बढ़ाना।

परम पुरुषार्थकी इच्छा करनेवाले जनोंको परमशिवकी उपासना अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि उनके समान दूसरा कोई नहीं है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(महा० अनु० ४६। ११)

श्रीशिवाष्टक

आदि अनादि अनंत अखंड अभेद अखेद सुबेद बतावैं।
अलख अगोचर रूप महेस कौ जोगि-जती-मुनि ध्यान न पावैं॥
आगम-निगम-पुरान सबै इतिहास सदा जिनके गुन गावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ १॥

सृजन-सुपालन-लय-लीला हित जो विधि-हरि-हर रूप बनावैं।
एकहि आप बिचित्र अनेक सुवेष बनाइकैं लीला रचावैं॥
सुंदर सृष्टि सुपालन करि जग पुनि बन काल जु खाय पचावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ २॥

अगुन अनीह अनामय अज अविकार सहज निज रूप धरावैं।
परम सुरम्य बसन-आभूषन सजि मुनि-मोहन रूप करावैं॥
ललित ललाट बाल बिधु विलसै रतन-हार उर पै लहरावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ३॥

अंग विभूति रमाय मसानकी विषमय भुजगनि कौं लपटावैं।
नर-कपाल कर, मुंडमाल गल, भालु-चरम सब अंग उढ़ावैं॥
घोर दिगंबर, लोचन तीन भयानक देखि कैं सब थर्रावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ४॥

सुनतहि दीन की दीन पुकार दयानिधि आप उबारन धावैं।
पहुँच तहाँ अविलंब सुदारुन मृत्युको मर्म बिदारि भगावैं॥
मुनि मृकंडु-सुत की गाथा सुचि अजहुँ बिज्ञजन गाइ सुनावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ५॥

चाउर चारि जो फूल धतूरके, बेल के पात औ पानि चढ़ावैं।
गाल बजाय कै बोल जो 'हरहर महादेव' धुनि जोर लगावैं॥
तिनहि महाफल देयँ सदासिव सहजहि भुक्ति-मुक्ति सो पावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ६॥

बिनसि दोष दुख दुरित दैन्य दारिद्र्य नित्य सुख-सांति मिलावैं।
आसुतोष हर पाप-ताप सब निरमल बुद्धि-चित्त बकसावैं॥
असरन-सरन काटि भवबंधन भव निज भवन भव्य बुलवावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ७॥

औढरदानि, उदार अपार जु नैकु-सी सेवा तें ढुरि जावैं।
दमन असांति, समन सब संकट, बिरद बिचार जनहिं अपनावैं॥
ऐसे कृपालु कृपामय देव के क्यों न सरन अबहीं चलि जावैं।
बड़भागी नरनारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ८॥

श्रीशिव-तत्त्व

(लेखक—स्व० पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न)

'कल्याण' सम्पादकने मुझे कुछ लिख देनेका अनुरोध किया। मुझे 'शिवतत्त्व' अत्यन्त प्रिय है। अतः मैं लोभ-संवरण न कर सका। इस प्रकारके अमृतमय तत्त्वके आस्वादनकी स्पृहाका परिहार न कर सका। मैं समझता हूँ कि यह स्पृहा, यह लोभ पङ्गुके गिरिलङ्घनकी कामनासे भी अधिक असम्भव है।

यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।

वेद भी जिसके तत्त्वका निरूपण करनेमें चकित है, मैं विषयासक्त मूढ़ मनुष्य उसीके तत्त्वके निरूपण करनेके लिये लेखनी हाथमें लेता हूँ। यह सत्य ही मेरी धृष्टता है, जानता हूँ यह अमार्जनीय (अक्षन्तव्य) अपराध है। लेखनी आगे चलती नहीं है, हृदय थर-थर काँप रहा है। भय और उद्वेगसे नहीं-नहीं उल्लास और आनन्दसे भी।

हे देवाधिदेव करुणानिधान! तुम अपने इस दीन दासके ऊपर एक बार प्रसन्न हो जाओ।

> भवदुपगमशून्ये मन्मनोदुर्गमध्ये
> निवसति भयहीनः कामवैरिन् रिपुस्ते।
> स यदि तव विजेयस्तूर्णमागच्छ शम्भो
> नृपतिरधिमृगव्यं किं न कान्तारमेति॥

> शङ्कर आमार मनो दुर्गमाझे तोमार प्रवेश नाई।
> तव रिपु काम हये निर्भय एखाने रयेछे ताई॥
> ताहाके जिनिते यदि थाके साध एस हेथा शीघ्रगति।
> श्वापदसंकुल वने जाय नाकि मृगयाय नरपति॥

'हे शंकर! मेरे मनके किलेमें तुम्हारा प्रवेश नहीं है, इसीसे तुम्हारा शत्रु काम निर्भय होकर वहाँ बस रहा है। शम्भो! यदि उसे जीतनेकी इच्छा हो तो यहाँ तुरंत चले आओ। क्या शिकारके लिये राजा पशुओंसे भरे जंगलमें नहीं जाता?'

हे शिव! तुम्हारे प्रसादरूप पवित्र स्पर्शमणिकी प्रभासे मेरी हृदय-गुहा आलोकित हो, जिससे मैं उस आलोकमें तुम्हारे दुर्ज्ञेय तत्त्वको क्षणमात्रके लिये भी अणुमात्र अवलोकनकर कृतार्थ हो जाऊँ। हे महेश्वर! 'महाकवि कहते हैं—'महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः'। महान् ईश्वर परमेश्वर तुम्हीं हो। परमेश्वरका तत्त्व ही तुम्हारा तत्त्व है।

इतने बड़े विशाल भूमण्डलका मानचित्र कितना छोटा होता है। घर-घरमें भूमण्डलके करोड़वें भागके एक-एक अंशमें वही मानचित्र, लाखोंकी संख्यामें रहते हैं। एक-एक क्षुद्र मानचित्रमें समस्त भूमण्डल होता है। तुम सर्वव्यापी हो, तुम्हारी साकार लीला भी तुम्हारे ही सुगम्भीर असीम परमतत्त्वका मानचित्र है। लाखों भक्तोंके हृदयमें वही मानचित्र अवस्थित रहता है। तुम्हारी स्वच्छ शुभ्र कान्ति निर्गुण परमेश्वरके स्वाभाविक निर्मलत्वकी प्रतिच्छाया है। निराकार परमेश्वर-स्वरूपमें तुम्हीं निरावरण हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम दिगम्बर हो। परमेश्वर-रूपमें तुम्हीं पञ्च-ब्रह्मके प्रवर्तक हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम पञ्चानन हो। परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इसीसे साकार-लीलामें तुम त्रिनयन हो। परमेश्वर-रूपमें तुम भय और अभय दोनोंके हेतु हो, इसीसे साकारलीलामें विषधर और सुधाकर तुम्हारे भूषण हैं। परमेश्वर-रूपमें सर्वातिशायिनी शक्ति तुमसे अलग नहीं रहती, इसीसे साकार-लीलामें सर्वातिशायिनी भवानी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है। जो 'शान्तं शिवमद्वैतम्' दुरवगाह तत्त्व है, उसीको अपने लीलाविग्रहमें चित्रित करके तुम जगत्का कल्याण करते हो। इस विषयके प्रमाण हैं—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (तैत्ति० व० ३)
सर्वव्यापी स भगवान् शिवः। (श्वेता०)

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।
आनन्दं ब्रह्म । (तैत्ति०)
ईशावास्यमिदꣳसर्वम् । (ईश०)
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
शान्तं शिवमद्वैतम् । (तैत्ति०)

इत्यादि श्रुतियाँ तथा इनके व्याख्यास्वरूप पुराण-वचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

यतः सर्वं समुत्पन्नं येनैव पाल्यते हि तत् ।
यस्मिंश्च लीयते सर्वं येन सर्वमिदं ततम् ॥
तदेव शिवरूपं हि प्रोच्यते हि मुनीश्वराः ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च चिदानन्द उदाहृतः ॥
निर्गुणो निरुपाधिश्च निरञ्जनोऽव्ययस्तथा ॥
न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नील एव च ।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञितम् ॥
(शिवपुराण)

अर्थात् जिनसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, जो इस समस्त विश्वरूपमें व्याप्त हैं, हे मुनिवर ! वे (वेदमें) शिवस्वरूपसे कथित हुए हैं । वही सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं; वही अनन्त हैं, असीम चिदानन्द हैं । वे निर्गुण, निरुपाधि, निरञ्जन और अव्यय हैं । वे रक्त, पीत, नील, श्वेतवर्ण नहीं हैं । वे तो मन और वाणीकी पहुँचके परे हैं । वही ब्रह्म पहले 'शिव' नामसे कहे गये हैं ।

उभयोर्वादनाशार्थं यद्रूपं दर्शितं पुरा ।
महादेवेति विख्यातं शिवाच्च निर्गुणादिह ॥
तेन चोक्तं ह्यहं रुद्रो भविष्यामि कपोलतः ।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत् ।
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः ॥
(शिवपुराण)

निर्गुण निराकार शिवसे एक अद्भुत रूप उत्पन्न होता है । ब्रह्मा और विष्णुके विवादको नष्ट करनेके लिये ही उस रूपका प्रदर्शन होता है । वह महादेव नामसे विख्यात है । उनकी स्वमुख-विनिःसृत वाणी है—'मैं रुद्र हूँगा ।' संसारके प्रति अनुग्रहशील शिवने रूपहीन होते हुए भी सबके ध्येय होनेके लिये रूप धारण किया । भक्तवत्सल वे रूपधारी रुद्र भी साक्षात् शिव हैं । उन रूपहीन और रूपवान्में कोई भेद नहीं है । यजुर्वेद-माध्यन्दिनीय शाखाके सोलहवें अध्यायमें सर्वस्वरूप एक जगत्पति रुद्रका तत्त्व उपदिष्ट हुआ है । उसका नाम प्रथम मन्त्रमें रुद्र, द्वितीय और तृतीय मन्त्रमें गिरिशन्त, गिरित्र; चालीसवें मन्त्रमें पशुपति, उग्र, भीम; ४१ वें मन्त्रमें शंकर, शिव; ४७वें मन्त्रमें नील, लोहित; ४८ वें मन्त्रमें कपर्दी; ४९ वें मन्त्रमें मृड वर्णित हुआ है । ये सब नाम पुराण-तन्त्रादिमें भी प्रसिद्ध हैं । ५१ वें मन्त्रमें यह प्रार्थना है—

कृत्तिं वसानः पिनाकं बिभ्रदा गहि ।

अर्थात् व्याघ्रचर्म पहनकर और पिनाक धारण करके आओ ।

इन एक साकार शिवकी ही जगत्की नाना वस्तुओं, प्राणियों तथा जातियोंके रूपमें वन्दना की गयी है । ये ही जगत्पतिके नामसे पुकारे जाते हैं । निराकार शिव तथा साकार शिव एक ही हैं, यह बात इस अध्यायमें विशद-रूपसे वर्णित है ।

ऋग्वेदके ७वें मण्डलके ५१ वें सूत्रमें इनका 'त्र्यम्बक' नाम आया है । विदित होता है कि मृत्युके मोचनार्थ तथा अमृतमें स्थितिके लिये इनका यजन ऋषियों-ने किया है ।

यह ऋग्वेदका सुप्रसिद्ध मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

रुद्र-रचित बहुतेरे मन्त्र ऋग्वेदादि संहिताओंमें भरे पड़े हैं । श्वेताश्वतर-उपनिषद्के तृतीय अध्यायमें इसी एक शिवतत्त्वका उपदेश किया गया है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।

पुनश्च—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥

एक अद्वितीय रुद्र अपने शक्तिसमूहके द्वारा सब लोकोंके ईश्वर हैं । सर्वज्ञ रुद्र देवताओंके स्रष्टा और पालक हैं । उन्होंने पहले ब्रह्माकी सृष्टि की थी । उनके मुख, मस्तक और ग्रीवा असंख्य हैं । वे सब प्राणियोंकी हृदयगुहामें अवस्थित हैं । वे ही सर्वव्यापी भगवान् शिव हैं । इसी प्रसङ्गमें उपनिषद्ने कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

—इत्यादि ।

उनके हाथ नहीं, परंतु वे ग्रहण करनेमें समर्थ हैं । चरण नहीं, किंतु द्रुतगामी हैं; चक्षु नहीं, परंतु सर्वद्रष्टा हैं । कर्ण नहीं हैं तथापि वह श्रवणशक्तियुक्त हैं । इन समस्त श्रुतिवाक्योंमें शिवके निर्गुण, सगुण एवं विश्वरूपके भाव प्रदर्शित हुए हैं । लीलाविग्रहके अप्राकृत कर, चरण, नयन, कर्णादिको भी भक्तगण देखते हैं । कैवल्योपनिषद्में लिखा है—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

वे आदि, मध्य और अन्तहीन हैं, वे रूपहीन हैं, वे एक हैं—अद्वितीय हैं, चिदानन्द हैं, वे अद्भुत हैं, देवेश हैं, वे ही उमासहचर त्रिलोचन नीलकण्ठ परमेश्वर हैं—अर्थात् जो निराकार हैं, वही साकार हैं । वे साकार रूपवान् होकर भुवनमोहन हैं, इसी कारण वे अद्भुत हैं । इसी भुवनमोहन रूपकी कथा शिवपुराणके अनेकों प्रसङ्गोंमें वर्णित हुई है । वही एक अद्वितीय शिव विभूतिरूपमें असंख्य हैं । शुक्ल यजुर्वेद-संहिताके सोलहवें अध्यायमें इसका प्रमाण है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।
(मन्त्र ५४)

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ॥
(मन्त्र ५५)

शर्वाः—(मन्त्र ५७)

ये भूतानामधिपतयः······कपर्दिनः'—(मन्त्र ५९)

रुद्रोंकी गिनती नहीं की जा सकती । ये सभी नीलकण्ठ, भूतोंके अधिपति, कपर्दी संहार-शक्तिमान्, शर्व, भूतल, आकाश सर्वत्र ही रहते हैं । एकादश रुद्रकी कथा बृहदारण्यक, महाभारत तथा पुराणादिमें वर्णित है । रुद्रगणोंका उल्लेख ऋग्वेदादिमें भी है ।

संख्याभेदसे जो विरोध या असामञ्जस्य जान पड़ता है, इसकी मीमांसा बृहदारण्यक उपनिषद्में देवता-संख्या-विचारके प्रसङ्गमें हुई है । जनककी सभामें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्न और उत्तरमें निश्चित हुआ है कि देवता त्रयस्त्रिंशत् सहस्र त्रयस्त्रिंशत् शत (३३३३००) हैं, तत्पश्चात् पुनः प्रश्नोत्तरमें कहा गया है कि देवताओंकी संख्या तैंतीस ही है । इस संख्याविरोधका परिहार इस प्रकार हुआ है—**'महिमानमेवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्येव देवाः'** अर्थात् प्रथमोक्त ३३३३०० देवता इन्हीं ३३ देवताओंकी विभूतिमात्र हैं, मूलतः ३३ ही देवता हैं । इन्हींमें ११ रुद्र हैं । इन एकादश रुद्रोंकी विभूति १११९०० देवताओंमें है । सबके अन्तमें यह ३३ देवता एक ही प्राणदेवताकी विभूति हैं । वे एक प्राण-देवता ही ब्रह्म हैं । श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषदोंमें वही शिव आदि नामोंसे कहे गये हैं ।

महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण सबमें भगवान् शिवका तत्त्व वर्णित है । उन सबमें उनके निराकार और साकार दोनों ही भावोंका निर्देश पाया जाता है । उदाहरणार्थ महाभारत और श्रीमद्भागवतसे यहाँ किञ्चित्

प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। महाभारतके अनुशासन-पर्वके १४ वें अध्यायमें युधिष्ठिरके प्रश्नका उत्तर देते हुए भीष्मपितामह कहते हैं—

> अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
> यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते॥
> ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
> ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते॥
> प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।
> चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
> अक्षरं ब्रह्म परमं असच्च सदसच्च यः।
> को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्॥
> ऋते नारायणात्पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात्।
> रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना॥
> तं प्रसाद्य महादेवं बदर्यां किल भारत।
> आपत् प्रियतरत्वं च सुवर्णाक्षान्महेश्वरात्॥
> पूर्णं वर्षसहस्रं तु तप्तवानेष माधवः।
> प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम्॥
> युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः।

'उन सर्वबुद्धिके अधिपति श्रीमहादेवजीके गुण-वर्णनमें मैं असमर्थ हूँ। वे सर्वव्यापी होते हुए भी सर्वत्र अदृश्य हैं—वे ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि देवताओंके स्रष्टा और प्रभु हैं। ब्रह्मादि देवोंसे पिशाचपर्यन्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं; प्रकृति और पुरुषके अतीतरूप योगमें स्थित योगतत्त्वदर्शी ऋषिगण जिनका ध्यान करते हैं, जो अक्षर परब्रह्म हैं, जो असत् और सदसत् हैं, उन परमेश्वर भवको मेरे समान मनुष्य क्या जान सकता है! केवल एक शङ्ख-चक्र-गदाके धारण करनेवाले नारायण श्रीकृष्ण उनको जानते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण रुद्रभक्तिके प्रभावसे ही जगत्-व्यापक हो रहे हैं। उन्होंने बदरिकाश्रममें महादेवको प्रसन्नकर उनसे प्रियतरत्व-रूप वर प्राप्त किया है। पूर्ण सहस्र वर्ष अर्थात् सहस्र दिन उन्होंने तपस्या की थी। उद्देश्य केवल चराचर-गुरु शिवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति थी। श्रीकृष्णने नाना अवतारोंमें युग-युगमें महेश्वरको तपस्याद्वारा तुष्ट किया है।'

इसके पश्चात् भीष्मकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण महेश्वरके गुण-कीर्तनमें सम्मत हो पहले ही कहते हैं—

> न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः।
> हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः॥
> न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान्ने महादेवजीकी जो आराधना की थी उसका पूरा वर्णन किया। भगवान् महादेव प्रसन्न होकर श्रीकृष्णके सम्मुख आ प्रकट हुए थे, उस अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

> ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा।
> ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च॥
> त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः।
> त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः॥
> ततोऽहमब्रवं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः।
> नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
> ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
> तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
> त्वामेव स यं च वदन्ति सन्तः॥
> त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

इत्यादि।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि "तेजःपुञ्जकलेवर महादेव मेरे सम्मुख प्रकट हुए। मैं उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, उनके तेजसे मेरी दृष्टि-शक्ति प्रतिहत हो गयी। मेरी उस अवस्थाको देखकर देवदेव श्रीमहादेव मुझसे बोले—'हे कृष्ण! मेरी ओर देखो और अपनी मनःकामना प्रकट करो। तुमने मेरी सैकड़ों-सहस्रों बार आराधना की है। तीनों लोकमें तुम्हारे समान प्रिय मेरा कोई नहीं है।' इसके पश्चात् ब्रह्मादि देवताओंके वन्द्य श्रीमहादेवसे मैंने कहा—'हे शाश्वत पुरुष! सर्वकारण! आपको मेरा प्रणाम हो। ऋषिगण आपको ब्रह्माधिपति (ब्रह्माके भी प्रभु या वेदके अधिस्वामी) कहते हैं। और भी आपको तपःस्वरूप, सत्त्व, रज एवं तमोगुणस्वरूप

कहते हैं। आप ही सत्य हैं। (यहाँ सत्य शब्दका परब्रह्म अर्थ श्रुतिसम्मत है।) आप ही इस चराचर समस्त जगत्के सृष्टिकर्ता हैं।"

इस प्रकार महाभारतमें अनेक स्थानोंमें शिव-तत्त्वकी आलोचना की गयी है। श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके सप्तम अध्यायमें है—

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥

इसी प्रकार इसका पूर्व श्लोक भी है—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यथा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥

'तुम निगूढ़ परब्रह्म हो, सदसत् समस्त वस्तुएँ तुम्हींसे उत्पन्न होती हैं। तुम ईश्वर हो, नाना प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा तुम जगत्स्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हो। तुम अपनी गुणमयी शक्तिकी सहायतासे ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नाम धारणकर सृष्टि, स्थिति और संहार करते हो। तुम स्वप्रकाश भूमास्वरूप हो।'

इस प्रकार साकार, निराकार एवं विश्वरूपकी आलोचना करनेके बाद स्तुतिकर्त्ता प्रजापतिगण कहते हैं—

यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते।

हे देव! शिव-नामसे अभिहित स्वयंज्योति परमात्म-तत्त्व ही तुम्हारी नैसर्गिक अवस्था है।'

इसके पश्चात् कहते हैं—

न ते गिरित्राखिललोकपाल-
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च
सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम्॥

'हे गिरित्र! तुम्हारी परम ज्योति ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि निखिल लोकपालोंको अप्राप्य है। उसमें रज, तम और सत्वगुणका सम्बन्ध नहीं है एवं वही द्वैतहीन ब्रह्म है।'

अब और अधिक अवतरण देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं रह गयी है। सभी शास्त्रोंमें शिव-तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। न्यायशास्त्रकार महर्षि गौतमने वादयुद्धमें शिवको संतुष्ट करके उनकी करुणासे सिद्धि प्राप्त की थी। महर्षि कणाद शिवकी कृपासे ही वैशेषिक दर्शनके प्रणेता बने हैं। तण्डि, उपमन्यु, दधीचि, मार्कण्डेय, ऋभु, दुर्वासा प्रभृति ऋषिगण शिव-तत्त्व-सुधाके आनन्द-सिन्धुमें सदा निमग्न रहते थे। एक ऐसा समय था जब समस्त पृथिवी, यही क्यों समस्त जगत् (अखिल विश्व), ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त सभी शिवकी आराधनामें रत थे। आज जगत्में उनकी आराधना ह्रासको प्राप्त हो रही है।

अब जगद्व्यापी शिवाराधनाके भेदोंका उल्लेख किया जाता है। शिवकी आराधना प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—वैदिक और अवैदिक। देवता, ऋषि तथा वर्णाश्रम-धर्मानुयायी मानवगण शिवकी वैदिक आराधना करते हैं। इस आराधनाकी तीन पद्धतियाँ हैं—कर्ममार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। रुद्रयाग प्रभृति यज्ञ, स्मार्त, पौराणिक एवं वेदानुमत तन्त्र-सम्मत शिव-पूजा कर्ममार्गके अन्तर्गत है। श्वेताश्वतर-उपनिषद्में कथित—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥

—योग-साधना योग-मार्गकी है। तथा—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

—इत्यादि उपनिषदोंमें प्रदर्शित पद्धति ज्ञानमार्गकी है।

पद्धति-भेदसे शिव-तत्त्वका स्मरण पहले विभिन्न हो सकता है, परंतु चरमावस्थामें सभी एक तत्त्व हैं। अवैदिक उपासनाकी दृष्टिसे भी तीन प्रकारकी पद्धति शिवाराधनाकी है, परंतु उससे वर्णाश्रम-धर्मका सम्बन्ध

नहीं है। ब्राह्मणादि संज्ञा उस सम्प्रदायमें प्रचलित न होनेके कारण वे शैव-नामसे ही प्रसिद्ध हैं। ये शैव लोग नाथ-सम्प्रदाय, जङ्गम-सम्प्रदाय प्रभृति कतिपय सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। वर्णाश्रम-धर्मवर्जित वैष्णव भी होते हैं। इस प्रकारके शैव और वैष्णव प्रायः परस्पर विवाद किया करते हैं। स्मृति-शास्त्र वर्णाश्रम-धर्म-हीन लोगोंका पृथक् स्थान निर्देश करते हैं। मैंने इस निबन्धमें वैदिक उपासनाके अनुकूल ही शिवतत्त्वकी आलोचना की है। श्रीमद्भागवत, शिवपुराण प्रभृति कतिपय पुराणोंमें आया है कि रुद्र ब्रह्माके ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। कल्पभेदसे परमेश्वरकी लीला विविध प्रकारकी है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीकृष्णको परब्रह्म कहा गया है। उनके ही दक्षिणपार्श्वसे वैकुण्ठनाथ नारायणका तथा वामपार्श्वसे कैलाशपति शिवका उद्भव होता है। दोनों मतसे परब्रह्मका संज्ञाभेद होनेपर भी साकार शिव-तत्त्व मूलतः एक ही है। वैष्णवपुराणोंमें अनेक स्थानोंमें शिव विष्णुके उपासकके रूपमें कथित हुए हैं तथा शैवपुराणोंमें विष्णु शिवके उपासकरूपमें वर्णित हुए हैं। इस प्रकारके वर्णनका मूल हरि-हरकी भेद-लीला है। जान पड़ता है, यही शिव-तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्॥*

'हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही भेद होता है। नाटकमें अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परंतु वस्तुतः वह जो है सो ही रहता है।'

हे जगद्गुरु महेश्वर! एकमात्र तुम्हीं सब जीवोंके ज्ञानदाता हो, मैंने उसी ज्ञानके कणमात्रका अनुसरण कर इस दुरूह, दुर्ज्ञेय तत्त्वकी स्वल्पातिस्वल्प आलोचना की है। इसीलिये गन्धर्वराज पुष्पदन्तके पदोंका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाषामें कहता हूँ—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

तोमार महिमा सीमा ना जानिया से विषये
आलोचने यदि हय दोष।
ब्रह्मा आदि देवता ओ ताहा हते अव्याहति
नाहि लभे प्रभु आशुतोष!
तव दत्त ज्ञानमते ये याहा बलिबे ताहे
यदि नाहिं हय अपराध!
हइले ओ क्षुद्र आमि बलिते तोमार कथा
बल केन ना करिब साध॥

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर॥

हर हर भज

अचल अमल भज अनघ भचर-चर अजगव-धर हर।
अकल सकल खल-दमन शमन-यम-भय शशधर-धर॥
अचल अटल तन-विमल अतन गणधर अजगर-धर।
भव-भय-हर अघहरण अभयकर भज भव हर-हर॥

---

* हरि और हर दोनों (शब्दों) की प्रकृति (वास्तविक तत्त्व; 'हृ' धातु) एक ही है। परंतु प्रत्यय (विश्वास; 'इ' एवं 'अ' प्रत्यय) के भेदसे रूपभेद हो जाता है।

शिवलिङ्ग और काशी

(लेखक—स्व० पण्डित श्रीभवानीशङ्करजी)

श्रीगणेश

पञ्च उपास्य देवोंमें एक देव श्री आदिगणेशको महेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें सृष्टि-कार्यमें विघ्न-बाधाके प्रशमनार्थ अपने साक्षात् अंशसे प्रकट किया, इसी कारण प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्यमें प्रथम श्रीगणेशकी पूजा होती है। जब उस महेश्वर परात्पर तत्त्वने व्यक्त-रूपमें शिवमूर्ति धारण की तो उसी अनादि शैलीके अनुसार श्रीगणेश भी उनके यहाँ पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए और गणोंके (देवताओंके) अधिपति अर्थात् संचालक बने। इस भगवान् शिव-सम्बन्धी लेख लिखनेके पूर्व श्रीगणेशकी वन्दना और गुणगान करना आवश्यक है—

ॐ देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

ये गणाधिप गणेश ज्ञानके दाता हैं, इसी कारण बुद्धिद्वारा कार्य करते हैं। इनका विशाल मस्तक इनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका कार्य चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुर रूपमें प्राप्त हो तो उसके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाज-में कोई-कोई जो नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं, वे इन्हीं श्रीगणेशके कृपापात्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् थोड़े परिश्रमसे बड़ा कार्य करते हैं।

एक बार श्रीमहादेवको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमन्त्रण भेजना था। कार्तिकेयजीसे यह कार्य अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह भार दिया गया, किंतु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मन्दगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे कार्य किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींको तीन बार परिक्रमा करके सब देवताओंको वहीं निमन्त्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमन्त्रणकी जानकारी हो गयी और सब-के-सब यज्ञमें सम्मिलित हुए।

परात्पर शिव और आद्या शक्ति

सृष्टिमें जो परम परात्पर हैं वही शिव हैं। माण्डूक्योप-निषद्में शिवका यों वर्णन मिलता है—

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्य-मव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः।

जिनकी प्रज्ञा बहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रज्ञानघन नहीं हैं, प्रज्ञ नहीं हैं और अप्रज्ञ भी नहीं हैं, जो वर्णनसे अतीत हैं, दर्शनसे अतीत, व्यवहारसे अतीत, ग्रहणसे अतीत, लक्षणसे अतीत, चिन्तासे अतीत, निर्देशसे अतीत, आत्मप्रत्ययमात्र-सिद्ध, प्रपंचातीत, शान्त, शिव, अद्वैत और तुरीयपदस्थित हैं, वे ही निरुपाधिक जाननेयोग्य हैं। इनका ही नाम 'महेश्वर', 'स्वयम्भू' और 'ईशान' है। श्रुति भी कहती है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥

वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश हैं। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व हैं, जो इस विश्वके परसे भी परे हैं, उन स्वयम्भू भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेवको जाननेसे जीव आत्यन्तिकी शान्तिका अधिकारी हो जाता है।

ये सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति—मायाके अधिष्ठाता, मायी हैं। मायाके द्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है।

इस प्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाके निमित्त दो हो जाते हैं; क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत (आधार-आधेय) के हो नहीं सकती। आधेय (चैतन्य पुरुष) बिना आधार (प्रकृति, उपाधि) के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उनमें आभ्यन्तर-चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि-चैतन्य परमपुरुष परमात्माकी 'शिव' संज्ञा सृष्ट्युन्मुख होनेपर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है; क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिङ्गरूपमें पिता और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया गया है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(१४। ३)

महद्ब्रह्म (महान् प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका संचार करता हूँ और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

इसी अनादि सदाशिव-लिङ्ग और अनादि प्रकृति-योनिसे समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। इसमें आधेय बीज-प्रदाता (लिङ्ग) और आधार बीजको धारण करनेवाली (योनि) का संयोग आवश्यक है। इन दोनोंके संयोग-के बिना कुछ नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी परम भावका मनुजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥

सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृति-को निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार शिवका लिङ्ग-योनिभाव और अर्द्धनारीश्वरभाव एक ही वस्तु है। सृष्टिके बीजको देनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव जब अपनी प्रकृतिरूपा नारी (योनि) से आधार-आधेयकी भाँति संयुक्त होते हैं, तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार श्रीशिव अपनी तेजोमयी प्रकृतिको धारणकर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं, अन्यथा उनका व्यक्त होना असम्भव है। इसी कारण कहा है—

त्वया हृतं वामवपुः शरीरं त्वं शम्भोः।

अर्थात् 'हे देवि ! आपने श्रीशिवके आधे शरीर वाम भागको हरण कर लिया है, अतएव आप उनके शरीर हैं।'

यह लिङ्ग-योनि जिसका व्यवहार श्रीशिव-पूजामें होता है, प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्ति-की सूचक है। इस प्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदिसम्बन्धके भावकी द्योतक है। अतः यह परम पवित्र और मधुर भाव है। इसमें अश्लीलताका आक्षेप करना सर्वथा अज्ञान है। यह अनादि प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध परम सृष्टि-यज्ञ है जिसका परिणाम यह सुन्दर सृष्टि है। इसीसे शुद्धमैथुन, जिसका उद्देश्य

कामोपभोग नहीं बल्कि पितृऋणसे उद्धार पानेके लिये उत्पत्ति-धर्मका पालन करना है, कामाचार नहीं, परम यज्ञ है और इस प्रकार विचार करनेसे परम कर्तव्य सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे प्रत्येक जन्तुका परम पवित्र कर्तव्य है कि वह इसका उत्पत्ति-धर्मके पालनके लिये ही उचित व्यवहार करे। और इनका यज्ञार्थ—धर्मार्थ व्यवहार न करके कामोपभोगके निमित्त व्यवहार करना दुरुपयोग है और अवश्य ही पापजनक तथा दुर्गतिकारक है!

इस प्रकार शिवलिङ्गका अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करनेवाला है, क्योंकि इसीके व्यक्त होनेसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ आलय है अर्थात् यह प्राणियोंका परम कारण और निवास-स्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्', अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ वह परम कारण लिङ्ग है। लिखा भी है—

लीयमानमिदं सर्वं ब्रह्मण्येव हि लीयते।

लिङ्ग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिङ्गपुराण तथा शिवपुराणमें कहा है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुके बीच यह विवाद चल रहा था कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। इतनेमें उन्हें एक बृहत् ज्योतिर्लिङ्ग दिखलायी दिया। उसके मूल और परिमाणका पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गये और विष्णु नीचे, परंतु दोनोंमेंसे किसीको उसका पता न चला। विष्णुके स्मरण करनेपर वेद-नामके ऋषि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि प्रणवमें 'अ'कार ब्रह्मा हैं, 'उ'कार विष्णु हैं और 'म'कार श्रीशिव हैं।

'म'कार ही बीज है और वही बीज लिङ्गरूपसे सबका परम कारण है। ऊपरकी कथामें विष्णुसे ब्रह्माण्डके विष्णुसे तात्पर्य है न कि महाविष्णुसे, जो अनेक ब्रह्माण्डों-के नायक हैं तथा जिनमें और सदाशिवमें कोई भी भेद नहीं है।

शिव और मन्त्र

परमपुरुष शिव और उनकी शक्तिके सम्मेलनसे जो स्पन्दन उत्पन्न हुआ, वही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बना। इसीको शिवका ताण्डव-नृत्य कहते हैं। रसायन-विज्ञानका सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रोन (Electrons) जो पुरुषके समान आधेय (Position) हैं उनका प्रोटोन (Protons), जो प्रकृतिके समान आधेय (Negation) हैं, के साथ संघर्ष होनेसे जो स्पन्दन (Encircling motion) उत्पन्न होता है, उसीके द्वारा अणुओंकी उत्पत्ति होती है और उन अणुओंसे आकार बनते हैं।

जब सदाशिव आनन्दोन्मत्त होकर अर्थात् माँ आनन्द-मयीसे युक्त होकर नृत्य करते हैं, तब उस महानृत्यके परिणामसे इस सृष्टिके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह विश्व सदाशिवके नृत्य और नादका परिणाम है. क्योंकि नृत्यमें वह डमरू बजाते हैं। जहाँ स्पन्दन (Motion) होता है वहाँ शब्द भी होता है। इस प्रकार श्रीशिवके डमरूके शब्दसे (जो प्रकृति और पुरुषके सम्मेलनके द्वारा नादरूपमें प्रकट होता है) व्याकरणके मुख्य शब्द-सूत्रकी उत्पत्ति हुई। यह शब्द चार प्रकारके शब्दोंमें अन्तिम 'वैखरी' वाक्‌का व्यक्त रूप है। अतएव वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरमें शक्ति संनिहित है। इस शक्तिके कारण आभ्यन्तरिक षट्‌चक्रोंमें इन अक्षरोंका निवासस्थान है। इस शिवशक्तिके नादका स्थान स्वर्गके ऊपरी भागमें है जिसकी 'परा' संज्ञा है। उस पराको स्वर्गलोकमें ऋषिगण मन्त्ररूपमें देखते हैं, इसीसे उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। परंतु ये मन्त्र उस 'परा'के आध्यात्मिक रूप हैं, जो स्वर्गमें देखे और सुने जाते हैं। पश्चात् वे मन्त्रमें 'वैखरी' रूपसे प्रकट होते हैं; क्योंकि श्रीशिव उस परावाक्‌के कारण हैं जिसके द्वारा मन्त्र आदि समस्त वाक्योंकी उत्पत्ति हुई है। अतएव श्रीशिव मन्त्रशास्त्रके प्रवर्तक कहे जाते हैं। शिवपूजाके

अन्तमें जो 'बम्, बम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है वह प्रणवका ही सुलभ रूप है जो अत्यन्त प्रभावशाली है।

ऊपर सदाशिवका वर्णन हुआ। परंतु उनका व्यक्तभाव श्रीमहादेव मनुष्य रूप पिण्डाण्डका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। तात्पर्य यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँची-से-ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेव उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिव जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। वे इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञानचक्षु है जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर है, परंतु यह बिना श्रीजगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता। गायत्रीशक्ति शिवके इसी आदर्शको लेती है और अपने सृष्टि-कार्यमें इसको लक्ष्य बनाकर उसी ओर साधकोंको प्रवृत्त करती है।

आध्यात्मिक काशी

जब साधककी चित्तवृत्ति शुद्ध, शान्त और निःस्वार्थ होकर अपने अभ्यन्तरके आध्यात्मिक हृदयमें वहाँ स्थित होती है जहाँ प्रज्ञाका बीज होता है तो उसी अवस्थाको 'काशीप्राप्ति' कहते हैं। यह अवस्था परम सुषुप्तिके समान है। इसमें आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण काशीको आनन्द-वन कहते हैं। इस काशीमें महाश्मशानकी स्थिति (जहाँ शिवका वास होता है) का कारण यह है कि यहाँ शिवके तेजसे विकारोंके दग्ध होनेपर अनात्मरूप उपाधियोंसे छुटकारा मिलता है और अहंकार भी दग्ध हो जाता है। गौरीमुखका तात्पर्य यह है कि इस काशीप्राप्तिकी अवस्थामें साधक दैवी ज्योति और बोधशक्तिके सम्मुख पहुँच जाता है और ज्यों ही उसका आध्यात्मिक दिव्य चक्षु श्रीशिवके द्वारा खुलता है त्यों ही वह त्रिलोकीके पार पहुँच गौरी अर्थात् विद्या देवीको बिना आवरणके देखनेमें समर्थ हो जाता है। मणिकर्णिका प्रणवकर्णिका है और इनकी तीन कर्णिकाएँ चित्तकी तीन अवस्थाओंकी द्योतक हैं, जैसे—

(१) साधारण, जाग्रत्-अवस्था।

(२) दूर-दर्शन और दूर-श्रवणकी अवस्था।

(३) स्वर्गलोककी अवस्था।

काशी इन तीनोंके परे है जिसके लाभसे मुक्ति होती है। श्रीशिवजी तारक-मन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदयरूप काशीमें (कारण-शरीरमें) स्थित होता है और तब वह तारक-मन्त्रके प्रभावसे सदाके लिये तुरीयावस्थामें चला जाता है।

त्रिशूलका भाव है—त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे भी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधक ही यथार्थ त्रिशूलधारी है।

अन्य भाव

शिवके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्द्धमात्रासे है और इसी निमित्त उनके मस्तकको अर्द्धचन्द्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चिद्-अग्निके द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सबको दग्धकर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसे ही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गङ्गा एक बड़ा तेजःपुञ्ज है, जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्मांण्डके नायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याणके निमित्त फैलता है। इस तेजःपुञ्जको केवल महादेव धारण कर सकते हैं; क्योंकि शिव और विष्णु एक हैं। श्रीशिवकी कृपासे इस आध्यात्मिक गङ्गाका लाभ अभ्यन्तरमें—अन्तरस्थ काशीक्षेत्रमें—होता है।

शिवके पाँच मुख हैं—ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ है स्वामी। अघोर-का अर्थ है कि निन्दित कर्म करनेवाले भी श्रीशिवकी कृपासे निन्दित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं। तत्पुरुषका अर्थ है अपने आत्मामें स्थिति लाभ करना। वामदेव विकारोंके नाश करनेवाले हैं। सद्योजात बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार हैं। त्र्यम्बकका अर्थ है ब्रह्माण्डके त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंके अम्ब अर्थात् कारण। जीवात्माकी तीव्र भक्ति (सेवा) और मिलनके प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निर्हेतुक प्रेमसे शिवप्राप्ति होती है और अनुराग-मिलन होनेपर वह श्रीशिवके चरण-कमलके स्पर्शकी परम शान्तिमें पूर्णताको प्राप्त होता है।

शिव-महिमा-सूत्र

[लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)]

(१) क्रियादक्ष प्रजापति दक्षने शिव-(कल्याण) को निमन्त्रित नहीं किया, इसीलिये यज्ञ प्रध्वंस हो गया। हमारी वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ कितनी ही दक्षतापूर्ण हों, पर विश्व-कल्याण शिवके प्रतिकूल होंगी या उसका स्वागत न करेंगी तो ध्वंसकी ओर ही ले जायँगी।

(२) दक्षकी कन्या शिवकी शक्ति-बुद्धि—सती होनेपर भी सच्चिदानन्दकी अवतार-लीलाओंपर संशय करनेके कारण जलनेयोग्य समझी गयीं और हिमाचलकी पार्वती अविचल शान्तश्रद्धा हुई, जो सप्तर्षियोंके डिगाने-पर भी नहीं डिगी, तब शाश्वत स्वीकृत हुई और रामायण सुननेकी अधिकारिणी बनी। इसी प्रकार हमारी दक्ष-बुद्धि भी संशय छोड़कर शान्त, स्थिर, अचल और उज्ज्वल बनेगी—हिमाचलके घर जन्मेगी, तभी रामचरित्रके योग्य बन सकती है—अन्यथा नहीं।

(३) गणपति-वाहन मूषक और शिव-भूषण सर्प वैरी होनेपर भी समन्वय-शक्तिसे साथ-साथ रहते हैं। शिव-भूषण सर्प और सेनापति-वाहन मयूरका भी वैर, नीलकण्ठके विष और चन्द्रमौलिके अमृतमें भी वैर, भवानी-वाहन सिंह और शिव-वाहन बैलमें भी वैर, काम भस्म करके भी स्त्री रखनेमें परस्पर विरोध, शिवके तीसरे नेत्रमें प्रलयकी आग और सिर निरन्तर शीतल-धारामयी गङ्गासे ठंडा भगवान्के चरणामृतसे शान्त, यह भी परस्पर विरोध एवं पूत-भूत और दिगम्बर विभूतका भी वैर। ऐसे दक्ष-जामाता राजनीतिज्ञ होनेपर भी भोले-भाले। परंतु इस सहज परस्पर-विरोधितामें भी नित्य सहज समन्वय! धन्य! धन्य! धन्य! शिव! इसीलिये तो महाराणा प्रतापके मालिक, संस्कृति, सम्पत्ति, सत्ता, संतति आदि सब विभूतियोंसे सम्पन्न पौलस्त्यके पूज्य, भगवान् रामके ईश्वर, रामेश्वर, भगवान् परशुरामके गुरुदेव भगवान् शिवकी सदाकाल जय हो, विजय हो!

(४) ऋद्धि-सिद्धिका स्वामी, गणका पति, गणके पिता भगवान् शंकरके आशीर्वादके बिना प्रकट ही नहीं हो सकता—उन्हींके आशीर्वादसे वह खण्ड-खण्ड करनेवाले चूहोंपर सवारी करके भी राष्ट्र-गणको अखण्ड करता है। राष्ट्रको, गणको खण्ड-खण्ड करनेवाले चूहोंको वाहन बनाकर संयत करनेवाले और अखण्ड करनेवाले गण-पतिके बाप भगवान् शंकरकी सदा जय हो, विजय हो!

(५) नखसे नयनतक सब गरम रक्खो, पर सिर कभी गरम न हो। माथेमें गङ्गा रक्खो, चन्द्रमा रक्खो। तभी महादेवकी महिमा ठीक-ठीक समझमें आयेगी। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'।

(६) बम, भोलाकी जय! अशिव वेषमें शिवधाम भगवान्के चरणामृत गङ्गाको इसीलिये नित्य धारण करते हैं!

शिवताण्डव-स्तोत्र

(अनु०—प्रो० गोपालजी 'स्वर्णकिरण', एम्० ए०)

ओ पुण्यकण्ठ, गंगासे शोभित जटा-विपिन,
ओ रम्यरूप, धारे भुजंग माला महान।
डमरूकी डिम्-डिम्-डिम् ध्वनि, ताण्डव नृत्य-निरत,
ओ शंकर, प्रलयंकर, हर, दो कल्याण-दान ॥ १ ॥

घूर्मितकर जटा-कटाह गंग चल वीचि-लता,
शोभित ललाटपर वह्नि धधकती परम तृप्त।
नव बालचन्द्र धारण कर मस्तकपर ललाम,
ओ भव्यरूप, हो प्रीति चरणमें नित प्रदीप्त ॥ २ ॥

गिरितनयाके मनहर कटाक्षसे परम मुदित,
कर कृपा-दृष्टि हर लेते कठिन, भक्तके दुख।
ओ अवढरदानी, धारणकर दिक् गगन-वसन,
हो आश्रय शुभ, आनन्द-राशि, मन-विषय-प्रमुख ॥ ३ ॥

ओ जटालिप्त फणि-मणि पिंगल द्युति केसरसे
रँगकर दिग्वधुओंके मुखको, रहते हर्षित।
मदमत्त गजासुर चर्माम्बर शुभ उत्तरीय,
ओ रक्षक भूत जगतके, हो मन आनन्दित ॥ ४ ॥

ओ, मस्तक-प्रांगण-ज्वलित अग्निकी लपटोंसे,
जल गया काम, नतमस्तक सब इन्द्रादि देव।
ओ शशिशेखर, गंगासे शोभित जटाजूट,
दो धर्म-विभव, ओ महाकपाली, महादेव ॥ ५ ॥

इन्द्रादिदेवके मुकुट-माल-मकरन्द-बिन्दु,
शुभचरणोंके नीचेकी भू धूसरित रंग।
ओ सर्पराजसे बद्ध विभूषित जटाजूट,
शंकर, दो धर्मादिक पुरुषार्थ, विभव-तरंग ॥ ६ ॥

ओ, भालपट्टिकाकी वेदी प्रज्वलित ज्वाल,
बनकर होता, आहुति दे, हर्षित पंचबान।
गिरितनयाके स्तनके हित चित्रक, शिल्पकार,
ओ ओ त्रिनेत्र, हो प्रेम निरन्तर बर्द्धमान ॥ ७ ॥

नव घनसमूह दुस्तर तम-तोम अमा ग्रीवा,
शोभित गंगासे तन, भूषित गज-चर्माम्बर।
कंधेपर भवके भार धारकर तुम हर्षित,
ओ दीप्त भाल बालेन्दु, विभव बरसे झर-झर ॥ ८ ॥

विकसित इन्दीवर-द्युति ग्रीवा अति भासमान,
ओ स्मर-छेदक, ओ पुर-छेदक, ओ मख-छेदक।
ओ गज-छेदक, अन्धक-छेदक, अघहर भज-भज,
हो तृप्तकाम शंकर, ओ महाकाल-छेदक ॥ ९ ॥

अलिके समान चूसते मंजरी-रस प्रवाह,
कादम्ब सर्वमंगला-कला, विद्या-निःसृत।
ओ स्मर-पुर-अन्तक, भव-अन्तक, मखके अन्तक,
गजके अन्तक, अघ-तम-अन्तक, हम नतमस्तक ॥ १० ॥

मस्तक-प्रांगणमें . अग्नि प्रदीपित ज्वालामय,
विभ्रमित भुजंगोच्छ्वासोंसे जो है बाधित।
धिम्-धिम्-धिम्-स्वर, मृदंग ध्वनिकर, ताण्डवमें रत,
ओ प्रलयंकर, उत्कर्ष करो, तुम हो प्रकटित ॥ ११ ॥

चट्टान-सेज, मुक्ताकी माला, सर्प-माल;
बहुमूल्य रत्न, मृत्तिका-लोष्ठ, औ शत्रु-मित्र।
तृण और कमलनेत्री सुरम्य, भू-प्रजामहिप,
कब सम प्रवृत्तिसे देखें, समदर्शी पवित्र ॥ १२ ॥

कर त्याग दुष्ट दुर्मति गंगा-निकुंजमें जा,
बद्धाञ्जलि शिरपर धरे हाथ शिव-मन्त्र जाप—
जो रत्नरूप हिमगिरि-तनया-ललाट अंकित,
हों तृप्त-काम, कट जाएँ सब दुष्कर्म पाप ॥ १३ ॥

ओ इन्द्र-अप्सरावृन्द-शिरस्-मल्लिकागुच्छ—
मकरन्दबिन्दुके उष्ण तापसे दीप्तवान।
तन कान्ति-कुंज शोभाके अनुपम दीप्तधाम,
हो कृपादृष्टि, अन्तरानन्द नित वर्द्धमान ॥ १४ ॥

ओ हिमिगिरि-तनयाके परिणय कालिक शुभध्वनि,
बड़वानल दीप्त महाष्टसिद्धि सँग गूँज गगन।
'शिव-शिव'का मन्त्राभूषण जिसका है सम्बल,
भवसागरके हित हो वह सुन्दर अवलम्बन ॥ १५ ॥

जो नर संध्या समय शेषकर पूजार्चन,
पढ़े शम्भु पूजनपर रावण स्तोत्रऽभंग।
पाये वह अघहर शंकरकी कृपादृष्टि,
हों मत्त गजेन्द्र, अचंचल लक्ष्मी औ तुरंग ॥ १६ ॥

श्रीशिवाशिवसे वर-याचना

(याचक—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री)

शिवाशिव ! तुम हो दयानिधान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(१)

रहें हम सब शाश्वत स्वाधीन।
परस्पर मत्सर-वैर-विहीन॥
करें इस विधि उद्योग नवीन।
न रह जायें हम जगमें क्षीन॥
हमारा दिन दिन हो उत्थान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(२)

भरें हम सबमें विमल विचार।
बनें हम शुभ गुण-गण भण्डार॥
शान्ति समताका रख व्यवहार।
करें हम अविरत पर-उपकार॥
सभ्यताका हो हममें स्थान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(३)

क्षमा करुणा श्रद्धा विश्वास।
निरन्तर हममें करें निवास॥
करें हम हिलमिल यही प्रयास।
समुज्ज्वल हो अपना इतिहास॥
प्रसारित हों फिर वेद-विधान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(४)

रुचे हमको हरि-कथा-प्रसंग।
मिले संतत संतोंका संग॥
धर्मकी हममें बढ़े उमंग।
न शुभ कर्मोंका क्रम हो भंग॥
करें हम सबका सम सम्मान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(५)

भक्तिका हममें बहे प्रवाह।
सत्त्वगुण हममें भरे अथाह॥
बढ़ें हममें साहस उत्साह।
मिटे सब भवतापोंका दाह॥
करें हम कमलापतिका ध्यान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(६)

प्रणव-जप-तप-व्रत कर अविराम।
करें हम प्रभु-पूजन निष्काम॥
बसा हृदयोंमें सीताराम।
दृगोंमें राधायुत घनश्याम॥
सुनें मंजुल मुरलीकी तान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(७)

उपनिषद उपवन सुमन सुवास।
उड़े पाकर अध्यात्म विकास॥
हमारा सबका हर निश्वास।
करे वह सुरभित हर हिय-ह्रास॥
मोह-मायाका हो अवसान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(८)

सकल जीवोंका हित हिय धार।
लक्ष्यकर सब जगका उद्धार॥
करें हम बनकर विबुध उदार।
ब्रह्मविद्याका प्रचुर प्रचार॥
भरें हिय-हियमें ब्रह्म-ज्ञान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(९)

प्रगति दुष्कर्मोंकी कर मन्द।
विषय विषका पीना कर बन्द॥
आत्मचिन्तन रत हो स्वच्छन्द।
सुलभ कर लें हम ब्रह्मानन्द॥
वही सुख हमको जचे प्रधान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

(१०)

चराचरके हम बनकर 'मित्र'।
बना लें जीवन परम पवित्र॥
विशद कर अपना चारु चरित्र।
दिखा दें हम आदर्श विचित्र॥
मोक्षपद भागी बनें निदान।
हमें दे डालो यह वरदान॥

आशुतोष भगवान् शिवजीके चरणोंमें एक विनीत प्रार्थना

त्रैलोक्यवन्द्य ! देवाधिदेव भगवान् महादेव ! आप—

१–शिव हैं ।

२–त्रिशूलधारी हैं ।

३–पिनाकपाणि हैं ।

४–सृष्टि-संहारक हैं ।

५–आपके पुत्र षण्मुख कार्तिकेय देवसेनाके अध्यक्ष हैं, और

६–कार्तिकेयकी माता पार्वती तो स्वयमेव शक्ति हैं।

इस तरह हम देखते हैं आप और आपका कुटुम्ब लोकसर्वस्व ही तो है । दोनों मिलकर तो संरक्षण और आक्रमणकी दिशामें सुरासुर-स्तुत्य और लोकालोकदुर्लभ हैं।

आपकी भृकुटी-विलासमें विश्व-ब्रह्माण्डोंका उदयास्त होता रहता है । भगवती उमाके कोपसे अजय दैत्य-दानव भी समाप्त होते हैं और उनके पराक्रमी पुत्रके प्रतापसे तो असुरोंके आक्रमण भी निष्फल हो जाते हैं, तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

सेनानीनामहं स्कन्दः ।

भगवन् ! आजके अणु बम, हाइड्रोजन बम तथा रॉकेट और मेगाटन बम तो आपके लोकसंहारक तीसरे नेत्रकी तुलनामें अणु-रेणुमात्र भी नहीं हैं । परंतु समझमें नहीं आता कि आजके भारतीय संस्कृति-घातक तत्त्वोंके विनाशार्थ आप दण्डका प्रयोग क्यों नहीं करना चाहते, जब कि भारतीय आचार-संहितामें भगवान् मनु इस प्रकार कहते हैं—

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि किंनरोरगाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥

दीनबन्धु ! आज संसारमें सर्वत्र असांस्कृतिक तत्त्वोंका दौरदौरा है, पथभ्रष्ट विज्ञान मानव-जातिको नामशेष करनेको समुद्यत है, मनुष्य सर्वथा असुर बन रहा है ! ऐसी विषम परिस्थितिमें भी क्या आप मौनावलम्बी और शान्त ही बने रहकर तथाकथित अनर्थ होने देंगे और आपका कुटुम्ब भी आपका ही अनुकरण करता रहेगा !

त्रिपुरारि ! यह शान्ति-काल नहीं है । प्रत्युत लोमहर्षण अशान्ति-काल है । आपके रौद्र एवं विकट व्यक्तित्वके उपयोगका यही उपयुक्त समय है, अपितु हम तो आपसे यह प्रार्थना भी करते हैं कि आप भारतवासियोंमें भाग्यवादके स्थानमें पुरुषार्थवादका मन्त्र फूँकें और उन्हें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें कि वे उपनिषद्के इस वाक्यको स्वप्नमें भी न भुलायें—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । *

साथ ही वैदिक और लौकिक संस्कृत वाङ्मयके इन अमर शब्दोंको अपने हृदय-पटलपर अङ्कित कर लें और इनको अपने चरित्रमें ढालें—

स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः । †
पुरुषार्थो मे दक्षिणे हस्ते जयश्च वामे हस्ते । ‡
चरन् वै मधु विन्दति
चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं
यो न तन्द्रयते चरँश्चरैवेति ॥ §

या फिर, अपने परम शान्त शिवतत्त्वका प्रसारकर विश्व-मानवके हृदयको ही परम सात्त्विक सुशान्त बना दें, जिससे प्रत्येक मानव प्राणिमात्रमें आपके 'शिव'रूपका दर्शन कर सबके कल्याण तथा सबकी सेवामें संलग्न हो जाय । विषमय भौतिक विज्ञानकी ज्वाला शान्त हो जाय तथा सर्वत्र शान्त शिवात्मतत्त्वके दर्शन हों—प्रार्थी—श्रीरामनिवास शर्मा

---

* बलहीनके लिये आत्मा अलभ्य है ।

† मनुकी संतति स्वबल-संरक्षित है—पराश्रय-आकाङ्क्षिणी नहीं ।

‡ पुरुषार्थ मेरे दहिने हाथमें हो और जय बाँये हाथमें; क्योंकि पुरुषार्थीके लिये जय तो बायें हाथका ही खेल है ।

§ गतिशील व्यक्ति मधु पा लेता है और आगे बढ़नेवाला उदुम्बर आदि फल भी प्राप्त कर लेता है । अविश्रान्त गतिशील रहनेके ही कारण सूर्य विश्व वन्द्य है । इसलिये जीवनमें दृढ़ निश्चयके साथ कदम बढ़ाते ही चलो ।

हिंदीवर्णानुक्रम जययुक्त अष्टोत्तरशिवसहस्रनाम

जय अज, अव्यय, अमित शक्ति जय
जय अनियम, अध्रुव, अनादि जय
जय अमृतांश, अमृत-वपु जय जय
अमृतप, अमृतरूप, अक्षय जय
अप्राकृतिक दिव्य-तनु जय जय
जय अनादि-मध्यान्त जयति जय
अर्थिगम्य, जय अष्टमूर्ति जय
अपरिच्छेद्य, अध्यात्म-निलय जय
जय अचलेश्वर, अजितप्रिय जय
जय असाध्य, अनिवृत्तात्मा जय
जय अभिवाद्य, अकल्मष जय जय
जय अनन्तदृक्, अन्नरूप जय
जयति अजातशत्रु, अघरिपु जय
जय अन्तर्हित-आत्मा जय जय
अग्रणी, अक्रिय, अकथनीय जय
अभिजन, अकुतोभय, अकुण्ठ जय
अतिप्राकृत, अतिदैव, अजर जय
अतिमानुष, अतिवेल, अचर जय
जयति अखण्ड, अग्र्य, अक्षर जय
अतिबल, अतनु-प्राण-हर जय जय
जय अधिराज, अधृष्य जयति जय
असंदिग्ध, असुरारि जयति जय
जय अद्र्यालय, अद्रि, अतिथि जय
जय अविशिष्ट अपांनिधि जय जय
जय अराग, अभिराम, अमृत जय
जय अगस्त्य, अंगिरा, अत्रि जय
जय अनन्त, अरिदमन, अचल जय
जय अभेद, अज्ञेय, अमल जय
जय अनर्थनाशन, अमोघ जय
जयति अनर्थ, अर्थ, अभिनव जय
जयति अचंचल, असंसृष्ट जय
जय अधर्मरिपु, अन्धकारि जय
जय अघोर, अनिरुद्ध, अभव जय
जयति अरिन्दम, अमरेश्वर जय
जय अलोभ, अपराजित, अणु जय
जय अक्रूर, अकिञ्चन जय जय

जय अक्षुण्ण, अनघ, अग्रह जय
जयति अगुण, अनन्तगुणनिधि जय
जय अक्षयगुण, अधिष्ठान जय
जयति अपूर्व, अनुत्तर जय जय
जय अप्रतिम, अकम्प, अधृत जय
जयति अकाल, अकल, अमृत्यु जय
जय असुरासुरपति, अहपति जय
जयति अमाय, अनामय जय जय
जयति अकर्ता, अखिलकर्तृ जय
जयति अतीन्द्रिय, अखिलेन्द्रिय जय
जय अनपायोक्षर, अदम्य जय
जय आनन्द, आत्मचेतन जय
आत्मयोनि, आश्रितवत्सल जय
आशुतोष, आलोक जयति जय
जयति इष्ट, ईशान, ईश जय
जय उग्राभ, उग्र, उत्तर जय
जयति उष्ण, उन्मत्तवेष जय
जयति उपप्लव, उत्तारण जय
जय उद्योगी, उद्यमप्रिय जय
जय ऋषि, ऋक्षचर्मधर जय जय
एकरुद्र, जय एकबन्धु जय
जय एकात्मा, एकनेत्र जय
जय ऐश्वर्याचिन्त्य जयति जय
जयति ओज, ओंकारेश्वर जय
अम्बुजाक्ष, अन्तर्यामी जय
अन्तरहित, अन्तरप्रिय निधि जय
जय कमलाक्ष, कमण्डलुधर जय
जयति कल्प, कर्ता, कवि जय जय
कर्णिकारप्रिय, कर-कपाल जय
जय कमनीय कलेवर, क्रतु जय
जय कनकाभा, कपिलश्मश्रु जय
जय कल्याण-नाम-गुणधर जय
जय कल्याण-विधायक जय जय
जयति कलाधर, कल्पवृक्ष जय
जय कल्पादि, कपर्दि, करण जय
जयति कपाली, कारण जय जय

जयति कामशासन, कामी जय
काम, कामरिपु, कामपाल जय
जयति काल, जय कल्पवृक्ष जय
कालाधार, कालभूषण जय
कालकाल, जय कालरहित जय
जय कान्ताप्रिय, कान्त जयति जय
जय किंनरसेवित, किरात जय
किंकरवश्य, कितव-अरि जय जय
कीर्तिविभूषण, जय किरीटि जय
जय कृतज्ञ, जय कृतानन्द जय
जयति कृष्ण, जय कृष्ण-वरद जय
जय कुमार, कुशलागम जय जय
जय केवल, केदारनाथ जय
जय कैवल्यप्रदाता जय जय
जय कैलासशिखरवासी जय
जय कंकणि-कृत-वासुकि जय जय
जय खग, खगवाहनप्रिय जय जय
जय खट्वांगी, खण्डपरशु जय
जय खलकण्टक, खलदलारि जय
जय गणेश, गणकाय, गहन जय
गगनकुन्द-प्रभ, गणनायक जय
जय गायत्रीवल्लभ जय जय
जय गिरीश, गिरिजापति जय जय
जय गिरि-जामाता, गिरिरत जय
जय गुह, गुरु, गुणसत्तम जय जय
जय गुणराशि, गुणाकर जय जय
जय गुणग्राहक, ग्रीष्म जयति जय
जय गोपति, गोप्ता, गोप्रिय जय
जय गोविन्द, गोशाखा जय जय
गौरी-भर्ता, गंगाधर जय
जय घुष्मेश्वर, घनानन्द जय
जयति चतुर, जय चन्द्रचूड जय
चतुर्वेद, जय चन्द्रमौलि जय
चतुर्भाव, चतुरप्रिय जय जय
जयति चतुष्पद चतुर्बाहु जय
जयति चतुर्मुख चिदानन्द जय
जयति चिरन्तन, चित्रवेश जय
चन्द्रापीड, छिन्नसंशय जय

जय जगदीश, जगद्गुरु जय जय
जय जन्मारि, जनार्दन जय जय
जय जगदादिज, जनक, जनन जय
जयति जप्य, जमदग्नि जयति जय
जटिल, जलेश्वर, जगद्बन्धु जय
जनाध्यक्ष, जन-मन-रंजन जय
जयति जरादिशमन, जगपति जय
जगजीवन, जय जातुकर्ण्य जय
जय जितकाम, जितेन्द्रिय जय जय
जीवितान्तकर, जीवनेश जय
जयति ज्योति, ज्योतिर्मय जय जय
जयति तत्त्व, तत्त्वज्ञ जयति जय
जय तापस, तमिस्रहा जय जय
जय तमरूप, तमोहर जय जय
जय तत्पुरुष, तार्क्ष्य, तारक जय
जय तिग्मांशु, तीर्थधामा जय
तीर्थ, तीर्थमय तीर्थदृश्य जय
तुम्बवीण, जय तुष्ट, तेज जय
तेजद्युतिधर, तेजराशि जय
जयति त्रिवर्ग-स्वर्ग-साधन जय
जय त्रैविद्य, त्रयीतनु जय जय
जयति त्रिलोचन, त्रिदशाधिप जय
जय त्रिलोकपति, त्र्यम्बक जय जय
जय त्रिशूलधर, त्र्यक्ष जयति जय
जय दुर्जय, दुस्सह, दम जय जय
जय दुर्धर्ष, दुरतिक्रम जय जय
जय दक्षारि, दक्षत्राता जय
जयति दक्ष-जामाता जय जय
जय दर्पद, दर्पहा जयति जय
दनुज-दमन, दमयिता जयति जय
दान्त, दयानिधि, दाता जय जय
जयति दिवाकर, दिव्यायुध जय
जयति दिवस्पति, दीर्घतपा जय
जय दुर्जय, दुःसह, दुर्लभ जय
जय दुर्ज्ञेय, दुर्ग, दुर्गति जय
जय दुर्वासा, दुराधर्ष जय
जय दुर्गतिनाशन, दुरंत जय
दुरावास दुष्कृतिहा जय जय

जय दुःस्वप्नविनाशक, द्रुत जय
दूरश्रवा, दुरासद जय जय
देवदेव, देवाधिप जय जय
देवासुर-गुरुदेव जयति जय
देवासुर-पूजित ईश्वर जय
देवासुर-सर्वाश्रय जय जय
देवसिंह, देवात्मरूप जय
देवनाथ, जय देवप्रिय जय
जय दृढ़, दृढ़प्रतिज्ञ, दृढ़मति जय
जय द्युतिधर, जय द्युमणि-तरणि जय
जयति द्रुहिण, द्रोहान्तक जय जय
जयति धर्म, जय धर्मधाम जय
जय धर्माङ्ग, धर्मसाधन जय
धर्मधेनु, जय धर्मचारि जय
जय धन्वी, धव, धनदस्वामि जय
जयति धनागम, धनाधीश जय
जयति धनुर्धर, धनुर्वेद जय
जय धात्रीश, धातृधामा जय
जय धीमान्, धुर्य, धूर्जटि जय
ध्यानाधार, ध्येय, ध्याता जय
धृतव्रत, धृतियुत, धृत-जन-कर जय
जय प्रिय नर-नारायण जय जय
जय नरसिंह-रूपधर जय जय
जय नरसिंहतपन, नन्दी जय
नन्दीश्वर, नग्नव्रत जय जय
नन्दिस्कन्धधर, नभोयोनि जय
जय नक्षत्रमालि, नव-रस जय
नयनाध्यक्ष, नदीधर जय जय
नागेश्वर, नागेश, नाक जय
जय नागेन्द्रहार-भूषण जय
जय निर्वार, निशाकर जय जय
निरावरण, निधि, नियताश्रय जय
नित्य निरञ्जन, नियतात्मा जय
निःश्रेयसकर, निराकार जय
जय निष्कण्टक, निष्कलङ्क जय
जय निरुपद्रव, निरातङ्क जय
जय निर्व्याज, नित्यसुखमय जय
जयति [illegible], [illegible] जय

जय निर्व्यङ्ग, नित्यसुन्दर जय
नित्यशान्तिमय, नित्यनृत्य जय
नित्यनियतकल्याण, नीति जय
नीतिमान, जय नीलकण्ठ जय
जय नीलाभ, नीललोहित जय
नैककर्मकृत्, नैकात्मा जय
न्यायगम्य, जय न्यायी जय जय
न्यायनियामक, न्यायप्रिय जय
जयति परात्पर, परब्रह्म जय
जय परमात्मा, परमेष्ठी जय
जयति परावर, परं ज्योति जय
जय पशुपति, जय पद्मगर्भ जय
जय परश्वधी, पटु, परिवृढ जय
जयति परंतप, पंचानन जय
परावरज्ञ, परार्थवृत्ति जय
परकार्यैक-सुपण्डित जय जय
जयति प्रणव, प्रणवात्मक जय जय
जय प्रधान, प्रभु, प्रमाणज्ञ जय
जयति प्रभाकर, प्रमथनाथ जय
जय प्रच्छन्न, प्रशान्तबुद्धि जय
जयति प्रतप्त, प्रकाशक जय जय
जय प्रतापमय, प्रभव जयति जय
जय प्रलम्बभुज, प्रलयंकर जय
जयति प्रगल्भ, प्रकीर्ण, प्राण जय
जय पावन, पारावर-मुनि जय
पारिजात, जय पाञ्चजन्य जय
पिंगल-जटी, पिनाकी जय जय
पिंगलाभ-शुचि-नयन जयति जय
पुण्यश्लोक, पुरंदर जय जय
पुलह, पुलस्त्य, पुरंजय जय जय
पुष्कर, पुष्पविलोचन जय जय
पूषदन्तभिद्, पूर्ण, पूत जय
प्रमथाधिप, प्रबुद्ध, प्रणप्रिय जय
प्रभावान्, प्रभु विष्णु जयति जय
प्रेताधीश, प्रेतचारी जय
जय-पौराण-पुरुष, फणिधर जय
जय बहुश्रुत, बहुरूप, बली जय
बाणहस्त, बाणाधिप जय जय

जयति ब्रह्म, ब्रह्मा, ब्राह्मण जय
जय ब्राह्मणप्रिय, ब्रह्मगर्भ जय
ब्रह्मवर्च्चसी, ब्रह्मज्योति जय
ब्रह्मवेदनिधि, ब्रह्मचारि जय
बीजविधाता बिन्दुरूप जय
बीजाधार, बीजवाहन जय
बृहद्गर्भ, बृहदश्व जयति जय
बृहदीश्वर-मंगलमय जय जय
जय भव, भव्य, भस्मप्रिय जय जय
जय भगवान्, भस्मशायी जय
भस्मोद्धूलित-विग्रह जय जय
भस्म-शुद्धिकर, भक्तिकाय जय
भक्तिवश्य, जय भक्तभक्त जय
भालनेत्र जय, भानुदेव जय
भावात्मात्मनि-संस्थित जय जय
भीमपराक्रम, भीम जयति जय
जय भुवनेश, भुवनजीवन जय
भूति, भूतिनाशन, भूशय जय
जयति भूतवाहन, भूपति जय
जयति भूतकृत, भूतभव्य जय
जयति भूतभावन, भूषण जय
जयति भोग्य, भोक्ता, भोजन जय
जयति महेश्वर, महादेव जय
जयति महाद्युति, महातपा जय
जयति महानिधि, महामाय जय
महागर्त जय, महागर्भ जय
महानाद जय, महातेज जय
महावीर्य जय, महाशक्ति जय
महाबुद्धि जय, महाकल्प जय
महाकाल जय, महाकोश जय
महायशा जय, महामना जय
महाभूत जय, महापूत जय
जयति महौषधि मंगलमय जय
जय महदाश्रय, महत् जयति जय
महामहिम, मत्सरविहीन जय
जयति महाह्रद, महाबली जय
जयति मन्त्र, मन्त्राधिपमय जय
जयति मन्त्र-प्रत्यय, मन्त्री जय

महोत्साह जय, महिभर्ता जय
मधुरप्रियदर्शन, महर्षि जय
जयति महारेता, मधुप्रिय जय
जयति महाकवि, महाप्राण जय
जय मघवान्, महाघन जय जय
जयति मानधन, महापुरुष जय
जय मध्यस्थ, महास्वन जय जय
महेष्वास, जय मृदु, मृड जय जय
जयति मल्लिकार्जुन, मृगपति जय
मारुतिरूप, मोहविरहित जय
मृग-बाणार्पण, मेरु, मेघ जय
जयति यज्ञ, जय यज्ञश्रेष्ठ जय
जयति यज्ञभोक्ता, जय यश जय
जयति यशोधन, युगपति जय जय
जयति युगावह, योगपार जय
जय योगेश्वर, योगीश्वर जय
योगाध्यक्ष, योगविद् जय जय
जय रवि, रविलोचन, रसप्रिय जय
जयति रसज्ञ, रसद, रसनिधि जय
रजनीजनक, रमापति जय जय
रामचन्द्र, राघव, जय रुचि जय
रुचिरांगद, जय जयति रुद्र जय
रिपुमर्दन, रोचिष्णु जयति जय
जयति ललित, जय ललाटाक्ष जय
लिङ्गाध्यक्ष, लिङ्गप्रतिमा जय
जयति लोककर, लोकबन्धु जय
लोकनाथ जय, लोकपाल जय
लोकगुरु जय, लोकवीर जय
लोकोत्तर-सुख-आलय जय जय
लोकानामग्रणी जयति जय
जयति लोक-सारंग जयति जय
लोक-शल्य-धृक्, लोकोत्तम जय
जयति लोकवर्णोत्तम जय जय
लोक-लवणताकर्ता जय जय
लोक-रचयिता, लोकचारि जय
लोहितात्मा, लोकोत्तर जय
जय वरेण्य, जय वरवाहन जय
वरद, वसिष्ठ, वसुप्रद जय जय

वसु, वसुमना, वरांग जयति जय
जय वसुधामा, वसुश्रवा जय
जय वसंत-माधव, वत्सल जय
जय वर्णी, वर्णाश्रमगुरु जय
जय वसुरेता, वज्रहस्त जय
जय वरशील, जयति वर-गुण जय
जय वागीश, वायुवाहन जय
वालखिल्य जय, वाचस्पति जय
वामदेव, वामाङ्क-उमा जय
वासुदेव, वासवसेवित जय
जय वाराहशृंगधृक् जय जय
जय वाणीपति, वाणीवर जय
जय वृषांक, वृषवाहन जय जय
जयति वृषाकपि, वृषवर्धन जय
जयति विश्व, विश्वम्भर जय जय
विश्वमूर्ति जय, विश्वदीप्ति जय
जयति विश्वसृक्, विश्ववास जय
विश्वनाथ जय, विश्वेश्वर जय
जयति विश्वकर्ता-हर्ता जय
विश्वरूप जय, विश्वधर्म जय
विश्वोत्पत्ति, विश्वगालव जय
जयति विश्ववाहन, विशोक जय
जयति विश्वगोप्ता, विराट् जय
जयति विरंचि, विमोचन जय जय
विश्वदेह, विद्येश जयति जय
जय विशाख, विजितात्मा जय जय
जयति विश्वसह, विद्वत्तम जय
जयति विनीतात्मा, विराम जय
जयति विरोचन, विरूपाक्ष जय
जय विगतज्वर, विमलोदय जय
जय विषमाक्ष, विशाल-अक्ष जय
जय विरूप, विक्रान्त, विमल जय
विद्याराशि, वियोगात्मा जय
जयति विधेयात्मा, विशाल जय
जयति विधाता, विष्णु, विरत जय
जयति विशारद, विश्रृंखल जय
जय वीरेश्वर, वीरभद्र जय
वीर्यवान्, वीरासन, विधि जय

वीरशिरोमणि, वीराग्रणि जय
वीतराग, जय वीतभीति जय
वेदरूप, जय वेदवेद्य जय
जय वेदाङ्ग, वेदविद् मुनि जय
जयति वेदकर, वेत्ता जय जय
वेदशास्त्र-तत्त्वज्ञ जयति जय
जय वेदान्त-सार-निधि जय जय
वैद्यनाथ, वैयाघ्रधुर्य जय
जयति वैद्य, वैरिञ्च्य जयति जय
जयति शर्व, जय शक्र जयति जय
जयति श्मशाननिलय, शरण्य जय
जय श्मशानप्रिय, शमनशोक जय
जय शत्रुघ्न, शत्रुतापन जय
शबल, शक्त, शम, शरभ जयति जय
जय शनि, शरण, शत्रुजित् जय जय
जयति शवासन, शक्तिधाम जय
शब्दब्रह्म जय, जयति शम्भु जय
शबर-बन्धु जय, शमनदमन जय
शंकर, शंवर, शर्वरीश जय
शाश्वत, शान्त, शास्त्र, शास्ता जय
शान्तभद्र, शाकल्य जयति जय
जय शिव, जय शिपिविष्ट जयति जय
शिशु, शिखि, शिखि-सारथी जयति जय
जय शिवज्ञाननिरत, शिखण्डि जय
जय शिष्टेष्ट, शिवालय जय जय
श्रीकण्ठ, श्रीमान् जयति जय
श्रीशैल, श्रीवास जयति जय
शुचि, शुचिसत्तम, शुचिस्मित जय जय
जय शुभ, शुभद, शुभांग जयति जय
शुद्धमूर्ति, शुद्धात्मा जय जय
शुभ्र, शुभंकर, शुभ-स्वभाव जय
जय शुभकर्ता, शुभनामा जय
शूली, शूर, शूलनाशन जय
शोभाधाम, शोकनाशन जय
शंकाविरहित, शंखवर्ण जय
श्रीशरूप, श्रीवृद्धिकरण जय
श्रुतिप्रकाश श्रुतिमान जयति जय
सम, समान जय, समाम्नाय जय

सदाचार जय, समावर्त जय
सगण, स्थपित, सनातन जय जय
सद्योजात, सदाशिव जय जय
सत्य, सत्यव्रत, सत्यसंध जय
सत्यपरायण, सत्यकीर्ति जय
सत्यपराक्रम, सत्यमूर्ति जय
सफल, सकल-निष्कल, समाधि जय
सती-देहधर, सत्तम जय जय
सदय, सदाशय, समतामय जय
सकलाधार, सकल-आश्रय जय
सकलागम-पारग-स्वभाव जय
सच्चरित्र, सच्चिदानन्द जय
सत्पुरुषाधिप, सदानन्द जय
सर्व, सर्वस्रष्टा-पालक जय
सर्वेश्वर, सर्वादि जयति जय
जयति सर्वसंहारमूर्ति जय
सर्वाचार्य-मनोगति जय जय
सर्वावास, सर्वशासन जय
सर्वरूप-चर-अचर जयति जय
सर्वलोक, सर्वेश जयति जय
सर्वलोक-ईश्वर महान् जय
सर्वभूत-ईश्वर महान् जय
सर्व-शास्त्र-रक्षक महान् जय
सर्वशास्त्र-भंजन महान् जय
सर्वधर्मरक्षक महान् जय
सर्वधर्मभक्षक महान् जय
सर्वसाध्य-साधन महान् जय
सर्वदेवसत्तम महान् जय
सर्वशास्त्र-सत्सार जयति जय
सर्वबन्धमोचन-स्वभाव जय
सर्वलोकधृक्, सर्वशुद्धि जय
जयति सर्वदृक्, सर्वयोनि जय
सर्वप्रजापति, सर्वसत्य जय
जय सर्वज्ञ, सर्वगोचर जय
जयति सर्वसाक्षी, सर्वग जय
सर्व दिव्य-आयुध-ज्ञाता जय
सर्वपापहर-त्राता जय जय
जय सर्वर्तु-विधायक जय जय

जयति सर्वसुर-नायक जय जय
सर्वशक्तिमत्, सर्ववीर्य जय
सर्वोत्तर, सर्वेसर्वा जय
सर्वाणी-स्वामी, ससज्ज जय
सद्गति, सत्कृति, सद्योगी जय
जय सज्ज्ञाति, सदागति जय जय
जय सम्राट्, स्वधर्मा जय जय
जयति स्कन्द, जय स्कन्दजनक जय
जयति स्तव्य, स्तवप्रिय, स्तोता जय
स्वक्ष, स्वधृत, स्वर्बन्धु जयति जय
जय स्वच्छन्द, स्ववश, स्वराट् जय
जयति स्वभाव-भद्र, स्वर्गत जय
स्वतःप्रमाण, स्वमहिमामय जय
स्ववश, स्वयंभू, स्वच्छ जयति जय
स्वर्ग, स्वर्गस्वर, स्वरमयस्वन जय
जयति स्थविष्ठ, स्थविर ध्रुव जय जय
सहसपाद जय, सहसबाहु जय
सहसनेत्र जय, सहसकर्ण जय
सहसशीश जय, सहसकण्ठ जय
सहसगिरा जय, सहसअर्चि जय
साधुसाध्य जय, साधुसार जय
सार-सुशोधन, साधन जय जय
जयति साध्य, सात्त्विकप्रिय जय जय
साम-गानप्रिय, सानुराग जय
साम्ब-सदाशिव जयति जयति जय
सिद्ध, सिद्धि जय, सिद्धिद जय जय
सिद्धिकरण जय, सिद्धस्वङ्ग जय
सिद्धवृन्द-वंदित-पूजित जय
स्थिर, स्थिरमति जय, स्थिर-समाधि जय
जय सुरेश, सुरपतिसेवित जय
जयति सुभग, सुव्रत, सुपर्ण जय
जयति सुतन्तु, सुनीति, सुलभ जय
जयति सुधी, सुशरण, सुकीर्ति जय
सुहृद्, सुधीर, सुचरित जयति जय
जय सुकुमार, सुलोचन जय जय
जयति सुखानिल, सुप्रतीक जय
जयति सुप्रीत, सुमुख, सुन्दर जय
जय सुधांशुशेखर, सुवीर जय

जय सुकीर्तिशोभन, सु-स्तुत्य जय
सुमति, सुकर, सुरनायक जय जय
सुनिष्पन्न जय, सुषमामय जय
सुखी परम, जय सूक्ष्मतत्त्व जय
सूर्य, सूर्य-उष्मा-प्रकाश जय
सूत्ररूप जय, सूत्रकार जय
सोम, सोमरत, सोमनाथ जय
सोमप, सौम्य, सौम्यप्रिय जय जय
संकर्षण, संकल्प-रहित जय
संगरहित, संगीत-निपुण जय
संग्रहरहित, संग्रही जय जय
जय संवृत, संभाव्य जयति जय
जय संसार-चक्रभित् जय जय
जय संसरण-निवारण जय जय
जय षट्चक्र-विकासन जय जय
जय षट्शत्रु-विनाशन जय जय

जय षट्कर्म-विधायक जय जय
जय षड्दर्शन-नायक जय जय
जय षड्ऋतु, षड्-रसमय जय जय
जयति षडाननजनक जयति जय
जय हर, हरि, हिरण्यरेता जय
हंस, हंसगति, हव्यवाह जय
जयति हिरण्यवर्ण, हिमप्रिय जय
जयति हिरण्यगर्भ, हितकर जय
जयति हिरण्यकवच, हिरण्य जय
हिंसारहित, हितैषी जय जय
हृषीकेश जय, हृष्ट, हृद्य जय
जय हृत्पद्मविराजित जय जय
क्षमाशील जय, क्षाम, क्षपण जय
जय क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक जय
ज्ञानगम्य जय, ज्ञानमूर्ति जय
ज्ञानवान् जय, ज्ञानरूप जय

शिवलिङ्गपूजनमें स्त्रियोंका तथा शिवनिर्माल्यमें सबका अधिकार है या नहीं ?

(लेखक—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न)

इस प्रकारका एक विचार सर्वत्र फैला है कि स्त्रियोंको भगवान् शंकरका पूजन तथा स्पर्श नहीं करना चाहिये। अवश्य ही इस प्रकारके शास्त्रवचन मिलते हैं, पर वे वैदिक मन्त्रोंसे पूजा करनेके सम्बन्धमें हैं। वैसे सभीको शिवपूजाका अधिकार है, इसमें भी शास्त्रप्रमाण हैं। भगवान्की भक्तिके सभी अधिकारी हैं। स्त्रियोंके शिव-पूजाके सम्बन्धमें कहा गया है—

प्रसवो जायते यस्यास्तया तु शिवपूजनम्।
कर्तव्यं मानसं नित्यं दशाहान्तं प्रयत्नतः॥
दशाहे समतीते तु कृत्वा स्नानं यथाविधि।
शिवलिङ्गार्चनं कार्यं द्विजस्त्रीभिर्द्विजैरिव॥

'जिस स्त्रीके शंकरजीके पूजनका नियम हो और उसके बालकका जन्म हो जाय तो उसे दस दिनोंतक सूतिकागृहमें मानसिक पूजन ही करना चाहिये।'

'दस दिन व्यतीत हो जानेपर विधिपूर्वक कुल-मर्यादाके अनुसार स्नान करके द्विजातियोंकी स्त्रियोंको श्रीशंकरजी-के लिङ्गका पूजन करना चाहिये, जैसे द्विज पुरुष पूजन करते हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पूजन करें।'

काशीखण्डमें आया है—

पुरा हि मृण्मयं लिङ्गमर्च्य लक्ष्मीः प्रयत्नतः।
जाता सौभाग्यसम्पन्ना महादेवप्रसादतः॥

'श्रीलक्ष्मीजी पहले प्रयत्नपूर्वक श्रद्धासे पार्थिव लिङ्गकी पूजा करके ही शंकरजीके प्रसादसे सर्वदाके लिये सौभाग्यवती हुई थीं।'

श्रीपार्वतीजीने तो कठिन तपस्या करके ही शम्भुको स्वामीके रूपमें प्राप्त किया था। यह प्रसिद्ध ही है।

दक्षिण देशमें एक घुष्मा नामकी स्त्री थी, वह प्रतिदिन शंकर-पूजन करती थी। उसपर भगवान्

शंकर प्रसन्न हुए और उसे वर माँगनेको कहा। उसने यही वर माँगा कि मेरे नामसे इसी स्थानपर आप निवास करें और भक्तोंका कल्याण करें। भगवान् शिवने यह स्वीकार किया और घुष्मेश्वरके नामसे वहीं प्रतिष्ठित हुए। घुष्मेश्वर महादेवजी दक्षिण देशमें ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग हैं। इसके अतिरिक्त अनसूया, सुमति, सीमन्तिनी, महानन्दा तथा विधवा ब्राह्मणी आदि स्त्रियोंके द्वारा शिवपूजनकी अनेक कथाएँ शिवपुराणमें हैं। शिवपुराणमें सभीके लिये शिवलिङ्ग-पूजनका अधिकार बतलाया गया है।

श्रीसूतजी कहते हैं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः।
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम्॥
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः।
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः॥

(शिव० विद्येश्वरसं० २१। ३९-४०)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिङ्गकी पूजा करे। मुनियो! ब्राह्मणो! अधिक कहनेसे क्या लाभ! शिवलिङ्गका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है।' (इतना अवश्य है कि द्विजेतर वर्णको तथा स्त्रियोंको वैदिक मन्त्रोंसे शिवकी पूजा न करके तान्त्रिक मन्त्रोंसे करनी चाहिये।)

पद्मपुराणके वचन हैं—

यो न पूजयते लिङ्गं ब्रह्मादीनां प्रकाशकम्।
शास्त्रवित्सर्ववेत्तापि चतुर्वेदः पशुस्तु सः॥

'ब्रह्मादि देवताओंके प्रकाशक अथवा ब्रह्मज्ञान आदिको प्रकाशित करनेवाले शिवलिङ्गका जो पूजन नहीं करता, वह चारों वेदोंका तथा शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सर्ववेत्ता होनेपर भी पशुके समान है।'

इसी प्रकार जहाँ चण्डेश्वरका अधिकार नहीं है, वहाँ शिवनिर्माल्य* भी परम आदरके साथ ग्रहण करना चाहिये।

शास्त्र कहते हैं—

गङ्गोदकात्पवित्रं तु शिवपादोदकं हितम्।
पीतं वा मस्तकस्थं वा नृणां पापहरं परम्॥

'गङ्गाजलसे भी शिवजीका चरणोदक हितकर तथा पवित्र है। पान करनेसे तथा मस्तकपर एवं शरीरमें धारण करनेसे वह मनुष्योंके सम्पूर्ण पाप नाश कर देता है।'

यदक्षीन्दुर्लोके पचति विविधं त्वोषधिगणं
तथैवान्नं वह्निरविरपि पुनातीह सकलम्।
विधिर्यद्रेतो यो जनयति जगत्स्थावरचरं
सुवर्णं यद्रेतः सुरनरगणा बिभ्रति तनौ॥

'जिन विराट्स्वरूप शंकरका नेत्ररूप चन्द्रमा द्युलोकरूप उनके मस्तकमें विराजमान होकर समस्त अन्नादि ओषधियोंको अमृत बरसाकर पुष्ट करता है, इसी प्रकार जिनका दूसरा नेत्र वैश्वानर-अग्नि शरीरोंमें प्रत्येक प्राणीके खाये हुए अन्नको पचाता है और शरीरोंको पुष्ट करता है तथा जिन विराट्रूपी शंकरका सूर्यरूपी तीसरा नेत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंको पवित्र कर रहा है और जिन शंकरके वीर्यसे उत्पन्न ब्रह्मा जड-चेतन सबको पैदा करता है, तथा प्रत्येक घरोंमें जिस अग्निसे अन्नादि पकाये जाते हैं और उन्हें मनुष्य खाते हैं तथा जिन शंकरके शुक्रसे उत्पन्न सोनेको आभूषणरूपमें देवता तथा मनुष्यगण शरीरोंमें धारण करते हैं और भस्म बनाकर ओषधिरूपमें खाते हैं तथा जिसके वीर्यसे उत्पन्न हुए गन्धक, पारेको लोग औषधोपचारमें ग्रहण करते हैं। एवं—

श्रुतिर्यङ्ढक्काजा मनसि दधते वाचि च बुधा
यदङ्घ्र्युत्थं चक्रं हरिरवति बिभ्रत्त्रिभुवनम्।
तथा धत्ते नेत्रं हरयजनसम्भूतमनिशं
क इष्टे भोक्तुं तत्परमशिवसम्पर्करहितम्॥

* 'शिवनिर्माल्य' के सम्बन्धमें एक विचारपूर्ण शास्त्रनिर्णयात्मक लेख इसी अङ्कमें प्रकाशित हुआ है।—सम्पादक

जिन शंकर भगवान्‌के डमरूसे उत्पन्न हुई श्रुतिरूपी पाणिनीय व्याकरण शास्त्रको सम्पूर्ण विद्वान् लोग मनमें, हृदयमें तथा वाणीमें—मुखमें धारण करके शास्त्रोंके अनेकानेक अर्थ करते हैं तथा जिन आशुतोष भगवान्‌के चरणसे उत्पन्न हुए सुदर्शनचक्रको धारण किये हुए श्रीविष्णु भगवान् तीनों लोकोंकी रक्षा कर रहे हैं, एवं श्रीशंकरजीको पूजनके समय कमलके स्थानपर चढ़ाये हुए तथा उनके प्रसादरूपमें पुनः प्राप्त हुए नेत्रको विष्णु भगवान् सदा धारण किये हुए हैं और अपने पुण्डरीकाक्ष नामको चरितार्थ करते हैं, उन परमदेव शिवजीके सम्पर्कसे रहित वस्तुका उपभोग करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् ऐसी कोई वस्तु नहीं जो शिवजीके सम्पर्कसे रहित हो और शंकरजीका निर्माल्य न हो। सभी वस्तु शंकरजीको समर्पित हैं, अतः उनमें भेदबुद्धि करना सर्वथा अज्ञान ही है।

मह्यमन्नं प्रयत्नेन निवेद्याश्नाति यः सदा।
स भूपालः सर्ववेत्ता भवत्येव हि सर्वथा॥

शंकरजी कहते हैं—'जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक—श्रद्धापूर्वक मेरे लिये अन्नादि नैवेद्य निवेदन करके भोजन करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके शास्त्रोंका ज्ञाता और भूपाल अर्थात् राजा होता है।' (ब्रह्माण्डपुराण)

गङ्गानङ्गरिपोर्जटाविगलिता चन्द्रश्च तन्मस्तके
केशात्तस्य वियत् ततो विगलिता वृष्टिर्जगज्जीवनी।
रुद्रोऽग्निः श्रुत एव सर्वमशनं तज्जिह्वया याचते
निर्माल्यं तु विहाय वै क्षितितले जीवन्ति के मानवाः॥

वे गङ्गाजी, जो संसारको पवित्र कर रही हैं, शंकरजीकी जटासे निकली हैं। चन्द्रमा, जो सम्पूर्ण ओषधियोंको—सब प्रकारके अन्नोंको अमृतसे पुष्ट करता है, शिवजीके मस्तकमें विद्यमान है। रुद्र ही अग्नि हैं, ऐसा वेदोंमें कहा गया है, सभी देवगण उसी अग्निरूपिणी जिह्वासे हविष्यरूप भोजन प्राप्त करनेकी आशा करते हैं। अतः पृथ्वीतलमें शंकरजीके निर्माल्यका त्याग करके कौन मनुष्य जीवित रह सकते हैं ? कोई भी नहीं रह सकता। अतः उनके प्रति भेदबुद्धि करना अज्ञान नहीं तो और क्या है ? (स्कन्दपुराण)

गङ्गापुष्करनर्मदासु यमुनागोदावरीगोमती-
मायाद्वारवतीप्रयागबदरीवाराणसीसिंधुषु।
वेणीसेतुसरस्वतीप्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीशम्भुपादोदकम्॥

श्रीगङ्गाजी, पुष्करराज, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गोमती, वेणी, सरस्वती एवं सिन्धु आदि नदियोंमें तथा हरिद्वार, प्रयागराज, बद्रीनारायण एवं सेतुबन्ध रामेश्वर आदि पुरियोंमें, इतना ही नहीं, समस्त ब्रह्माण्डके उदरमें जितने भी तीर्थ हैं, उन मूल तीर्थोंमें स्नान करनेकी अपेक्षा हजारों-करोड़गुना पुण्यफल देनेवाला श्रीशम्भु-चरणोंका धोवन है। (स्कन्दपुराण)

नटराज शंकर

अमित उमंगनि सों नाचैं शिव श्रृंगनि पै,
घमकैं हुलास तैं कैलास घमकत हैं।
भाल बाल इन्दुहु तैं झरि कै सुधा के बिन्दु,
छहरि बिभूति भरै ढंग थिरकत हैं॥
डम डम डमरू डमाक डमकत कर,
उर पै बिसाल मुंड-माल लरकत है।
गंग छिरकत, अंग-अंग थिरकत,
नील गलमें गिरीसके भुजंग सरकत है॥

—पृथ्वीसिंह चौहान 'प्रेमी'

महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

वेदोंका अधिकांश भाग भगवान् शंकरकी स्तुतियोंसे ही पूर्ण[1] है। 'रुद्राष्टाध्यायी,' 'शतरुद्रिय' आदिका तो प्रत्येक मन्त्र ही शिवस्तुति है। 'वेदस्योपनिषत्सारम्'—ज्ञानसार-सर्वस्व उपनिषदें भी इनकी ही प्रशंसामें रत हैं। 'श्वेताश्वतर', 'रुद्रहृदय', 'कठरुद्र', 'रुद्राक्षजाबाल', 'भस्मजाबाल', 'पाशुपतब्रह्म', 'योगतत्त्व', 'निरालम्ब' आदि उपनिषदें एक स्वरसे भगवान् शिवको विश्वाधिपति, महेश्वर बतलाती हैं[2]। ईशोपनिषद् प्रभुके ही नामपर है। दूसरी—केनोपनिषद्में 'उमा हैमवती' (३ । १२) इन्हें ही ब्रह्म बतलाती हैं। इन यक्षकी कथाका लिङ्गपुराण(५३ । ५४—६२) तथा देवीभागवत (१२ । ८) में भी सुस्पष्टरूपसे उपबृंहण एवं व्याख्यान हुआ है। 'माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये' (मौक्तिकोपनिषद्) आदिसे सर्वाधिक प्रशंसित माण्डूक्योपनिषद् भी सर्वदृश्यविवर्जित, अवस्था-त्रयातीत, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम शिव ही बतलाती है—'शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' (७) 'अव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः' (१२) विश्वमें प्रतिमाएँ भी शिवकी ही सर्वाधिक हैं। लिङ्ग (चिह्नात्मक) रूप होनेसे तो सारा विश्व ही शिवस्वरूप है। 'सर्वा लिङ्गमयी भूमिः सर्वं लिङ्गमयं जगत्।' (काशीखण्ड)

पुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व शिव

अष्टादश महापुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व भी भगवान् चन्द्रशेखर ही हैं। इसे शूलपाणि, वाचस्पति मिश्र, अप्पय्य दीक्षितेन्द्र आदिने अपने-अपने ग्रन्थोंमें विस्तारसे सिद्ध किया है। उनका कथन है कि 'हरिर्द्वाभ्यां रविर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां चण्डीविनायकौ। द्वाभ्यां ब्रह्मा समाख्यातः शेषेण भगवान् भवः' इस प्रसिद्ध स्कान्दवचनानुसार दस पुराण तो एकान्ततः शिवपरक हैं, जब कि गणेशजीका एक, दुर्गाका एक, विष्णुके दो, ब्रह्माके दो और सूर्यके भी दो ही प्रतिपादक पुराण हैं—'हरिर्द्वाभ्यां—वैष्णव-वराहाभ्यां, रविर्द्वाभ्यां—वामनभविष्याभ्यां, द्वाभ्यां चण्डी-

---

१. (क) नमस्ते रुद्र मन्यवे (यजु० १६ । १), न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति (ऋक् ७ । ४), आ नो राजा मध्वरस्य रुद्रम् (साम०), नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः (अथर्व० ११ । २ । १५), रुद्राय नमः कालाय नमः कलविङ्करणाय नमः (तैत्तिरीयारण्यक २), शर्व एतान्यष्टौ अग्निरूपाणि (शतपथ० १६ । १ । ३ । १८), अग्निर्वै रुद्रः (शतपथ० ३ । १ । ३), रुद्राय नमो अस्त्वग्नये (अथर्व० ७ । ९२ । १), अग्निर्वै स देवः (शतपथ० १ । ७ । ३ । ८), उमापतये पशुपतये नमोनमः (तैत्तिरीया० १८)।

(ख) सायणने रुद्रका प्रायः सर्वत्र परमात्मा अर्थ किया है। यथा—रुद्रस्य—परमेश्वरस्य (ऋ० ६ । २८ ७), रुद्रः—परमेश्वरः (अथर्वभाष्य ११ । २ ३), जगत्स्रष्टा रुद्रः (अथर्वभा० ७ । ९२ । १)।

(ग) अन्यत्र (अथर्व० ११ । २ में) महादेव, भव, शर्व, मृड, भूतपति, शिखण्डी, भीम आदि शब्द बार-बार आये हैं। शतपथ (६ । १ । ३ । ११–२०) में रुद्र, शर्व, उग्र, ईशान, भव, महादेव आदि नामोंकी सुन्दर व्याख्या है।

२. यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः (श्वेताश्व० ३ । ४; ४ । १२), मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् (श्वेताश्व० ४ । १०), एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः (श्वेताश्व० ३ । २), उमासहायं परमेश्वरं विभुम् (कैवल्योपनिषद् ७), यो रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः (अथर्वशिर उपनिषद् ३), ऊर्ध्वशक्तिर्मयः शिवः (बृहज्जाबालोप० २ । ९), पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् (योगतत्त्वोपनि० १०९) महादेवमुमार्धकृतशेखरम् (भस्मजाबालोप०)

विनायकौ—ब्रह्मवैवर्तेन विनायकः, देवीभागवतेन चण्डी, द्वाभ्यां ब्रह्मा—ब्राह्मब्रह्माण्डाभ्यामिति शूलपाणिवाचस्पतिमिश्रादयः ।' (वाणीविलासका देवीभागवतोपोद्घात पृ० ३) । इनमें अकेले स्कन्दपुराण ही (संहितात्मक तथा खण्डात्मक मिलकर) एक लाख ६२ हजार श्लोकोंका होता है । शिवपुराण, वायुपुराण, लिङ्गपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण आदि भी शिवपरक ही हैं । अप्पय्य दीक्षितने तो अपने 'महाभारततात्पर्यनिर्णय' एवं 'रामायणतात्पर्यनिर्णय' नामक ग्रन्थोंमें 'वाल्मीकीय रामायण' एवं 'महाभारत' के भी प्रतिपाद्य भगवान् शिवको ही माना है । उनके तर्क बड़े ही प्रौढ़ और युक्तियाँ सर्वथा अकाट्य हैं[1]। बादके इन इतिहास-पुराणोंके आधारपर बने काव्य, साहित्य, नाटकादिमें भी शिव ही वन्द्य हैं । प्रायः सभी काव्य-नाटकोंके आरम्भमें शिवकी ही वन्दना है । यह शोधकर्ताओंके लिये ध्यान देनेकी वस्तु है । कालिदासने तो सर्वत्र शिव-वन्दनासे ही मङ्गलाचरण किया ही है, भवभूति, बाण, हर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त, जगन्नाथ पण्डितराज, शंकराचार्य, क्षेमेन्द्र, अप्पय्य दीक्षित आदिने भी अपने-अपने ग्रन्थोंके आद्यन्तमें उन्हें ही स्मरण किया है । भागवत-जैसे श्रेष्ठ काव्य तथा वैष्णव पुराणमें भी—

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला
यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।
आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥
यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो
गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं
पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥
(३ । १४ । २८, २६)

ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ।···

१. पूर्वोक्तरीत्या रामायणे प्रायः सर्वत्र ध्वन्यमानं शिवपारम्यमेव तस्य प्रधानप्रतिपाद्यम् ।
(रामायणसारस्तव)

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ।
विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥
(४ । ६ । ३३, ४३)

—इन्हें ही ब्रह्मा आदिका भी स्रष्टा परब्रह्म परमात्मा बतलाया गया है । इससे सिद्ध है कि महेश्वर ही पुराणोंके प्रतिपाद्य तत्त्व हैं । स्तुतिकुसुमाञ्जलि-जैसे बृहत्स्तोत्रके रचयिता जगद्धर भट्ट, अप्पय्य दीक्षित तथा बाण, कालिदास आदि तो ईश, महेश, ईश्वर, महेश्वर, ईशानादि शब्दवाच्य शिवको ही परमेश्वर मानते हैं—

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो
महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः ।
(रघुवंश ३ । ४९)

अष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनं दधान-
स्तेजस्त्रयेण महता विहितेक्षणश्रीः ।
अन्येषु सत्स्वपि य 'ईश्वर'-शब्दवाच्यः ।
(पार्वतीपरिणयम् १ । २१)

ईशमेवाहमत्यर्थं न च मामीशतेऽपरे ।
ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्त्यते ॥

उपमन्यु आदि भक्तोंके भी बड़े रम्य वचन हैं—

पशुपतिवचनाद् भवामि सद्यः
कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः ।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे
त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥
यावच्छशाङ्कधवलामलबद्धमौलि-
र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् महेशः ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-
र्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि ॥
(महा० अनु० १४ । ८०, ८९)

'पुरुषविशेष ईश्वरः' (योग० १ । २४) आदि दर्शन-वचनोंके द्वारा योगिध्येय भी वे ही कहे गये हैं ।

बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । रामभगत कर लच्छन एहू ॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

—आदिसे अन्य इष्ट देवताओंकी पूर्ण प्रसन्नता-लाभके लिये भी आपकी आराधना परमावश्यक है ।

शिवपुराण और शिव

अन्यत्र सर्वत्र शिवमाहात्म्य होनेपर भी 'शिवपुराण' का शिवसे साक्षात् सम्बन्ध है। इसके प्रतिपाद्य एकमात्र भगवान् शिव ही हैं। यह पुराण पहले बहुत ही सम्मानित रहा है। इसके श्लोक सरल होनेसे इसपर संस्कृत टीकाकी भी आवश्यकता नहीं रही। इसकी शैली तथा श्लोक बड़े ही रम्य, मधुर एवं भावोत्पादक हैं। इसकी महिमा पुराणोंमें निरूपित है। गणनाकी दृष्टिसे इसे पुराणोंमें चतुर्थ स्थान प्राप्त है। रेवामाहात्म्य, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य और मार्कण्डेयादि पुराणोंमें इसे २४ सहस्र श्लोकोंवाला चौथा पुराण बतलाया गया है। पर इसमें संदेह नहीं कि इसके संस्करणोंमें कुछ भिन्नता आ गयी है। शिवपुराणके आदिमें इसमें १२ संहिताएँ बतलायी गयी हैं। फिर वहीं ७ संहिताओंके संक्षिप्त संस्करणकी भी बात है। किसी प्रतिमें ज्ञानसंहिता पहले है, किसीमें विद्येश्वरसंहिता। किसीमें ज्ञानसंहिता नहीं है, रुद्रसंहिताका सृष्टिखण्ड ही ज्ञानसंहिता है। किसीमें विद्येश्वरका नाम विघ्नेश्वरसंहिता या विघ्नेशसंहिता भी है। किसी प्रतिमें सनत्कुमार तथा धर्मसंहिताएँ भी हैं। एक शिवपुराणका उत्तरखण्ड भी देखा जाता है। इसी प्रकार रुद्रसंहिताका नाम कहीं-कहीं पार्वतीखण्ड देखा जाता है। एक शिवधर्मोत्तर नामके पुराणकी भी बात आती है। इसकी गणना उपपुराणोंमें होती रही। पर अब इसका दर्शन नहीं होता। सम्भव है, इस 'उत्तरखण्ड' में उसका अंश आया हो। कुछ लोग वायुपुराणको ही शिवपुराण मानते हैं। पर वायुपुराण सर्वथा भिन्न है। हाँ, ब्रह्माण्ड तथा वायुपुराण ललिता-माहात्म्यके अतिरिक्त दो-एक अध्यायोंके हेर-फेरसे तथा सर्वथा एक हैं, यह कोई भी अध्येता समझ सकता है। पर उनका शिवपुराणसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

शिवपुराणका प्रभाव और समयनिरूपण

कालिदासका कुमारसम्भव शिवपुराण (रुद्रसंहिता १४–१९) पर ही आधृत है। इसे निर्णयसागरप्रेसने अपने कुमारसम्भवके अन्तमें परिशिष्ट देकर तुलनात्मक श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीके पार्वतीमङ्गलपर इन दोनों ग्रन्थोंकी ही छाया है। उनका मानसका नारद-मोह रुद्रसंहिता (अ० १ से ५) का अनुवाद ही प्रतीत होता है। मानसका शिवविवाह भी इसीके २६ से ५५ तकके अध्यायोंपर आधृत है। इससे सिद्ध है कि कभी शिवपुराण भी श्रीमद्भागवत-जैसा घर-घर प्रचलित था।

तुलसीदासके—

यह इतिहास सकल जग जाना। ताते मैं संछेप बखाना॥

दक्षयज्ञ-ध्वंस, शिवविवाह, कुमारजन्मके—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जनम सकल जग जाना॥
जगु जान षन्मुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥

—आदि चौपाइयोंका भाव शिवपुराणके प्रचारमें ही है। कुछ पाश्चात्योंका पुराणोंको नवीन सिद्ध करनेकी दुश्चिकित्स्य व्याधि सी रही है। पर हेमाद्रि, दानसागर (बल्लालसेन) आदिके निबन्ध-ग्रन्थोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख होने, मत्स्य-मार्कण्डेयादि पुराणोंमें इसकी महिमा एवं वर्णन होने तथा कालिदासपर इसका अत्यधिक प्रभाव होनेसे इसका समय बहुत ही प्राचीन है, यह सूर्यके आलोककी भाँति सुस्पष्ट है। पर इधर लोगोंकी कुछ उदासीनता हो रही है। अब तो शिवपुराणका कोई उत्तम संस्करण नहीं मिलता। मूल पुस्तकाकार रूपसे यह कहींसे भी प्राप्य नहीं है। सटीक पत्राकार एक वेंकटेश्वरप्रेससे प्राप्य है, पर उसका मूल्य अधिक पड़ता है। अतः हम सभी समर्थ प्रकाशकोंसे इसके मूलपाठसहित शुद्ध, सस्ते सम्पूर्ण ग्रन्थ-प्रकाशनकी भी एक बार प्रार्थना करना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं। यों भगवान् शिवकी मङ्गलमयी इच्छा।

पवित्रतम शिवपुराणको कैसे पढ़ना, सुनना और रखना चाहिये

[शिवभक्तोंसे करबद्ध प्रार्थना]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

यह पढ़कर कि 'कल्याण' का विशेषाङ्क अबकी बार 'शिवपुराणाङ्क' प्रकाशित हो रहा है, अपार हर्ष और प्रसन्नता हुई। शिवपुराण सनातनधर्मी शिवभक्तोंका प्राण है और यह डंकेकी चोट सप्रमाण कहा जा सकता है कि शिवपुराणके द्वारा जितना जीवोंका कल्याण हुआ है और विदेशोंमें भी इसके द्वारा जितना शिवभक्तिका प्रचार और हिंदूसभ्यता-संस्कृतिका प्रसार तथा रक्षण हुआ, वह बड़े ही महत्त्वका है। यह शिवपुराणकी ही अद्भुत विशेषता और महिमा है कि भारतके कोने-कोनेमें, गली-गलीमें, मोहल्ले-मोहल्लेमें आज भी लाखों शिवमन्दिर, शिवलिङ्ग दिखलायी पड़ते हैं और सारा भारत शिवलिङ्गपर जल चढ़ाता तथा 'हर-हर महादेव' के नारे लगाता मिलता है। भारतके साथ-साथ विदेशोंमें भी कहीं भी चले जाइये, आपको वहाँ आज भी किसी-न-किसी रूपमें शंकरकी पूजा-प्रतिष्ठा मिलेगी। आज भी खुदाईमें जगह-जगह शिवमन्दिर तथा शिवलिङ्ग मिल रहे हैं। कहीं-कहीं मन्दिरोंकी दीवारोंपर शिवपुराणके श्लोक खुदे मिले हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि एक समय समस्त संसारमें शिवभक्तिका विस्तार था। यह माना जाता है कि मक्कामें भी मक्केश्वर महादेवके मन्दिरमें शिवलिङ्ग विराजमान है। उस मन्दिरके तोड़े-ढहाये जानेपर भी वहाँ एक शिवलिङ्ग रह गया जो आज 'असवद' नामसे प्रसिद्ध है तथा बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है। प्रतिवर्ष जगह-जगहसे मुसलमान आते हैं और वे असवदको पापहारी मानकर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे उसका बोसा लेते (चरणचुम्बन करते) हैं तथा ऐसा करनेपर अपने सारे गुनाहोंका कट जाना मानते हैं।

शिवपुराणकी बड़ी विलक्षण महिमा है। यह अपने जोड़का बस एक ही पुराण है और शिवभक्तोंके लिये तो साक्षात् प्राणस्वरूप है। इसके द्वारा जितनी रक्षा हुई है वह वर्णनातीत है। यह शिवपुराणकी ही अद्भुत विशेषता है कि आज भारतदेशमें और विदेशोंमें लाखों-करोड़ों ऐसे हिंदू हैं कि जो अपना सारा धर्मकर्म भुला बैठनेपर भी एक लोटा जल 'शिव-शिव हर-हर' कहकर शिवलिङ्गपर चढ़ा देते हैं और उससे अपना सर्वविध कल्याण होना मानते हैं। यह सब शिवपुराणकी ही महिमा है।

निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दें—

१–यह याद रखिये कि शिवपुराण कोई साधारण किताब या पोथी नहीं है, यह एक बड़ा ही पवित्र तथा आदरणीय ग्रन्थ है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णका वाङ्मयस्वरूप है तथा श्रीरामायण भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुका साक्षात् स्वरूप है, उसी प्रकार शिवपुराण भगवान् श्रीशंकरका साक्षात् वाङ्मय-स्वरूप है। शिवपुराणका जितना भी मान-सम्मान किया जाय, थोड़ा है। शिवपुराणका तनिक भी अपमान करना मानो साक्षात् श्रीशंकरजीका अपमान करना है।

२–जहाँपर शिवपुराण है, वहाँ समझना चाहिये कि साक्षात् श्रीशंकरजी ही विराजमान हैं। जिस घरमें शिवपुराण है, वह घर तीर्थस्थल है। शिवपुराणकी कथा सुनना भवसागरसे पार होनेका सर्वसुलभ साधन है। शिवपुराणकी कथा बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सुननी-सुनानी चाहिये और विचित्र पवित्र शिवलीलाओंको सुनकर श्रीशंकरप्रेममें निमग्न हो जाना चाहिये। शिवजीकी दिव्य लीलाओंमें तनिक भी शङ्का नहीं करनी चाहिये। इन लीलाओंका रहस्य भगवान् शिवकी कृपासे ही शिवभक्त

समझ पाते हैं, साधारण प्राणी नहीं समझ सकते। इसलिये शान्तिसे बैठकर सुननेमें ही सच्चा कल्याण है।

३—यदि कोई ऐसी जातिमें हैं, जिनको शास्त्र-मर्यादानुसार अधिकार नहीं है, उनको इस पवित्र ग्रन्थका स्वयं अध्ययन नहीं करना चाहिये। शास्त्रमर्यादाका भङ्ग करना बड़ा दोष है। जिन घरोंमें मुर्दे पशुओंको चीरा-फाड़ा जाता है, उनकी खाल उतारी जाती है, घर दुर्गन्धसे भरा रहता है तथा जहाँ अपवित्र गंदी चीजें रहती हैं, वहाँ शिवपुराणको रखकर उसका तिरस्कार करना उचित नहीं। ऐसी अवस्थामें भगवान् शिवके पवित्र नामकी रटन लगाकर तथा शिवपुराणकी आज्ञाका अनुसरण करके जीवनको पवित्र करना चाहिये।

४—रजस्वला माता-बहनोंको भी पवित्र शिवपुराणके हाथ नहीं लगाना चाहिये। जूते पहने शिवपुराण नहीं पढ़ना चाहिये। जूठे हाथोंमें लेकर नहीं पढ़ना चाहिये। पढ़ते समय भूलकर भी थूक लगाकर पृष्ठ नहीं बदलने चाहिये। बीड़ी-सिगरेटका धुआँ उड़ाते नहीं पढ़ना चाहिये। पवित्र शिवपुराणको पैरोंकी ओर कभी नहीं रखना चाहिये। अश्रद्धालु अनधिकारीको कभी नहीं सुनाना चाहिये। विश्वासपूर्ण हृदयवाले सनातनधर्मी विद्वान् ब्राह्मणके द्वारा शिवपुराण सुननेसे बड़ा लाभ हो सकता है।

५—शिवपुराणको शुद्ध पवित्र वस्त्रमें लपेटकर शुद्ध पवित्र स्थानपर रखना चाहिये। इसे बाजारोंमें रद्दीमें बेचना महाघोर पाप मानना चाहिये। शिवपुराणमें जो कुछ लिखा है उसे अक्षर-अक्षर सत्य मानना चाहिये। समझमें न आये तो भी शङ्का नहीं करनी चाहिये।

बोलो सनातनधर्मकी जय!

कालिदासोक्त कुमारसम्भवगत भगवान् शिवजीका विलक्षण स्वरूप*

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

भिक्षुकोऽपि सकलेप्सितदाता
प्रेतभूमिनिलयोऽपि पवित्रः।
भूतमित्रमपि योऽभयसत्र-
स्तं विचित्रचरितं शिवमीडे॥

असाधारण महात्मा एवं हिंदू-देवताओंके व्यक्तित्व, रूप तथा आनुषङ्गिक सभी बातें प्रायः आधुनिक लोगोंकी दृष्टिमें घृणित, विकृत तथा अरुचिकर प्रतीत होने लगी हैं। चतुर्भुज विष्णु और चतुर्मुख ब्रह्मा भी इसके अपवाद नहीं हैं। षण्मुख कार्तिकेय तो और भी आगे बढ़ जाते हैं, किंतु त्रैलोक्यवन्द्य नटनागर त्रिभंगी श्रीकृष्ण तथा प्रथम-पूज्य गणेश भी इसके अपवाद नहीं हैं। परंतु आशुतोष शिवजी तो तथाकथित रूपमालामें शिरोमणि ही हैं। उनका तो रूप और शृङ्गार, आवासस्थान एवं भोजन आदि सभी कुछ अद्भुत और विचित्र हैं। अतएव उनको समझना-समझाना असम्भव नहीं तो दुःसम्भव अवश्य है। यही कारण है कि युगोंके बाद इस क्षण भी हम उन्हें अच्छी तरह नहीं समझ पा रहे हैं। प्राचीन मनीषी, साधक विद्वान् और ग्रन्थकार भी उनके विषयमें 'यह इतना और ऐसा ही है'—यों नहीं कह सके। महिमाका पार न पा सके। सच है किसी भी लोकातीत तत्त्व-वस्तुको तत्त्वतः समझ सकना कठिन ही है।†

* यह शास्त्रोक्त बात है कि ऋषिकल्प महापुरुष ही वास्तविक कवि हो सकता है और वही मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी तरह आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक व्यक्तित्वको हृदयके नेत्रोंसे पूर्णतः देख सकता है। हमारे महाकवि कालिदास भी ऋषिकल्प व्यक्ति थे। यही कारण है कि वे शिवजीके विभिन्न गुण तथा सदाशिवके व्यक्तित्वको ठीक तरह समझ सके तथा चित्रित भी कर सके। वह भी समन्वय-सामञ्जस्यपूर्ण। यह स्मरण रखना चाहिये कि कालिदासकी रचनाका आधार 'महा-शिवपुराण' ही है।

† अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्॥ (कुमारसम्भव)

यहाँ कालिदासके मतसे शिवजीके व्यक्तित्वके स्वीकृत और वास्तविक दो प्रकार प्रतीत हो रहे हैं—

स्वीकृत (लीलावेश)	वास्तविक
(क) दारिद्र्य	(क) सर्वसम्पत्तियोंके कारण
(ख) श्मशानाश्रित	(ख) त्रैलोक्याधिपति
(ग) भयंकराकृति	(ग) शिव, परम सुन्दर

शिवजीका स्वीकृत रूप देखनेमें अमाङ्गलिक है, मङ्गलमय नहीं, ऐसा क्यों? कालिदासके मतसे इसका सदुत्तर यह है—

विपत्तियोंके प्रतीकारको चाहनेवाला एवं ऐश्वर्यको चाहनेवाला मङ्गलका सेवन करता है, किंतु अपनी रक्षा करनेमें समर्थ, अभिलाषासे रहित, आत्मतुष्ट तथा भोग-निरपेक्ष शिवजीको इन मङ्गलोंसे क्या प्रयोजन जो तृष्णासे अन्तःकरणकी वृत्तिको दूषित करनेवाले हैं? एतद्विषयक कालिदासके अपने शब्द इस प्रकार हैं—

अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥
विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं
निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः
किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः॥

(कुमारसम्भव)

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि शिवजीका कल्पनातीत सौन्दर्य-धन-व्यक्तित्व इससे भी कहीं ऊँचा है। तभी तो पार्वती शिवजीको वरण करनेके लिये आत्म-सौन्दर्यको तपस्याके द्वारा समधिक सुन्दर और सफल बनानेके प्रयत्नमें लगीं—

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

(कुमारसम्भव)

यह भी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्य है कि हिंदू सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे वर्णाश्रम-धर्म लोकालोकसमुद्धारक है, किंतु उसमें शिवजीका अद्भुत व्यक्तित्व जनव्यक्तित्व-समुन्नायक, मानवता-धन तथा विश्वसमाज-प्राण ही नहीं, प्रत्युत आधुनिक विश्ववादके लिये चुनौती-स्वरूप भी है।

प्रकृति-रहस्य-मर्मज्ञ, सौन्दर्य-विज्ञानके आचार्य एवं व्यक्तित्वके अनोखे पारखी महाकवि कालिदासद्वारा वर्णित शिवजीका विरुद्ध-धर्माश्रित एवं हृदयस्पर्शी व्यक्तित्व झाँकी लेने और आरती उतारनेकी वस्तु है। ईश्वर करे शिवजीकी यह झाँकी मानव-मात्रके मन-मन्दिरमें विराजमान होकर 'कल्याण' के द्वारा विश्वकल्याणकारी सिद्ध हो।*



शिव शिव हर हर जपत जग मन वाणी सौं नित्य।
लहत नित्य आनन्द सो भव-दुख मिटत अनित्य॥
दुर्लभ हर-पद-रति परम शिवस्वरूपको ज्ञान।
पावत सो नर सहज ही शुद्धहृदय मतिमान॥



* शिवपुराणमें भगवान् शिवके रौद्र और सौम्य—भयंकर और मनोहर दोनों ही स्वरूपोंका विशद वर्णन है। उदाहरणके लिये पार्वती-शिव-विवाह-प्रसङ्ग देखिये। रौद्ररूपको देखकर पार्वतीकी माता अत्यन्त भयभीत और निराश हो जाती हैं एवं वही शिवके मधुर मनोहर स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर फूली नहीं समातीं।

अमोघशिवकवचम्

अमोघ शिवकवच

यह अमोघ शिवकवच परम गुह्य, अत्यन्त आदरणीय, सब पापोंको दूर करनेवाला, सारे अमङ्गलोंको, विघ्न-बाधाओं-को हरनेवाला, परम पवित्र, जयप्रद और सम्पूर्ण विपत्तियों-का नाशक माना गया है। यह परम हितकारी है और सब भयोंको दूर करता है। इसके प्रभावसे क्षीणायु, मृत्युके समीप पहुँचा हुआ महान् रोगी मनुष्य भी शीघ्र नीरोगताको प्राप्त करता है और उसकी दीर्घायु हो जाती है। अर्थाभावसे पीड़ित मनुष्यकी सारी दरिद्रता दूर हो जाती है और उसको सुख-वैभवकी प्राप्ति होती है। पापी महापातकसे छूट जाता है और इसका भक्ति-श्रद्धापूर्वक धारण करनेवाला निष्काम पुरुष देहान्तके बाद दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त होता है।

महर्षि ऋषभने इसका उपदेश करके एक संकटग्रस्त राजाको दुःखमुक्त किया था। यह कवच श्रीस्कन्द-पुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डमें है।

पहले विनियोग छोड़कर ऋष्यादिन्यास, करन्यास और हृदयादि-अङ्गन्यास करके भगवान् शंकरका ध्यान करे। तदनन्तर कवचका पाठ करे।

अस्य श्रीशिवकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसदाशिवरुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, वं कीलकम्, श्रीं ह्रीं क्लीं बीजम्, सदा-शिवप्रीत्यर्थे शिवकवचस्तोत्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ॐ ब्रह्मऋषये नमः शिरसि।
अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे।
श्रीसदाशिवरुद्रदेवतायै नमः हृदि।
ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।
वं कीलकाय नमः नाभौ।
श्रीं ह्रीं क्लीं इति बीजाय नमः गुह्ये।
विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

अथ करन्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ ह्रीं रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रीं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रूं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने मध्यमाभ्यां वषट्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने अनामिकाभ्यां हुम्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयाद्यङ्गन्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ ह्रीं रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने हृदयाय नमः।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रीं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने शिरसे स्वाहा।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रूं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने शिखायै वषट्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने कवचाय हुम्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिंदमम् ।
सहस्रकरमत्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम् ॥

जिनकी दाढ़ें वज्रके समान हैं, जो तीन नेत्र धारण करते हैं, जिनके कण्ठमें हालाहल-पानका नील चिह्न सुशोभित होता है, जो शत्रुभाव रखनेवालोंका दमन करते हैं, जिनके सहस्रों कर (हाथ अथवा किरणें) हैं तथा जो अभक्तोंके लिये अत्यन्त उग्र हैं, उन उमापति शम्भुको मैं प्रणाम करता हूँ ।

ऋषभ उवाच

अथापरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ।
जयप्रदं सर्वविपद्विमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥
नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् । वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥ १ ॥
शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः । जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥ २ ॥
हृत्पुण्डरीकान्तरसंनिविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥ ३ ॥
ध्यानावधूताखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।
षडक्षरन्याससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ॥ ४ ॥

ऋषभजी कहते हैं—जो सम्पूर्ण पुराणोंमें गोपनीय कहा गया है, समस्त पापोंको हर लेनेवाला है, पवित्र, जयदायक तथा सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छुटकारा दिलानेवाला है, उस उत्तम शिवकवचका मैं तुम्हारे हितके लिये उपदेश करूँगा । मैं विश्वव्यापी ईश्वर महादेवजीको नमस्कार करके मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले इस शिवस्वरूप कवचका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ पवित्र स्थानमें यथायोग्य आसन बिछाकर बैठे । इन्द्रियोंको अपने वशमें करके प्राणायामपूर्वक अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे ॥ २ ॥ 'परमानन्दमय भगवान् महेश्वर हृदय-कमलके भीतरकी कर्णिकामें विराजमान हैं । उन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है । वे इन्द्रियातीत, सूक्ष्म, अनन्त एवं सबके आदिकरण हैं ।' इस तरह उनका चिन्तन करे ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यानके द्वारा समस्त कर्मबन्धनका नाश करके चिदानन्दमय भगवान् सदाशिवमें अपने चित्तको चिरकालतक लगाये रहे । फिर षडक्षरन्यासके द्वारा अपने मनको एकाग्र करके मनुष्य निम्नाङ्कित शिवकवचके द्वारा अपनी रक्षा करे ॥ ४ ॥

मां पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ।
तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ५ ॥
सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।
अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ६ ॥
यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात्स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ।
योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति संजीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ७ ॥
कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ।
स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥ ८ ॥
प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।
चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥ ९ ॥
कुठारवेदाङ्कुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान् दधानः ।
चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥ १० ॥

कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥ ११ ॥
वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥ १२ ॥
वेदाभयेष्टाङ्कुशटङ्कपाशकपालढक्काक्षकशूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥ १३ ॥
मूर्द्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाव्याद् भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥ १४ ॥
पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्तिः कपोलमव्यात् सततं कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥ १५ ॥
कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥ १६ ॥
ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात्कटी धूर्जटिरीश्वरो मे ॥ १७ ॥
ऊरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
जङ्घायुगं पुंगवकेतुरव्यात् पादौ ममाव्यात्सुरवन्द्यपादः ॥ १८ ॥
महेश्वरः पातु दिनादियामे मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रियम्बकः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥ १९ ॥
पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ।
गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युंजयो रक्षतु सर्वकालम् ॥ २० ॥
अन्तःस्थितं रक्षतु शंकरो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥ २१ ॥
तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मां निषण्णं मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥ २२ ॥
मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ॥ २३ ॥
कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपः स्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।
घोरारिसेनार्णवदुर्निवारमहाभयाद् रक्षतु वीरभद्रः ॥ २४ ॥
पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ।
अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥ २५ ॥
निहन्तु दस्यून् प्रलयानलार्चिर्ज्वलत्त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान् संत्रासयत्वीशधनुः पिनाकम् ॥ २६ ॥
दुःस्वप्नदुश्शकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्षदुर्व्यसनदुस्सहदुर्यशांसि ।
उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ॥ २७ ॥

'सर्वदेवमय महादेवजी गहरे संसार-कूपमें गिरे हुए मुझ असहायकी रक्षा करें । उनका दिव्य नाम जो उनके श्रेष्ठ मन्त्रका मूल है, मेरे हृदयस्थित समस्त पापोंका नाश करे ॥ १ ॥ सम्पूर्ण विश्व जिनकी मूर्ति है, जो ज्योतिर्मय आनन्दघनस्वरूप चिदात्मा हैं, वे भगवान् शिव मेरी सर्वत्र रक्षा करें । जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, महान्से

शक्तिसे सम्पन्न हैं, वे अद्वितीय 'ईश्वर' महादेवजी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ जिन्होंने पृथ्वीरूपसे इस विश्वको धारण कर रक्खा है, वे अष्टमूर्ति 'गिरीश' पृथ्वीसे मेरी रक्षा करें । जो जलरूपसे जीवोंको जीवन-दान दे रहे हैं, वे 'शिव' जलसे मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ जो विशद लीलाविहारी 'शिव' कल्पके अन्तमें समस्त भुवनोंको दग्ध करके (आनन्दसे) नृत्य करते हैं, वे 'कालरुद्र' भगवान् दावानलसे, आँधी-तूफानके भयसे और समस्त तापोंसे मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥ प्रदीप्त विद्युत् एवं स्वर्णके सदृश जिनकी कान्ति है; विद्या, वर, अभय (मुद्रा) और कुठार जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित हैं, जो चतुर्मुख और त्रिलोचन हैं, वे भगवान् 'तत्पुरुष' पूर्व दिशामें निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥ जिन्होंने अपने हाथोंमें कुठार, वेद, अङ्कुश, पाश, शूल, कपाल, डमरू और रुद्राक्षकी मालाको धारण कर रक्खा है तथा जो चतुर्मुख हैं, वे नीलकान्ति त्रिनेत्रधारी भगवान् 'अघोर' दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥ कुन्द, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिकके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है; वेद, रुद्राक्ष-माला, वरद और अभय (मुद्रा)से जो सुशोभित हैं; वे महाप्रभावशाली चतुरानन एवं त्रिलोचन भगवान् 'सद्योजात' पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें॥ ११ ॥जिनके हाथोंमें वर, अभय, मुद्रा, रुद्राक्षमाला और टाँकी विराजमान है तथा कमल-किञ्जल्कके सदृश जिनका गौर वर्ण है, वे सुन्दर चार मुखवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् 'वामदेव' उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ जिनके कर-कमलोंमें वेद, अभय, वर, अङ्कुश, टाँकी, पाश, कपाल, डमरू, रुद्राक्षमाला और शूल सुशोभित हैं, जो श्वेत आभासे युक्त हैं, वे परम प्रकाशरूप पञ्चमुख भगवान् 'ईशान' मेरी ऊपरसे रक्षा करें ॥१३॥ भगवान् 'चन्द्रमौलि' मेरे सिरकी, 'भालनेत्र' मेरे भालकी, 'भगनेत्रहारी' मेरे नेत्रोंकी और 'विश्वनाथ' मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करें ॥ १४ ॥ 'श्रुतिगीतकीर्ति' मेरे कानोंकी, 'कपाली' निरन्तर मेरे कपोलोंकी, 'पञ्चमुख' मुखकी तथा 'वेदजिह्व' जीभकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ 'नीलकण्ठ' महादेव मेरे गलेकी, 'पिनाकपाणि' मेरे दोनों हाथोंकी, 'धर्मबाहु' दोनों कंधोंकी तथा 'दक्षयज्ञ-विध्वंसी' मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ 'गिरीन्द्रधन्वा' मेरे पेटकी, 'कामदेवके नाशक' मध्यदेशकी, 'गणेशजीके पिता' मेरी नाभिकी तथा 'धूर्जटि' मेरी कटिकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ 'कुबेरमित्र' मेरे दोनों जाँघोंकी, 'जगदीश्वर' दोनों घुटनोंकी, 'पुङ्गवकेतु' दोनों पिंडलियोंकी और 'सुरवन्द्यचरण' मेरे पैरोंकी सदैव रक्षा करें ॥ १८ ॥ 'महेश्वर' दिनके पहले पहरमें मेरी रक्षा करें । 'वामदेव' मध्य पहरमें मेरी रक्षा करें । 'त्र्यम्बक' तीसरे पहरमें और 'वृषभध्वज' दिनके अन्तवाले प्रहरमें मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥ 'शशिशेखर' रात्रिके आरम्भमें, 'गङ्गाधर' अर्धरात्रिमें, 'गौरीपति' रात्रिके अन्तमें और 'मृत्युंजय' सर्वकालमें मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ 'शंकर' घरके भीतर रहनेपर मेरी रक्षा करें । 'स्थाणु' बाहर रहनेपर मेरी रक्षा करें । 'पशुपति' बीचमें मेरी रक्षा करें और 'सदाशिव' सब ओर मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ 'भुवनैकनाथ' खड़े होनेके समय, 'प्रमथनाथ' चलते समय, 'वेदान्तवेद्य' बैठे रहनेके समय और 'अविनाशी शिव' सोते समय मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥ 'नीलकण्ठ' रास्तेमें मेरी रक्षा करें । 'त्रिपुरारि' शैलादि दुर्गोंमें और 'उदारशक्ति' मृगव्याध वनवासादि महान् प्रवासोंमें मेरी रक्षा करें ॥ २३ ॥ जिनका प्रबल क्रोध कल्पोंका अन्त करनेमें अत्यन्त पटु है, जिनके प्रचण्ड अट्टहाससे ब्रह्माण्ड काँप उठता है, वे 'वीरभद्रजी' समुद्रके सदृश भयानक शत्रुसेनाके दुर्निवार महान् भयसे मेरी रक्षा करें ॥ २४ ॥ भगवान् 'मृड' मुझपर आततायीरूपसे आक्रमण करनेवालोंकी हजारों, दस हजारों, लाखों और करोड़ों पैदलों, घोड़ों और हाथियोंसे युक्त अति भीषण सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका अपनी घोर कुठार-धारसे भेदन करें ॥ २५ ॥ भगवान् 'त्रिपुरान्तक'का प्रलयाग्निके समान ज्वालाओंसे युक्त जलता हुआ त्रिशूल मेरे दस्युदलका विनाश कर दे

और उनका पिनाक धनुष शार्दूल, सिंह, रीछ, भेड़िया आदि हिंस्र जन्तुओंको संत्रस्त करे ॥ २६ ॥ वे जगदीश्वर मेरे बुरे स्वप्न, बुरे शकुन, बुरी गति, मनकी दुष्ट भावना, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दुःसह अपयश, उत्पात, संताप, विषभय, दुष्ट ग्रहोंकी पीड़ा तथा समस्त रोगोंका नाश करें ॥ २७ ॥

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सकलतत्त्वविहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्त्तिभञ्जनाय सकलजगदभयंकराय सकललोकैकशंकराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय नीरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निस्सङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशतेजोरूपाय जय जय महारुद्र महारौद्र भद्रावतार दुःखदावदारण महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिन्दिपालतोमरमुसलमुद्गरपट्टिशपरशुपरिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्राद्यायुधभीषणकर सहस्रमुख दंष्ट्राकराल विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युंजय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरूपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युभयमपमृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरभयं मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय शूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः संताडय संताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्डवेतालमारीगणब्रह्मराक्षसान् संत्रासय संत्रासय ममाभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मामुद्धारयोद्धारय संजीवय संजीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्यायया प्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

'ॐ' जिनका वाचक है, सम्पूर्ण तत्त्व जिनके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंमें विचरण करनेवाले, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता और सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हैं। जो अखिल विश्वके एक ही संहारकारी, सब लोकोंके एकमात्र गुरु, समस्त संसारके एक ही साक्षी, सम्पूर्ण वेदोंके गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों और पीड़ाओंका नाश करनेवाले, सारे संसारको अभय देनेवाले, सब लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी, चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, अपने सनातन प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपञ्च, निष्कलङ्क, निर्द्वन्द्व, निःसङ्ग, निर्मल, गतिशून्य, नित्यरूप, नित्यवैभवसे सम्पन्न, अनुपम ऐश्वर्यसे सुशोभित, आधारशून्य, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय तथा परम शान्त, प्रकाशमय, तेजःस्वरूप हैं उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। हे महारुद्र ! महारौद्र, भद्रावतार, दुःखदावाग्नि-विदारण, महाभैरव, कालभैरव, कल्पान्तभैरव, कपालमालाधारी ! हे खट्वाङ्ग, खड्ग, ढाल, पाश, अङ्कुश, डमरू, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मूसल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधोंके द्वारा भयंकर हजार हाथोंवाले और मुखदंष्ट्रासे कराल, विकट अट्टहास्यसे दीखनेवाले, ब्रह्माण्डमण्डलका विस्तार करनेवाले, नागेन्द्र वासुकिका कुण्डल, कङ्कण तथा ढालके रूपमें धारण करनेवाले, मृत्युञ्जय, त्रिनेत्र, त्रिपुरनाशक, भयंकर नेत्रोंवाले, विश्वेश्वर, विश्वरूपमें प्रकट, बैलपर सवारी करनेवाले, विषको गलेमें भूषणरूपमें धारण करनेवाले तथा सब ओर मुखवाले शंकर ! आपकी जय हो, जय हो। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। प्रज्वलित होइये, प्रज्वलित होइये। मेरे महामृत्यु भयका तथा अपमृत्युके

भयका नाश कीजिये, नाश कीजिये (बाहरी और भीतरी) रोग-भयको जड़से मिटा दीजिये, जड़से मिटा दीजिये। विष और सर्पके भयको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये। चोर-भयको मार डालिये, मार डालिये । मेरे (काम-क्रोध-लोभादि भीतरी तथा इन्द्रियोंके और शरीरके द्वारा होनेवाले पाप-कर्मरूपी बाहरी) शत्रुओंका उच्चाटन कीजिये, उच्चाटन कीजिये; त्रिशूलके द्वारा विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कुठारके द्वारा काट डालिये, काट डालिये। खड्गके द्वारा छेद डालिये, छेद डालिये। खट्वाङ्गके द्वारा नाश कीजिये, नाश कीजिये। मुसलके द्वारा पीस डालिये, पीस डालिये और बाणोंके द्वारा बींध डालिये, बींध डालिये । आप मेरी हिंसा करनेवाले राक्षसोंको भय दिखाइये, भय दिखाइये। भूतोंको भगा दीजिये, भगा दीजिये । कूष्माण्ड, बेताल, मारियों और ब्रह्मराक्षसोंको संत्रस्त कीजिये, संत्रस्त कीजिये । मुझको अभय दीजिये, अभय दीजिये । मुझ अत्यन्त डरे हुएको आश्वासन दीजिये, आश्वासन दीजिये । नरक-भयसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। मुझे जीवन-दान दीजिये, जीवन-दान दीजिये। क्षुधा-तृष्णाका निवारण करके मुझको आप्यायित कीजिये, आप्यायित कीजिये। आपकी जय हो, जय हो । मुझ दुःखातुरको आनन्दित कीजिये, आनन्दित कीजिये। शिवकवचसे मुझे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये । त्र्यम्बक सदाशिव ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ।

ऋषभ उवाच

इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया। सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥ २८ ॥
यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम्। न तस्य जायते क्वापि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥ २९ ॥
क्षीणायुर्मृत्युमापन्नो महारोगहतोऽपि वा। सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ ३० ॥
सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम्। यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥ ३१ ॥
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः। देहान्ते शिवमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ॥ ३२ ॥
त्वमपि श्रद्धया वत्स शैवं कवचमुत्तमम्। धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिनीमाहात्म्ये भद्रायुषोपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशः ॥ १२ ॥

ऋषभजी कहते हैं—इस प्रकार यह वरदायक शिवकवच मैंने कहा है। यह सम्पूर्ण बाधाओंको शान्त करनेवाला तथा समस्त देहधारियोंके लिये गोपनीय रहस्य है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य इस उत्तम शिवकवचको सदा धारण करता है, उसे भगवान् शिवके अनुग्रहसे कभी और कहीं भी भय नहीं होता है ॥ २९ ॥ जिसकी आयु क्षीण हो चली है, जो मरणासन्न हो गया है अथवा जिसे महान् रोगोंने मृतक-सा कर दिया है, वह भी इस कवचके प्रभावसे तत्काल सुखी हो जाता और दीर्घायु प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥ शिवकवच समस्त दरिद्रताका शमन करनेवाला और सौमङ्गल्यको बढ़ानेवाला है, जो इसे धारण करता है, वह देवताओंसे भी पूजित होता है ॥ ३१ ॥ इस शिवकवचके प्रभावसे मनुष्य महापातकोंके समूहों और उपपातकोंसे भी छुटकारा पा जाता है तथा शरीरका अन्त होनेपर शिवको पा लेता है ॥ ३२ ॥ वत्स ! तुम भी मेरे दिये हुए इस उत्तम शिवकवच-को श्रद्धापूर्वक धारण करो, इससे तुम शीघ्र ही कल्याणके भागी होओगे ॥ ३३ ॥

श्रीशरभेश्वर (शिव) कवचम्

(प्रेषक—सम्मान्य श्रीशिवचैतन्यजी ब्रह्मचारी महेश्वर)

श्रीपार्वत्युवाच

देव देव महेशान परमात्मन् जगद्गुरो । रहस्यं शालुवेशस्य कवचाख्यं वद प्रभो ॥ १ ॥
सर्षिच्छन्दस्त्वधिष्ठातृदेवता कीलकं त्वनु । विनियोगो नियोक्तॄणां सर्वदा त्विह तावकम् ॥ २ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत् त्वत्तः कोऽन्यो वक्तुं क्षमस्त्विह । शालुवेशः पक्षिराजो ह्यनुध्येयः प्रसाधकैः ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

वक्ष्यामि शृणु देवेशि सर्वरक्षणमद्भुतम् । शारभं कवचं नाम चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ४ ॥
अस्य शालुवराजाख्यकवचस्य सदाशिवः । ऋषिश्छन्दोऽस्य जगती प्रोच्यते शरभेश्वरः ॥ ५ ॥
देवता प्रणवो बीजं प्रकृतिः शक्तिरुच्यते । कीलकं पक्षिराजश्च सर्वरक्षाकरो विभुः ॥ ६ ॥
परप्रयोगशान्त्यर्थं सर्वशत्रुनिवृत्तये । चतुर्वर्गार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
ऋषिं शिरसि विन्यस्य मुखेच्छन्दः सुरेश्वरि । देवतां हृदये न्यस्य बीजं गुह्ये न्यसेत् सुधीः ॥ ८ ॥
विन्यस्य पादयोः शक्तिं कीलकं नाभिमण्डले । आपादमस्तकं देवि विनियोगस्य भावना ॥ ९ ॥
खांखोमित्यादिभिः षड्भिः कराङ्गन्यासमाचरेत् । हृदये देवतां ध्यात्वा पूजयित्वा समाहितः ॥ १० ॥
स्पर्शवीक्षणसंश्लिष्टप्रतिस्थानं शनैर्जपेत् । ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ ११ ॥

ॐ अस्य श्रीशरभराजाख्यकवचस्य सदाशिवऋषिः, जगतीच्छन्दः, शरभेश्वरो देवता, ॐ बीजम्, ह्रीं शक्तिः, पक्षिराजः कीलकम्, परप्रयोगशान्त्यर्थं सर्वशत्रुनिवृत्तये चतुर्वर्गार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ सदाशिवाय ऋषये नमः शिरसि ॥ जगत्यै छन्दसे नमो मुखे ॥ शरभेश्वरदेवाय नमो हृदये ॥ ॐ बीजाय नमो गुह्ये ॥ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ॥ पक्षिराजाय कीलकाय नमो नाभौ ॥ आपादमस्तकं विनियोगस्य भावना ॥ ॐ खां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ खीं तर्जनीभ्यां स्वाहा ॥ ॐ खूं मध्यमाभ्यां वषट् ॥ ॐ खैं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ खौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ॥ ॐ खः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ॥ इति करन्यासः ॥ ॐ खां हृदयाय नमः ॥ ॐ खीं शिरसे स्वाहा ॥ ॐ खूं शिखायै वषट् ॥ ॐ खैं कवचाय हुम् ॥ ॐ खौं नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ खः अस्त्राय फट् ॥

रत्नाभं सुप्रसन्नं त्रिनयनमसृतोन्मत्तभाषाभिरामं कारुण्याम्भोधिमीशं वरदमभयदं चन्द्ररेखावतंसम् ।
शङ्खध्माताखिलाशाप्रतिहतविधिना भासमानात्मभासं सर्वेशं शालुवेशं प्रणतभयहरं पक्षिराजं नमामि ॥
चन्द्रार्काग्नित्रिदृष्टिः कुलिशवरनखश्चञ्चलात्युग्रजिह्वः काली दुर्गा च पक्षौ हृदयजठरगो भैरवो वाडवाग्निः ।
ऊरुस्थौ व्याधिमृत्यू शरभवरखगश्चण्डवातातिवेगः संहर्ता सर्वशत्रून् विजयतु शरभः शालुवः पक्षिराजः ॥

—इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य कवचं पठेत्

अथ कवचम्

श्रीशिवः पुरतः पातु मायाधीशस्तु पृष्ठतः । पिनाकी दक्षिणे पातु वामपार्श्वे महेश्वरः ॥ १ ॥
शिखाग्रं पातु मे शम्भुः ललाटं पातु शंकरः । ईश्वरो वदनं पातु भ्रुवोर्मध्ये पुरान्तकः ॥ २ ॥
भ्रुवौ पातु मम स्थाणुः कपर्दी पातु लोचने । शर्वो मे श्रोत्रयोः पातु वागीशः पातु लम्बिकाम् ॥ ३ ॥
नासयोर्मे वृषारूढो नासाग्रं वृषभध्वजः । स्मरारिः पातु मे ताल्वोरोष्ठयोर्भक्तवत्सलः ॥ ४ ॥
पातु मृत्युंजयो दन्तान् चिबुकं पातु भूतराट् । परमेशः कपोलौ मे त्रिकं पातु कपालभृत् ॥ ५ ॥

कण्ठं पशुपतिः पातु शूली पातु हनुं मम । स्कन्धद्वयं हरः पातु धूर्जटिः पातु मे भुजौ ॥ ६ ॥
भुजसंधिं महादेव ईशानो मे च कूर्परौ । मध्यसंधिं जगन्नाथः प्रकोष्ठे चन्द्रशेखरः ॥ ७ ॥
मणिबन्धौ त्रिनेत्रो मे भीमः पातु करस्थले । करपृष्ठे मृडः पातु रुद्रोऽङ्गुष्ठद्वयं मम ॥ ८ ॥
उमासहायस्तर्जन्यौ भर्गो मे पातु मध्यमे । अनामिके करालास्यः कालकण्ठः कनिष्ठिके ॥ ९ ॥
गङ्गाधरोऽङ्गुलीपर्वाण्यप्रमेयो नखानि मे । वक्षस्तत्पुरुषः पातु कक्षौ दक्षाध्वरान्तकः ॥ १० ॥
अघोरो हृदयं पातु वामदेवः स्तनद्वयम् । भालदृक् जठरं पातु नाभिं नारायणोऽव्ययः ॥ ११ ॥
कुक्षी प्रभाकरः पातु कुक्षिपार्श्वे महाबलः । सद्योजातः कटिं पातु पृष्ठभागं तु भैरवः ॥ १२ ॥
मोहनो जघनं पातु गुदं मम जितेन्द्रियः । ऊर्ध्वरेता लिङ्गदेशं वृषणं वृषभध्वजः ॥ १३ ॥
ऊरुयुग्मं भवः पातु जानुयुग्मं भवान्तकः । ॐकारः पातु मे जङ्घे फट्कारो मम गुल्फके ॥ १४ ॥
वौषट्कारः पादपृष्ठे वषट्कारोऽङ्घ्रिणोस्तले । स्वाहाकारोऽङ्गुलीपार्श्वे स्वधाकारोऽङ्गुलीर्मम ॥ १५ ॥
त्वरितः सर्वधमान् मे रोमकूपान्नृसिंहजित् । त्वचं पातु मनोवेगः कालजिद्रुधिरं मम ॥ १६ ॥
पुष्टिदः मातु मे मांसं मेदो मे स्वस्तिदोऽवतु । सर्वात्मास्थिवयं पातु मज्जां मम जगत्प्रभुः ॥ १७ ॥
शुक्रं वृद्धिकरः पातु बुद्धिं वाचामधीश्वरः । मूलाधाराम्बुजं पातु भगवाञ्छरभेश्वरः ॥ १८ ॥
स्वाधिष्ठानमजः पातु मणिपूरं हरिप्रियः । अनाहतं शालुवेशो विशुद्धं जीवनायकः ॥ १९ ॥
सर्वज्ञानप्रदो देवो ललाटं मे सदाशिवः । ब्रह्मरन्ध्रं महादेवः पक्षिराजोऽखिलाकृतिम् ॥ २० ॥
सर्वलोकवशीकारः पातु मां परगर्वजित् । वज्रमुष्टिवराभीतिहस्तः कालाभ्रसंनिभः ॥ २१ ॥
विजयासहितः पातु चैन्द्रीं ककुभमग्निजित् । शक्तिशूलकपालासिहस्तः सौदामिनीप्रभः ॥ २२ ॥
जयायुतो महाभीमः पातु वैश्वानरीं दिशम् । दण्डखेटासिमुसलशूलपाशाङ्कुशाम्बुजः ॥ २३ ॥
यमान्तकोऽजितायुक्तोऽनिशम्पातु दिशं यमीम् । खड्गखेटाग्निपरशुहस्तः शत्रुविमर्दनः ॥ २४ ॥
अपराधजितया युक्तः सदाव्यान्नैर्ऋतीं दिशम् । पाशाङ्कुशधनुर्बाणपाणिर्घोरायुतो ग्रहः ॥ २५ ॥
हरिद्राभोऽनिशं पायाद्वारुणीं दिशमात्मजित् । ध्वजोग्रकवचोदारभुजो दुर्गायुतः खगः ॥ २६ ॥
चण्डवेगः शिवः पायात्सततं मारुतीं दिशम् । गदाक्षस्रग्वराभीतिकराम्भोजः श्रियायुतः ॥ २७ ॥
कनकाभो महातेजाः पातु कौबेरकीं दिशम् । त्रिशूलासिकपालाग्निदोस्तलो विजया युतः ॥ २८ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्ग ऐशीं पातु पराजितः । जपास्रक्पुस्तकाम्भोजकमण्डलुकरान्वितः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वं पातु गिरा युक्तः सर्वभूतहिते रतः । शङ्खचक्रगदाभीतिहस्तः पद्मयुतोऽव्ययः ॥ ३० ॥
नीलाञ्जनसमो नीलः पातालं पात्वनारतम् । सहेतिबाहुसाहस्रः सशक्तिः सर्वपालकः ॥ ३१ ॥
अनुक्ता विदिशः पातु शालुवो नरसिंहजित् । शरभः पातु संग्रामे युद्धे वैरिकुलान्तकः ॥ ३२ ॥
सर्वसौभाग्यदः पातु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । सर्वं सम्पत्प्रदः पातु धनधान्यादिकं मम ॥ ३३ ॥
संतानदः सुताः पातु पुत्रानायुष्करोऽवतु । बन्धून् वृद्धिकरः पातु गृहं पातु जनेश्वरः ॥ ३४ ॥
ग्रामं ग्रामेश्वरः पातु राज्यं पातु दिगम्बरः । राष्ट्रं शान्तिकरः पातु राजानं धर्मसाधकः ॥ ३५ ॥
मार्गं दुष्टहरः पातु धर्मकर्माणि साधकः । वटुकः पातु मे सर्वमवस्थात्रितयेषु च ॥ ३६ ॥

× × × ×

स्पर्शवीक्षणसंश्लिष्टप्राणरक्षां मनोजवः । प्रधानमूर्तिभावश्च प्रसादोऽध्वसुशुद्धिकृत् ॥ ३७ ॥
साधकः प्रणवं तारं नमो भगवतेति च । प्रतिनाम चतुर्थ्यन्तं स्पर्श इत्यभिधीयते ॥ ३८ ॥
द्विर्ज्वलप्रज्वलासाध्यं साधय द्विर्द्विरक्षकृत् । सर्वभूतेभ्यो हुम् फट् च स्वाहान्तं यत्तदीक्षणम् ॥ ३९ ॥
स्पृशन् स्पृशञ्जपं कृत्वा प्रतिस्थानं समाहितः । प्रार्थयेदखिलश्रेष्ठं हृदिस्थं शालुवेश्वरम् ॥ ४० ॥
मूलं जप्त्वा शतं देवि कवचं शारभं पठेत् ।
ये ग्रामघातकाः क्रूराः कपटा दौष्टिकर्भटाः । तस्कराः शत्रवः क्रुद्धा वधासक्ताः पलाशिनः ॥ ४१ ॥

छद्माचारा विटा भ्रष्टा दिवाचरनिशाचराः। ते सर्वे पक्षिराजस्य पक्षवातपराहताः ॥ ४२ ॥
स्त्रीबालसहिताः क्षिप्रं पितृमातृकुलान्विताः। भग्नचित्ता हृतस्थाना यान्तु देशान्तरं स्वयम् ॥ ४३ ॥
ये तु दुष्टग्रहा रक्षःपिशाचा देवयोनयः। चतुष्षष्टिगणाः सप्तसप्तत्युन्मत्तका ग्रहाः ॥ ४४ ॥
अष्टाशीतिर्महाभूताः सप्तकोटिमहाग्रहाः। नवतिर्ज्वरभेदाश्च शतभेदाश्च कृत्तिकाः ॥ ४५ ॥
पञ्चाशद्गणनाथाश्च नियुतं कृत्रिमा ग्रहाः। प्रेतारूढास्त्रयस्त्रिंशत् पिण्डदानपरायणाः ॥ ४६ ॥
अयुतं क्षुद्रभेदाश्च प्रयुतं रुद्रजातयः।
अष्टादश महासाध्याश्चत्वारिंशच्छिवाह्वयाः। द्वात्रिंशद्वह्निवक्त्राश्च त्रिंशन्मार्जारवक्त्रकाः॥ ४७ ॥
चतुःषष्ट्याखुरूपाश्च ये चान्ये क्षुद्रयोनयः। ते सर्वे पक्षिराजस्य शङ्खनिस्वनमोहिताः ॥ ४८ ॥
निषण्णाः स्खलितस्वान्ताः प्राणत्राणपरायणाः। गच्छन्तु सप्रयोक्तारो देशान्तरमनिच्छया ॥ ४९ ॥
ये च मूषकवैडालशुनकोरगवृश्चिकाः। आशीविषाः शिवा व्याला व्याघ्रा ऋक्षेभशूकराः ॥ ५० ॥
गृध्राः श्येनाः खगाः कङ्का दंशका भ्रंशका मृगाः। एते शरभहस्ताग्रनखक्षतविमोहिताः ॥ ५१ ॥
स्रवद्रक्तच्छटासिक्ताः शिलातलनिताडिताः। सम्भेदनेन वै शीघ्रं नश्यन्त्वखिलदुश्चराः ॥ ५२ ॥
न दशन्तूरगाः क्वापि नातिवातोऽपि वीजतु। न दहत्वसहो वह्निरपां तापो न चाधिकम् ॥ ५३ ॥
न वर्षत्वतिवृष्टिश्च न तपत्वशनिः क्वचित्। न क्रामत्वपमृत्युश्च न चोत्पातः कदाचन ॥ ५४ ॥
न मारी कालमृत्युश्च शरभेश्वरशासनात्। न म्रियन्त्वम्भसि जना न भवत्वशुभं क्वचित् ॥ ५५ ॥
न वदन्त्वसहं वाक्यं जन्तवो मम देशके। मास्तु वैरं च जन्तूनामन्योन्यं राज्यके मम ॥ ५६ ॥
भवन्तु सुखिनः सर्वे सर्वाः सन्तु पतिव्रताः। सर्वाः सूयन्तु सत्पुत्रान् पुत्रीश्च शुभलक्षणाः ॥ ५७ ॥
सर्वे सर्वाश्च नन्दन्तु सन्तु कल्याणकारकाः। राजन्वती मही चास्तु राजा भवतु धार्मिकः ॥ ५८ ॥
संस्रवन्तु पयो गावः फलन्त्वोषधयोऽधिकम्।
भवन्तु फलदा वृक्षाः सम्यग् भवतु मेऽखिलम्। ममास्तु तरसा नूनमात्मज्ञानमचञ्चलम् ॥ ५९ ॥
कामक्रोधमहालोभाः संमोहमदमत्सराः। मा सन्तु क्वापि मे सर्वे भगवन् करुणानिधे ॥ ६० ॥
शरभेश्वर विश्वेश पक्षिराज दयानिधे। देहि मे ह्यचलां भक्तिं प्रपन्नोऽस्मि पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
गौरीवल्लभ कामारे कालकूटविषादन। मामुद्धर भवाम्भोधेस्त्रिपुरघ्नान्तकान्तक ॥ ६२ ॥
शालुवेश जगन्नाथ सर्वभूतहितेरत। पाहि मां तरसा चौरान् दुष्टान्नाशय नाशय ॥ ६३ ॥
कालभैरव विश्वेश विश्वरक्षापरायण। रक्ष मूषकचौरेभ्यो धान्यराशिमिमं प्रभो ॥ ६४ ॥
पक्षिराज महादेव प्रणतार्तिविनाशन। मदीयानि च वस्तूनि नित्यं पालय पालय ॥ ६५ ॥
सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुष्टविनाशन। तस्करेण हृतं वस्तु द्रुतं दापय दापय ॥ ६६ ॥
येऽकर्मवादिनः क्षुद्राः क्षुद्रोपद्रवकारकाः।
सर्वाचारपरित्यक्ता मानहीनाश्च रोधकाः। ते सर्वे शालुवेशस्य मुसलायुधचूर्णिताः ॥ ६७ ॥
नश्यन्तु निमिषार्धेन पावकावृततूर्णवत्। ये जना द्रोहिणोऽपाशास्त्वनालोचितभाषिणः ॥ ६८ ॥
सत्कर्मविघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु परायणाः। ते शालुवेशहस्ताग्रखड्गनिर्भिन्नदेहिनः ॥ ६९ ॥
पतन्तु भूतले याम्यां प्राणास्तेषां प्रयान्तु हि। त्वदङ्घ्रिध्याननिर्दग्धपापकोशाय मन्त्रिणे ॥ ७० ॥
मह्यं द्रुह्यन्ति ये तेषां विभवा विक्षरन्त्वरम्। त्वदाचारपरं भक्तं साधकं मां विवेकिनम् ॥ ७१ ॥
ये चाक्रामन्ति संग्रामे ते गच्छन्तु पराहताः। त्वदीयेनैव मार्गेण संचरन्तं जयातुरम् ॥ ७२ ॥
ये वदन्ति परीवादं भ्रान्ताः शीघ्रं भवन्तु ते। त्वद्दासममलं धीरं ये मां तर्जयितुं बलात् ॥ ७३ ॥
मनसाप्यनुमन्यन्ते तत्स्वान्तं भ्रमतु क्षणात्। मनसा कर्मणा वाचा ये कुर्वन्त्यतिदुस्सहम् ॥ ७४ ॥
ते महाशोकरोगाब्धौ पतन्त्वाशु शिवाज्ञया। मदीयानि च वस्तूनि ग्रहीतुं योऽवलोकते ॥ ७५ ॥
तत्क्षणादेव नष्टाक्षो भवत्वाशु शिवाज्ञया। मदीयद्रव्यमाहृत्य ये गच्छन्तीह तस्कराः ॥ ७६ ॥

सिंहारिपाशसम्बद्धास्ते गच्छन्तु प्रदक्षिणम् । सीमातीताश्च ये चौरा गृहीतद्रव्यसंचयाः ॥ ७७ ॥
अवशावयवाः सर्वे ते गच्छन्तु शिवाज्ञया । तस्करा निम्नगातीताः स्वात्तधान्यधनादिकाः ॥ ७८ ॥
पक्षिराजाङ्कुशाकृष्टाः समागच्छन्तु ते द्रुतम् । समाहृतपदार्थौघा देशातीताश्च तस्कराः ॥ ७९ ॥
शरभेशहलाकृष्टास्त आगच्छन्तु सानुगाः । चौरा गृहीतुमुद्युक्ताः समानपरिशालिनः ॥ ८० ॥
समाहृतपदार्थाढ्यास्त आगच्छन्तु सानुगाः । शरभेशहलाकृष्टास्त आगच्छन्तु मद्गृहम् ॥ ८१ ॥
ते शालुवेशपक्षोत्थवातैर्गच्छन्तु सत्वरम् ॥ ८२ ॥
शान्तं विवेकिनं भक्तं त्वदङ्घ्रिध्यानतत्परम् । ब्रुवन्ति येऽसहं प्राणास्तेषां यान्तु यमीयसीम् ॥ ८३ ॥
षट्त्रिंशत्कोष्ठके यन्त्रे रेखाशूलाग्रसाधिते । स्वेच्छामन्त्रं लिखित्वा तु जपेदाराध्य साधकः ॥ ८४ ॥
उदङ्मुखः सहस्रं तु रक्षणाय जपेन्निशि । नष्टाहरणके पञ्चरात्रं पश्चिमदिङ्मुखः ॥ ८५ ॥
मारणे सप्तरात्रं तु दक्षिणाभिमुखो जपेत् । रोगनिग्रहणे चाष्टरात्रमाग्नेयदिङ्मुखः ॥ ८६ ॥
इति गुह्यं महामन्त्रं परमं सर्वसिद्धिदम् । शरभेशाख्यकवचं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ८७ ॥
प्रत्यहं प्रतिपक्षं वा प्रतिमासमथापि वा । यो जपेत्प्रतिवर्षं वा वरेण्यः स शिवो भवेत् ॥ ८८ ॥
एवं हि जपतः पुंसः पातकं चोपपातकम् । तत्सर्वं लयमाप्नोति रविणा तिमिरं यथा ॥ ८९ ॥
दशाब्दं यो जपेन्नित्यं प्रातरुत्थाय साधकः । सर्वसिद्धिं समाश्रित्य देहान्ते स शिवो भवेत् ॥ ९० ॥
त्रिकालं ध्यानपूर्वं तु जपेद् द्वादशवार्षिकम् । कायेनानेन वै देवि जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः ॥ ९१ ॥
शतवारं जपेन्नित्यं मण्डलं यो वरानने । सोऽणिमादीन् गुणान्प्राप्य विचरेत्स्वेच्छया सदा ॥
अतलादिधरण्यादिभुवनानि चतुर्दश । विचरेत्कामतः सर्वैः पूज्यमानो यथासुखम् ॥ ९३ ॥
त्रिकालं यो जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् । सदेहः शरभेशस्य सारूप्यं लभतेऽम्बिके ॥ ९४ ॥
षण्मासं यो जपेदेवं प्रयतस्तु दृढव्रतः । मद्रूपधारकैर्मर्त्यैः सर्वसिद्धिप्रदायकैः ॥ ९५ ॥
मम लोकेषु सम्पूज्यो विष्णुलोके तथैव च । ब्रह्मलोके च रमते सर्वत्र न निवार्यते ॥ ९६ ॥
इन्द्राग्नियमयक्षेशजलेशपवनैः सह । सोमेशानकलक्ष्मीशैर्दिशाम्पालैश्च पूज्यते ॥ ९७ ॥
आदित्यसोमपृथिवीजबुधश्रीगुरुभार्गवैः । पूज्यते स ग्रहैः सर्वैः शनिराहुसकेतुभिः ॥ ९८ ॥
क्रत्वङ्गिरःपुलस्त्यैश्च पुलहात्रिमरीचिभिः । दक्षकश्यपभृग्वाद्यैर्योगिभिश्च सुपूज्यते ॥ ९९ ॥
भैरवैर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्वालखिल्यकैः । दिग्गजैश्च महानागैर्दिव्यास्त्रैर्दिव्यवाहनैः ॥ १०० ॥
माहेश्वरैर्महारत्नैः कामधेनुसुरद्रुमैः । सरिद्भिः सागरैः शैलैर्देवताभिस्तपोधनैः ॥ १०१ ॥
दानवै राक्षसैः क्रूरैः सिद्धगन्धर्वकिंनरैः । यक्षविद्याधरैर्नागैरप्सरोभिः स पूज्यते ॥ १०२ ॥
अपस्मारग्रहैर्भीमैरुन्मत्तैर्ब्रह्मराक्षसैः । वेतालैः खेचरैर्मर्त्यैः कूष्माण्डैः राक्षसग्रहैः ॥ १०३ ॥
ज्वालावक्त्रैस्तमोहारैः स्त्रीग्रहैः पावकग्रहैः । भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्ग्रहैः सर्वैः स पूज्यते ॥ १०४ ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च जातिभिः । पशुपक्षिमृगव्यालैः पूज्यते सर्वजन्तुभिः ॥ १०५ ॥
किमत्र बहुना देवि तव वक्ष्ये यथातथम् । मया च विष्णुना चैव विश्वकर्त्रा च पाल्यते ॥ १०६ ॥
भवत्या च गिरा लक्ष्म्या ब्रह्माण्याद्याष्टशक्तिभिः । गणेश्वरादियोगीन्द्रैर्योगिनीभिश्च पाल्यते ॥ १०७ ॥
य इदं प्रजपेत्तस्यासाध्यं नैव च विद्यते । कवचेन्द्रं महामन्त्रं जपेदस्मादनुत्तमम् ॥ १०८ ॥
उच्चाटने मरुद्वक्त्रो विद्वेषे राक्षसाननः । प्रागाननोऽभिवृद्धौ तु सर्वे त्वीशानदिङ्मुखाः ॥ १०९ ॥
यो जपेत्कवचं नित्यं त्रिकालं ध्यानपूर्वकम् । सर्वसिद्धिमवाप्नोति सहसा साधकोत्तमः ॥ ११० ॥
देवदेव महादेव शिव कारुण्यवारिधे । पाहि मां प्रणतं स्वामिन् प्रसीद सततं मम ॥ १११ ॥
यत्कृत्यं तन्न कृतं यदकृत्यं कृत्यवच्चरितम् । उभयोःप्रायश्चित्तं शिव तव नामाक्षरद्वयोच्चरितम् ॥ ११२ ॥

अष्टग्रही

इधर अष्टग्रहीके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें विद्वानोंकी भविष्यवाणियाँ बहुत छप रही हैं। इससे तमाम देशमें एक आतङ्क छा गया है। इसमें इतनी ही अच्छी बात है कि इस आतङ्क तथा भयके कारण लोग भगवदाराधना और देवाराधनामें लग रहे हैं। हमारे पास आजकल अष्टग्रहीके सम्बन्धमें दो प्रकारके पत्र बहुत अधिक मात्रामें आ रहे हैं। १. भय तथा घबराहटके और २. छोटे-बड़े शुभ अनुष्ठानोंकी योजनाके तथा पूर्णताके।

अष्टग्रहीका फल बतलानेवाले अधिकांश विद्वानोंने न्यूनाधिकरूपमें अनिष्ट फल ही बतलाया है। पर कुछ विद्वानोंने यह भी कहा है कि 'इस अष्टग्रहीका फल शुभ होगा, खास करके भारतवर्षके लिये अवश्य; अथवा जितना अधिक अनिष्ट बतलाया जाता है, उतना न होकर बहुत ही कम होगा।' भगवान् करें, कहीं कोई अमङ्गल-अनिष्ट हो ही नहीं। सारी भविष्यवाणियाँ असत्य होकर भी सबका मङ्गल हो तो वह वाञ्छनीय है। और कौन कह सकता है कि 'ऐसा ही होगा' और 'ऐसा नहीं ही होगा।' भगवान्की कृपासे सारे अमङ्गल परम मङ्गल-रूपमें परिणत हो सकते हैं। हम तो हृदयसे यही चाहते हैं कि संसारमें प्रत्येक प्राणी सुखी रहे, नीरोग रहे, मङ्गलमय फल प्राप्त करे, किसीको भी तनिक भी दुःखका भागी न होना पड़े—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

परंतु होगा वही, जो नित्य मङ्गलमय भगवान्के मङ्गल-विधानके अनुसार होना निश्चित हो चुका है। इसलिये घबराने, भयभीत होने एवं चिन्ता करनेकी कोई भी बात नहीं है। इस जगत्में—प्रकृतिके राज्यमें सभी कुछ अनित्य और क्षणभंगुर है। जो जन्मा है, वह मरेगा ही। जो बना है, वह बिगड़ेगा ही। द्वन्द्वात्मक जगत्में सुखके साथ दुःख, लाभके साथ हानि और जन्मके साथ मृत्यु लगी ही हुई है। यही संसारका स्वरूप है। इससे वस्तुतः चेतन आत्माका—जो हमारा असली स्वरूप है, कुछ भी भला-बुरा नहीं होता। आत्मा नित्य सत्य सनातन अजर अमर अविनाशी है। वह किसी भी अवस्थामें विकारको प्राप्त नहीं होता। भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
(२ । २३-२४)

'न तो इस आत्माको शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न इसको जल भिगो सकता है और न पवन सुखा ही सकता है। यह न कभी कटनेवाला है, न कभी जलनेवाला है, न भींगनेवाला है और न सूखने ही वाला है। यह नित्य है, सर्वगत है, स्थाणु है, अचल है और सनातन है।'

आत्माके इस स्वरूपको ठीक समझ लेनेपर यह भलीभाँति निश्चय हो जाता है कि चाहे जितने भयानक बम फटें, चाहे जितनी आग लगे, चाहे जितनी बाढ़ आवे, चाहे जितने भूकम्प-तूफान आवें—इस नित्य अमर आत्माका उनसे कुछ भी नहीं बिगड़ सकता।

भारत आत्मस्वरूपमें स्थित—'स्वस्थ' आत्मज्ञानियों-का देश है। हमारा वेदान्तज्ञान केवल कहने-सुननेके लिये ही क्यों हो, वह तो जीवनमें उतरना चाहिये। अतएव चिन्ता-भय-शोक आदिका वास्तवमें कोई भी कारण नहीं है। सुन्दर सृजन हो या भयंकर महाप्रलय हो—आत्मा नित्य सच्चिदानन्द ही रहेगा।

दूसरे, भगवान्पर विश्वास करनेवालेकी दृष्टिमें भी डरने-घबरानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। सारा जगत्

भगवान्का लीलाक्षेत्र है और यहाँ होनेवाली प्रत्येक परिणामरूप घटना भगवान्की लीला है—नाटकमें सभी रसोंकी अपेक्षा और उपयोगिता होती है। करुण भी, रौद्र भी; शान्त भी, भयानक भी। प्रत्येक रसमें ही सुन्दर नाट्याभिनय है। जगत्‌रूपी नाट्यमञ्चपर नटवर भगवान्का यह नाटक नित्य चलता ही रहता है। यही सृष्टि—संसार है। विश्वासी भक्तको प्रत्येक नाम-रूपमें, प्रत्येक सुन्दर-भयंकर अभिनयमें अपने भगवान्को पहचानकर और उनकी विविध विचित्र नाट्य-भंगिमाको देख-देखकर पद-पदपर प्रसन्न होना चाहिये और यदि उस नाटकमें अपनेको भी किसी अभिनय करनेका आदेश मिला हो तो आदेशके अनुसार केवल प्रभुकी प्रसन्नताके लिये स्वाँगके अनुरूप नाट्य करना चाहिये। न हर्ष करना न शोक; न आसक्ति न निर्वेद; न घबराना चाहिये न फूलना। मङ्गलमय प्रसूतिगृहकी दीपशिखाकी अग्निमें और घोर श्मशानकी चिताग्निमें क्या अन्तर है? दोनों ही एक ही अग्निके दो लीलास्वरूप हैं। जहाँ जो रूप आवश्यक हो, वहाँ वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिये। पर मनमें रखनी चाहिये—सदा सर्वत्र समता, सदा सर्वत्र भगवल्लीलाकी भावना।

सिद्धान्ततः यही परम सत्य होनेपर भी व्यवहारमें आवश्यकतानुसार यथासमय सब कुछ करना भी चाहिये। इसीलिये वर्तमानमें 'अनिष्टनाशक' और 'इष्ट-साधक' नवीन प्रारब्धके निर्माणके लिये यथासाध्य दैवी प्रयत्न करना उचित है। प्रसन्नताकी बात है, इस समय देशभरमें सभी प्रदेशोंसे छोटे-बड़े व्यक्तिगत और सामूहिक दैवी-साधन जोरोंसे चल रहे हैं। इनसे अवश्य ही बहुत कुछ संकट टलनेकी और शुभ परिणामके निर्माणकी पूरी सम्भावना है। पर इन अनुष्ठानोंके साथ-साथ हमें अपने आचरण-सुधारका भी प्रयत्न जोरोंसे करना चाहिये, जो समस्त अनिष्टके नाशके लिये परमावश्यक है। जैसे रोगनाशके लिये दवा तो की जाय, पर कुपथ्य न छोड़ा जाय तो रोगका समूल नाश नहीं होता। एक ओर दवासे रोग कुछ दबता है तो दूसरी ओर कुपथ्यसे नये-नये रोग पैदा होते और बढ़ते रहते हैं। यह सभी जानते हैं—दुःख-कष्ट पापके फल हैं। हम पापके प्रायश्चित्तके लिये और नवीन पुण्य-फल-निर्माणके लिये देवाराधन तो करें; पर साथ ही दुराचरण, पापकर्म भी करते रहें तो बुरे प्रारब्धका बनना कैसे बंद होगा? और कैसे हमें दुःखोंसे छुटकारा मिलेगा? अतएव भगवदाराधना तथा देवाराधनाके साथ-साथ काम-क्रोध-लोभजनित चोरी, कपट, छल, हिंसा, मिथ्याचार, ठगी, परस्वका हरण, व्यभिचार, असदाचार आदि दोषोंसे भी अवश्य बचना चाहिये। इन दोषोंसे बचकर दृढ़ श्रद्धाविश्वासपूर्वक निम्नलिखित साधन यथारुचि, यथासाध्य व्यक्तिगत या सामूहिक किये जायँगे तो यथायोग्य अवश्य ही शुभ फल प्राप्त होगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

(१) हिंदू (वैदिक धर्मावलम्बी सनातनी, आर्यसमाजी तथा जैन, बौद्ध, सिख एवं अन्यान्य समस्त हिंदू-धर्म-सम्प्रदायी), मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी अपने-अपने धर्मानुसार निर्दोष भगवत्प्रार्थना, धर्म-सेवन, पवित्र आचरण, संयम, सेवा आदि करें।

(२) वेदाध्ययन, वेद-पारायण, धर्मग्रन्थ-पाठ, विष्णु-रुद्रयाग, गायत्रीपुरश्चरण, रुद्राभिषेक, रुद्रीपाठ, महामृत्युंजय-जाप, पुराण-पाठ आदिके अधिक-से-अधिक आयोजन हों।

(३) माता भगवतीके प्रसन्नार्थ नवचण्डी, शत-चण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी आदि अनुष्ठान हों। व्यक्तिगतरूपसे लोग अपने-अपने सुविधानुसार पाठ करें। नवार्णमन्त्रका जप करें, दुर्गानाम-जप करें-करावें। सम्पुटके मन्त्र 'कल्याण'के गतवर्षके ११वीं संख्याके पृष्ठ १३३५ पर छपे हैं।

(४) श्रीमद्भागवतके सप्ताह पारायण अधिक-से-

अधिक किये-कराये जायँ । वाल्मीकि-रामायणके नवाह्न-पारायण या सुन्दरकाण्डके पाठ किये-कराये जायँ । निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है ।

श्रीमद्भागवतमें सम्पुट—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

वाल्मीकिरामायणमें सम्पुट—

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

(५) श्रीरामचरितमानसके मासिक, नवाह्न, अखण्ड या यथारुचि यथासाध्य जिनसे जितना हो सके, पाठ करें, करावें । सम्पुटकी चौपाई गतवर्षके ११वें अंक पृष्ठ १३३५ पर छपी हैं ।

(६) अपनी रुचि तथा श्रद्धाके अनुसार श्रीशंकर-जीके 'नमः शिवाय', भगवान् विष्णुके 'हरिःशरणम्' और श्रीगणेशजीके 'गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप करें-करावें । भगवन्नामका कीर्तन अधिक-से-अधिक किया-कराया जाय ।

(७) गौओंको चारा, घास, भूसा, दाना खिलाया जाय ।

(८) गरीब, रोगी, दीन, बाढ़पीड़ित, विधवा स्त्री, अनाथ बालक, विद्यार्थी आदिकी सेवा-सहायता की जाय ।

(९) गत वर्षके १२ वें अङ्कमें पृष्ठ १३९४ पर प्रकाशित 'नारायण-कवच'का और इसी विशेषाङ्कमें छपे—'अमोघ शिवकवच' 'श्रीशरभेश्वरका (शिव) कवच' और नीचे छपे हुए 'श्रीमहामृत्युंजय कवच', 'संकष्टनाशन विष्णुस्तोत्र' अथवा 'उपमन्युकृत शिवस्तोत्रम्' का पाठ यथारुचि संस्कृत जाननेवाले लोग स्वयं करें तथा करावें । ये सर्वोपद्रवनाशक बहुत लाभप्रद हैं ।

श्रीमहामृत्युंजयकवचम्

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सृष्टिस्थितिलयात्मक ।
मृत्युंजयस्य देवस्य कवचं मे प्रकाशय ॥

श्रीईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
मार्कण्डेयोऽपि यद्धृत्वा चिरजीवी व्यजायत ॥
तथैव सर्वदिक्पाला अमरत्वमवाप्नुयुः ।
कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥
मृत्युंजयः समुद्दिष्टो देवता पार्वतीपतिः ।
देहारोग्यबलायुष्ट्वे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
ॐ त्र्यम्बकं मे शिरः पातु ललाटं मे यजामहे ।
सुगन्धिं पातु हृदयं जठरं पुष्टिवर्धनम् ॥
नाभिमुर्वारुकमिव पातु मां पार्वतीपतिः ।
बन्धनादूरुयुग्मं मे पातु कामाङ्गनाशनः ॥
मृत्योर्जानुयुगं पातु दक्षयज्ञविनाशनः ।
जङ्घायुग्मं च मुक्षीय पातु मां चन्द्रशेखरः ॥
मामृताच्च पदद्वन्द्वं पातु सर्वेश्वरो हरः ।
असौ मे श्रीशिवः पातु नीलकण्ठश्च पार्श्वयोः ॥
ऊर्ध्वमेव सदा पातु सोमसूर्याग्निलोचनः ।
अधः पातु सदा शम्भुः सर्वापद्विनिवारणः ॥
वारुण्यामर्धनारीशो वायव्यां पातु शंकरः ।
कपर्दी पातु कौबेर्यामैशान्यां ईश्वरोऽवतु ॥
ईशानः सलिले पायादघोरः पातु कानने ।
अन्तरिक्षे वामदेवः पायात्तत्पुरुषो भुवि ॥
श्रीकण्ठः शयने पातु भोजने नीललोहितः ।
गमने त्र्यम्बकः पातु सर्वकार्येषु सुव्रतः ॥
सर्वत्र सर्वदेहं मे सदा मृत्युंजयोऽवतु ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वकामदम् ॥
सर्वरक्षाकरं सर्वग्रहपीडानिवारणम् ।
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यमायुरारोग्यदायकम् ॥
त्रिसंध्यं यः पठेदेतन्मृत्युस्तस्य न विद्यते ।
लिखितं भूर्जपत्रे तु य इदं मे व्यधारयेत् ॥
तं दृष्ट्वैव पलायन्ते भूतप्रेतपिशाचकाः ।
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः सिद्धगन्धर्वराक्षसाः ॥
बालग्रहादिदोषा हि नश्यन्ति तस्य दर्शनात् ।
उपग्रहाश्चैव मारीभयं चौराभिचारिणः ॥

इदं कवचमायुष्यं कथितं तव सुन्दरि ।
न दातव्यं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ॥
(इति महामृत्युंजयकल्पे देवीश्वरसंवादे महामृत्युंजय-कवचं समाप्तम्)

[इसके पाठ तथा धारण करनेसे सारे अशुभका नाश तथा शुभकी प्राप्ति होती है]

संकष्टनाशनविष्णुस्तोत्रम्

नारद उवाच—

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ।
भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥

देवा ऊचुः—

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः
सदाभक्तकार्योद्यतायार्त्तिहन्त्रे ।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे
गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे
भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे
शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥
नमो दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखा-
चलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ।
भुजङ्गेशतल्पेशयायार्कचन्द्र-
द्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नता स्मः ॥

नारद उवाच—

संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत् पठेत्तु यः ।
स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥
संकष्टनाशनविष्णुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

उपमन्युकृतशिवस्तोत्रम्

जय शंकर पार्वतीपते
मृड शम्भो शशिखण्डमण्डन ।
मदनान्तक भक्तवत्सल
प्रियकैलास दयासुधाम्बुधे ॥
सदुपायकथास्वपण्डितो
हृदये दुःखशरेण खण्डितः ।
शशिखण्डशिखण्डमण्डनं
शरणं यामि शरण्यमीश्वरम् ॥
महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो
दर्शनभेदिनो भिदे ।
दिननाथ इव स्वतेजसा
हृदयव्योम्नि मनागुदेहि नः ॥
न वयं तव चर्मचक्षुषा
पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः ।
कृपयाभयदेन चक्षुषा
सकलेनेश विलोकयाशु नः ॥
त्वदनुस्मृतिरेव पावनी
स्तुतियुक्ता न हि वक्तुमीश सा ।
मधुरं हि पयः स्वभावतो
ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ॥
सविषोऽप्यमृतायते भवान्
शवमुण्डाभरणोऽपि पावनः ।
भव एव भवान्तकः सतां
समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥
अपि शूलधरो निरामयो
दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान् ।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वर-
श्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥
वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा
परिदृष्टः किल कल्पपादपः ।
हृदये स्मृत एव धीमते
नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान् ॥
सहसैव भुजङ्गपाशवान्
विनिगृह्णाति न यावदन्तकः ।
अभयं कुरु तावदाशु मे
गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥
सविषैरिव भीमपन्नगै-
र्विषयैरेभिरलं परिक्षतम् ।
अमृतैरिव सम्भ्रमेण मा-
मभिषिञ्चाशु दयावलोकनैः ॥
मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां
गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः ।
करुणाकर येन तेन माम-
वसन्नं ननु पश्य चक्षुषा ॥

प्रणमाम्यथ यामि चापरं
　　शरणं कं कृपणाभयप्रदम् ।
विरहीव विभो प्रियामयं
　　परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥
बहवो भवतानुकम्पिताः
　　किमितीशान न मानुकम्पसे ।
दधता किमु मन्दराचलं
　　परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥
अशुचिं यदि मानुमन्यसे
　　किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते ।
उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं
　　विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥
क दृशं विदधामि किं करो-
　　म्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः ।
क नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मा-
　　मयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते ॥
विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो
　　हन्मि शिरश्छिनद्मि वा ।
किमु रोदिमि रारटीमि किं
　　कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥
शिव सर्वग शर्व शर्मद
　　प्रणतायाज दयां कुरुष्व मे ।
नम ईश्वर नाथ दिक्पते
　　पुनरेवेश नमो नमोऽस्तु ते ॥
शरणं तरुणेन्दुशेखरः
　　शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ
　　शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥
उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं
　　जपतः शम्भुसमीपवर्तिनः ।
अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः
　　परमायुः प्रददाति शंकरः ॥
उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं
　　प्रजपेद्यस्तु शिवस्य संनिधौ ।
शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात्
　　सह तेनैव शिवेन मोदते ॥

शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

रुद्राष्टकस्तोत्र

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहं ॥ १ ॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ॥
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥ २ ॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं । मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥ ३ ॥
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥ ४ ॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं ॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥ ५ ॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥ ६ ॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शान्ति संतापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥ ७ ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्न मामीश शंभो ॥ ८ ॥
श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
　　ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥ ९ ॥

याद रक्खो—भगवान् शिव निजात्मस्वरूप, निरञ्जन, निराभास, निर्गुण, निर्विकार, निरामय, निरीह, नित्यसत्य, सर्वातीत, शब्दातीत, प्रकृतिपर, परात्पर, परतम, परमानन्द-मय, परब्रह्म हैं। वे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सर्वोपरि, सर्वाश्रय, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वगत, सर्वशक्तिमान् लीलाविहारी हैं।

याद रक्खो—भगवान् शिवजी ही वेदरूप, वेदवेद्य, वेदज्ञान हैं, वे प्रणवरूप हैं। 'प्रणव' उनका वाच्य है, वे वाचक हैं। उन पञ्चानन प्रभुके उत्तरकी ओरके मुखसे अकार, पश्चिमके मुखसे उकार, दक्षिणके मुखसे मकार, पूर्वके मुखसे बिन्दु और मध्यके मुखसे नाद उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार पाँचों मुखोंसे निर्गत इन्हीं सबके समग्ररूपमें 'ॐ' एकाक्षर बना है। समस्त नामरूपात्मक जगत्, स्त्री-पुरुषादि समस्त प्राणिसमुदाय तथा चारों वेद—सभी इस 'प्रणव' (ॐ) से ही व्याप्त है। यह ॐ शिव-शक्तिका बोधक है।

याद रक्खो—सृष्टि, स्थिति, संहार, लय और अनुग्रह—इन पाँच प्रकारकी क्रियाओंके रूपमें भगवान् शिवकी लीला निरन्तर होती रहती है। इनमें चिद्रूपका सम्बन्ध 'अनुग्रह' से, आनन्दरूपका 'लय' से और इच्छा-रूप, ज्ञानरूप तथा क्रियारूपका सम्बन्ध 'सृष्टि' 'स्थिति' और 'संहार'से है। इन्हीं पाँच रूपोंके प्रकाशक भगवान् शिवके—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात नामक पाँच मुख हैं। इनमें ईशान तथा तत्पुरुषसे तुर्यातीत तथा तुर्यदशाकी एवं सद्योजात, वामदेव तथा अघोरसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी व्याप्ति है। इसी क्रमसे पञ्चमहाभूतोंकी व्याप्ति इनसे मानी जाती है।

याद रक्खो—भगवान् शिवकी पञ्च मूर्तियोंमें प्रथम मूर्ति क्रीड़ा करती है, दूसरी तपस्या करती है, तीसरी लोक-संहार करती है, चौथी प्रजासृष्टि करती है और पाँचवीं सद्वस्तुयुक्त समस्त संसारको आच्छन्न करके रखती है। ईशानमूर्ति सबकी प्रभु, सबमें वर्तमान, सृष्टि-प्रलय-रक्षा करनेवाली है।

याद रक्खो—भगवान् शिवकी ईशान नामक प्रथम मूर्ति साक्षात् प्रकृति-भोक्ता क्षेत्रज्ञ पुरुषमें अधिष्ठित है, तत्पुरुष नामक द्वितीय मूर्ति सत्त्वादि गुणोंके आश्रय भोग्य प्रकृतिमें अधिष्ठित है, तृतीय अघोर नामकी मूर्ति धर्म आदि अष्टाङ्ग-युक्त बुद्धिमें अधिष्ठित है, चतुर्थ वामदेव मूर्ति अहंकारमें अधिष्ठित है और पञ्चम सद्योजात मूर्ति मनमें अधिष्ठित है।

याद रक्खो—भगवान् शिवकी शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव तथा पशुपति नामकी अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, और क्षेत्रज्ञ (यजमान) में अधिष्ठित हैं। इन्हीं आठोंके रूपमें उनकी पूजा करनी चाहिये।

याद रक्खो—भगवान् परम शिवके तीन व्यूह हैं—और इकतीस प्रकार हैं—तीन व्यूहोंके नाम शिव, सदाशिव और महेश्वर हैं। शिव एक रूप है, सदाशिव पञ्च रूप और महेश्वर पञ्चविंशति रूप।

याद रक्खो—भगवान् शिवके दूसरे प्रकारसे चार व्यूह हैं—ब्रह्मा, काल, रुद्र और विष्णु। भगवान् शिव इन सबके आधार एवं शक्तिके भी आधार तथा प्रभव-स्थान हैं।

याद रक्खो—परात्पर परतम भगवान् शिव त्रिदेवगत रुद्र नहीं हैं। भगवान् शिवकी इच्छासे प्रकट रजोगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्मा, सत्त्वगुणरूप विष्णु एवं तमोगुणरूप रुद्र हैं, जो सृजन, रक्षण तथा संहारका कार्य करते हैं। ये तीनों वस्तुतः शिवकी ही अभिव्यक्ति हैं, इसलिये शिवसे पृथक् भी नहीं हैं। परात्पर परतम

सदाशिव, महाविष्णु आदि स्वरूपतः ही एक तत्त्व हैं। इनमें भेद-बुद्धि या ऊँच-नीचकी भावना करके राग-द्वेष-युक्त स्तुति-निन्दा करना पाप है तथा पतनका प्रत्यक्ष कारण है।

याद रक्खो—भगवान् शिव या रुद्र अनादिकालीन वैदिक देवता हैं; और इनकी लिङ्ग-पूजा भी सनातन है। न तो ये आधुनिक देव हैं, न लिङ्ग-पूजा ही आधुनिक या अनार्य-पूजा है। शिवलिङ्ग चिन्मय है, स्थूल अङ्गविशेष नहीं। चिन्मय आदिपुरुषका स्वरूप ही लिङ्ग है। जिनसे चराचर विश्वकी उत्पत्ति हुई है, वे ही सबके लिङ्ग या कारणस्वरूप हैं। लिङ्गपीठ अर्थात् प्रकृति पार्वती हैं और लिङ्ग चिन्मय परब्रह्म पुरुष हैं। पीठ अम्बामय तथा शिवलिङ्ग चिन्मय पुरुषमय है।

याद रक्खो—लिङ्गका अर्थ है चिह्न। जैसे सींग, थूहा, पूँछ, गलकम्बल—यों गौ-जातिके लिङ्ग हैं—

'विषणी ककुद्मान् प्रान्ते बालधिः सास्नावानिति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्।'

लिङ्ग कहते हैं—पहचान करनेवाले चिह्नको—'आकृति-जातिलिङ्गाख्या।' मूँछ पुरुषका लिङ्ग है—मूँछवाला पुरुष होता है, नारी नहीं; इसी प्रकार भगवान् शिवका परिचायक चिह्न है लिङ्ग। शिवपुराणमें शिवलिङ्गोंके जो रूप बताये हैं, उन्हें जानकर कोई यह नहीं कह सकता—यह मनुष्यका शिश्न है। वहाँ बताया है सबसे पहला लिङ्ग ज्योतिस्तम्भरूप है; जो प्रणव (ॐ) है। यह सूक्ष्म लिङ्ग प्रणवरूप तथा निष्कल है। स्थूल लिङ्ग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है।

याद रक्खो—शिवलिङ्गकी आकृति ब्रह्माण्डकी ही आकृति है, यह मानो ब्रह्माण्डका एक मानचित्र है। चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् इस ब्रह्माण्डरूप शिवलिङ्गमें है। एक शिवलिङ्गके पूजनसे ही सूर्य, चन्द्र, नारायण, लक्ष्मी सबकी पूजा सम्पन्न हो जाती है।

जैसे भगवान् विष्णुके अव्यक्त ईश्वररूपकी प्रतीक शालग्रामरूप पिण्डी है, वैसे ही भगवान् शिवके अव्यक्त ईश्वररूपकी प्रतिमा लिङ्गरूप पिण्डी है।

याद रक्खो—भगवान् शिव ही समस्त विद्याओंके—योग, ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि परम कल्याणकारिणी विद्याओंके भण्डार जगद्गुरु हैं। वे केवल शिक्षा देनेवाले ही गुरु नहीं हैं, सभी विषयोंमें स्वयं आदर्शरूप हैं। वे परम योगाचार्य—योगेश्वर हैं। उन्हींके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा योगका प्रसार-प्रचार तथा संरक्षण हुआ तथा होता है।

याद रक्खो—भगवान् शिव पूर्णतम योगेश्वर, महान् गम्भीर ज्ञानस्वरूप होनेपर भी अपनी साधुताका परिचय करानेवाले महान् सरलहृदय हैं। वे बहुत लम्बी-चौड़ी पूजा-उपासनाकी प्रतीक्षा न करके बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, इसीसे उनका 'आशुतोष' नाम प्रसिद्ध है और प्रसन्न होकर वे परम अलभ्य वस्तु भी सहज ही दे डालते हैं—इसीसे वे 'औढरदानी' कहलाते हैं। वे सहज कल्पतरु हैं; उनसे जो मनुष्य, जो कुछ भी चाहता है, भगवान् शिव उसे वही दे देते हैं। उनके औढरदानी या आशुतोष होनेका यह अभिप्राय नहीं है कि उनमें बुद्धि और विवेककी कमी है। वस्तुतः समस्त विवेक, ज्ञान एवं बुद्धिके आधार ही भगवान् शिव हैं। वे ही जगद्गुरु-रूपमें समस्त ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण देवर्षि-मुनि-मानवों-को ज्ञान दान देते हैं। यह तो भगवान् शंकरकी एक विशेष दयालुता है कि वे सबके मनोरथ पूर्ण करनेमें सदा तत्पर रहते हैं।

याद रक्खो—भगवान् शिव सदा ही मङ्गलमूर्ति हैं, कल्याणमय हैं। उनका अशिव वेष विषय-वैराग्यका आदर्श है, न कि पागलपनका। जो लोग भगवान् शिवको नशेबाज, भँगेड़ी, गँजेड़ी, पागल या मसानमें रहनेवाले औघड़ मात्र मानते हैं, वे अपनी ही सदाचार-

हीनताका शिवपर आरोप करके अपने दोषोंको ढकनेके लिये भगवान् शिवका सहारा लेकर अनर्थ करते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र रासका रहस्य न समझकर प्रकारान्तरसे अपनी व्यभिचार-वृत्तिका समर्थन करते हैं, वैसे ही शिवके आचरणों-के अनुकरणका ढोंग रचकर असदाचारी लोग ऐसा कहते हैं। सच्चे शिवभक्तके लिये सदाचारी होना परमावश्यक है। जान-बूझकर अपवित्र आचरणको जीवनमें भरे रखनेवाला कोई भी शिवभक्त नहीं हो सकता।

याद रक्खो—त्रिगुणमय जगत् ही बन्धनरूप है, शिवके भजनसे मनुष्य गुणातीत हो जाता है—उसके तीनों गुण भस्म हो जाते हैं; इसीसे वे 'त्रिपुरारि' हैं। अभिमान-क्रोध आदि दोष ही सर्प हैं, इन सबको अपने वशमें करके भगवान् शंकरने अपना भूषण बना लिया है, इसीलिये वे 'सर्पभूषण' हैं। धर्म ही वृषभ है, वे नित्य धर्मपर आरूढ़ रहते हैं, इसीसे वृष-वाहन हैं। भगवान् शिवकी विभूति ही जगत्को यथार्थ विभूति प्रदान करती है, इसीसे वे 'विभूति' को सदा सारे शरीरपर लगाये रहते हैं। सम्पूर्ण चराचर भूत उन्हींके अधीन हैं, इसीसे वे 'भूतनाथ' हैं। उनका प्रत्येक अङ्ग, आभूषण आध्यात्मिक अर्थ रखता है।

याद रक्खो—भगवान् शिवका नाम परम मङ्गलमय, कल्याणमय, सर्वदुःखनाशक, सर्वसुखविधायक, सर्व-सिद्धिदाता और भोग-मोक्ष देनेवाला है। अतएव श्रद्धा-पूर्वक भगवान् शिवके एक नाम या पञ्चाक्षर 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप करो और सहज ही आशुतोष शंकरकी कृपा प्राप्त करके कृतार्थ हो जाओ।

'शिव'

क्षमा-प्रार्थना

बहुत दिनोंसे 'कल्याण' के सम्मान्य बहुत-से महानुभावोंका अनुरोध था कि 'संक्षिप्त शिवपुराण' नामक विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाय। भगवान् श्रीशंकरकी कृपासे आज उस अनुरोधके अनुसार यह 'संक्षिप्त-शिवपुराण' निकल रहा है। हमारी यह नम्र प्रार्थना है कि वे महानुभाव विलम्बके लिये क्षमा करें। शिवपुराण एक प्रधान पुराण है। इसमें परात्पर परतम परब्रह्म प्रभुके कल्याणमय शिवस्वरूपके महत्त्व, तत्त्व, रहस्य, लीलाविहार, अवतार तथा उनकी पूजा-पद्धतिका बड़ा ही विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी परात्परता, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—त्रिदेवोंकी एकता, शक्तिकी प्रधानता एवं शक्ति-शक्तिमान्‌की अभिन्नता, सत्सङ्ग, सदाचार, भक्ति, योग, ज्ञान आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है। 'कल्याण' के सम्मान्य पाठक-पाठिकाओंसे सविनय निवेदन है कि वे अपने जीवनको कल्याणमय—सुख-शान्तिमय बनाने तथा मानवजीवनकी सफलता प्राप्त करनेके लिये इस महान् ग्रन्थमें बताये हुए साधनोंको जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करें। इसमें यद्यपि संक्षेप किया गया है, तथापि प्रायः सभी प्रधान कथाओंका सार-संकेत आ गया है। तत्त्व, साधन, पूजन आदिके निरूपण-प्रसङ्गोंको बहुत ही कम छोड़ा गया है।

इस आदरणीय पुराणके सार-संग्रहका बड़ी अच्छी भाषामें सुन्दर हिंदी भाषान्तर करनेवाले हैं हमारे सम्मान्य विद्वान् पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' महोदय और दूसरे पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री महोदय। इन्होंने बड़ी सावधानी तथा लगनसे इस महान् कार्यको सम्पन्न किया है। पाठक देखेंगे कि स्थान-स्थानपर स्पष्टीकरणके लिये इन्होंने टिप्पणियाँ लगानेका भी स्तुत्य प्रयास किया है।

यह सारा श्रीशास्त्रीजी आदिके सत्प्रयासका फल है और उन्हींको इसका श्रेय है। इसमें जो भूलें रह गयी हैं, उनका सारा दायित्व अवश्य ही सम्पादकपर है और वे इसके लिये सविनय क्षमा-प्रार्थना कर रहे हैं। सारग्राही सज्जनोंको इसमें जो कुछ निर्दोष, प्रमाद-भूलसे रहित, श्रेष्ठ, सुन्दर तथा उपयोगी जान पड़े, वे कृपया उसीको ग्रहण करें।

चित्र सभी प्रसङ्गोंके नहीं दिये जा सके, बीच-बीचमें अड़चनें आती रहीं। सब चित्र प्रसगानुकूल लगे भी नहीं हैं, इन सब त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

इस अङ्कमें पहले लेखादि देनेका विचार प्रायः नहीं था परंतु इधर पुराने विशेषाङ्क 'शिवाङ्क' के पुनः प्रकाशनका बड़ा

माँग थी, यद्यपि उसका पुनः प्रकाशन अभी सम्भव नहीं था। कुछ महानुभावोंने ऐसे सुझाव दिये थे कि पूरा 'शिवाङ्क' नहीं तो उसमें प्रकाशित अमुक-अमुक महत्त्वपूर्ण लेख ही प्रकाशित कर दिये जायँ। अतएव उनके अनुरोधके अनुसार इस अङ्कमें 'शिवाङ्क'में प्रकाशित आदरणीय विद्वानोंके, जिनमेंसे कई तो इस समय दिवंगत हो चुके हैं, महत्त्वपूर्ण कुछ लेख भी प्रकाशित किये जा रहे हैं। कुछ नये लेख भी हैं। आशा है 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंको इससे लाभ तथा संतोष होगा।

'कल्याण'का जितना ऊँचा स्तर पहले था, उतना आजकल नहीं रहा—ऐसा कुछ महानुभावोंका मत है। हम भी इसे सत्य मानते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि हमलोगोंमें तो स्तरको ऊँचा उठानेकी योग्यता है नहीं, स्तरको ऊँचे बनाये रखनेवाले थे–हमारे परम आदरणीय विद्वान् लेखक महोदय; उनमेंसे हमारे दुर्भाग्यवश बहुत-से बहुत बड़े अनुभवी, प्रौढ़, गम्भीर, साधनसिद्ध या साधक विद्वान् दिवंगत हो चुके हैं। उनके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति नहीं हो पायी है और उसकी सम्भावना भी प्रायः नहीं है। इसीसे उनके विचार आजकल प्रकाशित नहीं हो पा रहे हैं। यही कारण है स्तरके उतने ऊँचे न रहनेका। पर समयानुसार यह जैसा है, इसीसे जो कुछ लाभ मिलता है, उसे उठानेकी चेष्टा रहनी चाहिये। वास्तवमें यह सारा काम श्रीभगवान्का है, हमलोग नगण्य प्राणी क्या कर सकते हैं। भगवान्के मङ्गल-विधानके अनुसार ही सब कुछ हुआ है, हो रहा है और होगा। उन्हींकी प्रेरणासे 'कल्याण' निकला, चला, इसका प्रचार बढ़ा; अब जबतक इसके चलनेका उनका विधान है, चलता रहेगा। न चलनेका विधान होगा, तब बंद हो जायगा। हमलोग तो निमित्तमात्र हैं।

'कल्याण'के सभी ग्राहक-ग्राहिकाएँ, पाठक-पाठिकाएँ, अहैतुक प्रेमवश इसका प्रचार करनेवाले, 'कल्याण'से प्रीति एवं सहानुभूति रखनेवाले एवं खास करके 'कल्याण' में प्रकाशित साधन, सद्भाव, सदाचार, नियम आदिको सानन्द स्वयं ग्रहण करनेवाले, उन्हें यथासाध्य अपने जीवनमें उतारकर 'कल्याण'से सच्चा लाभ उठानेवाले सभी श्रेणियोंके महानुभाव तथा महिलाएँ हमारे लिये परम आदरणीय हैं। हम उन सबके चरणोंमें हृदयसे अभिवादन करते हैं।

साथ ही हम अपने उन सभी पूज्यचरण, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संतों, महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों और लेखकों तथा कवि महानुभावों एवं पवित्रहृदया माताओंके श्रीचरणोंमें भक्ति-श्रद्धासहित प्रणाम करते हुए, जानते तथा न जानते हुए बने तथा बननेवाले सभी छोटे-बड़े अपराधोंके लिये हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हैं। 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें हम उन्हींको प्रधान कारण मानते हैं; क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्चविचारयुक्त लेखोंसे ही 'कल्याण'को सदा शक्ति मिलती रहती है। इसीके साथ हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी सहयोगियोंको भी सादर प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य अबतक चला और चल रहा है। हम अपनी त्रुटियों तथा व्यवहारके दोषोंके लिये उन सबसे भी क्षमा चाहते हैं।

इस अङ्कके सम्पादन, चित्रनिर्माण, प्रूफ-संशोधन आदि कार्योंमें जिन-जिनसे हमें सहायता मिली है, उन सभीके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अन्तमें हम भगवान् शंकरके श्रीचरणोंमें पुनः अनन्त प्रणाम करके अपने समस्त अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करते हैं—

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम्॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

प्रार्थी— हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी — सम्पादक

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षा-प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर लगभग ३५० केन्द्र हैं। विशेष जानकारीके लिये नीचे पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति गीता-भवन, पो० ऋषिकेश (देहरादून)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—दोनों आशीर्वादात्मक प्रासादिक ग्रन्थ हैं। इनके प्रेमपूर्ण स्वाध्यायसे लोक-परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। इन दोनों मङ्गलमय ग्रन्थोंके पारायणका तथा इनमें वर्णित आदर्श सिद्धान्त और विचारोंका अधिक-से-अधिक प्रसार हो—इसके लिये 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' दस वर्षोंसे चलाया जा रहा है। अबतक गीता-रामायणके पाठ करनेवालोंकी संख्या ३७,११५ से अधिक हो चुकी है। इन सदस्योंसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता। सदस्योंको नियमितरूपसे गीता-रामचरितमानसका पठन, अध्ययन और विचार करना पड़ता है। इसके नियम और आवेदनपत्र मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) को पत्र लिखकर मँगवा सकते हैं।

साधक-संघ

देशके नर-नारियोंका जीवनस्तर यथार्थरूपमें ऊँचा हो, इसके लिये साधक-संघकी स्थापना की गयी है। इसमें भी सदस्योंको कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको .१९ नये पैसेमें एक डायरी दी जाती है, जिसमें वे अपने नियमपालनका ब्यौरा लिखते हैं। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको स्वयं इसका सदस्य बनना चाहिये और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों एवं साथी-संगियोंको भी प्रयत्न करके सदस्य बनाना चाहिये। आनन्दकी बात है कि इसके सदस्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। नियमावली इस पतेपर पत्र लिखकर मँगवाइये—संयोजक 'साधक-संघ,' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें भेजिये

(१) प्राचीन ग्रन्थोंकी सुरक्षाकी दृष्टिसे प्राचीन ग्रन्थोंका गीताप्रेसमें संग्रह किया जा रहा है। जिनके पास संस्कृत या हिन्दी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ या चित्र हों और जो देना चाहें, वे कृपया भेज दें। रेल या डाकखर्च गीताप्रेसकी ओरसे दिया जायगा।

(२) किन्हीं सज्जनके पास विक्रम संवत् १७०० से पूर्वकी या १७०० के कुछ ही वर्षों बादकी लिखी गो० श्रीतुलसीदासजी-रचित श्रीरामचरितमानसकी पूरी (सातों काण्ड) या अधूरी (कुछ काण्ड) प्रति हो तो वे कृपया हमें प्रदान करें। डाकखर्च यहाँसे दिया जायगा और हम बड़े कृतज्ञ होंगे।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

आवश्यक प्रार्थना

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पत्रव्यवहार बहुत ही कम कर पाते हैं तथा सार्वजनिक सभाओं, उत्सवों-समारोहोंमें भी सम्मिलित होनेमें और लोगोंसे मिलने-जुलनेमें भी उन्हें बड़ी असुविधा है। अतएव सबसे प्रार्थना है कि बहुत आवश्यक होनेपर ही उनको व्यक्तिगत पत्र लिखें, पत्रका उत्तर देरसे पहुँचे या न पहुँचे तो क्षमा करें; सार्वजनिक सभाओं, उत्सव-समारोहोंमें बुलानेका कृपया आग्रह न करें और यहाँ मिलनेके लिये, पहलेसे स्वीकृति प्राप्त किये बिना, पधारनेका कष्ट भी कृपापूर्वक न करें। कोई सज्जन आ जायँ और उनसे मिलना न हो तो व्यर्थ कष्ट होगा, इसीसे यह प्रार्थना की गयी है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

आरती

आरति परम साम्ब-शंकरकी ।
सत्य सनातन शिव शुभकरकी ॥

आदि, अनादि, अनन्त, अनामय ।
अज, अविनाशी, अकल, कलामय ।
सर्वरहित नित सर्व-उरालय ।
मस्तक सुरसरिधर शशिधरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥

कर्ता, भर्ता, जगसंहारी ।
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तनुधारी ।
सर्वविकाररूप अविकारी ।
अग-जग-पालक प्रलयंकरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥

विश्वातीत विश्वगत स्वामी ।
द्रष्टा साक्षी अन्तर्यामी ।
काम-काल सब-जग-हित-कामी ।
अनघ-स्वरूप सकल अघहरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥

मुनि-मन-हरण मधुर शुचि सुंदर ।
अति कमनीय रूप सुषमावर ।
दिव्याम्बर रत्नाभूषणधर ।
सर्व-नयन-मन-हर सुखकरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥

विकट कराल पंचमुखधारी ।
मुण्डमाल विषधर भयकारी ।
हाथ कपाल श्मशान-विहारी ।
वेष अमंगल मंगलकरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥

भोगी, योगी, ध्यानी, ज्ञानी ।
जग-अभिमानाधार अमानी ।
आशुतोष अति औढरदानी ।
दैन्य-दुरित-दुर्गतिहर हरकी ।
आरति परम साम्ब-शंकरकी ॥